श्रीः

श्रीमदनन्तोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचित-

धर्मसिन्धुः

लांखग्रामनिवासि-

श्रीमन्महामहोपाध्यायविद्वद्वरपण्डितश्रीमिहिरचन्द्रकृत-

भाषाटीकासहितः

★

मुद्रक व प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,-बम्बई ४.

सम्वत् २०४६ सन् १९८९

व्ययभार वृद्धि सहित मूल्य Rs 150/00

भूमिका-भाषासमेता

★

तत्तत्संस्कारोपवासव्रताह्निककृत्याग्निहोत्रादिश्रौतस्मार्तकर्मणां पुरुषान्तःकरणदेहादिशोधकत्वं सदाचारप्रतिपादकत्वमुभयलोकशुद्धिजनकत्वञ्चेति सर्वजनप्रसिद्धम् । अतः संस्कारादिमुहूर्तसमयदेश-कालेतिकर्तव्यतादिबोधको धर्मशास्त्रग्रन्थ आवश्यकोऽतोऽनेकमहर्षिनिर्मितस्मृतिवाक्यमनुसृत्य विद्वद्वरैर्निर्णय-सिन्ध्वपरार्कादिग्रन्थाः गृहीताः । तेषु च केषाञ्चिदतिविस्तृतत्वेन केषाञ्चिच्चातिगहनसंस्कृतशालित्वे-नाल्पविदुषां नाप्रयासेनाभीष्टबोधजनकत्वमतः काशीनाथविद्वद्वरैर्धर्मसिंधुनामायं धर्मशास्त्रसरलग्रंथस्तथा निरमायि यथा निर्णयसिन्धुगूढार्थोऽल्पज्ञैरपि सुगमतयाऽवबुध्येत । परंतु एतद्बोधस्यापि संस्कृतज्ञ-जनज्ञानसाध्यत्वेनाल्पविदुषां भावमात्रविदां चाभिलाषपूर्त्यप्रयोजकत्वेन नास्यापि तद्बोधप्रदत्वम् । अतो धर्मज्ञानप्रसृतिसाधारण्यमीहमानैः 'स ग्रंथो भाषायां विवृत्य प्रेरणीय' इति मे दत्तनिजानुमतिभिः श्रीक्षेमराजश्रेष्ठिभिर्धर्मसिन्धोर्भाषाविवृतिकृतावहमयोजिषि । मया च यथामति भाषायां विवृत्य विद्-ष्टिपथे निवेदनपूर्वकमुक्तश्रेष्ठिनां समीपे प्रेष्यते । विद्वद्वरैस्तु दयादृष्ट्याऽयं शोध्यो ग्राह्यश्चेति मेऽर्थनम् । इति शम् ।।

विद्वच्चरणानुगः—पं० मिहिरचन्द्रशर्मा.

उन उन संस्कार, उपवास, व्रत, आह्निककृत्य, अग्निहोत्र, श्रौतकर्म और स्मार्त्तकर्म, पुरुषका अंतःकरण और देह आदिकको शोधकता, सत् आचारकी प्रतिपादकता और दोनों लोकोंकी शुद्धिकी उत्पन्नता सर्वजनोंको प्रसिद्ध है । इसलिये संस्कार आदि मुहूर्त, समय, देश, काल, कर्त्तव्यता इत्यादिका बोधक धर्मशास्त्र ग्रंथ आवश्यक है । इसी कारण अनेक महर्षियोंकी निर्माण की हुई स्मृतियोंके वाक्योंको अनुसरण करके विद्वद्वरोंने निर्णयसिन्धु, अपरार्क आदि ग्रंथ संग्रह किये हैं । उन कुछ ग्रंथोंके अति विस्तृत होनेसे और कुछ के अतिकठिन होनेसे अल्पविद्वानोंको बिना प्रयासके अभीष्ट बोध नहीं हो सकता । इसलिये विद्वद्वर काशीनाथजीने धर्मसिंधु नामक यह धर्मशास्त्रका सरल ग्रंथ उस शैलीसे रचा है कि, जिससे निर्णयसिंधुके गूढ अर्थोंको साधारण विद्वान् भी सुगमतासे जान सकें । इसके बोधके लिये भी संस्कृतज्ञाता ही होनेके कारण भाषामात्रके जाननेवालोंकी अभिलाषा पूर्त्तिके लिये 'इसको भी कठिनता है' ऐसा अभि-प्राय समझकर धर्मजिज्ञासुजनोंके अर्थ श्रीखेमराजश्रेष्ठिने अपनी अनुमति मुझको दी कि 'इस ग्रंथका भाषानुवाद होना उचित है आप करें', इस प्रेरणासे मैंने यथामति भावानुवाद करके विद्वानोंके दृष्टिपथमें निवेदनपूर्वक उक्त श्रेष्ठिके समीप भेजा है । विद्वानोंको दयादृष्टि करके यह कहीं त्रुटि हो तो शुद्ध करना और ग्रहण करना चाहिये, यह मेरी प्रार्थना है ।

यह भाषानुवाद उपरोक्त—"श्रीमिहिरचन्द्रजी" की भूमिका का है ।

मुद्रक व प्रकाशक : मे. खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष—श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई—४०० ००४ के लिये डी० एस० शर्मा.

॥ श्रीः ॥

अथ भाषाटीकासमेत धर्मसिन्धु--विषयानुक्रमणिका ।

अथ द्वितीयपरिच्छेद ।

अनुक्रमणिका ।

अथ तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्द्ध।

अथ तृतीयपरिच्छेद उत्तरार्द्ध।

इति भा० टी० धर्मसिन्धुविषयानुक्रमणिका

समाप्ता ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमल्लक्ष्मीकान्ताय नमः ।



धर्मसिन्धु ।

भाषाटीकासमेत ।

श्रीविट्ठलं सुकरुणार्णवमाशुतोषं दीनेष्टपोषमघसंहतिसिंधुशोषम् ॥ श्रीरुक्मिणीमतिमुषं पुरुषं परं तं वन्दे दुरंतचरितं हृदि संचरंतम् ॥ १ ॥ वन्दे प्रतिघ्नतमघानि शंकरं धत्तां स मे मूर्ध्नि दिवानिशं करम् ॥ शिवां च विघ्नेशमथो पितामहं सरस्वतीमाशु भजे पितामहम् ॥ २ ॥ श्रीलक्ष्मीं गरुडं सहस्रशिरसं प्रद्युम्नमीशं कपिं श्रीसूर्यं विधिभौमविद्गुरुकविच्छायासुतान्षण्मुखम् ॥ इंद्राद्यान्विबुधान्गुरूंश्च जननीं तातं त्वनंताभिधं नत्वार्यान्वितनोमि माधवमुखान्धर्माब्धिसारं सुखम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा पूर्वनिबंधान्निर्णयसिंधुक्रमेण सिद्धार्थान् ॥ प्रायेण मूलवचनान्युज्झित्य लिखामि बालबोधाय ॥ ४ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ उत्तम करुणाके समुद्र,शीघ्र प्रसन्न,दीनोंके इष्ट साधक, पापोंके समूहका जो समुद्र उसके शुष्ककारक, लक्ष्मीरूप रुक्मिणीकी बुद्धिके चोर, परमपुरुषरूप, दुरन्त हैं चरित्र जिनके, हृदयमें विराजमान ऐसे जो श्रीविट्ठल हैं उनको मैं काशीनाथ नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ पापोंका नाश करते हुये सुखके कर्त्ता गणेशजीको मैं नमस्कार करता हूं वे मेरे शिरपर रात्रिदिन हाथको रक्खो. पार्वतीको और विघ्नेशको पितामहको सरस्वतीको और पितामह (ब्रह्मा) को मैं शीघ्र भजता हूं ॥ २ ॥ श्रीलक्ष्मीजी, गरुड, सहस्रशिर (शेष), प्रद्युम्न, ईश, हनुमान् , सूर्य, ब्रह्मा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, स्वामिकार्तिक, इन्द्र आदि देवता, गुरु, माता और अनन्त नामके पिता और सज्जन जो माधव आदि हैं इनको नमस्कार करके धर्मसिंधुसारका विस्तारसे वर्णन करता हूं ॥ ३ ॥ पहिले ग्रन्थोंको देखकर निर्णयसिंधुके सिद्ध (उक्त) अर्थोंको प्रायःसे मूलके वचनोंको छोड़कर बालबोधके लिये लिखता हूं ॥ ४ ॥

तत्र कालः षड्विधः ॥ वत्सरः अयनम् ऋतुर्मासः पक्षो दिवस इति ॥ वत्सरः पंचधा ॥ चांद्रः सौरः सावनो नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति ॥ शुक्लप्रतिपदादिदर्शांतैश्चैत्रादिसंज्ञैर्द्वादशभिर्मासैश्चतुःपंचदशाधिकशतत्रयदिनैः सति मलामासे

त्रयोदशभिर्मासैश्चांद्रो वत्सरः ॥ चांद्रस्यैव प्रभवो विभवः शुक्र इत्यादयः षष्टिसंज्ञाः ॥ मेषादिषु द्वादशराशिषु रविभुक्तेषु पंचषष्ट्यधिकशतत्रयदिनैः सौरवत्सरः संपद्यते ॥ षष्ट्युत्तरशतत्रयदिनैः सावनः ॥ वक्ष्यमाणैर्द्वादशभिर्नाक्षत्रमासैर्नाक्षत्रो वत्सरः ॥ स च चतुर्विंशत्यधिकशतत्रयदिनैः स्यात् ॥ मध्यमराशौ बृहस्पतिना भुक्ते बार्हस्पत्यः ॥ स च एकषष्ट्यधिकशतत्रयसंख्यादिनैर्भवति ॥ कर्मादौ संकल्पे चांद्रवत्सर एव स्मर्तव्यो नान्यः ॥ अयनं द्विविधम् ॥ दक्षिणमुत्तरंच ॥ सूर्यस्य कर्कसंक्रांतिमारभ्य षड्राशिभोगेन दक्षिणम् ॥ मकरसंक्रांतिमारभ्य षड्राशिभोगेनोत्तरायणम् ॥ ऋतुर्द्विविधः ॥ सौरश्चांद्रश्च ॥ मीनारंभो मेषारंभो वा सूर्यस्य राशिद्वय भोगात्मको वसंतादिषट्संज्ञकः सौरऋतुः ॥ चैत्रमारभ्य मासद्वयात्मको वसंतादिषट्संज्ञकश्चांद्रः ॥ मलमासे तु किंचिदूननवतिसंख्यैर्दिनैश्चांद्रऋतुः॥श्रौतस्मार्तादौ चांद्रऋतुस्मरणं प्रशस्तम् ॥ मासश्चतुर्द्धा ॥ चांद्रः सौरः सावनो नाक्षत्र इति ॥ शुक्लप्रतिपदादिरमांतः कृष्णप्रतिपदादिपूर्णिमान्तो वा चांद्रो मासः॥तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः ॥ कृष्णादिस्तु विंध्योत्तर एव ग्राह्यः ॥ अयमेव चैत्रादिसंज्ञकः कर्मादौ स्मर्तव्यः ॥ केचिन्मीनराशिमारभ्य सौराणां चैत्रादिसंज्ञामाहुः॥ अर्कसंक्रांतिमारभ्योत्तरसंक्रांत्यवधिः सौरो मासः॥ त्रिंशद्दिनैः सावनः ॥ चंद्रस्याश्विन्यादिसप्तविंशतिनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः ॥ प्रतिपदादिपौर्णिमांतः शुक्लपक्षः ॥ प्रतिपदादिदर्शांतः कृष्णपक्षः ॥ दिवसः षष्टिघटिकात्मकः ॥ इति धर्मसिंधुसारे प्रथमोद्देशः ॥ १ ॥

उस निर्णयमें समय छः प्रकारका है–कि वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और दिन। वर्ष पांच प्रकारका है–कि चांद्र, सौर, सावन, नाक्षत्र, बार्हस्पत्य। शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर अमावस्या पर्यन्त जो चैत्र आदि नामके द्वादश १२ मास उनसे तीनसौ चम्मन ३५४ दिनों का और मलमास होनेपर त्रयोदश मासोंका चांद्रवत्सर होता है चांद्रही प्रभव विभव आदि ये साठ ६० संज्ञा हैं। जब मेष आदि द्वादश राशियोंको सूर्य भोग चुके तब तीनसौ पैंसठ ३६५ दिनोंका सौर संवत्सर होता है। तीनसौ साठ ३६० दिनोंका सावन वर्ष होता है।आगे कहने योग्य बारह नक्षत्र मासोंका नाक्षत्र वर्ष होता है वह तीनसौ चौबीस दिनोंका होताहै। मेष आदि द्वादश राशियोंको बृहस्पति जब प्रथम भोगचुके तो बार्हस्पत्य नामका वर्ष होता है वह तीनसौ इकसठ ३६१ दिनोंका होता है कर्म आदिके संकल्पके विषे चांद्र वत्सरकाही स्मरण करना अन्यका नहीं। अयन दो प्रकारका है दक्षिण और उत्तर सूर्यकी कर्कसंक्रान्तिसे लेकर छः राशियोंके भोगनेसे दक्षिणायन होता है और मकरसे लेकर छः राशियोंके भोगनेसे उत्तरायण होता है। ऋतु दो प्रकारका होता है सौर और चांद्र, मीनके प्रारम्भसे वा मेषके प्रारम्भ से सूर्यकी दो २ राशियोंका भोगनारूप वह ऋतु वसन्त आदि भेदोंसे छः प्रकारका सौर नामका होता है और चैत्रसे लेकर दो २ मासरूप जो है वह वसन्त आदि नामसे चांद्र कहाता है मलमास होनेपर तो किंचित् न्यून नब्बे ९० दिनोंका चांद्रऋतु होता है वेद और

धर्मशास्त्रोक्त कर्मोंमें चांद्रऋतुका स्मरण श्रेष्ठ होता है मास चार प्रकारका होता है—चांद्र, सौर, सावन नाक्षत्र; शुक्ल प्रतिपदासे लेकर अमावस्यापर्यंत वा कृष्ण प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमापर्यंत चांद्रमास होता है उन दोनोंमेंभी शुक्ल आदि मुख्य है कृष्ण आदि तो विन्ध्याचलके उत्तरमेंही ग्रहण करने योग्य है यही चैत्र आदि नामका मास कर्म आदिमें स्मरण करने योग्य है कोई तो मीनराशिसे लेकर सौरमासोंकी चैत्र आदि संज्ञाओंको कहते हैं—सूर्यकी एक संक्रांतिसे लेकर अगली संक्रांतिपर्यंत सौरमास होता है । तीस दिनोंका सावनमास होता है चन्द्रमाके अश्विनी आदि सत्ताईस २७ नक्षत्रोंके भोगसे नाक्षत्र मास होता है । प्रतिपदासे पूर्णिमापर्यंत शुक्लपक्ष और प्रतिपदासे अमावस्यापर्यंत कृष्णपक्ष होताहै । साठ घटीके समयको दिवस कहते हैं ॥ इति धर्मसिंधुसारे भाषाविवृतिसहिते प्रथमोद्देशः ॥ १ ॥

अथ संक्रांतिनिर्णय उच्यते ।

मेषे सूर्यसंक्रांतौ प्रागूर्ध्वं पंचदश पंचदश घटिकाः पुण्यकालः ॥ दशदशेत्येके ॥ वृषे पूर्वाः षोडश ॥ मिथुने पराः षोडश ॥ कर्के पूर्वास्त्रिंशत् ॥ सिंहे पूर्वाः षोडश ॥ कन्यायां पराः षोडश ॥ तुलायां प्रागूर्ध्वं च पंचदश पंचदश दश दश इत्येके ॥ वृश्चिके पूर्वाः षोडश ॥ धनुषि पराः षोडश ॥ मकरे पराश्चत्वारिंशत् ॥ कुंभे पूर्वाः षोडश ॥ मीने पराः षोडश ॥ घटिकाद्वयाद्यल्पदिनशेषे मिथुनकन्यामीनधनुष्ष्वपि मकरेपि पूर्वा एव पुण्याः ॥ प्रभाते घटिकाद्वयाद्यल्पकाले वृषसिंहवृश्चिककुंभेष्वपि कर्केपि परा एव पुण्याः ॥ प्रभाते कर्कसंक्रांतौ पूर्वदिने पुण्यमित्येके॥रात्रौ संक्रमे मध्यरात्रादर्वाक् संक्रांतौ पूर्वदिनोत्तरार्धे पुण्यम् ॥ मध्यरात्रात्परतः संक्रांतौ परदिनस्य पूर्वार्धे पुण्यम् ॥ निशीथमध्य एव संक्रांतौ दिनद्वयेपि पूर्वदिनोत्तरार्धे परदिनपूर्वार्धे च पुण्यम् ॥ इदं मकरकर्कातिरिक्तं सर्वत्र रात्रिसंक्रमे ज्ञेयम् ॥ अयने तु मकरे रात्रिसंक्रमे सर्वत्र परदिनमेव पुण्यम् ॥ सूर्यास्तोत्तरं घटिकात्रयं सायंसंध्या तत्र मकरसंक्रमे पूर्वदिने पुण्यम् ॥ सूर्योदयात प्राक् घटिकात्रयं प्रातःसंध्या तत्र कर्कसंक्रांतौ परदिने पुण्यमिति संध्याकाले विशेषो ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः ॥

अब संक्रांतिके निर्णयको कहते हैं—कि, मेषकी सूर्य संक्रांतिमें पहिले और पीछे पन्द्रह २ घटी पुण्यकालहै कोई तो दश २ कहते हैं । वृषमें पहिली सोलह और मिथुनमें परली सोलह, कर्कमें पहिली तीस घड़ी, सिंहमें पहिली सोलह, कन्यामें परली सोलह पुण्यकाल है; तुलामें पहिले और पीछे पन्द्रह २ घड़ी पुण्यकाल है कोई तो दश २ घड़ी कहते हैं; वृश्चिकमें पहिली सोलह, धनमें परली सोलह, मकरमें परली चालीस, कुंभमें पहिली सोलह, मीनमें परली सोलह घड़ी पुण्यकाल है दो घड़ी दिन आदिके शेष रहनेके समय मिथुन, धन, मीन, कन्या, मकर, इनकी संक्रांतिमें पहिलीही घड़ी पुण्यकाल है प्रभातमें दो घड़ी आदि अल्पकालके समय वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ इनकी और कर्ककी भी संक्रांतिमें परलीही घड़ी पुण्यकाल हैं प्रभातमें कर्कसंक्रांतिमें पूर्वदिनमें पुण्य होता है यह कोई कहते हैं रात्रिकी संक्रांतिमें अर्द्धरात्रिसे पहिले

संक्रांतिमें पूर्वदिनके पिछले अर्द्धभागमें पुण्यहै और अर्द्धरात्रसे पीछेकी संक्रांतिमें अगले दिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल है अर्द्धरात्रके मध्यमेंही संक्रांति होय तो दोनों दिनोंमें क्रमसे पूर्वदिनका पिछला अर्द्धभाग और परदिनका पहिला अर्द्धभाग पुण्यकाल है यह मकर और कर्ककी संक्रांतियोंसे भिन्न सर्वत्र रात्रिकी संक्रांतियोंमें जानना अयनमें तो मकरमें रात्रिको संक्रांति होय तो सर्वत्र परदिनमें पुण्यकाल है सूर्यके अस्त हुए पीछे तीन घड़ी सायंसन्ध्या होती है उसमें मकरकी संक्रांति होय तो पहिले दिन पुण्यकाल है सूर्योदयसे पहिले तीन घड़ी प्रातः सन्ध्या होती है उसमें कर्ककी संक्रांति होय तो परले दिन पुण्यकाल है यह सन्ध्यांकालमें विशेष ज्योतिःशास्त्रमें प्रसिद्ध है ॥

अथ दानम् ।

मेषे मेषदानम् ॥ वृषे गोदानम् ॥ मिथुने वस्त्रान्नादिदानम् ॥ कर्के घृतधेनुः ॥ छत्रं सुवर्णं च सिंहे ॥ कन्यायां गृहं वस्त्रं च ॥ तुलायां तिला गोरसाश्च देयाः ॥ वृश्चिके दीपः ॥ धनुषि वस्त्रं यानं च ॥ मकरे काष्ठान्यग्निश्च ॥ कुंभे गोर्जलं तृणं च ॥ मीने भूमिर्मालाश्च देयाः ॥ एवमन्यान्यपि दानानि द्रष्टव्यानि ॥ अयनसंक्रांतौ मेषतुलासंक्रांतौ च पूर्वं त्रिरात्रमेकरात्रं वोपोष्य स्नानदानादि कार्यम् ॥ चरमोपोषणं संक्रांतिमत्यहोरात्रे पुण्यकालवत्यहोरात्रे वा यथा पतेत्तथा कार्यम् ॥ अयमुपवासः पुत्रवद्गृहस्थभिन्नेन पापक्षयकामेन कार्यः काम्यो नतु नित्यः ॥ सर्वसंक्रांतिषु पिंडरहितं श्राद्धं कार्यम् ॥ अयनद्वये तु नित्यं यथावत्तत्तत्संक्रांतिषु दानादिकं कर्तव्यम् ॥ तथैव ताभ्यः पूर्वमयनांशप्रवृत्तौ तत्तत्संक्रांत्युचितस्नानदानादिकं कर्तव्यम् ॥ अयनांशा ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धाः ॥ ते चेदानीं द्वादशाधिकसप्तदशशतसंख्याके शालिवाहनशके एकविंशतिरयनांशा इत्येकविंशतितमे दिने पूर्वमयनांशपर्वकाल इति पर्यवसितोऽर्थः ॥ एवं न्यूनाधिकशके ऊह्यम् ॥ वृषसिंहवृश्चिककुंभेषु संक्रान्तिषु विष्णुपदसंज्ञा ॥ मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु संक्रांतिषु षडशीति संज्ञा ॥ मेषतुलयोर्विषुवसंज्ञा ॥ कर्कमकरयोरयनसंज्ञा ॥ एतासु चतुर्विधासूत्तरोत्तरं पुण्याधिक्यम् ॥ मंगलकृत्येषु सर्वसंक्रांतिष्वविशेषेण पूर्वतः परतश्च षोडश घटिकास्त्याज्याः ॥ चंद्रादिसंक्रांतिषु तु पूर्वत्र परत्र च मिलित्वा क्रमेण द्वे नव द्वे चतुरशीतिः षट् सार्धशतं च घटिकास्त्याज्याः ॥ रात्रौ संक्रमणे ग्रहणवद्रात्रावेव स्नानदानादिकं कर्तव्यमिति केचित् ॥ रात्रौ संक्रमणेपि दिवैव स्नानादिकं नतु रात्राविति तु सर्वसंमतम् ॥ बहुदेशाचारश्चैवम् ॥ यस्य जन्मर्क्षे रविसंक्रमस्तस्य धनक्षयादिपीडा तत्परिहारार्थं पद्मपत्रादियुक्तजलेन स्नानम् ॥ विषुवायनयोरह्नि संक्रमे पूर्वापररात्रौ तदह्नि च अध्यापनाध्ययने च वर्जयेत् ॥ एवं पक्षिणीसंक्रांतिर्द्वादशप्रहरपर्यंतमनध्यायादिकमिति तात्पर्यम् ॥ अन्योऽपि विशेषोऽयनसंक्रांतौ वक्ष्यते ॥ ॥ इति संक्रांत्युद्देशो द्वितीयः ॥ २ ॥

अब दानको कहते हैं कि मेषकी संक्रांतिमें मेष (मींढा) का दान, वृषमें गोदान,मिथुनमें वस्त्र अन्न आदिका दान, कर्कमें घृतकी गौ, सिंहमें छत्र और सुवर्ण, कन्यामें घर और वस्त्र और तुलमें तिल और गोरस देने, वृश्चिकमें दीपक, धनमें वस्त्र और यान (सवारी), मकरमें काष्ठ और अग्नि कुंभमें गौओंको जल और तृण, मीनमें भूमि और माला, ये दान देने, इसी प्रकार अन्यभी दान देखने योग्य हैं, अयनकी संक्रांतिमें और मेष और तुलाकी संक्रांतिमें पहिलेतीन रात्रि वा एक रात्रि उपवास करके स्नान दान आदि करने वेभी ऐसे करने जैसे सबमें पिछला उपवास संक्रांतिके अहोरात्रमें वा पुण्यकालके अहोरात्रमें आनकर पडे, और यह उपवास पुत्रवाले गृहस्थोंसे भिन्न जो पापके नाशका अभिलाषी है उसे करनेयोग्यहै इससे काम्य है नित्य नहीं, सब संक्रांतियोंमें पिंडरहित श्राद्ध करना, दोनों अयनोंमें तो श्राद्ध नित्यहै, और यथोचित रीतिसे तिस २ संक्रांतियोंमें दान आदि करने योग्य हैं और तैसेही संक्रांतिसे पहिले अयनांशकी प्रवृत्तिमें तिस २ संक्रांतिमें उचित स्नान दान आदि करना अयनांश तो ज्योतिः शास्त्रमें प्रसिद्धहै वे अब वर्तमान सत्रहसौ बारह१७१२संख्याके शालिवाहन शकमें इकीस अयनांशहैं तिससे इकीस २१वें दिन पहिले अयनांशका पर्वकालहै यह निश्चित अर्थ है इसी प्रकार न्यून अधिक शकमें जानना । वृष,सिंह,वृश्चिक,कुंभ इन संक्रांतियोंको विष्णुपद कहतेहैं मिथुन, कन्या, धन, मीन, इनको षडशीति कहते हैं-मेष और तुलाको विषुव कहते हैं, कर्क और मकरको अयन कहते हैं-इन चारों प्रकारकी संक्रांतियोंमें उत्तरोत्तर (क्रमसे) अधिक पुण्य होता है-मंगलके कार्योंमें सब संक्रांतियोंकी अविशेषसे पहिली और पिछली सोलह २ घडी त्यागने योग्य हैं-चंद्र आदिकी संक्रांतियोंमें तो पहिले और पीछे मिलाकर क्रमसे दो, नौ, दो, चार, अस्सी, छः, डेढसौ, घडी त्यागने योग्य हैं-रात्रिकी संक्रांतिमें रात्रिकोही स्नान और दान आदि ग्रहणके समान करने यह कोई कहते हैं रात्रिके संक्रमणमें भी दिनमेंही स्नान आदि करै रात्रिमें नहीं यह तो सबको संमत है और बहुत देशोंका आचार भी ऐसेही है जिसके जन्म नक्षत्रमें सूर्यकी संक्रांति हो उसको धनके क्षय आदिकी पीडा होती है उसकी निवृत्तिके अर्थ वह पद्मके पत्र आदिसे युक्त जलसे स्नान करे विषुव और अयनकी दिनमें संक्रांति होय तो पहिली पिछली रात्रियोंमें और उस दिनमें पढाने और पढनेको वर्जे दे ऐसे पक्षिणी अनध्याय संक्रांतिका द्वादश प्रहरपर्यंत हुआ यह तात्पर्य है, अन्य भी विशेष अयन संक्रांति में कहेंगे ॥ इति संक्रांत्युद्देशो द्वितीयः ॥ २ ॥

अथ मलमासः ।

स द्विविधः ॥ अधिमासः क्षयमासश्च ॥ संक्रांतिरहितो मासोऽधिमासः ॥ संक्रांतिद्वययुक्तो मासः क्षयमासः ॥ पूर्वाधिमासादुत्तरोधिमासस्त्रिंशत्तममासमारभ्याष्टसु नवसु वा मासेष्वन्यतमो भवति ॥ क्षयमासस्तु एकचत्वारिंशदधिकशतसंख्यैर्वर्षैर्वा भवति नत्वधिकमासवदल्पकालेन ॥ क्षयमासः कार्तिकमार्गशीर्षपौषेष्वन्यतमो भवति नेतरः ॥ यस्मिन्वर्षे क्षयमासस्तस्मिन्वर्षेऽधिकमासद्वयम् ॥ क्षयमासात्पूर्वमेकोधिकमासः ॥ ॥ क्षयमासानंतरमेकोधिकमास इति ॥

अब मलमासको कहते हैं-वह, दो प्रकारका है अधिकमास और क्षयमास संक्रांतिसे रहित जो मास उसको अधिकमास कहते हैं दो संक्रांतियोंसे युक्त जो मास उसे क्षयमास कहते हैं

पहिले अधि माससे अगला अधि मास तीसके माससे लेकर आठ मासोंमेंसे वा नौ मासोंमेंसे कोईसा होता है क्षयमास तो एक सौ इकतालीस १४१ वर्षोंमें होताहै अधिक मासके समान अल्पकालमें क्षयमास नहीं होता और कार्तिक मार्गशिर पौष इनमेंसे कोई होता है अन्य नहीं जिस वर्षमें क्षयमास हो उस वर्षमें दो अधिकमास होते हैं क्षयमाससे पहिले एक अधिक मास और क्षयमासके अनंतर एक अधिकमास ॥

अथाधिमासोदाहरणम् ।

चैत्रमावास्यायां मेषसंक्रांतिः ॥ ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्यामावास्यापर्यंतं संक्रांतिर्नास्ति ॥ ततः शुक्लप्रतिपदि वृषभसंक्रांतिरिति ॥ पूर्वसंक्रांतिरहितो मासोधिकवैशाखसंज्ञः ॥ वृषभसंक्रांतियुतस्तु शुद्धवैशाखसंज्ञः ॥

अब अधिकमासके उदाहरणको कहतेहैं— चैत्रकी अमावस्याको मेषकी संक्रांति हो तिससे आगे शुक्ल प्रतिपदासे लेकर अमावस्यापर्यंत संक्रांति नहीं फिर शुक्ल प्रतिपदाको वृषकी संक्रांति हो इससे पूर्वसंक्रांतिसे रहित वैशाखकी अधिकमास संज्ञा है और वृषसंक्रांतिसे युक्तकी शुद्ध वैशाख संज्ञा है ॥

अथ क्षयमासोदाहरणम् ।

भाद्रपदकृष्णामावास्यायां कन्यासंक्रांतिस्तत आश्विनोधिकमासः ॥ शुद्धाश्विनप्रतिपदि तुलासंक्रांतिः कार्तिके शुक्लप्रतिपदि वृश्चिकसंक्रांतिः ॥ ततोमार्गशीर्षशुद्धप्रतिपदि धनुःसंक्रांतिस्तस्मिन्नेव मासेऽमावास्यायां मकरसंक्रांतिरिति धनुर्मकरसंक्रांतिद्वययुक्त एको मासः क्षयमाससंज्ञकः ॥ स च मार्गशीर्षपौषाख्यमासद्वयात्मक एको मासो ज्ञेयः ॥ तस्य प्रतिपदादितिथीनां पूर्वार्धे मार्गशीर्ष उत्तरार्द्धे पौष इत्येवं सर्वतिथीनां मासद्वयात्मकत्वात् ॥ अत्र तिथिपूर्वार्द्धे मृतस्य मार्गशीर्षे प्रत्यब्दश्राद्धम् ॥ उत्तरार्द्धे मृतस्य पौषे एवं जनने वर्धापमानादिविधिरपि॥ तत ऊर्ध्वं माघामावास्यायां कुंभसंक्रांतिः ॥ ततः फाल्गुनोधिमासः ॥ शुद्धफाल्गुनं शुक्लप्रतिपदि मीनसंक्रांतिः ॥ एवं पूर्वापराधिमासद्वययुक्तः ॥ क्षयमासो यस्मिन्वर्षे तत्र त्रयोदशमासात्मकं किंचिदूननवत्यधिकशतत्रयदिनैर्वर्षम् ॥ तत्र क्षयमासात्पूर्वोऽधिमासः संसर्पसंज्ञः सर्वकर्मार्हः शुभकर्मणि न त्याज्यः ॥ अंहस्पतिसंज्ञः क्षयमासादुत्तरभाव्यधिमासश्च सर्वकर्मसु वर्ज्यः ॥ एवं त्रिवत्सरांतस्थः केवलोऽधिकमासोपि वर्ज्यः ॥ तत्रवर्ज्यावर्ज्यनिर्णयः ॥ अनन्यगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं चाधिमासक्षयमासयोः कर्तव्यम् ॥ सगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च वर्ज्यम् ॥ ॥ तथाहि ॥ संध्याग्निहोत्रादि नित्यं ग्रहणस्नानादि नैमित्तिकं कारीर्यादिकं रक्षोगृहीतजीवनार्थं रक्षोघ्नेष्ट्यादिकं च काम्यं मलमासेऽपि कार्यम् ॥ ज्योतिष्टोमादि नित्यं जातेष्ट्यादि नैमित्तिकं

पुत्रकामेष्ट्यादि काम्यं च मलमासोत्तरं शुद्धमास्येवकर्तव्यम् ॥ आरब्धकामस्य मलमासेप्यनुष्ठानम् ॥ नूतनारंभः समाप्तिश्च न कर्तव्या ॥ तथा पूजालोपादि-निमित्तकपुनर्मूर्तिप्रतिष्ठां गर्भाधानाद्यन्नप्राशनांतसंस्कारान्प्राप्तकान् अनन्यगतिकान् ज्वरादिरोगशांतिमलभ्ययोगे श्राद्धं व्रतादिकं नैमित्तिकं प्रायश्चित्तं नित्यश्राद्धं ऊनमासिकादिश्राद्धानि दर्शश्राद्धं च मलमासेपि कुर्यात् ॥ चैत्रादौ मलमासे मृतानां कदाचिद्बहुकालेन तस्मिन्नेव चैत्रादौ मलमासे प्राप्ते मलमास एव प्रति-सांवत्सरिकं श्राद्धं कर्तव्यम् ॥ चैत्रादौ शुद्धमासे मृतानां तु प्रत्याब्दिकं श्राद्धं मलमासे न कर्तव्यं शुद्ध एव कार्यम् ॥ शुद्धमासे मृतानां प्रथमाब्दिकं तु मल-मास एव कार्यम् ॥ न शुद्धे ॥ द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धे एव ॥ एकादशाहांतकर्म सपिंडीकरणं च मलेपि कार्यम् ॥ द्वितीयमासिकादिश्राद्धं तु मले शुद्धेचावृत्त्या द्विवारं कर्तव्यम् ॥ एवं च यत्र द्वादशमासिकम् अधिकमासे प्राप्तं तस्य मले शुद्धे च द्विवारं कृत्वा ऊनाब्दकाले ऊनाब्दिकं च कृत्वा चतुर्दशे मासे प्रथमाब्दिकं कार्यम् ॥ यस्मिन्वर्षे क्षयमासाव्यवहितोधिमासः यथा कार्तिकोधिमासस्तदुत्तरो मासो वृश्चिकधनुःसंक्रांतियुक्तत्वात्क्षयसंज्ञकस्तत्र कार्तिकमासस्थं प्रत्याब्दिकं पूर्वेधिमासे उत्तरे क्षयमासे च कार्यम् ॥ तत्रापि क्षयाव्यवहितपूर्वो मासो यथाश्विनोधिमासो मार्गशीर्षः क्षयमासस्तत्रापि आश्विनमासगतं श्राद्धं अधिके शुद्धे चाश्विने कार्यम् ॥ द्वयोरपि कर्मार्हत्वादिति भाति ॥ व्यवहितक्षयमासगतं त्वाब्दिकं क्षयमासे एव कार्यम् ॥ तथापूर्वोक्तमार्गशीर्षगतं पौषगतं चाब्दिकमेकस्मिन्नेव मासे तिथिपूर्वा-र्धादिभागं विनैव कार्यमिति फलितम् ॥

अब क्षय मासके उदाहरणको कहते हैं, भाद्रपदके कृष्णपक्षको अमावस्याको कन्याकी संक्रांति होय तो आश्विन अधिकमास होताहै, शुक्ल आश्विनकी प्रतिपदाको तुलाकी संक्रांति हो कार्तिककी शुक्लप्रतिपदाको वृश्चिककी संक्रांति हो फिर मार्गशिरकी शुक्लप्रतिपदाको धनकी संक्रांति हो और उसीमासमें अमावस्याको मकरकी संक्रांति हो यह धन मकरकी दो संक्रां-तियोंसे युक्त मास क्षय मास संज्ञक है वह मार्गशिर पौष इन दो मासोंका एक मास जानना उसकी प्रतिपदा आदि तिथियोंके पूर्वार्द्धमें मार्गशिर और उत्तरार्द्धमें पौषहोताहै इसप्रकार संपूर्णतिथि दो मासोंकी होतीहै इसमें तिथीके पूर्वार्द्धमें जो मराहो उसका वार्षिकश्राद्ध मार्ग-शिरमें होता है और उत्तरार्द्धमें मरेका पौषमें होताहै, इसीप्रकार जन्मदिनमें, वर्द्धापनविधि (वर्षगांठ) भी समझनी, उसके आगे माघकी अमावस्याको कुंभकी संक्रांति हो फिर फाल्गुन अधिकमास होताहै, शुद्ध फाल्गुनकी प्रतिपदाको मीनकी संक्रांति हो इस प्रकार पूर्व और उत्तर दो अधिकमासोंसे युक्त क्षयमास जिस वर्षमें हो उसमें त्रयोदश १३ मासका कुछ कम तीनसौ नव्वे दिन ३९० का वर्ष होताहै, वहां क्षयमाससे पूर्व जो अधिकमासहै वह संसर्प कहाताहै वह सब कर्मोंमें योग्यहै इससे शुभकर्मोंमें त्यागनेयोग्य नहीं है, अहंस्पतिनामका जो क्षयमाससे उत्तरका अधि मासहै वह सबकर्मोंमें वर्जितहै इसी प्रकार तीन वर्षके मध्यका

केवल अधि मासभी वर्जितहै और उसमें वर्जित अवर्जितका निर्णय है, जिसकी अन्य कोई गति न हो ऐसा नित्य, नैमित्तिक, काम्य जो कर्महै, वह अधिकमास और क्षयमास, में करने योग्यहै और जिसकी अन्य कोई गति होसकै वह तो नित्य, नैमित्तिक, काम्य, भी वर्जितहै सोई दिखातेहैं संध्या अग्निहोत्र आदि नित्यकर्म, और ग्रहणस्नान आदि नैमित्तिक कर्म, और कारीरी नामका यज्ञ आदि और राक्षससे गृहीत (भूतलिपटे) के जीवनके लिये रक्षोघ्नो ऋचाओंका जप आदि काम्य कर्म, ये सब मलमासमेंभी करने, ज्योतिष्टोम-आदि नित्यकर्म और जातेष्टि आदि नैमित्तिक कर्म, और पुत्रकामेष्टि आदि काम्य कर्म ये सब तो मलमासके पीछे शुद्धमासमेंही करने अर्थात् जो शुद्धमें न होसकै वही मलमासमें करना और पहिले प्रारंभकिये काम्य कर्मको तो मलमासमेंभी करै, नवीन कर्मका आरंभ और समाप्ति तो न करनी, तैसेही पूजा लोप आदिके निमित्तसे पुनः मूर्तिकी प्रतिष्ठाके अंग जो गर्भाधान आदि अन्नप्राशनपर्यंत प्राप्त हुये संस्कारहैं और उनकी अन्यगति नहीं है उनको और ज्वरआदि रोगकी शांतिको, और अलभ्य योगके श्राद्धको, व्रतआदिको, और नैमित्तिक प्रायश्चित्तको, नित्यश्राद्धको, ऊनमासिक आदि श्राद्ध और दर्शश्राद्धको, मलमासमेंभी करले, और चैत्रआदि मलमासोंमें जो मरेहैं, कदाचित् बहुतकालमें वही चैत्रआदि मलमास आनपडै तो मलमासमेंही उनका वार्षिक श्राद्ध करै, चैत्र आदि शुद्धमासमें मरोंका तो प्रतिवार्षिकश्राद्ध मलमासमें न करै किंतु शुद्धमेंही करै, शुद्धमासमें मरोंका प्रथम वार्षिक तो मलमासमेंही करै, शुद्धमें न करै द्वितीय वार्षिक आदिको तो शुद्धमें ही करै, एकादशाहपर्यंतका कर्म और सपिंडीकरण तो मलमासमेंभी करले, द्वितीय मासिक आदि श्राद्धको तो मलमास और शुद्धमास दोनोंमें आवृत्तिसे दोबार करै, इससे जहां द्वादशमासिक अधिकमासमें आनपडै उसको मलमास, और शुद्धमासमें, दोबार करके और ऊनाब्दके कालमें ऊनाब्दिकको करके चौदहवें मासमें प्रथम वार्षिकको करै, जिसवर्षमें क्षयमाससे पीछेही अधिमासहो जैसे कार्तिक अधिकमासहो उससे अगला मास वृश्चिक धनकी संक्रांतियोंसे युक्त होनेसे क्षयनामकाहो वहां कार्तिकमासके प्रतिवार्षिक श्राद्धको पहिले अधि मासमें और पिछले क्षयमासमें करै, वहांभी क्षयमाससे अव्यवहित (निरंतर) पूर्वमास जैसा आश्विन अधिकमासहै और मार्गशिर क्षयमासमात्रहै वहांभी आश्विनमासके श्राद्धको अधिक और शुद्ध आश्विनमें करै, दोनोंकोभी कर्मकी योग्यताहै यह हमें भासताहै और जो व्यवहित (दूरके) क्षयमासके वार्षिकहैं उनको तो क्षयमासमेंही करै, तैसेही पूर्वोक्त मार्गशिर और पौषके वार्षिकको एकही मासमें तिथिके पूर्वार्द्ध आदिके भागके विनाभी करले यह फलित भया ॥

अथ मलमासेवर्ज्यानि ।

उपाकर्मोत्सर्जने अष्टकश्राद्धानि गृहप्रवेशश्चूडामौंजीबंधविवाहास्तीर्थादियात्रा वास्तुकर्मैतान्यधिवर्ज्यानि ॥ देवप्रतिष्ठा कूपारामाद्युत्सगः नूतनवस्त्रालंकारधारणम् तुलापुरुषादिमहादानानि यज्ञकर्माधानमपूर्वतीर्थदेवदर्शनं संन्यासः काम्यवृषोत्सर्गः राजाभिषेको व्रतानि सगतिकमन्नप्राशनं समावर्तनमतिक्रांतनामकर्मादिसंस्काराः पवित्रारोपणदमनार्पणे श्रवणाकर्म सर्पबल्यादि पाकसंस्थाः शय

नपरिवर्तनाद्युत्सवः शपथदिव्यादिकर्मैतानि मले वर्ज्यानि ॥ निमित्तकानि रजोदोषशांतिविच्छिन्नाधानपुनःप्रतिष्ठादीनि यदि निमित्तानंतरमेव क्रियंते तदा न मलमासादिदोषः ॥ कालातिपत्तौ तु शुद्धे एव कर्तव्यानि ॥ आग्रयणं दुर्भिक्षसंकटे मलमासे कार्यम् ॥ अन्यथा शुद्धे एव ॥ युगादिमन्वादिश्राद्धानां मासद्वयेऽव्यावृत्तिः ॥ क्षयात्पूर्वोधिमासः संसर्पसंज्ञकः पूर्वमुक्तस्तत्र चूडाकर्मव्रतबंधविवाहाग्न्याधानयज्ञोत्सवमहालयराजाभिषेका एव वर्ज्याः नान्यानि कर्माणि ॥ अपूर्वव्रतारंभो व्रतसमाप्तिश्च मलमासे न भवति ॥ सपूर्वमाघस्नानादेः क्षयमासेप्यारंभसमाप्ती॥ इति मकरसंक्रांतियुक्तक्षयमासगतपूर्णिमायां माघस्नानमारभ्य संक्रांतियुतमाघपौर्णमास्यां समापनीयम् एवं कार्तिकेप्यूह्यम् ॥ यत्र वैशाखादिरधिकस्तत्र वैशाखस्नानादिमासव्रतानां चैत्रपौर्णमास्यारब्धानां शुद्धवैशाखपौर्णमास्यां समाप्तिरिति तेषां मासद्वयमनुष्ठानम् ॥

अब मलमासमें वर्जितोंको कहतेहैं कि उपाकर्म, और उत्सर्ग, अष्टकाश्राद्ध, गृहप्रवेश, मुंडन, मौंजीबंधन, (जनेऊ) विवाह, तीर्थआदिकी यात्रा, वास्तुकर्म, ये सब वर्जितहैं, देवप्रतिष्ठा, कूप, आराम आदिका उत्सर्ग, नवीन वस्त्र अलंकारका धारण, तुलापुरुष आदि महादान, यज्ञकर्म, आधान, अपूर्वदेवदर्शन, संन्यास, और काम्य वृषोत्सर्ग, राजाका अभिषेक, व्रत, और जिसकी अन्यगति हो वह अन्नप्राशन, समावर्तन, अतिक्रांत नामकर्म आदि संस्कार, पवित्रारोपण' दमनार्पण, श्रवणकर्म, सर्पबलि आदि, पाकसंस्था, शयन और परिवर्तन आदि भगवान्के उत्सव, शपथ (सौगंध,) और दिव्य आदि कर्म, ये सब मलमासमें वर्जितहैं, यदि नैमित्तिक जो रजोदोपकी शांति, विच्छिन्न अग्निका आधान, पुनः प्रतिष्ठा आदिहैं वे यदि निमित्तके अनंतरही दिये जांयँ तो मलमास आदिका तब दोष नहीं, कालकी अतिपत्ति (बीतना) परतो शुद्धमेंही करने, आग्रयण इष्टिको तो दुर्भिक्षके संकटमें मलमासमेंही करने अन्यथा तो शुद्धमेंही करने, युगादि, मन्वादि, श्राद्धोंकी तो दोनों मासोंमें आवृत्ति होतीहै, क्षयमाससे पूर्व अधिमास, संसर्प संज्ञक पहिले कहाहै. उसमें मुंडन, व्रतबंध, (जनेऊ) विवाह, अग्न्याधान, यज्ञोत्सव, महालय, राजाभिषेक, येही वर्जितहैं अन्य कर्म वर्जित नहींहैं, अपूर्व व्रतका आरंभ, और व्रतकी समाप्ति, मलमासमें नहींहोती, पूर्वके समान माघस्नान, आदिकी क्षयमासमेंभी प्रारंभ और समाप्ति होतीहैं इससे मकरसंक्रांतिसे युक्त क्षयमासकी पूर्णिमामें माघस्नानका प्रारंभकरके संक्रांतिसे युक्त माघकी पूर्णिमामें समाप्त करना, ऐसेही कार्तिकमेंभी समझना, जहां वैशाख आदि अधिकहों वहां वैशाखके उन स्नान आदि व्रतोंकी, जिनका प्रारंभ चैत्रकी पूर्णिमामें कियाहो, शुद्ध वैशाखकी पूर्णिमाको समाप्ति होतीहै इस प्रकार उनका अनुष्ठान (करना) दो मासोंमें होताहै ॥

शुक्रास्तादिषु वर्ज्यानि ।

यन्मलमासे वर्ज्यमुक्तं तद्गुरुशुक्रास्तबाल्यवार्धकेष्वपि ज्ञेयम् ॥ तत्रास्तात्प्राक् सप्ताहं वार्धकम् उदयानंतरं सप्ताहं बाल्यमिति मध्यमः पक्षः ॥ पंचदशाहदशाहपंचाहत्र्यहादिपक्षा आपदनापदादिविषयतया देशकालविशेषपरतया च योज्याः ॥

जो मलमासमें वर्जित कहाहै वह गुरु, शुक्र, के अस्त, बाल्य, वार्द्धक्यमें, भो वर्जित समझना उनमें अस्तसे पहिले सात दिनतक वार्द्धक और उदयके अनंतर सात दिन बाल्य अवस्था होतीहै, यह मध्यम पक्षहै, पंद्रह दिन, पांच दिन, तीन दिन, आदिक जो पक्षहैं वे आपत्ति अनापत्तिके विषयमें हैं इससे देशकालविशेषमेंही वे समझने ॥

अथ सिंहस्थे वर्ज्यानि ।

अयं वर्ज्यावर्ज्यनिर्णयः सिंहस्थे गुरावपि ज्ञेयः ॥ तत्र विशेष उच्यते ॥ कर्णवेधचौलमौंजीबंधविवाहदेवयात्राव्रतवास्तुकर्मदेवप्रतिष्ठासंन्यासा विशेषतो वर्ज्या इति ॥

यह वर्जित और अवर्जितका निर्णय सिंहके बृहस्पतिमेंभी जानना उसमें विशेषको तो कहतेहैं, कर्णवेध, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, देवयात्रा, व्रत, वास्तुकर्म, देवप्रतिष्ठा, संन्यास, ये विशेषकर वर्जितहैं ॥

अथ सिंहस्थापवादे यात्रादिनिर्णयश्च ।

मघानक्षत्रगते सिंहांशगते च गुरौ सर्वदेशेषु सर्वमांगलिककर्मणां निषेधः ॥ सिंहांशोत्तरं गोदादक्षिणे भागीरथ्युत्तरे सिंहस्थदोषो नास्ति ॥ गंगागोदामध्यदेशे तु सर्वसिंहस्थे विवाहव्रतबंधयोर्दोषः ॥ अन्यकर्माणि सिंहांशोत्तरं सर्वदेशेषु कर्तव्यानि मेषस्थे सूर्ये सर्वदेशेषु सर्वमांगलिककर्मणां सर्वसिंहस्थे न दोषः ॥ क्वचिद्वृषस्थेऽर्केऽपि दोषाभाव उक्तः ॥ अत्र सिंहस्थे गुरौ गोदावरीस्नानं कन्यागते कृष्णास्नानं महापुण्यम् ॥ गोदावर्यां यात्रिकाणां मुंडनोपवासावावश्यकौ न तु तत्तीरवासिनाम् ॥ गर्भिण्यामपि भार्यायां विवाहादिमंगलोत्तरमपि गोदावर्यां मुंडने दोषो नास्ति ॥ गंगागोदावरीयात्रायां मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्ति ॥ मलमासे व्रतविशेषोन्यत्र ज्ञेयः ॥ ॥ इति मलमासगुरुशुक्रास्तसिंहगुरुवर्ज्यावर्ज्यनिर्णयस्तृतीयोद्देशः ॥ ३ ॥

अब सिंहस्थके गुरुका अपवाद कहतेहैं, मघानक्षत्रके और सिंहके नवांशकमें सब देशोंमें संपूर्ण मांगलिककर्मोंका निषेधहै, सिंहके नवांशकके पीछे, गोदावरीके दक्षिणभागमें और भागीरथीके उत्तरभागमें सिंहस्थगुरुका दोष नहीं है गंगा और गोदावरीके मध्यदेशमें तो संपूर्ण सिंहके गुरुमें विवाह और व्रतबंधमें दोषहै, अन्य कर्म तो सिंहके नवांशकसे पीछे सबदेशोंमें करनेयोग्यहैं, मेषके सूर्यमें तो संपूर्ण देशों में सब मांगलिक कर्मोंका संपूर्ण सिंहके गुरुमें दोष नहीं, कहीं तो वृषके सूर्यमेंभी दोषका अभाव कहाहै, यहां सिंहके गुरुमें गोदावरीका स्नान, कन्याकेमें कृष्णाका स्नान, महापुण्यहै, गोदावरीमें यात्रियोंको मुंडन, और उपवास, आवश्यकहै उसके तीरवासियोंको नहीं, भार्याके गर्भवती होनेपरभी और विवाह आदि मंगलके पीछे भी गोदावरीमें मुंडनका दोष नहीं, गया और गोदावरीकी यात्रामें मलमासका और गुरुशुक्रके अस्त आदिका दोष नहीं है, मलमासमें व्रतविशेष तो अन्यग्रंथोंमें जानना, ॥ इति मलमास गुरुशुक्रका अस्त सिंहके गुरुका वर्ज्यावर्ज्यनिर्णय नामका तीसरा उद्देश पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

अथ तिथिनिर्णये सामान्यपरिभाषा ।

तिथिर्द्विविधा पूर्णा सखंडा च ॥ सूर्योदयमारभ्य षष्टिनाडिकाव्याप्ता पूर्णा ॥ एतदन्या सखंडा ॥ सखंडापि द्विविधा ॥ शुद्धा विद्धा च ॥ सूर्योदयमारभ्यास्तमयपर्यंतं विद्यमाना शिवरात्र्यादौ निशीथपर्यंतं विद्यमाना च शुद्धा तदन्या विद्धा ॥ वेधोपि द्विविधः ॥ प्रातर्वेधः सायंवेधश्च ॥ सूर्योदयोत्तरं षड्घटिकापरिमिततिथ्यंतरस्पर्शात्मकः प्रातर्वेधः ॥ सूर्यास्तात्प्राक् षड्घटिपरिमितातिथ्यंतरस्पर्शः सायंवेधः ॥ एकादशीव्रतविषये तु वेधो वक्ष्यते ॥ क्वचित्तिथिविशेषे वेधाधिक्यम् ॥ पंचमी द्वादशनाडीभिः षष्ठीं विद्धां करोति ॥ दशमी पंचदशभिरेकादशीवेधकृत् ॥ चतुर्दशी अष्टादशनाडीभिः पंचदशीं विध्यति ॥ विद्धाश्च तिथयः क्वचित्कर्मणि ग्राह्याः कुत्रचित्त्याज्याश्च भवंति॥ तत्र संपूर्णा शुद्धा च तिथिः प्रायेण निर्णयं नापेक्षते संदेहाभावात् ॥ निषेधविषये सखंडापि न निर्णयार्हा ॥ निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते इति वचनेनाष्टम्यादिषु नारिकेलादिभक्षणनिषेधादेस्तत्कालमात्रव्याप्ततिथ्यपेक्षणात् ॥ ॥ विहितव्रतादिविषये तु निर्णय उच्यते ॥ ॥ तत्र कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या ॥ यथा विनायकादिव्रते मध्याह्नादौ पूजाविधानान्मध्याह्नादिव्यापिनी ॥ दिनद्वये कर्मकालव्याप्तावव्याप्तौ तदेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवाक्यादिना पूर्वविद्धायाः परविद्धाया वा तिथेर्ग्राह्यत्वम् ॥ युग्मं वाक्यं तु ॥ युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरंध्रयोः ॥ रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा ॥ प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं महाफलमिति ॥ युग्मं द्वितीया अग्निस्तृतीया ॥ द्वितीया तृतीया विद्धा ग्राह्या ॥ द्वितीया तृतीया विद्धा ग्राह्येत्येवं द्वितीयातृतीययोर्युग्मं चतुर्थीपंचम्योर्युग्मं षष्ठीसप्तम्योर्युग्मं अष्टमीनवम्योर्युग्मम् एकादशीद्वादश्योर्युग्मं चतुर्दशीपौर्णमास्योर्युग्मं अमावास्याप्रतिपदोर्युग्ममित्यर्थः ॥ क्वचिच्चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते इत्यादिविशेषवाक्यैर्ग्राह्यत्वनिर्णयः ॥ वचनवशेन ग्राह्यायास्तिथेः कर्मकाले सत्त्वाभावे साकल्यवचनैः सत्त्वं भावनीयम् ॥ तानि च ॥ यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ॥ सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिष्वित्यादीनि ॥ यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं यामिनीपतिः ॥ सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानादिकर्मसु ॥ उदयोत्तरं द्विमुहूर्ताधिकस्यास्तात्प्राक् त्रिमुहूर्ताधिकस्य प्रायेणेयं द्विविधा साकल्यव्याप्तिर्ज्ञेया ॥ ॥ इति समान्यनिर्णयश्चतुर्थोद्देशः ॥ ४ ॥

अब तिथिनिर्णयमें सामान्य परिभाषाको कहते हैं कि तिथि दोप्रकारकी है पूर्ण और खंड सहित, सूर्योदयसे लेकर जो साठि ६० घडीपर्यंत व्याप्त हो वह पूर्णा होतीहै, इससे अन्य खंडसहित होतीहै वह खंडभी दोप्रकारकी है शुद्ध, और विद्ध, सूर्योदयसे लेकर अस्तपर्यंत

जो विद्यमानहो और शिवरात्रिके व्रत आदिमें अर्द्धरात्रपर्यंत जो विद्यमानहो वह शुद्ध और उससे भिन्न विद्धा होतीहै, वेधभी दोप्रकारकाहै प्रातःकालका वेध और सायंकालका वेध सूर्योदयके पीछे छः घडीके भीतर जो दूसरी तिथिका स्पर्श वह प्रातः वेध होताहै, और सूर्यास्तसे पहिले छः घडीके भीतर जो दूसरी तिथिका प्रवेश उसको सायंवेध कहतेहैं, एकादशीके व्रतमें तो वेधको कहेंगे, कहींतो तिथिविशेषमें वेधकी अधिकताहै पंचमी बारह घडीसे, षष्ठीको विद्धा करतीहै, दशमी पंद्रह घडीसे एकादशीको वेधतीहै, चतुर्दशी अठारह घडियोंसे पूर्णिमाको वेधतीहै, और विद्धा तिथि किसीकर्ममें ग्राह्य होतीहै और किसी कर्ममें त्याज्य होतीहै उनमें संपूर्ण और शुद्ध जो तिथिहै उसमें प्रायः निर्णयकी अपेक्षा नहींहै क्योंकि उसमें कोई संदेह नहीं है, और निषेधके विषयमें सखंड तिथिभी निर्णयके योग्य नहीं, निषेध तो निवृत्तिरूपहै वह कालमात्रकी अपेक्षा करताहै इस वचनसे अष्टमी आदिमें जो नारियल आदिके भक्षणके निषेध आदिहैं उनको तिस कालमात्रमें व्याप्त तिथिकी अपेक्षाहै शास्त्रोक्त व्रत आदिके विषयमें तो निर्णय कहतेहैं, उसमें जिस कर्मका जो कालहै उस कालमें व्याप्त (वर्तमान) तिथि लेनी, जैसे विनायक आदिके व्रतमें मध्याह्न आदिमें पूजाका विधानहै इससे मध्याह्नव्यापिनी लेनी, दोनों दिन कर्मकालमें व्याप्ति और अव्याप्तिमें युग्म वाक्योंसे पूर्वविद्धा व परविद्धा तिथि ग्राह्य होती है, युग्मवाक्य तो यहहै कि द्वितीया तृतीया, चतुर्थी पंचमी, छठ सप्तमी, अष्टमी नवमीं, एकादशी द्वादशीसे युक्त, चतुर्दशीसे पूर्णिमायुक्त हो, प्रतिपदा और अमावस्या, इन तिथियोंका युग्म महाफलका दाताहै युग्मसे द्वितीया और अग्निसे तृतीया लेनी इससे द्वितीया तृतीयासे विद्धा लेनी इस प्रकार द्वितीया तृतीयाका युग्म चतुर्थी पंचमीका युग्म षष्ठी सप्तमीका युग्म अष्टमी नवमीका युग्म एकादशी द्वादशीका युग्म चतुर्दशी पूर्णिमाका युग्म अमावस्या और प्रतिपदाका युग्म यह पूर्वोक्त युग्म वाक्यका अर्थ है कहीं तो गणेशकी चतुर्थी तृतीयासे विद्धा श्रेष्ठ होती है इत्यादि विशेष वचनोंसे ग्रहण करने योग्य तिथिका निर्णय होता है वचनके वशसे ग्रहणके योग्य तिथि कर्मकालमें न भी हो तो भी सम्पूर्णताके वचनोंसे उसकी सत्ताकी भावना करनी वे वचन ये हैं कि जिस तिथिमें प्राप्त होकर सूर्य उदय हो वह तिथि स्नान, दान, जप आदिमें सम्पूर्ण (सकल) जाननी जिस तिथिमें प्राप्त होकर चन्द्रमा अस्त हो वह तिथि स्नान, दान, आदि कर्मोंमें सम्पूर्ण जाननी सूर्योदयके अनन्तर दो मुहूर्त्तसे अधिक होनेपर और चन्द्रमाके अस्तसे पहिले तीन मुहूर्तसे अधिक होनेपरही प्रायःसे यह दो प्रकारके साकल्यकी व्याप्ति जाननी ॥ इति सामान्य निर्णयश्चतुर्थोद्देशः ॥ ४ ॥

अथ कर्मविशेषे निर्णयः ।

कर्माणि द्विविधानि ॥ दैवानि पित्र्याणि च ॥ दैवानि षड्विधानि ॥ एकभक्तनक्तायाचितोपवासव्रतदानाख्यानि ॥ मध्याह्ने एकवारमेकान्नभोजनमेकभक्तम् ॥ रात्रावेव प्रदोषकाले भोजनं नक्तम् ॥ याचनां विना तद्दिने लब्धस्यान्नादेर्भोजनमयाचितम् ॥ दिनांतरलब्धस्यापि पाचकं स्त्रीपुत्रादिकं प्रति याचनमंतरेण भोजनमयाचितमिति केचित॥अहोरात्रे भोजनाभाव उपवासः॥पूजाद्यात्मकः कर्मविशेषो

व्रतम् ॥ स्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वापादनं दानम् ॥ तानि च एकभक्तादीनि क्वचि द्व्रतांगतया विहितानि क्वचिदेकादश्याद्युपवासप्रतिनिधितया विहितानि क्वचि-त्स्वतंत्राणि इति त्रिविधानि ॥ तत्रान्यांगानां प्रतिनिधिभूतानां च तत्तत्प्रधानवशेन निर्णयः ॥ ॥ स्वतंत्राणां निर्णय उच्यते ॥ ॥ तत्र दिनं पंचधा विभज्य प्रथम-भागः प्रातःकालो ज्ञेयः ॥ द्वितीयः संगवः ॥ तृतीयो मध्याह्नः ॥ चतुर्थोपरा-ह्णः ॥ पंचमः सायाह्नः ॥ सूर्यास्तोत्तरं त्रिमुहूर्तः प्रदोषः ॥

अब कर्म विशेषमें निर्णय कहते हैं—कर्म दो प्रकारके हैं दैव और पित्र्य, दैवकर्म छः प्रकारके हैं एक भक्त नक्त अयाचित उपवास व्रत और दान मध्याह्नमें जो एकबार एक अन्नका भोजन उसे एकभक्त कहते हैं रात्रिमें ही जो प्रदोषकालमें भोजन उसे नक्त कहते हैं याचनाके बिना मिला जो अन्नसे भिन्न उसका जो उस दिनमें भोजन उसको अयाचित कहते हैं और कोई तो यह कहते हैं कि अन्य दिनमें मिले हुये का भी जो पाचक स्त्री पुत्र आदिसे याचना (मांगना) के बिना भोजन वह भी अयाचित कहाता है अहोरात्रमें जो भोजनका अभाव उसको उपवास कहते हैं पूजा आदिरूप जो कर्म विशेष उसको व्रत कहते हैं और अपने स्वत्वकी निवृत्तिसे जो पराये स्वत्वकी उत्पत्ति उसे दान कहते हैं वे एकभक्त आदि कहीं तो व्रतोंके अंगरूपसे कहे हैं कहीं एकादशी आदि उपवासोंके प्रतिनिधिरूपसे कहेहैं और कहीं स्वतन्त्र हैं इस रीतिसे तीन प्रकारके हैं उनमें जो अन्य कर्मोंके अंग हैं और जो प्रतिनिधिरूप हैं उनका निर्णय तो तिस २ प्रधानके वशसे है, स्वतन्त्रोंके निर्णयको कहते हैं—उसमें दिनके पांच विभाग करके प्रथम भाग तो प्रातःकाल जानना दूसरा भाग संगव तीसरा मध्याह्न चौथा अपराह्न पांचवां सायाह्न होताहै सूर्यास्तके अनन्तर तीन मुहूर्त्तका प्रदोष होताहै ॥

अथैकभक्ते तिथिनिर्णयः ।

तत्रैकभक्ते मध्याह्नव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या ॥ तत्रापि दिनार्धसमयेऽतीते त्रिंशद्-घटिकामध्यमदिनमानेन षोडशादिघटीत्रयं मुख्यो भोजनकालः ॥ तत ऊर्ध्वं आसायं गौणकालः ॥ अत्र पूर्वेद्युरेव मुख्यकाले व्याप्तिः परेद्युरेव व्याप्तिः उभये-द्युर्व्याप्तिः उभयत्रापि व्याप्त्यभावः उभयत्र साम्येनैकदेशव्याप्तिर्वैषम्येणैकदेशव्या-प्तिरिति षट् पक्षा भवंति ॥ तत्र पूर्वेद्युरेव मुख्यकाले ग्राह्यतिथिसत्त्वे पूर्वैव ॥ परत्रैव सत्त्वे परैवेत्यसंदेहः ॥ उभयत्रापि पूर्णव्यापित्वे युग्मवाक्यान्निर्णयः ॥ उभयत्र व्याप्त्यभावे पूर्वैव गौणकालव्याप्तिसत्त्वात् ॥ साम्येनैकदेशव्याप्तौ पूर्वा ॥ वैषम्येणैकदेशव्याप्तौ दिनद्वयेपि कर्मपर्याप्ततिथिलाभे युग्मवाक्यान्निर्णयः ॥ कर्म-पर्याप्ततिथ्यलाभे पूर्वैवेति ॥ इत्येकभक्तम् ॥ अथनक्तम् ॥ तत्र सूर्यास्तोत्तरत्रिमु-हूर्तात्मकप्रदोषव्यापिनीतिथिर्नक्ते ग्राह्या ॥ अन्यतरादिने तद्व्याप्तौ तदेकदेशस्पर्शे वा सैव ग्राह्या ॥ भोजनं त्वस्तोत्तरं घटिकात्रयसंध्याकालं त्यक्त्वा कार्यम् ॥ संध्याकाले भोजननिद्रामैथुनाध्ययनवर्जनात् ॥ यतिभिरपुत्रविधुरैर्विधवाभिश्च नक्तं

सायाह्नव्यापिन्यां दिनाष्टमभागे कार्यम् ॥ रात्रौ तेषां भोजननिषेधात ॥ एवं सौरनक्तमपि सायाह्नव्यापिन्यां दिवैव कार्यम् ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परा ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे परैव ॥ सायाह्ने दिनाष्टमे नक्तं कार्यम् ॥ नतु रात्रौ ॥ साम्येनैकदेशव्याप्तौ परैव ॥ वैषम्येण प्रदोषैकदेशव्याप्तौ तदाधिक्यवती पूर्वापि ग्राह्या ॥ यदि पूजाभोजनपर्याप्तं तदाधिक्यं लभ्यते ॥ नोचेत् साम्यपक्षवदुत्तरैव नत्वाधिक्यवशात्पूर्वैवेति ॥

उसमें एकभक्तमें मध्याह्न व्यापिनी तिथि लेनी उसमें भी दिनके आधे समयके व्यतीतहोने पर तीस घडीके मध्यम रूप दिनमानसे सोलहसे आदि लेकर जो तीन घडीहैं, वे मुख्य भोजनका काल है उससे पीछे सायंकाल पर्यंत गौण काल है वहां ये छः पक्ष होतेह कि पहिले दिनही मुख्यकालमें व्याप्ति परले दिनही व्याप्ति दोनों दिन व्याप्ति दोनों दिन व्याप्तिका अभाव दोनों दिन समानरूपसे एक देशमें व्याप्ति दोनों दिन विषमरूपसे (न्यूनाधिक) एक देश व्याप्ति उनमें पहिले मुख्य कालमें ग्रहण करने योग्य तिथि होय तो पहिलीही लेनी परले दिनही होय तो परलीही लेनी इन दोनोंमें कुछ संदेह नहीं है दोनों दिनमें पूर्ण व्याप्ति होय तो युग्म वाक्यसे निर्णय होता है दोनों दिन व्याप्तिके अभावमें पहिलीही तिथि लेनी क्योंकि उसदिन गौणकालमें व्याप्ति है समानरूपसे एक देश व्याप्तिमें भी पहिलीही लेनी विषमरूपसे एक देश व्याप्तिमें दोनो दिनभी कर्मकरने योग्य तिथिके मिलनेपर युग्मवाक्यसे निर्णय करे कर्मकरने योग्य तिथि न मिले तो पहिलीही लेनी यह एकभक्त पूर्ण हुआ. अबनक्तको कहते हैं उसमें सूर्यास्तके अनंतर तीन मुहूर्तरूप प्रदोष व्यापिनी तिथि नक्तव्रतमें ग्रहण करने योग्य है किसी एक दिनमें उसकी व्याप्ति होय तो उसके एक देशमें स्पर्श होय तो वही लेनी भोजन तो अस्तके अनंतर तीन घडी रूप संध्याकालको छोडकर करना क्योंकि संध्याकालमें भोजन, निद्रा, मैथुन, अध्ययन इनका निषेध है संन्यासी पुत्ररहित वृद्ध और विधवा ये तो नक्तव्रतको सायाह्न व्यापिनी: तिथिमें दिनके आठवें भागमें करे क्योंकि रात्रिमें उनको भोजनका निषेध है इसी प्रकार सूर्यका नक्तव्रत भी सायाह्न व्यापिनी तिथिमें दिनमेंही करना दोनों दिन प्रदोषमें व्याप्ति होय तो परली लेनी दोनों दिन प्रदोष समय व्याप्तिके अभावमें भी परली लेनी उसमेंही सायाह्नके समय दिनके आठवें भागमें नक्त करना रात्रिमें न करना समानरूपसे एक देश व्याप्तिमें परलीही लेनी विषमरूपसे प्रदोषके एक देशमें व्याप्ति होनेमें अधिक व्याप्ति जिसमें हो वह पहिली भी लेनी यदि पूजा और भोजन करने योग्य उसकी अधिकता मिलती हो न मिले तो समानरूपके पक्षकी तुल्य परलीही लेनी अधिकताके बलसे पहिली न लेनी ॥

अथ नक्तव्रतेऽर्कवरादिदोषाभावः ।

नक्तव्रतभोजनं वैधत्वाद्रविवासरसंक्रांत्यादावपि रात्रावेव कार्यम् ॥ रविवारादौ रात्रिभोजननिषेधस्य रागप्राप्तभोजनपरत्वात ॥ एकादश्याद्युपवासप्रत्याम्नायभूत नक्तं तूपवासनिर्णीतदिन एवेति ॥

नक्तव्रतका जो भोजन है वह शास्त्रोक्त है इससे रविवार, संक्रांति, आदिमें भी रात्रिमेंही करना क्योंकि रविवार आदिमें जो रात्रि भोजनका निषेध है वह रागप्राप्त भोजनके विषयमें है एकादशी आदिका प्रत्याम्नाय (बदलेका) रूप जो नक्त है वह तो उपवासमें निर्णय किये दिनमेंही होता है ॥

अथ याचिते निर्णयः ।

अयाचितस्य त्वहोरात्रसाध्यत्वादुपवासवन्निर्णयः ॥ पित्र्याणामपराह्णादिव्यापित्वेन निर्णयस्तत्तत्प्रकरणे वक्ष्यते ॥ एकभक्तनक्तायाचितोपवासानां पूर्वतिथावनुष्ठितानां परेद्युस्तिथ्यन्ते पारणम् ॥ यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां तिथौ प्रातःपारणमिति सर्वत्र ज्ञेयमिति माधवः ॥ ॥ इत्येकभक्तादिनिर्णयः पंचमोद्देशः ॥ ५ ॥

अयाचित व्रत तो अहोरात्र साध्य है इससे उपवासके समान पितरोंके अर्थ जो पित्र्यनामके कर्म हैं उनका अपराह्णमें व्यापक होनेसे निर्णय तिस २ प्रकरणमें कहेंगे एक भक्त नक्त अयाचित उपवास पहिली तिथिमें करलिये होयँ तो परले दिन तिथिके अन्तमें पारणा करै तीन प्रहरसे ऊपर तिथि होय तो प्रातःकाल पारणा होता है वह सर्वत्र जानना यह माधव कहते हैं ॥ इति–एकभक्तादिनिर्णयः पंचमोद्देशः ॥ ५ ॥

अथ व्रतपरिभाषा ।

तत्र स्त्रीशूद्राणां द्विरात्राधिकोपवासेनाधिकारः ॥ स्त्रीणामपि भर्त्रनुज्ञां विना व्रतापवासादौ नाधिकारः ॥ उपवासदिने च काष्ठेन दंतधावनं न कार्यम् ॥ पर्णादिना द्वादशगंडूषैर्वा कार्यम् ॥ जलपूर्णं ताम्रपात्रं गृहीत्वोदंमुखः प्रातरुपवासादिव्रतं संकल्पयेत् ॥ अत्रापूर्वव्रतारंभो व्रतोद्यापनं च मलमासे गुर्वाद्यस्ते वैधृतिव्यतीपातादिदुर्योगे विष्टौ क्रूरवारनिषिद्धे दर्शादितिथौ न भवति ॥ एवं खंडतिथावपि न भवति ॥ उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक् ॥ सा खंडा न व्रतानां स्यादारंभश्च समापनमिति सत्यव्रतोक्तेः ॥

अब व्रतोंकी परिभाषाको कहते हैं–उसमें स्त्री और शूद्रोंको दो रात्रिसे अधिक उपवासका अधिकार नहीं है स्त्रियोंको भी भर्ताकी आज्ञाके बिना व्रत उपवास आदिमें अधिकार नहीं है उपवासके दिन और श्राद्धके दिन काष्ठसे दन्तधावन न करै पत्ते आदिसे वा द्वादश गंडूषों (कुल्लों) से करै जलसे पूर्ण तांबेके पात्रको ग्रहणकरके और उत्तराभिमुख होकर प्रातःकालके समय उपवास आदिका संकल्प करै अपूर्व व्रतका प्रारम्भ और व्रतका उद्यापन, मलमास, गुरु आदिका अस्त, वैधृति, व्यतीपात आदि दुष्ट योग, भद्रा, क्रूरवार, और निषिद्ध दर्श आदि तिथि इनमें नहीं होता; इसी प्रकार खण्ड तिथिमें भी नहीं होता जो उदयकालमें वर्त्तमान तिथि दिनके मध्यभागमें नहीं वह तिथि खंडनामकी है उसमें व्रतोंका आरम्भ और समाप्ति नहीं होते, यह सत्य व्रतने कहा है ॥

अथ सामान्यतो व्रतधर्माः ।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ देवपूजा च हवनं संतोषस्तेयवर्जनम् ॥ सर्वव्रतेष्वयं धर्मः ॥ अत्र होमो व्याहृतिभिः ॥ काम्यव्रते विशेषो ज्ञेयः ॥यद्देवताया उपोषणव्रतं तद्देवताजपस्तद्ध्यानं तत्कथाश्रवणं तदर्चनं तन्नामकीर्तनश्रवणादिकं कार्यम् ॥ उपवासे अन्नावलोकनं गंधादिकमभ्यंगं ताबूलमनुलेपनं च त्यजेत् ॥ सभर्तृकस्त्रीणां सौभाग्यव्रते अभ्यंगतांबूलादि न वर्ज्यम् ॥ अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ॥ हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥

सम्पूर्ण व्रतोंमें यह धर्म है–कि क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियोंको रोकना, देवपूजा, हवन, सन्तोष, चोरीका त्याग; यहां होम काम्यव्रतोंमें व्याहृतियोंसे विशेषकर जानना । जिस देवताके उपवासका व्रत हो उस देवताकाही जप उसकाही ध्यान उसीकी कथाका श्रवण उसीका पूजन उसीके नामोंका कीर्त्तन, और श्रवणआदि करना, उपवासमें अन्नका दर्शन। गंध आदि, उबटना, तांबूल, अनुलेपन (चन्दन) इनको बर्जदे, सुहागिन स्त्रियोंको सौम्य (सुगम) व्रतमें उबटना और तांबूल आदि वर्जित, नहीं है क्योंकि यह वचन है–कि ये आठ व्रतको नष्ट नहीं करते कि जल मूल फल दूध हवि ब्राह्मणकी इच्छा गुरुका वचन औ औषध ॥

अथ व्रतनियमादिभंगे प्रायश्चित्तम् ।

प्रमादादिना व्रतभंगे दिनत्रयमुपोष्य क्षौरं कृत्वा पुनर्व्रतं कुर्यात् ॥ अशक्तस्योपवासप्रतिनिधिरेकब्राह्मणभोजनं तावद्धनादिदानं वा सहस्रगायत्रीजपो वा द्वादश प्राणायामा वा प्रायश्चित्तम् ॥ स्वीकृतं व्रतं कर्त्तुमशक्तः प्रतिनिधिना कारयेत् ॥ पुत्रः पत्नी भर्ता भ्राता पुरोहितः सखाचेति प्रतिनिधयः ॥ पुत्रादिः पित्राद्युद्देशेन व्रतं कुर्वन् स्वयमपि व्रतफलं लभते ॥

प्रमाद आदिसे व्रतका भंग होजाय तो तीन दिन उपवास करके मुण्डन कराकर पुनः व्रतको करै अशक्त मनुष्यके उपवासका प्रतिनिधि एक ब्राह्मणका भोजन है वा उतनेही धन आदिका दान है वा सहस्र गायत्रीका जप वा द्वादश प्राणायाम प्रायश्चित्त है । स्वीकार किये हुये व्रत करनेको असमर्थ मनुष्य प्रतिनिधिसे करावै । पुत्र, पत्नी, भर्ता, भ्राता, पुरोहित, मित्र ये प्रतिनिधि होते हैं । पुत्र आदि पिता आदिके उद्देश (नाम) से व्रतकरै तो स्वयं भी व्रतके फलको प्राप्त होता है ॥

अथोपवासनाशकानि ।

असकृज्जलपानाच्च सकृत्तांबूलचर्वणात् ॥ उपवासः प्रणश्येत दिवा स्वापाच्च मैथुनात् ॥ स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ संकल्पोध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेवचेत्यष्टविधं मैथुनम् ॥ प्राणसंकटे त्वसकृज्जलपाने दोषो नास्ति ॥

चर्मस्थं जलं गोभिन्नक्षीरं मसूरजंबीरफलं शुक्तिचूर्णमित्यामिषगणो व्रते वर्ज्यः॥ अश्रुपातक्रोधादिना सद्यो व्रतनाशः ॥ परान्नभोजने चापि यस्यान्नं तस्य तत्फलम् ॥ तिलमुद्गभिन्नचणकादिकोशीधान्यं माषादिकं मूलकं चेत्येवमादिक्षारगणं लवणमधुमांसादिकं च वर्जयेत् ॥'श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाश्च व्रते हिताः ॥' व्रीहिमुद्गयवतिलकंगुकलायादिधान्यं रक्तेतरमूलकं सूरणादिकंदः सैंधवसामुद्रलवणे गव्यदधिसर्पिर्दुग्धानि पनसफलमाम्रफलं नारिकेलं हरीतकी पिप्पली जीरकं शुंठी तिंतिणी कदलीलवली धात्रीफलानि गुडेतरेक्षुविकार इत्येतान्यतैलपक्वानि हविष्याणि ॥ गव्यं तक्रं माहिषं घृतमपि क्वचित् ॥

वारंवार जलपानसे और एक बार तांबूलके चवर्णसे, दिनमें शयनसे, और मैथुनसे उपवास नष्ट होजाताहै स्त्रियोंका स्मरण, कीर्त्तन, केलि (क्रीडा), देखना, गुप्त बोलना, संकल्प, निश्चय, क्रियाकी सिद्धि (भोग) यह आठ प्रकारका मैथुन होताहै, प्राण संकटमें तो वारंवार जलपानमें दोष नहीं है, चर्ममें स्थितजल और गौसे भिन्नका दूध, मसूर, जंभीरीका फल, सीपका चूर्ण. यह मांसका गण व्रतमें वर्जित है, अश्रुपात (रोना) और क्रोध आदिसे शीघ्रही व्रतका नाश होता है, व्रतमें पराये अन्नके भोजनसे भी जिसका अन्न उसकोही व्रतका फल होता है, तिल, मूंगसे भिन्न चणक आदि, कोशी धान्य, उडद आदि, मूली, इत्यादि क्षारगणको और मधु मांस आदिको भी वर्जे दे, सामाक, नीवार, गोधूम ये सब व्रतमें हित हैं, व्रीहि, मूंग, जौ, तिल, कंगु, कलाय आदि धान्य और रक्तसे भिन्न मूली, सूरण आदि कंद, सैंधव, सामुद्र ये लवण, गौकी दधि, घी, दूध, पनसका फल, आम्रफल, नारियल, हरडे, पीपल, जीरा, शुंठी, इमली, केला, लवली, आंवले, गुडसे भिन्न इक्षुके विकार ये सब तेलसे भिन्नमें पक होंयँ तो हविष्य होते हैं, गौका तक्र और क्वचित् भैंसका घृतभी हविष्य है ॥

अथानुक्तौ व्रतविधिः।

अनुक्तव्रतविधिस्थले माषादिपरिमितसुवर्णरजतादिप्रतिमा पूज्या ॥ द्रव्यानुक्तावाज्यहोमः ॥ देवतानुक्तौ प्रजापतिः ॥ मंत्रानुक्तौ समस्तव्याहृतिः ॥ संख्यानुक्तावष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरष्टौ वा होमसंख्याः ॥ उपवासे कृते ब्राह्मणभोजनं तत्सांगतार्थम् ॥ उद्यापनानुक्तौ गां सुवर्णं वा दद्यात् ॥ विप्रवचनाद्व्रतसांगता ॥ विप्रवचनं दक्षिणां दत्त्वैव ग्राह्यं सर्वत्र ॥ गृहीतव्रतत्यागे चांडालतुल्यत्वम् ॥ विधवाभिर्व्रतादौ चित्ररक्तादिवस्त्रं न धार्यं श्वेतमेव धार्यम् ॥ सूतकादौ स्त्रीणां रजोदोषादौ ज्वरादौ च गृहीतव्रतादौ शारीरनियमान् स्वयं कुर्यात् ॥ पूजादिकमन्यद्वाराकारयेत् ॥ अपूर्वारंभस्तु सूतकादौ न भवति ॥ "काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः ॥ काम्येप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः ॥ न स्यात्प्रतिनिधिर्मंत्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु ॥ नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ॥"

१ हरपररेवडीकाझाड ।

अनुक्तव्रतकी विधिके स्थलमें मासा आदिके परिमाणकी सुवर्ण रजत आदिकी प्रतिमा पूजने योग्य है. जहां द्रव्यका नाम न कहा हो वहां घीका होम करै, जहां देवता न कहाहो वहां प्रजापति देवता है, मंत्र न कहा होय तो संपूर्ण व्याहृति समझनी, जहां संख्या न कहीहो वहां एक सौ आठ, अट्ठाईस, वा आठ, मंत्रोंसे होम करै. उपवास किये पीछे ब्राह्मण भोजन करावै उसकी सांगताके लिये, उद्यापन जहां न कहा हो वहां गौ वा सुवर्ण दे, ब्राह्मणोंके वचनसेभी व्रतकी सांगता होतीहै, ब्राह्मणोंका वचनभी दक्षिणा देकर ही ग्रहण करै, सब जगह ग्रहण किये हुये व्रतके त्यागमें चांडालकी तुल्यता होती है, विधवा स्त्री व्रत आदिकोंमें रक्तवस्त्रको न धारै किंतु श्वेतको ही धारण करैं, सूतक आदिमें, स्त्रियोंके रजो दोष आदिमें, ज्वर आदिमें, ग्रहण किये हुये व्रतके आदिमें शरीर नियमोंको स्वयं करै, पूजन आदि अन्यसे करावै, अपूर्व व्रतका प्रारंभ तो सूतक आदिमें नहीं होता, काम्यव्रतमें, प्रतिनिधि नहीं होता नित्य, नैमित्तिकमें ही होताहै काम्यमें भी कोई आचार्य प्रति निधिको प्रारंभ किये पीछे, कहते हैं मंत्र, स्वामी, देव, अग्निके कर्मोंमें प्रतिनिधि नहीं है, और निषिद्ध वस्तुको प्रतिनिधि कहीं भी न करे ॥

अथ व्रतादिसन्निपाते ।

व्रतादिसन्निपाते दानहोमाद्यविरुद्धं क्रमेण कार्यम् ॥ विरुद्धे तु नक्तभोजनोपवासादावेकं स्वयं कृत्वान्यत्पुत्रभार्यादिना कारयेत् ॥ यत्र चतुर्दश्यष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधो व्रतांतरपारणा च प्राप्ता तत्र भोजनमेवकार्यम् ॥ पारणाया विधिप्राप्तत्वात् ॥ निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनपरः ॥ एवं रविवारादौ संकष्टचतुर्थ्यादिव्रते रात्रिभोजनमेव कार्यम् ॥ यत्राष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधो रात्रौ तु रविवारादिप्रयुक्तभोजननिषेधस्तत्रार्थप्राप्त उपवासः ॥ यत्र तु पुत्रवद्गृहस्थस्य संक्रांत्यादावुपवासोपि निषिद्धो भोजनस्याष्टम्यादिप्रयुक्तनिषेधस्तत्र किंचिद्भक्ष्यं प्रकल्प्योपवास एव कार्यः ॥ चांद्रायणादौ एकादश्यादिप्राप्तौ ग्राससंख्यानियमेन भोजनमेव कार्यम् ॥ एवं कृच्छ्रादिव्रतेपि ॥

व्रत आदिके संनिपात (इकठ्ठा होना) में दान होम आदि अविरोधी जो कर्म उनको क्रमसे करे, और विरोधी जो नक्तभोजन, उपवास आदि हैं उनमें एकको स्वयं करके, अन्यको पुत्र भार्या आदिसे करावे, जहां चतुर्दशी अष्टमी आदिमें दिनमें भोजनका निषेध और व्रतकी पारणा भी प्राप्त है वहां भोजनही करे, क्योंकि पारणा विधिसे प्राप्त है, निषेध तो राग प्राप्त भोजनका है, इसी प्रकार रविवार आदि संकष्ट चतुर्थीके व्रतमें रात्रिमें भोजनकोही करे, जहां अष्टमी आदिमें दिनमें भोजनका निषेध है वहां तो उपवास अर्थात् प्राप्त है, और जहां पुत्रवाले गृहस्थीको संक्रांति आदिमें उपवास भी निषिद्ध है और अष्टमी आदिके कारण भोजनका निषेध है,वहां किंचित् भक्षणको करके उपवासकोही करे, चांद्रायण आदिमें एकादशी आदिकी प्राप्ति होय तो ग्रासोंको संख्याके नियमसे भोजनकोही करे, इसी प्रकार कृच्छ्र आदि व्रतमें भो समझना ॥

अथैकादश्या पारणाप्राप्तौ ।

एवं एकादश्यामेकांतरोपवासादिप्रयुक्तपारणायां प्राप्तायां जलपारणं कृत्वोपवसेत् ॥ एवं द्वादश्यां मासोपवासश्राद्धप्रदोषादिप्रयुक्तपारणाप्रतिबंधे जलपारणं कार्यम् ॥ एकादश्यादौ संक्रमे पुत्रवद्गृहस्थोपवासनिषेध एकादश्युपवासश्च प्राप्तस्तत्रापि किंचिदपो मूलं फलं पयो वा भक्ष्यं प्रकल्प्यम् ॥ द्वयोरुपवासयोर्नक्तयोरेकभक्तयोर्वैकस्मिन्दिने प्राप्तौ अमुकोपवासममुकोपवासं चोभयं तंत्रेण करिष्ये इति संकल्प्य सहैववोपवासपूजाहोमानामनुष्ठानम् ॥ यत्रोपवासैकभक्तयोरेकदिने प्राप्तिस्तत्र तिथिद्वैधे गौणकालव्याप्तिमाश्रित्य एकं पूर्वतिथौ द्वितीयं शेषतिथौ कार्यम् ॥ अखंडतिथावेकं पुत्रादिना कारयेदित्युक्तम् ॥ एवं काम्यं नित्यस्य बाधकमित्यादिवाक्यैः काम्यनित्यादिबलाबलबाधाबाधसंभवासंभवादि विचार्यानुष्ठानमूह्यम् ॥ ॥ इति सामान्यव्रतपरिभाषोद्देशः षष्ठः ॥ ६ ॥

एकादशीमें एकांतर (तीसरे दिन भोजन) जो उपवास उस आदिकी पारणा प्राप्त होय तो जलके पारणाको करके उपवास करे, इसी प्रकार द्वादशी, मासोपवास, श्राद्ध, प्रदोष आदिकी पारणाको प्रतिबंध होनेपर जलसेही करनी एकादशी आदिमें संक्रांति होय तो पुत्रवाले गृहस्थीको उपवासका निषेध और एकादशीका उपवास, दोनों प्राप्त होयँ तो वहां भी कुछ जल, मूल, फल वा दूधरूप भक्षणकी कल्पना करे, दो उपवास, दो नक्त वा दो एकभक्त, एकदिनमें प्राप्त होयँ तो अमुक २ नामके उपवासोंको तंत्रसे करता हूं यह संकल्प करके संगही उपवासोंकी पूजा होमोंको करे, जहां उपवास और एकभक्त एकदिनमें प्राप्त हों वहां एकदिन दो तिथिके होनेपर गौणकालकी व्याप्तिको मानकर एकको पहिली तिथिमें और दूसरेको दूसरी तिथिमें करे अखंड एकही तिथि होय तो एकको पुत्र आदिसे करावे यह कह आये, इसी प्रकार काम्यकर्म नित्यका बाधक है, इत्यादि वचनोंसे काम्य और नित्य आदिके बल, अबल, बाध, अबाध, संभव, असंभव, आदिको विचारकर करे ॥ इति सामान्यपरिभाषोद्देशः षष्ठः ॥ ६ ॥

अथ प्रतिपदादिनिर्णयः ।

शुक्लप्रतिपत्पूजाव्रतादौ अपराह्णव्याप्तिसत्त्वे पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ सायाह्नव्याप्तिसत्त्वेपि पूर्वैवेति माधवाचार्याः ॥ अन्यथा द्वितीयायुता ग्राह्या ॥ कृष्णप्रतिपत्सर्वापि द्वितीयायुतैव ॥ उपवासे तु पक्षद्वयेपि प्रतिपत्पूर्वविद्धैव ग्राह्या ॥ अपराह्णव्यापिन्यां प्रतिपदि करणीयस्योपवासादेः संकल्पं प्रातरेव कुर्यात् ॥ संकल्पकाले प्रतिपदादितिथ्यभावेपि संकल्पे प्रतिपदादितिथिरेव वक्तव्या न त्वमावास्यादिः ॥ एवमुपोष्या द्वादशी शुद्धेत्यादिस्थले एकादशीव्रतप्रयुक्तपूजासंकल्पादौ एकादश्येव कीर्तनीया ॥ न तु द्वादशी ॥ संध्याग्निहोत्रादिकर्मांतरेषु तु तत्तत्कालव्यापिनी द्वादश्यादिरेवेति मम प्रतिभाति ॥ संकल्पश्च सूर्योदयात्प्रागुषःकाले

सूर्योदयोत्तरं प्रातःकालाख्यत्रिमुहूर्तस्याद्यमुहूर्तद्वये प्रशस्तः ॥ तृतीयो मुहूर्तस्तु निषिद्धः ॥ ॥ इति प्रतिपन्निर्णयः सप्तमोद्देशः ॥ ७ ॥

अब प्रतिपदा आदिके निर्णयको कहते हैं शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, पूजाव्रत आदिमें अपराह्णमें व्याप्त होय तो पूर्वविद्धा ग्रहण करनी, सायाह्न व्याप्ति होय तो पहिलीही लेनी यह माधवाचार्य कहते हैं अन्यथा होय तो द्वितीयासे युक्त लेनी, और कृष्णपक्षकी तो संपूर्ण प्रतिपदा द्वितीयासे युक्तही लेनी, उपवासमें तो दोनों पक्षोंकी प्रतिपदा पूर्वविद्धाही लेनी, अपराह्ण व्यापिनी प्रतिपदामें करणेयोग्य उपवास आदिका संकल्प प्रातःकालमेंही करे, संकल्पके कालमें प्रतिपदा आदि तिथिके अभाव होनेपर भी संकल्पमें प्रतिपदा तिथिही कहनी अमावस्या आदि न कहनी, इसी प्रकार शुद्ध द्वादशीमें उपवास करे इत्यादि स्थलोंमें भी एकादशीव्रतके पूजा संकल्प आदिमें एकादशीकाही कीर्तन करे (नामले) द्वादशीका नहीं संध्या अग्निहोत्र आदि अन्य कर्मोंमें तो तिस तिस कालमें वर्तमान द्वादशी आदिकोही कहे यह मुझे प्रतीत होता है, संकल्प तो सूर्योदयसे पूर्व प्रभातकालके समय वा सूर्योदयके अनंतर तीन मुहूर्त नामके प्रातःकालके समय, पहिले दो मुहूर्तोंमें श्रेष्ठ जानना, तीसरा मुहूर्त तो निषिद्धहै ॥ इति प्रतिपन्निर्णयः सप्तमोद्देशः ॥ ७ ॥

अथ द्वितीयानिर्णयः ।

द्वितीया शुक्लपक्षे परविद्धा ग्राह्या ॥ कृष्णपक्षे द्वेधाविभक्तदिनपूर्वभागात्मकपूर्वाह्णप्रविष्टा चेत्पूर्वा ग्राह्या ॥ अन्यथा तु कृष्णपक्षेपि परविद्धैव ॥ ॥ इति द्वितीयानिर्णयोष्टम उद्देशः ॥ ८ ॥

द्वितीया शुक्लपक्षमें परविद्धा लेनी, कृष्णपक्षमें दो भागसे वांटे हुये दिनके पूर्वभागरूप पूर्वाह्णमें प्रविष्ट होय तो पहिली लेनी, अन्यथा तो कृष्णपक्षमें भी परविद्धाही लेनी ॥ इति द्वितीयानिर्णयोष्टम उद्देशः ॥ ८ ॥

अथ तृतीयानिर्णयः ।

तृतीया रंभाव्रते पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ रंभाव्यतिरिक्तव्रतेषु त्रिमुहूर्तद्वितीयाविद्धा पूर्वा त्यक्त्वा परदिने त्रिमुहूर्तव्यापिनी ग्राह्या ॥ पूर्वदिने त्रिमुहूर्तन्यूनद्वितीयावेधे परदिने त्रिमुहूर्तव्याप्त्यभावे पूर्वा ग्राह्या ॥ पूर्वदिने त्रिमुहूर्तद्वितीयावेधे परदिने त्रिमुहूर्तन्यूनापि ग्राह्या ॥ गौरीव्रते तु कलाकाष्ठादिपरिमितस्वल्पद्वितीयायुक्तापि निषिद्धा ॥ परदिने कलाकाष्ठादिपरिमिता स्वल्पापि तृतीया परिग्राह्या ॥ यदा तु दिनक्षयवशात्परदिने स्वल्पापि चतुर्थीयुता तृतीया न लभ्यते पूर्वदिने च द्वितीयाविद्धा तदा द्वितीयाविद्धैव ग्राह्या ॥ यदा च दिनवृद्धिवशात्पूर्वदिने षष्टिघटिका तृतीया परदिनें च घटिकादिशेषवती तदा पूर्वां शुद्धां षष्टिघटिकामपि त्यक्त्वा चतुर्थीयुतैव गौरीव्रते ग्राह्या ॥ ॥ इति तृतीयानिर्णयो नवमोद्देशः ॥ ९ ॥

तृतीया रंभाके व्रतमें पूर्वविद्धा ग्रहण करनी रंभासे भिन्न व्रतोंमें तो तीन मुहूर्त्तकी द्वितीयासे विद्धा पहिलीको छोडकर परले दिन तीन मुहूर्त्त व्यापिनी ग्रहण करनी, पहिले दिन तीन मुहूर्त्तसे न्यून द्वितीयाके वेधमें, पर दिनमें तीन मुहूर्त्त व्याप्तिके अभावम, पहिली लेनी-पहिले दिन तीन मुहूर्त्त द्वितीयाके वेधमें पर दिनमें तीन मुहूर्त्तसे न्यून भी ग्रहण करनी, गौरी, के व्रतमें तो कला (घटी) से परिमित अल्प भी द्वितीयासे युक्त ग्रहण न करनी किन्तु निषिद्ध है, परदिनमें कला, काष्ठा आदिसे परिमित अल्प भी तृतीया लेनी, और जब दिनके क्षयवश परदिनमें अल्प भी चतुर्थीसे युक्त तृतीया न मिलसके और पहिले दिन द्वितीयासे विद्धा हो तब तो द्वितीया विद्धाही लेनी, और जब दिनकी वृद्धिके वश पहिले दिन छः घडी तृतीया हो और परदिनमें घटिका आदि शेषरूप हो तब पहिली शुद्ध छः घडी परिमितको भी छोडकर चतुर्थीसे युक्तही गौरीके व्रतमें ग्रहण करनी ॥ इति तृतीया निर्णयो नवमोद्देशः ॥९॥

अथ चतुर्थीनिर्णयः ।

चतुर्थी गणेशव्रतातिरिक्तोपवासकार्ये पंचमीयुता ग्राह्या ॥ गौरीविनायकव्रतयोस्तु मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ परदिन एव मध्याह्नव्यापिनी चेत्परैव ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्यापित्वे दिनद्वये मध्याह्नव्याप्त्यभावे साम्येन वैषम्येण वैकदेशे व्याप्तौ च पूर्वैव ॥ तृतीयायोगप्राशस्त्यात् ॥ नागव्रते तु पूर्वदिन एव मध्याह्नव्यापिनी चेत्पूर्वैव ॥ उभयदिनमध्याह्नव्याप्त्यादिपक्षचतुष्टये पंचमीयुतैव ग्राह्या ॥ संकष्टचतुर्थी तु चंद्रोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ परदिने एव चंद्रोदयव्याप्तौ परैव ॥ उभयदिने चंद्रोदयव्यापित्वे तृतीयायुतैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये चंद्रोदयव्याप्त्यभावे परैव ॥ ॥ इति चतुर्थीनिर्णयो दशमोद्देशः ॥ १० ॥

चतुर्थी गणेशसे भिन्न उपवासके कार्योंमें पंचमीसे युक्त लेनी गौरी विनायकके व्रतोंमें तो मध्याह्न व्यापिनी लेनी परदिनमेंही मध्याह्न व्यापिनी होय तो परलीही लेनी, दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी होय और दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी न होय वा समानरूप (एकसी) से वा विषमरूपसे एक देशमें व्यापिनी होय तो पहिलीही लेनी क्योंकि उसमें तृतीयाका योग प्रशस्त है, नागव्रतमें तो पहिले दिनही मध्याह्न व्यापिनी होय तो पहिलीही लेनी दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी, अव्यापिनी, समान व्यापिनी, विषम व्यापिनी, इन चारों पक्षोंमें पंचमी युक्तही लेनी, संकट चतुर्थी तो चन्द्रोदय व्यापिनी लेनी परले दिनही चन्द्रोदय व्यापिनी होय तो परलीही लेनी, दोनों दिन चन्द्रोदय व्यापिनी होय तो तृतीयासे युक्तही लेनी, दोनों दिन चन्द्रोदय व्यापिनी न होय तो परलीही लेनी ॥ इति चतुर्थीनिर्णयो दशमोद्देशः ॥ १०॥

अथ पंचमीनिर्णयः ।

पंचमी शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च कर्ममात्रेपि चतुर्थीविद्धा ग्राह्या ॥ स्कंदोपवासे तु षष्ठीयुता ग्राह्या ॥ नागव्रते पंचमी परविद्धा ग्राह्या ॥ परेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूना पंचमी पूर्वेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूनचतुर्थ्या विद्धा तदा पूर्वैव ॥ त्रिमुहूर्ताधिकचतुर्थीवेधे द्विमुहूर्तापि परैव ॥ ॥ इति पंचमीनिर्णय एकादशोद्देशः ॥ ११ ॥

पंचमी शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें सब कर्मोंके विषे चतुर्थीसे विद्धा लेनी, स्वामिकार्तिकके व्रतमें तो षष्ठीसे युक्त लेनी, नागके व्रतमें तो पंचमी, परविद्धा लेनी, परदिनमें तीन मुहूर्त्तसे न्यून चतुर्थीसे विद्धा होय तो पहिलीही लेनी तीन मुहूर्तसे अधिक चतुर्थीके वेधमें दो मुहूर्त भी होनेपर परलीही लेनी ॥ इति पंचमी निर्णय एकादशोद्देशः ॥ ११ ॥

अथ षष्ठीनिर्णयः ।

षष्ठी स्कंदव्रते पूर्वविद्धा ॥ अन्यव्रतेषु परविद्धैव ॥ पूर्वेद्युः षण्मुहूर्तन्यूनपंचम्या वेधे पूर्वापि ॥ षष्ठीसप्तम्योरविवासरयोगे पद्मकयोगः ॥ ॥ इति षष्ठीनिर्णयो द्वादशोद्देशः ॥ १२ ॥

षष्ठी स्कन्दके व्रतमें पूर्वविद्धा लेनी अन्य व्रतोंमें तो परविद्धाही लेनी पहले दिन छः मुहूर्त्तसे न्यून पंचमीके वेधमें पहिली भी लेनी,षष्ठी और सप्तमीको रविवारका योग होय तो पद्मक योग होता है ॥ इति षष्ठीनिर्णयो द्वादशोद्देशः ॥ १२ ॥

अथ सप्तमीनिर्णयः ।

सप्तमी कर्ममात्रे षष्ठीयुतैव ग्राह्या ॥ यदा पूर्वेद्युरस्तमयपर्यंता षष्ठीति दिवा षष्ठीविद्धा न लभ्यते परेद्युश्चाष्टमीविद्धा तदाचागत्या परैव ॥ एवं तिथ्यंतरनिर्णयेष्वप्यूह्यम् ॥ ॥ इति सप्तमीनिर्णयस्त्रयोदशोद्देशः ॥ १३ ॥

सप्तमी सब कर्मोंमें षष्ठीसे युक्तही लेनी जब पहिले दिन अस्तकाल पर्यंत षष्ठीके होनेसे दिनमें षष्ठीसे विद्धा न मिले, और परले दिन अष्टमी विद्धा हो तब अगति (लाचारी) से परलीही लेनी, ऐसेही अन्य तिथियोंके निर्णयमें भी समझना ॥ इति सप्तमीनिर्णयस्त्रयोदशोद्देशः ॥ १३ ॥

अथाष्टमीनिर्णयः ।

व्रतमात्रेष्टमी शुक्लपक्षे परा कृष्णपक्षे पूर्वा ॥ मिलितशिवशक्त्योरुत्सवे कृष्णापि परा ॥ बुधाष्टमी शुक्लपक्षे प्रातःकालमारभ्यापराह्णपर्यंतं यद्दिने मुहूर्तमात्रोपिबुधवासरयोगः सा ग्राह्या ॥ सायाह्नकाले चैत्रमासे श्रावणादिमासचतुष्टये कृष्णपक्षे च न ग्राह्या ॥ सर्वकृष्णाष्टमीषु कालभैरवोद्देशेन केचिदुपवसंति तत्र मार्गशीर्षकृष्णाष्टम्यां भैरवजयंतीत्वात्तद्व्निर्णयौचित्येन मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वैव ॥ प्रदोषव्यापिनीति कौस्तुभे ॥ अत उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ द्विविधवाक्याविरोधात्परैव ॥ पूर्वत्र प्रदोषव्याप्तिरेव परत्र मध्याह्न एव तदा बहुशिष्टाचारानुरोधात्प्रदोषगा पूर्वैव ॥ यत्तु अर्कपर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमीदिवैति वचनाद्दिवाभोजननिषेधमात्रपालनं न तु किंचिद्व्रतम् ॥ तत्र 'निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति वचनाद्भोजनकालव्यापिनीमष्टमीं त्यक्त्वा नवम्यां सप्तम्यां वा भोक्तव्यमिति भाति ॥ युक्तमयुक्तं वा सद्भिर्विचारणीयम् ॥ ॥ इत्यष्टमीनिर्णयश्चतुर्दशोद्देशः ॥ १४ ॥

सब व्रतोंमें अष्टमी शुक्लपक्षमें परली कृष्णपक्षमें पहिली लेनी, मिलेहुये शिवशक्तिके उत्सवमें कृष्णपक्षकी भी परली लेनी, बुधाष्टमी तो शुक्लपक्षमें प्रातःकालसे लेकर अपराह्णपर्यंत जिसदिन मुहूर्तमात्र भी बुधवारका योगहो वह लेनी, सायाह्न कालके समय चैत्रमासमें श्रावण आदि चार मासोंमें और कृष्णपक्षमें बुधाष्टमी न माननी, सब कृष्णपक्षकी अष्टमियोंमें कालभैरवके निमित्त कोई २ उपवास करते हैं, उनमें मार्गशिर कृष्णाष्टमीको भैरवजयन्ती होनेसे उसका जयन्तीके समानही निर्णय उचित है इससे मध्याह्न व्यापिनी लेनी, दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी होय तो पहिलीही लेनी, प्रदोष व्यापिनी भी लेनी यह कौस्तुभमें लिखा है, इससे दोनों दिन प्रदोषमें व्याप्ति होनेपर दोनों प्रकारके वाक्योंके अविरोधसे परलीही लेनी पहिलीमें प्रदोष व्याप्तिही हो परलीमें मध्याह्न व्याप्तिही हो तब बहुत शिष्टोंके आचारके अनुरोधसे प्रदोषमें वर्त्तमान पहिलीही लेनी, जो द्वादशी दोनों पर्व १५। ३० इनमें रात्रिको और चतुर्दशी अष्टमीको दिनमें भोजन न करे इस वचनसे दिनमें भोजनके निषेधमात्रकाही पालन है वहां कोई व्रत नहीं; निषेध तो निवृत्तिरूप होनेसे कालकी अपेक्षा करता है इस वचनसे भोजनकाल व्यापिनी अष्टमीको छोडकर नवमीको वा सप्तमीको भोजन करे यह हमें प्रतीत होता है, इसमें युक्त अयुक्तका सज्जन विचार करें ॥ इत्यष्टमीनिर्णयश्चतुर्दशउद्देशः ॥ १४ ॥

अथ नवमीनिर्णयः।

नवमी सर्वत्राष्टमीविद्धैव ग्राह्या ॥ ॥ इति नवमीनिर्णयः पंचदशोद्देशः ॥ ॥१५॥

नवमी सर्वत्र अष्टमी विद्धाही ग्रहण करनी ॥ इति नवमीनिर्णयः पंचदशोद्देशः ॥ १५ ॥

अथ दशमीनिर्णयः।

दशमी तूपवासादौ नवमीयुतैव ग्राह्या ॥ पूर्वविद्धाया अलाभे उत्तरविद्धा ग्राह्या ॥ ॥ इति दशमीनिर्णयः षोडशोद्देशः ॥ १६ ॥

दशमी तो उपवास आदिमें नवमीयुक्तही ग्रहण करनी पूर्वविद्धा न मिले तो उत्तरविद्धा ग्रहण करनी अर्थात् एकादशी विद्धा लेनी ॥ इति दशमीनिर्णयः षोडशोद्देशः ॥ १६ ॥

अथैकादशीनिर्णयः।

तत्रैकादश्युपवासो द्विधा ॥ भोजननिषेधपरिपालनात्मको व्रतात्मकश्च ॥ आद्ये पुत्रवद्गृहस्थादीनां कृष्णपक्षेपि अधिकारः ॥ व्रतात्मकोपवासस्तु अपत्ययुक्तैर्गृहस्थैश्च कृष्णपक्षे न कार्यः ॥ किंतु समंत्रकं व्रतसंकल्पमकृत्वा यथाशक्ति नियमयुतं भोजनवर्जनमेव कार्यम् ॥ एवं तिथिक्षये शुक्लैकादश्यामपि ज्ञेयम् ॥ शयनीबोधिनीमध्यवर्त्तिकृष्णैकादशीषु सापत्यगृहस्थादीनां सर्वेषामधिकारः विष्णुसायुज्यकामैरायुःकामैः पुत्रकामैश्च काम्यव्रतं पक्षद्वयेपि कार्यम् ॥ तत्र न कोपि निषेधः ॥ वैष्णवगृहिणां कृष्णैकादश्यपि नित्योपोष्या ॥ इदमेकादशीव्रतं शैववैष्णवसौरादीनां सर्वेषां नित्यम् ॥ अकरणे प्रत्यवायश्रवणात् ॥ संपत्त्यादिफलश्रवणात्काम्यं च भवति ॥ केचिन्मुहूर्तादिमितदशमीसत्त्वे दशम्यामेव

भोजनं कर्तव्यम् ॥ सूर्योदयात्पूर्वमेव प्रवृत्तायां शुद्धाधिकाधिकद्वादशिकायां तु नैरंतर्येणोपवासद्वयं कार्यमिति तिथिपालनमपि वदंति तन्न युक्तम् ॥

अब एकादशीके निर्णयको कहते हैं उसमें एकादशीका उपवास दोप्रकारका है, कि भोजनके निषेधका पालनरूप और व्रतरूप, पहिलेमें पुत्र वाले गृहस्थियोंको कृष्णपक्षमें भी अधिकार है, व्रतरूप उपवास तो पुत्रवाले गृहस्थी कृष्णपक्षमें न करें, किन्तु उनको मन्त्रोंसे संकल्पको न करके यथाशक्ति नियमपूर्वक भोजनका त्यागही करना इसी प्रकार तिथिके क्षयमें शुक्र एकादशीमें भी जानना, देवशयनी और देवबोधिनीके मध्यमें वर्तमान कृष्ण एकादशियोंके मध्यमें पुत्रवाले सब गृहस्थियोंका अधिकार है, और विष्णुसायुज्यके और अवस्थाके और पुत्रके अभिलाषी तो दोनों पक्षमें भी काम्यव्रतको करें, उसमें कोई भी निषेध नहीं, वैष्णव गृहस्थियोंको तो कृष्ण एकादशी भी सदैव उपवास करनेयोग्य है, यह एकादशीका व्रत शैव, वैष्णव, सौर आदि सबको नित्य है, क्योंकि न करनेमें शास्त्रोंमें पाप कहा है, और संपदा आदि इसके फल भी सुने जाते हैं, इससे काम्य भी है, कोई तो मुहूर्त आदि प्रमाणसे दशमीके होनेपर दशमीमें ही भोजनकरना, और सूर्योदयसे पहिलेही प्रवृत्त हुई हो ऐसी शुद्धा अधिक द्वादशीमें तो निरंतर दो उपवास करने यह तिथिका पालन भी कहते हैं, सो युक्त नहीं है ॥

अथैकादशीव्रताधिकारः ।

अष्टमवर्षादूर्ध्वमशीतिवर्षपर्यंतम् एकादशीव्रताधिकारः ॥ शक्तस्य तु अशीतेरूर्ध्वमप्यधिकारः ॥ सभर्तृकाणां स्त्रीणां भर्त्रनुज्ञां पित्राद्यनुज्ञां विनोपवासव्रताद्याचरणे व्रतवैफल्यं भर्त्रायुःक्षयो नरकश्च ॥ अशक्तानां तु नक्तं हविष्यान्नमनौदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथांबु चाज्यम् ॥ यत्पंचगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरंचेति पक्षेषु शक्तितारतम्येनैकपक्षाश्रयणं न त्वेकादशीत्यागः ॥ प्रमादादिनैकादश्यामुपोषणाद्यकरणे द्वादश्यामपि व्रतं कार्यम् ॥ द्वादश्यामप्यकरणे यवमध्यचांद्रायणं प्रायश्चित्तम् ॥ नास्तिक्यादकरणे पिपीलिकामध्यचांद्रायणम् ॥ अशक्तपतिपुत्राद्युद्देशेन स्त्रीपुत्रभगिनीभ्रात्रादिभिरेकादशीव्रताचरणे ऋतुशतजं पुण्यम् ॥

क्योंकि आठ वर्षके अनंतर अस्सी वर्ष पर्यंत एकादशीके व्रतका अधिकार है, समर्थको तो अस्सीसे ऊपर भी अधिकार है, सुहागिन स्त्रियोंको भर्ता और पिता आदिकी आज्ञाके विना उपवास व्रत आदिके आचरणमें व्रतकी निष्फलता, भर्ताकी आयुका नाश और स्त्रीको नरक होताहै, असमर्थोंको तो, नक्तव्रत में ओदनसे भिन्न हविष्यान्न, फल, तिल, दूध,जल, घी और पंचगव्य वा वायु इनमें उत्तरोत्तर प्रशस्त होते हैं, इन पक्षोंमें अपनी शक्तिके अनुसार एकपक्षका आश्रयण करे एकादशीका त्याग न करे, प्रमाद आदिसे एकादशीके उपवास आदिके न करनेमें द्वादशीमें भी व्रतको करे, द्वादशीमें भी न करे तो यवमध्य चांद्रायण प्रायश्चित्त है नास्तिकतासे न करनेमें तो पिपीलिकामध्य चांद्रायण प्रायश्चित्त है अशक्त पति पुत्र आदिके उद्देशसे स्त्री, पुत्र, भगिनी, भ्राता आदि एकादशीका व्रत करें तो सौ यज्ञोंका फल होता है ॥

अथैकादशीव्रतदिननिर्णयः ।

तत्र व्रताधिकारिणो द्विविधा वैष्णवाः स्मार्ताश्च ॥ तत्र यद्यपि यस्य दीक्षास्ति वैष्णवीत्यादिलक्षणयुक्ता वैष्णवास्तद्भिन्नाः स्मार्ता इति महानिबंधेषूक्तम् ॥ तथापि स्वपारंपर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्तत्वं च वृद्धा मन्यंत इति सिंधूक्तमेव सर्वदेशे सर्वशिष्टपरिगृहीतं प्रचरति ॥ वेधोपि द्विविधः ॥ अरुणोदये दशमीवेधः सूर्योदये तद्वेधश्च ॥ सूर्योदयात् प्राक् चतुर्घटिकात्मकोरुणोदयः ॥ सूर्योदयस्तु स्पष्टः ॥ तेन षट्पंचाशद्घटिकानंतरं कलामात्रदशमीप्रवेशेऽरुणोदयवेधो वैष्णवविषयः ॥ षष्टिघटिकात्मकसूर्योदयोत्तरं पलादिमात्रदशमीसत्त्वे सूर्योदयवेधः स्मार्तविषयः ॥ ज्योतिर्विदादिवादेन वेधादिसंदेहे तु ॥ "बहुवाक्यविरोधेन ब्राह्मणेषु वदादिषु ॥ एकादशीं परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत् ॥" तथा च एकादशी द्विविधा विद्धा शुद्धा च ॥ अरुणोदयवेधवती विद्धा॥ तां त्यक्त्वा वैष्णवैर्द्वादश्येवोपोष्या ॥ अरुणोदयवेधरहिता शुद्धा ॥ सा चतुर्विधा ॥ एकादशीमात्राधिक्यवती १ द्वादशीमात्राधिक्यवती २ उभयाधिक्यवती ३ अनुभयाधिक्यवती ४ अत्राधिक्यं सूर्योदयोत्तरसत्त्वम् ॥ तत्रोदाहरणम् ॥ दशमी नाड्यः ५५ एकादशी ६०–१ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयमेकादशीमात्राधिक्यवती वैष्णवैः परोपोष्या स्मार्तगृहस्थैः पूर्वा ॥ १ ॥ अथ दशमी ५५ एकादशी ५८ द्वादशी ६० इयं शुद्धा द्वादशीमात्राधिक्यवती ॥ अत्र वैष्णवानां द्वादश्यामुपोषणम् ॥ स्मार्तानां पूर्वा ॥ २ ॥ अथ दशमी ५५ एकादशी ६०–१ द्वादशी ५ इयं शुद्धा उभयाधिक्यवती ॥ अत्र सर्वैर्वैष्णवैः स्मार्तैश्च परैवोपोष्या ॥ ३ ॥ अथ दशमी ५५ एकादशी ५७ द्वादशी ५८ इयमनुभयाधिक्यवती शुद्धा वैष्णवैः स्मार्तैश्च पूर्वैवोपोष्या ॥ इति संक्षेपतो वैष्णवनिर्णयः ॥

अब व्रत आदिके निर्णयको कहते हैं उसमें व्रतके अधिकारी दो प्रकारके हैं वैष्णव, और स्मार्त, उनमें यद्यपि बडे २ ग्रन्थोंमें यह कहा है कि जिनको वैष्णवी दीक्षाहो इत्यादि लक्षणोंसे जो युक्तहों वे वैष्णव, और उनसे भिन्नस्मार्त, होते हैं, तथापि यहां तो अपनी परंपरासे प्रसिद्ध ही वैष्णव और स्मार्तोंको वृद्धजन मानते हैं, यह निर्णयसिंधुमें कहाहुआही सब देशोंमें सब शिष्टोंका ग्रहण किया हुआ मानाजाताहै, वेधभी दोप्रकारकाहै अरुणोदयमें दशमीका वेध और सूर्योदयमें दशमीका वेध, सूर्योदयसे पहिले चार घडीका अरुणोदय होताहै, सूर्यका उदय तो स्पष्टही है, तिससे छप्पन ५६ घडीके अनन्तर कलामात्रभी दशमीके प्रवेशमें जो अरुणोदय वेधहै वह वैष्णवोंके लियेहै, साठि ६० घडीरूप सूर्योदयके पीछे जो पलमात्रभी दशमीहो वह सूर्योदय वेध स्मार्तोंके लिये है, और ज्योतिर्वित् आदिकोंके विवादसे वेध आदिमें संदेह होय तो बहुत वाक्योंके विरोधसे ब्राह्मणोंमें विवाद होय तो एकादशीको छोडकर द्वादशी में उपवास करै, तिससे एकादशी दो प्रकार कीहै, कि विद्धा और शुद्धा, अरुणोदयमें वेधवाली

विद्धाहै, उसको छोडकर वैष्णव द्वादशीमेंही उपवास करैं, अरुणोदयके वेधसे रहित शुद्धाहै, वह चारप्रकारकीहै जिसमें एकादशीही अधिकहो १ जिसमें द्वादशीही अधिकहो २ दोनों जहां अधिकहों ३ दोनों जहां अधिक न हों ४ यहां अधिकपदसे सूर्यके अनन्तर होना लेते हैं, कि उसमें उदाहरण यहहै, दशमी ५५ घडीहो, एकादशी ६० हो, द्वादशीका क्षय ५८ हो, यह एकादशीमात्रकी अधिकतावाली है इसमें वैष्णव परलीमें उपवास करैं और स्मार्त पहिलीमें करैं, और यदि दशमी ५५ एकादशी ५८ द्वादशी ६० घडीहो यह शुद्ध और द्वादशी-मात्रकी अधिकतावाली है इसमें वैष्णव द्वादशीमें उपवास करैं स्मार्त पहिलीमें करैं, यदि दशमी ५५ एकादशी ६०-१ द्वादशी ५ घडीहो, यह शुद्ध और दोनोंकी अधिकतावाली है इसमें सब वैष्णव और स्मार्त परलीमेंही उपवास करैं, यदि दशमी ५५ एकादशी ५७ द्वादशी ५८ घडीहो यह दोनोंको अधिकताबाली नहीं इस शुद्धामें वैष्णव और स्मार्त पहिली मेंही उपवासकरैं, यह संक्षेपसे वैष्णवोंका निर्णय है ॥

अथ स्मार्तनिर्णयः ।

तत्र सूर्योदयवेधवती विद्धा तद्रहिता शुद्धा चेति ॥ द्विविधापि प्रत्येकं चतुर्धा ॥ एकादशी मात्राधिक्यवती ॥ १ ॥ उभयाधिक्यवती ॥ २ ॥ द्वादशीमात्राधिक्यवती ॥ ३ ॥ अनुभयाधिक्यवतीत्येवं अष्ट भेदा भवंति ॥ ४ ॥ अत्रोदाहरणानि ॥ दशमी ५८ एकादशी ६०-१ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयं शुद्धा एकादशी मात्राधिक्यवती ॥ १ ॥ दशमी ४ एकादशी २ द्वादश्याः क्षयः ५८ एवं विद्धा एकादशी मात्राधिक्यवती ॥ २ ॥ अत्रोभयत्रापि स्मार्तानां गृहिणां पूर्वोपोष्या ॥ यतिभिर्निष्कामिगृहिभिर्वनस्थैर्विधवाभिर्वैष्णवैश्च परैवोपोष्या ॥ विष्णुप्रीतिकामैस्तु स्मार्तैरुपवासद्वयं कार्यमिति केचित् ॥ उभयाधिक्यवती शुद्धा यथा-दशमी ५८ एकादशी ६० द्वादशी ४ उभयाधिक्यवती विद्धा यथा-दशमी २ एकादशी ३ द्वादशी ४ अत्र उभयत्रापि स्मार्तैर्वैष्णवैश्च सर्वैश्चावशिष्टा परैवैकादश्युपोष्या ॥ ३ ॥ द्वादशीमात्राधिक्यवती शुद्धा यथा-दशमी ५८ एकादशी ५९ द्वादशी ६०-१ अत्रशुद्धत्वात्स्मार्त्तानामेकादश्यामेवोपवासो न द्वादश्यामिति माधवमतम् ॥ हेमाद्रिमते तु सर्वैः परा द्वादश्येवोपोष्या ॥ केचित्तु मुमुक्षुभिः स्मार्तैः परोपोष्येत्याहुः ॥ द्वादशी मात्राधिका विद्धा यथा-दशमी १ एकादशी क्षयगामिनी ५८ द्वादश्या वृद्धिः ६०-१ तत्रैकादश्या विद्धत्वात्तु द्वादश्यामेव स्मार्तानामप्युपवासः ॥ एवंचोभयाधिक्ये द्वादशीमात्राधिक्ये च स्मार्तानां विद्धायास्त्यागो नान्यत्र ॥ वैष्णवानां तु षड्विधामप्याधिक्यवतीं त्यक्त्वा द्वादश्युपोष्या ॥ अनुभयाधिक्यवती शुद्धा यथा-दशमी ५७ एकादशी ५८ द्वादशी ५९ स्मार्तानामेकादश्यामेवोपवासो न द्वादश्याम् ॥ वैष्णवानां तु विद्धत्वात् द्वादश्यामेवोपवासः ॥ अनुभयाधिक्यवती विद्धा यथा-दशमी २

एकादश्याः क्षयः ५६ द्वादशी ५५ अत्रापि स्मार्तानामेकादश्यामुपवासः ॥ वैष्णवानां द्वादश्यामुपवासः ॥ अस्मिन्नुभयाधिक्यवती विद्धा चरमे भेदे प्रथमभेदद्वय इव यतिभिर्मुमुक्षुभिर्विधवाभिः परोपोष्या ॥ विष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयं कार्यमितितुल्ययुक्त्या प्रतिभाति ॥ इदानीं शिष्टास्तु हेमाद्रिमतं निष्कामत्वादिकं चानादृत्य माधवमतेनैव सर्वस्मार्तनिर्णयमविशेषेण वदंति न तु क्वचिदुपवासद्वयं शुद्धाधिकद्वादशिकायां सर्वेषामेकं परोपवासं वा वदंतीति सर्वत्र देशेषु प्रायो माधवोक्तानुसार एव प्रचार इति बोध्यम् ॥ एतेन वैष्णवाष्टादशभेदानां स्मार्ताष्टादशभेदानां च निर्णयः सर्वोपि गतार्थो भवतीति विभावनीयम् ॥ विस्तरस्तु महाग्रंथेष्वनुसंधेयः ॥ अत्राष्टादशभेदानां पृथक्पृथगुदाहरणकथने तन्निर्णयकथने च बालानां व्यामोहमात्रं स्यादिति स निर्णयः पृथगेव पट्टे लिखित्वा स्थापितोनुसंधेयः ॥ अत्रार्धरात्रोत्तरं दशमीसत्त्वे कपालवेधो द्विपंचाशद्धटिकादशमीसत्त्वे छायावेधस्त्रिपंचाशद्धटीत्वे दशम्या ग्रस्ताख्यो वेधश्चतुःपंचाशत्त्वे संपूर्णाख्यः पंचपंचाशत्त्वेऽतिवेधः षट्पंचाशत्त्वे महावेधः सप्तपंचाशत्त्वे प्रलयाख्योष्टपंचाशत्त्वे महाप्रलय एकोनषष्टित्वे घोराख्यः षष्टित्वे राक्षसाख्य इति वेधभेदा नारदेनोक्ता मध्वादिमतानुसारिभिः कैश्चिदेव केचिदेवानुसृताः ॥ माधवाचार्यादिसर्वसंमतस्तु षट्पंचाशद्धटीवेध एवेति ज्ञेयम् ॥ दशमीपंचदशघटीभिरेकादशी दूषितेति तूपवासातिरिक्तव्रते ॥

अब स्मार्तोंके निर्णयको कहते हैं, उसमें सूर्योदय वेधवाली विद्धा, उससे रहित शुद्धा, होती है, दोनोंप्रकारकी भी प्रत्येक चारप्रकारकी होती है, एकादशीमात्रकी अधिकतावाली १ दोनोंकी अधिकतावाली २ द्वादशीमात्रकी अधिकतावाली ३ जिसमें दोनों अधिक न हों ४ इस प्रकार आठ भेद होते हैं इसमें उदाहरण येहैं–दशमी ५८ एकादशी ६०-१ द्वादशीका क्षय५८ घडीहो यह शुद्ध और एकादशीमात्रकी अधिकतावाली है, दशमी४एकादशी २ द्वादशीका क्षय ५८घडीहो यह विद्धा एकादशीमात्रकी अधिकतावाली है, इन दोनोंमें भी स्मार्त गृहस्थी पहिलीमें ही उपवास करैं, और संन्यासी, निष्काम, गृहस्थी, और वानप्रस्थ, विधवा स्त्री, और वैष्णव परलीकोही उपवास करैं, विष्णुकी प्रीतिके अभिलाषी तो स्मार्त, दो उपवास करैं यह कोई कहते हैं, दोनोंकी अधिकतावाली शुद्धा, यह है कि दशमी ५८ एकादशी ६० द्वादशी ४ घडी हो। और दोनोंकी अधिकतावाली विद्धा यहहै कि दशमी २ एकादशी ३ द्वादशी ४ इन दोनोंमें स्मार्त और वैष्णव संपूर्ण अवशिष्ट परली एकादशीकोही उपवास करैं, द्वादशीमात्रकी अधिकतावाली शुद्धा जैसे दशमी ५८ एकादशी ५९ द्वादशी ६०–१ घडीहो इसमें शुद्धहोनेसे स्मार्त एकादशीमेंही उपवासकरैं द्वादशीमें न करैं यह माधवका मतहै, हेमाद्रिके मतमें तो संपूर्ण परली द्वादशीमेंही उपवास करैं, कोई तो यह कहते हैं कि, जो स्मार्त मुमुक्षुहैं वेही परलीमें उपवास करैं, द्वादशीमात्रकी अधिकतावाली विद्धा यह है जैसे दशमी १ एकादशीका क्षयहो द्वादशीकी वृद्धि ६०–१ हो उसमें एकादशीको विद्धा होनेसे स्मार्तोंकाभी उपवास द्वादशीमेंही होताहै, इसमें दोनोंकी अधिकतामें, और द्वादशीमात्रकी अधिकतामेंही स्मार्तोंको

विद्धाका त्यागहै अन्यत्र नहीं, वैष्णवोंको तो छः ६ प्रकारकी भी अधिकतावालोंको छोडकर द्वादशीमेंही उपवास करना, जिसमें दोनोंकी अधिकता न हो वह शुद्धा जैसे दशमी५७ एकादशी ५८ द्वादशी ५९ घडीहो यहां स्मार्तोंका एकादशीमेंही उपवास होता है द्वादशीमें नहीं, वैष्णवोंका तो द्वादशीमें इससे उपवास होताहै क्योंकि एकादशी विद्धाहै, जिसमें दोनोंकी अधिकता न हो वह विद्धा जैसे दशमी २ एकादशीका क्षय ५६ द्वादशी ५५ घडीहो, इसमें भी स्मार्तोंका एकादशीमें उपवास और वैष्णवोंका द्वादशीमें होताहै, जिसमें दोनोंकी अधिकता न हो इस विद्धाके पिछले भेदमें, पहिले भेदके समान संन्यासी, मुमुक्षु, और विधवा आदि परलीमेंही उपवास करैं, विष्णुकी प्रीतिके अभिलाषी तो दो उपवास करैं यह तुल्य युक्तिसे प्रतीत होता है, इस कालके शिष्ट तो हेमाद्रिके मतका और निष्कामता आदिका अनादर करके माधवके मतसेही अविशेषसे सब स्मार्तोंके निर्णयको कहतेहैं दो उपवासोंको नहीं कहते, वा शुद्धाधिकद्वादशीमें एक परलीकाही उपवास कहतेहैं इससे प्रायः सबदेशोंमें माधवकी उक्तिके अनुसारही प्रचारहै यह जानना, इससे अठारह प्रकारके वैष्णवोंका और अठारहप्रकारके स्मार्तोंका संपूर्ण निर्णय गतार्थ (सिद्ध) होताहै यह विचारने योग्यहै विस्तार तो बडे २ ग्रंथोंमें विचारना, यहां अठारह भेदोंका पृथक् २ उदाहरणके कथनमें और उनके निर्णयोंके कथनेमें बालकोंको व्यामोह (संदेह) मात्रही होगा इससे वह निर्णय पृथक् ही पट्टेपर लिखकर स्थित करके समझनेयोग्य है, इसमें अर्द्धरात्रके अनंतर दशमी होनेपर कपालवेध,और बावनघडी ५२ दशमीके होनेपर छाया वेध तरेपन ५३ घडी दशमी होय तो ग्रस्तनामका वेध चव्वन ५४ घडी होय तो संपूर्णनामका वेध, पचपन५५ घडी होय तो अतिवेध, छप्पन ५६ घडी होयतो महावेध,सत्तावन ५७ घडी होयतो प्रलयनामका वेध, अट्ठावन ५८ घडी होयतो महाप्रलयनामका वेध, उनसठ ५९ घडी होयतो घोरनामका वेध, साठ घडी होय तो राक्षसनामका वेध, होताहै ये वेधोंके भेद नारदने कहेहैं, माध्व आदि मतोंके जो अनुसारी कोई २ हैं उन्होंने ही इनमेंसे कोई २ मानेहैं,माधवाचार्य आदि सबको संमत तो छप्पनघडी दशमीकाही वेधहै यह जानना, दशमीकी पंद्रह घडीसे एकादशी दूषित होतीहै यह तो उपवाससे भिन्न व्रतमें समझना ॥

अथ व्रतप्रयोगः ।

उपवासात्पूर्वदिने प्रातः कृतनित्यक्रियः ॥ "दशमीदिनमारभ्य करिष्येहं व्रतं तव । त्रिदिनं देवदेवेश निर्विघ्नं कुरु केशवेति संकल्प्य मध्याह्न एकभक्तं कुर्यात्॥" तत्र नियमाः ॥ कांस्यमांसमसूरदिवास्वापातिभोजनात्यंबुपानपुनर्भोजनमैथुनक्षौद्रानृतभाषणचणककोद्रवशाकपरान्नद्यूततैलतिलपिष्टतांबूलवर्जनादयः ॥ एकभक्तानन्तरं काष्ठेन दंतधावनं कुर्यात् ॥ निशि भूतल्पे शयित्वा प्रातरेकादश्यां पर्णादिना दंतधावनं कार्यं न तु काष्ठेन ॥ स्नानादिनित्यक्रियांते पवित्रपाणिरुदङ्मुखो वारिपूर्णं ताम्रपात्रमादाय संकल्पं कुर्यात् ॥ "एकादश्यां निराहारो भूत्वाहमपरे हनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युतेति ॥" अनेन मन्त्रेण पुष्पांजलिं वा हरौ दद्यात ॥ अशक्तस्य त्वेकादश्यां जलाहार एकादश्यां क्षीरभक्षणमेका-

दश्यां फलाहार एकादश्यां नक्तभोजीत्याद्यूहेन शक्त्यनुसारेण संकल्पः ॥ शैवानां रुद्रगायत्र्या संकल्पः सौराणां नित्यगायत्र्या नाम्ना वा संकल्पः ॥ अयं संकल्पः सूर्योदयोत्तरं दशमीसत्त्वे स्मार्तैरेकादश्यां रात्रौ कार्यः ॥ अर्धरात्रादुपरि दशम्यनुवृत्तौ सर्वैरेकादश्यां मध्याह्नोत्तरं कार्यः ॥ संकल्पोत्तरमष्टाक्षरमंत्रेण त्रिरभिमंत्रितं तज्जलं पिबेत् ॥ ततः पुष्पमंडपं कृत्वा तत्र ॥ "पुष्पैर्गंधैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैः परैः ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः ॥ दंडवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः ॥ हरिं संपूज्य विधिवद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम्॥" एकादश्यां नियमाः॥ पाखंडिसंभाषणस्पर्शदर्शनवर्जनब्रह्मचर्यसत्यभाषणदिवास्वापवर्जनादयः परिभाषोक्ताश्च ज्ञेयाः पाखंडिदर्शनादौ तु "सूर्यं पश्येत्ततः शुचिः ॥ संस्पर्शे तु बुधः स्नायाच्छुचिरादित्य दर्शनात् ॥ संभाष्य ताञ्शुचिषदं चिंतयेदच्युतं बुधः" इत्यादि प्रायश्चित्तम्॥ उपवासदिने श्राद्धप्राप्तौ श्राद्धशेषसर्वान्नेनैकं पात्रं परिविष्य तत्सर्वान्नावघ्राणं कृत्वा पात्रं गवादिभ्यो देयम् ॥ कंदमूलफलाहाराद्यनुकल्पेनोपवासकर्त्रा तु स्वभक्ष्यस्यैव फलादेः पितृब्राह्मणपात्रेषु परिवेषणपूर्वकं तच्छेषभक्षणं कार्यम् ॥ "एकादश्यां यदा भूप मृताहः स्यात्कदाचन ॥ तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यामेव कारयेत्" इत्यादि वचनानि यथाचारं वैष्णवपराणि ॥ वैष्णवैः षोडशमहालयकरणपक्षे एकादश्यधिकरणकं द्वादश्यधिकरणकं च महालयं तंत्रेण करिष्ये ॥ ॥ इति संकल्प्य महालयद्वयं द्वादश्यां कार्यम् ॥

अब व्रतके प्रयोगको कहतेहैं, उपवाससे पहलेदिन नित्यके कर्मको करके, हे केशव ! दशमीके दिनसे लेकर तीन दिनपर्यंत में आपका व्रत करूंगा उसको आप निर्विघ्न हेदेवदेवके ईश समाप्तकरो यह संकल्प करके दशमीके मध्याह्नमें एकभुक्त करै, उसके नियम येहैं कि कांसीकेपात्र, मांस, मसूर, दिनमें सोना, अतिभोजन, अतिजलपान, पुनः भोजन, मैथुन, सहत, झूठ बोलना, चणे, कोंदू, शाक, परायाअन्न, जूआ, तेल, तिलकीखल, तांबूल, आदिका त्याग करै, एकभक्तके अनंतर काष्ठसे दंतधावन करै, रात्रिमें भूमिकी शय्यापर सोकर प्रातःकाल एकादशीको पत्ते आदिसे दंतोन करै काष्ठसे न करै, स्नान आदिक्रियाके अंतमें हाथोंमें पवित्री धारणकर वा उत्तराभि मुख होकर जलसे पूर्ण ताम्रपात्रको लेकर संकल्पकरै कि एकादशीको निराहार रहकर हे पुंडरीकाक्ष ! में परलेदिन भोजन करूँगा, हे अच्युत तुम मेरीशरण हो, अथवा इसमंत्रसे हरिको पुष्पांजलिदे असमर्थ तो एकादशीको जलाहार, एकादशीको क्षीरभोजी, एकादशीको फलाहारी, एकादशीको नक्तभोजी, रहूंगा, इत्यादि ऊहसे शक्तिके अनुसार संकल्प करै, शैवोंका संकल्प रुद्रगायत्रीसे होताहै, सौरोंका अर्थात् सूर्यके भक्तोंका संकल्प नित्यकी गायत्री वा नामसे होताहै, और यह संकल्प सूर्यके अनंतर दशमी होय तो स्मार्त, एकादशीकी रात्रिमें करै, अर्द्धरात्रसे ऊपरभी दशमी होय तो सब मतवाले, एकादशीको मध्याह्नके पीछे करैं, संकल्पके अनंतर अष्टाक्षर मंत्र (ॐनमो नारायणाय)से तीन बार अभिमंत्रितजलको पीवै, फिर पुष्पोंका मंडप बनाकर उसमें पुष्प, गंध, और धूप, श्रेष्ठ नैवेद्य, और नानाप्रकारके स्तोत्र, और दिव्य, गीत, और मनोहर बाजे, और दंडवत् नमस्कार और

जय २ शब्द इनसे उत्तम भक्त विधिपूर्वक हरिपूजाको करके रात्रिमें जागरण करै, एकादशीमें नियम येहैं कि पाखंडीके संग संभाषणं स्पर्श दर्शन वर्जितहैं, ब्रह्मचर्य सत्यभाषण, दिनमें शयनका त्याग आदि परिभाषा में कहे जानने पाखण्डीके दर्शन आदिमें हो शुद्ध होकर सूर्यका दर्शन करै और स्पर्शमें तो बुद्धिमान् मनुष्य स्नानकरके सूर्यके दर्शनसे शुद्ध होताहै और उनके सङ्ग संभाषण करके शुचिषत्० ऋचाको और अच्युत भगवान्का चिन्तन (स्मरण) करै,इत्यादि प्रायश्चित्तहैं, उपवासके दिन श्राद्ध आनपडै तो श्राद्धके शेष संपूर्ण अन्नको एकपात्रमें परसकर उस सपूर्ण अन्नको सूंघकर गौ आदिको पात्र देदे, कन्द, मूल, फलाहारके अनुकल्पसे जो उपवास करताहै वह तो अपने भक्षणके फल आदिको पितरोंके ब्राह्मणोंके पात्रोंमें परस कर उसके शेषका भक्षण करै, एकादशीके दिन जब किसीका कदाचित् मरणादि न होय तो उस दिनको छोडकर द्वादशीको श्राद्ध करै इत्यादि वचन तो आचारके अनुसार वैष्णवोंके विषयमें हैं, वैष्णव तो सोलह महालयोंके करनेके पक्षमें एकादशीमें और द्वादशीमें करने योग्य महालयोंको तन्त्रसे करताहूं यह संकल्प करके दोनों महालयोंको द्वादशीमें करै ॥

अथ काम्योपवासादौ सूतकादिप्राप्तौ ।

काम्योपवासे सूतकप्राप्तौ शारीरनियमान्स्वयं कृत्वा सूतकांते पूजादानब्राह्मण भोजनादिकं कार्यम् ॥ नित्योपवासे सूतकादिप्राप्तौ स्नात्वा हरिं प्रणम्य नीराहारादिकं स्वयं कृत्वा पूजादिकं ब्राह्मणद्वारा कार्यम् ॥ दानादेर्लोपो न ॥ सूतकांतेनुष्ठानावश्यकत्वात् ॥ एवं रजस्वलादिदोषेपि ॥ द्वादश्यां प्रातर्नित्यपूजां विधाय भगवते व्रतं समर्पयेत ॥ "अज्ञानतिमिरांधस्य व्रतेनानेन केशव ॥ प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव" इति तत्र मन्त्रः ॥

काम्य उपवासमें सूतक होजाय तो शरीरके नियमोंको स्वयं करके सूतकके अन्तमें पूजा, दान, ब्राह्मणभोजन, आदिको करै, नित्य उपवासमें सूतक होजाय तो स्नानके अनन्त हरिको प्रणाम, करके निराहार आदिको स्वयं करके,पूजा आदिको ब्राह्मणके द्वारा करै, दान आदिका लोप न करै किन्तु सूतकके अन्तमें अवश्य करै, इसी प्रकार रजस्वला आदिके दोषमें भी समझना, द्वादशीको प्रातःकाल नित्यपूजाको करके, भगवान्को व्रतका समर्पण करै, उसका मन्त्र यह है कि हे केशव अज्ञानरूप अन्धकारसे अन्धे मुझपर इस व्रतसे प्रसन्न और सुमुख हो, और हेनाथ ! ज्ञानदृष्टिको दो ॥

अथ व्रतनियमभंगे प्रायश्चित्तम् ।

दशम्यादिषूक्तानां नियमानां भंगे दिवास्वापे बहुशो जलपाने मिथ्याभाषणे वा तत्तन्नियमभंगमुद्दिश्य नारायणाष्टाक्षरमन्त्रजपमष्टोत्तरशतसंख्यया कुर्यात् ॥ अल्पदोषे नामशतत्रयजपः ॥ रजस्वलाचांडालरजकसूतिकादिशब्दस्य व्रतमध्ये श्रवणेष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः ॥ ततो नैवेद्यतुलसीमिश्रितान्नेन पारणं कार्यम् ॥ आमलकीफलस्य पारणायां भक्षणेऽसंभाष्यभाषणादिदोषनाशः ॥ पारणं च द्वाद-

श्युल्लंघने महादोषाद्द्वादशीमध्य एव कार्यम् ॥ स्वल्पद्वादशीसत्त्वे रात्रिशेषे आमाध्याह्नांताः क्रियाः सर्वा अपकृष्य कार्याः ॥ अग्निहोत्रहोमस्य नापकर्षइति केचित ॥ एवं श्राद्धस्यापि नापकर्षो रात्रौ श्राद्धनिषेधात् ॥ अतिसंकटे श्राद्धे प्रदोषादिव्रते च तीर्थजलेन पारणं कार्यम ॥ द्वादशीभूयस्त्वे द्वादशीप्रथमपादं हरिवासरसंज्ञकमुल्लंघ्य पारणं कार्यम् ॥

दशमी आदिमें पूर्वोक्त नियमोंका भंग होजाय तो, दिनके सोने और वारंवार जल पीनेमें, मिथ्याभाषणमें तिस २ नियम भङ्गके लिये नारायण अक्षर मन्त्रका एकसौ १०८ आठ बार जप करै अल्पदोषमें तो सौ हरिके नामोंको जपै, रजस्वला, चांडाल, रजक, (धोबी) सूतिका, आदिका शब्द व्रतके मध्यमें सुनले तो एकसौ आठबार गायत्रीको जपै, फिर नैवेद्य तुलसी मिलेहुये अन्नसे पारणा करै, पारणामें आंवलेके फलका भक्षण करके संभाषणके अयोग्यके संग संभाषणका जो दोष उसका नाश होताहै, और द्वादशीके अवलंघनमें महादोषहै, इससे द्वादशीमेंही पारणा करै, द्वादशीके होनेपर, रात्रिके शेषमें मध्याह्न पर्यतके कर्मोंका अपकर्षसे (पहिले) करले, अग्निहोत्रके होमका अपकर्ष नहीं होना यह कोई २ कहते हैं, ऐसेही रात्रिमें श्राद्धके निषेधसे श्राद्धकाभी अपकर्ष नहीं होता, और अत्यंत संकटमें, श्राद्धमें, प्रदोष आदिके व्रतमें, तीर्थके जलसे पारणा करै, द्वादशी बहुत होय तो हरि वासरनामक द्वादशीके प्रथम पादके अनंतर पारणा करै ॥

अथ पारणाकालः ।

कलामात्राया अपि द्वादश्या अभावे त्रयोदश्यां पारणम् ॥ द्वादश्या मध्याह्नोर्ध्वं सत्त्वे प्रातर्मुहूर्तत्रयमध्य एव पारणं न मध्याह्नादौ इति बहवः ॥ बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेरपराह्ण एवेति केचित् ॥

कलामात्रभी द्वादशी न होय तो त्रयोदशी में पारणा करै, द्वादशी मध्याह्नके अनंतर होय तो प्रातःकाल तीन मुहूर्तके मध्यमेंही पारणा करै मध्याह्न आदिमें न करै यह बहुत कहते हैं, बहुतसे कर्मोंके समयका बाध प्रातःकाल करनेमें होगा, इससे मध्याह्नमें करै यह कोई२कहतेहैं॥

अथ श्रवणद्वादशी ।

द्वादश्यां सर्वमासेषु शुक्लायां कृष्णायां वा श्रवणयोगे शक्तेनैकादशीद्वादश्योर्द्वयोरप्युपवासः कार्यः ॥ अशक्तेनैकादश्यां फलाहाराद्यनुकल्पं कृत्वा श्रवणद्वादश्यामुपवासः कार्यः ॥ विष्णुशृंखलयोगसत्त्वेत्वेकादश्यामेव श्रवणद्वादशीप्रयुक्तमप्युपवासं कृत्वा द्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कार्यम् ॥ द्वादश्याः श्रवणतो न्यूनत्वे श्रवणयुक्तायामपि द्वादश्यामेव पारणम् ॥ द्वादश्युल्लंघनेदोषात् ॥ विष्णुशृंखलयोगादिनिर्णयो भाद्रपदमासगतश्रवणद्वादशीप्रकरणे वक्ष्यते ॥

शुक्ल वा कृष्ण द्वादशीको सब मासोंमें श्रवणका योग होय तो, समर्थ मनुष्य दो एकादशियोंमें उपवास करै, अशक्त (निर्बल) तो एकादशीको फलाहार आदिके अनुकल्पको करके

श्रवण द्वादशीको उपवास करै, विष्णुश्रृंखल योग होय तो एकादशीकोही श्रवण द्वादशीके भी उपवासको करके, श्रवणके योगसे रहित द्वादशीमें पारणा करै, द्वादशी श्रवणसे न्यूनहोय तो श्रवणसे युक्त द्वादशीमें भी पारणा करै क्योंकि द्वादशीके लंघनेमें दोषहै, विष्णुश्रृंखल योग आदिका निर्णय, भाद्रपद मासकी श्रवण द्वादशीके प्रकरणमें कहेंगे ॥

अथ द्वादश्यां नियमाः ।

दिवा निद्रा परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ॥ क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥ द्यूतक्रोधचणककोद्रवमाषतिलपिष्टमसूरनेत्रांजनमिथ्याभाषणलोभायासप्रवासभारवाहनाध्ययनतांबूलादीनि वर्जयेत् ॥ एते च नियमाः काम्यव्रते आवश्यकाः ॥ नित्यव्रते तु ॥ "शक्तिमांस्तु पुमान्कुर्यान्नियमं सुविशेषणम् ॥ विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः ॥ निगृहीतेंद्रियः श्रद्धासहायो विष्णुतत्परः ॥ उपोष्यैकादशीं पापान्मुच्यते नात्रसंशयः ॥ अन्यं भुंक्ष्वेति यो ब्रूयाद्भुंक्ते वा यः स नारकी ॥ एकादशीव्रताद्विष्णुसायुज्यं लभते श्रियम् ॥" इत्येकादशीव्रतनिर्णयः॥ कार्यांतरेष्वेकादशी द्वादशीयुतैव ग्राह्या॥ ॥इत्येकादशीनिर्णयोद्देशः सप्तदशः१७॥

दिनमें निद्रा, पराया अन्न, पुनः भोजन, मैथुन, सहत, कांस्यका पात्र, मांस, तैल, ये आठ द्वादशीमें वर्जदे, जुआ, क्रोध, चणक, कोदू , उडद, तिलकी खल, मसूर, नेत्रांजन, झूँठ बोलना, लोभ, परिश्रम, प्रवास, भारको ले जाना, पढना, तांबूल आदिकोभी वर्जदे, ये सब नियम काम्यव्रतमें आवश्यक हैं, नित्यव्रतमें तो ये हैं कि शक्तिमान् मनुष्य तो विशेष नियमोंको करै विशेष नियम करनेका सामर्थ्य न होय तो अहोरात्रभर भोजनसे वर्जित रहै, इंद्रियोंको रोकै, श्रद्धावान्, विष्णुमें तत्पर, हुआ मनुष्य एकादशीके उपवासको करके मुक्त होताहै इसमें संशय नहीं, जो यह कहै कि अन्नका भक्षण करो और जो स्वयं भक्षण करै वह नरकगामी होताहै, एकादशीके व्रतसे विष्णुकी सायुज्य (मुक्ति) को और लक्ष्मीको प्राप्त होताहै, यह एकादशीके व्रतका निर्णय समाप्त हुआ, अन्य कार्योंमें तो एकादशी द्वादशीसे युक्तही लेनी ॥ इति—एकादशीनिर्णयोद्देशः सप्तदशः ॥ १७ ॥

अथ द्वादशीनिर्णयः ।

द्वादशी त्वेकादशीविद्धा ग्राह्या ॥ अथाष्टौ महाद्वादश्यः ॥ शुद्धाधिकैकादशीयुक्ता द्वादशी उन्मीलनीसंज्ञा ॥ १ ॥ द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते सा वंजुली ॥२॥ सूर्योदये एकादशी ततः क्षयगामिनी द्वादशी द्वितीयसूर्योदये त्रयोदशी एवमेकाहोरात्रे तिथित्रयस्पर्शात्रिस्पर्शासंज्ञा द्वादशी ॥ ३ ॥ दर्शस्य पौर्णमास्या वा यदा दिनवृद्धिस्तदा पक्षवर्धिनीसंज्ञा ॥ ४ ॥ पुष्यर्क्षयुता जया ॥ ५ ॥ श्रवणयुता विजया ॥ ६ ॥ पुनर्वसुयुता जयन्ती ॥ ७ ॥ रोहिणीयुता पापनाशिनी ॥ ८ ॥ एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् ॥ श्रवणयुता त्वेकादशीवन्नित्या ॥ एतास्वष्टस्वेकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः ॥ पार्थक्ये शक्तस्योपवासद्वयम् ॥

यस्त्वारब्धव्रतद्वय उपवासद्वयाशक्तश्च तस्य द्वादशीसमुपोषणाद्व्रतद्वयपुण्यलाभः ॥ तत्र श्रवणर्क्षयोगो मुहूर्तमात्रोपि ग्राह्यः ॥ पुष्यादियोगः सूर्योदयमारभ्यास्तमयपर्यंतश्चेदुपवासः ॥ पारणं तु तिथिनक्षत्रसंयोगोपोषणे उभयांतेऽन्यतरांते वेति सर्वसामान्यनिर्णयः ॥ ॥ इति द्वादशीनिर्णयोद्देशोऽष्टा० ॥ १८ ॥

द्वादशी तो एकादशीविद्धा लेनी, अब आठ महाद्वादशियोंको कहते हैं । शुद्ध अधिक एकादशीसे युक्त द्वादशीको उन्मीलिनी कहते हैं १ जो द्वादशीही शुद्ध अधिक होकर बढ़जाय वह वंजुली होतीहै २ सूर्योदयमें एकादशी हो फिर क्षयगामिनी द्वादशी हो, दूसरे सूर्योदयमें त्रयोदशी हो इसप्रकार एक अहोरात्रमें तीन तिथियोंका स्पर्श होनेसे त्रिस्पर्शा नामकी द्वादशी होतीहै ३ और अमावस्या वा पूर्णिमाके दिनकी जब वृद्धि होतीहै तब पक्षवर्द्धिनी नामकी द्वादशी होती है ४ पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वादशीको जया कहते हैं ५ श्रवणसे युक्तको विजया कहते हैं ६ पुनर्वसुसे युक्तको जयंती ७ रोहिणीसे युक्तको पापनाशिनी ८ इन आठ द्वादशियोंमें पापका नाश और मुक्तिका अभिलाषी उपवास करै, श्रवणसे युक्त द्वादशीको तो एकादशीके समान नित्या कहते हैं, इन आठ द्वादशियोंमें दो एकादशी एक होजायँ तो तंत्रसे उपवास करै, पृथक् २ होयँ तो समर्थ मनुष्य दो उपवास करै, जो दो व्रतोंका प्रारंभ करके दो व्रतोंके करनेमें असमर्थ हो उसको द्वादशीके उपवाससे दो व्रतोंके पुण्यका लाभ होता है, उसमें मुहूर्तमात्र भी श्रवण नक्षत्रका योग ग्रहण करने योग्य है, पुष्य आदिका योग सूर्योदयसे लेकर अस्तपर्यंत होय तो उपवास करै, पारणा तो तिथि नक्षत्रके संयोगके उपवासमें दोनोंके अंतमें वा एकके अंतमें करै यह सबका सामान्य निर्णय है ॥ इति द्वादशीनिर्णयोद्देशोऽष्टादशः ॥ १८ ॥

अथ त्रयोदशीनिर्णयः ।

त्रयोदशी शुक्ला पूर्वा कृष्णोत्तरा॥शनिवारादियुक्तां कांचिच्छुक्लत्रयोदशीमारभ्य संवत्सरपर्यंतं प्रतिपक्षं त्रयोदशीषु शनिवारयुक्तास्वेव चतुर्विंशतिशुक्लत्रयोदशीषु वा कर्तव्यं यत्प्रदोषसमये शिवपूजानक्तभोजनात्मकं प्रदोषव्रतं तत्र सूर्यास्तमानोत्तरत्रिमुहूर्तात्मकप्रदोषव्यापिनी त्रयोदशी ग्राह्या ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ साम्येन तदेकदेशस्पर्शे वा उत्तरा ॥ वैषम्येणैकदेशस्पर्शे तदाधिक्यवती पूर्वापि ग्राह्या ॥ यदि देवपूजाभोजनपर्याप्तं तदाधिक्यं लभ्येत ॥ नोचेत्साम्यपक्षवदुत्तरैव ॥ उभयत्र सर्वथा व्याप्त्यभावेपि परैव ॥ ॥ इति त्रयोदशीनिर्णयोद्देशःऊ० ॥१९॥

त्रयोदशी शुक्लपक्षकी पहिली और कृष्णपक्षकी पिछली लेनी, शनिवार आदिसे युक्त किसी शुक्ल त्रयोदशीसे लेकर संवत्सरपर्यंत प्रतिपक्षकी उन चौवीस २४ त्रयोदशियोंमें ही व्रत करै जो शनिवारसे युक्त हों । चौवीस त्रयोदशियोंमें प्रदोष समयमें शिव पूजा, नक्तभोजनरूप जो प्रदोषव्रत है उसमें सूर्यास्तमानके पीछे तीन मुहूर्तरूप प्रदोष व्यापिनी त्रयोदशी ग्रहण करनी, दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो समानरूपसे उसके एक देशमें स्पर्श होय तो पिछली लेनी, विषमतासे एक देशमें स्पर्श होय तो स्पर्शकी अधिकता

वाली पहिलीभी लेनी जो देवपूजा, भोजन करने योग्य उसकी अधिकता मिलै न मिलै तो समान स्पर्शके समान पिछलीही लेनी, दोनों दिन सर्वथा व्याप्तिके अभावमें भी परलीही लेनी ॥ इति त्रयोदशीनिर्णयोद्दे० ऊन० ॥ १९ ॥

अथ चतुर्दशीनिर्णयः।

चतुर्दशी तु शुक्ला परा कृष्णा पूर्वा ॥ यत्तु प्रतिमासं कृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतं काम्यमनुष्ठीयते तत्र महाशिवरात्रिवन्निशीथव्यापिन्येव ग्राह्या ॥ उभयत्र निशीथव्याप्तौ परा प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात् ॥ केश्चित्प्रदोषमात्रव्यापिनी गृह्यते तत्र मूलं चिंत्यम् ॥ यत्तु चतुर्दश्यां दिवाभोजननिषेध एव नित्यत्वात्परिपाल्यते तत्र भोजनकालव्यापिनीं चतुर्दशीं त्यक्त्वा त्रयोदश्यां पंचदश्यां वा भोक्तव्यम् ॥ शिवरात्रिव्रतिभिस्तु चतुर्दश्यामेव पारणा कर्तव्या ॥ न तत्र चतुर्दश्यष्टमी दिवेति भोजननिषेधप्राप्तिः ॥ विधिप्राप्तेर्निषेधाप्रवेशात् ॥ ॥ इति चतुर्दशीनिर्णयोद्देशो विंशः ॥ २० ॥

चतुर्दशी तो शुक्लपक्षकी परली कृष्णपक्षकी पहिली लेनी, जो प्रतिमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवरात्रिका काम्यव्रत किया जाताहै उसमें महाशिवरात्रिके समान अर्द्धरात्रव्यापिनी शिवरात्री लेनी। दोनों दिन निशीथव्यापिनी होय तो प्रदोषकी व्याप्ति अधिक होनेसे परली लेनी, कोई तो प्रदोषमात्र व्यापिनीको लेते हैं, उसमें कोई प्रमाण नहीं और जो चतुर्दशीमें दिनके भोजनका निषेध है नित्य होनेसे उसकीही पालना करो तो उसमें भोजनकालव्यापिनी चतुर्दशीको छोडकर त्रयोदशी वा पंचदशीको भोजन करे, शिवरात्रिके व्रतवाले तो चतुर्दशीमें ही पारणा करैं, उसमें चतुर्दशी अष्टमीको दिनमें भोजन न करै, इस निषेधकी प्राप्ति नहीं, क्योंकि विधिकी प्राप्तिमें निषेधका अप्रवेश होता है (नहीं लगता) ॥इति चतुर्दशीनिर्णयोद्देशो विंशः ॥ २० ॥

अथ पूर्णिमामावास्ययोर्निर्णयः।

पूर्णिमास्यमावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये ॥ यत्तु कैश्चच्छ्रावणीहुताशनीपौर्णमास्योः कुलधर्मादौ पूर्वविद्धयोर्ग्राह्यत्वोक्तेः सर्वा पौर्णमासी कुलधर्मादौ पूर्वा गृह्यते तत्र मूलं मृग्यम्॥ अष्टादशनाडिकातो न्यूनचतुर्दशीसत्त्वे तादृशचतुर्दशीवेधस्य 'भूतोष्टादशनाडीभिः इति वचनाददूषकत्वप्रतीतेरस्तु वा तादृशस्थले कुलधर्मे पूर्वत्र ग्राह्यत्वम् ॥ अष्टादशनाडिकाधिकचतुर्दशीवेधे तु पूर्वविद्धा पौर्णमासी न ग्राह्येति मे प्रतिभाति ॥ अमावास्या भौमसोमवारयुता स्नानदानादौ महापुण्या ॥ एवं भानुयुता सप्तमी भौमयुता चतुर्थी च ॥ यत्तु सोमयुतामावास्यायामश्वत्थपूजाद्यात्मकं सोमवतीव्रतमनुष्ठीयते तत्रापराह्णपर्यंतं मुहूर्तमात्रयोगेपि व्रतं कार्यम् ॥ दिनांत्यषड्घटिकात्मकसायाह्नयोगे रात्रियोगे च कार्यमिति शिष्टाचारः ॥ यतीनां क्षौरादावुदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी पौर्णमासी ग्राह्या ॥ तृतीयमुहूर्तस्पर्शाभावे चतुर्दशीयुता ॥ ॥ इति पंचदशीनिर्णयोद्देश एकविंशतितमः ॥ २१ ॥

पूर्णिमा और अमावस्या तो सावित्रीके व्रतको छोडकर परली लेनी, जो यह कहते हैं कि श्रावणी और होलिका ये दोनों पूर्णिमा कुलधर्म आदिमें पूर्वविद्धाही ग्रहण करने योग्य कही हैं इससे सब पूर्णिमा कुलधर्म आदिमें पहिलीही लेनी । उसमें मूल ढूंढने योग्य है अर्थात् कोई प्रमाण नहीं है, अठारह घडीसे न्यून चतुर्दशी होय तो, उसमें चतुर्दशीका वेध दूषित नहीं है, क्योंकि चतुर्दशी अठारह घडियोंसे बींधती है, इससे उस पूर्वोक्त स्थलमें कुलधर्मके विषे पहिलीही ग्रहण करने योग्य है कुछ दोष नहीं । अठारह घडीसे अधिक चतुर्दशीके वेधमें तो पूर्वविद्धा पूर्णिमा ग्रहण न करनी यह प्रतीत होता है, मंगल और सोमवारसे युक्त अमावस्या स्नान दान आदिमें बडी पवित्र है, इसी प्रकार रविवारसे युक्त सप्तमी, मंगलवारकी चतुर्थी भी पवित्र है, और जो सोमवारकी अमावस्याको पीपलकी पूजा आदिरूप सोमवतीका व्रत किया जाता है उसमें अपराह्न पर्यंत तीन मुहूर्तके योगमें भी व्रत करना, दिनके अंतकी छः घडीरूप सायाह्नके योगमें और रात्रिके योगमें न करे यह शिष्टोंका आचार है । संन्यासियोंके क्षौर आदिमें उदयके समय तीन मुहूर्त व्यापिनी पौर्णमासी लेनी, तीसरे मुहूर्तमें स्पर्श न होय तो चतुर्दशीसे युक्त लेनी ॥ इति पंचदशीनिर्णयोद्देश एकविंशः ॥ २१ ॥

अथेष्टिकालः ।

पक्षांता उपस्तव्याः॥पक्षाद्या यष्टव्याः॥उपवासोन्वाधानाख्यं कर्म ॥ 'पर्वणो यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः ॥ यज्ञकालः स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः ॥ प्रतिपत्तुर्यचरणे न यष्टव्यमिति स्थितिः॥' तत्र पर्वप्रतिपदोः पूर्णत्वे संदेहाभावः ॥ पर्वण्यन्वाधानस्योत्तरदिने यागस्य यथोक्तकाललाभात् ॥ पर्वणः खंडत्वे तु पर्वापेक्षया प्रतिपदो ह्रासवृद्धिघटिका गणयित्वा तदर्धं ह्रासे पर्वणि वियोज्य वृद्धौ संयोज्य संधिकालं ज्ञात्वान्वाधानादिकाले निर्णेतव्यः ॥ यत्र ह्रासवृद्धी न स्तस्तत्र यथास्थितः स्पष्ट एव संधिः ॥ तत्र संधिश्चतुर्विधः ॥ पूर्वाह्णसंधिर्मध्याह्नसंधिरपराह्णसंधी रात्रिसंधिश्चेति ॥ द्वेधा विभक्तदिनस्य पूर्वार्द्धं पूर्वाह्णः ॥ अपरार्धमपराह्णः ॥ पूर्वाह्णपराह्णसंधिभूतो घटिकाद्वयात्मको मुहूर्तो मध्याह्नः ॥ आवर्तनापरपर्याय इति कौस्तुभे ॥ उभयसंधिरेकपलात्मक एव मध्याह्नो नतु घटिकाद्वयात्मक इति प्रायेणेदानीं शिष्टाचारः ॥ तत्रोक्तरीत्या ह्रासवृद्ध्यर्थवियोजनसंयोजनेन निर्णीतः ॥ पर्वप्रतिपदोः संधिर्यदि पूर्वाह्णे मध्याह्ने वा भवति तदा संधिदिनात्पूर्वदिनेन्वाधानं संधिदिने यागः ॥ यद्यपराह्णे रात्रौ वा संधिस्तदा संधिदिनेन्वाधानं तत्परदिने यागः ॥

अब इष्टि (यज्ञ) के कालको कहते हैं, पक्षके अंतकी तिथियोंमें उपवास करे पक्षके आदिकी तिथियोंमें यज्ञ करे,यहां उपवाससे अन्वाधान नामका कर्म लेना दोनों पर्वों(१५-३०) का चतुर्थांश और आदिकी प्रतिपदा आदि तीन तिथि हैं वह यज्ञकाल जानना,वह बुद्धिमानोंने प्रातःकाल करना कहा है । प्रतिपदाके चौथे चरणमें यज्ञ न करे यह मर्यादा है, उसमें पर्व और प्रतिपदा पूर्ण होवें तो सन्देहका अभाव है, क्योंकि पर्वमें अन्वाधान होजायगा और

अगले दिन यज्ञका यथोक्त काल मिल जायगा, पर्व खंडित होय तो पर्वकी अपेक्षासे प्रतिपदाकी न्यूनता और वृद्धिकी घडियोंको गिनकर उसके अर्द्धभागको न्यूनतामें तो पर्वमें घटाकर और वृद्धिमें मिलाकर संधिके समयको जानकर अन्वाधान आदिके कालका निर्णय करले और जहां क्षय, वृद्धि दोनों न हों वहां यथायोग्य स्थित संधि स्पष्टही है, उसमें संधि चार प्रकारकी है--पूर्वाह्णसंधि, मध्याह्नसंधि, अपराह्णसंधि और रात्रिसंधि; दो प्रकारसे विभाग किये दिनके पूर्वार्द्धको पूर्वाह्ण और दूसरे अर्द्धको अपराह्ण कहते हैं। पूर्वाह्ण और अपराह्णकी संधिरूप जो दो घडीका मुहूर्त, उसे मध्याह्न कहते हैं, उसका दूसरा पर्याय नाम आवर्तन है यह कौस्तुभमें कहा है। दोनोंकी एक पल संधिही मध्याह्न है। दो घडीरूप नहीं यह बहुधा आजकल शिष्टाचार है। वह उक्तरीतिके अर्थ वियोजन और संयोजन (घटाना मिलाना) से निर्णय किया है। पर्व और प्रतिपदाकी संधि पूर्वाह्णमें वा मध्याह्नमें होय तब तो संधिके दिनसे पूर्व दिनमें अन्वाधान और संधिके दिन यज्ञ करे, यदि अपराह्ण वा रात्रिमें संधि होय तो संधिके दिन अन्वाधान और उसके पहले दिन यज्ञ करे ॥

अथोदाहरणम् ।

पर्व सप्तदशघटीमितं प्रतिपदेकादशघटीमिता तत्र षड्घटीमितः प्रतिपत्क्षयस्तदर्धं घटीत्रयं पर्वणि वियोजितं जातः संधिश्चतुर्दशघटीमितः ॥ अयं त्रिंशद्घटीमिते दिनमाने पूर्वाह्णसंधिः ॥ अष्टाविंशतिघटीमिते तु दिनमानेऽयमेव मध्याह्नसंधिः ॥ अत्र संधिदिने यागः ॥ पूर्वदिनेन्वाधानम् ॥ पर्व १४ प्रतिपत् १९ अत्र पंचघटिका वृद्धिः ॥ तदर्धं सार्धघटीद्वयं पर्वणि संयोजितं जातः संधिः सार्धषोडशघटीमितः ॥ अयमपराह्णसंधिः ॥ अत्र संधिदिनेन्वाधानं परेद्युर्यागः ॥

अब उदाहरणको कहते हैं। पर्व सत्रह १७ घडी हो और प्रतिपदा ग्यारह घडी हो उसमें छः ६ घडीभर प्रतिपदाका क्षय हुआ, उसकी आधी तीन घडी हुई वे पर्वमें घटाई तो चौदह घडीपर संधि हुई यह तीस घडीके दिनमानमें पूर्वाह्णसंधि है और अठाईस २८ घडीके दिनमानमें यही मध्याह्नसंधि है इसमें संधिके दिन यज्ञ करै और पूर्वदिनमें अन्वाधान करे। और पर्व १४ प्रतिपदा १९ घडीहो इसमें पांच घडी वृद्धि है उसका आधा अढाई २ ॥ घडी हुआ वह पर्वमें मिलाया तो साढे सोलह १६ ॥ घडीपर संधि हुई यह अपराह्णसंधि है इसमें संधिके दिन अन्वाधान और परले दिन याग होता है ॥

अथात्र बालबोधार्थं प्रकारांतरम् ।

सूर्योदयोत्तरं विद्यमानाः पर्वनाडिकाः प्रतिपन्नाडिकाश्चैकीकृताः सत्यो यदि दिनमानतो न्यूनास्तदा पूर्वाह्णसंधिः ॥ यदि दिनमानसमास्तदा मध्याह्नसंधिः ॥ यदि दिनमानादधिकास्तदापराह्णसंधिरिति ॥ इत्थं सूर्योदयोत्तरमनुवर्तमानपर्वप्रतिपदोः क्षयवृद्धिभ्यामेव संध्यवलोकनमिदानीं सर्वत्र शिष्टाचारेषु प्रसिद्धम् ॥ कौस्तुभादौ तु चतुर्दशी दिनस्था उदयात्पूर्वं पर्वणो गतघटिका उदयादेष्यघटिकाश्चैकीकृत्यैवं प्रतिपदः पर्वदिनस्था उत्तरदिनस्थाश्च घटिका एकीकृत्य पर्वापि-

क्षया प्रतिपदो वृद्धिक्षयो ज्ञेयौ ॥ तद्यथा ॥ चतुर्दशी २२ पर्व १७ चतुर्दशीदिनस्थाः पर्वनाडिकाः ॥ ३८ उत्तरदिनस्थाः १७ एकीकृत्य जाताः ५५ पर्वदिनस्थाः प्रतिपन्नाड्यः ॥ ४३ उत्तरदिनस्थाः ११ एकीकृत्य जाताः ५४ अत्रैका घटी प्रतिपत्क्षयस्तदर्धमर्धघटी पर्वणि वियोजिता जातः संधिः सार्धषोडशनाड्यः॥ अयमपराह्णसंधिः ॥ प्रथममते त्वत्र पूर्वाह्णसंधिः स्थितः ॥ तथा चतुर्दशी २४ पर्व १७ पूर्वं गतनाड्यः॥३६ एष्ययोगे जाताः ५३ प्रतिपत्११ गतैष्ययोगे जाताः ५४ अत्र पूर्वोक्तरीत्या क्षयोदाहरणे एवैका घटी वृद्धिस्तदर्धसंयोजने सार्द्धसप्तदशनाडीमितोऽपराह्णसंधिः ॥ एवं च पूर्वमतैतन्मतयोरत्यंतं विरोधः ॥ वृद्धिक्षयादिसर्ववैपरीत्यात् ॥ अत्र मते घटीद्वयाधिका वृद्धिः क्षयो वा न संभवतीति परेह्नि घटिकान्यूनास्तथैवाधिकाश्च या इति बहुवचनमसंगतमितिदूषणं पुरुषार्थचिंतामणौ द्रष्टव्यम् ॥

अब यहां बालकोंके बोधार्थ दूसरा प्रकार लिखते हैं । सूर्योदयके अनंतर वर्तमान पर्वकी घडी और प्रतिपदाकी घडियोंको एक करले वे जोडी हुई यदि दिनमानसे न्यूनहों तबतो पूर्वाह्ण संधि होती है । यदि दिनमानके समान (बराबर) होयँ तो तब मध्याह्नसंधि होती है । यदि दिनमानसे अधिक होय तो तब अपराह्ण संधि होती है, इस प्रकार सूर्योदयके अनंतर अनुवर्तमान पर्व और प्रतिपदाके क्षय और वृद्धिसेही संधिको देख लेना । यह आज कलके सब शिष्टोंके आचरणोंमें प्रसिद्ध है । कौस्तुभ आदिमें तो चतुर्दशीके दिनमें वर्तमान उदयसे पूर्वमें पर्वकी बीती हुई घडी और सूर्योदयसे आगे आनेवाली घडियोंको एक करके ऐसेंही पर्वके दिनमें वर्तमान प्रतिपदा और आगले दिनकी प्रतिपदाके घडियोंको एक करके पर्वकी अपेक्षासे प्रतिपदाके वृद्धि और क्षय जानने; वे ऐसे हैं कि चतुर्दशी २२ पर्व १७ चतुर्दशीके दिनमें वर्तमान पर्वकी घडी ३८ हुई उत्तर दिनमें वर्तमान १७ एक करके ५५ हुई पूर्वदिनमें स्थित प्रतिपदाकी घडी ४३ हों, उत्तरदिनमें स्थित ११ हों मिलाकर ५४ हुई, इसमें एक घडी प्रतिपदाका क्षय है उसका आधा आधी घडी हुआ पर्वमें घटाया तो साढे सोलह १६ ॥ घडी संधि हुई, यह अपराह्ण संधि है । पहले मतमें तो इसमें पूर्वाह्ण संधि थी, तैसेही चतुर्दशी २४ पर्व २७ पहिले गत घडी २६ और एष्यके (वर्तमानके) योगसे ५३ प्रतिपदा ११ हो गत और एष्यके योगमें ५४ घडी हुई, यहां पूर्वोक्त रीतिसे क्षयके उदाहरणमेंही एक घडीकी वृद्धि है उसका आधा मिलानेसे साढे सत्रह १७ ॥ घडीके प्रमाणपर अपराह्ण संधि हुई, इससे पहिले मत और इस मतमें अत्यन्त विरोध है,क्योंकि वृद्धि क्षय आदि सब विपरीत है । इस मतमें दो घडीसे अधिक वृद्धि वा क्षय नहीं हो सकता इससे परले दिन घटिकासे न्यून और तैसेंही अधिक जो घडी हैं इस वचनमें 'याः' यह बहुवचन असंगत है यह दूषण पुरुषार्थचिन्तामणिमें देखने योग्य है ॥

अथ पौर्णमास्यां विशेषः ।

संगवकालादूर्ध्वं त्रयोदशादिघटीमारभ्यार्द्धोह्नात्पूर्वं संधौ सद्यस्कालापौर्णमासी

तस्या संधिदिने एवान्वाधानं यागश्च सद्योनुष्ठेयः ॥ इदं पौर्णमास्यां सद्यस्कालत्वं वैकल्पिकमिति केचित् ॥ अमावास्यायां सर्वत्र व्यहकालतैव न कदाचिदपि सद्यस्कालता ॥ पूर्णमास्याममायां चापराह्णसंधौ प्रतिपच्चतुर्थपादे यागो न दोषाय ॥ अमावास्यायामपराह्णसंधावपि प्रतिपदि त्रिमुहूर्ताधिकद्वितीयाप्रवेशे चन्द्रदर्शनसंभवेन चन्द्रदर्शने यागनिषेधादमावास्यायामेवेष्टिश्चतुर्दश्यामन्वाधानं बौधायनादीनाम् ॥ अमावास्यायां सप्तघटीमितप्रतिपदभावे चंद्रदर्शनेपि प्रतिपद्येव बौधायनैरिष्टिः कार्या ॥ आश्वलायनापस्तंबादीनां तु चंद्रदर्शननिषेधो नास्तीति प्रतिपद्येवेष्टिः ॥ यत्र संधिदिने इष्टिस्तत्र सा प्रतिपद्येव समापनीया नतु पर्वणि ॥ पर्वणि यागसमाप्तौ पुनर्यागः कर्तव्यः ॥ एवमेव स्मार्ते पार्वणस्थालीपाकनिर्णयः ॥ केचित्तु स्मार्ते स्थालीपाकः प्रतिपद्येव समापनीय इति नियमो नास्ति ॥ पूर्वाह्णे एव स्थालीपाकं समाप्य संधेरूर्ध्वं प्रतिपदि ब्राह्मणभोजनमात्रं कार्यम् ॥ जयंतोपि संधिसन्निकृष्टे प्रातःकाल एव स्थालीपाकमाहेति विशेषमाहुः ॥ श्रौतेपि ब्राह्मणभोजनमात्रं प्रतिपदि कार्यम् ॥ अन्यत्तंत्रं पूर्वाह्ण एव समापनीयं न प्रतिपदपेक्षेति पुरुषार्थचिंतामणावुक्तम् ॥ कातीयानां पौर्णमासेष्टिनिर्णयः पूर्वोक्तः सर्वसाधारण एव न तत्र कश्चिद्विशेषः ॥ इति सिंध्वादिबहुग्रंथसंमतम् ॥ अन्ये तु पूर्वाह्णसंधौ संधिदिनेन्वाधानं परेह्णि याग इति पूर्णमासीविषये कातीयानां विशेषमाहुः ॥

अब पूर्णिमामें विशेष कहते हैं । कि संगव कालके पीछे त्रयोदश १३ आदि घडीसे लेकर आधे दिनसे पहिले संधि होनेपर सद्यःकाला पूर्णिमासी होतीहै, उसमें संधिके दिनही अन्वाधान और याग दोनों सद्यः करने योग्यहैं । यह पौर्णिमाको सद्यःकाल वैकल्पिक है यह कोई कहते हैं अमावस्याको तो सब जगह दोही दिन कालहै कदाचित् भी सद्यःकाल नहीं होता, पौर्णमासी और अमावस्याको अपराह्णमें संधि होनेपर प्रतिपदाके चौथे कालमें यज्ञ करनेका दोष नहीं । अमावस्याको अपराह्णमें संधि होनेपरभी प्रतिपदासे तीन मुहूर्त अधिक द्वितीयाके प्रवेशमें चन्द्रदर्शनका संभव होनेसे;और चंद्रदर्शनमें यागका निषेधहै इससे अमावस्यामेंही याग और चतुर्दशीमेंही अन्वाधान बौधायनोंके यहां होताहै । यदि अमावस्याके दिन सातघडी प्रतिपदा न होय तो चन्द्रदर्शन होजाय तोभी प्रतिपदामेंही इष्टि (याग) करनी और आश्वलायन आपस्तम्ब आदिकोंको चन्द्रदर्शनका निषेध नहीं है । इससे उनको प्रतिपदामेंही याग करना । जो सन्धिके दिन याग होय तो वह प्रतिपदामेंहीसमाप्त करना पर्वमें नहीं । यदि यागकी समाप्ति पर्वमें होजाय तो पुनः यागकरना, इसी प्रकार स्मार्त्तकर्ममेंभी पार्वण और स्थालीपाकका निर्णय समझना और कोई तो यह विशेष कहतेहैं कि, स्मार्तकर्ममें स्थालीपाककी समाप्ति प्रतिपदामेंही करनी यह नियम नहीं, किन्तु पूर्वाह्णमेंही स्थालीपाकको समाप्त करके सन्धिके पीछे प्रतिपदामेंही ब्राह्मणभोजन कराना । जयन्तनेभी संधिके समीपके प्रातःकालमेंही स्थालीपाक कहाहै । श्रौत (वेदोक्त) कर्ममेंभी ब्राह्मणभोजनमात्रकोही प्रतिपदामें करै अन्यकर्मके समुदायको पूर्वाह्णमेंही समाप्त करै । प्रतिपदाकी अपेक्षा न करै यह पुरुषार्थ—

चिन्तामणिमें कहाहै। कात्यायनोंके यहां तो पौर्णमासीकी इष्टिका निर्णय पूर्वोक्त सबके साधारणही है, उनके यहां कोई विशेष नहीं यह निर्णयसिन्धु आदि बहुतग्रंथोंको सम्मतहै। अन्यतो कात्यायनोंके यहांभी यह विशेष कहते हैं—कि, पूर्णिमासीको पूर्वाह्णमें संधि होनेपर संधिके दिनमें अन्वाधान और परले दिन याग करै, अब अमावस्यामें कात्यायनोंके विशेषको कहतेहैं॥

अथामावास्यायां कातीयाना विशेषः।

अमाविषये त्रेधा विभक्तदिनस्य प्रथमो भागः पूर्वाह्णः॥ द्वितीयो भागो मध्याह्नः॥ तृतीयो भागोऽपराह्णः॥ तत्र रात्रिसंधौ प्रतिपद्दिने चंद्रदर्शने सत्यपि परेषामिव कातीयानामपि संधिदिने पिंडपितृयज्ञोन्वाधानं च परदिने चेष्टिरिति निर्विवादम्॥ पूर्वाह्णे दिनद्वितीयभागाख्यमध्याह्ने च संधौ संधिपूर्वदिनेन्वाधानपिंडपितृयज्ञौ संधिदिने चेष्टिः॥ तदा चतुर्दशीदिनेऽमावास्याया दिनतृतीयभागाख्यापराह्णे यदि पूर्णव्याप्तिस्तर्ह्यमायुक्तेऽपराह्णे पिंडपितृयज्ञ इति न संदेहः॥ यदि तृतीयभागाख्यापराह्णांत्यभागेऽपराह्णैकदेशेऽमावास्याव्याप्तिस्तर्ह्यमावास्यायां प्राप्तायां पिंडपितृयज्ञो न चतुर्दश्यामित्येकः पक्षः॥ चतुर्दश्यंते भागे पिंडपितृयज्ञश्चन्द्रस्य परमक्षीणत्वादित्यपरः पक्षः॥

अमावस्याके विषयमें, तीन भाग किये—दिनका प्रथमभाग पूर्वाह्ण, द्वितीयभाग मध्याह्न और तीसरा भाग अपराह्ण होताहै, वहां रात्रिमें संधि होनेपर प्रतिपदाके दिन चन्द्रदर्शन होनेपरभी अन्य मतवालोंके समान कात्यायनोंके यहांभी सन्धिके दिनही पिण्डपितृयज्ञ और अन्वाधान होताहै और परले दिन याग होताहै इसमें कोई विवाद नहीं। और पूर्वाह्णमें और दिनके दूसरे भागरूप मध्याह्नमें संधि होय तो संधिसे पूर्वदिनमें अन्वाधान और पिंडपितृयज्ञ होते हैं। संधिके दिन इष्टि होतीहै तब चतुर्दशीके दिन, दिनके तीसरे भागरूप अपराह्णमें अमावस्याकी पूर्ण व्याप्ति होय तो अमावस्यासे युक्त अपराह्णमें पिंडपितृयज्ञ होताहै इसमें संदेह नहीं। यदि तीसरे भागरूप अपराह्णके अन्तभागमें वा अपराह्णके एकदेशमें अमावस्याकी व्याप्ति होय तो अमावस्याके आनेपर पिंडपितृयज्ञ करै चतुर्दशीमें न करै यह एक पक्षहै। चतुर्दशीके अन्तभागमें पिण्डपितृयज्ञको इसलिये करै कि अमावस्यामें चन्द्रमा परमक्षीण है, यह दूसरा पक्षहै॥

अथापराह्णसंधौ चत्वारः पक्षाः।

संधिदिने एव दिनतृतीयभागाख्यापराह्णेऽमायाः पूर्णव्याप्तिरिति प्रथमः पक्षः॥ यथा चतुर्दशी २९ अमा ३० प्रतिपत् २९ दिनमानं च त्रिंशत् ३०॥ अत्र संधिदिनेन्वाधानपितृयज्ञौ परदिने यागः॥ संधिपूर्वदिने एवोक्तापराह्णेऽमायाः पूर्णव्याप्तिरिति द्वितीयः पक्षः॥ यथा चतुर्दशी २० अमा २२ प्रतिपत् २४ दिनं ३० अत्र संधिदिनात्परदिने मुहूर्तत्रयात्मकप्रातःकाले प्रतिपत्पादत्रयावच्छिन्नयागकाललाभात्संधिदिनेन्वाधानपितृयागौ प्रतिपदि चेष्टिरिति कौस्तुभमतम्॥ त्रिमु-

हूर्ता द्वितीया चेत्प्रतिपद्यापराह्निकी ॥ अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनादिति वचनाच्चतुर्दश्यां पिंडपितृयज्ञोपवासौ संधिदिने चेष्टिरिति परमतम् ॥ अथापरं द्वितीयपक्षोदाहरणम् ॥ चतुर्दशी १८ अमा १८ प्रतिपत् १९ दिनं २७ अत्र प्रतिपद्दिने प्रातःपादत्रयावछिन्नयागकालाभावात्संधिदिने एव सर्वमते कातीयानामिष्टिः ॥ पूर्वदिने पिंडपितृयज्ञोपवासौ ॥ दिनद्वये साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तिरिति तृतीयः पक्षः ॥ यथा चतुर्दशी २९ अमा २९ प्रतिपत् २४ दिनमानं ३० इयं साम्येनापराह्णव्याप्तिः ॥ अत्र कौस्तुभमतपरमतोक्तरीत्या द्वेधा निर्णयः ॥ यथा वा चतुर्दशी २५ अमा २० प्रतिपत् १७ दिनं २७ इयमपि साम्येनैकदेशव्याप्तिः ॥ अत्र सर्वमते संधिदिने एव कातीयेष्टिः पूर्वदिने च पिंडपितृयज्ञोपवासौ ॥ ॥ अथ वैषम्येणैकदेशव्याप्तिः ॥ चतुर्दशी २५ अमा २३ प्रतिपत् २३ दिनं ३० अत्रापि पूर्वोक्तमतद्वयेन द्वेधा निर्णयो ज्ञेयः ॥ यथा वा चतुर्दशी २९ अमा २२ प्रतिपत् १८ दिनं ३० इयमपि वैषम्येणैकदेशव्याप्तिः ॥ अत्रापि सर्वमते संधिदिने कातीयेष्टिश्चतुर्दश्यामुपवासपिंडपितृयज्ञौ यथा वा चतुर्दशी २९ अमा २७ प्रतिपत् २९ दिनं ३० अत्र संधिदिनेन्वाधानयागौ प्रतिपदीष्टिः ॥ संधिदिने एवैकदेशव्याप्तिरिति चतुर्थः पक्षः ॥ यथा चतुर्दशी ३१ अमा २६ प्रतिपत् २३ दिनं ३० यथा वा चतुर्दशी २८ अमा २२ प्रतिपत् १७ दिनं २७ अत्रोभयत्रापि संधिदिने एव पिंडपितृयज्ञान्वाधाने यागस्तु परेह्नि प्रतिपदि ॥ एवंच कात्यायनमतेपि सर्वत्रोदाहरणे चन्द्रदर्शननिषेधप्रतिपालनं न संभवति ॥ किंतु कुत्रचिन्निषेधादरात्पूर्वत्र यागादिकं क्वचित्तु चंद्रदर्शनवत्येव दिने ॥ एवं पिंडपितृयज्ञोपीति ध्येयम् ॥ दर्शश्राद्धार्थममावास्यानिर्णयः सर्वसाधारणः पृथगेव वक्ष्यते ॥

अब अपराह्णसंधिमें चार पक्ष कहते हैं-सन्धिके दिनही दिनके तृतीय भागरूप अपराह्णमें अमावस्याकी पूर्ण व्याप्ति हो यह प्रथम पक्षहै, जैसे चतुर्दशी २९ अमावस्या ३० प्रतिपदा २९ घडी हो और दिनमान तीस ३० हो इसमें संधिके दिन अन्वाधान और पितृयज्ञको करै और परदिनमें याग करै और संधिके पूर्वदिनमेंही पूर्वोक्त अपराह्णमें अमावस्याकी पूर्ण व्याप्ति हो यह दूसरा पक्षहै । जैसे चौदश २० अमावस्या २२ प्रतिपदा २४ घडी होय और दिनमान ३० घडीहो यहां संधिके दिनसे परदिनमें तीन मुहूर्तरूप प्रातःकालके समय प्रतिपदाके तीन पादसे युक्त यागका काल मिलनेसे संधिके दिनही अन्वाधान और पिण्डपितृयज्ञ करै और प्रतिपदाको याग करै यह कौस्तुभका मतहै । और तीन मुहूर्त द्वितीया हो और प्रतिपदा अपराह्णमें होय तो, चतुर्दशीको अन्वाधान करै क्योंकि आगे चंद्रमाका दर्शन होनेवाला है, इस वचनसे चौदशको पिंडपिडतृयज्ञ और उपवास करै और संधिके दिन याग करै यह परका मतहै । अन्यभी दूसरे पक्षका उदाहरण देतेहैं-कि, चतुर्दशी १८ अमावस्या १८ प्रतिपदा १९ और दिनमान २७ घडी होय तो यहां प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल प्रतिपदाके तीनपा

दसे युक्त यज्ञके कालका अभावहै, इससे सधिके दिनही सबके मतमें कात्यायनोंका याग होताहै और पूर्वदिनमें पिण्डपितृयज्ञ और उपवास होतेहैं और दोनों दिन समानरूपसे वा विषमरूपसे अमावस्याकी व्याप्ति होय यह तीसरा पक्षहै । जैसे चौदश २५ अमावस्या २५ प्रतिपदा २४ और दिनमान ३० घडी हो यह समानरूपसे अपराह्णव्याप्ति है, इसमें कौस्तुभके मतमें और परके मतमें कही हुई पूर्वोक्तरीतिसे दोप्रकारका निर्णयहै । और जैसे चौदश २५ अमावस २० प्रतिपदा २७ और दिनमान २७ घडी है, यहभी समानरूपसे एकदेश व्याप्ति है इसमेंभी सबके मतमें संधिके दिनही कात्यायनोंका यज्ञ और पूर्वदिनमें पिंडपितृयज्ञ और उपावास होतेहैं और विषमरूपसे एकदेश व्याप्तिको कहतेहैं । जैसे चौदश २५ अमावस्या २३ प्रतिपदा २३ और दिनमान ३० घडीहो इसमेंभी पूर्वोक्त दो मतोंके अनुसार दोप्रकारका निर्णय जानना, अथवा जैसे चौदश २५ अमावस्या २२ प्रतिपदा १८ दिनमान ३० घडीहो यहभी विषमरूपसे एकदेशव्याप्ति है । इसमेंभी सबके मतमें संधिके दिन कात्यायनोंका यज्ञ और चतुर्दशीके दिन उपवास, पिण्डपितृयज्ञ होतेहैं । अथवा जैसे चौदश २५ अमावस्या २७ प्रतिपदा २९ दिनमान ३० घडीहो, इसमें संधिके दिन अन्वाधान और इष्टि होते हैं और प्रतिपदाको यज्ञ होता है, संधिके दिनही एकदेश व्याप्तिहो, यह चौथा पक्षहै, जैसे चतुर्दशी ३१ अमावस्या ३६ प्रतिपदा २३ दिनमान ३० घडीहो अथवा जैसे चतुदशी २८ अमावस्या २२ प्रतिपदा १७ दिनमान १७ घडीहो इन दोनों उदाहरणोंमें भी संधिके दिनही पिण्डपितृयज्ञ और अन्वाधान होते हैं और याग तो परले दिन प्रतिपदा में होताहै, इससे कात्यायनोंके मतमेंभी सब उदाहरणोंमें चन्द्रदर्शनके निषेधकी पालना नहीं होसकती किंतु, कहीं तो निषेधके आदरसे पहिले दिनही याग आदि होतेहैं, और कहीं तो चन्द्रदर्शनवाले दिनही होतेहैं, ऐसेही पिंडपितृयज्ञकोभी समझना यह सब पूर्वोक्त ध्यान करनेयोग्यहै दर्शश्राद्धके लिये अमावस्याका सर्वसाधारण निर्णय पृथक्ही कहेंगे ॥

अथ सामगानामिष्टेर्निर्णयः ।

तत्र पौर्णमासी सर्वसाधारणा पूर्वोक्तैव ॥ अमावास्यायां तु रात्रिसंधौ प्रतिपद्येव चंद्रदर्शनेपि यागः ॥ अपराह्णसंधौ तु प्रातः षड्घटिकात्मकप्रतिपदाद्यपादत्रयरूपयागकालालाभे प्रतिपदि चंद्रदर्शनेपीष्टिः संधिदिने चोपवासपितृयज्ञौ ॥ उक्तयागकालालाभे संधिदिने यागः ॥ पूर्वदिने चतुर्दश्यां पितृयज्ञोपवासौ ॥ एवं च सामगैरपि चंद्रदर्शननिषेधः कात्यायनवदेव यथासंभवं पालनीयः ॥ ॥ इति सामगनिर्णयः ॥ ॥ इति यागकालनिर्णयोद्देशोद्वाविंशः ॥ २२ ॥

अब सामगोंके इष्टिनिर्णयको कहतेहैं । उसमें पौर्णमासी सबकी साधारण जो पूर्व कही है वहही लेनी, अमावस्याको तो रात्रिमें सन्धि होनेपर चन्द्रदर्शन होय तो भी प्रतिपदामेंही याग होताहै, अपराह्णमें सन्धि होय तो प्रातःकाल छः घडीरूपमें प्रतिपदाके आदिके तीन पादरूप यज्ञका काल मिलै तो प्रतिपदामें चन्द्रदर्शन होनेपरभी याग होताहै, और सन्धिके दिन उपवास पितृयज्ञ होतेहैं, पूर्वोक्त यज्ञका काल न मिलै तो सन्धिके दिन याग और पहिले दिन चतुर्दशीमें पितृयज्ञ उपवास होतेहैं । इसीप्रकार सामगभी चन्द्रदर्शनके

निषेधकी कात्यायनोंके समान यथासंभव पालना करैं (मानें) यह सामगोंका निर्णय समाप्त हुआ ॥ इति यागकालनिर्णयोद्देशो द्वाविंशः ॥ २२ ॥

अथ पिंडपितृयज्ञकालः ।

तत्राश्वलायनानां यस्मिन्नहोरात्रे अमावास्याप्रतिपदोः संधिस्तद्दिनापराह्णे पंचधा विभक्तदिनचतुर्थभागरूपे पिंडपितृयज्ञः ॥ स चापराह्णसंधावन्वाधानादिने भवति ॥ मध्याह्ने पूर्वाह्णे वा संधौ यागदिने यागोत्तरमपराह्णे भवति ॥ यदाहोरात्रसंधौ तिथिसंधिस्तदान्वाधानादिने एव पिंडपितृयज्ञः ॥ एवमापस्तंबहिरण्यकेशिमतानुसारिणामपि संधिदिने एव पितृयज्ञः ॥ स चापराह्णेधिवृक्षसूर्ये वा कार्यः ॥ अपराह्णश्च पंचधा विभक्तदिनचतुर्थभागो नवधा विभक्तदिनसप्तमभागो वा ॥ सांख्यायनकात्यायनसामगानामन्वाधानादिने एव पिंडपितृयज्ञः पूर्वमेव उक्तः ॥ स च त्रेधा विभक्तदिनतृतीयभागरूपेऽपराह्णे कार्यः ॥ गृह्याग्निमतां बह्वृचानां दर्शश्राद्धपिंडपितृयज्ञयोरेकस्मिन् दिने प्राप्तौ व्यतिषंगेणानुष्ठानम् ॥ व्यतिषंगोनामोभयोः सहप्रयोगः ॥ खंडपर्वणि तु पूर्वेद्युः केवलदर्शश्राद्धमुत्तरेह्नि केवलः पिंडपितृयज्ञः ॥ श्रौताग्निमतां तु केवलपिंडपितृयज्ञ एव दक्षिणाग्नौ कार्यो न व्यतिषंगेण ॥ श्रौताग्निमतां संपूर्णे दर्शे इत्थं क्रमः ॥ आदावन्वाधानं ततो वैश्वदेवस्ततः पिंडपितृयज्ञस्ततो दर्शश्राद्धमिति ॥ अस्मिन्नेव काले जीवत्पितृकेण साग्निकेन होमांते वा पितुः पित्रादित्रयोद्देशेन पिंडसहितोवाऽपिंडपितृयज्ञः कार्यः ॥ यद्वा पिंडपितृयज्ञो नैवारब्धव्यः ॥ इष्टिलोपे पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तम् ॥ इष्टिद्वयलोपेऽर्धकृच्छ्रम् ॥ इष्टित्रयलोपेग्निनाशात्पुनराधानम् ॥ पिंडपितृयज्ञलोपे वैश्वानरेष्टिः प्रायश्चित्तम् ॥ इष्टिस्थाने सप्तहोतारं होष्यामीति संकल्प्य तन्मंत्रेण चतुर्गृहीताज्येन पूर्णाहुतिर्वा कार्या ॥ इति पिंडपितृयज्ञोद्देशस्त्र० ॥ २३ ॥

अब पिंडपितृयज्ञके कालको कहतेहैं–उसमें आश्वलायनोंके मतमें जिस अहोरात्रमें अमावस्या प्रतिपदाकी सन्धि हो उस दिनका जो पांचभाग दिनके करनेसे चौथा भागरूप अपराह्ण उसमें पिंडपितृयज्ञ होताहै और वह अपराह्ण सन्धिमें अन्वाधानके दिन होताहै । मध्याह्नमें वा पूर्वाह्णमें सन्धि होयतो यागके दिन याग किये पीछे अपराह्णमें होताहै,जब अहोरात्रकी सन्धिमें तिथिकी सन्धिहो तब तो अन्वाधानके दिनही पिंडपितृयज्ञ होताहै । इसीप्रकार आपस्तंब और हिरण्यकेशीयमत के जो अनुसारीहैं उनके यहांभी सन्धिके दिनही पितृयज्ञ होताहै और वह अपराह्णमें वा जब सूर्य वृक्षकी शिखरपर हो तब करना, अपराह्ण तो पांच भाग किये दिनका चौथाभाग वा नौभाग किये दिनका सातवां भाग होताहै, सांख्यायन, कात्यायन, सामगोंके यहांतो अन्वाधानकेही दिनमें पिंडपितृयज्ञ पहिलेही कहआये और वह तीन भाग किये दिनके तीसरा भागरूप जो अपराह्ण उसमें करना, गृह्य अग्निहोत्री जो बह्वृचहैं उनके दर्शश्राद्ध और पितृयज्ञ एक दिनमें प्राप्त होंयँ तो व्यतिषंगसे करै, दोनोंको संग करनेको व्यतिषंग कहते हैं ।

खण्डपर्वमें तो पहिले दिन केवल दर्शश्राद्ध और अगले दिन पिंडपितृयज्ञ करै, श्रौत अग्निहोत्रियोंके यहां तो केवल पिंडपितृयज्ञही दक्षिणाग्निमें करना व्यतिषंगसे न करना, श्रौताग्निवालोंके यहां सम्पूर्ण दर्शोंमें कर्मोंका इसप्रकार क्रमहै—कि, प्रथम अन्वाधान, फिर वैश्वदेव, फिर पिंडपितृयज्ञ, फिर दर्शश्राद्ध करै, इसीकालमें जो जीवत्पितृक साग्निकहै वह होमके अन्तमें वा पितामह आदि तीनके उद्देशसे वा पिंडसहित पिंडपितृयज्ञको करै, अथवा पिंडपितृयज्ञका प्रारम्भ न करै । इष्टिके लोपमें पादकृच्छ्र प्रायश्चित्तहै, दो इष्टियोंके लोपमें अर्द्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त है, तीन इष्टियोंके लोपमें अग्निका नाश होनेसे पुनः आधान करै, पिंडपितृयज्ञके लोपमें वैश्वानर इष्टि प्रायश्चित्तहै । इष्टि (यज्ञ) के स्थानमें सप्त होता (अग्नि) को होम करताहूं यह संकल्प करके तिसके मन्त्रसे चारबार ग्रहण किये घीसे वा पूर्णाहुतिको करै ॥ इति पिंडपितृयज्ञोद्देशस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

अथ श्राद्धेऽमावास्या निर्णीयते ।

पंचधा विभक्तदिनचतुर्थभागाख्याऽपराह्णव्यापिन्यमावास्या दर्शश्राद्धे ग्राह्या ॥ पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णे कात्स्न्र्येनैकदेशेन वा व्यापित्वे सैव ग्राह्या ॥ उभयदिनेप्यपराह्णे वैषम्येणैकदेशव्यापित्वे याधिकव्यापिनी सा ग्राह्या ॥ दिनद्वये साम्येनकेदशव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा ॥ तिथिवृद्धौ तिथिसाम्ये च परा ॥ तत्र समव्याप्तौ तिथिवृद्धिक्षयसाम्योदाहरणानि ॥ चतुर्दशी १९ अमा २३ दिनं ३० अत्र दिनद्वयेपि समा पंचघटिकैकदेशव्याप्तिश्चतुर्दश्यपेक्षया चतुर्घटिकाभिरमाया वृद्धिसत्त्वादुत्तरा ग्राह्या ॥ तथा चतुर्दशी २३ अमा १९ अत्रैका घटिका समाव्याप्तिर्घटिकाचतुष्टयेन तिथिक्षयात्पूर्वा ग्राह्या ॥ अथ चतुर्दशी २१ अमा २१ अत्र घटीत्रयेण दिनद्वयेंशतः समाव्याप्तिस्तिथेस्तु वृद्धिक्षयाभावेन समत्वात्परा ग्राह्या ॥ दिनद्वये पूर्णापराह्णव्याप्तौ तिथिवृद्धित्वात्परा ग्राह्या ॥ यदा दिनद्वयेप्यपराह्णस्पर्शाभावस्तदा गृह्याग्निमद्भिः श्रौताग्निमद्भिश्च सिनीवालीसंज्ञिका चतुर्दशीमिश्रा पूर्वा ग्राह्या ॥ निरग्निकैः स्त्रीशूद्रादिभिश्च कुहूसंज्ञिका प्रतिपन्मिश्रा परा ग्राह्येति माधवाचार्यसंमतो दर्शनिर्णयः प्रायः सर्वत्र शिष्टैरादियते पुरुषार्थचिंतामणौ तु बह्वृचैस्तैत्तिरीयैश्च साग्निकैरपराह्णव्याप्त्यसत्त्वेपीष्टिदिनात्पूर्वदिने एव दर्शश्राद्धं कार्यम् ॥ तथा च दिनद्वये कात्स्न्र्येनापराह्णव्याप्तौ परत्रैव दर्शः एकदेशेनापराह्णव्याप्तौ प्रतिपद्वृद्ध्या प्रतिपदीष्टावुत्तरत्रैव दर्शः ॥ द्वितीयदिने एवापराह्णव्याप्तौ तु यदि प्रतिपत्क्षयवशाद्दर्शदिन एवेष्टिप्राप्तिस्तदा बह्वृचानां सिनीवाली तैत्तिरीयाणां कुहूर्ग्राह्या ॥ सामगानां विकल्पेन द्वयम् ॥ यदा पूर्वदिनेपराह्णेऽधिका व्याप्तिः परदिने स्वल्पा तदा सामगानां पूर्वा तैत्तिरीयाणामुत्तरा ॥ उभयत्रापराह्णस्पर्शाभावेपि सामगानां पूर्वा तैत्तिरीयाणां परेत्याद्युक्तम् ॥ दर्शे दर्शश्राद्धवर्षश्राद्धयोर्दर्शमासिकयोर्दर्शश्राद्धोदकुंभश्राद्धयोश्च संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धद्वयं कार्यम् ॥ तत्रादौ मासिकाब्दिकादिश्राद्धं कृत्वा पाकांतरेण दर्शश्राद्धं कार्यम् ॥ वैश्वदेव आब्दिका-

दिश्राद्धशेषेण पृथक्पाकेन वा दर्शश्राद्धात्प्राग् भवति ॥ आहिताग्निस्तु वैश्वदेवं पिंडपितृयज्ञं च कृत्वाब्दिकं कुर्यात् ॥ दर्शश्राद्धमनुपनीतविधुरप्रवासस्थैरपि कार्यम् ॥ अमाश्राद्धातिक्रमे न्यूषुवाच'म्' इति ऋचं शतवारं जपेत् ॥ ॥ इति दर्शनिर्णयोद्देशश्च० ॥ २४ ॥

अब श्राद्धमें अमावस्याके निर्णयको कहते हैं—पांच प्रकारसे विभाग किये दिनका चौथाभागरूप जो अपराह्ण उसमें व्यापक अमावस्याही दर्शश्राद्धमें ग्रहण करनी, पहिलेदिनही वा परलेदिनही अपराह्णमें सम्पूर्णरूपसे वा एकदेशसे व्याप्ति होय तो वही लेनी, दोनों दिन भी अपराह्णमें विषमरूपसे एक देशमें व्याप्ति होय तो जिसमें अधिक व्याप्तिहो वह लेनी, दोनोंदिन समानरूपसे एकदेशमें व्याप्ति होय तो तिथिके क्षयमें पहिली और तिथिकी वृद्धिमें और तिथिके साम्यमें परली लेनी, उसमें समान व्याप्तिमें तिथिकी वृद्धि और क्षय और साम्यके उदाहरण दिखाते हैं कि, चतुर्दशी १९ अमावस्या २३ दिनमान ३० घडीहो इसमें दोनोंभी दिनोंमें पांच घडीरूप समान एकदेश व्याप्तिहै चतुर्दशीकी अपेक्षासे चारघडी अमावस्याकी वृद्धि होनेसे परली ग्रहण करनी । तैसेही चतुर्दशी २३ अमावस्या १९ घडीहो इसमें एक घडी समान व्याप्तिहै चारघडी तिथिका क्षय होनेसे पहिली ग्रहण करनी और यदि चतुर्दशी २१ अमावस्या २१ घडीहो, इसमें दोनों दिन तीनघडी एकदेशमें समान व्याप्तिहै और तिथिकी वृद्धि वा क्षय नहीं है इससे सम होनेसे परली ग्रहण करनी । दोनोंदिन पूर्ण अपराह्ण व्याप्ति होय तो तिथिकी वृद्धि होनेसे परली ग्रहण करनी, जब दोनों दिनभी अपराह्णमें स्पर्शका अभाव हो तब गृह्यअग्निहोत्री और श्रौतअग्निहोत्री दोनों सिनीवाली (जिसमें चन्द्रदर्शनहो) नामकी चतुर्दशीसे मिश्रित पहिलीको ग्रहण करै और जो निरग्निक हैं वा स्त्रीशूद्रआदि हैं वे कुहू नामकी परलीको ग्रहण करैं यह माधवाचार्यका दर्शके निर्णयका संमत प्रायः शिष्टजन सर्वत्र आदर करते हैं । पुरुषार्थचिन्तामणिमें तो बह्वृच और तैत्तिरीय जो अग्निहोत्री हैं वे अपराह्णमें व्याप्तिके न होनेपरभी इष्टिके दिनसे पूर्वदिनमेंही दर्शश्राद्धको करैं, तिससे दोनों दिन सम्पूर्णरूपसे अपराह्णमें व्याप्ति होय तो परले दिनमेंही दर्श होताहै, एक देशमें अपराह्ण व्याप्ति होय तो प्रतिपदाकी वृद्धिसे प्रतिपदामें इष्टि होनेपर परलेदिनही दर्श होताहै । दूसरे दिनही अपराह्णमें व्याप्ति होय तो और यदि प्रतिपदाका क्षय होनेसे दर्शके दिनही इष्टि होनेकी प्राप्ति होय तो बह्वृचोंके यहां सिनीवाली और तैत्तिरीयोंके यहां कुहू ग्रहण करनी, और सामगोंके यहां विकल्पसे दोनों ग्रहण करनी, जब पूर्वदिनमें अपराह्णमें अधिक व्याप्तिहो परले दिन अल्पहो तब सामगोंके यहां पहिली तैत्तिरीयोंके यहां पिछली होती है । दोनोंदिन अपराह्णमें स्पर्शके अभावमेंभी सामगोंके यहां पहिली, तैत्तिरियोंके यहां परली होती है इत्यादि पुरुषार्थचिंतामणिमें कहा है, दर्शमें दर्शश्राद्ध और वर्षश्राद्धकी और दर्शश्राद्ध और उदकुंभश्राद्धकी एक बार प्राप्ति होय तो देवताके भेदसे श्राद्ध करै । तिनमें पहिले मासिक वार्षिक आदि श्राद्धको करके दूसरे पाकसे दर्शश्राद्धको करै, वैश्वदेव तो वार्षिक आदिश्राद्धके शेष अन्नसे वा पृथक् पाकसे दर्शश्राद्धसे पहिले होताहै, आहिताग्नि तो वैश्वदेव और पिंडपितृयज्ञको करके वार्षिकको करै, दर्शश्राद्धको अनुपनीत, विधुर और प्रवासमें स्थितभी करैं, अमावस्याके श्राद्धका अवलंघन होजाय तो ' न्यूषुवाचम्० ' इस ऋचाको सौबार जपै ॥ इति दर्शश्राद्धनिर्णयोद्देशश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥

अथेष्टिस्थालीपाके प्रथमारंभविचारः ।

इष्टिस्थालीपाकौ पौर्णमास्यामारब्धव्यौ न तु दर्शे ॥ आधानगृहप्रवेशनीयहोमानंतरमेव पौर्णमास्यां यदि दर्शपौर्णमासारंभः क्रियते तदा मलमासपौषमासशुक्रास्तादिदोषो नास्ति ॥ तत्रातिक्रमे तु शुद्धमासादिप्रतीक्षेत्येके ॥ सर्वथा शुद्धकाले पर्वारंभ इत्यपरे ॥ ॥ इतीष्ट्यादिप्रारंभनिर्णयोद्देशः पं० ॥ २५ ॥

इष्टि और स्थालीपाकका पौर्णमासीमें प्रारम्भ करै दर्शमें न करै, आधान तो गृहप्रवेशके होमके पीछेही पौर्णमासीमें होताहै । यदि दर्शमें पौर्णमास यज्ञका आरम्भ कियाजाय तो तब मलमास, पौषमास, शुक्रका अस्त आदि इनका दोष नहीं है । उसमें अवलंघन होजाय तो शुद्धमास आदिकी प्रतीक्षा करै यह कोईक कहतेहैं, सर्वथा शुद्धकालमें पर्वका आरम्भ होताहै यह अपर कहतेहैं ॥ इति–इष्ट्यादिप्रारम्भनिर्णयोद्देशः पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

अथ विकृतिकालः ।

ता विकृतयस्त्रिविधाः ॥ नित्या आग्रयणचातुर्मास्याद्याः ॥ नैमित्तिक्यो जातेष्ट्यादयः ॥ काम्याः सौर्यादयः ॥ एताः पुरुषार्थाः ॥ एवं क्रत्वंगभूता अपि द्विविधाः नित्यानैमित्तिकाश्च ॥ तत्र विकृतिषु सद्यस्कालत्वद्व्यहकालत्वयोर्विकल्पः ॥ एवं पर्वणि शुक्लपक्षगतदेवनक्षत्रेषु वा कर्तव्या इति विकल्पः ॥ तत्र पर्वणि करणपक्षेऽपराह्णादिसंधौ संधिदिने सद्यस्कालां द्व्यहकालां वा विकृतिं कृत्वा प्रकृतेरन्वाधानम् ॥ मध्याह्ने पूर्वाह्णे वा संधौ संधिदिने प्रकृतिं समाप्य सद्यस्काल एव विकृतिः कार्या ॥ कृत्तिकादीनि विशाखांतानि चतुर्दश नक्षत्राणि देवनक्षत्राणीत्युच्यन्ते ॥ आग्रयणे विशेषो द्वितीयपरिच्छेदे वक्ष्यते ॥ अन्वारंभणीयेष्टिश्चतुर्दश्यां कार्या ॥ ॥ इति विकृतिसामान्यनिर्णयोद्देशः ष० ॥ २६ ॥

अब विकृतिनामके यज्ञोंको कहतेहैं । वे तीनप्रकारके हैं आग्रयण, चातुर्मास्य आदि नित्य १ और जातेष्टिआदि नैमित्तिक २ सौर्यआदि काम्य ३ ये तीनों पुरुषार्थरूपहैं, ऐसेही क्रतुके अङ्गरूपभी दोप्रकारके हैं नित्य और नैमित्तिक उन विकृतियोंमें सद्यःकाल करने और दोदिनमें करनेके विषयमें विकल्पहै । ऐसेही पर्वमें करने वा शुक्लपक्षमें, वर्त्तमान देवनक्षत्रोंमें करने यहभी विकल्प है, उनमें जब पर्वमें करनेका पक्षहै तब अपराह्ण आदि सन्धिमें सन्धिके दिन सद्यःकालमें वा दोदिनके कालमें विकृतिको करके प्रकृतिका अन्वाधान करै, मध्याह्नमें वा पूर्वाह्णमें सन्धि होय तो सन्धिके दिन प्रकृतिको समाप्त करके सद्यःकालमेंही विकृतिनामके यज्ञको करै, कृत्तिकासे लेकर विशाखापर्यंत चौदह नक्षत्र देवनक्षत्र कहातेहैं । आग्रयणमें विशेष दूसरे परिच्छेदमें कहेंगे, अन्वारम्भणीय नामकी इष्टि, चतुर्दशीको करनी ॥ इति विकृतिसामान्यनिर्णयोद्देशः षड्विंशः ॥ २६ ॥

अथ पशुयागकालः ।

पशुयागस्तु वर्षर्तौ श्रावण्यादिचतुर्णां पर्वणामन्यतमे पर्वणि दक्षिणायनदिने

उत्तरायणदिने वा कार्यः ॥ तत्र खंडपर्वणि विकृतिसामान्योक्तपर्वनिर्णयः ॥ ॥ इति पशुयागोद्देशः स० ॥ २७ ॥

पशुयाग तो वर्षाऋतुमें श्रावणी आदि चार पर्वोंके मध्यमें कोईसे पर्वमें वा दक्षिणायनके दिन वा उत्तरायणके दिन करना उसमें खण्डपर्व होयतो विकृतिसामान्यमें कहेहुये पर्वके समान निर्णय समझना ॥ इति पशुयागोद्देशः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

अथ चातुर्मास्यकालः ।

तत्प्रयोगे चत्वारः पक्षाः ॥ फाल्गुन्यां चैत्र्यां वा पौर्णमास्यां वैश्वदेवपर्व कृत्वा चतुर्षुचतुर्षु मासेष्वाषाढ्यादिष्वेकैकं पर्वेत्येवं यावज्जीवमनुष्ठानमिति यावज्जीवपक्षः ॥ उक्तरीत्या संवत्सरपर्यंतमनुष्ठाय सवनेष्ट्या पशुयागेन वा सोमयागेन वा समापनं सांवत्सरः पक्षः ॥ प्रथमेहनि वैश्वदेवपर्व ॥ चतुर्थदिने वरुणप्रघासपर्व ॥ अष्टम-नवमयोः साकमेधपर्व ॥ द्वादशे शुनासीरीयपर्वेति द्वादशाहपक्षः ॥ पंचभिर्दिनैः समाप्तौ यथाप्रयोगपक्षः ॥ द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोरुदगयने शुक्लपक्षे देवनक्षत्रे-ष्वारभ्य शुक्लपक्ष एव समाप्तिरिति बहवः ॥ कृष्णपक्षे वा समाप्तिरिति केचित् ॥ द्वादशाहपंचाहपक्षयोरपि सवनेष्ट्यादिना समापने कृते सकृत्करणम् ॥ तदभावे प्रतिवत्सरमनुष्ठानम् ॥ क्वचिदैकाहिकप्रयोगपक्षोप्युक्तः ॥ स च चैत्र्यादिषु चतसृषु पौर्णमासीष्वेकस्यां कस्यांचिद्भवति ॥ क्वचित्तु सप्ताहपक्षः ॥ स यथा ॥ द्व्यहे वैश्वदेवपर्व ॥ तृतीयदिने वरुणप्रघासः ॥ चतुर्थे गृहमेधीया ॥ पंचमे महाहवीं-षि ॥ षष्ठे पितृयज्ञादिसाकमेधपर्वशेषः ॥ सप्तमे शुनासीरीयपर्वेति ॥ अत्र शुक्ल-पक्षादिः पंचाहपक्षोक्तः कालः ॥ ॥ इति चातुर्मास्यकालनिर्णयोद्देशोऽष्टा० ॥२८॥

अब चातुर्मास्ययज्ञके कालको कहतेहैं—उसके प्रयोग (करने) में चार पक्षहैं, फागुन वा चैत्रकी पौर्णमासीको वैश्वदेवपर्वको करके चार चतुर्मासोंमें जो चार आषाढकी पूर्णिमा आदिहैं उनमें एक २ पर्व करै, इसप्रकार जीवनपर्यंत करै, यहतो यावज्जीव पक्षहै । उक्तरीतिसे वर्षपर्यंत करके सवनयज्ञ करके वा पशुयज्ञसे वा सोमयज्ञसे समाप्ति करै, यह सांवत्सर पक्षहै । पहिले दिन वैश्वदेवपर्व करै, चौथे दिन वरुणप्रघास पर्वकरै, आठमें और नवमे दिन साक-मेध पर्व करै, बारहमें दिन शुनासीरीय पर्वकरै, इसप्रकार द्वादशाह पक्षहै। पांच दिनोंसे समाप्ति होनेपर यथाप्रयोग पक्षहै। द्वादशाह और यथाप्रयोग इन दोनों पक्षोंमें उत्तरायणके शुक्लपक्ष, देवनक्षत्रोंमें प्रारम्भ करके शुक्लपक्षमेंही समाप्ति करै यहतो बहुतसे कहतेहैं वा कृष्णपक्षमें समाप्ति करै यह कोई २ कहते हैं, द्वादशाह और पंचाहपक्षोंमें भी सवनेष्टि करके समाप्ति किये पीछे एकबार करनाहै वह न होय तो प्रतिवर्ष करै, कहीं तो ऐकाह्निक प्रयोगपक्ष (एकदिन करना) भी कहाहै वहतो चैत्रीआदि चार पौर्णमासियोंमें किसी एक पौर्णमासीमें होताहै, कहींतो सप्ताह ७ पक्षभी कहाहै । वह ऐसेहैं कि दोदिनमें वैश्वदेवपर्व, तीसरेदिन वरु-णप्रघास, चौथेदिन गृहमेधीय, पांचमें दिन महाहवींषि, छठेदिन पितृयज्ञआदि साकमेधपर्वका शेष करै, सातमें दिन शुनासीरीयपर्वको करै, इसमें शुक्लपक्षआदि पंचाहपक्षमें कहाहुआही कालहै ॥ इति चातुर्मास्यकालनिर्णयोद्देशोऽष्टाविंशः ॥ २८ ॥

अथ काम्यनैमित्तिकादीष्टिकालः ।

काम्येष्टीनां विकृतिसामान्यनिर्णयानुसारेण पर्वण्यनुष्ठानं शुक्लपक्षस्थदेवनक्षत्रे वा ॥ जातेष्टिस्तु पत्न्या विंशतिरात्र्यात्मककर्मान्यधिकाराख्यजननाशौचनिवृत्तौ सत्यां पर्वणि कार्या ॥ ग्रहदाहेष्ट्यादिनैमित्तिकेष्टीनां निमित्तानंतरमनुष्ठाने पर्वाद्यपेक्षा नास्ति तदसंभवे पर्वापेक्षा ॥ क्रत्वर्थानां नित्यानां क्रतुना सहैवानुष्ठानं न तत्र पृथक्कालापेक्षा ॥ हविर्दोषोद्देशादिनैमित्तिकक्रत्वर्थेष्टयस्तु स्विष्टकृदुत्तरं समिष्टयजुषः प्राक् निमित्तस्मरणे तदानीमेव तदीयतंत्रोपजीवनेन निर्वापप्रभृति कार्याः ॥ तदनंतरस्मरणे तत्प्रयोगं समाप्य पुनरन्वाधानादिविधिना कार्याः ॥ ॥ इति काम्यनैमित्तिकादीष्टीनां निर्णयोद्देश ऊन० ॥ २९ ॥

काम्य इष्टियोंको विकृतिसामान्यानिर्णयके समान रीतिसे पर्वमें करै वा शुक्लपक्षके देवनक्षत्र में करै, जातेष्टिको तो पत्नीको बीस रात्रिरूप कर्मका अनाधिकार निवृत्त होकर अशौचकी निवृत्ति होनेपर पर्वमें करै, ग्रहदाहके निमित्तसे जो नैमित्तिक इष्टिहैं उनको निमित्तके अनंतर करै तो पर्वआदिकी अपेक्षा उनमें नहींहै, उसमें न होसकै तो पर्वकी अपेक्षा है। क्रत्वर्थनामके जो नित्यकर्महैं उनको क्रतुके संगही करै,उसमें पृथक् कालकी अपेक्षा नहीं है। हविके दोषआदि उद्देशसे जो नैमित्तिक क्रत्वर्थ इष्टिहैं उनको स्विष्टकृतके पीछे और समिष्टयजुसे पहिले निमित्तका स्मरण होनेपर उसीसमय उनकेही तन्त्रोपजीवनसे निर्वाप आदि करने, उसके अनन्तर निमित्तका स्मरण होयतो उनके प्रयोगको समाप्त करके पुनः (दुबारा) अन्वाधान आदिकी विधिसे करने ॥ इति काम्यनैमित्तिकादीष्टीनां निर्णयोद्देश ऊनत्रिंशः ॥ २९ ॥

अथाधानकालो नक्षत्राणि च ।

आधानं तु पर्वणि नक्षत्रे चोक्तम् ॥ तत्र संकल्पप्रभृतिपूर्णाहुतिपर्यंतप्रयोगपर्याप्तं पव ग्राह्यम् ॥ तदसंभवे गार्हपत्याधानाद्याहवनीयाधानपर्यंतं विद्यमानं ग्राह्यम् ॥ एवं नक्षत्रस्यापि निर्णयः ॥ दिनद्वये कर्मकालव्याप्त पर्वसत्त्वे यत्रोक्तनक्षत्रयोगस्तद्ग्राह्यम् ॥ वसंतर्तुपर्वोक्तनक्षत्रेत्येतत्त्रितयसंनिपाते प्रशस्ततमम् ॥ ऋत्वभावे मध्यमम् ॥ केवले पर्वणि नक्षत्रे वाधमम् ॥ नक्षत्राणि तु कृत्तिकारोहिणीविशाखापूर्वाफाल्गुन्युत्तराफाल्गुनीमृगोत्तराभाद्रपदेति सप्ताश्वलायनसूत्रोक्तानि ॥ कृत्तिकारोहिणीत्र्युत्तरामृगपुनर्वसुपुष्यपूर्वाफाल्गुनीपूर्वाषाढाहस्तचित्राविशाखानुराधाश्रवणज्येष्ठारेवतीति सूत्रांतरोक्तानि॥सोमपूर्वाधाने तु 'नर्तुंपृच्छेन्न नक्षत्रम्' इति वचनात्सोमकालानुरोधेनैवाधानं न तत्र पृथक्कालविचारः॥ ॥ इत्याधानकालोद्देशस्त्रि० ॥ ३० ॥

आधान तो पर्वमें वा नक्षत्रमें कहाहै उसमें संकल्प आदि पूर्णाहुतिपर्यंत प्रयोगके करने योग्य पर्वको ग्रहण करना (मानना) वह न मिलसकै तो गार्हपत्यके आधानआदि आहवनीयके आधानपर्यंत जो विद्यमानहो वह पर्व लेना, इसीप्रकार नक्षत्रकाभी निर्णय समझना। दोनों दिन कर्मकालमें व्याप्त पर्व होय तो जिसमें उक्त नक्षत्रका योगहो वह

ग्रहण करना वसन्तऋतु, पर्व, उक्त नक्षत्र इन तीनोंका इकट्ठा योग अत्यन्त श्रेष्ठहै। केवल पर्व वा नक्षत्रमें अधम है । नक्षत्र तो कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिर, उत्तराभाद्रपदा ये सात आश्वलायन सूत्रमें कहेहुयेहैं । कृत्तिका, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिर,पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, हस्त, चित्रा,विशाखा,अनुराधा, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती ये अन्य सूत्रोंमें कहे हैं। सोमयज्ञके प्रथम आधानमें तो न ऋतुको पूछे न नक्षत्रको इस वचनसे सोमकालके अनुरोधसे ही आधान करे उसमें पृथक् कालका विचार नहीं है ॥ इत्याधानकालोद्देशस्त्रिंशः ॥ ३० ॥

अथ ग्रहणनिर्णयः ।

चंद्रसूर्यग्रहणं यावच्चाक्षुषदर्शनयोग्यं तावत्पुण्यकालः ॥ अतो ग्रस्तास्तस्थलेऽस्तोत्तरं द्वीपांतरे ग्रहणसत्त्वेपि दर्शनयोग्यत्वाभावान्न पुण्यकालः ॥ एवं ग्रस्तोदये उदयात्पूर्वं न तु पुण्यकालः ॥ मेघादिप्रतिबंधेन चाक्षुषदर्शनासंभवे शास्त्रादिना स्पर्शमोक्षकालौ ज्ञात्वा स्नानदानाद्याचरेत् ॥ रविवारे सूर्यग्रहश्चंद्रवारे चंद्रग्रहश्चूडामणिसंज्ञस्तत्र दानादिकमनंतफलम् ॥ ग्रहस्पर्शकाले स्नानं मध्ये होमः सुरार्चनं श्राद्धं च मुच्यमाने दानं मुक्ते स्नानमिति क्रमः ॥ तत्र स्नानजलेषु तारतम्यम् ॥ "शीतमुष्णोदकात्पुण्यमपारक्यं परोदकात ॥ भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ॥ ततोपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् ॥ ततस्तीर्थनदी गंगा पुण्यात्पुण्यस्ततोम्बुधिः" इति ॥ ग्रहणे स्नानं च सचैलत्वं मुक्तिस्नानपरमिति केचित् ॥ मुक्तिस्नानाभावे सूतकित्वानपगमः ॥ ग्रहणे स्नानममंत्रकम् ॥ सुवासिनीभिस्त्रीभिराशिरस्नानं कार्यम् ॥ शिष्टस्त्रियस्तु ग्रहणेषु शिरःस्नानं कुर्वंति ॥ जाताशौचे मृताशौचे च ग्रहणनिमित्तं स्नानदानश्राद्धादि कार्यमेव ॥ "स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ॥ पात्रांतरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत्" ॥ त्रिरात्रमेकरात्रं वा समुपोष्य ग्रहणे स्नानदानाद्यनुष्ठाने महाफलम् ॥ एकरात्रपक्षे ग्रहणदिनात्पूर्वदिने उपवास इति केचित् ॥ ग्रहणसंबंधाहोरात्र उपवास इत्यपरे ॥ पुत्रवद्गृहिणो ग्रहणसंक्रांत्यादौ नोपवासः ॥ पुत्रवत्पदेन कन्यावानपि ग्राह्य इति केचित् ॥ ग्रहणे देवपितृतर्पणं कार्यमिति केचित्॥ "सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने॥" तेन ग्रहणकाले स्पृष्टवस्त्रादेः क्षालनादिना शुद्धिः कार्या ॥ अत्र गोभूहिरण्यधान्यादिदानं महाफलम् ॥ तपोविद्योभययुक्तं मुख्यं दानपात्रम् ॥ सत्पात्रे दानात्पुण्यातिशयः ॥ "सर्वं गंगासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः॥ सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः" इत्युक्तिः पुण्यसामान्याभिप्राया ॥ अत एव ॥ "सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ श्रोत्रिये शतसाहस्रं पात्रे त्वानंत्यमश्नुते" इति तारतम्यमुक्तम् ॥ अब्राह्मणे संस्कारादिरहिते जातिमात्रे ब्राह्मणे दानं यथोक्तफलम् ॥ गर्भाधानादिसंस्कारयुतो वेदाध्ययनाध्या-

पनरहितो ब्राह्मणब्रुवस्तत्र दानमुक्तं द्विगुणफलम् ॥ वेदाध्ययनादियुते श्रोत्रिये सहस्र फलम् ॥ विद्यासदाचरणादियुते पात्रेऽनंतफलमित्यर्थः ॥ ग्रहणे श्राद्धमामेन हेम्ना वा कार्यम् ॥ संपन्नश्चेत्पक्वान्नेन कुर्यात् ॥ सूर्यग्रहणे तीर्थयात्रांगश्राद्धवद्घृतप्रधानान्नेन श्राद्धं कार्यम् ॥ग्रहणे श्राद्धभोक्तुर्महादोषः ॥ ग्रहणे तुलादानादिकं संपन्नेन कार्यम् ॥

अब ग्रहणके निर्णयको कहतेहैं । चंद्रमा और सूर्यका ग्रहण इतने नेत्रोंके दर्शन योग्य रहै तबतक पुण्यकाल है, इसीसे ग्रस्तका जब अस्त हो उसके अनंतर अन्य द्वीपमें ग्रहणके होनेपरभी पुण्यकाल नहीं है, क्योंकि, वहां दर्शनकी योग्यता नहीं है । इसी प्रकार ग्रस्तोदयके समय उदयसे पहिले पुण्यकाल नहीं है, मेघ आदिके प्रतिबंधसे नेत्रोंसे दर्शनके असंभवमें शास्त्र आदिसे स्पर्श और मोक्षके कालोंको जानकर स्नान आदि करै । रविवारको सूर्यग्रहण और सोमवारको चंद्रग्रहण होय तो चूडामणियोग है उसमें दान आदिका अनंत फल होता है । ग्रहणमें स्पर्शके समय स्नान, मध्यमें होम और देवपूजन, और मोक्षके समयमें श्राद्ध और दान, और मुक्त होनेपर स्नान करे यह क्रमहै । उसमें स्नानके जलोंमें तारतम्य (न्यून अधिकभाव) है कि उष्ण जलसे शीतजल पवित्र है , पराये जलसे अपना जल कूप आदिमें से निकासे हुयेसे भूमिमें स्थित जल श्रेष्ठ है और उससे झरनेका जल श्रेष्ठ है, उससे भी तलावका पवित्र, है उससे नदीका जल और उससे तीर्थनदी गंगा पवित्र है, उससे भी समुद्र पवित्रहै ग्रहणमें सचैल स्नान करै । कोई यह कहते हैं कि, मुक्तहुये परही सचैल स्नान करै । मुक्ति स्नानके विना मनुष्य सूतकी होते हैं ग्रहणमें स्नान, विना मंत्रोंके करै, सुहागिन स्त्री विना शिरके स्नान करे । शिष्टोंकी स्त्री तो ग्रहणमें शिरस्नान भी करती हैं । जन्मसूतक और मरण सूतकमें ग्रहणके निमित्तसे स्नान दान श्राद्ध आदिको अवश्य करै, किसी निमित्तसे स्नान प्राप्त होनेपर यदि नारी रजस्वला होय तो नदी आदिमेंसे अन्य पात्रमें जलको लेकर स्नान करके व्रतको करे न वस्त्रोंको धोवै न अन्य वस्त्रोंको धारण करै । तीन रात्रि वा एकरात्र उपवास करके ग्रहणमें स्नान दान आदि करै तो महान् फल होताहै । एकरात्रके पक्षमें तो ग्रहणसे पूर्वदिनमें उपवास करै यह कोई कहते हैं । ग्रहणकेही अहोरात्रमें उपवास करै यह अपर कहते हैं, पुत्रवाले गृहस्थीको ग्रहण संक्रांति आदिमें उपवास नहीं है, पुत्रवत्पदसे कन्यावाला भी लेना यह कोई कहते हैं । ग्रहणमें देव पितृतर्पणको करे यह कोई कहते हैं । सब वर्णोंको राहुके दर्शनमें सूतक होता है जिससे ग्रहणके समय स्पर्श किये वस्त्र आदिकी प्रक्षालन आदिसे शुद्धिको करे । इसमें गौ, भूमि, सुवर्ण, धान्य आदिके दानका महाफल है । तप और विद्या दोनोंसे जो युक्त वह मुख्य दानका पात्र है, सत्पात्रके दानसे अधिक पुण्य होता है । चंद्रमा और सूर्यके ग्रहणमें सब जल गंगाके समान हैं । सब ब्राह्मण व्यासके समान हैं, सब दान भूमिदानके समान हैं, यह वचन तो सामान्य अल्प दानके अभिप्रायसे है इसीसे यह न्यूनाधिकभाव कहा हैं कि, ब्राह्मणका दान सम है अर्थात् उतनेही फलको देता है । और ब्राह्मणब्रुवको दान द्विगुण होता है, श्रोत्रिय वेदपाठीको दान लक्षगुणा होता है, पात्रको दान अनंत फलको देता है,संस्कार आदिसे रहित जातिमात्रके अब्राह्मणका दान यथोक्त फलको देता है, गर्भाधान आदि संस्कारोंसे युक्त और वेदके पठन पाठनसे जो रहित उसको ब्राह्मणब्रुव कहते हैं, उसका दान दूना फल देता है । वेदके पठन पाठनसे युक्त श्रोत्रियको दान सहस्र फल देता है और विद्या आचरण आदिसे युक्तको दान अनंत फल देता है,यह उक्त वचनका अर्थ है । ग्रहणमें श्राद्ध आमअन्नसे वा सुवर्णसे करे संपन्न (धनी) होय तो पकान्नसे करे सूर्यके ग्रहणमें तीर्थयात्राके

श्राद्धकी समान घृत जिसमें प्रधान हो ऐसे अन्नसे श्राद्ध करे,ग्रहणमें श्राद्धके भोक्ताको महादोष है। ग्रहणमें संपन्न मनुष्य तुलादान आदिको करे ॥

अथ ग्रहणे मंत्रदीक्षा ।

"चंद्रसूर्यग्रहे तीर्थे महापर्वादिके तथा ॥ मंत्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥" मंत्रदीक्षाप्रकारस्तंत्रे द्रष्टव्यः ॥ दीक्षाग्रहणमुपदेशस्याप्युपलक्षणम् ॥ "युगेयुगे तु दीक्षासीदुपदेशः कलौ युगे ॥ चंद्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये ॥ मंत्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते" ॥ मंत्रग्रहणे सूर्यग्रहणमेव मुख्यम् ॥ चन्द्रग्रहणे दारिद्र्यादिदोषोक्तेरिति केचित् ॥

चंद्र सूर्यके ग्रहणमें तीर्थपर महापर्व आदिमें मंत्रकी दीक्षा ग्रहण करता (लेता हुआ) मनुष्य मास,नक्षत्र आदिका शोधन न करे।मंत्रदीक्षाका प्रकार तो तंत्रमें देखना योग्यहै दीक्षाका ग्रहण उपदेशका भी उपलक्षण (बोधक) है युग २ में दीक्षा रही उपदेश तो कलियुगमें होता है । चंद्र सूर्यके ग्रहणमें, तीर्थपर, सिद्धोंके क्षेत्रमें,शिवालयमें मंत्र मात्रका जो कथन उसको उपदेश कहते हैं । मंत्रके ग्रहणमें सूर्यका ग्रहणही मुख्य है क्योंकि चंद्रके ग्रहणमें दारिद्र्य आदि दोष कहे हैं यह कोई कहते हैं ॥

अथ ग्रहणे पुरश्चरणविधिः ।

"चंद्रसूर्योपरागे च स्नात्वा पूर्वमुपोषितः ॥ स्पर्शादिमोक्षपर्यंतं जपेन्मंत्रं समाहितः ॥ जपाद्दशांशतोहोमस्तथा होमाच्च तर्पणम् ॥ होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्या चतुर्गुणम्"॥मूलमंत्रमुच्चार्य तदंते द्वितीयांतं मंत्रदेवतानामोच्चार्यामुकां देवतामहं तर्पयामि नम इति यवादियुक्तजलांजलिभिस्तर्पणं होमदशांशेन कार्यम् ॥ एवं नमोंतमूलमंत्रमुक्त्वामुकां देवतामहमभिषिंचाम्यनेनेत्युच्चार्य जलेन स्वमूर्ध्न्यभिषिंचेदिति मार्जनं तर्पणदशांशेन कार्यम् ॥ मार्जनदशांशेन ब्राह्मणभोजनम् ॥ एवं जपहोमतर्पणमार्जनविप्रभोजनात्मकपंचप्रकारं पुरश्चरणम् ॥ तर्पणाद्यसंभवे तत्तत्संख्याचतुर्गुणो जप एव कार्यः ॥ अयं च ग्रहणे पुरश्चरणप्रकारो ग्रस्तोदये ग्रस्तास्ते च न संभवति ॥ पुरश्चरणांगोपवासः पुत्रवद्गृहिणापि कार्यः ॥ पुरश्चरणकर्तुः स्नानदानादिनैमित्तिककर्मलोपे प्रत्यवायप्रसंगान्नैमित्तिकं स्नानदानादिकं भार्यापुत्रादिप्रतिनिधिद्वारा कार्यम् ॥ अत्रेत्थमितिकर्तव्यता ॥ स्पर्शकालात्पूर्वं स्नात्वामुकगोत्रोमुकशर्माहं राहुग्रस्ते दिवाकरे निशाकरे वामुकदेवताया अमुकमंत्रसिद्धिकामो ग्रासादिमुक्तिपर्यंतममुकमंत्रस्य जपरूपं पुरश्चरणं करिष्ये इति संकल्पं च कृत्वासनबंधन्यासादिकं च स्पर्शात्पूर्वमेव विधाय स्पर्शादिमोक्षपर्यंतं मूलमंत्रजपं कुर्यात् ॥ ततः परदिने स्नानादिनित्यकृत्यं विधायामुकमंत्रस्य कृतैतद्ग्रहणकालिकामुकसंख्याकं पुरश्चरणजपसांगतार्थं तद्दशांशहोमतद्दशांशतर्पणतद्दशांशमार्जनतद्दशांशब्राह्मणभोजनानि करिष्ये इति संकल्प्य होमादिकं तत्तच्चतुर्गुणद्विगुणान्यतरजपं वा कुर्यात् ॥ ग्रहणकाले च तत्प्रेरित पुत्रादिरमुकशर्मणोमुकगोत्र-

स्यामुकग्रहणस्पर्शस्नानजनितश्रेयःप्राप्त्यर्थं स्पर्शस्नानं करिष्य इत्यादि॰ संकल्पपूर्वकं तदीयस्नानदानादिकं कुर्यात् ॥ पुरश्चरणमकुर्वद्भिरपि गुरूपदिष्टः स्वस्वेष्टदेवतामंत्रजपो गायत्रीजपश्चावश्यं ग्रहणे कार्योऽन्यथा मंत्रमालिन्यम् ॥

प्रथम किया है उपवास जिसने ऐसा मनुष्य चंद्र और सूर्यके ग्रहणमें स्नान करके सावधानीसे स्पर्शसे मोक्षपर्यंत मंत्रको जपे जपसे दशांश होम और होमसे दशांश तर्पण करे। होमकी शक्ति न होय तो होमकी संख्यासे चौगुना जप करै । मूल मंत्रका उच्चारण करके उसके पीछे द्वितीया विभक्ति जिसके अंतमें हो ऐसे मंत्रके देवताका नाम उच्चारण करे-कि 'अमुकां देवता॰ महं तर्पयामि नमः' अमुक देवताको मैं तृप्त करताहूं उसको नमस्कार है इस मंत्रसे जौ आदिसे युक्त जलकी अंजलियोंसे तर्पणको होमके दशांशसे करे । ऐसेही 'नमः' जिसके अंतमें हो ऐसे मूलमंत्रको कहकर इस जलसे मैं अमुक देवताका अभिषेक करताहूं (अमुकां देवतामहमभिषिंचाम्यनेन) यह उच्चारण करके जलसे अपने मस्तकको सींचे, यह मार्जन तर्पणके दशांशसे करना, मार्जनके दशांशसे ब्राह्मणभोजन करावै. इस प्रकार जप, होम, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण भोजनरूप पांच प्रकारका पुरश्चरण होताहै । तर्पण आदि न होसके तो तिस २ की संख्यासे चौगुने जपकोही करै,यह ग्रहणमें पुरश्चरणका प्रकार ग्रस्तोदय और ग्रस्तास्तमें नहीं होसकता, पुरश्चरणके अंगका जो उपवास उसको पुत्रवाला गृहस्थी भी करे । पुरश्चरणके कर्ताको स्नान, दान आदि नैमित्तिक कर्मका लोप होनेपर प्रत्यवाय (दोष) का प्रसंग होगा । इससे नैमित्तिक स्नान दान आदिको भार्या पुत्र आदि प्रतिनिधिके द्वारा करै, इसमें करनेका प्रकार यह है कि, स्पर्शके कालसे प्रथम स्नान करके और अमुकगोत्र, अमुकशर्मा मैं राहुसे ग्रस्त, सूर्य वा चन्द्रमाके समयमें, अमुक देवताके अमुक मंत्रकी सिद्धिकी कामनासे ग्राससे लेकर मुक्तिपर्यंत अमुक मंत्रके जपरूप पुरश्चरणको करताहूं । यह संकल्प करके आसनका बन्धन न्यास आदिको तो स्नानसे पूर्वही करके स्पर्शसे मोक्षपर्यंत मूलमंत्रका जप करै, फिर अगले दिन स्नान आदि नित्यकर्मको करके अमुक मंत्रका किया जो इस ग्रहणके कालमें अमुक संख्याक पुरश्चरणजप, उसकी सांगताके लिये उसका दशांश होम, होमका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश मार्जन, मार्जनका दशांश ब्राह्मणभोजन इनको करताहूं, यह संकल्प करके होम आदिको करै । वा तिस २ के चौगुने वा द्विगुने जपको करै, और ग्रहणकालमें पिता आदिकी प्रेरणासे पुत्रआदि अमुक शर्मा, अमुक गोत्र अमुक ग्रहणके स्पर्श स्नानसे उत्पन्न कल्याणकी प्राप्तिके लिये स्नान करताहूं इत्यादि संकलपके अनंतर पिता आदिके स्नान, दान आदिको करै, जो पुरश्चरण नहीं करते हैं, वेभी ग्रहणके समय गुरुके उपदेश किये अपने अपने इष्टदेवताके मंत्रका जप वा गायत्री जप अवश्य करैं, अन्यथा (न करै तो) मंत्रकी मलिनता होती है ॥

अथ ग्रहणे शयनमूत्रादिकृते ।

ग्रहणकाले शयने कृते रोगो मूत्रे दारिद्र्यं पुरीषे कृमिर्मैथुने ग्रामसूकरोऽभ्यंगे कुष्ठी भोजने नरक इति ॥

ग्रहणकालमें शयन करनेसे रोग, मूत्र करै तो दरिद्री, मल त्याग करै तो कीट, मैथुन करै तो ग्रामसूकर, उबटना करै तो कुष्ठी, भोजन करै तो नरकगामी होता है ॥

अथ पक्वान्नग्रहणे विचारः ।

पूर्वपक्वमन्नं ग्रहणोत्तरं त्याज्यम् ॥ एवं ग्रहणकालस्थितजलपाने पादकृच्छ्राभिधानाज्जलमपि त्याज्यम् ॥ कांजिकं तक्रं घृततैलपाचितमन्नं क्षीरं च पूर्वसिद्धं ग्रहणोत्तरं ग्राह्यम् ॥ घृते सन्धिते गोरसेषु ग्रहणकाले कुशांतरायं कुर्यात् ॥

पहिले बना पकान्न ग्रहणके पीछे त्यागने योग्य है इसीप्रकार ग्रहणकालमें स्थित जलके पानमें पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त कहा है, इससे जलभी त्यागने योग्य है। कांजी, मठा, घृत, तेल, पकअन्न, दूध ये ग्रहणसे पहिले सिद्धहुये ग्रहणके पीछेभी ग्रहण करने योग्य हैं। और घृत, सन्धित, गोरसमें ग्रहणके समय कुशाको रखदे ॥

अथ वेधविचारः ।

सूर्यग्रहे ग्रहणप्रहरादर्वाक् यामचतुष्टयं वेधः ॥ चन्द्रग्रहे तु प्रहरत्रयम् ॥ तथा च दिनप्रथमप्रहरे सूर्यग्रहे पूर्वरात्रिप्रहरचतुष्टये न भोक्तव्यम् ॥ द्वितीये यामे ग्रहणे रात्रिद्वितीययामादौ न भोक्तव्यम् ॥ एवं रात्रिप्रथमप्रहरे चंद्रग्रहे दिनद्वितीययामादौ न भुंजीत ॥ रात्रिद्वितीययामादौ ग्रहणे दिनतृतीययामादौ न भुंजीत ॥ बालवृद्धातुरविषये तु सार्धप्रहरात्मको मुहूर्तत्रयात्मको वा वेधः ॥ शक्तस्य वेधकाले भोजने त्रिदिनमुपोषणं प्रायश्चित्तम् ॥ ग्रहणकाले भोजने प्राजापत्यं प्रायश्चित्तम् ॥ चंद्रस्य ग्रस्तोदये तु यामचतुष्टयवेधात्तत्पूर्वं दिवा न भुंजीत ॥ केचित्तु चंद्रपूर्णमंडलग्रासे यामचतुष्टयं वेध एकदेशग्रासे यामत्रयमित्याहुः ॥ ग्रस्तास्ते तु "ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवींदू प्राप्नुतो यदि ॥ परेद्युरुदये स्नात्वा शुद्धोभ्यवहरेन्नरः" ॥ अत्र स्नात्वा शुद्ध इत्युक्त्या शुद्धमंडलदर्शनकालिकस्नानात्पूर्वमशुद्धिप्रतिपादनाज्जलाहरणपाकादिकं शुद्धबिंबोदयकालिकस्नानात्पूर्वं न कार्यमिति भाति ॥ सूर्यग्रस्तास्तादौ पुत्रवद्गृहिण उपवासनिषेधात्तेन षण्मुहूर्तात्मकं वेधं त्यक्त्वा ग्रहणात्पूर्वं भोक्तव्यमिति केचित् ॥ पुत्रवद्गृहिणापि तत्रोपवास एव कार्य इति माधवमतमेव तु शिष्टाचारानुसृतं युक्तम् ॥ सूर्यग्रस्तास्ते चंद्रग्रस्तोदये चाहिताग्निनान्वाधानं विधाय जलेन व्रतं कार्यं न तु भोजनम् ॥ चंद्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने संध्याहोमादौ न दोषः ॥ तत्राल्पकालेन शास्त्रतो मुक्तिनिश्चये मुक्त्यनंतरं स्नात्वा होमादिकं कर्तव्यम् ॥ चिरकालेन मुक्तौ होमकालातिक्रमप्रसंगाद्ग्रस्तोदयइव ग्रहणमध्ये एव संध्यां होमं च कृत्वा शास्त्रतो मुक्तिकाले स्नात्वा ब्रह्मयज्ञादिनित्यकर्म कर्तव्यमिति भाति ॥ दर्शे ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैव दर्शश्राद्धसंक्रांतिश्राद्धानां प्रसंगसिद्धिर्भवति ॥ ग्रहणदिने पित्रादेर्वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ सति संभवेऽन्नेन कार्यम् ॥ ब्राह्मणाद्यलाभेनासंभवे त्वामेन हेम्ना वा कार्यम् ॥

अब वेधके विचारको कहते हैं कि, सूर्यके ग्रहणमें ग्रहणके प्रहरसे चार प्रहर पहिले वेध है चंद्रके ग्रहणमें तो तीन प्रहर पहिले होताहै, तिससे दिनके प्रथम प्रहरमें ग्रहण होय तो पहिली

रात्रिके चार प्रहरमें भोजन न करै, दूसरे प्रहरमें ग्रहण होय तो रात्रिके दूसरे प्रहर आदिमें भोजन न करै, ऐसेही रात्रिके पहिले प्रहरमें चन्द्रग्रहण होय तो दिनके दूसरे प्रहर आदिमें भोजन न करै, रात्रिके दूसरे प्रहर आदिमें ग्रहण होय तो दिनके तीसरे प्रहर आदिमें भोजन न करै, बाल, वृद्ध, आतुर इनके विषयमें तो सार्द्ध (१॥) प्रहरका वा तीन मुहूर्तका वेध है। समर्थ मनुष्य वेधकालमें भोजन करै तो तीन दिन उपवास प्रायश्चित्त है, ग्रहणके समय भोजनका प्राजापत्य प्रायश्चित्त है। चंद्रमाके ग्रस्तोदयमें तो चार प्रहरका वेध है, इससे ग्रहणसे पूर्वदिनमें भोजन न करै। कोई तो यह कहते हैं कि, संपूर्ण मंडलके ग्रासमें चार प्रहरका वेध है एक देशके ग्रासमें तीन प्रहरका होताहै। ग्रस्तास्तमें तो यह प्रतीत होताहै कि, यदि सूर्य और चंद्रमा ग्रस्त हुयेही अस्तको प्राप्त होजांयँ तो परले दिन उदयकालमें स्नान करके शुद्ध हुआ मनुष्य भोजनको करै, इस वचनमें स्नान करके शुद्ध हुआ यह कहनेसे शुद्धमंडलके दर्शनकालका जो स्नान है उससे पहिले अशुद्धि कहीहै इससे जलका लाना, पाकआदि शुद्ध बिंबोदयकालके स्नानसे पहिले न करै। सूर्यके ग्रस्तास्त आदिमें पुत्रवाले गृहस्थको उपवासका निषेध है। इससे वह छः मुहूर्तके वेधको त्यागकर ग्रहणसे पहिले भोजन करले यह कोई २ कहते हैं। पुत्रवाला गृहस्थभी उसमें उपवासही करै यह माधवका मतही शिष्टाचारका अनुसारी होनेसे युक्त है। सूर्यके ग्रस्तास्तमें और चंद्रमाके ग्रस्तोदयमें आहिताग्नि तो अन्वाधान करके जलसे व्रतको करै भोजन न करै, चंद्रमाके ग्रस्तास्तमें उत्तरदिनमें संध्या, होम आदि करनेका दोष नहीं उसमें अल्पकालमेंही शास्त्रसे मोक्षका निश्चय होय तो मोक्षके अनंतर स्नान करके होमआदिको करै, चिरकालमें मुक्ति होय तो होमके समयका अतिक्रम होजायगा इससे ग्रस्तोदयके समान ग्रहणके मध्यमेंही संध्या और होमको करके और शास्त्रसे मुक्तिके कालमें स्नान करके ब्रह्मयज्ञ आदि नित्य कर्मको करै यह हमें भासता है। दर्शमें ग्रहण निमित्तक श्राद्धसेही दर्शश्राद्ध संक्रांति श्राद्धोंकी प्रसंगसिद्धि होजातीहै। ग्रहणके दिन पिता आदिका वार्षिक श्राद्ध प्राप्त होय तो सम्भव होनेपर तो पक्वअन्नसेही करै, ब्राह्मण आदिके न मिलनेसे असम्भव होय (न होसके) तो आमअन्नसे वा सुवर्णसे करै॥

अथ जन्मराशेः शुभाशुभविचारः।

स्वजन्मराशेस्तृतीयषष्ठैकादशदशमराशिस्थितं ग्रहणं शुभप्रदम्॥ द्वितीयसप्तमनवमपंचमस्थानेषु मध्यमम्॥ जन्मचतुर्थाष्टमद्वादशराशिस्थितमनिष्टप्रदम्॥

अपनी जन्मराशिसे तृतीय, षष्ठ, एकादश, दशम राशियोंपर स्थित ग्रहण शुभदायी होता है। दूसरे, सातमें, नवमें, पांचमें स्थानोंमें होय तो मध्यम होताहै। जन्म, चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशिपर स्थित होयतो अनिष्ट फलको देताहै॥

अथ राशौ ग्रहणे दानविधिः।

यस्य जन्मराशौ जन्मनक्षत्रे वा ग्रहणं तस्य विशेषतोनिष्टप्रदम्॥ तेन गर्गायुक्ता शांतिः कार्या॥ अथवा बिंबदानं कार्यम्॥ तद्यथा॥ चंद्रग्रहे रजतमयं चंद्रबिंबं सुवर्णमयं नागबिंबं च कृत्वा सूर्यग्रहे सौवर्णं सूर्यबिंबं नागबिंबं च कृत्वा घृतपूर्णे ताम्रपात्रे कांस्यपात्रे वा निधाय तिलवस्त्रदक्षिणासाहित्यं संपाद्य मं

जन्मराशिजन्मनक्षत्रस्थितामुकग्रहसूचितसर्वानिष्टप्रशांतिपूर्वकमेकादशस्थानस्थि-तग्रहणसूचितशुभफलावाप्तये बिंबदानं करिष्ये-इति संकल्प्य सूर्यं चंद्रं राहुं च ध्यात्वा नमस्कृत्य ॥ "तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन ॥ हेमताराप्रदानेन मम शांतिप्रदो भव ॥ विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानंदनाच्युत ॥ दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात्" इति मन्त्रमुच्चार्य॥इदं सौवर्णं राहुबिंबं,नागं सौवर्णं रविबिंबं राजतं चंद्रबिंबं वा घृतपूर्णकांस्यपात्रनिहितं यथाशक्ति तिलवस्त्रदक्षिणा-सहितं ग्रहणसूचितारिष्टविनाशार्थं शुभफलप्राप्त्यर्थं च तुभ्यमहं संप्रददे इति दा-नवाक्येन पूजितब्राह्मणाय दद्यात् ॥ एवं चतुर्थाद्यनिष्टस्थानेष्वपि दानं कार्यमिति भाति ॥यस्य जन्मराश्यादिग्रहणं तेन राहुग्रस्तरवींदुबिंबं नावलोकनीयम्॥इतरजनै-रपि पटजलादिव्यवधानेनैव ग्रस्तबिम्बं द्रष्टव्यं न साक्षात् ॥ मङ्गलकार्येषु पूर्णग्रासे चन्द्रग्रहणद्वादश्यादितृतीयांतं दिनसप्तकं वर्ज्यम् ॥ सूर्यपूर्णग्रासे एकादश्यादिचतु-र्थ्यतदिनानि वर्ज्यानि ॥ खंडग्रहणे चतुर्दश्यादिदिनत्रयं वर्ज्यम् ॥ ज्योतिर्निबंधेषु ग्रासपादतारतम्येन दिनाधिक्योनत्वं तारतम्येन योजितम् ॥ ग्रस्तास्ते पूर्वदिनत्रयं वर्ज्यम् ॥ ग्रस्तोदये परं दिनत्रयं वर्ज्यम् ॥ ग्रहणनक्षत्रं षण्मासं पूर्णग्रासे वर्ज्य-म् ॥ पादादिग्रासे सार्धमासादितारतम्येन योज्यम् ॥ पूर्वसंकल्पितस्य द्रव्यस्य ग्रहणोत्तरं दाने तद्द्विगुणं देयं भवति ॥ ॥ इति ग्रहणनिर्णयोद्देश एकत्रिंशः॥ ३१ ॥

जिसकी जन्मराशि, वा जन्मनक्षत्रपर ग्रहणहो उसको विशेषकर अनिष्टफल देताहै वह गर्ग आदिकी कहीहुई शांतिको करै, अथवा बिम्बका दान करै, वह ऐसेहै कि, चन्द्रमाके ग्रहणमें चांदीका चन्द्रमाका,बिंब और सुवर्णका नागका बिंब बनाकर, सूर्यके ग्रहणमें सुवर्णका सूर्यका बिंब बनाकर घृतसे पूर्ण तांबेके पात्रमें वा कांसीके पात्रमें रखकर तिल वस्त्र दक्षिणा इस सामग्रीको इकट्ठी करके "मेरी जन्मराशि जन्म नक्षत्रपर वर्त्तमान जो अमुकग्रह उससे सूचितकिये संपूर्ण अनिष्टकी शांतिपूर्वक एकादशस्थानमें स्थितग्रहणसे सूचित शुभफलकी प्राप्ति-केलिये बिंबदानको करताहूं"यह संकल्प करके सूर्य,चन्द्रमा और राहुका ध्यान नमस्कार करके "हे अन्धकाररूप ! हे महाभयानक ! हे सोमसूर्यके मर्दनकारी ! सुवर्ण चांदीके दानसे मुझे शांतिके दाताहो। हे विधुंतुद ! आपको नमस्कारहै। हे सिंहिकाके पुत्र ! हे अच्युत!इस नागके दानसे वेधके भयसे मेरी रक्षाकरो" इस मन्त्रका उच्चारण करके यह सुवर्णका राहुका बिंब और नाग और सुवर्णका सूर्यबिंब, चांदीका चन्द्रमाका बिंब जो घृतपूर्ण कांसीके पात्रमें स्थितहै और यथाशक्ति तिल, वस्त्र, दक्षिणासहितहै इसको ग्रहणके सूचित किये अरिष्टके विनाशार्थ और शुभफलकी प्राप्तिके लिये आपको मैं देताहूं, इस दानके वाक्यसे पूजा करी है जिसकी ऐसे ब्राह्मणको देवे, इसीप्रकार चतुर्थआदि अनिष्टस्थानोंमें ग्रहणके होनेपरभी दान करना, यह प्रतीत होताहै, जिसकी जन्मराशि आदिपर ग्रहण हो वह राहुके ग्रसेहुये सूर्य और चन्द्र-माके बिंबको न देखै, इतर मनुष्यभी वस्त्र और जल आदिके व्यवधानसेही ग्रसेहुये बिंबको देखैं साक्षात् न देखैं। मङ्गलके कार्योंमें पूर्णग्रास होय तो चन्द्रग्रहणमें द्वादशीसे तृतीयापर्यंत सातदिन वर्जने योग्यहैं। और सूर्यके पूर्णग्रासमें एकादशीसे चतुर्थीपर्यंत जो दिन वे वर्जितहैं,

खण्डग्रहणमें तो चतुर्दशी आदि तीन दिनही वार्जितहैं, ज्योतिषके ग्रन्थोंमें तो ग्रासके पादोंके तारतम्य (न्यून अधिकता) से दिनोंकीभी अधिकता और न्यूनता (तारतम्यसे) लगाई है, ग्रस्तास्तमें पहिले तीन दिन वर्जितहैं, पादआदिके ग्रासमें सार्द्ध(१।।) मास आदि तारतम्यसे लगाने । पहिले संकल्प किये द्रव्यको ग्रहणके पीछे दे तो द्विगुण देना होताहै ।। इति ग्रहणनिर्णयोद्देश एकात्रिंशः ।। ३१ ।।

अथ समुद्रस्नानम् ।

समुद्रे पौणमास्यमावास्यादिपर्वसु स्नायात् ॥ भृगुभौमादिने स्नानं वर्जयेत् ॥ "अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पर्शस्तु कदाचन ॥ अश्वत्थं मंदवारे तु सागरं पर्वणि स्पृशेत् ॥ न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्माणि" ॥ समुद्रस्नानप्रयोगोन्यत्र ज्ञेयः ॥ ॥ इति धर्मसिंधुसारे समुद्रस्नानोद्देशो द्वात्रिंशः ॥ ३२ ॥

पूर्णिमा अमावस्या आदि पर्वोंमें समुद्रके विषै स्नान करै, शुक्र और मंगलके दिन स्नानको वर्जदे, पीपल और सागरकी सेवा करै परन्तु स्पर्श कदाचित् न करै। पीपलको शनिश्चरके दिन और समुद्रको पर्वके दिन स्पर्शकरै और समुद्रके स्नान करनेमें सेतुबन्धमें कालका नियम नहीं है । समुद्रके स्नानका प्रयोग (विधि) अन्य ग्रन्थोंसे जानना ।। इति धर्मसिन्धुसारे समुद्रस्नानोद्देशो द्वात्रिंशः ।। ३२ ।।

अथ तिथिविशेषे नक्षत्रविशेषे वारादौ च विधिनिषेधाः ।

"सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नीलवस्त्रं न धारयेत्॥न चाप्यामलकैः स्नानं न कुर्यात्कलहं नरः ॥ सप्तम्यां नैव कुर्वीत ताम्रपात्रेण भोजनम्" ॥ नंदातिथिष्वभ्यंगो वर्ज्यः ॥ रिक्तासु क्षौरं वर्ज्यम् ॥ जयासु मांसं शूद्राद्यैर्वर्ज्यम् ॥ पूर्णासु स्त्री वर्ज्या ॥ रविवारेऽभ्यंगो भौमवारे क्षौरं बुधे योषिच्च वर्ज्या ॥ चित्राहस्तश्रवणेषु तैलं वर्ज्यम् ॥ विशाखाप्रतिपत्सु क्षौरं वर्ज्यम् ॥ मघाकृत्तिकात्र्युत्तरासु स्त्री न सेव्या ॥ तिलभक्षणं तिलतर्पणं च सप्तम्यां न ॥ नारिकेलमष्टम्यामलाबुं नवम्यां पटोलं दशम्यां निष्पावमेकादश्यां मसूरं द्वादश्यां वार्ताकं त्रयोदश्यां वर्ज्यम् ॥ "पूर्णिमादर्शसंक्रांतिचतुर्दश्यष्टमीषु च ॥ नरश्चांडालयोनौ स्यात्तैलस्त्रीमांससेवनात्" ॥ पूर्णिमादर्शसंक्रांतिद्वादशीषु श्राद्धदिने च वस्त्रं न पीडयेत् ॥ रात्रौ मृदं गोमयमुदकं च नाहरेत् ॥ गोमूत्रं प्रदोषकाले न गृह्णीयात् ॥ अमादिपर्वस्ववश्यं शांत्यर्थं तिलहोमी स्यादात्मरक्षणाय दानादिकं च कुर्यात् ॥ पर्वसु नाधीयीत ॥ शौचाचमनब्रह्मचर्यादिसेवी स्यात् ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीनवमीतिथिषु श्राद्धदिने जन्मदिने व्रते चोपवासे च रविवारे मध्याह्नस्नानसमये च काष्ठेन दंतधावनं वर्ज्यम् ॥ "अलाभे दंतकाष्ठानां निषिद्धेपि दिने तथा ॥ अपां द्वादशगंडूषैः पत्रैर्वा शोधयेन्मुखम्" ॥ अत्र सर्वत्र निषेधेषु तिथ्यादिकं तत्कालव्यापि ग्राह्यम् ॥ ॥ इति धर्मसिंधुसारे तिथ्यादौ विधिनिषेधसंग्रहोद्देशस्त्रयस्त्रिंशत्तमः ॥ ३३ ॥

तिथिविशेषमें, नक्षत्रविशेषमें और वारआदिमें विधि और निषेध ये हैं–कि, मनुष्य सप्तमीको तेलका स्पर्श और नीलवस्त्रको धारण न करै, और न आंवलोंसे स्नान करै, और न कलहको करै और मनुष्य सप्तमीको तांबेके पात्रमें भोजन न करै, नन्दा १–६–११ तिथियोंमें अभ्यङ्गको वर्जदे, रिक्ता ४–९–१४ तिथियोंमें क्षौरको वर्जदे । जया ३–८–१३ तिथियोंमें शूद्र-आदि मांसको वर्जदें, पूर्णा ५–१०–१५ तिथियोंमें स्त्रीका संग वर्जदे, रविवारको अभ्यङ्ग, भौमवारको क्षौर, बुधको स्त्री वर्जितहै । चित्रा, हस्त, श्रवणमें तेल वर्जितहै, विशाखा प्रतिपदामें क्षौर वर्जितहै, मघा, कृत्तिका, तीनों उत्तरा इनमें स्त्रीका सेवन न करै, सप्तमीको तिलका तर्पण और भक्षण न करै, अष्टमीको नारियल, नवमीको अलाबु (तोंबा) दशमीको परवल, एकादशीको निष्पाव, द्वादशीको मसूर, त्रयोदशीको बैंगन, वर्जितहैं- रात्रिमें मिट्टी गोमय, जल इनको न लावै, गोमूत्रको प्रदोषकालमें ग्रहण न करै, अमावस्या आदि पर्वोंमें शांतिके लिये तिलोंसे होम अवश्य करै और अपनी रक्षाके लिये दान आदिको करै, पर्वोंमें अध्ययन न करै । शौच, ब्रह्मचर्य, आचमन इनको करै, प्रतिपदा, अमावस्या, षष्ठी, नवमी इन तिथियोंमें, श्राद्धके दिन, व्रतमें, उपवासमें, रविवारको, मध्याह्न स्नानके समयमें दन्तधावन वर्जितहै । दतोन न मिलै तो और निषेधके दिन जलके द्वादश गंडूषों (कुल्लों) से वा पत्तोंसे मुखशुद्धिको करै, इन सम्पूर्ण निषेधोंमें तिथिआदि तत्कालमें वर्तमान ग्रहण करने ॥ इति धर्मसिन्धुसारे तिथ्यादौ विधिनिषेधसंग्रहे त्रयस्त्रिंशत्तम उद्देशः ॥ ३३ ॥

"मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोऽनलसा बुधाः ॥ कृतकार्याः प्राङ्निबंधैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ ये पुनर्मंदमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ॥ धर्मे वेदितुमिच्छंति रचितस्तदपेक्षया ॥ निबंधोयं धर्मसिंधुसारनामा सुबोधनः ॥ अमुना प्रीयतां श्रीमद्विठ्ठलो भक्तवत्सलः" ॥ 'सर्वत्र मूलवचनानीह ज्ञेयानि तद्विचारश्च ॥ कौस्तुभ-निर्णयसिंधुश्रीमाधवकृतनिबंधेभ्यः ॥ प्रेम्णा सद्भिर्ग्रंथः सेव्यः शब्दार्थतः स दोषोपि ॥ संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव' ॥ ॥ ॥

इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे प्रथमपरिच्छेदः समाप्तः ॥

मीमांसा और धर्मशास्त्रके ज्ञाता पण्डितजन तो आलस्यरहित होनेसे पहिले ग्रंथोंसे कृतार्थ ही हैं उनके लिये इसग्रन्थ रचनेका उद्यम नहींहै । किन्तु जो मन्दबुद्धि, आलसी और मूर्ख हैं और धर्मके निर्णयको जानना चाहते हैं उनकी अपेक्षासे यह ग्रन्थ रचाहै । यह धर्मसिन्धुसार नामका निबन्ध भलीप्रकार बोधका दाताहै। इससे श्रीमान् भक्तोंपर वत्सल विठ्ठलजी प्रसन्नहो, इसमें सर्वत्र मूलवचन और उनका विचार कौस्तुभ, निर्णयसिन्धु, श्रीमाधवके किये निबन्धों (ग्रन्थों) से जानने । और सज्जन मनुष्य शब्द और अर्थसे दोषसहित इस ग्रन्थको सेवन करैं (विचारैं) वा भलीप्रकार शोधन करके ग्रहण करैं । और हरि (भगवान्) भी सुदामाके तुषसहित मोटे तण्डुलोंकी मुष्टीके समान इसको ग्रहण करो ॥

इति श्रीमदनन्तोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते प्रथमपरिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ श्रीः ॥

धर्मसिन्धु।

भाषाटीकासमेत।

द्वितीयपरिच्छेदः ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यैः नमः ॥ ॥ श्रीपांडुरंगं विबुधातरंगं नौर्मींदिरां माधवमंदिरां च ॥ सतामनंतं हितमामनंतं गुरुं गरिष्ठं जननीं वरिष्ठाम् ॥ ॥१॥ काशीनाथाभिधेनात्रानंतोपाध्यायसूनुना ॥ सामान्यं निर्णयं प्रोच्य विशेषेण विनिर्णयः ॥२॥ संगृह्यते धर्मसिंधुसाराख्ये कालगोचरे ॥ ग्रंथे प्रस्फुटबोधायपुनरुक्तिर्न दूषणम् ॥ ३ ॥ प्रथमपरिच्छेदे मासविशेषानपेक्षसामान्यतस्तिथ्यादिनिर्णयमभिधायास्मिन्द्वितीयपरिच्छेदे चैत्रादिमासविशेषोपादानेन प्रतिपदादितिथिषु विहितसंवत्सरकृत्यनिर्णयसारं संगृह्णीमः ॥ अत्र शुक्लप्रतिपदादिरमांत एव मासः॥ प्रायेण दाक्षिणात्यैरादियत इति तमेवाश्रित्य निर्णय उच्यते॥ अत्र किंचित्पूर्वपरिच्छेदोक्तमपि पुनर्विशेषोक्तिभिर्दृढीक्रियत इति पुनरुक्तिर्न दोषाय ॥

श्रीगणेशाय नमः । देवताओंमें अन्तरंग श्रेष्ठ श्रीपांडुरङ्गको और लक्ष्मीजीको और लक्ष्मीसहित माधवको और सत्पुरुषोंके हितकारी गरिष्ठ अनन्तजी गुरुजीको और अत्यन्तहितकारिणी और सबसे उत्तम माताको मैं (काशीनाथ) नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ अनन्तउपाध्यायका पुत्र काशीनाथ इस ग्रन्थमें सामान्यनिर्णयको कहकर विशेषतासे निर्णयका॥ २ ॥ धर्मसिन्धुसार नामको कालको बोधक इस ग्रन्थमें संग्रह करताहै और स्फुट बोधके लिये पुनः उक्तिमें दूषण नहीं है ।। ३ ।। पहिले परिच्छेदमें मासविशेषकी अपेक्षा को न करके सामान्यरीतिसे तिथि आदिके निर्णयको कहकर, इस दूसरे परिच्छेदमें चैत्रआदि मास विशेषके उपादान (ग्रहण) करके प्रतिपदाआदि तिथियोंमें कहा जो संवत्सरआदिका कर्म उसके निर्णयसारका संग्रह करतेहैं, इस शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर अमावस्यापर्यंतही मासको प्रायः दक्षिणदेशनिवासी मानते हैं। इससे उसकोही आश्रय ले (मान) कर निर्णयको कहतेहैं। इसमें कुछ २ पूर्वपरिच्छेदमें उक्तकोभी पुनः दृढ करते हैं,इससे पुनः उक्ति दोषके लिये नहीं है ॥

अथ मेषसंक्रमणपुण्यकालः ।

तत्र मेषसंक्रांतौ पूर्वाः पराश्च दशदश नाड्यः पुण्यकालः ॥ रात्रौ त्वर्धरात्रात्प्राक्संक्रमे पूर्वदिनोत्तरार्द्धं पुण्यम् ॥ अर्धरात्रात्परतः संक्रमे उत्तरदिनस्य पूर्वार्द्धं पुण्यम् ॥ अर्धरात्रे संक्रमे दिनद्वयं पुण्यम् ॥

तिसमें मेषकी संक्रांतिमें पहिली और पिछली दश २ घडी पुण्यकालहै, रात्रिमें तो अर्द्ध रात्रसे पहिले संक्रांति होय तो पूर्वदिनका उत्तरार्द्ध पुण्यकालहै, अर्द्धरात्रसे परे संक्रांति होय तो उत्तर दिनका पूर्वार्द्ध पुण्यकालहै, अर्द्धरात्रमें संक्रांति होय तो दोनोंदिन पुण्यकाल है ॥

अथ वत्सरारंभस्तिथिनिर्णयश्च ।

तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि वत्सरारंभः ॥ तत्रौदयिकी प्रतिपद्ग्राह्या ॥ दिनद्वये उदयव्याप्तौ अव्याप्तौ वा पूर्वा ॥ चैत्रमलमासत्वे वत्सरारंभनिमित्तकं तैलाभ्यंगं संकल्पादौ नूतनवत्सरनामकीर्तनाद्यारंभं च मलमासप्रतिपद्येव कुर्यात् ॥ प्रतिगृहं ध्वजारोपणं निंबपत्राशनं वत्सरादिफलश्रवणं नवरात्रारंभो नवरात्रोत्सवादिनिमित्ताभ्यंगादिश्च शुद्धमासप्रतिपदि कार्यः ॥ वत्सरारंभनिमित्तकोपि तैलाभ्यंगः शुद्धप्रतिपद्येवेति मयूखे उक्तम् ॥ अस्यां तैलाभ्यंगो नित्यः ॥ अकरणे प्रत्यवायोक्तेः ॥

अब तिथिनिर्णयको कहतेहैं । कि, उसमें चैत्रकी शुक्लप्रतिपदाको वर्षका प्रारम्भ होताहै उसमें उदयकालकी प्रतिपदा ग्रहण करने योग्यहै, दोनोंदिन उदयकालमें व्याप्ति हो वा न होय तो पहिली लेनी । चैत्र मलमास होय तो वर्षके प्रारंभनिमित्त तैलाभ्यंग और संकल्प आदिमें नवीन वर्षका नाम कथन आदिका प्रारंभ मलमासकी प्रतिपदाकोही करै । घर २ में ध्वजाका आरोपण (बांधना) और नींबके पत्तोंका भक्षण, वर्ष आदिके फलका श्रवण, नवरात्रका प्रारंभ और नवरात्रोत्सवके निमित्त उबटना आदि शुद्ध मासकी प्रतिपदामें करै और वर्षके प्रारंभ निमित्त तैलाभ्यंग शुद्धमासकी प्रतिपदामेंही मयूखमें कहा है । इसमें तैलाभ्यंग नित्य है क्योंकि न करनेमें प्रत्यवाय कहाहै ॥

अथ नवरात्रारंभः ।

अस्यामेव प्रतिपदि देवीनवरात्रारंभः ॥ अत्र परयुता मुहूर्तमात्रापि प्रतिपद्ग्राह्या ॥ अत्र मुहूर्तपरिमाणम्॥ "मुहूर्तमह्नो रात्रेश्च प्रोचुः पंचदशं लवम्" इत्युक्तं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ पारणादिविशेषनिर्णयः शारदनवरात्रवद्बोध्यः ॥ अत्रैव प्रपादानम् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥ अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यंतु हि पितामहाः ॥ अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्" ॥ प्रपां दातुमशक्तेन प्रत्यहमुदकुंभो द्विजगृहे देयः ॥ तत्र मंत्रः ॥ "एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात्सकला मम संतु मनोरथाः"॥

इसी प्रतिपदामें देवीके नवरात्रका प्रारंभ होताहै । इसमें परतिथिसे युक्त मुहूर्तमात्रभी प्रतिपदा लेनी । यहां मुहूर्त इस वचनमें कहा सर्वत्र जानना कि दिन रात्रमें पंद्रह पलको मुहूर्त कहतेहैं । पारणा आदिका विशेष निर्णय आश्विनके नवरात्रोंके समान जानना इसमेंही प्रपा-(प्याऊ) का दान कहाहै । उसका मंत्र यह है कि,यह सबकी सामान्य प्याऊ भूतों(प्राणियों) के निमित्त की है इसके देनेसे पितर पितामह तृप्त हों फिर आनिवार्य (मनै न किया जाय) जल चार मासतक दे । जो प्रपाके दानमें असमर्थ है वह प्रतिदिन ब्राह्मणके घर जलका घट दे । उसका मंत्र यह है-यह ब्रह्मा विष्णु शिवरूप धर्मका घट दिया है इसके देनेसे मेरे सब मनोरथ सिद्ध हों ॥

अथ कल्पादयः ।

इयमेव प्रतिपत्कल्पादिरपि ॥ एवं वैशाखशुक्लतृतीया फाल्गुनकृष्णतृतीया शुक्ला चैत्रपंचमी माघे त्रयोदशी कार्तिके सप्तमी मार्गशीर्षे नवमी एता अपि कल्पादयो बोध्याः ॥ आसु श्राद्धात्पितृतृप्तिः ॥

यही प्रतिपदा कल्पादिभी है । इसी प्रकार वैशाखशुद्ध तृतीया, फाल्गुन वदि तृतीया,शुक्ल-पक्षकी चैत्रमें पंचमी, माघमें त्रयोदशी, कार्तिकमें सप्तमी, मार्गशिरमें नवमी येभी कल्पा दि जाननी इनमें श्राद्ध करनेसे पितरोंकी तृप्ति होतीहै ॥

अथ मत्स्यजयंतीपक्षः ।

चैत्रशुक्लप्रतिपन्मत्स्यजयंतीत्येके ॥

कोई यह कहतेहैं कि, चैत्र सुदि प्रतिपदा मत्स्यजयंती है ॥

अथ गौरीव्रतम् ।

चैत्रे दधिक्षीरघृतमधुवर्जनं दंपतीपूजनात्मकं गौरीव्रतं कार्यम् ॥

चैत्रमें दही, दूध, घी, सहत इनको वर्जे दे, दंपती (स्त्री पुरुष) का पूजनरूप गौरीका व्रत करना ॥

अथ चंद्रव्रतम् ।

चैत्रशुक्लद्वितीयायां निशामुखे बालेंदुपूजनात्मकं चंद्रव्रतं कार्यम् ॥

चैत्र सुदि द्वितीयाको निशामुख (रात्रिका प्रारंभ) में बालचंद्रमाका पूंजनरूप चन्द्रव्रत करना ॥

अथ मासमादोलनगौरीव्रतम् ।

अस्यामेव दमनकेन गौरीशिवपूजनम् ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीं शिवयुतां संपूज्यांदोलनव्रतं मासपर्यंतं कार्यम् ॥ अत्र तृतीया मुहूर्तमात्रापि परा कार्या ॥ द्वितीयायुक्ता न कार्या ॥ चतुर्थीयुतायां वैधृत्यादियोगेपि सैव कार्या ॥ द्वितीया-योगनिषेधस्य बलवत्त्वात् ॥

और इसीमें दमनक (मोलसरी) से गौरी और शिवका पूजन करना । चैत्र शुद्ध तृतीयाको शिवसहित गौरीका पूजन करके आंदोलन (हिंडोला) का व्रत मासपर्यंत करना । इसमें तृतीया मुहूर्तमात्रभी परली लेनी, द्वितीयासे युक्त न करनी, चतुर्थीसे युक्तमें वैधृति आदिका योग होय तोभी वही करनी, क्योंकि द्वितीयाके योगका निषेध बलवान् है ॥

अथ रामांदोलनव्रतम् ।

अस्यामेव तृतीयायां श्रीरामचंद्रस्य दोलोत्सवमारभ्य मासपर्यंतं पूजापूर्वकमांदोलनं कार्यम् ॥ एवं देवतांतराणामपि ॥ इयमेव तृतीया मन्वादिरपि ॥ अत्रैव सर्वमन्वादिनिर्णय उच्यते ॥ तत्र मन्वादयश्चैत्रे शुक्लतृतीया पौर्णमासी च॥ ज्येष्ठे पौर्णिमा ॥ आषाढस्य शुक्लदशमी पौर्णमासी च ॥ श्रावणस्य कृष्णाष्टमी ॥ भाद्रपदस्य शुक्लतृतीया ॥ आश्विनस्य शुक्लनवमी ॥ कार्तिकस्य शुक्लद्वादशी पौर्णमासी च ॥ पौषे शुक्लैकादशी ॥ माघे शुक्लसप्तमी ॥ फाल्गुनस्य पौर्णमास्यमावास्या चेति चतुर्दश ज्ञेयाः ॥ एतास्तु मन्वादयः शुक्लपक्षस्थाः दैवे पित्र्ये कर्मणि पूर्वाह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः ॥ पूर्वाह्णोत्र द्वेधा विभक्तदिनपूर्वो भागस्तत्रैव श्राद्धादिविधानात् ॥ दैवान्मानुषाद्वापराधात् पूर्वाह्णे श्राद्धाद्यनुष्ठानासंभवेऽपराह्ण व्यापिन्यो ग्राह्याः ॥ दिनपूर्वार्द्धेऽपराह्णे वा श्राद्धाद्यनुष्ठेयम्॥ न तु दिनोत्तरार्द्धगतमध्याह्नभागे इति तात्पर्यम्॥कृष्णपक्षस्थास्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि पंचधा विभक्त दिनचतुर्थभागाख्यापराह्णव्यापिन्यो ग्राह्या मन्वादिषु पिंडरहितं श्राद्धं कार्यम् ॥

इसी तृतीयामें रामचंद्रके दोला उत्सवका प्रारंभ करके मासपर्यंत पूजा करके आंदोलन करै इसीप्रकार अन्य देवताओंकाभी करै यही तृतीया मन्वादिभी है । यहांही सब मन्वादियोंका निर्णय कहतेहैं, उनमें मन्वादि चैत्र सुदि तृतीया और पौर्णमासी हैं और ज्येठकी पौर्णिमा, आषाढ शुदि दशमी और पौर्णमासी, श्रावण वदि अष्टमी, भाद्रपद सुदि तृतीया, अश्विन सुदि नवमी, कार्तिक सुदि दशमी और पौर्णमासी, पौष सुदि एकादशी, माघ सुदि सप्तमी, फाल्गुनकी पूर्णिमा और अमावस्या ये चौदह मन्वादि जाननी और ये मन्वादि शुक्लपक्षकी दैव और पितृकर्ममें पूर्वाह्णव्यापिनी लेनी । दो प्रकारसे विभाग किये दिनके पूर्वभागको पूर्वाह्ण कहतेहैं, उसमेंही श्राद्ध आदि कहाहै । दैव वा मानुष अपराध (उपद्रव) से पूर्वाह्णमें श्राद्ध आदि न होसकै तो अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी । दिनके पूर्वार्द्धमें वा अपराह्णमें श्राद्ध आदि करना और दिनके उत्तरार्द्धमें विद्यमान मध्याह्न भागमें न करै यह तात्पर्य है । कृष्णपक्षमें तो दैव और पितृकर्ममें पांच प्रकारसे विभाग किये दिनके चौथे भागरूप अपराह्णमें व्यापिनी लेनी । मन्वादि तिथि आदिमें पिंडरहित श्राद्ध करना ॥

अथ श्राद्धफलम् ।

अत्र श्राद्धैर्द्विसहस्रवर्षं पितॄणां तृप्तिः ॥

इसमें श्राद्ध करनेसे दो सहस्र वर्षपर्यंत पितरोंकी तृप्ति होतीहै ॥

अथ मन्वादिश्राद्धलोपे प्रायश्चित्तम् ।

मन्वादिश्राद्धं च नित्यम् ॥ अत एव तदकरणे "त्वं भुवः प्रतिमानम्" इत्यृङ्मंत्रस्य शतवारं जले जपः प्रायश्चित्तं कार्यम् ॥

और मन्वादि श्राद्ध नित्य है इसीसे उसके न करनेमें "त्वं भुवः प्रतिमानं०" इस ऋचाके मंत्रका जलमें सौबार जप करना प्रायश्चित्त करै ॥

अथ षण्णवतिश्राद्धसंख्या ।

एवं षण्णवतिश्राद्धान्यपि नित्यानि ॥ तानि च ॥ "अमा १२ युग ४ मनु १४ क्रांति १२ धृति १२ पात १२ महालयाः १५ ॥ अष्टका ५ ऽन्वष्टका ५ पूर्वेद्युः ५ श्राद्धैर्नवतिश्च षट्" इति ज्ञेयानि ॥

इसी प्रकार छानवे ९६ श्राद्धभी नित्य हैं और वे ये हैं, अमावस्या १२, युगादि ४, मन्वादि १४, संक्रांति १२, वैधृति १२, व्यतिपात १२, महालय १५, अष्टका ५, अन्वष्टका ५, पूर्वेद्युः ५ ये छानवे जानने ॥

अथ दशावतारजयंत्यः ।

चैत्रशुक्लतृतीयायामपराह्णे मत्स्योत्पत्तिः ॥ वैशाखपूर्णिमायां सायं कूर्मोत्पत्तिः ॥ भाद्रपदशुक्लतृतीयायामपराह्णे वराहोत्पत्तिः ॥ वैशाखशुक्लचतुर्दश्यां सायं नारसिंहावतारः ॥ भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां मध्याह्ने वामनप्रादुर्भावः ॥ वैशाखशुक्लतृतीयायां मध्याह्ने परशुरामोद्भवः ॥ प्रदोषे इति बहवः ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां मध्याह्ने दाशरथिरामाभिव्यक्तिः ॥ श्रावणकृष्णाष्टम्यां निशीथे श्रीकृष्णाविर्भावः ॥ आश्विनशुक्लदशम्यां सायं बुद्धोऽभूत् ॥ श्रावणशुक्लषष्ठ्यां सायं कल्किर्जात इति तत्तत्कालव्यापिन्यो ग्राह्याः ॥ अत्र मत्स्यकूर्मवराहबुद्धकल्कीनामाषाढादिमासांतराण्येकादश्यादितिथ्यंतराणि प्रातरादिकालांतराणि च वचनांतरानुसारेणोक्तानि कल्पभेदेन व्यवस्थापनीयानि स्वस्वपरिगृहीतपक्षानुसारेण तत्तदुपासकैरुपोष्याणि ॥ श्रीरामकृष्णनृसिंहजयंत्य एव नित्याः सर्वैरुपोष्याः ॥

अब दश अवतारोंकी जयंती कहते हैं । चैत्र सुदि तृतीयाके अपराह्णमें मत्स्य अवतार हुआ । वैशाखकी पूर्णिमाको सायंकालके समय कूर्मकी उत्पत्ति हुई । भाद्रपद सुदि तृतीयाको अपराह्णमें वराह अवतार । वैशाख सुदि चतुर्दशीको सायंकालमें नरसिंहावतार । भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको मध्याह्नमें वामनका प्रादुर्भाव । वैशाखसुदि तृतीयामें मध्याह्नके समय परशुराम अवतार हुआ । प्रदोषमें हुआ यह बहुत कहतेहैं । चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नमें दशरथके रामचंद्र प्रकट हुये । श्रावण वदि अष्टमीको अर्द्धरात्रके समय श्रीकृष्णचंद्र प्रकट हुये । आश्विन सुदि दशमीको सायंकाल बुद्ध हुये । श्रावण सुदि षष्ठीको सायंकाल कल्कि हुये । ये सब तिस २ काल व्यापिनी लेनी । यहां मत्स्य, कूर्म, वराह, बुद्ध, कल्की इन अवतारोंके आषाढ आदि अन्य मास और एकादशी आदि अन्य तिथि, और प्रातःकाल आदि अन्य काल अन्य

वचनोंके अनुसारसे कहेहैं । उनकी कल्पभेदसे व्यवस्था जाननी । और अपने २ स्वीकार किये पक्षके अनुसार तिस २ के उपासकोंको उपवास करने योग्य हैं । और श्रीराम, कृष्ण, नृसिंह इनकी जयंतीही नित्य हैं इससे सबके उपवास करने योग्य हैं ॥

अथ गणेशदमनकचतुर्थी ।

चैत्रशुक्लचतुर्थ्यां मध्याह्नव्यापिन्यां लड्डुकादिभिः श्रीगणेशमर्चयित्वा दमनकारोपणं कुर्यात् ॥ विघ्ननाशं सर्वान्कामांश्च प्राप्नुयात् ॥

चैत्र सुदि मध्याह्नव्यापिनी चतुर्थीको लड्डु आदिसे श्रीगणेशका पूजन कर दमनकका आरोप करै तो विघ्नोंका नाश और सब कामनाओंको प्राप्त होताहै ॥

अथ शुक्लपचम्या व्रतानि ।

चैत्रशुक्लपंचम्यामनंतादिनागान्पूजयित्वा क्षीरसर्पिर्नैवेद्यं दद्यात् ॥ अस्यामेव पंचम्यां लक्ष्मीपूजनम् ॥ अत्रैवोच्चैःश्रवादिपूजनात्मकं हयव्रतमुक्तम् ॥ अत्र सर्वत्र पंचमी सामान्यनिर्णयानुसारेण ग्राह्या ॥ एवमग्रेपि ॥ यत्र विशेषनिर्णयो नोच्यते तत्र प्रथमपरिच्छेदोक्त एव निर्णयोऽनुसंधेयः ॥ षष्ठ्यां स्कंदस्य दमनकारोपणम् ॥ सप्तम्यां भास्करस्य दमनकपूजनं नवम्यां देव्याः ॥ सर्वदेवानां पौर्णमास्यामित्यन्यत्र विस्तरः ॥ चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः ॥ तत्र नवमीयुता ग्राह्या ॥

चैत्र सुदि पंचमीको अनंत आदि नागोंको पूजकर दूध, घी, नैवेद्य दे । इसीपंचमीमें लक्ष्मी पूजन करै, इसीमें उच्चैःश्रवा आदिका पूजनरूप हयव्रत कहाहै, इन सबमें पंचमी सामान्य निर्णयके अनुसार ग्रहण करनी इसी प्रकार आगेभी समझना, जहां विशेष निर्णय न कहा जाय वहां प्रथम परिच्छेदमें कहा निर्णयही समझना । षष्ठीको स्कन्दका दमनारोप करै, सप्तमीको सूर्यके दमनका पूजन, नवमीको देवीका, सब देवताओंका दमनारोपण पूर्णिमामें करै, इसका विस्तार अन्यग्रंथोंमें देखना । चैत्र सुदि अष्टमीको भवानीकी उत्पत्ति है, उसमें नवमीसे युक्त लेनी ॥

अथाशोककलिका ।

अत्र पुनर्वसुयुताष्टम्यामष्टाशोककलिकाप्राशनम् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "त्वामशोक नराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ॥ पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु" इति ॥

यहां पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त अष्टमीमें अशोककी कलिका भक्षणकरै । उसका मंत्र यह है कि, हे शोकरहित मनुष्योंको वांछितके दाता और मधुमासमें उत्पन्न अशोक शोकसे तपायमान मैं तुझको पीता हूं, मुझे सदैव शोकसे रहितकर ॥

अथ वाजपेयफलस्नानयोगः ।

अत्रैव योगविशेषे कृत्यम्॥ "पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी ॥ प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत्" इति ॥

यहांही योग विशेषमें कर्महै कि, पुनर्वसु और बुधसे युक्त चैत्र सुदि अष्टमीको प्रातःकाल विधिसे स्नान करके वाजपेय यज्ञके फलको प्राप्त होताहै ॥

अथ रामनवमीनिर्णयः ।

चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां पुनर्वसुयुतायां मध्याह्ने कर्के लग्ने मेषस्थे सूर्ये उच्चस्थे ग्रहपंचके श्रीरामजन्मश्रवणात् ॥ अस्यां मध्याह्नव्यापिन्यामुपोषणं कार्यम् ॥ पूर्वेद्युरेव मध्याह्ने सत्त्वे सैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तावव्याप्तौ वा परा ॥ अष्टमीविद्धाया निषेधात् ॥ अतः पूर्वेद्युः सकलमध्याह्नव्यापिनीमपि त्यक्त्वा मध्याह्नैकदेशव्यापिन्यपि परैव ग्राह्या ॥ केचित्त्वष्टमीविद्धां मध्याह्नव्यापिनीं पुनर्वसुयुतामपि त्यक्त्वा परेद्युस्त्रिमुहूर्तापि नवमी सर्वैरप्युपोष्या यदि तु दशम्या ह्रासवशेन पारणादिने स्मार्तानामेकादशीव्रतप्राप्तिस्तदा स्मार्तैरष्टमीविद्धोपोष्या वैष्णवैर्मुहूर्तत्रययुता परैवोपोष्या शुद्धाया नवम्या अलाभे मुहूर्तत्रयन्यूनत्वे वा सर्वैरप्यष्टमीविद्धैवोपोष्येत्याहुः ॥ इदं व्रतं नित्यं काम्यं च ॥

चैत्र सुदि नवमी रामनवमी है, चैत्र सुदि पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त नवमीको मध्याह्नमें कर्कलग्न, मेषके सूर्य और उच्चके पांच ग्रहके समय श्रीरामका जन्म सुनाहै, इस मध्याह्न व्यापिनीमें उपवास करै । पहिले दिन मध्याह्नमें होय तो वही ग्रहण करनी, दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी हो वा न हो परली लेनी क्योंकि, अष्टमी विद्धाका निषेध है, इससे पहिले दिन संपूर्ण मध्याह्नव्यापिनीकोभी छोडकर मध्याह्नके एकदेश व्यापिनीभी परलीही ग्रहण करनी । कोई तो यह कहते हैं कि, अष्टमीविद्धा मध्याह्नव्यापिनी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्तकोभी छोडकर परले दिन, तीन मुहूर्त भी नवमी सबके भी उपवास करने योग्य है । यदि दशमीके क्षयवशसे पारणाके दिन स्मार्तोंका एकादशीव्रत होय तो स्मार्त अष्टमी विद्धामें उपवास करैं, वैष्णव तो तीन मुहूर्तसे युक्त परलीकोही उपवास करैं, शुद्ध नवमीके न मिलनेपर वा तीन मुहूर्तसे न्यून होनेपर सबभी अष्टमीसे युक्तकाही उपवास करैं यह व्रत नित्य और काम्यहै ॥

अथ व्रतप्रयोगः ।

अष्टम्यामाचार्यं संपूज्य ॥ "श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येहं द्विजोत्तम ॥ तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेव मे" ॥ इति प्रार्थ्य॥ "नवम्यामंगभूतेन एकभक्तेन राघव॥ इक्ष्वाकुवंशतिलक प्रीतो भव भवप्रिय" इत्येकभक्तं संकल्प्य साचार्यो हविष्यं भुंजीत ॥ पूजामंडपं तत्र वेदिं च कृत्वा नवम्यां प्रातः ॥ "उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव ॥ तेन प्रीतो भव त्वं मे संसारात्त्राहि मां हरे" इत्युपोषणं संकल्प्य ॥ "इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां त्वां प्रयत्नतः॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते" इति प्रतिमादानं संकल्पयेत् ॥ श्रीरामनवमीव्रतांगभूतां षोडशोपचारैः श्रीरामपूजां करिष्ये इति संकल्प्य वेदिकायां सर्वतोभद्रे कलशं संस्थाप्य तत्र पूर्णपात्रे सवस्त्रेग्न्युत्तारणादिविधिना प्रतिमायां श्रीरामं प्रतिष्ठाप्य पुरुषसूक्तेन

षोडशोपचारैः संपूज्य पुष्पपूजांते "रामस्य जननी चासि रामात्मकमिदं जगत् ॥ अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तु ते" ॥ इति कौसल्यां संपूज्य ॥ ॐ नमो दशरथायेति दशरथं संपूज्य सर्वपूजां समाप्य मध्याह्ने फलपुष्पजलादिपूर्णेन शंखेनार्घ्यं दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥ परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोनघ" इति ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्नित्यपूजां विधाय मूलमंत्रेण पायसाष्टोत्तरशताहुतीर्हुत्वा पूजां विसृज्याचार्याय प्रतिमां दद्यात ॥ "इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलंकृतम् ॥ शुचिवस्त्रयुगच्छन्नां रामोहं राघवाय ते ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः" ॥ इति मंत्रः ॥ "तव प्रसादं स्वीकृत्य क्रियते पारणा मया ॥ व्रतेनानेन संतुष्टः स्वामिन् भक्तिं प्रयच्छ मे" इति प्रार्थ्य ॥ नवम्यंते पारणं कुर्यात् ॥ इदं व्रतं मलमासे न कार्यम् ॥ एवं जन्माष्टम्यादिव्रतमपि न कार्यम् ॥ अस्यामेव नवम्यां देवीनवरात्रसमाप्तिः कार्या ॥ एतन्निर्णय आश्विननवरात्रनवमीवत् ॥

अब व्रतके प्रयोगको कहतेहैं–अष्टमीको आचार्यका पूजन करके हे द्विजोंमें उत्तम ! मैं श्रीरामकी प्रतिमाका दान करताहूं उसमें तू मेरा आचार्य है तूही मेरा श्रीराम रूपहै ऐसे प्रार्थना करके और हे राघव! नवमीके अंगभूत एकभक्तसे हे इक्ष्वाकुवंशतिलक ! हे भवप्रिय ! मेरऊपर प्रसन्न हो, इसप्रकार एक भक्तका संकल्प करके आचार्य सहित हविष्यका भोजन करै, वहां पूजामंडप और वेदिको करके और नवमीको प्रातःकाल उपवास करके, आज नवमीके आठ प्रहरोंमें हे राघव! उपवाससे तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो और हे हरे ! संसारसे मेरी रक्षा करो ऐसे उपवासका संकल्प करके सुवर्णकी इस श्रीरामकी प्रतिमाको श्रीरामकी प्रीतिके निमित्त रामके भक्त और बुद्धिमान् आपको देताहूं, ऐसे प्रतिमा दानका संकल्प करै, श्रीराम नवमीके अंगभूत श्रीरामकी पूजाको षोडशोपचारोंसे करताहूं, यह संकल्प करके वेदीमें सर्वतो भद्रपर कलशको स्थापन करके वहां वस्त्रसहित पूर्णपात्रमें अग्निउत्तारण आदि विधिसे प्रतिमामें श्रीरामकी प्रतिष्ठा (रखना) करके पुरुषसूक्तसे षोडशोपचार पूजा करके, पुष्प पूजाके अंतमें तू रामकी जननी है और यह जगत् रामरूप है इससे तेरा पूजन करताहूं हे लोकमातः ! आपको नमस्कार है इसमंत्रसे कौसल्याको पूजकर, दशरथको नमस्कार है, इससे दशरथको पूजकर और सब पूजाको समाप्त करके मध्याह्नमें फल, पुष्प, जल आदिसे पूर्ण शंखसे अर्घ्य दे उसका मंत्र यह है कि, रावणके वधार्थ और धर्मकी स्थापनाके लिये दानओंके विनाश और दैत्योंके मारणार्थ और साधुओंकी रक्षाके लिये राम, स्वयं हरि आप हुये । हे अनघ ! भ्राताओं सहित मेरे अर्घको ग्रहण करो, रात्रिको जागरण और प्रातःकाल नित्य पूजाको करके मूल मंत्रसे पायस (खीर) की अष्टोत्तर शत १०८ आहुति होमकर और पूजाका विसर्जन करके आचार्यको प्रतिमा देदे, अलंकार की हुई यह शुद्ध श्रीरामकी सुवर्ण प्रतिमा दो वस्त्रोंसे ढकीका रामरूप मैं राघवरूप आपको श्रीरामकी प्रीतिके निमित्तसे देताहूं हे राघव ! मेरे ऊपर प्रसन्न हो यह मंत्र है, आपके प्रसादको स्वीकार करके मैं पारणा करताहूं

इस व्रतसे संतुष्ट होकर प्रसन्न हो और हे स्वामिन्! मुझे भक्ति दो, यह प्रार्थना करके नवमीके अंतमें पारणा करै, यह व्रत मलमासमें न करना, ऐसेही जन्माष्टमीका व्रतभी न करना, इसी नवमीको देवीके नवरात्रकी समाप्ति करनी, इसका निर्णय अश्विनकी नवरात्र नवमीके समान है ॥

श्रीकृष्णांदोलोत्सवः ।

चैत्रशुक्लैकादश्यां कृष्णस्यांदोलनोत्सवः ॥ "दोलारूढं प्रपश्यंति कृष्णं कलिमलापहम् ॥ अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते धूनने कृते ॥ तावत्तिष्ठंति पापानि जन्मकोटिकृतान्यपि ॥ क्रीडंते विष्णुना सार्द्धं वैकुंठे देवपूजिताः" इत्यादिकस्तन्माहिमा ॥ चैत्रशुक्लद्वादश्यां विष्णोर्दमनोत्सवः ॥ स च पारणाहे ॥ "पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत् ॥ तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे" इत्युक्तेः ॥ शिवस्य चतुर्दश्यां कार्यः ॥

चैत्र शुदि एकादशीको कृष्णका आंदोलनोत्सव करना, कलियुगके मलको दूर करनेवाले कृष्णको जो दोलापर बैठेको देखतेहैं, वे झूलानेसे सहस्रों अपराधसे मुक्त होतेहैं, कोटियों जन्मके किये पापभी इतनेही टिकतेहैं, और वे देवोंसे पूजित होकर विष्णुके संग वैकुंठमें क्रीडा करतेहैं, इत्यादि उसकी महिमा है । चैत्र सुदि द्वादशीको विष्णुका दमनोत्सव करै, वह पारणाके दिन करै, एकघडी भी द्वादशी न मिले तो पवित्र दमनके अर्पणमें त्रयोदशी ग्रहण करनी, शिवजीका दमनोत्सव चतुर्दशीको करना ॥

अथ दमनारोपणप्रयोगः ।

उपवासदिने नित्यपूजां कृत्वा दमनकस्थानं गत्वा क्रयेण तमादाय चंदनादिना संपूज्य श्रीकृष्णपूजार्थं त्वां नेष्ये इति प्रार्थ्य प्रणमेत् ॥ अन्यदेवतासु यथादैवतमूहः तता दमनकं गृहमानीय पंचगव्येन शुद्धोदकेन च प्रक्षाल्य देवाग्रे स्थापयित्वा तस्मिन्नेव दमनकेऽशोककालवसंतकामान्काममात्रं वा गंधादिभिः पूजयेत् ॥ तत्र ॥ "नमोस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे ॥ मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते" इति कामावाहनमंत्रः ॥ "काम भस्मसमुद्भूत रतिबाष्पपरिप्लुत ॥ ऋषिगंधर्वदेवादिविमोहक नमोस्तु ते" इति दमनकमुपस्थाय ॥ 'ॐ कामाय नमः' इति मंत्रेण सपरिवाराय कामरूपिणे दमनकाय गंधाद्युपचारान् दद्यात् ॥ ततो रात्रौ देवं संपूज्याधिवासनं कुर्यात् तदित्थम् ॥ देवाग्रे सर्वतोभद्रं संपाद्य तत्र कलशं संस्थाप्य तत्र धौतवस्त्राच्छन्नं दमनकं वैणवपटले स्थापितं निधाय ॥ "पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः ॥ दमन त्वमिहागच्छ सांनिध्यं कुरु ते नमः" इति दमनकदेवतामावाह्य प्रागाद्यष्टदिक्षु क्लीं कामदेवाय नमो ह्रीं रत्यै नमः ॥ १ ॥ क्लीं भस्मशरीराय नमो ह्रीं रत्यै० ॥२॥ क्लीं अनंगाय नमो ह्रीं रत्यै० ॥ ३ ॥ क्लीं

मन्मथाय नमो ह्रीं रत्यै० ॥४॥ क्लीं वसंतसखाय नमो ह्रीं रत्यै० ॥ ५ ॥ क्लीं स्मराय नमो ह्रीं रत्यै० ॥ ६ ॥ क्लीं इक्षुचापाय नमो ह्रीं रत्यै० ॥ ७ ॥ क्लीं पुष्पबाणास्त्राय नमो ह्रीं रत्यै० ॥ ८ ॥ इति पूजयेत् ॥ "तत्पुरुषाय विद्महे कामदेवाय धीमहि ॥ तन्नोनंगः प्रचोदयात्" ॥ इति गायत्र्या दमनकमष्टोत्तरशतमभिमंत्र्य गंधादिभिः संपूज्य ह्रीं नमः इति पुष्पांजलिं दत्त्वा नमोस्तु पुष्पबाणायेति पूर्वोक्तावाहनमंत्रेण नमेत् ॥ "क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि संनिधौ भव ते नमः" इति देवं प्रार्थ्य पुष्पांजलिं दत्त्वा तस्यामेकादश्यां रात्रौ जागरणं कुर्यात् ॥ प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य दूर्वागंधाक्षतयुतां दमनकमंजरीमादाय मूलमंत्रं पठित्वा ॥ "देवदेव जगन्नाथ वांछितार्थप्रदायक ॥ हृत्स्थान् पूरय मे विष्णो कामान्कामेश्वरीप्रिय ॥ इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् ॥ इमां सांवत्सरीं पूजां भगवन्परिपूरय" ॥ पुनर्मूलं जप्त्वा देवे दमनमर्पयेत् ॥ ततो यथाशोभं दत्त्वांगदेवताभ्यो दत्त्वा देवं प्रार्थयेत् ॥ "मणिविद्रुममालाभिर्मंदारकुसुमादिभिः ॥ इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ॥ तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥ जानताजानता वापि न कृतं यत्तवार्चनम् ॥ तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ जितं ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ हृषीकेश नमस्तेस्तु महापुरुषपूर्वज ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनम्" इत्यादि च संप्रार्थ्य पंचोपचारैर्देवं संपूज्य नीराज्य ब्राह्मणेभ्यो दमनं दत्त्वा स्वयं शेषं संधार्य सुहृद्युतः पारणां कुर्यात् ॥ मंत्रदीक्षारहितैर्नाम्नार्पणीयम् ॥ अस्य गौणकालः श्रावणमासावधिः ॥ नेदं मलमासे भवति ॥ शुक्रास्तादौ तु कर्तव्यम् ॥ इति दमनारोपणविधिः ॥ अस्यामेव भारते ॥ "अहोरात्रेण द्वादश्यां चैत्रे विष्णुरितिस्मरन् ॥ पुंडरीकमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति" इति चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनंगपूजनव्रतम् ॥ तत्र त्रयोदशी पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥

अब प्रयोगको कहतेहैं, उपवासके दिन नित्यपूजाको करके दमनके स्थानमें जाकर और क्रमसे उसको लेकर और चन्दन आदिसे पूजकर, श्रीकृष्णकी पूजाके लिये तुझे लेजाताहूं, ऐसे प्रार्थना करके प्रणाम करै। अन्य देवताओंमें देवताओंके अनुसार यह करना, फिर दमनको घरपर लाकर पंचगव्य और शुद्ध जलसे प्रक्षालन करके और देवताके आगे स्थापन करके उसी दमनकमें अशोक, काल, वसंत, काम, वा काममात्रका गंध आदिसे पूजन करै, उसमें कामको आवाहनका यह मंत्र है, कि पुष्पहैं बाण जिसके, जगत्के मंगल कर्ता, जगत्के नेता (प्रेरक) रतिके प्यारे कामदेवको नमस्कार है, कामकी भस्मसे पैदा हुये, रतिकी बाष्प (आंसु) से युक्त, ऋषि गंधर्व देव आदिके मोहनकारी, दमनकको नमस्कार है इसमंत्रसे दमनकी स्तुति करके, "ॐकामाय नमः" इस मंत्रसे परिवार सहित कामरूप दमनकको गंध आदि उपचार (सामग्री) दे, फिर रात्रिमें देवताको पूजकर अधिवासन (सुलाना) करै, वह ऐसे करै कि, देवताके आगे सर्वतोभद्र रचकर उसपर कलशको स्थापन करके उसपर

धुले वस्त्रसे ढके और वंशके पटलपर स्थापन किये दमनको रखकर और देवताओंके देव लक्ष्मीके पति विष्णुकी पूजाके लिये हे प्रभो दमन! तू यहां आ और समीप हो, तुझे नमस्कार है, इसमंत्रसे दमनक देवताका आवाहन करके, पूर्व आठ दिशाओंमें, क्लीं कामदेवको ह्रीं रतिको नमस्कार १ क्लीं भस्मशरीरको ह्रीं रतिको नमस्कार है २ क्लीं अनंगको ह्रीं रतिको ३ क्लीं मन्मथको ह्रीं रतिको ४ [illegible] मनके मित्रको ह्रीं रतिको ५ क्लीं स्मरको ह्रीं रतिको ६ क्लीं इक्षुचापको ह्रीं रतिको ७ [illegible] पुष्पोंके बाण और अस्त्रवालेको ह्रीं रतिको ८ नमस्कार है, इनका आठों दिशाओंमें पूजन करै, फिर तत्पुरुषको जानते हैं, और कामदेवका ध्यान करते हैं, तिससे अनंग हमारी सत्कर्ममें प्रेरणा करो, इस गायत्रीसे अष्टोत्तर(१०८)शतबार दमनका अभिमंत्रण और गंध आदिसे पूजनकर 'ह्रीं नमः'इस मंत्रसे पुष्पांजलि देकर, पुष्पबाणको नमस्कार है, इस पूर्वोक्त आवाहनके मंत्रसे नमस्कार करै, क्षीरसागरमें महानागकी शय्यापर स्थित है शरीर जिसका ऐसे आपकी मैं प्रातःकाल नित्य पूजा करताहूं, आपको नमस्कार है, इस मंत्रसे देवकी प्रार्थना और पुष्पांजलि देकर उस एकादशीको जागरण करै, प्रातःकाल नित्य पूजा करनेके अनंतर फिर देवपूजा करके दूर्वा, गंध, अक्षतसे युक्त दमनकी मंजरीको लेकर और मूलमंत्र पढकर, हे देव देव, हे जगत्के नाथ, हे वांछित अर्थके दाता, हे कामेश्वरीके प्यारे, मेरे हृदयके कामोंको पूरण करो । और हे देव ! मेरे ऊपर अनुग्रह करके इस दमनको ग्रहण करो । हे भगवन् इस सांवतसरी पूजाको पूर्ण करो, फिर मूलमंत्रको जप कर दवके ऊपर दमनकका अर्पण करै, फिर शोभाके अनुसार अंग देवताओंको देकर देवताकी प्रार्थना करै, कि मणि, मूंगाकी मालासे, और मंदारके पुष्प आदिसे यह सांवत्सरी पूजा आपकी हो, हे देव ! जैसे वनमाला और कौस्तुभमणिको हृदयमें निरंतर धारते हो वैसेही दमनककी माला और पूजाको हृदयमें धारण करो । जानकर वा न जानकर जो आपका पूजन न किया हो हे रमापते ! वह सब आपकी प्रसन्नतासे पूर्ण हो, हे पुंडरीकाक्ष आपकी जयहो हे विश्वके भावन (कर्ता) आपको नमस्कार है, हे हृषीकेश, हे महापुरुष, हे पूर्वज, आपको नमस्कार है, जो मंत्रसे हीन, क्रियासे हीनहो इत्यादिकीभी प्रार्थना करके पंचोपचारोंसे देवको पूजकर, नीराजन (आरति) करके और ब्राह्मणोंको दमनक देकर, और शेषोंको स्वयं धारण करके मित्रोंसहित पारणा करै, मंत्र और दीक्षासे जो रहित हैं वे नाम लेकरही अर्पण करैं, इसका गौणकाल श्रावण मासतक है, यह मलमासमें नहीं होता । शुक्रास्त आदिमें वो करने योग्य है । इति दमनारोपणविधि । इसीमें भारतमें लिखाहै, चैत्रकी द्वादशीको विष्णु ऐसे स्मरण करता हुआ एक अहोरात्रसेही पुंडरीक (विष्णु) को प्राप्त होताहै और देवलोकमें जाता है, चैत्र सुदि त्रयोदशीको अनंगका पूजन और व्रत होताहै, उसमें त्रयोदशी पूर्वविद्धा लेनी ॥

अथ चतुर्दश्यां नृसिंहस्य दोलनोत्सवः ।

अत्रैव शिवस्यैकवीरायाः भैरवस्य च दमनकैः पूजनम् ॥ अत्र चतुर्दशी पूर्वविद्धाऽपराह्णव्यापिनी ग्राह्या ॥ अपराह्णव्याप्त्यभावेऽपराह्णस्पर्शिन्यपि पूर्वा ग्राह्या ॥ तदभावे परा ग्राह्या ॥ चैत्रपौर्णमासी सामान्यनिर्णया परा ग्राह्या ॥ पूर्वोक्ततत्तत्तिथौ दमनकपूजनाकरणेऽस्यामेव सर्वदेवानां दमनकपूजनम् ॥ चैत्र्यां चित्रायु-

तायां चित्रवस्त्रदानं सौभाग्यदम् ॥ रविगुरुमंदवारयुतचैत्र्यां स्नानश्राद्धादिभिरश्वमेधपुण्यम् ॥

अब चतुर्दशीको नृसिंहका दोलन (झुलाना) उत्सव कहते हैं, और इसी तिथिमें शिवजी एकवीरा और भवानी इनका दमनकोंसे पूजन होताहै, उसमें चतुर्दशी पूर्वविद्धा और अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी, अपराह्णव्यापिनी न होय तो वह पूर्वविद्धाभी लेनी । जिसका पराह्ण कालमें स्पर्श हो, वह न मिलै तो परली ग्रहण करनी, चैत्रकी पौर्णमासी सामान्य निर्णयसे परली लेनी, पूर्वोक्त तिस २ तिथिमें दमनककी पूजा न की जाय तो इसी तिथिमें सब दमनकोंकी पूजा करै, चित्रा नक्षत्रसे युक्त चैत्रकी पौर्णमासीको चित्रवस्त्रका दान सौभाग्य देनेवाला है । सूर्य, बृहस्पति, शनैश्चर इनसे युक्त चैत्रकी पूर्णिमाको श्राद्ध, स्नान आदि करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल होताहै ॥

अथ वैशाखस्नानविधिः ।

चैत्रस्यशुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वा मेषसंक्रांतिमारभ्य वा वैशाखस्नानारंभः ॥ तत्र मंत्रः ॥ "वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः ॥ प्रातः संनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ॥ मधुहंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात ॥ निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ॥ माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन ॥ प्रातःस्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् " इति ॥ अत्र हविष्याशनब्रह्मचर्यादयो नियमाः ॥ एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्रयोदश्यादिदिनत्रयमंते स्नायात् ॥ इयं पौर्णमासी मन्वादिः पूर्वमुक्ता ॥

चैत्र सुदि एकादशी वा पौर्णिमा वा मेषकी संक्रांतिसे वैशाखके स्नानका आरंभ करै, उसका मंत्र यह है कि, वैशाखका संपूर्ण मास, मेषसंक्रांतिभर प्रातःकाल नियमसे स्नान करूंगा इससे मधुसूदन प्रसन्नहो । मधुके हन्ता श्रीकृष्णके प्रसाद और ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे, मेरा प्रतिदिन वैशाखका स्नान निर्विघ्न हो, हे मेषराशिके सूर्य, माधवमासमें प्रातःकालके स्नानसे, हे मुरारे ! हे मधुसूदन, हे नाथ,हे पापहन् मुझे फलके दाता हो इसस्नानमें हविष्यका भोजन और ब्रह्मचर्य आदि नियम हैं, इस प्रकार संपूर्ण वैशाखभर स्नान न करसकै तो त्रयोदशी आदि तीन्न दिन वैशाखके अंतमेंही स्नान करै, यह पूर्णिमा मन्वादि है, यह पहिले कह आये हैं ॥

अथ वारुणीयोगनिर्णयः ।

चैत्रकृष्णत्रयोदशी शततारकानक्षत्रयुता वारुणीसंज्ञका स्नानादिना ग्रहणादिपर्वतुल्यफलदा ॥ शनिवारयुक्ता महावारुणी शुभयोगशनिवारशततारकायुक्ता महामहावारुणी॥अत्र योगे कृष्णादिः पौर्णमास्यंतो मासस्तेनामांतमासे फाल्गुनकृष्ण त्रयोदशी ग्राह्येति बोध्यम् ॥ चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां शिवसन्निधौ स्नानेन भौमवारयुतायां गंगायां स्नानेन पिशाचत्वाभावः फलम् ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे चैत्रमासकृत्यनिर्णयोद्देशः समाप्तः ॥

चैत्रकृष्णपक्षकी त्रयोदशी विशाखा नक्षत्रसे युक्त होय तो उसकी वारुणी संज्ञाहै, वह स्नान आदिमें ग्रहणके तुल्य फल देनेवाली होतीहै, शनिवारसे युक्त होय तो महावारुणी, और शुभयोग, शनिवार, विशाखा नक्षत्र इन तीनोंसे युक्त होय तो महामहावारुणी होतीहै । इस योगमें कृष्णपक्षसे पूर्णिमासीतक पक्ष लेना, तिससे अमान्त मासमें फाल्गुन कृष्णपक्षकी त्रयोदशी लेनी यह जानना, चैत्रके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको शिवके समीप स्नानसे और भौमवारसे युक्त होय तो गंगाके स्नानसे, पिशाचत्वका अभाव फल है अर्थात् वह पिशाच नहीं होता ॥ इति काशीनाथोपाध्यायविरचितधर्मसिन्धुसारस्य पण्डितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवरणे–चैत्रमासनिर्णयोद्देशः समाप्तः ॥

अथ वैशाखे वृषभसंक्रमः ।

अत्र वृषसंक्रमे पूर्वाः षोडश नाडिकाः पुण्यकालः ॥ रात्रौ च प्रागुक्तम् ॥ अत्र प्रातःस्नानं तिलैः पितृतर्पणं धर्मघटदानं च कार्यम् ॥

अब वैशाखमासका निर्णय कहतेहैं–वैशाखमासमें मेषसंक्रांतिकी पहिली सोलह घडी पुण्यकाल है, और रात्रिमें संक्रान्तिका पुण्यकाल पूर्व कह आये, वैशाखमें प्रातःकाल स्नान, तिलोंसे पितरोंका तर्पण और धर्मघटका दान करै ॥

अथ वसंतपूजनम् ।

अत्र ब्राह्मणानां गंधमाल्यपानककदलीफलादिभिर्वसंतपूजा कार्या ॥

और गंध, माल्य, पान, केला, फल आदिसे ब्राह्मणोंकी वसंतपूजा करनी ॥

अथ देवस्य जलाधिवासविधिः ।

वैशाखे ज्येष्ठे वा यत्र मासे ऊष्मबाहुल्यम् ॥ तत्र प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गंधोदकपूर्णपात्रे विष्णुं संस्थाप्य पंचोपचारैः संपूज्य तत्रैव जले सूर्यास्तपर्यंतमधिवास्य रात्रौ स्वस्थाने स्थापयित्वा पंचोपचारैः संपूजयेत्तेन तीर्थोदकेन गृहदारादियुतमात्मानं पावयेत् ॥ एतच्च द्वादश्यां दिवा न कार्यम् ॥ रात्रौ किंचित्कालं जलस्थं पूजयित्वा स्वस्थाने स्थापयेत् ॥

वैशाख वा ज्येष्ठमें जब ऊष्म (गरमी) अधिक होय तब प्रातःकाल नित्यपूजा करके, गंध और जलसे पूर्णपात्रमें विष्णुका स्थापन और पंचोपचारसे पूजन करके उसी जलमें सूर्यास्त पर्यंत अधिवासनके अनन्तर, रात्रिको विष्णुको सिंहासनमें स्थापन करके पंचोपचारसे पूजन करै और उस तीर्थके जलसे घर और अपने आत्माको पवित्र करै । यह अधिवासन द्वादशीको दिनमें न करना, किन्तु रात्रिमें जलमें स्थित विष्णुका पूजन करके सिंहासनमें स्थापन करै ॥

अथ तुलसीभिः पूजने मुक्तिः ।

अत्र मासे कृष्णगौराख्यतुलसीभिर्विष्णुं त्रिकालमर्चयेन्मुक्तिः फलम् ॥

इस मासमें कृष्ण और गौरा तुलसीसे त्रिकाल विष्णुके पूजनका मुक्तिफल है ॥

अथाश्वत्थसेवनविधिः ।

प्रातः स्नात्वा बहुतोयेनाश्वत्थमूलं सिंचेत् ॥ प्रदक्षिणाश्च कुर्यात् ॥ अनेककुल-तारणं फलम् ॥

प्रातःकाल बहुत जलके तलाब आदिमें स्नान करके पीपलको सींचै और प्रदक्षिणा करै तो, अनेक कुलका तारण होताहै ॥

अथ गोकंडूयनम् ।

एवं गवां कंडूयनेपि ॥

इसी प्रकार गौओंके कण्डूयन (खुजाना) में भी समझना ॥

अथ मासव्रतम् ।

अत्र मास एकभक्तनक्तमयाचितं वा सर्वेप्सितफलप्रदम् ॥

इस मासमें एकभक्त, नक्त, अयाचित भोजन करै तो सब वांछित फलोंको देता है ॥

अथ प्रपादानं गलतिबंधनादि ।

अत्र मासे प्रपादानं देवे गलंतिकाबंधनं व्यजनच्छत्रोपानच्चंदनादिदानमहाफलम् ॥

इस मासमें प्रपाका दान, देवके गलंतिका (कंठी) बांधना, और बीजना, छत्र, उपानह्, चंदन आदिके दानका महान् फल होताहै ॥

अथ वैशाखे मलमासे मासद्वयं स्नानादिव्रतम् ।

यदा वैशाखो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधात् ॥ मास-द्वयं वैशाखस्नानहविष्याशनादिनियमा अनुष्ठेयाः चांद्रायणादिकं तु मलेपि समा-पनीयम् ॥ वैशाखशुक्लतृतीयायां गंगास्नानं यवहोमो यवदानं यवाशनं च सर्वपा-पापहम् ॥

और जब वैशाख मलमास होय तो मलमासमें काम्य कर्मोंका निषेध है, इसमें दो मासतक वैशाखका स्नान, हविष्य भोजन आदि नियम करने, चांद्रायण आदिकी समाप्ति तो मलमासमें भी करनी, वैशाखशुक्ल तृतीयाको गंगास्नान, जौकाहोम, और दान और भोजन, करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं ॥

अथ तृतीयायां चन्दनपूजा ।

"यः करोति तृतीयायां कृष्णं चंदनभूषितम् ॥ वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्य-च्युतमंदिरम्" ॥ इयमक्षय्यतृतीयासंज्ञिका ॥ अस्यां यत्किंचिज्जपहोमपितृ-तर्पणदानादि क्रियते तत्सर्वमक्षयम् ॥ इयं रोहिणीबुधयोगे महापुण्या ॥ अस्यां जपहोमादिकृत्येपि वक्ष्यमाणयुगादिवन्निर्णयः ॥ इयं कृतयुगस्यादिः ॥ अत्र

युगादिश्राद्धमपिंडकमनुष्ठयम् ॥ श्राद्धासंभवे तिलतर्पणमप्यत्र कार्यम् ॥ अत्र शुक्लयुगादिकृत्यं पूर्वाह्णे कार्यम् ॥ तत्रासंभवेपराह्णेपि ॥ कृष्णयुगादिकार्य त्वपराह्ण इत्यादिमन्वादिप्रकरणोक्तो निर्णयः ॥ द्वेधा विभक्तदिनपूर्वार्द्धैकदेशव्यापिनी दिनद्वये चेत्त्रिमुहूर्ताधिकव्याप्तिसत्त्वे परा ॥ त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ॥ "मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः ॥ व्यतीपाते वैधृतौ च तत्कालव्यापिनी क्रिया" इति वचनेन साकल्यव्याप्तिवाक्यानामपवादात् ॥ श्राद्धादिकं तृतीयामध्ये एव कर्तव्यम् ॥ पुरुषार्थचिंतामणौ तु सप्तमाष्टमनवममुहूर्तानां गांधर्वकुतुपरौहिणसंज्ञकानां युगादिश्राद्धकालत्वाच्छुक्ले मध्यमदिनमाने त्रयोदश्यादिपंचदश्यंतघटीत्रयव्यापिन्यां श्राद्धम् ॥ कृष्णे तु षोडशीमारभ्य घटीत्रये ॥ उभयत्र तादृशघटी त्रयव्याप्तौ सत्यामसत्यां वा शुक्ला परा ॥ यदा तु परेद्युस्त्रयोदशघटीतः पूर्वं समाप्ता पूर्वेद्युस्त्रयोदश्यादिघटीत्रये तदेकदेशे वा विद्यते तदा कर्मकालशास्त्रबाहुल्यात्पूर्वैव ग्राह्येत्युक्तम् इदमेव युक्तमिति भाति ॥

क्योंकि यह लिखा है कि, जो मनुष्य वैशाखकी शुक्लपक्षकी तृतीयाको चंदनसे कृष्णको भूषित करताहै, वह अच्युतके मंदिर (वैकुण्ठ) में जाताहै, इसका अक्षय तृतीया नाम है । इसमें जो कुछ जप, होम, पितृतर्पण, दान आदि किया जाता है, वह सब अक्षय होताहै, यह रोहिणी बुधसे युक्त होय तो महापुण्य (श्रेष्ठ) होतीहै, इसमें, जप होम आदिके करनेसे वक्ष्यमाण युगादिके समान निर्णय करना, यह कृतयुगादि है, इसमें युगादि श्राद्ध पिण्डरहित करना, श्राद्ध आदि न होसके तो पितृतर्पणभी इसमें करना, इसमें शुक्ल युगादि कार्य पूर्वाह्णमें करना, पूर्वाह्णमें न होसके तो अपराह्णमें भी करना, कृष्ण युगादि कार्य तो अपराह्णमेंही होताहै, यह मन्वादि प्रकरणमें कहा निर्णय समझना । दो प्रकारसे विभाग किये दिनके पूर्वार्द्धके एक देशव्यापिनी दोनों दिनमें होय तो तीन मुहूर्तसे अधिक व्याप्तिमें परली और न्यून व्याप्तिमें पहिली लेनी, क्योंकि मन्वादि और युगादिमें चंद्र सूर्य ग्रहण, व्यतीपात, वैधृति होय तो उस काल व्यापिनीमें क्रिया (कर्म) न करै, इस वचनसे संपूर्ण व्याप्तिको वाक्योंका अपवाद (बाध) है और श्राद्ध आदि तो तृतीयाके मध्यमेंही करना, पुरुषार्थचिंतामणिमें तो यह कहाहै कि, सातमां, आठमां, नवम, मुहूर्तोंकी क्रमसे गांधर्व, कुतुपरौहिण, स्वरूप, होनेसे, युगादि श्राद्धका काल होनेसे, शुक्लपक्ष होय तो, मध्यम दिनमानमें उस तृतीयामें श्राद्ध करै । जो तेरह घडीसे पंद्रह घडीतक व्यापिनी हो, कृष्णपक्षमें तो सोलह आदि तीन घडियोंमें श्राद्ध करना, दोनों दिन पूर्वोक्त तीन घडीकी व्याप्ति होय वा न होय तो शुक्लपक्षमें परली लेनी और जब परले दिन पंद्रह घडीसे पहिले समाप्त होजाय और पहिलेदिन तेरहवीं आदि तीन घडियोंमें वा उसके एकदेशमें होय तो कर्म कालमें बहुतसे शास्त्र प्रमाण हैं, इससे पहिलीही लेनी । यह पुरुषार्थचिन्तामणिका कहनाही युक्त प्रतीत होताहै ॥

अथोदकुंभदानप्रयोगः ।

अत्र देवतोद्देशेन पित्रुद्देशेन चोदकुंभदानमुक्तम् ॥ तत्र श्रीपरमेश्वरप्रीतिद्वारा उदकुंभदानकल्पोक्तफलावाप्त्यर्थं ब्राह्मणायोदकुंभदानं करिष्ये ॥ तदंगकुंभपूजनं ब्राह्मणपूजनं च करिष्ये इति संकल्प्य सूत्रवेष्टितं गंधफलयवाद्युपेतं कलशं पंचोपचारैर्ब्राह्मणं च संपूज्य ॥ तत्र मंत्रः॥"एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात्सकला मम संतु मनोरथाः" इति मंत्रेण दद्यात् ॥ पित्रुद्देशे तु पितॄणामक्षय्यतृप्त्यर्थमुदकुंभदानं करिष्ये इति संकल्प्य पूर्ववत्कुंभब्राह्मणौ संपूज्योदकुंभे गंधतिलफलादि निक्षिप्य ॥ "एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात्तृप्यंतु पितरोपि पितामहाः ॥ गंधोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं फलान्वितम् ॥ पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु " इति मंत्रेण दद्यात् ॥ युगादौ समुद्रस्नानं महाफलम् ॥ वैशाखस्याधिमासत्वेयुगादिश्राद्धं मासद्वयेपि कार्यम्॥ युगादिषूपवासो महाफलः ॥ युगादिमन्वादौ रात्रिभोजने 'अभिस्ववृष्टिम्' इति मंत्रजपः ॥

इस तिथिमें देवता और पितरोंके निमित्त जलके घटका दान कहाहै, उसमें श्रीपरमेश्वर प्रीतिके द्वारा, उदकुंभदानकल्पमें कहे फलकी प्राप्तिके लिये, ब्राह्मणको उदकुंभका दान करताहूं और उसके अंगभूत कुंभ और ब्राह्मणका पूजन करताहूं, यह संकल्प करकै, सूत्रसे वेष्टित गंध फल जौं आदिसे कलशको पंचोपचारसे पूजन किये ब्राह्मणको इस मंत्रसे दे कि, ब्रह्मा विष्णु शिवरूप यह धर्मघट दिया है, इसके देनेसे मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंयँ । पितरोंके निमित्त जो घट दिया जाता है उसमें तो पितरोंकी अक्षय तृप्तिके लिये यह कुम्भदान करताहूं यह संकल्प करके और पूर्वके समान कुंभ और ब्राह्मणकी पूजा करके । और जलके कुंभमें गन्ध तिल फल आदि डालकर इस मन्त्रसे ब्राह्मणको दे कि, ब्रह्मा विष्णु शिवरूप यह धर्मघट दिया है इसके देनेसे पितर और पितामह तृप्तहों । गन्ध, जल, तिल इनसे और अन्न फलसे युक्त घटको पितरोंको देताहूँ, यह अक्षय पितरोंको मिलो । युगादि तिथियोंमें समुद्रके स्नानका महाफल है । वैशाख अधिक मास होय तो युगादि श्राद्ध दोनों मासोंमें भी करना, युगादिमें उपवास काभी महाफल है । युगादि और मन्वादि तिथिमें रात्रिको भोजन करले तो 'अभिस्ववृष्टिम्' इस मन्त्रका जप करै ॥

अथ युगादिश्राद्धलोपे प्रायश्चित्तम् ।

युगादिश्राद्धलोपे युगादिश्राद्धलोपजन्यप्रत्यवायपरिहारार्थमृग्विधानोक्तं प्रायश्चित्तं करिष्ये इति संकल्प्य 'नयसद्यावा'इत्यृचं शतवारं जपेत् ॥ अयं निर्णयः सर्वयुगादौ ज्ञेयः ॥ इत्यक्षय्यतृतीयानिर्णयः ॥

युगादि श्राद्धके लोपमें युगादि श्राद्धके लोपसे उत्पन्नहुए प्रत्यवाय (दोष) के परिहार (दूरकरना) के लिये ऋग्विधानमें कहे प्रायश्चित्तको करताहूं, यह संकल्प करके 'नयसद्यावा०' इस ऋचाको सौ (१००) वार जपै । यह निर्णय सब युगादियोंमें जानना ॥ इति अक्षय्य तृतीयानिर्णयः ॥

अथ परशुरामजयंती ।

इयमेव तृतीया परशुरामजयंती ॥ इयं रात्रिप्रथमयामव्यापिनी ग्राह्या ॥ पूर्वेद्युरेव प्रथमयामव्याप्तौ पूर्वा ॥ दिनद्वये रात्रिप्रथमयामे साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तौ परा ॥ अत्र प्रदोषे परशुरामं संपूज्यार्घ्यं दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "जमदग्निसुतो वीरक्षत्रियांतकर प्रभो ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर" इति ॥

यही तृतीया परशुराम जयन्ती है । यह रात्रिके प्रथमप्रहर व्यापिनी ग्रहण करनी, पहिले दिनही प्रथमप्रहर व्यापिनी होय तो पहिली और दोनों दिन रात्रिके प्रथम प्रहरमें समरूपसे वा विषमरूपसे एकदेश व्यापिनी होय तो परली लेनी । इसमें प्रदोषके समय परशुरामको पूजकर अर्घ्यदे । उसका यह मन्त्र है, कि हे जमदग्निके पुत्र ! हे वीर ! हे क्षत्रियोंके अन्त करनेवाले ! हे प्रभो ! हे परमेश्वर ! मेरे दिये अर्घ्यको कृपा करके ग्रहण करो ॥

अथ गंगापूजनम् ।

वैशाखशुक्लसप्तम्यां गंगोत्पत्तिस्तस्यां मध्याह्नव्यापिन्यां गंगापूजनं कार्यम् ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ पूर्वा ॥

वैशाख शुक्ल सप्तमीको गंगाजीकी उत्पत्ति है । मध्याह्नव्यापिनी उस सप्तमीमें गंगाजीका पूजन करना । दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी होय तो पहिली लेनी ॥

अथाग्निष्टोमफलकपूजनम् ।

"वैशाखमासे द्वादश्यां पूजयेन्मधुसूदनम् ॥ अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति" ॥

वैशाखमासकी द्वादशीको मधुसूदन भगवान्का पूजन करै तो अग्निष्टोम यज्ञके फलको प्राप्त होताहै और सोमलोकमें जाताहै ॥

अथ नृसिंहजयंती ।

वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहजयंती सा सूर्यास्तमयकालव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदव्याप्तौ वा परैव ॥ स्वातीनक्षत्रशनिवारादियोगे सातीवप्रशस्ता ॥

वैशाखशुक्ल चतुर्दशी नृसिंह जयन्ती है । वह सूर्यास्तकाल व्यापिनी, लेनी दोनों दिन सूर्यास्त व्यापिनी हो वा न होय तो परलीही लेनी और स्वाती नक्षत्र शनिवार आदिके होनेसे वह अत्यन्त श्रेष्ठ होती है ॥

अथ व्रतप्रयोगः ।

त्रयोदश्यां कृतैकभक्तश्चतुर्दश्यां मध्याह्ने तिलामलकैः स्नात्वा॥ "उपोष्येहं नारसिंह भुक्तिमुक्तिफलप्रद ॥ शरणं त्वां प्रपन्नोस्मि भक्तिं मे नृहरे दिश" इति मंत्रेण व्रतं संकल्प्याचार्य वृत्वा सायंकाले धान्यस्थोदकुंभे पूर्णपात्रे सौवर्णप्रतिमायां षो-

डशोपचारैर्देवं संपूज्यार्घ्यं दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "परित्राणाय साधूनां जातो विष्णुर्नृकेसरी ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सलक्ष्मीर्नृहरिः स्वयम्" ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्देवं संपूज्य विसृज्याचार्याय धेनुयुतां प्रतिमां दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "नृसिंहाच्युत गोविंद लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥ अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः" ॥

अब व्रतके प्रयोगको कहते हैं, कि त्रयोदशीको एकभक्त भोजन करके और चतुर्दशीको मध्याह्नके समय तिल और आंवलोंसे स्नान करके,हे नारसिंह! हे भुक्ति मुक्तिरूप फलके दाता! मैं उपवास करूंगा, और आपकी शरणहूं। हे नृहरे मुझे भक्ति दो इस मंत्रसे व्रतका संकल्प करके और आचार्यका वरण करके सायंकालके समय धान्यके ऊपर स्थापन किये उदकुंभपर रक्खे पूर्ण पात्रमें सुवर्णकी प्रतिमामें देवका षोडशोपचार पूजन करके अर्घ्य दे, उसका मंत्र यह है कि, साधुओंकी रक्षाके लिये नृसिंह विष्णु उत्पन्न हुये हो मेरे दिये अर्घ्यको लक्ष्मीसहित नृसिंह भगवान् स्वयं ग्रहण करो। रात्रिमें जागरण और प्रातःकाल देवका भलीप्रकार पूजन और विसर्जन करके आचार्यको धेनु सहित प्रतिमा दे। उसका मंत्र यह है, कि हे नृसिंह! हे अच्युत! हे गोविंद ! हे लक्ष्मीकांत ! हे जगत्पते ! इस अर्चाके दानसे मेरे मनोरथ सफल हों ।।

अथ प्रार्थना ।

"मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यंति चापरे ॥ तांस्त्वमुद्धर देवेश दुःसहाद्भवसागरात् ॥ पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखांबुवारिधेः ॥ नीचैश्च परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥ करावलम्बनं देहि शेषशायिञ्जगत्पते ॥ श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन ॥ क्षीरांबुधिनिवासस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन ॥ व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव" ॥ इति ॥ ततो ब्राह्मणैः सह तिथ्यंते पारणां कुर्यात् ॥ यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां चतुर्दश्यां तु पूर्वाह्ण एव पारणम् ॥

अब प्रार्थनाको कहते हैं। कि मेरे वंशमें जो मनुष्य पैदा हुये हैं और जो पैदा होंगे हेदेवेश! उनकी दुःसह भवसागरसे रक्षा करो, और पातकके समुद्रमें डूबेहुये और व्याधि दुःखरूपी जलका समुद्र, और नीचोंसे तिरस्कृत महान् दुःखोंके भोगनेवाला जो मैं हूं उस मुझे हे शेषशायिन् ! हे जगत्पते ! करावलम्बन दो अर्थात् मेरा हाथ पकड़ो । हे श्रीनृसिंह ! हे रमाकान्त ! हे भक्तोंके भयनाशन ! हे क्षीराम्बुधिनिवास ! हे चक्रपाणे ! हे जनार्दन ! हे देवेश ! इस व्रतसे भक्ति और मुक्तिरूप फल दो। फिर ब्राह्मणोंसहित तिथिके अन्तमें पारणा करै । तीन प्रहरके पीछेभी चतुर्दशी होय तो पूर्वाह्णमेंही पारणा करले ॥

अथ पौर्णमासीदानानि ।

पौर्णमास्यां शृतान्नसहितोदकुंभदाने गोदानफलम् ॥ स्वर्णतिलयुक्तद्वादशोदकुम्भदाने ब्रह्महत्यापापान्मुक्तिः ॥ अत्र यथाविधि कृष्णाजिनदाने पृथ्वीदानफलम् ॥ स्वर्णमधुतिलसर्पिर्युतकृष्णाजिनदाने सर्वपापनाशः ॥ अत्र तिलस्नानं

तिलहोमस्तिलपात्रदानं तिलतैलेन दीपदानं तिलैः पितृतर्पणं मधुयुक्ततिलदान महाफलम् ॥ तत्र तिलपात्रदानमन्त्रः "तिला वै सोमदैवत्याः सुरैः सृष्टास्तु गोसवे ॥ स्वर्गप्रदाः स्वतन्त्राश्च ते मां रक्षन्तु नित्यशः" ॥

पौर्णमासीको पकान्न सहित उदकुम्भके दानसे गोदानका फल मिलता है । सुवर्ण और तिलोंसे युक्त बारह उदकुम्भके दानसे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति होती है । इसमें विधि सहित काली मृगछालाके दानसे पृथ्वीके दानका फल होताहै।और सुवर्ण, मधु, तिल, घी इनसे युक्त काली मृगछालाके दानसे सब पापोंका नाश होता है। और इसमें तिलोंसे स्नान,तिलोंसे होम, तिल पात्रका दान, तिलके तैलसे दीपदान, तिलोंसे पित्रोंका तर्पण और मधुसहित तिलोंका दान करनेका माहात्म्य है, उनमें तिलपात्रके दानका यह मंत्र है. कि, तिलोंका सोम देवता है जो सब यज्ञमें देवताओंने रचे हैं, और स्वतंत्र (सहायताके विना) स्वर्गके दाता हैं, वे तिल मेरी सदैव रक्षा करो ॥

अथ वैशाखस्नानोद्यापनादिदानानि च ।

वैशाखशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा वैशाखस्नानोद्यापनम् ॥ तत्रैकादश्यां पौर्णमास्यां वोपोष्य कलशे सौवर्णप्रतिमायां सलक्ष्मीकं विष्णुं संपूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्ग्रहपूजनपूर्वकं पायसेन तिलाज्यैर्वा यवैर्वा अष्टोत्तरशतं होमः ॥ "प्रतद्विष्णुरिदंविष्णुः" इति वा मन्त्रेण कार्यः ॥ सांगतार्थं गोदानं पादुकोपानच्छत्रव्यजनोदकुंभदानं शय्यादिदानं च कार्यम् ॥ अशक्तेन कृसराद्यन्नैर्दशब्राह्मणभोजनं कार्यम् ॥ एतत्पौर्णमासीमारभ्य ज्येष्ठशुक्लैकादशीपर्यंतं जलस्थविष्णुपूजोत्सवः कार्यः ॥ वैशाखामावास्याभावुकाख्यदिनं तत्परं करिसंज्ञकदिनं च शुभेषु वर्ज्यम् ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे वैशाखमासकृत्योद्देशः ॥

वैशाख शुक्ल द्वादशी वा पौर्णमासीको वैशाख स्नानका उद्यापन करे, एकादशी वा पौर्णमासीको उपवासके अनन्तर कलशपर स्थापन कीहुई सुवर्णकी प्रतिमामें लक्ष्मीसहित विष्णुकी पूजा, और रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल ग्रहोंकी पूजाके अनन्तर पायस (खीर) से वा तिल घीसे वा यवोंसे १०८ आहुति दे, अथवा "प्रतद्विष्णु०" इस मंत्रसे होम करे, और सांगताके लिये गोदान, पादुका (खडाऊं) उपानह, छत्र, बीजना, उदकुम्भ इनका और शय्या आदिका दान करे, और अशक्त मनुष्य तो कृसर आदि अन्नसे दश ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इस पौर्णमासीसे ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीपर्यंत जलमें स्थित विष्णुकी पूजाका उत्सव करना, वैशाखकी अमावस्याको भावुकदिन और उससे अगले दिनको करिसंज्ञक कहतेहैं, ये दोनों दिन शुभ कर्मोंमें वर्जित हैं। इति श्रीकाशीनाथोपाध्यायविरचितधर्मसिंधुसारस्य पंडितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवरणे वैशाखमासकार्योद्देशः ॥

अथ ज्येष्ठकृत्ये मिथुनसंक्रांतिः ।

मिथुनसंक्रांतौ पराः षोडशनाड्यः पुण्यकालः ॥ रात्रौ तु प्रागुक्तम् ॥

अब ज्येष्ठके कृत्यको कहतेहैं, मिथुनकी संक्रातिमें परली सोलह घडी पुण्यकाल है, रात्रि की संक्रातिमें तो पुण्यकाल पहिले कह आये ॥

अथ ब्रह्मदेवपूजनव्रतम् ।

ज्येष्ठे मासे पिष्टेन ब्रह्ममूर्त्तिं कृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत् ॥ सूर्यलोकप्राप्तिः ॥ अत्र मासे जलधेनुदानमुक्तम् ॥

ज्येष्ठमासमें पिष्टसे ब्रह्माकी मूर्ति बनाकर वस्त्र आदिसे पूजन करै तो उससे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है, इस मासमें जल धेनुका दान कह आये ॥

अथ करवीरव्रतम् ।

ज्येष्ठशुक्लप्रतिपदि करवीरव्रतम् ॥ ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रंभाव्रतम् ॥ सा पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥

ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदाको करवीरका व्रत होताहै, और ज्येष्ठ शुक्ल तृतीयाको रंभाका व्रत होताहै, वह पूर्वविद्धा लेनी ॥

अथ पूर्वविद्धापरविद्धयोः सर्वत्र निष्कर्षः ।

यत्र पूर्वविद्धा ग्राह्यतयोच्यते तत्रास्तात्पूर्वं द्विमुहूर्ताधिकाया ग्राह्यत्वं ज्ञेयं न न्यूनायाः ॥ तत्रापि यदि परेद्युः सूर्यास्तमयपर्यंतं पूर्वविद्धायास्तिथेः सत्त्वे तदा सत्यपि पूर्वविद्धा ग्राह्यत्ववचने पूर्वविद्धां त्यक्त्वा अखण्डत्वाच्छुद्धत्वात्परैव ग्राह्या ॥ यदा तु ग्राह्यायाः पूर्वविद्धायाः पूर्वेद्युर्मुहूर्तद्वयात् न्यूनत्वं परेद्युश्चास्तमयात्प्राक् समाप्तत्वं तदापि परैव ग्राह्या एवं सर्वत्रोह्यम् ॥ रंभाव्रते पंचाग्नितपनपरा स्त्री पुमान्वा भवानीं स्वर्णप्रतिमायां संपूज्य यथोक्तविधि होमादि कृत्वा सपत्नीकाय गृहं सोपस्करं दद्यात् ॥ दांपत्यानि भोजयेत् ॥ विशेषविधिर्व्रतग्रंथे ज्ञेयः ॥

जहां पूर्वविद्धा ग्रहण करने योग्य कहीहै, वहां सूर्यास्तसे पूर्व दो मुहूर्त्तसे अधिक होय तो ग्रहण करने योग्य जाननी और न होय तो न जाननी । उसमेंभी यदि परले दिन सूर्यास्त पर्यंत पूर्वविद्धा तिथि होय तो पूर्वविद्धाके ग्रहण करने योग्य वचनके होनेपरभी पूर्वविद्धाको त्यागकर अखंड और शुद्ध होनेसे परली ही ग्रहण करनी, और जब पूर्वदिनमें ग्रहण करने योग्य पूर्वविद्धा तिथि दो मुहूर्त्तसे न्यून हो, और परले दिन सूर्यास्तसे पूर्वही समाप्त होजाय तो परलीही ग्रहण करनी । इसीप्रकार सर्वत्र जानना । रंभाके व्रतमें पंचाग्नि तप करती हुई स्त्री वा पुरुष सुवर्णकी प्रतिमामें भवानीका पूजन और शास्त्रोक्त विधिसे होम आदि करके सपत्नीक ब्राह्मणको सामग्रीसहित घरका दान दे । और सपत्नीक ब्राह्मणोंको भोजन करावै, इसकी विशेष तिथि व्रतके ग्रंथोंमें जाननी ॥

अथोमावतारः ।

चतुर्थ्यामुमावतारस्तत्रोमापूजनव्रतम् ॥ अष्टम्यां शुक्लादेवी पूज्या नवम्याम-पोष्य देवीं पूजयेत् ॥

चतुर्थीको उमाका अवतार हुआ उसमें उमाका व्रत और पूजन करना, अष्टमीको शुक्ला देवीकी पूजा और नवमीको उपवास करके देवीका पूजन करै ॥

अथ गङ्गावतारः ।

ज्येष्ठशुक्लदशम्यां गंगावतारः ॥ इयं दशहरासंज्ञिका ॥ अत्र दश योगा उक्ताः ॥ "ज्येष्ठे मासि १ सितेपक्षे २ दशम्यां ३ बुध ४ हस्तयोः ५॥ व्यतीपाते ६ गरा ७ नन्दे ८ कन्याचंद्रे ९ वृषे रवौ १० " इति ॥ गराख्यं करणम् ॥ बुधवारहस्त-योगे आनन्दाख्यो योगः ॥ अत्र दशमीव्यतीपातयोर्मुख्यत्वम् ॥ तेन यस्मिन्दिने कतिपययोगवती दशमी पूर्वाह्णे लभ्यते तत्र दशहराव्रतं कार्यम् ॥ दिनद्वये पूर्वाह्णे तत्सत्त्वे यत्र बहूनां योगः सा ग्राह्या ॥ ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा कार्या न तु शुद्धे ॥ " दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु " इति हेमाद्रौ ऋष्य-शृंगोक्तेः ॥ अत्र काशीवासिभिर्दशाश्वमेधतीर्थे स्नात्वा गंगापूजनं कार्यम् ॥ इतर-देशस्थैः स्वसंनिहितनद्यां स्नात्वा गंगापूजनादिकं कार्यम् ॥

ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको गंगाका अवतार हुवा इसकी दशहरा संज्ञा है, इसमें ये दशयोग कहे हैं । कि, ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुध वार, हस्त नक्षत्र, व्यतीपात योग, गर करण, आनंद योग, कन्याका चन्द्रमा,और वृषका सूर्य । बुध वार और हस्त होय तो आनंद नामका योग होताहै, इसमें दशमी और व्यतीपात ये दो मुख्य हैं, तिससे जिस दिन कई एक योगवाली दशमी पूर्वाह्णमें मिले उसदिन दशहराका व्रत करना । दोनों दिन दशमी पूर्वाह्णमें होय तो जिसमें बहुत योग हों वह ग्रहण करनी, ज्येष्ठ मलमास होय तो उसमेंही दशहरा व्रत करना शुद्धमें नहीं, क्योंकि हेमाद्रिमें ऋष्यशृंगने यह कहा है कि, दशहरा और चारों युगादि तिथियोंमें उत्कर्ष नहीं अर्थात् गौण और मुख्यका विचार नहीं है, इसमें काशीके वासी दशाश्वमेध तीर्थमें स्नान करके गंगाका पूजन करैं, इतर देशके निवासी तो अपने समीपकी नदीमें स्नान करके गंगाके पूजन आदिको करैं ॥

अथ दशहराव्रतविधिः ।

देशकालौ संकीर्त्य ममैतज्जन्मजन्मांतरसमुद्भूतत्रिविधकायिकचतुर्विधवाचिक-त्रिविधमानसिकमिति स्कांदोक्तदशविधपापनिरासत्रयस्त्रिंशच्छतपितृउद्धारब्रह्मलो-कावाप्त्यादिफलप्राप्त्यर्थं ज्येष्ठमाससितपक्षदशमीबुधवारहस्ततारकागरकरण-व्यतीपातानंदयोगकन्यास्थचंद्रवृषस्थसूर्येति दशयोगपर्वण्यस्यां महानद्यां स्नानं तीर्थपूजनं प्रतिमायां जाह्नवीपूजां तिलादिदानं मूलमंत्रजपमाज्यहोमं च यथाश-क्ति करिष्ये ॥ यथाविधि स्नानं दशवारं कृत्वा जले स्थितो दशवारं सकृद्वा वक्ष्य-

माणं स्तोत्रं पठित्वा वासः परिधानादिपितृतर्पणांतं नित्यं विधाय तीर्थपूजां विधाय सर्पिर्मिश्रान्दशप्रसृतिकृष्णतिलान् तीर्थेजलिना प्रक्षिप्य गुडमिश्रान्सक्तुपिंडान्दश प्रक्षिपेत् ॥ ततो गंगातटे ताम्रे मृन्मये वा स्थापिते कलशे सौवर्णादिप्रतिमायां गंगामावाहयेत् ॥ तत्र मंत्रः ॥ नमो भगवत्यै दशपापहरायै गंगायै नारायण्यै रेवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नंदिन्यै ते नमो नमः ॥ अयं स्त्र्यादिसाधारणः द्विजमात्रविषयो विंशत्यक्षरो यथा ॥ ॐनमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहेति ॥ एवं गंगामावाह्य ॥ नारायणं रुद्रं ब्रह्माणं सूर्यं भगीरथं हिमाचलं च नाममंत्रेण तत्रैवावाह्योक्तमूलमंत्रमुच्चार्य श्रीगंगायै नारायणरुद्रब्रह्मसूर्यभगीरथहिमवत्सहितायै आसनं समर्पयामीत्येवमासनाद्युपचारैः पूजयेत् ॥ दशविधैः पुष्पैः संपूज्य दशांगं धूपं दत्त्वा दशविधनैवेद्यांते तांबूलं दक्षिणां दत्त्वा दशफलान्यर्पयेत्॥दश दीपान्दत्त्वा पूजां समापयेत् ॥ दशविप्रेभ्यः प्रत्येकं षोडशषोडश मुष्टितिलान्सदक्षिणान्दद्यात् ॥ एवं यवानपि ॥ ततो दश गा एकां वा गां दद्यात् ॥ मत्स्यकच्छपमंडूकान् सौवर्णान् राजतान्पिष्टमयान्वा संपूज्य तीर्थे क्षिपेत् ॥ एवं दीपान्प्रवाहयेत् ॥

अब व्रतकी विधिको कहतेहैं—देशकालका कीर्तन (नाम लेना) करके मेरे इस जन्म और जन्मांतरमें किये तीन प्रकारके कायिक पाप, और चार प्रकारके वाचिक, और तीन प्रकारके मानसिक पाप स्कंद पुराणमें कहे हैं, इस दश प्रकारके पापोंका नाश और तेतीससौ (३३००) पितरोंका उद्धार और ब्रह्मलोक प्राप्ति आदि फलकी प्राप्तिके लिये ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, दशमी, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गरकरण, व्यतिपात, आनंद योग, कन्याका चन्द्रमा और वृषका सूर्य इन दश योग पर्वमें महानदीमें स्नान, तीर्थका पूजन, प्रतिमामें गंगाकी पूजा, तिल आदिका दान, मूल मन्त्रका जप, आज्यका होम इनको यथाशक्ति करताहूं । यह संकल्प और यथा विधि दशबार स्नान करके जलमें स्थितहुआ दशबार वा एकबार वक्ष्यमाण स्तोत्रको पढकरके वस्त्रोंका परिधान (धारण) आदि पितृतर्प्पण पर्यंत नित्यकर्मको करके और तीर्थकी पूजा करनेके अनन्तर घीसे मिले दश अंजली भर काले तिलोंको अंजलीसे तीर्थमें फेंककर गुड मिले दश सत्तुओंके पिण्डोंको तीर्थमें फेंके, फिर गंगाके तटपर स्थापित किये ताँबे वा मिट्टीके कलशमें सुवर्ण आदिकी प्रतिमामें गंगाका आवाहन करै, उसका मन्त्र यह है कि, भगवती दश पाप हरनेवाली गङ्गा, नारायणी, रेवती, शिवा, दक्षा, अमृता, विश्वरूपिणी, नन्दिनी को नमस्कार है, यह मन्त्र स्त्री आदिके लिये साधारण है। द्विजमात्रोंका तो वीस अक्षरोंका यह मन्त्र है कि, शिवा, नारायणी, दशहरा, गंगाको नमस्कार है । ऐसे गङ्गाका आवाहन करके उसी घटमें नाममन्त्रसे नारायण, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ, हिमाचल इनका आवाहन और पूर्वोक्त मूल मन्त्रका उच्चारण करके नारायण, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ, हिमाचल, सहित श्रीगङ्गाको आसन समर्पण करताहूं इस प्रकार आसन आदि उपचारोंसे पूजा करै । दश प्रकारके पुष्पोंसे पूजन और दशांग धूप देकर दश प्रकार नैवेद्यके अन्तमें नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा देकर दश फलोंको अर्प्पण करै । फिर दश दीपक देकर पूजाको समाप्त करै । दश

ब्राह्मणोंको सोलह मुष्टिभर तिल और दक्षिणा प्रत्येकको दे ऐसेही यवोंको दे । फिर दश वा एक गोदान करै । फिर मत्स्य, कच्छप, मेंडक सोने चांदी वा पिष्टके बनाकर पूजाके अनन्तर तीर्थमें फेंके, ऐसेही तीर्थमें दीपकोंको प्रवाह करै ॥

अथ दशहरांगहोमप्रयोगः ।

जपहोमचिकीर्षायां पूर्वोक्तमूलमंत्रस्य पंचसहस्रसंख्यो जपो दशांशेन होमः यथाशक्ति वा जपहोमौ ॥ तत्र दशहराव्रतांगत्वेन होमं करिष्ये इति संकल्प्य स्थंडिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधाने चक्षुषी आज्येनेत्यंते श्रीगंगाममुकसंख्ययाज्येन नारायणादिषड्देवता एकैकयाज्याहुत्या शेषेण स्विष्टकृतमित्यादिप्रोक्षण्यादिषट्पात्राण्यासाद्याज्यं संस्कृत्य यथान्वाधानं जुहुयात् ॥ दश ब्राह्मणान्सुवासिनीश्च भोजयेत् ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य स्नानादिपूजांतो विधिः कार्य इति केचित् ॥

और जप और होम करनेकी इच्छा होय तो पूर्वोक्त मूलमन्त्रका पांच सहस्र जप और उसका दशांश होम करै, अथवा यथाशक्ति करै । उसमें दशहरा व्रतके अंग होमको करताहूं यह संकल्प करके स्थंडिलमें अग्निको स्थापन करके 'चक्षुषी० आज्येन' इस पर्यंत अन्वाधानमें श्रीगङ्गाको अमुक (इतनी) संख्याके आज्यसे और नारायण आदि छः देवताओंको एक २ घीकी आहुतिसे और शेषसे स्विष्टकृत आदि और प्रोक्षणी आदि छः पात्रोंको रखकर, घीका संस्कार करके अन्वाधानके अनुसार होम करै । दश ब्राह्मण और सुवासिनी (सुहागिन) स्त्रियोंको भोजन करावै । और कोई यह कहते हैं, कि, प्रतिपदाके दिनसे लेकर स्नान आदि पूजा पर्यंत जो विधि है उसको करै ॥

अथ गंगास्तोत्रं यथा स्कांदे ।

ब्रह्मोवाच ॥ "नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमोनमः ॥ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शांकर्यै ते नमोनमः ॥ नमस्ते विश्वरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोनमः ॥ सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये ॥ सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोस्तु ते ॥ स्थाणुजंगमसंभूतविषहंत्र्यै नमोनमः ॥ भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोनमः ॥ मंदाकिन्यै नमस्तेस्तु स्वर्गदायै नमोनमः ॥ नमस्त्रैलोक्यभूषायै जगद्धात्र्यै नमोनमः ॥ नमः श्रीशुक्रसंस्थायै तेजोवत्यै नमोनमः ॥ नंदायै लिंगधारिण्यै नारायण्यै नमोनमः ॥ नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमोनमः ॥ बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोनमः ॥ नमस्ते विश्वमित्रायै नंदिन्यै ते नमोनमः ॥ पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमोनमः ॥ शांतायै च वरिष्ठायै वरदायै नमोनमः ॥ उस्रायै सुखदोग्ध्र्यै च संजीविन्यै नमोनमः ॥ ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनमः ॥ प्रणतार्तिप्रभंजिन्यै जगन्मात्रे नमोस्तु ते ॥ सर्वापत्प्रतिपक्षायै मंगलायै नमोनमः ॥ शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ॥ सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोस्तु ते ॥ निर्लेपायै दुर्गहंत्र्यै दक्षायै ते नमोनमः ॥ परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा ॥ गंगे ममाग्रतो भूया गंगे मे देवि पृष्ठतः ॥ गंगे मे पार्श्व-

योरेहि त्वयि गंगेस्तु मे स्थितिः ॥ आदौ त्वमंते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शुभे ॥ त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः ॥ गंगे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे ॥ य इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोपि यः ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तः कायवाक्चित्तसंभवैः ॥ दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ॥ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ॥ तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गंगाजले स्थितः ॥ यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः॥ सोपि तत्फलमाप्नोति गंगां संपूज्य यत्नतः ॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥ पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः ॥ असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिंतनम् ॥ वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ एतानि दश पापानि हर त्वं मम जाह्नवि ॥ दशपापहरा यस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वान्पितॄनथ पितामहान् ॥ उद्धरत्येव संसारान्मन्त्रेणानेन पूजिता ॥ नमो भगवत्यै दशपापहरायै गंगायै नारायण्यै रेवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नंदिन्यै ते नमोनमः ॥ सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां करधृतकलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् ॥ विधिहरिहररूपां सेंदुकोटीरजुष्टां कलितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥ आदावादिपितामहस्य निगमव्यापारपात्रे जलं पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ॥ भूयः शंभुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं देवी कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥ गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति " ॥ इति स्तोत्रेण स्तुत्वा होमांते प्रतिमोत्तर पूजां कृत्वा ॥ विसृज्याचार्याय मूलमन्त्रेण दद्यात ॥ ॥ इति दशहराविधिः ॥

स्तोत्र स्कन्द पुराणमें ऐसे है–कि, शिवा, गङ्गा, शिवके देनेवाली, रुद्ररूपिणी, शांकरीको नमस्कार है । विश्वरूपिणी, ब्रह्ममूर्ति, सर्वदेव स्वरूपिणी, भेषज मूर्त्तिको नमस्कार है । सब जगत्‌की जो सब व्याधि हैं, उनकी श्रेष्ठ वैद्यरूप जो आपहैं उनको नमस्कार है । स्थाणु और जङ्गमरूप जो विष उसको नष्ट करनेवालीको नमस्कार है । भोग उपभोग देनेवाली भोगवतीको नमस्कार है । मन्दाकिनी और स्वर्गदाको नमस्कार है । त्रैलोक्यके भूषणरूप और जगत्‌की धात्रीको नमस्कार है । और त्रिशुक्ल संस्थाको और तेजोवतीको नमस्कार है। और नन्दा लिंगधारिणी नारायणीको नमस्कार है । और विश्वमें मुख्य और रेवतीको नमस्कार है । बृहती और जगत्‌के धारण करनेवालीको नमस्कार है । और विश्वकी मित्रा और नन्दिनीको नमस्कार है । और पृथ्वीरूप शिवा और अमृता सुवृषाको नमस्कार है । और शान्ता, वरिष्ठा, वरदाको नमस्कार है । उस्रा (गौ) और सुख दुहेनवाली और जीविनीको नमस्कार है । ब्रह्मिष्ठा, ब्रह्मदा, दुरितकी नाशिनीको नमस्कार है । और नमस्कारके कर्ताओंकी पीडा भंजनीको और जगत्‌की माताको नमस्कार है, सब आपदाओंकी

शत्रु और मंगलाको नमस्कार है, शरण आये, आर्त, और दीनों और दुःखी मनुष्यों की रक्षामें तत्पर और सबकी आर्ति (दुःख) के हरनेवाली नारायणीको नमस्कार है । और निर्लेप (कलंक रहित) दुर्गकी हतनेवाली, और दक्ष (चतुर) जो आप हैं उनको नमस्कार है, परसेभी अत्यंत परे और सदैव मोक्षकी दाता आपको नमस्कार है, गंगा मेरे आगे रहो, और गंगादेवी मेरी पीठपर रहो, गंगा मेरे पार्श्वोंमें आओ और हे गंगे ! आपमें मेरी स्थिति हो, आदि मध्य अंतमें तू है, और हे शिवे ! पृथिवीपर आई तू सब रूप है, तूही मूलप्रकृतिहै और तूही परमनारायणरूप है, हे गंगे ! तू परमात्मा और शिवरूप है, हे शिवे ! आपको नमस्कार, है जो मनुष्य इस स्तोत्रको भक्तिसे पढता है और जो श्रद्धासे युक्त सुनता है, वह काया वाणी चित्तसे पैदा हुये दश प्रकारके संपूर्ण दोषोंसे मुक्त होताहै, सब कामोंको प्राप्त होताहै और मरकर ब्रह्ममें लीन होता है । ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें हस्तनक्षत्रसे युक्त जो दशमी है, उस दशमीके दिन गंगाजलमें स्थित होकर जो मनुष्य दरिद्री हो वा असमर्थ हो इस स्तोत्रको दशवार पढताहै वहभी गंगाजीको यत्नसे पूजकर उसी फलको प्राप्त होता है । विना दी हुई वस्तुको लेना और विधिके विना हिंसा करनी, पराई दाराको भोगना यह तीन प्रकारका कायिक पाप कहा है । कठोर वचन, झूठ, और सबका पैशुन्य (चुगलपन) और असंबद्ध (अयोग्य) प्रलाप, यह चार प्रकारका वाचिक पाप होताहै । पराये द्रव्यका ध्यान, मनसे अनिष्टकी चिंता, और झूठका आग्रह यह तीन प्रकारका मानसिक पाप कहा है । हे जाह्नवि ! इन मेरे दश पापोंको तू हरण कर, जिससे तू दशपापोंको हरती है इससे दशहरा कही है । इस मंत्रसे पूजित की आप तेतीस सौ (३३००) पितर और पितामहोंको संसारसे उद्धार करती हो । भगवती, दशपापहरा, गंगा, नारायणी, रेवती, शिवा, दक्षा, अमृता, विश्वरूपिणी, नंदिनी जो आप हैं उनको नमस्कार है । जो सफेद मकरपर बैठी, शुक्लवर्ण, त्रिनेत्र हैं और हाथपर रक्खे कलशमें उत्पन्न हुआहै कमल जिसके अत्यत अभीष्ट, और ब्रह्मा हरि हररूप, चंद्रमा सहित मुकुटसे युक्त और शोभित है सफेद दुकूल जिसका, ऐसी उस जाह्नवी (गंगा) को नमस्कार करताहूं । प्रथम तो जो सबके आदि पितामहके वेदव्यापाररूप पात्रमें जलरूप है । फिर शेषपर सोनेवाले भगवान्‌का पवित्र पादोदक रूप है । फिर शंभुकी जटाओंका भूषण मणि है । वह यह जह्नुमहर्षिकी कन्या पापोंकी नाशक भागीरथी दीखती है । जो मनुष्य सौ योजनके अंतरपरभी गंगा गंगा ऐसे कहताहै, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जाता है । इस स्तोत्रसे गंगाकी स्तुति करके होमके अंतमें प्रतिमाकी उत्तर (पिछली) पूजाको करै और विसर्जनके अनंतर मूलमंत्रसे आचार्यको दे ॥ इति दशहराविधिः ॥

अथ निर्जला एकादशी तदंगकुंभदानमन्त्रः ।

ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला ॥ अस्यां नित्याचमनादिव्यतिरिक्तजलपानवर्जने नोपवासे कृते द्वादशैकादश्युपवासफलम् ॥ द्वादश्यां च निर्जलोपोषितैकादशी व्रतांगत्वेन सहिरण्यसशर्करोदकुंभदानं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ " देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक ॥ उदकुंभप्रदानेन यास्यामि परमां गतिम् " इति मंत्रेण शर्करायुतं सहिरण्यमुदकुंभं दद्यात् ॥

ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी निर्जला है । इसमें नित्यके आचमन आदिसे भिन्न जल पानको छोडकर उपवास करनेसे बारह एकादशीके उपवासोंका फल होताहै । द्वादशीको निर्जला एकादशीके व्रतका अंग, सुवर्ण शर्करा सहित उदकुंभ दान करताहूं, यह संकल्प करके, हे देवदेव ! हे हृषीकेश ! हे संसाररूप समुद्रके तारक ! मैं इस उदकुंभके प्रदानसे परमगतिको प्राप्तहूं । इस मंत्रसे शर्करा सुवर्णसहित उदकुंभको दे ॥

अथ गवामयनक्रतुफलपूजा ।

ज्येष्ठमाससितद्वादश्यामहोरात्रं त्रिविक्रमपूजनाद्गवामयनाख्यक्रतुफलसिद्धिः ॥

ज्येष्ठशुक्ला द्वादशीको अहोरात्र त्रिविक्रम भगवान्की पूजासे गौओंके अयननामक यज्ञका फल मिलताहै ॥

अथ ज्यैष्ठ्यां दानानि ।

ज्येष्ठपौर्णमास्यां तिलदानादश्वमेधफलम् ॥ ज्येष्ठानक्षत्रयुतायां ज्यैष्ठ्यां छत्रोपानहदानान्नराधिपत्यप्राप्तिः ॥

ज्येष्ठशुक्ला पूर्णिमाको तिलोंके दानसे अश्वमेधयज्ञका फल होताहै । ज्येष्ठा नक्षत्रसे युक्त ज्येष्ठकी पूर्णिमाको छत्री और उपानहके दानसे नरोंका अधिपति राजा होताहै ॥

अथ बिल्वत्रिरात्रव्रतम् ।

ज्येष्ठपूर्णिमायां बिल्वत्रिरात्रिव्रतमुक्तम् ॥ अत्र सा परविद्धा ग्राह्या ॥ अस्यामेव वटसावित्रीव्रतम् ॥ अत्र व्रते त्रयोदश्यादिदिनत्रयमुपवासः ॥ अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं चतुर्दश्यामयाचितं पौर्णमास्यामुपोषणम् ॥ अत्र पौर्णमासी निर्णयानुसारेण यथा त्रिरात्रं भवेत्तथा त्रयोदश्यादिदिनत्रयं ग्राह्यम् ॥ तत्र पूर्णिमासूर्यास्तमयात्पूर्वं त्रिमुहूर्ताधिकव्यापिनी चतुर्दशीविद्धा ग्राह्या ॥ त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परैव ॥ " भूतोष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् " ॥ इति वचनं सावित्रीव्रतातिरिक्तं ज्ञेयम् ॥ सावित्रीव्रतोपवासेऽष्टादशनाडीविद्धाया अपि ग्राह्यत्वात् ॥ यत्तु केवलपूजनात्मकमुपवासरहितं सावित्रीव्रतं सर्वत्र स्त्रियोनुतिष्ठंति तत्र भूतोष्टादशेतिवधो व्रतदानादिपरो न तूपवासपर इति निर्णयसिंधुलिखितमाधवाशयानुसारेणाष्टादशनाडीचतुर्दशीसत्त्वे परैव पूजाव्रते ग्राह्या ॥ उपवास[illegible]ते तु पूर्वेति मम प्रतिभाति ॥ अत्र पारणं पूर्णिमांते कर्त्तव्यम् ॥ अत्र रजस्वलादिदोषे पूजादि ब्राह्मणद्वारा कार्यम् ॥ स्वयमुपवासादिकं कार्यमित्यादयः स्त्रीव्रते विशेषाः प्रथमपरिच्छेदे ज्ञेयाः ॥ अत्र पूजोद्यापनादिर्विधिर्व्रतग्रंथेषु प्रसिद्धः ॥

ज्येष्ठपूर्णिमामें बिल्वत्रिरात्रिव्रत कहाहै । इस व्रतमें परविद्धा पूर्णिमा ग्रहण करनी । इसीमें वटसावित्रीव्रत होताहै। इस व्रतमें त्रयोदशी आदि तीन दिन उपवास होताहै । अशक्तिमें तो त्रयोदशीको नक्त,चतुर्दशीको अयाचित और पूर्णिमाको उपवास करै । यहां पूर्णिमा निर्णयासिंधुके अनुसार जैसे त्रिरात्रमें हो तैसे त्रयोदशी आदि तीन दिन ग्रहण करने । उसमें पूर्णिमा सूर्या-

त्तसे पहिले तीनमुहूर्तसे अधिकव्यापिनी, और चतुर्दशीसे विद्धा ग्रहण करनी। तीनमुहूर्तसे न्यून होय तो परलीही ग्रहण करनी, और भूत (१४) अठारह घडियोंसे उत्तरतिथिको दूषित करती है यह वचन तो सावित्रीके व्रतसे भिन्नविषयमें जानना। सावित्रीव्रतके उपवासमें तो अठारह घडीसे विद्धा-भी ग्रहण करने योग्य है। और जो केवल पूजनरूप, उपवासके विना सावित्रीका व्रत सर्वत्र स्त्री करती हैं, उसमें अठारह घडी चतुर्दशीका वेध व्रत और दान आदिमें है उपवासमें नहीं। इस निर्णयसिंधुमें लिखे माधवके आशयानुसार अठारह घडी चतुर्दशीके होनेपर परलीही पूजा व्रतमें ग्रहण करनी। और उपवासके व्रतमें तो पहिली, यह मुझे प्रतीत होता है। इसमें पारणा पूर्णिमाके अंतमें करना, इसमें रजस्वला आदिका दोष होय तो पूजा आदि ब्राह्मणके द्वारा करने, और उपवास आदि स्वयं करने इत्यादिस्त्रीके व्रतमें विशेष जो हैं वे प्रथम परिच्छेदमें जानने, इसमें पूजा और उद्यापन आदिकी जो विधि है, वह व्रतके ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है॥

अथ महाज्यैष्ठीयोगः ।

अत्र ज्येष्ठपूर्णिमायां ज्येष्ठानक्षत्रे बृहस्पतिश्चन्द्रश्च रोहिणीनक्षत्रे तु सूर्यस्तदा महाज्यैष्ठीयोगस्तत्र स्नानदानादिकं कार्यम् ॥ अस्याः पौर्णमास्या मन्वादित्वादत्र पिंडरहितं श्राद्धमुक्तम् ॥ एतन्निर्णयश्चैत्रे उक्तः ॥ अत्र मासे विप्रेभ्यश्चन्दनव्यजनोदकुंभादिकं त्रिविक्रमप्रीतये देयम् ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे ज्येष्ठमासनिर्णयोद्देशः ॥

यहां ज्येष्ठकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्रपर बृहस्पति चन्द्रामा हों और रोहिणीपर सूर्य होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है, उसमें स्नान दान आदि करने। इस पूर्णिमाको मन्वादि होनेसे इसमें पिंडरहित श्राद्ध करना कह आये हैं। इसका निर्णय चैत्रके निर्णयमें कह आये॥ इसमासमें ब्राह्मणोंको चन्दन, बीजना, उदकुंभआदि त्रिविक्रमकी प्रीतिके निमित्त देने॥ इति काशीनाथोपाध्यायविरचितधर्मसिंधुसारस्य पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवरणे ज्येष्ठमासनिर्णयोद्देशः॥

अथाषाढे दक्षिणायनसंज्ञा कर्कसंक्रान्तिः ।

कर्कसंक्रांतौ पूर्वं त्रिंशन्नाड्यः पुण्यकालः ॥ तत्रापि संक्रान्तिसन्निहिता नाड्यः पुण्यतमाः ॥ रात्रावर्धरात्रात्प्राक्परतश्च संक्रमेपि पूर्वदिने पुण्यकालः ॥ तत्रापि मध्याह्नात्परतः पुण्यतमत्त्वम् ॥ सूर्योदयोत्तरं घटिकाद्वयात्प्राक् संक्रमे परत एव पुण्यम् ॥ ज्योतिर्ग्रंथे तु सूर्योदयात्प्राग् घटीत्रयात्मकसंध्यासमयेपि कर्कसंक्रमे परदिने एव पुण्यमित्युक्तम् ॥ अत्र दानोपवासादि प्रथमपरिच्छेदे उक्तम् ॥ कर्ककन्याधनुःकुंभस्थे रवौ केशकर्तनादिकं निषिद्धम् ॥

इसके अनंतर आषाढमें दक्षिणायन नामकी कर्कसंक्रांति होती है। कर्कसंक्रांतिमें पहिली तीस घडी पुण्यकाल है, उनमें भी संक्रांतिके समीपकी जो नाडी हैं वे अत्यंत पुण्यरूप हैं। रात्रिमें अर्द्धरात्रिसे पूर्व वा परे संक्रांति होय तो भी पहिले दिनही पुण्यकाल है। उसमेंभी मध्याह्नसे परे अत्यंत पुण्य है। सूर्योदयके अनंतर वा दोघडी सूर्योदयसे पूर्व संक्रांति होय तो

परदिनमेंही पुण्य है । ज्योतिषके ग्रंथमें तो सूर्योदयसे पूर्व तीन घटीरूप संध्याके समयमेंभी कर्ककी संक्रांति होय तो परदिनमें पुण्यकाल कहा है । इसमें दान उपवास आदि प्रथम परिच्छेदमें कह आये । कर्क, कन्या, धन, कुंभ इनके सूर्यमें केशोंके मुंडन आदिका निषेध है ॥

अथ मासव्रतदानादिकम् ।

आषाढे मास्येकभक्तव्रते कृते बहुधनधान्यपुत्रप्राप्तिः ॥ अत्र मासे उपानच्छत्रलवणामलकानि वामनप्रीत्यै देयानि ॥

आषाढमासमें एकभक्त व्रतकरै तो बहुत धन धान्य पुत्रोंकी प्राप्ति होती है । इसमासमें उपानह्, छत्री, लवण, आंवले, वामनजीकी प्रीतिके निमित्त देने ॥

अथ श्रीरामरथोत्सवः ।

आषाढशुक्लद्वितीयायां पुष्यनक्षत्रयुतायां केवलायां वा श्रीरामस्य रथोत्सवः ॥

पुष्यनक्षत्रसे युक्त वा केवल आषाढ शुक्ला द्वितीयाको श्रीरामचन्द्रकी रथयात्राका उत्सव होता है ॥

अथ मन्वादिद्वयम् ।

आषाढशुक्लपक्षे दशमी पौर्णमासी च मन्वादिः ॥ तन्निर्णयस्तूक्तः ॥ अथैकादश्यां विष्णुशयनोत्सवः ॥ तत्र सोपस्करे मंचके सुप्तां श्रीविष्णुप्रतिमां शंखादिचतुरायुधां लक्ष्मीसंवाहितचरणां नानाविधोपचारैः संपूजयेत् ॥ "त्वयि सुप्ते जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् ॥ विबुद्धे त्वयि बुध्येत तत्सर्वं सचराचरम्" ॥ इति प्रार्थ्य उपोष्य जागरणं कृत्वा द्वादश्यां पुनः संपूज्य त्रयोदश्यां गीतनृत्यवाद्यादिकं निवेदयेत् ॥ एवमिदं त्रिदिनसाध्यं व्रतम् ॥ तत्र स्मार्तैर्वैष्णवैश्च स्वस्वैकादशीव्रतदिने शयनीव्रतमारब्धव्यम् ॥ रात्रौ शयनोत्सवः ॥ दिवा प्रबोधोत्सवः ॥ द्वादश्यां पारणाहे शयनप्रबोधोत्सवाविति केचित् ॥ अत्र देशाचाराद्व्यवस्था ॥ नेदं मलमासे कार्यम् ॥

आषाढके शुक्लपक्षमें दशमी और पौर्णमासी मन्वादि हैं उनका निर्णय कह आये हैं । अब एकादशीको विष्णुशयनोत्सवको कहते हैं। उसमें सामग्रीसहित शय्यापर सोई ऐसी श्रीविष्णुकी प्रतिमाको जो शंखआदि चारआयुधों सहित हो, और जिसकी लक्ष्मीजी चरणोंका संवाहन (दबाना) करतीहो, नानाप्रकारकी सामग्रियोंसे पूजै और जगन्नाथ! आपके सोनेसे यह जगत सो जाता है और आपके जागनेसे यह चर अचर जगत् जागता है।यह प्रार्थना करके उपवास और जागरणके अनंतर द्वादशीकी फिर पूजा करके त्रयोदशीको गीत नृत्य वाद्य आदिका निवेदन करै । इसप्रकार यह व्रत तीन दिनमें होता है । वहां स्मार्त और वैष्णव अपनी २ एकादशीके दिन शयनी व्रतका प्रारंभ करैं । रात्रिमें शयनोत्सव, दिनमें प्रबोधका उत्सव करैं, और कोई यह कहते हैं कि, द्वादशीको पारणाके दिन शयन और प्रबोधके दोनों उत्सवोंको करैं । यहां देशाचारसे व्यवस्था जाननी । यह मलमासमें न करना ।

अथाषाढद्वादशीपारणानिर्णयः ।

आषाढशुद्धद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कार्यम् ॥ तत्राप्यनुराधाप्रथमपादयोग एव वर्ज्यः ॥ यदा तु द्वादशी स्वल्पा वर्ज्यनक्षत्रयोगो द्वादशीमतिक्रम्य विद्यते तदा निषेधमनादृत्य द्वादश्यामेव पारणं कार्यमिति कौस्तुभे उक्तम् ॥ संगवकालभागं त्यक्त्वा प्रातर्मध्याह्नभागे वा भोक्तव्यमिति पुरुषार्थचिंतामणौ ॥

अनुराधा नक्षत्रके योगसे रहित आषाढशुक्ला द्वादशीको पारणा करना । उसमेंभी अनुराधाके प्रथम पादका योगही वर्जित है । और जब द्वादशी थोडी हो और अनुराधाका भोग द्वादशीके अनंतरभी हो तब निषेधका अनादर करके द्वादशीमेंही पारणा करै यह कौस्तुभमें कहा है । संगवकालके भागको छोडकर प्रातःकाल वा मध्याह्नभागमें भोजन करै,यह पुरुषार्थचिंतामणिमें कहा है ॥

अथ चातुर्मास्यव्रतसंकल्पः ।

द्वादश्यां पारणोत्तरं सायं पूजां कृत्वा चातुर्मास्यव्रतसंकल्पं कुर्यादिति कौस्तुभे॥ एकादश्यामेवेति निर्णयसिंधुः ॥ चातुर्मास्यव्रतप्रथमारंभो गुरुशुक्रास्तादावाशौचादौ च न भवति ॥ द्वितीयाद्यारंभस्त्वस्तादावाशौचादौ च भवत्येव ॥ चातुर्मास्यव्रतं शैवादिभिरपि कार्यम् ॥ व्रतग्रहणप्रकारस्तु ॥ भगवतो जातीपुष्पादिभिर्महापूजां कृत्वा ॥ "त्वयि सुप्ते जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् ॥ विबुद्धे च विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत" इति प्रार्थ्याग्रे कृतांजलिः॥ "चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि ॥ श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा ॥ दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं तथा ॥ इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत ॥ इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ॥ निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्ते रमापते ॥ गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव पंचत्वं यदि मे भवेत्॥तदा भवतु संपूर्णं प्रसादात्ते जनार्दन"॥ इति प्रार्थ्य देवाय शंखेनार्घ्यं निवेदयेत् ॥ एतानि व्रतानि नित्यानि ॥

द्वादशीको संध्याकालकी पूजाके अनंतर चातुर्मास्य व्रतका संकल्प करै, यह कौस्तुभमें कहा है । एकादशीमेंही करै यह निर्णयसिंधु कहता है । चातुर्मास्य व्रतका प्रथम प्रारंभ गुरुशुक्रका अस्त आदि और अशौच आदिमें नहीं होता।द्वितीय आदिका प्रारंभ तो अस्तआदि और अशौच आदिमेंभी होताहै, चातुर्मास्यव्रतको शैवआदिभी करैं,व्रतके ग्रहणकरनेका प्रकार तो यहहै कि, भगवान्की जातीके पुष्पआदिसे महापूजा करके,हे जगन्नाथ!आपके सोनेसे यह जगत् सोताहै और जागनेसे जागताहै। हेअच्युत मेरे ऊपर प्रसन्नहो ऐसी प्रार्थना करके,आगे हाथ जोडकर यह कहै कि, वार्षिक चारों मासोंमें देवके उठने पर्यंत श्रावणमें शाकको, भाद्रपदमें दहीको, आश्विनमें दूधको, और कार्तिकमें द्विदलको वर्जदे, इस नियमको करताहूं । हे अच्युत ! मेरे यहां निर्विघ्न करियो । हे देव! यहव्रत मैं आपके आगे ग्रहण कराहै हेरमापते ! आपके प्रसादसे

निर्विघ्न सिद्धहो, हे देव ! इस व्रतके ग्रहण किये पीछे यदि मेरा मरण होजाय, हे जनार्दन! तबभी आपके प्रसादसे संपूर्णहो, ऐसे प्रार्थना करके, देवको शंखसे अर्घका निवेदनकरै, यह व्रत नित्य है ॥

अथ शाकव्रतांतरेषु च ।

हविष्यभक्षणादिव्रतांतरचिकीर्षायां "श्रावणे वर्जयेच्छाकम्' इति श्लोकस्थाने 'हविष्यान्नं भक्षयिष्ये देवाहं प्रीतये तव" इत्यूहः कार्यः॥शाकव्रते व्रतांतरे च समुच्चयेन कर्तव्ये तं श्लोकं पठित्वा व्रतांतरमंत्रं वदेत् ॥ एवं गुडवर्जनादिधारणापारणादिव्रतेषु ॥ "वर्जयिष्ये गुडं देवमधुरस्वरसिद्धये ॥ वर्जयिष्ये तैलमहं सुंदरांगस्वसिद्धये ॥ योगाभ्यासी भविष्यामि प्राप्तुं ब्रह्मपदं परम् ॥ मौनव्रती भविष्यामि स्वाज्ञापालनसिद्धये ॥ एकांतरोपवासं च प्राप्तं ब्रह्मपदं परम् "इत्यादिरीत्योहः कार्यः ॥ निषिद्धमात्रवर्जनेच्छायाम् ॥ "वृंताकादिनिषिद्धानि हरे सर्वाणि वर्जये"॥ इति संकल्पः ॥ तानि च चातुर्मास्ये निषिद्धानि ॥

हविष्यभक्षण आदि अन्यव्रतकरनेकी इच्छा होय तो श्रावणमें शाकको वर्जदे, यहां शाकके स्थानमें हे देव ! हविष्यअन्नका भक्षण करूंगा आपकी प्रीतिके लिये, यहां यह ऊह (बदलना) करना, यदि शाकव्रत और अन्यव्रत समुच्चय (एकवार) से करना होय तो उस श्लोकको पढकर अन्यव्रतके मंत्रको पढै, इसीप्रकार गुडका वर्जना, धारणा और पारणा आदि व्रतोंमें, हे देव ! मधुरस्वरकी सिद्धिके लिये गुडको वर्जताहूं, सुंदर अंगकी सिद्धिके लिये तैलको त्यागताहूं, श्रेष्ठ ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिये योगाभ्यास करूंगा, अपनी आज्ञाके पालनके लिये मौनव्रत करूंगा, और श्रेष्ठब्रह्मपदकी प्राप्तिकेलिये एकांतरोपवास करूंगा इत्यादि रीतिसे ऊह करना, और निषिद्धमात्र त्यागनेकी इच्छा होय तो यह संकल्पकरै कि, हे हरे ! वृंताक (बैंगन) आदि संपूर्ण निषिद्धोंको वर्जताहूं, और वे चातुर्मास्यमें निषिद्ध हैं ॥

अथामिषगणः ।

प्राण्यंगचूर्णं चर्मस्थोदकं जंबीरं बीजपूरं यज्ञशेषभिन्नं विष्णवनिवेदितान्नं दग्धान्नं मसूरं मांसं चेत्यष्टविधमामिषं वर्जयेत् ॥ निष्पावराजमाषधान्ये लवणं शाकं वृंताकं कलिंगफलं अनेकबीजफलं निर्बीजं मूलकं कूष्मांडमिक्षुदंडं नूतनवदरीधात्रीफलानि चिंचां मंचकादिशयनमनृतुकाले भार्यागमनं परान्नं मधु पटोलं माषकुलित्थसितसर्षपांश्च वर्जयेत् ॥ वृंताकबिल्वोदुंबरकलिंगभिःसटास्तु वैष्णवैः सर्वमासेषु वर्ज्याः ॥ अन्यत्र तु गोछागीमहिष्यन्यदुग्धं पर्युषितान्नं द्विजेभ्यः क्रीता रसा भूमिलवणं ताम्रपात्रस्थं गव्यं पल्वलजलं स्वार्थपक्वमन्नमित्यामिषगण उक्तः ॥ "चतुर्ष्वपि हि मासेषु हविष्याशी न पापभाक्" ॥ हविष्याणि तु ॥ व्रीहियवमुद्गतिलकंगुकालायश्यामाकगोधूमधान्यानि रक्तभिन्नमूलकं सूरणादिकंदः सैंधवसामुद्रलवणं गव्यानि दधिसर्पिर्दुग्धानि पनसाम्रनारीकेरफलानि हरीतकीपि-

प्पलीजीरकंशुंठीचिंचाकदलीलवलीधात्रीफलानि गुडेतरेक्षुविकार इत्येतान्यतैलपक्वानि ॥ गव्यं तक्रं माहिषं घृतं क्वचित् ॥

प्राणीके अंगोंका चूर्ण, चर्मका जल, जंभीरी, विजोरा, यज्ञके शेषसे भिन्न, विष्णुको जो निवेदन (भोग) न किया हो वह अन्न, जलाहुआ अन्न, मसूर, मांस इन आठप्रकारके मांसको वर्जदे । निष्पाव राजमाष (लोविया) ये दो अन्न, लवणका (नोनी) शाक, बैंगन, कलिंगका फल, अनेक बीजका फल, विना बीजका फल, मूली, कूष्मांड, ईख, नयाबेर, आंवले, इमली, शय्यापर शयन, विना ऋतु स्त्रीका गमन, परायाअन्न, सहत, पटोल, उडद, कुलथी, सपेद सरसों इनको वर्जदे । बैंगन, बेल, कलिंग, भिस इनको तो वैष्णव सब मासोमें वर्जदें, अन्यग्रंथोंमें तो मांसका गण यह कहाहै कि, गौ, बकरी, भैंस इनसे भिन्नका दूध, बासीअन्न, ब्राह्मणसे मोललिये रस, भूमिका लवण, तांबेके पात्रके गौके दूध, दही, घी, पल्वल (छोटा-तलाव) काजल, अपनेलिये पकाया अन्न और जो चारोंमासोंमें हविष्यभोजन करताहै वह पापका भागी नहीं होता । हविष्य तो येहैं कि, चावल, जौ, तिल, मूंग, कांगनी, कलाय, सामक, गेहूं और रक्तसे भिन्न मूली, सूरण आदि कंद, सींधा और समुद्रका लवण, गौके दही, दूध. घी, पनस, आम, नारियल इनके फल, हंरडे, पीपल जीरा, सूंठ, इमली, केला, लवली, आंवला, गुडसे भिन्न ईखके विकार, बिना तेलसे पके ये सब और कहीं २ गौका मठा और भैंसका घी भी हविष्य कहाहै ॥

अथ काम्यव्रतानि ।

गुडवर्जनान्मधुरस्वरता ॥ तैलवर्जनात्सुंदरांगता ॥ योगाभ्यासी ब्रह्मपदं प्राप्नोति ॥ तांबूलत्यागाद्भोगी मधुरकंठश्च ॥ घृतत्यागी स्निग्धतनुः ॥ शाकत्यागी पक्वान्नभुक् ॥ पादाभ्यंगत्यागाद्वपुःसौगंध्यम् ॥ दधिदुग्धतक्रत्यागाद्विष्णुलोकः ॥ स्थालीपाचितान्नत्यागादीर्घसंततिः ॥ भूमौ दर्भशायी विष्णुदासः ॥ भूमिभोजनान्नृपत्वम् ॥ मधुमांसत्यागान्मुनिः ॥ एकांतरोपवासाद्ब्रह्मलोकः ॥ नखकेशधारणाद्दिनेदिने गंगास्नानम् ॥ मौनादस्खलिताज्ञा ॥ विष्णुवंदनाद्गोदानफलम् ॥ विष्णुपादस्पर्शात्कृतकृत्यता ॥ हरेरालये संमार्जनादिना नृपत्वम् ॥ शतप्रदक्षिणाकरणाद्विष्णुलोकः ॥ एकभक्ताशनादग्निहोत्रफलम् ॥ अयाचितेन वापीकूपोत्सर्गादिपूर्तफलम् ॥ षष्ठाह्नःकालभोजनाच्चिरस्वर्गः ॥ पर्णेषु भोजनात्कुरुक्षेत्रवासफलम् ॥ शिलाभोजनात्प्रयागस्नानम् ॥ एवं मासचतुष्टयसाध्यानां व्रतानां संकल्पमेकादश्यां द्वादश्यां वा कृत्वा श्रावणमासव्रतविशेषसंकल्प इहैव कार्यः ॥

अब काम्यव्रतोंको कहतेहैं, गुडके त्यागसे मधुर स्वर होताहै, तेलके त्यागसे सुंदरअङ्ग, योगके अभ्याससे ब्रह्मपद होताहै, पानके त्यागसे भोगी और मधुरकंठ होताहै, घीके त्यागीका चिकना शरीर होता है, शाकका त्यागी पकान्नका भोक्ता होताहै, पादोंके उबटनेके त्यागसे शरीरमें सुगंध होतीहै, दही दूध तक्र इनके त्यागसे विष्णुलोक होताहै, स्थाली (टोकनी) में पकाये अन्नके त्यागसे अधिक संतान होती हैं, भूमिपर कुशाओंपर जो सोवै वह विष्णुका दास

होताहै, भूमिपर भोजनकरनेसे राजा होताहै, मधुमांसके त्यागसे मुनि होताहै, एकांतर उपवाससे ब्रह्मलोक होताहै, नखकेशोंके धारणसे दिनदिन गंगास्नानका फलहै, मौनसे आज्ञाको सबमानें, विष्णुको नमस्कार करनेसे गोदानका फल होताहै, विष्णुके चरणस्पर्शसे कृतकृत्य होताहै, हरिके मंदिरमें मार्जनआदि करनेसे राजा होताहै, सौ प्रदक्षिणा करनेसे विष्णुलोक होताहै, एकभक्त भोजनसे अग्निहोत्रका फल होताहै, अयाचितभोजनसे वापी कूप आदि इष्टापूर्तके उत्सर्गका फल होताहै, छठे दिन भोजनसे चिरकालतक स्वर्ग होताहै, पत्तोंपर भोजन करनेसे कुरुक्षेत्रके वासका फल होताहै, शिलापर भोजनसे प्रयागस्नानका फलहै, इसप्रकार चतुर्मासमें करने योग्य व्रतोंके संकल्पको एकादशी वा द्वादशीको करके श्रावणके व्रतविशेषका संकल्प इसीदिन करना ॥

अथ शाकव्रतनिर्णयः ।

"अहं शाकं वर्जयिष्ये श्रावणे मासि माधव" इति ॥ अत्र शाकशब्देन लोके प्रसिद्धाः फलमूलपुष्पपत्रांकुरकांडत्वगादिरूपा वर्ज्या न तु व्यंजनमात्रम् ॥ शुंठीहरिद्रादिजीरकादिकमपि वर्ज्यम् तत्र तत्कालोद्भवानामातपादिशोषितकालांतरोद्भवानां च सर्वशाकानां वर्जनं कार्यम् ॥ अथैषां चातुर्मास्यव्रतानां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि तत्रैव वक्ष्यंते ॥

कि हे माधव ! मैं श्रावणमासमें शाकको त्यागूंगा, यहां शाकशब्दसे जगत्में प्रसिद्ध फल, मूल, पुष्प, पत्ते, अंकुर, कांड, त्वचा आदि रूप वर्जितहैं, कुछ व्यंजनामात्र नहीं, सूंठ, हलदी, जीरा आदिभी वर्जितहैं, उसमें उसकालमें पैदाहुयेका और धूप आदिमें सुकाये अन्य कालमें पैदाहुये शाकोंका भी त्याग करना, और इन चातुर्मास्यव्रतोंकी समाप्ति होनेपर कार्तिकीके जो दानहैं वे वहांही कहेंगे ॥

अथ तप्तमुद्राधारणनिर्णयः ।

शयनीबोधिन्योस्तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचंद्रिकायाम् ॥ अत्र तप्तमुद्राधारणे विधायकानि प्रशंसावचनानि निषेधकानि निंदावचनानि च बहुतराण्युपलभ्यंते तेषां शिष्टाचाराद्व्यवस्था ॥ येषां कुले पितृपितामहादिभिस्तप्तमुद्राधारणादिधर्मोनुष्ठितस्तैस्तथैवानुष्ठेयः येषां तु कुलेषु न केनाप्यनुष्ठितस्तैर्न स्वमतिविलसितश्रद्धया तद्धर्मोनुष्ठेयो दोषश्रवणादिति तात्पर्यम् ॥

रामार्चनदीपिकामें शयनी और बोधिनी एकादशीको तप्तमुद्रा धारण चक्रांकित होना कहाहै । इस तप्तमुद्राधारणके विधायक और निषेधक बहुतसे वचन मिलतेहैं उनकी शिष्टोंके आचारसे व्यवस्था जाननी; जिनके कुलमें पिता पितामह आदिकोंने तप्तमुद्रा धारण आदि धर्म कियाहो वेभी उसीप्रकार करैं, और जिनके कुलमें किसीनेभी न कियाहो वे अपनी बुद्धिमें उत्पन्नहुई श्रद्धासे उस धर्मको न करैं, क्योंकि उसमें दोष सुनाजाताहै ॥

अथ नरमेधफलकपूजा ।

आषाढशुक्लद्वादश्यां वामनपूजनेन नरमेधफलम् ॥ पूर्वाषाढायुतायां पौर्णमा-

स्यामन्नपानादिदानादक्षय्यान्नादिप्राप्तिः ॥ अस्यामेव पौर्णमास्यां प्रदोषव्यापिन्यां श्रीशिवस्य शयनोत्सवः ॥

और आषाढशुक्लाद्वादशीको वामनजीकी पूजासे नरमेधयज्ञका फल होताहै, पूर्वाषाढसे युक्त पूर्णिमाको अन्नपान आदिके दानसे अक्षय्य अन्नकी प्राप्ति होतीहै, प्रदोषव्यापिनी इसी पूर्णिमाको शिवका शयनोत्सव होताहै ॥

अस्यामेव कोकिलाव्रतम्।

तत्र ॥ "स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ॥ भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम्" इति मासव्रतं संकल्प्य कोकिलारूपिणीं शिवां प्रत्यहं संपूज्य नक्तभोजनम् ॥ यस्मिन्वर्षेधिकाषाढस्तस्मिन्नेव वर्षे शुद्धाषाढे व्रतं कार्यमित्याचारः स निर्मूलः ॥ आषाढस्य श्रावणस्य वा पौर्णमास्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां वा शिवपवित्रारोपणमुक्तम् ॥

और इसीमें कोकिलाव्रत होताहै, उसमें ब्रह्मचर्यमें टिकी मैं नियमसे स्नान करूंगी, नक्तभोजन, भूमिमें शयन और प्राणियोंपर दया करूंगी, ऐसे मासव्रतके संकल्पको करके, कोकिलारूप शिवाका प्रतिदिन पूजन करके नक्तभोजन करे। जिस वर्षमें आषाढ अधिकहो उसीवर्षमें शुद्ध आषाढमें व्रत करना यह आचार निर्मूल (अप्रमाण) है, आषाढ वा श्रावणकी पूर्णिमा, चतुर्दशी वा अष्टमी को शिवजीका पवित्रारोपण कहाहै।

अथ संव्यासिनां व्यासपूजा क्षौरादि।

अस्यां पौर्णमास्यां संन्यासिनां चातुर्मास्यावाससंकल्पांगत्वेन क्षौरव्यासपूजादिकं विहितम् ॥ अत्र कर्मण्यौदयिकी त्रिमुहूर्ता पौर्णमासी ग्राह्या ॥ "चातुर्मासस्य मध्ये तु वपनं वर्जयेद्यतिः ॥ चातुर्मासं द्विमासं वा सदैकत्रैव संवसेत्"॥ तत्रादौ क्षौरं विधाय द्वादशमृत्तिकास्नानानि प्राणायामादिविधिं च कृत्वा व्यासपूजां कुर्यात् ॥

इस पूर्णिमाको संन्यासियोंके चातुर्मास्य वासके संकलपका अंग क्षौर और व्यासपूजा आदि कहेहैं। इसकर्ममें उदयकालकी तीनमुहूर्त पौर्णमासी ग्रहण करनी, चातुर्मास्यमें संन्यासी मुंडनको वर्जदें और चार वा दो मासतक सदैव एकत्र वसें, उसमें प्रथम क्षौरको करके बारह मृत्तिकाओंसे स्नान और प्राणायाम आदि विधिको करके व्यासपूजाको करे ॥

अथ संक्षेपेण तद्विधिः।

देशकालौ संकीर्त्य चातुर्मास्यावासं कर्तुं श्रीकृष्णव्यासभाष्यकाराणां सपरिवाराणां पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ मध्ये श्रीकृष्णं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानावाह्य श्रीकृष्णपंचकदक्षिणभागे व्यासं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन सुमंतुजैमिनिवैशंपायनपैलानिति व्यासपंचकमावाह्य श्रीकृष्णादि वामे भाष्यकारं श्रीशंकरं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन पद्मपादविश्वरूपत्रोटकहस्तामलकाचार्यानावाह्य श्रीकृष्णपंचके श्रीकृष्णपार्श्वयोर्ब्रह्मरुद्रौ पूर्वादिचतुर्दिक्षु

सनकादीन्कृष्णपंचकात्पुरतः गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरुपरात्परगुरून् ब्रह्मवसिष्ठशक्तिपराशरव्यासशुकगौडपादगोविंदपादशंकराचार्यान्ब्रह्मनिष्ठांश्चावाह्य पंचकत्रयस्याग्नेये गणेशमीशान्यां क्षेत्रपालं वायव्ये दुर्गां नैर्ऋत्ये सरस्वतीं प्रागाद्यष्टदिक्ष्विंद्रादिलोकपालांश्चावाह्य पूजयेत् ॥ तत्र नारायणाष्टाक्षरेण श्रीकृष्णपूजा ॥ अन्येषां प्रणवादिनमोंतैस्तत्तन्नाममंत्रैः पूजा कार्या ॥ पूजांते असति प्रतिबंधे चतुरो वार्षिकान्मासानिह वसामीति मनसा संकल्प्य ॥ "अहं तावन्निवत्स्यामि सर्वभूतहिताय वै ॥ प्रायेण प्रावृषि प्राणिसंकुलं वर्त्म दृश्यते ॥ अतस्तेषामहिंसार्थं पक्षान्वै श्रुतिसंश्रयात् ॥ स्थास्यामश्चतुरो मासानत्रैवासति बाधके" ॥ इति वाचिकसंकल्पं कुर्यात ॥ ततो गृहस्थाः प्रतिब्रूयुः "निवसंतु सुखेनात्र गमिष्यामः कृतार्थताम् ॥ यथाशक्ति च शुश्रूषां करिष्यामो वयं मुदा" इति ॥ ततो वृद्धानुक्रमेण यतीन्गृहस्था यतयश्चान्योन्यं नमस्कुर्युः ॥ एतद्विधिः पौर्णमास्यामसंभवे द्वादश्यां वा कार्यः ॥

यहां संक्षेपसे उसकी विधिको कहतेहैं—देशकालका उच्चारण करके चातुर्मास्यवास करनेके लिये श्रीकृष्ण, व्यास, भाष्यकार परिवारसहित इनका पूजन करताहूं, यह संकलपकरके मध्यमें श्रीकृष्ण, उससे पूर्व प्रदक्षिण क्रमसे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इनका आवाहन करके श्रीकृष्णआदिपांचोंके दक्षिणभागमें व्यासका, उससे पूर्वप्रदक्षिणक्रमसे सुमंतु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल इन पांच व्यासोंका आवाहन करके श्रीकृष्णआदिके वामभागमें भाष्यकारका और श्रीशंकरका, और उनसे पूर्व प्रदक्षिणक्रमसे पद्मपाद, विश्वरूप, त्रोटक, हस्तामलकआदि आचार्योंका आवाहन करके, श्रीकृष्णआदिपांचोंके मध्यमें श्रीकृष्णके पार्श्वोंमें ब्रह्मा, रुद्रका, और पूर्वआदि चारों दिशाओंमें सनकादिकोंका, श्रीकृष्णआदि पांचोंके आगे गुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु, परसे भी परे गुरु,ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति,पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविंदपाद, शंकराचार्य और ब्रह्मनिष्ठोंका आवाहन करके ये जो पूर्वोक्त तीन पंचकहैं उनके अग्निकोणमें गणेशका, ऐशानमें क्षेत्रपालका, वायव्यमें दुर्गाका, नैर्ऋत्यमें सरस्वतीका, पूर्वआदि आठदिशाओंमें इंद्रआदि लोकपालोंका आवाहन करके पूजन करै । उनमें अष्टाक्षर नारायण मन्त्रसे श्रीकृष्णकी पूजा और अन्योंको ऐसे नाममंत्रोंसे पूजाकरै जिनके 'ॐकार'आदिमें और 'नमः' अंतमेंहो, पूजाके अंतमें कोई प्रतिबंध न होगा तो वर्षाके चार मास यहां वसूंगा यह मनसे संकल्प करके वाणीसे यह संकल्प करै कि, मैं सबभूतोंके हितके लिये तबतक यहां वास करूंगा जबतक प्रावृट् ऋतुमें जीवोंसे व्याकुल मार्ग दीखैगा, इससे उनकी अहिंसाके लिये चार पक्षतक वा कोई बाधक न हुआ तो चारमासतक यहांही टिकूंगा, फिर गृहस्थी ऐसे कहैं कि, आप यहां सुखसे बसैं हमभी कृतार्थ होजांयगे और आनंदसे आपकी यथाशक्ति सेवा करैंगे । फिर वृद्धोंके क्रमसे गृहस्थ और संन्यासी परस्पर नमस्कार करैं, यह विधि पूर्णिमाको न होसकै तो द्वादशीको करनी ॥

अथाषाढकृष्णद्वितीयायामशून्यशयनव्रतम् ।

अत्र लक्ष्मीयुतं विष्णुं पर्यंके संपूज्य॥ "पत्नी भर्तुर्वियोगं च भर्ता भार्यासमुद्भवम् ॥ नाप्नुवंति यथा दुःखं दांपत्यानि तथा कुरु" इत्यादिभिर्दांपत्याभंगप्रार्थनार्थै-

मन्त्रैः प्रार्थयेत् ॥ ततश्चन्द्रायार्घ्यं दत्त्वा नक्तभोजनं कार्यम् ॥ एवं मासचतुष्टये कृष्णद्वितीयासु संपूज्य सपत्नीकाय शय्यादानं कृत्वा तां प्रतिमां च सोपस्करां दद्यात् ॥ अस्मिन्व्रते अक्षय्यं दांपत्यसुखं पुत्रधनाद्यवियोगो गार्हस्थ्यावियोगश्च सप्तजन्मसु भवति ॥ अत्र व्रते चंद्रोदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या ॥ चंद्रोदये पूजाद्युक्तेः दिनद्वये सत्त्वेऽसत्त्वे वा परैव ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्याय विरचिते धर्मसिंधुसारे आषाढमासनिर्णयोद्देशः ॥

आषाढकृष्णद्वितीयाको अशून्यशयनव्रत होताहै, इसमें लक्ष्मीसहित विष्णुकी पलंगपर पूजाकरके, पत्नी भर्ताके वियोगको और भर्ता भार्याके दुःखको जैसे न प्राप्तहों ऐसे दंपती (स्त्रीपतियों) को आप करो इत्यादि दांपत्य (स्त्रीपतिसुख) के भंग न होनेके जो प्रार्थनाके मंत्रहैं उनसे प्रार्थना करै, फिर चंद्रमाको अर्घ देकर नक्तभोजनको करै, इसप्रकार चारों मासोंकी कृष्णाद्वितीयाओंमें पूजकर और सपत्नीक ब्राह्मणको शय्यादान देकर सामग्रीसहित उस प्रतिमाकोभी दे, इसके करनेसे दांपत्यका सुख अक्षय और पुत्रधनआदिका अवियोग और गार्हस्थ्य (गृहके भोग आदि) का अवियोग सातजन्मतक होताहै, इस व्रतमें चंद्रोदयव्यापिनी तिथि लेनी क्योंकि, पूजाआदि चंद्रोदयहोनेपर कहेहैं, दोनों दिन चंद्रोदयव्यापिनी हो वा न होय तो परलीही ग्रहण करनी ॥ इति श्रीकाशीनाथोपाध्यायविरचितधर्मसिंधुसारस्य पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवरणे आषाढमासनिर्णयोद्देशः ॥

अथ श्रावणमासे सिंहसंक्रांतिः।

सिंहे पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः रात्रौ तूक्तम् ॥

अब श्रावणमासका निर्णय कहते हैं, सिंहकी संक्रांतिमें परली सोलह घडी पुण्यकाल है, रात्रिमें होय तो उसका पुण्यकाल कहआयेहैं ॥

अथ मासव्रतानि।

अत्र मासे एकभक्तव्रतं नक्तव्रतं विष्णुशिवाद्यभिषेकश्चोक्तः ॥

इस मासमें एकभक्तव्रत, नक्तव्रत, विष्णु, शिव, आदिका अभिषेक कहाहै ॥

अथ सिंहे गोप्रसूतौ।

"सिंहराशिगते सूर्ये यस्य गौश्च प्रसूयते" ॥ तेन व्याहृतिभिर्घृताक्तायुतसंख्यया सर्षपहोमं कृत्वा सा गौर्ब्राह्मणाय देया ॥

सिंहराशिके सूर्यमें जिसकी गौके प्रसवहो वह व्याहृतियोंसे दशसहस्र, घीकी मिली सरसोंका होम करके उस गौको ब्राह्मणको देदे ॥

अथ निशीथे गोः क्रंदने।

एवं निशीथे गोः क्रंदनेपि मृत्युंजयमंत्रेण होमादिरूपा शांतिः कार्या ॥

इसीप्रकार अर्द्धरात्रके समय गौके क्रंदन (रांभना) कोभी मृत्युंजयके मंत्रसे होम आदि-रूप शांति करनी ॥

अथ वडवामहिषीप्रसूतौ ।

एवं श्रावणमासे दिवाश्विनीप्रसवोपि निषिद्धः ॥ "माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा ॥ सिंहे गावः प्रसूयंते स्वामिनो मृत्युदायकाः" ॥ इत्युक्तेरत्रापि शांतिः शांतिग्रंथतो ज्ञेया ॥

इसीप्रकार श्रावणमासमें दिनके समय अश्विनी (घोडी) का प्रसवभी निषिद्धहै, माघ और बुधवारको भैंसका, श्रावणके विषे दिनमें घोडीका, सिंहमें गौका प्रसव होय तो स्वामीकी मृत्युको करतेहैं, इस वचनसे इसकी शांति भी शांतिके ग्रंथोंसे जाननी ॥

अथ सोमवारभौमवारव्रतम् ।

"सोमवारव्रतं कार्यं श्रावणे वै यथाविधि ॥ शक्तेनोपोषणं कार्यमथवा निशि भोजनम्" ॥ एवं श्रावणे भौमवारे गौरीपूजाप्युक्ता श्रावणशुक्लचतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी पूर्वयुता ग्राह्या ॥

श्रावणमें विधिसे सोमवारका व्रत करै, समर्थमनुष्य उपवास अथवा रात्रिमें भोजन करै, इसीप्रकार श्रावणमें भौमवारको गौरीपूजाभी कहीहै । श्रावणशुक्ला चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी और पूर्वविद्धा ग्रहण करनी ॥

अथ नागपंचमीव्रतम् ।

श्रावणशुद्धपंचमी नागपंचमी ॥ इयमुदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी परविद्धा ग्राह्या ॥ परेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूना पंचमी पूर्वेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूनचतुर्थ्या विद्धा तदा पूर्वैव ॥ त्रिमुहूर्ताधिकचतुर्थीवेधे द्विमुहूर्तापि परैव ॥ मुहूर्तमात्रा तु न ग्राह्येति मम प्रतिभाति ॥ अस्यां भित्त्यादिलिखिता मृन्मया वा यथाचारं नागाः पूज्याः ॥

श्रावणशुक्ला पंचमी नागपंचमी है, यह उदयकालमें तीनमुहूर्तव्यापिनी परविद्धा ग्रहण करनी, परलेदिन तीनमुहूर्तसे न्यून पंचमीहो और पहिलेदिन तीनमुहूर्तसे न्यून चतुर्थीसे विद्धा होय तो पहिलीही लेनी, तीनमुहूर्तसे अधिक चतुर्थीका वेध होय तो दोमुहूर्तभरभी परलीही लेनी, मुहूर्तमात्र तो ग्रहण न करनी, यह मुझे प्रतीत होताहै । इसमें भींत आदिपर लिखे वा मिट्टीके नागोंकी पूजा करनी ॥

अथ शाकदानमंत्रः ।

श्रावणशुक्लद्वादश्यां मासं कृतस्य शाकवर्जनव्रतस्य सांगतार्थं ब्राह्मणाय शाकदानं करिष्ये इति संकल्प्य ब्राह्मणं संपूज्य ॥ "उपायनमिदं देव व्रतसंपूर्णहेतवे ॥ शाकं तु द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम्" ॥ इति मंत्रेण पक्कमामं वा शाकं दद्यात् ॥ ततो "दधि भाद्रपदे मासे वर्जयिष्ये सदा हरे" इति दधिव्रतं संकल्पयेत् ॥ अत्र दधिमात्रं वर्ज्यं तक्रादीनामनिषेधः ॥

श्रावणशुक्ला द्वादशीको मासभर किये शाकके त्यागरूप व्रतकी सांगताके लिये ब्राह्मणको शाकका दान करताहूं यह संकल्प करके और ब्राह्मणको पूजकर, हे देव!यह सुवर्णसहित शाकरूप उपायन (भेंट) श्रेष्ठब्राह्मणको मैं देताहूं, इस मंत्रसे पके वा कच्चे शाकको दे । फिर भाद्रपदमासमें हे हरे ! सदा दहीको त्यागूंगा, इसमंत्रसे दधिव्रतका संकल्प करै, यहां दधिमात्रही वर्जितहै तक्रआदिका निषेध नहींहै ॥

अथ विष्णोः पवित्रारोपणकालः ।

अथ पारणाहे द्वादश्यां विष्णोः पवित्रादिरोपणम् ॥ पारणाहे द्वादश्यसत्त्वे त्रयोदश्यां पारणाहे तत्र संभवे श्रवणर्क्षे पूर्णिमायां वा कार्यम्॥ शिवपवित्रं चतुर्दश्यामष्टम्यां वा पौर्णमास्यां वा कार्यम् ॥ एवं देवीगणेशदुर्गादीनां चतुर्दशीचतुर्थीतृतीयानवम्यादयो यथाकुलाचारं तिथयः ॥ तत्तत्तिथिष्वसंभवे सर्वदेवानां श्रावणपौर्णमास्यां वा कार्यम् ॥ तत्रासंभवे कार्तिक्यवधिर्गौणकालः ॥ इदं नित्यम् ॥

अब पारणाके दिन द्वादशीको विष्णुका पवित्रारोपण कहतेहैं, पारणाके दिन द्वादशी न होय तो त्रयोदशीमें पारणाके दिन करै, उसमेंभी न होसकै तो पूर्णिमाके दिन श्रवणनक्षत्रमें करै । शिवकी पवित्री चतुर्दशी अष्टमी वा पूर्णिमाको करै, इसीप्रकार देवी, गणेश,दुर्गा आदिकोंकी चतुर्दशी, चतुर्थी, तृतीया, नवमी आदि कुलाचारके अनुसार पवित्रारोपणकी तिथिहैं, तिस २ तिथिमें न होसकै तो श्रावणकी पौर्णमासीमें करना, उसमें भी न होसकै तो कार्तिकपर्यंत गौणकालहै, यह नित्यहै ॥

अथ पवित्राकरणेप्रायश्चित्तम् ।

"अकुर्वाणो व्रजत्यधः ॥ तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला" इत्याद्युक्तेः ॥ गौणकालेप्यकरणे ॥ "तदायुतं जपेन्मंत्रं स्तोत्रं वापि समाहितः" इत्युक्तेरयुतसंख्याकतद्देवतामूलमंत्रजपः प्रायश्चित्तम् ॥ तत्र पूर्वेद्युरधिवासनं परेह्नि पवित्रारोपणम् ॥ द्व्यहकालासंभवे सद्योधिवासनपूर्वकं तत्कार्यम् ॥

क्योंकि यह कहाहै कि, न करै तो नरकमें जाताहै और उसकी वार्षिकपूजा निष्फल होतीहै, जो गौणकालमेंभी न करै तो तब अयुत (१००००) मंत्रको जपै वा सावधानीसे स्तोत्रका पाठ करै इस वचनसे दशसहस्र तिस २ देवताके मूलमंत्रका जप, प्रायश्चित्त है । तिसमें पहिले दिन अधिवासन, परले दिन पवित्रारोपण करै, दो दिनका समय न मिलसकै तो एक दिनही अधिवासनके अनंतर पवित्रारोपण करै ॥

अथ संक्षेपतः पवित्रकरणप्रयोगः ।

कार्पाससूत्रस्य नवसूत्रीं विधायाष्टोत्तरशतनवसूत्र्या देवजानुपर्यंतं चतुर्विंशद्ग्रंथिकमुत्तमं पवित्रम् ॥ चतुःपंचाशन्नवसूत्र्या ऊरुलंबि द्वादशग्रंथिकं मध्यमम् ॥ सप्तविंशतिनवसूत्र्याष्टग्रंथिकं नाभिपर्यंतं कनिष्ठं पवित्रं च कृत्वा विंशत्युत्तरशतेन

सप्तत्या वा नवसूत्र्या पादलंबिनीं वनमालामष्टोत्तरशतचतुर्विंशत्यन्यतरग्रंथिकां कृत्वा द्वादशनवसूत्र्या द्वादशग्रंथिकं गंधपवित्रं सप्तविंशतिनवसूत्र्या गुरुपवित्रं त्रिसूत्र्यांगदेवतापवित्राणि कुर्यात् ॥

अब संक्षेपसे प्रयोगको कहते हैं–कि, कपासके सूतकी नवसूत्री करके देवताकी जानुपर्यंत अष्टोत्तरशत (१०८) नवसूत्रीकी और चौवीस ग्रंथिकी उत्तम पवित्री होती है और चव्वन ५४ नवसूत्रीका और ऊरुतक लंबा बारह ग्रंथिका मध्यम, सत्ताईस २७ नवसूत्री और आठग्रंथिका और नाभिपर्यंत लंबा कनिष्ठ, पवित्रेको बनाकर एकसौवीस, वा सत्तर, नवसूत्रीसे पादपर्यंत लंबी ऐसी वनमालाको, जिसमें एकसौ आठ वा चौवीस गांठ हों बनाकर, और बारह नवसूत्रियों और बारह गाठोंका गन्ध पवित्र बनाकर, और सत्ताईस नवसूत्रीका गुरुपवित्रको और त्रिसूत्रीसे अंगदेवताओंके पवित्रे करै ॥

अथ शिवपवित्राणि ।

शिवपवित्राणि लिंगविस्तारानुसारेण कुर्यात् ॥ सर्वाणि पवित्राणि पंचगव्येन प्रोक्ष्य प्रणवेन प्रक्षाल्य मूलेनाष्टोत्तरशतमभिमंत्र्य ग्रंथीन्कुकुंमेन रंजयित्वा सर्वं पवित्राणि वंशपात्रे संस्थाप्य वस्त्रेण पिधाय देवपुरतो न्यस्य ॥ "क्रियालोपविधानार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो ॥ मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम् ॥ न मे विघ्नो भवेद्देव कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः" इति प्रार्थ्याधिवासनं कुर्यात् ॥

शिवजीके पवित्रे लिंगविस्तारके अनुसार करै, सब पवित्रोंको पंचगव्यसे प्रोक्षण करके और ॐकारसे धोकर, और अष्टोत्तरशत (१०८) बार मूलमंत्रसे अभिमंत्रण करके, ग्रंथियोंको कुंकुमसे रँगकर, सब पवित्रोंको वंशके पात्रमें स्थापन करके, वस्त्रसे ढककर, देवके आगे रखकर, और क्रियालोपके विधानार्थ हे प्रभो! जो तुमने विधान किया था, आपकी प्रसन्नताकेलिये मैं यह पवित्रा बनाता हूं, हे देव! मेरे विघ्न न हों। हे नाथ ! मेरे ऊपर दया करो हे विष्णो ! सबकालमें सर्वथा मेरी परमगति आप हो । इस मंत्रसे प्रार्थना करके अधिवासन करै ॥

अथाधिवासनादिप्रयोगः ।

तत्र देशकालौ संकीर्त्य मम संवत्सरकृतपूजाफलावाप्त्यर्थममुकदेवताप्रीत्यर्थमधिवासनविधिपूर्वकं पवित्रारोपणं करिष्य इति संकल्प्य देवपुरतः सर्वतोभद्रे जलपूर्णं कुंभं संस्थाप्य कुंभे वंशपात्रं तत्र तानि पवित्राणि निधाय तेषु ॥ "संवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः ॥ विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तु ते" ॥ इति मंत्रेण मूलमंत्रेण चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान्नवसूत्र्याम् ॐकारसोमवह्निब्रह्मनागेशसूर्यशिवविश्वेदेवानुत्तममध्यमकनिष्ठपवित्रेषु विष्णुब्रह्मरुद्रान्स्त्वरजस्तमांस्यावाह्य वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य मूलमंत्रेण श्रीपवित्राद्यावाहितदेवताभ्यो नम इत्यंतेन गंधाद्युपचारैः पूजयेत् ॥ ततः पूर्वसंपादितं वितस्ति–

मात्रं द्वादशग्रंथिकं गंधपवित्रमादाय ॥ "विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ सर्वकामप्रदं देव तवांगे धारयाम्यहम्" इति मंत्रेण मूलसंपुटितेन देवपादयोः समर्पयेत् ॥ देवस्य करे बध्नीयादित्यन्ये ॥ ततो देवं पंचोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत् ॥ "आमंत्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः" ॥ ततः साष्टांगं प्रणम्य पुष्पांजलिं दद्यात् इत्यधिवासनम् ॥

उसमें देशकालका उच्चारण करके वर्षदिनकी पूजाके फलकी प्राप्तिके लिये, और अमुकदेवताकी प्रीतिके अर्थ, अधिवासन और विधिसे पवित्रारोपण करता हूं, यह संकल्प करके, देवके आगे सर्वतोभद्र मण्डलमें जलसे पूर्ण घटको स्थापन करके, कुंभपर बांसका पात्र और उसमें वे पवित्रे रखकर उन पवित्रोंमें, भो देव! संवत्सरकी पूजाके पवित्रकरणार्थ,विष्णुलोकसे इस पवित्रेमें आओ आपको नमस्कार है, इसमंत्रसे आवाहन करके, त्रिसूत्रीमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रोंका और नवसूत्रीमें ॐकार, सोम, वह्नि, ब्रह्मा, गणेश, सूर्य, शिव, विश्वेदेवाओंका उत्तम, मध्यम कनिष्ठ पवित्रोंमें ब्रह्मा विष्णु रुद्र, सत्त्व रज तम इनका आवाहन करके, और वनमालामें प्रकृतिका आवाहन करके, श्रीपवित्रआदिमें आवाहन किये देवताओंको नमस्कार है यह है अन्तमें जिसके ऐसे मूलमंत्रसे गन्धआदि सामग्रियोंसे पूजन करै । फिर पहिले बनाये हुये वितस्ति भरके और बारह ग्रंथिके गन्धपवित्रेको लेकर, विष्णुके तेजसे उत्पन्न रमणीक और संपूर्ण पातकोंका नाशक, सब कामनाओंका दाता यह गंधपवित्र हे देव ! तेरे अङ्गमें धारण करता हूं, मूलमंत्रसे संपुट किये इसमंत्रसे देवके चरणोंमें समर्पण करै । कोई यह कहतेहैं कि देवके हाथमें बांधदे, फिर देवकी पंचोपचारसे पूजा करके प्रार्थना करै, हे देवेश ! हे पुराणपुरुषोत्तम ! आपको आमंत्रण किया है प्रातःकाल आपका पूजन करूंगा । हे केशव ! सान्निध्य करो अर्थात् समीपमें रखियो । क्षीरसागरमें महानागशय्यापर आपका देह स्थित है इससे आपका पूजन करता हूं मेरे संनिधिमें हो, आपको नमस्कार है । फिर साष्टांग प्रणाम करके पुष्पांजलि दे ॥ इति अधिवासनम् ॥

अथ पवित्रारोपणमंत्रादि ।

अत्र सर्वत्र मूलमन्त्रो गुरूपदिष्टस्तांत्रिको वैदिको वा देवगायत्रीरूपो वा ग्राह्यः॥ ततो रात्रिं सत्कथाजागरेणातिवाह्य प्रातःकाले सद्योधिवासने गोदोहांतरिते वा काले पवित्रारोपणांगभूतं देवपूजनं पवित्रपूजनंच करिष्ये इति संकल्प्य देवं पवित्राणि च फलाद्युपनैवेद्यांतगंधाद्युपचारैः संपूज्य गंधदूर्वाक्षतयुतं कनिष्ठं पवित्रमादाय ॥ "देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ॥ पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥ पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर" इति मन्त्रेण मूलसंपुटितेन दत्त्वा मध्यमोत्तमपवित्रे वनमालां चैव मेवैतन्मन्त्रावृत्त्या दद्यात् ॥ अंगदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य

प्रार्थयेत् ॥ "मणिविद्रुममालाभिर्मंदारकुसुमादिभिः ॥ इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ॥ तद्वत्पवित्रतंतूंस्त्वं पूजां च हृदये वह ॥ जानता जानतावापि यत्कृतं न तवार्चनम्॥केनचिद्विघ्नदोषेण परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ अपराधसहस्राणि क्रियंतेहर्निशं मया॥दासोयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर " इति ॥ अत्र शिवादौ ॥ गरुडध्वजेत्यादौ वृषवाहनेत्यूहः ॥ वनमालामिति श्लोकस्य तु लोपः ॥ देव्यां तु देवदेवसुरेश्वरेत्यादौ देविदेवि सुरेश्वरीत्यादि स्त्रीप्रत्ययांतपदोहः कार्यः ॥ शेषं समानम् ॥ ततो गुरुं संपूज्य पवित्रं दत्त्वान्यब्राह्मणेभ्यः सुवासिनीभ्यश्चान्यानि दत्त्वा स्वयमपि सकुटुंबो धारयेत् ॥ ततो ब्राह्मणैः सह भुक्त्वा त्रिरात्रं ब्रह्मचर्यादि नियमवान् देहे पवित्राणि धारयेत् ॥ देवस्य स्नानादिकोपचारान्पवित्राण्युत्तार्य कारयेत् ॥ त्रिरात्रांते देवं संपूज्य पवित्राणि विसर्जयेत ॥

यहां सर्वत्र मूलमंत्र गुरुका उपदेश किया तांत्रिक वा वैदिक देवगायत्रीरूप ग्रहण करना, वा फिर रात्रिको, श्रेष्ठकथा और जागरणसे बिताकर, प्रातःकालमें वा सद्यः अधिवासनमें वा गोदोहनके तुल्यकालके अनंतर, पवित्रारोपणके अंगभूत देवपूजन और पवित्रोंके पूजनको करताहूं, यह संकल्पकरके,देवके पवित्रोंको फल आदि नैवेद्यपर्यंत गंधआदि सामग्रियोंसे पूज कर, गन्ध, दूर्वा अक्षतोंसे युक्त कनिष्ठपवित्रेको लेकर, हे देवदेव ! आपको नमस्कारहै इस पवित्रेको ग्रहणकरो यह पवित्र करनेकेलियेहै और वर्षदिनकी पूजाके फलका दाताहै, जो मैं कुछ पाप कियाहै उससे आज पवित्र करो, हे सुरेश्वर! हे देव! मैं आपके प्रसादसे शुद्ध हूंगा, मूलमंत्रसे संपुटकिये इसमंत्रसे देकर, मध्यम उत्तम पवित्रे और वनमालाको, ऐसेही इसीमंत्रकी आवृत्ति (पढना) से दे । अंगदेवताओंको नाम मंत्रसे देकर महानैवेद्य और नीराजन (आरती) देकर प्रार्थना करै कि, मणि मूंगाकी और मंदारके पुष्प आदिकी मालाओंसे हे गरुडध्वज ! यह सांवत्सरी पूजा आपकी हो जैसे वनमाला और कौस्तुभमणिको हृदयमें निरंतर धारतेहो तैसेही पवित्र तन्तु और पूजाको अपने हृदयमें धारण करो,जानकर वा विना जाने किसी विघ्नके दोषसे जो तुम्हारा पूजन न किया हो वह मेरा सम्पूर्णहो।मैं रातदिन सहस्रों अपराध करता हूं, मुझे भक्तिसे अपना दास जानकर हे परमेश्वर ! क्षमा करो। यहां शिव आदिकी पूजामें गरुडध्वज आदिके स्थानमें वृषवाहन आदि पद करना, और वनमाला इसश्लोकका लोप समझना अर्थात् न पढना, देवीकी पूजामें तो 'देवदेव सुरेश्वर'इसके स्थानमें 'देविदेवि सुरेश्वरि' इस स्त्रीप्रत्ययान्तका ऊह करना और शेष कर्म समान है । फिर गुरुकी पूजाके अनन्तर पवित्री देकर और अन्य ब्राह्मण और सुवासिनियोंको अन्यपवित्री देकर आपभी कुटुंब सहित पवित्रीधारण करै, फिर ब्राह्मणोंके संग भोजन करके तीन रात्रि ब्रह्मचर्यआदि नियमसे रहकर, पवित्रोंको धारण करै, देवके स्नान आदि, उपचार पवित्रोंको उतारकर करै, तीन रात्रिके अंतमें देवका भलीप्रकार पूजन करके पवित्रोंका विसर्जन करै ॥

अथात्र पूर्णिमा पूर्वविद्धा ग्राह्या।

अत्र शिवादिपवित्रारोपणे चतुर्दशी पूर्वविद्धा ग्राह्या ॥ एवं पूर्णिमापि त्रिमुहूर्तसायाह्नव्याप्ता पूर्वविद्धैव ग्राह्या ॥ अष्टम्यादितिथ्यंतराण्यपि पवित्रारोपणे प्रथमपरिच्छेदोक्तसामान्यतिथिनिर्णयानुसारेण ग्राह्याणि ॥ ॥ इति पवित्रारोपणविधिः ॥

यहां शिवआदिके पवित्रारोपण आदिमें पूर्वविद्धा चतुर्दशी लेनी । इसीप्रकार पूर्णिमाभी सायाह्नमें त्रिमुहूर्तव्यापिनी पूर्वविद्धा ही ग्रहण करनी। अष्टमीआदि अन्यतिथिभी पवित्रारोपणमें प्रथमपरिच्छेदमें कहा जो तिथियोंका सामान्य निर्णय उसके अनुसार ग्रहण करनी ॥ इति पवित्रारोपणविधिः ॥

अथ बह्वृचानामुपाकर्मकालः।

तत्र बह्वृचानां श्रावणशुक्लपक्षे श्रवणनक्षत्रं पञ्चमी हस्त इति कालत्रयम् ॥ तत्र श्रवणं मुख्यः कालः ॥ तदलाभे पञ्चम्यादिः तथा च कालतत्त्वविवेचने सग्रहकारिकायाम् ॥ "पर्वणि श्रवणे कार्यं ग्रहसंक्रांत्यदूषिते ॥ अध्वर्युभिर्बह्वृचैश्च कथंचित्तदसंभवे ॥ तत्रैव हस्तपंचम्यां तयोः केवलयोरपि" ॥ तत्र दिनद्वये श्रवणसत्त्वे यदि पूर्वदिने सूर्योदयमारभ्य प्रवृत्तं श्रवणं द्वितीयदिने सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तं वर्तते तदा परदिन एवोपाकर्म धनिष्ठायोगप्राशस्त्याद्यदि त्रिमुहूर्तं न्यूनं तदा पूर्वदिन एव संपूर्णव्याप्तेर्यदि पूर्वदिने सूर्योदये नास्ति परदिने सूर्योदयोत्तरं मुहूर्तद्वयं वर्तते तदोत्तरदिने एव ॥ उत्तराषाढावेधनिषेधात् ॥ यदि परदिने मुहूर्तद्वयन्यूनं पूर्वदिने चोत्तराषाढाविद्धं तदा पंचम्यादिकालो ग्राह्यः ॥ पञ्चमी हस्त इति कालद्वयं त्वौदयिकं मुहूर्तत्रयव्यापि मुख्यम् ॥ तदलाभे पूर्वविद्धमपि ॥ एवं भाद्रपदशुक्लपक्षेपि ॥ श्रवणपञ्चमीहस्तकालत्रयनिर्णयो ज्ञेयः ॥ एतद्बह्वृचैः पूर्वाह्ने कार्यम् ॥

अब उपाकर्मके कालका निर्णय करते हैं। उसमें बह्वृचोंको श्रावणके शुक्लपक्षमें श्रवणनक्षत्र, हस्त, पंचमी ये तीन काल हैं उनमें मुख्य काल श्रवण है, वह न मिलै तो, पंचमी आदि लेना, सोई कालतत्त्व विवेचनके विषय संग्रहकारिकामें लिखा है कि, पूर्णिमाका पर्व ग्रहण और तत्त्व संक्रातिसे दूषित होय तो अध्वर्यु और बह्वृच श्रवणमें उपाकर्म करै,किसीप्रकार उसमेंभी न होसकै तो हस्त नक्षत्रसे युक्त पंचमीको, वा पृथक् २ उन दोनोंमें करै, उसमें दोनोंदिन श्रवण होय तो, यदि पहिलेदिन सूर्योदसे प्रवृत्त हुआ श्रवण दूसरेदिन सूर्योदयके अनन्तर तीन मुहूर्त वर्त्तै तो परदिनमेंही उपाकर्म करना, क्योंकि, धनिष्ठाका योग श्रेष्ठ है, यदि तीन मुहूर्तसे न्यून होय तो संपूर्णव्याप्तिसे पूर्वदिनमेंही करना, यदि पूर्वदिनके विषय सूर्योदयमें न हो और दूसरे दिन सूर्योदयके अनन्तर दोमुहूर्त होय तो परले दिनही उपाकर्म करना क्योंकि, उत्तराषाढका वेध निषिद्ध है, यदि दूसरेदिन दोमुहूर्तसे न्यून हो और पहिले दिन पूर्वा-

षाढासे विद्ध होय तो पंचमी आदि काल ग्रहण करना, पंचमी और हस्त ये दो काल तो सूर्योदयमें तीनमुहूर्त व्यापक लेने वे न मिलें तो पूर्वविद्ध लेने । इसीप्रकार, भाद्रपदके शुक्ल-पक्षमें भी श्रवण, पंचमी, हस्त इन तीनों कालोंका निर्णय जानना, इस उपाकर्मको बह्वृच पूर्वाह्णमें करें ॥

अथ यजुर्वेद्युपाकर्मनिर्णयः ।

तत्र बह्वृचानां श्रवणवत्सर्वयजुर्वेदिनां श्रावणपौर्णमासी मुख्यः कालः ॥ पौर्णमास्याः खंडत्वे यदा पूर्णिमा पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनंतरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने षण्मुहूर्तव्यापिनी तदा सर्वयाजुषाणामुत्तरैव ॥ यदा शुद्धाधिकतया दिनद्वयेपि सूर्योदयव्यापिनी तदा सर्वयाजुषाणां पूर्वैव ॥ पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनंतरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयत्रयादिव्यापिनी षण्मुहूर्तन्यूना तदा तैत्तिरीयैरुत्तरा ग्राह्या ॥ तैत्तिरीयभिन्नयाजुषैः पूर्वा ग्राह्या ॥ यदा पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनंतरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयन्यूना भवति क्षयवशान्नास्त्येव वा तदा सर्वयाजुषाणां पूर्वैव ॥

अब यजुर्वेदियोंके निर्णयको कहते हैं–उसमें जैसे बह्वृचोंका श्रवण है, ऐसेही संपूर्ण यजुर्वेदियोंका श्रावणकी पूर्णिमा मुख्य काल है । यदि पूर्णिमा खण्डित होय और पूर्वदिनमें पूर्णिमा मुहूर्तके अनन्तर लगी हो, और दूसरे दिन छः मुहूर्तव्यापिनी होय तो संपूर्ण यजुर्वेदियोंकी परलीही होती है, और जब शुद्ध वा अधिक होकर, दोनों दिन सूर्योदय व्यापिनी होय तो संपूर्ण यजुर्वेदियोंकी पहिलीही होती है । यदि पहिले दिन मुहूर्तके अनंतर प्रवृत्तहो और दूसरे दिन दो वा तीन मुहूर्तव्यापिनी छः मुहूर्तसे न्यून होय तो तैत्तिरीय पिछली ग्रहण करैं, उनसे भिन्न सब यजुर्वेदी पहिलीही ग्रहणकरैं, और जब पहिले दिन मुहूर्तके अनन्तर प्रवृत्त होय और दूसरे दिन दो मुहूर्तसे न्यून हो वा क्षय होनेसे सर्वथा नहोय तो सब यजुर्वेदियोंकी पहिलीही होती है ॥

अथ हिरण्यकेशीयानाम् ।

हिरण्यकेशीतैत्तिरीयाणां श्रावणी पौर्णमासी मुख्यकालस्तदभावे श्रावणे हस्तः ॥ श्रावणशुक्लपंचमी तु तत्सूत्रेऽनुक्तेर्न ग्राह्या ॥ एतदेव भाद्रपदेपि कालद्वयमिति विशेषः ॥ खण्डतिथित्वे निर्णयः पूर्वोक्त एव ॥ हस्तनक्षत्रमप्यौदयिकं संगवस्पर्शि ग्राह्यमन्यथा पूर्वविद्धमेव ॥

हिरण्यकेशी तैत्तिरीयोंका तो श्रवण नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा मुख्यकाल है, उसके अभावमें श्रावणका हस्त नक्षत्र है, श्रावण शुक्ला पंचमी तिस २ सूत्रमें न करनेसे ग्रहण न करना येही दोनोंकाल भाद्रपदमेंभी हैं, यह विशेष है । खण्ड (क्षय) तिथिमें निर्णय तो पूर्वोक्तही है, हस्तनक्षत्रभी उदयकालका वह लेना जो संगवतक हो अन्यथा पूर्वविद्धही लेना ॥

अथापस्तंबानाम् ।

आपस्तंबानां श्रावणी पौर्णमासी मुख्या तदभावे भाद्रपदीति विशेषः ॥

आपस्तबोंकी श्रवणनक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा मुख्य है, उसके अभावमें भाद्रपदकी लेनी यह विशेष है ॥

अथ बौधायनानाम् ।

बौधायनानां श्रावणी पौर्णमासी मुख्या दोषसंभावनया तदभावे आषाढीति विशेषः ॥ एतेषामपि खंडतिथित्वे पूर्वोक्त एव निर्णयः ॥

बौधायनोंकी श्रवणसे युक्त पूर्णिमा मुख्य है और दोषकी संभावनासे वह न होसके तो आषाढकी पूर्णिमा लेनी यह विशेष है। यह भी खंडतिथि होय तो पूर्वोक्तही निर्णय समझना ॥

अथ काण्वमाध्यंदिनानाम् ।

अथ काण्वमाध्यंदिनादिकात्यायनानां श्रवणयुता श्रावणपूर्णिमा केवला वा हस्तयुक्ता पञ्चमी केवला वा मुख्यकालः ॥ अतः केवलश्रवणे केवलहस्ते च तैर्न कार्यम् ॥ श्रावणमासे विघ्नदोषे भाद्रपदगतपूर्णिमापंचम्योः कार्यम् ॥ तिथेः खंडत्वे षण्मुहूर्ताधिक्ये उत्तरा ॥ षण्मुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ग्राह्येत्यादिः पूर्वोक्त एव निर्णयः ॥

और काण्व, माध्यंदिनी और कात्यायन इनकी श्रवणसे युक्त श्रावणकी पूर्णिमा वा केवल पूर्णिमा, हस्तसे युक्त पंचमी वा केवल पंचमी मुख्य कालहैं, इससे केवल श्रवणमें वा केवल हस्तमें वे उपाकर्म न करैं, श्रावणमासमें कोई विघ्नरूप दोष होय तो भाद्रपदकी पूर्णिमा और पंचमीको करैं, तिथि खंडित होय तो छः मुहूर्तसे अधिक होनेपर पिछली और छः मुहूर्त्तसे न्यून होय तो पहली लेनी, यह पूर्वोक्तही निर्णय समझना ॥

अथ सामवेदिनाम् ।

अथ सामवेदिनां भाद्रपदशुक्लपक्षे हस्तनक्षत्रं मुख्यकालः॥ संक्रांत्यादिदोषेण तत्रासंभवे श्रावणमासे हस्तो ग्राह्य इति निर्णयसिंधुः ॥ अन्ये तु भाद्रपदहस्ते दोषसंभवे श्रावणपौर्णमास्यामुपाकर्म कृत्वा भाद्रपदस्थहस्तपर्यंतं न पठनीयं ततः परं पठनीयमित्याहुः॥ हस्तस्य खंडत्वे दिनद्वयेपराह्णपूर्णव्याप्तावपराह्णैकदेशस्पर्शे वा परदिने एवोपाकर्म ॥ पूर्वदिन एवापराह्णपूर्णव्याप्तौ पूर्वत्रैव ॥ सर्वत्र सामगानामपराह्णस्यैवोपाकर्मकालत्वेनोक्तेः ॥ पूर्वदिन एवापराह्णैकदेशस्पर्शे दिनद्वयेप्यपराह्णस्पर्शाभावे वा परत्रैव ॥ येषां सामवेदिनां प्रातःसंगवौ कर्मकालत्वेनोक्तौ तेषां पूर्वत्रापराह्णव्याप्तिं त्यक्त्वा परदिने संगवोर्ध्वं वर्तमानहस्तग्रहणम् ॥ सिंहस्थे सूर्ये उपाकर्म विधानं तु यदि श्रावणे हस्तः पूर्णिमा वा सिंहस्थसूर्ये भवति तदा तत्रोपाकर्म न कर्कस्थे इति सामगानां श्रावणमासगतहस्तपर्वणोर्व्यवस्थापरम् ॥ अन्यशाखिनां सिंहस्थरवेर्विधिर्निषेधो वा नास्ति ॥

और सामवेदियोंका भाद्रपदका शुक्लपक्ष हस्तनक्षत्रमें मुख्यकाल है, संक्रांतिआदिके दोषसे उसमें न होसके तो श्रावण मासमें हस्तनक्षत्र लेना, यह निर्णयसिंधु कहता है । अन्य तो यह कहते हैं कि, भाद्रपदके हस्तमें होय तो श्रावणकी पूर्णिमाको उपाकर्म करके भाद्रपदके हस्तपर्यंत न पढैं उसके अनंतर पढैं । हस्तनक्षत्र खंडित होय और दोनों दिन पराह्णमें पूर्णव्याप्ति हो वा अपराह्णके एकदेशमें स्पर्श होय तो परदिनमेंही उपाकर्म करना, पूर्वदिनमेंही अपराह्णमें पूर्णव्याप्ति होय तो पहिले दिनही होताहै । क्योंकि, सामगोंका अपराह्णही उपाकर्मका मुख्यकाल कहा है, पूर्वदिनमेंही अपराह्णको एकदेशमें स्पर्श हो वा दोनों दिन अपराह्णमें स्पर्श न होय तो परलीही लेनी । जिन सामवेदियोंको प्रातःकाल और संगव दोनोंकाल कहे हैं उनके मतमें पहले दिन अपराह्णव्याप्तिको त्यागकर परले दिन संगवके पीछे भी वर्त्तमान हस्तनक्षत्रका ग्रहण है, सिंहके सूर्यमें जो उपाकर्मकी विधि है, वह तो यदि श्रावणमें हस्त और पूर्णिमा सिंहके सूर्यमें होय तो उनमें उपाकर्म होता है । कर्कके सूर्यमें नहीं यह सामवेदियोंकी श्रावणमासमें हस्त और पर्वकी व्यवस्थाके विषयमें है, अन्य शाखावालोंको सिंहके सूर्यकी विधि वा निषेधभी नहीं है ॥

अथाथर्ववेदिनाम् ।

अथर्ववेदिनां तु श्रावण्यां भाद्रपदगतायां वा पौर्णमास्यामुपाकर्म ॥ तिथिखंडे औदयिकसंगवकालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्येति ॥

अथर्वणवेदियोंका तो उपाकर्म श्रावण वा भाद्रपदकी पूर्णिमामें होता है, तिथिखण्डित होय तो उदय और संगव काल व्यापिनी तिथि ग्रहण करनी ॥

अथ सर्वशाखिनां साधारणविधिः ।

सर्वशाखिनां श्रावणभाद्रपदमासगतस्वस्वगृह्योक्तकालेषु ग्रहणसंक्रात्याशौचादिदोषसंभावनायां सर्वथा कर्मलोपप्राप्तौ शाखांतरोक्तकालानां ग्राह्यत्वमावश्यकम् ॥ तत्रापस्तंबबौधायनसामगादीनां श्रावणभाद्रपदगतपंचमीपूर्णिमादेरप्यविशेषेण ग्राह्यत्वप्राप्तौ नर्मदोत्तरदेशे सिंहगते सूर्ये पंचम्यादेर्ग्रहणं नर्मदादक्षिणभागे कर्कटस्थे सूर्ये श्रावणपंचम्यादेर्ग्रहणमिति व्यवस्थेति कौस्तुभे उक्तम् ॥ तेन ऋग्वेदिनामपि सर्वथा कर्मलोपप्रसक्तौ पूर्णिमापि सिंहस्थकर्कटस्थादिव्यवस्थया ग्राह्येति मम प्रतिभाति ॥ सर्वशाखिभिः श्रावणमासमुख्यकाले पर्जन्याभावेन व्रीह्याद्यौषधिप्रादुर्भावाभावे आशौचादौ वा भाद्रपदश्रवणादौ कार्यम् ॥ औषधिप्रादुर्भावाभावेपि श्रावणमासे कार्यमिति कर्कादिमतम् ॥ सर्वशाखिनां गृह्योक्तमुख्यकालत्वेन निर्णीते दिने ग्रहणस्य संक्रांतेर्वा सत्त्वे संक्रांतिरहिताः पंचम्यादयो ग्राह्याः ॥

सब शाखावालोंको श्रावण और भाद्रपदके अपने २ गृह्यसूत्रमें कहेहुये कालोंमें ग्रहण, संक्रांति, अशौच आदिदोषोंकी संभावना होनेसे सर्वथा कर्मका लोप पावै तो अन्य शाखाओंमें कहेहुये कालोंको ग्रहण काल आवश्यक है, उसमें आपस्तंब, बौधायन, सामग आदिकोंको श्रावण और भाद्रपदकी पूर्णिमा आदिका भी अविशेषसे ग्रहण करना पाया तो

नर्मदाके उत्तर देशमें सिंहके सूर्यमें पंचमी आदिका ग्रहण है, और नर्मदाके दक्षिण भागमें कर्कका सूर्य और श्रावणकी पंचमी आदिका ग्रहण है, यह व्यवस्था कौस्तुभमें कही है । तिससे ऋग्वेदियोंको भी सर्वथा कर्म लोपके प्रसंगमें सिंह और कर्क आदिमें स्थितिकी व्यवस्थासे पूर्णिमा ग्रहण करनी, यह मुझे प्रतीत होता है । सब शाखावाले मुख्य श्रावणमासके कालमें मेघके न होनेसे व्रीहि आदि औषधियोंकी उत्पत्तिके न होनेपर वा अशौच आदिके होनेपर भाद्रपदके श्रवण आदिमें करै, और औषधियोंके उत्पन्न न होनेपर भी श्रावणमासमेंही करे यह कर्क आदिका मत है । सब शाखियोंको अपने गृह्यसूत्रमें कहे मुख्यकालसे निर्णय किये दिनमें और ग्रहण वा संक्रांति होय तो संक्रांतिसे रहित पंचमी आदि ग्रहण करने ॥

अथ ग्रहणसंक्रातावुपाकर्म ।

ग्रहणसंक्रांतियोगश्चोपाकर्मसंबंधिन्यहोरात्रे भविष्यन्मध्यरात्रात्पूर्वमतीतमध्यरात्रादूर्ध्वं चेति यामाष्टके विद्यमानश्रवणनक्षत्रपूर्णिमादितिथ्यस्पृष्टोप्युपाकर्मदूषकः केचित्तूक्तयामाष्टकादन्यत्रापि विद्यमानो ग्राह्यश्रवणादिनक्षत्रपर्वादितिथिस्पर्शी चेत्सोपि दूषक इत्याहुः ॥

और ग्रहण संक्रांतिका योग उपाकर्मसंबंधी अहोरात्रमें और आगे आनेवाले अहोरात्रसे पीछेतक विद्यमान हो, चाहै वह श्रवण नक्षत्र पूर्णिमा आदि तिथियोंमें न भी होय तो भी उपाकर्मको दूषित करता है, कोई तो यह कहतेहैं कि, उक्त आठ प्रहरसे अन्यत्र विद्यमान भी ग्रहण संक्रांतिके योगका ग्रहण करने योग्य श्रवण आदि नक्षत्र और पर्व आदिका तिथिमें स्पर्श होय तो वह भी उपाकर्मका दूषक है ॥

अथ नूतनोपाकर्म ।

नूतनोपनीतानां प्रथमोपाकर्म गुरुशुक्रास्तादौ मलमासादौ सिंहस्थे गुरौ च न कार्यम् ॥ द्वितीयाद्युपाकर्म तु अस्तादावपि कार्यम् ॥ मलमासे तु द्वितीयाद्यपि न कार्यम् ॥ प्रथमोपाकर्म स्वस्तिवाचननांदिश्राद्धादि कृत्वा कार्यम् ॥ नूतनोपनीतानां श्रावणमासगतपंचमी हस्तश्रवणादिकालेषु गुरुशुक्रास्तादिप्रतिबंधेनोपाकर्मारंभाभावे भाद्रपदमासगतपंचमी श्रवणादयो ग्राह्याः ॥ "मौंजीं यज्ञोपवीतं च नवदंडं च धारयेत् ॥ अजिनं कटिसूत्रं च नववस्त्रं तथैव च" इति ब्रह्मचारिणो विशेषः प्रतिवर्षं ज्ञेयः ॥ उपाकर्मोत्सर्जने ब्रह्मचारिसमावृतगृहस्थवानप्रस्थैः सर्वैः कर्तव्ये ॥ उत्सर्जनकालस्तु नेह प्रपंच्यते ॥ "उपाकर्मदिनेथ वा" इति वचनानुसारेण सर्वशिष्टानामिदानीमुपाकर्मदिने एवोत्सर्जनकर्मानुष्ठानाचारेण तन्निर्णयस्यानुपयोगात् ॥ एते उपाकर्मोत्सर्जने यद्यन्यैर्द्विजैः सह करोति तदा लौकिकाग्नौ कुर्यात् ॥ यद्येकः करोति तदा स्वगृह्याग्नौ कुर्यात् ॥ कात्यायनैस्त्वौपवसथ्येऽग्नावेव होतव्यं न लौकिकाग्नौ ॥

और जिनका यज्ञोपवीत नवीन हुआ है उनका प्रथम उपाकर्म गुरु शुक्रके अस्त आदि और मलमास आदि और सिंहके बृहस्पतिमें न करना, और द्वितीय आदि उपाकर्मको अस्त आदिमेंभी करना और मलमासमें तो द्वितीय आदि भी न करना, पहिला उपाकर्म स्वस्तिवाचन और नान्दीश्राद्ध आदि करके करना, नवीन यज्ञोपवीतियोंको श्रावणमासकी पंचमी, हस्त, श्रवण आदि कालोंमें गुरु शुक्रास्त आदिके प्रतिबंधसे उपाकर्मका प्रारंभ न होसके तो भाद्रपद आदिके पंचमी श्रवण आदि ग्रहण करने, और ब्रह्मचारीके तो प्रतिवर्ष यह विशेष जानना कि, मूँजी, यज्ञोपवीत, नवीन दंड, मृगचर्म, कटिसूत्र और नवीन वस्त्र इनको धारण करै, उपाकर्म और उत्सर्ग, ब्रह्मचारी, समावृत, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन सबको करने योग्य हैं, उनमें उत्सर्गके कालको यहां नहीं कहते क्योंकि, (उपाकर्मादिमें अथवा) उपाकर्मके दिनहीं उत्सर्ग करै इस वचनके अनुसार संपूर्ण शिष्टोंको उपाकर्मके दिनही उत्सर्ग करनेका आचार है, इससे उसके निर्णयका उपयोग नहीं । इन उपाकर्म और उत्सर्गको अन्य द्विजोंके संग करे तो लौकिक अग्निमें करै, यदि एकाकी करै तौ अपनी गृह्याग्निमें करै, कात्यायन तो (औपवसथ्य) अग्निमेंही होम करै लौकिकाग्निमें नहीं ॥

अथ पंचावत्तिवादिविचारः ।

बह्वृचादिः स्वयं चतुरवत्ती बहुभिश्चतुरवत्तिभिरुपाकर्मादिकं कुर्वन्नेकस्यापि जामदग्न्यादेः पंचावत्तिनः सत्त्वे तदनुरोधेन पंचावत्तमेव कुर्यात् ॥ चतुरवत्तिनामपि पंचावत्तित्वस्य वैकल्पिकत्वोक्त्या तेषामपि कर्म वैगुण्याभावात् ॥

स्वयंभी चतुरवत्ती बह्वृच आदि बहुतसे चतुरवत्तियोंके संग उपाकर्म करै तो एक अग्नि, जामदग्न्य आदिके पंचावत्ती होनेपर उसके अनुरोधसे पंचावत्तही उपाकर्म कर्म करै, क्योंकि चतुरवत्तियोंको भी विकल्पसे पंचावत्ति कहा है । इससे उनके कर्ममें वैगुण्य (निष्फलता) का अभाव है ॥

अथाकरणे प्रायश्चित्तम् ।

अकरणे दोषश्रवणेन प्रत्यब्दमेते कर्तव्ये ॥ क्वचित्पुस्तके निर्णयसिंधावेव तदकरणे प्राजापत्यकृच्छ्रमुपवासो वा प्रायश्चित्तं दृश्यते न सर्वत्र ॥ उपाकर्मोत्सर्जनयोरुभयोरप्यृषिपूजनमुक्तम् ॥ ऋष्यादितर्पणं तूत्सर्जन एव ॥ अत्र विवाहोत्तरं तिलतर्पणे न दोषः ॥

और न करनेमें दोषके सुननेमें उपाकर्म और उत्सर्ग ये दोनों कर्म प्रतिवर्ष करने, किसी २ निर्णयसिंधुकी पुस्तकमेंही इनके न करनेमें प्राजापत्य, कृच्छ्र और उपवास प्रायश्चित्त देखते हैं सर्वत्र नहीं । उपाकर्म और उत्सर्ग दोनोंमें ऋषिपूजन कहा है, ऋषि आदिकोंका तर्पण तो उत्सर्गमेंही होता है, इसमें विवाहके अनन्तर तिलोंसे तर्पण करनेका दोष नहीं ॥

अथ संकल्पे विशेषः ।

अत्र संकल्पे अधीतानां छन्दसामाप्यायनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमुपाकर्मदिने अद्योत्सर्जनाख्यं कर्म करिष्ये इति ॥ उपाकर्मणि तु ॥ अधीतानामध्येष्य-

माणानां छन्दसां यातयामता निरासेनाप्यायनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमिति विशेषः ॥ अवशिष्टः सर्वोपि प्रयोगविशेषः स्वस्वगृह्यानुसारेण ज्ञेयः ॥ अत्र नदीनां रजोदोषो न ॥ ब्रह्मादिदेवऋष्यादीनां जले सांनिध्यं तेन स्नानात्सर्वदोषक्षयः ॥ ऋषिपूजनस्थानस्थितजलस्पर्शनपानाभ्यां सर्वकामावाप्तिः ॥ इति सर्वशाखिसाधारणनिर्णयः ॥

यहां उत्सर्गका संकल्प यह है कि, अध्ययन किये वेदोंकी पुष्टिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये उपाकर्मके दिन आज उत्सर्जनरूप कर्मको करताहूँ । उपाकर्ममें तो यह संकल्प है कि, पढे हुये और आगे पढने योग्य वेदोंकी यातयामता (सारहीनता) के दूर करनेसे पुष्टिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये उपाकर्मको करता हूं और अवशिष्ट (बाकी) संपूर्ण प्रयोगका विशेष अपने २ गृह्यसूत्रके अनुसार जानना । इस कर्ममें नदियोंके रजस्वला धर्मका दोष नहीं । ब्रह्मा आदि देवता और ऋषि आदिके जलमें स्नानसे सब दोषोंका क्षय होता है, इनके पूजनके स्थानमें स्थित जलके स्पर्श और पानसे सब कामना सिद्ध होती हैं ॥ ॥ इति सर्वशाखीसाधारणनिर्णयः ॥

अथ रक्षाबन्धनम् ।

अथ रक्षाबन्धनमस्यामेव पूर्णिमायां भद्रारहितायां त्रिमुहूर्ताधिकोदयव्यापिन्यामपराह्णे प्रदोषे वा कार्यम् ॥ उदयत्रिमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वेद्युर्भद्रारहिते प्रदोषादिकाले कार्यम् ॥ इदं ग्रहणसंक्रांतिदिनेपि कर्तव्यम् ॥ मन्त्रस्तु ॥ " येन बद्धो बली राजा दानवेंद्रो महाबलः ॥ तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल" इति ॥ अत्रैव पूर्णिमायां हयग्रीवोत्पत्तिः ॥

अब रक्षाबंधनको कहते हैं । इसी भद्रारहित और तीन मुहूर्तसे अधिक उदयकाल व्यापिनी पूर्णिमाके अपराह्ण वा प्रदोष कालमें रक्षाबंधन करना । उदयकालमें तीन मुहूर्तसे न्यून होय तो पहिले दिन भद्रारहित प्रदोष आदि कालमें करै । यह ग्रहण संक्रांति आदिके दिन भी करना । मन्त्र तो यहहै कि, जिससे दानवोंका इन्द्र महाबली राजा बली भी बँधा उसी सत्त्वरूप धर्मसे हे रक्षे ! मैं तुझे बांधता हूं तू चलायमान मत हो, अर्थात् मेरी धर्ममें स्थिति रख, इसी पूर्णिमामें हयग्रीव अवतारकी उत्पत्ति है ॥

अथ कुलधर्मादौ पौर्णमासी ।

श्रावणपूर्णिमा कुलधर्मादौ त्रिमुहूर्तसायाह्नव्याप्ता पूर्वविद्धैव ग्राह्या ॥ त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परा ॥

श्रावणकी पूर्णिमा कुलधर्म आदिमें तीन मुहूर्त सायाह्नव्यापिनी होय तो पूर्वविद्धा ग्रहण करनी, तीन मुहूर्तसे न्यून होय तो परली लेनी ॥

अथ श्रवणाकर्मादिसंस्था ।

अस्यामेव पौर्णमास्यामाश्वलायनानां श्रवणाकर्मसर्पबलिश्च रात्रावुक्तः ॥ तैत्ति-

रीयाणां तु सर्पबलिरेवोक्तः ॥ कात्यायनानां सामगानां च श्रवणाकर्मसर्पबली द्वावप्युक्तौ ॥ अत्र पौर्णमासी अस्तमयप्रभृतिप्रवृत्तकर्मपर्याप्तकालव्यापिनी चेत् पूर्वैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये तत्सम्बन्धस्य सत्त्वेऽसत्त्वे वा परैव ॥ प्रयोगस्तु स्वस्वसूत्रे ज्ञेयः ॥

इसी पूर्णिमामें आश्वलायनोंका श्रवणाकर्म और सर्पबलि रात्रिमें कहे हैं । तैत्तिरीयोंके यहां तो सर्पबलिही कहा है । कात्यायन और सामगोंके यहां श्रवणाकर्म और सर्पबलि दोनोंही कहे हैं । इसमें पौर्णमासी सूर्यास्तसे लेकर कर्म करने योग्य काल व्यापिनी पहिली होय तो वही ग्रहण करनी, दोनों दिन उसका सम्बन्ध होय तो परलीही लेनी । प्रयोगकी विधि तो अपने २ गृह्यसूत्रोंमें कही जाननी ॥

अथाकरणे प्रायश्चित्तम् ।

श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुजी प्रत्यवरोहणादिपाकसंस्थानां स्वस्वकालेष्वकरणे प्राजापत्यं प्रायश्चित्तं कार्यम् ॥ न तु कालांतरे तदनुष्ठानम् ॥

श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजि, प्रत्यारोहण आदि पाकसंस्था इनको अपने २ कालमें न करे तो प्राजापत्य प्रायश्चित्त करै । कालांतरमें इनको न करे ॥

अथ पत्न्या रजस्यपि कार्याः ।

श्रवणाकर्मादिसंस्थाः पत्न्यामृतुमत्यामपि कार्याः ॥ प्रथमारम्भस्तु न भवति ॥

श्रवणाकर्म आदि और पाकसंस्था ये रजस्वला पत्नी आदिके होनेपर भी करने । प्रथम आरंभ तो इनका नहीं होता है ॥

अथ संकटचतुर्थीनिर्णयः ।

श्रावणकृष्णचतुर्थ्यां प्रारभ्य कृष्णचतुर्थीषु यावज्जीवमेकविंशतिवर्षाणि एकवर्षं वा संकटचतुर्थीव्रतं कार्यम् ॥ अशक्तौ प्रतिवर्षं श्रावणचतुर्थ्यामेव कार्यम् ॥ अत्र चन्द्रोदयव्याप्त्या तिथिनिर्णयः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः ॥ सोद्यापनव्रतसमाप्तिप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः ॥

श्रावण कृष्णा चतुर्थीसे सब मासोंके कृष्णपक्षकी चतुर्थियोंमें जीवन भर इक्कीस वर्ष वा एक वर्ष संकष्ट चतुर्थीका व्रत करे । असमर्थ होय तो प्रतिवर्ष श्रावणकी चतुर्थीमेंही करै । इसमें चन्द्रोदय व्याप्तिसे तिथिका निर्णय प्रथमपरिच्छेदमें कह आये हैं । उद्यापन सहित व्रतका प्रयोग तो कौस्तुभ आदिमें जानना ॥

अथ जन्माष्टमीव्रतम् ।

तत्राष्टमी द्विविधा ॥ शुद्धा विद्धा च ॥ दिवारात्रौ वा सप्तमीयोगरहिता यत्र दिने यावती तत्र तावती शुद्धा ॥ दिवारात्रौ वा सप्तमीयोगवती यस्मिन्नहोरात्रे यावती तत्र तावती विद्धा ॥ सा पुनर्द्विविधा ॥ रोहिणीयुता रोहिणीयोगरहिता

चेति ॥ तत्र रोहिणीयोगरहिता केवलाष्टमीभेदः ॥ सप्तमीनाड्यः ५९ पलानि ५९ अष्टमी ५८।५ अस्यां शुद्धायां संदेहो नास्ति द्वितीयकोट्यभावात् ॥ सप्तमी २ अष्टमी ५५ अस्यां विद्धायामप्यसंदेहः दिनांतरे अभावेन द्वितीयकोट्यभावात् ॥ यदा दिनद्वये केवलाष्टमी वर्तते तदा चत्वारः पक्षाः ॥ पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी १ परेद्युरेव निशीथव्यापिनी २ दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी ३ दिनद्वयेपि निशीथव्याप्त्यभाव इति ४ ॥ रात्र्यर्धं निशीथपदार्थः स्थूलसूक्ष्मदृष्ट्या त्वष्टमो मुहूर्तो निशीथः ॥ तत्र पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी यथा १ सप्तमी ४० अष्टमी ४२ अत्र सप्तमीयुता पूर्वविद्धैवाष्टम्युपोष्या ॥ यथाष्टमी ६०।४ इयं शुद्धाधिकापि पूर्वैव ॥ परेद्युरेव निशीथे यथा २ सप्तमी ४७ अष्टमी ४६ अत्र परैवाष्टम्युपोष्या ॥ उभयत्र निशीथे यथा ३ सप्तमी ४२ अष्टमी ४६ अत्रापि परैवाष्टमी ग्राह्या ॥ दिनद्वये निशीथव्याप्त्यभावो यथा ४ सप्तमी ४७ अष्टमी ४२ अत्रापि परैवाष्टमी ग्राह्या ॥ अत्र सर्वत्र सप्तमीयुक्तायां रात्रिपूर्वार्धावसाने कलयाप्यष्टम्याः सत्त्वे एव निशीथव्यापित्वं नवमीयुतायां रात्र्युत्तरार्धादिभागे सत्त्वे एवोत्तरत्र निशीथव्यापित्वं सप्तमीदिने उत्तरभागे एव सत्त्वे नवमीयुतादिने पूर्वभाग एव सत्त्वे च निशीथाव्यापित्वपक्ष एव मन्तव्यः ॥ एवं वक्ष्यमाणरोहिणीयुक्तभेदेष्वपि ज्ञेयम् ॥ अथ रोहिणीयुताष्टमी अत्र सिंधुमतनवीनमतभेदः ॥ रोहिणीयुताष्टम्यामपि पूर्वदिने एव निशीथेष्टमीरोहिण्योर्योगः ॥ परदिन एव तयोर्निशीथे योगः ॥ दिनद्वये निशीथे योग इति पक्षत्रयम् ॥ पूर्वेद्युरेव निशीथे योगो यथा १ सप्तमी ४० तद्दिने कृत्तिका ३५ अष्टमी ४६ तद्दिने रोहिणी ३६ अत्र पूर्वविद्धैवाष्टम्युपोष्या परदिने एव निशीथयोगो यथा २ सप्तमी ४२ तद्दिने कृत्तिका ५० अष्टमी ४७ रोहिणी ४६ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या ॥ दिनद्वये निशीथेष्टमीरोहिण्योर्योगो यथा ३ सप्तमी ४२ कृत्तिका ४३ अष्टमी ४७ रोहिणी ४८ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या ॥ अथ रोहिणीयुताष्टम्यामेव दिनद्वयेपि निशीथे रोहिणीयोगाभावो बहुधा संभवति ॥ परेद्युरेव निशीथव्यापिनी अष्टमी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुक्ता चेत्येकः पक्षः यथा सप्तमी ४७ अष्टमी ५० अष्टमीदिने कृत्तिका ४६ अत्र पक्षे परैवाष्टमी ग्राह्या ॥ १ ॥ एतत्तुल्ययुक्त्या पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति पक्षेपि पूर्वैव ग्राह्या ॥ दिनद्वयेपि निशीथादन्यत्र रोहिणीयुता परेद्युरेव निशीथव्यापिनीति द्वितीयः पक्षः ॥ समती ४८ तद्दिने कृत्तिका ३० अष्टमी ४८ रोहिणी २५ अत्रापि परैव ग्राह्या ॥ २ ॥ दिनद्वयेपि निशीथादन्यत्र रोहिणीयुक्ता पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी तृतीयो यथा सप्तमी २५ कृत्तिका ४८ अष्टमी २० रोहिणी ४३ अत्रापि परैव ॥ ३ ॥ रोहिणीयोगसाम्येपि पूर्वत्र सप्तमीविद्धत्वात् ॥ यथा वाष्टमी ६० । ४ कृत्तिका ५० अत्र पूर्वैव ग्रा-

ह्या ॥ अहोरात्रद्वये रोहिणीयोगसाम्येपि पूर्वस्याः शुद्धत्वात्पूर्णव्याप्तेश्च ॥ दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणायुतेति चतुर्थः ॥ यथा सप्तमी ४३ अष्टमी ४९ कृत्तिका ४६ अत्र परैवाष्टमी ॥ ४ ॥ एवं दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी पूर्वत्रैव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति पंचमो यथा सप्तमी ४१ तद्दिने रोहिणी ४३ अष्टमी ४७ अत्र पूर्वैवाष्टम्युपोष्या ॥ ५ ॥ दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी दिनद्वयेपि निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति षष्ठो यथा सप्तमी ४२ कृत्तिका४८ अष्टमी ४९ रोहिणी ४२ अत्र परैव ॥ ६ ॥ दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति सप्तमो यथा सप्तमी ४८ तद्दिने रोहिणी ५८ अष्टमी ४२ अत्र परेवाष्टमी ग्राह्या ॥ ७ ॥ अत्रैव पक्षे परेद्युरेवोभयत्र वा निशीथादन्यत्र रोहिणीयोगेपि परैवेति कैमुत्येम सिद्धम् ॥ पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति चरमः पक्षः ॥ यथा सप्तमी ३० अष्टमी २५ तद्दिने कृत्तिका ५ यथा वाष्टमी ६० । ४ अष्टमीशेषदिने कृत्तिका १ अत्रोदाहरणद्वयेपि परैवाष्टमी ग्राह्या स्वल्पस्यापि रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्येन मुहूर्तमात्राया अपि परस्या ग्राह्यतया पूर्वत्र विद्यमानाया निशीथव्याप्तेरनादरात् ॥ ८ ॥ सर्वपक्षेषु यदि परदिने मुहूर्तन्यूना वर्तते तदा सा न ग्राह्या किंतु पूर्वैवेति पुरुषार्थचिंतामणावुक्तम् ॥ परेद्युरेव निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुता यथा सप्तमी ४८ रोहिणी ५९ अष्टमी ४८ अत्र परैव ॥ विद्धायां निशीथोत्तरं रोहिणीयोगस्याप्रयोजकत्वात् ॥ अत्र विस्तरेणोक्तानां बहुपक्षाणां संक्षेपेण निर्णयसंग्रहः पुरुषार्थचिंतामणौ ॥ शुद्धसमायां शुद्धन्यूनायां वा विद्धसमायां विद्धन्यूनायां वा केवलाष्टम्यां संदेह एव नास्ति ॥ शुद्धाधिकापि केवलाष्टमी पूर्वैव ॥ विद्धाधिका तु पूर्वदिन एव निशीथव्याप्तौ पूर्वा ॥ दिनद्वये निशीथव्याप्ताववव्याप्तौ वा परैवेति ॥ अथ रोहिणीयोगे यदि शुद्धसमायां शुद्धन्यूनायां वा ईषदपि रोहिणीयोगस्तदा न संदेहः ॥ शुद्धाधिकायां पूर्वदिने दिनद्वयेपि वा रोहिणीयोगे पूर्वैव ॥ शुद्धाधिकायामुत्तरदिन एव रोहिणीयोगे मुहूर्तमात्रा परैव ॥ विद्धाधिकायां पूर्वदिन एव निशीथात्पूर्वं निशीथे वा रोहिणीयोगे पूर्वा ॥ दिनद्वयेपि परत्रैव वा निशीथे वा निशीथं विहाय रोहिणीयोगे परैवेति संक्षेपेण निर्णयसंग्रहः ॥ एवं कौस्तुभादिनवीनग्रंथानुसृतमाधवमतानुसारेण जन्माष्टमी निर्णीता ॥ अत्र केचित्केवलाष्टमी जन्माष्टमी सैव रोहिणीयुता जयन्ती संज्ञकेति जयन्त्यष्टम्योर्व्रतैक्यमाहुः ॥ अन्ये तु जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नं रोहिणी योगाभावे जयन्तीव्रतलोपाज्जन्माष्टमीव्रतमेव कार्यम् ॥ "यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा ॥ अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यात्" इति जयन्तीदिने निशीथाख्यकर्मकालेऽष्टम्याद्यभावेपि साकल्यवचनापादितकर्मकालव्याप्तिमादाय व्रतद्वय-

मपि जयन्तीदिन एव तन्त्रेणानुष्ठेयम् ॥ व्रतद्वयस्याप्यकरणे महादोषश्रवणेन फलश्रवणेन च नित्यकाम्योभयरूपत्वात् ॥ न तु निशीथव्याप्तायां पूर्वाष्टम्यां जन्माष्टमीव्रतं कृत्वा ॥ जयन्तीदिने पारणमनुष्ठेयं नित्यव्रतलोपे प्रत्यवायापातादित्याहुः ॥ निर्णयसिंधौ तूक्तरीत्या माधवमतमुपपाद्य हेमाद्रिमतेन जन्माष्टमीव्रतमेव नित्यं जयंतीव्रतं तु नित्यमपि कलियुगे लुप्तमिति केचिन्नानुतिष्ठंतीत्युक्त्वा स्वमतेन यस्मिन्वर्षे पूर्वदिने एव निशीथेष्टमी परदिन एव निशीथादन्यत्र जयंत्याख्ययोगस्तत्रोपोषणद्वयं कार्यम् ॥ व्रतद्वयस्यापि नित्यत्वेनाकरणे दोषाज्जयंत्यामष्टम्यंतर्भावोक्तिस्तु मूर्खप्रतारणमात्रमिति प्रतिपादितम् ॥ मम तु कौस्तुभादिनवीनग्रंथपरिगृहीतमाधवमतरीत्या जयंत्यंतर्भावेनाष्टमीव्रतानुष्ठानमेव युक्तं प्रतिभाति ॥ अत्र व्रते बुधसोमवारयोगः प्राशस्त्यविधायको न तु रोहिणीवन्निर्णायकः ॥

अब जन्माष्टमी व्रतको कहते हैं। उसमें अष्टमी दो प्रकारकी है शुद्धा और विद्धा। दिन और रात्रमें जिसदिन सप्तमीके योगसे रहित जितनी हो उसमें वह उतनीही शुद्धा होती है। और जिस अहोरात्रमें दिन वा रातमें जितनी सप्तमीके योगवाली हो उसमें वह उतनीही विद्धा होती है, और वह फिर दो प्रकारकी होती है, रोहिणीसे युक्त और रोहिणीके योगसे रहित, उनमें रोहिणीके योगसे रहित केवल अष्टमीके भेद ये हैं, कि सप्तमी घडी ५९ पल ५९ अष्टमी ५८। ५ इस शुद्धामें संदेह नहीं क्योंकि, दूसरी कोटीका अभाव है, सप्तमी २ अष्टमी ५५ इस विद्धामें भी संदेह नहीं, दूसरे दिन न होनेसे इसमें दूसरी कोटीका अभाव है, जब दोनों दिन केवल अष्टमी वर्ते तब चार पक्ष हैं १ पहिले दिनही अर्द्धरात्र व्यापिनी हो, २ दूसरे दिनही अर्द्धरात्र व्यापिनी, ३ दोनों दिन अर्द्धरात्र व्यापिनी, ४ दोनों दिन अर्द्धरात्रमें न हो, रात्रिके अर्द्धको निशीथ कहते हैं। स्थूल दृष्टिसे तो आठवां मुहूर्त निशीथ होता है, उनमें पहिले दिनही निशीथव्यापिनी यह है जैसे सप्तमी ४० अष्टमी ४२ वडी हो, इसमें सप्तमी विद्धा अष्टमीही पूर्वविद्धा उपवास करने योग्य है, जैसे अष्टमी ६०। ४ हो यह शुद्धाधिका है और पहिलीही होती है, परले दिनही निशीथमें सप्तमी जैसे सप्तमी ४७ अष्टमी ४६ घडी हो यहां परलीही अष्टमी उपवासके योग्य है। दोनों दिन निशीथमें सप्तमी जैसे—सप्तमी ४२ अष्टमी ४६ वडी हो, इसमें भी परलीही अष्टमी ग्रहण करनी, दोनों दिन निशीथमें व्याप्तिका अभाव, जैसे सप्तमी ४७ अष्टमी ४२ हो इसमें भी परलीही अष्टमी ग्रहण करनी, इन सब स्थलोंमें सप्तमीसे युक्त रात्रिमें रात्रिके पूर्वार्द्धके अंतमें एक घडी भी अष्टमीके होनेपर निशीथव्यापिनी होती है। नवमीसे युक्तमें रात्रिके उत्तरके अर्द्धभागमें आरंभके समय होनेसेही उत्तरभागमें निशीथव्यापिनी होती है, सप्तमीके दिन उत्तर भागमेंही और नवमीसे युक्त दिनमें रात्रिके पूर्वभागमें होनेसेही निशीथव्यापिनी होती है, यही पक्ष मानने योग्य है, इसी प्रकार वक्ष्यमाण (जो कहेंगे) रोहिणीसे युक्त भेदोंमें भी जानना। रोहिणीसे युक्त अष्टमीमें भी पूर्वदिनमेंही निशीथमें रोहिणी अष्टमीका योग १ और परदिनमेंही निशीथमें उन दोनोंका योग २ और दोनों दिन निशीथमें योग ३ ये तीन पक्ष हैं। पहिले दिनही निशीथमे योग जैसे सप्तमी ४० और उसदिन कृत्तिका ३५ अष्टमी ४६ और उसदिन रोहिणी ३६ घडी हो, इसमें पूर्वविद्धाही अष्टमी उपवास करने

योग्य है, परदिनमें निशीथमें सप्तमीका योग जैसे सप्तमी ४२ और उसदिन कृत्तिका ५० अष्टमी ४७ रोहिणी ४६ हो, इसमें परलीही अष्टमी ग्रहण करनी, दोनों दिन निशीथके समय अष्टमी और रोहिणीका योग जैसे, सप्तमी ४२ कृत्तिका ४३ अष्टमी ४७ रोहिणी ४८ इसमें परलीही अष्टमी ग्रहण करनी, अब रोहिणी युक्त अष्टमीमेंही दोनों दिन भी निशीथमें रोहिणीके योगका अभाव बहुधा होता है, परले दिनही निशीथव्यापिनी अष्टमी हो और परले दिनही निशीथसे अन्य समयमें रोहिणीसे युक्त हो यह एक पक्ष है, जैसे सप्तमी ४७ अष्टमी ५० अष्टमीके दिन कृत्तिका ४६ हो इस पक्षमें परलीही अष्टमी ग्रहण करनी, इसकी तुल्य युक्तिसे पहिले दिनही निशीथव्यापिनी और पहिले दिनही निशीथसे अन्य कालमें रोहिणी युक्त हो इस पक्षमें भी पहिलीही ग्रहण करनी, दोनों दिन भी निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त परले दिनही निशीथव्यापिनी हो यह दूसरा पक्ष है। जैसे, सप्तमी ४८ उसदिन कृत्तिका ३० अष्टमी ४८ रोहिणी २५ हो इसमें भी परलीही ग्रहण करनी, दोनों दिन निशीसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त पहिले दिनही निशीथव्यापिनी हो यह तीसरा पक्ष है। जैसे सप्तमी २५ कृत्तिका ४८ अष्टमी २० रोहिणी ४३ हो इसमें भी परलीही ग्रहण करनी। क्योंकि, रोहिणीका योग तुल्य भी है परन्तु पहिली सप्तमी विद्धा है, जैसे अष्टमी ६० । ४ कृत्तिका ५० हो, इस अष्टमीकी वृद्धिमें भी पहिलीही ग्रहण करनी, क्योंकि दोनों अहोरात्रोंमें रोहिणीका योग समान भी है परंतु पहिली शुद्ध है और पूर्ण व्याप्ति भी है, दोनों दिन निशीथव्यापिनी हो परले दिनही निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त हो यह चौथा पक्ष है। जैसे सप्तमी ४३ अष्टमी ४९ कृत्तिका ४६ हो इसमें भी परलीही अष्टमी लेनी, इसी प्रकार दोनों दिन भी निशीथव्यापिनी और पहिले दिनही निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त हो यह पांचवां पक्ष है। जैसे सप्तमी ४१ उसदिन रोहिणी ४३ अष्टमी ४७ हो इसमें भी पहिलीही उपवास करने योग्य है, दोनों दिन भी निशीथव्यापिनी और दोनों दिन भी निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त यह छठा पक्ष है। जैसे सप्तमी ४२ कृत्तिका ४८ अष्टमी ४९ रोहिणी ४२ हो इसमें भी परलीही ग्रहण करनी, दोनों दिन भी निशीथव्यापिनी हो और निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त हो यह सातवां पक्ष है। जैसे सप्तमी ४८ उसदिन रोहिणी ५८ अष्टमी ४२ हो इसमें भी परलीही अष्टमी ग्रहण करनी, इस पक्षमें परले दिनही वा दोनों दिन निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीके योग होनेपर भी परलीही लेनी यह कैमुत्यन्यायसे सिद्ध है। पहिले दिनही निशीथव्यापिनी परले दिनही निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त हो यह चरम (पिछला) पक्ष है। जैसे सप्तमी ३० अष्टमी २५ उसदिन कृत्तिका ५ हो, अथवा अष्टमी ६० । ४ अष्टमीके शेष दिनमें कृत्तिका १ घडी हो, इन दोनों उदाहरणोंमें भी परलीही अष्टमी ग्रहण करनी, क्योंकि, अल्प भी रोहिणीके योगको श्रेष्ठ होनेसे मुहूर्तमात्र भी ग्रहण करने योग्य है इससे पहिले दिन विद्यमान भी निशीथव्याप्तिका आदर नहीं है, सब पक्षोंमें यदि परले दिन मुहूर्तसे न्यून होय तो वह ग्रहण न करनी किंतु पहिलीही लेनी यह पुरुषार्थ-चिंतामणिमें कहा है, परले दिनही निशीथव्यापिनी और पहिले दिनही निशीथसे अन्य कालमें रोहिणीसे युक्त हो, जैसे सप्तमी ४८ रोहिणी ५५ अष्टमी ४८ इसमें परलीही लेनी क्योंकि, सप्तमीसे विद्धामें अर्द्धरात्रके पीछे रोहिणीका योग कुछ भी प्रयोजक (कार्यकारी)

नहींहै, यहां विस्तारसे कहे जो बहुतसे पक्ष हैं उनका संक्षेपसे निर्णयका संग्रह पुरुषार्थचिंतामणिमें कहाहै। कि, शुद्ध समानमेंवा शुद्ध न्यूनसे विद्ध समानमें वा विद्ध न्यून जो केवल अष्टमी है उसमें तो सन्देहही नहीं है, और शुद्धाधिक भी केवल अष्टमी पहिलीही लेनी, और विद्धाधिका तो पूर्वदिन निशीथव्याप्तिमें पहिली और दोनों दिन निशीथव्याप्ति वा अव्याप्तिमें परलीही होतीहै। अब रोहिणीके योगमें यदि शुद्ध समामें वा शुद्ध न्यूनामें ईषत् (थोडासा) भी रोहिणीका योग होय तो तब सन्देह नहीं, और शुद्धाधिकामें पूर्वदिनमें वा दोनों दिनमें रोहिणीका योग होय तो पहिलीही लेनी, और शुद्धाधिकामें उत्तर दिनमेंही रोहिणीका योग होय तो मुहूर्तमात्र भी परलीही लेनी, और विद्धाधिकामें पूर्वदिनमेंही निशीथसे पूव वा निशीथमें रोहिणीका योग होय तो पहिली और दोनों दिन निशीथसे परे,निशीथमें वा निशीथको छोड़कर रोहिणीका योग होय तो परलीही ग्रहण करनी, यह संक्षेपसे निर्णयका संग्रह है, इस प्रकार कौस्तुभ आदि नवीन ग्रंथोंके अनुसारी जो माधव उनके मतके अनुकूल जन्माष्टमीका निर्णय किया, इसमें कोई आचार्य तो, केवल अष्टमी जन्माष्टमी और रोहिणीसे युक्त होनेसे जयन्ती संज्ञक होती है इससे जयंती और अष्टमीके व्रतकी एकता कहते हैं। अन्य आचार्य तो जन्माष्टमीव्रत और जयंतीव्रत भिन्न रहैं, रोहिणी योगके अभावसे व्रतका लोप होजायगा इससे जन्माष्टमी व्रतही करना, जिस वर्षमें जयंती नामके योगवाली जन्माष्टमी हो तब जयंतीमें जन्माष्टमी अन्तर्गत होजाती है, इससे जयंतीके दिन निशीथ नामके कर्मकालमें अष्टमी आदिके अभावमें भी साकल्य (सपूर्ण माननी) के वचनसे कही हुई कर्मकालकी व्याप्तिको लेकर, दोनों भी व्रत जयंतीके दिन तन्त्रसे करने, क्योंकि दोनों व्रतोंके न करनेमें महादोष सुननेसे और करनेमें फलके सुननेसे दोनों व्रत नित्य और काम्य रूप हैं, और निशीथव्यापिनी पूर्वाष्टमीमें जन्माष्टमीके व्रतको करके जयंतीके दिन पारणा न करे क्योंकि नित्यव्रतके लोपमें प्रत्यवाय (दोष) होजायगा। निर्णयसिंधुमें उक्त रीतिसे माधवके मतको कहकर हेमाद्रिके जन्माष्टमीका व्रतही नित्य है, जयंतीका व्रत तो नित्यभी है परन्तु कलियुगमें लुप्त है इससे कोई २ नहीं करते, यह कहकर अपने मतसे जिस वर्ष पहिले दिनही निशीथमें अष्टमी हो और परदिनमें निशीथसे अन्य कालमें जयंती नामका योग हो वहां तो दो उपवास करने, क्योंकि, दोनों व्रतोंको नित्य होनेसे न करनेमें दोष है और जयंतीमें अन्तर्भावकी उक्ति तो मूर्खोंका प्रतारण (ठगना) मात्र है, यह कहा है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि, नवीन ग्रंथोंमें स्वीकार किये माधवके मतकी रीतिसे जयंतीमें अन्तर्भावसे अष्टमी व्रतका करनाही युक्त है, इस व्रतमें बुध सोम्वारका योग श्रेष्ठताका कारक है। कुछ रोहिणीके समान निर्णयकारक नहीं ॥

अथात्र पारणानिर्णयः।

अथ द्वितीयदिने भोजनरूपं पारणं व्रतांगं विहितं तत्कालो निर्णीयते ॥ केवलतिथ्युपवासे तिथ्यंते नक्षत्रयुक्ततिथ्युपवास उभयांते पारणं कार्यम् ॥ यदि तिथिनक्षत्रयोरेकतरांतो दिने लभ्यते उभयांतस्तु रात्रौ तदा दिवैवान्यतरांते पारणम् ॥ यदा दिवा नैकस्याप्यंतस्तदा निशीथादर्वागन्यतरांते उभयांते वा पार-

णम् ॥ यदा तु निशीथाव्यवहितपूर्वक्षणे एकतरांत उभयांतो वा तदा निशीथेपि पारणं कार्यम् ॥ भोजनासंभवे पारणासंपत्त्यर्थं फलाद्याहारो विधेयः ॥ केचित्तू-क्तविषये निशीथे पारणं न कार्यं किंतूपवासात्तृतीयेह्नि दिवा कार्यमित्याहुस्तन्न युक्तम् ॥ अशक्तस्त्वेकतरांताभावेप्युत्सवांते प्रातरेव देवपूजाविसर्जनादि कृत्वा पारणं कुर्यात् ॥

अब दूसरे दिन व्रतका अङ्ग भोजनरूप पारणा कहा है उसके कालका निर्णय करते हैं— केवल तिथिका उपवास होय तो तिथिके अन्तमें और नक्षत्रसे युक्त तिथिका उपवास होय तो दोनोंके अन्तमें पारणा करै, यदि तिथि और नक्षत्र इनमें एक किसीका अन्त दिनमें मिलै, और दोनोंका अन्त रात्रिमें होय तो दिनमेंही एक किसीके अन्तमें पारणा होती है, और जब दिनमें एककाभी अन्त न हो तब निशीथसे पहिले एक किसीके अन्तमें वा दोनोंके अन्तमें पारणा करना, और जब निशीथसे पहिलेही क्षणमें एक किसीका अन्त हो वा दोनोंका अन्त हो तब तो निशीथमेंही पारणा करै भोजनमें असंभवके पारणाकी संपत्ति (होना) के लिये फल आदिका भोजन करना। कोई तो यह कहते हैं कि, निशीथमें पारणा न करै किंतु उपवासके तीसरे दिन दिनमें पारणा करै, सो ठीक नहीं । अशक्त मनुष्य तो एक किसीके अन्तके अभावमेंभी उत्सवके अन्तमें प्रातःकाल देवपूजा विसर्जन आदिको करके पारणा करै, अब संक्षेपसे व्रतका विधि कहते हैं ॥

अथ संक्षेपेण व्रतविधिः ।

प्रातः कृतनित्यक्रियः प्राङ्मुखो देशादि संकीर्त्य तत्काले सप्तम्यादिसत्त्वेपि प्रधानभूताष्टमीमेव संकीर्त्य श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं जन्माष्टमीव्रतं करिष्ये ॥ जयंतीयोगसत्त्वे जन्माष्टमीव्रतं जयंतीव्रतं च तन्त्रेण करिष्ये इति संकल्पयेत् ॥ ताम्रपात्रे जलं गृहीत्वा ॥ "वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशांतये ॥ उपवासं करिष्यामि जन्माष्टम्यां नभस्यहम् ॥" अशक्तौ फलानि भक्षयिष्यामीत्याद्यूहः ॥ "आजन्म मरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ तत्प्रणाशय गोविंद प्रसीद पुरुषोत्तम" इति पात्रस्थं जलं क्षिपेत् ॥ ततः सुवर्णरजतादिमय्यो मृन्मय्यो वा भित्त्यादिलिखिता वा प्रतिमा यथाकुलाचारं कार्याः ॥ ता यथा पर्यंके प्रसुप्तदेवक्याः स्तनं पिबंतीं श्रीकृष्णप्रतिमां निधाय जयंतीसत्त्वे त्वन्यदेवक्या उत्संगे द्वितीयां श्रीकृष्णमूर्तिं निधाय पर्यंकस्थदेवकीचरणसंवाहनपरां लक्ष्मीं निधाय भित्त्यादौ खड्गधरं वसुदेवं नन्दगोपीगोपाँल्लिखित्वा प्रदेशांतरे मंचके प्रसूतकन्यया सह यशोदाप्रतिमां पीठांतरे वसुदेवदेवकीनंदयशोदाश्रीकृष्णरामचंडिका इति सप्त प्रतिमाः स्थापयेत् ॥ एतावत्प्रतिमाकरणाशक्तौ वसुदेवादिचंडिकांताः सप्त वा यथाचारं यथाशक्ति वा कृत्वा अन्याः सर्वा यथायथं ध्यायेदिति भाति ॥ निशीथासन्नप्राक्काले स्नात्वा श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं सपरिवारश्रीकृष्णपूजां करिष्ये इति संकल्प्य न्यासान् शंखादितपूजां

नित्यवत्कृत्वा॥"पर्यंकस्थां किंनराद्यैर्युतां ध्यायेत्तु देवकीम्॥ श्रीकृष्णं बालकं ध्यायत्पर्यंके स्तनपायिनम्॥श्रीवत्सवक्षसं शांतं नीलोत्पलदलच्छविम्॥ संवाहयंती देवक्याः पादौ ध्यायेच्च तां श्रियम्॥" एवं ध्यात्वा देवक्यै नमः इति देवकीमावाह्य मूलमंत्रेण पुरुषसूक्तऋचा वा श्रीकृष्णाय नमः श्रीकृष्णमावाहयामीत्यावाह्य लक्ष्मीं चावाह्य देवक्यै वसुदेवाय यशोदायै नंदाय श्रीकृष्णाय रामाय चंडिकायै इति नाम्नावाह्य लिखितादिदेवताः सकलपरिवारदेवताभ्यो नम इत्यावाह्य मूलेन सूक्तऋचा वात्रावाहितदेवक्यादिपरिवारसहितश्रीकृष्णाय नम इत्यासनपाद्यार्घ्याचमनीयाभ्यंगस्नानानि दत्त्वा पंचामृतस्नानांते चंदनेनानुलेपयेत् ॥ शुद्धोदकाभिषेकांते वस्त्रयज्ञोपवीतगंधपुष्पाणि धूपदीपौ च ॥ "विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ॥ विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविंदाय नमोनमः ॥ यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ॥ यज्ञानां पतये नाथ गोविंदाय नमोनमः" इति मंत्राभ्यां मूलमंत्रादिसमुच्चिताभ्यां दद्यात्॥ "जगन्नाथ नमस्तुभ्यं संसारभयनाशन ॥ जगदीश्वराय देवाय भूतानां पतये नमः" इति नैवेद्यम् ॥ मूलमंत्रादिकं सर्वत्र योज्यम् ॥ तांबूलादि नमस्कारप्रदक्षिणापुष्पांजल्यंतं कार्यम् ॥ अथोद्यापनप्रकरणोक्तविधिना पूजा ॥ सा यथा उक्तप्रकारेण ध्यानावाहनं कृत्वा ॥ "देवा ब्रह्मादयो ये च स्वरूपं न विदुस्तव ॥ अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्सङ्गवासिनम्"॥ पुरुष एवेदमासनम् ॥ "अवतारसहस्राणि करोषि मधुसूदन ॥ न ते संख्यावताराणां कश्चिज्जानाति तत्त्वतः" ॥ एतावानस्येति पाद्यम् ॥ "जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च ॥ देवानां च हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ कौरवाणां विनाशाय पांडवानां हिताय च ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे" ॥ त्रिपादूर्ध्व इत्यर्घ्यम् ॥ "सुरासुरनरेशाय क्षीराब्धिशयनाय च ॥ कृष्णाय वासुदेवाय ददाम्याचमनं शुभम्" ॥ तस्माद्विराडित्याचमनीयम् ॥ "नारायण नमस्तेस्तु नरकार्णवतारक ॥ गंगोदकं समानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्" ॥ यत्पुरुषेणेति स्नानम् ॥ "पयोदधिघृतक्षौद्रशर्करास्नानमुत्तमम् ॥ तृप्त्यर्थं देवदेवेश गृह्यतां देवकीसुत" इति पंचामृतम्॥ शुद्धोदकस्नानमाचमनम् ॥ "क्षौमं च पट्टकूलं च मयानीतांशुकं शुभम् ॥ गृह्यतां देवदेवेश मया दत्तं सुरोत्तम" ॥ तं यज्ञमिति वस्त्रम् ॥ "नमः कृष्णाय देवाय शंखचक्रधराय च ॥ ब्रह्मसूत्रं जगन्नाथ गृहाण परमेश्वर" ॥ तस्माद्यज्ञादिति यज्ञोपवीतम् ॥ "नानागंधसमायुक्तं चंदनं चारुचर्चितम् ॥ कुंकुमाक्ताक्षतैर्युक्तं गृह्यतां परमेश्वर"॥ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचेति गंधम् ॥ "पुष्पाणि यानि दिव्यानि पारिजातोद्भवानि च ॥ मालतीकेसरादीनि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्" ॥ तस्मादश्वा इति पुष्पम् ॥ अथांगपूजा ॥ श्रीकृष्णाय नमः पादौ पूजयामि ॥ संकर्षणाय० गुल्फौ पूजयामि ॥ कालात्मने नमः जानुनी पू० ॥ विश्वकर्मणे नमः जंघे पू०॥ विश्वनेत्राय० कटिं पू०॥

विश्वकर्त्रे नमः मेढ्रं पू० ॥ पद्मनाभाय० नाभिं पू० ॥ परमात्मने नमः हृदयं पू० ॥ श्रीकंठाय० कंठं पू० ॥ सर्वास्त्रधारिणे नमः बाहू पू० ॥ वाचस्पतये नमः मुखं पूजयामि ॥ केशवाय० ललाटं पू० ॥ सर्वात्मने० शिरः पू० ॥ विश्वरूपिणे नारायणाय नमः सर्वांगं पूजयामि ॥ वनस्पतिरसो० यत्पुरुषं० धूपम् ॥ "त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजस्त्वं तेजसां परम् ॥ आत्मज्योतिर्नमस्तुभ्यं दीपोयं प्रतिगृह्यताम्०" ॥ ब्राह्मणोस्य० दीपम् ॥ "नानागंधसमायुक्तं भक्ष्यभोज्यं चतुर्विधम् ॥ नैवेद्यार्थं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर" ॥ चंद्रमाम० नैवेद्यम् ॥ आचमनं करोद्वर्तनम् ॥ "तांबूलं च सकर्पूरं पूगीफलसमन्वितम् ॥ मुखवासकरं रम्यं प्रीतिदं प्रतिगृह्यताम्" ॥ तांबूलम् ॥ "सौवर्णं राजतं ताम्रं नानारत्नसमन्वितम् ॥ कर्मसाद्गुण्यसिद्ध्यर्थं दक्षिणा प्रतिगृह्यताम् ॥ रंभाफलं नालिकेरं तथैवाम्रफलानि च ॥ पूजितोसि सुरश्रेष्ठ गृह्यतां कंससूदन" ॥ नाभ्या आसी० नालिजनम् ॥ यानि कानि० सप्तास्यासन्० प्रदक्षिणाम् ॥ यज्ञेनेत्यादिवेदमंत्रैः पुष्पांजलिम् ॥ नमस्कारान् ॥ अपराधस० पूजां निवेदयेत् ॥

प्रातःकाल नित्य क्रिया करके पूर्वाभिमुख होकर और देश आदिका कीर्तन (कहन) करके, सप्तमी आदिके होनेपरभी प्रधानरूप अष्टमीका ही कीतन करके श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये जन्माष्टमी व्रतको करता हूं, जयंतीका योग होनेपर जन्माष्टमी व्रत और जयंती व्रतको तन्त्रसे करता हूं यह सकल्प करै। तांबेके पात्रमें जलको ग्रहण करके, वासुदेवके निमित्तसे सब पापोंकी शांतिके लिये श्रावणमासमें जन्माष्टमीके दिनमें उपवास करता हूं,अशक्त मनुष्य तो फल आदिका भक्षण करूंगा इत्यादि ऊह करै,जन्मसे मरण पर्यंत जो मैंने पाप कियाहै उसके नाशके लिये हे गोविंद ! मेरे ऊपर प्रसन्नहो, इस मंत्रसे पात्रके जलको फेंकदे। फिर सुवर्ण, चांदी आदिकी वा मिट्टीकी प्रतिमा कुलाचारके अनुसार भींत आदिपर लिखै और वे ऐसे बनानी कि, जैसे पर्यंकपर सोतीहुई देवकीके स्तनको पीतीहुई श्रीकृष्णकी प्रतिमाको रखकर, और जयंतीव्रतके होनेपर अन्यदेवकीके उत्संग (गोदी) में दूसरी श्रीकृष्णकी मूर्तिको रखकर, और पर्यंकपर बैठी देवकीके चरणोंकी सेवा करती हुई लक्ष्मीको रखकर, और भींत आदिपर खड्गको लिये वसुदेव और नंदगोपकी प्रतिमाको लिखकर, दूसरे प्रदेशमें मंचक (पलंग) पर कन्याके संग सोतीहुई यशोदाको, और दूसरे पीठपर वसुदेव, देवकी, नंद, यशोदा, श्रीकृष्ण, राम, चंडिका इन सात प्रतिमाओंको स्थापन करे। इतनी प्रतिमा न बनासके तो वसुदेवसे चंडिकापर्यंत सात प्रतिमाओंको वा कुलाचारके अनुसार यथाशक्ति बनाकर अन्य सबका यथायोग्य ध्यान करै । यह मुझे प्रतीत होताहै, और निशीथके समीप पूर्वकालमें स्नान करके श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये परिवार सहित श्रीकृष्णकी पूजा करताहूं, यह संकल्प करके और प्रतिदिनके समान न्यास आदिसे शंख आदिकी पूजा पर्यंत कामको करना। पर्यंकपर स्थित किन्नर आदिसे युक्त देवकीका ध्यान करै, और पर्यंकके ऊपर स्तनपीते श्रीवत्स जिनके वक्षस्थलमें, शांत और नील कमलके दलकी समान श्यामरूप श्रीकृष्ण बालकका ध्यान करै। और देवकीके चरणोंकी सेवा करतीहुई लक्ष्मीका

ध्यान करै। ऐसे ध्यान करके 'देवक्यै नमः' इस मंत्रसे देवकीका आवाहन करके और मूलमंत्रसे वा पुरुषसूक्तकी ऋचासे 'श्रीकृष्णाय नमः' ऐसा श्रीकृष्णका आवाहन करके और लक्ष्मीका आवाहन करके देवकी, वसुदेव, नंद, यशोदा, श्रीकृष्ण, राम, चंडिका इनका 'नमः' मंत्रसे आवाहन करके लिखी हुई देवताओंको और संपूर्ण परिवार देवताओंको नमस्कार है। इस मंत्रसे आवाहन करके मूल मंत्रसे वा पुरुषसूक्तकी ऋचासे आवाहन किये देवकी आदि परिवार देवता सहित श्रीकृष्णको नमस्कार है इस मंत्रसे आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, अभ्यंग, स्नान, आदि देकर पंचामृत स्नानके अनंतर चंदनका लेपन करै। शुद्धोदक स्नानके अनंतर वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीप इनको हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! हे विश्वके उत्पादक ! हे विश्वके पति ! हे गोविंद ! आपको नमस्कार है। यज्ञके ईश्वर, देव, देवरूप, यज्ञके उत्पादक, यज्ञके पति, गोविंदको नमस्कार है। मूलमंत्र सहित इन दोनों मंत्रोंसे दे। हे जगन्नाथ ! हे संसारके भयनाशक ! जगत्‌के ईश्वर ! देव ! भूतोंके पति ! आपको नमस्कार है। मूलमंत्र आदिका योग सर्वत्र करना। ताम्बूल आदि नमस्कार, प्रदक्षिणा, पुष्पांजलीपर्यंत कर्मको करै। अथवा उद्यापन प्रकरणमें कही विधिसे पूजा करै। वह ऐसे है कि, उक्त प्रकारसे ध्यान आवाहन करके जो ब्रह्मा आदि देवता हैं वेभी आपके स्वरूपको नहीं जानते उस माताके उत्संगमें बसनेबाले आपका पूजन करता हूं। 'पुरुष एवेदं' इस मंत्रसे आसन दे। हे मधुसूदन ! तुम सहस्रों अवतार धरते हो आपके अवतारोंकी संख्या तत्त्वसे कोई नहीं जानता। 'एतावानस्य' इस मंत्रसे पाद्य दे। कंसका वध, भूमिके भारका उतारना, देवताओंके हित धर्मकी स्थिति, कौरवोंका शत्रु और पांडवोंका हित इनके लिये आप प्रकट भये हो हे हरे ! मेरे दिये अर्घ्यको देवकी सहित ग्रहण करो। 'त्रिपादूर्ध्वः' इस मंत्रसे अर्घ्य दे। सुर, असुर, मनुष्य इनके ईश क्षीरसागरमें जो सोतेहैं ऐसे श्रीकृष्ण वासुदेवको शुभ आचमन देता हूं 'ततोविराड्' इस मंत्रसे आचमन दे। हे नारायण ! हे नरकरूपसमुद्रसे तारक ! यह गंगाजल लायाहूं स्नाके लिये ग्रहण करो। 'यत्पुरुषेण' इस मंत्रसे स्नान करावै। दूध, दही, घी, सहत, शर्करा (खांड) इनका उत्तम स्नान है देवकीके पुत्र ! तृप्तिके लिये ग्रहण करो, इसमन्त्रसे पंचामृतस्नान। फिर शुद्धोदकस्नान और आचमन करावे। यह रेशमसे युक्त क्षौमवस्त्रका दुकूल (दुपट्टा) मैं लायाहूं मेरे लायेहुये इसको हे सुरोंमें उत्तम ! ग्रहणकरो। 'तंयज्ञं०' इसमन्त्रसे वस्त्र दे और कृष्णदेव शंख, चक्र गदाधारीको नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! हे परमेश्वर! ब्रह्मसूत्रको ग्रहणकरो। 'तस्माद्यज्ञात्०' इसमन्त्रसे यज्ञोपवीत दे। और नानाप्रकारके गंधोंसे युक्त, सुन्दर औपचर्चित और कुंकुम मिलेहुये अक्षतोंसे युक्त हे परमेश्वर ! चन्दनको ग्रहणकरो। 'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः०' इसमन्त्रसे गन्ध दे। और जो दिव्य, कल्पवृक्षसे पैदाहुये पुष्प हैं और जो मालती केशर आदि हैं उनको पूजाके लिये ग्रहण करो। 'तस्मादश्वाः' इस मन्त्रसे पुष्प दे। अब अंगपूजाको कहते हैं—श्रीकृष्णको नमस्कार है चरणोंको पूजता हूं, संकर्षणको नमस्कार है गुल्फोंको पूजताहूं, कलारूपको नमस्कार है इससे जानुओंको, विश्वकर्माको नमस्कार है इससे जंघाओंको, विश्वनेत्रको नमस्कार है इससे कटिको, विश्वकर्ताको नमस्कार है इससे लिंगको, पद्मनाभको नमस्कार है इससे नाभिको, परमात्माको नमस्कार है इससे हृदयको, श्रीकंठको नमस्कार है इससे कंठको, सर्वास्त्रधारीको नमस्कार है इससे भुजाओंको, वाचस्पतिको नमस्कार है इससे मुखको,

केशवको नमस्कार है इससे ललाटको, सर्वात्मांको नमस्कार है इससे शिरको पूजता हूं और विश्वके रूप नारायणको नमस्कार है इससे सर्वांगको पूजताहूं।और 'वनस्पतिरसो०यत्पुरुषं०' इन मन्त्रोंसे धूप और सबदेवताओंकी तू ज्योतिहै तेजोंको जो तू परमतेजरूप आत्मज्योतिरूप है आपको नमस्कार है, इस दीपकको ग्रहणकरो । 'ब्राह्मणोस्य०' इस मन्त्रसे दीपक दे । और नानाप्रकारके गन्धोंसे युक्त, भक्ष्य भोज्यरूप मेरा दियाहुआ अन्न नैवेद्यके लिये ग्रहण करो । 'चन्द्रमामनसो० इस मन्त्रसे नैवेद्यको अपर्ण करै, और आचमन करोद्वर्तन (पूंछना) दे । कपूर पूगीफलसे युक्त ताम्बूल जो मुखमें सुगन्धका कर्ता और रमणीक हैं प्रीतिके दाता उसको ग्रहणकरो इसमन्त्रसे पान दे । और सुवर्ण,चांदी, तांबा, नानाप्रकारके रत्नोंकी दक्षिणा कर्मकी सद्गुणताके लिये ग्रहण करो । केलाके फल, नारियल, आम्रफल इनसे हे मधुसूदन ! हे सुरश्रेष्ठ ! आपका पूजन किया है आप ग्रहणकरो । 'नाभ्या आसीत्०' इसमन्त्रसे नीराजन दे । जन्मांतरके किये जो कुछ पाप हैं वे सब प्रदक्षिणाके पद २ पर नष्टहों । 'सप्तास्यासन०' इसमन्त्रसे प्रदक्षिणा करै । 'यज्ञेन' इत्यादिमन्त्रोंसे पुष्पांजलि देकर नमस्कार करै । मैं रात दिन सहस्रों अपराध करताहूं उनको क्षमाकरो, इसमन्त्रसे पूजाको निवेदन करै ॥

अथ चंद्रार्घ्यदानमंत्रः ।

सर्वोपचारपूजनसमाप्तौ द्वादशांगुलविस्तारं रौप्यमयं स्थंडिलादि लिखितं वा रोहिणीयुतं चंद्रम् ॥ "सोमेश्वराय सोमाय तथा सोमोद्भवाय च ॥ सोमस्य पतये नित्यं तुभ्यं सोमाय वै नमः" ॥ इति संपूज्य सपुष्पकुशचंदनं तोयं शंखेनादाय॥ "क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ॥ गृहाणार्घ्यं शशांकेदं रोहिण्या सहितो मम ॥ ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥ नमस्ते रोहिणीकांत अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ॥" इति मंत्राभ्यां चंद्रायार्घ्यं दद्यात् ॥ ततः श्रीकृष्णायार्घ्यं दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च ॥ पांडवानां हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे" इति ॥ ततः प्रार्थयेत् ॥ "त्राहि मां सर्वलोकेश हरे संसारसागरात् ॥ त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ॥ सर्वलोकेश्वर त्राहि पतितं मां भवार्णवे ॥ त्राहि मां सर्वदुःखघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे ॥ दुर्गतां स्त्रायसे विष्णो ये स्मरंति सकृत्सकृत् ॥ त्राहि मां देवदेवेश त्वत्तो नान्योस्ति रक्षिता ॥ यद्वा क्वचन कौमारे यौवने यच्च वार्धके ॥ तत्पुण्यं वृद्धिमायातु पापं दह हलायुध" इति ॥

जब सर्वोपचारपूजाकी समाप्ति होजाय चांदीका वा स्थंडिल आदिमें लिखा रोहिणीसहित चन्द्रमा बारह अंगुल प्रमाणका बनाकर और सोमेश्वर, सोम और सोमसे उत्पन्न, सोमकेपति, आपको नमस्कार है इसमन्त्रसे पूजनकर पुष्प चन्दन कुशासहित जल शंखमें लेकर इन दोनों मन्त्रोंसे चन्द्रमाको अर्घ्य दे कि,क्षीरसागर और अत्रिके गोत्रमें उत्पन्नहुए आप रोहिणी सहित मेरे अर्घ्यको ग्रहणकरो हे रात्रिके पति! हे तारागणोंके स्वामी ! हे रोहिणीके प्राणप्यारे ! तुझको

नमस्कार है । फिर श्रीकृष्णको इसमन्त्रसे अर्घ्य दे कि, आप कंसका वध और भूमिके भारका उतारना, पांडवोंकेहित और धर्म्मका संस्थापन और कौरव और दैत्योंका नाश इनके लिये उत्पन्नहुये हो । हे हरे! मेरे दिये अर्घ्यको देवकीसहित आप ग्रहणकरो । फिर प्रार्थना करै कि, हे सब लोकोंके स्वामी ! संसाररूपी समुद्रसे मेरी रक्षा करो । हे सब पापोंके नष्ट करनेवाले ! हे प्रभो ! दुःख और शोकरूपी समुद्रसे मेरी रक्षाकरो । हे सब लोकोंके ईश्वर ! संसाररूपी समुद्रमें पडे हुये मुझको निकालो ।हे सब दुःखोंके दूरकरनेवाले ! हे हरे ! रोग और शोकरूपी समुद्रसे मेरा उद्धार करो । हे हरे ! जो आपका एकवार भी स्मरण करतेहैं उनकी आप रक्षा करते हो इससे हे देवदेवेश ! मेरी भी रक्षा करो । क्योंकि, आपसे अन्य कोई रक्षा करनेवाला नहीं है और जो कोई पुण्य मैंने कौमार, यौवन वा वृद्ध अवस्थाके विषै कियाहो वह वृद्धिको प्राप्त हों और हे हलायुध ! पापोंको आप दग्ध करो ॥

अथ कीर्तनविधिः ।

अथ पूजानंतरकृत्यमग्निपुराणे ॥ "इत्येवं पूजयित्वा तु पुरुषसूक्तैः सवैष्णवैः ॥ स्तुत्वा वादित्रनिर्घोषैर्गीतवादित्रमंगलैः ॥ सुकथाभिर्विचित्राभिस्तथा प्रेक्षणकैरपि ॥ पूर्वेतिहासैः पौराणैः क्षिपेत्तां शर्वरीं नृप" इति ॥ अत्र कथासु वैचित्र्यं देशभाषाकाव्यकृतम् ॥ सूक्तानां प्रागुक्तेः पुराणकथानामंतेऽभिधानात् ॥ प्रेक्षणकानि नृत्यादीनि ॥ तथा च वैदिकसूक्तकरणकस्तुतिविशिष्टः पौराणेतिहासमिश्रितो गीतनृत्ययुतदेशभाषाकाव्यप्रमुखकथाकरणको जागरो विप्रादिवर्णत्रयस्य विधीयते ॥ शूद्रादीन्प्रति एतादृशजागरस्य विधातुमयोग्यत्वाद्वचनांतरेण तु सूक्तादिरहितगीतादिविशिष्टो वर्णचतुष्टयसाधारणो विधीयते ॥ गोकुलस्थजन्मलीलादिश्रवणोत्तरं वैष्णवैः परस्परं दध्यादिभिः सेचनं कार्यम् ॥ "दधिक्षीरघृतांबुभिः । आसिंचंतो विलिंपंतो" इत्यादि श्रीभागवतवचनेन तथाविधिकल्पनात ॥ अयमुत्सवोऽधुना महाराष्ट्रदेशे गोपालकालेति व्यवह्रियत इति मे भाति ॥ एतत्सर्वं कौस्तुभे श्रीमदनंतदेवैः स्पष्टीकृतमस्तीति न मह्यमसूया कार्या॥ एतादृशकथायुतो जागरोन्यत्र रामनवम्येकादश्याद्युत्सवेष्वप्यूह्यः ॥ पूजाजागरादिविशिष्टव्रतोत्सवसाम्यात् ॥ महाराष्ट्रीयेषु तथाचाराच्च ॥ भगवत्प्रेमादिभाग्यशालिनस्तु 'पर्वणि स्युरुतान्वहम्'इति न्यायेन प्रत्यहमेवोक्तविधकथोत्सवं कुर्वतीति भाति ॥ ततो नवम्यां ब्राह्मणान्भोजनदक्षिणादिभिः संतोष्योक्तपारणानिर्णीते काले भोजनं कुर्यात् ॥

अब अग्निपुराणमें लिखा जो पूजाके अनंतरका कृत्य है उसको दिखाते हैं कि, इस प्रकार पुरुषसूक्तसे फिर श्रीकृष्णका पूजन और स्तुति करके, बाजोंका शब्द और गीत मंगल और अच्छी२ विचित्र कथा, और श्रीकृष्णचंद्रको हावभावसे देखना, और पुराणोंमें लिखे पूर्व इतिहास इनसे हे राजन् उस रात्रिको व्यतीत करै । यहां कथाओंमें विचित्रता देशभाषा और काव्योंके बीचमें कही हुई लेनी क्योंकि, श्लोकमें सूक्तोंको पूर्व कहाहै और पुराण कथाओंको अंतमें कहाहै और प्रेक्षणशब्दसे नृत्यआदि लेने । यहां यह व्यवस्था समझनी कि, ब्राह्मण

आदि तीन वर्णोंको तो वेदके सूक्तमें कही स्तुति, और पुराणमें कहे इतिहास, गीत, नृत्य देशकी भाषा और उत्तम काव्यमें कही हुई कथा इनसे सहित जागरणका विधानहै।और शूद्र आदिकोंको उस वैदिक सूक्त आदिविशिष्ट (युक्त) जागरणका विधान अयोग्य है इससे चारों वर्णको तो उस सूक्तआदिसे रहित गीत नृत्य आदि सहित साधारण जागरणका विधानहै। गोकुलमें जन्म और लीला आदिके सुननेके अनंतर तो वैष्णव आपसमें दधि आदिको सेचन करैं। क्योंकि, यह भागवतका वचन है कि, दधि,दूध, घी, जल इनको आपसमें छिडके, अपने शरीरसे लेपन करैं इससे यह कल्पना की है। यह उत्सव अब महाराष्ट्रदेशमें श्रीकृष्णके जन्मपर अतिशयसे किया जाताहै। यह बात मुझको प्रतीत होतीहै। यह सब कौस्तुभ ग्रंथमें श्रीमान् अनंतदेवजीने स्पष्ट कर लिखाहै, इससे मेरी इसमें असूया (निंदा) न करनी। इसप्रकार कथासहित जागरण अन्यभी नवमी, एकादशी, आदि उत्सवमेंभी समझना। क्योंकि, पूजा जागरण आदि सहित जो व्रतरूपी उत्सव हैं उनमें समताहै, और महाराष्ट्रदेशमें उसीप्रकार आचार किया जाताहै। और जो भगवान्‌में प्रीति आदिसे श्रेष्ठभाग्यवाले हैं वे जो 'पर्वणि स्युरुतान्वहम्' पर्वमें जागरण आदि करै वा नित्य करै,इस न्यायसे प्रतिदिन उक्तविधिसे कथारूपी उत्सवको करतेहैं यह प्रतीत होताहै। फिर नवमीके दिन ब्राह्मणोंको भोजन, दक्षिणा आदिसे सन्तुष्ट करके पूर्वनिर्णय किये पारणाकालमें भोजनको करै॥

अथ प्रतिमासं जन्माष्टमी।

अस्यैव जयंतीव्रतस्य संवत्सरसाध्यः प्रयोगः श्रावणकृष्णाष्टमीमारभ्य प्रतिमासं कृष्णाष्टम्यामुक्तविधिना पूजादिरूपः पुराणांतरे उक्तः॥ अत्रोद्यापनविधिर्ग्रंथांतरे ज्ञेयः॥ ॥ इति जन्माष्टमीनिर्णयोद्देशः॥

इसी जयन्तीव्रतका अनुष्ठान वर्षदिनतक श्रावणकी कृष्णाष्टमीसे लेकर महीने २ कृष्णाष्टमीको जो पूर्वोक्तविधिसे पूजा आदि करना, वह पुराणान्तरमें कहाहै। उसकी उद्यापनकी विधि अन्यग्रंथमें समझनी॥ इति जन्माष्टमीनिर्णयोद्देशः॥

अथ श्रावणदर्शे दर्भग्रहणम्।

"नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान् समाहरेत्॥ अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनःपुनः"॥ केचिद्भाद्रामायां दर्भग्रहणमाहुः॥

श्रावणमासकी अमावस्याको शुद्धदर्भोंको लावै, यदि किसी मृतककर्ममें न प्राप्तहुई होय तो बारंवार सब कर्मोंमें प्रवृत्त करनी। कोई आचार्य भाद्रपदकी अमावस्याको दर्भके ग्रहणको कहते हैं॥

अथ दर्भभेदा दश।

"कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुंदकाः॥ गोधूमा व्रीहयो मुञ्जा दश दर्भाः सबल्वजाः॥ विरिंचिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज॥ नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥ एवं मंत्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः॥ हुंफट्कारेण

मंत्रेण सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत् ॥" चतुर्भिर्दर्भैर्विप्रस्य पवित्रकं क्षत्रियादेरेकैकं न्यूनम् ॥ "सर्वेषां वा भवेद्वाभ्यां पवित्रं ग्रंथितं न वा" ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे श्रावणमासनिर्णयोद्देशः ॥

कुश, काश, जौ, दूब, उशीर, (खस) कुंदके पुष्प, गोधूम, धान और मूंज ये बल्वजसहित दश दर्भ कहाते हैं । ब्रह्माके साथ परमेष्ठिके स्वभावसे तू उत्पन्न हुआहै इससे हे दर्भ ! तू सब पापोंको दूर कर और हमारे लिये कल्याणकारी हो । इसप्रकार मंत्रको उच्चारण करके और पूर्वाभिमुख वा उत्तराभिमुख बैठकर, 'हुंफट्कार' इसमंत्रसे एकबार छेदन करके भलीप्रकार उखाडै, और ब्राह्मणका पवित्रा चारदर्भोंका, क्षत्रियका तीनका, वैश्यका दोका होताहै अथवा सबवर्णोंका पवित्रा दोदर्भोंका ही समझना ॥ इति श्रावणमासनिर्णयोद्देशः ॥

कन्यासंक्रांतिः ॥

तत्र कन्यासंक्रांतौ पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः ॥

अब भाद्रपदका निर्णय करते हैं–तिस भाद्रपदमासकी कन्याकी संक्रांतिमें पहली सोलह (१६) घडी पुण्यकाल है ॥

अथ मासकृत्यम् ।

भाद्रपदमासे एकान्नाहारव्रताद्धनारोग्यादिफलम् ॥ अत्र मासे हृषीकेशप्रीत्यर्थं गुडौदनलवणादेर्दानम् ॥

भाद्रपदमासमें एक अन्नके आहाररूपी व्रतसे धन, आरोग्य आदि फलकी प्राप्ति होतीहै । इसमासमें हृषीकेशकी प्रसन्नताके लिये खीर, गुडमिला भात, लवण आदि इनका दान करै ॥

अथ हरितालिकाव्रतम् ।

भाद्रपदशुक्लतृतीयायां हरितालिकाव्रतम् ॥ तत्र मुहूर्तमात्रा ततो न्यूनापि परा ग्राह्या ॥ यदा क्षयवशात्परदिने नास्ति तदा द्वितीयायुतापि ग्राह्या ॥ यदा तु शुद्धाधिका तदा पूर्वदिने षष्टिघटिकामितामपि त्यक्त्वा परदिने स्वल्पापि चतुर्थीयुतैव ग्राह्या ॥ गणयोगप्राशस्त्यात् ॥ अत्र व्रते भवानीशिवयोः पूजनमुपवासश्च स्त्रीणां नित्यः ॥ तत्र ॥ "मंदारमालाकुलितालकायै कपालमालांकितशेखराय ॥ दिव्यांबरायै च दिगंबराय नमः शिवायै च नमः शिवाय" ॥ इत्यादयः पूजामंत्रा ज्ञेयाः ॥

भाद्रपदकी शुक्लतृतीयाको हरितालिकाका व्रत होताहै, उस व्रतमें तृतीया एक मुहूर्तमात्र हो वा उससे भी कम होय तो भी पहलीही ग्रहण करनी और जो क्षयके होजानेसे पहले दिन न होय तो द्वितीयासे युक्तभी ग्रहण करनी । और जो शुद्ध अधिक होय तो पहिले दिन साठ (६०) घडी मितकोभी छोडकर दूसरे दिन अल्पभी चतुर्थीयुक्त ग्रहण करनी । गणयोगकी प्रशंसासे इस व्रतमें शिवपार्वतीकी पूजा और उपवास ये स्त्रियोंके लिये नित्यकर्म हैं । उस

पूजनमें इत्यादि मंत्र समझने कि, जिसके बालोंमें मंदारके पुष्पोंकी माला गुहीहुई है और शोभायमान जिसके वस्त्र हैं, ऐसी पार्वतीको और जिसका मस्तक कपालोंकी मालासे चिह्नित है और दिगंबर (नग्न) रूपको धारणकिये हुए ऐसे शिवजीको मैं नमस्कार करता हूं ॥

अथ विनायकचतुर्थीव्रतम् ।

शुक्लचतुर्थ्यां सिद्धिविनायकव्रतम् ॥ सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये साकल्येन मध्याह्नव्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा ॥ दिनद्वये साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तावपि पूर्वैव ॥ वैषम्येण व्याप्तावधिकव्यापिनी चेत्परेति केचित् ॥ पूर्वदिने सर्वथा मध्याह्नस्पर्शो नास्त्येव परदिने एव मध्याह्नस्पर्शिनी तदैव परा ॥ पूर्वदिने एकदेशेन मध्याह्नव्यापिनी परदिने संपूर्णमध्याह्नव्यापिनी तदा परैव एवं मासांतरेपि निर्णयः ॥ इयं रविभौमवारयोगे प्रशस्ता ॥

इसीमें शुक्लपक्षकी चतुर्थीका सिद्धविनायकका व्रत होता है । वह चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी । दोनों दिन जो मध्याह्नके समय सर्वावयव व्यापनी होय वा न होय तो पहिली ही ग्रहण करनी। और जो दोनों दिन एकही प्रकार वा अन्य अन्य प्रकारसे एक देशव्यापिनी होय तो भी पूर्वकीही लेनी और कोई यह कहते हैं कि, अन्य प्रकारसे व्यापिनी होनेपर जो परली अधिक व्यापिनी होय तो परलीही लेनी । और जो पहिले दिन सर्वथा मध्याह्न कालमें स्पर्श न होय और परले दिन मध्याह्नव्यापिनी होय तो तबभी परली लेनी । और जो पहिले दिन मध्याह्नके एकदेशमें व्याप्ति होय और परले दिन मध्याह्नमें संपूर्ण व्याप्ति होय तो तब भी परली ही ग्रहण करनी । इसी प्रकार अन्य मासमें भी निर्णय समझना । इस चतुर्थीमें सूर्य, मंगलवारका योग प्रशस्त (उत्तम) होता है ॥

अथात्र चंद्रदर्शननिषेधः ।

अत्र चतुर्थ्यां चंद्रदर्शने मिथ्याभिदूषणं दोषस्तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पंचम्यां दर्शनं विनायकव्रतदिनेपि न दोषाय पूर्वदिने सायाह्नमारभ्य प्रवृत्तायां चतुर्थ्यां विनायकव्रताभावेपि पूर्वेद्युरेव चंद्रदर्शने दोष इति सिध्यति ॥ चतुर्थ्यामुदितस्य न दर्शनमिति पक्षे त्ववशिष्टपंचषण्मुहूर्तमात्रचतुर्थीदिनेपि निषेधापत्तिः ॥ इदानीं लोकास्त्वेकतरपक्षाश्रयेण विनायकव्रतादिने एव चंद्रं न पश्यंति न तूदयकाले दर्शनकाले वा चतुर्थीसत्त्वासत्त्वे नियमेनाश्रयंति ॥

इस चतुर्थीके दिन चन्द्रमाके दर्शन होनेपर (मिथ्याभिदूषण विना कियेका दोष) लगताहै तिससे यह बात समझनी कि, यदि चतुर्थीके दिन जो उदय हुआ हो ऐसे चन्द्रमाका जो पंचमीके वर्तमान होनेपर दर्शन होय तो वह चंद्रदर्शन विनायकके व्रतके दिन भी दोषकारी नहीं होताहै । और जो पहिले दिन सायाह्नकालसे लेकर चतुर्थीकी प्रवृत्ति होगई होय और उस दिन विनायकका व्रत न भी होय तो भी चंद्रदर्शनका पहिलेही दिन दोष है, अर्थात् यह बात सिद्ध हुई कि, चतुर्थीमें चन्द्रदर्शनका दोष है । विनायक व्रतका नियम नहीं

और जब चतुर्थीके विषय उदय हुआ हो उसका दर्शन न करना यह पक्ष है तब तो, सामान्यसे पांच वा छः मुहूर्त चतुर्थीके दिन भी निषेधकी प्राप्ति है, परन्तु अब तो संसारीजन एकही पक्षको मानकर विनायकके व्रतके दिनही चंद्रदर्शन नहीं करते । उदयकालमें वा दर्शनकालमें चतुर्थी होने वा न होनेपर चंद्रदर्शन इत्यादि नियमको नहीं मानते ॥

अथ चंद्रदर्शने मंत्रजपः ।

दर्शने जाते तद्दोषशांतये ॥ "सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जांबवता हतः ॥ सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमंतकः" इति श्लोकजपः कार्यः ॥

अब जो चन्द्रमाका दर्शन होय तो उसके दोषकी शान्तिके लिये कहतेहैं–सिंहने प्रसेनको मारा और उस सिंहको जांबवान्ने मारा, हे सुकुमारक ! तू मत रोवे क्योंकि, तेरी स्यमंतकमणि ये है, इस मंत्रका जप करै ॥

अथ गणेशपूजा ।

तत्र मृन्मयादिमूर्तौ प्राणप्रतिष्ठापूर्वकं विनायकं षोडशोपचारैः संपूज्यैकमोदकेन नैवेद्यं दत्त्वा सगंधा एकविंशतिदूर्वा गृहीत्वा ॥ गणाधिपायोमापुत्रायाघनाशनाय विनायकायेशपुत्राय सर्वसिद्धिप्रदायकायैकदंतायेभवक्त्राय मूषकवाहनाय कुमारगुरवे इति दशनामभिर्दूर्वयोर्द्वयं द्वयं समर्प्यावशिष्टमेकां दूर्वामुक्तदशनामभिः समर्पयेत् ॥ दश मोदकान्विप्राय दत्त्वा दश स्वयं भुंजीतेति संक्षेपः ॥

तिस चतुर्थीमें मृन्मय आदि मूर्तिमें प्राणप्रतिष्ठा पूर्वक षोडश उपचारोंसे विनायक (गणेश) का पूजन करके एक मोदकका नैवेद्य अर्पण करके, गंधसहित इक्कीस (२१) दूब हाथमें लेकर दो दो दूब इन दश नामोंको उच्चारण करता हुआ अर्पण करै । गणाधिप, उमापुत्र, अघनाशन, विनायक, ईशपुत्र, सर्वसिद्धिप्रदायक, एकदंत, इभवक्त्र, मूषकवाहन, कुमारगुरु आपको नमस्कार है । फिर बाकी बची एक दूर्वाको उक्त दशनामोंसे समर्पण करै । दश मोदक ब्राह्मणको देकर दश मोदकोंको आप खाय इति ॥

अथ ऋषिपंचमीनिर्णयः ।

भाद्रशुक्लपंचमी ऋषिपंचमी सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदव्याप्तौ च पूर्वैव ॥ अत्र ऋषीन्पूजयित्वा कर्षणादिरहितभूमिजन्यशाकाहारं कुर्यात् ॥ "शुक्ले भाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम् ॥ प्राशनं पंचगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम्" ॥ इयं सूर्यषष्ठी सप्तमीयुता ग्राह्या ॥ अस्यामेव स्वामिकार्तिकेयदर्शनाद्ब्रह्महत्यादिपापनाशः ॥

भाद्रपदके शुक्लपक्षकी पंचमीको ऋषिपंचमी कहते हैं, वह मध्याह्नव्यापिनी लेनी । जो दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो वा न होय तो पहिलीही लेनी । इस पंचमीके दिन ऋषियोंका पूजन करके जिसमें हलआदि न चलताहो ऐसी भूमिमें पैदा हुए शाकका आहार करै । भाद्रपदकी शुक्ल षष्ठीको स्नान और भास्करका पूजन है और पंचगव्यका भोजन जो करै

उसको अश्वमेधसेभी अधिक फल प्राप्त होताहै । यह सूर्यषष्ठी सप्तमीसे युक्त लेनी । इसमेंही सोमकार्तिकके दर्शनसे ब्रह्महत्या आदि पापका नाश होता है ॥

अथ दूर्वाष्टमीव्रतम् ।

भाद्रशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी सा पूर्वा ग्राह्या ॥

भाद्रपदकी शुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी होती है, वह पूर्वतिथिसे युक्त लेनी ॥

अथ ज्येष्ठादेवीपूजानिर्णयः ।

इयं ज्येष्ठा मूलर्क्षयुता त्याज्या ॥ अलाभे तद्युक्तापि ग्राह्या ॥ इदं दूर्वापूजनव्रतं कन्यार्केऽगस्त्योदये च वर्ज्यम् ॥ इदं स्त्रीणां नित्यम् ॥ अत्र ज्येष्ठादेवीपूजाव्रतं केवलाष्टमीप्राधान्येन केवलज्येष्ठानक्षत्रप्राधान्येन चोक्तम् ॥ तत्र दाक्षिणात्याः केवलज्येष्ठानक्षत्र एव कुर्वंति ॥ तच्चानुराधायामावाहनं ज्येष्ठायां पूजनं मूले विसर्जनमिति त्रिदिनं ज्ञेयम् ॥ आवाहनविसर्जनदिनयोः पूजनदिनानुरोधेन निर्णयः ॥ तत्र यदा पूर्वमध्याह्नमारभ्य प्रवृत्ता ज्येष्ठा द्वितीयदिने मध्याह्ने मध्याह्नात्पूर्वं वा समाप्यते तदा पूर्वदिने एव पूजनं यदा पूर्वदिने मध्याह्नोत्तरं प्रवृत्ता परदिने मध्याह्ने समाप्ता तदाष्टमीयोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या ॥ उभयत्राष्टमीयोगे पूर्वैव ॥ यदा पूर्वत्र मध्याह्नमारभ्य मध्याह्नोत्तरं वा प्रवृत्ता परदिने मध्याह्नोत्तरमपराह्णं स्पृशति तदाष्टमीयोगाभावेपि परैव ॥

यह अष्टमी ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रसे युक्त होय तो त्याग देनी और जो इनसे रहित न मिले तो इनसे युक्त भी ग्रहण करनी । यह दूर्वापूजन व्रत कन्याके सूर्य और अगस्त्यके उदयमें वर्ज देना । यह व्रत स्त्रीको नित्य है, इसमें ज्येष्ठा देवीकी पूजा और व्रत है उसमें केवल अष्टमीकी प्रधानता और ज्येष्ठा नक्षत्रकी प्रधानता कहीहै । तिसमें दाक्षिणात्य(दक्षिणी) केवल ज्येष्ठा नक्षत्रमें व्रत करते हैं, अष्टमीको प्रधान नहीं समझते । तहां अनुराधामें आवाहन, ज्येष्ठामें पूजन और मूलमें विसर्जन इस प्रकार तीन दिन समझने । आवाहन और विसर्जनके दिनोंका निर्णय पूजनादि दिनके निर्णयसे समझना । तहां तो पहिले दिन मध्याह्नकालसे प्रवृत्त हुआ ज्येष्ठा नक्षत्र जो दूसरे दिन मध्याह्नके समय वा मध्याह्नसे पूर्वही समाप्त होजाय तो पहिलेही दिन पूजन करना । और जो पहिलेदिन मध्याह्नसे पीछे प्रवृत्त होकर जो परले दिन मध्याह्नके समयही समाप्त होजाय तो अष्टमीके योगके वशसे पहिली वा पिछली ग्रहण करनी । और जो दोनों दिन अष्टमीका योग होय तो पहिलीही लेनी । और जो पीहिलेदिन मध्याह्नकालसे लेकर वा मध्याह्नसे पीछे जो प्रवृत्त होकर पहले दिन मध्याह्नसे पीछे अपराह्नसे स्पर्श करै तो, अष्टमीयोग न होय तो भी पहलीही ग्रहण करनी ॥

अथ विष्णुपरिवर्त्तनोत्सवः ।

भाद्रपदशुक्लैकादश्यां द्वादश्यां वा पारणोत्तरं विष्णुपरिवर्त्तनोत्सवः ॥ तत्र ॥ 'श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति' इति वचनात्त्रेधा विभक्तश्रवणमध्यभागयोगस्यैकादश्यां

सत्त्वे तत्रैव द्वादश्यां सत्त्वे द्वादश्यामेव उभयत्र नक्षत्रयोगाभावे द्वादश्यामेवे- त्यादि व्यवस्था ज्ञेया ॥ तत्र संध्यायां विष्णुं संपूज्य ॥ "वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव ॥ पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव" इति मंत्रेण प्रार्थयेत् ॥

भाद्रपदकी शुक्ला एकादशी वा द्वादशीके दिन पारणा किये पीछे विष्णुपरिवर्तन (करवट लेना) नामक उत्सव होता है । तहां श्रावणके मध्यमें श्रीकृष्ण परिवर्तन (करवट) लेते हैं, यह वचन है । तो इसकी इसप्रकार व्यवस्था है कि, श्रवणनक्षत्रके तीन विभागकरके जो मध्य- भाग है, उसका योग जो एकादशीको होय तो एकादशीको और जो द्वादशीमें योग होय तो द्वादशीमें उत्सव करना । और जो दोनों दिन नक्षत्रका योग न होय तो द्वादशीमें ही उत्सव करना यह व्यवस्था है । तिसदिन संध्याके समय विष्णुका पूजन करके इसमंत्रसे प्रार्थना करै कि, हे वासुदेव ! जगत्के स्वामी ! आपकी यह द्वादशी प्राप्तहुई है; इसमें एक पार्श्वसे करवट लो हे माधव ! आप सुखसे शयन करो ॥

अथ श्रवणद्वादशीनिर्णयः ।

अथ श्रवणद्वादशीव्रतम् ॥ तत्र यत्र दिने मुहूर्तमात्रादिः स्वल्पोपि द्वाद- श्याः श्रवणयोगस्तत्रोपोषणम् ॥ उत्तराषाढाविद्धश्रवणनिषेधवाक्यानि तु निर्मू- लानि ॥ यदा पूर्वदिने एकादशीविद्धा द्वादशी परदिनेऽनुवर्तते दिनद्वयेपि च श्रव- णयोगस्तदा पूर्वदिने एकादशी द्वादशी श्रवणेति त्रितययोगरूपविष्णुशृंखलयो- गात्पूर्वैवोपोष्या ॥ तत्रोदाहरणम् ॥ एकादशी १८ उत्तराषाढा ६ द्वादशी २० श्रवण १२ यथावा एकादशी १८ उत्तराषाढा २५ द्वादशी २० श्रवण १८ अत्र द्वितीयोदाहरणे एकादश्याः श्रवणयोगाभावेपि श्रवणयुक्तद्वादशीस्पर्शमात्रेण विष्णुशृंखलयोगः ॥ द्विविधोप्ययं योगो दिवैव ग्राह्यो न तु रात्रौ इति पुरुषार्थ- चिंतामणौ ॥ रात्रावपि निशीथोत्तरमपि योगो ग्राह्य इति निर्णयसिंधुः ॥ रात्रेः प्रथमप्रहरपर्यंतं तिथ्योः श्रवणयोगो ग्राह्यो न द्वितीयप्रहरादावित्यपरे ॥ अत्र च- रमपक्ष एव युक्तो भाति ॥ अत्र विष्णुशृंखलयोगे व्रतद्वयोपोषणं तंत्रेणैकादश्या- मेव कृत्वा द्वादश्यां वक्ष्यमाणपारणानिर्णयानुसारेण पारणं कार्यम् ॥ यदोक्तविष्णु- शृंखलयोगो नास्ति तदा यदि शुद्धाधिकाद्वादशी दिनद्वयेपि श्रवणयोगः पूर्वदिने त्वोदये श्रवणाभावस्तदोत्तरैव ग्राह्या ॥ यदोभयदिने सूर्योदये द्वादश्यां श्रवणयो- गस्तदा पूर्वैव ॥ विद्धाधिकायामपि परत्रैवोदये उदयोत्तरं वा श्रवणयोगे परैवेति निर्विवादम् ॥ उभयत्र श्रवणयोगे उक्तविधविष्णुशृंखलयोगे पूर्वा अन्यथा परै- वेति विज्ञेयम् ॥

अब श्रवणद्वादशीका व्रत कहते हैं । तहां जिसदिन मुहूर्तमात्र आदि अथवा उससे भी अल्प जो द्वादशीमें श्रवण नक्षत्रका योग होय तो तिस दिनमें उपवास करै । उत्तराषाढसे विद्ध जो श्रवण उसके योगमें न करै, इत्यादि जो निषेध प्रतिपादक वाक्यहैं वे निर्मूलहैं । जो पहिले दिन एकादशीविद्धा द्वादशी होकर दूसरेदिन अनुवर्तमान हो और दोनोंदिन श्रवण नक्षत्रका

योग होय तो पहिलेदिन एकादशी, द्वादशी और श्रवण इन तीनोंका विष्णुशृंखलनाम योग होनेसे पहिले दिनमें ही उपवास करना। तिसका उदाहरण दिखाते हैं कि, एकादशी १८ घडी है और उसदिन उत्तराषाढा ६ घडी है और परले दिन द्वादशी २० घडी है और श्रवण १२ घडी है, और जैसे कि, एकादशी १८ घडी है और उत्तराषाढा २५ घडी है, और परले दिन द्वादशी २० घडी है और श्रवण १८ घडी है। अब यहां दूसरे उदाहरणमें यद्यपि एकादशीमें श्रवण नक्षत्रका योग नहीं है, तथापि श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशीके स्पर्शमात्रसे विष्णुशृंखल योग है । दोनों प्रकारका यह योग (पहिले दिन साक्षात् श्रवणका एकादशीमें योग वा श्रवणयुक्त द्वादशीका एकादशीमें योग) दिनमेंही ग्रहण करना रात्रिमें नहीं, यह पुरुषार्थचिंतामणिमें लिखाहै। निर्णयसिन्धुमें तो यह लिखाहै कि, रात्रिमें अर्द्धरात्रिसे उत्तरभी योग ग्रहण करना। और कोई यह कहते हैं कि, जो रात्रिके प्रथम प्रहर पर्यंत तिथियोंमें श्रवणका योग ग्रहण करना, रात्रिके द्वितीय प्रहर आदिमें होय तो नहीं मानना । यहां यह अन्तपक्षही युक्त प्रतीत होताहै । इस विष्णुशृखल योगके होनेपर, एकादशीमें ही तन्त्रसे दोनों व्रतोंका उपवास करके द्वादशीमें पारणा वक्ष्यमाण निर्णयके अनुसार करना। और जो विष्णुशृंखल योग न होय तो जो शुद्ध (औदयिकी) द्वादशी अधिक हो और दोनों दिन श्रवण नक्षत्रका योग हो और पहिले दिन उदयके समय श्रवणनक्षत्र न होय तो परलीही ग्रहण करनी। और जो दोनों दिन सूर्योदयके समय द्वादशीमें श्रवणका योग होय तो पहिलीही लेनी। और विद्धा द्वादशीके अधिक होनेपर भी परलेही दिन उदयके समय वा उदयकालसे पीछे श्रवण नक्षत्रका योग होय तो परलीही ग्रहण करनी, यह निर्विवाद कथन है। और जो दोनों दिन श्रवणका योग होनेपर पूर्वोक्तप्रकारसे विष्णुशृंगल योग होय तो पहिलीही ग्रहण करनी अन्यथा परली लेनी यह समझना ॥

अथात्रोपवासनिर्णयः।

एवं यत्रैकादशीश्रवणद्वादश्योर्नैरंतर्येणोपवासप्राप्तिस्तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम् ॥ व्रतद्वयस्यापि नित्यत्वात् ॥ व्रतद्वयस्यैकदैवतत्वान्न पारणालोपदोषः ॥

इसी प्रकार जहां एकादशी और श्रवण द्वादशी इन दोनोंमें निरन्तर उपवासकी प्राप्ति होय तो समर्थ मनुष्य दो उपवास करै, इन दोनों व्रतोंकी देवता एक है इससे पारणाके लोपका दोष नहीं।

अथोपवासद्वयासामर्थ्ये ।

यस्तूपवासद्वयासमर्थ एकादशीव्रतसंकल्पात्पूर्वं च निजसामर्थ्यं निश्चिनोति तेनैकादश्यां फलाद्याहारं कृत्वा द्वादश्यां निरशनं कार्यम् ॥ न चैकादशीव्रतलोपः॥ "उपोष्य द्वादशीं पुण्यां विष्णुऋक्षेण संयुताम् ॥ एकादश्युद्भवं पुण्यं नरः प्राप्नोत्यसंशयम्"॥ इति नारदोक्तेः "श्रवणेन युता चेत्स्याद् द्वादशी सा हि वैष्णवैः ॥ स्मार्तैश्चोपोषणीया स्यात्त्यजेदेकादशीं तदा" ॥ इति माधवोक्तेश्च ॥ अत्रैकादशीत्यागपदेन फलाहारो बोध्यते न तु भोजनम् ॥ यस्तूपवासद्वयशक्तिभ्रमेण कृतैकादशीव्रतसंकल्पः ॥ संकल्पोत्तरं च द्वितीयोपवासासामर्थ्यमनुभवति तदा तेनै-

कादश्यामुपोष्य द्वादश्यां विष्णुपूजनं कृत्वा पारणं कार्यम् ॥ अत्र व्रतांगपूजनं कृतोपवाससमर्थ उपवासप्रतिनिधिरूपं विष्णुपूजनं करिष्य इति संकल्प्य पुनः पूजनं कुर्यात् ॥ अत्र द्वादश्यां श्रवणयोगाभावे एकादश्यां श्रवणयोगे तत्रैव श्रवणद्वादशीव्रतं कार्यम् ॥ विद्धैकादश्यां श्रवणयोगे तु येषां यत्रैकादशीव्रतप्राप्तिस्तेषां तंत्रेणोपवासद्वयसिद्धिः ॥ अन्येषां गृहीतश्रवणद्वादशीव्रतानामुपवासद्वयम् ॥ तत्राशक्तानां पूर्वेद्युः फलाहारः परेऽह्नि निरशनमिति भाति ॥

और जो दो उपवासके करनेमें समर्थ न होय वह एकादशी व्रतके संकल्पसे पूर्व अपनी सामर्थ्यका निश्चय करले। इससे एकादशीके दिन फल आदिका आहार करके द्वादशीके दिन निरशन (निराहार) व्रत करै, एकादशीके व्रतका लोप न करै, क्योंकि, नारदने कहाहै कि विष्णुनक्षत्र श्रवणसे युक्त पवित्र द्वादशीमें उपवास करके मनुष्य एकादशीसे उत्पन्न हुए पुण्यको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं। और भागवतमें भी कहाहै कि, जो द्वादशी श्रवणसे युक्त होय तो उसमें वैष्णव और स्मार्त उपवास करैं, एकादशीको त्यागदे। यहां एकादशीको त्यागदे, इस पदसे फलाहार करै यह बोधन किया है भोजन करना नहीं। और जो दो उपवास करसक्ताहू इस शक्तिके भ्रमसे एकादशीके व्रतका संकल्प करदे, और फिर संकल्प किये पीछे दूसरे उपवास करनेकी असामर्थ्यका अनुभव करै (समझे) कि दूसरा उपवास न करसकूंगा तो फिर वह मनुष्य एकादशीको उपवास करके और द्वादशीके दिन विष्णुपूजन करके पारणा करै, अर्थात् व्रतके अंतमें भोजन करले। इसमें व्रतांग पूजनको करके उपवास करनेमें असमर्थ मनुष्य उपवासके प्रतिनिधिरूप विष्णुके पूजनको करताहूं यह संकल्प करके फिर पूजन करै। जो द्वादशीमें श्रवणयोग न होय और एकादशीमें श्रवणका योग होय तो एकादशीमें ही श्रवण द्वादशीका व्रत करना। विद्धा एकादशीमें श्रवणका योग होय तो जिनको जिस दिन एकादशी व्रतकी प्राप्ति होय उनको उसी दिन तंत्रसे दो उपवास करने यह सिद्ध हुवा और जिन्होंने श्रवणद्वादशीका नियम लेरक्खा है ऐसे जो अन्य पुरुष हैं उनको दो उपवास करने चाहियें, उन दोनोंके करनेमें जो असमर्थ हैं वे पहिले दिन फलाहार करकै परले दिन निरशन व्रतको करैं, यह प्रतीत होता है ॥

अथ पारणानिर्णयः।

उभयांते पारणं मुख्यः पक्षः ॥ अन्यतरांते गौणः पक्षः ॥ तत्र विष्णुशृंखलाभावे त्रयोदश्यामुभयांते पारणम् ॥ विष्णुशृंखलयोगे तु पूर्वदिने तंत्रेण कृतोपवासद्वयस्य परदिने श्रवणर्क्षाद्वादश्याधिक्ये श्रवणमतिक्रम्य द्वादश्यां पारणम् ॥ यदि च द्वादश्यपेक्षया श्रवणाधिक्यं पारणादिने भवति तदा एकादशीव्रतपारणायां द्वादश्युल्लंघने दोषोक्तेर्द्वादश्यामेव पारणम् ॥ न त्वन्यतरापेक्षा ॥ तत्र सति संभवे श्रवणमध्यभागं विंशत्यादिघटिकात्मकं त्यक्त्वा पारणम् ॥ यथैकादशी ३० उत्तराषाढा २९ द्वादशी २'१ श्रवण २९ अत्र पूर्वेद्युस्तंत्रेणोपवासद्वयं कृत्वा परेऽह्नि श्रवणमध्यभागमवशिष्टं नवघटिकात्मकं

त्यक्त्वा द्वादश्यां चरमे विंशतिघटीरूपे श्रवणभागे पारणम् ॥ एवमुक्तोदाहरणे एव एकादश्याः दशनाडिकात्वे द्वादश्या अष्टनाडिकात्वे द्वादशीश्रवणयोः पंचदशचत्वारिंशन्नाडिकात्वे वा श्रवणमध्यभागत्यागे द्वादश्युल्लंघनापत्तौ संगवकालं त्यक्त्वा मुहूर्तत्रयपर्यंतं सप्तममुहूर्तादौ वा ऋक्षमध्यभागे एवं भोक्तव्यम् ॥

अब पारणाका निर्णय करते हैं। कि, दोनों उपवासोंके अंतमें पारणा करनी यह मुख्य पक्ष है,अन्यतर (दोनोंमेंसे एक) के अंतमें करनी यह गौणपक्ष है। तहां विष्णुशृंखलके न होनेपर त्रयोदशीके दिन दोनों उपवासोंके अन्तमें पारणा करनी और जो विष्णुशृंखलका योग होय तो पहिले दिन जिसने तंत्रसे दो उपवास किये हैं, वह मनुष्य जो परले दिन श्रवण नक्षत्रमें अधिक द्वादशी होय तो उनमेंही पारणा श्रवणके अंतमें करै और यदि पारणाके दिन द्वादशी-अपेक्षासे जो श्रवण नक्षत्र अधिक होय तो भी द्वादशीमें पारणा करनी क्योंकि, एकादशी व्रतकी पारणा द्वादशीमें न की जाय तो दोष कहा है। इसमें अन्यतरकी अपेक्षा नहीं है जो उस दिन संभव होय तो विंशति आदि घडीरूप जो श्रवण नक्षत्रका मध्यभाग है उसको छोडकर अंतमें पारणा करनी। जैसे कि, पहिले दिन एकादशी ३० घडी है उत्तराषाढ २९ घडी है और परले दिन द्वादशी २५ श्रवण २९ घडी है तो इसमें पहिले दिन तंत्रसे दो उपवास करके परले दिन जो श्रवण नक्षत्रके मध्यभागमें नौ (९) घडी शेष उनको छोडकर द्वादशीके दिन अन्तकी श्रवणनक्षत्रकी वीस घडियोंमें पारण करै । इसी प्रकार पूर्वोक्त उदाहरणमेंही एकादशी १० घडी और द्वादशी आठ घडीहो अथवा द्वादशी १५ घडी और श्रवण ३४ घडीहो तो इसमें श्रवणनक्षत्रके मध्यभागके त्यागनेमें द्वादशीका उल्लंघन होताहै, इससे संगवकालको छोडकर तीन मुहूर्त पर्यंत वा सात मुहूर्तके आदिमें नक्षत्रके मध्यभागमेंही भोजन करना ॥

अथ मासांतरे श्रवणद्वादशी ।

अयं मध्यभागत्यागो भाद्रपदगतश्रवणद्वादशीव्रत एव ॥ न तु माघफाल्गुनमासकृष्णपक्षगतश्रवणद्वादशीव्रतपारणायाम् ॥ मासांतरगतश्रवणभागे विष्णुपरिवर्तनाभावात् ॥ ये तु भाद्रे श्रवणमध्यवर्जनमात्रेण निषेधचारितार्थ्यं मन्यमाना विष्णुशृंखलयोगाभावेपि श्रवणमध्यमात्रं त्यक्त्वा भुंजते ते नित्यश्रवणद्वादशीव्रतमाहात्म्यानभिज्ञा भ्रांता एव॥ अयं सर्वोपि निर्णयो मासांतरगतश्रवणद्वादशीव्रतेप्यूह्यः॥

यह मध्यभागका त्याग भाद्रपदकी श्रवणद्वादशीके व्रतमेंही समझना। माघ और फाल्गुनके कृष्णपक्षकी श्रवणद्वादशीकी पारणामें नहीं क्योंकि, अन्यमासके श्रवणनक्षत्रके मध्यभागमें विष्णुका परिवर्तन नहीं होता और जो कि, भाद्रपदमें श्रवणके मध्यभागको वर्जनेमात्रसे निषेधको चरितार्थ मानते हुए विष्णुशृंखल योगके न होनेपरभी श्रवणके मध्यभागको छोडकर भोजन करलेतेहैं, वे श्रवणद्वादशीके माहात्म्यको नहीं जाननेवाले भ्रमसहित हैं, अर्थात् मूर्ख हैं। इसी प्रकार संपूर्ण निर्णय अन्यमासकी श्रवणद्वादशीके व्रतके विषयभी समझना ॥

अत्र व्रते कृत्यम् ।

श्रवणद्वादशीव्रते नदीसंगमे स्नात्वा कलशे स्वर्णमयं जनार्दननामानं विष्णुं संपूज्य वस्त्रयज्ञोपवीतोपानहच्छत्रादि समर्प्योपोष्य पारणादिने दध्योदनयुतं वस्त्रवेष्टितं जलपूर्णघटं छत्रादियुतां पूजितां सपरिवारां तां प्रतिमां च दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "नमोनमस्ते गोविंद बुधश्रवणसंज्ञक ॥ अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव" ॥ इति ॥

श्रवणद्वादशीके व्रतके दिन नदीके संगममें स्नान करके कलशके ऊपर स्थापित की हुई जनार्दन जिसका नामहै ऐसी स्वर्णमयी विष्णुकी प्रतिमाका पूजन करके वस्त्र, यज्ञोपवीत, उपानह और छत्र आदि इनको समर्पण करके उपवास करै । फिर पारणाके दिन दध्योदन जिसमें पड़ाहो ऐसे वस्त्रमें लपेटे जलसे भरे हुए घटको और पूजन कीहुई छत्र आदि और परिवारसहित उसी विष्णुकी प्रतिमाको दे । तहां यह मंत्रहै कि, बुधश्रवण जिनका नामहै ऐसे हे गोविंद ! आपको नमस्कार है । हमारे पापोंके समूहोंको नष्ट करके सब कालमें सुखके देनेवाले हो ॥

अथ वामनजयंती ।

भाद्रशुक्लद्वादश्यां श्रवणयुतायां मध्याह्ने वामनोत्पत्तिः ॥ अतो मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी मध्याह्ने ततोन्यत्र काले वा श्रवणयुता ग्राह्या ॥ उभयदिने श्रवणयोगे पूर्वैव ॥ सर्वथा द्वादश्याः श्रवणयोगाभावे एकादश्यामेव श्रवणसत्त्वे मध्याह्नव्यापिनीमपि द्वादशीं विहायैकादश्यामेव व्रतं कार्यम् ॥ शुद्धैकादश्यां श्रवणाभावे दशमीविद्धैकादश्यामपि श्रवणयुतायां व्रतम् ॥ पूर्वदिन एव मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी परदिने मध्याह्नादन्यत्र काले श्रवणयुता तदा पूर्वैव ॥ तिथिद्वयेपि श्रवणयोगाभावे द्वादश्यामेव मध्याह्नव्यापिन्यां व्रतम् ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदव्याप्तौ नैकादशीयुतैव ग्राह्या ॥ पारणातु पूर्वोक्तरीत्योभयांतेन्यतरांते वा कार्या ॥ अत्र मध्याह्ने नदीसंगमे स्नात्वा सौवर्णं वामनं संपूज्यार्घ्यं सौवर्णपात्रेण दद्यात् ॥ तत्र पूजामंत्रः ॥ "देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ॥ प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमोनमः" ॥ अथार्घ्यमंत्रः ॥ "नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे ॥ नमः शार्ङ्गधनुर्बाणपाणये वामनाय च ॥ यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमोनमः" ॥ ततः परदिने सपरिवारं वामनं द्विजाय दद्यात् ॥ "वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोहं ददामि ते ॥ वामनः सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये" ॥ इति दानमंत्रः ॥

अब वामनजयन्तीके व्रतको कहते हैं । श्रवणनक्षत्रसे युक्त भाद्रपदके शुक्लपक्षकी द्वादशीको मध्याह्नके समय श्रीवामनजी महाराज पैदाहुए, इससे मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी मध्याह्नमें वा उससे अन्यकालमें श्रवणनक्षत्रसे युक्त होय तो ग्रहण करना । दोनों दिन श्रवणका योग होय

तो पहिलीही ग्रहण करना। जो द्वादशीको सर्वथा श्रवणनक्षत्रका योग न होय और एकादशीमें श्रवणका योग होय तो मध्याह्नव्यापिनी भी द्वादशीको छोडकर एकादशीमेंही व्रत करना। जो शुद्धा एकादशीमें श्रवणका योग न होय तो श्रवणसे युक्त दशमी विद्धा एकादशीमेंही व्रत करना। जो पहिलेही दिन मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी हो और दूसरे दिन मध्याह्नसे अन्यकालमें श्रवणका योग होय तो पहिलीही ग्रहण करनी। जो दोनों तिथियोंमें श्रवणका योग न होय तो मध्याह्नव्यापिनी द्वादशीमेंही व्रत करना। जो दोनोंदिन मध्याह्नव्यापिनी हो वा न होय तो एकादशीसे युक्तही ग्रहण करनी। पारणा तो पूर्वोक्तरीतिसे दोनोंके अन्तमें वा अन्यतरके अन्तमें करनी। इस व्रतके दिन मध्याह्नके समय जहां नदीका संगम हो ऐसे जलाशयमें स्नान करके सुवर्णकी बनाईहुई वामनकी प्रतिमाका पूजन करके सुवर्णके पात्रसे अर्घ्य दे। तिस पूजाका मन्त्र यह है कि, देवोंका ईश्वर, देवस्वरूप, देवोंकी उत्पत्ति करनेवाला, सम्पूर्ण देवताओंका प्रभु, वामनदेव आपको नमस्कार है। अब अर्घ्यका मन्त्र यह है कि, पद्मनाभ और जलशायी आपको नमस्कारहै। बाल वामनस्वरूप आपको अर्घ्य देताहूं, शार्ङ्गधनुष और बाण ये जिनके हाथमें, यज्ञके भोक्ता और फलके दाता वामनजी आपको नमस्कार है। फिर दूसरे दिन परिवारसहित वामनजीकी मूर्ति द्विजको इस मन्त्रसे दे कि, वामनही प्रतिग्रह लेताहै और वामन मैं आपको देताहूं। श्रीवामन रूप मैं द्विजका सब प्रकारसे कल्याणको करताहूं॥

अथ दधिव्रतं समाप्य पयोव्रतारंभः।

अस्यामेव द्वादश्यां रात्रौ देवपूजां कृत्वा तत्रासंभवे दिवैव वा दधिव्रतं निवेद्य दधिदानं कृत्वा दुग्धव्रतसंकल्पं कुर्यात्॥ अत्र पयोव्रते पयोविकारस्य पायसादेर्दुग्धपाचितान्नस्य च वर्जनम्॥ दध्यादेः पयोविकारस्यापि न वर्जनम्॥ एवं दधिव्रते तक्रादेर्न वर्जनम्॥ यत्र प्रसूताया गोर्दशदिनेषु संधिन्यादेश्च क्षीरनिषेधस्तत्र क्षीरविकारस्य दधितक्रादेः सर्वस्यैव वर्जनम्॥

इसी द्वादशीको रात्रिमें और जो रात्रिमें न होसकै तो दिनमेंही देवपूजाको करके, दधिव्रतका निवेदन किये पीछे दधिदानको करके, दुग्धव्रतका संकल्प करै। इस पयोव्रतमें दूधविकार पायस, खीर आदि और दुग्धमें पकाये अन्न आदिका निषेध है। और दूधके विकार दधि आदिकाभी निषेध है। जिस जगह प्रसूता (व्याई हुई) गौके दूधका दशदिनतक और सन्धिनी(जो ग्याभन होकर दूधदे) के दूधका सर्वथा निषेध कहाहै वहांपर, उस दूधके विकार दधि तक्रआदि संपूर्णका परित्याग है।

अथ भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनंतव्रतम्।

तत्रोदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी चतुर्दशी ग्राह्येति मुख्यः पक्षस्तदभावे द्विमुहूर्ता ग्राह्येत्यनुकल्पः॥ द्विमुहूर्तन्यूना तु पूर्वैव ग्राह्या॥ दिनद्वये सूर्योदयव्यापित्वे संपूर्णत्वात्पूर्वैव॥ अथ पूर्वाह्णो मुख्यः कर्मकालः॥ तदभावे मध्याह्नोपि॥ अत्र व्रते चतुर्दशग्रंथियुतदोरकेऽनंतपूजनादिविधिस्तदुद्यापनविधिश्च कौस्तुभादौ ज्ञेयः॥

अब भाद्रपदके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको अनन्तव्रत कहते हैं-तिसमें उदयकालमें जो तीन मुहूर्तहो ऐसी चतुर्दशी ग्रहण करनी यह मुख्यपक्ष है । और जो तीन मुहूर्त न होय तो दो मुहूर्त ग्रहण करनी, यह गौण कल्प (पक्ष) है। और जो दो मुहूर्तसे न्यून होय तो पहिलीही ग्रहण करनी, और जो दोनों दिन सूर्योदयव्यापिनी होय तो संपूर्ण होनेसे पहिलीही लेनी । इसमें पूर्वाह्णमें हो यह मुख्यकाल है और पूर्वाह्णव्यापिनी न होय तो मध्याह्नव्यापिनी लेनी, यह गौणपक्ष है । इस व्रतमें चतुर्दशग्रंथिसे युक्त दोरक (डोरा) के विषे अनन्तकी पूजा आदिकी विधि और उसकी उद्यापनकी विधि कौस्तुभ आदिग्रंथमेंसे समझनी ॥

अथ दोरकनाशे प्रायश्चित्तम्।

पूजितदोरकनाशे तु गुरुं वृत्वा तदनुज्ञया यथाशक्ति कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तं विधायाष्टोत्तरशतमाज्येन द्वादशाक्षरवासुदेवमंत्रेण हुत्वा केशवादिचतुर्विंशतिनामभिः सकृत्सकृत् हुत्वा होमशेषं समाप्य नूतनदोरके पूर्ववत्पूजनादि चरेत् ॥

पूजेहुए दोरकके नाश (टूटना) होजाय तो गुरुको वरण करके और गुरुकी आज्ञासे शक्तिके अनुसार कृच्छ्रआदि प्रायश्चित्तको करके। "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस द्वादशाक्षर वासुदेवमंत्रसे एकसौ आठ घीकी आहुतियोंका होम करके, फिर केशवआदि चौवीस नामोंसे एक एक आहुति देकर शेष होमको समाप्त करके, नवीन दोरकके विषे पूर्वकी समान पूजन आदिको करै ॥

अथागस्त्योदयश्च।

सूर्यस्य वृषभसंक्रमोत्तरं सप्तमादिनेऽगस्त्योऽस्तं प्रतियाति ॥ सिंहसंक्रांत्युत्तरमेकविंशतितमे दिने उदयमेति ॥ तत्र कन्यासंक्रांतेः पूर्वसप्तदिनमध्येऽगस्त्यपूजनं तदर्घ्यादिकं कार्यम् ॥

सूर्यकी वृषभसंक्रांतिके अनंतर सातमें दिन अगस्त्यजी अस्त होतेहैं और सिंहकी संक्रांतिके पीछे इकीस (२१) वें दिन उदय होते हैं, तहां कन्यासंक्रांतिसे पूर्व सात दिनके मध्यमें अगस्त्यजीका पूजन कर अर्घ्यआदि दे ॥

अथ प्रोष्ठपदीश्राद्धकृत्यम्।

भाद्रपदपौर्णमास्यां प्रपितामहान्परान्पित्रादींस्त्रीन्त्सपत्नीकान्वसुरुद्रादित्यस्वरूपान् मातामहादित्रयं च सपत्नीकमुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम् ॥ इदं पार्वणत्वादपराह्णे पुरूरवार्द्रवदेवयुक्तं सपिंडकं कार्यम् ॥ केचित्तु प्रपितामहस्य पित्रादित्रयमात्रमुद्दिश्य नांदीश्राद्धधर्मेण सत्यवसुदेवयुक्तं श्राद्धं कार्यं नात्र मातामहाद्युद्देश इत्याहुः ॥ इदं प्रोष्ठपदीश्राद्धं सकृन्महालयपक्षे सकलकृष्णपक्षव्यापिमहालयपक्षे चावश्यकम् ॥ पंचम्यादिमहालयपक्षेषु कृताकृतम् ॥

भाद्रपदकी पूर्णिमासीको पत्नीसहित पिताआदि प्रपितामहपर्यंत वसु, रुद्र, आदित्यस्वरूप पितरोंको तथा पत्नीसहित मातामह आदि तीनोंके उद्देशसे श्राद्ध करै यह पार्वण श्राद्धहै। इससे

अपराह्णकालमें पुरूरव और आर्द्रक देवताओं सहित सपिंडक श्राद्ध करना । और कोई यह कहते हैं कि प्रपितामहके पिताके आदि तीनके लियेही नांदी श्राद्धके अनुसार सत्य वसुदेवताओंसे युक्त यह श्राद्ध करना इसमें मातामह आदिका उद्देश नहीं । यह प्रोष्ठपदीश्राद्ध सकृत् (एकबार) महालयमें करै इस पक्षमें वा संपूर्ण कृष्णपक्षोंमें महालय करे इस व्यापकपक्षमें तो आवश्यक और पंचमी आदिमें महालय करना इस पक्षमें तो कृताकृत है अर्थात् करना वा नहींभी करना ॥

अथ महालये पक्षाः ।

अत्र शक्तेन भाद्रपदापरपक्षे प्रतिपदमारभ्य दर्शांतं तिथिवृद्धौ षोडश महालयाः कर्तव्याः ॥ वृद्धिक्षयाभावे पंचदशैव महालयाः ॥ तिथिक्षये च चतुर्दशैव ॥ अशक्तेन तु पंचम्यादिषु षष्ठ्यादिष्वष्टम्यादिषु दशम्यादिष्वेकादश्यादिषु वा दर्शांततिथिषु कार्याः ॥ अत्राप्यशक्तेनानिषिद्धे कस्मिंश्चिदेकस्मिन्दिने सकृन्महालयः कर्तव्यः ॥ प्रतिपदादिदर्शांतपक्षे चतुर्दशी न वर्ज्या ॥ पंचम्यादिदर्शांतादिपंचपक्षेषु चतुर्दशीं वर्जयित्वान्यतिथिषु महालयाः ॥ सकृन्महालयेपि चतुर्दशी वर्जनीया ॥

अब महालयको कहते हैं । तिसमें समर्थ मनुष्यको तो भाद्रपदकी कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर अमावास्या पर्यंत तिथिकी वृद्धि होजाय तो सोलह महालय और जो न वृद्धिक्षय हो तो पंद्रह महालय और जो तिथिका क्षय होजाय तो चतुर्दश महालय श्राद्ध करने । और इन सबके करनेमें असमर्थ होय तो पंचमीसे लेकर अमावास्या पर्यंत वा षष्ठी, अष्टमी, दशमी वा एकादशीसे लेकर अमावास्या पर्यंत जो तिथि हैं उनमें महालयोंको करै, और जो इतने भी करनेको असमर्थ होय तो जो निषिद्ध न होय ऐसे किसी एक दिनमें एकबार महालयको करले । प्रतिपदासे लेकर अमावास्या पर्यंत इस पक्षमें चतुर्दशी वर्जित नहींहै । पंचमीसे लेकर अमावस पर्यंत इत्यादि पांच पक्षोंमें तो चतुर्दशीको छोडकर अन्य तिथियोंमें महालय करने सकृन्महालयमें भी चतुर्दशी वर्जदेनी ॥

अथ सकृन्महालये वर्ज्यम् ।

सकृन्महालये प्रतिपत् षष्ठ्येकादशी चतुर्दशी शुक्रवारो जन्मनक्षत्रं जन्मनक्षत्राद्दशममेकोनविंशं नक्षत्रं च रोहिणी मघा रेवती चेति वर्ज्यानि ॥ क्वचित्त्रयोदशी सप्तमी रविवारो भौमवारेपि वर्ज्य उक्तः ॥

क्योंकि यह वचन है कि, महालयमें चतुर्दशी वर्जने योग्य है । सकृन्महालयके लिये प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, चतुर्दशी शुक्रवार और जन्मनक्षत्र और जन्मनक्षत्रमें दशमें और इक्कीसमें नक्षत्र तथा रोहिणी, मघा, रेवती ये वर्जित हैं कहीं सप्तमी, त्रयोदशी, रविवार और सोमवार भी वर्जित कहा है ॥

अथ मृततिथौ सकृन्महालयः ।

पितृमृततिथौ सकृन्महालयकरणे नंदादिनिषेधो नास्ति ॥ "अशक्तः पितृपक्षे

तु करोत्येकादिने यतः॥निषिद्धेपि दिने कुर्यात्पिडदानं यथाविधि'' इति वचनात् ॥ मृततिथौ श्राद्धासंभवे निषिद्धतिथ्यादिदिनं वर्जयित्वा महालयः ॥ तत्रापि द्वादश्यमावास्याष्टमीभरणीव्यतीपातेषु मृततिथ्यभावेपि सकृन्महालये कोपि तिथ्यादिनिषेधो नास्ति ॥

पिताके मरणदिनकी तिथिमें जो सकृन्महालय किया जाय तो नन्दा आदिका निषेध नहीं है क्योंकि, यह वचन है कि, जो असमर्थ मनुष्य पितृपक्षमें एकदिन महालयका करना चाहै वह मनुष्य निषिद्ध दिन भी पिंडदानको यथाविधि करै। जो मरणतिथिमें श्राद्ध न होसके तो निषिद्ध तिथि आदिको छोड करके महालयको करै। और जो उसमें भी द्वादशी, अमावस्या, अष्टमी, भरणी, व्यतीपात उनमें सकृन्महालयके करनेमें मरणतिथिके न होनेपरभी कोई तिथि आदिका निषेध नहीं ॥

अथ संन्यासिनां महालयः ।

संन्यासिनां महालयस्त्वपराह्णव्यापिन्यां द्वादश्यामेव सपिंडकः कार्यो नान्यतिथौ ॥

संन्यासियोंका महालय तो अपराह्णव्यापिनी द्वादशीमेंही सपिंडक (पिंडसहित) करना अन्य तिथिमें नहीं ॥

अथ चतुर्दशीपौर्णमासीमृतस्य महालयनिर्णयः ।

चतुर्दश्यां मृतस्यापि महालयश्चतुर्दश्यां न भवति ॥ "श्राद्धं शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां प्रकीर्तितम्'' इति नियमेन सर्वतो बलिष्ठेन प्रतिवार्षिकश्राद्धातिरिक्तश्राद्धस्य चतुर्दश्यां निषेधात् ॥ एवं पौर्णमासीमृतस्यापि महालयः पौर्णमास्यां कार्यः ॥ अपरपक्षत्वाभावेन तस्यां महालयाप्राप्तेः तेन चतुर्दशीमृतस्य पौर्णमासी मृतस्य वा महालयो द्वादश्यमावास्यादितिथिषु कार्यः ॥

चतुर्दशीमें मरेहुएकाभी महालय चतुर्दशीमें नहीं होता क्योंकि, शस्त्रसे नष्टहुएकाही श्राद्ध चतुर्दशीमें कहा है। इस सबसे बलिष्ठ नियमने प्रतिवार्षिक श्राद्धसे अतिरिक्त श्राद्धका चतुर्दशीमें निषेध किया है। इसीप्रकार जो पूर्णमासीमें मराहो उसका भी महालय पूर्णिमामें न करना, क्योंकि वह कृष्णपक्षमें नहीं है इससे उसमें महालयकी प्राप्ति नहीं। इस कारणसे जो चतुर्दशी वा पूर्णिमामें मराहो उसका महालय द्वादशी वा अमावास्या आदि तिथियोंमें करना ॥

अथ महालयगौणकालः ।

अथ कन्यार्कः प्राशस्त्यसंपादको न तु निमित्तम् ॥ "आदौ मध्येवसाने वा यत्र कन्यां व्रजेद्रविः॥ स पक्षः सकलः श्रेष्ठः श्राद्धषोडशकं प्रति'' इत्यादिस्मृतेः ॥ अमावास्यापर्यंतं तिथ्यावसंभवे आश्विनशुक्लपंचमीपर्यंतं यस्मिन्कस्मिंश्चित्तिथौ महालयः ॥ तत्रासंभवे यावद्वृश्चिकदर्शनं व्यतीपातद्वादश्यादिपर्वणि कार्यः ॥

इसमहालयके विषै कन्याका सूर्य केवल प्रशंसाका संपादक है कुछ निमित्त नहीं है, क्या-

कि, इत्यादि स्मृतिके वचन हैं, कि, जिस पक्षके आदि, मध्य वा अंतमें सूर्य कन्याराशिपर गमन करै वह पक्ष सोलह श्राद्धोंके प्रति संपूर्ण श्रेष्ठ है। जो अमावस्यापर्यंत तिथियोंमें न होसके तो आश्विनके शुक्लपक्षकी पंचमी पर्यंत जिस किसी तिथिमें महालयको करै। जो इस पंचमीतकभी न होसकै तो, जबतक वृश्चिकपर सूर्य आवै तबतक व्यतीपात द्वादशी आदि पर्वमें करै॥

अथेदमन्नेनैव।

मृताहे महालये च श्राद्धं पक्वान्नेनैव कार्यं नत्वामान्नादिना॥

मरणदिनमें महालय होय तो उसमें श्राद्ध पक्वअन्नसे करै आमान्नसे नहीं॥

अथ पिंडदानं कार्यम्।

"महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोर्मृतेहनि॥ कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिंडदानं यथाविधि॥

क्योंकि यह वचन है कि महालय, गयाश्राद्ध और माता पिताका मरणदिन इनमें विवाह कोभी करके विधिपूर्वक पिंडदान करै।

अथ महालये देवतापरिगणनम्।

पक्षश्राद्धे पित्रादिपार्वणत्रयपत्न्याद्येकोद्दिष्टपितृगणसहितसर्वपित्रुद्देशेन सपत्नीकपित्रादित्रयसपत्नीकमातामहादित्रयेतिषड्दैवतमात्रोद्देशेन वा षड्दैवतैकोद्दिष्टगणोद्देशेन वा प्रत्यहं महालय इति पक्षत्रयम्॥ एवं पंचम्यादिपक्षेष्वपि॥ सकृन्महालये तु सर्वपित्रुद्देशेनैव॥ तत्र देवतासंकल्पः॥ पितृपितामहप्रपितामहानां मातृतत्सपत्नीपितामहीतत्सपत्नीप्रपितामहीतत्सपत्नीनाम्॥ यद्वाऽस्मत्सापत्नमातुरिति पृथगुद्देशः॥ मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां सपत्नीकानां यथानामगोत्राणां वस्वादिरूपाणां पार्वणविधिना पत्न्याः पुत्रस्य कन्यकायाः पितृव्यस्य मातुलस्य भ्रातुः पितृष्वसुर्मातृष्वसुरात्मभगिन्याः पितृव्यपुत्रस्य जामातुर्भागिनेयस्य श्वशुरस्य श्वश्वा आचार्यस्योपाध्यायस्य गुरोः सख्युः शिष्यस्यैतेषां यथानामगोत्ररूपाणां पुरुषविषये सपत्नीकानां स्त्रीविषये सभर्तृकसापत्यानामेकोद्दिष्टविधिना महालयापरपक्षश्राद्धमथवा सकृन्महालयापरपक्षश्राद्धं सदैवं सद्यः करिष्ये इति॥ एतेषां मध्ये ये केचिज्जीवंति तान्विहायेतरेषामुद्देशः॥ मातामहादिषु पत्न्या जीवने सपत्नीकेत्यस्य स्त्रीषु भर्त्रादेरनुच्चारः॥ "महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च॥ नवदैवतमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः॥ अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरे तथा॥ महालये गयायां च सपिंडीकरणात्पुरा॥ मातुः श्राद्धं पृथक्कार्यमन्यत्र पतिना सह"॥ इत्यादिस्मृत्यनुसारात्पार्वणत्रयमेवोक्तम्॥ केचित्तु मातामह्यादित्रयं पृथगुच्चार्य द्वादशदेवताकं पार्वणचतुष्टयमाहुः॥

एता एव देवता गयायां तीर्थश्राद्धे नित्यतर्पणे च ज्ञेयाः ॥ महालये धूरिलोचनसंज्ञका विश्वेदेवाः ॥

पक्षपर्यंत महालय करे इस पक्षश्राद्धमें तीन पक्षहैं कि (१) पिता आदि तीन पत्नी आदि तथा एकोद्दिष्टके पितृगण सहित सब पितरोंके उद्देशसे (२) अथवा सपत्नीक पिता आदि तीन और सपत्नीक मातामह आदि तीन इन छः मातृके उद्देशसे (३) अथवा ये छः और एकोद्दिष्टके पितृगण इनके उद्देशसे प्रतिदिन महालय श्राद्धको करै। इसी प्रकार पंचमी आदिमें महालयके विषै ये तीन पक्ष समझने । और सकृन्महालय पक्षमें तो सब पितरोंके उद्देशसे महालय करना, तिसमें देवताओंका संकल्प इस प्रकार है कि पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, माताकी सपत्नी (सौत) पितामही इसकी सपत्नी प्रपितामही और इसकी सपत्नी अथवा माता, पितामही, प्रपितामही इनका उच्चारण करके फिर अस्मत् (हमारी) सापत्नमाता इत्यादि इस प्रकार सपत्नीओंका पृथक् उच्चारण करै । तथा मातामह, मातृपितामह, मातृप्रपितामह पत्नियोंसहित और नाम गोत्रसहित वसु आदित्य आदि जिनका स्वरूपहै ऐसे इन पूर्वोक्तोंका पार्वण विधिसे और पत्नी, पुत्र, कन्या, पितृव्य, मातुल, भ्राता, पितृष्वसा, मातृष्वसा, आत्मभगिनी, पितृव्यपुत्र, जामाता, भागिनेय, श्वशुर, श्वश्रू, आचार्य, उपाध्याय, गुरु, सखा और शिष्य यथानाम गोत्रसे इनका एकोद्दिष्ट विधिसे महालयापरपक्ष श्राद्धको अथवा सकृन्महालय श्राद्धको आज करताहूं इन पत्नी आदिमें स्त्रियोंके विषै सभर्तृसापत्या तो (पतिपुत्रों सहितोंका) और पुरुषोंके विषै सपत्नीकानां (पत्नीसहितोंका) ऐसा उच्चारण करना चाहिये । इनमें भी जो कोई जीते हों उनको छोडकर अन्योंका उद्देश है । मातामह आदिओंके विषै जो पत्नी जीती होय तो 'सपत्नीकानां' इसका और स्त्रियोंके विषै पतिआदि जीते होंय तो'सभर्तृसापत्यानां'इसका उच्चार न करै । महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध, अन्वष्टका इनमें नौ ९ देवता होते हैं और शेष श्राद्धोंमें छः होते हैं । अन्वष्टका, वृद्धि, प्रतिवार्षिक, महालय और गया इनमें सपिंडीकरणसे पूर्व तो माताका पृथक् श्राद्ध करना और अन्यत्र पतिके साथ करना इत्यादि कहे हुए स्मृतियोंके वचनोंके अनुसार तीनही प्रकारके पार्वण श्राद्ध कहे हैं । और कोई तो मातामही आदि तीनोंका पृथक् उच्चारण करके द्वादश देवतावाले चार पार्वण करते हैं येही देवता गयाश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध और नित्यतर्पणके विषै भी समझने । महालयमें धूरिलोचन संज्ञक विश्वेदेव होते हैं ॥

अथात्र ब्राह्मणविभागः ।

अत्र सति विभवे देवार्थं द्वौ विप्रौ पार्वणत्रयार्थं प्रतिपार्वणं त्रीनित्येवं नव पत्न्याद्येकोद्दिष्टगणे प्रतिदेवतमेकैकमेव विप्रान्निमंत्रयेत् ॥ अशक्तौ देवार्थमेकं प्रतिपार्वणमेकमिति पार्वणत्रये त्रीन्सर्वैकोद्दिष्टगणार्थमेकमिति निमंत्रयेत् ॥ देवार्थं विप्रद्वयपक्षे प्रतिपार्वणे त्रय एव कार्याः ॥ न तु देवार्थं द्वौ प्रतिपार्वणमेक इति वा प्रतिपार्वणं त्रीन्देवार्थमेक इति वा वैषम्यं कार्यम् ॥ एवं सर्वत्रामावास्यादिश्राद्धेष्वपि ज्ञेयम् ॥ अल्पशक्तौ पार्वणद्वयार्थमेकोपि कार्यः ॥

अब इसमें ब्राह्मणोंके विभागका निर्णय कहते हैं। जो विभव बहुत होय तो देवोंके निमित्त दो ब्राह्मण और तीन पार्वणोंके लिये प्रति पार्वणमें तीन २ इस प्रकार नौ ब्राह्मण और पत्नीआदि एकोद्दिष्टके विषै पुरुषके लिये एक २ इस संख्याकरके ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे। और जो सामर्थ्य न होय तो देवोंके निमित्त एक ब्राह्मण और प्रतिपार्वण के विषै एक २ इसप्रकार तीन और संपूर्ण एकोद्दिष्ट गणके लिये एक इसप्रकार विचार करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे। और देवोंके लिये दो 'ब्राह्मणान्' इसपक्षमें प्रतिपार्वण तीन तीनही ब्राह्मण निमंत्रित करने। अर्थात् यह विषमता नहीं करनी कि, देवोंके लिये दो और पार्वण २ में एक अथवा प्रतिपार्वणमें तीन २ और देवताओंके लिये एक ब्राह्मण करना। इसीप्रकार संपूर्ण अमावस्या आदि श्राद्धोंके विषयभी समझना। और जो अत्यन्त ही असामर्थ्य होय तो दो पार्वणोंके लिये एक भी करना ॥

अथ महालये महाविष्णुः ।

महालये अंते महाविष्ण्वर्थं विप्रोवश्यं निमंत्रितव्य इति विशेषः कौस्तुभे ॥

अब महालयमें महाविष्णुको कहते हैं। महालयके अन्तमें महाविष्णुके लिये एक ब्राह्मणको अवश्य निमंत्रित करना चाहिये। यह महालयका श्राद्धप्रकरण हुआ शेषनिर्णय कौस्तुभग्रंथमें देखना ॥

अथ सापत्नमातुः ।

जीवन्मातृकः सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं कुर्यान्न पार्वणम् ॥ अनेकाः सापत्नमातरो यस्य तेन सर्वमातृद्देशेनैक एव विप्रः पिंडश्च कार्योर्घ्यपात्रं पृथक् ॥ स्वजनन्या सहानेकमातृत्वे स्वजनन्या सह सर्वमात्रर्थमेकोपि विप्रः पिंडोर्घ्यश्चेति पार्वणमेव न पृथक् सापत्नमात्रेकोद्दिष्टमिति वा ॥ सर्वसापत्नमातॄणां पृथगेवैकोद्दिष्टमिति वा पक्षः ॥

अब सापत्नमाताके विषै कहते हैं। जिनकी माता जीती हो वह अपनी सापत्न माता (सौती) का एकोद्दिष्ट करैं पार्वण न करैं। जिसकी सापत्नमाता अनेक हों उस मनुष्यको सब माताओंके लिये ब्राह्मण और पिंड एकही करना चाहिये और अर्घ्यपात्र पृथक् २ करने चाहिये। और जो सापत्नमाताओंको अनेकमातृत्व (अनेक सपत्नी माता) अपनी माताकी अपेक्षासे होय तो अपनी माता सहित सबमाताओंके लिये एकही ब्राह्मण, पिंड और अर्घ्य देना चाहिये। इसप्रकार पार्वण करना चाहिये। सब माताओंकेलिये पृथक् २ एकोद्दिष्ट नहीं अथवा वह पक्षहै कि, संपूर्ण सापत्नमाताओंका पृथक् २ ही एकोद्दिष्ट करना ॥

अथाग्नौकरणबर्हिनिर्णयः ।

महालये पार्वणार्थेऽग्नौकरणमेकोद्दिष्टगणार्थं त्वग्नौकरणं कृताकृतम् ॥ करणपक्षे एकोद्दिष्टगणार्थमग्नौकरणान्नं पृथक्पात्रे ग्राह्यम् ॥ महालये सर्वपार्वणार्थमेकोद्दिष्टार्थं च सकृदाच्छिन्नं बर्हिरेकमेव ॥ दर्शादौ तु प्रतिपार्वणं बर्हिर्भिन्नमेव ॥ अवशिष्टश्राद्धप्रयोगोनेकमातृत्वेऽभ्यंजनादिमंत्रोहश्च श्राद्धसागरे स्वस्वशाखोक्तप्रयोगग्रंथेषु च ज्ञेयः ॥

अब अग्नौकरण और बर्हिका निर्णय करतेहैं।महालयके विषै पार्वणकेलिये अग्नौकरण अवश्य करना। और एकोद्दिष्टगणके लिये तो करना भी, नहीं भी करना। करणपक्षमें एकोद्दिष्टके पितरोंके लिये अग्नौकरणका अन्न किसी पृथक् पात्रमें रखना चाहिये। महालयके विषै सब पार्वण और एकोद्दिष्टके पितरोंके लिये एकबार छेदन कीहुई बर्हि एकही होती है। दर्शआदिके श्राद्धके विषै तो पार्वणपार्वणकी बर्हि भिन्नभिन्न होती हैं। अवशिष्ट श्राद्धका प्रयोग अर्थात् अनेक माताओंके होनेपर अभ्यंजन आदि मन्त्रका ऊह श्राद्धसागर तथा अपनी २ शाखामें कहे प्रयोगके ग्रंथोंमेंसे समझना ॥

अथ परेहनि तर्पणादि।

सकृन्महालये श्राद्धांगं तिलतर्पणं परेहन्येव सर्वपित्रुद्देशेन प्रातःसंध्यायाः पूर्वमेव प्रातःसंध्योत्तरं वा ब्रह्मयज्ञांगतर्पणाद्भिन्नमेव कार्यम् ॥ प्रतिपदादिपंचम्यादिपक्षेषु विप्रविसर्जनांते एव श्राद्धपूजितपित्रुद्देशेन तर्पणं कार्यम् ॥

सकृन्महालय श्राद्धका अङ्ग जो तिलतर्पण है वह दूसरेही दिन कियाजाता है, सो सब पितरोंके उद्देशसे प्रातःकालकी सन्ध्यासे पूर्व वा पीछे ब्रह्मयज्ञके अङ्गरूप तर्पणसे पृथक्ही करना। और प्रतिपदा आदि तथा पंचमी आदि पक्षोंमें तो ब्राह्मणके विसर्जनके अन्तमें श्राद्धमें पूजेहुये पितरोंके उद्देशसे तर्पण करना ॥

अथ महालये पत्न्यां रजसि।

पत्न्यां रजस्वलायां सकृन्महालयो न कार्यः कालांतराणां सत्त्वात् ॥ अमायां रजोदोषे आश्विनशुक्लपंचमीपर्यंतं गौणकाले महालयः ॥ प्रतिपदादिष्वन्येषु पक्षेषु प्रारंभदिने पाकात्पूर्वं पत्नी रजस्वला चेदुत्तरोत्तरपक्षस्वीकारः ॥ पाकारंभोत्तरं चेत्तां गृहांतरे अवरुध्य महालयः कर्तव्यः ॥ एवं विधवाकर्तृकश्राद्धेपि ज्ञेयम् ॥

अब जो महालयके विषै स्त्री रजस्वला होजाय तो उसमें महालयका निर्णय करते हैं। स्त्री रजस्वला होजाय तो सकृन्महालय न करना क्योंकि, उसको अन्य भी काल है इससे यह व्यवस्था है कि, जो अमावस्यामें रजोदर्शन होय तो आश्विनकी शुक्ल पंचमी जो गौणकाल है उसमें महालयको करै। और प्रतिपदा आदि जो अन्यपक्ष हैं उनमें जो आरम्भके दिन पाकसे पूर्व स्त्री रजस्वला होजाय तो उत्तरोत्तर (परलापरला) पक्षको ग्रहण करै, अर्थात् प्रथममें होजाय तो दूसरेमें महालयको करै इत्यादि। और पाक किये पीछे रजस्वला होजाय तो उस स्त्रीको किसी अन्यग्रहके विषै बन्दकरके महालयको करै। इसीप्रकार विधवाकर्तृक श्राद्धमें भी समझना ॥

अथ पक्षव्यापिश्राद्धे सूतकप्राप्तौ कृत्यनिर्णयो वक्ष्यते।

भ्रात्रादिमहालयश्च तत्रैवोत्तरार्धे ज्ञेयः ॥ अत्रापुत्रविधवा मम भर्तृतत्पितृपितामहानां भर्तुर्मातृपितामहीप्रपितामहीनां मम पितृपितामहप्रपितामहानां मम मातृपितामहीप्रपितामहीनां मम मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां मम मातामहीमातृपितामहीमातृप्रपितामहीनां तृप्त्यर्थं सकृन्महालयापरपक्षश्राद्धं

करिष्ये इति स्वयं संकल्प्य ब्राह्मणद्वाराग्नौकरणादिसहितं सर्वमविकृतं प्रयोगं कारयेत् ॥ ब्राह्मणस्त्वमुकनाम्न्या यजमान्या भर्तृतत्पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य प्रयोगं कुर्यात् ॥ अशक्तौ भर्त्रादित्रयं स्वपित्रादित्रयं स्वमात्रादित्रयं स्वमातामहादित्रयं सपत्नीकमिति पार्वणचतुष्टयोद्देशेन महालयः ॥ अत्यशक्तौ स्वभर्त्रादित्रयं स्वपित्रादित्रयं चेति पार्वणद्वयमेव कार्यम् ॥

पक्षव्यापी जो श्राद्धहै उसमें सूतक होजाय तो उसका निर्णय आगे कहेंगे । भ्राता आदिकाभी महालय उसी जगह उत्तरार्धमें समझना । अब विधवाको कर्तव्य महालयको कहते हैं। इस महालयश्राद्धके विषै पुत्ररहित विधवा स्त्री इस प्रकार स्वयं संकल्पको करै कि, मेरा भर्ता और उसका पिता पितामह, भर्ताकी माता और उसकी पितामही प्रपितामही, मेरा पिता और पितामह प्रपितामह, मेरी माता पितामही प्रपितामही, मेरा मातामह मेरी माताका पितामह प्रपितामह, मेरी मातामही मातृपितामही मातृप्रपितामही इनकी तृप्तिके लिये मैं सकृन्महालयापरपक्ष श्राद्धको करती हूं । फिर ब्राह्मणके द्वारा अग्नौकरण आदिसहित समस्त अविकृत (यथार्थ) कर्मको करावै । ब्राह्मण तो अमुकनामवाली यजमानीका भर्ता और उसके पिता पितामह इत्यादि पूर्वोक्तको उच्चारण करके प्रयोगको करै । जो सामर्थ्य न होय तो भर्ताआदि तीन, अपने पिताआदि तीन, अपनी माताआदि तीन, अपने मातामहआदि तीन इन सपत्नीक चार पार्वणोंके उद्देशसेही महालयको करै । और जो अत्यन्त असामर्थ्य होय तो अपने भर्ताआदि तीन और अपने पिताआदि तीन इन दो पार्वणोंके उद्देशसेही महालयको करना ॥

पितरि संन्यस्ते जीवति विचारः ।

महालयः पितरि संन्यस्ते पातित्यादियुते वा जीवत्पितृकेणापि पुत्रेण पितुः पित्रादिसर्वपित्रुद्देशेन पिंडदानरहितः सांकल्पविधिना कार्यः ॥ "वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति ॥ येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः ॥ मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ॥ न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च" इत्यादिवचनात् ॥ पिंडदानादिविस्तरं कर्तुमशक्तेनापि सांकल्पविधिः कार्यः ॥

अब जो पिता संन्यासी हो वा पतित आदि होय तो जीवत्पितृकभी पुत्र पिताआदि सब पितरोंके उद्देशसे पिंडदानरहित संकल्पकी विधिसे महालयको करै क्योंकि, यह वचन है कि ...ाको संन्यासी वा पतित होनेपर वृद्धिश्राद्ध और तीर्थके विषै श्राद्ध आदि जिनके लिये ...दे उनके लिये पुत्र स्वयं दे, मुण्डन, पिंडदान, प्रेतकर्म इनको जीवत्पितृक और गर्भिणीका ...ति न करै पिंडदानआदि विस्तार करनेको जो असमर्थहो वहभी संकल्पकी विधिको करै ॥

अथ गर्भिणीपतिजीवत्पितृकयोरशक्तस्य सांकल्पिकविधिः ।

सांकल्पिकविधावर्घ्यदानं १ समंत्रकावाहनं २ अग्नौकरणं ३ पिंडदानं ४ विकिरदानं ५ स्वधां वाचयिष्ये ६ ॥ ॐ स्वधोच्यतामित्यादिस्वधावाचनप्रयोगं च वर्जयेत् ॥

अब गर्भिणीका पति, जीवत्पितृक और अशक्त मनुष्यके लिये संकल्प विधिको कहते हैं। संकल्प विधिके विषयमें अर्घ्यदान, मन्त्रपूर्वक आवाहन, अग्नौकरण, पिंडदान और विकिरदान और 'स्वधां वाचयिष्ये ॐस्वधोच्यताम्' इत्यादि स्वधावाचन प्रयोगको वर्जदे ॥

अनेकब्राह्मणालाभे ।

अनेकब्राह्मणालाभे देवस्थाने शालग्रामादिदेवमूर्तिं संस्थाप्य श्राद्धं कार्यम् ॥ सर्वथा विप्रालाभे दर्भबटुविधिना श्राद्धम् ॥

जो अनेक ब्राह्मण न मिलैं तो देवस्थानके विषै शालिग्राम आदि देवकी मूर्तिको संस्थापन करके श्राद्ध करना । जो सर्वथा ब्राह्मण न मिले तो दर्भका बटु बनाकर उसकी विधिसे श्राद्ध करै ॥

अथ प्रथमाब्दे महालयः ।

पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे महालयः कृताकृतः ॥ महालयो मलमासे न कार्यः ॥

अब प्रथम महालयको कहते हैं। पिता आदिके मरनेपर प्रथम वर्षमें महालयको करैभी नहींभी करै । महालयश्राद्ध मलमासमें नहीं करना ॥

अथापरपक्षे वार्षिकप्राप्तौ ।

अपरपक्षे प्रतिवार्षिकप्राप्तौ मृततिथौ वार्षिकं कृत्वा तिथ्यंतरे सकृन्महालयः कार्यः ॥ प्रतिपदादिदर्शातादिपक्षेषु मृततिथौ वार्षिकं कृत्वा पाकांतरेण महालयः ॥

जो अपरपक्ष (महालयका पक्ष) में पिता आदिका वार्षिक वा प्रतिवार्षिक श्राद्ध आनपडै तो मरणदिनकी तिथिके विषै उस वार्षिक श्राद्धको करके अन्य किसी तिथिके विषयमें सकृन्महालयको करना, प्रतिपदा आदि दर्शांतमहालय करना इत्यादि पक्ष हैं, तब तो मरणतिथिके दिन वार्षिक श्राद्धको करके फिर अन्यपाकसे महालयको करै ॥

अथ दर्शे महालयवार्षिकयोः प्राप्तौ ।

अमायां प्रतिवार्षिकसकृन्महालयप्राप्तौ पूर्व वार्षिकं ततो महालयस्ततो दर्शश्राद्धमिति त्रयं पाकभेदेन ॥ महालयमात्रप्राप्तावपि पूर्व महालयस्ततो दर्शः ॥

अब जो अमावास्याके दिन महालयके विषै वार्षिक श्राद्धकी प्राप्ति होय अथवा अमावास्या के दिन प्रतिवार्षिक और सकृन्महालयकी प्राप्ति होय तो पूर्व वार्षिकको करले, उसके अनन्तर महालय और फिर दर्श (अमावस) श्राद्धको करै । ये तीनों श्राद्ध भिन्न २ पाकसे करने । अब जो दर्शमें महालय प्राप्तिहो वा महालयमें दर्शकी प्राप्ति हो तो पूर्व महालयको करके फिर दर्शको करै ॥

अथ सकृन्महालये मृततिथिनिर्णयः ।

मृततिथौ सकृन्महालयपक्षे तत्तिथेर्ग्राह्यत्वनिर्णयोपराह्णव्याप्त्या दर्शवदिति भाति ॥

अब सकृन्महालयके विषे मृत (मरनेकी) तिथिका निर्णय कहतेहैं । मरण तिथिके दिन सकृन्महालय करना इस पक्षमें उस तिथिके ग्राह्यत्व (मानने) का निर्णय तिथिकी अपराह्णव्याप्तिसे दर्शके समान समझना, अर्थात् जो मरणतिथि अपराह्ण व्यापिनी हो उसमें महालय करनेका है ॥

अथ भरणीश्राद्धनिर्णयः ।

अत्रापरपक्षे भरणीश्राद्धाद्गयाश्राद्धफलप्राप्तिः ॥ भरणीश्राद्धमपिंडकं षड्दैवतं सांकल्पविधिना कार्यम् ॥ देवा धूरिलोचनौ पुरूरवार्द्रवौ वा भरणीश्राद्धं काम्यं गयाश्राद्धफलकामेन प्रतिवर्षं कार्यम् ॥ केचित्पित्रादिमरणोत्तरं प्रथमवर्षे एव कुर्वंति ॥ द्वितीयादिवर्षे न कुर्वंति तत्र मूलं चिंत्यम् ॥ मम तु "न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः" इत्यादिवचनेन सर्वस्यापि दर्शादिश्राद्धस्य प्रथमाब्दे निषेधाद्वर्षांते एव पितृत्वप्राप्तेश्च द्वितीयादिवर्षे एव कर्तुं युक्तमिति भाति ॥ यत्तु पितृभिन्नोपि योयो म्रियते तस्यतस्य प्रथमाब्दे भरणीश्राद्धं क्रियते तत्रापि मूलं न पश्यामः ॥ गयाश्राद्धफलार्थमाचारमनुसृत्य क्रियते चेन्मृताद्येकमेव पार्वणमुद्दिश्य सदैवं कार्यम् ॥ अत्र सपिंडत्वाचारोपि चिंत्यः ॥

अब भरणी श्राद्धके निर्णयको कहते हैं । इस अपर पक्षमें भरणीश्राद्ध करनेसे गयाश्राद्धके फलकी प्राप्ति होती है । भरणीश्राद्ध पिण्डरहित छः देवताओंके उद्देशसे संकल्पकी विधिसे करना । इसमें विश्वेदेवा, धूरिलोचन वा पुरूरव, आर्द्रव समझने यह भरणीश्राद्ध काम्य है । गयाश्राद्धके फलकी कामनावाले मनुष्यने यह प्रतिवर्ष करना । कोई तो पिता आदिके मरणके अनन्तर प्रथमवर्षमेंही इस श्राद्धको करते हैं, द्वितीयवर्ष आदिमें नहीं उसमें प्रमाण चिन्त्य है, अर्थात् उसमें कोई प्रमाण नहीं । और मुझको तो यह प्रतीत होता है कि, यह श्राद्ध द्वितीय आदि वर्षमें ही करना चाहिये क्योंकि, जबतक वर्ष दिन पूर्ण न होवे तबतक न दैव श्राद्धको करै न पितृश्राद्धको करै, इस वचनसे दर्श आदि श्राद्धको प्रथमवर्षमेंही निषेध है । और वर्षके अन्तमेंही पित्र्य कर्मकी प्राप्ति है । और जो कि यह कहा है कि, पितासे भिन्न जो मरै उसका प्रथम वर्ष में भरणीश्राद्ध करना उसमेंभी कोई प्रमाण नहीं देखते । जो गयाश्राद्धके फलकी प्राप्तिके लिये शिष्टाचारके अनुसार किया जाय तो मृत (पिता आदि) आदि एकपार्वणके उद्देशसे सदैव श्राद्ध करना । इस श्राद्धमें सपिण्डत्वका आचारभी चिन्त्य है । अर्थात् यह सपिण्ड नहीं करना ॥

अथ माघ्यावर्षश्राद्धनिर्णयः ।

अत्रापरपक्षे सप्तम्यादिदिनत्रये माघ्यावर्षश्राद्धं कर्तुं पूर्वेद्युः श्राद्धं करिष्ये ॥ माघ्यावर्षश्राद्धं करिष्येऽन्वष्टक्यश्राद्धं करिष्ये इति क्रमेण संकल्पं कृत्वा सर्वोप्यष्टकाविधिराश्वलायनैः कार्यः ॥ इदमाश्वलायनानामष्टकाविकृतिरूपमेकाष्टकाकरणपक्षेपि कार्यम् ॥ इतरशाखिनां त्वष्टकारूपमेवेति पंचाष्टकाकरणपक्षेष्टकाश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य कार्यमेकाष्टकापक्षे तु न कार्यम् ॥

अब माघकी पूर्णिमातकके माध्य वर्षश्राद्धका निर्णय कहते हैं । इस अपर पक्षके विषे सप्तमी आदि तीन दिनके विषे, माध्य वर्षश्राद्धके करनेके लिये पहिले दिन श्राद्धको करूंगा, माध्यवर्षश्राद्धको करूंगा, आन्वष्टक्यश्राद्धको करताहूं इस प्रकार क्रमसे संकल्प करके संपूर्ण अष्टकाविधिको आश्वलायन करै । यह अष्टका का विकृतिरूप श्राद्ध अष्टकाके करणपक्षमेंभी आश्वालायनोंने करना । और अन्य शाखावालोंको तो यह अष्टका रूपसेही कहा पंच अष्टका करनेका जब पक्षहै तब तो यह श्राद्ध अष्टकाश्राद्धही करताहूं ऐसा संकल्प करके करना । जब एकाष्टका पक्षहै तब न करना ॥

अथान्वष्टक्यश्राद्धम् ।

नवम्यामन्वष्टक्यश्राद्धं नवदैवतं सर्वशाखिभिरष्टम्यामष्टकाश्राद्धकरणेपि गृह्याग्नौ यथोक्तविधिना कार्यम् ॥ अस्यामन्वष्टक्यस्य मुख्यत्वात् ॥ गृह्याग्निरहितैस्तु येषां पूर्वं माता मृता पश्चात्पिता मृतस्तैर्मृतमातापितृकैः पाणिहोमादिविधिना नवदैवत्यं कार्यम् ॥

अब अन्वष्टका श्राद्धको कहते हैं । नवमीके दिन आन्वष्टक्य श्राद्धके नौ देवता होते हैं, सब शाखावाले मनुष्य अष्टमीके दिन अष्टका श्राद्ध न करना इस पक्षमेंभी गृह्य अग्निके विषै यथोक्त विधिसे करैं क्योंकि, इसमें अन्वष्टक्य श्राद्ध मुख्य है, और जिनकी पूर्व माता मरीहो और पश्चात् पिता मरा हो ऐसे गृह्याग्निसे रहित मनुष्योंको तो पाणिहोम आदि विधिसे वह श्राद्ध नव देवताओंके उद्देशसे करना चाहिये ॥

अथाविधवानवमीश्राद्धम् ।

जीवत्पितृकेण मृतमातृकेणानुपनीतेनापि मात्रादित्रितयमात्रोद्देशेनैकपार्वणकं पुरूरवार्द्रवदेवसहितं सपिंडकं श्राद्धं कार्यम् ॥ स्वमातरि जीवंत्यां मृतसापत्नमात्रादित्रयोद्देशेन कार्यम् ॥ स्वमातृसापत्नमात्रोर्मृतौ द्विवचनप्रयोगेण सापत्नमात्रनेकत्वे च मात्रा सह बहुवचनप्रयोगेणैकस्मिन्विप्रे एक एव क्षणोर्घ्यः पिंडश्चैक एव देयः॥पितामहीप्रपितामह्योर्द्वौ विप्रौ पिंडौ चेत्येवं पार्वणमावश्यकम्॥केचिन्मातृबहुत्वे विप्रपिंडादिभेदमाहुः ॥ स्वमातृसापत्नमातृजीवने तु गृह्याग्निरहितेन मृतपितृकेणापि न कार्यम् ॥ अन्वष्टक्ये मातृयजनस्य मुख्यत्वादत एवात्र कैश्चिन्मातृपार्वणस्यैव प्राथम्यमुक्तमिति भाति ॥ पूर्वं पितृमृतौ पश्चान्मातृमृतावपि गृह्याग्निमतामस्यां नवम्यामन्वष्टक्यमावश्यकं नित्यत्वात् ॥ अन्येषां पश्चान्मातृमृतौ नावश्यकम् ॥ केचिन्नवम्यां पूर्वमृतमातृश्राद्धं 'मृते भर्तरि लुप्यते' इति वचनप्रामाण्यमाश्रित्य पितृमरणोत्तरं न कुर्वंति ॥ भर्तुरग्रे सह दाहेन वा मृतानां मातामहीभगिनीदुहितृमातृष्वसृपितृष्वस्रादीनामपुत्राणां पितृमात्रादिकुलोत्पन्नानां सर्वासामेव सौभाग्यवतीनामस्यां नवम्यां श्राद्धं कार्यम् ॥ भर्तुरग्रे मृतानां तत्तद्भर्तृमरणोत्तरं च न कार्यम् ॥ अत एवास्या अविधवानवमीत्वप्रसिद्धिः ॥ अतः पत्न्या अपि नवमीश्राद्धं कार्यम् ॥

अब अविधवा (सुहागिन) नवमीश्राद्धको कहते हैं-जिसका पिता जीता हो और माता मरगई हो ऐसे अनुपनीत मनुष्यकोभी, माता आदि तीनके उद्देशसे एक जिसमें पार्वण है पुरूरव, आर्द्रव जिसमें देवता हैं ऐसा यह सपिण्डक श्राद्ध करना । जो माता जीती होय तो मरी हुई सापत्न माता आदि तीनके उद्देशसे करना । और जो अपनी माता और अपना पिता ये दोनों मरगई होयँ तो द्विवचनका प्रयोग देकर और जो सापत्नमाता अनेक होयँ तो माता सहित बहुवचन प्रयोग करके एक ब्राह्मणमें एकही मुहूर्त विषे पिण्ड और अर्घ्य देना । पितामही और प्रपितामहीके दो ब्राह्मण और दो पिण्ड इसप्रकारका पार्वण अवश्य होता है, कोई तो यह कहते हैं कि, माता अनेक होंय तो भिन्न २ पिण्ड और ब्राह्मण करना । और जो अपनी माता और सापत्नमाता जीती होंय तो जिसका पिता मरगया हो ऐसा भी गृह्याग्निसे रहित मनुष्य इसको न करै । क्योंकि, इस अन्वष्टका श्राद्धमें माताका भजन (पूजा) मुख्य है । इसीसे किसी आचार्योंने इस श्राद्धमें माताका पार्वण प्रथम कहा है, यह प्रतीत होता है । और जो पिता पूर्व मरगये हों माता पीछेसे मरै तौभी गृह्याग्निवाले मनुष्य तो इस नवमीमें अन्वष्टक्य श्राद्धको अवश्य करैं । क्योंकि, यह श्राद्ध नित्य है । और जो गृह्याग्नि नहीं है उनको तो जो माता पीछे मरै तो यह श्राद्ध आवश्यक नहीं है। और कोई तो इस पूर्वमृतश्राद्ध को नवमीके दिन पिताके मरनेके अनन्तर नहीं करते हैं, क्योंकि, इस वचनकी प्रमाणता मानते हैं कि, पतिके मरनेपर श्राद्ध लुप्त होजाता है । पतिके आगे वा सह दाह (एक चितामें) से मरी हों, जिनके पुत्र न हो, मातामही, भगिनी, पुत्री, मौंसी, पितृष्वसा (बुआ) आदि जो माता पिताके कुलमें उत्पन्न हुई हैं, उन सबका इस नवमीके दिन श्राद्ध करना । (इस अविधवा नवमी श्राद्धका महालयके समान वृश्चिककी संक्रांतिपर्यंत गौण काल है) भर्ताके आगे जो मरी हों उनका अपने २ भर्ताके मरणके अनन्तर यह श्राद्ध न करना । इसीसे इस नवमीको अविधवा नवमी कहते हैं । इससे स्त्री जो मरगई होय तो उसका भी नवमीश्राद्ध करना ॥

अथास्य दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धस्य च गौणकालः ।

अस्याविधवानवमीश्राद्धस्य महालयवद्यावद्वृश्चिकदर्शनं गौणकालः ॥ एवं दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धस्यापीति कालतत्त्वविवेचने ॥

इस आविधवा नवमी श्राद्धका महालयके समान वृश्चिककी संक्रांति पर्यंत गौण काल है । इसीप्रकार दौहित्रके प्रतिपदा श्राद्धका भी काल समझना । यह कालतत्त्वविवेचनमें लिखा है ॥

अथात्र सुवासिनी ।

अत्राविधवानवमीश्राद्धे सुवासिनीनां प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धादौ च सुवासिनीभोजनमपि कार्यम् ॥ "भर्तुरग्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता ॥ तस्याः स्थाने नियुंजीत विप्रैः सह सुवासिनीम्" ॥ इत्यादि मार्कंडेयवचनात् ॥

अब इसमें सुवासिनी स्त्रियोंको कहते हैं । इस अविधवा श्राद्ध और सौभाग्यवतियोंके प्रतिवार्षिक श्राद्धमें सौभाग्यवती स्त्रियोंको भोजन कराना । क्योंकि, जो पतिके आगे वा सहदाहमें मरी हो उसके स्थानमें ब्राह्मणोंके साथ एक सौभाग्यवती स्त्रीको नियुक्त करै । इत्यादि मार्कण्डेयका वचन है ॥

अथात्र पिंडदानम् ।

अस्यां नवम्यां पिंडदानं जीवत्पितृकेणापि गर्भिणीपतिना चापि कार्यम् ॥

अब इसमें पिण्डदानको कहते हैं । इस नवमीके दिन पिण्डदान जिसका पिता जीता हो वा जो गर्भिणीका पति हो, वहभी करै ॥

अथान्वष्टक्यलोपे प्रायश्चित्तम् ।

नवमीश्राद्धासंभवे ममान्वष्टक्याकरणजनितप्रत्यवायपरिहारार्थं शतवारमेभिर्युभिः सुमना इति मंत्रजपं करिष्ये इति संकल्प्य तज्जपं कुर्यात् ॥ अन्वष्टक्ये सामवेदिभिः पितृपार्वणमेव कार्यम् ॥ मातृमातामहपार्वणे न कार्ये इति सिंधुः ॥

अब जो अन्वष्टक्य श्राद्ध न करै तो उसमें प्रायश्चित्तको कहते हैं । जो नवमी श्राद्धको न करे वह मनुष्य 'मैं अन्वष्टक्य श्राद्धके न करनेसे उत्पन्न हुए दोषकी शांतिके लिये इतने दिन 'सुमना' इस मन्त्रका सौ (१००) बार जप करूंगा, यह संकल्प करके उस मन्त्रका जप करै । अन्वष्टक्यके विषै सामवेदी पितृपार्वणकोही करै । माता और मातामह पार्वणको न करै यह निर्णयसिंधुमें कहा है ॥

अथात्र द्वादश्यां संन्यासिनां महालयः ।

स चापराह्णव्यापिन्यामित्युक्तम् ॥ तत्र वैष्णवा अपराह्णव्यापिन्या द्वादश्या एकादशीव्रतादिने सत्त्वे स्वल्पायामपि द्वादश्यां शुद्धत्रयोदश्यां वैकादशीपारणादिने एव संन्यासिदैवत्यं श्राद्धं कुर्वंति ॥ मम त्वीदृशे विषये वैष्णवैः संन्यासिमहालयो दर्शे कार्य इति भाति ॥

अब द्वादशीके दिन संन्यासीके महालयको कहते हैं । वह श्राद्ध अपराह्णव्यापिनी द्वादशीके विषै करना । जो इसमें वैष्णवोंका यह मत है कि, यदि अपराह्णव्यापिनी द्वादशी एकादशीके व्रतके दिन होय तो एकादशीके पार्वण दिनही अत्यन्त अल्पभी द्वादशी हो वा त्रयोदशी हो उसमेंही यह श्राद्ध करना । मुझको तो यह प्रतीत होता है कि, वैष्णवोंको ऐसे विषयमें संन्यासियोंका महालय अमावस्याके दिन करना युक्त है ॥

अथ मघात्रयोदशीश्राद्धम् ।

अथ त्रयोदश्यां मघायुतायां केवलायां वा श्राद्धं नित्यम् ॥ केवलमघायामपि श्राद्धं कार्यम् ॥

अब मघात्रयोदशीके श्राद्धको कहते हैं । त्रयोदशी मघायुक्त हो वा केवल हो उसमें यह श्राद्ध करना नित्य है । केवल मघाके विषै भी यह श्राद्ध करै ॥

अथात्र श्राद्धविधौ बहुग्रंथेषु बहवः पक्षाः ।

अपुत्रेण पुत्रिणा वा गृहिणा सपत्नीकपितृपार्वणमातामहपार्वणाभ्यां पितृव्यभ्रातृमातुलपितृष्वसृमातृष्वसृभगिनीश्वशुरादिपार्वणैश्च सहितमपिंडकं सांकल्पविधिना श्राद्धं कार्यम् १ ॥ अथवा पित्रादिपार्वणद्वयं महालयवत्पितृव्याद्येकोद्दिष्टग-

णांश्चोद्दिश्य सांकल्पविधिना श्राद्धं कार्यम् २ ॥ यद्वा दर्शवत् षड्दैवतं श्राद्धमपिंडकं कार्यम् ३ ॥ अथवा निष्कामेन पुत्रिणा श्राद्धविधिना श्राद्धं नानुष्ठेयं किंतु पित्रादिपार्वणद्वयं केवलपितृव्यादिसहितं वोद्दिश्यैतेषां तृप्त्यर्थं ब्राह्मणभोजनं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ पितृरूपिणे ब्राह्मणाय गंधं समर्पयामीत्येवं पंचोपचारान्समर्प्य ॥ ब्रह्मार्पणमित्यादिपठित्वानेन ब्राह्मणभोजनेन पित्रादिरूपीश्वरः प्रीयतामित्यन्नमुत्सृज्य पायसादिमधुरान्नेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा दक्षिणाभिः संतोष्य स्वयं भुंजीतेत्येतावदेव कर्तव्यम् ४ ॥ अपुत्रिणः सकामस्य च पिंडदानरहितश्राद्धविधिना श्राद्धं न दोषाय ५ ॥ क्वचिदपुत्रिणः पिंडदानमप्युक्तम् ६ ॥ एवमुक्तपक्षेष्वन्यतमपक्षेण मघात्रयोदशीश्राद्धमवश्यानुष्ठेयम् ॥ अकरणे दोषोक्तेर्नित्यत्वात् ॥

इस श्राद्धविधिके विषै बहुग्रन्थोंके विषै बहुत पक्ष कहेहैं । पुत्ररहित वा पुत्रवान् गृहस्थी सपत्नीक पितृपार्वण, मातामह तथा पितृव्य, भ्राता, मातुल, पितृष्वसा, मातृष्वसा, भगिनी तथा श्वशुर आदिकोंके पार्वण सहित और पिण्डरहित संकल्पविधिसे श्राद्धों को करै । अथवा पिता आदिके दो पार्वण तथा पितृव्य आदि एकोद्दिष्टके उद्देशसे महालयके समान संकल्पविधिसे श्राद्धको करै । अथवा छः देवताओंके उद्देशसे दर्शश्राद्धके समान पिण्डरहित श्राद्धको करै । अथवा कामनासे रहित पुत्रवान् गृहस्थी इस श्राद्ध को श्राद्धविधिसे न करै किंतु इस प्रकार करै, कि, पिता आदि दो पार्वण केवल पितृव्य आदि सहितके उद्देशसे मैं इनकी तृप्तिके लिये ब्राह्मणभोजन करताहूं, इस प्रकार संकल्प करै । फिर पितारूपी ब्राह्मणको यह गंध समर्पण करताहूं, इस प्रकार पांच उपचारोंको ब्राह्मणोंके लिये अर्पण करै । फिर 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः०' इस मंत्रको पढताहुआ इस ब्राह्मणभोजनसे पितारूपी ईश्वर प्रसन्नहो, इस वचनसे अन्नका उत्सर्जन करै, फिर पायस आदि मधुर अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणाओंसे प्रसन्न करके स्वयं भोजनको करै । और पुत्रसे रहित कामनावाले गृहस्थीको तो पिण्डसे रहित श्राद्धविधिसे श्राद्ध करनेमें दोष नहीं होता । कहीं पुत्रहीनको पिण्डदानभी कहाहै इस प्रकार कहेहुए किसी पक्षके अनुसार मघात्रयोदशी श्राद्धको अवश्य करना । क्योंकि, नहीं करनेमें दोष कहाहै इससे यह नित्य है ॥

अथ गजच्छाया ।

हस्तनक्षत्रस्थे सूर्ये मघायुता त्रयोदशी गजच्छायासंज्ञिता अस्यां श्राद्धेन फलभूयस्त्वम् ॥

अब गजच्छायाको कहतेहैं–जब हस्तनक्षत्रपर सूर्य हो तब मघायुक्त त्रयोदशीको गजच्छाया कहते हैं । इसमें श्राद्ध करनेसे महान् फलकी प्राप्ति होतीहै ॥

अथ युगादिसंपाते तंत्रादिनिर्णयः ।

अत्र महालयस्य युगादेश्च प्राप्तौ मघात्रयोदशीमहालययुगादिश्राद्धानि तंत्रेण करिष्य इति संकल्प्य तंत्रेण कुर्यात् ॥ न तु दर्शेन नित्यश्राद्धस्येव कस्यचित्प्रसंगसिद्धिः ॥ अत्रैवं भाति ॥ अंगानामैक्यं प्रधानमात्रभेदस्तंत्रम् ॥ तेन विश्वेदे-

वपाकाद्यंगानामैक्यं विप्रार्घ्यपिंडादेर्भेद एव ॥ प्रसंगसिद्धिस्थले तु प्रधानमपि न भिद्यते इति ॥ त्रयोदशीश्राद्धेऽपरपक्षत्वाद्धूरिलोचना विश्वेदेवाः श्राद्धसागरे उक्ताः ॥ अविभक्तैरपि भ्रातृभिर्मघात्रयोदशीश्राद्धं पृथक्कार्यमिति सिंधुकौस्तुभादौ विभक्तैरपि सहैवेति श्राद्धसागरे ॥

अब युग आदि तिथि इसमें आन पडै तो उसमें तंत्र आदिका निर्णय करतेहैं । इस त्रयोदशीमें महालय और युगादि श्राद्ध आन पडै तो मैं मघात्रयोदशी, महालय और युगादि श्राद्धको तंत्रसे करताहूं, इस प्रकार संकल्प करके तंत्रसे करै । और जैसे नित्य श्राद्धके प्रसंगमें दर्शश्राद्ध करतेहैं, इसप्रकार किसीकी प्रसंगसिद्धि नहीं है । यहां यह प्रतीत होताहै कि, जिसमें अंगोंकी ऐक्यता हो और प्रधानमात्रका भेद हो उसे तंत्र कहते हैं, इससे इसमें विश्वेदेवा और पाक आदि अंग एकही है । विप्रको अर्घ्य और पिण्ड आदिका भेद है और स्थल (भूमि) में तो पिण्ड आदि प्रधानकाभी भेद नहीं होता । इस त्रयोदशी श्राद्धमें अपरपक्ष होनेसे धूरिलोचनविश्वेदेवा श्राद्धसागरमें कहे हैं । सिन्धु, कौस्तुभ आदि ग्रंथमें यह लिखाहै कि, जो विभक्त (पृथक्२) न हुएहों, ऐसेभी भ्राता इस श्राद्धको पृथक् २ करैं और श्राद्धसागरमें यह लिखाहै कि, विभक्तभी साथही साथ करैं ॥

अथ शस्त्रादिहते चतुर्दशी ।

अथात्र चतुर्दश्यां पित्रादित्रयमध्ये एकस्यापि शस्त्रविषाग्निजलादिशृंगिव्याघ्रसर्पादिनिमित्तेन दुर्मरणेन मृतस्यैकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं कार्यम् ॥

अब जो शस्त्र आदिसे मरा हो उसके श्राद्धकी चतुर्दशीको कहते हैं । पिता आदि तीनोंमेंसे जो शस्त्र, विष, अग्नि, जल आदि तथा सींगवाले पशु व्याघ्र, सर्प आदिसे मरा हो उसका श्राद्ध इस भाद्रपद कृष्णचतुर्दशीको करै ॥

अथात्रैकोद्दिष्टनिर्णयः ।

पित्रादिद्वयोः शस्त्रादिहतत्वे एकोद्दिष्टे कार्ये ॥ पित्रादीनां त्रयाणां शस्त्रादिहतत्वे पार्वणमेव कार्यम् ॥ केचिदेकोद्दिष्टत्रयं कार्यमित्याहुः ॥ सह गमने प्रयागादौ च वि[illegible]भ्रान्तेऽग्निजलादिमरणे चतुर्दशीश्राद्धं न कार्यम् ॥ युद्धप्रायोपवेशनयोर्वैधत्वेपीदं कार्यम् ॥ अत्र शस्त्रादिहतपितृव्यभ्रात्रादेरप्यपुत्रस्यैकोद्दिष्टं कार्यम् ॥ इदं धूरिलोचनसंज्ञकदेवसहितं कार्यम् ॥ अत्र संबंधगोत्रनामाद्युच्चार्यामुकनिमित्तेन मृतस्य चतुर्दशीनिमित्तकोद्दिष्टं श्राद्धं सदैवं सपिंडं करिष्य इति संकल्प्य प्रत्येकोद्दिष्टमेकार्घ्यैकपवित्रमेकपिंडयुतं श्राद्धं कार्यम् ॥ पित्रादेर्भ्रात्रादेश्च शस्त्रहतत्वे पृथक्पाकादिना महालयवत्सह तंत्रेण वैकोद्दिष्टद्वयादि ॥ एवं चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं कृत्वा पित्रादिसर्वपितृगणोद्देशेन सकृन्महालयस्तिथ्यंतरेऽवश्यं कार्यः ॥

अब इसमें एकोदिष्टश्राद्धका निर्णय कहतेहैं । जो पिता आदि दो शस्त्रसे मरे हों तो उनका पृथक् २ एकोद्दिष्ट करना और जो पिता आदि तीनों शस्त्रसे मरे हों तो उनका एक पार्वणही करना । और कोई यह कहते हैं कि, तीनोंके पृथक् पृथक् तीन एकोदिष्ट करने ।

सहगमन वा प्रयाग आदिके विषे दैवयोगसे जो अग्नि, जल आदिसे मरण होजाय तो चतुर्दशी श्राद्धको न करै । और जो युद्ध और प्रायोपवेशन (मरणांत बैठना) इनमें विधिसे प्राप्तभी मरण होय तौभी यह श्राद्ध करना । इसमें शस्त्र आदिसे मरे, पितृव्य भ्राता आदि पुत्रसे हीनका भी एकोद्दिष्ट करना । यह श्राद्ध धूरिलोचन विश्वेदेवा सहित करै । इस श्राद्धमें सम्बन्ध और नामका उच्चारण करके, अमुक निमित्तसे मरेका इस चतुर्दशीको सपिण्ड सदैव एकोद्दिष्ट करताहूं, इस प्रकार संकल्प करै । फिर हर एकोद्दिष्टको एक २ अर्घ्य और पवित्रा और पिण्डसहित करै । पिता आदि और भ्राता आदि जो शस्त्रसे मरे हों उनका पृथक् पाक आदिसे महालयके समान वा तन्त्रसे दो एकोद्दिष्टोंको इस प्रकार करै कि, चतुर्दशीके दिन एकोद्दिष्टको करके अन्य तिथिको पिता आदि सब पितृगणोंके उद्देशसे महालयको अवश्य करै ॥

अथ चतुर्दश्यां वार्षिके ।

अस्यां चतुर्दश्यां यदा शस्त्रादिमृतयोर्मातापित्रोर्मृताहस्तदा चतुर्दशीनिमित्तमेकोद्दिष्टं कृत्वा पुनस्तदैव मृतादित्रयोद्देशेन सांवत्सरिकं पार्वणविधिना कार्यमिति श्राद्धसागरे ॥ कौस्तुभादौ तु सांवत्सरिकपार्वणेनैव चतुर्दशीश्राद्धसिद्धिर्न पृथक्कार्यमित्युक्तं दिनांतरे च सकृन्महालयः कार्यः ॥

अब चतुर्दशीके वार्षिकका निर्णय करते हैं । यदि शस्त्र आदिसे मरे माता पिताका मरण दिन इस चतुर्दशीमें होय तो पूर्व चतुर्दशी निमित्तक एकोद्दिष्टको करके पश्चात् उसीसमय मृतआदि तीनके उद्देशसे वार्षिक श्राद्धको पार्वण विधिसे करै, यह श्राद्धसागरमें कहा है । कौस्तुभ आदि ग्रन्थमें तो यह कहा है कि, वार्षिक पार्वणसेही चतुर्दशी श्राद्धकी सिद्धि है, उसको पृथक् नहीं करना । और अन्य दिनमें सकृन्महालय श्राद्धको करै । अब जो इस चतुर्दशीके श्राद्धमें विघ्न होजाय तो उसके विषयमें कहते हैं ॥

अथ चतुर्दशीश्राद्धविघ्ने ।

अत्र चतुर्दशीश्राद्धस्य कथंचिद्विघ्ने त्वत्रैव पक्षेऽग्रिमपक्षे वा दिनांतरे तत्पार्वणेन विधिनैव कार्यं न त्वेकोद्दिष्टम् ॥ अत्रैकोद्दिष्टेऽपराह्णव्यापिन्येव चतुर्दशी ग्राह्या न त्वितरैकोद्दिष्टतिथिवत् मध्याह्नव्यापिनीति कौस्तुभे ॥

यदि इस चतुर्दशी श्राद्धमें किसीप्रकार विघ्न होजाय तो इसको इसीपक्षमें वा अग्रिमपक्षमें पार्वण विधिसे किसी अन्य दिनके विषै करै, एकोद्दिष्टको न करै । इस एकोद्दिष्टके विषै पराह्णव्यापिनी चतुर्दशी ग्रहण करनी । अन्य एकोद्दिष्टके समान मध्याह्नव्यापिनी नहीं, यह कौस्तुभमें लिखा है ॥

अथामायां गजच्छाया ।

हस्तनक्षत्रे सूर्ये सति चांद्रहस्तनक्षत्रयुतामावास्या गजच्छाया तस्यां श्राद्धदानादि कार्यम् ॥ इत्यमायां गजच्छाया ॥

अब अमावास्याके दिन गजच्छाया कहते हैं । जब हस्तनक्षत्रपर सूर्य हो तब जो चांद्र

(रोहिणी) नक्षत्रसे युक्त अमावस्या है उसे गजच्छाया कहते हैं । उसमें श्राद्ध, दान आदि करै ।। इति अमाङ्गगजच्छाया ।।

अथ दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धम् ।

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रेणानुपनीतेनापि सपत्नीकमातामहस्य पार्वणं मातुले सत्यप्यवश्यं कार्यम् ॥ मातामहीसत्त्वे केवलमातामहपार्वणम् ॥ इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम् ॥ इदं सपिंडकमपिंडकं वा ॥ अत्र पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवाः धूरिलोचना इति केचित् ॥ इयं प्रतिपदपराह्णव्यापिनी ग्राह्येति बहवः ॥ संगवव्यापिनीति केचित् ॥ अस्य श्राद्धस्य यावद्वृश्चिकदर्शनं गौणकाल इति तत्त्वविवेचने ॥ ॥ इति महालयादिनिर्णयोद्देशः ॥

अब दौहित्रको कर्त्तव्य प्रतिपत् श्राद्धको कहते हैं । आश्विन शुक्ला प्रतिपदाके दिन अनुपनीत भी दौहित्र सपत्नीक मातामहके पार्वणश्राद्धको मातुलके विद्यमान होते भी अवश्य करै । और जो मातामही होय तो केवल मातामहकाही पार्वण करै । इस श्राद्धको जिसका पिता जीता हो ऐसाभी दौहित्र करै । यह श्राद्ध सपिण्ड वा पिण्ड रहित करना । इसमें पुरूरव आर्द्रव नामके विश्वेदेवा होते हैं और कोई धूरिलोचन विश्वदेवाओंको कहते हैं । कोई यह कहते हैं कि, यह प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी । और कोई यह कहते हैं कि, संगवकालव्यापिनी लेनी । कालतत्त्वविवेचन ग्रन्थमें यह लिखाहै कि, इस श्राद्धका वृश्चिककी संक्रांतिपर्यंत गौणकाल है । इति महालयादि श्राद्धनिर्णयोद्देशः ।।

अथ कपिलाषष्ठी ।

भाद्रपदकृष्णपक्षे भौमवारव्यतीपातरोहिणी युता षष्ठी कपिलाषष्ठी ॥ अत्र हस्तस्थे सूर्ये फलातिशयः ॥ अयं योगो दिवैव ग्राह्यो न तु रात्रौ सूर्यपर्वत्वादिति भाति ॥ " अस्यां हुतं च दत्तं च सर्वं कोटिगुणं भवेत् " ॥ अत्र श्राद्धं कार्यमिति विशेषवचनं नोपलभ्यते तथाप्युलभ्ययोगे श्राद्धविधानाद्दर्शवत्षड्दैवतं श्राद्धं कार्यम् ॥

भाद्रपदके कृष्णपक्षकी भौमवार, व्यतीपात और रोहिणी नक्षत्रसे युक्त षष्ठीको कपिलाषष्ठी कहतेहैं । जो हस्तनक्षत्रपर सूर्य होय तो इसमें दान आदि करनेसे अतिशय फल होता है, यहां यह प्रतीत होताहै कि, यह योग दिनका ग्रहण करना, रात्रिमें होय तो नहीं । क्योंकि, यह सूर्यपर्व है । इस योगसहित षष्ठीके विषै होम दानका कोटिगुणा फल होता है इत्यादि वचनोंसे श्राद्ध करना । इस श्राद्धविधिका कोई विशेष वचन नहीं मिलता तथापि योग मिलै तो इसमें श्राद्ध करना, इससे षट्दैवत श्राद्ध इसमें करना युक्त है ।।

अथात्र संक्षेपतो व्रतविधिः ।

सूर्योद्देशेनोपवासं संकल्प्य देवदारुशीरकुंकुमैलामनःशिलापद्मकाष्ठतंडुलान्मधुगव्याभ्यां लेपयित्वा क्षीरालोडितेन कल्केनांगं विलिप्य स्नायात् ॥ तत्र मन्त्रः ॥ " आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च ॥ पापं नाशय मे देव वङ्‌मनःकाय-

कर्मजम् " ॥ ततः पंचगव्येन स्नात्वा पंचपल्लवैर्मार्जयित्वा मृत्तिकास्नानं कुर्यात् ॥ तर्पणादिनित्यविधिं कृत्वा वरुणं पूजयित्वा सर्वतोभद्रमध्ये कलशोपरि तंडुलादौ पद्मं लिखित्वा तस्याष्टसु पुत्रेषु पूर्वादौ सूर्यं तपनं स्वर्णरेतसं रविमादित्यं दिवाकरं प्रभाकरं सूर्यमित्यावाह्य मध्ये सौवर्णरथे सूर्यमग्रेऽरुणं चावाह्य करवीरार्कादिपुष्पैर्धूपादिभिः संपूजयेत् ॥ दिक्पालादिदेवताः संपूज्य द्वादशार्घ्यान्सूर्याय दद्यात् ॥ सविस्तरः पूजादिविधिर्द्वादशार्घ्यमंत्राश्च कौस्तुभे ज्ञेयाः ॥ सूर्याग्रे ॥ "प्रभाकर नमस्तुभ्यं संसारान्मां समुद्धर ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदो यस्मात्तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे ॥ नमोनमस्ते वरद ऋक्सामयजुषां पते ॥ नमोस्तु विश्वरूपाय विश्वधात्रे नमोस्तु ते" इति प्रार्थ्य ॥ उदुत्यमित्यादि सौरसूक्तानि जपित्वा रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातराकृष्णेनेति मंत्रेणार्कसमिच्चर्वाज्यतिलैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं हुत्वा घंटादिसर्वालंकारयुतां कपिलां गां मंत्रैः संपूज्य विप्राय दद्यात् ॥ गोपूजामंत्राः कौस्तुभे ॥ दानमंत्रस्तु ॥ "नमस्ते कपिले देवि सर्वपापप्रणाशिनि ॥ संसारार्णवमग्नं मां गोमातस्त्रातुमर्हसि" ॥ वस्त्रयुगच्छत्रां सघंटामित्यादिविशेषणान्युक्त्वेमां गां तुभ्यमहं संप्रददे इति दत्त्वा सुवर्णदक्षिणां दद्यात् ॥ ततस्तस्मै विप्राय रथं सूर्यप्रतिमां च दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः ॥ कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यथा त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी ॥ प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव" इत्यादि ॥ ततः कपिलाप्रार्थनादिविस्तारः कौस्तुभे ॥ अथवोपोषणजागरहोमादिविधिमकृत्वा पश्चामेव स्नानरथादिपूजनकपिलादानादि कार्यम् ॥ इति संक्षेपतः कपिलाषष्ठीव्रतविधिः ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे भाद्रपदमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

अब इसमें कुछ संक्षेपसे व्रतविधिको कहतेहैं । सूर्यके उद्देशसे उपवासका संकल्प करके फिर देवदारु, उशीर, (खस) कुंकुम, एला (इलायची), मनःशिला (मनसिल), पद्मकाष्ठ और तण्डुल इनको मधुगव्यमें मिलाकर शरीरसे लेपन करै, फिर दूधमें मिलीहुई कल्क (पिट्ठी वा खत) को अंगसे लेपन करके इस मंत्रसे स्नान करै कि, हे जल ! तू देवताओंका ईश है, ज्योतियोंका पति है, हमारे वाणी, मन, शरीरसे कियेहुए, पापका नाशकर । फिर पंचगव्यसे स्नान करके पंचपल्लवोंसे मार्जन करै । फिर शरीरसे मृत्तिका लेपन करके स्नान करै । फिर तर्पण आदि नित्यविधिको करके वरुणका पूजन करके, फिर सर्वतोभद्रके मध्यमें कलशके ऊपर तण्डुल आदिसे पद्माकार मण्डलको बनाकर, उसके अष्टपत्ताओंमें पूर्व आदि दिशा क्रमसे सूर्य १, तपन २, स्वर्णरेता ३, रवि ४, आदित्य ५, दिवाकर ६, प्रभाकर ७, सूर्य ८, इनका आवाहन करके और मध्यमें सुवर्णके रथपर बैठे हुए सूर्यका और अग्रभागमें वरुणका आवाहन करके फिर करवीर (कनेर) और अर्क (आक) आदिके पुष्पोंसे तथा धूप आदिसे पूजन करै । फिर दिक्पाल आदि देवताओंको पूजकर, सूर्यके द्वादश

अर्घ्योंको दे । विस्तारपूर्वक पूजाकी विधि और द्वादश अर्घ्योंके मंत्र यह कौस्तुभ ग्रंथमें समझने । सूर्यके आगे इन मंत्रोंसे प्रार्थना करै कि, हे प्रभाकर ! आपको नमस्कार है मेरा इस संसारसे उद्धार करो । आप भोग और मोक्षके देनेवाले हो इससे मुझे शान्ति (सुख) को दो । हे वरद ! हे ऋक्, साम, यजुः इस वेदत्रयीके पति ! आपको नमस्कार है । हे विश्वरूप ! विश्वके आधाररूप ! आपको नमस्कार है । फिर 'उदुत्यं जातवेदसं०' इस सौरसूक्तको जपकर और रात्रिके विषै जागरण करके प्रातःकाल उठकर ' आकृष्णेन०' इस मंत्रसे आक, समिध, घृत और तिल इन चारोंकी पृथक् २ एकसौ आठ (१०८) आहुति दे । और घटआदि तथा समस्त आभूषणोंसे शोभित कपिला गौको मंत्रोंसे पूजकर ब्राह्मणको दे । गौकी पूजाके मंत्र कौस्तुभमें कहेहैं । दानका मंत्र यह है कि, हे कपिले देवि ! हे सब पापोंके नाश करनेवाली तुमको नमस्कारहै । हे मातः ! संसाररूपी समुद्रमें मग्नहुए मेरी रक्षा कर । फिर दोवस्त्रोंसे आच्छादित और घटसहित गौको मैं आपको देताहूं यह कहकर गौको दे । फिर सुवर्णकी दक्षिणा दे । फिर उस ब्राह्मणको रथ और सूर्यकी प्रतिमाको दे । तिसका मंत्र यह है कि, हे दिव्यमूर्तिवाले ! हे जगत्के चक्षु ! हे द्वादशस्वरूप सूर्य ! कपिला गौसहित आप मुझे मुक्तिको दे । और हे कपिले ! जैसे तू पवित्ररूप और सब लोकोंको पवित्र करनेवाली है, तिसीप्रकार सूर्यके साथ दान कीगई तूं मुझे मुक्तिके देनेवालीहो इत्यादि । इसीप्रकार कपिलाके प्रार्थनाके मंत्रोंका विस्तार, कौस्तुभग्रंथमें समझना । इसप्रकार करै अथवा उपवास, जागरण और होम आदि इनके विना कियेही षष्ठीकेही दिन स्नान और रथआदिकी पूजा तथा कपिलाआदिके दानको करै । इसप्रकार संक्षेपसे कपिलाषष्ठीके व्रतकी विधिको कहचुके ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे भाद्रपदमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

अथाश्विने तुलासंक्रांतिः ।

तुलामेषसंक्रांतिर्विषुवसंज्ञा ॥ तस्याः पूर्वाःपराः पंचदशपंचदश नाड्यः पुण्यकालः ॥ विशेष प्रागुक्त एव ॥ आश्विनशुक्लप्रतिपदि देव्या नवरात्रारंभः ॥ नवरात्रशब्द आश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य महानवमीपर्यंतं क्रियमाणकर्मनामधेयम् ॥ तत्र कर्मणि पूजैव प्रधानम् ॥ उपवासादिकं स्तोत्रजपादिकं चांगम् ॥ तथा च यथाकुलाचारमुपवासैकभक्तनक्तायाचितान्यतमव्रतयुक्तं यथाकुलाचारं सप्तशतीलक्ष्मीहृदयादिस्तोत्रजपसहितं प्रतिपदादिनवम्यंतनवतिथ्यधिकरणकपूजाख्यं कर्म नवरात्रशब्दवाच्यम् ॥ पूजाप्राधान्योक्तेरेव ॥ क्वचित्कुले जपोपवासादिनियमस्य व्यतिरेक उपलभ्यते ॥ पूजायास्तु न क्वापि कुले नवरात्रकर्मण्यभावो दृश्यते ॥ यत्कुले नवरात्रमेव नानुष्ठीयते तत्र नवरात्रपूजादेरप्यभाव आस्तां नाम ॥

अब आश्विनमासकी तुलासंक्रांतिका निर्णय कहतेहैं। तुला और मेषकी संक्रांतिको विष्णुव्रत कहतेहैं । तिसकी पहिली और पिछली पंद्रह घडी पुण्यकाल है । विशेष निर्णयको तो पूर्व कहचुके । आश्विनकी शुक्लप्रतिपदाको नवरात्रोंका आरंभ होता है । नवरात्र उसका नाम है जो आश्विनकी शुक्लप्रतिपदासे लेकर महानवमीपर्यंत कर्म कियाजाता है । तिस कर्ममें पूजाही

प्रधान है, और उपवास आदि और स्तोत्र जपआदि ये तो उस कर्मके अंग समझने । इसप्रकार नवरात्रशब्द प्रतिपदासे लेकर नवमीपर्यंत जो नौ तिथिहैं उनमें जो कियाजाताहै ऐसे इस पूजारूप कर्मका नाम हुआ । कि,जो अपने कुलाचारके अनुसार एकभक्तव्रत वा उपवासरूपव्रत वा नक्तव्रत वा अयाचितव्रत सहित हो । तथा अपने कुलाचारके अनुसार सप्तशती वा लक्ष्मीहृदय आदि स्तोत्रके जपसहित हो । और इसी पूजाकी प्रधानतासेही किसी२ कुलमें जप और उपवास आदिके नियमका तो अभाव उपलब्ध होताहै, परन्तु पूजाका अभाव किसीकुलमेंभी इस नवरात्रकर्मके मध्यमें नहीं प्रतीत होताहै । और जिसकुलमें नवरात्रकर्मके अनुष्ठानकाही अभावहै, उसकुलमें नवरात्रकी पूजाआदिकाभी जो अभावहै वह रहो अर्थात् इससे यह शंका न करनी कि, जिसप्रकार जप आदिके नियमकी उपलब्धिके अभावसे जैसे जपआदिकी अप्रधानताहै, तिसीप्रकार पूजाके नियमकाभी अभाव होनेसे इसकीभी अप्रधानता है ॥

अथ नवरात्रारंभनिर्णयः ।

स च नवरात्रारंभः सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तव्यापिन्यां प्रतिपदि कार्यः ॥ तदभावे द्विमुहूर्तव्यापिन्यामपि ॥ क्वचिन्मुहूर्तमात्रव्यापिन्यामप्युक्तः ॥ सर्वथा दर्शयुक्तप्रतिपदि न कार्य इति बहुग्रंथसंमतम् ॥ मुहूर्तन्यूनव्याप्तौ सूर्योदयास्पर्शे वा दर्शयुतापि ग्राह्या ॥ प्रथमदिने षष्टिघटिका प्रतिपद्द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयादिपरिमिता वर्तते तदा पूर्णत्वात्पूर्वैव ग्राह्या ॥ द्वितीयावेधनिषेधोप्येतत्पक्षद्वये एव योज्यः ॥ पुरुषार्थचिंतामणौ तु पूर्वदिने मुहूर्तचतुष्टयोत्तरं मुहूर्तपंचकोत्तरं वा प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयादिपरिमिता प्रतिपत् तदापरस्याः क्षयगामितया निषिद्धत्वाद्दर्शयुक्तापि पूर्वैव ग्राह्येत्युक्तम् ॥ तत्र सूर्योदयोत्तरं दशघटीमध्ये तत्रासंभवे मध्याह्नेऽभिजिन्मुहूर्ते प्रारंभः कार्यो नत्वपराह्णे ॥ एवं च प्रतिपद आद्यषोडशनाडीनिषेधश्चित्रावैधृतियोगनिषेधश्चोक्तकालानुरोधेन सति संभवे पालनीयो न तु निषेधानुरोधेन पूर्वाह्णः प्रारंभकालः प्रतिपत्तिथिर्वातिक्रमणीयः ॥ अत्र कर्मणि ब्राह्मणादिचतुर्वर्णस्य म्लेच्छादेश्चाधिकारः ॥ तत्र विप्रेण जपहोमान्नबलिनैवेद्यैः सात्विकी पूजा कार्या ॥ "नैवेद्यैश्च निरामिषैर्मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥' मद्यमपेयमदेयम्''इत्यादिनिषेधान्मांसमद्यादियुतराजसपूजायां ब्राह्मणस्य नाधिकारः ॥ मद्यपाने मरणांतप्रायश्चित्तोक्तेः ॥ स्पर्शे तदंगच्छेदोक्तेश्चाल्पप्रायश्चित्तेन दोषानपगमेन पातित्यापातात् ॥ इत्थमेव सर्वे प्राचीना नवीनाश्च निबंधकारानिर्बंधेन लिखंति ॥ नवीनतरा भास्कररायप्रभृतयोपि सप्तशतीटीकादौ प्राचीनग्रन्थाननुसृत्यैवमेव परिकुर्वंति सभायां चैतन्मतमेव श्लाघंते चाचरणं त्वन्यथा कुर्वंति तत्किं स्वयं दुर्दैववशेन ब्राह्मण्यभ्रष्टोऽभूवमन्येप्येवं माभूवन्निति भूतदयया वा स्वपातित्यगोपनाय वान्येषां कलियुगस्थविप्राणामधिकाराभावालोचनया वेति न वयं तत्त्वं जानीमः ॥ क्षत्रियवैश्ययोर्मांसादियुतज-

पहोमसहितराजसपूजायामप्यधिकारः स च केवलं काम्य एव न तु नित्यः ॥ निष्कामक्षत्रियादेः सात्त्विकपूजाकरणे मोक्षादिफलातिशयः ॥ एवं शूद्रादेरपि ॥ शूद्रादेर्मंत्रहीना जपादिरहिता मांसादिद्रव्यका तामसपूजापि विहिता ॥ शूद्रेण सप्तशत्यादिजपहोमसहिता सात्त्विकी पूजा ब्राह्मणद्वारा कार्या ॥ स्त्रीशूद्रादेः स्वतः पौराणमंत्रपाठेपि नाधिकारः ॥ अत एव " शूद्रः सुखमवाप्नुयात " इत्यत्र भाष्ये स्त्रीशूद्रयोः श्रवणादेव फलं न तु पाठादित्युक्तम् ॥ एतेन स्त्रीशूद्रयोर्गीताविष्णुसहस्रनामपाठो दोषायैवेति ज्ञेयम् ॥ क्वचित्पौराणमंत्रयुक्तपूजायां स्त्रीशूद्रयोः स्वतोप्यधिकार उक्तः ॥ जपहोमादौ विप्रद्वारैव॥ म्लेच्छादीनां तु ब्राह्मणद्वारापि जपहोमे समन्त्रपूजायां च नाधिकारः ॥ किन्तु तैस्तत्तदुपचाराणां देवीमुद्दिश्य मनसोत्सर्गमात्रं कर्तव्यम् ॥

अब नवरात्रके आरंभकालका निर्णय कहतेहैं । इस नवरात्रका आरंभ जो सूर्योदयके पीछे तीनमुहूर्त प्रतिपदा हो उसमें करना । और जो त्रिमुहूर्त न मिलै तो दोमुहूर्त हो उसमेंभी करना । किसी ग्रंथमें तो मुहूर्तमात्र जो हो उसमेंभी आरंभ कहाहै । बहुतग्रंथोंमें यह लिखाहै कि, जिसमें अमावस्याका योग हो ऐसी प्रतिपदाके दिन नवरात्रोंका आरंभ सर्वथा न करना । और जो सूर्योदयके समय मुहूर्तसे न्यून हो अथवा सूर्योदयके समय जिसका स्पर्श नहो ऐसी प्रतिपदा दर्शसे युक्त भी ग्रहण करनी । पूर्वदिन जो साठ (६०) घडीहो और दूसरे दिन दोमुहूर्त आदि हो ऐसी प्रतिपदा पूर्णताकी प्रशंसासे पहिलीही लेनी । द्वितीयाके वेधका निषेध भी इन पूर्व कहे दो पक्षोंकी व्यवस्थासेही युक्त समझना।पुरुषार्थचिंतामणिमें तो यह कहाहै कि, जो प्रतिपदा पहिलेदिन चारमुहूर्तके वा पांचमुहूर्तकेअनंतर प्रवृत्त होकर दूसरेदिन दोमुहूर्त आदि हो तब परली प्रतिपदाका क्षयमें योग होनेसे निषेधहै, इससे अमायुक्तभी पूर्वही लेनी । तिस अमावस्याके दिन (जिसमें ५ मुहूर्तसे अनंतर प्र० हो)दशघडीके मध्यमें प्रतिपदा नहीं आसक्ती इससे मध्याह्नके समय अभिजित् मुहूर्तके विषै नवरात्रका आरंभ करना अपराह्नमें नहीं । इसप्रकार प्रतिपदाकी आदिकी षोडश घडियोंका और चित्रा वैधृतिके योगका निषेध उक्तकालके अनुरोधसे जो संभव होसकै तो मानना । निषेधके अनुरोधसे प्रारंभका काल पूर्वाह्न वा प्रतिपदा तिथि इनका अतिक्रमण न करना । इसकर्ममें ब्राह्मण आदि चारवर्ण तथा म्लेच्छ आदिकाभी अधिकार है । यह पूजा ब्राह्मणको जप, होम, अन्नकी बलि और नैवेद्य इनसे सात्त्विकी करनी । मांस, मद्य आदिसे युक्त राजसी पूजाका ब्राह्मणको अधिकार नहीं है । क्योंकि, उसमें ये निषेध हैं कि, मांससे रहित नैवेद्योंसे पूजा करै । तथा ब्राह्मण मद्यको अर्पण करके पतित होजाता है । ब्राह्मण मद्यको न पीवै, न दे । तथा मद्यके पीनेमें मरणान्त प्रायश्चित्त कहा है । तथा मद्यका जिस अंगमें स्पर्श होजाय उसी अंगका छेदन (काटना) कहा है । मद्यके पीनेमें अल्प प्रायश्चित्तसे दोषका नाश होजाय उससे पातित्य दूर नहीं होता । इसीप्रकार सम्पूर्ण ग्रंथोंके करनेवाले नवीन और प्राचीन आचार्य अपने अपने ग्रंथमें लिखते हैं । और जो भास्करराय आदि अत्यंत नवीन हैं वेभी सप्तशतीकी टीका आदिमें प्राचीनोंके अनुसार इसीप्रकार विवेचना करते हैं । और जो सभाके विषै इस मतकोही श्लाघा करते हैं फिर आप अन्यथा आचरण करते हैं, उनके आशयको हम नहीं जानते ।

कि, क्या उनका यह आशय है कि, हम तो अपने दुष्ट प्रारब्धके वशसे ब्राह्मण्यसे भ्रष्ट होगये परन्तु अन्य कोई अब इसप्रकार मत हो अथवा अपने पातित्यके गुप्त रखनेके लिये करते हैं । वा कलियुगके ब्राह्मणोंको अधिकारका अभाव दिखाते हैं । अर्थात् उनके उस कपट व्यवहारकी मालूम नहीं,क्षत्रिय वैश्योंको तो मांस आदिसे युक्त जप होम सहित राजसी पूजाकाभी अधिकार है । वह केवल काम्य है, नित्य नहीं । कामनासे रहित क्षत्रिय आदि जो सात्त्विकी पूजाको करैं तो मोक्ष आदि अतिशय फलकी प्राप्ति होती है । इसीप्रकार शूद्र आदिकोभी समझना । शूद्र आदिको मंत्र और जप आदिसे रहित मांस आदि द्रव्यसे तामसी पूजा भी कही है । शूद्र सात्त्विकी पूजाको तो सप्तशतीके जप और होम आदिसे ब्राह्मणके द्वारा करवावै । क्योंकि, स्त्री शूद्र आदिको स्वतः पुण्यकेभी मंत्र पढनेमें अधिकार नहीं है, इसीसे शूद्र सुखको प्राप्त होता है, इसके भाष्यमें स्त्री और शूद्रको सुननेसे ही फल कहा है, पाठसे नहीं इससे यह बातभी समझनी कि, स्त्री और शूद्रको गीता विष्णुसहस्रनाम इनके पाठसे प्रत्युत दोषही होता है फल नहीं । कहीं पौराणिक मंत्रों सहित पूजाके विषै स्वतःभी अधिकार कहा है । जप होम आदिका अधिकार तो ब्राह्मणके द्वाराही है । म्लेच्छ आदिको तो जप, होम और मंत्रयुक्त पूजाके विषै ब्राह्मणके द्वाराभी अधिकार नहीं है, किंतु उनको तिस तिस उपचार (सामग्री) का देवीके उद्देशसे मनकेही द्वारा उत्सर्ग (दान) मात्र करना युक्तहै ॥

अथ नवरात्रेनुकल्पाः ।

तृतीयादिनवम्यंतं सप्तरात्रं वा कर्तव्यम् ॥ पंचम्यादिपश्चरात्रं वा ॥ सप्तम्यादित्रिरात्रं वा ॥ अष्टम्यादिद्विरात्रं वा ॥ एकाहपक्षे केवलाष्टम्यां केवलनवम्यां वा ॥ एषां पक्षाणां स्वस्वकुलाचारानुसारेण प्रतिबन्धादिना पूर्वपूर्वपक्षासंभवानुसारेण वा व्यवस्था ॥ तत्र तृतीयापंचम्योर्निर्णयः प्रतिपदादिवत् ॥ सप्तम्यादि निर्णयस्तु वक्ष्यते ॥ नवरात्रादिपक्षेषु क्षयवृद्धिवशेन दिनाधिक्यन्यूनत्वे पूजाद्यावृत्तिः कार्या ॥ केचित्तु दिनक्षयेष्टावेव पूजाश्चण्डीपाठांश्च कुर्वंति ॥ इदं देवीपूजनात्मकं नवरात्रं कर्म नित्यम् ॥ अकरणे दोषश्रवणात् ॥ फलश्रवणात्काम्यं च ॥ अत्र नवरात्रे घटस्थापनं प्रातर्मध्याह्ने प्रदोषकाले चेति त्रिकालं द्विकालमेककालं वा स्वस्वकुलदेवतापूजनं सप्तशत्यादिजपोऽखण्डदीप आचारप्राप्तमालाबंधनमुपवासनक्तैकभक्तादिनियमः सुवासिनीभोजनं कुमारीभोजनपूजनादि अन्ते सप्तशत्यादिस्तोत्रमन्त्रहोमादीत्येतानि विहितानि ॥ एतेषां मध्ये क्वचित्कुले घटस्थापनादीनि द्वित्रादीन्येवानुष्ठीयंते न सर्वाणि क्वचिद्घटस्थापनादिरहितानि कानिचित्क्वचित्क्वचित्सर्वाण्येवेत्येतेषां समुच्चयविकल्पौ कुलाचारानुसारेण व्यवस्थितौ ज्ञेयौ॥कुलपरंपराप्राप्तादधिकं शक्तिसत्त्वेपि नानुष्ठेयमिति शिष्टाचारः ॥ फलकामनया प्रार्थितमुपवासादिकं कुलाचाराभावेपि कुर्वंति ॥ इदं कलशस्थापनं रात्रौ न कार्यम् ॥ तत्र कलशस्थापनार्थं शुद्धमृदा वेदिकां कृत्वा पंचपल्लवदूर्वाफलतांबूलकुंकुमधूपादिसंभारान्संपादयेत् ॥

अब नवरात्रके विकल्प पक्षोंको दिखाते हैं । यह नवरात्र कर्म तृतीयासे नवमी पर्यंत सप्तरात्र वा पंचमीसे लेकर पांच रात्रि वा सप्तमीसे लेकर तीन रात्रि वा अष्टमीसे लेकर दो रात करना । और जो एकदिनही करना होय तो केवल अष्टमी वा केवल नवमीके दिन करै । इन पक्षोंकी व्यवस्था अपने कुलाचारके अनुसार वा प्रतिबंध आदिसे पूर्वपक्ष न होसकै तो परला इसप्रकार समझनी । इसमें तृतीया और पंचमीका निर्णय तो प्रतिपदा आदिके समान समझना, सप्तमी आदिके निर्णयको आगेही कहेंगे । इन नवरात्र, पंचरात्र आदि पक्षोंमें क्षय और तिथिकी वृद्धिके वशसे जो दिन अधिक वा न्यून होजाय तो पूजा आदिकी आवृत्ति (दोबार करना) करनी । और कोई तो दिनके क्षय होनेपर आठही पूजा और चंडी पाठोंको करते हैं । यह देवीपूजनरूप नवरात्रकर्म नित्य समझना क्योंकि, न करनेमें दोष सुना जाताहै और फलके सुननेसे काम्यभी समझना । अब इन नवरात्रोंमें घटका स्थापन कहते हैं । प्रातःकाल, मध्याह्न काल और प्रदोष काल इसप्रकार तीन काल वा दो काल वा एक काल अपने २ देवताका पूजन, सप्तशती आदिका जप, अखण्ड दीपज्वलन, कुलाचारके अनुसार माला बंधन, उपवास, एकभक्त, नक्तव्रत आदिका नियम सुवासिनी (सुहागिन) स्त्रियोंको भोजन तथा कन्याओंका भोजन और पूजन आदि । और अंतमें सप्तशती आदिका जप, मंत्रजप और होम आदि ये इन नवरात्रोंके विषे कहे हैं । इन्ही कर्मोंके मध्यमें किसी कुलमें दो वा तीन आदिही कर्म घटस्थापनपूर्वक कियेजाते हैं । और किसी कुलमें घटस्थापनसे रहित, और किसी कुलमें ये समस्त किये जाते हैं । इनका समुच्चय और विकल्पकी व्यवस्था कुलाचारके अनुसार समझनी । क्योंकि, यह शिष्टाचार है कि, कुलपरपरासे जो कर्म अधिक हो उसे न करै । फलकी कामनासे जो उपवासआदिका सकल्प किया होय तो उसको तो कुलाचारके न होनेपरभी करै । कलशका स्थापन रात्रिमें न करै । कलशके स्थापनके लिये शुद्ध मृत्तिकासे वेदीको बनाकर पंचपल्लव, दूर्वा, फल, तांबूल, कुंकुम, धूपआदि सामग्रीको इकट्ठी करै ।

अथ संक्षेपतो नवरात्रारंभप्रयोगः ।

प्रतिपदि प्रातः कृताभ्यंगस्नानः कुंकुमचंदनादिकृतपुंड्रो धृतपवित्रः सपत्नीको दशघटिकामध्येऽभिजिन्मुहूर्ते वा देशकालौ संकीर्त्य मम सहकुटुंबस्यामुकदेवताप्रीतिद्वारा सर्वापच्छांतिपूर्वकदीर्घायुर्धनपुत्रादिवृद्धिशत्रुजयकीर्तिलाभप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थमद्यप्रभृति महानवमीपर्यंतं प्रत्यहं त्रिकालमेककालं वामुकदेवतापूजामुपवासनक्तैकभक्तान्यतमनियमसहितमखंडदीपप्रज्वालनं कुमारीपूजनं चंडीसप्तशतीपाठं सुवासिनीभोजनमित्यादि यावत्कुलाचारप्राप्तमनूद्यैवमादिरूपं शारदीयनवरात्रोत्सवाख्यं कर्म करिष्ये ॥ देवतापूजांगत्वेन घटस्थापनं च करिष्ये ॥ तदादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं चंडीसप्तशतीजपाद्यर्थं ब्राह्मणवरणं च करिष्ये ॥ एतानि कृत्वा घटस्थापनसत्त्वे महीद्यौरिति भूमिं प्रार्थ्य स्पृष्ट्वा तस्यां भुव्यंकुरारोपणार्थं शुद्धमृदं प्रक्षिप्योषधयः समिति तस्यां मृदि यवादीन्प्रक्षिप्याकलशेष्विति कुंभं निधायेमंमे गंगे इति जलेनापूर्य गंधद्वारामिति

गंधमोषधीरिति सर्वौषधीः कांडात्कांडादिति दूर्वा अश्वत्थेव इति पंचपल्लवान्स्योनापृथिवीति मृदः याः फलिनीरिति फलं सहिरत्नानि हिरण्यरूप इति रत्नहिरण्ये प्रक्षिप्य युवासुवासा इति सूत्रेणावेष्ट्य पूर्णादर्वीति पूर्णपात्रं निधाय तत्त्वायामीति वरुणं संपूज्य तत्कलशोपरि कुलदेवताप्रतिमां संस्थाप्य पूजयेत् स्वस्थाने एव वा संस्थाप्य पूजयेत् ॥ तद्यथा ॥ "जयंती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी ॥ दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ॥ आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ॥ पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये" ॥ अनेन पुरुषसूक्तप्रथमऋग्भ्यां चावाह्य 'जयंतीमंगलाकाली' इति मंत्रेण सूक्तऋग्भिश्चासनादिषोडशोपचारैः संपूजयेत ॥ 'सर्वमंगलमांगल्ये' इत्यादिभिः संप्रार्थ्य ॥ प्रत्यहं बलिदानपक्षे माषभक्तेन कूष्मांडेन वा बलिं दद्यात् ॥ अंते एव वा बलिदानं न वा बलिदानम् ॥ ब्राह्मणः पारणादिने कूष्मांडबलिदानं कुर्यात् ॥ "कूष्मांडो बलिरूपेण मम भाग्यादवस्थितः ॥ प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥ चंडिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् ॥ चामुंडा बलिरूपाय बले तुभ्यं नमोस्तु ते" इति प्रार्थ्य ॥ "यज्ञार्थं बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञेऽवधो विधिः" ॥ ॐह्रींऐंह्रींकौशिकि कूष्मांडरसेनाप्यायताम् ॥ पादौ प्रक्षाल्याचम्य शांतापृथिवीति शांतिः शांतिः शांतिः ॥ "ततः अखंडदीपकं देव्याः प्रीतये नवरात्रकम् ॥ उज्ज्वालयेदहोरात्रमेकाचित्तो धृतव्रत" इत्यखंडदीपं प्रतिष्ठापयेत् ॥

अब संक्षेपसे नवरात्रके प्रारंभका प्रयोग कहतेहैं–प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल स्नान, कुंकुम, चंदन आदिका पुंड्र लगाकर पवित्रीको धारणकरके, पत्नीसहित दश घडियोंके मध्यमें वा अभिजित् मुहूर्त्तमें इसप्रकार देश और कालका उच्चारण करके संकल्प करै कि, अमुक (जिसकी पूजाहो वह) देवताकी प्रीतिके द्वारा कुटुंबसहित अपनी संपूर्ण आपत्तिकी शान्तिपूर्वक दीर्घ अवस्था, धनपुत्रआदिकी वृद्धि, शत्रुका पराजय, यशकी प्राप्ति और चार (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रकारके पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये आजसे लेकर नवमीपर्यंत मैं प्रतिदिन त्रिकाल वा एककाल अमुक देवताकी पूजा, उपवास, वा नक्तव्रत, वा एकभक्त इनके नियम सहित अखंड दीपकका प्रज्वालन, कुमारीपूजन, चंडीसप्तशतीपाठ, सुहागिनास्त्रियोंको भोजन इत्यादि जो जितने अपनी कुलपरंपरासे चलेआयेहों उनको कहकर, इत्येवं आदिरूप शारदीय नवरात्ररूप उत्सवको करूंगा और देवतापूजनके अंगरूप घटस्थापनको करताहूं और उसके आदिमें निर्विघ्नसिद्धिके लिये गणपतिका पूजन, पुण्याहवाचन और चंडी सप्तशतीके पाठके लिये ब्राह्मणका वरण करताहूं । फिर जब घटस्थापन होचुके उसके अनंतर 'महीद्यौः०' इसमन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करके और छूकर तिस पृथिवीमें अंकुरोंके जमानेकेलिये शुद्ध मिट्टीको बिछाकर तिस मिट्टीमें 'ओषधयः सम्०' इस मन्त्रसे जौ आदि गेरकर उसपर 'आकलशेषु०, इस मन्त्रसे घटस्थापन करै । इसमें 'इमंमेगंगे०' इसमन्त्रसे जलको भरकर 'गंधद्वारां०' इससे

गंधको और 'याओषधी:०' इससे सर्वौषधी 'काण्डात् काण्डात्०' इससे दूर्वा ' अश्वत्थे व:०' इससे पंचपल्लव 'स्योनापृथिवि०' इससे सप्तमृत्तिका 'या: फलिनी:०' इससे फल और 'सहिरत्नानि हिरण्यरूप०' इससे रत्न और सुवर्णको गेरै । फिर 'युवासुवासा:०' इसमन्त्रसे सूतको कंठसे लपेटकर उसके ऊपर ' पूर्णादर्वी०' इसमन्त्रसे पूर्णपात्रको रखकर उसमें 'तत्त्वायामि०' इसमन्त्रसे वरुणका पूजन करै । फिर उस कलशके ऊपर कुलदेवताकी प्रतिमाको स्थापन करके पूजन करै । अथवा अपने स्थानपर ही स्थापन करके पूजन करै । उस पूजाका प्रकार इस रीतिसे है कि, हे जयंती ! मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, शिवा, धात्री, स्वाहा, स्वधारूप तुझको नमस्कार है । हे वरकीदाता ! दैत्योंके मानको खण्ड करनेवाली देवी ! तू यहां आ हे सुमुखि ! पूजाको ग्रहण कर । हे शंकरकी प्यारी! तुझको नमस्कार है । इससे और पुरुषसूक्तकी पहिली दो ऋचा (सहस्रशीर्षाआदि) ओंसे आवाहन करके 'जयंतीमंगलाकाली०' इस मंत्रको पुरुष सूक्तकी ऋचाओंको पढताहुआ षोडश उपचारोंसे पूजन करै । फिर 'सर्वमङ्गलमांगल्ये०' इससे प्रार्थना करके प्रतिदिन बलिदान देनाचाहै तो उडदोंके भात, कूष्माण्ड (पेठा) से बलिको दे । अथवा अन्तमें बलिदान करै अथवा न करै । ब्राह्मण पारणाके दिन कूष्माण्डसे बलिदान करै । हे कूष्माण्ड ! तू बलिरूपसे मुझे प्राप्त हुआहै, चण्डिकाको प्रीतिके देनेसे मेरी आपत्तिके नाश करनेवाला सर्वरूपी और बलिरूपी तुझको नमस्कार करताहूं । चामुण्डाके बलिरूप तुझको नमस्कारहै । इसप्रकार प्रार्थना करके उस कूष्माण्डका फिर इस मन्त्रसे छेदन करै कि, स्वयंभू (ब्रह्मा) ने स्वयंही यज्ञके लिये बली रचाहै इससे तुझको मैं छेदन करताहूं, इससे यह छेदनविधि यज्ञके लिये है । फिर इस मन्त्रसे 'ॐह्रींक्लीं कौशिकी कूष्माण्डरसेनाप्यायतां०' बलि दे और पाओंको धो और आचमन करके 'शांतापृथिवी शान्ताद्यौ:०' इसप्रकार 'शान्ति: शान्ति: शान्ति:' इसको कहै । फिर देवीकी प्रीतिके लिये अखण्डदीपकको नवरात्रतक एकचित्त और धृतव्रत होकर अखंडदीपकको जलाताहूं इसमंत्रको पढकर अखण्डदीपककी स्थापना करै ॥

अथ चंडीपाठप्रकारः ।

यजमानेन वृतोहं चंडीसप्तशतीपाठं नारायणहृदयलक्ष्मीहृदयपाठं वा करिष्ये इत्यादि संकल्प्य ॥ आसनादि विधाय आधारे अन्यहस्तलिखितं पुस्तकं स्थापयित्वा 'नारायणं नमस्कृत्य' इति वचनात् ॥ ॐ नारायणाय नमः ॥ नराय नरोत्तमाय नमः ॥ देव्यै सरस्वत्यै नमः ॥ व्यासाय नमः ॥ इति नमस्कृत्य प्रणवमुच्चार्य सर्वपाठांते प्रणवं पठेत् ॥ पुस्तकवाचने नियमाः ॥ हस्ते पुस्तकं न धारयेत् ॥ स्वयं ब्राह्मणभिन्नेन च लिखितं विफलम् ॥ "अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन ॥ कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादि पठेत्पुनः " ॥ ग्रंथार्थं बुध्यमानः स्पष्टाक्षरं नातिशीघ्रं नातिमंदं रसभावस्वरयुतं वाचयेत् ॥

अब चण्डीके पाठका प्रकार कहते हैं । जिसे यजमानने वराहै ऐसा मैं चण्डीसप्तशतीपाठ वा नारायणहृदय वा लक्ष्मीहृदयका पाठ करताहूं । इसप्रकार संकल्प करके, आसन आदिको बिछाकर उसके ऊपर पट्टा आदि आधारको रखकर अन्यके हाथसे लिखी हुई पुस्तकको

उसके ऊपर स्थापन करके 'नारायणं नमस्कृत्य' इसमंत्रमें पढेहुए देवताओंको 'ॐनारायणाय नमः, ॐनराय नमः, ॐनरोत्तमाय नमः, ॐदेव्यै सरस्वत्यै नमः, ॐव्यासाय नमः' इसप्रकार नमस्कारको करके प्रणव(ॐ) को उच्चारण करके पाठ करै । और समस्त पाठके अन्तमें प्रणव (ॐकार) को पढै । पुस्तकके वाँचनेमें ये नियम हैं-हस्तमें पुस्तकको धारण न करै, स्वयं वा ब्राह्मणसे भिन्नने जो लिखी हो उसपर पाठ निष्फल होता है । अध्यायपर प्राप्त होकर विराम (विश्राम) को होय, मध्यमें कदाचित् भी नहीं । और जो मध्यमें संभाषण आदिसे विराम होजाय तो पुनः अध्यायकी आदिसे पाठ करै । ग्रंथके अर्थको मनमें जान २ कर स्पष्ट अक्षरोंका जिसप्रकार उच्चारण हो न अतिशीघ्रतासे न अतिमंदतासे । रस और प्रीतिसे युक्त पाठको करै ॥

अथ काम्यपाठः ।

त्रिवर्गफलकामेन चंडीपाठः सदैव कर्तव्यः ॥ "तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ॥ श्रोतव्यं च सदा भक्त्या" इत्यादिवचनात् ॥ नैमित्तिकपाठोप्युक्तः ॥ "शांतिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्रदर्शने ॥ ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम" इति ॥ तथा ॥ "अरण्ये प्रांतरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः" ॥ इत्यादिसंकटान्युद्दिश्य ॥ "सर्वबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोपि वा ॥ स्मरन्ममैतन्माहात्म्यं नरो मुच्येत संकटात्" इत्युक्तम् ॥

जो त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) की कामनावाला मनुष्य चण्डीपाठको सदैव करै क्योंकि, इसमें इत्यादि वचन कहे हैं कि, जिससे मेरे माहात्म्यको सावधान होकर सदा पढै और सुनै । नैमित्तिक पाठभी कहा है कि, शान्तिकर्म, दुष्टस्वप्नका दर्शन, ग्रहोंकी बडी उत्कटपीडा इनके विषै मेरे माहात्म्यको सुनै । तथा अरण्य (वन) वा अत्यंत भीतर (कोठाआदि) दावानल अग्निसे परिवारित (आच्छादित) वा चोरोंके बीचमें आया वा शत्रुओंसे पकडा हुआ इत्यादि संकटोंको दिखाकर यह कहाहै कि, इसप्रकार अत्यंत घोर आपत्ति और अत्यंत पीडासे पीडित मनुष्य जो इस मेरे माहात्म्यका स्मरण करता है, वह समस्त संकटोंसे छूट जाता है ॥

अथ कामनार्थे पाठसंख्या ।

उपसर्गोपशांत्यर्थं त्रयः पाठाः कार्याः ॥ ग्रहपीडाशांतये पंच ॥ महाभये सप्त ॥ शांत्यर्थं वाजपेयफलार्थं च नव ॥ राजवश्यार्थमेकादश ॥ वैरिनाशार्थं द्वादश ॥ स्त्रीपुंवश्यार्थं चतुर्दश ॥ सौख्याय लक्ष्म्यर्थं च पंचदश ॥ पुत्रपौत्रधनधान्यार्थं षोडश ॥ राजभयनाशाय सप्तदश ॥ उच्चाटनायाष्टादश ॥ वनभये विंशतिः ॥ बंधमोचनाय पंचविंशतिः ॥ दुश्चिकित्स्यरोगकुलच्छेदायुर्नाशवैरिवृद्धिव्याधिवृद्धित्रिविधोत्पातादिमहासंकटनाशो राज्यवृद्धिश्च शतावृत्तिभिः ॥ सहस्रावर्तनैः शताश्वमेधफलं सर्वमनोरथाव्याप्तिर्मोक्षश्चेति वाराहीतंत्रे उक्तम् ॥ सर्वत्र काम्यपाठे

आदौ संकल्पपूर्वकं पूजनमंते बलिदानं च कार्यम् ॥ अत्राचाराद्वेदपारायणमपि कार्यम् ॥ तद्विधिर्बौधायनोक्तः कौस्तुभे ज्ञेयः ॥

उपसर्ग (उपद्रव) के विषे तीन ग्रहोंकी, पीडाकी शान्तिके लिये पांच, महाभयमें सात, शान्ति वा वाजपेयफलकी प्राप्तिके लिये नौ, राजाके वश करनेके लिये एकादश (११), शत्रुके नाशके लिये द्वादश (१२), स्त्री और मनुष्यको वशीकरणके लिये चौदह (१४), सुख और लक्ष्मीके लिये पंद्रह (१५), पुत्र पौत्र धन धान्यके लिये (१६), राजभय नाशके लिये (१७), उच्चाटनके लिये (१८), वनभयके नाशके लिये वीश (२०), बंधनभयसे मोचनके लिये पच्चीस (२५) जिसकी चिकित्सा असाध्य हो ऐसा रोग, कुलछेद, आयुर्नाश, शत्रुओंकी वृद्धि, व्याधिकी वृद्धि, त्रिविध उत्पात आदि महासंकट इत्यादिके नाश और राजकी वृद्धिके लिये पाठकी सौ (१००) आवृत्ति करै । और हजार (१०००) आवृत्तियोंसे सौ अश्वमेधका फल संपूर्ण मनोरथोंकी प्राप्ति और मोक्षकी प्राप्ति होती है । यह वाराहीतंत्रमें कहा है । सर्वत्र काम्यपाठोंके विषै आदिमें संकल्पपूर्वक पूजन और अंतमें बलिदानको करै । इसमें जो कुलाचार होय तो वेदपाठभी करना । उसकी विधिका प्रकार बौधायनने कौस्तुभग्रंथमें कहाहै ॥

अथ कुमारीपूजा ।

"एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत्"॥द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षावधि कुमारीणां क्रमेण ॥ कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चंडिका शांभवी दुर्गाभद्रेति नामानि ॥ आसां कुमारीणां प्रत्येकं पूजामन्त्राः फलविशेषाः लक्षणानि चान्यत्र ज्ञेयानि ॥ ब्राह्मणेन ब्राह्मणीत्येवं सवर्णा प्रशस्ता ॥ विजातीयापि क्वचित्कामनाविशेषेणोक्ता ॥ एकैकवृद्ध्या प्रत्यहमेका वा कुमारी पूज्या ॥ " मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम् ॥ नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ॥ जगत्पूज्ये जगद्वंद्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥ पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तु ते " ॥ इति मन्त्रेण पादप्रक्षालनपूर्वकं वस्त्रकुंकुमगन्धधूपदीपभोजनैः पूजयेदिति संक्षेपः कुमारीपूजावद्देवीपूजाचंडीपाठश्चैकोत्तरवृद्ध्यापि विहितः ॥ भवानीसहस्रनामपाठोपि क्वचिदुक्तः ॥ अयं शारदनवरात्रोत्सवो मलमासे निषिद्धः ॥ शुक्रास्तादौ तु भवति ॥ प्रथमारंभस्तु न कार्यः ॥

अब कुमारीपूजाका प्रकार दिखाते हैं । एकवर्षकी कन्याको पूजाके विषै ग्रहण न करै । दो वर्षसे लेकर दशवर्षतककी कन्याका नाम क्रमसे कुमारिका १, त्रिमूर्त्ति २, कल्याणि ३, रोहिणी ४, काली ५, चण्डिका ६, शांभवी ७, दुर्गा ८, भद्रा ९, ये होते हैं । इन कुमारियोंके प्रत्येककी पूजाके मंत्र इनकी पूजाके फल और लक्षण अन्यग्रंथमें समझने । ब्राह्मण ब्राह्मणकी कन्याका, क्षत्रिय क्षत्रियकी कन्याका इसप्रकार समानवर्णकी कन्या पूजामें प्रशस्त होती हैं और कहीं कामना विशेषसे विजातीयभी कन्या कही हैं प्रतिदिन एक २ को बढाता जाय अर्थात् पहिले दिन एक, दूसरे दिन दो इसप्रकार वा एककीही पूजा करै । इसकी पूजाका संक्षपसे यह प्रकार है कि, मंत्राक्षररूप, लक्ष्मीस्वरूप, माताके रूपको धारण करनेवाली

साक्षात् नवदुर्गारूप कन्याका मैं आवाहन करताहूं । हे जगत्पूज्ये ! हे जगद्वंद्ये ! हे सर्वशक्तिस्वरूप ! तू पूजाको ग्रहण कर । हे कुमार अवस्थावाली ! तुमको नमस्कार है । इस मंत्रसे उस कन्याके चरण प्रक्षालन करके वस्त्र, रोरी, चंदन, धूप, दीप इनसे पूजन करै । कुमारीपूजाकी समान देवीकी पूजा और चंडीपाठभी एकोत्तरवृद्धि (प्रतिदिन एक २ को बढाकर) से कहा है । कहीं भवानीसहस्रनामकाभी पाठ कहा है, यह शारदनवरात्रका उत्सव मलमासमें निषिद्ध समझना । शुक्रास्त आदिमें होता है तथापि प्रथमारंभशुक्रास्तमें न करना ॥

अथाशौचे नवरात्रप्रकारः ।

शावाशौचजननाशौचयोस्तु सर्वोपि घटस्थापनादिविधिर्ब्राह्मणद्वारा कार्यः ॥ केचिदारंभोत्तरं मध्ये आशौचपाते स्वयमेवारब्धपूजादिकं कार्यमित्याहुः ॥ शिष्टास्त्वाशौचे पूजादेवतास्पर्शादेर्लोकविद्विष्टत्वादन्येनैव कारयंति ॥ अपरे तु तृतीयादिपञ्चम्यादिसप्तम्याद्यनुकल्पेन नवरात्रविधीनां सत्त्वात्प्रतिपद्याशौचे तृतीयाद्यनुकल्पाश्रयणं कुर्वंति ॥ सर्वथा लोपप्रसक्तावेव ब्राह्मणद्वारा कुर्वंति ॥ उपवासादि शारीरनियमः स्वयं कार्यः ॥ एवं रजस्वलाप्युपवासादिकं स्वयं कृत्वा पूजादिकमन्येन कारयेत् ॥ अत्र सभर्तृकस्त्रीणामुपवासे गन्धतांबूलादिग्रहणं न दोषायेत्याहुः ॥

शावाशौच (मृतकसूतक) और जननाशौच होय तो समस्त घटस्थापन आदि कर्म ब्राह्मणके द्वारा करावै । कोई तो यह कहते हैं कि, जो अशौच आरंभ किये पीछे होजाय तो उस कर्मको स्वयंही करै, ब्राह्मणसे न करावै । शिष्ट तो अशौचके विषै देवताकी पूजा स्पर्श आदिको लोकविरुद्ध होनेसे अन्यसेही कर्म कराते हैं । और अन्य इसप्रकार कहते हैं कि, नवरात्रकर्मके करनेमें तृतीयादि, पंचमी आदि सप्तमी आदि कई पक्ष हैं, इससे जो प्रतिपदाको अशौच होय तो तृतीया आदि पक्षके अनुसार करै । और जो सर्वथाही न प्राप्ति होय तो ब्राह्मणके द्वारा करावै । और उपवास आदि शरीरसाध्य नियमोंको स्वयं करै । इसीप्रकार रजस्वला स्त्रीभी उपवास आदिको स्वयं करके पूजा आदिको अन्यकेही द्वारा करावै । और यहभी कहते हैं कि, सुहागिनस्त्रियोंको इस व्रतमें गंध ताम्बूल आदिके भक्षणसे दोष नहीं होता ॥

अथ पंचम्यामुपांगललिताव्रतम् ।

अत्र पंचमी अपराह्णव्यापिनी ग्राह्या ॥ अपराह्णस्यैव तत्पूजाकालत्वोपपत्तेः ॥ दिनद्वये कार्त्स्न्येनापराह्णव्याप्तौ साम्येन वैषम्येण वापराह्णैकदेशव्याप्तौ च पूर्वैव युग्मवाक्यात् ॥ परत्रैवापराह्णव्याप्तौ परैव ॥ केचित्तु रात्रिव्यापिनी गृह्णंति पूजादिकं च रात्रावेव कुर्वन्ति तत्र मूलं चिन्त्यम् ॥ अत्र पूजादिविधिर्ग्रंथान्तरे प्रसिद्ध इति न लिख्यते ॥

अब पंचमीमें उपांगललिताव्रतको कहते हैं । इसमें पंचमी अपराह्णव्यापिनी लेनी । क्योंकि, अपराह्णही तिसकी पूजाका काल है और जो दोनों दिन सम्पूर्ण अपराह्णकालमें व्याप्ति हो

अथवा अपराह्णके एकदेशमें व्याप्ति हो, दोनोंदिन सम हो वा विषम (एकदिन कम एकदिन अधिक) होय तो युग्मवाक्यके अनुसार पहिलीही ग्रहण करनी । और जो दूसरे दिनहीं अपराह्णव्यापिनी होय तो परली लेनी । कोई तो रात्रिव्यापिनी पंचमीको ग्रहण करके रात्रिमेंही पूजा आदिको कहते हैं, उसमें प्रमाण चिंत्य है अर्थात् अप्रमाण है । इसके पूजा आदिकी विधि अन्यग्रन्थमें प्रसिद्ध है, इससे नहीं लिखते ॥

अथ पुस्तके सरस्वतीपूजा ।

आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे पुस्तकेषु सरस्वतीमावाह्य पूजयेत् ॥ "मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम् ॥ उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत्" इति वचनात् ॥ अत्र "पूजयेत्प्रत्यहम्" इति रुद्रयामलवचनात् मूले आवाहनं तदंगभूतं पूजनं च करिष्य इति संकल्प्यावाहनपूजने कार्ये ॥ पूर्वाषाढासु पूजनं करिष्ये इति संकल्प्यावाहनरहितपूजैव केवलम् ॥ उत्तराषाढासु बलिदानं तदंगभूतां पूजां च करिष्य इत्येवं ते कार्ये ॥ श्रवणेन विसर्जनं कर्तुं तदंगभूतां पूजां करिष्ये इति संकल्प्य संपूज्य विसर्जयेदिति क्रमः ॥ तत्र मूलस्य प्रथमे पादे सूर्यास्तात्प्राक् त्रिमुहूर्तव्यापिनि सरस्वत्यावाहनम् ॥ त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे रात्रौ वा प्रथमपादसत्त्वे तस्य विशेषवचनं विना ग्राह्यत्वाभावाद्द्वितीयादिपादे परदिने एवावाहनम् ॥ एवं पूर्वाषाढादिनक्षत्रं पूजादौ दिनव्याप्येव ग्राह्यम् ॥ विसर्जनं तु श्रवणप्रथमपादे रात्रिभागगतेपि कार्यं विशेषवचनात् ॥ तच्च रात्रेः प्रथमप्रहरपर्यंतमेवेति भाति ॥

आश्विनके शुक्लपक्षमें मूलनक्षत्रको पुस्तकोंमें सरस्वतीका आवाहन करके पूजन करै। क्योंकि यह वचन है कि, मूलनक्षत्रमें देवीका स्थापन और पूर्वाषाढमें पूजन और उत्तराषाढमें बलिको दे। फिर श्रवणनक्षत्रमें सरस्वतीका विसर्जन करै। इसमें रुद्रयामलके विषै यह लिखा है कि, प्रतिदिन पूजनको करै इससे मूलके विषै आवाहन और उसके अंगरूप पूजनको करता हूं, इसप्रकार संकल्प करके आवाहन पूजनको करै । और पूर्वाषाढमें पूजनको करताहूं, इसप्रकार संकल्प करके आवाहन रहित केवल पूजाको ही करै । और उत्तराषाढके विषै बलिदान और उसकी अङ्गरूप पूजाको करताहूं, इसप्रकारही संकल्प करके बलिदान और पूजाको करै । और श्रवणके दिन विसर्जन करनेके लिये इसकी अंगरूपी पूजाको करताहूं इसप्रकार संकल्प और पूजाको करके विसर्जन करै यह क्रम है। उसमें जो सूर्यास्तसे पूर्व मूलनक्षत्रका प्रथमपाद तीन मुहूर्त्त होय तो उसदिनही उसमें सरस्वतीका आवाहन करै। और जो तीन मुहूर्तसे कम हो वा रात्रिमें प्रथमपाद होय तो दूसरे दिन द्वितीय आदि पादमेंही आवाहन करना । क्योंकि, उसका विशेष वचनके विना ग्रहण नहीं हो सक्ता। इसीप्रकार पूर्वाषाढ आदि नक्षत्रभी पूजा आदिके लिये दिनव्यापीही ग्रहण करने । और विसर्जन तो जो श्रवणका प्रथमपाद रात्रिके भागमेंभी चलाजाय तोभी उसमेंही करना। द्वितीय आदिमें नहीं क्योंकि, उसमें यह विशेषवचन है कि, (यह प्रतीत होता है) वह विसर्जन रात्रिके प्रथमपाद पर्यंत होता है । जो श्रवणका पाद गत हो उसमेंही करना ॥

अथ सप्तम्यादौ पत्रिकापूजा।

अथ सप्तम्यादिदिनत्रये पत्रिकापूजनं विहितम् ॥ तत्र सप्तम्यादितिथित्रयं सूर्योदये मुहूर्तमात्रमपि ग्राह्यम् ॥ तत्राधिवासनादिप्रयोगविस्तरः कौस्तुभादौ ज्ञेयः ॥ यत्तु सप्तमीप्रभृति त्रिरात्रं नवरात्रकर्म कुर्वंति ॥ तत्र सप्तमी सूर्योदयोत्तरं मुहूर्ताधिकव्यापिनी ग्राह्या ॥ मुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ॥

अब सप्तमी आदि तीन दिनके विषै जो पत्रिकापूजन कहा है उसको कहते हैं। सप्तमी आदि तीन तिथि जो सूर्योदयके समय मुहूर्तमात्र हों वेभी ग्रहण करनी। उसमें अधिवासन आदि प्रयोगका विस्तार कौस्तुभ आदि ग्रंथमें समझना। और जो सप्तमीसे लेकर तीनरात्र नवरात्र उत्सव कहा है, उसमें सप्तमी सूर्योदयके समय मुहूर्तसे अधिकव्यापिनी लेनी। और जो मुहूर्तसे कम होय तो पहिली करनी ॥

अथ महाष्टमीनिर्णयः।

अथ महाष्टमीघटिकामात्राप्यौदयिकी नवमीयुता ग्राह्या ॥ सप्तमी स्वल्पयुता सर्वथा त्याज्या ॥ यदा तु पूर्वत्र सप्तमीयुता परत्रोदये नास्ति घटिका न्यूना वा वर्तते तदा पूर्वा सप्तमीविद्धापि ग्राह्या ॥ इयं भौमवारेतिप्रशस्ता ॥ यदा च पूर्वदिने षष्टिघटिकाष्टमी परदिने मुहूर्तादिव्यापिनी तदा नवमीयुतामप्युत्तरां त्यक्त्वा संपूर्णत्वात्पूर्वैव ग्राह्या ॥ एवं नवम्याः क्षयवशेन दशमीदिने सूर्योदयोत्तरमनुवृत्त्यभावेऽष्टमी नवमीयुतामौदयिकीमपि त्यक्त्वा सप्तमीयुतैवाष्टमी ग्राह्या ॥ अष्टम्यां पुत्रवतोपवासो न कार्यः ॥ कुलाचारप्राप्तौ किंचिद्भक्ष्यं प्रकल्प्य कार्यः ॥

महाष्टमी जो उदयकालमें घटीमात्र हो वहभी नवमीसे युक्त (ग्रहण करनी) परन्तु जिसमें सप्तमीका अल्पभी योग हो वह अष्टमी सर्वथा त्याग देनी। और जो जिस अष्टमीमें पहिले दिन सप्तमीका योग हो और जो परले दिन उदयकालमें न हो वा घटीसे न्यून होय तो सप्तमीविद्धाभी पहिलीही ग्रहण करनी। यह भौमवारको होय तो अत्यंत श्रेष्ठ कही है। और जो यह पहिले दिन साठ (६०) घडी हो और दूसरे दिन मुहूर्त आदि मात्र होय तो नवमीसे युक्तभी उसको छोडकर संपूर्ण होनेसे पहिली ही ग्रहण करनी। इसीप्रकार जो नवमीके क्षयके वशसे दशमीके दिन सूर्योदयके पीछे वर्तमान न होय तो उस नवमीसे युक्तभी औदयिकी अष्टमीको त्यागकर सप्तमीसे युक्तही अष्टमी ग्रहण करनी। अष्टमीके दिन पुत्रवान् उपवासको न करै। और जो कुलाचारसे करनाही पडै तो किसी भक्ष्यपदार्थको छोडकर करै ॥

अथ महानवमीनिर्णयः।

महानवमी तु बलिदानव्यतिरिक्तविषये पूजोपोषणादावष्टमीविद्धा ग्राह्या ॥ सा च यद्यष्टमी दिने सायं त्रिहूमुर्ता स्यात्तदैव ग्राह्या ॥ त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परैव

ग्राह्या ॥ नवमीप्रयुक्तमहाबलिदाने तु दशमीविद्धा ॥ यदा शुद्धाधिका नवमी तदा बलिदानमपि पूर्णत्वात्पूर्वत्रैव कार्यम् ॥ अष्टमीनवम्योः संधौ पूजोक्ता साष्टमीनवम्योः पृथक्त्वे दिवारात्रौ वाष्टम्यंतनाडीनवम्याद्यनाड्योः कार्या ॥ यदि त्वष्टमीनवम्योर्मध्याह्नेऽपराह्ने वा योगस्तदाष्टमीनवमीपूजयोरप्येकदिने एव प्राप्तेरष्टमीनवमीपूजां तत्संधिपूजां च तंत्रेण करिष्ये इति संकल्प्य तंत्रण पूजा कार्या ॥ यदि शुद्धाधिकाष्टमी तदा पूर्वेद्युरष्टमीपूजा ॥ परेद्युः संधिपूजा नवमीपूजयोस्तंत्रम् ॥ अत्र नवरात्रे स्वयं पूजादिकं कर्तुमशक्तावन्येन कारयेत्॥ षोडशोपचारपूजा विस्तरं कर्तुमशक्तो गंधादिपंचोपचारपूजां कुर्यात् ॥

महानवमी तो बलिदानसे अतिरिक्त पूजा उपवास आदिमें अष्टमीसे विद्धा लेनी। और जो वह नवमी अष्टमीके दिन सायंकालके समय तीन मुहूर्त हो तो उसीदिन, और जो तीन मुहूर्तसे कम होय तो परलीही ग्रहण करनी। नवमीके दिन जो वह बलिदान है उसमें नवमी दशमीविद्धा लेनी। और जो शुद्धा नवमी अधिक होय तो बलिदान उस पूर्ण नवमीके दिनही करना, दशमी विद्धामें नहीं। अर्थात् जैसे पहिले दिन नवमी साठ (६०) घडी हो और दूसरे दिन मुहूर्त आदि होय तो पहिली लेनी। अष्टमी और नवमीकी संधिमें जो पूजा कही है उसमें जो अष्टमी, नवमी पृथक् होय तो दिनमें वा रात्रिमें अष्टमीकी अंतकी नाडी और नवमीके आदिकी नाडियोंमें वह पूजा करनी। और जो अष्टमी नवमीका योग मध्याह्न वा अपराह्नकालमें होय तो अष्टमी और नवमीकी पूजा एकदिनही, अष्टमी नवमीकी पूजा और उनकी संधिकी पूजाको तंत्रसे करता हूं इस प्रकार संकल्प करके तंत्रसे पूंजा करनी। और शुद्धा अष्टमी अधिक होय तो पहिले दिनही अष्टमीपूजाको करके परले दिन संधिपूजा और नवमीपूजाको तंत्रसे करे। इस नवरात्रमें जो स्वयं पूजा आदिके करनेमें असमर्थ हो वह अन्यसे करावे। और जो षोडश उपचार आदिसे विस्तार करनेमें असमर्थ होय तो पंच उपचारोंसे करै ॥

अथ नवमीहोमकालः ।

नवम्यां पूजां विधाय होमः कार्यः ॥ केचिदष्टम्यामेव होम इत्याहुः ॥ अन्ये त्वष्टम्यामुपक्रम्य नवम्यां होमः समापनीयः ॥ स चारुणोदयमारभ्य सायंकालपर्यंतमष्टमीनवम्योः संधौ संभवति ॥ निशायां तत्संधौ तु रात्रौ होमादेरयोग्यत्वान्नवम्यामेव होमोपक्रमसमाप्ती कार्ये इत्याहुः ॥ अत्र यथाकुलाचारं व्यवस्था ॥

नवमीके दिन पूजाके अनंतर होमको करे, कोई अष्टमीके दिनही होमको कहते हैं। और कोई यह कहते हैं कि, अष्टमीके दिन प्रारंभ करके नवमीके दिन होमको समाप्त करे। वह जो अरुणोदयसे लेकर सायंकालपर्यंत अष्टमीमें नवमीकी संधि होजाय तो संभव समझना। और जो रात्रिमें संधि (योग) होय तो रात्रिमें होम अयोग्य होता है। इससे नवमीके दिनही प्रारंभ और समाप्ति करनी। इसमें कुलाचारके अनुसार व्यवस्था है ॥

अथ होममंत्रपक्षाः ।

स च होमो नवार्णमंत्रेण कार्यः ॥ अथवा 'जयंती मंगलाकाली' इति श्लोकेन ॥ अथवा "नमो देव्यै महादेव्यै" इति श्लोकेन ॥ अथवा सप्तशतीश्लोकैः ॥ अथवा सप्तशतीस्तोत्रस्य सप्तशतमंत्रैः कवचार्गलाकीलकरहस्यत्रयश्लोकसहितैर्होमः सप्तशतीमंत्रविभागोऽन्यत्र ज्ञेयः ॥ अत्रापि विकल्पेषु यथाकुलाचारं व्यवस्था ॥ होमद्रव्यं च सर्पिर्मिश्रितं शुक्लतिलमिश्रितं च पायसं केवलतिलैर्वा होमः ॥ क्वचित्किंशुकपुष्पदूर्वासर्षपलाजपूगयवश्रीफलरक्तचंदनखंडनानाविधिफलानामपि पायसे मिश्रणं कार्यमित्युक्तम् ॥ होमश्च जपदशांशेन कार्यः ॥ कुलाचारप्राप्तश्चेन्नृसिंहभैरवादिदैवत्यमंत्रे होमोपि कार्यः ॥ अत्र सविस्तरः सग्रहमखो होमप्रयोगः कौस्तुभे ज्ञेयः ॥

यह होम नवार्णवमंत्र वा 'जयंती मंगला काली' इस श्लोक वा 'नमो देव्यै महादेव्यै' इस श्लोक वा सप्तशतीके श्लोक अथवा कवच, अर्गला, कीलक इसके श्लोकोंसहित सप्तशती स्तोत्रके सातसौ मंत्र इनसे करना । सप्तशतीके मंत्रोंका विभाग अन्य ग्रंथमें समझना । इन पक्षोंकी भी कुलाचारके अनुसार व्यवस्था है । होमका द्रव्य, घी और शुक्लतिलोंसे मिलीहुई खीर वा केवल तिल समझना । कहीं यह भी लिखा है कि, केशूके फूल, दूर्वा, सर्षप (सरसों) लाज, पूगीफल, जौ, लालचंदनका खण्ड, नानाप्रकारके फल इनको भी पायसमें मिश्रित करना । जपके दशांशसे होम करे और जो कुलाचारसे प्राप्त होय तो नृसिंह भैरव आदि हैं देवता जिसके ऐसे मंत्रोंसे भी होम करना । इसमें विस्तारपूर्वक ग्रहयज्ञसहित होमका प्रयोग कौस्तुभग्रंथमें समझना ॥

अथ बलिदाननिर्णयः ।

ब्राह्मणेन माषादिमिश्रान्नेन कूष्मांडेन वा कार्यम् ॥ यद्वा ॥ घृतमयं यवपिष्टादिमयं वा सिंहव्याघ्रनरमेषादिकं कृत्वा खड्गेन घातयेत् ॥ ब्राह्मणेन पशुमांसमद्यादिबलिदाने ब्राह्मण्यभ्रष्टता ॥ सकामेन क्षत्रियादिना सिंहव्याघ्रनरमहिषच्छागसूकरमृगपक्षिमत्स्यनकुलगोधादिप्राणिस्वगात्ररुधिरादिमयो बलिर्देयः ॥ कृष्णसारमृगः क्षत्रियादिभिरपि न देयः ॥ अत्र बलिदानमंत्रादिप्रकारः सिंधौ ज्ञेयः ॥ अत्र शतचंडीसहस्रचंडीप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः ॥

अब बलिदानको कहते हैं । ब्राह्मण माष (उडद) आदिसे मिले अन्न वा कूष्माण्डसे वा घीका वा जौके चूनका सिंह, व्याघ्र वा मनुष्य वा मेंढाको बनाकर और उसको खड्गसे काटकर उससे बलिदानको करै । पशुमांस और मद्य आदिसे न करे क्योंकि, उससे ब्राह्मणपनेही नष्ट होजाता है । क्षत्रिय आदि फलकी कामनासे सिंह, व्याघ्र, मनुष्य, बकरी, सूकर, मृग, पक्षी, मत्स्य, नकुल, गोधा आदि जीव वा अपने रुधिर आदिसे बलिदान करे । कृष्णसार मृगकी बलिको तो क्षत्रिय आदि भी न दे । इस बलिदानकी विधि निर्णयसिंधु ग्रंथमें समझनी । और शतचंडी और सहस्रचंडीके प्रयोगकी विधि कौस्तुभ आदि ग्रंथमें समझनी ॥

अथाशौचे समाप्तिनिर्णयः ।

द्विविधाशौचेपि नवम्यां होमं घटादिदेवतोत्थापनं च ब्राह्मणद्वारा कारयित्वा स्वयं पारणं कृत्वा आशौचांते ब्राह्मणभोजनं दक्षिणादिदानं च कार्यम् ॥ एवं रजस्वलापि पारणकाले पारणं कृत्वा शुद्धौ दानादिकं कुर्यात् ॥ विधवायास्तु रजोदोषे भोजननिषेधात्पारणापि शुद्ध्युत्तरमेव ॥ एवं व्रतांतरेप्यूह्यम् ॥

दो प्रकारके आशौच होनेपर भी मनुष्य नवमीके दिन होम और घट आदि देवताका उत्थापन् ब्राह्मणके द्वारा कराकर और आप पारणा (व्रतान्तभोजन) को करके आशौचके अंतमें ब्राह्मणभोजन और दक्षिणा आदिके दानको करे । इसी प्रकार रजस्वला स्त्री भी पारणासमयमें पारणाको करके शुद्धि होनेपर दान आदिको करे । विधवा स्त्रीको तो रजोदर्शनमें भोजनका निषेध है, इससे उसने पारणा भी शुद्धिके पश्चातही करनी । इसी प्रकार अन्य व्रतमें भी समझना ॥

अथ लोहाभिसारिकं कर्म ।

प्रतिपदादियावदष्टमि लोहाभिसारिकं कर्म राज्ञां विहितम् ॥ तत्र छत्रचामरादिराजचिह्नानां गजाश्वादीनां चापादिशस्त्राणां दुंदुभ्यादीनां च पूजाहोमादिकं कार्यम् ॥

प्रतिपदासे अष्टमीतक जो लोहाभिसारिककर्म राजाओंके लिये शास्त्रमें कहा है उसमें छत्र चमर आदि राजचिह्न और गज अश्व आदि , धनुष आदि शस्त्र, दुंदुभि आदि बाजे इनकी पूजा आदि और होम आदिको करे ॥

अथाश्वपूजादि ।

ये हयान्पालयंति ते राजभिन्ना अपि स्वातीयुतामाश्विनप्रतिपदं द्वितीयां वारभ्य नवमीपर्यंतं वाजिनीराजनाख्यं कर्म कुर्युः ॥ तत्रोच्चैःश्रवःपूजा रैवतपूजा च प्रतिमायां कार्या ॥ प्रत्यक्षमश्वपूजा नीराजनं च कार्यम् ॥ कर्मद्वयेपि तत्पूजामंत्रा होमादिमंत्राः सविस्तरप्रयोगश्च कौस्तुभे ॥ इदानीमश्ववंतः प्राकृतजनास्तु विजयादशम्यामश्वान् तोयेऽवगाह्य पुष्पमालादिभिर्विभूष्याश्वशालायां प्रवेशयंति ॥ तत्र ॥ "गंधर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः ॥ ब्राह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥ प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धयत्वं तुरंगमान् ॥ रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव" इति मंत्रेण केवलाश्वपूजापि कर्तुमुचिता ॥

और जो राजासे भिन्न भी घोडोंको रखते हैं वेभी स्वाती नक्षत्रसे युक्त अश्विनकी प्रतिपदा वा द्वितीयासे लेकर नवमीपर्यंत वाजिनीराजन नाम कर्मको करे । और इसमें उच्चैःश्रव और रैवतकी पूजाको प्रतिमा बनाकर करै, और प्रत्यक्ष अश्वकी भी पूजा और नीराजन (आरती) को करै । इन दोनों कर्मोंकी पूजा और होम आदिके मंत्र विस्तारपूर्वक कौस्तुभ ग्रंथमें समझने । इसमें प्राकृत (जगत्‌के) मनुष्य विजयादशमीके दिन अश्वोंको जलमें स्नान कराकर

और पुष्पोंकी माला आदिसे शोभित करके अश्वशाला (घुडशाल) में लेजाते हैं । उस दिन इन दोनों मंत्रोंसे केवल अश्वकीभी पूजा उचित है । कि, हे अश्व ! आप गंधर्वके कुलमें उत्पन्न हुए हमारे कुलको दूषण करनेवाले मत् हूजियो । और ब्रह्माके सत्यवाक्यसे और सोम, वरुण, अग्नि इनके प्रभावसे हमारे अश्वोंको बढाओ, और संग्रामके विषै शत्रुओंको जीतकर अपने पति सहित सुखी रहो इस मंत्रसे केवल अश्वकी पूजा करना भी उचित है ॥

अथ पारणाविसर्जनयोः कलः ।

तत्र विसर्जनं दशम्यां कार्यम् ॥ दिनद्वये दशमीसत्त्वे पूर्वदशम्यां श्रवणांत्य पादयोगे तत्रैव विसर्जनम् ॥ तत्र तद्योगाभावे तु परदशम्यामेव॥परत्र दशम्यभावे पूर्वदशम्यां नक्षत्रयोगे सत्यसतिवा कार्यं नक्षत्रयोगानुरोधेन क्रियमाणं विसर्जनमपराह्णेपि भवति अन्यथा प्रातरेव ॥ तत्र मृदादिप्रतिमाया विसर्जनपूर्वकं जलादौ त्यागः ॥ परंपरया पूजिताया धातुप्रतिमायास्तु घटादिस्थापनादुत्तिष्ठेत्यादिमंत्रैरुत्थापनमात्रं कार्यं न तु विसर्जनम् ॥ यद्दिने विजर्सनं तत्रैव नियमत्यागस्यौचित्यात् ॥ विसर्जनोत्तरं तद्दिने एव पारणं कार्यम् ॥ अन्ये तु सत्यपि दशम्यां विसर्जनविधौ नवम्यामेव पारणं कार्यम् ॥ नवम्यां पारणं कुर्याद्दशम्यामभिषेकं च कृत्वा मूर्तिं विसर्जयेदित्यादिवचनादित्याहुः॥अत्रैवं व्यवस्था॥प्रथमदिने स्वल्पाष्टम्या युक्ता नवमी द्वितीयदिने पारणपर्याप्तनवम्या युक्ता दशमी तत्परदिने श्रवणयुक्ता विसर्जनार्हा दशमी तत्राष्टमीनवम्युपवासयोः प्रथमदिने सिद्धत्वादवशिष्टनवम्यां पारणमवशिष्टदशम्यां विसर्जनम् ॥ यदा तु अवशिष्टनवमीदिने एव दशमी श्रवणनक्षत्रयुक्ता विसर्जनार्हा तदा विसर्जनोत्तरं पारणम् ॥ यदा पूर्वदिने षष्टिदंडाष्टमी परदिनेष्टमीशेषयुता नवमी तत्परदिने नवमीशेषयुता दशमी तदा नवमीयुक्तदशम्यामेव विसर्जनोत्तरं पारणा ॥ अथ नवमी षष्टिदंडा द्वितीयदिने नवमीशेषयुक्ता दशमी तत्रापि नवमीयुक्तदशम्यामेव विसर्जनपारणे ॥ यदा त्वष्टमीनवमीदशम्यस्तिस्रोपि तिथयः सूर्योदयमारभ्यास्तमयपर्यंतमखंडास्तत्तत्कृत्यपर्याप्तास्तदा दाक्षिणात्यानां नवम्यामेव पारणाचारान्नवम्यामेव पारणविसर्जने ॥ येषां दशम्यामेवाचारस्तेषां तदुभयं दशम्यामेव ॥

इसमें पारणा और विसर्जनका काल इस प्रकार समझना कि, विसर्जन दशमीके दिन करना और जो दोनों दिन दशमी होय तो पहिली दशमीके दिन, जो श्रवण नक्षत्रके अंत्यके पादका योग होय तो उस दिनही विसर्जन, और जो उस दिन योग न होय तो परले दिन विसर्जन करै । और जो परले दिन दशमी न होय तो पहिले दिन चाहै नक्षत्रका योग हो चाहै न हो तोभी करना । नक्षत्रके योगकी प्रशंसासे अपराह्णमेंभी विसर्जन होता है । और जो योग न होय तो प्रातःकालही करना । तिसमें मट्टी आदिकी प्रतिमाको विसर्जन किये पीछे जल आदिमें छोड दे । और जो परंपरासे पूजी हुई धातु (सुवर्ण) आदिकी

प्रतिमा हो उसका तो घट स्थापनसे 'उत्तिष्ठ०' इत्यादि मंत्रोंसे उत्थापनही करना विसर्जन नहीं । जिस दिन विसर्जन किया जाय उसी दिन नियमका त्याग करना उचितहै । इससे विसर्जन किये पीछे उसी दिन पारणाको करै । अन्य तो यह कहते हैं कि, यदि विसर्जन दशमी के दिन हो तो भी पारणा नवमीके दिनही करनी क्योंकि, यह वचन है कि, नवमीको पारणा करै और दशमीको अभिषेक करके मूर्तिका विसर्जन करै । इसकी इस प्रकार व्यवस्था है कि, जो पहिले दिन अल्प अष्टमी करके युक्त नवमी हो और दूसरे दिन पारणा काल जिसमें आजाय इतनी नवमीमें दशमीका योग होजाय और इससे दूसरे दिन जो विसर्जनके योग्य श्रवणयुक्त दशमी होय तो अष्टमी और नवमीका उपवास पहिले दिन सिद्ध है । इससे अवशिष्ट नवमीके दिन पारणाको करके, अवशिष्ट दशमीके दिन विसर्जन करै । और जो अवशिष्ट नवमीके दिनही श्रवण नक्षत्रसे युक्त विसर्जनके योग्य दशमी होय तो विसर्जन किये पीछे पारणाको करै । और जो पहिले दिन अष्टमी ६० घडी हो और दूसरे दिन कुछ अष्टमीसे युक्त नवमी हो और उससे दूसरे दिन नवमीकी शेष कालसे युक्त दशमी होय तो नवमीसे युक्त दशमीमेंही विसर्जनसे पीछे पारणाको करै । और जो नवमी साठ घडी हो और दूसरे दिन अवशिष्ट नवमीसे युक्त दशमी हो तबभी नवमीयुक्त दशमीकोही विसर्जन पारणाको करै । और जो अष्टमी, नवमी, दशमी ये तीनों तिथि ऐसी हों कि, जिनमें तिस २ तिथिका कृत्य होसकै तो नवमीके दिनही पारणा करै । इस दाक्षिणात्योंके आचारसे नवमीके दिनही पारणा और विसर्जन करना । और जिनका दशमीके दिनही पारणा करनेका आचार है वे इन दोनोंको दशमीके दिनही करैं ॥

अथ विजयादशमी ।

सा परदिन एवापराह्णव्याप्तौ परा ॥ दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्तौ दिनद्वयेपि श्रवणयोगे सत्यसति वा पूर्वा ॥ एवं दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेपि श्रवणयोगसत्त्वासत्त्वयोः पूर्वैव ॥ दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यव्याप्त्योरेकतरदिने श्रवणयोगे यद्दिने श्रवणयोगः सैव ग्राह्या ॥ एवमपराह्णैकदेशव्याप्तावूह्यम् ॥ यदा पूर्वदिने एवापराह्णव्याप्तापरदिने च श्रवणयोगाभावस्तदापि पूर्वैव ॥ यदा तु पूर्वदिने एवापराह्णव्यापिनी परदिने च मुहूर्तत्रयादिव्यापिनी अपराह्णात् पूर्वमेव समाप्तापरत्रैव श्रवणयोगवती तदा परैव ॥ अपराह्णे दशम्यभावेपि ॥ "यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः" इत्यादिसाकल्यवचनैः श्रवणयुक्ताया ग्राह्याया औदयिकस्वल्पदशम्याः कर्मकाले सत्त्वापादनात् ॥ सिंधौ त्विदं परदिने पराह्णकाले श्रवणसत्त्वे एव ॥ श्रवणस्याप्यपराह्णात्पूर्वमेव समाप्तौ तु पूर्वैवेत्युक्तम् ॥ युक्तं चैतत् ॥ यदा परदिने एवापराह्णव्याप्तिः पूर्वदिने एवापराह्णात्परत्र सायाह्नादौ श्रवणयोगस्तदा तु परैव ग्राह्येति मम प्रतिभाति ॥ अत्रापराजितापूजनं सीमोल्लंघनं शमीपूजनं देशांतरयात्रार्थिनां प्रस्थानं च विहितम् ॥ तत्पूजाप्रकारस्त्वपराह्णे ग्रामादीशान्यां दिशि गत्वा शुचिदेशे भुवमुपलिप्य चंदनादिनाष्टदलमालिख्य ॥ मम सकुटुंबस्य क्षेम-

सिद्ध्यर्थमपराजितापूजनं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ मध्ये अपराजितायै नम इत्यपराजितामावाह्य तद्दक्षिणे क्रियाशक्त्यै नम इति जयां वामत उमायै नम इति विजयां चावाह्य ॥ अपराजितायै नमः ॥ जयायै नमः ॥ विजयायै नमः ॥ इति नाममंत्रैः षोडशोपचारपूजां कृत्वा प्रार्थयेत् ॥ "इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम् ॥ रक्षार्थं तु समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम्" इति॥अथ राज्ञः संकल्पे यात्रायां विजयसिद्ध्यर्थमिति विशेषः ॥ पूजानमस्कारांते ॥ "हारेण तु विचित्रेण भास्वत्कनकमेखला ॥ अपराजिता भद्ररता करोतु विजयं मम " इत्यादिमन्त्रैर्विजयं प्रार्थ्य पूर्ववद्विसृजेदिति संक्षेपः ॥

अब विजयादशमीको कहते हैं। वो जो परले दिनही अपराह्णव्यापिनी होय तो परली लेनी और जो दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो और दोनों दिन श्रवणका योग हो वा न होय तो भी पहिली लेनी। इसी प्रकार जो दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी न होय तो श्रवणका योग होय न होय तोभी पहिलीही लेनी और जो दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो अथवा न हो तो जिस दिन श्रवणका योग हो वहही ग्रहण करनी। इसी प्रकार अपराह्णकी एक देशकी व्याप्तिके विषयमेंभी समझना। जब कि, पहिले दिनही अपराह्णव्यापिनी हो और दूसरे दिन श्रवणका योग न हो तबभी पहिलीही लेनी और जो पहिले दिन अपराह्णव्यापिनी हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त आदिहो अर्थात् अपराह्णसे पूर्वही समाप्त होगई हो और जो परले दिन श्रवणका योग होय तो परलीही लेनी। यद्यपि अपराह्णकालमें दशमी नहीं है तथापि श्रवण नक्षत्रसे युक्त जो उदयकालमें कुछ थोडीहो ऐसी ग्राह्य दशमीका कर्मकाल (अपराह्ण) में होना इन साकल्य (संपूर्णता) प्रतिपादक वचनोंसे प्रतिपादन किया है कि, जिस तिथिमें सूर्यका उदय हो वह तिथि दान आदिकर्ममें समस्त समझनी। निर्णयसिन्धु ग्रंथमें तो यह कहा है कि, जो परले दिन अपराह्णतक श्रवण होय तो परली और अपराह्णसे पूर्व समाप्त होजाय तो पहिली लेनी। और युक्तभी यहही है। मुझको तो यह प्रतीत होता है कि, जो परले दिन अपराह्णव्यापिनी हो और पहिले दिन अपराह्णकालसे परे सायाह्न आदिमें श्रावणका योग होय तो परलीही ग्रहण करनी। इस दशमीके दिन अपराजिताका पूजन, सीमाका अवलंघन, शमी (छोंकर) का पूजन और जो देशान्तरको जाना चाहतेहैं उनका गमन कहा है। अपराजिताके पूजनका प्रकार तो इस रीतिसे है कि, अपराह्णके समय ग्रामसे ईशान दिशामें जाकर और वहां किसी शुद्ध स्थानमें पृथ्वीको लीपकर और उसपर चन्दन आदिसे अष्टदल चक्रको बनाकर और मैं कुटुंब सहित अपने कल्याणके लिये अपराजिताके पूजनको करता हूं इस प्रकार संकल्प करके उसके मध्यमें 'अपराजितायै नमः०' इस मन्त्रसे अपराजिताका और उसके दक्षिण भागमें 'क्रियाशक्त्यै नमः०' इस मंत्रसे जयाका और वामभागमें 'उमायै नमः०' इस मन्त्रसे विजयाका आवाहन करै। और फिर 'अपराजिताय नमः, जयायै नमः' विजयायै नमः' इन नाम मंत्रोंसे षोडशोपचार पूजाको करके प्रार्थना करे इस मन्त्रसे करै कि हे देवि ! अपनी शक्तिके अनुसार रक्षाके अर्थ निवेदन की हुई पूजाको ग्रहण करके अपने स्थानको गमन करो। और राजाकी पूजामें यह विशेष है कि, मैं यात्राके विषे विजयकी सिद्धिके लिये अपराजिताका पूजन करता हूं इस प्रकार संकल्प

करके फिर पूजा और नमस्कारको पूर्ववत् करके इस मन्त्रसे प्रार्थना कर पूर्ववत् विसर्जन करे। कि विचित्रहारसे शोभित है सुवर्णकी मेखला (तगडी) जिसकी ऐसी कल्याणकी देनेवाली अपराजिता मुझे विजयको दे। इस प्रकार संक्षेपसे पूजा विधिको कहचुके ॥

अथ शमीपूजनमन्त्रादि ।

ततः सर्वे जनाः ग्रामाद्बहिरीशानदिगवस्थितां शमीं गत्वा पूजयेयुः ॥ सीमोल्लंघनं तु शमीपूजनात्पूर्वं पश्चाद्वा कार्यम् ॥ राजा त्वश्वमारुह्य सहपुरोहितः सामात्यः शमीमूलं गत्वा वाहनादवरुह्य स्वस्तिवाचनपूर्वकं शमीं संपूज्य कार्योद्देशानमात्यैः सह संवदन्प्रदक्षिणां कुर्यात् ॥ पूजाप्रकारस्तु ॥ मम दुष्कृतामंगलादिनिरासार्थं क्षेमार्थयात्रायां विजयार्थं च शमीपूजां करिष्ये ॥ शम्यलाभे अश्मंतकवृक्षपूजनं करिष्ये इति संकल्पः ॥ राजा तु शमीमूले दिक्पालपूजां वास्तुदेवतापूजां च कुर्यात् ॥ " अमंगलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च ॥ दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येहं शमीं शुभाम्" इति पूजामन्त्रः ॥ पूजांते ॥ " शमी शमयते पापं शमी लोहितकंटका ॥ धरित्र्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया ॥ तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते" इति प्रार्थयेत् ॥ अश्मंतकपूजने ॥ " अश्मंतक महावृक्ष महादोषनिवारण ॥ इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणां च विनाशनम् " इति प्रार्थयेत् ॥ राजा शत्रोर्मूर्तिं कृत्वा शस्त्रेण विध्येत् ॥ प्राकृताः शमीशाखाश्छित्त्वा आनयन्ति तन्निर्मूलम् ॥ "गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति ॥ ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह ॥ नीराज्यमानः पुण्याभिर्युवतीभिः सुमंगलम् " इति ॥

इसके अनन्तर संपूर्ण मनुष्य ग्रामसे बाहिर ईशान दिशामें प्राप्तहुए शमीके निकट जाकर पूजन करें और सीमा (ग्रामकी सीम) के अवलंघनको शमीके पूजनसे पूर्व वा पश्चात् करें। राजा तो अश्वके ऊपर चढकर पुरोहित और मंत्री सहित शमीके निकट जाय, वहां घोडासे उतरकर स्वस्तिवाचनपूर्वक शमीका पूजन करके अपने मंत्रियोंसहित अभिलषित मनोरथोंको कहता हुआ प्रदक्षिणाको करे। इसकी पूजाकी विधि इस प्रकार है कि, मैं अपने पाप और अकल्याण आदिके नाशके लिये और कल्याण और यात्रामें विजयके लिये शमी वा शमी न होय तो अश्मन्तक (बहेडा) वृक्षका पूजन करता हूं यह संकल्प करे। और जो राजा होय तो शमीका मूल (जड) के विषे दिक्पाल और वास्तुदेवताका पूजन करके इस मन्त्रसे शमीको पूजे कि, अमंगला और खोटे पापोंको शान्तकरनेवाली और दुष्टस्वप्नके नाशकरनेवाली, धन्यरूप शमीकी मैं शरण प्राप्त हुआ हूं। फिर पूजाके अन्तमें इन मंत्रोंसे प्रार्थना करे कि, रक्त जिसके कांटे हैं, अर्जुनके बाणोंको धारणकरनेवाली, रामचन्द्रसे प्रियवचन कहनेवाली शमी पापोंको शान्त करो। और मेरी कीहुई यात्राके विषे हे रामचंद्रसे पूजित! तू सुखपूर्वक विघ्नके ध्वंसकरनेवाली हो। अश्मंतकका पूजन होय तो इस मन्त्रसे प्रार्थना करे कि, हे अश्मंतक महावृक्ष! बडे दोषोंके निवारक तू इष्टपदार्थोंको दे और शत्रुओंको नाशकर। राजा वहां अपने शत्रुकी मूर्त्तिको बना कर उसको शस्त्रसे वींधे। और प्राकृत

मनुष्य शमीकी शाखा (डाली) को लाते हैं, वह निर्मूल अर्थात् प्रमाण रहित है । उस शमीकी जडकी मिट्टीको अक्षतोंसहित लेकर उसको गीत और बाजोंके शब्दोंसहित अपने घरको लावे । फिर अपने मनुष्योंसहित भूषण वस्त्र आदिको पहने और जो स्त्री तरुण अवस्था और सुन्दररूप और जो सौभाग्यवती हों वे नीराजन (आरती) को करें ॥

अथ देशांतरं गच्छतो यात्राकालः ।

अत्र देशांतरं जिगमिषुभिर्विजयमुहूर्ते चन्द्राद्यानुकूल्याभावेपि प्रयाणं कार्यम् ॥ तत्र विजयमुहूर्तो द्विविधः ॥ " ईषत्सन्ध्यामतिक्रम्य किंचिदुद्भिन्नतारकः ॥ विजयो नाम कालोयं सर्वकामार्थसाधकः " इत्येकः ॥ "एकादशो मुहूर्तोपि विजयः परिकीर्तितः ॥ तस्मिन्सर्वैर्विधातव्या यात्रा विजयकांक्षिभिः" इत्यपरः ॥ उक्तद्वयान्यतरमुहूर्ते दशमीयुक्ते प्रस्थानं कार्यं न त्वेकादशीयुक्ते॥"आश्वयुक्शुक्लदशमी विजयाख्याखिले शुभा॥ प्रयाणे तु विशेषेण किं पुनः श्रवणान्विता" इति ज्योतिर्ग्रंथोक्तेरन्यान्यपि कर्माणि मासविशेषनिरपेक्षाण्यत्र चन्द्राद्यानुकूल्याभावेप्यनुष्ठेयानि ॥ मासविशेषे विहितानि तु चूडाकर्मविष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठादीनि न कुर्यात् ॥ राज्ञां पट्टाभिषेके नवमीविद्धा दशमी श्रवणयुतापि न ग्राह्या किं त्वौदयिक्येव ग्राह्या ॥

जो देशान्तरको जाना चाहते हों वे इस दशमीके दिन विजय मुहूर्तमें चंद्र आदिको अनुकूल न होनेपर भी गमन करें। विजय मुहूर्त दो प्रकारका है । उसमें प्रथम तो यह है कि, कुछ संध्याके अनंतर जब कुछ तारे उदय होगये हों उस कालको विजय कहते हैं । वह सब कार्योंका साधक है। और दूसरा यह है कि, दशमीके ग्यारहवें मुहूर्तको भी विजय कहते हैं, उसमें विजयकी आकांक्षावाले मनुष्य यात्राको करें। कहे हुए दोनों मुहूर्तोंमेंसे अन्यतर दशमीयुक्त मुहूर्तमें प्रस्थानको करें, एकादशीसे युक्तमें नहीं । इसमें आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमीको विजय कहते हैं। प्रयाणके लिये वह विशेषकर शुभ है और जो इसमें श्रवणका योग होय तो कुछ कहनाही नहीं अर्थात् अत्यन्तही श्रेष्ठ है । इस ज्योतिर्ग्रंथके वचनसे अन्य भी कर्म इसमें चंद्र आदि अनुकूलके न होनेपर भी वे करने, जिनमें मासविशेषकी अपेक्षा न हो । मासविशेषकी अपेक्षासे जो चूडाकर्म, विष्णु आदिकी प्रतिष्ठा आदि कर्म कहे हैं वे नहीं करने। राजाओंको राज्याभिषेकमें श्रवणसे युक्त भी दशमी नवमीसे विद्धा न ग्रहण करनी किन्तु उदयकालमें जो हो वह ग्रहण करनी ॥

अथ कार्तिकस्नानविधिः ।

आश्विनस्य शुक्लां दशमीमेकादशीं पौर्णमासीं वारभ्य मुहूर्तावशिष्टायां रात्रौ तीर्थादौ गत्वा प्रत्यहं मासपर्यंतं कार्तिकस्नानं कार्यम् ॥ तत्प्रकारः विष्णुं स्मृत्वा देशकालौ संकीर्त्य ॥ " नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ नमस्तेस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते " इत्यर्घ्यं दत्त्वा ॥ "कार्तिकेहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥ ध्यात्वाहं त्वां च

देवेश जलेस्मिन्स्नातुमुद्यतः ॥ तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु " ॥ इति मन्त्राभ्यां स्नात्वा पुनरर्घ्यं द्विर्दद्यात् ॥ तत्र मन्त्रौ ॥"नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥ व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे"॥ कुरुक्षेत्रगंगापुष्करादितीर्थविशेषेण फलविशेषः ॥ अथान्योपि विशेषः ॥ "कार्तिकं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ॥ जपन्हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जलं विशेत् ॥ नाभिमात्रे जले तिष्ठन्व्रती स्नायाद्यथाविधि"॥ इदं कार्तिकस्नानं प्रातःस्नानं प्रातःसन्ध्यां च कृत्वा कार्यम् ॥ ताभ्यां विनेतरकर्मानधिकारात् ॥ यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिस्तथाप्यत्र वचनबलादुदयात्पूर्वं सन्ध्यां समाप्य कार्तिकस्नानं कार्यमिति निर्णयसिन्धावुक्तम् ॥ न चैवं ग्रन्थांतरे दृश्यते ॥ एवं मासस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात् ॥

आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमी, एकादशी वा पूर्णिमासीसे लेकर कार्तिकस्नान एक मास पर्यंत जो मुहूर्तमात्र शेष रात्रिमें उठकर प्रतिदिन तीर्थमें कहा है उसका प्रकार दिखाते हैं। मनुष्य विष्णुका स्मरण और देश कालका संकीर्तन करके कमल जिसकी नाभिमें है, जलमें जो शयन करते हैं उन आपको नमस्कार है। हे हृषीकेश ! आप अर्घ्यको ग्रहण करो । इस मंत्रसे अर्घ्यको देकर फिर इन मंत्रोंसे स्नान करके दो अर्घ्योंको दे । कि, हे जनार्दन ! कार्तिकमें मैं प्रातःस्नानको हे दामोदर ! आपकी प्रीतिके लिये करताहूँ । हे देवेश ! लक्ष्मीसहित आपका ध्यान करके इस जलमें स्नान करनेका मैं उद्यत हुआ हूँ। इससे हे दामोदर ! आपकी कृपासे मेरे पाप नाशको प्राप्त हों । अर्घ्यके ये मंत्र हैं कि, पापके नाश करनेवाला नित्य और नैमित्तिक जो कार्तिकस्नान है उसमें दियेहुए अर्घ्यको हे हरे ! राधा सहित आप ग्रहण करो । कार्तिक मासमें जिसने विधिसे स्नान किया है ऐसे व्रती मेरे अर्घ्यको राधासहित आप ग्रहण करो । कुरुक्षेत्र, गंगाआदि तीर्थमें स्नानका विशेष फल कहा है । इसमें अन्यभी विशेष कहा है कि, जो जितेन्द्रिय मनुष्य संपूर्ण कार्तिकमासमें स्नान करै और हविष्य (खीर) का भोजन तथा जप करनेसे सब पापोंसे मुक्त होता है। भागीरथी (गंगा), विष्णु, शिव और सूर्य इनका स्मरण करताहुआ जलमें घुसे और नाभिमात्र जलमें खडा होकर विधिपूर्वक स्नान करै। यह कार्तिकस्नान प्रातःस्नान, प्रातःसंध्याको करके करना । क्योंकि, इनके विना अन्य कर्म करनेका अधिकार नहीं है । यहां निर्णयसिंधुमें यह कहा है कि, यद्यपि प्रातःकालकी संध्याकी समाप्ति सूर्योदयके होनेपर होती है, तथापि वचनके बलसे उदय होनेसे पूर्वही समाप्ति करके कार्तिकस्नानको करे । यह बात अन्य ग्रंथोंमें नहीं दीखती । इस प्रकार मासपर्यंत स्नान करनेकी शक्ति न होय तो तीन दिनही स्नान करे ॥

अथ मासव्रतानि ।

अन्येषामपि कार्तिकमासव्रतानामत्रैवारंभः ॥ तानि यथा ॥ " तुलसीदललक्षेण कार्तिके योर्चयेद्धरिम् ॥ पत्रेपत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम् " ॥ तुलसीमंजरीभिर्हरिहरार्चने मुक्तिः फलम् ॥ रोपणपालनस्पर्शैः पापक्षयः ॥ तुलसी-

छायायां श्राद्धात्पितृतृप्तिस्तुलसीशोभितगृहे तीर्थरूपे यमकिंकरा नायांति ॥ इत्यादि तुलसीमाहात्म्यम् ॥ एवं धात्रीमाहात्म्यमपि ॥ "कार्तिके धात्रिवृक्षाधश्चित्रान्नैस्तोषयेद्धरिम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या स्वयं भुंजीत बन्धुभिः" ॥ धात्रीछायासु श्राद्धं धात्रीपत्रैः फलैश्च हरिपूजनं च महाफलम् ॥ देवर्षिसर्वयज्ञतीर्थानां धात्रीवृक्षे निवासोक्तेः ॥

अन्य कार्तिक व्रतोंका आरंभभी इन पूर्वोक्त तिथियोंमेंही होता है। वे व्रत इस प्रकार हैं कि, जो मनुष्य कार्तिक मासमें लक्ष तुलसीदलोंसे हरिका पूजन करताहै उसको पत्र पत्रपर मुक्ता (मोती) अर्पण करनेका फल हे मुनिश्रेष्ठ ! प्राप्त होताहै । तथा तुलसीकी मंजरियोंसे पूजन जो विष्णु महादेवका करै उसको मुक्तिरूप फल प्राप्त होताहै । और तुलसीके लगाने और पालन स्पर्श करनेसे पापोंका नाश होताहै । तुलसीकी छायामें श्राद्ध करनेसे पितराकी तृप्ति होतीहै । तुलसीसे शोभितहुए तीर्थरूप गृहके विषै यमराजके किंकर नहीं आते इत्यादि तुलसीका अत्यंत माहात्म्य है । इसी प्रकार धात्रीमाहात्म्यभी है कि, कार्तिक मासके विषै विचित्र (अनेक प्रकार) अन्नोंसे धात्री (आमला) के वृक्षके नीचे हरिको प्रसन्न करै । ब्राह्मणोंको भोजन करावै और बांधवों सहित आप भोजन करै । तथा धात्रीवृक्षकी छायामें श्राद्ध तथा धात्रीके पत्र और फलोंसे हरिका पूजन करनेसे अत्यंत फल होता है । क्योंकि, देवता, ऋषि, संपूर्ण यज्ञ और तीर्थ इनका धात्रीवृक्षके विषैही निवास है ॥

अत्रैव हरिजागरविधिः ।

" जागरं कार्तिके मासि यः कुर्यादरुणोदये ॥ दामोदराग्रे सेनानीर्गोसहस्रफलं लभेत् ॥ शिवविष्णुगृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ॥ कुर्यादश्वत्थमूलेषु तुलसीनां वनेष्वपि ॥ विष्णुनामप्रबंधानि यो गायेद्विष्णुसन्निधौ ॥ गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ॥ वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत् ॥ सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ॥ सर्वमेतल्लभेत्पुण्यं तेषां तु द्रव्यदः पुमान् ॥ अर्चनाद्दर्शनाद्वापि तत्षडंशमवाप्नुयात् " इति कौस्तुभे ॥ सर्वाभावे ब्राह्मणानां विष्णुभक्तानां वाश्वत्थवटयोर्वा सेवनं कुर्यादिति तत्रैव ॥

इस कार्तिकमासमें हरिजागरण विधिको दिखाते हैं । हे सोमकार्तिक ! कार्तिक मासके विषै अरुणोदयके समय दामोदरके आगे जो जागरणको करै वह हजार गौ दानके फलको प्राप्त होताहै । जो शिव वा विष्णुका मंदिर न होय तो सर्व काम अन्य देवालयके विषै करै । अश्वत्थ (पीपल) की मूल वा तुलसीके वनके विषै करै । जो मनुष्य विष्णुके निकट विष्णुके नामोंको गाता है उसको हजार गोदानका फल प्राप्त होता है । और जो बाजे बजाता है उसको वाजपेय यज्ञका फल और जो नाचता है उसको समस्त तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त होता है । और इन बाजेवाले आदिको जो द्रव्य देता है उसको ये सब फल प्राप्त होते हैं । और जो पूजा वा दर्शन करता है उसको छठे हिस्सेका फल प्राप्त होता है । यह कौस्तुभ ग्रंथमें लिखा है और यहभी लिखा है कि, जो कुछ न मिलै तो ब्राह्मण वा विष्णुके भक्त अथवा पीपल वा वट (बड) की सेवा करै ॥

अथ व्रतांतराणि ।

" सरोरुहाणि तुलसी मालती मुनिपुष्पकम् ॥ कार्तिके विहितान्येवं दीपदानं च पंचमम् " ॥ कार्तिके मासोपवासो वानप्रस्थयतिविधवाभिः कार्यः ॥ गृहस्थैर्न कार्यः ॥ "कृच्छ्रं वाप्यतिकृच्छ्रं वा प्राजापत्यमथापि वा ॥ एकरात्रं व्रतं कुर्यात्त्रिरात्रव्रतमेव वा ॥ शाकाहारं फलाहारं पयोहारमथापि वा ॥ चरेद्यवान्नहारं वा संप्राप्ते कार्तिके व्रती" ॥

और कार्तिकमासमें विष्णुके ऊपर कमल, तुलसी, मालती और अगस्त्यके पुष्पोंको चढावै । दीपदान करै । कार्तिकमासके उपवासको वानप्रस्थ, यति और विधवा भी करै, गृहस्थी न करै । कार्तिक मासमें व्रती मनुष्य कृच्छ्र वा अतिकृच्छ्र वा प्राजापत्य वा एकरात्र वा त्रिरात्र व्रतको करै । शाकका आहार, फलाहार वा दुग्धपान वा यवोंके आहारको करै ॥

अथ कार्तिके वर्ज्यानि ।

पलांडुलशुनहिंगुच्छत्राकगृंजनमूलकालाबुशिग्रुवृंताककूष्मांडबृहतीफलकालिंगकपित्थतैललवणशाकद्विपाचितान्नपर्युषितान्नदग्धान्नानि माषमुद्गमसूरचणककुलित्थनिष्पावाढक्यादिद्विदलानि च वर्जयेत् ॥ सप्तम्यां धात्रीफलं तिलांश्चाष्टम्यां नालिकेरं रविवारे धात्रीफलं सर्वदा वर्ज्यम् ॥

अब कार्तिकमासमें वर्ज्य (निषिद्ध) पदार्थोंको कहते हैं । कार्तिकमासके विषे सलगम, लहसन, हींग, छत्राक, गाजर, मूली, तूंबी, सहजना, बैंगन, पेठा, बृहतीफल (कटैहर), तरबूज, कैथ, तैल, लवण, शाक, हलवा आदि द्विपाचित (दो बार जो पकाया जाय) अन्न, पर्युषित (बासी) अन्न, दग्धान्न (जलाहुआ) इनको और माष (उडद), मुद्ग, (मूंग), मसूर, चणक, कुलित्थ (कुलथी), निष्पाव (चौला) और आढकी (अरहर) इनकी दालको वर्ज दे । और सप्तमीके दिन आमला और तिल, अष्टमीको नारियल वर्ज दे । रविवारको आमला सब कालमें वर्जित है ॥

मासव्रते दानानि ।

कांस्यपात्रे भोजनवर्जनव्रते कांस्यपात्रं घृतपूर्णं दद्यात् ॥ मधुत्यागे घृतपायसशर्करादानं समाप्तौ कार्यम् ॥ तैलत्यागे तिलदानम् ॥ कार्तिके मौनभोजी सतिलां घण्टां दद्यात् ॥ स्वर्णयुतानि माषयुतानि त्रिंशत्कूष्मांडान्यत्र मासे दद्यात् ॥ कार्तिके कांस्यभोजी कृमिभुक् ॥ फलवर्जने फलं रसत्यागे रसः धान्यत्यागे धान्यानि च देयानि सर्वत्र गोदानं वा ॥ एकतः सर्वदानानि दीपदानं तथैकतः ॥ कार्तिके दीपदानस्य कलां नार्हति षोडशीम् " एतावद्व्रतासंभवे चातुर्मास्यव्रतासंभवे कार्तिके किंचिद्व्रतमवश्यं कार्यम् ॥ "अव्रतः कार्तिको येषां गतो मूढधियामिह ॥ तेषां पुण्यस्य लेशोपि न भवेत्सूकरात्मनाम् " इत्युक्तेः ॥ शालग्रामादिदेवताग्रे स्वस्तिकमण्डलादिकं रंगवल्ल्यादिना करोति सा स्वर्गादिफलं भुक्त्वा सप्तजन्मसु

वैधव्यं नाप्नोति ॥ कार्तिके पुराणेतिहासश्रवणारंभसमाप्ती विहिते ॥ तत्प्रकारः ॥ "ब्राह्मणं वाचकं कुर्यान्नान्यवर्णजमादरात् ॥ श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ विस्पष्टमद्रुतं शांतं स्पष्टाक्षरपदं तथा ॥ कलास्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥ ब्राह्मणादिषु सर्वेषु ग्रन्थार्थं चार्पयेन्नृप ॥ य एवं वाचयेद्राजन्स विप्रो व्यास उच्यते ॥ समाप्तेषु पुराणेषु शक्त्या तं तर्पयेन्नृप ॥ वाचकः पूजितो येन प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥ श्राद्धे यस्य द्विजो भुंक्ते वाचकः श्रद्धयान्वितः ॥ भवंति पितरस्तस्य तृप्ता वर्षशतं नृप " इति ॥ कार्तिकस्नानकालेभिलाषाष्टकं काशीखंडोक्तं पुत्रकामेन पठितव्यम् ॥ अत्रैव दुग्धव्रतं समर्प्य दुग्धदानं कृत्वा द्विदलव्रतं संकल्पयेत् ॥ अत्रोत्पत्तौ येषां दलद्वयं दृश्यते ते वर्जनीया इत्येके ॥ अन्ये त्वेवं लक्षणायां वचनाभावात्स्वरूपतो येषां द्विदलं दृश्यते ते वर्ज्या न त्वन्ये नापि पत्रपुष्पादिकमित्याहुः ॥ एवमन्यान्यपि तांबूलकेशकर्तनादिवर्जनरूपाणि व्रतानि ज्ञेयानि ॥

जो कार्तिकमासमें कांसीके पात्रमें भोजन न करनेरूप नियमको धारे तो घृतसे पूरित कांसीके पात्रका दान करे। और जो मधु (मीठा) को त्यागे तो घी, पायस और शर्करा (खांड) इनका दान समाप्ति होनेपर करे। जो तैलको त्यागे वह तिलोंका दान और जो कार्त्तिकमें मौनी होकर भोजन करे वह तिलसहित घंटाका दान करे। सुवर्ण और उडदसहित इसमें तीस कूष्माण्ड (पेठा) के फलोंका दान करना। जो कार्तिकमासमें कांस्यपात्रमें भोजन करे। वह कृमिभुक् (कीडेभक्षक) समझना । अर्थात् कार्तिकमें कांसीके पात्रमें सर्वथा भोजनका निषेध है। फलोंके त्यागमें फलका, रसके त्यागमें रसका, धान्य (नाज) के त्यागमें धान्यका दान करे। अथवा सबोंके त्यागमें केवल गोदान समझना । संपूर्ण दान एक तरफ हैं और दीपदान एकतरफ है । इससे कार्तिकमासके दीपदानकी सोलहवीं कलाको वे नहीं प्राप्त होते। अर्थात् कार्तिक मासके दीपदानका सब दानोंसे अधिक फल होता है । यदि इतने व्रत न होसकें वा चातुर्मास्यका व्रत न होसके तो कार्तिकमासमें कोई व्रत अवश्य करना । क्योंकि, यह वचन है कि, जिन मूढबुद्धिवाले मनुष्योंका कार्तिकमास व्रतसे शून्यही व्यतीत होगया उन सूकर समान पुरुषोंको पुण्यका लेश भी नहीं होता। जो स्त्री शालग्रामकी प्रतिमाके आगे रंगबेल आदिसे स्वस्तिक मण्डल आदिको बनाती है, वह स्त्री स्वर्ग आदि फलको भोगकर सात जन्मपर्यंत विधवा नहीं होती। कार्तिकमें पुराण, इतिहासोंके श्रवणका आरंभ और समाप्ति कही है, उसकी रीति दिखाते हैं। कि, पुराणके बांचनेवाला ब्राह्मण हो अन्यवर्ण नहीं। वह आगे ब्राह्मणको बैठारकर चारों वर्णोंको पुराण सुनावे। इस प्रकार पाठ करे कि, जिसमें स्पष्ट अक्षर निकलें शीघ्रता न हो जिसमें पद और अक्षर स्पष्ट हों। कला और स्वरसे युक्त हो, रस और भावसे युक्त हो। फिर हे राजन् ! ब्राह्मण आदि सब वर्णोंको ग्रंथका अर्थ सुनावे इस प्रकार जो बाचता ह उस ब्राह्मणको व्यास कहते हैं। जब पुराण समाप्त होजाय तब शक्तिके अनुसार उस ब्राह्मणकी तृप्ति करे। क्योंकि, जिसने पूर्वोक्त वाचकको पूजा है उसके ऊपर सब देवता प्रसन्न होजाते हैं। और जिसके श्राद्धके विषे वाचकब्राह्मण श्रद्धसे भोजन करता है, उसके पितर हे राजन् ! सौ वर्षतक तृप्त रहते हैं। कार्तिकस्नानके

समय पुत्रकी कामनावाला काशीखण्डमें कहीं आठ अभिलाषाओंको पढे। इसमें दुग्धव्रतको समाप्त करके दुग्ध दान करना और उससे पीछे द्विदलव्रतका संकल्प करे। इसमें कोई यह कहते हैं कि, जिनके उत्पत्तिके समय दो दल प्रतीत हों वे वर्जने। और कोई यह कहते हैं कि, इस प्रकार लक्षणसे अर्थ करनेमें कोई वचन प्रमाण नहीं है। इससे जिनके वर्तमान समयमें दो दल स्वरूप (आकार) के विषे प्रतीत हों उनको ही वर्जना। अन्य पत्र पुष्प आदि नहीं। इसी प्रकार अन्य भी ताम्बूल, केशकर्तन (हजामत) आदिके त्यागरूपी व्रत समझने ॥

अथात्राकाशदीप उक्तः।

सूर्यास्ते गृहाददूरे पुरुषप्रमाणं यज्ञियं काष्ठं भूमौ निखन्य तस्य मूर्ध्न्यष्टदलाद्याकृतिनिर्मिते दीपयंत्रमध्ये मुख्यदीपं समंततोष्टाविति संस्थाप्य निवेदयेत्॥ "दामोदराय नभसि तुलायां दोलया सह ॥ प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोनंताय वेधसे" इति मंत्रः ॥ एवं मासमाकाशदीपदानान्महच्छ्रीप्राप्तिः ॥

इसमें आकाशदीप कहा है। कि, सूर्यास्तके समय गृहके निकट पुरुषके बराबर ऊंचे यज्ञिय (ढाक आदि) काष्ठको पृथ्वीमें गाडे और उसके ऊपर अष्टदल आदि आकारसे दीपयंत्रको बनावे। उस अष्टदलके मध्यमें मुख्य दीपकको और चारों तरफ आठ दीपकोंको रखकर इस मन्त्रसे हरिको निवेदन करे कि, दामोदररूप आपको आकाशके विषे तुलासंक्रांतिके विषे दोला (हिंडोला) सहित दीपकको अर्पण करता हूं, अनंतरूप आपको नमस्कार है। इस प्रकार मासतक आकाश दीपके दान करनेसे महान् श्रीकी प्राप्ति होती है ॥

अथ कोजागरव्रतम्।

आश्विनपौर्णमास्यां कोजागरव्रतम् ॥ सा पूर्वत्रैव निशीथव्याप्तौ पूर्वा ॥ उत्तरदिने एव दिनद्वयेपि वा निशीथव्याप्तौ दिनद्वये निशीथास्पर्शे वोत्तरैव॥ केचित्पूर्वदिने निशीथव्याप्तिरेव परदिने प्रदोषव्याप्तिरेव तदा परेत्याहुः ॥ अत्र लक्ष्मींद्रयोः पूजनं जागरणमक्षक्रीडा च विहिता ॥ तत्र पद्मासनस्थां लक्ष्मीं ध्यात्वाक्षतपुंजे ॐलक्ष्म्यै नम इत्यावाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य ॥ "नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये ॥ या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्" इति पुष्पांजलिं दत्त्वा नमेत्॥ "चतुर्दंतसमारूढो वज्रपाणिः पुरंदरः ॥ शचीपतिश्च ध्यातव्यो नानाभरणभूषितः" इति ध्यात्वाऽक्षतपुंजादाविंद्राय नम इति संपूज्य ॥ "विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये॥ पौलोम्यालिंगितांगाय सहस्राक्षाय ते नमः" इति पुष्पांजलिं दत्त्वा नमेत् ॥ "नारीकेरोदकं पीत्वा अक्षक्रीडां समारभेत् ॥ निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी ॥ तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः" ॥ नारीकेरान्पृथुकांश्च देवेभ्यः पितृभ्यः समर्प्य बंधुभिः सह स्वयं भक्षयेत् ॥ अस्यामेवाश्वयुजीकर्माश्वलायनैः कार्यम् ॥ तच्च पर्वद्वैधे पूर्वाह्णसंधौ शेषपर्वणि प्रकृतीष्टिं कृत्वा कार्यम् ॥ अपराह्णसंधौ विकृतिमिमां कृत्वा प्रकृतेरन्वाधानम् ॥ तत्प्रयोगोन्यत्र ज्ञेयः ॥

आश्विनकी पूर्णिमाको कोजागर व्रतको कहते हैं। वह जो पहिलेही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी होय तो पहिली और जो दूसरे दिनही हो वा दोनों दिन निशीथ व्यापिनी हो वा दोनों दिन अर्द्धरात्रिमें जिसका स्पर्श होय तो परली ग्रहण करनी। और कोई यह कहते हैं कि, जो पहिलेदिन अर्द्धरात्रव्यापिनी और परलेंदिन प्रदोष व्यापिनीही होय तो परली लेनी। इसपूर्णिमाके दिन लक्ष्मी और इंद्रका पूजन, जागरण और पासोंसे खेलना लिखा है। तहां पद्मासनपर बैठीहुई लक्ष्मीका ध्यान करके अक्षतोंके पुंज (समूह) में 'ॐ लक्ष्म्यै नमः' इस मन्त्रसे लक्ष्मीका आवाहन और षोडश उपचारोंसे पूजन करे। फिर इस मन्त्रसे पुष्पांजलि देकर नमस्कार करे कि, हे विष्णुकी प्यारी ! तू सब देवताओंको वरके देनेवाली है तुझे नमस्कार है। जो तेरे शरणागतोंकी गति है वह तेरे पूजनसे मेरी हो। फिर चार दाँतवाले हाथीके ऊपर बैठेहुए वज्र जिसके हाथमें है ऐसे इंद्राणीके पति नानाप्रकारके आभूषणोंसे शोभित इंद्रका ध्यान करते हैं, इस मन्त्रसे इन्द्रका ध्यान करके अक्षतके पुंज आदिमें 'इंद्राय नमः' इस मंत्रसे पूजन करके इस मंत्रसे पुष्पोंकी अंजलि देकर नमस्कार करे। विचित्र ऐरावतके ऊपर स्थित और देदीप्यमान वज्र जिसके हाथमें है, इंद्राणी जिसके शरीरसे आलिंगन कररही है ऐसेसहस्र नेत्रवाले तुझको नमस्कार है। फिर नारियलके जलको पीकर अक्षों (पांसाओं) से क्रीडा करे। अर्द्धरात्रिके समय वरके देनेवाली लक्ष्मीजी कौन जागता है इस प्रकार कहती हुई यह कहती है कि, जो अक्षोंसे क्रीडाकरै है उसको मैं धन दूंगी। नारियल और मोटे चाँवलोंको पितरोंके अर्पण करके बांधवसहित आप भोजन करे। इसी पूर्णिमाको आश्वलायन आश्वयुजी कर्मको करते हैं, वह दोनों पर्वोंके विषे पूर्वाह्णकालकी संधिमें शेषके पर्वके विषे प्रकृति यज्ञको करके करना। और अपराह्णकालकी संधिमें इस विकृति यज्ञको करके प्रकृतिका अन्वाधान करे। उसका प्रयोग अन्य ग्रन्थमें समझना ॥

अथाग्रयणकालः ।

आश्विनकार्तिकयोः पौर्णमास्याममावास्यायां वा शुक्लपक्षगतकृत्तिकादिविशाखांतनक्षत्रेषु शुक्लपक्षस्थरेवत्यां वा व्रीह्याग्रयणम् एवं श्रावणभाद्रपदयोरुक्तेषु पर्वसु नक्षत्रेषु वा श्यामाकाग्रयणम् ॥ चैत्रवैशाखयोः पर्वादिषु यवाग्रयणम् ॥ तत्र पौर्णमासीपर्वणि संगवात्पूर्वसंधौ पूर्वदिने आग्रयणं कृत्वा प्रकृत्यन्वाधानम् ॥ मध्याह्नात्परत्र संधौ संधिदिने आग्रयणं कृत्वा प्रकृत्यन्वाधानम् ॥ मध्याह्ने संगवादूर्ध्वं मध्याह्नात्पूर्वत्र परत्र वा संधौ संधिदिने आग्रयणेष्टिं कृत्वा प्रकृतीष्टिः सद्यः परदिने वा कार्या ॥ दर्शे तु पूर्वाह्णेऽपराह्णे वा संधौ यथाकालं दर्शेष्टिं कृत्वा प्रतिपन्मध्ये आग्रयणेष्टिः कार्या ॥ एवं नक्षत्राग्रयणपक्षेपि पौर्णमासेष्टेः प्राक् दर्शेष्टेः परं यथा भवेत्तथाग्रयणं कार्यम् ॥ तथा च दीपिकादर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रयणकं प्राक् पौर्णमासाच्च तदिति ॥ यद्यपि अथो पूर्वाह्ण एव क्षय इत्युपक्रमात्पूर्वाह्णसंधावेवायं क्रम इति हेमाद्रिसिद्धांतानुसारि दीपिकामतम् ॥ तथापि सर्वावस्थे संधावित्थमेव क्रम इति कौस्तुभसिद्धांतानुसार्यत्रत्यसिद्धांतो ज्ञेयः ॥ अत्र पक्षे अथोपदं चार्थ योज्यम् ॥ पूर्वाह्णे पर्वपक्षे चेत्यर्थः ॥ इत्थं च कृष्णपक्षे न भवतीति सि-

द्यम् ॥ एतद्दीपिकाकारमतममावास्यापर्वण्याग्रयणविधानस्याखंडदर्शे वैयर्थ्यापत्त्या न युक्तमिति गृह्याग्निसागरोक्तिर्न समीचीना प्रतिभाति ॥ विकृत्यंतराणां खंडपर्वणि प्रकृत्युत्तरं प्रतिपद्यनुष्ठानेपि पर्वानुग्रहसंमतिवदखंडदर्शेपि प्रतिपदि क्रियमाणाग्रयणस्य दर्शपर्वानुग्रहसंमतिसंभवात् ॥ खंडदर्शे दर्शपर्वविधानसार्थक्यसंभवाच्चेति दिक् ॥ श्रावणादौ श्यामाकाग्रयणं न कृतं चेच्छरदि व्रीह्याग्रयणेन समानतंत्रं कार्यम् ॥ तत्र स्मार्ते व्रीह्याग्रयणं श्यामाकाग्रयणं च तंत्रेण करिष्ये इति संकल्प्येंद्राग्निविश्वेदेवार्थमष्टौ व्रीहिमुष्टीन्निरूप्य शूर्पांतरे श्यामाकान्सोमाय नाम्ना निरूप्य पुनः प्रथमशूर्पे द्यावापृथिव्यर्थं व्रीहिनिर्वापः ॥ एवं होमेपि विश्वेदेवहोमात्परं सौम्यश्यामाकचरुं हुत्वा द्यावापृथिवीहोमः ॥ आश्विनपौर्णमास्यामपराह्णादिसंधावाग्रयणे क्रियमाणे आश्वयुजीकर्मणापि समानतन्त्रता कार्या ॥ तथा च जीर्णव्रीहिचरुर्नवव्रीहिचरुर्नवश्यामाकचरुश्चेति स्थालीत्रये चरुत्रयम् ॥ पूर्वाह्णादिसंधौ तु संधिदिने प्रकृतियागोत्तरमाश्वयुजीपूर्वदिने संधिदिने वा प्रकृतियागात्पूर्वमाग्रयणम् इति कालैक्याभावान्नैकतंत्रता ॥ श्यामाकचर्वसंभवे श्यामाकतृणैः प्रस्तरं कृत्वा स्रुवादुत्तरत आस्तीर्य तत्र स्रुचो निधानं तावतैव श्यामाकाग्रयणसिद्धिरिति वृत्तिकृन्नारायणः ॥ यवाग्रयणं तु कृताकृतम् ॥ व्रीह्याग्रयणस्य वसन्तपर्यंतं गौणकालः ॥ यवाग्रयणस्य वर्षर्तुपर्यंतम् ॥ अनापदि गौणकाले कुर्वन्कालातिपत्तिप्रायश्चित्तपूर्वमाग्रयणं कुर्यात् ॥ आपदि गौणकाले कुर्वन्प्रायश्चित्तं न कुर्यात् ॥ गौणकालेप्यतिक्रांते वैश्वानरेष्टिं प्रायश्चित्तं कृत्वातिक्रांताग्रयणं कुर्यात् ॥ स्मार्ते तु वैश्वानरदेवताकः स्थालीपाको ग्राह्यः य एवाहिताग्नेः पुरोडाशास्त एवौपासनाग्निमतश्चरव इत्युक्तेः ॥

अब आग्रयणकालको दिखाते हैं। अश्विन और कार्तिककी पूर्णिमा वा अमावस्याके दिन वा शुक्लपक्षकी कृत्तिकासे लेकर विशाखापर्यंत नक्षत्रोंमें वा शुक्लपक्षकी रेवतीमें व्रीह्याग्रयणको करे। इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपदमासके विषे कहेहुए पुनर्वसु नक्षत्रोंमें श्यामाक आग्रयणको करे। चैत्र और वैशाखमासमें पर्व आदिमें यवाग्रयणको करे । तहां पूर्णमासी पर्वके विषे संगवकालसे पूर्व सन्धि होय तो पहिले दिन आग्रयणको करके प्रकृतिका अन्वाधान करै। मध्याह्नसे पीछे संधि होय तो संधिके दिन आग्रयणको करके प्रकृतिका अन्वाधान करे । मध्याह्नकालके विषे संगवकालसे पीछे मध्याह्नसे पूर्व वा पीछे संधि होय तो संधिके दिन आग्रयणको करके प्रकृतिरूप इष्टि (यज्ञ) को उसी समय वा परले दिन करे। और अमावस्याको पूर्वाह्न वा अपराह्नकालकी संधिमें यथाकाल दर्शेष्टिको करके प्रतिपदाके मध्यमें आग्रयण इष्टिको करै । इसी प्रकार नक्षत्रके दिन आग्रयण करनेरूप पक्षमें भी पूर्णमासीकी इष्टिसे पूर्व और दर्शेष्टिसे परे जिस प्रकार हो तिस प्रकार आग्रयणको करै, सोई दीपिकामें लिखा है कि, आग्रयण दर्शेष्टिसे पीछे और पूर्णिमाकी इष्टिसे पीछे कहा है। यद्यपि पूर्वाह्णकालमें ही क्षय होजाय तो ऐसा प्रारंभ करनेसे यह क्रम पूर्वाह्णकालकी संधिमेंही है, यह हेमा-

द्विसिद्धान्तके अनुसारि दीपिकाका मत है । तथापि सबकालकी संधिमें इसी प्रकारका क्रम समझना । इस कौस्तुभसिद्धान्तकी अनुसारी सिद्धान्त यहांभी समझना। इस पक्षमें अथ शब्द चकारके अर्थमें पूर्वाह्न शब्द पर्वके अर्थमें योजना करके लगाना । पूर्वाह्णकालमें पर्वके क्षय होजानेपर आग्रयण करना । इससे यह सिद्ध हुआ कि, आग्रयण कृष्णपक्षमें नहीं होता । इससे गृह्याग्निसागरकी कहीहुई यह पूर्वोक्त बात समीचीन नहीं प्रतीत होती है क्योंकि, अखण्ड अमावस्यामें आग्रयणकी विधि व्यर्थ होजायगी, इससे यह पूर्वोक्त दीपकाकारका मत युक्त नहीं है क्योंकि, खंडदर्शमें भी दर्शपर्वकी विधि सार्थक होसकती है यही मार्ग है । यदि श्रावण आदिमें श्यामाकका आग्रयण न किया होय तो शरदऋतुमें व्रीहि आग्रयणके समान एक तंत्रसे करना । वहां स्मार्तकर्मकी यह विधि है कि, व्रीह्याग्रयण और श्यामाकाग्रयण तंत्रसे करता हूं यह संकल्प करके और इंद्र अग्नि विश्वेदेवाओंके लिये आठ व्रीहियोंकी मुष्टि रखकर दूसरे रूपमें सोमनामसे श्यामाकोंको रखकर फिर पहिले रूपमें द्यावापृथिवीके लिये व्रीहियोंका निर्वाप करे (रक्खे) इसी प्रकार होममें भी विश्वेदेवाओंके होमसे परे (पीछे) सौम्य श्यामाकके चरुको होमकर द्यावापृथिवी होमको करे। और अश्विनकी पूर्णिमाके दिन अपराह्ण आदिकी संधिमें आग्रयण करना होय तो आश्वयुजी कर्मके संग भी आग्रयणकी एकतंत्रता करनी । तिससे पुराणे व्रीहियोंका चरु, नये व्रीहियोंका चरु और नये श्यामाकोंका चरु ये तीन चरु होते हैं । और पूर्वाह्नकी संधिमें तो संधिके दिन प्रकृति यज्ञके अनंतर अथवा आश्वयुजीके पूर्व दिन, संधिके दिन प्रकृति यज्ञके पूर्व आग्रयण होता है इस प्रकार कालकी एकताके अभावसे एकतंत्रता नहीं होती है। और श्यामाकका चरु न मिले तो श्यामाकके तृणोंका प्रस्तर बनाकर और स्रुवसे उत्तर दिशामें बिछाकर उसके ऊपर स्रुचको रखदे, इतनेसेही श्यामाकआग्रयणकी सिद्धि होती है, यह वृत्तिग्रंथके कर्ता नारायण कहते हैं । यवाग्रयण तो कृताकृत है अर्थात् करो चाहे न करो । व्रीह्याग्रयणका वसंतपर्यंत गौणकाल है और यवाग्रयणका वर्षपर्यंत गौणकाल है । यदि अनापत्ति (स्वस्थता) में गौणकालमें करे तो कालका जो अवलंघन उसके प्रायश्चित्तको करके आग्रयण करै और आपत्तिमें तो गौणकालमें करता हुआ भी प्रायश्चित्त न करे । गौणकालभी वीतजाय तो वैश्वानर यज्ञरूप प्रायश्चित्तको करके अतिक्रात आग्रयणको करै । स्मार्त आग्रयणमें तो वैश्वानर है देवता जिसका ऐसा स्थालीपाक ग्रहण करना क्योंकि, जो आहिताग्निके पुरोडाश हैं वेही औपासनाग्निवालेके चरु हैं यह कहा है ॥

अथ प्रथमाग्रयणम् ।

प्रथमाग्रयणस्य शरदत्यये विभ्रष्टेष्टिं तद्देवताकस्थालीपाकं वा कृत्वाऽऽगामिमुख्यकाले प्रथमाग्रयणं कार्यम् ॥ गौणकाले प्रथमाग्रयणं न भवति ॥ अनारब्धानां दर्शपूर्णमासाग्रयणादीनां प्रायश्चित्तविकल्पाद्विभ्रष्टेष्टिरपि विकल्पितो ज्ञेया ॥ आग्रयणमकृत्वा किमपि नवोत्पन्नं सस्यं न भक्षणीयम् ॥ " अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः ॥ वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा ॥ यद्वा समिन्द्रायेति शतवारं जपेन्मनुम् " ॥

यदि प्रथम आग्रयण शरदृतुमें न होसके तो विभ्रष्ट यज्ञको वा उसकी देवताके स्थालीपाकको करके आगामि (आनेवाला) मुख्य कालमें प्रथम आग्रयण करै। और प्रथम आग्रयण गौणकालमें नहीं होता और जिनका प्रारंभ नहीं किया ऐसे जो दर्श, पूर्णमास, आग्रयण आदि हैं उनके प्रायश्चित्तका विकल्प होनेसे विभ्रष्ट इष्टि (यज्ञ) का भी विकल्प जानना। आग्रयणके किये विना कोई भी नवीन अन्न भक्षण नहीं करना। क्योंकि, यह लिखा है कि, जिसने आग्रयण न किया हो वह मनुष्य यदि नवीन अन्न भक्षण करै तो वैश्वानर (अग्नि) के लिये चरु वा पूर्णाहुतिको करै। अथवा 'समिंद्रराय' इस मंत्रको सौ (१००) वार जपे॥

अथाग्रयणानुकल्पाः।

पृथगाग्रयणप्रयोगाशक्तौ प्रकृतीष्टिसमानतन्त्राग्रयणप्रयोगः॥ तत्र पौर्णमासेष्ट्या समानतन्त्रत्वे आदावाग्रयणं प्रधानं पश्चात्प्राकृतं प्रधानं दर्शेष्ट्यैकतन्त्रत्वे पूर्वं दर्शेष्टिप्रधानयागः पश्चादाग्रयणप्रधानयागः॥ अन्यत्पूर्वोत्तरांगजातमाग्रयणविकृतिसम्बन्ध्येव कार्यम्॥ "विरोधे वैकृतं तन्त्रम्" इति सिद्धांतात्॥ एतदसम्भवे नवश्यामाकव्रीहियवैः पुरोडाशं कृत्वा दर्शपूर्णमासौ कुर्यात्॥ यद्वा नवव्रीह्यादिभिरग्निहोत्रहोमं कुर्यात्॥ अथवा नवान्नान्यग्निहोत्र्या गवा खादयित्वा तस्याः पयसाग्निहोत्रं जुहुयात्॥ यद्वा नवान्नेन ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः॥ इदं मलमासे न कार्यम्॥ गुर्वाद्यस्तेपि न कार्यमिति केचित्॥ जीर्णधान्यालाभे तु मलमासादौ कार्यम्॥ अस्यामेव पौर्णमास्यां ज्येष्ठापत्यनीराजनादिकं परविद्धायां कार्यम्॥

अब आग्रयणके अनुकल्पोंको कहते हैं। पृथक् आग्रयण करनेकी शक्ति न होय तो प्रकृति यज्ञके संग एक तंत्रसे आग्रयणके प्रयोगको करे। और इसमें भी पौर्णमास यज्ञके संग एक तंत्रसे करै तो पहिले आग्रयण प्रधान है, पीछे प्राकृत प्रधान है। और दर्शयज्ञके संग एकतंत्र होय तो पहिले दर्शयज्ञका प्रधान प्रयोग होता है। और पीछे आग्रयणका प्रधान प्रयोग होता है। और अन्य जो पहिले और पिछले अंगोंका समूह है वह आग्रयणरूप विकृतिकाही करना क्योंकि, यह सिद्धांत है कि, विरोधमें विकृतिका तंत्र होता है। और यह न होसके तो नवीन श्यामाक व्रीहि और यवोंका पुरोडाश बनाकर दर्श और पौर्णमास करे। अथवा नवीन व्रीहि आदिसे अग्निहोत्रके होमको करै। अथवा नये अन्नोंको अग्निहोत्रकी गौको भक्षण कराकर उसके दूधसे अग्निहोत्रमें होम करै। अथवा नये अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे यह संक्षेप है। यह मलमासमें न करना। और कोई तो यह कहते हैं कि, गुरु आदिके अस्तमें भी न करना। पुराना अन्न आदि न मिले तो मलमास आदिमें भी करना। और परली तिथिसे विद्धा इसी पूर्णमासीको ज्येष्ठ सन्तानका नीराजन (आरती) आदि करना॥

अथ करकचतुर्थी।

आश्विनकृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या॥ दिनद्वये तद्व्याप्त्यादौ संकटचतुर्थीवन्निर्णयः॥

आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्थी करकचतुर्थी होती है, वह चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी । दोनों दिन चन्द्रोदयकी व्याप्ति आदि होयँ तो संकष्टचतुर्थीके समान निर्णय समझना ॥

अथ राधाजयंती ।

कृष्णाष्टम्यां राधाकुंडे स्नानं मथुरामण्डलवासिभिः कार्यम् ॥ सारुणोदयव्यापिनी तदभावे सूर्योदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ आश्विनकृष्णद्वादशी गोवत्सद्वादशी सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये तदव्याप्तौ परा सायंकालाख्यगौणकालसत्त्वात् ॥ उभयत्र तद्व्याप्तौ पूर्वेति बहवः परेति केचित ॥ अत्र वत्सतुल्यवर्णां सवत्सां पयस्विनीं गां संपूज्य गोः पादे ताम्रपात्रेणार्घ्यं दद्यात् ॥ तत्र मन्त्रः ॥ " क्षीरोदार्णवसंभूते सुरासुरनमस्कृते ॥ सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते " ॥ ततो माषादिवटकान् गोग्रासार्थं दत्त्वा प्रार्थयेत् ॥ "सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥ मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि" ॥ तद्दिने तैलपक्वं स्थालीपक्वं गोक्षीरं गोघृतं गोर्दधि तक्रं च वर्जयेत् ॥ नक्तं माषान्नभोजनं भूशय्या ब्रह्मचर्यं च कार्यम् ॥ इमामेव द्वादशीमारभ्य पंचसु दिनेषु पूर्वरात्रे नीराजनविधिर्नारदेनोक्तः ॥ " नीराजयेयुर्देवांश्च विप्रान् गाश्च तुरंगमान् ॥ ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः " इति ॥ त्रयोदश्यामपमृत्युनाशार्थं यमाय निशामुखे वहिर्दीपो देयः ॥

कृष्णाष्टमीको मथुरामण्डलके वासी मनुष्य राधाकुण्डमें स्नान करैं । वह अरुणोदयव्यापिनी लेनी । वह न मिलै तो सूर्योदयव्यापिनी ग्रहण करनी । आश्विनके कृष्णपक्षकी द्वादशी गोवत्स द्वादशी है, वह प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी । दोनों दिन प्रदोष समयमें होय तो परली लेनी। क्योंकि, सायंकालरूप गौणकालमें है । दोनों दिन प्रदोषव्याप्ति होय तो पहिली लेनी यह बहुत कहते हैं । और परली लेनी यह कोई २ कहते हैं । इसमें वत्सके समान है वर्ण जिसका ऐसी दूध देती सवत्सा गौको पूजकर गौके चरणमें तांबेके पात्रसे अर्घ्य दे । उसका मन्त्र यह है कि, हे क्षीरसागरसे उत्पन्न ! और देवता और असुरोंसे नमस्कृत और सर्व देवरूप जो तू है, हे मातः ! अर्घ्यको ग्रहणकरो आपको नमस्कार है । फिर उडद आदिके वटकों (बडों) को गौओंके ग्रासके लिये दे । कि, हे सर्वदेवरूप ! हे सर्व देवताओंसे शोभित ! हे मातः ! हे नन्दिनि ! मेरे वांछितको करो । उस दिन तैलसे पकस्थालीमे पक गौका दूध, दही, घी, तक्र इनको वर्ज दे । रात्रिके समय उडदोंका भोजन, भूमिमें शयन और ब्रह्मचर्य करना । इसी द्वादशीसे लेकर पांच दिनतक पूर्व रात्रमें नीराजन विधि (आरती) नारद मुनिने कही है । कि, स्त्रियां, देवता, ब्राह्मण, गौ, अश्व, अपनेसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ और छोटे और माता है मुख्य जिनमें इन सबका नीराजन करै । त्रयोदशीको अपमृत्युके नाशके लिये यमराजके निमित्त सन्ध्याके समय बाहिर दीप देना ॥

अथ गोत्रिरात्रिव्रतम् ।

इमामेव त्रयोदशीमारभ्य गोत्रिरात्रव्रतमुक्तम् ॥ तत्प्रयोगः कौस्तुभे ॥

इसी त्रयोदशीसे लेकर गौओंका त्रिरात्र व्रत कहा है उसका प्रयोग (विधि) कौस्तुभ ग्रंथमें है ॥

अथाश्विनकृष्णनरकचतुर्दशी ।

आश्विनकृष्णचतुर्दश्यां चन्द्रोदयव्यापिन्यां नरकभीरुभिस्तिलतैलेनाभ्यंगस्नानं कार्यम् ॥ अत्र रात्र्यंत्ययाममारभ्यारुणोदयावधिस्ततश्चंद्रोदयावधिस्ततःसूर्योदयावधिरिति कालत्रये पूर्वपूर्वो जघन्य उत्तरोत्तरः श्रेष्ठः अतश्चंद्रोदयोत्तरो मुख्यः कालः प्रातःकालो गौणः ॥ तत्र पूर्वदिने एव चंद्रोदयव्याप्तौ पूर्वा ॥ परत्रैव तद्व्याप्तौ परा ॥ अस्मिन्पक्षे तद्दिनेऽस्तमयादिकाले विहितमुल्कादानदीपदानादिकं तत्काले चतुर्दश्यभावेपि कार्यम् ॥ दिनद्वये चंद्रोदयव्याप्तौ पूर्वा ॥ दिनद्वये चंद्रोदयाव्याप्तौ पक्षत्रयं संभवति ॥ पूर्वत्र चंद्रोदयोत्तरमुषःकालं सूर्योदयं च व्याप्य प्रवृत्ता चतुर्दशी परत्र चंद्रोदयात्पूर्वं समाप्ता ॥ यथा त्रयोदशी घट्यः ५८ पलानि ५० चतुर्दशी ५७ अस्मिन्प्रथमपक्षे उषःकालैकदेशे चतुर्दशीयुक्तेभ्यंगस्नानं कार्यम् ॥ अथ पूर्वत्र सूर्योदयमात्रं व्याप्य प्रवृत्ता परत्र चंद्रोदयात्पूर्वं समाप्ता ॥ अथवा सूर्योदयास्पर्शेन क्षय एव चतुर्दश्याः ॥ यथा त्रयोदशी ५९ पलानि ५९ चतुर्दशी ५७ यथा वा त्रयोदशी २ तद्दिने चतुर्दशी ५४ अत्र पक्षद्वये परत्र चंद्रोदयेभ्यंगस्नानम् ॥ चतुर्थयामादिजघन्यकाले चतुर्दशीव्याप्तिसत्त्वात् ॥ एतत्पक्षद्वये केचिदरुणोदयात्पूर्वमपि चतुर्दशीमध्ये एव स्नानं कार्यमिति वदंति ॥ अपरे त्वरुणोदयोत्तरं चंद्रोदयादिकालेऽमावास्यायुक्तेपि स्नानमिति वदंति ॥ यत्तु चतुर्दशीक्षये पूर्वत्र त्रयोदश्यां चंद्रोदये स्नानमित्याहुस्तदयुक्तम् ॥अत्राभ्यंगस्नाने विशेषः ॥ "सीतालोष्टसमायुक्त सकंटकदलान्वित ॥ हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः" इति मंत्रेण लांगलोद्धृतलोष्टयुतापामार्गतुंबीचक्रमर्दनशाखानां स्नानमध्ये त्रिवारं भ्रामणं कार्यम् ॥ अभ्यंगस्नानोत्तरं तिलकादि कृत्वा कार्तिकस्नानं कार्यम् ॥ उक्तकालेषु स्नानासंभवे सूर्योदयोत्तरं गौणकालेपि यत्यादिभिरप्यवश्यमभ्यंगस्नानं कार्यम् ॥

आश्विन वदि चतुर्दशी जो चंद्रोदयव्यापिनी हो उसमें नरकसे भीरु मनुष्य तिलके तेलसे उबटना करके स्नान करैं । इसमें रात्रिके अन्त्यके प्रहरसे लेकर अरुणोदय पर्यंत और अरुणोदयसे चंद्रोदय पर्यंत और चंद्रोदयसे सूर्योदय पर्यंत जो तीन काल हैं उनमें पहिला २ निकृष्ट है और उत्तर २ श्रेष्ठ है । इससे चंद्रोदयसे पीछे मुख्य काल है । प्रातःकाल गौण है, उनमें पहिले दिनही चंद्रोदयकी व्याप्ति होय तो पहिली और परले दिनही चंद्रोदयकी व्याप्ति होय तो परली लेनी । इस पक्षमें उस दिन अस्त आदिके समय कहे हुये उल्कादान, दीपदान, आदि उस समय चतुर्दशीके अभावमेंभी करने । दोनों दिन चंद्रोदयकी व्याप्ति होय तो पहिली और दोनों दिन चंद्रोदयकी व्याप्ति न होय तो उसमें तीन पक्ष हो सकते हैं । कि, पहिले और चंद्रोदयके पीछे प्रातःकाल और सूर्योदयको व्याप्त होकर प्रवृत्त हुयी चतुर्दशी

आगे चंद्रोदयसे पूर्वही समाप्त होगयी हो जैसे त्रयोदशी ५८ घडी, पल ५० चतुर्दशी ५७ घडी हो इस पहिले पक्षमें प्रातःकालके एक देशमें जो चतुर्दशीसे युक्त है उसमें अभ्यंगस्नान करना । और जो पहिले सूर्योदयकोही व्याप्त होकर प्रवृत्त हुयी आगे चंद्रोदयसे पहिलेही समाप्त होगयी हो अथवा सूर्योदयके स्पर्शके विनाही चतुर्दशीका क्षयही हो, जैसे त्रयोदशी ५९-५९ हो चतुर्दशी ५७ हो वा जैसे त्रयोदशी २ तद्दिने चतुर्दशी ५४ घडी हो इन दोनों पक्षामें आगे चंद्रोदयके समय अभ्यंगस्नान करना । क्योंकि, चौथे प्रहर आदि निकृष्टकालमें चतुर्दशीकी व्याप्ति है । इन दोनों पक्षोंमें कोई तो यह कहते हैं कि, अरुणोदयसे पहिलेभी चतुर्दशीके मध्यमें स्नान करना । और अन्य तो अरुणोदयके अनंतर अमावस्या आदिसे युक्त चंद्रोदय आदिके समय स्नानको कहते हैं । और जो यह कहते हैं कि, चतुर्दशीके क्षयमें पहिलेभी त्रयोदशीके मध्यमें स्नान करना सो ठीक नहीं । यहां अभ्यंगस्नानमें विशेष है कि, हे सीतालोष्ट (डेला) से युक्त ! और हे कंटकों सहित दलोंसे युक्त ! हे अपामार्ग ! वारंवार भ्रमण करनेसे मेरे पापोंको हर । इस मंत्रसे हलसे उखाडे डेले सहित अपामार्ग,तुंबी, चक्रमर्द (कमरख) इन सबकी शाखाओंका स्नानके मध्यमें तीन बार भ्रमण करना । अभ्यंगस्नानके अनंतर तिलक आदि करके कार्तिकस्नानको करै । पूर्वोक्त कालोंमें स्नान न होसकै तो सूर्योदयके अनंतर गौण कालमेंभी करना । संन्यासी आदिभी अभ्यंगस्नानको अवश्य करैं ॥

अथात्र यमतर्पणम् ।

कार्तिकस्नानोत्तरं यमतर्पणं कार्यम् ॥ तद्यथा ॥ यमाय नमः यमं तर्पयामीत्युक्त्वा तिलमिश्रांस्त्रीनंजलीन्सव्येनापसव्येन वा देवतीर्थेन पितृतीर्थेन वा दक्षिणामुखो दद्यात् ॥ एवमग्रेपि ॥ धर्मराजाय नमः मृत्यवे० अंतकाय० वैवस्वताय०कालाय० सर्वभूतक्षयाय० औदुंबराय० दध्नाय० नीलाय० परमेष्ठिने० वृकोदराय० चित्राय० चित्रगुप्ताय० ॥ जीवत्पितृकस्तु यवैर्देवतीर्थेन सव्येन कुर्यात् ॥ "ततः प्रदोषसमये दीपान्दद्यान्मनोहरान् ॥ देवालये मठे वापि प्राकारोद्यानवीथिषु ॥ गोवाजिहस्तिशालायामेवं घस्रत्रयेपि च" ॥

और कार्तिकस्नानके अनंतर यमतर्पणको करै । वह ऐसे है कि,यमराजको नमस्कारहै यमको तृप्त करताहूं ऐसे कहकर तिलोंसे मिलीहुई तीन अंजली सव्य होकर और अपसव्य होकर देवतीर्थसे वा पितृतीर्थसे दक्षिणको मुख करके दे । इसी प्रकार आगे भी समझना । धर्मराजको नमस्कार है, मृत्युको, अंतकको, वैवस्वतको, कालको, सर्वभूतक्षयकरको, औदुंबरको, दध्नको, नीलको, परमेष्ठीको, वृकोदरको, चित्रको, चित्रगुप्तको नमस्कार है। जीवत्पितृक जो हैं वे जौ लेकर देवतीर्थसे सव्य होकर तर्पण करैं । फिर प्रदोषके समय देवमंदिर, मठ, परकोटा, उद्यान, गली, गौ, अश्व, हस्ति इनकी शालाओंमें मनोहर दीपक दे । इसी प्रकार तीनों दिन दे ॥

अथोल्कादानं दीपप्रज्वालनम् ।

"तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः ॥ उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितृणा मार्गदर्शनम्"॥तत्र दानमंत्रः ॥ "अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्यदग्धाः कुले मम ॥

उज्ज्वालज्ज्योतिषा दग्धास्ते यांतु परमां गतिम् ॥ यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये ॥ उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यंतु व्रजंतु ते" ॥ अस्यां नक्तभोजनं महाफलम् ॥

तुलाके सूर्यमें चतुर्दशी और अमावस्याको प्रदोषके समय उल्का हाथमें लेकर मनुष्य पितरोंको मार्गका दर्शन करावे । वहां देनेके मंत्र ये हैं कि, जो मेरे कुलमें अग्निसे दग्ध हैं वा जो अदग्ध हैं, उज्ज्वल ज्योतिसे दग्ध हुये वे परमगतिको जाते हैं और यमलोकको छोडकर जो महालयमें आये हैं वे उज्ज्वल ज्योतिसे मार्गको देखो और जाओ । इससे रात्रिभोजनका महान् फल है ॥

अथामावास्याभ्यंगनिर्णयः ।

अथाश्विनामावास्यायां प्रातरभ्यंगः प्रदोषे दीपदानलक्ष्मीपूजनादि विहितम् ॥ तत्र सूर्योदयं व्याप्यास्तोत्तरं घटिकाधिकरात्रिव्यापिनि दर्शे सति न संदेहः ॥ अत्र प्रातरभ्यंगदेवपूजादिकं कृत्वापराह्णे पार्वणश्राद्धं कृत्वा प्रदोषसमये दीपदानोल्काप्रदर्शनलक्ष्मीपूजनानि कृत्वा भोजनं कार्यम् ॥ अत्र दर्शे बालवृद्धादिभिन्नैर्दिवा न भोक्तव्यम् ॥ रात्रौ भोक्तव्यमिति विशेषो वाचनिकः ॥ तथा च परदिने एव दिनद्वयेपि वा प्रदोषव्याप्तौ परा ॥ पूर्वत्रैव प्रदोषव्याप्तौ लक्ष्मीपूजनादौ पूर्वा ॥ अभ्यंगस्नानादौ परा ॥ एवमुभयत्र प्रदोषव्याप्त्यभावेपि पुरुषार्थचिंतामणौ तु पूर्वत्रैव व्याप्तिरिति पक्षे परत्र यामत्रयाधिकव्यापिदर्शे दर्शापेक्षया प्रतिपद्वृद्धिसत्त्वे लक्ष्मीपूजादिकमपि परत्रैवेत्युक्तम् ॥ एतन्मते उभयत्र प्रदोषाव्याप्तिपक्षेपि परत्र दर्शस्य सार्धयामत्रयाधिकव्याप्तित्वात्परैव युक्तेति भाति ॥ चतुर्दश्यादिदिनत्रयेपि दीपावलिसंज्ञके यत्रयत्राह्नि स्वातीनक्षत्रयोगस्तस्यतस्य प्राशस्त्यातिशयः अस्यामेव निशीथोत्तरं नगरस्त्रीभिः स्वगृहांगणादलक्ष्मीनिःसारणं कार्यम् ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे द्वितीयपरिच्छेदे आश्विनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

इसके अनंतर आश्विनकी अमावस्याको प्रातःकाल अभ्यंग करै । प्रदोषसमय दीपदान, लक्ष्मीपूजन आदि कहेहैं । उसमें यदि सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्तके अनंतर घडीसे अधिक रात्रितक अमावस्या होय तो कुछ संदेह नहीं है । इसमें प्रातःकाल अभ्यंग, देवपूजा आदि करके अपराह्णमें पार्वणश्राद्ध करके प्रदोषसमयमें दीपदान, उल्काप्रदर्शन, लक्ष्मीपूजन इनको करके भोजन करना । इस अमावस्याको बाल, वृद्ध आदिसे भिन्न दिनमें भोजन न करैं रात्रिमें भोजन करना । यह विशेष वाचनिकहै सोई दिखाते हैं कि, परलेही वा दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय तो परली लेनी । पहिले दिनही प्रदोषव्यापिनी होय तो लक्ष्मीपूजन आदिमें पहिली और अभ्यंग स्नान आदिमें परली लेनी । इसी प्रकार दोनों दिन प्रदोष व्याप्तिके अभावमें भी समझना । पुरुषार्थचिंतामणिमें तो यह कहा है कि, पहिले दिनही व्याप्ति हो । इस पक्षमें यदि आगे तीन प्रहरसे अधिक अमावस्या होय तो दर्शकी अपेक्षासे प्रतिपदाकी वृद्धि होय तो ल-

क्ष्मीपूजन आदि भी परले दिनही करने । इस मतमें दोनों दिन प्रदोषव्याप्तिके पक्षमें भी परले दिन अमावस्या साढे तीन प्रहरसे अधिक है इससे परली ही युक्त है यह प्रतीत होता ह । चतुर्दशी आदि तीनों दिन जो दीपावलि नामके हैं उनमें जिसर में स्वाति नक्षत्रका योग हो उसरकी प्रशंसासे अधिकता है इसी अमावस्याको अर्द्धरात्रिके अनंतर नगरकी स्त्री अपने गृहके आंगनसे अलक्ष्मी (दरिद्र) का निस्सारण करैं (निकासें) ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथविरचितधर्मसिंधुसारे पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवरणसहिते अश्विनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

अथ कार्तिकमासः ।

वृश्चिकसंक्रांतौ पूर्वाः षोडश नाड्यः पुण्याः शेषं प्राग्वत् ॥ अथ कार्तिकशुक्लप्रतिपत्कृत्यम् ॥ अत्राभ्यंग आवश्यकः ॥ एवं चतुर्दश्यादिदिनत्रयेऽभ्यंगाद्युत्सवस्याकरणे नरकादिदोषश्रवणात्करणे लक्ष्मीप्राप्त्यलक्ष्मीपरिहारादिफलश्रवणाच्च नित्यकाम्योभयरूपत्वम् ॥

अब कार्तिक मासका निर्णय कहते हैं । वृश्चिक संक्रांतिकी पहिली सोलह घडी पुण्यकाल है । शेष वृत्तान्त पूर्वकी समान समझना । अब कार्तिकके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके निर्णयको कहते हैं । इसमें अभ्यंग अवश्य करना । इसीप्रकार चतुर्दशी आदि तीन दिन अभ्यंग आदि उत्सव करना । क्योंकि, न करनेमें नरक आदि दोष और करनेमें लक्ष्मी आदिकी प्राप्ति और दरिद्रका नाश सुना जाता है । इससे यह अभ्यंग नित्य और काम्य इन उभयरूप है ॥

अथ बलिपूजानिर्णयः ।

अस्यां प्रतिपदि बलिपूजा दीपोत्सवो गोक्रीडनं गोवर्धनपूजा मार्गपालीबन्धनं वष्टिकाकर्षणं नववस्त्रादिधारणाद्युत्सवो द्यूतं नारीकर्तृकनीराजनं मंगलमालिका चेत्येवमादीनि कृत्यानि ॥

इस प्रतिपदाको बलिपूजा, दीपोत्सव, गौओंका क्रीडन, गोवर्द्धनकी पूजा, मार्गमें बंधनवार बांधना, वष्टिका (दृढ रस्सी) का आकर्षण, नवीन वस्त्र आदिका धारण, जूआ, स्त्रियोंसे आरती कराना, मङ्गलकी मालाका धारण इत्यादि कार्य करने ॥

अथात्र प्रतिपत्पूर्वासंभवे परत्र सर्वा ग्राह्या ।

तत्र यद्युदयं व्याप्य दशमुहूर्ता प्रतिपत्तदा चन्द्रदर्शनाभावाच्चंद्रदर्शनप्रयुक्तद्वितीयावेधनिषेधाप्रवृत्तेः सर्वकार्याणि परप्रतिपद्येव भवन्ति ॥ इष्टिनिर्णयप्रकरणे त्रिमुहूर्त्तद्वितीयाप्रवेशमात्रेण चन्द्रदर्शनमुक्तं तत्सूक्ष्मदर्शनाभिप्रायम् ॥ अत्र तु स्थूलदर्शनमेव निषेधप्रयोजकं तच्च षण्मुहूर्तद्वितीयाप्रवेश एवेति न विरोध इति भाति ॥ यदि नवमुहूर्तो नास्ति तदा बलिपूजागोक्रीडागोवर्धनपूजामार्गपालीबंधनवष्टिकाकर्षणानि पूर्वविद्धप्रतिपदि कार्याणि ॥ अभ्यंगनववस्त्रादिधारणद्यूतनारीकर्तृकनीराजनमंगलमालिकादीन्यौदयिकमुहूर्तव्यापिन्यामपि कार्याणि ॥

बलिपूजादेः केनचिन्निमित्तेन पूर्वविद्धायामनुष्ठानासंभवे परविद्धायामनुष्ठानं कार्यं न तु कर्मत्यागस्तिथ्यंतरपरिग्रहो वा ॥ यथा बौधायनीयाद्यैः स्वस्वसूत्रोक्तानुष्ठानासंभवे आपस्तंबीयादिसूत्रोक्तानुष्ठानं कार्यं न तु कर्मलोपः शाखांतरपरिग्रहो वा तद्वदिति माधवीये स्पष्टम् ॥ तत्र राजा पंचवर्णरंगैर्बलिं द्विभुजमालिख्यान्यजनाः शुक्लतंडुलैर्विरच्य पूजयेयुः ॥ तत्र मंत्रः ॥ "बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो ॥ भविष्येंद्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम्" ॥ बलिमुद्दिश्य यत्किंचिद्दानकरणेऽक्षय्यं विष्णुप्रीतिकरं तत ॥ "यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां मुनीश्वर ॥ हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि" ॥

तहां जो प्रतिपदा उदयकालसे लेकर दश मुहूर्त होय तो चन्द्रमाका दर्शन नहीं होसक्ता, इसमें चन्द्रदर्शन जिसमें होजाय, ऐसी द्वितीयाविद्ध प्रतिपदामें पूर्वोक्त कार्य न करना । यह निषेधकी प्रवृत्ति नहीं है, तो सब पूर्वोक्त कर्म परली प्रतिपदामेंही करने । इष्टिनिर्णयके प्रकरणमें तीन मुहूर्त द्वितीयाके आजानेपर भी चन्द्रदर्शन प्रतिपदामें कहा है, वह सूक्ष्मदर्शनके अभिप्रायसे है । और यहां तो स्थूल दर्शनकी अपेक्षासेही निषेध है । सो वह दर्शन जो छः मुहूर्त्त प्रतिपदामें द्वितीया हो तब होता है इससे विरोध नहीं । और प्रतिपदा नौ मुहूर्त्त न होय तो बलिपूजा, गोक्रीडन, गोवर्द्धनकी पूजा, मार्गपाली बंधन और वष्टिकर्षण ये पूर्वविद्धा प्रतिपदाके दिनही करने । और अभ्यंग, नवीन वस्त्र आदिका धारण, जुआ खेलना स्त्रियोंसे आरती कराना, मङ्गलमालिकाको पहरना ये कार्य तो जो उदयकालमें एक मुहूर्त्त हो ऐसी श्री प्रतिपदामें करने । जो किसी कारणके वशसे पूर्वविद्धा प्रतिपदामें बलिपूजा आदि कृत्य न होसकै तो परविद्धामें करने परन्तु कर्मका त्याग, वा अन्य तिथिका ग्रहण न करना । जैसे कि, बौधायनीय आदि मनुष्य अपने सूत्रमें कहे अनुष्ठानको यथा कालपर न करसकैं तो वे आपस्तंवीय सूत्रमें कही विधिके अनुसार कर्मको करैं । परन्तु कर्मका लोप वा अन्यतिथिका स्वीकार वा अन्य शाखाका ग्रहण न करैं तिसीप्रकार यहां भी समझना । यह माधवीय ग्रन्थमें स्पष्ट लिखा है । तिस प्रतिपदाके दिन राजा पंचवर्णके रंगोंसे द्विभुजावाला बलिका चित्र बनाकर और अन्य मनुष्य शुक्ल चावलोंसे बनाकर पूजन करैं । उसका यह मन्त्र है कि, हे बलिराज! हे विरोचनके पुत्र ! हे प्रभो ! हे भावीइन्द्र और देवताओंके शत्रुरूप तुमको नमस्कार है । इस हमारी पूजाको आप ग्रहण करो । बलिके लिये जो कुछ दान किया जाता है वह अक्षय्य और विष्णुकी प्रीतिके करनेवाला है, इत्यादि वचन कहे हैं कि, जो मनुष्य इस प्रतिपदाके दिन जिस हर्ष आनन्द वा शोक वा दीनता आदि भावसे रहता है, उसका उसी प्रकार सम्पूर्ण वर्ष व्यतीत होता है ॥

अथास्यां द्यूतविधिः ।

"अस्यां द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते सर्वमानवैः ॥ तस्मिन्द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥ विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्ब्राह्मणैः सह ॥ बलिराज्ये दीपदानात्सदा लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावलिः स्मृता ॥ बलिराज्यं समासाद्य यैर्न दीपावलिः कृता ॥ तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यंति

केशव" इत्यादि ॥ अत्र लक्ष्मीपूजा चोक्ता ॥ "लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥ घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥ अग्रतः संतु मे गावो गावो मे सतु पृष्ठतः ॥ गावो मे हृदये संतु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ इति मंत्राभ्यां गवां सवत्सानां बलीवर्दानां च पूजनं विभूषणं च कृत्वा दोहनभारवाहनादिकं वर्जयेत् ॥

इस प्रतिपदाको प्रातःकालके समय सब मनुष्य द्यूतक्रीडाको करै । उस द्यूतमें जिस मनुष्यकी जय होती है, उसकी वर्ष दिनतक जय रहती है । तथा इस दिन उत्तम ब्राह्मणोंसहित अच्छा उत्तम भोजन करना, तथा इस दिन बलिके राज्यमें दीपकके जोडनेसे लक्ष्मी सदा स्थिर रहती है । यहां दीपोंकी अवलि (पंक्ति) प्रज्वलित करके रखनी चाहिये क्योंकि, यह वचन है कि, हे केशव ! बलिके राज्यको प्राप्त होकर जिन्होंने दीपकोंकी पंक्ति नहीं प्रज्वलित की उन मनुष्योंके गृहके विषै किसप्रकार दीपक प्रज्वलित रहेंगे, अर्थात् अत्यन्त दरिद्रता आजावैगी । इसमें लक्ष्मीकी पूजा और कुबेरकी पूजा भी कही है, वह इस प्रकार है कि, जो लोकपालोंकी लक्ष्मी धेनुरूपसे स्थित है और जो यज्ञके लिये घृतको देती है वह मेरे पापोंको दूरकरो । मेरे अगाडी, पिछाडी और हृदयके विषै गौ टिको । मैं गौओंके मध्यमें निवास करता हूं । इन दो मन्त्रोंसे बछडाओंसहित गौ और बलीवर्दों (बैल) का पूजन और वस्त्र आदिसे विभूति करके उनको दोहन (दुहना) और गाडी आदिमें जोडनेको वर्जदे ॥

अथ गोवर्धनपूजा ।

मुख्यगोवर्धनसान्निध्ये तस्यैव पूजा ॥ तदसान्निध्ये गोमयनान्नकूटेन वा गोवर्धनं कृत्वा तत्सहितगोपालपूजा कार्या ॥ तत्र श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं गोवर्धनपूजनगोपालपूजनात्मकं महोत्सवं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ "बलिराज्ञो द्वारपालो भवानद्य भव प्रभो ॥ निजवाक्यार्थनार्थाय सगोवर्धन गोपते" ॥ इति मंत्रेण सगोवर्धनं गोपालमावाह्य स्थापयेत् ॥ ततः ॥ "गोपालमूर्ते विश्वेश शक्रोत्सवविभेदक ॥ गोवर्धनकृतच्छत्र पूजां मे हर गोपते ॥ गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकाकर ॥ विष्णुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव" इति मंत्राभ्यां श्रीगोपालगोवर्धनौ षोडशोपचारैः पूजयेत् ॥ ततः यथावैभवं महानैवेद्यो देयः ॥ ततः तदंगत्वेन प्रत्यक्षधेनौ मृद्धेनौ वा गोपूजां पूर्वोक्तमंत्राभ्यां कृत्वा "आगावो अग्मन्नैते वदंतु" इतिऋग्भ्यां गृहसिद्धचरुहोमः कार्यः ॥ ब्राह्मणेभ्योन्नगवादिदानं गोभ्यस्तृणदानं गिरये बलिदानं च ॥ ततो गोविप्रहोमाग्निगिरिप्रदक्षिणा सहचरीभिर्गोभिर्युतैः कार्या ॥ अथापराह्णे मार्गपालीबंधनम् ॥ तत्र पूर्वस्यां दिशि कुशकाशमयरज्जुविशेषं यथाचारं कृत्वोच्चस्तंभे वृक्षे च बद्धा ॥ "मार्गपालि नमस्तेस्तु सर्वलोकसुखप्रदे ॥ विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे" ॥ इति नमस्कृत्य प्रार्थ्य तदधो मार्गेण गोगजादिसहिताः विप्रराजादयः सर्वे गच्छेयुः ॥ एवं

काशादिमयीं वष्टिकां दृढां कृत्वैकतो राजपुत्रा अन्यत्र हीनजातयो जयज्ञानार्थं कर्षयेयुः अत्र हीनजातिजये राजजयः ॥ प्रातर्द्यूतं कार्यमित्युक्तमेवं नारीभिर्नीराजनमपि प्रातरेव कार्यम् ॥ रात्रौ गीतवाद्याद्युत्सवः कार्यः ॥ "नवैर्वस्त्रैश्च संपूज्या द्विजसंबंधिबांधवाः" इति ॥

अब गोवर्द्धनकी पूजाको कहते हैं । मुख्यगोवर्द्धन निकट होय तो उसीकी पूजा और जो पास न होय तो गोमय वा अन्नकूटका गोवर्द्धन बनाकर, उस सहित गोपालोंकी पूजा करनी । तहां श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये गोवर्द्धन और गोपालोंके पूजनरूप महोत्सवको करता हूं । इस प्रकार संकल्पको करके गोवर्द्धन सहित गोबालोंका आवाहन इस मन्त्रसे करके स्थापन करे । कि, गोवर्द्धन और गोपालों सहित हे प्रभो ! आप आज राजा बलिके द्वारपाल हो और अपने वचनको सत्य कीजिये । फिर श्रीगोपाल और गोवर्द्धनकी षोडश उपचार इन मंत्रोंसे पूजा करै कि, हे गोपालमूर्त्ते ! हे विश्वेश ! हे इंद्रके उत्सवके नाश करनेवाले ! हे गोवर्द्धनको छत्र बनानेवाले ! गौओंके ईश्वर आप पूजाको ग्रहण करो । हे गोवर्द्धन ! हे पृथ्वीको धारण करनेवाले ! हे गोकुलके रक्षक ! हे विष्णुकी पूजापर छाया करनेवाले ! हमारेको किरोडगौओंको दो । फिर शक्तिके अनुसार महानैवेद्यको दे । फिर उसके पीछे साक्षात् धेनु वा मिट्टीकी धेनुमें उसकी अंगरूप गोवर्द्धनपूजाको करके 'आगावो अग्मन्नुतो-वदंतु०' इन दो ऋचाओंसे घरमें बनायेहुए चरुसे होमको करै । ब्राह्मणोंके लिये अन्न और गौ आदिका दान, गौओंको तृणदान, गोवर्द्धनके लिये बलिदानको करै । फिर गौ, ब्राह्मण, होमी हुई अग्नि और पर्वत इनकी प्रदक्षिणा साथकी गौओंसहित करनी । अब अपराह्णकालमें मार्गपालीबंधनको कहते हैं । तहां पूर्वदिशाके विषे किसी ऊँचे खंब वा वृक्षमें कुशा वा मूंजकी कुलाचारके अनुसार रस्सीको बनाकर बांधै । और उसकी इस मंत्रसे प्रार्थना करै कि, सब लोकको सुखके देनेवाली हे मार्गपालि ! तुमको नमस्कार है । फिर उसके नीचे होकर गौ, हाथी आदिसहित ब्राह्मण और राजा आदि गमन करैं । इसीप्रकार काश (कांश) आदिकी दृढ (मजबूत) वष्टिकाको बनाकर उसको एक तरफसे राजाके पुत्र और दूसरीतरफ हीन जाति (धीवरआदि) पकडकर जयके ज्ञानके लिये अपनी २ तरफको खीचैं । जो हीन जातिओंकी जय होय तो समझना कि, राजाकी जय होयगी । प्रातःकालके समय द्यूतक्रीडा करनी यह पूर्व कह आये । इसीप्रकार स्त्रीजन नीराजनभी प्रातःकालके समय करै । रात्रिके समय गीत, वाद्य आदि उत्सवको करै और नवीन वस्त्रोंसे द्विज, संबंधि और बांधव इनका सत्कार करना ॥

अथ यमद्वितीया ।

"यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे स्वयम् ॥ अथो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर " ॥ अस्यां निजगृहे न भोक्तव्यं यत्नेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यम् ॥ तेन धनधान्यसुखलाभः ॥ वस्त्रालंकरणैः सर्वा भगिन्यः पूज्याः स्वभगिन्यभावे मित्रादिभगिन्यः पूज्याः ॥ भगिन्या अपि भ्रातृपूजने अवैधव्यं भ्रातुश्चिरजीवनं तदकरणे सप्तजन्मसु भ्रातृनाशः ॥ इयं पूर्वेद्युरेवापराह्णव्याप्तौ पूर्वा ॥ उभयत्र

व्याप्त्यव्याप्त्यादिपक्षांतरेषु परैव ॥ अस्यां यमुनास्नानमपराह्णे चित्रगुप्तयमदूतसहितयमपूजनं यमायार्घ्यदानं च विहितम् ॥

अब यमद्वितीयाको कहते हैं। हे युधिष्ठिर ! यमुना ने इस द्वितीयाको अपने घरपर यमराजको भोजन करवायाथा इससे संसारमें इसको यमद्वितीया कहते हैं। इस द्वितीयाको अपने घरपर भोजन नहीं करना, किंतु यत्नसे अपनी भगिनीके हाथसे भोजन करना । तिससे धनधान्य आदि सुखकी प्राप्ति होती है। वस्त्र अलंकारोंसे सब भगिनिओंका सत्कार करना । जो अपनी बहिन न होय तो मित्र आदिकी भगिनिओंका सत्कार करना । भगिनीभी भाईके पूजनसे सदा सौभाग्यवती रहती है और भाईकी चिरआयु होती है और जो पूजन न करै तो सातजन्मतक भाईका अभाव रहता है। यह जो पहिले दिनही अपराह्णव्यापिनी होय तो पहिली और जो दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो वा दोनोंदिन न होय तो परली लेनी। इस द्वितीयाको यमुनास्नान और अपराह्णके समय चित्रगुप्त और यमदूतोंसहित यमराजका पूजन और यमके लिये अर्घ्यदान कहाहै ॥

अथ वह्निषष्ठी ।

कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां भौमयुतायां वह्निं समभ्यर्च्य तत्प्रीत्यर्थं विप्रभोजनं कार्यम् ॥ कार्तिकशुक्लाष्टमी गोपाष्टमी ॥ अत्र गोपूजनगोप्रदक्षिणगवानुगमनैरिष्टकामावाप्तिः ॥ कार्तिकशुक्लनवम्यां मथुराप्रदक्षिणोक्ता ॥ इयं युगादिरपि ॥ अस्यां पूर्वाह्णव्यापिन्यामपिंडकश्राद्धमुक्तम् ॥ अत्र विशेषो वैशाखप्रकरणे उक्तः ॥

कार्तिक शुक्ला षष्ठी भौमवारसे युक्तषष्ठीके दिन अग्निका पूजन और उसकी प्रीतिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन कराना । कार्तिकशुक्ला अष्टमीको गोपाष्टमी कहते हैं। इस अष्टमीके दिन गौओंकी परिक्रमा गौओंके पीछे चलनेसे वांछितकार्यकी सिद्धि होती है। कार्तिकशुक्ला नवमी के दिन मथुराकी प्रदक्षिण (परिक्रमा) कही है इस नवमीको युगादिभी कहते हैं। इस पूर्वाह्णव्यापिनीमें पिण्डरहित श्राद्ध कहाहै इसमें विशेष वैशाखप्रकरणमें कह आये ॥

अथ भीष्मपंचकव्रतम् ।

एकादश्यादिदिनपंचके भीष्मपंचकव्रतमुक्तम् ॥ तच्च शुद्धैकादश्यामारभ्य चतुर्दश्यविद्धौदयिकपौर्णमास्यां समापनीयम् ॥ यदि शुद्धैकादश्यामारंभे क्षयवशेन पौर्णमास्यां पंचदिनात्मकव्रतसमाप्तिर्न घटते तदा विद्धैकादश्यामप्यारंभः ॥ शुद्धैकादश्यामारंभेपि दिनवृद्धिवशेन परविद्धपौर्णमास्यां समापने यदि षड्दिनापत्तिस्तदा चतुर्दशीविद्धपौर्णिमायामपि समाप्तिः कार्या ॥ व्रतप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः ॥

एकादशीसे लेकर पांच दिन भीष्मपंचक व्रत कहा है। इस व्रतको शुद्धा एकादशी के दिन प्रारंभ करके चतुर्दशीका जिसमें वेध न हो ऐसी उदयव्यापिनी पूर्णिमामें समाप्त करै। और जो शुद्धा एकादशीको आरंभ करनेमें जो किसी तिथिका क्षय होजाय तो, पूर्णिमातक पांच दिनका युक्त नहीं हो सका इससे विद्धा एकादशीमें भी आरम्भ करना । और

जो शुद्ध एकादशीमें आरंभ करनेपरभी किसी तिथिकी वृद्धि होजाय तो परविद्धा पूर्णिमामें समाप्ति करनेमें छः दिनके व्रतकी प्राप्ति होजायगी तो इसमें चतुर्दशीसे विद्धा पूर्णिमामेंभी समाप्ति करनी । इसव्रतकी विधि कौस्तुभ आदि ग्रंथमें समझनी ॥

अथैकादश्यां शिवविष्णुदीक्षा ।

कार्तिकमासे एकादश्यादिपर्वणि चंद्रताराबलान्विते शिवविष्णुमंत्रग्रहणादिरूपा दीक्षा कर्तव्या॥'कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी' इति नारदोक्तेः ॥ तथात्र तुलसीकाष्ठमाला धारणमुक्तं स्कांदे द्वारकामाहात्म्ये विष्णुधर्मे च ॥'निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम्॥वहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम्॥ तुलसी काष्ठसंभूते माले कृष्णजनप्रिये ॥ बिभर्मि त्वामहं कंठे कुरु मां कृष्णवल्लभम् ॥ एवं संप्रार्थ्य विधिवन्मालां कृष्णगलेर्पिताम् ॥ धारयेत्कार्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम्'' इति निर्णयसिंधौ स्पष्टम् ॥ यत्तु तत्रैव मालाधारणप्रकरणांते सर्वपुस्तकेष्वदृश्यमानमप्यत्र मूलं चिंत्यमिति वाक्यं क्वचिन्निर्णयसिंधुपुस्तके दृश्यते तस्य मालाधारणविधिवाक्यानां नाप्रामाणिकत्वे तात्पर्यम् ॥ स्वयमेव स्कंदपुराणस्थत्वेन-विष्णुधर्मस्थत्वेनोक्तानां स्वयमेवाप्रामाणिकत्वोक्तौ व्याघातप्रसंगात् ॥ ''तुलसीकाष्ठघटितै रुद्राक्षाकारकारितैः ॥ निर्मितां मालिकां कंठे निधायार्चनमारभेत् ॥ तुलसीकाष्ठमालाया भूषितः कर्म आचरन् ॥ पितॄणां देवतानां च कृतं कोटिगुणं भवेत्'' ॥ इति पद्मपुराणे पातालखंडे नवसप्ततितमाध्याये प्रत्यक्षोपलभ्यमानवचनविरोधाच्च किं तु आषाढमासप्रकरणे आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कार्यमित्युक्त्वा तत्र प्रमाणत्वेन '' आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । 'मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः'' इत्यादीनि भविष्यस्थविष्णुधर्मस्थानि वाक्यानि लिखित्वा यथांते इदं निर्मूलमित्युक्तम् ॥ एवप्रकरणांतरेपि तस्य च माधवादिमूलग्रंथेषु नोपलभ्यत इत्येव तत्परिभाषातात्पर्यं न त्वप्रामाणिकत्वे ॥ तथात्वे भाद्रकार्तिकयोस्तद्वाक्यानुसारेण पारणनिर्णयलेखनासांगत्यप्रसंगात् ॥ कौस्तुभादिसर्वनवीनग्रंथेषु तद्वाक्यानुसारेणैव निर्णयस्यासंगत्यापाताच्च ॥ सर्वशिष्टानां तदनुसारेणैव पारणाचरणस्याप्यप्रमाणत्वापत्तेश्च ॥ तद्वदत्रापि ज्ञेयम् ॥ एतेन माधवादिष्वनुपलंभादेवाप्रामाण्यापत्तिरिति निरस्तम् ॥ बहूनां माधवादिलिखितानां वाक्यानामाचाराणां चाप्रामाण्यापत्तेः ॥ यत्र तु यानि यत्त्वित्येवमादिरूपेण यत्पदोपक्रममनूद्य तानि निर्मूलानीत्येवमादिरीत्या दुष्यंते यथा श्रवणद्वादशीप्रकरणे श्रवणस्योत्तराषाढावेधनिषेधकवाक्यानि तत्र तेषामप्रमाणत्वे एव सर्वथा तात्पर्यमिति सूक्ष्मबुद्धयो विदां कुर्वंतु ननु माधवादिग्रंथेष्वनुपलंभान्न निर्मूलत्वमुच्यते ॥ किंतु काष्ठमालाधारणनिषेधवाक्यानां बाधकानामुपलंभादिति चेत्किं तानि वाक्यानि सामान्यतः काष्ठमालाधारणनिषेधकानि दृश्यंते विशेषतस्तुलसीकाष्ठमालानिषेध-

कानि वा ॥ आद्ये सामान्यतः काष्ठमालानिषेधवाक्यानां विशेषरूपैस्तुलसीधात्रीकाष्ठमालाधारणविधिवाक्यैर्बाधः स्पष्टः ॥ द्वितीये षोडशीग्रहणाग्रहणवद्विहितप्रतिविद्धत्वेन विकल्पमवगच्छ ॥ स च विकल्पो वैष्णवावैष्णवविषयतया व्यवस्थितो भविष्यति ॥ मूलवाक्येषु वैष्णवादिति न निर्मूलत्वसंभवः ॥ अत एव तद्वाक्यानां माधवाद्यनुल्लेखस्याशयो हरिवासरलक्षणवाक्येषु पुरुषार्थचिंतामणौ वैष्णवानामेवावश्यकत्वादेतदनुपन्यासेपि माधवादीनां न न्यूनतेत्युक्तरीत्योहितुं शक्यः॥ एवं धात्रीकाष्ठमालाधारणविधिर्ज्ञेयः ॥ रामार्चनचंद्रिकादौ तुलसीकाष्ठमालया जपविधिवाक्यानि तुलसीकाष्ठघटितैर्मणिभिर्जपमालिकेत्यादीनि स्पष्टानि ॥ एवं ग्रन्थांतरेषु बहूनि वाक्यानुपलभ्यंते ॥ सर्वदेशीयवैष्णवेषु तुलसीकाष्ठमालाधारणजपाचारश्चोपलभ्यते ॥ भस्मादिधारणद्वेषिवैष्णवस्पर्धया शैवागमाग्रहिभिः केवल द्विष्यत इत्यलं बहुनेति दिक् ॥

कार्तिक मासके एकादशी आदि पर्वमें जिसदिन चंद्र और ताराका बल होय उसदिन मंत्र दीक्षा करनी । क्योंकि, नारदने कहा है कि, कार्तिकमासमें ग्रहण कीहुई मंत्रकी दीक्षा मनुष्योंको मोक्षके देनेवाली है । तिसी प्रकार इसमें तुलसीकाष्ठकी मालाका धारण स्कंदपुराण, द्वारकामाहात्म्य, विष्णुधर्ममें कहा है कि, तुलसीकाष्ठसे बनीहुई मालाको केशवको निवेदन करके मनुष्य धारण करता है उसको पातक नहीं लगता है । तुलसी काष्ठसे पैदाहुई और सब कृष्णभक्तोंको प्यारी हे माले ! तुझको मैं कण्ठमें धारण करताहूं मुझको वल्लभ (प्रिय) कर । इस प्रकार जो मनुष्य प्रार्थना करके विधिपूर्वक श्रीकृष्णके गलेमें अर्पण करके धारण करता है वह मनुष्य वैष्णवपदको प्राप्त होता है । यह निर्णयसिंधुमें लिखा है । और जो कि, यदि अन्य सब पुस्तकोंमें कहीं नहीं देखा । तथा प्राय: किसी निर्णयसिंधुकी पुस्तकमें इस माला धारण प्रकरणके अंतमें यह लिखाहै कि, इसमें प्रमाण चिंत्य है सो उसका तात्पर्य यह नहीं है कि, मालाधारणके विधायक वाक्योंको अप्रमाणता है क्योंकि, जो ऐसा मानोंगे तो आपही स्कंदपुराण और विष्णुधर्मके वचनोंको लिखकर आपही अप्रमाण कहना इसमें 'वदतो व्याघातः' और पद्मपुराणके पातालखण्डमें उनाशीके अध्यायमें कहेहुए इन वचनोंके साथ विरोध होगा कि, तुलसीके काष्ठसे रुद्राक्षकी समान रचे हुए प्रवालोंसे बनी हुई मालाको कंठमें धारण करके पूजनको करै । जो मनुष्य तुलसी मालासे शोभित होकर देवकर्म और पितृकर्मोंको करता है, उसको कोटिगुणा फल होता है । किन्तु उसका यही लिखनेका तात्पर्य है कि, वह जिसप्रकार आषाढमासके प्रकरणमें जिसमें अनुराधाका योग न हो ऐसी आषाढशुक्लद्वादशीको पारणा करनी ऐसा कहके उसमें भविष्य और विष्णुधर्मके प्रमाणवचन ये कहकर कि, आषाढ, भाद्रपद, कार्त्तिक इनके शुक्लपक्षमें अनुराधा, श्रवण, रेवती इनका योग न हो तब पारणा करै इत्यादि । तथा अनुराधाके पहिले पादमें श्रीविष्णु शयन करते हैं । फिर अन्तमें यह निर्मूल है यह कहा है । इसीप्रकार अन्यप्रकरणोंमेंभी कहाहै । इस जगह उस कथनका तात्पर्य यह है कि, यह कथन निर्मूल अर्थात् माधव आदि मूलग्रंथोंमें नहीं है । अप्रमाणमें तात्पर्य नहीं है क्योंकि, ऐसा मानोंगे तो उनके वचनके

अनुसार भाद्रपद और कार्त्तिकमासको पारणाका निर्णय और कौस्तुभ आदि नवीन ग्रंथोंमें जो उनके वचनके अनुसार निर्णय है सो असंगत होगा और सब शिष्टजनोंका उनके वचनके अनुसार जो आचरण है वह अप्रमाण होगा। इससे निर्मूल इस पदका तात्पर्य माधवग्रंथमें नहीं यही है, कुछ अप्रमाणमें नहीं। इसीप्रकार मालाधारणके प्रकरणमेंभी समझना। इससे यह बात खंडित हुई कि, माधवग्रंथमें न होनेसेही अप्रमाणता होती है। क्योंकि, ऐसा माननेमें माधव आदिमें जो नहीं लिखे ऐसे वाक्य और आचार बहुतोंको अप्रमाणता हो जायगी। और जहां कि, 'यानि, यत्तु' इस प्रकार यत्पदको लिखकर और वचनका अनुवाद करके फिर वे अप्रमाण हैं इस रीतिसे जो वचन दूषित किये हैं कि जैसे कि, श्रवणद्वादशीप्रकरणमें श्रवणमें उत्तराषाढके वेधके निषेधकवाक्य उनका तो सर्वथा अप्रमाणतामेंही तात्पर्य है। इसको पण्डित जन जानै, कदाचित् कोई शंका करै हम माधवग्रन्थमें न लिखनेसे अप्रमाणता नहीं कहते किन्तु, काष्ठमालाधारणके निषेध करनेवाले जो बाधकवचन हैं उनके मिलनेसे कहते हैं। इस शंका करनेवाले वादीसे वह पूछते हुऐ समाधान करते हैं कि, वे वचन क्या सामान्यरूपसे काष्ठमालाके धारण करनेका निषेध करते हैं वा विशेषरूपसे। जो सामान्यसे काष्ठमालाके निषेध करनेवाले हैं तो विशेषरूप जो तुलसी और धात्रीके काष्ठकी मालाके धारण करनेके विधायक वाक्य हैं, उनसे उन सामान्यवाक्योंका बाध स्पष्टही है क्योंकि, विशेषवचन सामान्यवचनका बाधक होता है। और जो विशेषरूप है तो षोडशीके ग्रहण और अग्रहणके समान किसी वचनसे विहित और किसी वचनसे प्रतिषिद्ध इसप्रकार विधिके और प्रतिषेधके होनेसे तुलसीमालाके धारणका विकल्प समझना। अब उस विकल्प (धारण करना, नहीं भी करना) की व्यवस्था वैष्णव और अवैष्णवकी अपेक्षासे समझनी। क्योंकि, मूलवचनोंसे वैष्णवआदि वचन सुना जाताहै इससे वैष्णवोंकी अपेक्षासे विधि, और शैव आदिकी अपेक्षासे प्रतिषेध है। इससे निर्मूलताका संभव नहीं। इसीसे माधव आदिने जो इन वचनोंको नहीं लिखा उस न लिखनेका आशय पूर्व कही हुई रीतिके अनुसारही कहसक्तेहैं क्योंकि, उन वचनोंके लिखनेकी आवश्यकता हरिवासर पुरुषार्थचिन्तामणिके लक्षणवाक्योंमें वैष्णवोंकोही है। इससे माधव आदिने नहीं लिखे तोभी न्यूनता नहीं। इसीप्रकार श्रीकाष्ठमालाकी धारणविधि भी समझनी। रामार्चनचंद्रिका आदि ग्रंथोंमें तुलसीमालासे जप करनेके विधिवाक्य और तुलसीकाष्ठसे युक्त मणिओंकी जपमाला स्पष्ट लिखी है। इसीप्रकार अन्यग्रंथोंमें भी बहुतसे वाक्य मिलते हैं। और सब देशके वैष्णवोंमेंभी तुलसीमालाका धारण और जप करनेका आचार देखा जाता है। इससे यही बातहै कि, शैवशास्त्रोंको माननेवाले जो शैव जन हैं वेही भस्मआदिके धारणकरनेका द्वेषकरनेवाले वैष्णवोंको स्पर्द्धासे इसको दूषित मानतेहैं अन्य नहीं। अब इसको समाप्त करतेहैं॥

अथ धात्रीमूले देवपूजाविधिः।

सर्वपापक्षयद्वारा श्रीदामोदरप्रीत्यर्थं धात्रीमूले श्रीदामोदरपूजां करिष्ये॥ पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य गंधपुष्पफलयुतमर्घ्यं दद्यात्॥ "अर्घ्यं गृहाण भगवन्सर्वकामप्रदो भव॥ अक्षया संततिर्मेस्तु दामोदर नमोस्तु ते" ॥ ततोपराधसहस्राणीति प्रार्थ्य धात्रीं कुंकुमगंधादिनाभ्यर्च्य पुष्पैः पूजयेत्॥ धात्र्यै नमः

शांत्यै नमः कांत्यै नमः मेधायै नमः प्रकृत्यै० विष्णुपत्न्यै० महालक्ष्म्यै० रमायै० कमलायै० इंदिरायै० लोकमात्रे० कल्याण्यै० कमनीयायै० सावित्र्यै० जगद्धात्र्यै० गायत्र्यै० सुधृत्यै० अव्यक्तायै० विश्वरूपायै० सुरूपायै० अब्धिभवायै० ॥ ततो धात्रीमूले सव्येन तर्पणं कार्यम् ॥ "पिता पितामहश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः ॥ ते पिबंतु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतं ॥ दामोदरनिवासायै धात्र्यै देव्यै नमोस्तु ते ॥ सूत्रेणानेन बध्नामि सर्वदेवनिवासिनीम्" ॥ इति सूत्रेण वेष्टयेत् ॥ धात्र्यै नम इति चतुर्दिक्ष बलीन्दत्त्वाष्टदीपान्दद्यात् ॥ अष्टकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य नमेत् ॥ "धात्रि देवि नमस्तुभ्यं सर्वपापक्षयंकरि ॥ पुत्रान्देहि महाप्राज्ञे यशो देहि बलं च मे ॥ प्रज्ञां मेधां च सौभाग्यं विष्णुभक्तिं च शाश्वतीम् ॥ नीरोगं कुरु मां नित्यं निष्पापं कुरु सर्वदा" ॥ ततो घृतपूर्णं सहेमकांस्यपात्रं दद्यादिति संक्षेपः ॥

अब धात्रीवृक्ष (आमला) के मूलमें देवताके पूजाकी विधिको कहते हैं सब पापोंके नाश करनेके लिये और श्रीदामोदरकी प्रीतिके लिये धात्रीके मूलमें श्रीदामोदरकी पूजाको करताहूं, यह संकल्पकरके श्रीदामोदरकी पूरुषसूक्तको पढताहुआ षोडश उपचारोंसे पूजा करके गंध, पुष्प, फलसहित अर्घ्यको दे । उसका मंत्र यहहै कि, हे भगवन् ! आप अर्घ्यको ग्रहणकरो और हमारी सब कामनाओंको दो । हे दामोदर ! आपको नमस्कार है,आपकी दयासे हमारी सन्तति अक्षय रहो, फिर "अपराधसहस्राणि" इस मंत्रसे प्रार्थना करके फिर धात्रीके वृक्षकी कुकुंम, गंध आदिसे पूजा करके पुष्पोंसे पूजा करै । उसके मंत्र ये हैं कि, "धात्र्यै नमः, शांत्यै नमः, कांत्यै नमः, मेधायै नमः, प्रकृत्यै नमः, विष्णुपत्न्यै नमः, महालक्ष्म्यै नमः, रमायै नमः, कमलायै नमः, इंदिरायै नमः, लोकमात्रे नमः, कल्याण्यै नमः, कमनीयायै नमः, सावित्र्यै नमः, जगद्धात्र्यै नमः, गायत्र्यै नमः, सुधृत्यै नमः, अव्यक्तायै नमः, विश्वरूपायै नमः, सुरूपायै नमः, अब्धिभवायै नमः" फिर धात्री मूलमें सव्यहाथसे तर्पण करै । उसका मंत्र यह है कि, पिता, पितामह और जिनके पुत्र नहीं हुआ ऐसे सगोत्री बांधव वे सब इस धात्रीकी मूलमें दियेहुए अक्षय जलको पानकरो । फिर उस धात्रीको सूत्रसे लपेटै । उसका यह मंत्र है कि, दामोदरके निवासरूप धात्री तुझको नमस्कार है सब देवोंको निवासभूत तुझको सूत्रसे बांधताहूं । फिर 'धात्र्यै नमः' इस मंत्रसे चारोंदिशाओंमें बलि देकर आठ दीपोंको दे, आठवार प्रदक्षिण करकै इस मंत्रसे नमस्कार करै कि सबपापोंके क्षय करनेवाली हे धात्रि देवि ! तुझको नमस्कार है । हे महाप्राज्ञे ! तू मुझको पुत्र, यश, बल, बुद्धि, मेधा, सौभाग्य निरंतर विष्णुभक्ति इनको दे । सर्वदा मुझको निष्पाप कर । फिर घृतसे भरे हुए सुवर्णसे युक्त कांसीके पात्रको दे । इसको संक्षेपसे कह चुके ॥

अथ पारणादिनिर्णयः ।

कार्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवतीयोगरहितायां पारणं कार्यम् ॥ अपरिहार्ययोगे चतुर्थपादो वर्ज्य इत्यादि विशेषः श्रवणनिर्णयप्रकरणोक्तो द्रष्टव्यः ॥

कार्तिकके शुक्लपक्षकी रेवतीके योगसे रहित द्वादशीको पारणा करै । जो योगका परिहार (बँचाव) न होसकै तो चतुर्थपादको वर्जदे इत्यादि । विशेष तो श्रवणनिर्णय प्रकरणमें कहाहुआ समझना ॥

अथ प्रबोधोत्सवतुलसीविवाहौ ।

तत्र प्रबोधोत्सवः कार्तिकशुक्लैकादश्यां क्वचिदुक्तः ॥ रामार्चनचंद्रिकादौ द्वादश्यामुक्तः ॥ उत्थापनमंत्रे द्वादशीग्रहणाद्द्वादश्यामेव युक्तः तत्रापि द्वादश्या रेवत्यंतपादयोगो रात्रिप्रथमभागे प्रशस्तः तदभावे तत्रैव रात्रौ रेवतीनक्षत्रमात्रयोगेपि ॥ तदभावे रात्रिप्रथमभागे केवलद्वादश्यपि ॥ एवं केवलरेवत्यपि ॥ द्वादशीरेवत्योरुभयोरपि रात्रावभावे दिवैव द्वादशीमध्ये कार्य इति कौस्तुभे स्थितं तथापि पारणाहे पूर्वरात्राविति वचनात्पारणाहे रात्रिपूर्वभागे द्वादश्यभावेपि त्रयोदश्यामेव पारणाहे प्रबोधोत्सव इति देशाचारः ॥

अब प्रबोधोत्सव और तुलसीके विवाहको कहते हैं । तिसमें प्रबोध (हरिजागरण) रूप उत्सव कार्तिकशुक्ल एकादशीको कहीं कहाहै और रामार्चनचंद्रिका आदिमें तो द्वादशीको कहाहै । परन्तु उत्थापनके मंत्रमें द्वादशीका ग्रहणहै इससे द्वादशीमेंही उत्सव करना युक्तहै । तिसमेंभी जो द्वादशीमें रेवतीके अन्तके पादका योग होय तो रात्रिके प्रथमभागमें करना । और जो अन्तपादका योग न होय तो रेवतीनक्षत्रमात्रके योगमेंभी करना । और जो उसकाभी योग न होय तो रात्रिके प्रथमभागमें केवल द्वादशीमेंभी करना । और जो द्वादशी न होय तो केवल रेवती नक्षत्रभी युक्त है । और जो द्वादशी रेवती ये दोनों रात्रिमें न होयँ तो दिनमेंही द्वादशीतिथिके मध्यमें करना । यह बात कौस्तुभ ग्रंथमें लिखी है तथापि देशाचारकी यह रीतिहै कि, पारणाके दिन रात्रिके पूर्वभागमें उत्सव करना यह वचनहै, इससे पारणाक दिन रात्रिके पूर्वभागमें द्वादशी न होय तो भी त्रयोदशीमेंही पारणाके दिन प्रबोधोत्सव करना ॥

अथ तुलसीविवाहकालः ।

एवं तुलसीविवाहस्य नवम्यादिदिनत्रये एकादश्यादिपूर्णिमांते यत्र क्वापि दिने कार्तिकशुक्लांतर्गतविवाहनक्षत्रेषु वा विधानादनेककालत्वं तथापि पारणाहे प्रबोधोत्सवकर्मणा सह तंत्रतयैव सर्वत्रानुष्ठीयते इति सोपि पारणाहे पूर्वरात्रौ कार्यः ॥ प्रबोधोत्सवात्पृथक्चिकीर्षायां कालांतरे वा कार्यः ॥ तत्र पुण्याहवाचननांदीश्राद्धविवाहहोमाद्यंगसहिततुलसीविवाहप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः ॥ संक्षेपतस्तु प्रबोधोत्सवेनैकतंत्रतया शिष्टाचारमनुसृत्य लिख्यते ॥ देशकालौ संकीर्त्य श्रीदामोदरप्रीत्यर्थं प्रबोधोत्सवं संक्षेपतस्तुलसीविवाहविधिं च तंत्रेण करिष्ये तदंगतया पुरुषसूक्तेन विधिना षोडशोपचारैस्तंत्रेण महाविष्णुपूजां तुलसीपूजां च करिष्ये ॥ न्यासादि विधाय श्रीविष्णुं तुलसीं च ध्यात्वा 'सहस्रशीर्षा०' इति महाविष्णुं तुलसीं चावाह्य ॥ 'पुरुष एव०' इत्यादिभिः श्रीमहाविष्णवे दामोदराय श्रीदेव्यै तुलस्यै

च नम आसनमित्यादिस्नानांते मंगलवाद्यैः सुगंधितैलहरिद्राभ्यां नागवल्लीदलगृहीताभ्यामुष्णोदकेन च मंगलस्नानं विष्णवे तुलस्यै च सुवासिनीभिः कारयित्वा स्वयं वा दत्त्वा पंचामृतस्नानं समर्प्य शुद्धोदकेनाभिषिच्य वस्त्रयज्ञोपवीतचंदनं दत्त्वा तुलस्यै हरिद्राकुंकुमकंठसूत्राद्यलंकारान्दत्त्वा मंत्रपुष्पांतपूजां समाप्य घंटादिवाद्यघोषेण देवं प्रबोधयेत् ॥ तत्र मंत्राः ॥ 'इदं विष्णुर्योजागार' इति त्वाचारप्राप्तः ॥ "ब्रह्मेंद्ररुद्रादिकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वंदितवंदनीय ॥ बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मंत्रप्रभावेण सुखेन देव ॥ इयं च द्वादशी देव प्रबोधार्थं तु निर्मिता ॥ त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद त्यज निद्रां जगत्पते ॥ त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तमुत्थिते चोत्थितं जगत् ॥ एवमुत्थाप्य चरणं पवित्रं० ॥ गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः ॥ शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव" इत्यादिमंत्राभ्यां पुष्पांजलिं दद्यात् ॥ अथाचारात्तुलसीसंमुखां श्रीकृष्णप्रतिमां कृत्वा मध्येंतःपटं धृत्वा मंगलाष्टकपद्यानि पठित्वांतःपटं विसृज्याक्षतप्रक्षेपं कृत्वा दामोदरहस्ते तुलसीदानं कुर्यात् ॥ "देवीं कनकसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् ॥ दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया" ॥ मया संवर्धितां यथाशक्त्यलंकृतामिमां तुलसीं देवीं दामोदराय श्रीधराय वराय तुभ्यमहं संप्रददे इति देवपुरतः साक्षतजलं क्षिपेत् ॥ श्रीमहाविष्णुः प्रीयतामित्युक्त्वेमां देवीं प्रतिगृह्णातु भवानिति वदेत् ॥ ततो देवहस्तस्पर्शं तुलस्याः कृत्वा "क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामं समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णातु" इति मंत्रमन्येन वाचयेत् ॥ यजमानः ॥ "त्वं देवि मेऽग्रतो भूयास्तुलसी देवि पार्श्वतः ॥ देवि त्वं पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम्" ॥ दानस्य प्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे देवपुरतो दक्षिणामर्पयेत् ॥ ततः "स्वस्ति नो मिमीतां शं नः" इत्यादि स्वस्वशाखोक्तानि शांतिसूक्तानि विष्णुसूक्तानि च पठेयुः ॥ तुलसीयुताय विष्णवे महानीराजनं कृत्वा मंत्रपुष्पं दत्त्वा सपत्नीकः सगोत्रजः सामात्यो यजमानश्चतस्रः प्रदक्षिणाः कुर्वीत ॥ ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् ॥

इसी प्रकार तुलसीका विवाह नवमी आदि तीनदिन और एकादशीसे लेकर पूर्णिमातक जिस किसी दिन अथवा कार्तिकके शुक्लपक्षमें जो विवाहनक्षत्र हों उनमें करै । इस विधिसे तुलसीके विवाहके अनेक समय हैं । तथापि प्रचारसे पारणाके दिन प्रबोधोत्सवके साथही तंत्रसे इसको करतेहैं । सो यह विवाहभी पारणाके दिन रात्रिके पूर्वभागमेंही करना । और जो प्रबोधोत्सवसे पृथक् करनेकी इच्छा होय तो कालान्तरमें करना । तिसमें पुण्याहवाचन, नांदीश्राद्ध, होम आदि अंगसहित तुलसीविवाहकी विधि कौस्तुभ आदि ग्रंथमें समझनी । परन्तु हम भी प्रबोधोत्सवके साथ एकतंत्रसे शिष्टाचारके अनुसार संक्षेपसे लिखतेहैं । देश-

कालका कीर्तन करके मैं श्रीदामोदरकी प्रीतिके लिये प्रबोधोत्सव और संक्षेपसे तुलसीविवाहकी विधिको तंत्रसे करताहूं, तथा उसके अंगरूप पुरुषसूक्तको पढकर विधिसे षोडशोपचारसे श्रीविष्णु और तुलसीकी पूजाको करताहूं यह संकल्प करै । फिर न्यास आदिको करके और श्रीविष्णु और तुलसीका ध्यान करके और 'सहस्रशीर्षा' इस ऋचासे महाविष्णु और तुलसीका आवाहन करकै 'पुरुष एवेदम्'इस ऋचासे श्रीमहाविष्णु दामोदर और तुलसीके लिये आसनको दे । इसी प्रकार अन्यभी समझना । फिर स्नानके अन्तमें नागवल्लीदल (पान) इनमें सुगंधित तैल और हरिद्राको भरकर उससे और उष्णोदकसे विष्णु और तुलसीका मंगलस्नान मंगलके वाजोंसहित सुवासिनी (सुहागिन) स्त्री करावैं । वा आपही करकै और फिर पंचामृतस्नान कराकर शुद्धोदकसे अभिषेक करै।दामोदरको वस्त्र,यज्ञोपवीत और चंदनको देकर और तुलसीको हरिद्रा, कुकुंम, कंठसूत्र आदि अलंकारोंको देकर और मंत्रपुष्पान्त पूजाको समाप्त करके घण्टा आदि बाजोंके शब्दसे श्रीविष्णुको जगावै । उसके ये मन्त्र हैं कि, यदि आचारसे प्राप्त हो तो 'यो जागार०' इस मन्त्रसे और जो यह मन्त्र आचार प्राप्त न होय तो ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि देवता तथा कुबेर, सूर्य, सोमआदि जिसकी स्तुति करते हैं और जगत् जिसमें निवास करते हैं ऐसे हे वन्दनीय देवोंके ईश्वर ! आप मन्त्रके प्रभावसे सुखपूर्वक जागो । हे देव ! विष्णुरूप आपने यह द्वादशी अपने जागरणके लिये सब लोकोंके कल्याणके अर्थ रची है । हे गोविन्द ! हे जगत्के स्वामी ! आप उठो उठो निद्राको त्यागो क्योंकि, आपके सोनेपर जगत् सोता है और आपके उठनेपर उठैगा । इस प्रकार पूर्वोक्त मन्त्रोंसे जगाय कर इन मन्त्रोंसे पुष्पांजलिको दे कि, आपके चरण पवित्र हैं, इत्यादि और हे महाराज ! मेघ गये, आकाश और दिशा निर्मल हुई आप शरद् ऋतुके इन पुष्पोंको ग्रहण करो । फिर जो आचारसे प्राप्त होय तो तुलसीके सम्मुख श्रीकृष्णकी प्रतिमाको रखकर और दोनोंके बीचमें अन्त पटको करके मङ्गलाष्टकके श्लोकोंको पढै और अन्तःपटको हटाकर अक्षतोंको फेंककर श्रीदामोदरके हाथमें तुलसीजीका दान करै । और फिर श्रीदामोदरके आगे इसप्रकार पढकर अक्षतोंसहित जलको फेंकै कि, सुवर्ण और सुवर्णके आभूषणोंसहित इस देवीको ब्रह्मलोकके जीतनेकी इच्छासे आपको देताहूं मेरी बढाई हुई और शक्तिके अनुसार आभूषणोंसे युक्त इस तुलसी देवीको दामोदर वररूप आपको देताहूं । फिर श्रीमहाविष्णु प्रसन्नहो ऐसे कहकर इस देवीको आप ग्रहणकरो यह कहै । फिर देवके हाथसे तुलसीका स्पर्श करके इस मन्त्रको किसी अन्य ब्राह्मणसे बँचवावै कि, "कइदं कस्मा अदात् कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामं समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णातु " फिर यजमान इस प्रकार श्रीदामोदरके आगे दक्षिणाका अर्पण करै कि, हे तुलसी देवि ! तू मेरे अगाडी हो, मेरे पार्श्वभागमें हो, पिछाडी हो तेरे दानसे मैं मोक्षको प्राप्त हूंगा । दानकी प्रतिष्ठा सिद्धिके लिये इस दक्षिणाको आपको देताहूं । फिर 'स्वस्तिनोमिमीतां शन्नो मित्रः' इत्यादि अपने २ शाखामें कहेहुए शान्तिसूक्तोंको और विष्णुसूक्तोंको पढ़ै । तुलसीसहित श्रीविष्णुमहाराजकी महाआरतीको करके मन्त्रपुष्पको देकर यजमान स्त्री, गोत्र, बाधव, मन्त्री इन करके सहित चार परिक्रमा करै । फिर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर और शक्तिके अनुसार ब्राह्मणभोजन कराके पूर्वकिये कर्मको ईश्वरके अर्पण करै ॥

अथ व्रतोद्यापनं चातुर्मास्ये ।

एवं देवं प्रबोध्य कार्तिके यद्यद्द्रव्यवर्जनं कृतं तत्तद्द्रव्यमुक्तरीत्या द्रव्यांतरं च ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा व्रतसंपूर्णतां प्रार्थयेत् ॥ "इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ॥ न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन" इति ॥ ततो व्रतं भगवदर्पणं कुर्यात् ॥ चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिरप्यत्रैवेति केचित् ॥ कार्तिकमासव्रतोद्यापनं चातुर्मास्यव्रतोद्यापनं च चतुर्दश्यां पूर्णिमायां वेत्यपरे ॥

इसप्रकार देवको जगाकर कार्तिकमासमें जिन २ द्रव्योंका त्याग कियाथा उन २ द्रव्योंको तथा अन्य द्रव्योंको पूर्वकही रीतिके अनुसार ब्राह्मणोंको देकर व्रतके संपूर्ण होनेकी प्रार्थना इन मन्त्रोंसे करै कि, हे प्रभो! यह व्रत आपकी प्रीतिके लिये मैंने किया है, जो इसमें न्यूनता हो वह आपके प्रसादसे सम्पूर्ण हो । फिर व्रतको भगवान्के अर्पण करै । कोई यह कहते हैं कि, चतुर्मासके व्रतकी समाप्ति भी इसी द्वादशीको होती है । और कोई यह कहते हैं कि, कार्तिकमासके व्रतका उद्यापन और चातुर्मास्य व्रतका उद्यापन चतुर्दशीको करना ॥

अथ वैकुंठचतुर्दशी ।

पूर्वेद्युरुपवासं कृत्वाऽरुणोदयव्यापिन्यां चतुर्दश्यां शिवं संपूज्य प्रातः पारणं कार्यम् ॥ तथा च चतुर्दशीयुक्तारुणोदयवत्यहोरात्रे उपवासः फलितः ॥ उभयत्रारुणोदयव्याप्तौ परत्रारुणोदये पूजा पूर्वत्रोपवासः ॥ उभयत्राव्याप्तौ चतुर्दशीयुक्ताहोरात्र एवारुणोदये पूजा पूर्वत्रोपवासश्च ॥ केचित्तु विष्णुपूजायामियं निशीथव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्येत्याहुः ॥ अस्यामेव चतुर्दश्यां परविद्धायां कार्तिकमासव्रतोद्यापनांगत्वेनोपवासं कृत्वाधिवासनं विधाय ॥ "रात्रौ जागरणं कुर्याद्गीतवाद्यादिमंगलैः ॥ नराणां जागरे विष्णोर्गीतं नृत्यं च कुर्वताम् ॥ गोसहस्रं च ददतां फलं समुदाहृतम्" ॥ इत्यादिवाक्यैर्विहितं गीतनृत्यवाद्यविष्णुचरितपठनस्वेच्छालापलीलानुकारैर्हरिजागरं कृत्वा परविद्धपौर्णमास्यां सपत्नीकाचार्यं वृत्वा 'अतो देव' इति द्वाभ्यां तिलपायसं हुत्वा गोदानं कार्यमिति मासव्रतोद्यापनम् ॥ कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या ॥ अन्यत्पूर्वमुक्तम् ॥ अस्यां चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः ॥

अब वैकुण्ठ चतुर्दशीके निर्णयको कहते हैं। कि, पहिले दिन उपवास करके अरुणोदयव्यापिनी चतुर्दशीको शिवकी पूजा करके प्रातःकाल पारणाको करै । इससे यह बात सिद्ध हुई कि, जिस अहोरात्र (रातदिन) का अरुणोदय चतुर्दशीसे युक्त हो उसमें उपवास करना । जो दोनों दिन अरुणोदयव्यापिनी चतुर्दशी होय तो परले अरुणोदयमें पूजा करनी और उपवास दोनों दिन करना । और जो दोनों दिन अरुणोदयव्यापिनी न होय तो चतुर्दशीसे युक्त अहोरात्रके अरुणोदयमें पूजा और पहिले दिन उपवास करना । और कोई तो यह

कहते हैं कि, विष्णुपूजाके विषै यह निशीथ (अर्द्धरात्र) व्यापिनी ग्रहण करनी । जो दोनों दिन निशीथव्यापिनी होय तो जिसकी निशीथ और प्रदोष इन दोनोंमें व्याप्तिहो वह ग्रहण करनी । और इस परविद्धा चतुर्दशीके दिनही कार्तिकमासके व्रतका जो उद्यापन है उसके अंगरूप उपवासको करके भगवान्‌को शय्यापर पौढाय दे । और फिर रात्रिमें जागरण, गीत, वाद्य आदि मंगलों सहित करै । क्योंकि, भगवान्‌के जागरणमें गीत और नृत्यके करनेवाले मनुष्योंको हजार गौओंके दानके समान फल कहा है इत्यादि वाक्योंसे जो गीत वाद्य आदिका बजाना, विष्णुके चरित्रोंका पढना, अपनी इच्छासे सुन्दर आलाप करना, भगवान्‌की लीलाका अनुकरण (वैसेही) कहे हैं, उनसे श्रीहरिके जागरणको करके फिर परविद्धा पूर्णमासीमें सपत्नीक आचार्यका वरण करके और 'अतो देव' इन दो मंत्रोंसे तिलसहित पायस (खीर) को होमकर गोदान को करै । मासव्रतका उद्यापन समाप्त हुआ । कार्तिकशुक्ला द्वादशी मन्वादि कहाती है, वह पूर्वविद्धा लेनी । अन्य सब पूर्व कहचुके इसमें चतुर्मासके व्रतकी समाप्ति करै ॥

अथ तत्र चातुर्मास्यव्रतानां समाप्तौ दानानि ।

नक्तव्रते वस्त्रयुग्मम् ॥ एकांतरोपवासे गौः ॥ भूशयने शय्या ॥ षष्ठकालभोजने च गौः ॥ व्रीहिगोधूमादिधान्यत्यागे सौवर्णव्रीहिगोधूमादिदानम् ॥ कृच्छ्रव्रते गोयुग्मम् ॥ शाकाहारे गौः ॥ पयोमात्रभक्षणे पयोवर्जने च गौः ॥ मधुदधिघृतवर्जने वस्त्रं गौश्च ॥ ब्रह्मचर्ये स्वर्णम् ॥ तांबूलवर्जने वस्त्रयुग्मम् ॥ मौने घंटाघृतकुंभौ वस्त्रद्वयं च ॥ रंगवल्लीकरणे गौः सुवर्णपद्मं च ॥ दीपदानव्रते दीपिका वस्त्रद्वयं च ॥ भूमिभोजने कांस्यपात्रं गौश्च ॥ गोग्रासे गोवृषौ ॥ प्रदक्षिणाशते वस्त्रम् ॥ अभ्यंगवर्जने तैलपूर्णघटः ॥ नखकेशधारणे मधुसर्पिर्हेमदानम् ॥ यत्र विशेषतो दानं नोक्तं तत्र स्वर्णं गौश्च ॥ गुडवर्जने गुडपूर्णं ससुवर्णं ताम्रपात्रम् ॥ एवं लवणवर्जने लवणपूर्णं ताम्रपात्रमिति केचित् ॥

तहां चतुर्मासके व्रतोंकी समाप्ति होनेपर दानोंको कहते हैं । जो नक्त व्रत (रात्रिभोजन) किया होय तो दो वस्त्र । एकान्तर उपवास (बीचमें एकदिन न खाना) मेंगौ । पृथ्वीपर सोनेमें शय्या । छठेकालमें भोजन करनेमें गौ । धान,गेहूँ आदि धान्यके त्यागमें सुवर्ण, व्रीहि, गोधूम आदिका दान । कृच्छ्रव्रतमें दो गौ । शाकभोजनमें गौ । दूधमात्रके भोजन वा दूधके त्यागमें गौ । मधु, घी, दधि इनके त्यागमें वस्त्र और गौ । ब्रह्मचर्यसे रहनेमें सुवर्ण । ताम्बूलके छोडनेमें दो वस्त्र । मौन व्रतमें घंटा, घीका घडा और दो वस्त्र । रंगवल्लीके करनेमें गौ, सुवर्णका कमल । दीपकके दानमें दीपिका और दो वस्त्र । पृथ्वीपर भोजन करनेमें कांसीका पात्र और गो । गौग्रास निकालनेमें गौ और वृष । सौ परिक्रमा करनेमें वस्त्र । अभ्यंग (तैल आदि लगाना) के त्यागमें तैलसे भरा घट । नख और केशोंके धारणमें मधु, घी और सुवर्णका दान । जिस व्रतमें विशेषसे दान नहीं कहा उसमें सुवर्ण और गौ समझनी । गुडके छोडनेमें गुडसे पूर्ण सुवर्ण सहित ताँबेका पात्र इसी प्रकार लवणके त्यागमें कोई लवणसे भरा ताँबेका पात्र कहते हैं ॥

अथ लक्षप्रदक्षिणानमस्कारोद्यापनम् ।

अस्यामेव लक्षप्रदक्षिणा लक्षनमस्काराणामाषाढ्यादावारब्धानामुद्यापनं कार्यम् ॥ एवं तुलसीलक्षपूजां कार्तिके माघे वारभ्य प्रत्यहं सहस्रतुलसीसमर्पणेन लक्षं समाप्य माघ्यां वैशाख्यां वोद्यापनं कार्यम् ॥ एवं पुष्पादिलक्षपूजा अपि ॥ तत्र बिल्वपत्रलक्षेण लक्ष्मीप्राप्तिः फलम् ॥ दूर्वालक्षेणारिष्टशांतिः ॥ चंपकलक्षेणायुष्यम् ॥ अतसीलक्षेण विद्या ॥ तुलसीलक्षेण विष्णुप्रसादः ॥ गोधूमतंडुलादिप्रशस्तधान्यलक्षेण दुःखनाशः ॥ एवं सर्वपुष्पैः सर्वकामावाप्तिः ॥ एवं लक्षवर्तिव्रतमपि मासत्रयं कृत्वा कार्तिके माघे वैशाखे वोत्तरोत्तरप्रशस्ते समापनीयम् ॥ एवं धारणपारणव्रतोद्यापनमपि पौर्णमास्यामेव ॥ कार्तिकमासव्रतानां मासोपवासादीनां द्वादश्यामेव समापनम् ॥ तत्रासंभवे पौर्णमास्याम् ॥ एवं गोपद्मव्रतमाषाढशुक्लैकादश्यादावारभ्य प्रत्यहं त्रयस्त्रिंशद्गोपद्मानि विलिख्य ॥ गंधपुष्पैः प्रपूज्य तावत्संख्याकार्घ्यनमस्कारप्रदक्षिणाः कृत्वा कार्तिकद्वादश्यां त्रयस्त्रिंशदपूपवायनं दद्यादेवं संवत्सरपंचकमनुष्ठायोद्यापनं कुर्यात् ॥ लक्षप्रदक्षिणादि गोपद्मपर्यंतोद्यापनानामिति कर्तव्यताः कौस्तुभे द्रष्टव्याः ॥ कार्तिके पौर्णमास्याः कृत्तिकानक्षत्रयोगे महापुण्यत्वं रोहिणीयोगे महाकार्तिकीत्वम् ॥ कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कार्तिकेयदर्शनं करोति स सप्तजन्मसु धनाढ्यो वेदपारगो विप्रो भवेत् ॥

इसी पूर्णमासीके दिन आषाढकी पूर्णिमासीसे लगाकर जो लक्ष परिक्रमा और लक्ष नमस्कारोंका नियम किया हो उसका उद्यापन करना । इसीप्रकार लक्ष तुलसीसे पूजा है उसको कार्तिक वा माघमासमें प्रतिदिन हजार तुलसीकी पूजासे लक्ष संख्याको समाप्त करके माघकी पूर्णिमाको वा वैशाखकी पूर्णिमाको उद्यापन करना । इसीप्रकार लक्ष पुष्प आदिसेभी पूजा समझनी । तिसमें लक्ष बिल्वपत्रके अर्पणसे लक्ष्मीकी प्राप्ति, लक्षदूबके अर्पणसे दुःखकी शाति, लक्ष चमेलीके पुष्पोंके अर्पणसे आयुष्यकी प्राप्ति, लक्ष अतसी (विष्णुक्रांति) के पुष्पोंसे विद्याप्राप्ति, लक्ष तुलसीसे विष्णुकी प्रसन्नता, लक्ष गोधूम वा चावल आदि उत्तम धान्यके अर्पणसे दुःखका नाश इसीप्रकार सब पुष्पोंके अर्पणसे सब कामोंकी प्राप्ति होती है । इसीप्रकार लक्ष बत्तियोंके दीपकका व्रतभी तीन महीना करके उत्तरोत्तर उत्तम कार्तिक, माघ वा वैशाख मासमें समाप्त करना । इसीप्रकार धारण पारण व्रत (ग्रहण कियेकी पारणा) का उद्यापन भी पूर्णिमाकोही करना । कार्तिक मासके जो मासोपवास आदि व्रत हैं उनकी समाप्ति भी द्वादशीकोही करनी । जो उसदिन न होसकै तो पूर्णिमाको करनी । इसीप्रकार गोपद्म व्रतभी आषाढ शुक्ला एकादशी आदिके दिनसे लेकर प्रतिदिन तैतीस (३३) गोपद्म लिखने और उनकी गन्ध पुष्पोंसे पूजा करनी । उतनेही नमस्कार और परिक्रमा करके कार्तिककी द्वादशीके दिन तैतीस अपूपों (मालपूओं) को दे । इसीप्रकार पांचवर्ष करके उद्यापन करै । लक्ष प्रदक्षिणासे लेकर गोपद्म पर्यंत जो कर्म हैं उनके उद्यापनकी विधि कौस्तुभ ग्रंथमें समझनी । कार्तिककी पूर्णिमाको जो कृत्तिकाका योग होय तो महापुण्या और

रोहिणीका योग होय तो महाकार्त्तिकी कहते हैं । जो कार्त्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिकाका योग होय उसमें जो मनुष्य सोमकार्त्तिकका दर्शन करता है वह सात जन्मतक धनसे युक्त वेदका पारगामी ब्राह्मण होता है ॥

अथ पद्मकयोगः ।

विशाखास्थे सूर्ये सति यद्दिने चंद्रनक्षत्रं कृत्तिका तत्र पद्मकयोगः॥ अयं पुष्करतीर्थेतिप्रशस्तः ॥ अस्यामेव त्रिपुराख्यदीपदानमुक्तम् ॥

विशाखा नक्षत्रपर सूर्यहों तब जिसदिन चन्द्रमाका नक्षत्र कृत्तिका होय उसको पद्मक योग कहते हैं । यह योग पुष्कर तीर्थमें अतिउत्तम है । इसीमें त्रिपुरा नामके दीपका दान कहा है ॥

अथ काम्यवृषोत्सर्गकालः ।

कार्तिकपौर्णमास्यां काम्यवृषोत्सर्गोतिप्रशस्तः ॥ एवं गजाश्वरथघृतधेन्वादिमहादानमपि प्रशस्तम् ॥ वृषोत्सर्गस्याश्विनीपौर्णमासीग्रहणद्वयमयनद्वयं विषुवद्वयं चेति कालांतराणि ॥ अन्यत्र माघी चैत्री वैशाखी फाल्गुन्याषाढी चेति पौर्णमास्यो रेवतीनक्षत्रं वैधृतिव्यतीपातौ युगादिमन्वादिसूर्यसंक्रांतिपितृक्षयाहाष्टका अपि काला उक्ताः ॥ अत्र वृषोत्सर्गप्रयोगोतिविस्तृतो नानाशाखाभेदभिन्नः कौस्तुभे द्रष्टव्यः ॥ कार्तिककृष्णाष्टमी कालाष्टमी ॥ इयं पौर्णिमांतमासपक्षे मार्गशीर्षकृष्णाष्टमीत्युच्यते ॥ सेयं मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वैवेति सिंधौ स्थितम् ॥ प्रदोषव्यापिनीति कौस्तुभे ॥ उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ तदेकदेशस्पर्शे वा परैव ॥ यदा पूर्वत्र प्रदोषव्याप्तिरेव परत्र मध्याह्नव्याप्तिरेव तदा बहुशिष्टाचारानुरोधात्प्रदोषव्याप्त्यैव निर्णयो न मध्याह्नव्याप्त्येति भाति ॥ अत्र कालभैरवपूजां कृत्वा त्रयोर्घ्या देयाः ॥ उपवासो जागरश्च कार्यः ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे कार्तिकमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

कार्त्तिककी पूर्णिमाको काम्य वृष (बैल) का त्याग अत्यंत उत्तम कहा है । इसी प्रकार हाथी, घोडा, रथ, घृत, धेनु आदिका दानभी अत्यंत उत्तम है । वृषोत्सर्गके तो ये अन्य भी काल हैं कि, आश्विनकी पूर्णिमाका ग्रहण । दोनों अयन (दक्षिणायन उत्तरायण) । दो विषुवत् (तुला मेष) और अन्य शास्त्रमें तो माघ, चैत्र, वैशाख, फाल्गुन, आषाढ इनकी पूर्णिमासी रेवती नक्षत्र, वैधृति व्यतीपात योग, युगादि वा मन्वादि, सूर्यकी संक्रांति, पिताके मरणदिन अष्टका श्राद्ध ये काल कहे हैं । इसमें वृषोत्सर्गकी विधि अत्यंत विस्तार पूर्वक अनेक शाखाओंके भेदसे भिन्न २ कौस्तुभ ग्रंथमें समझनी । कार्त्तिकके कृष्णपक्षकी अष्टमीको कालाष्टमी कहते हैं । पूर्णिमा पर्यंत मास होता है इस पक्षमें इस अष्टमीको मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमीभी कहते हैं । वह मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी । जो दोनों दिन मध्याह्न व्यापिनी होय तो पहिलीही लेनी, वह सिंधु ग्रंथमें स्थित है । और कौस्तुभ ग्रंथमें यह लिखा

है कि, प्रदोषव्यापिनी लेनी । जो दोनों दिन प्रदोष व्यापिनी हो वा प्रदोषके एकदेश-में व्यापिनी होय तो परली ही लेनी । जो पहिले दिन प्रदोष कालमेंही हो और परले दिन मध्याह्नसे आगे न होय तो बहुत शिष्टजनोंके कथनके अनुकूल प्रदोष व्यापिनीही ग्रहण करनी, मध्याह्न व्यापिनी नहीं । इस अष्टमीको कालभैरवकी पूजा करके तीन अर्घ्य देने । उपवास तथा जागरण करना ॥ इति धर्मसिन्धुसारे पण्डितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवरण सहिते कार्तिकमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

अथ मार्गशीर्षे धनुःसंक्रांतिः ।

धनुःसंक्रांतौ पराः षोडश नाड्यः पुण्याः ॥ अन्यत्प्रागुक्तम् ॥

अब मार्गशीर्षका निर्णय कहते हैं । धनकी संक्रांतिकी परली सोलह घडी पुण्यकाल है । अन्य निर्णय पूर्व कह चुके ॥

अथ नागपूजापंचमी ।

मार्गशीर्षशुक्लपंचम्यां नागपूजा दाक्षिणात्यानां प्रसिद्धा ॥ इयं षष्ठीयुता ग्राह्येति विशेषः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः ॥

मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमीके दिन दाक्षिणात्योंके यहां नागपूजा प्रसिद्ध है वह षष्ठीसे युक्त ग्रहण करनी । इसमें विशेष निर्णय प्रथम परिच्छेदमें कह चुके ॥

अथ चंपाषष्ठी ।

मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चंपाषष्ठी महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा ॥ अत्र तिथिद्वैधे यस्मिन्दिने रविवारभौमवारशततारकावैधृतीनां मध्येऽधिकैर्योगः सा पूर्वा परा वा मुहूर्तत्रय-व्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वयेऽपि योगाभावे परैव त्रिमुहूर्ता ग्राह्या ॥ इयमेव स्कंद-षष्ठी सा पूर्वा ग्राह्या ॥ अथ सप्तम्यां सूर्यव्रतं तद्विधिः कौस्तुभे ॥ मृगयुतायां पौर्णमास्यां लवणदाने सुंदररूपता ॥

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको चंपाषष्ठी कहते हैं वह महाराष्ट्रोंमें प्रसिद्ध है । जो तिथि दो प्रकारकी होय तो जिस दिन रविवार, भौम, शततारका, वैधृति इनमेंसे अधिकका योग होय वह पहिली हो वा पिछली हो तीन मुहूर्तव्यापिनी ग्रहण करनी । जो दोनों दिन योग न होय तो परलीही तीन मुहूर्तव्यापिनी लेनी । इसीकोही स्कंदषष्ठी कहते हैं, यह पहि-लीही ग्रहण करनी । सप्तमीके दिन सूर्यव्रत कहा है उसकी विधि कौस्तुभ ग्रंथमें समझनी । मृगशिर नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमाको लवणके दान करनेसे सुंदररूपको प्राप्त होताहै ॥

अथ दत्तजयंती ।

मार्गशीषपौर्णमास्यां दत्तात्रेयोत्पत्तिः ॥ इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ॥ मार्गशी-र्षशुक्लचतुर्दश्यां पौर्णमास्यां वा प्रदोष आश्वलायनैः प्रत्यवरोहणं कार्यम् ॥ तत्र कर्मकालव्यापिनी तिथिः ॥ तत्प्रयोगः प्रयोगरत्नकौस्तुभादौ ज्ञेयः ॥

मार्गशीर्षकी पूर्णिमाको दत्तात्रेयजीका जन्म हुआ वह पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी। मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशी वा पूर्णिमाके दिन आश्वलायन शाखावाले प्रत्यवरोहण नाम कर्मको करैं। तिसमें तिथि कर्मकाल व्यापिनी लेनी। उसका प्रयोग प्रयोगरत्न, कौस्तुभ आदि ग्रंथोंमें समझना ॥

अथान्वष्टकादि ।

मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयस्य कृष्णाष्टमीष्वष्टकाश्राद्धानि तत्पूर्वसप्तमीषु पूर्वेद्युः श्राद्धानि तदुत्तरनवमीषु चान्वष्टक्यश्राद्धानि कर्तव्यानि ॥ एवं भाद्रपदकृष्णपक्षेऽप्यष्टकादिश्राद्धानि कार्याणीति पंचाष्टकापक्ष आश्वलायनभिन्नशाखिनाम् ॥ आश्वलायनानां तु मार्गादिचतुरष्टकापक्ष एव ॥ भाद्रपदकृष्णाष्टम्यां तु माध्या वर्षश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य सर्वमष्टकाश्राद्धवत्कार्यम् ॥ सप्तम्यां तु माध्या वर्षश्राद्धं कर्त्तुं पूर्वेद्युः श्राद्धं करिष्ये इति संकल्पः ॥ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धं करिष्ये इति संकल्पे विशेषः ॥ एवं च भाद्रपदकृष्णाष्टमीश्राद्धस्य माध्यावर्षसंज्ञकत्वादाश्वलायनानां चतुरष्टकापक्षः ॥ अन्यशाखिनां पौषादित्र्यष्टकापक्षोपि ॥ एवं सर्वाष्टकाः कर्तुमशक्तेनैकैवाष्टका कार्या ॥ सा च माघपौर्णमास्यनंतरकृष्णपक्षस्य सप्तम्यामष्टम्यां नवम्यामिति दिनत्रये कार्या ॥ दिनत्रये श्राद्धत्रयं कर्तुमशक्तेन माघकृष्णाष्टमीश्राद्धमेव कार्यम् ॥ तत्राष्टकाश्राद्धेऽपराह्णव्यापिन्यष्टमी ग्राह्या ॥ दिनद्वये व्याप्त्यव्याप्त्यादौ दर्शवन्निर्णयः॥ अष्टम्यनुरोधेन पूर्वपरदिनयोः पूर्वेद्युःश्राद्धान्वष्टक्यश्राद्धे कार्ये ॥ न तु सप्तम्यादेरपराह्णव्याप्तिरपेक्षणीया ॥ एकदिनेप्यशक्तस्य प्रत्याम्नायाः॥ अनडुहो यवसमाहरेत् ॥ अग्निना वा कक्षं दहेदपि वानूचानेभ्य उदकुंभमाहरेत् ॥ अपि वा श्राद्धमंत्रानधीयीतेति ॥ क्वचिदुपवासोप्युक्तः ॥ एवं श्रवणाकर्मादिपाकसंस्थालोपे प्रतिपाकयज्ञं प्राजापत्यं कृच्छ्रं प्रायश्चित्तमुक्तम् ॥ मलमासेष्टकादिश्राद्धानि न कार्याणीति नारायणवृत्तिः ॥ अष्टकादिश्राद्धत्रयप्रयोगः कौस्तुभप्रयोगरत्नादौ ॥ अत्राष्टमीश्राद्धे कामकालसंज्ञकौ विश्वेदेवौ ॥ सप्तमीनवम्योस्तु पुरूरवार्द्रवाविति ॥ आहिताग्नेः पूर्वेद्युः श्राद्धांगहोमोष्टकाङ्गहोमोऽन्वष्टकाग्नौकरणहोमो दिनत्रये हविःश्रपणं च दक्षिणाग्नौ भवतीति विशेषः ॥ विशेषमनाहिताग्निवत् ॥

मार्गशीर्ष आदि चारमहीनोंकी कृष्णा अष्टमियोंमें अष्टका श्राद्ध करना। उससे पूर्व सप्तमियोंमें पहिले दिनका श्राद्ध और उत्तर नवमीमें अन्वष्टका श्राद्ध करना। इसी प्रकार भाद्रपद कृष्णपक्षमें अष्टका आदि श्राद्ध करना यह पंचाष्टका पक्ष (पांच अष्टका मानना) आश्वलायनसे भिन्न शाखावालोंका है। और आश्वलायन तो मार्गशिर आदि चतुरष्टकापक्षकाही मानते हैं। भाद्रपदकृष्णा अष्टमीके दिन माध्यावर्ष श्राद्धको करताहूं इस संकल्पको करके अन्य सब कर्म अष्टकाश्राद्धकी समान करै। और सप्तमीके दिन "माध्यावर्षश्राद्धं कर्तुं पूर्वेद्युः

श्राद्धं करिष्ये" इस प्रकार संकल्प करै । और नवमीके अन्वष्टका श्राद्धको करता हूं यह संकल्प विशेष समझना।इससे यह बात सिद्ध हुई कि, आश्वलायन शाखावालोंके मतमें भाद्रपदकृष्णाष्टमीका श्राद्ध माध्यावर्ष कहाताहै अष्टका नहीं। इससे चतुरष्टका पक्षकी सिद्धि है। और अन्य शाखावालेपौषआदिकी तीनही अष्टका मानते हैं। इसप्रकार जो सब अष्टका श्राद्ध न करसकै तो एकही करना। वह एक अष्टका माघकी पूर्णिमाके अनन्तर कृष्णपक्षकी सप्तमी,अष्टमी और नवमी इन तीन दिन करना।तीन दिन श्राद्ध करनेकी सामर्थ्य न होय तो माघकृष्णा अष्टमीको एकही श्राद्ध करना। अष्टका श्राद्धके विषे अपराह्णव्यापिनी अष्टमी ग्रहण करनी। दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो वा न होय तो अमावस्याके समान पूर्व कहा निर्णय समझना। और अष्टमीके अनुसार पहिले दिन पूर्वेद्युःश्राद्ध और परले दिन अन्वष्टक्य श्राद्ध करना। सप्तमी आदिकी अपराह्णव्याप्तिके अभावकी अपेक्षा न करनी।एक दिन करनेको भी जो समर्थ न होय तो उसके भी प्रत्याम्नायरूप कर्म ये हैं कि, बैलोंको जौका आहार दे वा अग्निसे कक्ष (तृण) को दग्धकरै वा अनूचान (वेदपाठी) के लिये जलका घडा लावै अथवा श्राद्धके मन्त्रोंका पाठकरै। कहीं उपवास भी कहा है। इसीप्रकार श्रवणाकर्म आदिके पाकयज्ञरूप कर्मके लोप होनेपर, जितने पाकयज्ञ कियेहों उतनेही प्राजापत्य व्रत वा कृच्छ्रव्रतरूपी प्रायश्चित्तको करै। नारायणवृत्ति ग्रन्थमें यह लिखाहै कि, मलमासमें अष्टका आदि श्राद्ध नहीं करना। अष्टका आदि तीनों श्राद्धोंकी विधि कौस्तुभरत्न आदि ग्रन्थमें समझनी। इस अष्टमी श्राद्धमें काम और काल इन दो नामके विश्वेदेवा होते हैं। सप्तमी और नवमीके श्राद्धके पुरूरव और आर्द्रव विश्वेदेवा होते हैं। आहिताग्नि (अग्निहोत्री) के श्राद्धमें इतना विशेष है कि, पूर्वेद्युः-श्राद्धका अङ्गरूप और अष्टकाका अङ्गभूत होम और अन्वष्टका श्राद्धमें अग्नौकरणरूप होम और तीनों दिन हविका पकाना दक्षिणाग्निमें होताहै। और शेष कर्म अनाहिताग्निके समान समझना ॥

अथ अष्टकान्वष्टकालोपे प्रायश्चित्तम् ।

अष्टकालोपे प्राजापत्यमुपवासो वा प्रायश्चित्तम् ॥ अन्वष्टक्यलोपे तद्दिने शतवारमेभिर्द्युभिः सुमना इति मंत्रजपः ॥

अष्टका श्राद्धके लोप होजानेपर प्राजापत्य वा उपवासको करै। अन्वष्टकाके लोप होनेपर उसदिन शतवार "एभिर्द्युभिस्सुमना०" इस मन्त्रका जप करना ॥

अथ द्वादशमासेषु रविवाराः ।

मार्गशीर्षादिरविवारेषु काम्यं सौरव्रतमुक्तम् ॥ तत्र भक्ष्याणि ॥ मार्गे तुलसीपत्रत्रयम् ॥ पौषे त्रिफलं घृतम् ॥ माघे तिलानां मुष्टित्रयम् ॥ फाल्गुने त्रिपलं दधि ॥ चैत्रे त्रिपलं दुग्धम् ॥ वैशाखे गोमयम् ॥ ज्येष्ठे तोयांजलित्रयम् ॥ आषाढे मरीचकत्रयम् ॥ श्रावणे त्रिफलाः सक्तवः ॥ भाद्रे गोमूत्रम् ॥ आश्विने शर्करा ॥ कार्तिके सद्धविरिति ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे मार्गशीर्षमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

मार्गशीर्ष आदि मासके रविवारोंको सूर्यका काम्य व्रत कहा है। उसमें भक्ष्य ये हैं कि, मार्गशीर्षके रविवारको तुलसीके तीनपत्र, पौषमें तीन पल घी, माघमें तीन मुष्टि तिल, फाल्गुनमें तीन पल दही, चैत्रमें तीन पल दूध, वैशाखमें गोमय, ज्येष्ठमें तीन अंजलि जल, आषाढमें तीन मरीचक (मिरच), श्रावणमें तीन पल सत्तू, भाद्रपदमें गोमूत्र, आश्विनमें खांड, कार्तिकमें श्रेष्ठ हवि ॥ इति श्रीधर्मसिन्धुसारे पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवरणसहिते मार्गशीर्षमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

अथ पौषे मकरसंक्रांतिः।

दिवामकरसंक्रमे संक्रांत्यनंतरं चत्वारिंशन्नाड्यः पुण्याः ॥ घटिकाद्यल्पदिनशेषे मकरसंक्रांतौ संक्रांत्यासन्नपूर्वकाले दिवैव स्नानश्राद्धदानभोजनानि कार्याणि ॥ रात्रौ श्राद्धदानादेर्निषेधात्स्वल्पदिनभागे स्नानश्राद्धभोजनादेः कर्तुमशक्यत्वाद्रात्रौ भोजननिषेधात्पुत्रवद्गृहिण उपवासनिषेधाच्च ॥ तस्मादीदृशे विषये परपुण्यकालत्वं बाधित्वा मकरसंक्रांतेः पूर्वभागे एव पुण्यत्वं ज्ञेयम् ॥ रात्रौ पूर्वभागे परभागे निशीथे वा मकरसंक्रमे उत्तरदिनं पुण्यम् ॥ तत्राप्युत्तरदिनपूर्वार्द्धं पुण्यतरम् ॥ तत्रापि सूर्योदयोत्तरं पंच नाड्यः पुण्यतमाः ॥ एवं रात्रिसंक्रांतिविषयेन्यत्रापि यत्र पूर्वदिनोत्तरार्धस्य पुण्यत्वं तत्र दिनांते पंचनाडीनां पुण्यतमत्वम् ॥ यत्रोत्तरदिनपूर्वार्द्धस्य पुण्यत्वं तत्रोदयोत्तरं पंचनाडीनां पुण्यतमत्वम् ॥ एवं दिवासंक्रमेपि संक्रांतिसंनिहितनाडीनां मकरादिषूत्तरासां कर्कादिषु पूर्वासां पुण्यतमत्वं ज्ञेयम् ॥ "याः याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः" इत्युक्तेः ॥ मुहूर्तचिंतामण्यादौ तु सूर्यास्तादूर्ध्वं घटीत्रयं संध्याकालस्तत्र मकरसंक्रमे परदिनपुण्यत्वं बाधित्वा पूर्वदिने पुण्यत्वमुक्तम् ॥ नेदं सर्वत्र धर्मशास्त्रग्रंथेषु दृश्यते ॥ "शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां संक्रांतिर्ग्रहणाधिका" ॥ अत्र कृत्यम् ॥ "रविसंक्रमणे प्राप्ते न स्नायाद्यस्तु मानवः ॥ सप्तजन्मनि रोगी स्यान्निर्धनश्चैव जायते" इति वचनात् मनुष्यमात्रस्य स्नानं नित्यम् ॥ एवं श्राद्धमप्यधिकारिणो नित्यम् ॥ तच्चापिंडकम् ॥ "संक्रांते यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः ॥ तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनिजन्मनि" ॥ अयनसंक्रांतौ त्रिदिनमुपवासः ॥ यद्वा संक्रांतिमत्यहोरात्रे पुण्यकालवत्यहोरात्रे वोपवासं कृत्वोक्तपुण्यकाले स्नानादिकं कार्यम् ॥ अयमुपवासः सापत्यगृहस्थेन न कार्यः ॥ "धेनुं तिलमयीं राजन्दद्याच्चैवोत्तरायणे ॥ तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः ॥ सतिलैस्तंडुलैश्चैव पूजयेद्विधिवच्छिवम् ॥ तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं तिलैः ॥ तिला देयाश्च होतव्या भक्ष्याश्चैवोत्तरायणे" ॥ शुक्लतिलैर्देवादितर्पणं कृष्णतिलैः पितृतर्पणं च कार्यम् ॥ अत्र शंभौ घृताभिषेको महाफलः ॥ अत्र सुवर्णयुतं तिलताम्रपात्रं देयम् ॥ तत्प्रयोगो वक्ष्यते ॥

अब पौषमासका निर्णय कहते हैं। कि,जो दिनमें मकरकी संक्रांति होय तो संक्रांतिसे पीछे चालीस घडी पुण्यकाल है। घडी आदि अल्पदिन शेष रहाहो तब मकरसंक्रांति हो, तो

उस संक्रांतिके समीपके पूर्वकालमें दिनमेंही श्राद्ध, दान, भोजन करने । क्योंकि, रात्रिमें श्राद्ध, दान आदिका निषेध है । और थोडे दिनके भागमें स्नान, श्राद्ध, भोजन आदि नहीं करसक्ते । और रात्रिमें भोजन करनेका निषेध है । और पुत्रवान् गृहस्थीको उपवासका निषेध है । इससे ऐसे विषयमें परले पुण्यकालको बाधकर मकरसंक्रांतिके पूर्वभागमें ही पुण्य समझना । रात्रिके पूर्व वा परले भागमें अथवा अर्धरात्रिके समय मकरसंक्रांति होय तो परला दिन पुण्यकाल है । तिस उत्तर दिनमें भी दिनका पूर्वार्द्ध (मध्याह्नपर्यंत) भाग अत्यन्त पुण्यकाल है । और उस पूर्वार्द्धमें भी सूर्योदयसे पीछे पांच घडी अधिक पुण्यकाल है । इसीप्रकार रात्रिके संक्रमणमें अन्यत्रभी समझना । जहां पहिले दिनका उत्तरभाग पुण्यकाल है तहां परदिनके अन्तसमयकी पांच घडी अधिक पुण्यकाल होती हैं । और जहां परले दिनके पूर्वार्द्धकालको पुण्यकाल कहा है तहां सूर्योदयसे पीछे पांच घडी अत्यन्त पुण्यकाल कहा है । इसीप्रकार जहां दिनमें संक्रांति बैठीहो वह मकर आदि छः संक्रांतियोंकी समीपकी पिछली घडी और कर्क आदिकी पहिली समीपकी घडी अधिक पुण्यकाल समझना। क्योंकि, ये वचन हैं कि, जो जो समीपकी घडी हों वे वे ही पुण्य करनेमें अत्यन्त उत्तम हैं। मुहूर्तचिन्तामणि आदिमें तो सूर्यास्तसे पीछे तीन घडी सन्ध्याकाल है। तिसमें जो मकरसंक्रांति बैठी होय तो परले दिन पुण्यकालको बाध करके पहिले दिनही पुण्यकाल कहा है । परन्तु यह सब धर्मशास्त्रके विषे नहीं प्रतीत होता । शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिनकी संक्रांति ग्रहणसे भी अधिक होती है अर्थात् इसमें स्नानआदिके करनेसे ग्रहणसे अधिक फल प्राप्त होता है । अब इसके कृत्यका निर्णय कहते हैं कि, सूर्यकी संक्रांतिके होनेपर जो मनुष्य स्नान नहीं करता वह सात जन्मतक रोगी और निर्धन रहताहै । इस वचनके सुननेसे इस संक्रांतिमें मनुष्यमात्रको स्नानरूप कर्म नित्य है । इसीप्रकार श्राद्ध करना भी अधिकारी मनुष्यके लिये नित्य है । वह पिण्डरहित करना क्योंकि, यह वचन है कि, संक्रान्तिके विषे जो दाता मनुष्य हव्यकव्योंको देते हैं, उन मनुष्योंके लिये सूर्य जन्मजन्ममें हव्यकव्योंको देता है । अयनकी संक्रांतिके विषे तीन दिन उपवास कहा है, अथवा जिस अहोरात्रके विषे संक्रांति वा पुण्यकाल हो उसमें उपवासको करके, पूर्व कहे पुण्यकालमें स्नान आदि करना । यह उपवास पुत्रवान् गृहस्थी न करै । हे राजन् ! उत्तरायणके विषे तिलोंकी गौ दे । तिलोंके तेलके दीपक शिवमंदिरमें उत्तमप्रकारसे दे । तिलोंसहित चावलोंसे विधिपूर्वक शिवका पूजन करै । तिस संक्रांतिमें तिलोंसे उबटना, कृष्णतिलोंसे स्नान करना, उत्तरायणकालके विषे तिलोंका दान, होम और भक्षण करै । शुक्ल चावलोंसे देव आदिका तर्पण और काले तिलोंसे पितरोंका तर्पण करै। इस संक्रांतिमें महादेवजीको घृतसे अभिषेक (स्नान) करानेसे महाफल होता है । इसमें सुवर्ण और तिलोंसे युक्त ताँबेका पात्र देना उसका प्रयोग आगे कहेंगे ॥

अत्रैव शिवपूजाव्रतम् ।

पूर्वदिने उपोष्य संक्रांतिदिने तिलोद्वर्तनतिलस्नानतिलतर्पणानि कृत्वा शिवं गव्येनाज्येन मर्दयित्वा शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य वस्त्राद्युपचारैः पूजयित्वा सुवर्णहीरकनी-

लपद्मरागमौक्तिकमिति पंचरत्नानि कर्षार्धं सुवर्णं वा समर्प्य तिलदीपैः ससुवर्णैः साक्षतैस्तिलैः संपूज्य घृतकंबलं दत्त्वा वितानचामरे समर्प्य विप्रेभ्यः ससुवर्णतिलान्दत्त्वा तिलान्हुत्वा विप्रान्यतींश्च संभोज्य दक्षिणां दत्त्वा सतिलं पंचगव्यं प्राश्य पारणं कुर्यादिति ॥ अत्र वस्त्रदानं महाफलम् ॥ "तिलपूर्वमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते" ॥ अत्र क्षीरेण भास्करं स्नापयेत्सूर्यलोकप्राप्तिः ॥ दिवा विषुवायनसंक्रांतौ तस्मिन्दिने पूर्वरात्रावागामिरात्रौ चानध्यायः ॥ रात्रौ तत्संक्रमे तस्यां रात्रौ पूर्वदिवसे आगामिदिवसे चेति पक्षिण्यनध्यायः ॥ अत्र रात्रौ संक्रमे ग्रहणवद्रात्रावेव स्नानदानादीति पक्षः कैश्चिल्लिखितो न सर्वशिष्टसंमतः ॥ अयनदिनं तत्परं करिसंज्ञकं च दिनं शुभेषु वर्ज्यमित्युक्तम् ॥ तत्रार्धरात्रादर्वागयनसंक्रांतौ तद्दिनं तत्परदिनं च वर्ज्यम् ॥ निशीथात्परत्र निशीथे वा संक्रांतौ परं तत्परं च वर्ज्यमिति भाति ॥ एवं ग्रहणेप्यूह्यम् ॥ पौषशुक्लाष्टम्यां बुधवासरयुतायां स्नानजपहोमतर्पणविप्रभोजनानि कार्याणि ॥ अस्यां भरणीयोगे महापुण्यत्वमित्येके ॥ रोहिण्यार्द्रायोगे इत्यपरे ॥ पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः निर्णयः प्रागुक्तः ॥

इसीमें शिवकी पूजा और व्रत कहाहै । कि, पहिले दिन उपवास करके संक्रांतिवाले दिन तिलोंसे उबटना और तर्पण करके फिर शिवजीके शरीरसे गौके घीको मल करके और अति शुद्धजलसे धोकर वस्त्रआदि सामग्रीसे पूजकर और सुवर्ण, हीरा, नीलमणि, पद्मरागमणि और मोती इन पंच रत्न वा आधे तोला सुवर्णको अर्पणकरके और तिलोंके दीपक और सुवर्ण अक्षत सहित तिलोंसे पूजकर फिर केवल घी देकर और वितान (मंडप) और चमर इनको अर्पण करके ब्राह्मणोंके लिये सुवर्णसहित तिलोंको देकर ब्राह्मण और यति इनको भोजन कराकर और दक्षिणा देकर तिलसहित पंचगव्यको पीकर पारणा (व्रतान्त भोजन) को करै । इसमें वस्त्रदानका महाफल होताहै । तिलसहित वृषभके दानसे रोगोंसे मुक्त होताहै। इस संक्रांतिको दूधसे सूर्यको स्नान करावै तो सूर्यलोककी प्राप्ति होती है । जो दिनमें मकरकी संक्रांति होय तो तिसदिन और उससे पहिली रात और पिछली रात अनध्याय होता है । रात्रिमें होय तो तिस रात और पहिले पिछले दिन इस प्रकार पाक्षिणी अनध्याय होता है । आचार्योंने यह लिखा है कि, रात्रिमें संक्रांति बैठे तो ग्रहणके समान रात्रिके विषेही स्नान, दान आदि करने, सो यह पक्ष सबको संमत नहीं है । अयनका दिन और जिसको करी कहते हैं ऐसा उससे परला दिन शुभ कर्मोंमें वर्जित है यह कहा है । जो मकरसंक्रांति अर्द्धरात्रसे पहिले बैठे तो वह दिन और उससे परला दिन वर्जित है । अर्द्धरात्रिसे पीछे वा अर्द्धरात्रिके समय संक्रांति होय तो उससे परला दिन और उससे परला दिन इस प्रकार पिछले दिन दो वर्जितहैं । इसी प्रकार ग्रहणमें भी समझना । पौषशुक्ल अष्टमी बुधवारसहित होय तो उसमें स्नान, जप, होम, तर्पण और ब्राह्मणोंको भोजन कराना । इस अष्टमीको भरणी नक्षत्रका योग होय तो, महापुण्य होता है । इस प्रकार कोई कहते हैं । और कोई यह कहते हैं कि, रोहिणी वा आर्द्राका योग होय तो महाफल है । पौषशुक्ला एकादशी मन्वादि है, उसका निर्णय पूर्व कह आये ॥

अथ माघस्नानम् ।

तत्र पौषस्य शुक्लैकादश्यां पौर्णमास्याममावास्यायां वा माघस्नानारंभः ॥ माघे द्वादशीपूर्णिमादौ समापनम् ॥ यद्वा मकरसंक्रमणप्रभृति कुंभसंक्रमणपर्यंतं माघ-स्नानं कार्यम् ॥ अथ स्नानकालः अरुणोदयमारभ्य प्रातःकालावधिः ॥ "उत्तमं तु सनक्षत्रं लुप्ततारं च मध्यमम् ॥ सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम् ॥ माघमासे रटंत्यापः किंचिदभ्युदिते रवौ ॥ ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतंतं पुनी-महे ॥" अत्राधिकारिणः ॥ "ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोथ भिक्षुकः ॥ बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः" इति ॥ अथ जलतारतम्येन फलम् ॥ "तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः ॥ षडब्दं फलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे" ॥ वाप्यादौ द्वादशाब्दफलम् ॥ तडागे तद्विगुणम् ॥ नद्यां तच्चतुर्गुणम् ॥ महानद्यां शतगुणम् ॥ महानदीसंगमे तच्चतुर्गुणम् ॥ गंगायां सहस्रगुणम् ॥ गंगायमुनासं-गमे एतच्छतगुणमिति यत्र कुत्रापि स्नाने प्रयागस्मरणं कार्यम् ॥ इदं समुद्रेप्य-तिप्रशस्तम् ॥

अब माघस्नानको कहते हैं। तिसमें पौषशुक्ला एकादशी पूर्णमासी वा अमावस्याको माघके स्नानका आरंभ करना। माघकी द्वादशी वा पूर्णिमासी आदिमें समाप्त करना। अथवा मकरकी संक्रांतिसे लेकर कुंभकी संक्रांति पर्यंत माघस्नान करना। अब स्नानके कालको कहते हैं। अरुणोदयसे प्रातःकालपर्यंत स्नानकाल है। क्योंकि, यह वचनहै कि, जिससमय नक्षत्र दीखतेहों वह उत्तम काल है। और जिसमें तारे लुप्त होगये हैं वह मध्यम है। और सूर्यके उदय होनेपर तिससेभी अधमकाल है। कुछ सूर्यके उदय होनेपर माघमासके विषे जल इस प्रकार शब्द करते हैं कि, मैं ब्रह्महत्यारे वा मदिरा पीनेवाले किस पतितको पवित्र करूं। इस माघस्नानके अधिकारियोंको कहते हैं कि, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ, भिक्षुक, बाल, वृद्ध, युवा मनुष्य, स्त्री, नपुंसक ये अधिकारी हैं। अब जलके तारतम्यसे फलको दिखाते हैं कि, मकरराशिपर जब सूर्यहो तब जो मनुष्य घरपर गरमजलसे स्नान करता है उसको छः वर्षका फल है। बावडी आदिमें बारहवर्षका फल, तडागमें उससे दुगुना, नदीमें चौगुना, महानदी (सरस्वतीआदि) में सौगुना, महानदी जहां मिलीहों वह स्नानसे उससे भी चौगुना, गंगामें हजारगुणा, गंगा और यमुना जहां मिली हों वहां उससे सौ-गुणा, जहां किसी स्थानपर स्नान करै वहां प्रयागका स्मरण करले। यह स्नान समुद्रमें भी अति उत्तम होताहै।

अथ स्नानविधिः ।

"माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव माधव ॥ तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संक-ल्प्य चेतसि" इत्येकं तीर्थं परिगृह्य ॥ "दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च ॥ प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम् ॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविंदा-च्युत माधव ॥ स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव ॥ इमौ मंत्रौ समुच्चार्य

स्नायान्मौनसमन्वितः" ॥ प्रत्यहं सूर्यार्घ्यदानमंत्रः ॥ "सवित्रे प्रसवित्रे च परंधामजले मम ॥ त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा" इति ॥ पितृतर्पणादि नित्यं विधाय माधवं पूजयेत् ॥

अब स्नानकी विधिको कहतेहैं । कि, हे देव ! हे माधव ! मैं इस तीर्थके जलमें माघमासतक स्नान करूंगा । इस प्रकार एक तीर्थका चित्तमें संकल्प करके इन मंत्रोंको पढकर मौन होकर स्नान करै । कि, दुःख दरिद्रके नाश और श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये आज मैं माघमासमें पापके नाश करनेवाले स्नानको करताहूं । हे अच्युत ! हे गोविंद ! हे माधव ! मकरकी संक्रांतिके विषे इस स्नानसे आप यथोक्त फलको दो । प्रतिदिन सूर्यको इस मन्त्रसे अर्घ्य दे । परंधामके पैदा करनेवाले सूर्यको मैं अर्घ्य देताहूं । आपके तेजसे मेरे पाप सहस्रों खण्डोंको प्राप्तहों अर्थात् नष्टहों । पितृतर्पण आदि नित्यकर्मको करके श्रीमाधवकी पूजा करै ॥

अथ मासनियमाः ।

"भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम् ॥ हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघमासे महाफलम्" ॥ अत्रेंधनकंबलवस्त्रोपानहतैलघृततूलपूर्णपटीसुवर्णान्नदानानि महाफलानि ॥ "न वह्निं सेवयेत्स्नातो ह्यस्नातोपि वरानने ॥ होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थं न कदाचन ॥ अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः ॥ त्रयो भागास्तिलानां च शर्करायाश्चतुर्थकः" ॥ अत्राभ्यंगो वर्ज्यः ॥ "माघे मास्युषसि स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत् ॥ माघे यत्नेन संत्याज्यं मूलकं मदिरोपमम् ॥ पितॄणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत्" ॥

पृथ्वीपर शयन करै, तिलसहित घीका होम करै, हविष्यका भोजन करै, ब्रह्मचर्यसे रहै, माघमासमें इसका महाफल है । इस माघमासके विषे ईंधन, कंबल, वस्त्र, जूता, तैल, रुईसे भरी रजाई, सुवर्ण, अन्न इनके दानका बडाभारी फल होता है । स्नानके पीछे वा पूर्व हे वरानने ! अग्निसे न तपै वह्निका सेवन केवल होमके लिये करै । जाडोंके दूर करनेके लिये नहीं । खांडसे युक्त तिल प्रतिदिन दे तीन भाग तिलके और एक हिस्सा खांडका । इस माघमासमें तैल आदिसे अभ्यंग न करै । माघमासमें प्रातःकाल स्नानको करै, दांपत्य (स्त्री पुरुषका जोडा) का पूजन करै और मदिराके समान जो मूली है इसे त्यागदे । पितर और देवता इनको कदापि मूलिका अर्पण न करै ॥

अथ माघे मलमासे ।

यदा माघो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्तव्याः ॥ मासोपवासचांद्रायणादिकं तु मलमासे एव समापयेदित्युक्तम् ॥ इदं माघस्नानं नित्यकाम्योभयरूपम् ॥ मासपर्यंतं स्नानेप्यशक्तस्त्र्यहमेकाहं वा स्नायात् ॥ तत्राद्यं दिनत्रयमिति केचित् ॥ त्रयोदश्यादिदिनत्रयमिति बहुसंमतम् ॥ पौषपूर्णिमानंतरास्वष्टमीसप्तमीनवमीष्वष्टकादिश्राद्धानि प्रागुक्तानि ॥

जो माघ मलमास होय तो काम्यव्रतोंकी समाप्तिका मलमासमें निषेध है, इससे दो महीना स्नान और नियम वर्तने और मासका उपवास चांद्रायण आदि जो व्रत हैं वह मलमासमें भी समाप्त करदे ऐसा कहा है। यह माघस्नान नित्य और काम्य दोनों रूपहै। महीना पर्यंत जो स्नान न करसकै तो तीन दिन वा एक दिन स्नान करै। तिसमें कोई तो आदिके तीन दिन कहते हैं और बहुतोंको तो यही सम्मत है कि, त्रयोदशी आदि तीनही ग्रहण करने। पौषकी पूर्णिमासे पीछे जो अष्टमी, सप्तमी, नवमी हैं उनमें अष्टका आदि श्राद्ध तो पूर्व कहचुके॥

अथार्धोदययोगनिर्णयः।

पौषामावास्यायामर्धोदययोगः॥ "अमार्कपातश्रवणैर्युक्ताचेत्पौषमाघयोः॥ अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः"॥ किंचिन्न्यूनं महोदय इति चतुर्थपादं केचित्पठंति॥ पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनीत्यर्थ इत्येके॥ अमांतमासे पौषस्य पूर्णिमांतमासे माघस्य चेत्यर्थ इत्यपरे॥ सर्वथा पौषपौर्णमास्युत्तरामावास्येत्यर्थः॥ "दिवैव योगः शस्तोयं न तु रात्रौ कदाचन॥ अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गंगासमं जलम्॥ शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसंनिभाः॥ यत्किंचिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्"॥ अथामत्रदानप्रयोगः॥ 'पात्रामत्रं च भाजने' इत्यमरः॥ देशकालौ संकीर्त्य समुद्रमेखलायाः पृथ्व्याः सम्यग्दानफलकामोहमर्धोदयविहितामत्रदानं करिष्ये इति संकल्प्योपलिप्ते देशे धौततंडुलैरष्टदलं कृत्वा तत्र चतुःषष्टिपलं चत्वारिंशत्पलं वा पंचविंशतिपलं वा कांस्यपात्रं कृताग्न्युत्तारणं स्थापयेत्॥ तत्राष्टगुंजात्मको माषः चत्वारिंशन्माषाः कर्षः॥ 'पलं कर्षचतुष्टयम्'॥ अमरसिंहमते तु॥ अशीतिगुंजात्मकः कर्षः पलं कर्षचतुष्टयम्॥ कांस्यपात्रे पायसं निक्षिप्य पायसेष्टदलं कृत्वा तत्कर्णिकायां कर्षतदर्धतदर्धान्यतमपरिमाणहेमलिंगं निधाय कांस्यपात्रे ब्रह्माणं पायसे विष्णुं लिंगे शिवं यथाधिकारं वैदिकैर्मंत्रैर्नाममभिर्वावाहनाद्युपचारैः संपूजयेत्॥ ततो विप्रं वस्त्रादिभिः पूजयेत्॥ "सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतत्त्रयीमयम्॥ आवयोस्तारकं यस्मात्तद्गृहाण द्विजोत्तम"॥ अमुकगोत्रायामुकशर्मणे तुभ्यमिदं सुवर्णलिंगपायसयुक्तममत्रं समुद्रमेखलापृथ्वीदानफलकामोहं संप्रददे न ममेति विप्रहस्ते जलं दद्यात्॥ विप्रः 'देवस्यत्वा' इति प्रतिगृह्णीयात्॥ दाता दानस्य संपूर्णतार्थमिमां दक्षिणां संप्रदद इति यथाशक्ति हिरण्यं दद्यात्॥ हेमाद्याद्युक्तप्रकारांतरेणार्धोदयव्रतप्रयोगो ब्रह्मादियुततिलपर्वतत्रयशय्यात्रयगोत्रयदानहोमादिसहितः कौस्तुभे द्रष्टव्यः॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे पौषमासकृत्यनिर्णयोद्देशः समाप्तः॥

पौषकी अमावस्याको अर्द्धोदय योग होता है। पौष माघकी अमावस्या, सूर्य, पात और श्रवण इनसे युक्त होय तो करोड सूर्यके ग्रहणोंकी समान वह अर्द्धोदय होता है। और वह किंचित् न्यून महोदय योग समझना। इसप्रकार चौथे पादको कोई पढते हैं। 'पौषमाघ-

यो: अमा' इस वाक्यका कोई यह अर्थ करते हैं कि, पौष और माघके मध्यकी अमावस्या। और कोई यह अर्थ करते हैं कि, अमावस्या पर्यंत जब मास है, तब पौषकी जो पूर्णिमापर्यंत मासहै तब माघकी अमावस्या सर्वथा पौषकी पूर्णिमासे अगली अमावस्या लेनी यह अर्थ है। दिनमें जो यह योग होय तो बहुत उत्तम है रात्रिमें नहीं। अर्द्धोदय योग होनेपर सब जल गङ्गाजलकी समान होजाते हैं, उसमें स्नानके करनेसे द्विजोंका अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और वे द्विज ब्रह्मकी समान होजाते हैं। उसमें जो कुछ दान दिया जाताहै वह मेरु पर्वतके समान समझना। अब दानकी विधिको कहते हैं कि, देशकालका स्मरण करके समुद्रहै मेखला (तगडी) जिसकी अर्थात् सम्पूर्ण पृथिवीके दानके फलकी कामनावाला मैं अर्द्धोदय योगमें कहेहुए दानको करताहूं। इस प्रकार संकल्प करके लियेहुए स्थानमें धुले चावलोंसे अष्टदलको बनाकर उसके ऊपर चौंसठ वा चालीस वा पच्चीस पलका कांसेका पात्र अग्निसे उतारकर स्थापन करै। अब पलका प्रमाण दिखाते हैं, कि, आठ चौंटनियोंका माष, चालीस माषका कर्ष और चार कर्षका एक पल होताहै। और अमरसिंहके मतमें तो अस्सी चौंटनियोंका कर्ष और चार कर्षका एक पल कहा है।उस कांसीके पात्रमें खीरको गेरकर और उस खीरमें अष्ट-दल चक्रको काढकर उसकी कर्णिका (कली) बीचमें कर्ष वा उसका आधा वा उससे आधे परिमाणका सुवर्णका लिङ्ग रक्खै। फिर कांसिके पात्रमें ब्रह्माका और खीरमें विष्णुका और लिङ्गमें शिवका अधिकारके अनुसार वेदके मन्त्रोंसे वा नामसे वाहन आदि सामग्रियोंसे पूजन करै। फिर ब्राह्मणकी वस्त्र आदिसे पूजा करै। ब्रह्मा, विष्णु,शिवस्वरूप इस पायस सुवर्ण और पायसको हे द्विजोत्तम! आप ग्रहण करो क्योंकि, ये हम दोनोंका तरानेवाला है। इस मंत्रको पढकर संकल्प करै कि, अमुक गोत्र अमुकशर्मा इस सुवर्णके लिङ्ग और पायससे युक्त पात्रको सम्पूर्ण पृथ्वीदानके फलकी कामनावाला मैं आपको देताहूं। इसप्रकार संकल्प करके और 'न मम' इस मन्त्रको पढकर ब्राह्मणके हाथपर जलको दे। और ब्राह्मण 'देवस्य' इस मन्त्रको पढताहुआ ग्रहण करै। और देनेवाला यजमान दानकी संपूर्णता सिद्धिके लिये इस दक्षिणाको आपको देताहूं इसप्रकार यथाशक्ति दक्षिणाको दे। ब्रह्मा आदि तीन देवताओं-सहित तिलोंके तीन पर्वत, तीन शय्या, तीन गौ इनके दान और होम आदि सहित जो इस अर्द्धोदय व्रतकी विधि अन्यप्रकारसे हेमाद्रिग्रंथमें कही है वह कौस्तुभग्रंथमें समझनी ॥ इति श्रीधर्मसिंधुसारे पं० मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवरणसहिते पौषमासनिर्णयोद्देशः ॥

अथ माघे कुंभसंक्रांतिः।

कुंभसंक्रांतौ पूर्वं षोडश नाड्यः पुण्याः॥ माघे वेणीस्नानमहिमा॥ "सितासिते तु यत्स्नानं माघमासे युधिष्ठिर॥ न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ कुरुक्षेत्रसमा गंगा यत्र कुत्रावगाहिता॥ तस्माद्दशगुणा विंध्ये काश्यां शतगुणा ततः॥ काश्याः शतगुणा प्रोक्ता गंगायमुनयान्विता॥ सहस्रगुणिता सापि माघे पश्चिमवाहिनी"॥ अथ माघे तिलपात्रदानं प्रशस्तं तत्प्रयोगः॥ "ताम्रपात्रे तिलान्कृत्वा पलषोडशनिर्मिते॥ सहिरण्यं स्वशक्त्या वा विप्राय प्रतिपादयेत्"॥ वाङ्मनःकायजत्रिविधपापनाशपूर्वकं ब्रह्मलोकप्राप्तिकामस्तिलपात्रदानं करिष्ये॥ उक्तपरिमाणे ताम्रपात्रे प्रस्थतिलान्कर्षसुवर्णयुतान्यथाशक्ति सुवर्णयुतान्वा कृत्वा विप्रं

संपूज्य ॥ "देवदेव जगन्नाथ वांछितार्थफलप्रद ॥ तिलपात्रं प्रदास्यामि तवाग्रे संस्थितो ह्यहम्" ॥ इति मंत्रेण दद्यात् ॥ "धान्यमानं तु कुडवो मुष्टीनां स्याच्चतुष्टयम् ॥ चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुःप्रस्थमथाढकम् ॥ अष्टाढको भवेद् द्रोणो द्विद्रोणः शूर्प उच्यते ॥ सार्धशूर्पे भवेत्खारीत्युक्तरीत्या 'पलं सुवर्णाश्चत्वारः कुडवं प्रस्थमाढकम् ॥ द्रोणश्च खारिका च" इति पूर्वपूर्वाच्चतुर्गुणमित्युक्तरीत्या वा प्रस्थमानस्वरूपं ज्ञेयम् ॥ यद्वा हिरण्यरहितांस्तिलांस्ताम्रपात्रे निधाय ॥ "तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वपापहराः स्मृताः ॥ शुक्लाश्चैव तथा कृष्णा विष्णुगात्रसमुद्भवाः ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ तिलपात्रप्रदानेन तानि नश्यंतु मे सदा" इदं तिलपात्रं यथाशक्तिदक्षिणासहितं यमदैवत्यं ब्रह्मलोकप्राप्तिकामस्तुभ्यमहं संप्रददे इति दद्यात् ॥

अब माघमासका निर्णय कहते हैं । कुंभकी संक्रांतिकी पहिली सोलह घडी पुण्यकाल है । माघमासमें वेणीके स्नानकी महिमा दिखाते हैं । हे युधिष्ठिर ! माघमासके विषे जो त्रिवेणीमें स्नान करते हैं उनका फिर इस संसारमें आगमन सौकरोड कल्पोंमें भी नहीं होता । जिस किसी स्थानपर गङ्गामें स्नान करनेसे कुरुक्षेत्रकी समान फल होताहै उससे दशगुणा विंध्याचलमें और उससे सौगुणा काशीमें और काशीसे सौगुणा जहां गंगासे युक्त यमुना हो अर्थात् त्रिवेणीमें और वह पश्चिमके तरफको बहनेवाली माघमासमें हजार गुणा फल देतीहै । माघमासमें तिलसहित पात्रका दान बडा उत्तमहै । उसकी विधि यह है कि, सोलह पलके बनेहुए कांसीके पात्रमें तिलोंको भरकर और अपनी शक्तिके अनुसार उसमें सुवर्ण गेरकर ब्राह्मणको दे । उसकी विधि यह है कि, वाणी, मन, शरीर इन तीनसे उत्पन्नहुए तीन प्रकारके पापोंका नाशपूर्वक ब्रह्मलोककी कामनावाला मैं तिलपात्रके दानको करताहूं । इसप्रकार संकल्प करके सोलह पलके तांबेके पात्रमें एकपल तिलोंको कर्षभर सुवर्णसे वा यथाशक्ति सुवर्णसहित भरके ब्राह्मणको पूजकर इस मन्त्रसे दे कि, हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे वांछित फलके देनेवाले ! आपके आगे स्थित होकर इस ताम्रपात्रको देताहूं । प्रस्थका प्रमाण इसप्रकार समझना कि, चार मुट्ठी धान्यका कुडव, चार कुडवका प्रस्थ, चार प्रस्थका आढक, आठ आढकका द्रोण, दो द्रोणका शूर्प, डेढ शूर्पका खारी होताहै । अथवा चार सुवर्णका पल, चारपलका कुडव, चार कुडवका प्रस्थ, चार प्रस्थका आढक, चार आढकका द्रोण, चार द्रोणका खारी इस रीतिसे प्रस्थका परिमाण समझना । अथवा सुवर्णसे रहित तिलोंको तांबेके पात्रमें रखकर तिल बडे पवित्रहैं, सब पापोंको नष्टकरनेहारे हैं, शुक्ल तथा कृष्ण दोनों प्रकारके विष्णुके गोत्रमें उत्पन्न हुएहैं । जो कोई ब्रह्महत्याकी समान मेरे पाप हों वे तिलपात्रके दानसे सदा नष्टहों । इन मन्त्रोंको पढकर उस तिलपात्रको इसप्रकार संकल्प करके दे कि, यथाशक्ति दक्षिणासहित यम जिसका देवताहै ऐसे इस तिलपात्रको ब्रह्मलोककी प्राप्तिके लिये आपको देताहूं ॥

अथ सहिरण्यतुलसीपत्रदानमंत्रः ।

"सुवर्णतुलसीदानाद्ब्रह्मणः कायसंभवात ॥ पापं प्रशममायातु सर्वे संतुमनोरथाः ॥"

अब सुवर्णसहित तुलसीदानके मंत्रको कहतेहैं । सुवर्णसहित तुलसीके दानसे मेरे पाप शांतिको प्राप्तहों और सब मनोरथ सिद्धहों ॥

अथ शालग्रामदानमंत्रः ।

"शालग्रामशिला पुण्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ शालग्रामप्रदानेन मम संतु मनोरथाः ॥ चक्रांकितसमायुक्ता शालग्रामशिला शुभा ॥ दानेनैव भवेत्तस्या उभयोर्वांछितं फलम्" ॥

अब शालग्रामके दानका मन्त्र कहतेहैं । भोग और मुक्तिके देनेवाली शालग्रामकी शिला बडी पवित्र है इसके दानसे मेरे मनोरथ सिद्ध हों । चक्रसे अंकित जो द्वारावती शिला है उसके दानसे दोनोंके वांछित फलकी सिद्धि होतीहै ।

अथ प्रयागे वेणीदानम् ।

तत्र सर्वेषां वपनविधिः ॥ "ऊर्ध्वमब्दाद्विमासोनाद्यदा तीर्थं व्रजेन्नरः ॥ तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज" ॥ प्रयागे तु योजनत्रयादागतस्य दशमासादर्वागपि प्रथमयात्रायां तु जीवत्पितृकगुर्विणीपतिकृतचूडबालानामपि सभर्तृकस्त्रीणामपि वपनमिति विशेषः ॥ केचित्तु सभर्तृकस्त्रीणां "सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलद्वयम्" ॥ इत्याहुः ॥ तत्प्रयोगः ॥ वेणीभूतकेशा कृतमांगलिकवेषा स्त्री भर्तारं नत्वा तदाज्ञया सर्ववपनं द्व्यंगुलं केशच्छेदं वा कृत्वा स्नात्वा त्रिवेणीपूजां कुर्यात् ॥ भर्त्रा वा कारयेत् ॥पूजांते पत्नी छिन्नवेणीयुक्तं वैणवपात्रमञ्जलौ धृत्वा तस्यां हैमवेणीं मौक्तिकादिकं च निधाय ॥ "वेण्यां वेणीप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु ॥ जन्मांतरेष्वपि सदा सौभाग्यं मम वर्धताम्" इति त्रिवेण्यां क्षिपेत् ॥ विप्राः ॥ "सुमंगलीरियं वधूः०" इति पठेयुः ॥ ततो विप्रान्सुवासिनीश्च वस्त्रादिना तोषयेम् ॥

अब प्रयागमें मुंडनको कहतेहैं । तहां जो दश महीनेसे पश्चात् तीर्थयात्रा करताहुआ तीर्थमें प्राप्त होय तो उसका प्रायश्चित्तके बिना भी मुंडन उत्तम है । और प्रयागके विषे तो जो तीन योजनसे आयाहो उसका दश महीनासे पूर्व भी मुंडन होजाताहै । प्रथमयात्राके विषे इतनी विशेष बात है कि, जिसका पिता जीताहो, गर्भिणीका पति, जिसका मुंडन होगयाहो ऐसे बालकोंका भी मुंडन होजाताहै । कोई तो यह कहतेहैं कि, जिनका पति जीताहो उस स्त्रीके सब केशोंको ऊपरको उठाकर, दोदो अंगुल कटवादे उसकी विधि इसप्रकार है कि,मांगलिक वस्त्रोंको धारण कियेहुए जिसके केशोंकी वेणी (वैना) बंधरहीहै ऐसी स्त्री अपने पतिको नमस्कार करके और उसकी आज्ञासे सब केशोंका वा दो अंगुल केशोंका मुंडन कराकर और स्नान करके त्रिवेणीकी पूजा करै वा पतिसे करावै । पूजाके पीछे कटीहुई वेणीसे युक्त बांसके पात्रको अपनी अंजलिमें रखकर उसमें सुवर्णकी वेणी वा मुक्ताओंको रखकर इस मन्त्रको पढतीहुई त्रिवेणीमें फेंकदे कि, वेणीके विषे वेणीके दानसे मेरे पाप दूरहों और अन्य जन्ममें भी मेरा सौभाग्य सदा वढो । उस समय ब्राह्मण ' सुमङ्गलीरियंवधूः० ' इस मन्त्रको पढैं । फिर ब्राह्मण और सुहागिन स्त्रियोंको वस्त्रआदिके दानसे प्रसन्न करै ॥

अथ त्रिवेण्यां देहत्यागविधिः ।

"ये वै तन्वं विसृजंति धीरास्ते जना सो अमृतत्वं भजंते" इति श्रुतिर्माघमासविषया ॥ "तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः" इति ब्राह्मोक्तेः ॥ अन्यमासे तनुत्यागात्स्वर्गप्राप्तिः ॥ तत्र यथाशक्ति सर्वप्रायश्चित्तं कृत्वा श्राद्धाधिकार्यभावे स्वीयजीवच्छ्राद्धं सपिंडदानांतं कृत्वा गोदानानि कृत्वा कृतोपवासः पारणाहे फलोल्लेखपूर्वकं संकल्प्य विष्णुं ध्यात्वा वेणीं प्रविशेदिति ॥ जीवच्छ्राद्धप्रयोगः कौस्तुभे द्रष्टव्यः ॥ माघं प्रकृत्य ॥ "तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी ॥ तिलभुक् तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशनाः" इत्युक्ते वाक्ये तिलस्नायिपदेन तिलयुक्तोदकेन स्नानं तिलहोमिपदेनायुतलक्षतिलहोमाद्यात्मकग्रहमखस्यापि संग्रहः ॥ तिलोदकीति पदेन तिलयुक्तोदकेन देवपूजातर्पणसंध्यादिकं पानं च कार्यमित्यर्थः ॥ स च होमस्त्रिधा ॥ "प्रथमोयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परः । कोटिहोमस्तृतीयस्तु सर्वकामफलप्रदः" इति ॥ लक्षहोमादिप्रयोगः कुंडमंडपनिर्माणादिसहितः कौस्तुभमयूखादौ ज्ञेयः ॥

अब त्रिवेणीमें देहके त्यागनेकी विधिको कहते हैं । कि, जो मनुष्य धीर होकर शरीरको त्यागतेहैं वे मोक्षको प्राप्त होते हैं ।यह श्रुति माघमासमें शरीरके त्यागनेके विषयमें है । ब्रह्मपुराण में लिखाहै कि, जो माघमासमें शरीरको छोडतेहैं उनकी मुक्ति होती है इसमें संशय नहीं और अन्यमासके विषे शरीरके त्यागनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । तिसमें यथाशक्ति प्रायश्चित्तको करके श्राद्धका अधिकारी अन्य कोई न होय तो अपने जीवच्छ्राद्धको सपिंडन पर्यंत करके और गोदान आदिको करके उपवास करनेके अनन्तर पारणाके दिन फल कामनापूर्वक संकल्प और विष्णुका ध्यान करके त्रिवेणीमें प्रवेशकरै । जीवतेहुएकी श्राद्धकी विधि कौस्तुभग्रन्थमें समझनी। माघका प्रारम्भ करके कहा है कि, तिलोंसे स्नान करनेवाला, तिलोंसे उबटना करनेवाला, तिलसहित जलको पीनेवाला, तिलोंका भोक्ता, तिलोंका दाता ये छः तिल पापोंके नाश करनेवाले हैं । इस श्लोकमें तिलस्नायी पदसे तिलसहित जलसे स्नान समझना । और तिलहोमी पदसे दशहजार तथा लक्ष तिलोंसे जो होम आदि रूप मखोंका यज्ञहै उसको भी लेतेहैं । तिलोदकी इसपदसे तिलसहित जलसे देवकी पूजा और संध्या, तर्पण आदि तथा तिलसहित जलका पीना समझना । यह होम तीन प्रकारका है । प्रथम अयुत होम, दूसरा लक्षहोम और सब कामनोंका देनेवाला तीसरा कोटिहोम । लक्षहोम आदिकी कुंडमंडप आदिकी विधि कौस्तुभ, मयूख आदि ग्रंथोंमें समझनी ॥

अथ माघचतुर्थी ।

माघशुक्लचतुर्थ्यां ढुंढिराजोद्देशेन नक्तव्रतं तत्पूजा तिललड्डुकादिनैवेद्यं तिलभक्षणं चोक्तम् ॥ अत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या ॥ अस्यामेव प्रदोषव्यापिन्यां कुंदपुष्पैः शिवं संपूज्योपवासं नक्तभोजनं वा कुर्याच्छ्रियं प्राप्नुयात् ॥ अत्र विनायकव्रतस्य तु भाद्रपदशुक्लचतुर्थीवन्निर्णयः ॥

माघशुक्ल चतुर्थीको ढुंढिराजकी प्रीतिके लिये नक्तव्रत और उसकी पूजा तिलके लड्डू आदि तथा नैवेद्यसे कही है । और तिलोंका ही भक्षण कहा है । यह चतुर्थी प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी । इस प्रदोषव्यापिनी चतुर्थीके दिन कुन्दके पुष्पोंसे शिवका पूजन करके उपवास वा नक्तभोजनको करके लक्ष्मीको प्राप्त होताहै । इस विनायक चतुर्थीका भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीके समान निर्णय समझना ॥

अथ वसंतपंचमी ।

माघशुक्लपंचमी वसंतपंचमी तस्यां वसंतोत्सवारंभः ॥ अस्यां रतिकामयोः पूजोक्ता ॥ इय परत्रैव पूर्वाह्णव्याप्तौ परा अन्यथा पूर्वैव ॥

माघशुक्ला पंचमीको वसन्तपंचमी कहते हैं । उसमें वसन्तरूप उत्सवका आरम्भ करना । इसमें रति और कामदेवकी पूजा कही है । जो यह परले दिनही पूर्वाह्णव्यापिनी होय तो परली, अन्यथा पहिली लेनी ॥

अथ रथसप्तमी ।

माघशुक्लसप्तमी रथसप्तमी सारुणोदयव्यापिनी ग्राह्या ॥ दिनद्वये अरुणोदयव्याप्तौ पूर्वा ॥ यदा घटिकादिमात्रा षष्ठी सप्तमी च क्षयवशादरुणोदयात्पूर्वं समाप्यते तदा षष्ठीयुता ग्राह्या ॥ तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयघटीः प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम् ॥ अत्र व्रते षष्ठ्यामेकभक्तं कृत्वा सप्तम्यामरुणोदये स्नानं कार्यम् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "यदाजन्म कृतं पापं मया जन्मसुजन्मसु ॥ तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हंतु सप्तमी ॥ एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मांतरार्जितम् ॥ मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताऽज्ञाते च ये पुनः ॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके ॥ सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि" ॥ अथार्घ्यमंत्रः ॥ "सप्तसप्तिवहप्रीत सप्त लोकप्रदीपन ॥ सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर" इति ॥ इयं मन्वादिरपि ॥ शुक्लपक्षमन्वादित्वात्पौर्वाह्णिकी ग्राह्येत्युक्तम् ॥ माघशुक्लाष्टमी भीष्माष्टमी ॥ अस्यां भीष्मोद्देशेन ये श्राद्धं कुर्वंति ते संततिमंतो भवंति ॥ तत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं तु नित्यम् ॥ तर्पणे कृते संवत्सरोपात्तदुरितनाशः ॥ अकृते पुण्यनाश इत्युक्तेः ॥ तत्र तर्पणमंत्रः ॥ "वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ॥ गंगापुत्राय भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥ अपुत्राय जलं दद्मि नमो भीष्माय वर्मिणे ॥ भीष्मः शांतनवो वीरः सत्यवादी जितेंद्रियः ॥ आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम्" इति ॥ एवमपसव्येन तर्पणं कृत्वाचम्य सव्येनार्घ्यं दद्यात् ॥ "वसूनामवताराय शंतनोरात्मजाय च ॥ अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबाल्यब्रह्मचारिण" इति ॥ अत्र जीवत्पितृकस्य नाधिकार इति कौस्तुभे ॥ जीवत्पितृकस्याप्यधिकार इति बहवः ॥ अत्र मध्याह्नव्यापिन्यष्टमी ग्राह्या ॥ श्राद्धादेरेकोद्दिष्टत्वादिति ॥ माघशुक्लद्वादश्यां तिलोत्पत्तिरतोस्यामुपोष्य तिलस्नानं

तिलैर्विष्णुपूजनं तिलनैवेद्यं तिलतैलेन दीपदानं तिलहोमस्तिलदानं तिलभक्षणं च कार्यम् ॥ माघी पौर्णिमा परा ॥ अत्र कृत्यम् ॥ "एवं माघावसाने तु देयं भोज्यमवारितम् ॥ भोजयेद्द्विजदांपत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः" ॥ कंबलाजिनरक्तवस्त्राणि तूलगर्भचोलकान्युपानहौ प्रच्छादनपदाश्चैतानि माधवः प्रीयतामित्युक्त्वा देयानि ॥

माघशुक्ला सप्तमीको रथसप्तमी कहते हैं वह अरुणोदयव्यापिनी लेनी। जो दोदिन अरुणोदय-व्यापिनी हो तो पहिली जो एक घडी षष्ठीहो और सप्तमी क्षयके वशसे अरुणोदयसे पूर्व समाप्त होजाय तो षष्ठीसे युक्त सप्तमी लेनी । तिस षष्ठीमें सप्तमीके क्षयकी घडियोंको प्रविष्ट करके अरुणोदयपर स्नान करना । इस व्रतके विषे षष्ठीके दिन एकबार भोजन करके सप्तमीको अरुणोदयके समय स्नान करना । तिसका यह मन्त्र है कि, जो मैं जन्म २ में और इस जन्ममें पाप किये हैं उनको तथा शोक और मोहको सप्तमी नष्टकरो। जो इस जन्ममें वा अन्य जन्ममें पाप इकट्ठे किये हैं, जो मन, वाणी, शरीर इनसे तथा ज्ञान वा अज्ञानसे किये हैं, इसप्रकार सात प्रकारके पाप सप्तमीके स्नानसे मेरे नष्टहों। हे माकरि (मकरकीसप्तमी)व्याधिसे युक्त मेरे इन सात पापोंको दूरकर । अब अर्घ्यके मन्त्रको कहते हैं कि, हे सात घोडोंके रथमें चलनेवाले सातों लोकोंको प्रकाशमान करनेवाले सूर्य ! सप्तमी सहित आप अर्घ्यको ग्रहणकरो । यह सप्तमी मन्वादि भी है । शुक्लपक्षकी मन्वादि होनेसे यह सप्तमी पौर्वाह्णिकी ग्रहण करनी यह पूर्व कहआये। माघशुक्ला अष्टमीको भीष्माष्टमी कहते हैं । इसमें जो भीष्मके लिये श्राद्ध करते हैं, वे सन्ततिवाले होते हैं । तहां श्राद्ध काम्यहै और तर्पण नित्यहै । तपणके करनेसे वर्षदिनके उत्पात और पाप इनका नाश होताहै । जो न करै तो पुण्यका नाश होता है । तिसके तर्पणका मन्त्र यह है कि, वैयाघ्रपद्य जिसका गोत्र है, सांकृत्य प्रवर है, गङ्गाके पुत्र जन्मसे लेकर ब्रह्मचारी पुत्रसे हीनहै उस भीष्मको जल देताहूं भीष्मवर्माको नमस्कार है। शन्तनुके पुत्र वीर सत्यवादी जितेन्द्रिय भीष्म इन जलोंसे पुत्र और पौत्रोंके योग्य जो जल-दान क्रिया है उसको प्राप्तहो । इस प्रकार अपसव्यसे तर्पण करके और आचमन करके फिर सव्यसे अर्घ्यको इस मंत्रसे दे कि, वसुका अवतार शंतनुका पुत्र बाल्य अवस्थासे ही ब्रह्मचारी भीष्मको मैं अर्घ्य देताहूं । इस तर्पणमें जिसका पिता जीता हो उसको अधिकार नहीं । और बहुतेरे यह कहते हैं कि, जीवत्पितृकको भी अधिकार है । इसमें मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी लेनी । क्योंकि, श्राद्ध आदि एकोद्दिष्ट रूप हैं । माघशुक्ला द्वादशीको तिलोंकी उत्पत्ति हुई है । इसमें उपवास और तिलोंसे स्नान, तिलोंसे विष्णुका पूजन, तिलनैवेद्य, तिलोंके तेलकाही दीपदान, तिलोंसे होम, तिलोंका दान और तिलोंकाही भक्षण करना । माघमासकी पूर्णिमा परली ग्रहण करनी । इसमें कृत्यको दिखातेहैं इस प्रकार माघके अन्तमें निरन्तर भोज्यको दे, अर्थात् किसीको नाहीं न करै । ब्राह्मण और ब्राह्मणीके जोडाको भोजन और वस्त्रभूषणोंसे भूषित करै । कंबल, मृगचर्म, लालवस्त्र, रूईसे भरा वस्त्र, उपानह, दुपट्टा, चद्दर ये माधव प्रसन्न हो इसप्रकार कहकर देने ॥

अथ माघस्नानोद्यापनम् ।

अत्र कृतस्य माघस्नानस्य सांगतार्थमुद्यापनं करिष्य इति संकल्प्य ॥ "सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम ॥ त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ॥

दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते ॥ परिपूर्णं करिष्येहं माघस्नानं तवाज्ञया''॥ इति मंत्राभ्यामपि संकल्पः कार्यः ॥ एवं चतुर्दश्यां संकल्पोपवासाधिवासनमाधवपूजनानि कृत्वा पौर्णिमायां तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतहोमं कृत्वा तिलशर्करागर्भत्रिशन्मोदकात्मकवायनं देयम् ॥ तत्र मंत्रौ ॥ ''सवितः प्रसवस्त्वं हि परं धाम जले मम ॥ त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ॥ दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते ॥ परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते'' इति ॥ ततो दंपत्योः सूक्ष्मवाससी सप्तधान्यानि च दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो दांपत्याय च षड्रसभोजनं देयम् ॥ तत्र मंत्रः ॥ ''सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्त्तिर्निरंजनः'' इति ॥ ''एवं माघप्लवी याति भित्त्वा देवं दिवाकरम् ॥ परिव्राडयोगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः'' इति ॥ माघकृष्णाष्टम्यां चतुरष्टकाकरणाशक्त एकाष्टकां पूर्वेद्युःश्राद्धान्वष्टक्यश्राद्धसहितां कुर्यात् ॥ दिनत्रये कर्तुमशक्तोष्टम्यामेवैकामष्टकां कुर्यात् ॥

अब किये हुए माघस्नानकी सांगतासिद्धिके लिये मैं उद्यापन करताहूं इस प्रकार संकल्प करके, परम तेजको पैदाकरनेवाले सूर्यको अर्घ्य देताहूं तेरे तेजसे मेरा पाप हजारों खण्डों को प्राप्तहो । आपकी आज्ञासे माघस्नानको परिपूर्ण करताहूं इन मंत्रोंसे भी संकल्प करै । इस प्रकार चतुर्दशीके दिन संकल्प, उपवास, अधिवासन और माधवकी पूजाको करके पूर्णिमाको तिलोंका चरु और घी इनसे एकसौ आठ (१०८) आहुति देकर तिलशर्कराके बनाये हुए तीस मोदकरूप वायन (वाना) को दान करै । उसके ये दो मंत्रहैं कि, हे सवितः! हे परंधाम ! तेरे तेजसे मेरा पाप नष्टहो । हे दिवाकर ! हे जगन्नाथ ! हे प्रभाकर ! आपको नमस्कार है । हे उषःपते ! माघस्नानको आप परिपूर्ण करो । फिर दंपती (पति स्त्री) को सूक्ष्म (छोटे) दो वस्त्र और सप्तधान्यको देकर ब्राह्मण और दांपत्यके लिये षड्रस भोजन दे । उसका मंत्र यह है कि, सूर्यदेव मेरे ऊपर प्रसन्न हो । माघका स्नान करनेवाला, संन्यासी, जो रणमें माराहो, वह सूर्यमण्डलको फोडकर ब्रह्मलोकमें प्राप्त होता है । चार अष्टकाओंको न करसकै तो माघमासमें कृष्णाष्टमीके दिनही पूर्वेद्युःश्राद्ध और अन्वष्टक्य श्राद्ध सहित अष्टका श्राद्धको करै ॥

अथ शिवरात्रिः ।

सा निशीथव्यापिनी ग्राह्या ॥ निशीथस्तु रात्रेरष्टमो मुहूर्त इत्युक्तम् ॥ तत्र परदिन एवार्धरात्रौ परा ॥ पूर्वत्रैव तद्व्याप्तौ पूर्वा ॥ दिनद्वयेप्यर्धरात्रव्याप्त्यभावेपि परैव ॥ दिनद्वये कात्स्न्येनैकदेशेन वार्धरात्रव्याप्तौ पूर्वेवेति हेमाद्याशयानुसारी कौस्तुभः ॥ परैवेति माधवनिर्णयसिंधुपुरुषार्थचिंतामण्यादयो बहवः ॥ परेद्युर्निशीथैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः संपूर्णतद्व्याप्तौ पूर्वैव ॥ पूर्वदिने निशीथैकदेशव्याप्तौ परदिने संपूर्णतद्व्याप्तौ परैव ॥ इदं व्रतं रविवारभौमवारयोगे शिवयोगयोगे चातिशस्तम् ॥

अब शिवरात्रिको कहते हैं । वह अर्द्धरात्रव्यापिनी लेनी । रात्रिके आठमें मुहूर्तका नाम निशीथ है । यह पूर्व कह आये । जो परले दिन अर्द्धरात्रव्यापिनी होय तो परली और पहिले दिन अर्द्धरात्रव्यापिनी होय तो पहिली लेनी । और जो दोनोंदिन अर्द्धरात्रव्यापिनी हो वा न होय तो परली लेनी । हेमाद्रिके आशयको लेकर कौस्तुभमें तो यह लिखा है कि, दोनोंदिन एक देशसे अर्द्धरात्रव्यापिनी होय तो पहिली ग्रहण करनी और माधव, निर्णयसिन्धु, पुरुषार्थचिंतामणि आदि बहुत ग्रंथोंका यह आशय है कि, परली ग्रहण करनी । जो पहिले दिन अर्द्धरात्रिके एकदेशमें व्याप्ति (योग) हो और परलेदिन संपूर्णमें व्याप्ति होय तो पहिलीही ग्रहण करनी । इसीप्रकार पहिले दिन अर्द्धरात्रिके एकदेशमें और दूसरेदिन सम्पूर्णदेशमें व्याप्त होय तो परले दिनही करनी । यह व्रत सूर्य और मङ्गलवारके योगमें अति उत्तम है ॥

अथ पारणानिर्णयः ।

यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ चतुर्दश्यंते पारणम् ॥ यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां चतुदश्यां प्रातश्चतुर्दशीमध्ये एव पारणमिति माधवादयः ॥ निर्णयसिंधौ तु यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तावपि चतुर्दशीमध्य एव पारणं न तु कदाचिदपि चतुर्दश्यंते ॥ "उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां च पारणम् ॥ कृतैः सुकृतलक्षैस्तु लभ्यते यदि वा न वा॥ सिक्थेसिक्थे फलं तस्य शक्तो वक्तुं न पार्वति" इत्यादिना चतुर्दशीमध्ये पारणं पुण्यातिशयोक्तेरित्युक्तम् ॥ अत्रैवं व्यवस्था ज्ञेया ॥ यदा नित्यकृत्यपूर्वकपारणपर्याप्ता चतुर्दशी नास्ति तदा वा येषां चतुर्दशीशेषदिने दर्शादिश्राद्धप्रसक्तिस्तैर्वा तिथ्यंते पारणम् ॥ द्वादश्यामिवात्र नित्यकृत्यापकर्षकवाक्याभावात् ॥ तिथ्यंतपारणविधायकवाक्यसत्त्वेन संकटविषयकजलपारणविधिवाक्यानामत्राप्रवृत्तेश्च ॥ कर्मपर्याप्तचतुर्दशीसत्त्वे श्राद्धप्रसक्त्यभावे च तिथिमध्य एव पारणमिति ॥ अथ व्रतप्रयोगः ॥ त्रयोदश्यां कृतैकभक्तश्चतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियः प्रातर्मंत्रेण संकल्पं कुर्यात् ॥ "शिवरात्रिव्रतं ह्येतत्करिष्येहं महाफलम् ॥ निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥ चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शंभो परेहनि ॥ भोक्ष्येहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर" इति ॥ द्विजस्तु ॥ 'रात्रीं प्रपद्ये जननीम्' इत्यृचावपि पठित्वा जलमुत्सृजेत् ॥ ततः सायाह्ने कृष्णतिलैः स्नानं कृत्वा धृतभस्मत्रिपुंड्ररुद्राक्षो निशामुखे शिवायतनं गत्वा क्षालितपादः स्वाचांत उदङ्मुखो देशकालौ संकीर्त्य शिवरात्रौ प्रथमयामपूजां करिष्ये इति यामचतुष्टये पूजाचतुष्टयचिकीर्षायां संकल्पः ॥ सकृत्पूजाचिकीर्षायां श्रीशिवप्रीत्यर्थं शिवरात्रौ श्रीशिवपूजां करिष्ये इति संकल्पः ॥ तत्रादौ सामान्यतः शिवपूजाविधिरुच्यते ॥ यामभेदेन विशेषस्तु वक्ष्यते ॥ अस्य श्रीशिवपंचाक्षरमंत्रस्य वामदेव ऋषिः ॥ अनुष्टुप् छंदः ॥ श्रीसदाशिवो देवता ॥ न्यासे पूजने जपे च विनियोगः ॥ वामदेवाय ऋषये नमः शिरसि ॥ अनुष्टुप्छंदसे नमो मुखे ॥ श्रीसदाशिवदे-

वतायै नमो हृदि ॥ ॐ नं तत्पुरुषाय नमो हृदये ॐ मं अघोराय नमः पादयोः ॐ शिं सद्योजाताय नमो गुह्ये ॐ वां वामदेवाय नमो मूर्ध्नि ॐ यं ईशानाय नमो मुखे ॐ ॐ हृदयाय नमः ॐ नं शिरसे स्वाहा ॐ मं शिखायै वषट् ॐ शिं कवचाय हुं ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट् ॐ यं अस्त्राय फट् ॥ कुंभपूजां विधाय ॥ "ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचंद्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥ पद्मासीनं समंतात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्ववंद्यं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम्" ॥ इति ध्यात्वा प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा संस्थाप्य लिंगं स्पृशन् ॥ ॐ भूः पुरुषं सांबसदाशिवमावाहयामि ॥ ॐ भुवः पुरुषं सांब० ॐ स्वः पुरुषं सां० ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषं सां० इत्यावाहयेत् ॥ "स्वामिन्सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम् ॥ तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिंगेऽस्मिन्संनिधौ भव" इति पुष्पांजलिं दद्यात् ॥ स्थावरलिंगे संस्कृतचरलिंगे च प्राणप्रतिष्ठाद्यावाहनांतं न कार्यम् ॥ ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमोनमः ॐ नमः शिवाय श्रीसांबसदाशिवाय नमः ॥ आसनं समर्पयामि ॥ स्त्रीशूद्रश्चेत् ॥ ॐ नमः शिवायेति पंचाक्षरीस्थाने श्रीशिवाय नम इति नमोंतमंत्रेण पूजयेत् ॥ ॐ भवेभवे नातिभवे भवस्व मां ॐ नमः शिवाय श्रीसांबसदाशिवाय नमः पाद्यं समर्पयामि ॥ ॐ भवोद्भवाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसांब० अर्घ्यं० ॐ वामदेवाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसां० आचमनीयम् ॥ ॐ ज्येष्ठाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसांब० स्नानम् ॥ ततो मूलमंत्रेण अप्यायस्वेत्यादिभिश्च पंचामृतैः संस्नाप्य ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिः शुद्धोदकेन प्रक्षाल्यैकादशावृत्त्यैकावृत्त्या वा रुद्रेण पुरुषसूक्तेन च चन्दनकुंकुमकर्पूरवासितजलेनाभिषेकं कृत्वा ॐ नमः शिवायेति स्नानांते आचमनं दत्त्वा साक्षतजलेन तर्पणं कार्यम् ॥ भवं देवं तर्पयामि शर्वं देवं तर्पयामि ईशानं देवं तर्पयामि पशुपतिं देवं त० उग्रं देवं त० रुद्रं देवं त० भीमं देवं त० महांतं देवं त० भवस्य देवस्य पत्नीं त० शर्वस्य देवस्य पत्नीं त० ईशानस्य देवस्य पत्नीं त० पशुपतेर्देवस्य प० उग्रस्य देवस्य प० रुद्रस्य देवस्य प० भीमस्य देवस्य प० महतो देवस्य प० ॐ ज्येष्ठाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसां० वस्त्रं० मूलेनाचमनं० ॐ रुद्राय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसां० यज्ञोपवीतं० मूलेनाचमनम् ॐ कालाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसां० चन्दनं० ॐ कलविकरणाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसां० अक्षतान् ॐ बलविकरणाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसांब० पुष्पाणि० सहस्रमष्टोत्तरशतं वा सहस्रादिनामभिर्मूलमंत्रेण वा बिल्वपत्राणि दद्यात् ॥ ॐ बलाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसां० धूपं० ॐ बलप्रमथनाय० ॐ नमः शिवाय श्रीसांब० दीपं स० ॐ सर्वभूतदमनाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसां०

नैवेद्यं० मूलेनाचमनं फलं च० ॐ मनोन्मनाय० ॐ नमः शिवाय श्रीसां० तांबूलं० मूलेन वैदिकैर्मंत्रैश्च नीराजनं० ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥ ॐ नमः शिवाय श्रीसां० मंत्रपुष्पं० भवाय देवाय नमः शर्वाय देवायेत्याद्यष्टौ भवस्य देवस्य पत्न्यै इत्याद्यष्टौ नमस्कारान्कृत्वा ॥ शिवाय नमः रुद्राय० पशुपतये० नीलकंठाय० महेश्वराय० हरिकेशाय० विरूपाक्षाय० पिनाकिने० त्रिपुरांतकाय० शंभवे० शूलिने० महादेवाय० इति द्वादशनामभिर्द्वादशपुष्पांजलीन्दत्त्वा मूलेन प्रदक्षिणानमस्कारान्कृत्वा मूलमंत्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा क्षमापयित्वाऽनेन पूजनेन श्रीसांबसदाशिवः प्रीयतामिति निवेदयेत् ॥ अथ चतुर्षु यामेषु पूजाचतुष्टये विशेषः ॥ तत्र प्रथमयामे मूलमंत्रांते श्रीशिवायासनं समर्पयामीति शिवनाम्ना सर्वोपचारसमर्पणम् ॥ द्वितीययामे शिवरात्रौ द्वितीययामपूजां करिष्य इति संकल्प्य ॥ श्रीशंकरायासनं समर्पयामीति शंकरनाम्ना ॥ ततो महानिशि पूजां करिष्य इति संकल्प्य पूर्ववत्पूजा ॥ ततस्तृतीययामपूजां करिष्य इत्युक्त्वा श्रीमहेश्वरायासनमित्यादि महेश्वरनाम्ना ॥ एवमेव चतुर्थयामे श्रीरुद्रायेति रुद्रनाम्ना ॥ प्रतियामं तैलेनाभ्यंगपंचामृतोष्णोदकशुद्धोदकगंधोदकाभिषेकाः कार्याः ॥ यज्ञोपवीतांते गोरोचनकस्तूरीकुंकुमकर्पूरागरुचंदनमिश्रितानुलेपेन लिंगं लेपयेत् ॥ पंचविंशतिपलमितः सर्वोनुलप इत्युनुलेपपरिमाणं यथाशक्ति वा ॥ धत्तूरकरवीरकुसुमैर्बिल्वपत्रैश्च पूजनमतिप्रशस्तम् ॥ पुष्पाभावे शालितंडुलगोधूमयवैः पूजा ॥ नैवेद्योत्तरं तांबूलमुखवासावुक्तौ ॥

अब पारणाका निर्णय कहते हैं । तीन प्रहरसे पूर्व चतुर्दशीकी समाप्ति होजाय तो चतुर्दशीके अन्तमें पारणा और जो तीन प्रहरसे अधिक चतुर्दशी होय तो प्रातःकाल चतुर्दशीके मध्यमेंही पारणा करनी, यह माधव आदि कहते हैं । और निर्णयसिन्धुमें तो यह कहाहै कि, तीन प्रहरसे पूर्व चतुर्दशीमेंही पारणा करनी । चतुर्दशीके अन्तमें तो कदाचित् भी न करै, क्योंकि, चतुर्दशीके मध्यमेंही पारणा करनेसे अतिशय पुण्य कहा है कि, हे पार्वति ! चतुर्दशीके दिन उपवास और चतुर्दशीको जो पारणा करै तो लक्षगुणा पुण्य प्राप्त होताहै उसके फलके कहनेको मैं समर्थ नहींहूं इत्यादि वाक्य हैं।यहां इस प्रकार व्यवस्थाहै कि, जो चतुर्दशी इतनी न हो जिसमें नित्यकर्म और पारणा दोनों होजायँ वा जिन किसी मनुष्योंको चतुर्दशीके शेष दिनमें दर्शआदि श्राद्ध करना होय तो उनको तिथिके अन्तमें पारणा करनी चाहिये । क्योंकि, द्वादशीके समान इसमें कोई नित्यकर्मके संकोच करनेवाला वाक्य नहीं । और तिथिके अन्तमें पारणाके विधान करनेके वाक्यहैं, इससे संकट होय तो जलसे पारणा करनी । अर्थात् तिथिके मध्यमेंही करै । इस वचनकी यहां प्रवृत्तिका अभावहै । और जो श्राद्ध करना न होय और कर्मकाल चतुर्दशीपर्यंत होय तो तिथिके मध्यमेंही पारणा करनी । अब व्रतकी विधिको कहते हैं । त्रयोदशीकेदिन एकबार भोजन करके और चतुर्दशीके दिन नित्यकर्मको करके प्रातः-

काल इस मन्त्रसे संकल्प करै कि, हे जगतोंके स्वामी ! इस महाफलके देनेवाले शिवके व्रतको मैं करताहूं आपकी कृपासे यह निर्विघ्न समाप्त हो । और हे शम्भो ! चतुर्दशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोग और मुक्तिके लिये भोजन करूंगा । हे ईश्वर ! मैं आपकी शरण हूँ । और जो द्विज होय तो 'रात्रिं प्रपद्ये जननीं' इन दो ऋचाओंको पढै फिर जलको छोडदे । फिर सायङ्कालके समय काले तिलोंसे स्नान करके भस्म, त्रिपुण्ड् और रुद्राक्षकी मालाको धारण करके निशामुख (रात्रिके प्रारम्भ) में शिवजीके मन्दिरमें जाकर चरणोंको धोकर भलीप्रकार आचमन करके उत्तरकी तरफ मुखकरके देशकालका स्मरण करके मैं शिवरात्रिको यामकी पूजा करताहूं । इस प्रकार जो चार प्रहरमें चारबार पूजाकी इच्छा होय तो संकल्प करै । और जो एकबारही करनेकी इच्छा होय तो श्रीशिवजीकी प्रीतिके लिये शिवरात्रिको शिवकी पूजा करताहूं इसप्रकार संकल्प करै । तिस रात्रिमें सामान्यरीतिसे पूजा विधिको कहते हैं । और प्रहरके भेदसे जो पूजाका भेद है उसको आगे कहेंगे । इस शिवजीके पंचाक्षर मन्त्रका वामदेव ऋषि है, अनुष्टुप्छन्द है, श्रीसदाशिव देवताहै इसका न्यास और जपके विषै विनियोग करताहूं 'वामदेवाय ऋषये नमः' इससे शिरपर, 'अनुष्टुप्छन्दसे नमः' इससे मुखका, 'श्रीसदाशिव देवतायै नमः' इससे हृदयका, 'ॐ नं तत्पुरुषाय नमः' इससे हृदयका, 'ॐ मं अघोराय नमः' इससे चरणोंका , 'ॐ शिं सद्योजाताय नमः' इससे लिंगका, 'ॐ वां वामदेवाय नमः' इससे मस्तकका, 'ॐ यं ईशानाय नमः' इससे मुखका, "ॐ ॐ हृदयाय नमः, ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय्हुं, ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट् , ॐ यं अस्त्राय फट्" इस प्रकार अङ्गन्यासको करै । फिर कुंभकी पूजाको करके ध्यान करै । चांदीके पर्वतके समान जिनकी कांति है, सुन्दर चन्द्रमा जिसका भूषण है, रत्नोंके समान जिनका उज्वल शरीरहै, परशु और मृगचर्म जिसके हाथमें है, प्रसन्न जिनका मुख है, पद्मपर बैठेहुए और चारोंतरफसे देवता जिसकी स्तुति कर रहे हैं, व्याघ्रके चर्मको ओढे हुए हैं, संसारकी आदिभूत और जगत् जिनकी स्तुति करता है, सब मनुष्योंके भ्रमके दूर करनेवाले पांच जिनके मुख हैं, तीन जिनके नेत्र हैं ऐसे शिवजीका मैं ध्यान करताहूं । फिर प्राणप्रतिष्ठाको करके और लिङ्गको स्थापन करके, इस मन्त्रसे आवाहन करै कि, 'ॐ भूः पुरुषं सांबसदाशिवमावाहयामि, ॐ भुवः पुरुषं सांब०, ॐ स्वः पुरुषं सांब०, ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषं सांबमावाहयामि" फिर इस मंत्रसे पुष्पोंकी अंजलि दे कि, हे स्वामिन् ! हे जगन्नाथ ! पूजाके अवसान (अंत) कालपर्यंत प्रीतिपूर्वक इस लिंगमें आनकर विराजमान हो । स्थावरलिंग (गडाहुआ) और पूर्व जिसका संस्कार करलियाहो ऐसे चरलिंगके विषै प्राणप्रतिष्ठासे लेकर आवाहनपर्यंत कर्मको करै । फिर सद्योजात शिवकी शरण प्राप्तहुआहूं सद्योजातके लिये नमस्कार है, ॐश्रीशिवजीको नमस्कार है, अंबासहित शिवजीको नमस्कारहै, इसमंत्रसे आसनको दे । स्त्री और शूद्र होयँ तो 'ॐ नमः शिवाय'इस पंचाक्षर मंत्रके स्थानमें 'श्रीशिवाय नमः' इस मंत्रसे पूजन करै । 'ॐ भवेभवेनातिभवेभवस्वमां ॐनमः शिवाय श्रीसांबाशिवाय नमः' इस मंत्रसे पाद्य, 'ॐभवोद्भवाय नमः ॐनमः शिवाय सांब०'इत्यादिसे अर्घ्य, 'ॐ वामदेवाय नमः ॐनमः शिवाय सांब०' इसमंत्रसे आचमनीय, 'ॐ ज्येष्ठाय नमः ॐनमः शिवाय सांब०' इस मंत्रसे स्नानको अर्पण करै । फिर मूलमंत्रसे और आप्यायस्व इत्यादिमंत्रोंको पढताहुआ पंचामृ

तसे स्नान करावै। और फिर शुद्धजलसे 'आपोहिष्ठा०' इत्यादि तीन ऋचाओंसे प्रक्षालन करै। फिर ग्यारह वा एकपाठ रुद्री और पुरुषसूक्तका पढताहुआ चंदन, कुंकुम, कपूर इन से सुगंधितहुए जलसे श्रीशिवजीका अभिषेक करै। फिर 'ॐ नमः शिवाय०' इससे स्नान कराय पीछे आचमनको देकर अक्षत सहित जलसे तर्पण इस प्रकार करै कि, "ॐ भवं देवं तर्पयामि० शर्वं देवं तर्प० पशुपतिं देवं त० उग्रं देवं तर्प० रुद्रं देवं तर्प० भीमं देवं त० महान्तं देवं तर्प० भवस्य देवस्य पत्नीं त० शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पया० पशुपतेर्देवस्य पत्नीं० उग्रदेवस्य पत्नीं त०रुद्रस्य देवस्य पत्नीं० भीमस्य देवस्य पत्नीं०महतो देवस्य पत्नीं तर्पयामि" इस प्रकार तर्पण किये पीछे 'ॐ नमः ज्येष्ठाय नमः ॐ नमः शिवाय नमः सांब०' इसमंत्रसे वस्त्र, मूलमंत्रसे आचमन, 'ॐ रुद्राय नमः ॐ नमः शिवाय' इससे यज्ञोपवीत मूलमंत्रसे •आचमन, 'ॐ कालाय नमः ॐ नमः शिवाय सांब०' इसमंत्रसे चंदन' 'ॐ कलविकरणाय ॐनमः शिवाय नमः सांव०' इसमंत्रसे अक्षत, 'ॐबलविकरणाय नमः ॐनमः शिवाय श्रीसांब०' इसमंत्रसे पुष्प इनको समर्पण करै। सहस्रआदिनाम वा मूलमंत्रसे हजार वा एकसौ आठ (१०८) बिल्वपत्रोंको अर्पण करै। फिर 'ॐबलाय नमः ॐनमः शिवाय श्रीसांब०' इस मंत्रसे धूप, 'ॐ बलप्रमथनाय ॐनमः शिवाय श्रीसांब०' इसमंत्रसे दीप, 'ॐ सर्वभूतदमनाय ॐ नमः शिवाय' इसमंत्रसे नैवेद्य, मूलमंत्रसे आचमन और फल 'ॐ मनोन्मनाय नमः ॐ नमः शिवाय नमः' इसमंत्रसे तांबूल, मूल और वेदके मंत्रोंसे नीराजन "ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॐ नमः शिवाय०" इस मंत्रसे मंत्रपुष्प 'भवाय देवाय नमः शर्वाय देवाय नमः, इत्यादिमंत्रोंसे आठ और 'भवस्य देवस्य पत्न्यै' इत्यादिमंत्रोंसे आठ नमस्कार करके फिर इन द्वादशनामोंसे कि, 'शिवाय० रुद्राय० पशुपतये० नीलकंठाय० महेश्वराय० हरिकेशाय० विरूपाक्षाय० पिनाकिने० त्रिपुरांतकाय० शंभवे० शूलिने० महादेवाय नमः' द्वादश पुष्पांजलि दे। फिर मूल मन्त्रसे परिक्रमा और नमस्कारोंको करके और अष्टोत्तरशत (१०८)बार मूल मन्त्रको जपकर और क्षमाकराकर इस पूजनसे सांब सदाशिव प्रसन्नहो इसप्रकार निवेदन करै। और चारप्रहरोंकी चार पूजाओंमें विशेष कृत्य दिखालतेहैं—प्रथम प्रहरमें तो मूलमंत्रके अंतमें 'श्रीशिवाय आसनं समर्पयामि' इस प्रकार शिवजीके नामसे सब सामग्रियोंको अर्पण करै। फिर द्वितीयप्रहरमें द्वितीयप्रहरकी पूजाको करताहूं इसप्रकार संकल्प करके 'श्रीशंकरायासनं स०' इसप्रकार शंकरनामसे उपचारोंको अर्पण करै। फिर अर्द्धरात्रके विषै महानिशामें शिवकी पूजा करताहूं इसप्रकार संकल्पकरके पूर्वकी समान पूजा करै। फिर तृतीयप्रहरके विषै तृतीयप्रहरकी पूजाको करताहूं इसप्रकार संकल्प करके 'श्रीमहेश्वरायासनं स०' इसप्रकार महेश्वरके नामसे चतुर्थप्रहरमें 'श्रीरुद्रायासनं स०' इसप्रकार रुद्रके नामसे अर्पण करै। और प्रहरप्रहर तैलसे अभ्यंग, पंचामृत, उष्णजल, शुद्धजल, गंधसे सुगंधित जल इनसे अभिषेक करना। यज्ञोपवीतके अंतमें गोरोचन, कस्तूरी, कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन इनसे मिलेहुए लेपन द्रव्यसे लिंगको लिप्तकरै। सब अनुलेप पचीसपल हों वा शक्तिके अनुसार धतूरा और करवीर, के पुष्पोंसे तथा बिल्वपत्रोंसे पूजन अत्यन्त उत्तम होताहै। पुष्प न होंयँ तो शाठीचावल, गोधूम, जौ इनसे पूजा करनी। नैवेद्यके अंतमें मुखवास, ताम्बूल येभी अर्पण करै॥

अथ तांबूलमुखवासलक्षणम् ।

नागवल्लीदलक्रमुकफलशुक्त्यादिचूर्णेति त्रयं तांबूलसंज्ञम्॥ एतदेव नारिकेरकर्पूरैलाकंकोलैः सहितं मुखवाससंज्ञम्॥ एतेषामन्यतमद्रव्यालाभे तत्तद्रव्यं स्मरेद्बुधः॥ सर्वपूजांते प्रार्थना ॥ "नित्यनैमित्तिकं काम्यं यत्कृतं तु मया शिव ॥ तत्सर्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितम्" इति ॥"शिवरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः ॥ करोमि विधिवद्दत्तं गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते" इत्यर्घ्यम् ॥ एवं यामचतुष्टयेर्घ्यभेदः कौस्तुभे ॥ ततः प्रभाते स्नात्वा पुनः शिवं संपूज्य पूर्वोक्तद्वादशनामभिर्द्वादशब्राह्मणानशक्तावेकं वा संपूज्य तिलपक्वान्नपूर्णान् द्वादशकुंभानेकं वा दत्त्वा व्रतमर्पयेत् ॥ "यन्मयाद्य कृतं पुण्यं तद्रुद्रस्य निवेदितम् ॥ त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समर्पितम् ॥ प्रसन्नो भव मे श्रीमन्सद्गतिः प्रतिपाद्यताम् ॥ त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोस्मि न संशयः" इति ॥ ततो ब्राह्मणान् भोजयित्वा पूर्वनिर्णीते काले स्वजनैः सह पारणं कुर्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर ॥ प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव" इति ॥ इति शिवरात्रिव्रतविधिः ॥

नागवल्लीके पत्ते, सुपारीके फल और शुक्तिआदि (औषध विशेष) का चूर्ण इन तीनोंके समुदायको ताम्बूल कहतेहैं । जो यह ताम्बूलही गोलाकी गिरी, कपूर, इलायची, कंकोल (मिरचभेद) इन सहित होय तो इसको मुखवास कहतेहैं । इन पूर्वकहे द्रव्योंमेंसे कोई द्रव्य न मिलै तो उसका स्मरण करले । सब पूजाके अन्तमें प्रार्थना करै कि, हे शिव ! जो मैंने नित्य नैमित्तिक काम्य कर्म कियाहै वह हे परमेशान ! आपको मैंने अर्पण किया । फिर इस मन्त्रसे अर्घ्य दे कि, हे देव ! आपके जप और पूजाके विषै तत्पर होकर शिवरात्रिके व्रतको विधिपूर्वक करताहूं । इस मेरे अर्घ्यको आप ग्रहण करो । इसीप्रकार कौस्तुभग्रंथमें चारों प्रहरोंके भिन्न २ अर्घ्य लिखेहैं । फिर प्रातःकालके समय स्नान करके फिर शिवजीकी पूजा करके पूर्वकहे द्वादशनामोंसे द्वादश ब्राह्मणोंको जो शक्ति न होय तो एकको ही भलीप्रकार पूजकर तिल और पक्वान्नसे भरेहुए वारह घडाओंको वा एकको देकर व्रतको इस मंत्रको पढकर अर्पण करै कि, जो मैंने आज पुण्य किया और जो व्रत कियाहै वह हे महादेव ! आपको अर्पण किया । हे भगवन् ! आप प्रसन्न हो और मेरी सद्गति करो । और हे महाराज ! आपके देखनेमात्रसे मैं प्रवृत्त हुआ हूं इसमें संशय नहींहै । फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पूर्व निश्चय कियेहुए कालमें अपने मनुष्योंसहित पारणा करै । उसका मंत्र यह है कि, संसारके क्लेशोंसे दग्धहुए मेरे व्रतसे हे शंकर ! आप प्रसन्नहो और ज्ञानदृष्टिको दो । शिवरात्रिका निर्णय और व्रतकी विधि समाप्त हुई ॥

अथ मृन्मयलिंगे शिवपूजाचिकीर्षायां तद्विधिः ।

ॐ हराय नम इति मृदमाहृत्य शोधितायां तस्यां जलप्रक्षेपेण संपीड्य तेन पिंडेन ॥ ॐ महेश्वराय नम इति लिङ्गं कुर्यात् ॥ तच्च लिङ्गमशीतिगुञ्जात्मककर्षादधिकपरिमाणमंगुष्ठमात्रं ततोधिकं वा कार्यं न न्यूनम् ॥ मृन्मयलिङ्गे पंचसूत्र-

सम्पादनाभावेपि न दोषः ॥ अत एव ॥ "सप्तकृत्वस्तुलारूढं वृद्धिमेति न हीयते ॥ बाणलिङ्गमिति प्रोक्तं शेषं नार्मदमुच्यते" ॥ इत्युक्तलक्षणाद्बाणलिंगादतिदुर्लभाद्दुःसंपाद्य पंचसूत्रसम्पादनात्सुवर्णादिलिङ्गाच्च मृन्मयलिङ्गं श्रेष्ठम् ॥ "द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे" इति वचनाच्च ॥ ततः ॐ शूलपाणये नमः शिव इह प्रतिष्ठितो भवेति सबिल्वपत्रे पूजापीठे प्रतिष्ठाप्य 'ध्यायेन्नित्यं महेशम्' इति ध्यात्वा ॥ ॐ पिनाकधृषे नमः श्रीसांबसदाशिव इहागच्छेह प्रतिष्ठेह सन्निहितो भवेत्यावाहयेत् ॥ इह द्विजानां सर्वत्र मूलमन्त्रोपि ज्ञेयः ॥ ततः 'ॐ नमः शिवाय' इति मूलमन्त्रेण पाद्यमर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पशुपतये नमः इति मूलेन च स्नानं वस्त्रमुपवीतं गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यफलतांबूलनीराजनमन्त्रपुष्पांजलीन्दत्त्वा शर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः इति प्राच्यां पूजयेत् ॥ भवाय जलमूर्तये नमः इतीशान्याम् ॥ रुद्रायाग्निमूर्तये नमः इत्युदीच्याम् ॥ उग्राय वायुमूर्तये नम इति वायव्याम् ॥ भीमायाकाशमूर्तये नम इति प्रतीच्याम् ॥ पशुपतये यजमानमूर्तये नम इति नैर्ऋत्याम् ॥ महादेवाय सोममूर्तये नम इति दक्षिणस्याम् ॥ ईशानाय सोममूर्तये नम इत्याग्नेय्याम् ॥ तत स्तुत्वा नमस्कृत्य महादेवाय नम इति विसर्जयेदिति संक्षेपः ॥ विस्तरस्तु पुरुषार्थचिन्तामणौ ज्ञेयः ॥ शिवरात्रिश्चेत्पूर्वोक्तपूजाविधिः पार्थिवलिङ्गेपि कार्यः ॥ पार्थिवलिङ्गोद्यापनविधिः कौस्तुभादौ ज्ञेयः ॥ लिङ्गविशेषेण फलविशेषः ॥ आयुष्यं हीरजे लिङ्गे ॥ मौक्तिके रोगनाशः ॥ वैडूर्ये शत्रुनाशः ॥ पाद्मरागे लक्ष्मीः ॥ पुष्करागजे सुखम् ॥ ऐन्द्रनीले यशः ॥ मारकते पुष्टिः ॥ स्फाटिके सर्वकामाः ॥ राजते राज्यं पितृमुक्तिः ॥ हैमे सत्यलोकः ॥ ताम्रे पुष्टिरायुश्च ॥ पैत्तले तुष्टिः ॥ कांस्ये कीर्तिः ॥ लोहजे शत्रुनाशः ॥ सीसजे आयुष्यम् ॥ मतांतरे ॥ सौवर्णे ब्रह्मस्वपरिहारः स्थिरलक्ष्मीश्च ॥ एवं गंधमये सौभाग्यम् ॥ हास्तिदंतजे सेनापत्यम् ॥ व्रीह्यादिधान्यपिष्टजे पुष्टिसुखरोगनाशादि ॥ माषजे स्त्री ॥ नावनीते सुखम् ॥ गोमयजे रोगनाशः ॥ गौडेन्नादि ॥ वंशांकुरजे वंशवृद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः ॥ एवं लिंगसंख्याविशेषात्फलविशेषः कौस्तुभे ॥ शिवनिर्माल्यग्रहणाग्रहणविचारस्तृतीयपरिच्छेदे ज्ञेयः ॥ मासशिवरात्रिनिर्णयः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः ॥ शिवरात्रिव्रतोद्यापनं कौस्तुभादौ ज्ञेयम् ॥ मासशिवरात्रिव्रतोद्यापनमपि कौस्तुभे स्पष्टम् ॥ माघामावास्यायामपराह्णव्यापिन्यां युगादित्वादपिंडकं श्राद्धं कार्यम् ॥ तच्च दर्शश्राद्धेन सह तंत्रे कार्यम् ॥ माघामावास्यायां शततारकायोगे परमः पुण्यकालस्तत्र श्राद्धात्परमा पितृतृप्तिः ॥ धनिष्ठा योगे तु तिलान्नेन श्राद्धं कार्यम् ॥ तेन वर्षायुतकालं पितृतृप्तिः ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे माघमासकृत्यनिर्णयोद्देशः समाप्तः ॥

अब जो मट्टीके लिंगमें शिवजीकी पूजा करनेकी इच्छा होय तो उसकी विधि कहतेहैं। 'ॐ हराय नमः' इस मंत्रसे मट्टीको लायकर, उसको शुद्ध करके और उसमें जल गेरकर उसनै फिर उसका पिण्ड बनाकर उस पिंडका 'ॐ महेश्वराय नमः' इस मन्त्रसे लिंग बनावै। वह लिंग अस्सी चौटनीके कर्षसे अधिकपरिमाणका अंगुष्ठकी बराबर वा उससेभी अधिक बनाना। मृन्मयके लिंगके पंचसूत्रको न करै तोभी दोष नहीं। इसीसे जो सातबार तुला (तराजू) में रखकर तोले, उस परिमाणसे जो अधिकही होताजाय कम न हो वह बाणलिंग और शेष नार्मद लिंग होताहै। इस उक्त लक्षण अत्यंत दुर्लभ बाणलिंग और जिसमें पंचसूत्र (सूतके आकार) बडी कठिनतासे हों ऐसे सुवर्णादिके लिंगसे मृन्मयलिंग श्रेष्ठ होताहै। और यह भी वचन है कि, द्वापरमें पारेका और कलियुगमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ होताहै। उस मृन्मयलिंगको 'ॐ शूलपाणये नमः शिव इह प्रतिष्ठितो भव, इस प्रकार पढकर विल्वपत्रोंसे युक्त पूजाके आसनपर स्थापन करके और उसमें 'ध्याये नित्यं महेशं०' इसमंत्रसे शिवजीका ध्यान करके। 'ॐ पिनाकधृषे नमः श्री सांबसदाशिव इहागच्छेह प्रतिष्ठितो भव सन्निहितो भव' इसप्रकार पढकर आवाहन करै। इहां सबपूजामें द्विज मूलमंत्रकाभी उच्चारण करै। फिर 'ॐ नमः शिवाय' इस मूलमंत्रसे पाद्य, अर्घ्य, आचमनको देकर 'पशुपतये नमः' इस मूलमंत्रसे स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध,पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, नीराजन,मन्त्रपुष्प, अंजलिको देकर 'शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः' इस मन्त्रसे पूर्वदिशाके विषै पूजन करै। 'भवाय जलमूर्तये नमः' इसमन्त्रसे ईशानमें 'रुद्राय अग्निमूर्तये नमः' उत्तरमें इस मंत्रसे 'उग्राय वायु मूर्तयेनमः' इसमन्त्रसे वायव्यमें 'भीमायाकाशमूर्तये स मन्त्रसे दक्षिणमें 'पशुपतये यजमानमूर्तये नमः' इस मंत्रसे नैर्ऋतमें 'महादेवाय सोममूर्तये नमः' इससे दक्षिणमें 'ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः' इस मन्त्रसे आग्नेयीमें पूजन करै। फिर स्तुति और नमस्कार करके 'महादेवाय नमः' इस मन्त्रसे विसर्जन करै। यह संक्षेपसे पूजा कहचुके और विस्तारसे पूजा तो पुरुषार्थचिंतामणिग्रंथमें समझनी। जो शिवरात्रि होय तो पूर्व कहीहुई पूजा पार्थिवलिंगकीभी करनी। पार्थिवलिंगके उद्यापनकी विधि कौस्तुभ आदिग्रन्थोंमें समझनी। लिंगकी विशेषतासे फलविशेष होताहै। सोई कहतेहैं कि, हीराके लिंगकी पूजासे अवस्थाकी प्राप्ति, मुक्ता (मोती) ओंकेसे रोगका नाश, वैडूर्यमणिकेसे शत्रुका नाश, पद्मरागमणिकेसे लक्ष्मीप्राप्ति, पुष्करागकेसे सुख, इंद्रनीलकेसे यश, मरकतमणिकेसे पुष्टि, स्फटिककेसे सबकामोंकी सिद्धि रजत (चाँदी) केसे पितरोंकी मुक्ति, सुवर्णकेसे सत्यलोककी प्राप्ति, ताम्रकेसे पुष्टि और अवस्थाकी वृद्धि और पित्तलकेसे पुष्टि, कांसेकेसे कीर्ति, लोहेकेसे शत्रुका नाश, सीसेकेसे अवस्थाकी प्राप्ति। मतांतरमें यहभी लिखा है कि, सुवर्णके लिंगकी पूजासे लक्ष्मी स्थिर रहती है। इसी प्रकार गंधके बने लिंगसे सौभाग्यकी प्राप्ति, हाथीदांतके बने लिंगसे सेनाका पति होताहै। व्रीहि (धान) आदिधान्यके चूर्णसे बनेहुए लिंगमें पुष्टि, सुख और रोगका नाश होताहै। उडदके लिंगसे स्त्रीकी प्राप्ति, गोमयके लिंगमें रोगका नाश, गुडके लिंगमें रोगका नाश, वंशके अंकुरमें जो पैदाहो उससे वंशकी वृद्धि होतीहै। इसीप्रकार विस्तार अन्यग्रंथमें देखना। इसी लिंगकी संख्याकी विशेषतासे फलकी विशेषता कौस्तुभ ग्रथमें समझनी। और शिवजीके निर्माल्य (चढेद्रव्य) के लेने न लेनेका विचार तीसरे परिच्छेदमें समझना। मास और शिवरात्रिका निर्णय प्रथमपरिच्छेदमें कह आये। शिवरात्रिके

व्रतका उद्यापन कौस्तुभ आदि ग्रंथमें समझना । मास और शिवरात्रिके व्रतका उद्यापन कौस्तुभग्रंथमें स्पष्ट लिखा है । अपराह्णव्यापिनी माघकी अमावस्या युगादि है उसमें पिण्डरहित श्राद्ध करना । वह दर्शश्राद्धके साथ एक तंत्रसे करना । माघकी अमावस्याको शतभिषा नक्षत्रका योग होय तो परमपुण्यकाल है । उसमें श्राद्ध करनेसे पितरोंकी परमतृप्ति होती है । धनिष्ठाका योग होय तो तिलान्नसे श्राद्ध करना । तिससे दशहजारवर्षतक पितरोंकी तृप्ति होती है ॥ इति श्रीधर्मसिन्धुसारे पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवरणसहिते माघमासनिर्णयोद्देशः ॥

अथ फाल्गुनमासः ।

मीनसंक्रांतौ पराः षोडश नाड्यः पुण्याः ॥ रात्रौ तु प्रागुक्तम् ॥ फाल्गुने गोव्रीहिवस्त्रदानं गोविंदप्रीतये कार्यम् ॥ अथ फाल्गुनशुद्धप्रतिपदमारभ्य द्वादशदिनपर्यंतं पयोव्रतं श्रीभागवते उक्तम् ॥ तत्प्रयोगो मूलानुसारेणोह्यः ॥

अब फागुनमासका निर्णय कहते हैं । मीनसंक्रांतिकी पिछली सोलह घडी पुण्यकाल है । रात्रिकी संक्रांतिका निर्णय पूर्व कह आये । फाल्गुनमें धान्य, वस्त्रोंका दान, गोविंदकी प्रीतिके लिये करना । फाल्गुनशुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर द्वादशदिनपर्यंत पयोव्रत भागवतमें कहा है उसकी विधि मूलश्लोकोंके अनुसार समझनी ॥

अथ होलिकानिर्णयः ।

फाल्गुनीपौर्णमासी मन्वादिः ॥ सा पौर्वाह्णिकी इयमेव होलिका ॥ सा प्रदोषव्यापिनी भद्रारहिता ग्राह्या ॥ दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परदिने प्रदोषैकदेशव्याप्तौ वा परैव ॥ पूर्वदिने भद्रादोषात् ॥ परदिने प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिने प्रदोषे भद्रासत्त्वे यदि पूर्णिमा परदिने सार्धत्रियामा ततोधिका वा तत्परदिने च प्रतिपद्वृद्धिगामिनी तदा परदिने प्रतिपदि प्रदोषव्यापिन्यां होलिका ॥ उक्तविषये यदि प्रतिपदो ह्रासस्तदा पूर्वदिने भद्रापुच्छे वा भद्रामुखमात्रं त्यक्त्वा भद्रायामेव वा होलिकादीपनम् ॥ परदिने प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिने यदि निशीथात्प्राक् भद्रासमाप्तिस्तदा भद्रावसानोत्तरमेव होलिकादीपनम् ॥ निशीथोत्तरं भद्रासमाप्तौ भद्रामुखं त्यक्त्वा भद्रायामेव ॥ प्रदोषे भद्रामुखव्याप्ते भद्रोत्तरं प्रदोषोत्तरं वा ॥ दिनद्वयेपि पूर्णिमायाः प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिन एव भद्रापुच्छे तदलाभे भद्रायामेव प्रदोषोत्तरमेव होलिका ॥ रात्रौ पूर्वार्धभद्राया ग्राह्यत्वोक्तेः ॥ न तु पूर्वप्रदोषादौ चतुर्दश्यां न वा परत्र सायाह्नादौ ॥ दिवा होलिकादीपनं तु सर्वग्रन्थविरुद्धम् ॥ इदं होलिकापूजनं श्रवणाकर्मादिवद्भुक्त्वापि कुर्वंति ॥ युक्तं चैतत् ॥ केचिद्धोलिकापूजनं कृत्वा भुंजते तेषां भोजनस्य पूजनस्य वा न नियमेन शास्त्रविहितकाललाभः ॥ इदं चन्द्रग्रहणसत्त्वे वेधमध्येपि कार्यम् ॥ ग्रस्तोदये परदिने प्रदोषे पूर्णिमासत्त्वे ग्रहणमध्य एव कार्यम् ॥ अन्यथा पूर्वदिने ॥ भद्रामुखपुच्छलक्षणम् ॥ पूर्णिमायां भद्रायास्तृतीयपादांते घटीत्रयं पुच्छम् ॥ चतुर्थपादाद्यघटीपंचकं मुखम् ॥

तथा च मध्यममानेन षष्टिघटीमितायां पूर्णिमायां पूर्णिमाप्रवृत्त्युत्तरं सार्धैकोन विंशतिघटिकोत्तरं घटीत्रयं पुच्छम् ॥ सार्द्धद्वाविंशतिघटिकोत्तरं घटीपंचकं मुखम् ॥ तिथेश्चतुःषष्टिघटीमितत्वे पूर्णिमाया एकविंशतिघटिकोत्तरं पुच्छम् ॥ चतुर्विंशतिघटिकोत्तरं मुखम्॥एवं तिथेर्मानांतरेप्यूह्यम् ॥ अथ पूजाविधिः देशकालौ संकीर्त्य सकुटुम्बस्य मम ढुंढाराक्षसीप्रीत्यर्थं तत्पीडापरिहारार्थं होलिकापूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य शुष्काणां काष्ठानां गोमयपिंडानां च राशिं कृत्वा वह्निना प्रदीप्य तत्र ॥ " अस्माभिर्भयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलिके यतः ॥ अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव " इति पूजामन्त्रेण श्रीहोलिकायै नमो होलिकामावाहयामीत्यावाह्य होलिकायै नम इति मन्त्रेणासनपाद्यादिषोडशोपचारान्दत्त्वा ॥ प्रार्थनामन्त्रः ॥ "वन्दितासि सुरेंद्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव" इति प्रार्थयेत् ॥ "तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायंतु च हसंतु च॥ जल्पंतु स्वेच्छया लोका निःशंका यस्य यन्मतम् "॥ ज्योतिर्निबंधे ॥ "पंचमीप्रमुखास्तास्तु तिथयोनंतपुण्यदाः ॥ दश स्युः शोभनास्तासु काष्ठस्तेयं विधीयते ॥ चंडालसूतिकागेहाच्छिशुहारितवह्निना ॥ प्राप्तायां पूर्णिमायां तु कुर्यात्तत्काष्ठदीपनम् ॥ ग्रामाद्बहिश्च मध्ये वा तूर्यनादसमन्वितः ॥ स्नात्वा राजा शुचिर्भूत्वा स्वस्तिवाचनतत्परः ॥ दत्त्वा दानानि भूरीणि दीपयेद्धोलिकाचितिम् ॥ ततोभ्युक्ष्य चितां सर्वां साज्येन पयसा सुधीः ॥ नारिकेराणि देयानि बीजपूरफलानि च ॥ गीतवाद्यैस्तथा नृत्यै रात्रिः सा नीयते जनैः ॥ तमग्निं त्रिः परिक्रम्य शब्दैर्लिंगभगांकितैः ॥ तेन शब्देन सा पापा राक्षसी तृप्तिमाप्नुयात् " ॥ एवं रात्रौ होलिकोत्सवं कृत्वा प्रातः प्रतिपदि यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यात् ॥ "न तस्य दुष्कृतं किं चिन्नाधयो व्याधयो पि च ॥ कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥ वंदयेद्धोलिकाभूतिं सर्वदुष्टोपशांतये " ॥ वन्दने मन्त्रः ॥ "वन्दितासि सुरेंद्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव " इति ॥ होलिकादिनं करिसंज्ञकं तदुत्तरदिनं च शुभे वर्ज्यम् ॥

फागुनकी पूर्णिमा मन्वादि कहाती है, वह पूर्वाह्णव्यापिनी ग्रहण करनी। इसीको होलिका कहतेहैं वह प्रदोषव्यापिनी और भद्रासे रहित ग्रहण करनी। दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होय वा परदिनमें प्रदोषके एकदेशमें होय तो परली ग्रहण करनी। क्योंकि, पहिले दिन भद्रका दोष है और दूसरे दिन पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी न होय और पहिले दिन प्रदोषके समय भद्राहो तो जो दूसरे दिन पूर्णिमा साढे तीन प्रहर हो वा उतनेसे भी अधिक हो और उससे परे प्रतिपदा बढगई होय तो परले दिन प्रदोषव्यापिनी प्रतिपदामेंही होली करनी। और जो पूर्व कहे विषयमें प्रतिपदा घटगई होय तो, भद्राकी पुच्छ वा भद्राके मुखको छोडकर वा भद्रामेंही होलिकाका दाह करै। और जो परलेदिन प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमा न हो और पहिले दिन अर्द्ध रात्रिसे पूर्वही भद्राकी समाप्ति होजाय तब तो भद्राके-अंतमेंही होलिकाका दाह करना। और

जो अर्द्धरात्रसे पीछे भद्राकी समाप्ति होय तो भद्राके मुखको त्यागकर वा भद्रामेंही होली दीपन करना । और जो प्रदोषके समय भद्राका मुख होय तो होलीदीपन भद्रासे पीछे वा प्रदोषके अंतमें करै । जो दोनों दिन पूर्णिमा प्रदोषके समय न होय और पहिले दिन भद्रा होय तो पहिलेदिनही भद्राकी पुच्छमें जो वह न मिलै तो भद्रामेंही प्रदोषके अंतमें होलिकाका दाहकरै । क्योंकि, रात्रिमें पूर्वार्द्ध भद्राका ग्रहण शास्त्रसे सिद्ध है। परन्तु चतुर्दशीके प्रदोषमें वा परले दिन सायाह्न आदिमें न करै । दिनमें होलीका दाह सर्वशास्त्रसे विरुद्ध है अर्थात् किसीमें नहीं लिखा । इस होलिकाके पूजनको श्रवणाकर्मके समान भोजनके पश्चात् भी करतेहैं । और युक्त भी यहही है । और कोई तो होलीका पूजन करके भोजन करतेहैं तिन मनुष्योंके भोजन वा पूजन कालकी लब्धि नियमसे शास्त्रके अनुकूल नहीं होती । उनको यह होलिकाका दीपन चंद्रग्रहण और वेधमें भी करना जो ग्रसाहुआही उदय और परले दिन प्रदोषकालके विषै पूर्णिमा हो तो ग्रहणके मध्यमेंही दाह करना । और जो प्रदोषके समय न होय तो पहिले दिनही करै । भद्राका मुख और पुच्छका लक्षण कहते हैं । पूर्णिमासीके दिन भद्राकी तीन पादके अन्तकी जो तीन घडी हैं उन्हें पुच्छ और चौथे पादके आदिकी पांच घडियोंको मुख कहते हैं । इसप्रकार जो साठ घडी वह पूर्णिमासी होय तो पूर्णिमाकी प्रवृत्तिसे पीछे साढ़े उन्नीस (१९।।) घडीके अनंतर जो तीनघड़ी पुच्छ और साढे बाईस (२२।।) घडीके पीछेकी पांचघडी मुख होगा यह मध्यम मान अंदाज करना है । जो तिथि चौसठ घडी होय तो पूर्णिमाकी इक्कीस घडीके पीछे पुच्छ और चौबीस घडीके पीछे मुख समझना । इसी प्रकार जो तिथिका अन्यपरिमाण हो वहांभी समझना । अब पूजा-विधिको कहतेहैं । देशकालका स्मरण करके कुटुम्बसहित मेरे ऊपर ढुंढाराक्षसीकी प्रीति के लिये और उससे जो कुछ पीडा है उसके नाशके लिये मैं होलिकाका पूजन करताहूं इसप्रकार संकल्प करके और सूखी लकडी और कंडा इनकी राशि (ढेर) करके और उसको अग्निसे जलाकर और उस बलती हुईमें इसमंत्रसे कि, भयसे त्रासको प्राप्तहुओंने हमने हे होलिके ! तू रची है इससे तेरा पूजन करते हैं हे भूते ! तू हमको भूति (धनआदि) दे । होलिकाको नमस्कारहै मैं होलिकाका आवाहन करताहूं इसप्रकार आवाहन करके 'फिर होलिकायैनमः' इसमंत्रसे आसन, पाद्य आदि षोडशउपचारोंको देकर इसमंत्रसे प्रार्थना करै कि, हे देवि ! सुरेन्द्र, ब्रह्मा, शंकर ये तुझको नमस्कार करतेहैं इससे हे देवि तू हमारी रक्षा कर और भूतिको दे । फिर उस अग्निकी तीन परिक्रमा करके जिसका जो मतहै वह उसीप्रकार गाओ, हँसो, बोलो निश्शंक होकर ये करो । ज्योतिर्निबंधमें लिखा है कि, पंचमीसे लेकर दशतिथि अनंतपुण्यके देनेवालीहैं उन्हींमें काष्ठकी चोरी करै । और पूर्णिमा केदिन किसीबालकके द्वारा चण्डाल वा सोवरके घरसे अग्निको मंगाकर उन काष्ठोंको प्रज्वलित करै । बडे बाजोंके शब्दसे युक्त राजा स्नानकर और शुद्ध होकर बहुतसे दानदेकर ग्रामसे बाहिर वा मध्यमें होलीकी चिताको जलावै । फिर आज्य (घी) सहित दूधसे चिता को छिडककर नारियल और बिजौरेके फलोंको अर्पण करै और उस रात्रिको मनुष्य गाना, बजाना, नाचना, इनसे व्यतीत करैं । और उस अग्निकी तीनपरिक्रमा करके लिंग और भगके वाचक शब्द जिनमें हों ऐसे शब्दोंको उच्चारणकरैं । क्योंकि, वह पापिनी राक्षसी तिनशब्दोंसे तृप्तिको प्राप्त होतीहै । इस रात्रिमें होलीके उत्सवको करके प्रातःकाल प्रतिपदाको चाण्डाल

(भंगी) से स्पर्शकरके स्नान करले । फिर उस मनुष्यकी पाप, आधि, वा व्याधि सब निवृत्त होजातीहैं । फिर आवश्यक संध्याआदि तथा पितर देवताओंका तर्पण करके सब दुष्टकर्मोंकी शांतिके लिये होलिकाको इस मंत्रसे नमस्कार करै कि, देवता, इंद्र, ब्रह्मा, शिव, इनसे तू पूजीगईहै इससे हमारी रक्षा कर और भूतिको दे । होलिकाके दिनको करि कहतेहैं वह और उससे दूसरा दिन शुभकर्ममें वर्जदे ॥

अथ करिदिननिर्णयः ।

"होलिकाग्रहणभावुकायनं प्रेतदाहदिवसोत्र पंचमः ॥ तत्परं च करिसंज्ञकं दिनं वर्जितं सकलकर्मसुभयम् " इत्युक्तेः ॥ ग्रहणायनप्रेतदाहेषु निशीथविभागेन पूर्वदिनकरिदिनयोर्निर्णयो ज्ञेयः ॥ "नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविंदं पुरुषोत्तमम् ॥ फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्" ॥ फाल्गुनकृष्णप्रतिपदि वसंतारंभोत्सवः ॥ सा चौदयिकी ग्राह्या ॥ दिनद्वये सत्त्वे पूर्वा ॥ अत्र तैलाभ्यंग उक्तः ॥ अत्र प्रतिपदि चूतपुष्पप्राशनमुक्तम् ॥ तत्प्रकारः ॥ गोमयोपलिप्ते गृहांगणे शुक्लवस्त्रासन उपविष्टः प्राङ्मुखः सुवासिन्या कृतचन्दनतिलकनीराजनः सचन्दनमाम्रकुसुमं प्राश्नीयात् ॥ तत्र मन्त्रः॥ "चूतमग्र्यं वसंतस्य माकन्दकुसुमं तव ॥ सचंदनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये" इति ॥ कृष्णद्वितीयायां देशग्रामाधिपतिर्वितते वितानादिशोभिते देशे रम्यासने उपविश्य पौरजानपदाँल्लोकान्सिंदूरादिक्षोदैश्चंदनादिभिः पट्टवासैश्च विकीर्य तेभ्यस्तांबूलादि दत्त्वा नृत्यगीतविनोदैर्महोत्सवं कुर्यात् ॥ इदानीं प्राकृतजनास्तु कृष्णपञ्चमीपर्यंतमुत्सवं कुर्वंति ॥ इति होलिकोत्सवः ॥ फाल्गुनामावस्या मन्वादिः सा पराह्णव्यापिनी ग्राह्या ॥ ॥ इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे फाल्गुनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः समाप्तः ॥

क्योंकि, ये वचन हैं कि, होलिका, ग्रहण, भावुक, अयन और पांचमां प्रेतदाहका दिन इनसे दूसरा करिनामा दिन ये दोनों दिन शुभकर्ममें वर्जितहैं । ग्रहण, अयन और प्रेतदाह का दिन इनके पूर्व दिन और करिदिनका निर्णय अर्द्धरात्रिके विभागसे समझना अर्थात् रात्रिसे पूर्व ग्रहण आदि होय तो उस रात्रिवाला दिन पूर्वदिन अर्द्धरात्रिके पीछेका दिन करिदिन समझना । जो मनुष्य फाल्गुनकी पूर्णिमाको पुरुषोत्तम भगवान्‌को हिंडोलेपर बैठा देखताहै वह कटिबद्ध होकर वैकुण्ठको प्राप्त होताहै । फाल्गुनके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको वसंतके आरंभका उत्सव होताहै । वह उदयकालकी ग्रहण करनी । जो दोनोंदिन उदयके समय होय तो पहिली लेनी । इसमें तैलाभ्यंगभी कहाहै इस प्रतिपदाको आम्रके पुष्पोंका खादन (खाना) कहाहै । उसकी विधि यहहै कि, गोबरसे लिंपेहुए गृहके आंगनमें पूर्वको मुख करके शुक्लवस्त्रके आसनपर बैठे । सुहागिनस्त्रियोंसे चंदनका तिलक और आरती कराकर चंदनसहित आम्रके पुष्पका भक्षण करै । उसका मंत्र यह है कि, हे माकंद । वसंतके आदिमें होनेवाले तेरे पुष्पको सबकाम और अर्थोंकी सिद्धिके लिये पीताहूं । कृष्णपक्षकी द्वितीयाके दिन ग्रामका स्वामी मंडप आदिसे युक्त किसी लम्बेमैदानमें रमणीक आसनपर बैठकर पुर

और अन्यदेशके मनुष्योंसे अपने ऊपर सिंदूर आदिका चूर्ण (गुलाल) तथा चंदन आदि अतरआदिको विकिरवायकर और उनको स्वयं तांबूलआदि देकर गीतनृत्य आदिसे महान् उत्सवको करै । अब प्राकृतजन कृष्णपंचमीपर्यंत इस उत्सवको करतेहैं । होलिकाके उत्सवका निर्णय समाप्तहुआ । फागुनकी अमावस्या मन्वादि कहातीहै वह अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करनी ॥ इति श्रीधर्मसिंधुसारे पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवरणसहिते फाल्गुनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः ॥

अथ परिच्छेदद्वयशेषाख्यं प्रकीर्णप्रकरणमुच्यते ॥ द्वादशस्वपि मासेषु श्राद्धे व्यतीपातादियोगस्य भरण्यादिनक्षत्रस्य चापराह्णव्याप्त्या दर्शवन्निर्णयो ज्ञेयः ॥ उपवासादौ प्रचुराचाराभावान्नोक्तः ॥

अब परिच्छेदद्वयशेष जिसका नामहै ऐसे प्रकीर्णप्रकरणको कहतेहैं । बारह महीनाओंके विषै श्राद्धके व्यतीपात आदिका योग तथा भरणी आदि नक्षत्रका योगका निर्णय अपराह्णकालकी व्याप्तिसे दर्शके समान समझना । उपवास आदिमें ऐसा अत्यंत आचार नहींहै । इससे उसमें योगका निर्णय नहीं कहा ॥

अथ प्रभवादिचांद्रसांवत्सरभेदाः ।

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोथ प्रजापतिः ॥ अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥ १ ॥ ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः ॥ चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोव्ययः ॥ २ ॥ सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः ॥ नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥ ३ ॥ हेमलम्बी विलम्बी च विकारी शार्वरी प्लवः ॥ शुभकृच्छोभकृत्क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ॥ ४ ॥ प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् ॥ परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसो नलः ॥ ५ ॥ पिंगलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती ॥ दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥ ६ ॥ इति रवेः राशिसंक्रमवन्नक्षत्रसंक्रमेपि षोडश नाड्यः पूर्वत्र परत्र च पुण्यकालः ॥

अब चांद्रवर्षके भेदोंको दिखातेहैं । कि, प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नंदन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलंबी, बिलंबी, विकारी, शार्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभकृत, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थी, रौद्र, दुर्मति, दुंदुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन और क्षय ये वर्षोंके नामहैं । अब सूर्यकी संक्रांतिके समान नक्षत्रकी संक्रातिमें भी पहली और पिछली सोलह घडी पुण्यकाल है ॥

अथ चन्द्रादीना संक्रांतौ पुण्यकालः ।

चन्द्रस्य संक्रांतौ प्राक् परत्र च त्रयोदशपलाधिका एका घटी पुण्यकालः ॥ भौमस्यैकपलाधिकाश्चतस्रो नाडयः ॥ बुधस्य चतुर्दशपलाधिकास्तिस्रः ॥ गुरोः

सप्तत्रिंशत्पलाधिकाश्चतस्रः ॥ शुक्रस्यैकपलाधिकाश्चतस्रः ॥ शनेः सप्तपलाधिकाः षोडश ॥ एताः सर्वाः प्राक् परत्र च बोद्धव्याः ॥ रात्रौ ग्रहाणां संक्रमे रात्रावेव पुण्यकालः ॥ सूर्यसंक्रांतिवद्दिवापुण्यत्वविधायकाभावात् ॥ चन्द्रादिसंक्रांतिषु स्नानं काम्यं न तु नित्यम् ॥ आदित्यादिसूचितपीडानिरासार्थस्नानानि ॥ मञ्जिष्ठागजमदकुंकुमरक्तचन्दनानि जलपूर्णे ताम्रपात्रे प्रक्षिप्य स्नानं सूर्यपीडाहरम् ॥ उशीरशिरीषकुंकुमरक्तचन्दनयुतशंखतोयेन स्नानं चन्द्रदोषहरम् ॥ खदिरदेवदारुतिलामलकयुतरौप्यपात्रे जलेन स्नानं भौमे ॥ गजमदयुतसंगमजलेन मृत्पात्रस्थेन स्नानं बुधे ॥ औदुम्बरबिल्ववटामलकानां फलैर्युतसौवर्णपात्रजलेन स्नानं गुरौ ॥ गोरोचनगजमदशतपुष्पाशतावरीयुतराजतपात्रजलेन स्नानं शुक्रे ॥ तिलमाषप्रियंगुगन्धपुष्पयुतलोहपात्रस्थजलेन स्नानं शनौ ॥ गुग्गुलुहिंगुहरितालमनःशिलायुतमहिषशृंगपात्रजलेन स्नानं राहौ ॥ वराहोत्खातपर्वताग्रमृच्छागक्षीरयुतखड्गपात्रजलेन स्नानं केतौ ॥

अब चन्द्रमा आदिकी संक्रांतिके पुण्यकालको दिखातेहैं । चन्द्रमा जिस राशिपर बदले उसमें तेरह पल और एक घडी पुण्यकालहै । भौमकी संक्रांतिका एक पल और चार घडी पुण्य काल है । बुधकी चौदहपल और तीन घडी । बृहस्पतिकी सैंतीस पल और चार घडी । शुक्रकी एक पल और चार घडी । शनैश्चरकी सात पल और सोलह घडी ये पूर्वकहे पल और घडी पूर्वके और पिछले समझने । जो अन्य ग्रहोंका रात्रिमें संक्रमण होय तो रात्रिमें पुण्यकाल समझना । क्योंकि, सूर्यकी संक्रांतिके समान दिनमें पुण्यकालका विधायक कोई वाक्य नहीं है । चन्द्र आदिकी संक्रांतिमें स्नान काम्य है नित्य नहीं । आदित्य आदि ग्रहकी पीडाके दूरकरनेके लिये स्नानोंको कहते हैं । मंजीठ, गजमद (अजमोद), कुंकुम, रक्तचंदन इनको जलसे भरे ताँबेके पात्रमें गेरकर जो स्नान करै वह सूर्यकी पीडा । और उशीर, शिरीष, कुंकुम, रक्तचंदन इनसे सहित जो शंखका जलहै उससे स्नान, चंद्रकी पीडा । खदिर, देवदारु, तिल, आमले इनसे सहित चांदीके पात्रके जलसे स्नान भौमकी पीडा । गजमद और संगम (मेल) के जलसे सहित मट्टीके पात्रसे स्नान बुधकी पीडा । गूलर, बेल, वड, आमला इनके फलसहित सुवर्णके पात्रके जलसे स्नान बृहस्पतिकी पीडा । गोरोचन, गजमद, शतपुष्पा, शतावर इनसे युक्त चांदीके पात्रका जल शुक्रकी पीडा । तिल, उडद, कांगनी, गंध, पुष्प इनसे युक्त लोहेके पात्रके जलसे स्नान शनिकी पीडाको । गुग्गुल, हींग, हरिताल, मैनाशिल इनसे युक्त भैंसके सींगके पात्रको जलसे स्नान राहुकी पीडा । और सूकरका उखाडाहुआ पर्वतका अग्रभाग अर्थात् कोई पत्थर, मृगी और बकरीका दूध इनसे सहित खड्गपात्र (गेंडाका) के जलसे स्नान केतुकी पीडाको हरताहै ॥

अथ ग्रहप्रीत्यर्थं दानानि ।

माणिक्यगोधूमधेनुरक्तवस्त्रगुडहेमताम्ररक्तचन्दनकमलानि रवेः प्रीत्यर्थं देयानि ॥ वंशपात्रस्थतण्डुलकर्पूरमौक्तिकश्वेतवस्त्रघृतपूर्णकुम्भवृषभाश्चन्द्रस्य ॥ प्रवाल-

गोधूममसूरिकारक्तवृषभगुडसुवर्णरक्तवस्त्रताम्राणि भौमस्य ॥ नीलवस्त्रसुवर्णकांस्यमुद्गगारुत्मतदासीहस्तिदन्तपुष्पाणि बुधस्य ॥ पुष्परागमणिहरिद्राशर्कराश्वपीतधान्यपीतवस्त्रलवणसुवर्णानि सुरगुरोः ॥ चित्रवस्त्रश्वेताश्वधेनुवज्रमणिसुवर्णरजतगन्धतण्डुलाः शुक्रस्य ॥ इन्द्रनीलमाषतैलतिलकुलित्थमहिषीलोहकृष्णधेनवः शनेः ॥ गोमेदाश्वनीलवस्त्रकंबलतैलतिललोहानि राहोः ॥ वैदूर्यतैलतिलकंबलकस्तूरीछागवस्त्राणि केतोर्दानानि ॥ शनिपीडापरिहारार्थं शनिवारे तैलाभ्यंगस्तैलदानं च ॥

अब ग्रहोंकी प्रसन्नताके लिये दानोंको कहतेहैं । सूर्यकी प्रसन्नताके लिये मानक, गोधूम, धेनु, लालवस्त्र, गुड, सुवर्ण, ताँबा, लालचंदन, कमल इनका । और चंद्रकी प्रसन्नताके लिये वांसके पात्रमें रखकर चांवल, कपूर, मोती, सुफेद वस्त्र, घीसे भरा घडा और वृषभ इनका । भौमकी प्रसन्नताके लिये मूंगा, गेहूं, मसूर, रक्तवृष, गुड, सुवर्ण, लालवस्त्र इनका । बुधके लिये नीलवस्त्र, सुवर्ण, कांसी, मूंग, गारुत्मत, दासी, हाथीदांत और पुष्प इनका । और बृहस्पतिके लिये पुष्पराग, मणि, हरदी, शर्करा, अश्व, पीलानाज, पीलावस्त्र, लवण, सुवर्ण इनका । और शुक्रके लिये चितकबरावस्त्र, सुफेद घोडा, धेनु, वज्रमणि, सुवर्ण, चांदी, गंध और तंडुल इनका । शनिके लिये इंद्रनीलमणि, माष, तैल, तिल, कुलथी, महिषी, लोह, काली गौ इनका । राहुके लिये गोमेद, अश्व, नीलवस्त्र, कंबल, तैल, तिल, लोहा इनका । और केतुके लिये वैडूर्यमणि, तैल, तिल, कंबल, कस्तूरी, बकरी, वस्त्र इनका दान करै । शनैश्चरकी पीडाके नाशके लिये शनैश्चरको तेल लगाना और तैल देना ।

अथ शनिव्रतम् ।

लोहमयं शनिं तैलकुम्भे लौहे मृन्मये वा निक्षिप्य कृष्णवस्त्राभ्यां कंबलेन वा युतं कृष्णैः गन्धपुष्पैश्च कृसरान्नैस्तिलोदनैः पूजयित्वा कृष्णाय द्विजाय तदभावेऽन्यस्मै स शनिर्देयः ॥ तत्र "शन्नो देवी" इति मन्त्रः ॥ शूद्रादेस्तु ॥ "यः पुनर्भ्रष्टराज्याय नलाय परितोषितः ॥ स्वप्ने ददौ निजं राज्यं स मे सौरिः प्रसीदतु ॥ नमोर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णांजनमेचकाय ॥ श्रुत्वा रहस्यं भवकामदस्त्वं फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र" इत्यादयः ॥ एवं व्रतं प्रतिशनिवारं संवत्सरं कार्यम् ॥ "कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोंतको यमः ॥ सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः" इति दश नामानि वा नित्यं पठनीयानि ॥

अब शनैश्चरके व्रतकी विधिको कहतेहैं । लोहेका शनैश्चर बनाकर उसको लोहे वा मट्टीके बने तैलसे पूर्ण घटमें गेरकर काले दो वस्त्र, वा कंबलसे युक्त उसको सुगंधित पुष्प और कृसरान्नसे पूजकर काले ब्राह्मणको दे, वह न होय तो किसी अन्यको 'शन्नोदेवीरभिष्टय' इस

मंत्रको पढकर दे । शूद्रंआदिकेलिये इत्यादिमंत्र हैं कि, भ्रष्टराज्य जिसका होगया था ऐसे नल राजाको प्रसन्न होकर स्वप्नमें अपना राज्य दिया वह शनैश्चर हमारे ऊपर प्रसन्नहो । सूर्यके पुत्र नीहारकासा वर्ण अंजनकी समान काले शनैश्चर देव आपको नमस्कारहै । हे सूर्यपुत्र ! रहस्यको सुनकर संसारकी कामनाओंके देनेवाले आप मेरे फलको दो । इसीप्रकार संवत्सरपर्यंत शनैश्चरका व्रत करै । अथवा प्रतिदिन ये पिप्पलादके कहेहुए दशनाम नित्य पढने कि, कोणस्थ, पिंगल, बभ्रु, कृष्ण, रौद्र, अंतक, यम, सौरि, शनैश्चर और मंद ॥

अथ शनिस्तोत्रम् ।

पिप्पलाद उवाच ॥ "नमस्ते कोणसंस्थाय पिंगलाय नमोस्तु ते ॥ नमस्ते बभ्रुरूपाय कृष्णाय च नमोस्तु ते ॥ नमस्ते रौद्रदेहाय नमस्ते चांतकाय च ॥ नमस्ते यमसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभो ॥ नमस्ते मन्दसंज्ञाय शनैश्चर नमोस्तुते ॥ प्रसादं कुरु देवेश दीनस्य प्रणतस्य च" ॥ अनेन स्तोत्रेण प्रत्यहं प्रातः शनिस्तवनेन सार्द्धसप्तवार्षिकशनिपीडानाशः ॥ रविवारे सूर्यपूजोपवाससूर्यमन्त्रजपैः सर्वरोगनाशः ॥ ह्रीं ह्रीं सः सूर्यायेति षडक्षरमन्त्रः ॥ इति प्रकीर्णनिर्णयः ॥ उक्त आद्यपरिच्छेदे सामान्येन विनिर्णयः ॥ द्वितीयेस्मिन्परिच्छेदे विशेषेण विनिर्णयः ॥ १ ॥ मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोनलसा नराः ॥ कृतकार्याः प्राङ्निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ २ ॥ ये पुनर्मंदमतयोलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ॥ धर्मं वेदितुमिच्छंति रचितस्तदपेक्षया ॥ ३ ॥ निबंधोयं धर्मसिंधुसारनामा सुबोधनः ॥ अमुना प्रीयतां श्रीमद्विट्ठलो भक्तवत्सलः ॥ ४ ॥ सर्वत्र मूलवचनानीह ज्ञेयानि तद्विचारश्च ॥ कौस्तुभनिर्णयसिंधुश्रीमाधवकृतनिबंधेभ्यः ॥ ५ ॥ प्रेम्णा सद्भिर्ग्रंथः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोपि ॥ संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव ॥ ६ ॥ इति श्रीमत्काश्युपाध्यायसूरिसूनुयज्ञेश्वरोपाध्यायानुजानंतोपाध्यायसूरिसुतकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे प्रकीर्णनिर्णयोद्देशः समाप्तः ॥ ॥ इति द्वितीयपरिच्छेदः समाप्तः ॥ श्रीपांडुरंगार्पणमस्तु ॥

अब शनिस्तोत्रको कहतेहैं । पिप्पलाद स्तुति करते हैं कि, कोणसंस्थ, पिंगल, बभ्रुरूप, कृष्ण, रौद्रदेह, अंतक, यमसंज्ञ, सौरि, मंद, शनैश्चररूप आपको नमस्कार है । दीन और नमस्कार करतेहुए मेरे ऊपर हे देवेश ! आप प्रसन्नहो । इस स्तोत्रसे प्रतिदिन प्रातःकाल शनिकी स्तुति करनेसे साढे सात (७॥) वर्षकी शनैश्चरकी पीडा नष्ट होतीहै । रविवारके दिन सूर्यकी पूजा और उपवास और सूर्यके मंत्रोंके जपसे सब रोगोंका नाश होताहै । सूर्यका मंत्र 'ह्रींह्रींसः सूर्याय' यह छः अक्षरोंका है । प्रकीर्णका निर्णय समाप्तहुआ । प्रथम परिच्छेदके

विषे सामान्य रीतिसे निर्णय किया था अब इस द्वितीय परिच्छेदमें विशेष निर्णय किया ॥१॥ अनेकप्रकारके साधन और शास्त्रोंको जो जानतेहैं बडे बुद्धिमान् और आलस्यसे जो रहित हैं और जो पहिले शास्त्रोंसे अपने कार्योंको करलेतेहैं उनके लिये मैं यह यत्न नहीं किया ॥ २ ॥ किन्तु मंदबुद्धि, आलसी, मूर्ख जन धर्मके निर्णयको जाननेकी इच्छा करते हैं उनकी अपेक्षासे ये शास्त्र रचाहै ॥ ३ ॥ उत्तम ज्ञानके करानेवाला यह धर्मसिंधुसार नामक ग्रंथहै । इससे श्री भक्तवत्सल विट्ठलजी प्रसन्नहो ॥४॥ इसमें प्रमाणके वचन, उनका विचार कौस्तुभ, निर्णयसिंधु, श्रीमाधवग्रंथसे समझना ॥ ५ ॥ शब्द और अर्थसे दूषित भी इस ग्रंथको सज्जन प्रेमसे ग्रहण करैं कि, जैसे श्रीकृष्णजीने सुदामा मुनिके तुषसे युक्त मुट्ठीभर चावल ग्रहण किये थे ॥ ६ ॥

इति श्रीधर्मसिंधुसारे श्रीगौतमकुलोद्भवमिश्ररामरक्षात्मजपण्डितमिहिरचंद्रकृत भाषाविवरणसहिते द्वितीयपरिच्छेदः प्रकीर्णनिर्णयश्च समाप्तः ॥

समाप्तोऽयं द्वितीयः परिच्छेदः ॥

॥ श्रीः ॥

धर्मसिन्धु।

भाषाटीकासमेत।

तृतीयपरिच्छेद-पूर्वार्ध।

श्रीगणेशाय नमः॥ श्रीपांडुरंगमकलंककलानिधानकांताननं यदबुधानमनं मुधा न॥ श्रीवत्सकौस्तुभरमोल्लसितोरसं तं वंदे पदाब्जभृतनंददुदारसंतम्॥ १॥ भीमाप्रियं सुकरुणार्णवमाशुतोषं दीनेष्टपोषमघसंहतिसिंधुशोषम्॥ श्रीरुक्मिणीमतिमुषं पुरुषं परं तं वंदे दुरंतचरितं हृदि संचरंतम्॥ २॥ वंदे प्रतिघ्नंतमघानि शंकरं धत्तां स मे मूर्ध्नि दिवानिशं करम्॥ शिवां च विघ्नेशमथो पितामहं सरस्वतीमाशु भजे पितामहम्॥ ३॥ श्रीलक्ष्मीं गरुडं सहस्रशिरसं प्रद्युम्नमीशं कपिं श्रीसूर्यं विधुभौमविद्गुरुकविच्छायातान्षण्मुखम्॥ इंद्राद्यान्विबुधान्गुरूंश्च जननीं तातं त्वनंताभिधं नत्वार्यान्वितनोमि माधवमुखान्धर्माब्धिसारं मितम्॥ ४॥ दृष्ट्वा पूर्वनिबंधान्प्राच्यांश्च नवांश्च तेषु सिद्धार्थान्॥ प्रायेण मूलवचनान्युज्झित्य लिखामि बालबोधाय॥ ५॥ उक्त्वा धर्माब्धिसारेस्मिन्निर्णयं कालगोचरम्॥ परिच्छेदे प्रथमजे द्वितीये च यथाक्रमम्॥ ६॥ अथ॥ गर्भाधानादिसंस्कारान् धर्मान् गृह्यादिसंमतान्॥ वक्ष्ये संक्षेपतः संतोऽनुगृह्णंतु दयालवः॥ ७॥ काशीनाथाभिधेनात्रानंतोपाध्यायसूनुना॥ निर्णीयते यदेतत्तु शोधनीयं मनीषिभिः८॥

श्रीमंगलमूर्तये नमः। नत्वा श्रीगुरुपादाब्जं भाषां तत्प्रेमप्रीतिदाम्॥ वच्मि सिंधोस्तृतीयस्य खण्डस्याहं विदर्चकः। १। कलंकरहित, कलाओंसे परिपूर्ण, कोमलमुख और शुक्लवर्णको धारणकियेहुए और जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्स और कौस्तुभमणि और लक्ष्मी इनसे शोभायमानहै ऐसे श्रीकृष्णको मैं ग्रंथकार नमस्कार करताहूं॥ १॥ जो श्रीकृष्ण भीमाके प्यारे उत्तम दयाके समुद्र शीघ्र प्रसन्नहों। दीनोंके मनोरथके साधक पापोंके समुद्रके सुखानेवाले, श्रीरुक्मिणीकी मतिके चुरानेवाले, जिनके चरित्रोंका पार न पावै ऐसे हृदयमें विचरनेवाले श्रीपरमपुरुषको नमस्कार करताहूं॥ २॥ पापोंका नाश और कल्याणको करनेवाले श्रीशिवजीको नमस्कार करताहूं। वह मेरे मस्तकपर रातदिन अपने हाथको धरो और पार्वती, गणेश, ब्रह्मा, सरस्वती इनको शीघ्रही भजताहूं॥ ३॥ श्रीलक्ष्मी, गरुड, शेष, प्रद्युम्न, शिव, कपि, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, स्वामिकार्तिक, इंद्र आदि देवता

गुरु, माता, अनंतनामा पिता और माधव आदि सत्पुरुषोंको नमस्कार करके धर्मसिन्धुसारको संक्षेपसे कहताहं ॥ ४ ॥ पहिले प्राचीन ग्रंथोंको तथा नवीन ग्रंथोंको देखकर उनके सिद्धान्त अर्थोंको प्रायः प्रमाणके वचनोंको छोडकर बालकोंके बोधके लिये लिखताहूं ॥ ५ ॥ इस धर्मसिन्धुसारके प्रथम और द्वितीयपरिच्छेदमें क्रमपूर्वक कालका निर्णय कहकर ॥ ६ ॥ अब गृह्य आदिको संमत गर्भाधानआदि संस्कारोंका निर्णय संक्षेपसे कहताहूं । दयालु मेरे ऊपर दयाकरैं ॥ ७ ॥ अनंतोपाध्यायके पुत्र काशीनाथ जो इसमें निर्णय कहेहैं उनको बुद्धिमान् शोधैं ॥ ८ ॥

तत्रादौ गर्भाधानसंस्कार उच्यते ।

अथ तदुपयोगितया प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासादि निर्णीयते ॥ तत्र चैत्रज्येष्ठाषाढभाद्रपदकार्तिकपौषमासा दुष्टाः ॥ प्रतिपद्रिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीपंचदश्योनिष्टफलास्तिथयः ॥ तथा रविभौममंदवारेषु भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषामघापूर्वात्रयविशाखाज्येष्ठानक्षत्रेषु विष्कंभगंडातिगंडशूलव्याघातवज्रपरिघपूर्वार्द्धव्यतीपातवैधृतियोगेषु विष्टयां ग्रहणे रात्रिसंध्यापराह्णकालेषु निद्रायां जीर्णरक्तनीलचित्रवस्त्रेषु नग्नत्वे परगृहे परग्रामेषु अल्पाधिकनीलादिरक्तत्वे चानिष्टफलम् ॥ संमार्जनीकाष्ठतृणाग्निशूर्पान्हस्ते दधाना कुलटा स्यात् ॥ वस्त्रे विषमा रक्तबिंदवः पुत्रफलाः समाः कन्याफलाः ॥

तिसकी आदिमें गर्भाधान आदि संस्कारोंको कहतेहैं । अब उसके उपयोगी प्रथम रजोदर्शनके विषै दुष्टमास आदिका निर्णय कहतेहैं । प्रथम रजोदर्शनके विषे चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ, भादों, कार्तिक और पौषमास आदि अशुभहैं । प्रतिपदा, रिक्ता, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी और पूर्णिमा ये तिथि । रवि, मंगल, शनि, ये वार । भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, तीनों पूर्वा, विशाखा, ज्येष्ठा ये नक्षत्र । और विष्कंभ, गंड, अतिगण्ड, शूल, व्याघात, वज्र, परिघका पूर्वार्द्ध, व्यतीपात, वैधृति ये योग । भद्रा, ग्रहण, रात्रि, संध्या, दिनका अपराह्णकाल इनमें रजोदर्शन तथा सोते समयमें जीर्ण (पुराचीन फटे) लाल, नीला और चित्र (कबरे) वस्त्रमें, नग्न होतेहुए, दूसरेके घर तथा ग्राम इनमें रजोदर्शनसे अनिष्ट फल होता है । बुहारी, काष्ठ, अग्नि, शूप इनको हाथमें लियेहुए प्रथम रजोदर्शन होय तो कन्या व्यभिचारिणी होतीहै । जो कपडे ऊपर विषम १-३-५-७-९ आदि बिंदु पडैं तो पुत्र, सम पडैं तो कन्याका होना समझना ॥

अथ प्रथमर्तौ विशेषः ।

अथ प्रथमर्तौ अक्षतैरासनं कृत्वा तत्र तामुपविश्य पतिपुत्रवत्यः स्त्रियो हरिद्राकुंकुमगंधपुष्पस्रक्तांबूलादि तस्यै दत्त्वा दीपैर्नीराज्य सदीपालंकृते गृहे तां वासयेयुः सुवासिनीभ्यो गंधादिकं लवणमुद्गादि च दद्यात् ॥ अथ सर्वर्तुसाधारणनियमाः ॥ त्रिरात्रमस्पृश्या भूत्वा अभ्यंगांजनस्नानदिवास्वापाग्निस्पर्शदंतधावनमांसाशनसूर्याद्यवलोकान् भूमौ रेखाकरणं च वर्जयेदधः शयीत ॥ अंजलिना ताम्र-

लोहपात्रेण वा जलं न पिबेत् ॥ या खर्वपात्रेण जलं पिबति तस्याः खर्वः पुत्रः ॥ नखनिकृंतने कुनखी पुत्रः ॥ पर्णेन पाने उन्मत्त इति ॥

अब प्रथमरजोदर्शनके कृत्यको कहतेहैं। कि, पति और पुत्रवाली स्त्री चावलोंका आसन बनाकर और उसके ऊपर स्त्रीको बैठाकर और उसको हरदी, कुंकुम, गंध, पुष्प, माला, तांबूल आदि देकर और दीपकोंसे आरती करके दीपकसहित किसी सुंदर ग्रहके विषै उसे टिकावे। और सुवासिनी स्त्रियोंको गंधआदि, लवण आदि, मूंग आदिको दे। अब सब ऋतुकालोंके साधारण नियमोंको कहते हैं। तीन रात्र उस स्त्रीको कोई न छूवै वह स्त्री तैल आदिसे अभ्यंग, अंजन, स्नान, दिनमें सोना, अग्निका स्पर्श, दंतधावन, मांसका भक्षण, सूर्य-आदिका देखना, पृथ्वीमें रेखा (लकीर) करनी इनको वर्जदे और नीचे सोवै। अंजलि, तांबेके वा लोहेके पात्रसे जलको न पीवै। जो छोटे पात्रसे जल पीती है उसके खर्व (वामन) पुत्र होता है। नखके काटनेसे कुनखी, पत्तेमें जल पीनेसे उन्मत्त पुत्र होताहै ॥

अथ द्वितीयर्तौ नियमाः ।

द्वितीयादिषु ऋतुषु तु प्रवासगंधमाल्यादिधारणतांबूलगोरसाभक्ष्याभक्षणपीठाद्यारोहणं वर्जयेत् ॥ मृन्मये आयसे भूमौ वा भुंजीत ॥

द्वितीय आदि ऋतुओंमें नियम—परदेशमें, जाना, गंध माल्य आदिका धारण, तांबूल, गोरस, अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण, पीठ आदिपर बैठना इनको छोडदे। मट्टी वा लोहेके पात्र वा पृथ्वीमें भोजन करै ॥

अथ रजस्वलानैमित्तिकस्नाने ।

ग्रहणादिनिमित्तकस्नानप्राप्तौ नोदकमज्जनरूपं स्नानं किं तु पात्रांतरितजलेन स्नात्वा ॥ "न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ॥" एवं मृताशौचादिनिमित्तकस्नानप्राप्तावपि ॥

अब जो रजस्वला स्त्रीको कोई नैमित्तिक स्नान होय तो उसके विषयमें कहतेहैं। स्त्रीको ग्रहणआदिका नैमित्तिक स्नान करना होय तो जलमें गोता वा डूबकर स्नान नहीं करना किंतु पात्रान्तरित जलसे करना। और फिर स्नान करके न वस्त्रोंको निचोडै और न अन्य वस्त्रोंको धारणकरै ॥

अथ रजस्वलयोः स्पर्शादौ ।

सगोत्रयोर्योनिसंबंधिन्योर्वा ब्राह्मण्योः रजस्वलयोः परस्परं स्पर्शे उक्तरीत्या तदैव स्नानमात्रेण शुद्धिः ॥ बुद्ध्या स्पर्शे एकरात्रमुपवासः ॥ गोत्रादिसंबंधाभावे अबुद्ध्या स्पर्शे तस्मिन्दिने स्नात्वा न भुंजीत ॥ मत्या स्पर्शे तु आशुद्धेर्न भुंजीत ॥ भोजने तु शुद्ध्यनंतरं तावद्दिनसंख्ययोपवसेत् ॥ उपवासाशक्तौ तु तत्प्रत्याम्नायब्राह्मणभोजनादि कुर्यात ॥ सर्वत्र शुद्ध्युत्तरं पंचगव्याशनं ज्ञेयम् ॥ शूद्रीब्राह्मण्योः रजस्वलयोः स्पर्शे आशुद्धेरभोजनम् ॥ शुद्धौ कृच्छ्रप्रायश्चित्तं ब्राह्मण्याः ॥ शूद्यास्तु पादकृच्छ्रमात्रम् ॥

एक गोत्रकी हों वा जिनका आपसमें योनिसंबंध हो वा ब्राह्मणी हों उन रजस्वलाओंका आपसमें स्पर्श होजाय तो पूर्व कही रीतिके अनुसार स्नानमात्रसे शुद्धि होतीहै । और जो जानकर स्पर्श किया होय तो उपवास करै । गोत्रआदि संबंध नहो और अज्ञानसे स्पर्श होजाय तो उसीदिन स्नान करके भोजन न करै और जो जानकर स्पर्श करै तो शुद्ध होनेपर्यंत भोजन न करै । और जो भोजन करले तो शुद्धिसे पीछे जितनेदिन शेष होनेपर भोजन कियाहो उतनेही उपवास करै । और जो उपवास करनेकी शक्ति नहोय तो उसके बदलेमें ब्राह्मणोंको भोजन करादे । सर्वत्र शुद्धिसे पीछे पंचगव्यको पीवै । शूद्री और ब्राह्मणी ये दोनों रजस्वला आपसमें स्पर्श करलें तो शुद्धिपर्यंत भोजन नहीं करना । और शुद्धिसे पीछे ब्राह्मणी तो कृच्छ्रव्रत और शूद्री पादकृच्छ्रको करै ॥

अथ रजस्वलासूतिकयोश्चांडालादिस्पर्शे ।

रजस्वलायाः सूतिकाया वा चांडालस्पर्शे आशुद्धेर्न भोजनम् अतिकृच्छ्रं च ॥ अमत्या स्पर्शे प्राजापत्यम् ॥ दंडादिपरंपरया चांडालादिस्पर्शे स्नानमात्रम् ॥ भुंजानायाः स्पर्शे प्राजापत्यं द्वादशब्राह्मणभोजनं च ॥ मिताक्षरायां तु ॥ पतितांत्यजचांडालैः कामतः स्पर्शे आशुद्धेरभुक्त्वा शुद्ध्युत्तरं प्रथमेह्नि स्पर्शे त्र्यहमुपवासः ॥ द्वितीये द्व्यहम् ॥ तृतीये एकाहः ॥ अकामतस्तु आशुद्धेरभोजनमात्रम् ॥ एवं ग्रामकुक्कुटसूकरश्ववायसरजकादिस्पर्शेपि ॥ अशक्तौ तु स्नात्वा यावन्नक्षत्रदर्शनमभोजनम् ॥ भुंजानायाः श्वचांडालादिस्पर्शे आशुद्धेरभोजनं षड्रात्रं गोमूत्रयावकाहारः॥ अशक्तौ सुवर्णदानं विप्रभोजनं वा उच्छिष्टयो रजस्वलयोः स्पर्शे उच्छिष्टचांडालेन स्पर्शे वा कृच्छ्रेण शुद्धिः ॥ उच्छिष्टद्विजस्पर्शे रजस्वलाया त्र्यहमूर्ध्वोच्छिष्टे अधरोच्छिष्टे त्वेकाहमुपवास इत्युक्तम् ॥ उच्छिष्टशूद्रस्पर्श अधिकं कल्प्यम् ॥ पुष्पिण्याः सूतक्याद्यशुद्धनरस्पर्श आशुद्धेरभोजनं भोजने तु कृच्छ्रम् ॥ पंचनखद्विशफैकशफपशुस्पर्शे अंडजस्पर्शे चाशुद्धेरभोजनम् ॥ रजस्वलायाः श्वजंबूकगर्दभदंशे आशुद्धेरभोजनम् ॥ शुद्धौ पंचरात्रमुपवासः ॥ नाभेरूर्ध्वं दंशे दशरात्रं मूर्ध्नि दंशे विंशति रात्रम् ॥ भुंजाना रजस्वला रजस्वलां पश्यति चेदाशुद्धेरभोजनम् ॥ चांडालं पश्यति चेदुपवासत्रयमपि ॥ कमातश्चांडालं पश्यति चेत्प्राजापत्यम् ॥ रजस्वलायाः शवसूतिकाभ्यां स्पर्शे शुद्ध्यंते त्रिरात्रमुपवासः आशुद्धेरभोजनं च भोजने तु कृच्छ्रम् ॥ सर्वत्र ब्रह्मकूर्चविधिना पंचगव्याशनमुक्तमेव ॥ आशौचिभिः स्पर्शे स्नानात्प्राग्रजोदर्शने चतुर्थदिनपर्यंतमभोजनम् ॥ अशक्तौ तु सद्यः स्नात्वा भुंजीत ॥ एवं बंधुमरणश्रवणे स्नानात्प्राग्रजोदर्शनेपि ॥ तथा रजोदर्शनोत्तरं बंधुमरणश्रवणेपि शक्ताया आशुद्धेरभोजनमशक्तायाः सद्यःस्नानेन भोजनम् ॥ सर्वत्रास्पृश्यस्पर्शे अशक्तायाः स्नाने कृते भोजनम् ॥ शुद्ध्यंते अनशनप्रत्याम्नाय इति केचित् ॥

अब जो रजस्वला और सूतिका इनका चाण्डालके साथ स्पर्श होजाय तो उसका निर्णय कहतेहैं । रजस्वला और सूतिकाका चाण्डालके संग स्पर्श होनेपर शुद्धिपर्यंत भोजन नहीं करना और अतिकृच्छ्र व्रत करना । जो अज्ञानसे स्पर्श होय तो प्राजापत्यव्रत करना । दंड आदि परंपरासंबंध अर्थात् अपने हाथमें लगेहुए दंडसे जो चाण्डालका स्पर्श होजाय तो स्नानमात्रसे शुद्धि होजातीहै । भोजन करतीहुईको छूजाय तो प्राजापत्य और बारह (१२) ब्राह्मणोंको भोजन करावै । मिताक्षरामें तो यह लिखाहै कि, पतित, शूद्र, चाण्डाल इनसे जानकर स्पर्श होजाय तो शुद्धिपर्यंत भोजन नहीं करना । और शुद्धिसे पीछे तीन दिन उपवास करना । इसी प्रकार जो शुद्धिसे पीछे प्रथमदिनमें स्पर्श होय तो तीनदिन, दूसरे दिन दोदिन, तीसरेदिन एकदिन उपवास करना । और जो अज्ञानसे होजाय तो शुद्धिपर्यंत भोजनके न करनेमात्रसे शुद्धि होतीहै । इसीप्रकार ग्रामका मुर्गा, सूकर, कुत्ता, काग और धोबी आदिके स्पर्शमें भी समझना । और जो सामर्थ्य न होय तो स्नान करनेके पीछे नक्षत्रोंका जबतक दर्शन न होय तबतक भोजन नहीं करना । भोजन करतीहुई जो कुत्ता चाण्डालआदिसे छूजाय तो शुद्धितक भोजन नहीं करना । और छः रात गोमूत्र और यावक (जौके सत्तु) इनका आहार करै । और जो सामर्थ्य न होय तो सुवर्णका दान और ब्राह्मणको भोजन करादे । जो उच्छिष्टहुई रजस्वलाओंका आपसमें स्पर्श होजाय वा उच्छिष्ट चाण्डालआदिके साथ स्पर्श होजाय तो कृच्छ्रव्रतसे और उच्छिष्ट ब्राह्मणका स्पर्श रजस्वलाके ऊर्ध्व (मुखआदि) देशमें होय तो तीन दिन उपवाससे शुद्धि होतीहै । और जो अधोदेश (जंघाआदि) में स्पर्श होय तो एकदिन उपवास करना कहाहै । इसीप्रकार उच्छिष्ट शूद्रके साथ स्पर्श करनेमें अधिक प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी । रजस्वला स्त्री सूतकीआदि अशुद्ध मनुष्यके साथ स्पर्श करले तो शुद्धितक भोजन न करै, करले तो कृच्छ्रव्रतको करै । इसीप्रकार पांचनखवाले, दोखुरवाले (भैंस-आदि), एकशफ (अश्वआदि) पशुके साथ तथा अंडज (चिडिया) आदिके साथ स्पर्श करनेमें भी शुद्धितक भोजन नहीं करना । जो रजस्वलाको कुत्ता, गीदड, गधा ये काटखायँ तो शुद्धितक भोजन न करके अंतमें पांचरात उपवास करै । नाभिसे ऊपर काटनेमें दशरात, मस्तकपर काटनेमें बीसरात उपवास करना । भोजन करतीहुई रजस्वला जो अन्य रजस्वलाको देखले तो शुद्धितक न खाय और जो चाण्डालको देखले तो शुद्धितक न खाकर पीछे तीन उपवास भी करै । जो जानकर चाण्डालको देखै तो प्राजापत्य करै । रजस्वलाका स्पर्श शव (मुर्दा) और सूतिकाके साथ होजाय तो शुद्धिसे पीछे तीनरात उपवास करै । और शुद्धितक भोजन न करै, करले तो कृच्छ्र करै । सर्वत्र शुद्धिके अनंतर ब्रह्मकूर्च (सोलह कुशा) विधिसे पंचगव्यको पीना तो पूर्व कहही आये । अब जो सूतक लगनेसे पीछे रजोदर्शन होय तो उसका निर्णय कहतेहैं । सूतकियोंके साथ स्पर्श होनेके अनंतर स्नान करनेसे पूर्व रजोदर्शन होजाय तो चतुर्थदिनपर्यंत भोजन नहीं करना और जो सामर्थ्य न होय तो उसी समय स्नान करके भोजन करले । इसीप्रकार बंधुके मरणको सुनकर स्नानसे पहिले रजोदर्शन होजाय तथा रजोदर्शनसे पीछे बंधुका मरण सुनाजाय तो शक्ति होय तो शुद्धिपर्यंत भोजन नहीं करना और जो सामर्थ्य न होय तो तिसीसमय स्नान करके भोजन करना । यहां कोई यह कहतेहैं कि, अस्पृश्यका स्पर्श करके फिर जो शक्तिसे हीन स्त्रीका स्नान करके भोजन करनाहै वह शुद्धिके अंतमें जो अनशन व्रतहै उसका प्रत्याम्नाय (स्थानापन्न) बदला है शुद्धितक भोजन न करनेका नहीं ॥

अथ रजसि जननमरणयोः प्रथमदिननिर्णयः ।

रजस्वलायाः प्रथमदिननिर्णयस्तु रात्रेः पूर्वभागद्वये पूर्वं दिनं प्रथमम् ॥ तृतीयभागे रजोदर्शने उत्तरदिनं प्रथमम् ॥ यद्वा अर्धरात्रात्पूर्वं पूर्वदिनं प्रथमम् ॥ अर्धरात्रादूर्ध्वमुत्तरदिनं प्रथमम् ॥ एवं जननमरणाशौचेपि ज्ञेयम् ॥

अब रजोदर्शन और जन्ममरणके दिनका निर्णय करते हैं । रजस्वलास्त्रीके रजका दर्शन रात्रिके पूर्वले दो भागोंमें होय तो पहिला दिन प्रथमदिन और जो तीसरे भागमें होय तो दूसरा दिन प्रथम दिन समझना । अथवा अर्द्धरात्रिसे पूर्व होय तो पूर्वदिन प्रथमदिन और जो अर्द्धरात्रिसे पीछे होय तो दूसरा दिन प्रथमदिन होताहै । इसी प्रकार जन्मसूतक और मरण सूतकमें भी समझना ॥

अथ अष्टादशदिनादर्वाक् पुना रजोदर्शने ।

यस्याः प्रायेण मासे रजोदर्शनं तस्याः सप्तदशदिनपर्यंतं पुना रजोदर्शने स्नानाच्छुद्धिः ॥ अष्टादशाहे एकरात्रमशुचित्वम् ॥ एकोनविंशे द्विरात्रम् ॥ विंशतिप्रभृतित्रिरात्रम् ॥ यस्याः प्रायः पक्षेपक्षे रजोदर्शनं तस्याः दशदिनपर्यंतं स्नानाच्छुद्धिः ॥ एकादशाहे रजोदृष्टौ एकाहः ॥ द्वादशे द्विरात्रमूर्ध्वं त्रिरात्रम् ॥

अब अठारहमें दिनसे पूर्व फिर रजोदर्शन होजाय तो उसका निर्णय कहतेहैं । जिस स्त्रीका बहुधा मासभरमें रजोदर्शन होताहो उसका सतरहमें दिनतक फिर जो रज होजाय तो स्नानसे शुद्धि, अठारहमें दिन होय तो एकरात, उन्नीसमें दिन होय दो रात, विंशति आदि दिनमें होय तो तीनरातमें शुद्धि होतीहै । और जिसका प्रायः पक्षभरमेंही रजोदर्शन होताहो उसका दशदिनतक, फिर होजाय तो स्नानसे ग्यारहमें दिन एकदिन, बारहमें दिन दोरात्र और इससे ऊपर तीन रातमें शुद्धि होतीहै ॥

अथ रोगजे रजसि ।

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं प्रतिवर्त्तते ॥ तत्र नास्पृश्यत्वं किं तु रजोनिवृत्तिपर्यंतं पाकदैवपित्र्यकर्मानधिकारमात्रम् ॥

अब रोगसे रजोदर्शन होय तो उसका निर्णय करतेहैं । जिन स्त्रियोंका रजोदर्शन किसीरोगसे प्रतिदिन होताहो उसके स्पर्शका दोष नहीं होता । किंतु, जबतक रजकी निवृत्ति हो तबतक पाक, दैव और पित्र्यकर्म इनको न करै ॥

अथ रोगजमध्ये मासजे ।

रोगजे वर्तमानेपि मासजं रजो निर्यात्येव तत्र सावधाना सती त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ यत्तु गर्भिण्याः प्राक् प्रसवात् रोगजं रजोदर्शनं तत्र त्रिदिनमेवाशौचम् ॥

अब जो रोगसे पैदाहुए रजोदर्शनमें प्रतिमास होनेवाला रजोदर्शन होय तो उसको कहतेहैं । रोगजरजोदर्शनके होते भी मासज रज निकलताही है । उसमें सावधान होकर स्त्री

तीनरात अशुद्ध रहै । और जो गर्भिणीके प्रसव (संतान होना) से पूर्व रोगजरजोदर्शन होय तो उसको तीन दिनही आशौच होताहै ।

अथ सूतिकाया रजसि ।

प्रसूतिकायाः किंचिदूनमासात्पूर्वं रजोनिवृत्तौ स्नानमात्रं पूर्णे मासे त्रिरात्रम् ॥

अब सूतिका स्त्रीके रजके विषै कहतेहैं । कि, जो सूतिकाके रजकी निवृत्ति कुछ कम महीनेसे पूर्वही होजाय तो स्नानमात्रसे और जो महीनातक होय तो तीनरात अशुद्ध होतीहै ॥

अथ उच्छिष्टाया रजसि ।

उच्छिष्टा स्त्री यदि रजस्वला भवति तदा शुद्ध्यंते ऽ्यहमधरोच्छिष्टे त्वेकाहमुपवासः ॥

अब उच्छिष्टके रजोदर्शनके विषै कहतेहैं । जो उच्छिष्ट स्त्री रजस्वला होजाय तो शुद्धिके पीछे तीनदिन जो कटिसे नीचे उच्छिष्ट हुई रजस्वला होय तो एकरात्र उपवास करना ॥

अथ रजोदर्शनाज्ञाने ।

अविज्ञातरजोदोषा यदि गृहे व्यवहरति तदा तया स्पृष्टं गोरसमृद्भांडादिकं जलादिकं च न त्याज्यम् ॥ सूतकवज्ज्ञानकालमारभ्यैव दोषात् ॥ अशुचित्वं तु ज्ञानदिनमारभ्य त्रिदिनमिति केचित् ॥ अन्ये तु द्वितीयादिदिने रजसि ज्ञाते सूतकवच्छेषदिनैरेव शुद्धिरित्याहुः ॥ एवं त्रिदिनं स्थित्वा चतुर्थेहनि षष्टिवारं मृत्तिकाशौचेन मलं प्रक्षाल्य दन्तधावनपूर्वकं संगवकाले स्नायात् ॥ सूर्योदयात्प्राक् स्नानं त्वनाचारः ॥

अब जो रजोदर्शन होगया और अज्ञानसे काम करतीरहै तो उसका निर्णय कहतेहैं । कि, जो रजोदर्शनके न जाननेसे गृहके कार्यको करतीरहै तो उसके छुए दधि, दुग्ध आदि मट्टीके पात्रआदि तथा जल आदि ये दूषित नहींहोते । क्योंकि, सूतककी समान उस दोषकी प्रवृत्ति जाननेके समयसे ग्रहण की जातीहै । कोई यह कहतेहैं कि, ज्ञानके दिनसे लेकर तीनदिन अशुद्धि रहतीहै । और कोई यह कहतेहैं कि, द्वितीय आदिदिनमें रजोदर्शन जाना होय तो सूतककी समान शेष दिनोंसे ही शुद्धि होजातीहै । इस प्रकार तीनदिन अशुद्ध रहकर चौथे दिन उस मलको साठवार मट्टीसे धोकर दंतधावनको करके संगवकालमें (मध्याह्न) स्नानको करै । सूर्योदयसे पूर्व स्नान करना यह आचार विरुद्ध है ।

अथ चतुर्थदिने कार्याकार्ये ।

चतुर्थेहनि रजोनिवृत्तौ भर्तृशुश्रूषणादौ शुद्धिः ॥ पंचमेहनि दैवपित्र्यकर्मणि शुद्धिः ॥ कानि चिद्दिनानि रजो यद्यनुवर्तेत तदा तन्निवृत्तिपर्यंतं दैवपित्र्ययोर्न शुद्धिः ॥ रोगेण त्वनुवृत्तौ प्रागुक्तम् ॥ केचित्तु चतुर्थदिवसे दर्शेष्ट्यादिश्रौतकर्माणि कर्तव्यानीत्याहुः ॥ अपरे तु इतरदिनापेक्षया चतुर्थदिनस्यैवानुकूलत्वे तत्रैव गर्भाधानं दुष्टरजोदर्शनशांतिश्च कर्तव्या ॥

अब चौथे दिनके कार्य अकार्यको कहतेहैं । चौथेदिन रजकी निवृत्ति होनेपर पतिकी शुश्रूषा आदिके लिये शुद्धि और पांचमें दिन दैव पित्र्य (श्राद्ध) कर्मके लिये शुद्धि होती है। और जो चौथे दिनके अनंतर जो कितने भी रजका प्रस्रवण बनारहै तो उसके निवृत्त होजानेतक दैव और पित्र्य कर्मके लिये शुद्धि नहीं होती । और जो रोगसे प्रस्रवण होय तो उसके विषै तो पूर्व कहआयेहैं । और कोई यह कहतेहैं कि, चौथेदिन दर्श, इष्टि आदि श्रौत कर्म करने । और कोई यह कहतेहैं कि, अन्यदिनकी अपेक्षासे जो चौथा दिनही मुहूर्त आदिसे शुभ होय तो उसीदिन गर्भाधान और दुष्टरजोदर्शनकी शांति करनी ॥

अथ महासंकटे चतुर्थदिने ग्राह्याग्राह्ये ।

महासंकटे श्रीसूक्तहोमपूर्वकाभिषेकोपनयनादिकमपि चतुर्थेहनि कर्तव्यमित्याहुः ॥ अयं चतुर्थेहन्यधिकारनिर्णयः सर्वथा रजोनिवृत्तावेव ज्ञातव्यः ॥

अब कोई महासंकट होय तो चौथेदिनके ग्राह्य अग्राह्य कर्मको कहतेहैं । महासंकटके विषै श्रीसूक्त होमपूर्वक अभिषेक और उपनयन आदि भी चौथेदिन करने । ये चौथेदिनके अधिकारका निर्णय तबही समझना कि, जब सर्वथा रजकी निवृत्ति होजाय ॥

अथातुरायाः स्नानविधिः ।

यदि ज्वरादिभिरातुरा चतुर्थेहनि स्नातुमशक्ता तदा तामन्या नारी नरो वा दशवारं स्पृष्ट्वा स्नायादाचमेच्च ॥ प्रतिस्नानमातुरस्य वस्त्रमन्यदन्यत्परिधापनीयम् ॥ अन्ते स्पृष्टानां सर्ववस्त्राणां त्याग आर्द्रवस्त्रादिव्यवधानेन शुद्धवस्त्रग्रहणांते ब्राह्मणभोजनात्पुण्याहवाचनाच्च शुद्धिः ॥ "सर्वेषामप्यातुराणामेवं शुद्धिर्विधीयते" एवं शुद्ध्यंते शुभदिने दुष्टरजोदर्शनप्रयुक्तां शौनकोक्तां भुवनेश्वरीशांतिं ग्रन्थांतरोक्तां वा शांतिं विधाय गर्भाधानं कार्यम् ॥

अब जो स्त्री दुःखी होय तो उसके स्नानकी विधिको कहतेहैं । जो ज्वर आदिसे पीडित स्त्री चौथेदिन स्नान न करसकै तो उसको पुरुष वा स्त्री दशबार छूकर प्रतिस्पर्शमें स्नान और आचमन करै । और स्नान स्नानपर उस आतुरको अन्य २ वस्त्र पहिरावे । अंतमें छूवेहुए वस्त्रोंको त्यागदे । आर्द्रवस्त्र आदिके ग्रहणसे शुद्धवस्त्रके ग्रहण किये पीछे ब्राह्मणभोजन और पुण्याहवाचनसे शुद्धि होतीहै सब आतुरोंकी इसीप्रकार शुद्धि कहीहै । इसप्रकार शुद्धिके पीछे शुभदिन दुष्टरजोदर्शनकी शांतिकेलिये शौनककी कहीहुई जो भुवनेश्वरी शांति है उसको ग्रंथांतरकी शांतिकरके गर्भाधानको करै ॥

अथ ग्रहणकाले रजसि ।

सूर्यग्रहे रजोदर्शने हैमं सूर्यबिंबं तन्नक्षत्ररूपं च सीसेन राहुं च कृत्वा संपूज्यार्कसमिद्भिः सूर्यं नक्षत्रेशं प्लक्षै राहुं दूर्वाभिर्हुत्वाज्यचरुतिलैश्च जुहुयात् ॥ चन्द्रग्रहे राजतं चन्द्रबिंबं पालाश्यश्च समिध इति विशेषः ॥ ग्रहणव्यतीपातादिबहुतरदोषे रजोदर्शने तु द्वितीयादिरजोदर्शने शांतिपूर्वकं गर्भाधानं कार्यम् ॥

अब जो ग्रहणसमयमें रजोदर्शन होय तो उसका निर्णय कहतेहैं । जो सूर्यग्रहणके विषै रजोदर्शन होय तो सूर्यका सुवर्णका विम्ब वा उसके नक्षत्ररूप बिम्बको और सीसेका राहु बनाकर उनकी पूजा करके आककी लकडियोंसे सूर्य और नक्षत्रको और पिलखनकी लकडियोंमें राहुके निमित्त आज्य और चरु तिल इनसे हवन करै । और चंद्रमाके ग्रहणमें चांदीका चंद्रमाका विम्ब और पलाशकी समिधा यह विशेष बात है । ग्रहण और व्यतीपातआदि बहुतसे दोष होनेपर रजोदर्शन होय तो शांतिपूर्वक गर्भाधान करना ॥

अथ गर्भाधाने अस्तादिविचारः ।

गर्भाधाने गुरुशुक्रास्ताधिकमासादिदोषो नास्ति ॥ यदि तु प्रथमरजोदर्शने शांतिर्न कृता द्वितीयादिरजोदर्शने शुक्रास्तादिदोषप्रसक्तिस्तदा निमित्तानन्तरमेव ॥ यत्र नैमित्तिकानुष्ठानं तत्रास्तादिदोषाभावो मुख्यकालातिक्रमे तु अस्तादिदोषोस्त्येवेति सामान्यनिर्णयानुसारेण ऋतुशान्तिरस्तादौ न कार्या ॥ तदनुरोधेन गर्भाधानं च न कार्यमिति भाति ॥ शांतिश्च सग्रहमखैव कार्या ॥

अब गर्भाधानके विषे अस्तआदिका विचार कहतेहैं । गर्भाधानके विषै गुरु, शुक्रके अस्त और अधिकमास आदिका दोष नहीं । जो प्रथम रजोदर्शनके दोषकी शांति न की हो और द्वितीय रजोदर्शनमें अस्तआदि हो तो निमित्त (कारणसे पाया कर्म) के अनंतर ही गर्भाधान करना । जहां नैमित्तिक कर्मका अनुष्ठान करलिया हो वहां अस्तआदिका दोष नहीं होता । और जो मुख्य काल व्यतीत होजाय तो अस्तादिका दोष होताहै। सामान्य निर्णयके अनुसार ऋतुकी शांति अस्तआदि होनेपर न करनी और उसके अनुरोधसे गर्भाधान भी न करना । और शांति ग्रहमखसहित करनी ॥

अथ भुवनेश्वरीशांतिः ।

शांतौ भुवनेश्वरी प्रधानदेवता इंद्रेंद्राण्यौ पार्श्वदेवते॥ एवं कलशत्रयेपि प्रतिमात्रयस्थापनम् ॥ ग्रहाणामर्कादिसमिधश्चरुराज्यं च द्रव्यम् ॥ प्रधानदेवताया दूर्वास्तिलमिश्रगोधूमाः पायसमाज्यं चेति हविश्चतुष्टयम् ॥ एवं पार्श्वदेवतयोरपि ॥ पायसस्य स्थंडिलाग्नौ श्रपणमेव कार्यं न तु ग्रहसिद्धस्य ग्रहणम् ॥ ग्रहहोमार्थं ग्रहसिद्धचरुः ॥ पात्रासादनकाले पायसश्रपणार्थमेका स्थाली ग्रहसिद्धान्नसंस्कारार्थमपरेति स्थालीद्वयम् ॥ अनेककर्तृकाज्यहोमप्रसक्तावनेकस्रुवासादनम् ॥ आज्येन सह हविस्त्रयस्य गृहसिद्धान्नस्य च पर्यग्निकरणम् ॥ स्रुवादिसंमार्गांते ग्रहसिद्धान्नमासादितचरुस्थाल्यामादायाग्नावधिश्रित्याभिघारणादिबर्हिरासादनांतं कुर्यात्ततः पायसाभिघारणाद्यासादनांतम् ॥ अन्वाधाने हविस्त्यागे च प्रधानदेवताया भुवनेश्वरीपदेन सवितृपदेन वोच्चारः ॥ गायत्र्या होमोक्तेः ॥ आज्यभागांते यजमानोन्वाधानानुसारेण प्रतिदैवतमष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तमर्कादिजातीयसमिच्चर्वाज्यात्मकं हविस्त्रयं सूर्याय सोमाय भौमाय बुधाय बृहस्पतये शुक्राय शनये

राहवे केतवे न मम ॥ अष्टाष्टसंख्यापर्याप्तं तद्धविस्त्रयं तत्तदधिदेवताप्रत्यधिदेवताभ्यो न मम ॥ चतुश्चतुःसंख्यापर्याप्तं तद्धविस्त्रयं विनायकादिभ्यः क्रतुसंरक्षणक्रतुसाद्गुण्यदेवताभ्यो न मम ॥ अष्टोत्तरशतसंख्याकाहुतिपर्याप्तं दूर्वातिलगोधूमपायसाज्येति हविश्चतुष्टयं भुवनेश्वर्यै न मम ॥ यद्वा सवित्रे न मम ॥ एवमष्टाविंशतिसंख्यापर्याप्तं तच्चतुष्टयमिंद्रेंद्राणीभ्यां न ममेति त्यागं कुर्यात् ॥ बहुतरदोषेऽष्टोत्तरसहस्रसंख्याको होमो भुवनेश्वर्या इंद्रेंद्राण्योरष्टोत्तरसंख्याक इंद्रेंद्राण्योर्होमः कृताकृतः ॥ होमांते ग्रहादिबलयः भुवनेश्वर्यादिबलयोऽभिषेकश्चेति संक्षेपः ॥ समंत्रकः सविस्तरः प्रयोगः स्वस्वशाखीयानुसारेण ज्ञेयः ॥

अब भुवनेश्वरी शांतिको कहतेहैं । शांतिके विषै भुवनेश्वरी प्रधानदेवता और इंद्र इंद्राणी उसके पार्श्ववर्त्ती (अंग) देवताहैं । इसीप्रकार तीन कलशोंके ऊपर तीन प्रतिमाओंका स्थापन करना अर्थात् मध्यमें भुवनेश्वरी और दोनोंतरफ इंद्र इंद्राणीका स्थापन करना । ग्रहोंकी सामग्री अर्कआदिकी समिधा, चरु और घी ये द्रव्य । तथा प्रधानदेवताकी दूब, तिलमिले गेहूं, खीर और घी इन चारोंका हवि होताहै । इसीप्रकार पार्श्वदेवताओंकी भी सामग्री समझनी । खीरको स्थंडिलकी अग्निपर पकावै घरमें बनीहुई खीरका ग्रहण न करै । ग्रहोंके होमके लिये गृहमें सिद्धहुआ चरु समझना । जब पात्रोंका आसादन (स्थापन) कियाजाय तब खीरके पकानेके लिये एक स्थाली और दूसरी गृहमें सिद्धहुए अन्नके संस्कारकेलिये इस प्रकार दो स्थाली रखनी । और जो अनेक होममें आहुति दें तो, अनेक स्रुवा रखने । आज्यसहित तीनों हवि और गृहसिद्ध अन्नका पर्यग्निकरण (प्रदक्षिणा) करै । स्रुवआदिके संमार्ग किये पीछे गृहमें पकायेहुए अन्नको आसादन कीहुई चरुकी स्थालीमें लेकर उसका अग्निपर अधिश्रयण करकै अभिघारण (सेचन) से लेकर बर्हिआसादनपर्यंत कर्मको करै । फिर पायसाभिघारणसे आसादनपर्यंत कर्मको करै । अन्वाधान और हविके त्यागमें प्रधान देवताका उच्चारण भुवनेश्वरी वा सविता इस पदसे करै । आज्यभाग (घीकी आहुति) के अंतमें यजमान अन्वाधानके अनुसार देवताकेलिये अष्टाविंशति (२८) आहुति जितनेसे दीजायँ उतना समिध, चरु और आज्य ये तीन हवि बनावै 'सूर्याय, सोमाय, भौमाय , बुधाय, बृहस्पतये, शुक्राय, शनये, राहवे, केतवे' इन चतुर्थ्यंत नामोंके अंतमें 'न मम' ऐसा पढकर दे । इसीप्रकार तिसतिस देवताको ' न मम ' ऐसा पढकर उस हविकी आठ २ आहुति विनायकआदिको तीनतीन आहुति (विनायकादिभ्यः क्रतुसंरक्षण क्रतुसाद्गुण्यदेवताभ्यो न मम' ऐसा पढकर) एकसौ आठ (१०८) आहुति भुवनेश्वरीको दूर्वा, तिल, गोधूम, पायस, आज्य इन चार हविकी 'भुवनेश्वर्यै न मम' इसमंत्रसे दे । इसीप्रकार अट्ठाईस (२८) आहुति उस हविकी 'इंद्रेंद्राणीभ्यां न मम' इस मंत्रसे इंद्रइंद्राणीको दे। जो बहुतसा दोष होय तो अष्टोत्तरसहस्र (१००८) आहुति भुवनेश्वरी और इंद्र इंद्राणीको दे। इंद्र और इंद्राणीका होम कृताकृत अर्थात् करनाभी नहीं भी करना। होमकिये पीछे भुवनेश्वरी आदिको बलि और अभिषेक अन्यग्रंथसे समझने । और मंत्र और विस्तारसहित पूजाविधि तो अपनी २ शाखाओंके अनुसार समझनी ॥

अथ शात्यादिस्मार्तकर्मानुष्ठानक्रमः ।

"संकल्पः स्वस्तिवाग्विप्रवरणं भूतनिःसृतिः ॥ पंचगव्यैर्भूमिशुद्धिर्मुख्यदैवतपूजनम् ॥ १ ॥ अग्निप्रतिष्ठासूर्यादिग्रहस्थापनपूजनम् ॥ देवतान्वाहितिः पात्रासादनं हविषां कृतिः ॥ २ ॥ यथाक्रमं त्यागहोमाविति पौर्वांगकः क्रमः ॥ पूजास्विष्टं नवाहुत्या बलिः पूर्णाहुतिस्तथा ॥ ३ ॥ पूर्णपात्रविमोकाद्यग्न्यर्चनांतेभिषेचनम् ॥ मानस्तोकेति भूतिश्च देवपूजाविसर्जने ॥ ४ ॥ श्रेयोग्रहो दक्षिणादिदानं कर्मेश्वरार्पणम् ॥ क्रमोयमुत्तरांगानां प्रायः स्मार्तेष्विति स्थितिः " ॥ ५ ॥ एवं मदनरत्नोक्ता बौधायनोक्ता च शांतिः कौस्तुभे द्रष्टव्या ॥ प्राग्रजोदर्शनात् पत्नीगमने ब्रह्महत्यादिदोषोक्तेः किंचित्प्रायश्चित्तं विधेयमिति भाति ॥

अब शांति आदि स्मार्तकमके अनुष्ठानके कर्मको कहतेहैं । संकल्प, स्वस्तिवाचन, ब्राह्मणवरण, भूतनिस्सारण, पंचगव्योंसे पृथ्वीकी शुद्धि, मुख्यदेवताका पूजन ॥ १ ॥ अग्निकी प्रतिष्ठा, सूर्य आदि ग्रहोंका स्थापन और पूजन, देवताका अन्वाधान, पात्रोंका आसादन, हविका बनाना ॥ २ ॥ क्रमपूर्वक होम और त्याग होय तो शांतिके पूर्वांगरूप कर्मका क्रमहै और पूजा नौ आहुतियोंसे स्विष्टकृत् होम, बलि, पूर्णाहुति ॥ ३ ॥ और पूर्णपात्रके विमोकसे अग्नि पूजन पर्यंत कर्म, अभिषेक और देवपूजा विसर्जन ॥ ४ ॥ श्रेयोग्रह, दक्षिणा आदिका दान कर्मको ईश्वरके अर्पण करना । यह स्मार्तकर्मोंके उत्तरागका क्रम है ॥ ५ ॥ इसीप्रकार मदनरत्न और बौधायनकी शान्ति कौस्तुभग्रंथमें समझनी । रजोदर्शनसे पूर्व स्त्रीके साथ गमन करनेमें ब्रह्महत्या आदि दोष कहाहै, इससे कुछ प्रायश्चित्त करना ॥

अथ ऋतुकालनिर्णयः । ऋतौ गमनागमनविचारस्तदपवादश्च ।

ऋतौ तु गमनमावश्यकम् ॥ अन्यथा भ्रूणहत्यादोषः ॥ अयं च मनसि कामे सति द्वेषादिना स्त्रियमनुपगच्छतो ज्ञेयः ॥ विरक्तस्य न कोपि दोष इति श्रीभागवते 'लोके व्यवाया०' इति पद्ये टीकायां च स्पष्टम् ॥ ऋतुकालस्तु रजोदर्शनादिनमारभ्य षोडशदिनपर्यंतं ज्ञेयः ॥ तत्र प्रथमदिनचतुष्टयैकादशत्रयोदशादिनेषु गमनं वर्ज्यम् ॥ अवशिष्टदिनेषु पुत्रार्थिना समदिने कन्यार्थिना विषमदिने गमनं कार्यम् ॥ तत्राप्युत्तरोत्तररात्रीणां प्राशस्त्यम् ॥ एकस्यां रात्रौ सकृदेव गमनं कार्यम् ॥ सकृद्गमनं च युग्मासु सर्वासु आवश्यकमिति केचित् ॥ अन्यकाले प्रतिबंधादिना गमनासंभवे श्राद्धैकादश्यादिदिनेपि ऋतुगमनं कार्यमिति केचित् ॥

अब ऋतुकालका निर्णय और गमन अगमनका विचार और उसका अपवाद कहते हैं । ऋतुमें गमन अवश्य करना न करै तो भ्रूणहत्याका दोष होताहै । यह दोष उसको होताहै कि, जो कामके होनेपर द्वेषआदिसे स्त्रीका गमन न करै । और विरक्तको कोई दोष नहीं होता । यह बात भागवतके 'लोकेव्यवाया०' इस श्लोकमें और इसकी टीकामें स्पष्ट लिखीहै । ऋतुकाल रजोदर्शनके दिनसे लेकर सोलह दिनपर्यंत होताहै । तिसमें पहिले चारदिन, ग्या-

रह और तेरहमें दिनमें गमनको वर्ज दे । बाकीके दिनोंमें पुत्रका अभिलाषी समदिन (६-८-१० आदि) और कन्याका अभिलाषी विषम दिनोंमें गमन करै। इनमें भी उत्तरोत्तर रात्रि उत्तम कहीहैं अर्थात् छठीसे आठवीं इत्यादि । कोई तो यह कहतेहैं कि, एकबार गमन तो सब युग्म रात्रियोंमें अवश्य करै और कोई यह कहतेहैं कि, अन्यकालमें प्रतिबन्ध आदिसे गमन न होसकै तो श्राद्ध और एकादशीके दिन भी गमन करले ॥

अथ अनृतौ गमनविचारः।

स्त्रीणां वरमनुस्मरन् पत्नीच्छयानृतावपि गच्छन्न दोषभाक् किं तु ब्रह्मचर्यहानिमात्रम् ॥ "ऋतौ गच्छति यो भार्यामनृतौ नैव गच्छति ॥ यावज्जीवं ब्रह्मचारी मुनिभिः परिकीर्तितः ॥

अब ऋतुसे भिन्न कालमें गमनको कहतेहैं। स्त्रियोंकी प्रसन्नता करनेकी इच्छासे जो स्त्रीकी इच्छासे ऋतुसे भिन्नकालमें भी गमन करले तो दोष नहीं होता, किन्तु ब्रह्मचर्यकी हानि होतीहै । क्योंकि, यह वचन है कि, जो मनुष्य ऋतुमें स्त्रीसे गमन करै और ऋतुसे अतिरिक्त कालमें न करे तो वह मुनियोंने यावज्जीव ब्रह्मचारी कहाहै ॥

अथ स्त्रीगमने निषिद्धकालः ।

अष्टमीचतुर्दशीपौर्णिमाऽमावास्यासूर्यसंक्रांतिवैधृतिव्यतीपातपरिघपूर्वदलविष्टिसन्ध्यासु मातापित्रोर्मृतदिने श्राद्धतत्प्राग्दिने जन्मनक्षत्रे दिवा च स्त्रीगमनं वर्ज्यम् ॥

अब स्त्रीके गमन करनेमें निषिद्ध कालको कहतेहैं । अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, सूर्यकी संक्रांति, व्यतीपात, वैधृति, परिघकी पहिली साठ घडी, भद्रा, तीनों संध्या, मातापिताका मरणदिन, श्राद्ध और उससे पहिला दिन जन्मनक्षत्र और दिन इनमें स्त्रीसे गमन न करै ॥

अथ गर्भाधानकालः ।

चतुर्थीषष्ठीचतुर्दश्यष्टमीपंचदशीरहितास्तिथयः प्रशस्ताः चन्द्रबुधगुरुशुक्रवाराः शुभाः ॥ मूलमघारेवतीज्येष्ठानक्षत्राणि वर्ज्यानि ॥ भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषापूर्वात्रयविशाखा मध्यमानि ॥ शेषाणि शुभानि ॥ सर्वकार्येषु गोचरे चन्द्रबलमावश्यकम्॥

अब गर्भाधानके कालको कहतेहैं । चतुर्थी, षष्ठी, चतुर्दशी, अष्टमी और पूर्णिमा इनसे भिन्न तिथि, चंद्र, बुध और शुक्रवार ये शुभहैं । मूल, मघा, अश्विनी, रेवती, ज्येष्ठा ये नक्षत्र वर्जे देने । भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा और विशाखा ये मध्यमहैं । और शेष नक्षत्र सब उत्तमहैं । सब कार्योंमें गोचर चन्द्रबल अवश्य देखना ॥

अथ चन्द्रबलविचारः ।

तद्यथा ॥ "चन्द्रोन्नमधनं सौख्यं रोगं कार्यक्षतिं श्रियम् ॥ स्त्रियं मृत्युं नृपभयं सुखमायं व्ययं क्रमात् ॥ १ ॥ स्थानेषु द्वादशस्वेतज्जन्मराशेः प्रयच्छति ॥ शुक्लपक्षे शशी श्रेष्ठो द्विपंचनवमेष्वपि ॥ २ ॥" अथानेकभार्यस्य ऋतुयौगपद्ये विवा-

हक्रमेण ऋतुक्रमेण वा गर्भाधानम् ॥ अथ ऋतावप्यगमने दोषापवादः ॥ "व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु ॥ वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणीम् ॥ कन्यासूं बहुपुत्रां च आगच्छन्नैव दोषभाक् ॥

अब चन्द्रबलके विचारको कहतेहैं । जन्मराशिसे बारह स्थानोंका चन्द्रमा क्रमसे अन्न, धन नाश, सुख, रोग, कार्यहानि, लक्ष्मी, स्त्री,मृत्यु,राजासे भय, सुख, आय और व्यय । और शुक्लपक्षमें चन्द्रमा दूसरे, पांचमें, नौमें, स्थानका भी शुभ होताहै । अब जिसके अनेक स्त्री हों और उसको एककालमें ही ऋतु आनपडै तो विवाह वा ऋतुक्रमसे गर्भाधान करना । अब ऋतुकालमें भी गमन न करनेमें दोषका अपवाद कहतेहैं । रोगी वा बंधनमें पडाहो, परदेश और पर्वोंके विषै, जो स्त्री वृद्ध वा वंध्या, व्यभिचारिणी, जिसकी सन्तान मरगई हो, जो ऋतुसे न होती हो, जिसके कन्या होतीहों, बहुतसे जिसके पुत्रहों ऐसी स्त्रीसे गमन न करता हुआ भी दोषभागी नहीं होता ॥

अथ गर्भाधाने औपासनम् ।

तत्र प्रथमर्तुगमनं गर्भाधानहोमं गृह्याग्नौ कृत्वा कार्यं द्वितीयादिकऋतुगमने च न होमादिकम् ॥ येषां सूत्रे होमो नोक्तस्तैर्होमवर्ज्यमन्त्रपाठादिरूपो गर्भाधानसंस्कारः प्रथमगमने कार्यः ॥ आहिताग्नेरर्धाधानिनोऽनाहिताग्नेश्चौपासनाग्निसिद्धिसत्त्वे तत्रैव होमः ॥

अब गर्भाधानके विषै औपासन अग्निको कहतेहैं । तहां प्रथमऋतुमें गमनरूप जो गर्भाधान है वह गृह्याग्निमें होम किये पीछे करना । द्वितीय आदि ऋतुमें गमनकरनेके विषै तो होमआदि कर्म नहीं होता । जिनके सूत्रमें होम नहीं कहा उनको तो होमसे रहित मंत्रपाठआदिरूप गर्भाधानसंस्कार प्रथमगमनमें करना चाहिये । अग्निहोत्री, जिसने अर्द्ध अग्निका आधान किया हो और जो अग्निहोत्री न हो उनकोजो औपासन अग्नि होय तो उसमेंही होम करना ॥

अथ गृह्याग्निविच्छेदप्रायश्चित्तम् ।

औपासनाग्निविच्छेदे द्वादशदिनपर्यंतमयाश्चेत्याज्याहुत्या तत ऊर्ध्वं प्रायश्चित्तपूर्वकं पुनः संधानविधिनाग्निमुत्पाद्य तत्र कार्यः ॥ तत्र प्रत्यब्दं प्राजापत्यकृच्छ्रप्रायश्चित्तम् ॥ तत्रेत्थं संकल्पः ॥ मम गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावंतं कालं गृह्याग्निविच्छेदजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावदब्दपर्यंतं प्रत्यब्दमेकैककृच्छ्रान् यथाशक्ति तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतरजतनिष्कनिष्कार्धनिष्कपादनिष्कपादार्धान्यतमद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये ॥ तथा एतावद्दिनेषु गृह्याग्निविच्छेदेन लुप्तसायंप्रातरौपासनहोमद्रव्यं लुप्तदर्शपौर्णमासस्थालीपाकादिकर्मपर्याप्तव्रीह्याद्याज्यद्रव्यं च तन्निष्क्रयं वा दातुमहमुत्सृजे ॥ कृच्छ्रप्रत्याम्नायांतरचिकीर्षायां तथोहः कार्यः ॥ अशीतिगुंजात्मको निष्कपादः ॥ अयं चतुर्गुणितो निष्कः ॥ एवं संकल्प्य विच्छिन्नस्य गृहाग्नेः पुनः संधानं करिष्य इति संकल्पपूर्वकं स्वस्वसूत्रानुसारेण गृह्याग्निं संसाधयेत् ॥

अब गृह्याग्निका विच्छेद होजाय तो उसका प्रायश्चित्त कहतेहैं । औपासन अग्निका विच्छेद होय तो बारहदिनतक 'अयाश्च०' इत्यादिमंत्रसे घीका होम करके फिर उससे पीछे प्रायश्चित्तपूर्वक पुनःसंधान विधिसे अग्निको पैदाकरके उसमें ही होम करना । अब उसके प्रतिवर्ष करने योग्य प्राजापत्यकृच्छ्ररूप प्रायश्चित्तको कहतेहैं । उसका संकल्प इसप्रकार है । मेरी गृह्याग्निके विच्छेदके दिनसे लेकर इतने कालतक गृह्याग्निके विच्छेदसे उत्पन्नहुआ जो दोष उसके परिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिकेलिये इतने वर्षपर्यंत प्रतिवर्ष एक २ कृच्छ्र और जो वह न होसकै तो उसके प्रत्याम्नायरूप गौके मूल्यभूत चांदी वा निष्क (तोला) भर सुवर्ण वा आधा निष्क वा चौथाई निष्कभर सुवर्णके दानसे मैं करताहूं तथा इतने दिनोंतक गृह्याग्निके विच्छेदसे जो सायंप्रातःकालके औपासन होमका द्रव्य लुप्तहुआ और जो अमावस्या और पूर्णमासीके दिन स्थालीपाक आदि कर्मकेलिये जो व्रीहि और घीरूप द्रव्यको वा उसके मूल्यको देताहूं । और जो कृच्छ्रके अन्य किसी प्रत्याम्नायरूप कर्म करनेकी इच्छा होय तो उसीप्रकार संकल्पका ऊह करना । अस्सी (८०)चोंटिनियोंका एक निष्कपाद होताहै और इसके चौगुनेको निष्क कहतेहैं । इसप्रकार संकल्प करके विच्छिन्न हुई गृह्याग्निका पुनःसंधान करताहूं इसप्रकार संकल्पपूर्वक गृह्याग्निका संधान अपने सूत्रमें कही हुई रीतिके अनुसार करै ॥

सर्वाधान्यर्धाधानिनोर्गृह्याग्निसिद्धिविचारः ।

सर्वाधानिनाप्येवमेव पुनः संधानेन गृह्याग्निमुत्पाद्य गर्भाधानपुंसवनादिहोमः कार्यः तत्र कृच्छ्रसंकल्पो होमादिद्रव्यदानसंकल्पश्च न कार्यः ॥ गर्भाधानहोमं कर्तुं गृह्यपुनःसंधानं करिष्ये इत्येवं संकल्प्य गर्भाधानांतेऽग्नित्यागः ॥ अर्धाधानिनामपि पक्षद्वयम् ॥ गृह्याग्नौ सायंप्रातर्होमस्थालीपाकाः कार्या इत्येकः पक्षः॥ गृह्याग्निः केवलं संरक्ष्यो न तु तत्र होमादि कार्यमित्यपरः ॥ आद्यपक्षे पूर्वोक्तहोमादिद्रव्यदानं कार्यम् ॥ होमाद्यकरणपक्षे प्रायश्चित्तमात्रं कार्यं न तु द्रव्यदानम् ॥

अब सर्वाधानी और अर्धाधानीके गृह्याग्निका निर्धार करतेहैं । सर्वाधानी इसीप्रकार पुनःसंधानसे गृह्याग्निको उत्पादन करके उसमें गर्भाधान औरपुंसवनआदिके हवनको करै और कृच्छ्र संकल्प और होमादिके द्रव्यके दानका संकल्प न करै । और फिर गर्भाधान होम करनेको गृह्याग्निका पुनःसंधान करताहूं, इसप्रकार संकल्प करके किये गर्भाधानके अंतमें अग्निका परित्याग करै । अर्धाधानियोंके दो पक्ष हैं एक तो यह है कि, गृह्याग्निमें सायंकाल और प्रातःकाल होम और स्थालीपाक होम करना और दूसरा पक्ष यह है कि, गृह्याग्निकी केवल रक्षा ही करनी उसमें होम आदि न करना । पूर्वपक्षमें पूर्व कहा होमादिके द्रव्यका दान करना और होम आदि न करना, इस दूसरे पक्षमें तो प्रायश्चित्त मात्रको करै द्रव्यका दान नहीं ॥

अथाग्निद्वयसंसर्गः ।

द्विभार्यस्याग्निद्वयसंसर्गात्पूर्वमुभयाग्न्यनुगतौ उभयविच्छेददिनादब्दगणनया पृथक्पृथक् कृच्छ्रप्रायश्चित्तं पृथक्पृथक् होमद्रव्यदानम् ॥ स्थालीपाकद्रव्यदानं च

कृत्वा पुनः संधानद्वयेनाग्निद्वयमुत्पाद्याग्निद्वयसंसर्गं विधाय तत्र गर्भाधानहोमः अग्निद्वयसंसर्गात्पूर्वम् ॥ एकाग्न्यनुगतौ तन्मात्रप्रायश्चित्तं तद्धोमद्रव्यमात्रदानं च कार्यम् ॥ न तु स्थालीपाकद्रव्यदानम् ॥ भार्यांतरस्यासंनिधाने यस्यां गर्भाधानं तदग्निविच्छेदप्रायश्चित्तादिना गृह्याग्निमुत्पाद्य तत्र होमः ॥ सर्वत्र पुनः संधाने स्थालीपाकानारंभे स्थालीपाकादिद्रव्यदानं कृताकृतम् ॥

अब दो अग्नियोंके संसर्गका निश्चय करते हैं । जिसके दो स्त्री हों उसकी दो अग्नि होतीहैं । जो उन दोनों अग्नियोंका संसर्ग होनेसे पूर्व विच्छेद होजाय तो उसीदिनसे जितने वर्ष व्यतीत हुए हों उतनेही पृथक्पृथक् प्रायश्चित्त, पृथक् २ होम और स्थालीपाकके द्रव्यका दान करना । पुनः (फिर) अरणियोंसे अग्निको उत्पन्न करके और उन दोनोंको मिलाकर उसमें गर्भाधान करना । जो दोनों अग्नियोंके संसर्गसे पूर्व एक अग्निका विच्छेद (लोप) होजाय तो उसी अग्निमात्रका प्रायश्चित्त, होम और द्रव्यका दान करै । स्थालीपाकका दान नहीं,जो दूसरी स्त्री समीप न होय तो जिसमें गर्भाधान करै उसीकी अग्निके विच्छेदका प्रायश्चित्तआदि करके गृह्याग्निको उत्पन्नकरै और उसमें होम करै । सब जगह पुनः अग्निके संधानके विषे स्थालीपाक न करै तो, उस स्थालीपाक आदिके द्रव्यका दान कृताकृत है अर्थात् करै भी नहीं भी करै ॥

अथ गर्भाधानसंकल्पः ।

एवं यथायथं गृह्याग्निसिद्धिं कृत्वा ममास्यां भार्यायां संस्कारातिशयद्वारा अस्यां जनिष्यमाणसर्वगर्भाणां बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गर्भाधानाख्यं कर्म करिष्ये ॥ तदंगत्वेन स्वस्तिवाचनेत्यादि संकल्प्य पुण्याहवाचनमातृकापूजननांदीश्राद्धानि कृत्वा यथागृह्यं गर्भाधानसंस्कारः कार्यः ॥ अत्र गर्भाधानकर्मणो ब्रह्मदेवताकत्वात्पुण्याहवाचनांते कर्मांगदेवता ब्रह्मा प्रीयतामिति वदेत् ॥ औपासनांगे स्वस्तिवाचने अग्निसूर्यप्रजापतयः प्रीयंताम् ॥ स्थालीपाकारंभेऽग्निः प्रीयतामिति एवमन्यत्र ग्रन्थांतरादूह्यम् ॥

अब गर्भाधानके संकल्पको कहते हैं । इस पूर्वोक्त प्रकारसे गृह्याग्निको सिद्धकरके इसप्रकार कहै कि, अधिकसंस्कारके द्वारा जो स्त्रीके विषै सब गर्भ पैदा होवेंगे उनके बीजगर्भसे उत्पन्नहुए पापकी शान्तिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये मैं गर्भाधानकर्मको करताहूं । और उसके स्वस्तिवाचनआदि करताहूं, ऐसा संकल्पकरके पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, नांदीश्राद्ध आदिको करके अपने गृह्यसूत्रके अनुसार गर्भाधानसंस्कारको करै । इस गर्भाधानकर्मका ब्रह्मा देवता है इससे पुण्याहवाचनके अन्तमें कर्मांगदेवता ब्रह्मा प्रसन्न हो इसप्रकार कहै । और औपासन कर्मके अंगभूत स्वस्तिवाचनके विषै अग्नि, सूर्य, प्रजापति और स्थालीपाकके आरंभमें अग्नि प्रसन्नहो इसप्रकार कहै । इसीप्रकार अन्य कर्ममें ग्रंथान्तरसे विचारना ॥

अथ नांदीश्राद्धविचारः ।

गौर्यादिमातृकापूजनं नांदीश्राद्धांगम् ॥ यत्र नांदीश्राद्धं न क्रियते तत्र मातृकापूजनमपि न कार्यम् ॥ तत्र पूर्वं मातृपार्वणं ततः पितृपार्वणं ततः सपत्नीक-

मातामहपार्वणमिति पार्वणत्रयात्मकं नांदीश्राद्धम् ॥ मातृजीवन सपत्नमातृमरणेपि न मातृपार्वणम् ॥ एवं मातामह्या जीवने मातामहीसपत्न्या मरणेपि न मातामहादेः सपत्नीकत्वम् ॥ एवं दर्शादावपि मातृजीवने सपत्नमातृमरणेपि न सपत्नीकत्वं पित्रादेः ॥ अत्र स्वधाशब्दस्थाने स्वाहाशब्दः ॥ सव्येनैव सर्वाः क्रियाः ॥ प्रतिपार्वणं दैवे च युग्मा ब्राह्मणाः ॥ कुशस्थाने दूर्वाः ॥ विवाहादिमंगलकर्मांगे वृद्धिश्राद्धे ॥ यज्ञादिकर्मांगे तु अमूला दर्भा ग्राह्याः ॥ दूर्वा दर्भाश्च युग्मा एव ॥ उदङ्मुखः कर्ता प्राङ्मुखा विप्राः ॥ प्रङ्मुखो वा कर्ता उदङ्मुखा विप्राः॥ पूर्वाह्णकालः प्रदक्षिणं कर्म ॥ आधानांगं त्वपराह्णे कार्यम् ॥ पुत्रजन्मनिमित्तकं रात्रावपि ॥ एवं च विश्वेदेवार्थविप्रसहिता अष्टौ विप्रा अत्यशक्तौ चत्वारो वा ॥ वृद्धिश्राद्धे विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञकाः ॥ सोमयागगर्भाधानपुंसवनसी मन्तोन्नयनाधानादिकर्मांगभूतवृद्धिश्राद्धे क्रतुदक्षसंज्ञकाः ॥

अब नांदीश्राद्धको कहतेहैं । गौरी आदि मातृकाओंका पूजन नांदीश्राद्धका अंग समझना । जिस कर्ममें नांदीश्राद्ध न कियाजाय वहां मातृकापूजनभी न करना । तिस श्राद्धमें पहिला माताका पार्वण, फिर पिताका और फिर सपत्नीक मातामहका पार्वण इसप्रकार तीन पार्वण होतेहैं । माता जीती होय तो माताकी सौतके मरजानेपरभी माताका पार्वण न करै । इसीप्रकार नानी जीतीहो और नानीकी सपत्नी (सौत) के मरनेपर भी मातामह आदिका सपत्नीक श्राद्ध न करना । इसीप्रकार अमावस्याआदिके श्राद्धमें भी मौसीके मरनेपर भी पिता आदिका सपत्नीक श्राद्ध न करना । इस श्राद्धमें स्वधाशब्दकी जगह स्वाहा शब्दका उच्चारण और सबकर्म सव्य (दक्षिणयज्ञोपवीत) से करना । दैवकर्ममें युग्मब्राह्मण (दो चार आदि) होतेहैं । (विवाहआदि मंगलकर्मके नांदीश्राद्धमें) कुशाओंकी जगह दूब ग्रहण करनी । यज्ञआदिके नांदीश्राद्धमें मूलरहित दर्भ ग्रहण करने । और दूब और कुशा युग्म ग्रहणकरने । यजमान उत्तराभिमुख और ब्राह्मण पूर्वाभिमुख बैठैं । अथवा पूर्वाभिमुख यजमान और उत्तराभिमुख ब्राह्मण हों । पूर्वाह्णकाल और कर्म प्रदक्षिणरीतिसे करना । आधानका अंगरूप नांदीश्राद्ध तो अपराह्णकालमें करना । पुत्रजन्मआदि निमित्तोंमें रात्रिमें भी करना । इसप्रकार विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणोंसमेत आठ ब्राह्मण और अत्यंत असामर्थ्य होय तो चार ब्राह्मण नियुक्त करने । वृद्धिश्राद्धमें सत्य, वसु, विश्वेदेवा होतेहैं और सोमयज्ञ, गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, आधानआदि कर्मके नांदीश्राद्धमें क्रतु, दक्ष होतेहैं ॥

अथ नांदीश्राद्धावश्यकत्वानावश्यकत्वविचारः ।

गर्भाधानादिसंस्कारेषु वापीदेवप्रतिष्ठादिपूर्तकर्मस्वपूर्वाधानादिषु संन्यासस्वीकारे काम्यवृषोत्सर्गे गृहप्रवेशे तीर्थयात्रायां श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुज्याग्रयणादिपाकसंस्थानां प्रथमारंभे नांदीश्राद्धमावश्यकम् ॥ पुनराधाने सोमयागादिभिन्ने असकृत्क्रियमाणे कर्मणि अष्टकादिश्राद्धकर्मसु च नांदीश्राद्धं न कार्यम् ॥ गर्भाधानपुंसवनसीमन्तचौलमौंजीविवाहातिरिक्तसंस्कारेषु श्रवणाकर्मादिषु च नांदीश्राद्धं

वकल्पिकम्॥जातकर्मांगं पुत्रजन्मनिमित्तकं च नांदीश्राद्धं पृथगेव॥जन्मकाले एव जातकर्मणि क्रियमाणे पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मांगं च वृद्धिश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये इति संकल्प्य सकृदेव कार्यम्॥नामकर्मणासह जातकर्मचिकीर्षायां पुत्रजन्मनिमित्तं जन्मकाल एव हेम्ना कृत्वा कर्मांगं नामकर्मकाले कार्यम् ॥ तदा तदकरणे नामकर्मकाल एव पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मनामकर्मांगं च नांदीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्यैकमेव कार्यम् ॥ एवं चौलादिकर्मणा सह जातकर्मादिषु क्रियमाणेषु पुत्रजन्मनिमित्तकं चौलांतसंस्कारांगं च नांदीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये इति संकल्पः ॥ तथा च सहैव क्रियमाणेषु चौलादिष्वन्येषु च कर्मसु नांदीश्राद्धस्य सकृदेवानुष्ठानं न तु प्रतिकर्म पृथगनुष्ठानम् ॥ एवं यमलयोर्युगपदेकसंस्कारकरणेपि ज्ञेयम् ॥

गर्भाधानआदि संस्कार, बावडी, देवताकी प्रतिष्ठा आदि पूर्तकर्म, स्वपूर्व आधानआदि, संन्यासदीक्षाका स्वीकार, काम्य वृषोत्सर्गकर्म, गृहप्रवेश, तीर्थयात्रा, श्रवणाकर्म, सर्पबलि और आश्विन मार्गशिरकी पूर्णिमाकी पाकसंस्थाके प्रथम आरंभमें नांदीमुख श्राद्ध अवश्य करना।पुनः आधान और याग आदिसे भिन्न जो दूसरीबार कर्म कियाजाय तो अष्टकाआदि श्राद्धमें नांदीमुख न करना। गर्भाधान, पुंसवन, सीमंत, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, विवाह इनसे भिन्न संस्कार और श्रवणाकर्म इनमें नांदीश्राद्धका विकल्प समझना । जातकर्म और पुत्रजन्मनिमित्तक नांदीश्राद्ध पृथक् पृथक् करना। और जन्मकालमें ही जो जातकर्म कियाजाय तो पुत्रजन्मनिमित्तक जातकर्मके अंगरूप वृद्धिश्राद्धको तंत्रसे करताहूं, इस प्रकार संकल्प करके एकबारही करना । जो जातकर्मके करनेकी इच्छा नामकरणके साथही होय तो जन्म होनेके समयही पुत्रजन्मनिमित्तक श्राद्धको दक्षिणासे करके कर्मके अंगरूप श्राद्धको नामकर्मके समयही करे। अथवा उस समय पुत्रजन्मनिमित्तक श्राद्ध भी न किया जाय तो नामकरणरूप कर्मके समयही मैं पुत्रजन्मनिमित्तक और जातकर्म और नामकर्मके अंगरूप नांदीश्राद्धको तंत्रसे करताहूं, इस प्रकार संकल्प करके एकही करना। इसी प्रकार चौल (मुण्डन) आदि कर्मके साथ जातकर्म आदिकर्म किये जायँ तो तबभी पुत्रजन्मनिमित्तक मुण्डनपर्यंत संस्कारोंके अंगरूप नांदीश्राद्धको तंत्रसे करताहूं, इस प्रकार संकल्प करना । इससे यह बात समझनी कि, जो चूडाकर्म आदि साथही किये जायँ वा जो अन्यकर्म साथ किये जायँ तो उनका नांदीश्राद्ध एकबारही तंत्रसे करना । प्रतिकर्मकी अपेक्षासे पृथक् पृथक् नहीं । इसी प्रकार यमल (जोडिया) पुत्रोंके एक समयही संस्कार करनेमें व्यवस्था समझनी ॥

अथ नांदीमुखपदविचारः ।

ऋक्शाखिभिः कात्यायनैश्च पितृपितामहप्रपितामहा इति पितृपूर्वक उच्चारः कार्यः ॥ अन्यशाखिभिस्तु प्रपितामहपितामहपितरो नांदीमुखा इति प्रपितामहपूर्वक उच्चारः॥ मातृपार्वणे नांदीमुखशब्दे ङीष् विकल्पान्नांदीमुख्य इति नांदीमुखा इति पक्षद्वयमुच्चारे ॥ अनादिसंज्ञात्वेन 'नखमुखात्संज्ञायाम्' इति निषेधानवताराादिति पुरुषार्थचिन्तामणिकारः ॥

ऋक्शाखा और कात्यायनशाखावाले पितृ, पितामह, प्रपितामह इस प्रकार पिण्ड आदेके दानमें पिता शब्दका पूर्व उच्चारण करैं । और अन्य शाखावाले तो प्रपितामह, पितामह, पितृ इस प्रकार प्रपितामह शब्दका पूर्व उच्चारण करैं । और माताके पार्वणमें 'नांदीमुख्यः वा नांदीमुखाः' इस प्रकार उच्चारणमें दो पक्ष समझने, क्योंकि, नांदीमुख शब्दसे ङीष्' प्रत्यय विकल्प करके होता है । और "नखमुखात् संज्ञायाम्" (नख मुख शब्दसे ङीष् प्रत्यय न हो) यह निषेध यहां प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि, यह अनादि संज्ञा है ॥

अथ वृद्धिश्राद्धकर्तुर्जीवत्पितृकत्वे निर्णयः ।

"जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्" इति न्यायेन जीवत्पितृकः स्वापत्यसंस्कारेषु मातृमातामहपार्वणयुतं नांदीश्राद्धं कुर्यात् ॥ मातरि जीवंत्यां मातामहपार्वणकमेव ॥ मातामहे जीवति मातृपार्वणकमेव ॥ केवलमातृपार्वणे विश्वेदेवा न कार्याः ॥ वर्गत्रयाद्येषु मातृपितृमातामहेषु जीवत्सु नांदीश्राद्धलोप एव सुतसंस्कारेषूचितः ॥ द्वितीयविवाहाधानपुत्रेष्टिसोमयागादिषु स्वसंस्कारकर्मसु 'येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्' ॥ तथा च मृतमातृमातामहकोपि जीवत्पितृकः स्वसंस्कारे पितुर्मातृपितामहीप्रपितामह्यः ॥ पितुः पितृपितामहप्रपितामहाः ॥ पितुर्मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहाः इत्येव पार्वणत्रयमुद्दिश्य श्राद्धं कुर्यात् ॥ न तु स्वमातृमातामहपार्वणोद्देशः ॥

अब जो नांदीमुखश्राद्ध करनेवालेका पिता जीता होय तो उसका निर्णय कहते हैं कि जो वर्ग (पिता आदि) जीता हो उस वर्गको त्याग दे । इस न्यायसे जिसका पिता जीता हो वह अपने पुत्रोंके संस्कारोंमें माता और मातामह पार्वण सहित नांदीश्राद्धको करै । और जो माता जीती होय तो एकही मातामहका पार्वण करना । और जो मातामह जीता होय तो माताकाही एक पार्वण करना । केवल माताके पार्वणमें विश्वेदेवाओंका स्थापन न करना जो माता, पिता और मातामह ये तीनों जीते होयँ तो नांदीश्राद्धका अभावही समझे । इसी प्रकार उत्तर (विवाह आदि) संस्कारोंमें भी समझना । द्वितीय विवाह, अग्न्याधान, पुत्रेष्टि और सोमयाग आदि जो अपने संस्कार हैं उनमें जिनके लिये पिता पिण्ड आदि देता हो उनको आप दे । इससे यह बात सिद्ध भई कि, जिसकी माता और मातामह ये दोनों मर गये हों और पिता जीता हो वह अपने द्वितीय विवाह आदि पूर्वोक्त संस्कारोंमें पिताकी माता पितामही, प्रपितामही पिताके पिता, पितामह, प्रपितामह, पिताके मातामह, मातृपितामह मातृ प्रपितामह इन तीनों पार्वणोंका श्राद्ध करै । अपनी माताके मातामहका उच्चारण न करै।

पितरि पितामहे जीवति विचारः ।

पितरि पितामहे च जीवति स्वसंस्कारे पितामहस्य मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्याद्युद्देशः ॥ एवं प्रपितामहेपि योज्यम् ॥ पितुर्मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोप एव ॥ तथा च 'येभ्य एव पिता दद्यात्' इति पक्षस्य स्वर्गाद्यजीवने तत्पार्वण लोप इति द्वारलोपपक्षस्य च स्वसंस्कारस्वापत्यसंस्कारभेदेन व्यवस्था सिद्धांति

तेति शेषम् ॥ केचित्तु पक्षद्वयस्यैच्छिको विकल्पो न तु व्यवस्थित इत्याहुः ॥ एवं मृतपितृकस्य जीवन्मातृमातामहस्य पितृपार्वणेनैव नांदीश्राद्धसिद्धिर्ज्ञेया ॥

जो पिता और मातामह ये दोनों जीते होंयँ तो अपने संस्कारमें पितामहकी माता, पितामही और प्रपितामही इत्यादि इस प्रकार उच्चारण करैं । इसी प्रकार प्रपितामहमें भी समझना । जो पिताकी माता आदि जीती होंयँ तो उस पार्वणका अभावही समझना । इससे यह बात समझनी कि, जिनको पिता पिण्ड आदि देताहो । इस पक्षकी यह व्यवस्थाहै कि, वर्गके आद्य (पिता आदि) जीते होंयँ तो उसके पार्वणका अभाव और जो वर्गाद्य जीता हो उस वर्गको छोड दे । इस पक्षकी स्वसंस्कार और अपने पुत्र आदिके संस्कारके भेदसे व्यवस्था समझनी । और कोई यह कहते हैं कि, दोनों पक्षोंका इच्छासे विकल्प समझना, पूर्वोक्त व्यवस्था नहीं । इसी प्रकार जिसका पिता मरगया हो और माता, मातामह जीते हों वह पिताके पार्वणसेही नांदीश्राद्धको करै ॥

अथ समावर्तने नांदीश्राद्धकर्तुर्देवतायाश्च विचारः ।

समावर्तनस्य माणवककर्तृत्वेपि तदंगभूतनांदीश्राद्धे पितुस्तदभावे ज्येष्ठभ्रात्रादेरधिकार इति केचित् ॥ तत्र पितापुत्रसमावर्तने स्वपितृभ्यो नांदीश्राद्धं कुर्यात्॥ पिता जीवत्पितृकश्चेत्सुतसंस्कारत्वाद्वारलोपपक्षो युक्त इति भाति ॥ माणवकपितुः प्रवासादिना असंनिधाने भ्रात्रादिर्माणवकस्य पितुर्मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्याद्युच्चार्य श्राद्धं कुर्यात् ॥ मृतपितृकमाणवकसमावर्तने पितृव्यभ्रात्रादिरस्य माणवकस्य मातृपितामहीत्याद्युच्चारयेत् ॥ भ्रात्रादेरभावे स्वयमेव स्वपितृभ्यो दद्यात् ॥ एवं जीवत्पितृकोपि पितुरसंनिधाने भ्रात्रादेरभावे पितुः पितृभ्यः स्वयमेव नांदीमुखं कुर्यात ॥ उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात् ॥ एवं विवाहेपि द्रष्टव्यम् ॥ मृतपितृकस्य चौलोपनयनादिकं पितृव्यमातुलादिः कुर्वन्नस्य संस्कार्यस्य पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य श्राद्धं कुर्यात् ॥ जीवतः पितुरसंनिधानेन कुर्वन्मातुलादिरस्य संस्कार्यस्य पितुर्जनकादीनुद्दिश्य कुर्यान्न तु संस्कार्यस्य मृतानपि मात्रादीनिति संक्षेपः ॥

कोई यह कहते हैं कि, जो माणवकका समावर्तन करना होय तो उस कर्मके नांदीश्राद्धका अधिकार पिताको और जो वह न होय तो ज्येष्ठभ्राताको है । तहां पिता अपने पुत्रके समावर्तनमें अपने पितरोंका नांदीश्राद्ध करे । जो पिताका पिता जीता होय तो यह बात प्रतीत होती है कि, पुत्रका संस्कार होनेसे नांदीश्राद्धका अभावही युक्त है । जो माणवकका पिता परदेश आदिमें होनेसे समीप न होय तो भ्राता आदि इस लडकेके पिताकी माता, पितामही, प्रपितामही इनका उच्चारण करके श्राद्ध करैं । जिस माणवकका पिता मरगया हो, उसके विवाहरूप कर्मके विषे भी पितृव्य (चाचा) वा भ्राता आदि इस माणवककी माता, पितामही इत्यादि पूर्वोक्त उच्चारण करके श्राद्ध करै । जो भ्राता आदि न होयँ तो आपही अपने पितरोंको श्राद्ध दे । इसी प्रकार जिसका पिता जीता हो वह भी पिताके समीप न होनेपर

और भ्राता आदिके अभावमें आपही पिताके पितरोंका नांदीमुखश्राद्ध करै । क्योंकि; यज्ञोपवीतके होनेसे वह कर्मका अधिकारी होचुका । इसी प्रकार विवाहमें भी समझना । जिसका पिता मरगयाहो उस माणवकके मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि कर्मको कराते हुए पितृव्य, मामा आदि इस संस्कारके योग्य माणवकके पिता, पितामह, प्रपितामह इत्यादि उच्चारण करके श्राद्धको करै। जीते हुए पिताके निकट न होनेपर पूर्वोक्त मुण्डन आदिको कराते हुए मातुल आदि इस माणवकके पिताके पिता आदि उच्चारण करके श्राद्ध करैं । मरे हुए भी माता आदिके उद्देशसे नहीं, यह निर्णय संक्षेपसे कहचुके ॥

अथ नांदीश्राद्धप्रयोगे पिंडादिविचारः ।

नांदीश्राद्धे पिंडदानं कुलधर्मानुसारेण वैकल्पिकम् ॥ पिंडेषु दधिमधुबदरद्राक्षामलकमिश्रणम् ॥ दक्षिणायां द्राक्षामलकानि ॥ प्रथमांतेन संकल्पः ॥ सर्वत्रोच्चारे संबंधनामगोत्रं वर्जयेत् ॥ मालतीमल्लिकाकेतकीकमलानां माला देया न तु रक्तपुष्पाणाम् ॥ कुंकुमचंदनाद्यलंकृताः सर्वे ॥ नांदीश्राद्धारंभे पाकांतरेण वैश्वदेवः साग्निकानग्निकैः सर्वशाखिभिः कार्यः ॥ द्वयोर्द्वयोर्विप्रयोर्युगपन्निमंत्रणम् ॥ भवद्भ्यां क्षणः क्रियतामों तथा प्राप्नुतां भवंतौ प्राप्नुवावेत्युक्तिः ॥ शंनोदेवीत्यनुमंत्र्य यवानेव क्षिपेत ॥ "यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः ॥ प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नांदीमुखान्पितॄनिमाँल्लोकान्प्रीणया हि नः स्वाहा न मम" इति पित्र्ये मंत्रः द्विर्द्विर्गंधादिदानम् ॥ पाणिहोमोग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति ॥ अत्र श्राद्धे नापसव्यं न तिलाः न च पितृतीर्थेन दानम् ॥ पावमानीशंवतीः शकुनिसूक्तं स्वस्तिसूक्तं च श्रावयेत् ॥ मधुवाता इति त्र्यृचस्थाने उपास्मै गायेति पंचर्चः ॥ अक्षन्नमीमदंतेति च तृप्तिप्रश्नस्थाने संपन्नमिति ॥ दैवे रुचितमिति प्रश्नः ॥ पूर्वाग्रेषु कुशेषु दूर्वासु वा एकस्य द्वौ द्वौ पिंडौ ॥ अक्षय्यस्थाने नांदीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम् ॥ स्वधावाचनस्थाने नांदीमुखान्पितॄन् वाचयिष्ये इत्यादिना स्वधां प्रयुंजीत ॥ त्यमूषु वाजिनमिति विप्रविसर्जनम् ॥ केचिन्नांदीश्राद्धांते वैश्वदेवो बह्वृचानामित्याहुः ॥ नात्र श्राद्धांगतर्पणम् ॥ अत्राहिताग्निना पिंडदानं कार्यम् ॥ पितुर्मात्रादिवर्गत्रयोद्देशेन श्राद्धे "पितुर्मातामही चैव तथैव प्रपितामही" इत्यादिश्लोकपाठः ॥ द्वारलोपपक्षे यत्पार्वणलोपस्तत्पार्वणविषयकश्लोकैकदेशलोपः केवलमातृपार्वणे देवा न कार्याः 'एता भवंतु सुप्रीताः' इत्यूहः कार्यः ॥ सांकल्पविधिना संक्षिप्तनांदीश्राद्धप्रयोगः प्रयोगरत्नादौ द्रष्टव्यः ॥ ॥ इति नांदीश्राद्धविचारः ॥

नांदीश्राद्धमें कुलधर्मके अनुसार पिण्डका दान विकल्पसे समझना अर्थात् करना वा नहीं भी करना । इस श्राद्धमें पिण्डोंके विषे दही, मधु, बेर, दाख, आमले इनको मिलावै । और दक्षिणा दाख और आमलक सहित समझनी । और प्रथमा विभक्तिको अन्तमें लगाकर संकल्प करना । सर्वत्र उच्चारणके विषे संबंध, नाम और गोत्र इनका उच्चारण न करै ।

पितरोंको मालती, मल्लिका, केतकी और कमल इनकी माला अर्पण करनी, लालपुष्पाकी नहीं । सबको कुंकुम और चंदन आदिसे भूषित करे । नांदीश्राद्धके आरंभमें विश्वेदेवाओंको साग्नि वा अग्न्याधानरहित सब शाखावाले अन्य पाकको अर्पण करें । दो दो ब्राह्मणोंको एकबार निमंत्रण दे । यजमान दो ब्राह्मणोंसे कहै कि, आप हमारे घरपर जिस प्रकार भोजन करो तैसे प्राप्त हो । ब्राह्मण कहैं कि, प्राप्त होंगे। फिर यजमान'शंनोदेवी०' इस मंत्रको पढकर जौओंको ब्राह्मणोंकी तरफके ओर यह मंत्रपढै कि, "यवोसि सोमदैवत्योगोसवे देवनिमित: प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नांदीमुखान् पितॄनिमाँल्लोकान् प्रीणया हि नः स्वाहा नमः"–फिर दो दो वार गंध आदिका दान करै पाणिहोमको 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा० सोमाय पितृमते स्वाहा०' इन दो आहुतियोंसे करे । इस श्राद्धके विषे न अपसव्य होय, न तिलोंको ग्रहण करे न पितृतीर्थसे जल आदि दे । अपि तु 'पावमानी॰–शवती०' और शकुनि॰ सूक्त स्वस्तिसूक्त इनको पितरोंको सुनावे । 'मधुवाताऽऋतायते' इन तीन ऋचाओं-के स्थानमें 'उपास्मै गाय०' इन पांच ऋचा तथा 'अक्षन्नमीमदंत०' इन ऋचाओंको पढे । और तृप्तिके प्रश्न करनेमें 'संपन्नम् देवरुचितम्' इन शब्दोंसे तृप्तिका प्रश्न करे । पूर्वदिशाको है अग्रभाग जिनोंका ऐसी कुशा वा दूर्वोंके ऊपर एक एकके लिये दो दो पिण्ड दे । 'अक्षय्यमस्तु' इस वचनके स्थानमें 'नांदीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम् इस वचनको और स्वधावाचनके स्थानमें 'नांदीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये' इत्यादि पढे । स्वधा शब्दका उच्चारण न करे । और 'त्यमूपुवाजिनम्०' इस मन्त्रसे ब्राह्मणोंका विसर्जन करे । कोई नांदीश्राद्धके अंतमें वैश्वदेव बह्वृचोंके मतमें कहते हैं । इसमें श्राद्धका अंगरूप तर्पण नहीं करना । इसमें आहिताग्नि पिण्डदानको करै । पिताकी माता आदि तीनके उद्देशसे जो श्राद्ध किया जाय उसमें "पितुर्मातामही चैव तथैव प्रपितामही" इत्यादि श्लोकको पढे । वर्गके आद्यके जीते हुए जो जिसका पार्वण न हो उसी पार्वणके विषयका श्लोकका एक देश न पढना । केवल माताके पार्वणमें विश्वेदेवा नहीं होते और माताके पार्वणमें 'एते भवन्तु सुप्रीताः' इस वचनके स्थानमें 'एता भवन्तु सुप्रीताः' ऐसा ऊह करना । सांकल्प विधिसे नांदीमुखश्राद्धकी विधि प्रयोगरत्न आदि ग्रन्थोंमें समझनी । नांदीमुखश्राद्धका विचार कहचुके ॥

अथ संकटे गर्भाधानप्रयोगः ।

एवं स्वस्तिवाचनं क्रतुदक्षसंज्ञकविश्वेदेवयुतं च नांदीश्राद्धं गर्भाधानांगं कृत्वा यथाशाखं गर्भाधानसंस्कारः कार्यः ॥ आश्वलायनैर्गृह्याग्नौ प्राजापत्यं चरुं हुत्वा विष्णुं षड्वारं सकृत्प्रजापतिं चाज्येन हुत्वा जपोपस्थानेननस्तःकरणादिकं च कार्यम् ॥ "विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती ॥ गर्भाधानं ततः कुर्यात्सुपुत्रो जायते ध्रुवम्" ॥ एवं नेजमेषेत्यादिजपोपि ॥ सर्वथा होमासंभवेऽश्वगंधारसमुदीर्ष्वात इति मंत्रेण दक्षिणनासायामासिच्योपगमनं कार्यम् ॥ एवं गर्भाधानसंस्कारमकृत्वा स्त्रीगमने गर्भोत्पत्तौ तत्प्रायश्चित्तं गोदानं कृत्वा पुंसवनं कार्यम् ॥

इस प्रकार स्वस्तिवाचन और क्रतुदक्षसंज्ञक विश्वेदेवाओंसहित नांदीश्राद्धको करके शाखाके अनुसार गर्भाधान संस्कारको करे । आश्वलायन गृह्याग्निके विषे प्रजापति है देवता

जिसका ऐसे चरुसे होम करके और विष्णुको छः और प्रजापतिको एक आहुति घीकी देकर जप और स्तुतिसे गर्भाधानको करे । क्योंकि, यह वचन है कि, तीनोंसे योनिका स्पर्श करके व्रती मनुष्य 'विष्णुर्योनिं०' इस सूक्तको जपै । फिर गर्भाधानके करनेसे बहुत उत्तम पुत्र होता है । इसी प्रकार 'नेजमेष' इत्यादिका भी जप करे । और जो सर्वथा होम न होसके तो अश्वगंधा (आसगंध) के रसको 'उदीर्ष्वात०' इत्यादि मन्त्रसे दक्षिण नासिकाके छिद्रमें गेरकर गमन करे । इस पूर्वोक्त प्रकारसे गर्भाधान किये बिना स्त्रीगमन करके गर्भको पैदा करे तो गोदानरूप प्रायश्चित्तको करके पुंसवन करे ॥

अथ मैथुनांते विचारः ।

"ऋतौ तु गर्भशंकित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥ अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौच मूत्रपुरीषवत्" इत्युक्तरीत्या शौचं कृत्वाऽऽचामेत् ॥ आचमनं विना मूत्रपुरीषोत्सर्गे तु ॥ "तैलाभ्यक्तस्त्वनाचांतः श्मश्रुकर्मणि मैथुने ॥ मूत्रोच्चारं यदा कुर्यादहोरात्रेण शुद्ध्यति" इत्येकाहोपवासः ॥ स्त्रीणां तु न स्नानम् ॥ "शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान्" इत्युक्तेः ॥ इति गर्भाधानाद्युपयोगिनिर्णयः॥

अब मैथुनके अन्तमें निर्णयको कहते हैं । कि, मैथुन करनेवाला मनुष्य ऋतुकालमें स्त्रीसे गमन करे तो स्नान करले क्योंकि, उसमें गर्भकी शंका होती है । और इससे अन्यकालमें गमन करनेमें मूत्र और मलके त्यागकी समान शौच होता है । इस वचनके अनुसार शुद्धिको करके आचमन करे क्योंकि, मैथुनके अन्तमें आचमन किये बिना मलमूत्रका त्याग करे तो एक दिनका उपवास कहा है कि, तैलको लगाये हुए और श्मश्रुकर्म (क्षौर) मैथुनके अन्तमें आचमन किये बिना जो मूत्र मलका त्याग करता है उसकी अहोरात्रसे शुद्धि होती है । स्त्रियोंको तो स्नान नहीं करना क्योंकि, यह वचन है कि, मैथुनशय्यासे उठकर स्त्री शुद्ध और मनुष्य अशुद्ध होता हैं । यह गर्भाधान आदिके उपयोगी कर्मका निर्णय कहचुके ॥

अथ नारायणबलिविचारः ।

एवं कृतेपि गर्भाधाने यदि गर्भोत्पत्त्यभावो मृतापत्यता वा तदा प्रतिबंधकप्रेतोपद्रवनिवृत्त्यर्थं नारायणबलिर्नागबलिश्च कार्यः ॥ तत्र नारायणबलिः शुक्लैकादश्यां पंचम्यां श्रवणे वा कालांतरानुपलब्धेः ॥ तत्प्रयोगः परिशिष्टस्मृत्यर्थसारानुसारी कौस्तुभे॥शुक्लैकादश्यां नदीतीरे देवालयादौ तिथ्यादिकीर्तनांतेमदीयकुलादिवृद्धिप्रतिबंधकप्रेतस्य प्रेतत्वनिवृत्त्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये ॥ विधिना स्थापितकुंभद्वये हेमादिप्रतिमयोर्विष्णुं वैवस्वतं यमं चावाह्य पुरुषसूक्तेन यमाय सोममिति मंत्रेण च षोडशोपचारैः संपूजयेत् ॥ अत्र केचित्कुंभपंचके ब्रह्मविष्णुशिवयमप्रेतान् पूजयंति॥ तत्पूर्वभागे रेखायां दक्षिणाग्रकुशेषु शुंधतां विष्णुरूपी प्रेत इति दशस्थानेषु दक्षिणसंस्थाअपो निनीय मधुघृततिलयुतान् दशपिंडान् काश्यपगोत्र देवदत्तप्रेत विष्णुदैवत अयं ते पिंड इति दक्षिणमुखः प्राचीनावीती वामं जान्वाच्य पितृतीर्थेन दद्यात् ॥ गंधादिभिरभ्यर्च्य प्रवाहणांतं कृत्वा विसर्जयेत् ॥ तस्यामेव रात्रौ श्वः करिष्यमाण-

श्राद्धे क्षणः क्रियतामिति एकं त्रीन् पंच वा विप्रान् निमंत्र्योपोषितो जागरं कुर्यात् । श्वोभूते मध्याह्ने विष्णुं संपूज्य विष्णुरूपं प्रेतं विष्णुब्रह्मशिवयमप्रेतान्वोद्दिश्यैकोद्दिष्टविधिना पादप्रक्षालनादितृप्तिप्रश्नांतं कृत्वा रेखाकरणाद्यवनेजनांतं तूष्णीं कृत्वा विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय सपरिवाराय यमायेति चतुरः पिंडान्नाममंत्रैर्दत्त्वा विष्णुरूपं प्रेतं ध्यायन् काश्यपगोत्र देवदत्त विष्णुरूपप्रेत अयं ते पिंड इति पंचमं पिंडं दत्त्वा अर्चनादिप्रवाहणांते आचांतान् दक्षिणादिभिः संतोष्य तेष्वेकस्मै गुणवते प्रेतबुद्ध्या वस्त्राभरणादि दत्त्वा विप्रान्वदेत् ॥ भवंतः प्रेताय तिलोदकांजलिदानं कुर्वंत्विति ॥ ते च पवित्रपाणयः कुशतिलतुलसीयुततिलांजलिं प्रेताय काश्यपगोत्राय विष्णुरूपिणे अयं तिलांजलिरिति दद्युः ॥ विप्रान्वाचयेत् ॥ अनेन नारायणबलिकर्मणा भगवान् विष्णुरिमं देवदत्तं प्रेतं शुद्धमपापमर्हं करोत्विति विसृज्य स्नात्वा भुंजीतेति ॥ सिंधौ तु कुंभपंचके विष्णुब्रह्मशिवयमप्रेतेति पंचकं पूजयेत् ॥ स्वर्णरूप्यताम्रलोहमयाश्चत्वारः ॥ प्रेतो दर्भमयः अग्निं प्रतिष्ठाप्य श्रपितचरुं नारायणाय पुरुष सूक्तेन षोडशाहुतिभिर्हुत्वा दशपिंडांते पुरुषसूक्ताभिमंत्रित शंखोदकेन प्रेतं प्रत्यृचं तर्पयेत् ॥ विष्ण्वादिचतुर्भ्यो बलिं दद्यात् ॥ श्वोभूत एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपंचकं करिष्य इति संकल्प्य विप्रपंचके पाद्यादि पिंडदानांते तर्पणादीति विशेष उक्तः शेषं पूर्ववत् ॥

इसप्रकार गर्भाधानके करनेपर भी जो पुत्रकी उत्पत्ति न हो वा मरा पुत्र होय तो उसमें प्रेतका उपद्रव प्रतिबंधक समझना । उसको निवृत्तिके लिये नारायणबलि और नागबलिको करे । तिसमें नारायणबलिको कहते हैं । जो अन्यकाल न मिले तो शुक्ला एकादशी, पंचमी, वा श्रवण नक्षत्रमें करनी । उसकी विधि परिशिष्ट स्मृत्यर्थसारके अनुसार कौस्तुभग्रंथमें समझनी । शुक्ला एकादशीके दिन नदीके तटपर किसी देवालय आदिमें जाकर प्रथम इस प्रकार संकल्प करे कि, 'अद्येत्यादि, तिथिके कीर्तनपर्यंत पढकर मेरे कुल आदिकी वृद्धिके प्रतिबंधक प्रेतकी प्रेतयोनिकी निवृत्तिके लिये नारायणबलिको करताहूं । फिर विधिसे स्थापन किये हुए दो घटोंके ऊपर स्थापन कीहुई सुवर्ण आदिकी दो प्रतिमाओंमें विष्णु और सूर्य तथा यम इनका आवाहन करके, फिर पुरुषसूक्त और 'यमायसोमम्' इत्यादि ऋचाओंसे षोडशोपचारसे पूजन करे । इसमें कोई पांच घटोंके ऊपर स्थापन कीहुई प्रतिमाओंमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत इनका पूजन करते हैं । और उससे पूर्वभागमें रेखाके ऊपर रक्खी हुई दक्षिणको जिनका अग्र है ऐसी दश कुशाओंके ऊपर विष्णुरूपी प्रेत शुद्ध हो ऐसा पढके दश जगह मधु, घी, तिल इनसे दश पिंडोंको दक्षिणकी तरफ मुखको करके और अपसव्य होकर बाँई जंघाको नवाकर काश्यपगोत्रमें उत्पन्नहुए, विष्णु जिसका देवता है, ऐसा जो अमुक नाम प्रेत उसको यह पिंड अर्पण करताहूं ऐसा पढकर पितृतीर्थसे दे । फिर गंध आदिसे पूजकर प्रवाहण पर्यंत कर्मको करके विसर्जन करदे । तिसी रात्रिके विषे कल जो श्राद्ध किया जायगा उसमें आप पधारियो । इस प्रकार तीन वा पांच ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर उपोषित (व्रती) जागरणको करे । फिर दूसरे दिनके मध्याह्नकालमें विष्णुको पूजकर

विष्णुरूप प्रेत वा विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम और प्रेत इन पांचोंके उद्देशसे एकोद्दिष्टविधिसे पादप्रक्षालनसे तृप्तिप्रश्नपर्यंत कर्मको करके और रेखाकरणसे लेकर अवनेजन पर्यंत कर्मको तूष्णीं (मौन) करके फिर 'विष्णवे, ब्रह्मणे, शिवाय, सपरिवाराय यमाय' इन नाममंत्रोंसे चार पिंडोंको देकर विष्णुरूप प्रेतका ध्यान करता हुआ पंचम पिण्डको काश्यपगोत्र ! हे विष्णुरूप प्रेत ! यह पिण्ड आपको अर्पण करताहूं, इस प्रकार प्रेतको दे । फिर अर्चनसे लेकर प्रवाहणपर्यंत जो कर्म उसके अन्तमें आचमन कियेहुए ब्राह्मणोंको दक्षिणाओंसे प्रसन्न करके और उनमेंसे किसी एक गुणी ब्राह्मणको प्रेतबुद्धिसे वस्त्र और आभरणआदि देकर ब्राह्मणोंको कहै कि, आप प्रेतको तिलसहित जलकी अंजलिको दो । वे ब्राह्मण भी हाथोंको शुद्ध करके कुशा, तिल, तुलसी इनसे युक्त तिलांजलिको काश्यपगोत्री विष्णुरूपी प्रेतको यह तिलांजलि देताहूं इस प्रकार कहकर दें । फिर ब्राह्मणोंसे कहावै कि, इस नारायणबलिरूप कर्मसे भगवान् विष्णु देवदत्तनामा प्रेतको शुद्ध पापसे रहित योग्य करो । फिर विसर्जन और स्नान करके भोजन करै । सिंधुमें तो यह लिखाहै कि, पांच घटोंके ऊपर विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम और प्रेत इनका पूजन करै । इन पांचोंकी प्रतिमा सुवर्ण, चांदी, तांबा, लोहा और कुशा इन पांचोंकी क्रमसे समझनी । अग्निका स्थापन करके पकायेहुए चरुकी नाराय-णके लिये पुरुषसूक्तसे षोडश आहुति देकर फिर दियेहुए दश पिण्डोंके अन्तमें पुरुषसूक्तसे अभिमंत्रणकिये जलको शंखमें भरकर ऋचाऋचासे प्रेतका तर्पण करै । और विष्णु आदि चारकों बलिको दे । फिर दूसरे दिन एकोद्दिष्टविधिसे पांच श्राद्धोंको करताहूं यह संकल्प करके पांच ब्राह्मणोंको पाद्यआदि पिण्डदान पर्यंत कर्मके अन्तमें तर्पणआदिको करै, यह विशेष कहाहै । और शेष पूर्वकी समान समझना ॥

अथ नागबलिः ।

स च दर्शे पौर्णमास्यां पंचम्यामाश्लेषायुतनवम्यां वा कार्यः ॥ तत्र पर्षदं प्रद-क्षिणीकृत्य नत्वा तदग्रे गोवृषनिष्क्रयं निधाय सभार्यस्य ममेह जन्मनि जन्मांतरे वा जातसर्पवधदोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्तमुपदिशंतु भवंतः "सर्वे धर्मविवेक्तार इत्यादि०" ॥ विप्रैश्चतुर्दशकृच्छ्रप्रायश्चित्तेनामुकप्रत्याम्नायद्वारा पूर्वोत्तरांगसहितेना-चरितेन तव शुद्धिर्भविष्यतीत्युपदिष्टो देशकालौ संकीर्त्य पर्षदुपदिष्टं चतुर्दशकृ-च्छ्रप्रायश्चित्तममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्य इति संकल्प्य वपनादिविधिना तदा-चरेत् ॥ वपनासंभवे द्विगुणः कृच्छ्रप्रत्याम्नायः ॥ सर्पवधदोषपरिहारार्थमिमं लो-हदंडं सदक्षिणं तुभ्यमहं संप्रदद इति दत्त्वा गुर्वनुज्ञां लब्ध्वा गोधूमव्रीहितिलान्य-तमपिष्टेन सर्पाकृतिं कृत्वा शूर्पे निधाय सर्पं प्रार्थयेत् ॥ "एहि पूर्वमृतः सर्प अ-स्मिन्पिष्टे समाविश ॥ संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समाहितः" ॥ आवाह-नादिषोडशोपचारैः संपूज्य नत्वा भो सर्प इमं बलिं गृहाण ममाभ्युदयं कुर्विति बलिं दत्त्वा पादौ प्रक्षाल्याचामेत् ॥ देशकालौ संकीर्त्य सभार्यस्य ममेह जन्मनि जन्मांतरे वा ज्ञानादज्ञानाद्वा जातसर्पवधोत्थदोषपरिहारार्थं सर्पसंस्कारकर्म करि-ष्य इति संकल्प्य स्थंडिलेग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वास्मिन्सर्पसंस्कारहोमकर्मणि देव-

तापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये ॥ चक्षुषी आज्येनेत्यंतऽमावग्निं वायुं सूर्यमाज्येन सर्पमुखे प्रजापतिमाज्येनाज्यशेषेण सर्प सद्यो यक्ष्ये इति समिधावाधायाग्नेराग्नेय-दिशि प्रोक्षितभूमौ चितिं कृत्वाग्निं चितिं च परिसमुह्याग्नेयाग्रदर्भैः परिस्तीर्य परि-षिच्य षट्पात्रासादनादि चक्षुषी हुत्वा सर्पं चित्यामारोप्य जलं श्रोत्रं च स्पृष्ट्वा अग्नौ भूः स्वाहा अग्नय इदमित्यादि व्याहृतित्रयेणाज्याहुतीर्हुत्वा समस्तव्याहृतिभिश्चतुर्थीं सर्प-मुखे जुहुयात् ॥ आज्यशेषं स्रुवेणैव सर्पदेहे निषिंचेत् ॥ नात्र स्विष्टिकृदादिशेषम् ॥ चमसजलैः समस्तव्याहृत्या सर्पं पाणिना प्रोक्ष्य ॥ अग्नेरक्षाणो वसिष्ठोग्निर्गायत्री सर्पायाग्निदाने वि० ॥ अग्नेरक्षाणो अंहस ऋक् ॥ अथोपस्थानम् ॥ "नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ॥ ये अंतरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ये दो-रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ॥ येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः० या इषवो या-तुधानानां ये वा वनस्पती ँ रनु ॥ ये वावटेषु शेरते तेभ्यः० ॥" "त्राहित्राहि महाभोगिन् सर्पोपद्रवदुःखतः ॥ संततिं देहि मे पुण्यां निर्दुष्टां दीर्घजीविनाम् ॥ प्रपन्नं पाहि मां भक्त्या कृपालो दीनवत्सल ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्प-वधो मया ॥ जन्मांतरे तथैतस्मिन्मत्पूर्वैरथ वा विभो ॥ तत्पापं नाशय क्षिप्रम-पराधं क्षमस्व मे ॥ इति सम्प्रार्थ्य नागेंद्रं स्नात्वागत्य ततः पुनः" ॥ व्याहृति-भिः क्षीराज्येनाग्निं संप्रोक्ष्य हुते सर्पजलेनाग्निं सिंचेत् "यज्ञोपवीतिना सर्वं सर्पसं-स्कारकर्म तु ॥ नास्थिसंचयनं कुर्यात्स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत्" ॥ सभार्यस्य कर्तुस्त्रि-रात्रमाशौचं ब्रह्मचर्यं च कार्यम् ॥ चतुर्थेहनि सचैलं स्नात्वा घृतपायसभक्ष्यैरष्टौ विप्रान् भोजयेत् ॥ तद्यथा सर्पस्वरूपिणे ब्राह्मणाय इदं ते पाद्यम् ॥ अनंतस्वरूपिणे० शेष-स्वरूपिणे० कपिलस्वरूपिणे० नागस्वरूपिणे० कालिकस्वरूपिणे० शंखपालस्वरू-पिणे० भूधरस्वरूपिणे० इत्यष्टसु दत्त्वा स्वपादौ प्रक्षाल्याचम्य सर्पस्वरूपिणे ब्राह्म-णाय इदमासनम् ॥ आस्यताम् ॥ एवमनंतादिपु। ततः सर्पस्थाने क्षणः क्रियतामित्यादि ॐ तथा प्राप्नोतु भवान् प्राप्नवानि ॥ भो सर्प रूप इदं ते गंधम् ॥ एवमनंतादिषु ॥ एवं पुष्पधूपदीपवस्त्रादि दत्त्वा ॥ अन्नं परिविष्य प्रोक्ष्य सर्पाय इदमन्नं परिविष्टं प-रिवेक्ष्यमाणं च दत्तं दास्यमानं चातृप्तेरमृतरूपेण स्वाहा संपद्यतां न मम एवमनंता-दिभ्योपि आचांतेषु भो सर्प अयं ते बलिरित्यादिनाममंत्रैर्बलिदानम् ॥ तेषु पिंडेषु वस्त्रादिपूजा च कार्या ॥ इदमपि सर्वं सव्येनैवं विप्रेभ्यस्तांबूलदक्षिणादि दत्त्वा आचार्यं संपूज्य कलशे सुवर्णनागमावाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत् ॥ " ब्रह्मलोके च ये सर्पाः शेषनागपुरोगमाः ॥ नमोस्तु तेभ्यः सुप्रीताः प्रसन्नाः संतु ते सदा ॥ विष्णुलोके च ये सर्पा वासुकिप्रमुखाश्च ये ॥ नमोस्तु तेभ्यः सु० ॥ रुद्रलोके च ये सर्पास्तक्षकप्रमुखास्तथा ॥ नमोस्तु० ॥ खांडवस्य तथा दाहे स्वर्गं ये च समाश्रिताः ॥ नमोस्तु० ॥ सर्पसत्रे च ये सर्पा

आस्तिकेन च रक्षिताः ॥ नमोस्तु० ॥ मलये चैव ये सर्पाः कर्कोटप्रमुखाश्च ये ॥ नमोस्तु० ॥ धर्मलोके च ये सर्पा वैतरण्यां समाश्रिताः ॥ नमोस्तु० ॥ ये सर्पाः पार्वतीयेषु दरीसंधिषु संस्थिताः ॥ नमोस्तु० ॥ ग्रामे वा यदि वारण्ये ये सर्पाः प्रचरंति हि ॥ नमोस्तु० ॥ पृथिव्यां चैव ये सर्पा ये सर्पा बलिसंस्थिताः ॥ नमोस्तु० ॥ रसातले च ये सर्पा अनंताद्या महाबलाः ॥ नमोस्तु०" ॥ एवं स्तुत्वा देशकालौ संकीर्त्य कृतस्य सर्पसंस्कारकर्मणः सांगतासिद्ध्यर्थमिमं हैमनागं सकलशं सवस्त्रं सदक्षिणं तुभ्यमहं संप्रददे न मम ॥ अनेन स्वर्णनागदानेनानंतादयो नागदेवताः प्रीयंताम् ॥ आचार्याय गोदानम् ॥ यस्य स्मृत्या च० ॥ मया कृतं सर्पसंस्काराख्यं कर्म तद्भवतां विप्राणां वचनात् परमेश्वरप्रसादात्सर्वं परिपूर्णमस्तु ॥ तथास्त्विति ते ब्रूयुः ॥ ब्राह्मणांस्तोषयेत ॥ सांगतार्थं ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ "कृत्वा सर्पस्य संस्कारमनेन विधिना नरः ॥ विरोगो जायते क्षिप्रं संततिं लभते शुभाम्" ॥ ॥ इति सर्पबलिः ॥

अब नागबलिको कहते हैं । वह अमावस्या, पूर्णिमा, पंचमी और आश्लेषा नक्षत्रसे युक्त नवमीको करनी । तहां परिषद (सभा) को परिक्रमा और नमस्कार करके और उसके अगाडी गौ वृषके मूल्यकी दक्षिणा रखकर कहै कि, स्त्रीसहित मेरे इस जन्म वा दूसरे जन्ममें सर्पके मारनेसे जो दोष है उसके दूर करनेके लिये आप प्रायश्चित्तको कहो । क्योंकि, आप सब धर्मके ज्ञाताहो । फिर ब्राह्मण, पूर्व और उत्तर अंगसहित चतुर्दश कृच्छ्रके प्रत्याम्नायरूप अमुक कर्मके करनेसे तेरी शुद्धि होजायगी ऐसा उपदेश करै । वह उपदेशको लेकर देशकालका कीर्तन करके सभाने उपदेश किये चतुर्दशकृच्छ्ररूप प्रायश्चित्तको अमुक प्रत्याम्नायरूप कर्मको मैं करताहूं, इसप्रकार संकल्प करके वपन आदि विधिसे इस कर्मको करै । जो वपन- (मुण्डन) न होसकै तो दुगुणा कृच्छ्र प्रत्याम्नायरूप (बदलेका) कर्म करै । फिर सर्पके मारनेसे उत्पन्नहुए दोषके नाशके लिये इस दक्षिणासहित लोहेके दण्डको तुमको देताहूं इसप्रकार देकर और गुरुकी आज्ञाको लेकर गेहूं, धान वा तिल इनके चूनका सर्प बनाकर और उसको सूपमें रखकर प्रार्थना करै कि, पूर्व मरेहुए सर्प ! आप आओ और इस पिष्टमें समावेश करो आपके संस्कारके लिये सावधान होकर आपकी प्रार्थना करताहूं । फिर आवाहनआदि सोलह सामग्रियोंसे पूजकर और नमस्कार करके हे सर्प ! आप बलिको ग्रहण करो और मेरे ऐश्वर्यको बढ़ाओ इसप्रकार बलि देकर और चरणोंको धोकर आचमन करै । फिर देशकालका स्मरण करके स्त्रीसहित मेरे इस जन्म वा परजन्ममें अज्ञानसे वा ज्ञानसे जो सर्पके मारनेसे दोष प्राप्त हुआ है उसके परिहारके लिये सर्पके संस्काररूप कर्मको करताहूं इसप्रकार संकल्प करै । स्थंडिलमें अग्निको स्थापन करके ध्यान करके फिर संकल्प करै कि, इस सर्पसंस्कार होमरूप कर्मके विषै देवताके परिग्रहके लिये अन्वाधान करताहूं । चक्षुओंको घीसे इसके अन्तमें अग्निके विषै अग्नि, वायु, सूर्य इनको, घृतसे सर्पके मुखमें प्रजापतिको घीसे और घीके शेषसे सर्पको शीघ्र पूजताहूं इसप्रकार अग्निमें समिधोंको रखकर और आग्नेयी दिशामें जलसे छिडकीहुई पृथ्वीपर चिताको बनाकर और अग्नि और चिताका परिसमूहन

करके और आग्नेयीदिशाको है अग्रभाग जिनका ऐसी कुशाओंको बिछाकर और जलसे छिडककर छः पात्रोंका आसादनआदि कर्म करै। और फिर चक्षुओंको होमकर और सर्पको चितामें रखकर जल और श्रोत्रका स्पर्श करके अग्निके विषे 'भूःस्वाहा अग्नये इदं' इत्यादि व्याहृतियोंसे होम करके और 'भूर्भुवःस्वःस्वाहा' इन समस्त व्याहृतियोंसे सर्पके मुखमें चौथी आहुति दे। और फिर शेष घृतकी स्रुवेमें लेकर उससेही सर्पकी देहपर सींचै यहां स्विष्टकृत आदिका शेष न समझना। सर्पको चमसके जलसे समस्तव्याहृति (भूर्भुवःस्वः स्वाहा) को पढकर हाथसे छिडकै। फिर 'अग्नेरक्षाणो, इस ऋचाका वसिष्ठ ऋषि अग्नि देवता गायत्री छन्द है और सर्पको अग्निमें देनेके विषै इसका विनियोग है। अब स्तुतिका कहते हैं जो अन्तरिक्ष, पृथिवी, स्वर्गमें रहनेवाले हैं उन सर्पोंको नमस्कार है। और जो सूर्यकी किरण जल इनमें विराजमान हैं उनको नमस्कार है। जो यातुधानोंके वाणरूप हैं और जो वनस्पति और वृक्षोंपर सोते हैं उनको नमस्कार है। हे महाभोगिन्! रक्षा करो २ संपूर्ण उपद्रव और दुःखसे रक्षाकरो। बडा जिसका शरीर है ऐसी पवित्र संततिको मुझे दो। कृपासे युक्त दीनोंपर दयाकरनेवाले आप शरणागत मेरी रक्षा करो। जो ज्ञान वा अज्ञानसे मैंने वा मेरे पितरोंने सर्पका वध इस जन्म वा अन्य जन्ममें कियाहो उस पापको नष्ट करो। और मेरे अपराधको क्षमाकरो। इसप्रकार प्रार्थना करै। फिर उस सर्पको स्नान कराकर और अग्निके निकट आकर व्याहृतियोंको पढताहुआ दुग्धसहित घीसे अग्निको छिडककर फिर सर्पसे होमी अग्निको जलसे सींचै। यज्ञोपवीतको धारण करताहुआ सब सर्पसंस्कारकर्मको करै। अस्थिसंचयन न करै। फिर स्नान करके घरको जाय। स्त्रीसहित संस्कारके करनेवाला पुरुष तीन रात आशौच और ब्रह्मचर्यसे रहै। फिर चौथे दिन सचैल स्नान करके घी और पायस भक्ष्योंसे अष्ट (८) ब्राह्मणोंको इसरीतिसे भोजन करावे कि, सर्पस्वरूपी ब्राह्मणको इस पाद्यको देताहूं, इसीप्रकार आये ब्राह्मणोंको शेषस्वरूपी, अनंतस्वरूपी, कपिलस्वरूपी, नागस्वरूपी, कालिकास्वरूपी, शंखपालस्वरूपी, भूधरस्वरूपीको पाद्य देताहूं यह कहकर पाद्यको दे। फिर अपने चरणोंको धोकर और आचमन करके स्वर्पस्वरूपी ब्राह्मणको यह आसन देताहूं। आप बैठिये इस प्रकार अनंतआदि आठ ब्राह्मणोंको आसन दे। फिर सर्पको कहै कि, आप क्षण (अवसर) करो। ऐसे कहनेके पीछे ब्राह्मण कहै कि, प्राप्तहूंगा। फिर उस सर्परूपी ब्राह्मणको यह आपको गंध अर्पण करताहूं ऐसे कहकर गंध दे। इसीप्रकार अनंत आदिको भी समझना। इसीप्रकार पुष्प, धूप, दीप, वस्त्रआदिको देकर अन्नपरिवेषण करके और जल छिडककर कहै कि, यह परिविष्ट (परसाहुआ) और परिवेष्यमाण (परसनेयोग्य) और जो दिया और जो दूंगा वह सब तृप्तिपर्यंत इस सर्पको, देताहूं, इसीप्रकार अनंतआदिको दे। फिर जब ब्राह्मण आचमन करचुकैं तो उनको, हे सर्प! आपको यह बलिहै इसप्रकार बलि दे। तिन पिण्डोंपर वस्त्रआदिको अर्पण करै यह सब कर्म सव्यहोकरही करना। ब्राह्मणोंको तांबूल दक्षिणाआदि देकर और आचार्यकी पूजा करके सुवर्णके सर्पका आवाहनआदि षोडश उपचारोंसे पूजन करके प्रार्थना इन मंत्रोंसे करै कि, शेष और नागआदि जो ब्रह्मलोकके सर्प हैं उनको नमस्कारहै। मेरे ऊपर सदा प्रसन्नहों। विष्णुलोकके वासुकिआदि जो सर्पहैं, और जो रुद्रलोकके तक्षकआदि सर्पहैं, और जो खाण्डव वनमें भस्म हीकर स्वर्गमें प्राप्तहुएहैं, और जो सर्पोंके यज्ञमें आस्तिकने रक्षा किये हैं, और जो मलयगिरिके कर्कोटकआदि सर्पहैं, और जो

धर्मलोककी वैतरणीमें स्थितहैं, और जो पर्वतकी गुफाओंकी संधियोंमें स्थितहैं, और जो ग्राम वा अरण्यमें रहनेवालेहैं, और जो पृथिवीमें सर्पोंकी पंक्तियोंमें स्थितहैं, और जो पातालमें रहनेवाले अनंतआदि महाबली सर्पहैं उनको नमस्कार है। और वे मेरे ऊपर प्रसन्न हों। इसप्रकार स्तुति करके और देशकालका कीर्तनकरके इसप्रकार संकल्प करै कि, इस कियेहुए संस्कार कर्मकी सांगोपांग सिद्धिकेलिये इस कलश और दक्षिणासहित सुवर्णके सर्पको आपको देताहूं, इस सुवर्णके नागसे अनंतआदि नागदेवता प्रसन्न हों। आचार्यके लिये गौका दानकरै । जिनके स्मरणसे मैंने सर्पसंस्काररूपी कर्म किया वह आपके वचनोंसे और परमेश्वरके प्रसादसे सब परिपूर्ण हो । ब्राह्मण 'तथास्तु' यह कहै और ब्राह्मणोंको प्रसन्नकर सांगतासिद्धिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन करावै । इसविधिसे सर्पका संस्कार करके मनुष्य नीरोग होताहै और उत्तम संततिको प्राप्त होताहै । सर्पबलिको कहचुके ॥

अथ हरिवंशश्रवणांगप्रायश्चित्तविचारः ।

एवमपि पुत्रोत्पत्त्यसिद्धौ कर्मविपाकग्रंथोक्तहरिवंशश्रवणविधानं कुर्यात् ॥ तच्च षडब्दं चतुरब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दम् अब्दं वा प्रायश्चित्तं कृत्वा वा कार्यम् ॥ तत्र त्रिंशत्कृच्छ्रात्मकोऽब्दः ॥

इसप्रकार पुत्रकी उत्पत्ति न होसकै तो कर्मविपाकमें कही हरिवंशकी कथाकी श्रवणविधिको करै । वह छः, चार, तीन, डेढ, वा एक अब्दरूपी प्रायश्चित्तको करना । तहां तीस कृच्छ्रको अब्द कहतेहैं ॥

अथ कृच्छ्रलक्षणम् ।

कृच्छ्रस्तु द्वादशदिनसाध्यः ॥ तथा हि ॥ प्रथमे दिने मध्याह्ने हविष्यस्यैकभक्तस्य षड्विंशतिर्ग्रासा भोक्तव्याः ॥ द्वितीयेहनि नक्तं द्वाविंशतिर्ग्रासाः ॥ तृतीये अयाचितस्य चतुर्विंशतिर्ग्रासाः ॥ चतुर्थेहनि निरशनम् ॥ अयं पादकृच्छ्रः कथंचित्त्रिगुणीकृतोयं प्राजापत्यकृच्छ्रः ॥ एकभक्तनक्तायाचितद्वयोपवासद्वयैरर्धकृच्छ्रः ॥ यद्वा त्र्यहमयाचितं त्र्यहमुपवास इत्यर्धकृच्छ्रः ॥ एकभक्तनक्तायाचितोपवासैः कथंचित्त्रिगुणैः पादोनकृच्छ्रः ॥ एषु नवदिनेषु भोजनप्राप्तिस्तत्र ग्रासनियमं त्यक्त्वा पाणिपूरान्नभोजने अतिकृच्छ्रः ॥ एकग्रासपर्याप्तस्य प्राणधारणपर्याप्तस्य वा दुग्धस्य एकविंशतिदिनेषु भक्षणे कृच्छ्रातिकृच्छ्रः ॥ एकदिने सकुशोदकमिश्रपंचगव्याशनम् ॥ एक उपवास इति द्वैरात्रिकः सांतपनकृच्छ्रः ॥ पंचगव्यकुशोदकानाममिश्राणामेकैकस्यैकैकदिने अशनमेक उपवास इति सप्ताहसाध्यो महासांतपनः ॥

और बारह दिनमें एक कृच्छ्रव्रत होताहै उसकी विधिको कहतेहैं । कि, पहिले दिन मध्याह्नके समय एकबार हविष्य (खीर) के छब्बीस (२६) ग्रास खाने । फिर दूसरेदिन रात्रिके समय बारह ग्रास । तीसरे दिन अयाचित अन्नके चौबीस (२४) ग्रास । चौथे दिन निरशन रहना इसे पादकृच्छ्र कहतेहैं । और इसीको किसीप्रकार तिगुणा करै तो प्राजापत्य कृच्छ्र होजाताहै । एकभक्त, नक्तभोजन, दो अयाचितके चौबीस ग्रास और दो उपवास इसको

अर्द्धकृच्छ्र कहतेहैं । अथवा तीन दिन अयाचित व्रत, तीन दिन उपवास इसको अर्द्धकृच्छ्र कहते हैं । और एकभक्त, नक्तव्रत, अयाचितव्रत और उपवास इनको तिगुना करना वह पादोनकृच्छ्र होताहै।इस पादोन कृच्छ्रके नौ (९) दिनोंमें जो भोजनकी प्राप्तिहै उनमें ग्रासोंकी संख्याके नियमको छोडकर जितना हाथमें आवै उतने भोजनको करना अतिकृच्छ्र होता है । जितनेमें एक ग्रास हो वा जिससे प्राणोंकी धारणा होसकै उतने दुग्धको इक्कीस (२१) दिनतक पीना इसको कृच्छ्रातिकृच्छ्र कहते हैं । एकदिन कुशाओंके जलसहित पंचगव्यका आहार करना और एक उपवास इसको सांतपन कृच्छ्र कहते हैं । पंचगव्य, कुशा, उदक इनको विना मिलाएहुए एक एकको एक एक दिन पीना और एक दिन उपवास इसप्रकार सातदिनका महासांतपनकृच्छ्र होताहै ॥

यतिसांतपनम् ।

त्र्यहं मिश्रितपंचगव्याशने यतिसांतपनम् ॥ तप्तानां दुग्धघृतजलानाम् ॥ एकैकस्य त्रिदिने पानमुपवासत्रयं चेति तप्तकृच्छ्रः ॥ शीतानां पाने शीतकृच्छ्रः ॥ द्वादशाहोपवासेन पराककृच्छ्रः ॥ यद्वा तप्तानां घृतादीनामेकैकदिनेऽशनं चतुर्थ-दिने उपवास इति दिनचतुष्टयसाध्यस्तप्तकृच्छ्रः ॥

और तीनदिन मिलेहुए पंचगव्यको पीना यतिसांतपन होताहै । घी, दूध, जल इनको गरम करके एकएकको तीन दिन पीना और तीन उपवास इसको तप्तकृच्छ्र कहते हैं । और इन ठंडोंके पीनेमें शीतकृच्छ्र होताहै । बारह दिनके उपवासको पराककृच्छ्र कहते हैं । अथवा तपायेहुए घृत आदिका एक एक दिन खाना और एक उपवास इस चारदिनके व्रतको तप्त-कृच्छ्र कहते हैं ॥

अथ यवमध्यचाद्रायणादि ।

शुक्लपक्षे प्रतिपदादितिथिषु मयूरांडसमानैकैकग्रासान् वर्धयन्पूर्णिमायां पंचद-शग्रासाः क्षये चतुर्दशवृद्धौ षोडश संपद्यंते ॥ कृष्णपक्षे एकैकग्रासह्रासेन अमा-यामुपवास इति माससाध्यं यवमध्यसंज्ञं चांद्रायणम् ॥ कृष्णपक्षे प्रतिपदि चतुर्दशग्रासान् भुक्त्वा एकैकग्रासह्रासेन दर्शे अनशनं शुक्ले वृद्धिरिति कृष्णादि-शुक्लांतं पिपीलिकामध्यचांद्रायणम् ॥ कृच्छ्रचांद्रायणादेः त्रिकालस्नानग्रासाभि-मंत्रणादिविधियुतः प्रयोगः प्रायश्चित्तप्रकरणे ज्ञेयः ॥ अतिकृच्छ्रादिलक्षणं प्रसंगा-दत्रोक्तम् ॥ अब्दगणना तु प्राजापत्यकृच्छ्रैरेव ॥

शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर मयूरीके अंडाके समान एक २ ग्रासको बढावै । फिर जब इस प्रकार पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास होजायँ और जो तिथिका क्षय होजाय तो चौदह ग्रास और जो तिथि बढजाय तो सोलह ग्रास होतेहैं । इसी प्रकार फिर कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एकएक ग्रास घटाताहुआ अमावस्याको उपवास करना, यह एक महीनाका यवमध्यनामक चांद्रायण व्रत होताहै । कृष्ण प्रतिपदाको चौदह ग्रास खा कर एकएक ग्रासको तिथिके अनु-सार घटाताहुआ अमावस्याको अनशन करना । और शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे बढाता जाय कृष्णपक्षसे शुक्लपक्षपर्यंतका पिपीलिकामध्य नामक चांद्रायण होताहै । कृच्छ्रचान्द्रायण आदि

व्रतोंका त्रिकालस्नान ग्रास अभिमंत्रण आदि विधिसहित प्रयोग तो प्रायश्चित्तप्रकरण विषे जानना । और अतिकृच्छ्र आदिकोंके लक्षण प्रसंगसे यहां कहे हैं । अब्दोंकी संख्या तो पूर्वोक्त प्राजापत्यकृच्छ्रोंसे समझनी ॥

अथ प्रत्याम्नायाः ।

तत्र प्राजापत्यप्रत्याम्नायाः दशसहस्रगायत्रीजपः १ गायत्र्या सहस्रं तिलहोमः २ कचित्सहस्रं व्याहृत्या तिलहोम उक्तः ३ शतद्वयं प्राणायामाः ४ द्वादशब्राह्मणभोजनम् ५ यावत्केशशोषणं विरम्य तीर्थे द्वादश स्नानानि ६ वेदसंहितापारायणम् ७ योजनयात्रा ८ द्वादशसहस्रं नमस्काराः ९ द्वात्रिंशदुत्तरशतं प्राणायामान् कृत्वा अहोरात्रमुपोषितः प्राङ्मुखस्तिष्ठेत् १० गोमूत्रेण यावकभक्षणे ऐकाहिककृच्छ्रम् ११ कश्चिद्रुद्रैकादशिनीजपात्कृच्छ्रमाह १२ पावकेष्टिः १३ पावमानेष्टिः १४ षडुपवासाः प्राजापत्यप्रत्याम्नायाः १५ एकविप्रभोजनमुपवासस्य अत्यशक्तौ सहस्रगायत्रीजपो द्वादशप्राणायामा वेति स्मृत्यर्थसारे १६ "प्राजापत्येष्वशक्तस्तु धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ धेनोरभावे निष्कं स्यात्तदर्धं पादमेव वा" ॥ अशीतिगुंजात्मकः कर्षः चत्वारः कर्षा निष्कं निष्कनिष्कार्धनिष्कपादान्यतमप्रमाणं हेम रौप्यं वा धेनुमूल्यं वा देयम् ॥ अत्यशक्तेन निष्कपादार्धरजतं तत्समं धान्यादि वा देयम् ॥ अतिकृच्छ्रे गोद्वयम् ॥ सांतपने गोद्वयम् ॥ पराके तप्तकृच्छ्रे च गोत्रयम् ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रे गवां चतुष्टयं गोत्रयं वा ॥ चांद्रायणेऽष्टौ पंचचतस्रस्तिस्रो वा गावः ॥ मासं पयोव्रते यावकव्रते मासोपवासे च पंच गावः ॥ मासं गोमूत्रयावकव्रते षड् गावः ॥

अब इनके प्रत्याम्नायरूप कर्मोंको कहते हैं । प्राजापत्य व्रतका प्रत्याम्नायकर्म दशहजार गायत्रीका जप, गायत्रीमंत्रसे तिलोंकी सहस्र आहुति, कहीं व्याहृतियोंसे सहस्र आहुति तिलोंकी कहीहैं । दोसौ (२००) प्राणयाम और बारह ब्राह्मणोंको भोजन । जितने कालमें केश सूखैं उतने काल ठहरकर तीर्थके विषै द्वादशबार स्नान, वेदकी संहिताका पाठ, एक योजन चलना, बारह हजार नमस्कार, एकसो बतीस प्राणायाम करके एक दिन एक रात उपवास किये पीछे पूर्वको मुख करके बैठे । गोमूत्रसहित यावक (जौ) के भक्षणसे ऐकाहिक कृच्छ्र होताहै । कोई तो रुद्रैकादशिनीके जपसे कृच्छ्र कहते हैं । पावकेष्टि, पावमानेष्टि, छः उपवास ये प्राजापत्यके प्रत्याम्नायरूप कर्म हैं । एक ब्राह्मणको भोजन कराना उपवासका प्रत्याम्नाय है और जो अत्यंत असमर्थ होय तो सहस्रगायत्रीका जप अथवा बारह प्राणायाम कराने यह स्मृत्यर्थसारमें लिखाहै । यहभी कहाहै कि, प्राजापत्य करनेमें असमर्थ मनुष्य दूधदेती गौको दे । और जो धेनु न होय तो निष्क, आधा वा चौथाई दे । अस्सी चौंटनीका कर्ष होताहै । अथवा चारकर्ष वा निष्क वा निष्कका आधा वा चौथाई निष्क सुवर्ण वा चांदी वा धेनुका मूल्य दे । और जो अत्यंत असामर्थ्य होय तो निष्क वा चौथाई निष्क वा आधा निष्क चांदी वा उसकी बराबर धान्य आदि दे । अतिकृच्छ्रका प्रत्याम्नाय दो गौ, पराक और तप्तकृच्छ्रका तीन गौ, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्रमें चार गौ वा तीन । महीना तक पयोव्रत, यावकव्रत और मासोपवास इनमें पांच गौ । महीनातक गोमूत्र और

यावकके आहाररूप व्रतका छः गौ, चांद्रायणका आठ, पांच, चार वा तीन गौओंका दानरूप कर्म प्रत्याम्नाय समझना।

अथ प्रायश्चित्तप्रयोगः।

सचैलं स्नात्वाशक्तौ क्लिन्नवासाः पर्षदग्रे गोवृषप्रत्याम्नायं निष्कादिप्रमाणं ब्रह्मदंडं निधाय साष्टांगं प्रणम्य पर्षदं प्रदक्षिणीकुर्यात् ॥ "सर्वे धर्मविवेक्तारो गोप्तारः सकला द्विजाः ॥ मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वंतु द्विजसत्तमाः ॥ मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषम् ॥ प्रसादः क्रियतां मह्यं शुभानुज्ञां प्रयच्छथ ॥ पूज्यैः कृतपवित्रोऽहं भवेयं द्विजसत्तमाः ॥" मामनुगृह्णंतु भवंत इति वदेत् ॥ विप्रैः किं ते कार्यं मिथ्या मावादीः सत्यमेव वदेति पृष्टः स्वपापं ख्यापयेत् ॥ मया मम पत्न्या वा इह जन्मनि जन्मांतरे वा अनपत्यत्वमृतापत्यत्वादि निदानभूतबालघातविप्ररत्नापहारादि दुरितं कृतं तस्य नाशाय करिष्यमाणे हरिवंशश्रवणादौ कर्मविपाकोक्तविधाने अधिकारार्थं दीर्घायुष्मत्पुत्रादिसंततिप्राप्तये प्रायश्चित्तमुपदिशंतु भवंत इति प्रार्थयेत् ॥ ते च पापिना पूजितानुवादकाग्रे षडब्दत्र्यब्दसार्धाब्दान्यतमप्रायश्चित्तेन पूर्वोत्तरांगसहितेनाचरितेन तव शुद्धिर्भविष्यति तेन त्वं कृतार्थो भविष्यसीति वदेयुः ॥ अनुवादकः पापिनं वदेत् ॥ ततः कर्त्ता ॐ इत्यंगीकृत्य पर्षदं विसृज्य देशकालौ संकीर्त्य सभार्यस्य ममैतज्जन्मजन्मांतरार्जितानपत्यत्वमृतापत्यत्वादिनिदानभूतबालघातविप्ररत्नापहारादिजन्यदुरितसमूलनाशकर्मविपाकोक्तविधिनाधिकारसिद्धिद्वारा दीर्घायुष्मद्बहुपुत्रादिसंततिप्राप्तये षडब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दं वा प्रायश्चित्तं पूर्वोत्तरांगसहितममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये इति संकल्प्य दिनांते केशनखरोमादि वापयित्वा स्नात्वा ॥ "आयुर्बलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥ ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते" ॥ इति विहितकाष्ठेन दंतधावनं कुर्यात् ॥ ततो दशस्नानानि ॥ तत्र भस्मस्नानम् ॥ ईशानाय नम इति शिरसि ॥ तत्पुरुषाय नम इति मुखे ॥ अघोराय नम इति हृदये ॥ वामदेवाय नमो गुह्ये ॥ सद्योजाताय नमः पादयोः ॥ प्रणवेन सर्वांगे भस्म विलिंपेत् ॥ ईशानादिपदोपेतैर्मंत्रैर्वा भस्मलेपः ॥

अब प्रायश्चित्तको कहतेहैं। सचैलस्नान जो सामर्थ्य होय तो गीलेवस्त्रोंको पहिरे हुए परिषदके अगाडी गौ और वृषके प्रत्याम्नाय निष्क आदि प्रमाणका जो ब्रह्मदंड है उसको रखकर और साष्टांग प्रणामको करके परिषदकी परिक्रमा करै। और यह कहै कि, हे ब्राह्मणों! आप सब धर्मके ज्ञाता और रक्षा करनेवाले हो आप मेरे शरीरकी शुद्धि करो मैंने जो ज्ञान वा अज्ञानसे महाघोर पाप किया है सो मेरे ऊपर प्रसन्न होकर जिससे वह नष्ट हो ऐसी उत्तम आज्ञा दो। हे ब्राह्मणों! आपकी कृपासे मैं पवित्र हूँ मेरे ऊपर अनुग्रह करो। फिर ब्राह्मण उसे पूँछे कि, तेरा क्या कार्य है सत्य कह मिथ्या मत बोलिये। ऐसा सुनकर अपने पापको विख्यात करै और यह प्रार्थना करै कि, मैं वा मेरी स्त्रीने इस जन्म वा परजन्ममें ऐसा बालघात वा ब्राह्मणोंके रत्नोंकी

चोरीरूप पाप किया हो कि, जिससे मेरे सन्तान नहीं होती वा मेरी सन्तति नष्ट होती है, उसके नाशके लिये मैं कर्मविपाकमें कहा हुआ हरिवंशश्रवण आदि कर्म करूंगा उसमें अधिकार और दीर्घ अवस्थावाली जिससे सन्तति प्राप्तहो ऐसे प्रायश्चित्तको मुझे कहो। फिर वे पापीसे सत्कारको प्राप्त हुए उसके कथनके अनुवाद करनेवाले मनुष्यके अगाडी यह कहैं कि, पूर्व और उत्तर अंगोंसहित छः अब्द, तीन अब्द वा डेढ अब्द प्रायश्चित्तके करनेसे तेरी शुद्धि होजायगी उससे तू कृतार्थ होजायगा। यह सुनकर अनुवादक पापीको कहै।फिर वह कर्ता अच्छा से स्वकिार करके और परिषदको छोडकर आवै। और देशकालका स्मरण करके संकल्प करै कि, स्त्री सहित मैंने इस जन्म वा परजन्ममें बालहिंसा वा ब्राह्मणोंके रत्नोंकी चोरीरूप पाप ऐसा किया है कि, जिससे सन्तान नहीं होती वा मरी होती है उसके समूल नाश करनेके लिये कर्मविपाकमें कही विधिसे अधिकारकी सिद्धिके द्वारा दीर्घ अवस्थावाले बहुतसे पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये षडब्द, अब्द, डेढ अब्दरूप प्रायश्चित्तको अमुक प्रत्याम्नायसे करता हूं। फिर दिनके अन्तमें केश, नख, रोम आदिका मुण्डन कराकर और स्नान कराकर इस वचनसे दन्तधावन को करै कि, हे वनस्पते! तू आयु, बल, यश, तेज,प्रजा, धन, ब्रह्मज्ञान, मेधा इनको दे। फिर उसके अनन्तर दश स्नानोंको करै, उसमें प्रथम भस्म स्नानको इसप्रकार करै कि, 'ईशानाय नमः' इस मन्त्रसे शिरपर, 'तत्पुरुषाय नमः' इस मंत्रसे मुखपर, अघोराय नमः' इस मन्त्रसे हृदयपर, वामदेवाय नमः' इस मन्त्रसे गुह्यपर, 'सद्योजाताय नमः' इस मन्त्रसे चरणोंपर और ॐ कारसे सब अंगमें भस्मको लपेटे। अथवा 'ईशानपादाभ्यां नमः' इसप्रकार पाद शब्दको लगाकर भस्म लगावै॥

अथ गोमयस्नानम्।

गोमयमादाय॥ प्रणवेन दिक्षु दक्षिणभागं तीर्थे चोत्तरभागं प्रक्षिप्य शेषं मानस्तोक इति अभिमंत्र्य गंधद्वारामिति सर्वांगमालिप्य हिरण्यशृंगमिति द्वाभ्यां प्रार्थ्य याः प्रवत इति तीर्थं अभिमृश्य स्नात्वा द्विराचामेत्॥

अब गोमयस्नानको कहते हैं। गोमय लेकर दिशाओंमें उसके उत्तरभागको और तीर्थमें दक्षिणभागको फेंककर शेष रहे गोमयको 'मानस्तोके०' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसको 'गन्धद्वारां दुराधर्षां०' इत्यादि मन्त्रसे सब अंगमें लपेटै। फिर 'हिरण्यशृङ्गम्०' इत्यादि दोमन्त्रोंसे प्रार्थना और 'याः प्रवत०' इस मन्त्रसे तीर्थका स्पर्श करके स्नान करनेके अनन्तर दोबार आचमन करै॥

अथ मृत्तिकास्नानम्।

"अश्वक्रांते रथक्रांते विष्णुक्रांते वसुंधरे॥ शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदेपदे"॥ इति मृत्तिकामभिमंत्र्य॥ "उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्"॥ इति तामादाय॥ नमो मित्रस्येति सूर्याय प्रदर्श्य गंधद्वारामिति मंत्रेण स्योनापृथिवीति मंत्रेण वा इदं विष्णुरिति वा शिरःप्रभृत्यंगानि विलिंपेत्॥ द्विराचामेत्॥

अब मृत्तिका स्नानको कहते हैं। कि, हे अश्वोंसे खोदी ! हे रथोंसे खोदी ! हे विष्णुके चरणोंकी आस्पदरूप पृथिवी ! तुमको शिरपर धारण करताहूं मेरी चरण चरणपर रक्षाकर, इस मन्त्रसे मट्टीको अभिमन्त्रित करै । फिर वराहने जो रसातलसे उखाडी है ऐसी हे मृत्तिके! मैंने जो पाप किये हैं उनको हर । इस मन्त्रसे उस अभिमन्त्रित मट्टीको लेकर ' नमो मित्रस्य० ' मन्त्रसे सूर्यको दिखाकर 'गन्धद्वारां०' इस मन्त्रसे वा ' स्योनापृथिवी०' वा 'इदम्विष्णु०' इस मन्त्रसे शिर आदि समस्त अङ्गोंपर लपेटै फिर दोबार आचमन करै ॥

अथ वारिस्नानम् ।

आपो अस्मानित्युक्त्वा भास्कराभिमुखस्थितः इदं विष्णुर्जपित्वा च प्रतिस्रोतो निमज्जति ततः पंचगव्यकुशोदकैः समंत्रकैः पृथक्पृथक् स्नात्वा स्नानांगतर्पणादि कुर्यात् ॥ विष्णुश्राद्धं पूर्वांगगोप्रदानं च कृत्वाग्निं प्रतिष्ठाप्य ॥ पंचगव्यहोमं व्याहृतिभिरष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिं वाज्यहोमं च कृत्वा व्रतं ग्रहीष्य इति विप्रान्प्रार्थ्य हुतशेषं पंचगव्यं प्रणवेन पिबेत् ॥ मुख्यप्रायश्चित्तकृच्छ्रान्संकल्पानुसारेणानुष्ठाय व्याहृत्याज्यहोमविष्णुश्राद्धगोदानानि पूर्ववत्कुर्यात् ॥ आज्यहोमे पंचगव्यहोमे च इध्माधानादिस्थालीपाकेतिकर्तव्यतां केचिन्नेच्छंति ॥ व्याहृत्याज्यहोमे पापापह-महाविष्णुर्देवतेति केचित् ॥ पंचगव्यविधिस्तु ताम्रे पालाशे वा पात्रे ताम्रायाः गोमूत्रमष्टमाषप्रमाणं गायत्र्यादाय गंधद्वारामिति श्वेतगोः शकृत् षोडशमाषमादाय आप्यायस्वेति पीतगोः क्षीरं द्वादशमाषं दधिक्राव्ण इति नीलगोर्दधि दशमाषं तेजोसि शुक्रमसीति कृष्णगोघृतमष्टमाषमादाय तत्र देवस्यत्वेति कुशोदकं चतुर्माषं प्रक्षिप्य प्रणवेनालोडयेत् ॥ अत्र माषः पंचगुंजात्मकः तत्सप्तपत्रैः साग्रैः कुशैर्जुहुयात् ॥ इरावतीति पृथ्वीम् १ इदं विष्णुरिति विष्णुम् २ मानस्तोकेति रुद्रम् ३ शन्नोदेवीत्यपः ४ ब्रह्मजज्ञानमिति ब्रह्माणं वा अग्निं सोमं च नाम्ना गायत्र्या सूर्यं प्रजापतेनत्वदिति समस्तव्याहृतिभिर्वा प्रजापतिं प्रणवेन प्रजापतिमग्निं स्विष्टकृतं च नाम्नेत्येताः पंचगव्येन अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चेति वा महाविष्णुं वा आज्येनाष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिरित्यन्वाधानम् ॥ स्त्रीशूद्राणां होमो न कार्यः ॥ केचिद्ब्राह्मणद्वारा होमः कार्य इत्याहुः ॥ स्त्रीशूद्राणां पंचगव्यपाने विकल्प इति महार्णवः ॥ स्त्रीशूद्रौ विप्रैः पंचगव्यं कारयित्वा तूष्णीं पिबत इति स्मृत्यर्थसारः ॥ अयं प्रायश्चित्तविधिः कृच्छ्रन्यूनप्रायश्चित्तेषु न कार्यः कृच्छ्रप्रभृतिषु सर्वत्र प्रायश्चित्तेष्वनुष्ठेयः ॥ एवं कृच्छ्राद्यनुष्ठाय सूर्यारुणसंवादमहार्णवादिकर्मविपाकग्रंथोक्तं हरिवंशश्रवणादिकर्म कुर्यात् ॥

अब जल स्नानको कहते हैं। 'आपो अस्मान्०' इस मन्त्रको पढकर सूर्यके सन्मुख खडा होय । फिर ' इदं विष्णुर्विचक्रमे ' इस मन्त्रको जपकर प्रवाहमें गोता लगावै, फिर पंचगव्य और कुशा, जल इनसे मन्त्रोंसहित पृथक्पृथक् स्नान करके अंगतर्पण आदि कर्मको करै ।

विष्णुश्राद्ध और पूर्वांगरूप गोदानको करके अग्निका स्थापन करै । फिर उसमें पंचगव्यसे व्याहृतियोंको पढकर एकसौ आठ वा अठारह आहुति और घीकी आहुति देकर ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करै कि, मैं व्रतको ग्रहण करताहूं । फिर होमसे शेष पंचगव्यको ॐकारसे पीवै । मुख्य प्रायश्चित्त कृच्छ्रव्रतोंको संकल्पके अनुसार करके व्याहृतिसे घीका होम, विष्णुश्राद्ध और गोदान आदिको पूर्ववत् करै । आज्यहोम और पंचगव्यके होमके विषै इन्धन (लकडी) का आधानआदि और स्थालीपाकके शास्त्रोक्तविधिसे करनेकी इच्छा कोई नहीं करते । कोई यह कहते हैं कि, व्याहृतिसे आज्यको होम करनेमें विष्णु देवता है । पंचगव्यकी विधि इस प्रकार है कि, तांबे वा पलाशके पात्रके विषै ताम्रा (रक्त) गौका आठमासे भर गोमूत्र गायत्री मन्त्रसे ले और ' गन्धद्वारां० ' इस मन्त्रसे शुक्ला गौका गोमय सोलह मासे । 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे पीली गौका बारह मासे दूध । 'दधिक्राव्ण० ' इस मन्त्रसे नीली गौका दधि दशमासे । ' तेजोसि० ' इस मन्त्रसे काली गौका घी आठ मासे लेकर मिला ले । उसमें ' देवस्यत्वा० ' इस मन्त्रसे चारमासे कुशोदक गेरकर ॐकार मन्त्रसे सबको विलोले इसमें पांच चौंटनी भरका मासा समझना । उस पंचगव्यको श्वेत जिनके पत्तेहों ऐसे अग्रभागसहित कुशाओंसे अग्निमें होमदे । उसका यह प्रकार है कि, 'इरावती०' इस मन्त्रसे पृथ्वीको, 'इदंविष्णु०' इस मन्त्रसे विष्णुको, 'मानस्तोके०' इस मन्त्रसे रुद्रको, 'शन्नोदेवी०' इस मन्त्रसे जलको। अथवा'ब्रह्मजज्ञानं०'इस मन्त्रसे ब्रह्माको अग्नि और सोमको नाम मन्त्रसे अर्थात् 'अग्नये स्वाहा' इत्यादिसे । गायत्री मन्त्रसे सूर्यको 'प्रजापते नत्वत्०' इस मन्त्रसे वा व्याहृतियोंसे प्रजापतिको । ॐकारसे प्रजापतिको अग्नि और स्विष्टकृत्के नाम मन्त्रोंसे पंचगव्यकी आंहुति दे । अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति वा महाविष्णुको घीकी अट्ठाईस आहुति दे । होमको कहचुके। स्त्री और शूद्रको होम नहीं करना । कोई तो यह कहते हैं कि, ब्राह्मणद्वारा होम करा दे । महार्णवमें यह कहाहै कि, स्त्री और शूद्रोंको पंचगव्यके पीनेमें विकल्प समझना । और स्मृत्यर्थसारका यह मत है कि, स्त्री और शूद्र ब्राह्मणोंसे पंचगव्यको बनवाकर तूष्णीं होमकर पान करैं । यह प्रायश्चित्तकी विधि कृच्छ्रसे कम प्रायश्चित्त हो तो न करनी और कृच्छसे ऊँचे अति कृच्छ्र आदि समस्त प्रायश्चित्तोंमें समझनी । इस प्रकार कृच्छआदि प्रायश्चित्तको करके सूर्य अरुणका संवाद जिसमें है ऐसा महार्णव आदि और कर्मविपाकमें कहे हरिवंश श्रवण आदि कर्मको करै ॥

अथ हरिवंशश्रवणसंकल्पः ।

तत्र शुभे दिने देशकालौ संकीर्त्य अनेकजन्मार्जितानपत्यत्वमृतापत्यत्वादि निदानभूतबालघातनिक्षेपाहरणविप्ररत्नापहरणादिजन्यदुरितसमूलनाशद्वारा दीर्घायुष्मद्बहुपुत्रादिसंततिप्राप्तिकामो हरिवंशं श्रोष्यामि इत्येकस्य कर्तृत्वे दंपत्योः कर्तृत्वे श्रोष्याव इति संकल्प्य गणेशपूजनस्वस्तिवाचननांदीश्राद्धानि विनायकशांतिं च कृत्वा हरिवंशश्रवणार्थं श्रावयितारमेकं त्वां वृण इति विप्रं वृत्वा वस्त्रालंकारैः पूजयेत् ॥ वाचकं प्रत्यहं पायसादिना भोजयेत् ॥ दंपती प्रतिदिनं त्रायंतामित्यादिवैदिकैः सुरास्त्वामित्यादिपौराणैश्च मंत्रैः सुस्नातावलंकृतौ तदेकचित्तौ शृण्वंतौ तैलतांबूलक्षौरमैथुनखट्वाशयनानि यावत्समाप्ति वर्जयंतौ हविष्यं भुंजीया-

ताम् ॥ अंते वाचकाय गां सुवर्णत्रयमेकं वा सुवर्णदक्षिणां दत्त्वा प्रत्यवरोहमंत्रेण सहस्रं तिलाज्यं हुत्वा शतं विप्रान् चतुर्विंशति मिथुनानि वा पायसेन भोजयेदिति हरिवंशश्रवणप्रयोगः ॥

तहां शुभ दिन, देश, कालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, अनेक जन्मकी बालहिंसा, ब्राह्मणोंके रत्नोंकी चोरीरूप जो पाप जिससे मेरे संतान नहीं होती है वा मरी होती है उस पापके समूल नाशके द्वारा दीर्घ अवस्थावाले बहुतसे पुत्र आदिकी प्राप्तिके लिये हरिवंशको सुनताहूं और जो दोनों स्त्रीपुरुष सुननेको संकल्प करैं तो 'श्रोष्याव:'(सुनते हैं) ऐसा कहना । फिर गणेशपूजन, स्वस्तिवाचन, नांदीश्राद्ध, विनायकशांति इनको करके ब्राह्मणका वरण करे । कि, हरिवंशके सुननेके लिये सुनानेवाले आपका वरण करताहूं । फिर वस्त्र अलंकारोंसे उसका पूजन करै । और उस पण्डितको नित्य पायस आदिसे भोजन करावै । वे दोनों स्त्री और पुरुष प्रतिदिन 'अयंतां०' इत्यादि वेदके मन्त्र और 'सुरास्त्वां०' इत्यादि पौराणिक मन्त्रोंसे भले प्रकार स्नान और आभूषणोंको पहरकर तैल, तांबूल, क्षौर, मैथुन खट्वापर शयन इनको समाप्ति पर्यंत न करतेहुए हविष्य भोजन करैं । समाप्तिके अन्तमें कथा बांचनेवालेको एक गौ वा तीन वा एक सुवर्ण सुवर्णकी दक्षिणा देकर फिर प्रत्यवरोहमन्त्रसे एक सहस्र तिल मिश्रित घीकी आहुति देकर सौ (१००) ब्राह्मणोंको वा चौबीस स्त्री पुरुषोंके मिथुन (जोडा) को खीरसे भोजन करावै । हरिवंशके श्रवणकी विधि समाप्त हुई ॥

अथ विधानांतराणि ।

"सौवर्णं बालकं कृत्वा दद्याद्दोलासमन्वितम् ॥ अथवा वृषभं दद्याद्विप्रोद्वाहनमेव वा ॥ महारुद्रजपो वापि लक्षपत्रैः शिवार्चनम् ॥ स्वर्णधेनुः प्रदातव्या सवत्सा वा यथाविधि ॥ घृतकुंभप्रदानं वा संक्षेपादिदमीरितम् ॥" अथवा प्रत्यहं पार्थिवलिंगपूजां कृत्वा अभिलाषाष्टकजपं संवत्सरं कुर्यात ॥ अभिलाषाष्टकस्तोत्रं कौस्तुभे ज्ञेयम् ॥ एवमपि फलाप्राप्तौ दत्तकपुत्रो ग्राह्यः ॥

अब अन्य विधिको कहते हैं । अथवा सुवर्णका बालक बनाकर दोलासहित ब्राह्मणको दे । अथवा वृषभ वा ब्राह्मणको सवारी दे । अथवा महारुद्रका जप वा लक्ष बेलपत्रोंसे शिवजीका पूजन करै । वा सुवर्णकी धेनु बछडासहित दे । वा घृतसे भरे घटका दान करै यह संक्षेपसे कहा । अथवा प्रतिदिन शिवजीका पार्थिवलिंग बनाकर अभिलाषाष्टकका जप वर्ष दिनतक करै । अभिलाषाष्टक स्तोत्र कौस्तुभग्रन्थमें समझना । इस प्रकार भी पुत्रके फलकी प्राप्ति न होय तो दत्तकपुत्र ग्रहण करना ॥

अथ दत्तके ग्राह्याग्राह्यविचारः ।

ब्राह्मणानां सोदरभ्रातृपुत्रो मुख्यत्वात्प्रथमं ग्राह्यः ॥ तदभावे सगोत्रसपिंडो यः कश्चित्सापत्नभ्रातृपुत्रो वा ॥ तदभावे त्वसगोत्रसपिंडो मातुलकुलजपितृष्वस्रादिकुलजः ॥ तदभावे तु असपिंडः समानगोत्रः ॥ तदभावे तु असपिंडः पृथग्गोत्रोपि ॥ असगोत्रसपिंडेषु भागिनेयदौहित्रौ वर्ज्यौ ॥ एवं विरुद्धसंबंधापत्त्या पुत्र-

बुध्यनर्हो मातुलोपि न ग्राह्यः ॥ अत एव सगोत्रसपिंडेषु भ्राता पितृव्यो वा न ग्राह्यः ॥ विप्रादीनां वर्णानां समानवर्ण एव तत्रापि देशभेदप्रयुक्तगुर्जरत्वांध्रत्वादिना समानजातीय एव ॥ सर्वोपि सभ्रातृक एव ग्राह्यः ॥ तत्रापि ज्येष्ठपुत्रो न ग्राह्यो न देयः ॥ शूद्रस्य दौहित्रभागिनेयावपि ग्राह्यौ ॥ अत्र मूलम्॥ ''भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ॥ सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥'' अनेन वचनेन ''नापुत्रस्य लोकोस्ति जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते'' इत्यादिशास्त्रबोधितस्याप्रजत्वप्रयुक्तदोषस्य निवृत्तिर्विधिना अस्वीकृतेनापि भ्रातृपुत्रेण पितृव्यस्य भवतीति बोध्यते ॥ अतः पुत्रसदृशत्वात् ग्राह्येषु मुख्य इति ज्ञाप्यते ॥ मुख्याभावे तत्सदृशः प्रतिनिधिरिति न्यायात् ॥ न चास्मादेव वाक्याद्विधिवत्प्रतिग्रहं विनैव तस्य पुत्रत्वमिति शंक्यम् ॥ तथा सति औरसदत्तकादिद्वादशविधपुत्रवदेतस्य पत्नीतः पूर्वमेव धनहारित्वपिंडदत्वौचित्येन ''पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा॥ तत्सुता गोत्रजा बंधुः'' इति तत्क्रमवाक्ये भ्रात्रनंतरं भ्रातृसुतनिवेशानुपपत्तेः ॥ तस्मात्पत्नीतः पूर्वं मदीयपिंडदानधनग्रहणेधिकारी कश्चित् भवत्विति कामनायां विधिवत्स्वीकृत एव तथाधिकारी भवति नान्यथा ॥ तादृशकामनाया अभावे तु पितृऋणापाकरणादिपारलौकिकमात्रार्थं दत्तपुत्रो न ग्राह्यः भ्रातृपुत्रेणैव तत्सिद्धेरित्येवं वचनतात्पर्यम् ॥ क्वचिद्देशे वैदिकविधिं विनापि दातृग्रहीतृसंमतिराजपुरुषाद्यनुमत्यादिलौकिकव्यापारमात्रेणोपनयनादिसंस्कारकरणमात्रेण च सगोत्रसपिंडे पुत्रत्वसिद्धिव्यवहारो दृश्यते तत्र मूलं नोपलभ्यते ॥

अब दत्तकपुत्रके ग्राह्यत्व और अग्राह्यत्वका विचार करते हैं । ब्राह्मणोंमें सहोदर भाईका पुत्र मुख्य होताहै इससे प्रथम वहही ग्रहण करना । वह न मिलै तो सगोत्री जो अपना सपिंड हो वा जो मौंसीके पुत्रका पुत्र हो वहभी न होय तो अपना असगोत्री सपिण्ड मामाके कुल वा बुआके कुलमें उत्पन्न हुआ हो और वहभी न होय तो अपने जो सपिण्डका न हो ऐसा सगोत्री, और वहभी न होय तो जो सपिण्ड न हो ऐसा पृथक्गोत्री भी ग्रहण करना।असगोत्र और सपिण्डोंमें भानजा दौहित्र वर्जने। इसीप्रकार जो सम्बन्धमें विरोध आवै तो पुत्र बुद्धिके जो अयोग्य हो ऐसा मामा भी ग्रहण न करना । इसीसे सगोत्र और सपिण्डोंके मध्यमें भ्राता और पितृव्य नहीं ग्रहण करने । ब्राह्मण अपने वर्णका दत्तक ग्रहण करै । और उसमें भी जो देशके भेदसे गुर्जर और अन्ध्र इन जातियोंके प्राप्तहुए हैं उनको अपनी जातिकाही दत्तक ग्रहण करना। यह पूर्वोक्त कहे दत्तकोंमें जो भाई सहित हो वह ही ग्रहण करना । उन में भी जो ज्येठा पुत्र हो वह नहीं ग्रहण करना और न देना । और शूद्र तो दौहित्र (धेवता) और भागिनेय (भानजा) कोभी ग्रहण करले । अब इस दत्तकपुत्रके ग्रहण करनेमें प्रमाण दिखातेहैं कि, एक पितासे उत्पन्नहुए भ्राताओंमें जो पुत्रवाला एक हो उस एकपुत्रसेही सब पुत्रवाले कहेहैं । इस वचनसे यह बात ज्ञापन की कि, जिसके पुत्र न हो उसको

स्वर्गआदि लोककी प्राप्ति नहीं होती और जो उत्पन्न होते हुए ब्राह्मणके साथ तीन ऋण पैदा होतेहैं इत्यादि वचनसे पुत्रसे हीनको दोष कहाहै, अर्थात् दूसरा पितृऋण पुत्रके विना दूर नहीं होता क्योंकि, पुत्रके विना पितरोंका ऋणी रहताहै सो इस दोषकी निवृत्ति पितृव्य (चाचा वा ताऊ) को वक्ष्यमाण विधिसे भाईके पुत्रके ग्रहण किये विनाभी होजातीहै। इससे यह बात भी समझनी कि, ग्रहण करनेयोग्य दत्तकपुत्रोंमें भाईका पुत्रही पुत्रकी समान होनेसे मुख्य है। क्योंकि,यह न्याय है कि, जो मुख्य पुरुष आदि न होय तो उसके कर्म आदि करनेमें उस मुख्यके सदृश जो हो वह प्रतिनिधि होताहै । कदाचित् कोई कहै कि, इस पूर्वोक्त वचनके बलसे विधिपूर्वक न लेनेसेही उस भ्रातृपुत्रमें पुत्रभावकी सिद्धि है अर्थात् उसको पुनः दत्तक बनाना निरर्थक है सो ठीक नहीं। क्योंकि, इसप्रकार मानोगे तो पत्नी, दुहिता (पुत्री), माता, पिता, भ्राता और भाईके पुत्र सगोत्री बांधव ये पुत्रके न होनेपर क्रमसे धनके भागी तथा पिण्डदानके अधिकारी होते हैं। अर्थात् पत्नी न होय तो पुत्री इत्यादि वचनमें भाईके न होनेपर जो उसके पुत्रको धनआदिका अधिकार कहना वह असंगत होजायगा क्योंकि, तुम्हारे तात्पर्यके अनुसार औरस, दत्तक आदि द्वादशपुत्रोंकी समान इस भाईके पुत्रोंको स्त्रीसे पहिलेही अर्थात् स्त्रीके होतेही धन और पिण्डदानका अधिकार सिद्धहै। इससे उसे पूर्वोक्तवचनमें भाईसे पीछे पढना किस प्रकार संगत होसक्ताहै। इससे यह तात्पर्य समझना कि, जो पुरुष मेरी स्त्रीके पहिले मेरे पिण्डोंका दान और धनके ग्रहण करनेमें कोई अधिकारी हो ऐसी कामना (इच्छा) से जो विधिपूर्वक स्वीकार किया जायगा वही स्त्रीसे पूर्व अधिकारी होता है अन्य नहीं। और जो यह कामना न होय तो पिताके ऋणके दूर करनेमात्र आदिके लिये दत्तक पुत्र न ग्रहण करना क्योंकि, उस ऋणकी निवृत्ति तो भाईके पुत्रसेही सिद्ध होचुकी। और किसीदेशमें तो यह रीति देखीजाती है कि, दाता और ग्रहण करनेवालेकी और राजाके पुरुष (तहसीलदार आदि) की संमति होजाय कि, मैंने यह लिया इस लौकिक कार्यके करनेसे और यज्ञोपवीत आदि संस्कारसे सपिण्ड उस दाताके पुत्र का पिता होजाताहै, सो उसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता ॥

अथ सपत्न्याः सपुत्रत्वे सपत्न्या न ग्राह्यः ।

"सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥ सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रिण्यो मनुरब्रवीत्" ॥ इति वचनं तु सापत्नपुत्रस्यागृहीतस्यापि पुत्रत्वपिंडदानाद्यधिकारित्वविधायकम् ॥ तेन एकसपत्न्याः सपुत्रत्वे अन्यसपत्न्या पुत्रो न ग्राह्यः ॥ "दौहित्रो भागिनेयश्च शूद्राणां विहितः सुतः ॥ ब्राह्मणादित्रये नास्ति भागिनेयसुतः क्वचित्" ॥ न त्वेवैकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वेति न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यादिति च ॥ अत्रौरसानेकपुत्रेण पुत्रदानं कार्यमिति विधीयते ॥ तेन पूर्वं दत्तको गृहीतस्तत औरसो जातस्तादृशानेकपुत्रेण दत्तक एकल औरसो वा न देयः ॥ सधवया स्त्रिया पत्यनुज्ञया पुत्रो गृहीतव्यो दातव्यश्च ॥ भर्त्रनुज्ञाभावे तु न ग्राह्यो न देयः ॥ एवं विधवयापि स्त्रिया त्वया पुत्रः स्वीकार्य इत्युक्ता भर्तरि मृते ग्राह्यः ॥ स्पष्टमीदृशानुज्ञाभावे भर्तृजीवनदशायां तन्मरणोत्तरं आप्तमुखाद्वा पुत्रस्वीकारविषयक-

भर्त्रभिप्रायं ज्ञांतवत्यापि ग्राह्य इति सर्वसंमतम् ॥ एतदुभयविधभर्त्रनुज्ञाभावेपि तत्तच्छास्त्रात् नित्यकाम्यव्रतादिधर्माचरण इव पुत्रप्रतिग्रहेपि नापुत्रस्य लोकोस्तीत्यादिसामान्यशास्त्रादेव विधवाया अधिकारः ॥ न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्र भर्त्रनुज्ञानादिति वसिष्ठवाक्यं तु भर्त्रनुज्ञारहितां प्रति पुत्राप्रतिग्रहाभ्यनुज्ञापरं न तु पुत्रप्रतिग्रहनिषेधपरम् ॥ शास्त्रप्राप्तनिषेधायोगात् ॥ अतस्तादृशस्त्रियाः पुत्रप्रतिग्रहप्रतिबंधेन वृत्तिलोपपिंडविच्छेदादि कुर्वन्नरकभाग्भवति "यो ब्राह्मणस्य वृत्तौ तु प्रतिकूलं समाचरेत् ॥ विड्भुजां तु कृमीणां स्यात्" इति शास्त्रादिति कौस्तुभे विस्तरः ॥ स्त्रीभिः पुत्रस्वीकारे व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादिकं कार्यम् ॥ एवं शूद्रेणापि ॥ विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय वैदिकमंत्रैस्तदीयहोमादि करोति तत्र शूद्रः पुण्यफलभाग्भवति किंतु विप्रस्यैव प्रत्यवायः ॥ पुत्रं प्रतिगृह्य ग्रहीत्रा जातकर्माद्याश्चूडाद्या वा संस्काराः कार्या इति मुख्यपक्षः ॥ असंभवे सगोत्रसपिंडेषु कृतोपनयनोपि विवाहितोपि वा दत्तको भवति ॥ असंजातपुत्र एव विवाहितो ग्राह्य इति मे भाति ॥ असपिंडसगोत्रेषु कृतोपनयन एवेत्यपि भाति ॥ भिन्नगोत्रस्तु अकृतोपनयन एव ग्राह्यः ॥ केचित्तु कृतोपनयनोपि भिन्नगोत्रो ग्राह्य इत्याहुः ॥ ॥ इति ग्राह्याग्राह्यविवेकः ॥

और जो यह वचन है कि, एक मनुष्यकी स्त्रियोंमें जो एकके पुत्र होय तो उस पुत्रसे सब पुत्रवाली होतीहैं सो यह वचन इस बातको सिद्ध करता है कि, सपत्नी (सौत) का पुत्र जो न ग्रहण कियाभी हो उसको भी अपनी मौसीके धन और पिण्डदानका अधिकारहै। तिससे जो एक सपत्नीके पुत्र होय तो अन्य सपत्नी दत्तकपुत्रको न ले। अब पूर्व कहे शूद्रको भागिनेयके ग्रहण करनेका अधिकार और अन्य तीनों वर्णोंको उसका अभाव दिखातेहैं कि, शूद्रोंको दौहित्र और भागिनेय दत्तक पुत्र कहेहैं और ब्राह्मणआदि तीनवर्णोंको भागिनेयमें पुत्रत्व कहीं न लिखा। एक पुत्र होय तो उसको न ग्रहण करै और न दे और न ज्येष्ठपुत्रको दे। और जिसके अनेक औरस पुत्र होयँ तो पुत्रका दान नहीं करना यह बात शास्त्रसे विहित है। तिससे यह बात सिद्ध हुई कि, जिसने पूर्व दत्तकपुत्र ग्रहण कर लिया हो और पीछेसे औरस पुत्र होजाय तो उसको दत्तक वा अकेला औरस पुत्र न देना।सौभाग्यवती स्त्री पतिकी आज्ञासे दत्तकको ग्रहण करले और दे दे। और जो पतिकी आज्ञा न होय तो न ग्रहण करै और न दे।इसी प्रकार विधवा स्त्री भी 'तू दत्तकको ग्रहण करलीजो' इस प्रकार आज्ञा देकर पति मरजाय तो दत्तकको ग्रहण करले और जो ऐसी आज्ञा स्पष्ट न होय तो उसके जीनेपर वा उसके मरे पीछे किसी आप्त (यथार्थवादी) मनुष्यके मुखसे यह अभिप्राय प्रतीत होजाय कि, इसकी पुत्रके ग्रहण करनेकी इच्छा है तो इस आशयके जाननेवाली भी ग्रहण करले यह बात सबको इष्ट है। और जो इन पूर्वोक्त दोनों प्रकारसे पति आज्ञा न होय तो भी विधवा स्त्रीको शास्त्रमें कहे वचनके बलसे जैसे नित्य काम्य आदि व्रत करनेका अधिकार है, तिसी प्रकार जिसके पुत्र न हो उसको स्वर्ग आदिकी प्राप्ति नहीं होती। इस वचनसे पुत्रके प्रतिग्रह लेनेका भी अधिकार समझना। और जो यह वशिष्ठका वाक्य है कि, भर्ताकी आज्ञाके विना स्त्री पुत्रको न ले और

न दे। सो यह वचन पतिकी आज्ञा जिसको न हो वह पुनः पुत्रके ग्रहण करनेकी आज्ञा न ले इस विषयमें समझना कुछ पुत्रके ग्रहण करनेके निषेधमें नहीं। क्योंकि, कोई शास्त्रमें निषेध विधायक वाक्य नहीं। इससे जो मनुष्य स्त्रीको दत्तक पुत्रके लेनेमें निषेध करै वह वृत्तिलोप और पिण्ड आदिके लोप करनेसे नरकका भागी होता है। क्योंकि, यह शास्त्रमें लिखाहै कि, जो ब्राह्मणकी वृत्तिमें प्रतिकूलकर्म करता है वह विष्ठाखानेवाले कृमियोंके मध्यमें जन्म लेता है यह कौस्तुभ ग्रंथमें कहा निर्णय समझना। स्त्री पुत्रको ग्रहण करे तो व्रत आदिके समान ब्राह्मणके द्वारा होम आदि करावै। इसी प्रकार शूद्रको भी समझना क्योंकि, जो ब्राह्मण शूद्र आदिसे दक्षिणा लेकर वेदोक्त मंत्रोंसे होम करता है वहां शूद्र उस होमके पुण्यरूपी फलको प्राप्त होता है और निषेधजन्य (उत्पन्न) दोषका भागी ब्राह्मणही होता है। पुत्रको ग्रहण करके लेनेवाला जातकर्म वा मुण्डन आदि संस्कारोंको करै यह तो मुख्यपक्ष है। और जो यह होसकै तो सगोत्री और सपिण्डोंसे लिये पुत्र उपनयन और विवाह हुआभी दत्तक होजाता है यह बात मुझको प्रतीत होती है कि, जिसके पुत्र न हुआ हो वही विवाहित पुत्र ग्रहण करने योग्य है इतर नहीं। और जो न सपिण्ड हों और सगोत्री हों उनका जिसका उपनयन हों लिया हो वही ग्राह्य होताहै इतर नहीं । और जो समानगोत्री न हो वह उपनयन संस्कारके विना भी ग्रहण करना। और कोई यह कहते हैं कि, जिसका उपनयन संस्कार होलिया हो वह भी भिन्नगोत्री ग्रहण करना यह कोई कहते हैं । यह ग्राह्याग्राह्यका निर्णय कहचुके ॥

अथ ऋग्वेदिना पुत्रप्रतिग्रहप्रयोगः।

पूर्वेद्युः कृतोपवासः पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य ममाप्रजस्त्वप्रयुक्तपैतृकऋणापाकरणपुन्नामनरकत्राणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शौनकोक्तविधिना पुत्रप्रतिग्रहं करिष्ये ॥ तदंगत्वेन स्वस्तिवाचनं आचार्यवरणं विष्णुपूजनमन्नदानं च करिष्ये ॥ आचार्यमधुपर्कांते विष्णुं संपूज्य ब्राह्मणादिभोजनं संकल्पयेत् ॥ आचार्यः यजमानानुज्ञया पुत्रप्रतिग्रहांगत्वेन विहितं होमं करिष्य इति संकल्प्य अग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यंते सकृदग्निं सूर्यासावित्रीं षड्वारं चरुणा अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्यन्वाधाय अष्टाविंशतिमुष्टीस्तूष्णीं निरूप्य तथैव प्रोक्ष्याज्योत्पवनांतं कुर्यात् ॥ दातारं गत्वा एतस्मै पुत्रं देहीति याचयेत् ॥ दाता देशकालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुत्रदानं करिष्ये इति संकल्प्य गणपतिपूजनांते प्रतिग्रहीतारं यथाशक्ति संपूज्य ॥ ये यज्ञेनेति पंचानां नाभानेदिष्टो मानवो विश्वेदेवास्त्रिष्टुप् ॥ पंचम्यनुष्टुप् ॥ पुत्रदाने विनियोगः ॥ ये यज्ञेनेति ऋक् पंचकांते इमं पुत्रं तव पैतृकऋणापाकरणपुन्नामनरकत्राणसिद्ध्यर्थमात्मनः श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तुभ्यमहं संप्रददे न मम ॥ प्रतिगृह्णातु पुत्रं भवान् इति प्रतिग्रहीतृहस्ते जलं क्षिपेत् ॥ ग्रहीता देवस्यत्वेति हस्तद्वयेन प्रतिगृह्य स्वांके उपवेश्य अंगादंगात्संभवसीति मंत्रेण मूर्धनि जिघ्रेत् ॥ वस्त्रकुंडलाद्यलंकृतं गीतवाद्यैः स्वस्तिमंत्रैश्च स्वगृहमानीय पादौ प्रक्षाल्याचम्याचार्यदक्षि-

णतः स्वयं स्वदक्षिणे भार्योत्संगे पुत्र इत्युपविशेत् ॥ आचार्यो बर्हिरासादनाद्याज्यभागांते चरुमवदाय ॥ यस्त्वाहृदेति द्वयोरात्रेयो वसुश्रुतोग्निस्त्रिष्टुप् पुत्रप्रतिग्रहांगहोमे वि० ॥ यस्त्वाहृदेति ऋग् द्वयेनैकमेवावदानं जुहुयात् ॥ यजमानोग्नय इदं न मम तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यासावित्री सूर्यासावित्र्यनुष्टुप् ॥ सूर्यासावित्र्या इदं० सोमो ददिति पंचानां सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री अनुष्टुभाजगती त्रिष्टुबनुष्टुप् ॥ ॐ सोमो ददत् ऋक् ५ पंचस्वपि सूर्यासा० एवं सप्तचर्वाहुतीर्हुत्वाज्यं व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा स्विष्टकृदादि समाप्याचार्याय धेनुं दत्त्वा विप्रान् भोजयेत् ॥

अब ऋग्वेदियोंकी दत्तकपुत्रके लेनेकी विधिको कहते हैं। पहिले दिन उपवास करै। फिर हाथोंको पवित्र करके और प्राणोंको रोककर अर्थात् प्राणायाम करके देश कालका स्मरण करके संकल्प करै कि, मैं अपने पुत्रके न होनेसे जो पितृऋण है उसके दूर करनेसे पुन्नामा नरकसे रक्षाके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये शौनककी कही हुई विधिसे पुत्रका प्रतिग्रह करता हूं। और उसके अंगरूप स्वस्तिवाचन, आचार्यका वरण, विष्णुका पूजन और अन्नका दान करता हूं। आचार्यको मधुपर्कके अंतमें विष्णुका पूजन करके भोजनका संकल्प करै। फिर आचार्य यजमानकी आज्ञासे मैं पुत्रके प्रतिग्रहरूप अगरूप विहित कर्मको करताहूं यह संकल्प करै। फिर अग्निकी प्रतिष्ठा करके, 'चक्षुषी आज्येन' इस वाक्यपर्यंत मंत्रको पढकर एक घीकी आहुति अग्निको, गायत्रीको और फिर चरुकी छःछः आहुति अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापतिको और फिर शेष घीकी आहुति स्विष्टकृत्को दे। इस प्रकार अन्वाधान करके फिर अट्ठाईस मुष्टि तूष्णीं स्थापन करके और उसी प्रकार प्रोक्षण करके आज्योत्पवन पर्यंत कर्मको करै। फिर दाताके पास जाकर आचार्य कहै कि, इसको पुत्र दे। फिर दाता देशकालका स्मरण करके संकल्प करे कि, परमेश्वरकी प्रीतिके लिये पुत्रदान करताहूं। फिर संकल्पके अंतमें गणपतिका पूजन करके प्रतिग्रहीता (लेनेवाला) का विधिपूर्वक पूजन शक्तिके अनुसार करे। फिर 'ये यज्ञेन०' इत्यादि मंत्रको इस प्रकार कहकर विनियोग करे कि, 'ये यज्ञेनेतिपंचानां पांचोंके नाभानेदिष्टो मानवोविश्वेदेवा देवता हैं और त्रिष्टुप्पंचम्यनुष्टुप् पुत्रदाने' छंद है और विनियोग है। फिर 'ये यज्ञेने०' इत्यादि पांच ऋचाओंके पढनेके अंतमें कहै कि, तेरे पितृऋणके दूरीकरणमें और पुन्नाम नरककी रक्षाके लिये और अपने ऊपर श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये इस पुत्रको तुझे देता हूं इसमें मेरा स्वत्व नहीं। इस प्रकार कहनेके अनंतर, प्रतिग्रहीताके हाथमें आप ग्रहण करो ऐसा कहकर जल गेरै। प्रतिग्रह लेनेवाला 'देवस्य' इत्यादि मंत्रको पढकर पुत्रको दोनों हाथोंमें लेकर गोदीमें बैठाले और फिर 'अंगादंगात्संभवसि०' इस मंत्रको पढकर मस्तकको सूंघे। फिर उस पुत्रको वस्त्र, कुंडल आदिसे शोभित करके गाजे बाजेसे स्वस्तिवाचनके मंत्रोंको पढता हुआ अपने घर लावै और चरणोंको धोकर और आचमन करके आपही आचार्यसे दाहिनी तरफ बैठी हुई अपनी स्त्रीकी गोदमें रख दे। फिर आचार्य अग्निके चारोंतरफ बर्हिका आस्तरणसे लेकर आज्यभागपर्यंत कर्म करनेके अंतमें चरुको हाथमें लेकर 'यस्त्वाहृद०' इत्यादि दो ऋचाओंसे एकबारही होम कर दे। 'यस्त्वाहृद०' इत्यादि ऋचाओंका विनियोग इस प्रकार पढना कि, 'यस्त्वाहृदेति द्वयोरात्रेयोवसुश्रुतो-

ग्निस्त्रिष्टुप्छंद है पुत्रप्रतिग्रहांगहोमे विनियोग०' फिर यजमान 'अग्नेये' इस मंत्रसे अग्निको और 'तुभ्यमग्ने पर्यवहन्०' इस मंत्रसे सूर्यासावित्रीको और 'सोमोददत्०'इत्यादि पांच ऋचाओंसे फिर सूर्यासावित्रीको आहुति दे। इन पूर्वोक्त मंत्रोंका इस प्रकार विनियोग है कि, 'तुभ्यमग्ने यह पढकर सूर्यासावित्रीके लिये यह स्वाहा है। 'सोमोददत्' इन पांचों मंत्रोंका सूर्यसावित्री देवता है, अनुष्टुप्जगतीत्रिष्टुप् छंद है और 'सोमोददत्' इन पांचों ऋचाओंमेंभी सूर्यसावित्री देवता हैं। इस प्रकार सात चरुकी आहुति देकर और फिर 'भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इन व्यस्त जुदी २ समस्त इकट्ठी व्याहृतियोंसे होम करै। फिर स्विष्टकृत् आदिके होमको समाप्त करके, आचार्यको गौ दे और ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥

अथ यजुर्वेदिनां बौधायनोक्तरीत्या प्रयोगः।

तत्र राज्ञः शिष्टानां बंधूनां चानुमतिं लब्ध्वा संकल्पादि आचार्यपूजनांतं प्राग्वत्कुर्यात् ॥ ब्राह्मणभोजनसंकल्पांते आचार्यो देवयजनोल्लेखनादि आप्रणीताभ्यः कुर्यात् ॥ ग्रहीता दातुः समक्षं गत्वा पुत्रं मे देहीति स्वयमेव भिक्षेत् ॥ दाता ददामीत्याह ॥ ततो दातुः संकल्पादि पुत्रदानांतं पूर्ववत् ॥ ग्रहीता धर्माय त्वा गृह्णामि संतत्यै त्वा गृह्णामीति परिगृह्यैनं पुत्रं वस्त्रकुंडलांगुलीयकैरलंकुर्यात् ॥ आचार्यः कुशमयं बर्हिः पालाशमयमिध्मं च संपाद्य परिधानप्रभृति अग्निमुखं कृत्वा चरुश्रपणासादनांते पूर्वांगहोमं कृत्वा यस्त्वा हृदा कीरिणेति पुरोनुवाक्यामुक्त्वा यस्मै त्वं सुकृते इति याज्यया हुत्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादि कुर्यात् ॥ आचार्याय दक्षिणावस्त्रकुंडलांगुलीयकं दद्यादिति ॥ परगोत्रोत्पन्नदत्तकस्योपनयनमात्रे पालकगोत्रेण कृते उपनयनोत्तरं प्रतिग्रहे वा दत्तकेनाभिवादनश्राद्धादि कर्म सुगोत्रद्वयोच्चारः कार्यः ॥ चूडादिसंस्कारे पालकेन कृते पालकैकगोत्र एव ॥

अब यजुर्वेदियोंकी दत्तकके लेनेकी विधि बौधायनने इस प्रकार कही है कि, राजा और शिष्टबांधवोंकी संमति लेकर संकल्पसे लेकर आचार्यके पूजनपर्यंत कर्मको पूर्ववत् करै। फिर ब्राह्मणभोजन और संकल्पके अंतमें आचार्य, देव, यजमानके उल्लेखन (नामलेना) से लेकर प्रणीतापर्यंत कर्मको करे। फिर प्रतिग्रहीता, दाताके सन्मुख जाकर मुझे पुत्र दे इस प्रकार स्वयंही पुत्रकी याचना करे। दाता, देताहूं इस प्रकार कहे। दाताकी संकल्पसे लेकर पुत्रदानपर्यंत विधि पूर्वके समान समझनी। फिर ग्रहीता धर्मरक्षा और सन्ततिके लिये तुझे ग्रहण करताहूं इस प्रकार कहकर उस पुत्रको ग्रहण करके वस्त्र, कुण्डल, अंगुलीयक (अंगूठी) इनसे भूषित करे। फिर आचार्य कुशाओंका बर्हि ढाककी लकडीको लाकर परिधानसे लेकर अग्निका मुख बनाकर उसपर चरुको पकावे। फिर उसको रखकर और पूर्व अंगरूप होमको करके 'यस्त्वाहृदाकीरिणा०' इस मंत्रको अगाडी पढकर 'यस्मैत्वंसुकृते०' इस मंत्रसे एक आहुति देकर फिर 'भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इन व्याहृतियोंसे होम करके, स्विष्टकृत आदि होमको करे। आचार्यको दक्षिणा, वस्त्र,

कुण्डल, अंगुलीयक इनको दे । जो दूसरे गोत्रमें उत्पन्न हुए दत्तकका यज्ञोपवीतरूप कर्म पालक (पालनेवाला) ने किया हो वा उपनयनके अनन्तर ग्रहण किया होय तो उस दत्तकको नमस्कार और श्राद्ध आदि कर्ममें दोनों गोत्रोंका उच्चारण करना । और मुण्डन आदि संस्कार पालकने किये होयँ तो केवल एक पालकके गोत्रकाही उच्चारण करना ॥

अथ विवाहादौ गोत्रविचारः ।

विवाहे तु सर्वदत्तकेन जनकपालकयोरुभयोरपि पित्रोर्गोत्रप्रवरसंबंधिनी कन्या वर्जनीया ॥ नात्र साप्तपुरुषं पांचपुरुषमित्येवं पुरुषनियम उपलभ्यते ॥

विवाहके विषै तो यह व्यवस्था है कि, सब ब्राह्मण आदि दत्तक अपना पिता और पालक (ग्रहीता) इन दोनोंके गोत्र और प्रवरकी कन्याको न विवाहै । यहां कोई यह नियम नहीं मिलता कि, सातमी वा पांचमी पीढी पर्यंतमें न हो वह कन्या न विवाहनी ॥

अथ दत्तकसापिंड्यविचारः ।

सापिंड्यं तु जनकगोत्रेणोपनयने जनकपितृमात्रोः कुले साप्तपुरुषं पांचपुरुषं ग्रहीतृमातृपितृकुले त्रिपुरुषम् ॥ ग्रहीतृगोत्रेणोपनयनमात्रे कृते उभयत्र पांचपुरुषं पितृकुले मातृकुले तु त्रिपुरुषम् ॥ जातकर्माद्युपनयनांतसंस्कारे ग्रहीत्रा कृते ग्रहीतृकुले साप्तपुरुषम् ॥ 'मातृतः पांचपुरुषम्' अतो न्यूनं जनककुले कल्प्यम् ॥ केचित्तु दत्तकप्रवेशे कुलद्वयेपि सर्वथा न्यूनमेव सापिंड्यमित्याहुः ॥ एवंदत्तकसंततेरपि सापिंड्यं ज्ञेयम् ॥

और सपिण्डता तो इसप्रकार समझनी कि, जो जनकके गोत्रसे यज्ञोपवीत हुआ होय तो जनकके (पिताके) कुलमें जो सातमी पीढीतकमें हो और माताकी पांच पीढी तकमें जो हों वे सपिण्ड कहाते हैं । और ग्रहीताके माता और पिताके कुलकी तीन पीढिओंमें जो हों वे दत्तकके सपिण्ड होते हैं । और जो ग्रहीताके गोत्रसे यज्ञोपवीत मात्र संस्कार हुआ होय तो दोनों जनक और पालकके पिताकी पांच पीढीतकमें जो मिलें और माताके तीन पीढीतकमें जो मिलैं वे सपिण्ड होते हैं । और जो जातकर्मसे लेकर उपनयन पर्यंत संस्कार ग्रहीताने किये होयँ तो ग्रहीताके पिताके कुलमें जो सात पीढीतकमें हों और मातासे पांच पीढीतकमें हों वे सपिण्ड होते हैं । और इनसे न्यून जनकके कुलमें समझने । और कोई तो यह कहते हैं कि, दत्तकके प्रवेश होनेपर दोनों कुलोंमें सर्वथा न्यूनही सपिण्ड समझना । इसीप्रकार दत्तककी सन्ततिके सपिण्ड समझने ॥

अथ दत्तकसूतकविचारः ।

दत्तकस्य मरणे पूर्वापरपित्रोस्त्रिरात्रम् ॥ सपिंडानामेकाहमाशौचम् ॥ उपनीतदत्तकमरणादौ पालकसपिंडानां दशाहादीति नीलकंठीये दत्तकनिर्णये ॥ एवं दत्तकेनापि पूर्वापरपित्रोर्मृतौ त्रिरात्रम् ॥ पूर्वापरसपिंडानां मरणे एकाहम् ॥ पित्रोरौर्ध्वदैहिककरणे तु कर्मांगं दशाहमेव ॥ दत्तकस्य पुत्रपौत्रादेर्जननमरणयोः सपिंडानामेकाहः ॥ सगोत्रसपिंडे दत्तीकृते तु सर्वेषां दशरात्रमेव ॥

दत्तकके मरनेमें पूर्व पिता और उत्तर पिताको तीनरात आशौच होताहै । और सपिण्डोंको एकदिनका आशौच होताहै । और नीलकण्ठीमें कहे दत्तक निर्णय प्रकरणमें यह लिखाहै कि, जिसका यज्ञोपवीत हो चुकाहो ऐसे दत्तकके मरनेमें पालक और सपिण्डोंको दश दिनका आशौच होताहै। इसीप्रकार दत्तकको भी पहिले और पिछले पिताके मरनेपर तीन रात आशौच होता है । पहिले कुल और पिछले कुलके सपिण्डोंके मरनेमें एक दिनका होताहै । और माता पिताकी और्ध्वदेहिक क्रिया करनी होय तो कर्मका अंगरूप दश दिनकाही आशौच समझना । दत्तकके पुत्र पौत्रआदिके पैदा होने और मरनेमें सपिण्डोंको एक दिनका अशौच होता है । और जो सगोत्री सपिण्डको दत्तक किया होय तो सबको दश रातका ही आशौच होताहै ॥

अथ दत्तकधनभागोक्तिः ।

पत्नीदुहित्रादिसत्त्वेपि दत्तक एव पितृधनभागी भवति ॥ दत्तकग्रहणोत्तरमौरसे जाते दत्तकश्चतुर्थांशभागी न समभागी ॥ केचित्तु प्रतिग्रहीत्रा जाताद्युपनयनांत-संस्कारे विधाने च कृते औरससमानांशभागित्वम् ॥ संस्कारमात्रकरणे विधाना-भावे विवाहमात्रलाभो नान्यधनलाभः ॥ कतिपयसंस्कारकरणे चतुर्थांश-लाभ इत्याहुः ॥

स्त्री और पुत्री आदिके होनेपर भी दत्तकही धनका भागी होताहै । जो दत्तकके लिये पीछे औरसपुत्र होजाय तो दत्तकपुत्र चौथे अंश (हिस्सा) का भागी होताहै बराबरका नहीं । और कोई तो यह कहते हैं कि, जो ग्रहीताने दत्तकके जातकर्मसे लेकर उपनयन पर्यंत संस्कार विधिपूर्वक किये होयँ तो दत्तक औरसके सम (बराबर) अंशका भागी होताहै । और संस्कारमात्र किया हो यह विधान न कियाहो कि, यह धन आदि सब इसकाही है तो वह विवाहमात्रका भागी है अन्य धन उसको नहीं मिलसक्ता । और जो कई संस्कार किये होयँ तो चतुर्थ अंशका भागी होताहै यह कोई कहते हैं ॥

अथ दत्तौरससमवाये औरसस्यैव पिंडदत्वम् ।

दत्तकसत्त्वेप्यौरसस्यैव पित्रोः पिंडदानेधिकारः ॥ जनकस्य पिंडदाभावे दत्तक एव जनकपालकयोरुभयोरपि श्राद्धं कुर्यात् ॥ धनं चोभयोर्गृह्णीयादिति नीलकंठीये ॥

दत्तकके होते हुएभी औरस पुत्रकोही पिण्डदानका अधिकार है । जो जनक(पूर्वपिता)के कोई पिण्डदान करनेवाला न होय तो दत्तक जनक और पालक इन दोनोंका श्राद्ध करै । और दोनोंके धनको ग्रहण करै । इसीप्रकार दत्तक कन्याके ग्रहणकी विधि समझनी । यह पूर्वोक्त निर्णय नीलकण्ठी ग्रन्थमें समझना ॥

अथ दत्तकन्याविचारः ।

एवं दत्तकन्याया अपि स्वीकार उक्तविधिना कार्यः ॥ तत्र परगोत्रोत्पन्नाया ग्रहणे विवाहे गोत्रद्वयवर्जनं प्राग्वत् ॥ पुत्रपत्न्योरभावे दत्तकन्यैव पितृधनभा-गिनी ॥ इति दत्तोपयोगी सर्वनिर्णयः ॥

अब दत्तक कन्याका विचार करते हैं। वह जो दूसरे गोत्रमें उत्पन्न हुई होय तो उसके ग्रहण करनेमें दोनों गोत्रोंका वर्जना पूर्वकी समान समझना। जो पुत्र और पति न होय तो दत्तक कन्याही सब धनको ग्रहण करै। यह दत्तकका उपयोगी सम्पूर्ण निर्णय समाप्त हुआ।

अथ कन्यानामेवोत्पत्तौ पुत्रार्थं पुत्रकामेष्टिः।

ऋतुकालात्षष्ठे दिने सभार्यः कृताभ्यंगः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य पुत्रकामः पुत्रकामेष्टिं करिष्ये इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादिनांदीश्राद्धांतेग्निं प्रतिष्ठाप्य॥ चक्षुषी आज्येनात्र प्रधानम्॥ अग्निं पंचवारं वरुणं पंचवारं विष्णुं पृथ्वीं विष्णुं सोमं सूर्यासावित्रीं पायसेन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादिनिर्वापकाले तूष्णीं षष्टिमुष्टीन्निरूप्य तथैव प्रोक्ष्य श्वेतवत्सश्वेतगोक्षीरेण चरुं पक्त्वाज्यभागांते॥ आते गर्भ इति सूक्तद्वयस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः॥ क्रमेणाग्नीवरुणौ देवते॥ अनुष्टुब्जगत्यौ छंदसी॥ पायसचरुहोमे वि० ॐ आते गर्भो योनिमैतु पुमान्वाण इवेषुधिम्॥ आवीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा॥ अग्नय इदम्॥ करोमि ते प्राजापत्यमागर्भो योनिमैतु ते अनूनःपुत्रो जायतामश्लोणो पिशाचधीतः स्वाहा॥ अग्नय०॥ पुमांस्ते पुत्रोनारीतं पुमाननुजायताम्॥ तानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयंतु नौ स्वाहा अग्नय०॥ यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयंति नः॥ तैस्त्वं पुत्रान्विंदस्व सा प्रसूर्धेनुकाभव स्वाहा अग्नय०॥ कामः समृध्यतां मह्यमपराजितमेव मे॥ यं कामं कामये देव तन्मे वायो समर्धय स्वाहा अग्नय०॥ अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोस्यै प्रजां मुंचतु मृत्युपाशात्॥ तदयं राजा वरुणोनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघन्नरोदात्स्वाहा॥ वरुणायेद०॥ इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः॥अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानंदमभिप्रबुध्यतामियं स्वाहा॥ वरुणायेदं०॥ माते गृहे निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदंत्यः संविशंतु॥ मात्वंविकेश्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराजपश्यंती प्रजां सुमनस्यमाना स्वाहा॥ वरुणाय०॥ अप्रजस्तां पौत्रमृत्युं पाप्मानमुतवाघम्॥ शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यः प्रतिमुंचामि पाशं स्वाहा॥ वरुणाये०॥ देवकृतं ब्राह्मणकल्पमानं तेन हन्मि योनिषदः पिशाचान्॥ क्रव्यादो मृत्यूनधरान्पातयामि दीर्घमायुस्तव जीवंतु पुत्राः स्वाहा॥ वरुणायेदं०॥ नेजमेषेति तिसृणां विष्णुस्त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णु पृथ्वीविष्णवोनुष्टुप्॥ नेजमेष० विष्णव० यथेयं पृथिवी० पृथिव्या इ० विष्णोः श्रेष्ठेन० विष्णव० सोमो धेनुं राहुगणो गौतमः सोमस्त्रिष्टुप्॥ सोमो धेनुं० सोमायेदं० तां पूषन्सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री त्रिष्टुप्॥ पायसहोमे वि०॥ तां पूषञ्छिव० सूर्यासावित्र्या इ०॥ इति पंचदशाहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृद्धोमं कृत्वा दंपती अपश्यंत्वेति द्वयोः प्रजावान्प्राजापत्यः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् हुतशेषचरुप्राशने विनि०॥ अपश्यंत्वेति द्वाभ्यां प्राश्य॥ पिशंगभृष्टिमित्यस्य दैवो दासिः पारुच्छेप इंद्रो

गायत्री ॥ नाभ्यालंभने विनियोगः ॥ ॐ पिशंगभृ० इति दंपती नाभ्यालंभनं कुर्वताम् ॥ यजमानः प्रायश्चित्तादिहोमशेषं समाप्य ॥ विप्रेभ्यो गां सुवर्णादिदक्षिणां च दत्त्वा रात्रौ दंपती दर्भास्तरणे शयीयाताम् ॥ इति पुत्रकामेष्टिप्रयोगः ॥

अब जो कन्याही उत्पन्न होय तो पुत्रकी कामनावालेको जो यज्ञ कहा है उसको कहते हैं। कि, ऋतुकालसे छठे दिन स्त्रीसहित शरीरमें तैलाभ्यंगको करके प्राणायाम करै । फिर देश कालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, पुत्रकी कामनासे मैं पुत्रकामेष्टि कर्मको करताहूं । फिर स्वस्तिवाचनसे लेकर नांदीश्राद्ध पर्यन्त कर्मको करके अग्निका स्थापन करै ' चक्षुषी आज्येन० ' इस मन्त्रसे अग्नि, वरुण इनको पांच आहुति तथा विष्णु, पृथिवी, सोम, सूर्यासावित्री इनकी आहुति और शेष पायससे स्विष्टकृत् होम करे। इत्यादि कर्मके किये पीछे चरुको निर्वाप (रखना) कालमें तूष्णीं (मौन) होकर साठ मुट्ठियों रखकर और उनको पूर्वकी समान छिडककर श्वेत गौके दूधमें चरुको पकावे । फिर इस वक्ष्यमाण सूक्तसे होम करै कि, " आतेगर्भोयोनिमैतुपुमान्वाणइवेपुधिं आवीरो जायताम्पुत्रस्तेदशमास्यः स्वाहाः " इस मन्त्रसे प्रथम । " करोमिते प्राजापत्यमागर्भोयोनिमैतुतेअनूनःपूर्णोजायतांमश्लोणोपिसाचधीतः स्वाहा " इस मन्त्रसे द्वितीय । " पुमांस्तेपुत्रानारितुंपुमाननुजायतांतानिभद्राणिबीजान्यृषभाजनयन्तुनौ स्वाहा" इससे तृतीय । "यानिभद्राणिबीजान्यृषभाजवंतिनःतैस्त्वंपुत्रान्विदस्वस्वाप्रसूर्धेनुकाभव स्वाहा " इससे चतुर्थी " कामः समृध्यतां मह्यमपराजितमेवमेवंकामंकामयेदेवतन्मेवायोसमर्धय स्वाहा" इस मन्त्रसे पांचमी आहुति अग्निको दे। फिर " अग्निरैतुप्रथमोदेवतानांसोस्यैप्रजांमुंचतुमृत्युपाशात्तदयंराजावरुणोनुमन्यतांयथेयंस्त्रीपौत्रमघन्नरोदात्स्वाहा" इससे एक । "इमामग्निस्त्रायतांगार्हपत्यःप्रजामस्यैनयतुदीर्घमायुःअशून्योपस्थाजीवतामस्तुमातापौत्रमानन्दमभिप्रबुध्यतामियं स्वाहा " इससे दूसरी । " मातेगृहेनिशिघोषउत्पादन्यत्रत्वद्रुदन्त्यःसम्विशन्तुमात्वम्बिकेश्वरआवधिष्टावपत्नीपतिलोकेविराजपश्यन्तीप्रजांसुमनस्यमानास्वाहा " इससे तीसरी । "अप्रजस्त्वांपौत्रमृत्युंपाप्मानमुतवाघशीर्ष्णःस्रजमिवोन्मुच्यद्विषद्भ्यःप्रतिमुञ्चामिस्वाहा"इससे चौथी । "देवंकृतम्ब्राह्मणकल्पमानंतेनहन्मियोनिषदःपिशाचात्क्रव्यादोमृत्युनधरान्पातयामिदीर्घमायुस्तवन्तुपुत्राःस्वाहा " इस मन्त्रसे पांचमी आहुति वरुणको दे । फिर 'नेजमेष० ' इत्यादि ऋचासे विष्णुको ' यथेयंपृथिवी० ' इससे पृथिवीको ' विष्णोः श्रेनेष्ठ० ' इससे विष्णुको इन पूर्वोक्त तीनों मन्त्रोंके विष्णु, त्वष्टा, गर्भकर्ता, विष्णु, पृथिवी, विष्णु ये देवता हैं । अनुष्टुप्छन्द हैं । सोमोधेनुं ' इस मन्त्रके राहुगण, गौतम, सोम ये देवता हैं और त्रिष्टुप्छन्द है । ' सोमोधेनुं० ' इस मन्त्रसे सोमको आहुति दे । ' ताम्पूषत्सूर्यासावित्री ' इस मन्त्रका सूर्यासावित्री त्रिष्टुप्छन्द है और इस मन्त्रका पायसके होममें विनियोग करै । 'तांपूषञ्छिव०' इस मन्त्रसे सूर्यासावित्रीको आहुति दे । इस पूर्वोक्त प्रकारसे पन्द्रह आहुति देकर और स्विष्टकृत् होमको करके ' अपश्यन्त्वा० ' इन दो मन्त्रोंसे होमसे शेष चरुको वे दोनों स्त्री पुरुष भक्षण करैं । ' अपश्यन्त्वा ' इन दोनों मन्त्रोंका विनियोग इसप्रकार है कि, ' अपश्यन्त्वेतिद्वयोःप्रजा वा प्राजापत्यः० ' प्रजापति देवता है और त्रिष्टुप्छन्द है । हुत शेष चरु प्राशनमें विनियोग है । फिर दोनों स्त्री और पुरुष ' पिशंगभृष्टिमं० ' इस मन्त्रसे नाभ्यालम्भन (पकडना) करैं । ' पिशंगभृष्टि० ' इस मन्त्रका विनियोग करै कि, ' पिशंगभृष्टिमित्यस्यदेवोवासिःपुरुहोत्रोइन्द्रोगायत्री ' ये देवता हैं नाभ्यालम्भनमें विनियोग है । फिर यजमान प्रायश्चित्त आदि शेष

होमको समाप्त करके ब्राह्मणोंको गौ, सुवर्ण आदि दक्षिणाको दे । रात्रिमें स्त्री और पुरुष दर्भोंकी शय्यापर सोवें । पुत्रकी कामनावालेके होमकी विधि समाप्त हुई ॥

अथ पुंसवनम् ।

तत्र पुंसवनं व्यक्ते गर्भे द्वितीये चतुर्थे षष्ठेऽष्टमे वा मासे सीमंतेन सह वा कार्यम् ॥ शुक्लपंचमीमारभ्य कृष्णपंचमीपर्यंतं चतुर्थीनवमीचतुर्दशीपंचदशीवर्जिते तिथौ सूर्यभौमगुरुवारेषु प्रशस्तम् ॥ क्वचिच्चंद्रबुधशुक्रवाराउक्ताः ॥ नक्षत्राणि तु पुन्नामकानि प्रशस्तानि ॥ तानि च पुष्यश्रवणपुनर्वसुहस्तमृगाभिजिन्मूलानुराधाश्विनीत्येतानि ॥ अत्र पुष्यो मुख्यः ॥ तदभावे श्रवणस्तदभावे हस्तादीनि ॥ अयमेवानवलोभनस्यापि कालः ॥ पुंसवनेन सह करणीयत्वविधानात् ॥ पुंसवनानवलोभने प्रतिगर्भं कार्ये ॥ गर्भसंस्कारत्वात् ॥ गर्भाधानसीमंतोन्नयने तु स्त्रीसंकस्कारत्वात्प्रतिगर्भं नावर्त्तेते ॥ किं तु प्रथमगर्भे एव कार्ये ॥ प्रथमगर्भे लोपे तु प्रतिगर्भं तयोर्लोपप्रायश्चित्तमावश्यकम् ॥ न च प्रथमापत्ये तयोः प्रायश्चित्तेन द्वितीयादिगर्भाणां संस्कारसिद्धिर्भवति ॥ प्रायश्चित्ते न हि प्रत्यवायपरिहारमात्रं न त्वपूर्वाख्यातिशयोत्पादनं तत्तु संस्कारविधिनैवेति युक्तं प्रतिगर्भं प्रायश्चित्तम् ॥ पुंसवनानवलोभनयोस्तु प्रथमगर्भेनुष्ठानेपि प्रतिगर्भं तयोर्लोपे प्रायश्चित्तम् ॥ तच्च पादकृच्छ्रं प्रतिसंस्कारं कार्यम् ॥ बुद्धिकृतलोपे द्विगुणम् ॥ पुंसवने पतिः कर्त्ता तदभावे देवरादिः ॥

अब पुंसवनकी विधिको कहते हैं—यह पुंसवन गर्भके प्रकट होनेपर द्वितीय, चौथे, छठे वा आठवें मासमें वा सीमंतके साथ करना । शुक्लपक्षकी पंचमीसे लेकर कृष्णपक्षकी पंचमीतक चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा इनसे भिन्न तिथि और सूर्य, मंगल, बृहस्पतिवार को उत्तम है और कहीं चंद्र, बुध, शुक्र ये बारभी कहे हैं । और पुन्नाम (नक्षत्रविशेष) नक्षत्र श्रेष्ठ हैं वे पुन्नाम नक्षत्र ये हैं । कि, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, मृगशिर, अभिजित्, मूल, अनुराधा, अश्विनी इनमें भी पुष्यनक्षत्र मुख्य है और जो वह न होय तो श्रवण और वहभी न होय तो हस्त आदि ग्रहण करने । यह पूर्वोक्तकाल अनवलोभन संस्कारकाभी समझना क्योंकि, उस संस्कारका पुंसवनके साथही विधानशास्त्र विहित हैं । पुंसवन और अनवलोभन कर्म गर्भ २ के प्रति करने क्योंकि, ये गर्भके संस्कार हैं । और गर्भाधान और सीमंतोन्नयन ये स्त्रीके संस्कार हैं इससे प्रति गर्भ न करने । किन्तु प्रथम गर्भके विषैही इनको करै । जो प्रथम गर्भमें लोप अर्थात् न किये जायँ तो उन दोनों संस्कारोंका लोप प्रतिगर्भमें समझना इससे प्रायश्चित्त अवश्य करै । कदाचित् कोई कहै कि, प्रथम संतन्ति होनेपर जब पूर्वोक्त संस्कारोंका प्रायश्चित्त करचुके तो फिर द्वितीय आदि गर्भोंके संस्कारकी सिद्धि होजायगी । इससे प्रतिगर्भ प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं सो ठीक नहीं क्योंकि, प्रायश्चित्त करनेसे केवल दोषकी निवृत्ति होती है । पुत्रकी आत्मामें अपूर्व है नाम जिसका ऐसे अतिशयकी उत्पत्ति नहीं होती वह तो संस्कारके करनेसेही होतीहै । इससे प्रतिगर्भ प्रायश्चित्त अवश्यही

करना । और पुंसवन और अनवलोभन संस्कारोंकी तो यह व्यवस्था है कि, जो ये प्रथम गर्भके विषै किये जायँ तो भी अन्यगर्भोंपर न करे तो प्रायश्चित्त करै। वह प्रायश्चित्त यह है कि, गर्भगर्भपरके संस्कारके दिन पादकृच्छ्र करै और जो जानकर संस्कार न किया होय तो दुगुणा प्रायश्चित्त करै पुंसवनको पति करै वह न होय तो देवर आदि करै ॥

अथ सीमंतकालः ।

तच्चतुर्थेऽष्टमे षष्ठे पंचमे मासि वा विहितम् ॥ "नवमे मासि वा कुर्याद्याव-द्गर्भविमोचनम् ॥ स्त्री यद्यकृतसीमंता प्रसूयेत कदाचन ॥ गृहीतपुत्रा विधिवत्सा तं संस्कारमर्हति "॥ पक्षतिथिवारनक्षत्राणि पुंसवनोक्तान्येव प्रशस्तानि ॥ क्वचि-द्दशमीपर्यंतं कृष्णोपि ग्राह्यः ॥ षष्ठ्यष्टमीद्वादश्यो रिक्ताः पंचदशी च वर्ज्यास्तासु संकटे चतुर्थीचतुर्दशीपौर्णमास्यो ग्राह्याः ॥ क्रमेणाष्टचतुर्दशदशनाडिका आद्यास्त्य-क्त्वा षष्ठ्यष्टमीद्वादश्योपि ग्राह्याः ॥ पुंनक्षत्राणामलाभे रेवतीरोहिण्युत्तरात्रयाणि ग्राह्याणि ॥ उक्तनक्षत्राणां प्रथमांत्यपादौ त्यक्त्वा मध्यपादद्वयं ग्राह्यमित्युक्तम् ॥ इदं कर्म सकृदेव कार्यमित्युक्तम् ॥ कात्यायनानां तु गर्भसंस्कारत्वात्प्रतिगर्भमाव-र्तनीयम् ॥ सीमंतोन्नयने पतिरेव कर्ता ॥ गर्भाधानलोपे तत्प्रायश्चित्तार्थं विप्राय गां दत्त्वा पुंसवनादिकं कार्यम् ॥

अब सीमंतके कालको कहते हैं—वह संस्कार चौथे, आठमें, छठे वा पांचमें मासमें करना। अथवा गर्भकी उत्पत्तिसे पूर्व नौमें महीनेमें करना । कि, जो स्त्री सीमंत कर्मको किये विना संततिको यदि पैदा करै तो फिर वह पुत्रको ग्रहण करके विधिपूर्वक संस्कारको प्राप्तहो । इससे यह बातभी समझनी कि, जिसका पुत्र मरजाय वह स्त्री इस संस्कारके योग्य नहीं होती इस सीमंत कर्मके विषै पुंसवनमें कहे हुए तिथि, वार, नक्षत्र ग्रहण करने । कहीं यहभी लिखा है कि, कृष्णपक्षभी दशमी पर्यंत ग्रहण करना । और इसमें षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, रिक्ता और पूर्णिमा ये वर्जित हैं । इनमें भी जो संकट होय तो चतुर्थी, चतुर्दशी, पूर्णिमा ग्रहण करलेनी और षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी इनकी आदिकी आठ, चौदह और दश घडियों को छोडकर शेष घडी ग्रहण करनी । जो पुन्नाम नक्षत्र न मिलै तो रेवती, रोहिणी और तीनों उत्तरामें भी तीनों ग्रहण करनी । और इन पूर्वोक्त नक्षत्रोंको भी पहिले और पिछले पाद छोडकर बीच २ के दो पाद ग्रहण करने यह कर्म एक वारही करना । और कात्यायन शाखावालोंको तो यह गर्भसंस्कार होनेसे प्रतिगर्भ करना । सीमन्तोन्नयन कर्मको पतिही करै अन्य कोई न करै । गर्भाधानके लोप होनेपर उसके प्रायश्चित्तार्थ ब्राह्मणको गौ देकर, पुंसवन आदिको करै ॥

अथ पुंसवनसंकल्पः ।

तत्राश्वलायनानां देशकालादिकीर्तनांते ममास्यां भार्यायामुत्पत्स्यमानगर्भस्य गार्भिकबैजिकदोषपरिहारपुंरूपतासिद्धिज्ञानोदयप्रतिरोधपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वर-प्रीत्यर्थं पुंसवनमनवलोभनं ममास्यां भार्यायां गर्भाभिवृद्धिपरिपंथिपिशितरुधिर-

प्रिया अलक्ष्मीभूतराक्षसीगणदूरनिरसनक्षेमसकलसौभाग्यनिदानमहालक्ष्मीसमावेशनद्वारा प्रतिगर्भं बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा च श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं स्त्रीसंस्काररूपं सीमंतोन्नयनाख्यं कर्म च तंत्रेण करिष्य इति संकल्पः सीमंतेन सह त्रयाणां करणे ज्ञेयः ॥ नांदीश्राद्धे क्रतुदक्षसंज्ञका विश्वेदेवाः ॥ पुंसवनस्य पृथक्त्वे पवमानसंज्ञकमौपासनाग्निं प्रतिष्ठापयेत् ॥ त्रयाणां सहत्वे मंगलनामानं प्रतिष्ठापयेत् ॥ गृह्याग्निविच्छेदे सर्वाधानिनश्चाग्न्युत्पत्तिः पूर्ववत् ॥ पुंसवने प्रजापतिं चरुणा सीमंते धातारं द्विः राकां द्विर्विष्णुं त्रिः प्रजापतिं सकृदाज्येन जुहुयात् ॥ अवशिष्टप्रयोगोन्यत्र ज्ञेयः ॥ शाखांतरेषु च तत्तद्ग्रंथेभ्यो ज्ञेयः ॥ अत्र प्रतिसंस्कारं दशदश त्रींस्त्रीन् वा ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ शक्तेन शतंशतम् ॥

तहां आश्वलायन शाखावालोंकी संस्कार विधिको कहते हैं। देशकालका स्मरण करके संकल्प करै कि, मेरी इस स्त्रीमें जो गर्भ उत्पन्न होगा उसके गर्भमें रहने और वीर्यके सम्बन्धसे जो दोष उत्पन्न हुआ हो उसकी शांति और पुरुषके रूपकी प्राप्ति और ज्ञानके उदयमें जो कुछ प्रतिबन्धक(पाप)आदि हैं उनके नाशसे श्रीपरमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये पुंसवन और अनवलोभनरूप कर्मको और इस मेरी स्त्रीमें गर्भके बढ़नेमें उपयोगी जो मांस और रुधिर उसकी प्यारी जो अलक्ष्मीरूप राक्षसी उसके गणोंका दूर करना और कल्याण, संपूर्ण सौभाग्यके करनेवाली जो महालक्ष्मी है उसके प्रवेशके लिये और गर्भगर्भमें जो बीज और गर्भसे उत्पन्न हुआ जो पाप उसके नाशसे श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये स्त्रीके संस्काररूप सीमन्तोन्नयनकर्मको तन्त्रसे करताहूं । यह संकल्प वहां समझना, जहां सीमन्तके साथ तीन कर्म किये जायँ । इस कर्मके नांदीश्राद्धमें क्रतु, दक्ष, विश्वेदेवा होते हैं । जो पुंसवनकर्म पृथक् किया जाय तो पवमान है नाम जिसका ऐसी अग्निका स्थापन करै और जो पुंसवन, अनवलोभन और सीमन्त ये तीनों साथ किये जायँ तो मंगलनाम अग्निका स्थापन करै । गृह्याग्निके लोप होनेपर सर्वाधानीको अग्निकी उत्पत्ति पूर्व किये हुए प्रकारसे समझनी । पुंसवनकर्मके विषै प्रजापतिको चरु, आहुति और सीमन्तके विषै धाता, राका इनको दो २ आहुति और प्रजापतिको एक आहुति घीकी और विष्णुको तीन आहुति दे । इसमें अवशिष्ट विधि अन्य शास्त्रमें समझनी और शाखा २ की विधि उन उन ग्रन्थोंसे समझनी । इसमें संस्कार संस्कारके प्रति दश दश वा तीन तीन ब्राह्मणोंको भोजन करावै और जो शक्ति होय तो सौ सौ ब्राह्मण जिमावै ॥

अथ सीमंतभुक्तौ प्रायश्चित्तम् ।

सीमंतान्नभोजने प्रायश्चित्तं पारिजाते ॥ "ब्रह्मौदने च सोमे च सीमंतोन्नयने तथा ॥ जातश्राद्धे तथा भुक्त्वा भोक्ता चांद्रायणं चरेत्" ॥ यद्वा अराइवेति मंत्रस्य शतवारं जपः ॥ एतच्च आधानांगब्रह्मौदनांगभोजन इव सीमंतांगभोजने ज्ञेयम् ॥ न तु तद्दिने तद्गृहे भोक्तृमात्रस्येति पारिजातोक्तमुक्तम् ॥

सीमन्तकर्मके अन्नके खानेमें प्रायश्चित्त पारिजातमें समझना कि, ब्रह्मौदन (कर्मभेद), सीमन्त और जातश्राद्ध इनमें भोजन करके चांद्रायणव्रतको करै 'अथवा अराइव०' मंत्रका सौ

चार जप करै। यह पूर्व किया प्रायश्चित्त आधानका अंग जो ब्रह्मौदनकर्म है, उसका अंगरूप जो भोजन है उसके समान सीमंतके अंगरूप भोजनमें समझना। यह न समझना कि, उस दिन वा उसी गृहमें जो भोजन करै उसको भी प्रायश्चित्त करना। यह पारिजातमें कहा निर्णय समझना ॥

अथ गर्भिणीधर्माः।

"गर्भिणी कुंजराश्वादिशैलहर्म्यादिरोहणम् ॥ व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत ॥ न भस्मादावुपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ॥ त्यजेज्जलावगाहं च शून्यं सद्म तरोस्तलम् ॥ कलहं गात्रभंगं च तीक्ष्णात्युष्णादिभक्षणम् ॥ संध्यायामतिशीताम्लं गुर्वाहारं परित्यजेत् ॥ व्यवायशोकासृङ्मोक्षं दिवास्वापं निशि स्थितिम् ॥ भस्मांगारनखैर्भूमिलेखनं शयनं सदा ॥ त्यजेदमंगलं वाक्यं न च हास्याधिका भवेत ॥ न मुक्तकेशा नोद्विग्ना कुक्कुटासनगा न च ॥ गर्भरक्षा सदा कार्या नित्यं शौचनिषेवणात् ॥ प्रशस्तमंत्रलिखनाच्छस्तमाल्यानुलेपनात् ॥ विशुद्धगेहवसनाद्दानैः श्वश्र्वादिपूजनैः ॥ हरिद्राकुंकुमं चैव सिंदूरं कज्जलं तथा ॥ केशसंस्कारतांबूलं मांगल्याभरणं शुभम् ॥ चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणीवधूः ॥ यात्रां विवर्जयेन्नित्यमाषष्ठात्तु विशेषतः" ॥

अत्र गर्भिणी स्त्रीके धर्मोंको कहते हैं–गर्भिणी स्त्री हाथी, अश्व आदि पशु, पर्वत, महल आदिपर चढना, व्यायाम, शीघ्रगमन और शकट (छकडा) पर चढना वर्ज दे। भस्म आदिमें न बैठे, मुसल उलूखलको त्याग दे, जलमें गोता न लगावै, शून्य (मनुष्य आदिसे रहित) घर, वृक्षके नीचे न बैठे, कलह, शरीरका तोडना, तीक्ष्ण, अत्यंत गरम आदि पदार्थका भक्षण, संध्या समय भोजन, अत्यंत ठंडा, खट्टा, भारी भोजन इनको छोड दे। व्यवाय (मैथुन), शोक, रुधिरका त्याग, दिनमें सोना, रात्रिमें खडा होना, भस्म, अंगार, नख इनसे पृथ्वीपर रेखा करना और बहुत सोना, बुरे २ वचन, अत्यंत हँसना इनको वर्ज दे। केशोंको छोडना, अत्यंत मनको विह्वल करना भी कुक्कुटासन (ऊकडू) से न बैठै और शौच आदिके करनेसे सदा गर्भकी रक्षा करनी। तथा उत्तम मंत्रोंका लिखना, श्रेष्ठ पुष्प, चन्दनका शरीरसे लेप, सुंदर वस्त्र और घरमें रहना, अश्व आदिकी पूजा इनसे गर्भकी रक्षा करै और हलदी, कुंकुम, सिंदूर, कज्जल, केशोंका संस्कार, तांबूल, मंगलके आभूषण इनको चौथे वा छठे और आठमें महीनामें वर्ज दे और गर्भकी स्थितिसे लेकर यात्राको वर्ज दे, और छठे माससे लेकर तो अवश्यही वर्ज दे ॥

अथ गर्भिणीपतिधर्माः।

"गर्भिणीवाञ्छितं द्रव्यं तस्यै दद्याद्यथोचितम् ॥ सूते चिरायुषं पुत्रमन्यथा दोषमर्हति ॥ सिंधुस्नानं द्रुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनम् ॥ विदेशगमनं चैव न कुर्याद्गर्भिणीपतिः ॥ वपनं मैथुनं तीर्थं श्राद्धभोजनमेव च ॥ वर्जयेत्सप्तमान्मासान्नाव आरोहणं तथा ॥ युद्धादि वास्तुकरणं नखकेशविकर्तनम् ॥ चौलं शवानुगमनं

विवाहं च विवर्जयेत् ॥ मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ॥ न जीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च" ॥ अत्र कर्तनमपि निषिध्यते ॥ "वपनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते" इति वाक्यं तु जीवत्पितृकादीनां यो वपननिषेधस्तत्र कर्तनविधिपरम् ॥ तदपवादः ॥ "क्षौरं नैमित्तिकं कुर्यान्निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ॥ पित्रोः प्रेतविधानं च गर्भिणीपतिराचरेत् ॥" अन्वष्टक्याष्टकयोर्गर्भिणीपतिः पिंडदानं कुर्यात् ॥ केचित्पित्रोः प्रतिसांवत्सरिके पिंडदानं कुर्वंति ॥ दर्शमहालयादिषु नैव कार्यम् ॥ ॥ अथ गर्भस्रावहरं कांचनयज्ञोपवीतदानं महार्णवे ॥ इदं स्त्रीकर्तृकम् ॥ शुभदिने स्त्री आचम्य देशकालौ संकीर्त्य मम गर्भस्रावनिदानसकलदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वायुपुराणोक्तं सुवर्णयज्ञोपवीतदानविधिं करिष्ये इति संकल्प्य पलेन तदर्धेन यथाशक्ति वा हैमं यज्ञोपवीतं ग्रंथिप्रदेशे मौक्तिकयुतं कृत्वा तथैव वज्रमणियुतं राजतमुत्तरीयं च कृत्वोभयं पंचगव्येन गायत्र्या प्रक्षाल्य ताम्रपात्रे द्रोणमितं दधि निक्षिप्य तन्मध्ये द्रोणमितमाज्यं निक्षिप्याज्योपरि तदुभयं संस्थाप्य भर्ता ब्राह्मणो वा गायत्रीमंत्रेण गंधादिभिः पूजयेत् ॥ अष्टगुंजात्मको माषः दशमाषाः सुवर्णम् ॥ पलकुडवप्रस्थाढकद्रोणाः सुवर्णादिपूर्वपूर्वचतुर्गुणाः ॥ दध्याज्ययोर्द्रोणपरिमाणाभावे शक्त्यनुसारि प्रमाणम् ॥ ब्राह्मणद्वारा आज्यमधुमिश्रैस्तिलैरष्टोत्तरशतं गायत्र्या व्याहृतिभिर्वा होमं कारयेत् ॥ त्यागं भर्ता वा स्त्री वा कुर्यात् ॥ होमकर्तारं विप्रं वस्त्राद्यैः संपूज्य प्राङ्मुखाय तस्मै उदङ्मुखा स्त्री दानं कुर्यात् ॥ तद्यथा ॥ "उपवीतं परिमितं ब्रह्मणा विधृतं पुरा ॥ भव नौकास्य दानेन गर्भं संधारये ह्यहम्" ॥ इति मंत्रेण विप्रस्य नामगोत्रे उच्चार्य ताम्रपात्रस्थदध्याज्यसंस्थं सुपूजितं सोत्तरीयकमिदं यज्ञोपवीतं गर्भस्रावनिदानदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तुभ्यमहं संप्रददे न मम ॥ प्रतिगृह्यताम् ॥ विप्रः प्रतिगृह्णामीत्यादि ॥ यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा अन्येभ्योपि यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा प्रतिग्रहीतुरनुव्रज्य नमस्कारक्षमापनादि कृत्वा विप्रभोजनं संकल्प्य कर्मेश्वरायार्पयेत् ॥ एतच्च "स्रवद्गर्भा भवेत्सा तु बालकं हंति या विषैः" इत्युक्तेर्बालहत्याप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम् ॥ अन्यत्र तु स्वर्णधेनुदानहरिवंशश्रवणादीन्युक्त्वा घृतपूर्णताम्रकलशदानादिविधानानि युक्तानि ॥

अब पतियोंके धर्मोंको कहते हैं । कि, गर्भिणीस्त्रीका पति उस स्त्रीकी अभीष्ट (जिसे चाहै) वस्तुको यथोचित दे क्योंकि, देनेसे चिर अवस्थावाले पुत्रको पैदा करती है अन्यथा दूषित पुत्र होता है । तथा समुद्रमें स्नान, वृक्षका छेदन, मुण्डन, मुर्दोंका लेजाना, परदेशमें जाना, मैथुन, तीर्थमें गमन, श्राद्धका भोजन, नावमें बैठना इनको सातवें महीनासे लेकर जन्मपर्यंत गर्भिणीका पति न करै। युद्ध आदि, वास्तुकरण घर बनाना, नख और केशोंका काटना, मुण्डनकर्म, मुर्देके साथ जाना और विवाह इनको वर्ज दे, तथा मुण्डन, पिण्डकादान, प्रेत

कर्म इनको जिसका पिता जीता हो और गर्भिणीका पति वर्जे दे, इस गर्भिणीके पति-को केशोंके कर्तनकाभी निषेध कहा है । और जो यह वचन है कि, वपन (मुण्डन) के निषेध होनेपरभी केशोंका कर्तन (काटना) करना सो यह वचन जिसका पिता जीता हो उसके लिये जो वचनका निषेध कहा है उसमें कर्तनके विधान करनेके विषयमें है, गर्भिणीके पतिके विषयमें नहीं । अब उस केशोंके कर्तनका जो निषेध है उसका अपवाद कहते हैं । कि, निषेध होनेपर भी नैमित्तिक (मरण आदिमें) क्षौर अवश्य कराना । और गर्भिणीका पति भी माता पिताकी प्रेतक्रियाको कर ले । और तथा अन्वष्टका और अष्टका इनके विषै गर्भिणीका पति पिण्डदान करै । कोई यह कहते हैं कि, माता पिताके प्रतिवार्षिक श्राद्धमेंभी गर्भिणीका पति पिण्डदान करै । और दर्श (अमावस्या) महालय श्राद्धमें न कर-ना । अब गर्भस्रावके दूर करनेवाले कांचन (सुवर्ण) के यज्ञोपवीतका दान महार्णवमें कहा है । यह दान स्त्री करै कि, उत्तम दिनके विषै स्त्री आचमन और देशकालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, मेरे गर्भस्रावके कारणरूप सब दोषोंकी निवृत्तिपूर्वक श्रीपरमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये वायुपुराणमें कहे सुवर्णके यज्ञोपवीतका दान करती हूं । पलभर वा उसके आधे सुवर्णसे वा शक्तिके अनुसार सुवर्णका यज्ञोपवीत और मोतियोंकी ग्रंथि बनावै । और उसीप्रकार वस्त्रमणिसहित चांदीका उत्तरीय (डुपट्टा) बनावै । इन दोनोंको गायत्री मंत्रसे पञ्चगव्यसे धोवै । फिर तांबेके पात्रमें द्रोणभर दही रखकर और उसके मध्यमें द्रोणभर घी गेरै उस घीके ऊपर यज्ञोपवीत और उत्तरीयको रखकर पति वा ब्राह्मण गायत्रीमंत्रको पढ-कर गंध आदिसे पूजै । अब पल प्रमाण यह है कि, आठ चौटनीका माष, दश माषोंक सुवर्ण और चार सुवर्णोंका पल, चार पलोंका कुडव, चार कुडवोंका प्रस्थ, चार प्रस्थोंका आढक, चार आढकका द्रोण होता है । जो दही, घी द्रोणभर न मिलें तो शक्तिके अनुसार समझना । अथवा ब्राह्मणके द्वारा घी और मधुसे मिलेहुए तिलोंसे गायत्रीमंत्रसे वा व्याहृ-तियोंसे एकसौ आठ आहुति दिवावै । और त्याग (हविका त्याग) पति वा स्त्री करै । होमके करनेवाले ब्राह्मणको वस्त्र आदिसे पूजकर पूर्व दिशाको बैठेहुए ब्राह्मणको उत्तराभिमुख स्त्री बैठकर यज्ञोपवीत और उत्तरीयका दान करै । उस दानकी विधि इस प्रकार है कि, यह यज्ञोपवीत पूर्व ब्रह्माने रचा है और संसाररूपी समुद्रकी नौका है, इसके दानसे मैं निश्चय गर्भको धारण करूंगी । इस मन्त्रको पढकर और ब्राह्मणके नाम गोत्रका उच्चारण करके इस प्रकार संकल्प करके दे कि, ताम्रके पात्रमें रक्खा और भलीप्रकार पूजाहुआ यह उत्तरीय-सहित यज्ञोपवीतका दान गर्भस्रावके कारणरूप दोषके निवारणसे श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये तुझको करती हूं, इसमें अब मेरा स्वत्व नहीं, इससे आप ग्रहण करो । ब्राह्मण मैं ग्रहण करताहूं इत्यादि वचन कहे । फिर यजमान विप्रको शक्तिके अनुसार दक्षिणा आदि देकर और अन्य ब्राह्मणोंके लियेभी यथाशक्ति दक्षिणा देकर और प्रतिग्रहीता (दान लेनेवाला) ब्राह्मणके पीछे कुछ चलकर और नमस्कार, क्षमापन आदि करके ब्राह्मणभोजनका संकल्प करके किये कर्मको ईश्वरके अर्पण करै । यह पूर्वोक्त कर्म बालहत्या प्रायश्चित्तके अन्तमें करै । क्योंकि, यह वचन है कि, गर्भस्राव उस स्त्रीका होता है कि, जो विषसे बालकको मारती है । और अन्य ग्रंथमें यह भी लिखा है कि, सुवर्णकी धेनुका दान, हरिवंशश्रवण आदि तथा घृतसे पूर्ण कलशका दान आदि करै यह युक्त है ।

अथ सूतिकागृहप्रवेशः ।

गृहे नैर्ऋत्यां सूतिकागृहं कृत्वा तत्राश्विनीरोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्यत्र्युत्तराहस्तचित्रास्वात्यनुराधाधनिष्ठाशततारकानक्षत्रेषु रिक्तादिवर्ज्यांतिथिषु चंद्रानुकूल्ये शुभलग्ने सूतिकाप्रवेशो गोविप्रदेवपूजन कृत्वा मंत्रवाद्यघोषेण सापत्यस्त्रीभिः सह कार्यः असंभवे सद्यो वा ॥ प्रसवप्रतिबंधे ऋग्विधाने ॥ प्रमंदिने इत्यृचं विजिहीर्ष्वेति सूक्तं वा जपेत् ॥ एताभ्यामभिमंत्रितजलं वा पाययेत् ॥ तेन सुखप्रसवः ॥ शीघ्रप्रसवमंत्रस्तु ॥ "हिमवत्युत्तरे पार्श्वे सुरथा नाम यक्षिणी ॥ तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्" ॥ ॐ क्षीं ॐ स्वाहेति मंत्रेण दूर्वांकुरेण तिलतैलं शतं सहस्रं वाऽभिमंत्र्य किंचित्पाययेत् ॥ किंचिन्मात्रस्य गर्भे लेपश्च ॥ सम्यग्लेपे शीघ्रं सुखप्रसवः अस्थिमात्रावशिष्टगोमस्तकस्य सूतिकागृहोपरि निधाने सुखप्रसवः ॥ वंशनिंबयोस्त्वक् तुलसीमूलं कपित्थपत्रं करवीरबीजं च समभागं महिषीदुग्धेन पेषयित्वा तेन सतैलेन योनिलेपे सद्यः प्रसवः ॥

अब सूतिका (सौवर) गृहका निर्णय कहते हैं । कि, गृहसे नैर्ऋतदिशामें सूतिकागृहको बनावै । तिसमें यह लिखा है कि, इस सूतिकागृहमें अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा ये नक्षत्र । रिक्ता आदिसे भिन्न तिथि, उत्तम चंद्रमा, शुभलग्न इनके विषै गौ, ब्राह्मण इनका पूजन करके बालकसहित स्त्री का प्रवेश करै । जो यह न होसकै तो शीघ्रही कर दे । जो प्रसवमें प्रतिबन्ध अर्थात् बालकके होनेमें प्रतिबन्ध होजाय तो 'प्रमंदिनं०' इस ऋचा वा 'विजहीर्ष्व०' इस सूक्तको जपै । वा इन दोनोंसे अभिमंत्रित जलको प्यावै । तिससे सुखसे बालक पैदा होजाता है । और शीघ्र प्रसव होनेका मंत्र तो यह है कि, हिमवतीके उत्तरपार्श्वके विषै एक सुरथा राक्षसी है, उसके स्मरणमात्रसे गर्भिणी स्त्री विशल्य अर्थात् शीघ्र प्रसव होनेसे निर्दुःख होजाती है । और फिर हाथमें दूबके अंकुरको लेकर उससे 'ॐ क्षीं ॐ स्वाहा' इसमन्त्रको पढताहुआ तिलोंके तैलको सौ वा हजार बार अभिमंत्रित करके गर्भिणीको किंचित् मात्र प्यादे और कुछ तैलका गर्भमें लेप करदे । जो भलीप्रकार लेप किया जाय तो शीघ्रही प्रसव होजाता है । अथवा बांस, नीमकी छाल, तुलसीकी जड, कपित्थ (कैत) के पत्ते, करवीरके बीज इन सबको बराबर लेकर भैंसके दूधमें पीसे । फिर तेलसहित उसका योनिमें लेप किया जाय तो शीघ्रही प्रसव होजाता है ॥

अथ जातकर्म ।

मूलज्येष्ठाव्यतीपातादावनुत्पन्नस्य जातमात्रस्य पुत्रस्य पिता मुखं कुलदेवतावृद्धप्रणामपूर्वकमवलोक्य नद्यादावुदङ्मुखः स्नायात् ॥ तदसंभवे गृहे आनीताभिः

(१) हिमवत्युत्तरे पार्श्वे सुरथा नाम यक्षिणी । तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत् । ॐ क्षीं ॐ स्वाहा–

शीताभिः स्वर्णयुताभिरद्भिः स्नायात् ॥ एतच्च रात्रावपि नद्यादौ कार्यम् ॥ अशक्तो रात्रावग्निसन्निधौ स्वर्णयुतशीतोदकैः ॥ मूलादिषु जनने तु मुखमदृष्ट्वैव स्नानम् ॥ देशांतरगते जनके पुत्रजन्मश्रवणोत्तरं स्नानम् ॥ सर्वत्र स्नानात्प्राक् अस्पृश्यत्वम् ॥ एवं कन्योत्पत्तावपि स्नानं तत्प्रागस्पृश्यत्वं च ज्ञेयम् ॥ अन्यसपिंडाशौचमध्ये जननेपि पितुस्तात्कालिकी स्नानदानादौ जातकर्मणि च शुद्धिः ॥ केचिन्मृताशौचे पुत्रजनने जातकर्माशौचांते कार्यमित्याहुः ॥ नालच्छेदनात्पूर्वं संपूर्णसंध्यावंदनादिकर्माणि नाशौचम् ॥ प्रथमदिने पंचमषष्ठदशमदिने च दानप्रतिग्रहयोर्न दोषः ॥ शृतमन्नं न ग्राह्यम् ॥ ज्योतिष्टोमादिदीक्षावता स्वयमन्येन वा जातकर्म न कार्यं किं तु अवभृथस्नानांते दीक्षां विसृज्य स्वयं कार्यम् ॥ श्रेष्ठः कनिष्ठेन पुंसवनादिकं न कारयेत् ॥ जातकर्म तु कारयेत् ॥ अतिक्रांतं तु स्वयमेव कुर्यात् ॥ महारोगार्तो जातकर्म स्वयं न कुर्यात् ॥ " अच्छिन्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि " ॥ पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते तथा च संस्कारांगभिन्नं कन्यापुत्रयोर्जन्मनिमित्तकं नांदीश्राद्धं विधीयते ॥ एतच्च रात्रावपि कार्यम् ॥ तच्च हेम्नैव कार्यं न त्वन्नादिना ॥

अब जातकर्मका निर्णय कहते हैं । कि, मूल, ज्येष्ठा, व्यतीपात आदिमें जो उत्पन्न न हुआ हो ऐसे उत्पन्न होनेके समयही पुत्रका मुख को पिता, कुलदेवता और वृद्धोंको प्रणामपूर्वक देखकर नदी आदिमें स्नान करै । और जो नदी आदि न होयँ तो किसी मनुष्यसे जलको मँगवाकर उस शीतल जलमें सुवर्ण गेरकर स्नान करै, यह स्नान रात्रिमें भी नदी आदिमेंही करना । सामर्थ्य न होय तो सुवर्णसे युक्त शीतलजलोंसे अग्निके निकट स्नान करै । जो मूल आदिमें उत्पन्न हुआ होय तो मुखके विना देखेही स्नान करै । जो पिता देशान्तरमें होय तो पुत्रके जन्मके सुननेसे तत्काल स्नान करै । सर्वत्र स्नानसे पूर्व पिताको स्पर्श करनेमें दोष समझना । इसीप्रकार कन्याके जन्ममें भी स्नान और उससे पूर्व स्पर्शका अभाव समझना । अन्य किसी सपिण्डके यहां सूतक होय और उसके मध्यमें पुत्र आदिका जन्म होजाय तोभी पिताको स्नान दान आदि तथा जातकर्म करनेके लिये तत्काल शुद्धि होजाती है । कोई तो यह कहते हैं कि, मृतक सूतक होय तब पुत्रके जन्म होनेपर उस आशौचके बीतनेके अनन्तर जातकर्म करना । नाल छेदनसे पूर्व सकल सन्ध्यावन्दन आदिक करनेमें अशौच नहीं होता । प्रथम, पांचमें, छठे और दशमें दिन दान और प्रतिग्रह लेनेमें दोष नहीं होता, परन्तु अग्निमें पकाया हुआ अन्न न ग्रहण करना । जिसने ज्योतिष्टोम आदि यज्ञकर्ममें दीक्षा ले रक्खी हो वह जातकर्म आप न करै और न अन्यसे करावै, किन्तु आपही यज्ञांत स्नान किये पीछे दीक्षाका विसर्जन करके करै । कनिष्ठभ्राता आदिसे पुंसवन आदि न करावै, परन्तु जातकर्म तो कराले । और अतिक्रांत (बीतेहुये) कर्मको स्वयंही करै । महारोगसे पीडित मनुष्य जातकर्म स्वयं न करै । पुत्र और कन्याके जन्ममें नालच्छेदनसे पूर्व श्राद्ध करै । सोई शास्त्रमें संस्कारके अंगसे भिन्न कन्या और पुत्रके जन्ममें नांदीश्राद्ध करना कहा है । यह श्राद्ध रात्रिमें भी करना वह रात्रिमें श्राद्ध सुवर्णसेही करना अन्न आदिसे नहीं ॥

अथ जातकर्मसंकल्पः ।

तथा च स्नातोऽलंकृतः पिता अकृतनालच्छेदमपीतस्तन्यमन्यैरस्पृष्टं प्रक्षालितं कुमारं मातुरुत्संगे कारयित्वाचमनादिदेशकालादिकीर्तनांते अस्य कुमारस्य गर्भांबुपानजनितदोषनिबर्हणायुर्मेधावृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं जातकर्म करिष्ये तदादौ च स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं च करिष्ये ॥ हिरण्येन पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मांगं च नांदीश्राद्धं तंत्रेण करिष्ये इति संकल्प्य यथागृह्यं कुर्यात् ॥ "ततो दद्यात्सुवर्णं च भूमिं गां तुरगं रथम् ॥ छत्रं छागं च माल्यं च शयनं चासनं गृहम् ॥ तिलपूर्णानि पात्राणि सहिरण्यानि चैव हि ॥ भक्षयित्वा तु पक्वान्नं द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ सूतके तु सकुल्यानां न दोषो मुनिरब्रवीत्" ॥ अथारिक्तपाणिर्ज्योतिर्विदं संपूज्य तस्माज्जन्मलग्नगतशुभाशुभग्रहनिर्णयं ज्ञात्वा प्रतिकूलग्रहानुकूल्यार्थं तत्तद्ग्रहप्रीत्यर्थं दानानि कुर्यात् ॥ ग्रहमंत्रजपादिशांतिसूक्तजपादिकर्माणि विप्रान् वा नियोजयेत् ॥ ततो नालच्छेदं कारयित्वा हिरण्योदकेन मातुर्दक्षिणस्तनं प्रक्षाल्य मात्रा कुमारं पाययेत् ॥ तत्र इमां कुमार इत्यादिमंत्रं विप्रादिः पठेत् ॥ जातकर्माद्यन्नप्राशनांतसंस्कारेषु आश्वलायनानां होमः कृताकृतः ॥ होमपक्षे नांदीश्राद्धांते जातकर्मांगहोमं करिष्ये इति संकल्प्य लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधानाद्याज्यभागांते अग्निमिंद्रं प्रजापतिं विश्वान्देवान्ब्रह्माणमाज्येन जुहुयात् ॥ मधुसर्पिः प्राशनादिमूर्धावघ्राणांते स्विष्टकृदादि कुर्यादिति क्रमः ॥ अन्येषां यथागृह्यंहोमादि ज्ञेयम् ॥ कुमार्या अपि जातकर्मादिसंस्काराश्चौलांताः सर्वे अमंत्रकाः कार्याः ॥ विवाहस्तु समंत्रकः ॥ अतः कन्याया जातकर्मादिसंस्कारलोपे तत्तत्काले विवाहकाले वा प्रायश्चित्तं कृत्वा विवाहः कार्यः ॥ अत्र सर्वत्र जातकर्मनामकर्मादौ मुख्यकालातिक्रमे गुर्वाद्यस्तरहिते शुभनक्षत्रादौ जातकर्मादिकं कार्यम् ॥ तत्र जातकर्मणि नक्षत्राणि रोहिणीत्र्युत्तराश्विनीहस्तपुष्यानुराधारेवतीमृगचित्राश्रवणादित्रयस्वातीपुनर्वसवः ॥ रिक्तापर्वरहितास्तिथयः ॥ भौमशनिभिन्नवाराः ॥ भद्रावैधृत्यादिशून्ये सुकेंद्रलग्ने शुभम् ॥

सोई दिखाते हैं कि, पिता स्नान और अलंकारोंको धारण करके जिसका नालच्छेदन न किया हो और न दुग्ध पिया हो, जिसको अन्यने न छुआ हो, ऐसे बालकको माताकी गोदमें स्थापन करादे । फिर आचमन आदि और देश कालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, इस कुमारके जो गर्भका जल पीनेसे दोष हुआ है उसके दूर करनेके लिये और आयु, मेधा (श्रेष्ठ बुद्धि) इनकी वृद्धि और बीज गर्भके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए पापके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये जातकर्मको करताहूं और इसके आदिमें स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन और मातृकापूजनको करताहूं और सुवर्णसे पुत्रजन्म निमित्तक जातकर्मके अंगरूप नांदीश्राद्धको

तन्त्रसे करताहूं । फिर गृह्यसूत्रके अनुसार कर्मको करै । फिर सुवर्ण, भूमि, अश्व, रथ, छत्र, छाग (बकरी), पुष्प, शयन, आसन, घर, तिलसे भरे सुवर्ण सहित पात्र इनको दे । परन्तु इस जातकर्ममें ब्राह्मण पक्वान्नका भोजन करके चांद्रायण करै । परन्तु एक कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको सूतकमें अन्न खानेसे मनुने दोष नहीं कहा । फिर कुछ द्रव्य आदि हाथमें लेकर ज्योतिर्विद्का सत्कार करके उससे जन्मलग्नमें प्राप्त हुए शुभ अशुभ ग्रहोंका निर्णय करके प्रतिकूल (अशुभफलदायी) ग्रहकी अनुकूलता और उस २ ग्रहकी प्रीतिके लिये दान करने । अथवा ग्रहके मन्त्रका जप वा शांतिसूक्तके जप आदि करनेमें ब्राह्मणोंको नियुक्त करै । फिर नालच्छेदनको कराकर और सुवर्णसे युक्त जलसे माताके दक्षिण स्तनको धोकर मातासे कुमारको स्तन दिलावै । उस समय ब्राह्मण आदि ' इमाः कुमार ' इत्यादि मन्त्रको पढैं । जातकर्मसे लेकर अन्नप्राशन पर्यंत कर्मोंमें आश्वलायन होमको करैं, चाहै न करैं । जो होम करैं तो नांदीश्राद्धके अन्तमें जातकर्मके अंगरूप होमको करताहूं, इसप्रकार संकल्प करके लौकिक अग्निकी स्थापना करै । अन्वाधान, आज्यभागके अंतमें अग्नि, इंद्र, प्रजापति, विश्वेदेवा और ब्रह्मा इनको घीकी आहुति दे । फिर पूर्व कहे होमसे शेष मधु और घृतके भक्षणसे मूर्धा घ्राणकर्मके अंतमें स्विष्टकृत् आदि होमको करै यह क्रम है । और अन्योंको होम आदि तिस तिस गृह्यसूत्रके अनुसार समझना । कन्याकेभी जातकर्म आदि चूडापर्यंत संस्कार मंत्रके विना करके और विवाहरूप संस्कार तो मंत्रको पढकर करना । इस कारणसे कन्याके जातकर्म आदि संस्कार न किये जायँ तो उस उस समय वा विवाहके समय प्रायश्चित्त करके विवाह करना । इन सर्व जातकर्म, नामकर्म आदिमें मुख्य कालका अवलंघन होजाय तो गुरु आदिके अस्त न होनेपर शुभनक्षत्र आदिमें वे कर्म करने । तिसमें जातकर्मके विषे रोहिणी, तीनों उत्तरा, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, चित्रा, श्रवणआदि तीन, स्वाति, पुनर्वसु, ये नक्षत्र तथा रिक्ता और पर्वसे रहित तिथि । मंगल और शनैश्चर इनसे भिन्न वार । भद्रा, वैधृति आदि योग जिसमें योग न हो और केंद्रस्थानमें जहां शुभग्रह पडे हों ऐसा लग्न इनमें शुभ होता है ॥

अथ पंचमषष्ठदिने षष्ठीपूजनप्रयोगः ।

अथ पंचमषष्ठदिनयोर्जन्मदानां पूजनम् ॥ रात्रेः प्रथमयामे पित्रादिः स्नात्वाचम्य देशकालौ संकीर्त्य अस्य शिशोः समातृकस्यायुरारोग्यप्राप्तिसकलानिष्टशांतिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विघ्नेशस्य जन्मदानां जीवंत्यपरनाम्न्याः षष्ठीदेव्याः शस्त्रगर्भाभगवत्याश्च पूजनं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ तंडुलपुंजेषु विघ्नेशं जन्मदाश्च नाममंत्रेणावाह्य ॥ "आयाहि वरदे देवि महाषष्ठीति विश्रुते ॥ शक्तिभिः सह बालं मे रक्ष जागरवासरे" इति षष्ठीदेवीमावाह्य नाम्ना भगवतीमावाह्य नामभिः ॥ "शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां लोकानां हितकारिणी ॥ मातर्बालमिमं रक्ष महाषष्ठि नमोस्तु ते" इति मंत्रेण च षोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत् ॥ "लंबोदर महाभाग सर्वोपद्रवनाशन ॥ त्वत्प्रसादादविघ्नेश चिरं जीवतु बालकः ॥ जननी सर्वभूतानां बालानां च विशेषतः ॥ नारायणी स्वरूपेण बालं मे रक्ष सर्वदा ॥ प्रेतभूतपिशाचे-

भ्यो डाकिनीशाकिनीषु च ॥ मातेव रक्ष बालं मे श्वापदे पन्नगेषु च ॥ गौरीपुत्रो यथा स्कंदः शिशुत्वे रक्षितः पुरा ॥ तथा ममाप्ययं बालः षष्ठिके रक्ष्यतां नमः इति ॥ विप्रेभ्यस्तांबूलदक्षिणादि दद्यात् ॥ रात्रौ जागरणं कुर्यात् ॥ पंचमषष्ठदिनयोर्दानप्रतिग्रहयोर्न दोषः ॥ दशमदिने बलिदानं स्वीयेभ्योन्नदानं च कार्यम् ॥

अब पांचमें और छठे दिनमें जन्मदाओंकी पूजाको कहते हैं । कि, रात्रिके प्रथम प्रहरमें पिता आदि स्नान, आचमन, देश कालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, माता सहित इस बालककी आयु और आरोग्यकी प्राप्ति और संपूर्ण अनिष्टोंकी शांतिपूर्वक श्रीपरमेश्वरकी प्रीति के लिये तथा विघ्नेश, जन्मदा, षष्ठीदेवी और जीवन्ती है दूसरा नाम जिसका ऐसी शस्त्र गर्भा भगवतीका पूजन करता हूं । फिर तण्डुलके पुंजोंमें विघ्नेश, और जन्मदाओंका नाम मंत्रसे आवाहन करके फिर षष्ठीदेवीका इस मंत्रसे आवाहन करै कि, महाषष्ठी है नाम जिसका ऐसी वर देनेवाली देवी तुम आओ । शक्तियों सहित रात्रिमें आज जागरण करती हुई रक्षा करो । फिर नाममंत्रसे भगवतीका आवाहन करके षोडश उपचारोंसे इस मंत्रको तथा नामोंको पढकर पूजा करै कि, सब देवोंकी शक्ति, जगत्के हित करनेवाली माता, तू इस बालककी रक्षा कर तुझको नमस्कार है । फिर इन मंत्रोंसे प्रार्थना करै कि, हे लंबोदर ! सब उपद्रवोंके नाशक । हे महाभाग ! हे गणेश ! आपकी कृपासे मेरा बालक चिरकालतक जीवो । तथा सब भूत और विशेष कर बालकोंकी जननी तू नारायणी स्वरूपसे सर्वदा इस बालककी रक्षा कर । हे माता ! प्रेत, भूत, पिशाच, डाकिनी, योगिनी, श्वापद (चौपाये) सर्प इनसे इस बालककी रक्षा कर । हे षष्ठीदेवि! जिस प्रकार पूर्व गौरीके पुत्र स्वामिकार्तिककी बाल्यावस्थामें तैंने रक्षा की थी तिसीप्रकार मेरे भी बालककी रक्षा कर तुझे नमस्कार है । फिर ब्राह्मणोंको ताम्बूल दक्षिणा आदि दे । रात्रिमें जागरण करै । पांचमें और छठे दिन दान प्रतिग्रहमें दोष नहीं होता । दशवें दिन बलिदान और अपने मनुष्योंको अन्न देना ॥

अथाशौचे कर्तव्यनिर्णयः ।

"सूतके मृतके कुर्यात्प्राणायाममंत्रकम् ॥ तथा मार्जनमंत्रांश्च मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ उपस्थानं नैव कार्यं मार्जनं तु कृताकृतम्" ॥ सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् गायत्रीजपो न कार्यः ॥ अर्घ्यांता मानसी संध्येत्युक्तेः केचिन्मनसा दशगायत्रीजपः कार्य इत्याहुः ॥ वैश्वदेवब्रह्मयज्ञादयः पंच महायज्ञा न कार्याः ॥ वेदाभ्यासो न कार्यः ॥ औपासनहोमपिंडपितृयज्ञाव- सगोत्रेण कारयेत् ॥ केचिच्छ्रौतकर्मणि सद्यः शुद्धयुक्तेरग्निहोत्रहोमः स्नात्वाचम्य स्वयं कार्य इत्याहुः ॥ अपरे तु सर्वस्याप्याशौचापवादस्य अनन्यगतिकत्वात्सति ब्राह्मणे ब्राह्मणद्वारैव कार्यः ॥ ब्राह्मणाभावे स्वयं कार्य इत्याहुः ॥ स्थालीपाको न कार्यः ॥ आशौचांते कार्यः ॥ सर्वथा लोपप्रसक्तौ स्थालीपाकोपि ब्राह्मणद्वारा कार्यः ॥ अन्वाधानोत्तरं सूतकप्राप्तौ ब्राह्मणद्वारा श्रौतेष्टिस्थालीपाकौ ॥ होमादौ

त्यागः स्नात्वा स्वयं कार्यः ॥ दर्शादिश्राद्धस्य लोप एव ॥ प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धम् आशौचांते एकादशाहे कार्यम् ॥ तत्रासंभवे दर्शव्यतीपातादिपर्वणि ॥ एवं पत्न्या-मृतुमत्यामपि पिंडपितृयज्ञदर्शश्राद्धे कार्ये ॥ अन्वाधानोत्तरं रजोदोषे इष्टिस्थाली-पाकौ कार्यौ ॥ अन्यथा कालांतरे दानप्रतिग्रहाध्ययनानि वर्ज्यानि ॥ आशौचेन्य-स्यान्नं नाश्नीयात् ॥ पितृयज्ञस्थालीपाकश्रवणाकर्मादिसंस्थानां प्रथमारंभो ब्राह्मण-द्वाराप्याशौचयोर्न भवति ॥ प्रथमारंभोत्तरं श्रवणाकर्मादिकं विप्रद्वाराशौचेपि पत्न्यार्तवेपि कार्यम् ॥ आग्रयणं तु न भवति ॥ अग्निसमारोपप्रत्यवरोहौ आशौ-चे न भवतः तेन समारोपोत्तरमाशौचे दर्शादिपर्वप्राप्तावग्निनाशात्तैतिरीयादीनां त्रिदिनं होमलोपे बह्वृचानां द्वादशदिनं होमलोपे अग्निनाशादाशौचांते श्रौतस्मा-र्तयोः पुनराधानमेव ॥ समारोपप्रत्यवरोहयोरन्यकर्तृकत्वाभावात ॥ अग्न्यनुगमने प्रायश्चित्तपूर्वकं पुनरुत्पत्तिरन्यद्वारा भवति ॥

अब आशौचके कार्यका निर्णय कहते हैं । मृतक सूतकके विषे मंत्रके विना प्राणायामको करै । तथा मार्जनके मंत्रोंका मनसे उच्चारण करके मार्जन करै । और गायत्रीमंत्रको भली प्रकार उच्चारण करके, सूर्यको अर्घ्य दे । इसमें उपस्थान (स्तुति) न करना और मार्जनको करै चाहै न करै । सूर्यका ध्यान करता हुआ नमस्कार करै । गायत्रीका जप नहीं करना । क्योंकि, यह लिखा है कि, अर्घ्यपर्यंत मानसी संध्याको करै । कोई यह कहते हैं कि, मनसे गायत्रीका जप करना । वैश्वदेव, ब्रह्मयज्ञ आदि पंच महायज्ञ न करने । वेदको न पढना । औपासन अग्निमें होम और पिण्डपितृयज्ञ किसी असगोत्रीसे करावै । कोई यह कहते हैं कि, श्रुति (वेद) में कहे कर्मके लिये सद्यः शुद्धि कही है । इस वचनसे अग्निहोत्र, होम, स्नान, आचमन करके स्वयं करना । और कोई तो यह कहते हैं कि, सब ये आशौच के अपवादरूपी वचन अनन्यगति हैं अर्थात् अन्य कोई न मिलै तो अपवादसे विहित कर्मको स्वयं करै । इससे जो ब्राह्मण न मिलजाय तो उससेही करावै और जो न मिलै तो स्वयं करै । स्थालीपाक न करना । आशौचके बीतनेपर करै । जो सर्वथा लोपकी प्राप्ति होय तो स्थालीपाक भी ब्राह्मणद्वारा करावै । जो अन्वाधानके अनंतर सूतक लग जाय तो ब्राह्मणद्वारा वेदोक्त इष्टि और स्थालीपाक कराने । होम आदिमें स्नान करके स्वयंही हविका त्याग करना । दर्श आदि श्राद्ध सर्वथा न करना और प्रतिवार्षिक श्राद्ध आशौचके बीतनेपर एकादशाहके दिन करै । जो उस दिन न होसकै तो दर्श व्यतीपात आदि पर्वमें करना । इसी प्रकार पिण्डयज्ञ और दर्शश्राद्ध स्त्री रजस्वला होनेपर अग्निमें करने । अन्वाधानसे पीछे रजोदोष होनेपर इष्टिस्थालीपाक करने अन्यथा अन्यकालके विषै दान,प्रतिग्रह,अध्ययन वर्जने । आशौचमें अन्य किसी मनुष्यका अन्न न खाय । पितृयज्ञ,स्थालीपाक,श्रवणाकर्म आदिकोंका प्रथम आरंभ ब्राह्मणद्वाराभी आशौचमें न करावै । और जो प्रथम आरंभ होगया होय तो श्रवणाकर्म आदि आशौच और स्त्रीके रजस्वला होनेपरभी ब्राह्मणद्वारा करावै । और आग्रयणकर्म ब्राह्मणद्वाराभी नहीं होता । अग्निका समारोप (स्थापन) और प्रत्यवरोह ये आशौचमें न करने । तिससे यह बात समझनी कि, समारोप किये पीछे जब आशौच हो और उसमें दर्श आदि पर्व आनपडै तो और अग्निका नाश होय

तो तैत्तिरीयोंको तीन दिन उपवास करना । और बहवृच शाखावालोंके होमका लोप होनेपर बारह दिनका उपवास करना । आशौचके अन्तमें श्रौत और स्मार्त अग्निका पुनःआधान करै क्योंकि, समारोप और प्रत्यवरोहको अन्य कोई नहीं करसक्ता । अग्निके अनुगमन (पीछे गमन) में प्रायश्चित्तपूर्वक पुनः उत्पत्ति अन्यके द्वारा होती है ॥

अथ भोजनकाले सूतकप्राप्तौ ।

भोजनकाले आशौचप्राप्तौ मुखस्थं ग्रासं त्यक्त्वा स्नायात् ॥ तद्ग्रासभक्षणे एकोपवासः ॥ सर्वान्नभक्षणे त्रिरात्रोपवासः ॥ "सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने" इत्युक्तेर्ग्रहणे स्नात्वा श्राद्धदानजपादिकमाशौचेपि कार्यम् ॥ एवं संक्रांतिस्नानदानादिकमपि ॥ संकटे नांदीश्राद्धोत्तरं मौंजीविवाहयोर्नाशौचम् ॥ संकटे मधुपर्कोत्तरमृत्विजां नाशौचम् ॥ यजमानस्य दीक्षणीयोत्तरं प्रागवभृथान्नाशौचम् ॥ अवभृथमाशौचोत्तरं कार्यम् ॥

जा भोजन करतेहुए आशौच प्राप्त होजाय तो मुखमें टिकेहुए ग्रासको त्यागकर स्नान करै । जो उस ग्रासका भक्षण करले तो एक उपवास करै । और जो सब अन्नका भक्षण करै तो तीन दिन उपवास करै । ग्रहणमें स्नान कियेपीछे श्राद्ध, दान, जप आदि आशौचमेंभी करने । क्योंकि, राहुके दर्शन होनेपर सूतक और मृतक सूतकके विषे जप आदिका दोष नहीं होता । इसी प्रकार संकटके विषे संक्रांतिस्नान और दानभी करना तथा नांदीश्राद्ध कियेपीछे मौंजीबंधन और विवाहके विषे संकट होनेपर आशौच नहीं होता । मधुपर्कके देनेसे पीछे ऋत्विजोंको आशौच नहीं होता । यजमानको यज्ञदीक्षासे पीछे यज्ञांतस्नानसे पूर्व आशौच नहीं होता और यज्ञांतस्नान तो आशौचसे पीछे करना ॥

अथ व्रतादिष्वाशौचापवादः ।

व्रतेषु नाशौचमित्युक्तेरनन्तव्रतादिकमन्यैः कारयेत् ॥ प्रारब्धान्नसत्रस्यान्नदानादिषु नाशौचम् ॥ " पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः " ॥ उदकदुग्धदधिघृतलवणफलमूलभर्जिताद्यन्नानां सूतकिगृहस्थितानां स्वयं ग्रहणे दोषाभावः ॥ सूतकिहस्तात्तु न ग्राह्यम् ॥ केचित्तंदुलादिकमपकान्नं ग्राह्यमाहुः ॥ ॥ इति संक्षेपेण निर्णयो विशेषस्तु वक्ष्यते ॥

तथा व्रतोंके विषे आशौच नहीं होता, इसवचनसे आशौचके विषै अनंत आदिका व्रत अन्योंसे करावै । जिस अन्नसत्र (यज्ञ) का प्रारंभ करदिया हो, उसके विषै अन्नदान आदि करनेमें आशौच नहीं होता । पूर्व संकल्प किये अन्नमें दोष नहीं होता । जल, दुग्ध, दधि, घी, लवण, फल, मूल और भुँजाहुआ अन्न ये सूतकके घरमें हों तो इनको स्वयं ग्रहण करनेमें दोष नहीं होता । सूतकीके हाथसे ग्रहण न करै और कोई तो यह कहते हैं कि, तण्डुल आदि अपक्व अन्न ग्रहण नहीं करना । यह संक्षेपसे निर्णय कहा विशेष अगाडी कहेंगे ॥

अथ सूतिकाशुद्धिः ।

दशाहांते सूतिकाया अस्पृश्यत्वनिवृत्तिर्नामकर्मजातकर्मादिप्राप्तकर्माधिकारश्च॥

जातेष्टिविवाहोपनयनादिकर्मसु तु पुत्रप्रसूनां विंशतिरात्रांतेऽधिकारः ॥ कन्याप्रसूनां मासांतेऽधिकारः ॥

अब सूतिकाकी शुद्धि कहते हैं । दशमें दिनके अन्तमें स्पर्शके अभावकी निवृत्ति और नामकर्म और जातकर्म आदि जो करने योग्य कर्म उनका अधिकार होजाता है। जिनके पुत्रजन्म हुआ हो उनको जातेष्टि, विवाह, उपनयन आदि कर्मोंका अधिकार बीस रात्रिके अन्तमें होता है । और जिनके कन्याकी उत्पत्ति हुई हो उनको मासके अंतमें अधिकार होता है ॥

अथ जन्मनि दुष्टकालास्तच्छांतयश्च निर्णीयन्ते ।

तत्रादौ गोप्रसवः ॥ यत्र जन्मकाले पितुर्मातुः सुतस्य चारिष्टमुक्तं तत्र गोप्रसवशान्तिस्तत्तन्नक्षत्रादिशांतिश्च कार्या ॥ धनाद्यरिष्टेषु न कार्या ॥ मूलाश्लेषाज्येष्ठामघानक्षत्रेषु जनने चतुर्थपादादिषु पित्राद्यरिष्टाभावेपि गोप्रसवः ॥ अश्विनीरेवतीपुष्यचित्रासु नक्षत्रशांत्यभावेपि गोप्रसवशांतिरेव कार्या ॥ तत्रास्य शिशोरमुकदुष्टकालोत्पत्तिसूचितारिष्टनिवृत्त्यर्थं गोमुखप्रसवशान्तिं करिष्ये इति संकल्प्य गणेशपूजनमात्रं कृत्वा 'अंगादंगात्' इति मन्त्रेण शिशुमूर्धावघ्राणांते प्रयोगमध्य एव पुण्याहवाचनमिति कौस्तुभमयूखौ ॥ पुण्याहवाचनं शाखोक्तं कृत्वा मूर्धावघ्राणांते अस्य गोमुखप्रसवस्य पुण्याहं भवंतो ब्रुवंत्वित्येकवाक्यमेव त्रिर्वदेत् ॥ ऋत्विजश्च प्रतिब्रूयुर्न तु शाखोक्तमिति कमलाकरः ॥ नांदीश्राद्धं न कार्यम् ॥ अग्निप्रतिष्ठांते कस्मिंश्चित्पीठे नवग्रहान् अधिदेवतादिरहितान् प्रतिष्ठाप्यान्वाधानं कुर्यात् ॥ आज्यभागांते अपः आपोहिष्ठेतित्र्यृचेन अप्सु मे सोम इति गायत्र्या ऋचा च मीलितदधिमध्वाज्येन प्रत्यृचम् अष्टाष्टसंख्याहुतिभिर्विष्णुं तद्विष्णोरित्यृचा मीलितदधिमध्वाज्येनाष्टाहुतिभिः यक्ष्महणम् अक्षीभ्यामिति सूक्तेन प्रत्यृचमष्टाष्टमीलितदधिमध्वाज्याहुतिभिर्नवग्रहान्दधिमध्वाज्येनाष्टाष्टसंख्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि मयूखादयः ॥ कमलाकरस्तु दधिमध्वाज्येनापश्चतुर्वारं विष्णुं सकृत् यक्ष्महणमक्षीभ्यामिति सूक्तेन प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्याहुतिभिर्नवग्रहानेकैकयाहुत्या शेषेण स्विष्टकृतमित्याह ॥ आज्यभागहोमांते एकस्मिन् कुंभे विष्णुवरुणौ प्रतिमयोः संपूज्यौ ॥ प्रतिमासु विष्णुवरुणयक्ष्महणः पूज्या इति मयूखे ॥ ततो यथान्वाधानं होम इति संक्षेपः ॥ अवशिष्टप्रयोगः शांतिग्रन्थेषु ॥ एवमग्रेपि देवताद्रव्याहुतिसंख्यानिमित्तफलमात्रं लिख्यते विस्तरोन्यत्र ज्ञेयः ॥

अब जन्मसमयमें दुष्टकाल और उसकी शांतियोंको कहते हैं। तिसके आदिमें गोप्रसवकी शांतिको कहते हैं। कि, जहां जन्मकालके विषै पिता, माता और पुत्र इनको अरिष्ट कहाहै वहां गोप्रसवशांतिको करै। तथा तिस तिस नक्षत्रकी शांतिको करै। यह शांति धन आदिका अरिष्ट होय तो न करनी । तहां यह संकल्प करै कि, इस बालकको जो अमुक दुष्टकालमें

उत्पत्ति होनेसे अरिष्ट प्रतीत हुआ है उसकी शांतिके लिये गोप्रसवशांतिको करता हूं । फिर गणेशके पूजनमात्रको करै । कौस्तुभ और मयूखग्रंथमें यह लिखाहै कि, 'अंगादंगात्' इस मन्त्रसे बालकके मस्तक सूंघनेके अंतमें कर्मके मध्यमेंही पुण्याहवाचनको पढै । और कमलाकरने यह कहा है कि, फिर अपनी शाखामें कहे पुण्याहवाचनको पढकर मूर्द्धघ्राण (सूंघना) के अंतमें इस गोमुख प्रसवरूप कर्मका पुण्याह तुम कहो इस वचनको तीन बार कहै । ऋत्विज फिर पुण्याहवाचनको कहैं । शाखामें कहे हुएको न कहैं । इसमें नांदीश्राद्ध न करना । और अग्निका स्थापन और किसी चौकी आदि आसनपर अधिदेवता आदिसे रहित नवग्रहोंका स्थापन करके अन्वाधान करै । आज्यभागके अन्तमें 'आपोहिष्ठा०' इत्यादि तीन ऋचा 'अप्सुमेसोम०' और गायत्री मंत्र इन एक एक ऋचासे मीलित (मिले) दधि, मधु और घीकी आठ २ आहुति जलको तथा 'तद्विष्णोः०' इस मन्त्रसे आठ आहुति विष्णुको और 'यक्ष्महणम् अक्षीभ्यां०' इत्यादि सूक्तकी एक २ ऋचासे आठ आठ आहुति यक्ष्महाको और आठ २ आहुति नवग्रहोंको देकर शेष दधि आदिसे स्विष्टकृत् होम करै । और कमलाकरने यह कहा है कि, दधि, मधु, घी इनसे चार आहुति जलकी एक विष्णुको 'यक्ष्महणं अक्ष्णीभ्यां०' इस सूक्तकी एक २ ऋचासे आठ २ आहुति यक्ष्महाको और एक एक नवग्रहोंको देकर शेषसे स्विष्टकृत् होम करै । आज्यभाग और होमके अन्तमें एक घटमें विष्णु और वरुणकी प्रतिमाके पूजन करने । और मयूखमें यह लिखा है कि, प्रतिमाओंके विषै विष्णु, वरुण और यक्ष्महा इनका पूजन करना । और उसके अन्तमें अन्वाधान होमको करना यह संक्षेपसे कहा । और अवशिष्ट विधि शांतिग्रंथोंमें समझनी । इसप्रकार आगे भी देवता और द्रव्य, आहुतियोंकी गणना और कर्मका फल लिखेंगे । और विस्तार अन्यत्र समझना ॥

अथ कृष्णचतुर्दशीजननशांतिः ।

"कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधंफलम्॥चतुर्दशीं च षड् भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् ॥ द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा ॥ चतुर्थे मातुलं हन्ति पंचमे वंशनाशनम् ॥ षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम्" ॥ तत्र चतुर्दश्याः षडंशानां मध्ये द्वितीयतृतीयषष्ठांशेषु जनने गोमुखप्रसवपूर्वकं चतुर्दशीशांतिः ॥ अन्यभागे केवलचतुर्दशीशांतिः ॥ अस्य शिशोः कृष्णचतुर्दश्या अमुकांशजननमूचितसर्वारिष्टनिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमित्यादिसंकल्पः ॥ आग्नेय्यादिषु चतुर्दिक्षु चत्वारः कुम्भा मध्ये शतच्छिद्रकुम्भे प्रतिमायां रुद्रावाहनम् ॥ मयूखे तु पीठादौ रुद्रप्रतिमां संपूज्य तत्प्राच्यामुदीच्यां वा शतच्छिद्रादिपञ्चकलशस्थापनं पूजनम् अन्वाधाने ग्रहानष्टाष्टसंख्यसमिदाज्यचरुभिरधिदेवतादीन् एकैकसंख्यसमिच्चर्वाज्याहुतिभी रुद्रम् अश्वत्थप्लक्षपलाशखदिरसमिद्भिश्चर्वाहुतिभिराज्याहुतिभिर्माषैस्तिलैः सर्षपैश्च प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यन्यतरसंख्यया त्र्यंबकमिति मंत्रेण अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च तिलाज्याहुतिभिरमुकसंख्याभिः

सकृद्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः ॥ यद्वा प्रजापतिमेव समस्तव्याहृतिभिस्तिलैः शेषेणेत्यादि ॥

अब कृष्णचतुर्दशीमें जन्म होय तो उसकी शांति कहते हैं । कि, कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें जन्मका छः प्रकारका फल कहते हैं कि, चतुर्दशीके छः भाग करै, उसमें जो आदि भागमें जन्म शुभ, द्वितीयभागमें पिताका नाश, तीसरे भागमें माताका नाश, चौथेमें मामाका नाश, पांचमेमें वंशका नाश और छठे अंशमें धन, आत्मा और वंशका नाश होता है । अब उनमें चतुर्दशीके छः अंशोंमेंसे द्वितीय, तृतीय और छठे अंशोंमें जन्म होनेपर गोमुखप्रसवकी शांतिपूर्वक चतुर्दशीकी शांतिको करै । और जो अन्यभागमें जन्म होय तो केवल चतुर्दशीकी शांति करनी । उसका संकल्प इस बालककी कृष्णचतुर्दशीके अमुक भागमें जन्मसे जो सर्वारिष्ट आदि प्रतीतहुआ उसकी शांतिपूर्वक श्रीपरमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये अमुक कर्मको करताहूं । फिर आग्नेयी आदि चार दिशाओंमें चार घट स्थापन करने । फिर मध्यमें शतच्छिद्र कुम्भपर रक्खीहुई प्रतिमामें रुद्रका आवाहन करना । और मयूखमें यह लिखा है कि, आसन आदिपर रुद्रकी प्रतिमाको पूजकर और उससे पूर्व वा उत्तर दिशामें शतच्छिद्र आदि पांच कलशोंका स्थापन करै और पूजन करै । और अन्वाधानके विषै ग्रहोंके लिये समिध्, आज्य और चरु इनकी आठ २ आहुति और इनके अधिदेवता आदिके लिये समिध्, चरु, आज्य इनकी एक २ आहुति और रुद्रके लिये अश्वत्थ, पीपल, प्लक्ष (पिलखन) पालाश, खदिर और समिध इनकी आहुति और ' त्र्यम्बकं० ' इस मन्त्रसे चरु, घी, माष (उडद), तिल, सर्षप इन प्रत्येककी एकसौ आठ वा अट्ठाईस आहुति दे । और अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापतिको तिलकी एकसौ आठ वा अट्ठाईस आहुति व्यस्त (भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा) समस्त (भूर्भुवः स्वः: स्वाहा) व्याहृतियोंसे दे । अथवा प्रजापतिकोही समस्त व्याहृतियोंसे आहुति दे और अन्य देवताओंको तिलोंकी आहुति दे ॥

अथ सिनीवालीकुहूदर्शजननशांतयः ।

तत्रामावास्यायाः प्रथमो यामः सिनीवाली अंत्योपांत्ययामौ कुहूः ॥ मध्यवर्तिपंचयामा दर्श इति केचित् ॥ अपरे चतुर्दशीमात्रयुतेऽहोरात्रे वर्तमाना अमावस्या सिनीवाली ॥ प्रतिपन्मात्रयुतेऽहोरात्रे वर्तमाना कुहूः ॥ तेनामाया वासरत्रयस्पर्शित्वलक्षणदिनवृद्ध्यभावे सूर्योदयस्पर्शित्वाभावलक्षणक्षयाभावे च दर्शो नास्त्येव ॥ उदयात्पूर्वाहोरात्रे वर्तमानायाः सिनीवालित्वात् ॥ उदयोत्तरं वर्तमानायाः कुहूत्वात् ॥ दिनक्षये सर्वाप्यमा दर्शसंज्ञा न तत्र सिनीवालीकुहूभागौ ॥ केवलचतुर्दशीकेवलप्रतिपद्युक्तत्वाभावात् ॥ एवं दिनवृद्धौ त्रिदिनस्पर्शे मध्यदिनस्था षष्टिनाडीमितामावास्या दर्शसंज्ञा चतुर्दश्यादियोगाभावात् ॥ पूर्वोत्तरदिनस्थौ भागौ सिनीवाली कुहूसंज्ञावित्याहुः ॥ इदं मयूखे स्पष्टम् ॥ "सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा ॥ गजाश्वमहिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ गोपक्षिमृगदासीनां प्रसूतिरपि वृत्तिहृत् ॥ कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी स्मृता ॥ यस्य प्रसू-

तिरेतेषां तस्यायुर्धननाशनम् ॥ शांत्यभावेर्हति त्यागमत्र जातो न संशयः ॥ अत्यागे नाशयेत्किंचित्स्वयं वा नाशमाप्नुयात्'' ॥

अब सिनीवाली, कुहू, दर्श इनमें जन्म हुआ हो उसकी शांति कहतेहैं । अमावस्याके प्रथम प्रहरको सिनीवाली कहते हैं । और आठमें, सातमें प्रहरको कुहू कहते हैं । और मध्याके पांच प्रहरोंको सिनीवाली कहते हैं । और कोई यह कहते हैं कि, चतुर्दशीसे युक्त अहोरात्रमें वर्त्तमान अमावस्याको सिनीवाली और प्रतिपदासे युक्त अमावस्याको कुहू कहते हैं । तिससे यह बात समझनी कि, अमावस्याका तीन दिनके संग योगरूप दिनकी वृद्धि और सूर्योदयके समय न होना रूप दिनका क्षय न होय तो दर्श नहीं होती क्योंकि, उदयसे पूर्व अहोरात्रमें वर्तमान अमावस्या सिनीवाली और सूर्योदयसे पीछे वर्तमानको कुहूसंज्ञक कह चुके । जो दिनका क्षय होजाय तो संपूर्ण अमावस्या दर्श होतीहै । उसमें सिनीवाली और कुहू नहीं होती । क्योंकि, उसमें केवल चतुर्दशी वा केवल प्रतिपदाका योग नहीं । इसीप्रकार दिनके वढ जानेपर तीन दिनमें योग होनेसे मध्यदिनकी साठ घडीतक अमावस्या दर्श समझनी । क्योंकि, उसमें चतुर्दशी आदिका योग नहीं । और पहिले पिछले दिनके भागमें टिकी अमावस्या सिनीवाली कुहू समझनी । यही बात मयूखग्रंथमें स्पष्टकर लिखी है कि, जिसकी स्त्री वा हथिनी, घोडी, भैंस ये पशु सिनीवालीके विषै गर्भमोचन करैं तो यह चाहैं इन्द्रहो उसकीभी श्रीको हरलेती हैं । गौ, पक्षी, मृगी और दासी इनकीभी प्रसूति धनके नष्ट करनेवाली होतीहै । इसीप्रकार कुहूमें प्रसूतिभी अत्यंत समस्तदोषोंके करनेवाली है । जिसके प्रसूति इन पूर्वोक्तोंकी होतीहै उसके आयु और धनका नाश होता है । जो शांति न कीजाय तो इसमें पैदा हुए बालकका त्याग करदे । और जो त्याग न कियाजाय तो किसीको नष्ट करता है वा आपही नष्ट होजाता है ॥

अथ सिनीवालीकुहूशांतिः ।

सिनीवालीजननसूचितेत्यादिः कुहूजननसूचितारिष्टनाशेत्यादिश्च संकल्पः कुहूजनने गोप्रसवोपीति केचित् ॥ अत्रोभयत्रापि चतुर्दशीशांतिवच्छतच्छिद्रकलशसहिताः पंचकलशाः ॥ मध्ये रुद्रः प्रधानदेवता इंद्रः पितरश्च पार्श्वदेवते इति प्रतिमात्रयम् ॥ इंद्रस्य पितॄणां च प्रधानरुद्रन्यूनसंख्यया प्रधानोक्तसर्वद्रव्यैर्होमः ॥ अवशिष्टान्वाधानदेवतोहश्चतुर्दशीशांतिवत् ॥ प्रधानदेवतापूजोत्तरं गोवस्त्रस्वर्णदानानि कृत्वा ॥

इसकी शांतिके विषै इसप्रकार संकल्प करै कि, कुहूमें उत्पन्न हुए बालकके जन्मसे सूचन किये अरिष्टके नाश करनेके लिये अमुक शांतिको करताहूँ । कुहूमें जन्म होनेपर कोई गोप्रसवशांतिको भी कहते हैं । इन दोनोंकी शांतिके लिये चतुर्दशीकी शांतिके समान सौ जिसमें छिद्र हों ऐसे कलश सहित पांच कलश और मध्यमें रुद्र, प्रधान देवताकी और पार्श्वमें इंद्र और पितरोंकी तीन प्रतिमायें होतीहैं और इन्द्र और पितरोंके निमित्त तीनों देवताओंमें प्रधान जो रुद्रसे न्यून उसकी संख्या आहुतियोंसे प्रधानमें कही सब द्रव्योंसे होम करै । अवशिष्ट अन्वाधान और प्रधान देवताका होम चतुर्दशीकी शान्तिके समान समझनी । प्रधान देवताकी पूजाके अनन्तर गौ, वस्त्र और सुवर्ण इनका दान करै ॥

अथ दशदानानां नामानि ।

"गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ॥ रौप्यं लवणमित्येतद्दश दानानि दापयेत् ॥ क्षीराज्यगुडदानं च कृत्वा होमं समारभेत्"॥ एतानि दानानि ऋत्विग्भ्यो देयानि ॥ तेनांते पृथग्दक्षिणादानं न कार्यम् ॥ अतएवात्र गवादेर्दक्षिणारूपत्वात्सदक्षिणं दानं न भवति ॥ अन्यत्र दशदानादीनां सदक्षिणं दानं कार्यम् ॥

गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड, चाँदी और लवण इन दश द्रव्योंका दान करै । फिर दुग्ध, घी और गुड इनका दान करके होमका आरंभ करना । ये पूर्वोक्त दान ऋत्विजोंको देने इसीसे वहां गौ आदिको दक्षिणारूप होनेसे दक्षिणासहित दान नहीं कहा। और अन्यकर्मोंके विषै तो ये दशदान दक्षिणासहित करने ॥

अथैतेषां मानम् ।

भुवो मानं गोचर्म सप्तहस्तो दंडः त्रिंशद्दंडावर्तनम् ॥ दशवर्तनानि गोचर्म तिलानां द्रोणः सुवर्णरजतयोर्दशमाषतदर्धतदर्धान्यतममाज्यस्य चत्वारिंशत्पलानि ॥ वाससस्त्रिहस्तत्वम् ॥ धान्यस्य पंच द्रोणाः ॥ एवं गुडलवणयोः एतावत्प्रमाणाशक्तौ नित्यनैमित्तिके यथाशक्ति देयानि ॥ यथाशक्ति हिरण्यं वा तत्तत्प्रतिनिधित्वेन हिरण्यगर्भेति मंत्रेण देयम् ॥ नैमित्तिकादेरकरणे प्रत्यवायात् ॥ अभ्युदयादिफलार्थं तु दश दानानि शक्तिं विना न कार्याणीति भाति ॥ होमांते बलिदानाभिषेकादि ॥ इति सिनीवाली कुहूशांतिः ॥

अब इन पूर्व कहे दानोंका प्रमाण कहते हैं । कि, पृथ्वीका गोचर्म मात्र दे । गोचर्म इतना होता है कि, सात हाथ परिमाणको दण्ड कहते हैं, तीस दण्डोंका आवर्तन और दश आवर्तनोंका गोचर्म होता है । द्रोणभर तिल, सुवर्ण तथा चाँदी दश मासा, पांच वा ढाई मासाभर दे । चालीश पल घी, तीन हात वस्त्र, पांच द्रोण अन्न इसीप्रकार गुड और लवणोंकाभी पांच द्रोण परिमाण समझना । इतने प्रमाणके देनेकी सामर्थ्य न होय तो नित्य नैमित्तिक कर्ममें शक्तिके अनुसार दे । वा सुवर्ण यथाशक्ति उस उस पदार्थके बदलेमें 'हिरण्यगर्भ' इसमंत्रसे दे। क्योंकि, नैमित्तिक आदि कर्मके विषै इन दश दानोंके न करनेमें दोष कहा है । इससे ये दान अवश्य करने और ऐश्वर्य आदि फलकी कामनासे तो ये दशदान शक्तिके विना न करे यह प्रतीत होता है । होमके अंतमें बलिदान और अभिषेक करै । सिनीवाली और कुहूकी शांति कह चुके ॥

अथ दर्शशांतिः ।

"अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता ॥ तद्दोषपरिहारार्थं शांतिं वक्ष्यामि ते सदा ॥" अस्य दर्शजननसूचितारिष्टनिरासार्थं शांतिं करिष्ये इति संकल्पः स्थंडिलात्पूर्वदेशे कलशं प्रतिष्ठाप्य कलशाग्न्योर्मध्ये सर्वतोभद्रपीठे ब्रह्मादिमंडलदेवता आवाह्य तन्मध्ये स्वर्णप्रतिमायां ये चेहेति मंत्रेण पितॄनावाहयेत् ॥ तद्दक्षिणे

रजतप्रतिमायामाप्यायस्वेति सोममुत्तरतस्ताम्रप्रतिमायां सवितापश्चात्तादिति सूर्यं चावाह्य संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्य सर्वतोभद्रेशान्यां ग्रहस्थापनादि ॥ अन्वाधाने आदित्यादिग्रहान् अमुकसंख्याभिः समिच्चर्वाज्याहुतिभिः पितॄन् अष्टाविंशतिसंख्याकाभिः समिच्चरुभ्यां सोमं सूर्यं च प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यसमिच्चर्वाज्याहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि ॥ अत्र स्विष्टकृतः पूर्वं मातापितृशिशूनां कलशोदकेनाभिषेकस्ततः स्विष्टकृद्बलिदानादीति विशेषः ॥ इति दर्शशान्तिः ॥

अब दर्शमें उत्पन्न हुए बालकोंके माता पिताओंको अत्यंत दरिद्रता होजाती है इससे उस दोषकी शान्तिके लिये तेरे प्रति शान्तिको कहता हूं । प्रथम संकल्प करै कि, दर्शमें जन्म होनेसे जिस अरिष्टकी प्रतीति हुई उसकी शान्तिके लिये मैं शान्तिको करता हूं । फिर स्थंडिलसे पूर्व दिशामें कलशको स्थापन करके कलश और अग्निके मध्यमें रचेहुए सर्वतोभद्ररूप आसनपर ब्रह्मा आदि मण्डल देवताओंका आवाहन करके उसके मध्यमें रक्खीहुई सुवर्णकी प्रतिमामें पितरोंका आवाहन करै । और उसके दक्षिणभागमें चाँदीकी प्रतिमामें 'आप्यायस्व' इस मंत्रसे सोम और उत्तरभागमें ताम्रकी प्रतिमाके विषै ' सविता पश्चात्०' इस मन्त्रसे सूर्यका आवाहन और पूजन करके अग्निका स्थापन करके सर्वतोभद्रकी ईशान दिशामें ग्रहोंका स्थापन आदि करै । अन्वाधानके विषै आदित्य आदि ग्रहोंको समिध, चरु, घी इनकी पूर्वोक्त संख्याकी आहुति । पितरोंको समिध, चरु इनकी अट्ठाईस आहुति और सोम सूर्य इनको समिध, चरु इनकी एकसौ आठ २ आहुति दे । शेष हविसे स्विष्टकृत् होम करना । इसमें यह विशेष है कि, स्विष्टकृत् होमसे पूर्व माता पिता और बालक इनका कलशके जलसे अभिषेक । फिर स्विष्टकृत् और बलिदान आदि कर्म करना । दर्शकी शांति समाप्त हुई ॥

अथ नक्षत्राणां शांतिः मूलादिजननफलं च ।

तत्र मूलनक्षत्रफलम् ॥ "पिता म्रियेत मूलाद्ये पादे पुत्रजनिर्यदि ॥ द्वितीये जननीनाशो धननाशस्तृतीयके ॥ चतुर्थे कुलनाशोतः शांतिः कार्या प्रयत्नतः ॥ क्वचिच्चतुर्थचरणः शुभ उक्तो मनीषिभिः ॥ एवं च दुहितुर्ज्ञेयं मूलजातफलं बुधैः"॥ केचित्तु ॥ " न कन्या हन्ति मूलर्क्षे पितरं मातरं तथा ॥ मूलजा श्वशुरं हन्ति श्वश्रूमाश्लेषजा सुता ॥ ज्येष्ठायां तु पतिज्येष्ठं विशाखोत्था तु देवरम् ॥ शांतिर्वा पुष्कला स्याच्चेत्तर्हि दोषो न विद्यते " इत्याहुः ॥ " अभुक्तमूलसम्भवं परित्यजेत्तु बालकम् ॥ समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ ज्येष्ठांते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् ॥ अभुक्तमूलमथवा सन्धिनाडीचतुष्टयम् ॥ वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलांगनांत्ये ॥ पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विति संस्मरंति" ॥ एतल्लग्नफलम् ॥ "स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले च धनागमः ॥ मृत्युलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत् ॥ नवमासं सार्पदोषो मूलदोषोष्टवर्षकम् ॥ ज्येष्ठा मासान्पंचदश तावद्दर्शनवर्जनम् ॥ व्यतीपातेंगहानिः स्यात्प

रिवे मृत्युमादिशेत ॥ वैधृतौ पितृहानिः स्यान्नष्टेंदावंधतां व्रजेत् ॥ मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत् ॥ विकृतांगश्च हीनश्च सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥ तद्वत्सदंतजातस्तु पादजातस्तथैव च ॥ तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम्'' ॥ व्यतीपातादौ ग्रहमखसहिता तत्तच्छांतिरवश्यं कार्या ॥ इतरशांतिषु ग्रहमखो नावश्यकः ॥

अब नक्षत्रकी शांतिको कहते हैं । तिसमें प्रथम मूल नक्षत्रमें जन्म होय उसका फल कहते हैं कि, मूलके प्रथम पादमें जन्म होय तो पिता मरणको प्राप्त हो, द्वितीय पादमें माताका मरण, तीसरेमें धनका नाश, चौथेमें कुलका नाश होता है । इससे शान्ति करानी । कहीं आचार्योंने चतुर्थ चरण शुभ कहा है, इसी प्रकार मूलमें उत्पन्न हुई कन्याका फलभी समझना । और कोई तो यह कहते हैं कि, मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुई कन्या माता पिताको नष्ट नहीं करती अपितु जो मूलमें उत्पन्नहुई होय तो श्वशुर और आश्लेषामें होय तो अपनी सासको नष्ट करती है । तथा ज्येष्ठामें पति, विशाखामें देवरको नष्ट करती है, इससे जो भली विधिविधानसे शान्ति होय तो दोष नहीं होता । अभुक्तमूलमें उत्पन्न हुए बालकका परित्याग वा पिता आठ वर्षतक उसके मुखको न देखै । ज्येष्ठाके अंतकी एक घडी मूलके आदिकी दो घडीको अभुक्तमूल वा ज्येष्ठाके योगमें चार घडियोंको अभुक्तमूल कहते हैं । वृष, वृश्चिक, सिंह, कुंभ इनमें मूलनक्षत्र स्वर्गमें । मिथुन, तुला, कन्या, मीन इनमें पातालके विषै । और मेष, धन, कर्क, मकरको मर्त्यलोकमें रहता है । यह लग्नोंका फल कहते हैं कि, स्वर्गमें मूल होय तो राज्य, पातालमें धनकी प्राप्ति और जो मनुष्यलोकमें मूल होय तो शून्य फल कहै । अश्लेषाका दोष नौ मास, मूलका आठ वर्ष, ज्येष्ठाका पंद्रह महीना तक दोष रहता है, इससे तबतक दर्शन न करै । व्यतीपातमें होय तो अंगभंग, परिघमें मृत्यु, वैधृतिमें पिताका नाश, नष्टेन्दु (नष्टचंद्र) में अंधा, मूलमें समूल नाश, धृतिमें कुलका नाश, दोनों संध्या (प्रातः सायं) ओंमें अंगभंग वा अंगहीन होता है । तिसीप्रकार जो दांतोंसहित वा चरणोंकी तरफसे उत्पन्न हुआ हो उसकाभी अनिष्ट फल समझना । तिससे क्रूरग्रहोंकी शान्ति करावै । व्यतीपात आदिके विषै ग्रहोंके होम सहित तिसतिसकी शांति अवश्य करनी । और अन्य शांतियोंके विषै ग्रहोंके होमकी आवश्यकता नहीं ॥

अथ शान्तिकालनिर्णयः ।

" मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शांतिहोमस्य यत्नतः ॥ जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे वा शुभे दिने " ॥ जननाद्वादशाहे शांतिकरणे शांत्युक्तनक्षत्राहुतिवह्निचक्रावलोकनादिकं नावश्यकम् ॥ कालांतरे आवश्यकम् ॥ एवमन्यशान्तिष्वपि ज्ञेयम् ॥

शान्तिहोमके मुख्य कालको कहताहूं कि, जन्मसे द्वादशमें दिन वा जन्मनक्षत्र वा किसीउत्तमदिन शांतिको करै । जन्मसे बारहमें दिन शांति करनेमें शांतिमें कहे नक्षत्रोंकी आहुति अग्निके चक्रका देखना आदि कर्म आवश्यक नहीं । अन्यकालके विषै तो आवश्यक है । इसीप्रकार अन्य शांतियोंके विषैभी समझना ॥

अथाग्न्याहुतिचक्रम् ।

तद्यथा॥"शुक्लादितस्तिथिः सैका वारयुक्ताब्धिशेषिता ॥ खे गुणे भुवि वासोऽग्ने-र्द्व्येकयोः स्यादधो दिवि" ॥ भूमावग्निः शुभः ॥ "होमाहुतिः सूर्यभतस्त्रिभंत्रिभं गण्यं मुहुस्तत्र च चंद्रभावधि ॥ सूर्यज्ञशुक्रार्कजचंद्रभूमिजा जीवस्तमः केतुरसत्यसन्मुखे" ॥ संस्कारनित्यकर्मसु निमित्ताव्यवहितनैमित्तिकेषु रोगातुरे च वह्निचक्रादिकं नापेक्षितम् ॥ "अग्नेः स्थापनवेलायां पूर्णाहुत्यामथापि वा ॥ आहुतिर्वह्निवासश्च विलोक्यौ शांतिकर्मणि ॥ त्र्युत्तरारोहिणीश्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वातीमघाश्विनीहस्तपुष्यानुराधारेवतीनक्षत्रेषु गुरुशुक्रास्तमलमासरहिते शुभ वारतिथ्यादौ शांतिः कार्या ॥ निमित्ताव्यवहितनैमित्तिक रोगशांतौ च अस्तादिविचारणा नास्ति ॥ इति प्रसंगात्सर्वशांत्युपयोगिशुभदिननिर्णयः ॥

वह इसप्रकार है कि, शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे तिथि गिनै उनमें एक मिलावै । फिर रविवारसे जितने वार व्यतीत हुए हों उनको मिला ले, चारका भाग दे । फिर जो शून्य वा तीन शेष होयँ तो अग्निवास पृथिवीपर, दो शेष रहैं तो पातालमें, एक शेष रहै तो स्वर्गमें वास समझना । जो पृथ्वीपर अग्निका वास होय तो शुभ है । और सूर्यके नक्षत्रसे चंद्रमाके नक्षत्रपर्यंत बारंबार गिनै उन तीन २ में क्रमसे सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चंद्र, मंगल, बृहस्पति, राहु, केतुके मुखमें आहुति होती है । और अशुभ ग्रहके मुखमें आहुति अशुभ है और व्यवहित (दूर) के संस्कार और नित्यकर्ममें नैमित्तिकमें और रोगसे जो दुःखी हो उसको वह्निचक्रका दिखाना आवश्यक नहीं—अग्निके स्थापनसमयमें वा पूर्णाहुतिके समय आहुति और अग्निका वास वे शान्तिकर्मके विषे देखने । तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाति, मघा, अश्विनी, हस्त, अनुराधा, रेवती ये नक्षत्र । गुरु, शुक्र इनका अस्त और मलमास न हो तब शांति करनी । निमित्तका जिसमें व्यवधान न हो ऐसे नैमित्तिक कर्म और रोगकी शांति इनमें अस्त आदिका दोष नहीं होता । प्रसंगसे सब शांतियोंमें जिसका उपयोग हो ऐसे शुभदिनका निर्णय कहते हैं ॥

अथ मूलशांतिप्रयोगः ।

अभुक्तमूलोत्पत्तौ वर्षाष्टकं शिशुत्यागस्ततः शांतिः ॥ तदन्यमूलोत्पत्तौ द्वादशाहे अव्यवहितागामिमूलयुते शुभदिने वा अन्यत्र शुभदिने वा गोप्रसवशांतिं कृत्वास्य शिशोर्मूलप्रथमचरणोत्पत्तिसूचितारिष्टनिरासार्थं सग्रहमखशांतिं करिष्ये इति संकल्पयेत् ॥ द्वितीयादिपादोत्पत्तौ संकल्पे तथोहः ॥ ब्रह्मसदस्यौ कृताकृतौ ॥ ऋत्विजोऽष्टौ चत्वारो वा ॥ मध्यकलशे स्वर्णप्रतिमायां रुद्रावाहनादि ॥ तस्य चतुर्दिक्षु कुम्भचतुष्टयेऽक्षतपुंजेषु वरुणपूजा ॥ यद्वा मध्यकुम्भे प्रतिमायां रुद्रस्तदुत्तरकुम्भे वरुणः पूज्य इति ॥ कुम्भद्वयं रुद्रकुम्भोत्तरतः कुम्भे प्रतिमासु निर्ऋतिमिन्द्रमपश्चावाह्य पद्मस्य चतुर्विंशतिदलेषु उत्तराषाढाद्यनुराधांतचतुर्विंशति नक्षत्राणां विश्वेदेवादिचतुर्विंशतिदेवतास्तंदुलपुञ्जादिष्वावाह्य दिक्षु लोकपालांश्चा-

वाह्य पूजयेत् ॥ अग्निग्रहस्थापनाद्यन्तेऽन्वाधानेऽर्कादिग्रहान् समिच्चर्वाज्याहुतिभिः निर्ऋतिं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिर्घृतमिश्रपायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिः ॥ यद्वा पायसेनाष्टोत्तरशतसंख्यया समिदाज्यचरुभिरष्टाविंशतिसंख्यया इन्द्रमपश्च प्रतिद्रव्यमष्टाविंशतिसंख्ययापायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिर्विश्वेदेवादिचतुर्विंशतिदेवता अष्टाष्टपायसाहुतिभी रक्षोहणमग्निं कृणुष्वपाजेति पंचदशऋग्भिः प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्यकृसराहुतिभिः १२० सवितारं दुर्गां त्र्यंबकं कवीन् दुर्गां वास्तोष्पतिमग्निं क्षेत्रपालं मित्रावरुणावग्निं चाष्टाष्टकृसराहुतिभिः श्रियं हिरण्यवर्णामिति पंचदशऋग्भिः प्रत्यृचमष्टाष्टसमिदाज्यचर्वाहुतिभिः सोमं त्रयोदशपायसाहुतिभिः रुद्रं स्वराजं चतुर्गृहीताज्येनाग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि कवीनित्यत्र ऋत्विक्स्तुतिमित्युद्देशो मयूखादौ ॥ शूर्पत्रये निर्वापः ॥ तत्र प्रथमशूर्पे पायसार्थं तूष्णीं द्वादशमुष्टीन्निर्ऋतिमिन्द्रमपश्चोद्दिश्यन्निरूप्य ॥ द्वितीये चर्वर्थं तदेव त्रयमुद्दिश्य द्वादशमुष्टीन् पुनः प्रथमे षण्णवति मुष्टीन्पायसार्थं तृतीये शूर्पे कृसरार्थं चतुश्चत्वारिंशन्मुष्टीन्द्वितीये पुनश्चतुरो मुष्टीन्प्रथमे पुनः सोमार्थं चतुर्मुष्टीन्निरूप्य ततः शूर्पत्रये आहुतिपर्याप्ततण्डुलान् गृहीत्वा निर्वापसंख्यया प्रोक्ष्य पात्रत्रये हविस्त्रयं श्रपयेत् ॥ तिलमिश्रतंदुलपाकेन कृसरो भवति ॥ ग्रहार्थं गृहसिद्धान्नं ग्राह्यम् ॥ सर्वग्रन्थेषु निर्ऋत्याद्यर्थं निर्वापादिक्रमेण श्रपणमेवोक्तम् ॥ अतो गृहसिद्धान्न एव तिलदुग्धमिश्रेण कृसरादिसंपादनं प्रमादालस्यादिकृतकर्मभ्रंश एव ॥ ततो होमकाले यजमानस्त्यागं कुर्यात् ॥ तत्र एतावत्संख्याहुतिपर्याप्तं समिदाज्यचरुद्रव्यमादित्यादिनवग्रहेभ्यो न मम ॥ एवमधिदेवतादिभ्यः ॥ ततोऽष्टोत्तरशतसंख्याहुतिपर्याप्तं घृतमिश्रपायसमष्टोत्तरशताहुतीनामष्टाविंशत्याहुतीनां वा पर्याप्तं समिदाज्यचर्वात्मकद्रव्यत्रयमिदं निर्ऋतये न मम ॥ अष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तं पायससमिच्चर्वाज्यमिन्द्राय न मम ॥ एवमद्भ्यः अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं पायसं विश्वेभ्यो देवेभ्यो० १ विष्णवे २ वसुभ्यो ३ वरुणाय ४ अजैकपदे ५ अहये बुध्न्याय ६ पूष्णे ७ अश्विभ्यां ८ यमाय ९ अग्नये १० प्रजापतये ११ सोमाय १२ रुद्राय १३ अदित्यै १४ बृहस्पतये १५ सर्पेभ्यः १६ पितृभ्यः १७ भगाय १८ अर्यम्णे १९ सवित्रे २० त्वष्ट्रे २१ वायवे २२ इन्द्राग्निभ्यां २३ मित्राय २४ न मम॥ विंशत्यधिकशताहुतिपर्याप्तं कृसरं रक्षोघ्नेऽग्नये न मम ॥ अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं कृसरं सवित्रे दुर्गायै त्र्यम्बकाय कविभ्यो दुर्गायै वास्तोष्पतयेऽग्नये क्षेत्रपालाय मित्रावरुणाभ्यामग्नये च न मम ॥ प्रतिद्रव्यं विंशत्यधिकशताहुतिपर्याप्तानि समिच्चर्वाज्यानि श्रियै न मम ॥ त्रयोदशाहुतिपर्याप्तं पायसं सोमाय ॥ चतुर्गृहीताज्यं रुद्राय स्वराजे ॥ एकैकाहुतिपर्याप्तमाज्यं अग्नये वायवे सूर्याय प्रजापतये च न मम ॥ एवं सविस्तरं तत्तद्द्रव्यसंख्यादैवतोच्चारेण त्यागः सर्वत्र ज्ञेयः ॥ केचित्तु इदमुपकल्पितमन्वाधा-

नोक्तद्रव्यजातमन्वाधानोक्ताहुतिसंख्यापर्याप्तमन्वाधानोक्ताभ्यो यक्ष्यमाणाभ्यो देवताभ्यो न ममेति संक्षेपेण त्यागं कुर्वंति ॥ ततो ग्रहमंत्रैर्निर्ऋत्यादिमन्त्रैश्च यथायथं होमांते ग्रहपूजास्विष्टकृन्नवाहुतिबलिदानपूर्णाहुतिपूर्णपात्रविमोकादिवह्निपूजांते यजमानाद्यभिषेके कृते धृतशुक्लवस्त्रगन्धो यजमानो मानस्तोकेति विभूतिं धृत्वा मुख्यदेवतापूजनविसर्जनश्रेयोग्रहणदक्षिणादानानि कुर्यात् ॥ शतं तदर्धं दश वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः ॥

अभुक्त मूलमें जो उत्पन्न हुआ हो उसका आठ वर्षतक त्याग करके फिर शान्तिको करै। उससे अन्य मूलमें जो पैदा हुआहो उसका बारह दिन वा अगलेही मूल करके युक्त उत्तम दिनमें शान्तिको करै । वा किसी अन्य शुभदिनके विषै गोप्रसव शान्तिको करके संकल्प करै कि, इस बालकके मूलके प्रथम चरणमें उत्पत्तिसे जो अरिष्ट है उसकी शांतिके लिये ग्रहमख और शांतिको करता हूं। जो द्वितीय आदि पादमें उत्पन्न हुआ होय तो द्वितीय पादमें उत्पत्तिसे जो अरिष्ट आदिका ऊह करना, इसमें ब्रह्मा और सदस्य ये करै चाहै न करै । आठ ऋत्विज वा चार करै, मध्यमें स्थापन किये कलशके ऊपर सुवर्णकी प्रतिमाके विषै रुद्रका आवाहन आदि करै । तिसके चारों दिशाओंमें चार कलशोंके ऊपर चांवलोंके पुंजोंमें वरुणकी पूजा करनी । अथवा मध्यके कलशकी प्रतिमाओंमें निर्ऋति, इंद्र, जल इनका आवाहन और कमलके चौवीस दलोंके विषै उत्तराषाढसे अनुराधातक चौवीस नक्षत्र और तण्डुलके पुंजोंके विषै विश्वेदेवा आदि चौवीस देवताओंका आवाहन करके और दिशाओंमें लोकपालोंका आवाहन करके पूजन करै । अग्नि और ग्रह इनके स्थापन किये पीछे अन्वाधानके विषै समिध, चरु, घी इनकी आहुति सूर्य आदिको और द्रव्य २ की (१०८) एकसौ आठ २ आहुति निर्ऋतिको घीसे मिली खीर, समिध, घी चरु इनकी अथवा पायसकी दे । और इंद्र, जल इनको समिध, घी, चरु इन प्रत्येक अट्ठाईस २ विश्वेदेवा आदि चौवीस देवताओंको पायस, समिध, घी, चरु इनकी अट्ठाईस (२८) और आठ आठ आहुति 'रक्षोहा अग्निं कृणुष्व' इत्यादि (१५) पंद्रह ऋचाओंसे आठ आठ आहुति कृसर (मिला अन्न) सविता, दुर्गा, त्र्यम्बक, कवि, दुर्गा, वास्तोष्पति, अग्नि, क्षेत्रपाल, मित्रावरुण और अग्निको तथा आठ २ आहुति कृसरकी । श्रीदेवताको ' हिरण्यवर्णा ' इन पंद्रह ऋचाओंसे आठ २ आहुति समिध, घी, चरु, इनकी । तेरह खीरकी आहुति सोमको चारोंसे ग्रहण किये घीसे रुद्र और स्वराजको और तथा अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति इनको घीकी आहुति देकर शेष घृतसे स्विष्टकृत् होमको करै । कवीन् इसकी जगह ऋत्विक् स्तुति इसका उद्देश मयूख आदिमें लिखा है । तीन सूपोंमें तण्डुलोंको इस प्रकार रक्खे कि, प्रथम सूपके विषै पायसके बनानेके लिये तूष्णीं (मौन) होकर बारह मुष्टियोंको निर्ऋति, इंद्र और जलके उद्देशसे रक्खे । और दूसरे सूपमें चरु बनानेके लिये उन्हीं पूर्वोक्त देवताओंके उद्देशसे बारह मुट्ठी चावल रक्खे, फिर प्रथम सूपके विषै पायस बनानेके लिये छानवे (९६) मुट्ठी चावल और तीसरेमें कृसर बनानेके लिये (३४) चौतीस मुट्ठी चावल रक्खे । दूसरे सूपमें फिर चार मुट्ठी चावल फिर सोमके लिये प्रथम सूपके विषै चार मुट्ठी चावल रक्खै । फिर तीन सूपोंके विषै जितने तण्डुलोंसे सब आहुति होजायँ उतने चावलोंको लेकर और पूर्वकही निर्वापकी

संख्या कितने प्रक्षालन करके तीन पात्रोंमें तीन हवियोंको पकावै । तिल मिले चावलोंको पकाकर कृसर हो जाता है और ग्रहोंके होमके लिये गृहमें पकायेहुए अन्नको ग्रहण करना । सब ग्रंथोंमें निर्ऋति आदि देवताके लिये निर्वाप आदि क्रमसे ही चरु पकाना यह लिखा है । तिल और दुग्ध चावलोंमें मिलाकर कृसर आदिका सम्पादन करै । जो यह निर्वाप आदि प्रमाद या आलस्य आदिसे किया जाय तो कर्मका नाश होजाता है । तिस होमके समय इन कृसर आदिको उस २ देवताके निमित्त इस प्रकार त्याग करै कि, पूर्व कही संख्यासे परिमित आहुति कितना समिध, चरु, घी रूप द्रव्य आदित्य आदि नवग्रह आदि देवताओंके अर्पण इसी प्रकार अधिदेवता आदिको कहै । और (१०८) एकसौ आठ आहुति कितना घृतसे मिला पायस और (१०८) एकसौ आठ वा (२८) अट्ठाईस आहुति कितना समिध, घी, चरु ये तीन द्रव्य निर्ऋति देवताओंके अर्पण करता हूं । इसमें मेरा स्वत्व नहीं । अट्ठाईस (२८) आहुति कितना पायस, समिध, चरु, घी इनको इन्द्रके लिये अर्पण करता हूं, इसमें मेरा स्वत्व नहीं । इसी प्रकार जलोंके निमित्त कहै । आठ २ आहुति कितना पायस, विश्वेदेवा देवताओंके लिये विष्णु, वरुण, अजैकपात्, आहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, प्रजापति, यम, रुद्र, आदिति, बृहस्पति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायु, इंद्राग्नि, मित्र इनके अर्पण करता हूं । (१२०) एकसौ वीस आहुति कितना कृसरको रक्षोहा अग्नि इनको आठ २ आहुति कितना सविता, दुर्गा, त्र्यम्बक, कवि, दुर्गा, वास्तोष्पति, अग्नि, क्षेत्रपाल, मित्रावरुण और अग्निको अर्पण करता हूं । द्रव्य द्रव्यकी (१२०) एकसौ वीस वीस आहुति कितने समिध, चरु, घी इनको लक्ष्मीके लिये अर्पण करताहूं । तेरह आहुति कितना पायस सोमको चतुर्गृहीत (चारबार) घी, रुद्र और स्वराजको एक एक आहुति कितना घी, वायु, सूर्य, प्रजापति, अग्नि इनको अर्पण करता हूं, इसमें मेरा स्वत्व नहीं । इसीप्रकार विस्तार सहित तिस तिस द्रव्यका त्याग संख्या और देवताका उच्चारण करके करना सर्वत्र समझना । और कोई तो यह कल्पना किया हुआ अन्वाधानमें कही द्रव्योंका त्याग, अन्वाधानमें कही आहुति कितनी, अन्वाधानमें जिनको आहुति कही हैं उन देवताओंको अर्पण करता हूं । इसप्रकार संक्षेप (लाघव) से कहकर त्याग करते हैं । उसके पीछे ग्रह और निर्ऋति आदिके मंत्रोंसे विधिपूर्वक होमके अंतमें जब ग्रहोंकी पूजा स्विष्टकृत्की नव आहुति, बलिदान, पूर्णाहुति, पूर्णपात्रका विमोक इन कर्मोंसे वह्निपूजनपर्यंत कर्म यजमान आदिका अभिषेक कह चुके । तब शुक्लवस्त्र और चंदनको धारण करके यजमान 'मानस्तोक०' इस मंत्रसे विभूति लगावै । फिर मुख्यदेवताका पूजन, विसर्जन, श्रेयोग्रहण और दक्षिणाका दान करै । और सौ पचास वा दश ब्राह्मणोंको भोजन करावै । इस कर्मको संक्षेपसे कह चुके ॥

अथाश्लेषाशान्तिः ।

तत्राश्लेषाफलम् ॥ आश्लेषायाः क्रमेण पंचसप्तद्वित्रिचतुरष्टैकादशषट्नवपंचेति दशधा विभक्तनाडीषु क्रमेण राज्यं पितृनाशो मातृनाशः कामभोगः पितृभक्तिर्बलं हिंसकत्वं त्यागो भोगो धनमिति फलानि ॥ अथ पादविभागेन फलम् ॥ तत्राद्यपादः शुभः ॥ द्वितीये पादे धनस्य नाशः ॥ तृतीये मातुश्चतुर्थे पितुः ॥ आश्लेषांत्य-

पादत्रयजाता कन्या श्वश्रूं हंति ॥ एवं वरोप्यंत्यपादत्रयजः श्वश्रूं हंति ॥ "आश्लेषासर्वपादेषु शांतिः कार्या प्रयत्नतः ॥ जातस्य द्वादशाहे तु शांतिकर्म समाचरेत् ॥ असंभवे तु जन्मर्क्षे ह्यन्यस्मिन्वा शुभे दिने ॥" अथोक्तकाले गोमुखप्रसवं कृत्वा अस्य शिशोराश्लेषाजननसूचितसर्वारिष्टपरिहारेत्यादि संकल्पं कृत्वा मूलशांतिवत्कुंभद्वये रुद्रवरुणौ द्वौ संपूज्य चतुर्विंशतिदलपद्मस्थकुंभे प्रतिमायामाश्लेषाधिपतीन् सर्पानावाह्य तद्दक्षिणे पुष्यदेवतां बृहस्पतिमुत्तरतो मघादेवतां पितॄंश्चावाह्य दलेषु पूर्वदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन पूर्वाधिपतिभगादि पुनर्वसुदेवतादितिपर्यंतचतुर्विंशतिदेवतावाहनादि कुर्यात् ॥ कौस्तुभे तु तैत्तिरीयकमंत्रैः पुष्यमघापूर्वादिनक्षत्राणामावाहनमुक्तं न तु नक्षत्रदेवतानाम् ॥ ततो लोकपालानावाह्यावाहितसर्वदेवताः संपूज्याग्निं ग्रहांश्च प्रतिष्ठाप्यान्वादध्यात् ॥ आदित्यादिग्रहाद्युद्देशांते प्रधानदेवताः सर्पान्प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यमष्टाविंशतिसंख्यं वा घृतमिश्रपायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिः बृहस्पतिं पितॄंश्चाष्टाविंशतिसंख्यमष्टसंख्यं वा तैरेव द्रव्यैर्भगादिचतुर्विंशतिदेवता अष्टाष्टपायसाहुतिभिः रक्षोहणमित्यादि शेषदेवतानिर्देशो मूलशांतिवत् ॥ तद्वदेव पायसकृसरचरूणां श्रपणं हविस्त्यागश्च कार्यः ॥ कौस्तुभोक्तप्रधानदेवतामंत्रैस्तत्तद्धोमः शेषं मूलशांतिवत् ॥

अब आश्लेषाकी शान्तिको कहते हैं। अश्लेषा नक्षत्रके क्रमसे पांच, सात, दो, तीन, चार, आठ, ग्यारह, छः, नौ, पांच इस प्रकार दश विभाग करके उनमें उत्पन्न हुएका क्रमसे निर्णय कहते हैं कि, राज्य, पिताका नाश, माताका नाश, कामनाओंका भोग, पिताकी भक्ति, बल, हिंसा, चोरी, त्यागी, भोगी, धनी यह पूर्वोक्त पांच घडी आदिमें क्रमसे फल होता है। अब पादका फल कहते हैं कि,पहिला पाद शुभ, द्वितीयपादमें धनका नाश, तीसरेमें माताका नाश, चौथेमें पिताका नाश होता है। आश्लेषा नक्षत्रके अन्तके तीन पादोंमें उत्पन्न हुई कन्या सासको नष्ट करती है। इसी प्रकार मनुष्यमें समझना। आश्लेषानक्षत्रके पादमें उत्पन्न हुएकी शान्ति बारहवें दिन करै। जो बारहवें दिन न होसकै तो जन्मनक्षत्र वा किसी अन्य शुभदिनके विषै करै। अब पूर्व कहे कालमें गोप्रसवशांतिको करके आश्लेषानक्षत्रमें उत्पन्न होनेसे प्रतीत हुए अरिष्टकी शान्तिके लिये इत्यादि संकल्प करै। मूलशांतिके समान दो कलशोंमें रुद्र और वरुणका पूजन करके चौवीस दलके पद्म (कमल) पर स्थापन किये कलशपर प्रतिमाके विषै आश्लेषा नक्षत्रके अधिष्ठाता सर्पोंका आवाहन करै। और उससे दक्षिण भागमें पुष्यदेवता बृहस्पतिका, उत्तरभागमें मघादेवता पितरोंका आवाहन करै। दलोंके विषै पूर्वदलसे लेकर परिक्रमाके क्रमसे पूर्वाधिपतिके भागसे पुनर्वसुदेवता अदितिपर्यंत चौवीस देवताओंका आवाहन आदि कर्म करै। कौस्तुभग्रंथके विषै तो तैत्तिरीयक मंत्रोंसे पुष्य मघा आदि पूर्वाफाल्गुनी आदि नक्षत्रोंका आवाहन कहाहै। नक्षत्रदेवताओंका नहीं। फिर आठ लोकपालोंका आवाहन करके और आवाहन किये देवताओंका पूजन करके और अग्नि और ग्रहोंका स्थापन करके अन्वाधान करै। आदित्य आदि ग्रहोंके उद्देशके अन्तमें प्रधान देवता और सर्प इनको द्रव्य २ के प्रति एकसौ आठ (१०८)

आहुति वा अट्ठाईस (२८) घृतमिश्रित खीर, समिध, घी और चरु इनकी आहुति दे । बृहस्पति, पितर इनको इन्ही द्रव्योंकी अट्ठाईस वा आठ आहुति दे । भग आदि चौवीस देवताओंको आठ २ पायसकी आहुति दे । रक्षोहा आदि शेष देवताओंका होम मूलशांतिकी समान समझना । और उसीप्रकार पायस, कृसर, चरु इनका श्रपण आदि-को करना । और कौस्तुभमें कहा प्रधान देवतामंत्रोंसे उस उस होमको करना । शेष कर्म मूलशांतिके समान समझना ॥

अथ ज्येष्ठानक्षत्रफलं शांतिश्च ।

"ज्येष्ठाया दशभागेषु आद्ये मातामहीमृतिः ॥ मातामहं द्वितीये च तृतीये हंति मातुलम् ॥ तुर्ये जातो मातरं च हंत्यात्मानं तु पंचमे ॥ गोत्रजान्षष्ठभागे च सप्तमे तूभयं कुलम् ॥ अष्टमे स्वाग्रजं हंति नवमे श्वशुरं तथा ॥ दशमांशकजातस्तु सर्वं हंति शिशुर्ध्रुवम् ॥ ज्येष्ठर्क्षे तु पुमाञ्जातो ज्येष्ठभ्रातुर्विनाशकः ॥ ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हंति शीघ्रं धवाग्रजम् ॥ पादत्रये जातनरो ज्येष्ठोप्यत्र प्रजायते ॥ ज्येष्ठांत्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य च नाशकः ॥" द्वादशाहे शांत्युक्तशुभदिने वा गोप्रसवशांतिं कृत्वास्य शिशोर्ज्येष्ठर्क्षजननसूचितसर्वारिष्टपरिहारद्वारेत्यादि संकल्प्य मध्यकलशे सुवर्णप्रतिमायां शचीसहितमैरावतारूढमिंद्रं लोकपालांश्चावाह्य रक्तवस्त्रद्वयशष्कुलीनैवेद्यसहितषोडशोपचारैः पूजयेत् ॥ तस्य चतुर्दिक्षु कुंभचतुष्टयं तत्पूर्वं मध्यभागे शतच्छिद्रं च निधाय पूर्णपात्रयुतेषु चतुर्षु फलादौ वरुणावाहनपूजनादि अन्वाधाने ग्रहान्वाधानांते इंद्रं पलाशसमिदाज्यचरुद्रव्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतशंख्यया इंद्रायेंद्रोमरुत्वत इति मंत्रेण प्रजापतिमष्टोत्तरशततिलाहुतिभिः समस्तव्याहृतिमंत्रेण शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि ॥ अष्टोत्तरशतं ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ इति ज्येष्ठाशांतिसंक्षेपप्रयोगः ॥

अब ज्येष्ठानक्षत्रका फल कहते हैं—ज्येष्ठाकी घड़ियोंके बारह भाग करके पहिले भागमें माताका मरण, द्वितीयमें नानाका, तीसरेमें मामाका, चौथेमें माताका, पांचमेंमें अपना, छठे भागमें गोत्रजका, सातमेंमें दोनों कुल (मातृकुल पितृकुल), आठमेमें अपनेसे बडे भाईका, नौमेंमें श्वशुरका और दशमें भागमें पैदाहुआ बालक सबका नाश करता है । ज्येष्ठानक्षत्रमें उत्पन्नहुआ मनुष्य भाईका नाश करता है और कन्या अपने ज्येष्ठको नष्ट करती है और तीन पादोंमें उत्पन्न हुआ मनुष्य आपही सबमें ज्येठा होता है । ज्येष्ठाके अंत पादमें उत्पन्न हुआ मनुष्य पिता और अपना दोनोंका नाश करता है। बारहमें दिन वा शुभदिन जो शान्तिमें कहा उसमें गोप्रसवशान्तिको करके संकल्प करै कि, ज्येष्ठानक्षत्रके विषै उत्पन्न होनेसे प्रतीत हुए सब अरिष्टोंकी शान्तिके लिये अमुककर्मको करता हूं । मध्यम कलशके विषै सुवर्णकी प्रतिमाके विषे इंद्राणीसहित ऐरावत हाथीपर चढे हुए इन्द्र और लोकपालोंका आवाहन करके दो लालवस्त्र, शष्कुली, नैवेद्य सहित षोडश उपचारोंसे पूजन करै । उस कलशकी चार दिशाओंमें चार कलश उससे पूर्व मध्य भागमें शतच्छिद्र कलशका स्थापन करके पूर्णपात्रसे युक्त

चार कलशोंमें वरुणका आवाहन पूजा आदिको करै । अन्वाधानके विषै तो यह विधि है कि, ग्रहोंके अन्वाधान किये पीछे पलाशकी समिध, घी और चरु इन प्रत्येककी (१०८) एकसौ आठ २ आहुति 'इन्द्रायेन्दोमरुत्वत०' इसमंत्रसे इन्द्रको और 'ॐभूःर्भुवःस्वः स्वाहा' इसमंत्रसे तिलोंकी १०८ आहुति वरुणको देकर शेष द्रव्यसे स्विष्टकृत् होमको करै । फिर १०८ ब्राह्मणोंको भोजन करावै । ज्येष्ठा नक्षत्रकी शान्ति समाप्त हुई ॥

अथ चित्रादिनक्षत्रशांतयः ।

"चित्राद्येर्धे पुष्यमध्यद्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये ॥ जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते पित्रोर्भ्रातुः स्वस्य चापि प्रणाशम् "॥ उत्तराफाल्गुन्याद्यपाद इत्यर्थः॥ अत्रेत्थं भाति ॥ चित्रापूर्वार्द्धे जातस्य गोप्रसवं कृत्वा नक्षत्राधिपतिप्रतिमां संपूज्य अजादानं कार्यम् ॥ एवं पुष्यद्वितीयतृतीयपादयोर्जनने गोप्रसवनक्षत्राधिपपूजा गोदानानि कार्याणि ॥ उत्तराफाल्गुनी प्रथमपादे जनने नक्षत्राधिपपूजां तिलपात्रदानं च कुर्यात ॥ एवं पूर्वाषाढातृतीयपादे जनने नक्षत्रेशपूजा कांचनदानं च ॥ मघाप्रथमपादजनने मूलवत्फलम् ॥ तत्र गोप्रसवनक्षत्रेशपूजनग्रहमखाः कार्याः ॥ मघाया आद्यघटीद्वयजनने नक्षत्रगंडांतशांतिरपि रेवत्यंतघटीद्वयेश्विन्याद्यघटीद्वये जनने नक्षत्रगंडांतशांतिगोप्रसवग्रहमखाः कार्याः रेवत्यश्विन्योरितरभागेषु मघांतिमपादत्रये च दोषविशेषानुक्तेर्न शांत्यादिकम् ॥ एवं विशाखाचतुर्थपादजनने श्यालकदेवरनाशादिदुष्टफलोक्तेर्ग्रहमखः कार्यः ॥ यत्र काले दुष्टफलमात्रमुक्तं शांतिर्नोक्ता तत्र ग्रहमख इति कमलाकरोक्तेः ॥ एवमितरत्राप्यूह्यम् ॥ इति नक्षत्रशांतयः ॥

चित्राके प्रथम आधापाद पुष्यके मध्यके दो पाद, पूर्वाषाढाका तीसरा पाद और उत्तराका प्रथमपाद इनमें उत्पन्नहुआ बालक माता, पिता, भ्राता और अपना नाश करता है । यहां उत्तराशब्दसे उत्तराफाल्गुनीका प्रथमपाद लेते हैं । यहां यह प्रतीत होता है कि, चित्राके पूर्वार्द्धमें उत्पन्न हुए बालकको गोप्रसवशान्तिको करके नक्षत्रके अधिष्ठाता देवताकी प्रतिमास पूजा करके बकरीका दान करना । इसीप्रकार पुष्यके दूसरे तीसरे पादमें उत्पन्नहुएके लिये गोप्रसव नक्षत्राधिपतिकी पूजा और गोदान करना । उत्तराफाल्गुनीके प्रथमपादमें उत्पन्न हुएके लिये नक्षत्राधिपतिदेवताके लिये तिलसे भरे पात्रका दान करना । पूर्वाषाढाके तीसरे पादमें उत्पन्नहुएके लिये नक्षत्राधिपतिकी पूजा और सुवर्णका दान करना । मघाके प्रथमपादमें उत्पन्नहुएका मूलकी समान फल समझना । उसकी शान्तिके लिये गोप्रसवशान्ति, नक्षत्रेशकी पूजा और ग्रहयज्ञ करना । मघाकी प्रथम दो घडीमें उत्पन्नहुआ जो हो उसमें नक्षत्रगंडान्तशान्तिभी करानी । रेवतीकी पिछली दो घडी और अश्विनीकी पहिली दो घडीमें जन्म होनेपर नक्षत्रगंडान्तशान्ति, गोप्रसव और ग्रहयज्ञ करना । रेवती और अश्विनीके दो घडीसे अन्य भागमें और मघाके पिछले तीन पादमें जन्मका कोई दोषविशेष नहीं कहा इससे उसकी शान्तिआदि नहीं करनी । इसीप्रकार विशाखाके चौथे पादमें जन्म होनेपर शाला वा देवरका

नाशरूप दुष्ट फलके कहनेसे ग्रहमख नहीं करना । क्योंकि, कमलाकरने यह कहा है कि, जिस नक्षत्रआदि कालमें दुष्टफल कहा है और शान्ति नहीं कही वहां ग्रहमख नहीं करना । इसी प्रकार अन्यत्रभी समझना । नक्षत्रोंकी शान्ति कह चुके ॥

अथ व्यतीपातवैधृतिसंक्रांतिशांतिः ।

" कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः ॥ संक्रमश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः ॥ अश्रियं मृत्युमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ स्त्रीणां च शोकं दुःखं च सर्वनाशकरो भवेत् ॥ गोमुखप्रसवं कुर्याच्छांतिं च सनवग्रहाम् " ॥ उक्तकाले संकल्पादिकं कृत्वा पंचद्रोणपरिमितव्रीहिराशिं कृत्वा तदुपरि सार्धद्रोणद्वयमिततण्डुलराशिं तदुपरि सपादद्रोणपरिमिततिलराशिं च कृत्वा तिलराशौ विधिना स्थापितकुम्भे सौवर्णप्रतिमायां सूर्यमावाह्य तद्दक्षिणोत्तरयोरग्निरुद्रावावाह्य तिस्रो देवता व्यतीपातशांतौ संक्रांतिशांतौ च पूजयेत् ॥ व्यतीपातसंक्रांत्योर्जनने व्यतीपातसंक्रांतिशांती तन्त्रेण संकल्प्यैकैव शांतिः कार्या ॥ अत्र पूजाहोमादेः प्रसंगसिद्धिः ॥ द्विगुणो वा प्रधानहोम इति भाति ॥ ग्रहपीठदेवतान्वाधानांते सूर्यं उत्सूर्यो बृहदिति मन्त्रेण समिदाज्यचर्वाहुतिभिः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः अग्निं रुद्रं च तैरेव द्रव्यैः प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिः अग्निं दूतमिति त्र्यंबकमिति मन्त्राभ्यां मृत्युंजयमष्टोत्तरशततिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि अभिषेकांते गोवस्त्रस्वर्णादि दत्त्वा शतं ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ इति व्यतीपातसंक्रांतिशांतिः ॥

अब व्यतीपात, वैधृति और संक्रांति इनकी शांतिको कहते हैं । बालकके जन्मसमय जो व्यतीपात, वैधृति वा सूर्यकी संक्रांति होय तो वह बालक दरिद्री होता है।और लक्ष्मीसे हीनही मृत्युको प्राप्त होजाता है इसमें संशय नहीं । और स्त्री होय तो उसको शोक, दुःख और सर्वनाश हो जाता है । इससे उस दोषकी शांतिके लिये गोप्रसव और नवग्रहहोम करना । पूर्व कहे समय संकल्पआदिको करके पांच द्रोण धानोंका राशि बनाकर उसके ऊपर ढाई द्रोणभर चावलोंकी राशि और उसके ऊपर सवा द्रोण तिलोंका राशि बनावै । फिर उसके ऊपर विधिपूर्वक घट स्थापन करके सुवर्णकी प्रतिमामें सूर्यका आवाहन करै । उसके दक्षिण उत्तरकी तरफ अग्नि और रुद्रका आवाहन करै । इन तीनों देवताओंका व्यतीपातशान्ति और संक्रांतिशान्तिमें पूजन करना । व्यतीपात संक्राति ये दोनों हों तब जन्मके होनेपर व्यतीपात और संक्रान्तिशांतिको तंत्रसे करताहूं, इस प्रकार संकल्प करके एक एक शान्तिको करै । यहां पूजा होमकी प्रसंगसे समझनी । अथवा यह प्रतीत होता है कि, प्रधान होम दुगुण करना । ग्रहपीठके देवताओंका अन्वाधान किये पीछे 'उत्सूर्यो बृहत्०' इस मंत्रसे समिध, घी, चरु इन प्रत्येककी एकसौ आठ १०८ आहुति सूर्यको, उन्हीं द्रव्योंकी प्रत्येकको २८ अट्ठाईस २ अग्नि और रुद्रको 'अग्निं दूतं०' 'त्र्यम्बकं०' इन दो मंत्रोंसे, और १०८ एकसौ आठ आहुति फिर मृत्युंजयको तिलोंकी देकर शेष द्रव्यसे स्विष्टकृत् होम करै । अभिषेकके अन्तमें गौ, वस्त्र, सुवर्णआदिका दान करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै । व्यतीपात और संक्रान्तिकी शान्ति समाप्त हुई ॥

अथ वैधृतिशांतौ विशेषः ।

पूर्ववत् व्रीहितण्डुलतिलराशौ स्थापितकुम्भे मध्ये त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण रुद्रं दक्षिणतः उत्सूर्य इति सूर्यमुत्तरतश्चाप्यायस्वेति सोममावाह्य पूजयेत् ॥ अन्वाधाने रुद्रं समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याहुतिभिः सूर्यसोमौ प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यैस्तैरेव द्रव्यैर्मृत्युंजयमष्टोत्तरसहस्रशतान्यतरसंख्यतिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि ॥ अन्यत्पूर्ववत् ॥ संक्रांतिदिने वैधृतिसत्त्वे देवताभेदाच्छांतिद्वयं पृथक्कार्यम् ॥ इति वैधृतिशांतिः ॥

अब वैधृतिशान्तिके विषे विशेष कहते हैं । कि, पूर्वकी समान व्रीहि, तण्डुल और तिलोंकी राशिके ऊपर घटस्थापनकरके उसके मध्यमें 'त्र्यम्बकं०' इस मंत्रसे रुद्र और दक्षिणभागमें 'उत्सूर्य०' इस मंत्रसे सूर्य,उत्तरभागमें 'आप्यायस्व०'इस मंत्रसे सोमका आवाहन करके पूजन करै । अन्वाधानके विषे समिध, घी, चरु इन प्रत्येककी १०८ आहुति रुद्रको अट्ठाईस २ आहुति सूर्य और सोमको, १०८ वा १००८ आहुति तिलोंकी मृत्युंजयको देकर शेषसे स्विष्टकृत् होम करै । अन्य कर्म पूर्वकी समान समझना । जो संक्रांति और वैधृति इन दोनोंके योगमें जन्म होय तो देवताके भेदसे शान्ति पृथक् २ करनी, तंत्रसे नहीं ॥

अथैकनक्षत्रजननशांतिः ।

"एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः ॥ प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितः ॥" पितृनक्षत्रे मातृनक्षत्रे वा कन्यायाः पुत्रस्य वोत्पत्तौ गोमुखप्रसवं कृत्वा शांतिः कार्या ॥ सोदरभ्रातृभगिन्योर्नक्षत्रे भ्रातुर्भगिन्या वोत्पत्तौ गोप्रसवमेकृत्वैव शांतिमात्रं कार्यम् ॥ संकल्पे पित्रैकनक्षत्रोत्पत्तिसूचितसर्वारिष्टेत्याद्यूहः ॥ कलशे रक्तवस्त्रे यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्रप्रतिमां तन्नक्षत्रदेवताप्रतिमां वा अग्निर्नः पातु कृत्तिका इत्यादि तैत्तिरीयमंत्रैः पूजयेत् ॥ अन्वाधाने इदं नक्षत्रममुकां नक्षत्रदेवतां वा समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यं शेषेणेत्यादि ॥ अंते ययोरेकनक्षत्रे जन्म तयोरभिषेकः ॥ अत्र ग्रहमखो नावश्यकः ॥ क्वचित्संपूजितहरिहरप्रतिमादानमप्युक्तम् ॥

अब एक नक्षत्रमें उत्पन्नहुओंकी शान्ति कहते हैं । एक नक्षत्रमेंही जो दो भाई वा पिता और पुत्र इन दोनोंका जन्म होय तो उनमेंसे एककी निश्चय मृत्यु होतीहै । पिताके नक्षत्र वा माताके नक्षत्रमें कन्या वा पुत्रका जन्म होय तो गोमुखप्रसवशान्तिको करके शान्ति करनी । सहोदर भाई वा बहिनके नक्षत्रमें भाई वा बहिनका जन्म होय तो गोप्रसवकोही करके शांतिमात्र करनी । संकल्पके विषे इसप्रकार ऊह करना कि,पिताके एक नक्षत्रमें उत्पत्तिसे सूचित जो सर्व अरिष्ट हुआहै उसके इत्यादि । कलशके ऊपर रक्तवस्त्रमें जिस नक्षत्रमें जन्म हुआहो उसकी वा उसके देवताकी प्रतिमा रखकर 'अग्निर्नः पातु कृत्तिका०'इत्यादि तैत्तिरीयमंत्रसे पूजन करै। अन्वाधानके विषे अमुकनक्षत्रदेवता वा अमुकनक्षत्रको समिध, घी, चरु इन प्रत्येककी एकसौ आठ आहुति देवे, शेषसे स्विष्टकृत होम करै । अन्तमें जिनका एक नक्षत्रमें जन्म

हो उन दोनोंको अभिषेक करै । इसमें ग्रहयज्ञ आवश्यक नहीं । कहीं२ पूजा किये विष्णु और शिवकी प्रतिमाका दानभी कहाहै ॥

अथ ग्रहणशांतिः ।

"ग्रहणे चंद्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते ॥ इत्थं संजायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ व्याधिः पीडा च दारिद्र्यं शोकश्च कलहो भवेत्॥" अत्र गोमुखप्रसवः कार्य इति भाति ॥ ग्रहमखः कृताकृतः ॥ संकल्पे सूर्यग्रहणकालिकप्रसूतिसूचितेत्याद्यूहः ॥ ग्रहणकालिकनक्षत्रस्य नक्षत्रदेवताया वा हेमप्रतिमां सूर्यग्रहे सूर्यस्य हेमप्रतिमां चंद्रग्रहे राजतं चंद्रबिंबं कृत्वोभयत्र सीसेन राहोर्नागाकृतिं कृत्वा गोमयोपलिप्ते शुचिदेशे श्वेतवस्त्रोपरि देवतात्रयपूजनम् ॥ नात्र कलशस्थापनादि ॥ तत्र मध्ये आकृष्णेनेति सूर्यं दक्षिणतः स्वर्भानोरध इति राहुमुत्तरतो नक्षत्रदेवतां च पूजयेत्॥ चन्द्रग्रहे तु आप्यायस्वेति मध्ये चन्द्रः पूज्यः ॥ पार्श्वयो राहुनक्षत्रदेवते पूर्ववत् ॥ अन्वाधाने सूर्यग्रहे सूर्यमर्कसमिदाज्यचरुतिलैः प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यया राहुं दूर्वाज्यचरुतिलैस्तावत्संख्यैर्नक्षत्रदेवतां जलवृक्षसमिदाज्यचरुतिलैस्तावत्संख्यया शेषेणेत्यादि ॥ चंद्रग्रहे च चन्द्रं पालाशसमिदाज्यचरुतिलैः शेषं पूर्ववत् ॥ अन्ते ग्रहकलशोदकेन पंचगव्यपंचत्वक्पंचपल्लवादियुतलौकिकोदकेन च लौकिकेनैव वाभिषेकः ॥ वेधकाले जन्मनि नैव शांतिः ॥ किन्तु दुष्टकालत्वाद्रुद्राभिषेकः कार्य इति भाति ॥

अब ग्रहणशान्तिको कहतेहैं । कि, चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जो प्रसव हुआहोय तो उसको इस प्रकार होनेपर मृत्यु और व्याधि, पीडा, दारिद्र्य,शोक और कलह होजाताहै । इसमें गोप्रसव करना ऐसा प्रतीतहोताहै, और ग्रहमख करना वा न करना । संकल्पके विषै सूर्यग्रहणकालिक प्रसवसे सूचित अरिष्ट और चंद्रग्रहणमें चंद्र इत्यादि ऊह करना। ग्रहणसमयके नक्षत्र वा नक्षत्रदेवताकी सुवर्णकी प्रतिमा और सूर्यके ग्रहणमें सूर्यकी सुवर्णप्रतिमा और चंद्रमाका चान्दीका बिम्ब और दोनोंके ग्रहणमें सीसासे हाथीकेआकारका राहु बनाकर इनको गोवरसे लिपेहुए शुद्ध देशमें श्वेतवस्त्रपर स्थापन करके पूजै । इसमें कलशस्थापन आदि नहीं करना । तहां मध्यमें 'आकृष्णेन रजसा०' इस मन्त्रसे सूर्यका और उसके दक्षिणभागमें 'स्वर्भानोरध:०' इस मन्त्रसे राहुका और उत्तरभागमें नक्षत्रदेवताका पूजन करै । और चंद्रग्रहणके विषे मध्यमें 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे चंद्र और दोनों पार्श्वोंमें पूर्वकी समान राहु और नक्षत्रका पूजन करै । और सूर्यग्रहणके अन्वाधानमें आककी समिध, घी, चरु, तिल इन प्रत्येककी १०८ आहुति सूर्यको; दूर्वा, घी, चरु, तिल इन प्रत्येककी १०८ आहुति राहुको, और जलवृक्ष (जलमें उत्पन्न)की समिध, घी, चरु, तिल इन प्रत्येककी १०८ आहुति नक्षत्रदेवताको देकर शेष द्रव्यसे स्विष्टकृत् आदि कर्म करना । और चंद्रग्रहणमें पालाशकी समिध, घी, चरु, तिल इनसे चन्द्रमाको आहुति देकर शेषकर्म पूर्वकी समान करै । फिर अन्तमें ग्रहकलशके जलसे पंचगव्य पंचत्वक् और पंचपल्लवआदिसे युक्त लौकिक (कूएसेलाये) जलसे अभिषेक करना ।

वेधकालमें जन्म होनेपर शांति नहीं करनी, किन्तु वहां यह प्रतीत होताहै कि, दुष्टकाल होनेसे रुद्राभिषेक करना ॥

अथ नक्षत्रगण्डान्तशांतिः।

रेवत्याश्लेषाज्येष्ठानक्षत्राणामंत्यघटीद्वयमश्विनीमघामूलानामाद्यघटीद्वयमिति घटिकाचतुष्टयमितं त्रिविधं नक्षत्रगण्डान्तम् ॥ "अश्विनीमघामूलानां पूर्वार्धे बाध्यते पिता ॥ पूषाहिशक्रपश्चार्धे जननी बाध्यते शिशोः ॥ सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ॥ वर्जयेद्दर्शनं यावत्तस्य षाण्मासिकं भवेत् ॥ शांतिं वा पुष्कलां कुर्यात्सोममंत्रेण भक्तिमान् ॥" अस्य शिशो रेवत्यश्विनीसंध्यात्मकगण्डान्तजननसूचितारिष्टनिरासार्थं नक्षत्रगण्डान्तशांतिं करिष्ये इत्यादिसंकल्पः ॥ गोमुखप्रसवं कृत्वा षोडशपलमष्टपलं वा चतुष्पलं वा कांस्यपात्रं विधाय तस्मिन्पायसं पयो वा निक्षिप्य तत्र नवनीतपूर्णं शंखं निधाय तस्मिन् राजतं चन्द्रबिंबं संस्थाप्य सोमोहमिति ध्यानपूर्वकं चन्द्रमाप्यायस्वेति पूजयेत् ॥ पूजांते आप्यायस्वेति मन्त्रस्य सहस्रं जपः ॥ ग्रहमखहोमः कार्यः ॥ नात्र प्रधानदेवताहोमः ॥ ग्रन्थान्तरे तु ताम्रकलशे राजतप्रतिमायां बृहस्पतिमंत्रेण वागीश्वरं संपूज्य तदुत्तरं कुंभचतुष्टये पंचपल्लवादिकं कुंकुमचन्दनकुष्ठगोरोचनानि क्षिप्त्वा वरुणं पूजयेदित्युक्तम् ॥ आचार्याय सशंखसमौक्तिकचंद्रदानम् ॥ ग्रन्थांतरपक्षे ताम्रपात्रसहितवागीश्वरदानम् ॥ आयुर्वृद्ध्यर्थं सहस्राक्षेणेति मन्त्रजपः ॥ दशावरब्राह्मणभोजनं चेति ॥

अब नक्षत्रगंडान्तकी शांति कहतेहैं। रेवती, आश्लेषा, ज्येष्ठा, नक्षत्रकी अंतकी दो घडी, अश्विनी, मघा, मूल इनकी आदिकी दो घडी इसप्रकार चार घडी कालका तीन प्रकारक नक्षत्रगंडान्त होता है। अश्विनी, मघा, मूल इनके पूर्वार्द्धमें जिस बालकका जन्म होया उसके पिताको, और जिसका पुष्य, आश्लेषा, शक्र (धनिष्ठा) इनके उत्तरार्द्धमें जन्म होय उसकी माताको पीडा होती है। और गंडमें उत्पन्न हुए सब बालकोंका परित्याग करके छः मास पर्यन्त दर्शन न करै, वा भक्तिपूर्वक सोममन्त्रसे सांगोपांग शान्तिको करै। उसकी विधि इसप्रकार है कि, इस बालकके रेवती और अश्विनीकी संधि (मिलाप) रूप गंडान्तकालमें जन्मसे जो अरिष्ट शास्त्रसे सूचित है उसके परिहारके लिये नक्षत्रगंडान्तशान्तिको करता हूं, इस प्रकार संकल्प करै। गोमुखप्रसवको करके सोलह, आठ वा चार पलका कांसीका पात्र बनाकर उसमें खीर वा दूधको भरकर उसमें नवनीत (लौनी घी) से भरे शंखको रखकर उसमें चांदीका चन्द्रबिंब रखकर 'सोमोहम्' इस प्रकार ध्यान करके 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे चन्द्रमाका पूजन करै। पूजाके अन्तमें 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रका सहस्र जप करै। ग्रहयज्ञ करै। इसमें प्रधान देवताका होम नहीं करना। ग्रन्थान्तरमें तो यह लिखा है कि, तांबेके कलशमें चांदीकी प्रतिमाके विषै बृहस्पतिके मन्त्रसे वागीश्वरका पूजन करके उससे पीछे चार कलशोंमें पंचपल्लव आदि रोरी, चन्दन, गोरोचन इनको गेरकर वरुणका पूजन करै। आचार्यको शंख, मोतीसहित चन्द्रमाका दान करै। और ग्रन्थान्तरपक्ष-

में तांबेके पात्र सहित वागीश्वरका दान करना, और आयुष्यकी वृद्धिके लिये 'सहस्राक्षेण०' इस मन्त्रका सहस्र जप करना, और दशआदि ब्राह्मणोंको भोजन करावैं ॥

अथ तिथिगण्डान्तलग्नगण्डान्तशांतिः ।

पंचमीषष्ठयोर्दशम्येकादश्योः पंचदशीप्रतिपदोः संधिभूतं घटिकाद्वयं तिथिगण्डान्तम् ॥ कर्कसिंहयोर्वृश्चिकधनुषोर्मीनमेषयोश्च लग्नयोः सन्धिभूतैका घटिका लग्नगण्डान्तम् ॥ तत्र तिथिगण्डांते पूर्वार्धे जन्मनि तत्काले स्नात्वा वृषभदानं वा तन्मूल्यदानं कृत्वा सूतकांते शांतिः कार्या उत्तरार्धे जन्मनि शांतिमात्रम् ॥ लग्नगण्डान्ते पूर्वार्धे जन्मनि कांचनदानमुत्तरार्धे शांतिमात्रम् ॥ कुंभे हेमप्रतिमायां वरुणं संपूज्य वरुणोद्देशेन प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यया समिच्चर्वाज्यतिलयवानां होमः कार्यः ॥ यवव्रीहिमाषतिलमुद्गानां दक्षिणात्वेन दानमिति ॥

अब तिथिगंडांत और लग्नगंडान्तशान्तिको कहते हैं । पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और पूर्णमासी, प्रतिपदा इनकी सन्धिरूप दो घडीको तिथिगण्डान्त कहतेहैं । कर्क, सिंह, वृश्चिक ,धनु, मीन, मेष इन लग्नोंकी संधिरूप एक घडीको लग्नगंडान्त कहते हैं । तहां तिथिगण्डान्तके पूर्वार्द्धमें जन्म होय तो उसीसमय स्नान करना और वृषभ वा उसके मूल्यका दान करके सूतकके अन्तमें शान्ति करनी, और जो उत्तरार्द्धमें जन्म हुआ होय तो शान्तिमात्रही करनी । लग्नगंडान्तके पूर्वार्द्धमें जन्म होय तो कांचनका दान करना, और उत्तरार्द्धमें होय तो शान्तिमात्र करना, और कलशके ऊपर प्रतिमाके विषे वरुणका पूजन करके वरुणके लिये समिध, चरु, घी और जौ इन प्रत्येककी (१०८) आहुति दे. और जौ, धान, उडद, मूँग इनकी दक्षिणा दे ॥

अथ दिनक्षयभद्रादिशांति. ।

"दिनक्षये च भद्रायां प्रसूतिर्यदि जायते ॥ यमघण्टे दग्धयोगे मृत्युयोगे च दारुणे ॥ दुष्टयोगतिथीनां च निषिद्धांशेषु चेत्तदा ॥ अतिदोषकरी प्रोक्ता तस्मिन्पापयुते सति ॥ " यमघण्टादयो ज्योतिर्ग्रंथे प्रसिद्धाः ॥ दुर्योगतिथीनां निषिद्धभागास्तु ॥ "विष्कंभवज्रयोस्तिस्रः षट् च गण्डातिगण्डयोः ॥ परिघार्धं पंच शूले व्याघातेंऽकघटीस्त्यजेत् ॥ चतुःषडष्टनिध्यर्कभूततिथ्याद्यनाडिकाः ॥ अष्टा ८ क ९ मनु १४ तत्त्वा २५ शा १० बाण ५ संख्या विवर्जयेत् ॥" इत्युक्ता ज्ञेयाः ॥ दिनक्षयादिदोषेष्वेकैकदोषदूषितकाले जनने शिवे रुद्रैकादशिन्यभिषेकः कार्यः ॥ द्वित्रादिदोषसमुच्चये ग्रहयज्ञाश्वत्थप्रदक्षिणादिसमुच्चयः॥ "दीपं शिवालये भक्त्या घृतेन परिदापयेत् ॥ गाणपत्यं पौरुषसूक्तं सौरं मृत्युंजयं शुभम् ॥ शांतिजाप्यं रुद्रजाप्यं कृत्वा मृत्युंजयी भवेत् ॥" इति वाक्याद्बहुदोषे उक्तजपादिसमुच्चयोपि ॥

अब दिनक्षयभद्राआदिकी शान्ति कहते हैं । कि, दिनक्षय और भद्राके विषे जो प्रसव होय तथा यमगण्ड, दग्धयोग और मृत्युयोग और दुष्टयोग तिथियोंके निषिद्ध अंश इनके विषे जो

जन्म होय और पापग्रहसे युक्त होय तो अत्यन्त दोष करनेवाली उत्पत्ति हातीहै । यमगंड-आदि ज्योतिषग्रंथमें प्रसिद्ध हैं । दुष्टयोग और तिथियोंके निषिद्ध भाग ये हैं कि, विष्कम्भ और वज्रकी तीन घडी, गंड, अतिगंडकी छः घडी, आधा परिघ, शूलकी पांच घडी, व्याघातकी नौ घडी वर्जित हैं । चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, सप्तमी, द्वादशी, चतुर्दशी इन तिथियोंकी आदिकी क्रमसे ८–९–१४–१०–५–ये घडी वर्जित हैं । दिनक्षयआदि एक एक दोषसे दूषित कालमें जन्म होनेपर शिवका रुद्रैकादशिनीसे अभिषेक करना, और दो तीन आदि दोषोंके होनेमें ग्रहयज्ञ, पीपलकी प्रदक्षिणाआदि कर्म करना । शिवालयमें दीपदान, गणपति-अथर्वशीर्ष, पुरुषसूक्तका जप, सौरसूक्त और मृत्युंजयमंत्रका जप, शान्तिसूक्त और रुद्रीका पाठ करना, इससे मृत्युको जीत लेता है ॥

अथ विषघटीशांतिः ।

तत्र कौस्तुभे तिथिवारनक्षत्राणां विषनाड्य उक्तास्तथापि ज्योतिर्ग्रंथेषु नक्षत्रविषघटीनामेव महादोषत्वेनोक्तेर्नक्षत्रविषघटीष्वेव जनने उक्तशांतिः कार्या ॥ तिथ्यादिविषघटीनामुपदोषत्वाद्रुद्राभिषेकादिकं कार्यम् ॥ विषघटीलक्षणं कौस्तुभादौ ज्ञेयम् ॥ "विषनाडीषु संजातः पितृमातृधनात्मनाम् ॥ नाशकृद्विषशस्त्रास्त्रैः क्रूरे लग्नेंशकेपि च ॥ " एतद्विषनाडीषु शिशुजननसूचितारिष्टेत्यादिसंकल्पः ॥ एककुम्भे प्रतिमाचतुष्टये रुद्रयमाग्निमृत्युदेवताः कद्रुद्राय यमाय सोममग्निर्मूर्धा परं मृत्योरिति मन्त्रैः संपूजयेत् ॥ ग्रहान्वाधानांते रुद्रयमाग्निमृत्यून्समिच्चरुघृततिलाहुतिभिः प्रतिदैवतं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः शेषेणेत्यादि ॥ गृहसिद्धान्नस्य होमः ॥

अब विषघडीकी शान्तिको कहते हैं । तहां कौस्तुभग्रंथमें तिथि, वार, नक्षत्र इनकी विषनाडी कहीं हैं, तथापि ज्योतिर्ग्रंथोंमें नक्षत्रकी विषघडियोंमें जन्म होनेपर शान्ति कही है । तिथिआदिकी षिवघडियोंमें किंचित् दोष होनेसे रुद्राभिषेकआदि करना, विषघटीका लक्षण कौस्तुभग्रंथमें समझना । विषनाडी और क्रूरलग्न क्रूरनवांशकआदिमें पैदाहुआ बालक माता, पिता, धन और आत्मा इनको विष वा शस्त्रआदिसे नष्ट करता है । तहां इस विष नाडीमें उत्पन्न होनेसे सूचित हुए अरिष्टकी शांतिके लिये इत्यादि संकल्प करना । एक घटके ऊपर स्थापन कीहुई चार प्रतिमाओंमें रुद्र, यम, अग्नि, मृत्यु इन देवताओंका "कद्रुद्राय,यमाय सोमम्० अग्निर्मूर्धा० परम्मृत्यो०"इत्यादि मंत्रोंसे पूजन करै । ग्रहहोम किये पीछे रुद्र, यम, अग्नि, मृत्यु इन प्रत्येक देवताओंको समिध, चरु, घी, तिल इन प्रत्येक द्रव्यकी एकसौ आठ १०८ आहुति देकर शेषसे स्विष्टकृत्होम करना गृहमें पकाये हुए अन्नका होम करना ॥

अथ यमलजननादिशांतिः ।

तत्र श्रौताग्निमतः सोम्नये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोडाशं निर्वपेदिति ऋग्वेदब्राह्मणोक्तेष्टिः ॥ यद्वा आश्वलायनसूत्रोक्तः केवलमारुतयागः ॥ गृह्याग्निमत आश्वलायनस्य गृह्याग्नौ मारुतश्चरुः ॥ "अथ यस्य वधूर्गौर्वा जनयेद्यमौ ततः ॥

स मरुद्भिश्चरुं कुर्यात्पूर्णाहुतिमथापि वा'' इति कारिकोक्तेः गृह्याग्निशून्यबहवृचः कात्यायनोक्तशांतिं लौकिकाग्नौ कुर्यात् ॥ मम भार्यायां यमलजननसूचितसर्वारिष्ट परिहाद्द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मारुतेष्ट्या यक्ष्य इति संकल्पः श्रौताग्निमतः ॥ स्मार्ताग्निमतस्तु मारुतस्थालीपाकेन यक्ष्य इति संकल्पः ॥ निरग्निस्तु सग्रहमखां कात्यायनोक्तां शांतिं करिष्ये इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादि आचार्यवरणांतं कुर्यात् ॥ अष्टदिक्षु अष्टकलशान् विधिना संस्थाप्य उदकपूरणादिसर्वौषधीप्रक्षेपणांते वरुणं पूजयेत् ॥ अष्टकलशोदकैर्दंपत्योरभिषेकः ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिः कयान इति द्वे आनः स्तुत इति पंचेति सप्तभिरैंद्रीभिर्मोषुवरुण इति पंचभिरिदमाप इत्येकया अपन इत्यष्टभिराग्नेयीभिर्ऋग्भिः कार्यः ॥ अभिषिक्तौ दंपती धृतश्वेतवस्त्रचंदनौ उदङ्मुखौ तिष्ठेताम् ॥ प्राङ्मुख आचार्योग्निग्रहस्थापनांते अपस्तिसृभिराज्याहुतिभिरिंद्रं सप्तभिर्वरुणं पंचभिरप एकयाग्निमष्टाभिराज्याहुतिभिः पूर्वत्राभिषेकार्थमुक्तैश्चतुर्विंशतिमंत्रैरग्निं सोमं पवमानं पावकं मारुतं मरुतः यममंतकं मृत्युं चैकैकया चर्वाहुत्या नाममंत्रैः शेषेणेत्यादि अन्वादध्यात् ॥ षट्त्रिंशद्वारं तूष्णीं निर्वापप्रोक्षणे ॥ अंते ग्रहकलशोदकादिनाभिषेकः ॥ दासीमहिषीवडवागोहस्तिनीनां यमलजननेपीयं शांतिः कार्या ॥ इयं शांतिर्ग्रहोत्पातेषूलूककपोतगृध्रश्येनानां गृहप्रवेशे स्तंभप्ररोहे वल्मीकप्ररोहे मधुजनने आसनशयनयानभंगे पल्लीपतने सरटारोहणे छत्रध्वजविनाशेषु अन्येषूत्पातेषु च कार्येति च कात्यायनमतम् ॥ सा च साग्निकैः कात्यायनैः स्वगृह्याग्नौ कार्या ॥ निरग्निकैस्तैरन्यैश्च लौकिकाग्नौ ॥ इति यमलजननादिशांतिः ॥

अब यमल (जोडा) उत्पन्न हुओंकी शान्ति कहते हैं । तहां श्रौताग्निवालेके लिये यह ऋग्वेद ब्राह्मणमें कहा है कि, अग्निसहित मरुत् देवताके लिये त्रयोदश कपालोंमें पुरोडाशको पकावै । अथवा आश्वलायनसूत्रमें कहा केवल मरुत्सम्बन्धी याग करना । गृह्याग्निवाले आश्वलायनको गृह्याग्निमें मरुत् है देवता जिसका ऐसा चरु पकाना । क्योंकि, यह कारिका है कि, जिसकी स्त्री वा गौ दो पुत्रोंको जनैं तो वह मरुत् है देवता जिसका ऐसा चरु पकावै और पूर्णाहुति दे । गृह्याग्निसे रहित बहवृच तो कात्यायनसूत्रमें कही शान्तिको लौकिक अग्निमें करै । उसकी विधि इसप्रकार है कि, मेरी स्त्रीसे पैदा हुए यमलोंसे सूचित किये संपूर्ण अरिष्टकी शान्तिपूर्वक श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये मरुत्सम्बन्धि यज्ञको करता हूं । यह संकल्प श्रौताग्निवालेको करना, स्मार्ताग्निवाला तो मरुत् है देवता जिसका ऐसे स्थालीपाकसे यज्ञकरताहूं यह संकल्प करै । और अग्निसे रहित ब्राह्मण ग्रहमखसहित कात्यायननें कही शांतिको करताहूं, इसप्रकार संकल्प करै। फिर स्वस्तिवाचनसे लेकर आचार्यके वरणपर्यंत कर्मको करै । आठ दिशाओंमें आठ कलशोंको विधिसे स्थापन करके और उनमें जल और सर्वौषधि गेरकर वरुणका पूजन करै और आठ कलशोंके जलसे उन स्त्री पुरुषोंका अभिषेक 'आपोहिष्ठा०' इन तीन ऋचाओंसे और 'कयान०' ये दोसे 'आनस्तुत०' इन तीनसे इन्द्र है देवता जिनका

ऐसी सातसे 'मित्रावरुण०' इन पांचसे 'इदमाप०' इस एकसे और 'अपन:०' इन आठसे आग्नेयी ऋचाओंसे अभिषेक करै। अभिषेकसे पीछे वे दोनों स्त्रीपुरुष श्वेतवस्त्र और चंदन इनको धारण करके उत्तरको मुख करके बैठें। आचार्य पूर्वाभिमुख बैठकर अग्नि और ग्रहोंके स्थापन किये पीछे तीन आहुति जलको, सात इंद्रको, पांच आहुति वरुणको, एक जलको और अग्निको दे। पूर्व अभिषेकके लिये कहे चौबीस मंत्रोंसे आठ आहुति घीकी दे। फिर अग्नि, सोम, पवमान, पावक, मारुत, मरुत्, यम, अंतक, मृत्यु इनको एक एक आहुति चरुकी देकर शेषसे स्विष्टकृत् इत्यादि अन्वाधान करना। छत्तीस ३६ बार तूष्णीं निर्वाप और प्रोक्षण करै, फिर अन्तमें कलशके जलआदिसे अभिषेक करना। दासी, महिषी, घोडी, गौ, हथिनी इनके यमलपुत्र होनेमेंभी यह शान्ति करनी। यह शान्ति ग्रहोंके उत्पात, उल्लू, कपोत, गृध्र और शिखरा इनका ग्रहमें प्रवेश, स्तंभप्ररोह, वल्मीकप्ररोह, मधुजनन, आसन, शय्या, सवारी इनके टूटने, छिपकलीके पतन, सरठ(करकटा वा किरालिया)के ऊपर बैठजानेमें छत्र, ध्वजाके टूटनेमें और अन्य उत्पातोंके विषैभी करनी, यह कात्यायनका मत है। वह शान्ति अग्निसहित कात्यायनशाखावालोंको अपनी गृह्याग्निमें और अग्निसे रहित कात्यायन वा अन्योंको लौकिक अग्निमें करनी। यमलजननशान्तिको कह चुके॥

अथ त्रिकप्रसवशांतिः।

"सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुतो यदि॥ मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत्॥ ज्येष्ठनाशो वित्तहानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत्॥" गोप्रसवं कृत्वा मम सुतत्रयजन्मानंतरं कन्याजननसूचितसर्वारिष्टेति वा कन्यात्रयजन्मानंतरं पुत्रजननसूचितेति वा निमित्तानुसारेण संकल्पः॥ स्थंडिलपूर्वभागे ग्रहस्थापनांते तदुत्तरतः कलशपंचके स्वर्णप्रतिमासु ब्रह्मविष्णुमहेशेंद्ररुद्रानावाह्य पूजयेत्॥ तत्र मंत्राः॥ ब्रह्मजज्ञानं० इदंविष्णु० त्र्यंबकं० यतइंद्र० कद्रुद्रायेति ग्रहपीठदेवतान्वाधानांते ब्रह्माणं विष्णुं महेशमिंद्रं रुद्रं च प्रत्येकं समिदाज्यचरुतिलैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरसहस्राष्टोत्तरत्रिशताष्टोत्तरशतान्यतमसंख्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि॥

अब त्रिकप्रसवशान्तिको कहते हैं। कि, तीन पुत्रोंके होनेसे पीछे पुत्री हो वा तीन पुत्रियोंके ऊपर पुत्र होय तो माता, पिता और कुटुंबको बडा भारी अनिष्ट होता है। ज्येठपुत्र वा धनका नाश वा दुःख होता है। इससे उसकी इसप्रकार शांति करै कि, गोप्रसवशांतिको करके इस प्रकार निमित्तके अनुसार संकल्प करै कि, मेरे तीनों पुत्रके ऊपर उत्पन्न हुई कन्यासे सूचन किये अरिष्टकी शांति वा तीन कन्याके ऊपर उत्पन्न हुए पुत्रसे सूचित अरिष्टकी शान्तिके लिये इस शांतिकर्मको करताहूं। स्थण्डिलसे पूर्वभागमें ग्रहोंके स्थापन कियेपीछे उसके उत्तरभागमें पांच कलशोंके ऊपर रक्खी हुई सुवर्णकी प्रतिमाओंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और रुद्रका आवाहन करके इन मन्त्रोंसे क्रमसे पूजन करै। 'ब्रह्मजज्ञानम्० इदंविष्णुः० त्र्यम्बकं० यतइंद्र० कद्रुद्राय०' ग्रहपीठके देवताओंके अन्वाधान किये पीछे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, रुद्र इन प्रत्येक देवताको समिध, घी, चरु, तिल इन प्रत्येक द्रव्यकी १००८, ३०८, वा १०८ आहुति दे। शेषसे स्विष्टकृत्आदि कर्म करै॥

अथ दंतजननशांतिः ।

"उपरि प्रथमं यस्य जायंतेऽथ शिशोर्द्विजाः ॥ दंतैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ॥ द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पंचमे तथा ॥ यदा दंताश्च जायंते मासे चैव महद्भयम् ॥ मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च ॥ बालानामष्टमे मासि षष्ठे मासि ततः पुनः ॥ दंता यस्य च जायंते माता वा म्रियते पिता ॥ बालकः पीड्यते वात्र स्वयमेव न संशयः ॥" केचित्तु अष्टमे मासि दंतजन्म शुभमाहुः ॥ तत्रास्य शिशोः प्रथममूर्ध्वदंतजननसूचितसर्वारिष्टेत्यादि सदंतजननसूचितेत्यादि वा द्वितीये मासे दंतजन्मसूचितेत्यादि वा संकल्पं यथानिमित्तं योजयेत् ॥ स्थंडिलोत्तरभागे नौकायां स्वर्णपीठे वा स्वस्तिकयुते बालमुपवेश्य सर्वौषध्यादियुक्तजलैः स्नापयित्वा स्थंडिलपूर्वतः कलशे प्रतिमासु धातारं वह्निं सोमं वायुं पर्वतान्केशवं चेति षड् देवताः संपूज्य ग्रहान्वाधानांते धातारं सकृच्चरुणा वह्न्यादिपंचदेवता एकैकयाज्याहुत्या शेषेणेत्यादि अन्वादध्यात् ॥ धात्रे त्वा जुष्टं निर्वपामीत्यादि निर्वापप्रोक्षणे ॥ नाम्ना चरुहोमः॥ स्रुवेण वह्न्यादिभ्यः पंचाज्याहुतयोपि नाम्नैव ॥ होमांते दक्षिणां दत्त्वा सप्ताहं यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ अष्टमदिने कांचनादि दत्त्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् ॥ षष्ठाष्टममासयोर्दंतजनने तु एकस्या बृहस्पतिदेवतायाः पूजनं दधिमधुघृताक्तानामश्वत्थसमिधामष्टोत्तरशतं बृहस्पतिमंत्रेण होमः ॥ आज्येन स्विष्टकृदादि ॥ ॥ इति दन्तजननशांतिः ॥

अब दन्तसहित पैदा हुएकी शान्ति कहते हैं। कि, जिस बालकके दांत पहिले ऊपरले जमें वा जिसका दांतोंसहित जन्म होय वा जिसके पहिले, दूसरे, तीसरे, चौथे वा पांचमें मासमें दांत जमें वह माता, पिता वा अपनेकोही खा लेताहै । और जो आठमें वा छठे मासम दन्त निकले तो माता वा पिता नष्ट होय वा बालक स्वयंही अतिदुःखको प्राप्त होय और कोई आठमें मासमें दांत शुभ कहते हैं । तिसमें इस बालकके प्रथम ऊपरके दंतजन्य अरिष्ट वा दंतसहितजन्मसूचित वा दूसरे मासमें उत्पन्न हुए दन्तजन्य अरिष्टकी शान्तिके लिये इत्यादि यथानिमित्त संकल्प करै । स्थण्डिलसे ऊपरभागमें नौका वा सुवर्णके आसनपर स्वस्तिक काढकर उसपर बालकको बैठाकर उसको सर्वौषधिआदिके जलोंसे स्नान कराकर स्थण्डिलसे पूर्वभागमें रक्खे । कलशके ऊपर रक्खीहुई प्रतिमाओंमें धाता, अग्नि, सोम, वायु, पर्वत, केशव इन छः देवताओंकी पूजाके अनन्तर ग्रहोंका अन्वाधान करके एकवार चरुसे ब्रह्माको और एक २ घीकी आहुति अग्निआदिको देकर शेषसे स्विष्टकृत्आदि होम करै । 'धात्रे त्वा जुष्टं निर्वपामि' इत्यादि मंत्रसे निर्वाप और प्रोक्षण करके नाममंत्रसे चरुहोमको करै । और स्रुवेसे पांच घीकी आहुतिभी नाममंत्रसेही अग्नि आदिको दे । होमके अंतमें दक्षिणा देकर सात दिन यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावै । आठमें दिन सुवर्णआदिका दान करके कर्मको ईश्वरके अर्पण करै । छठे वा आठमें मासमें दांत जमें तो एक बृहस्पतिदेवताका पूजन और दही, मधु, घी इनसे लिपटीहुई

पीपलकी लकडियोंका बृहस्पतिके मंत्रसे होमं और घीसे स्विष्टकृत्आदि करै। दंतजनन-शान्तिको कहचुके ॥

अथ प्रसववैकृतशांतिः।

"यत्र गर्भे विपर्यासो मानुषाणां गवामपि ॥ अद्भुतानि प्रसूयंते तत्र देशस्य विप्लवः ॥ मानुषामानुषाणां च गोजाश्वमृगपक्षिणाम् ॥ जायंते जातिभेदाश्च सदन्ता विकृतास्तथा ॥ बहुशीर्षा अशीर्षा वा बहुकर्णा अकर्णकाः ॥ एकशृंगा द्वित्रिशृंगास्तथैव त्रिचतुर्भुजाः ॥ दीर्घकर्णा महाकर्णा गजकर्णाश्च मानवाः ॥ राजश्रेष्ठकुले नाशो धनस्य च कुलस्य च ॥ अष्टोत्तरसहस्राणि चरुं वै जुहुयाद्घृतम् ॥ समिधां तु पलाशानां तर्पयेत्पूर्ववद्द्विजान् ॥ अशिरा जायते जन्तुस्तथा द्वित्रिशिरास्तथा ॥ अत्र सूर्याद्भुते सूर्यं पूजयेज्जुहुयादपि ॥ दध्याज्यमधुसंयुक्ताः समिधस्त्वर्कसम्भवाः ॥ मृगी जनयते सर्पान्मण्डूकांश्चैव मानुषान् ॥ अत्राद्भुते गीष्पतये पूजां होमं च कारयेत् ॥ औदुम्बरस्य समिधो दधिसर्पिःसमन्विताः ॥ स्त्रीगर्भपातो यमलं प्रसूयंतेथवा स्त्रियः ॥ सदंताश्चैव जायन्ते जातमात्रा हसंति च ॥ बुधाद्भुते बुधायात्र पूजाहोमौ समाचरेत् ॥ संक्षेपेण यथाप्रज्ञमित्थं जननशान्तयः ॥ उक्ता जपाभिषेकार्थसूक्तादिबहुविस्तृताः ॥ प्रयोगाः कौस्तुभादौ च प्रसिद्धा बहुशः पराः ॥ अनेन प्रीयतां देवो भगवान् विट्ठलः प्रभुः ॥"

अब जो अंगआदिसे विकृत (लंगडा आदि) सन्तति हो उसकी शांति कहते हैं। कि' जिस गर्भमें मनुष्य वा वत्सआदिका व्यत्यय होकर अद्भुत रूप पैदा होय वहां देशमें उपद्रव होता है। मनुष्य, गौ, बकरी, घोडी, मृग, पक्षी इनके जातिविशेष जो सदंत, बहुत शिर-वाले, बिना शिरके, बहुत कानके, बिना कानके, एक सींग, तीन सिंग, तीन भुजा, चतुर्भुज, लम्बे कान, बडे कान,हाथीकेसे कानके जो मनुष्य जिस राज्य वा कुलमें पैदा हों उस राज्यमें कुल, धन इनका नाश होता है। इससे चरु, घी, समिध इनकी १००८ आहुति पूर्वकी समान देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै। बिनाशिर और तीन शिरके जन्तुके उत्पन्न होनेरूप अद्भुत-कर्ममें सूर्यकी पूजा करके इसको दधि, मधु, घी इनसे युक्त आकके समिधोंकी आहुति दे। और जो मृगी सर्पोंको वा मण्डूक वा मनुष्योंको पैदा करै तो इस अद्भुतमें बृहस्पतिकी पूजा और बृहस्पतिको गूलरकी समिध, दही, घी इनको मिलाकर आहुति दे। स्त्रीके गर्भका पात होय वा यमल दांतोंसहित पुत्रोंको जो स्त्री पैदा करै, वा होतेही हंसने लगे तो इसको बुधका किया अद्भुत समझना। इसमें बुधकी पूजा और होम करना। इसप्रकार संक्षेपसे जननशांतियोंको कह चुके। जप, मंत्र और अभिषेकके लिये सूक्त इत्यादि विस्तारसहित प्रयोग कौस्तुभादिग्रंथमें समझना। इससे श्रीविट्ठलभगवान् प्रसन्न हो ॥

अथ नामकरणकालः।

तत्र जन्मदिने जातकर्मानंतरं तत्काले क्वचित् ॥ एकादशाहे द्वादशाहे वा विप्रस्य नामकर्म ॥ दशमादिने आशौचसत्त्वेपि वचनान्नामकर्म कार्यमिति केचित् ॥

क्षत्रियाणां त्रयोदशे षोडशे वा दिने ॥ वैश्यानां षोडशे विंशतितमे वा दिने ॥ द्वाविंशे मासांते वा शूद्राणाम् ॥ द्वाविंशेमासांते शततमे दिने वत्सरांते वेति ॥ विप्रादीनां गौणकालः॥मुख्यकाले कुर्वन् विप्रादिःपुण्यतिथिनक्षत्रचंद्रानुकूल्यादिगुणादरं न कुर्यात् ॥ उक्तमुख्यकालातिक्रमे शुभनक्षत्रादिकमावश्यकम् ॥ वैधृतिव्यतीपातसंक्रांतिग्रहणदिनामावास्याभद्रासु प्राप्तकालेपि नामकर्मादि शुभकर्म न कार्यम् ॥ अत्र मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्तीत्युक्तम् ॥ अपराह्ने रात्रौ च नामकर्म वर्ज्यम् ॥ अथोक्तकालातिक्रमेऽपेक्षितशुभतिथ्यादि ॥ चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीनवमीद्वादशीचतुर्दशीपंचदशीरहितास्तिथयः प्रशस्ताः ॥ चंद्रबुधगुरुशुक्रा वासराः ॥ अश्विनीत्र्युत्तरारोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तस्वात्यनुराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवतीनक्षत्राणि ॥ वृषभसिंहवृश्चिकलग्नानि प्रशस्तानि ॥

अब नामकरणकी विधि कहते हैं। कि, जन्मदिनके विषे जातकर्म कियेपीछे उसी समय और कहीं ग्यारहमें, बारहमें वा दशमें दिन आशौच होतेभी वचनके बलसे नामकर्म करना यह किसी आचार्योंका मत है। क्षत्रियोंका तेरहमें वा सोलहमें दिन, वैश्योंका सोलह वा बीशमें दिन, शूद्रोंका बाईस (२२) वा महीनेके अन्तमें, बाईस दिन, मासान्त वा सौवें दिन वा वर्षके अन्तमें नामकरण करना यह ब्राह्मणआदिको गौण काल है। जो मुख्यकालमें करना चाहें तो ब्राह्मणआदि वर्ण उत्तम तिथि, नक्षत्र, चंद्र आदिकी उत्तमताकी अपेक्षा न करे। जो पूर्वोक्त मुख्यकालका अवलंबन हो जाय तो शुभनक्षत्रआदि अवश्य देखने। इसमें मलमास, गुरु, शुक्रका अस्तआदि दोष नहीं होता यह पूर्व कह आये। दिनके अपराह्न (तीसरे प्रहर) में और रात्रिको नामकर्म न करे। अब पूर्वोक्त मुख्यकालके व्यतीत होनेपर उत्तम मुहूर्तके लिये शुभ तिथिआदिको कहते हैं। कि, चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा इनसे रहित तिथि। चंद्र, बुध, गुरु ये वार। अश्विनी, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती ये नक्षत्र। वृष, सिंह, वृश्चिक ये लग्न उत्तम हैं॥

अथ देवतादिनामानि।

तानि नामानि चतुर्विधानि ॥ देवतानाम मासनाम नाक्षत्रनाम व्यावहारिकनामेति ॥ तत्रामुकदेवताभक्त इत्याकारकं देवतानाम प्रथमम् ॥ "चैत्रादिमासनामानि वैकुंठोऽथ जनार्दनः ॥ उपेंद्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ॥ योगीशः पुंडरीकाक्षः कृष्णोऽनंतोऽच्युतस्तथा ॥ चक्रीति द्वादशैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः॥" इत्यनुसारेण मासनाम द्वितीयकम् ॥ मासाश्चात्र चांद्राः ॥ ते च शुक्लादिकृष्णांता एव यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्रवाचकशब्दात्तत्र जात इत्यधिकारे विहिततद्धितप्रत्यये कृते निष्पन्नं नाक्षत्रनाम तृतीयम् ॥ तद्यथा ॥ आश्वयुक् आपभरणः कार्तिकः रौहिणः मार्गशीर्षः आर्द्रकः पुनर्वसुः तिष्यः आश्लेषः मघः पूर्वाफल्गुनः उत्तराफल्गुनः हस्तः चैत्रः स्वातिः वैशाखः आनुराधः ज्यैष्ठः मूलकः पूर्वाषाढः

उत्तराषाढः अभिजितः श्रावणः श्रविष्ठः शतभिषक् पूर्वाप्रौष्ठपादः उत्तराप्रौष्ठपादः रैवत इति ॥ केचित्तु चूचेचोलाश्विनी प्रोक्तेत्योदिज्र्योतिर्ग्रंथोक्तावकहडाचक्रानुसारेणाश्विन्यादयश्चतुर्षु चरणेषु चूडामणिश्चेदीशश्चोलेशो लक्ष्मण इत्यादिकानि नाक्षत्रनामानि कुर्वंति तन्न श्रौतग्रंथादिबहुसंमतम् ॥ सांख्यायनास्तु कृत्तिकोत्पन्नस्याग्निशर्मेति नक्षत्रदेवतासंबद्धं नाक्षत्रं नाम कुर्वंति ॥ एवं कातीया अपि ॥ नाक्षत्रनामैवाभिवादनीयं गुप्तं चामौंजीबंधनात् मातापितरावेव जानीयाताम् ॥ व्यावहारिकं नाम चतुर्थम् ॥ तच्च कवर्गादिषु तृतीयचतुर्थपंचमवर्णहकारान्यतमवर्णाद्यावयवकम् ॥ यरलवान्यतममध्यवर्णयुतम् ऋल्टवर्णरहितं विसर्गांतं पित्रादिपुरुषत्रयान्यतमवाचकं शत्रुवाचकभिन्नं तद्धितप्रत्ययरहितं कृत्प्रत्ययांतं युग्माक्षरं पुंसामयुग्माक्षरं स्त्रीणां कार्यम् ॥ यथा देव इति हरिरिति ॥ उक्तसर्वलक्षणाभावे समाक्षरं पुंसामयुग्माक्षरं स्त्रीणामित्येकलक्षणयुतमेव यथा रुद्र इति राजेत्यादिअक्षरमत्र स्वरः॥ व्यंजनेषु न संख्यानियमः ॥ अत्र विशेषः ॥ "द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ अंत्यलकाररेफं वर्जयेत्" इति ॥ आपस्तंबहिरण्यकेशिसूत्रे तु प्रातिपदिकादिधात्वंतं यथा हिरण्यदा इति उपसर्गयुतं वा सुश्रीरित्यादीति विशेष उक्तः ॥ तच्च व्यावहारिकं नाम शर्मपदांतं देवपदांतं वा ब्राह्मणस्य वर्मेति राजेति वा पदयुतं क्षत्रियस्य गुप्तदत्तान्यतरांतं वैश्यस्य दासांतं शूद्रस्य कार्यम् ॥

वे नाम इसप्रकार चार प्रकारके हैं कि, एक देवतानाम, मासनाम, नक्षत्रनाम और चौथा व्यावहारिक नाम । तिसमें प्रथम श्रीकृष्णदास, रामसहाय इत्यादि देवतानाम और चैत्रआदि मासनाम क्रमसे पंडितोंने ये कहे हैं कि, वैकुंठ, जनार्दन, उपेंद्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश, पुंडरीकाक्ष,कृष्ण,अनंत,अच्युत, चक्री इनके अनुसार वैकुण्ठनाथ आदि मासनाम कहते हैं। यहां मासशब्दसे चांद्रमास लेतेहैं । वह शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे कृष्णपक्षपर्यंत होता है। इससे यह बात है कि, चैत्रकी शुक्लप्रतिपदासे वैशाखवदि अमावसतक चैत्रमास है । तिसमें उत्पन्न हुएका वैकुण्ठ मासनाम रखना जनार्दन नहीं इत्यादि । यहां नक्षत्रनामसे जिस नक्षत्रमें पैदा हुआ हो उसी नक्षत्रके वाचक जो अश्वयुज्, भरणी आदि शब्द हैं उनसे 'तत्र जातः' इस पाणिनिके सूत्रसे तद्धित (अण्) प्रत्ययको विधान करके सिद्ध किये हैं । वे नाक्षत्र तीसरे ये नाम हैं कि, आश्वयुक्, आपभरण, कार्तिक, रौहिण, मार्गशीर्ष, आर्द्रक, पुनर्वसु, तिष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुन, उत्तराफाल्गुन, हस्त, चैत्र, स्वाति, वैशाख, अनुराध, ज्येष्ठ, मूलक, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, आभिजित्, श्रावण, श्रविष्ठ, शतभिषक्, पूर्वप्रौष्ठपाद, उत्तरप्रौष्ठपाद, रैवत और कोई तो अश्विनीआदिके जो अवक हडाचक्रकेअनुसार जो चू, चे, चो, ला आदि चार चरण हैं उनके अनुसार चूडामणि, चेदीश, चोलेश, लक्ष्मण आदि नक्षत्र नाम रखते हैं । वे श्रौतआदि बहुत ग्रंथोंको संमत नहीं हैं । और सांख्यायन तो कृत्तिकामें उत्पन्न हुएका अग्निशर्मा इसप्रकार देवतासंबन्धि नक्षत्रनामको करते हैं । इसीप्रकार का-

तीयोंनेभी यज्ञोपवीतपर्यन्त नाक्षत्रनामही नमस्कारके योग्य लिखा है। उसको माता पिताही जानै अन्य कोई न जानै। व्यावहारिक चौथा नाम होता है, जिसमें कवर्गआदिके तीसरा, चौथा वा पांचमां वर्ण वा हकार आदिमें और य, र, ल, व इनमेंसे किसीके मध्यमें हो और विसर्ग अंतमें हो ऐसा ऋ ऌ से रहित जो पिता आदि तीन पुरुषोंमेंसे किसीका हो और जो शत्रुका न हो ऐसा कृत् (क्त-इ-आदि) प्रत्ययान्त दो वा चार आदि अक्षरोंका पुरुषका और तीन पांच आदि अक्षरोंका स्त्रीका देवदत्त, हरि, देवकी इत्यादिरूप समझना। और जो पूर्वोक्त वर्ण न मिलैं तो सम (दोचार) अक्षरोंका पुरुषका, तीन पांच आदिका स्त्रीका नाम एकलक्षणयुक्तही करना । जैसे-रुद्र, राजा इत्यादि। इसमें स्वर, व्यंजनोंकी संख्याका नियम नहीं है । इसमें यह विशेष समझना कि, प्रतिष्ठाकी कामनावाला दो अक्षरोंका, ब्रह्मतेजकी कामनावाला चार अक्षरोंका नाम जिसके अन्तमें रेफ लकार न हो ऐसा करै। आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी सूत्रमें तो यह विशेष कहा है कि, उपसर्ग वा प्रातिपदिक जिसकी आदिमें हो और धातु जिसके अन्तमें हो ऐसा हिरण्यदा सुश्रीः इत्यादि नाम करना (सु-श्रीः, हिरण्यदा)। उस व्यावहारिक ब्राह्मणनामके अन्तमें शर्मा, क्षत्रियके अन्तमें वर्मा वा राजा, वैश्यके अन्तमें गुप्त वा दत्त और शूद्रके नामके अन्तमें दास पदको पढै ॥

अथ गजाश्वादीनां नामविचारः ।

व्यावहारिकं नाम प्रासादादीनामपि कार्यम् ॥ " देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापिकूपयोः ॥ सर्वापणानां पण्यानां चिह्नानां योषितां नृणाम् ॥ काव्यादीनां कवीनां च पश्वादीनां विशेषतः ॥ राजप्रासादयज्ञानां नामकर्म यथोदितम्॥" इत्युक्तेः ॥

यह व्यावहारिक नाम प्रासाद (महल) आदिका भी करना । क्योंकि, यह वचन है कि, देवालय, गज, घोडा, वृक्ष, वापी, कूप, समस्त आपण (बाजार), पण्य, चिह्न, स्त्री, पुरुष, काव्यआदि, कवि, पशुआदि, राजप्रासाद, यज्ञ इनके यथोक्त नाम करने ॥

अथ प्रयोगे विशेषः ।

गर्भाधानादिसंस्कारलोपे प्रत्येकं पादकृच्छ्रं बुद्धिपूर्वकमकरणे प्रत्येकमर्धकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं जातकर्मणः कालातिपत्तिनिमित्तकाज्यहोमपूर्वकं कार्यम् ॥ तद्यथा ॥ जातकर्मणः कालातिपत्तिनिमित्तकदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रायश्चित्तहोमं करिष्ये इति संकल्प्याग्निस्थापनेध्माधानादिपाकयज्ञतंत्रसहितं वह्निस्थापनाज्यसंस्कारपात्रसंस्कारमात्रसहितं वा भूर्भुवः स्वः स्वाहेति समस्तव्याहृत्याज्यहोमं कुर्यात् ॥ होमं समाप्य गर्भाधानपुंसवनानवलोभनसीमंतोन्नयनलोपजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमेतावतः पादकृच्छ्रान्बुद्धिपूर्वकलोपेर्धकृच्छ्रान् तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्य इति संकल्प्य द्रव्यं दद्यात् ॥ जातकर्मनाम्नोः सह चिकीर्षायां पूर्वोक्तजातकर्मसंकल्प-

वाक्यमुच्चार्य अस्य कुमारस्यायुरभिवृद्धिव्यवहारसिद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नामकर्म च तंत्रेण करिष्य इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादिकं कुर्यात् ॥ तत्र जातकर्मनामकर्मणोः पुण्याहं भवंतो ब्रुवंत्वित्युक्त्वा अस्य कुमारस्य जातकर्मणे एतन्नाम्ने अस्मै च स्वस्ति भवंतो ब्रुवंत्विति स्वस्तिपर्याये वदेत् ॥ तदनुसारेणैव विप्रप्रतिवचनम् ॥ केवलनामचिकीर्षायां नामकर्मणः पुण्याहमित्युक्त्वा स्वस्तिपर्याये अमुकनाम्ने अस्मै स्वस्ति भवंतो ब्रुवंत्विति वदेत् ॥ विप्राश्चामुकनाम्ने अस्मै स्वस्तीति प्रतिब्रूयुः ॥ लेखनादौ नामत्रयं शर्मादिपदरहितं कृत्वा व्यावहारिकं नाम शर्माद्यंतं कुर्यात् ॥ अभिवादने नाक्षत्रनामापि शर्माद्यंतं सर्वत्रोच्चारणीयम् ॥ अवशिष्टः प्रयोगः प्रयोगग्रंथेषु ज्ञेयः ॥

अब संस्कारमें विशेष कहते हैं । कि,गर्भाधान आदि संस्कारके लोप होनेपर प्रत्येकमें पादकृच्छ्र, जानकर न करनेमें प्रत्येकमें अर्द्धकृच्छ्ररूप प्रायश्चित्तः जातकर्मके कालकी अतिपत्ति (लंघन) है निमित्त जिसमें ऐसे घृतहोमपूर्वक इसप्रकार करना कि, जातकर्मकी कालातिपत्ति है निमित्त जिसमें ऐसे दोषके परिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये प्रायश्चित्तहोमको करताहूं । इसप्रकार संकल्प करके अग्निस्थापन, इध्माधान आदि पाकयज्ञके तन्त्रसहित अथवा अग्निस्थापन, घृतसंस्कार, पात्रसंस्कारमात्रसहित 'भूर्भुवः स्वः' इस समस्त व्याहृतिसे घृतका होम करै । फिर होमको समाप्त करके गर्भाधान, पुंसवन, अनवलोभन, सीमन्तोन्नयनसंस्कारके लोपसे उत्पन्न हुए दोषके परिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये जितनेबार संस्कारलोप हुआ उतने पादकृच्छ्र और ज्ञानपूर्वक न करनेमें अर्द्धकृच्छ्ररूप प्रायश्चित्त उसके प्रत्याम्नायरूप गौके मूल्यरूप यथाशक्ति चांदीके दानसे करताहूं । इसप्रकार संकल्प करके द्रव्यको दे । जो जातकर्म और नामकरणकी एकसाथ करनेकी इच्छा होय तो पूर्वकहे जातकर्मके संकल्पवाक्यका उच्चारण करके इस बालककी अवस्थाकी वृद्धि, व्यवहारकी सिद्धि, बीज और गर्भके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए दोषके परिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये तन्त्रसे नामकरण और जातकर्मको करताहूं, यह संकल्प करके स्वस्तिवाचनआदि कर्मको करै । फिर जातकर्म और नामकर्ममें आप पुण्याहवाचनको पढे, ऐसा कहकर इस बालकके जातकर्म, नामकरण और इसके लिये तुम स्वस्ति इस वचनको इस स्वस्तिपर्यायको कहै । फिर ब्राह्मण इसीके अनुसार प्रत्युत्तर दें । और जो केवल नामकरणकी इच्छा होय तो नामकर्ममें पुण्याह कहो ऐसा कहकर इस नामकर्म और इस बालकको स्वस्ति हो ऐसा स्वस्तिपर्याय पढै । ब्राह्मण अमुकनामवाले इसको स्वस्ति हो ऐसा कहे । लेखनआदिमें शर्माआदि पदसे रहित तीन नामको लिखकर व्यावहारिक शर्माआदि जिसके अन्तमें हो ऐसे नामको करै और 'अमुकशर्मा त्वामभिवादये ' इसप्रकार अभिवादनमें नाक्षत्रनामकोभी शर्माआदि अन्तमें जिसके हो ऐसा पढै । अवशिष्ट विधि प्रयोगग्रंथोंमें समझनी ॥

अथ स्त्रीणां नामकर्म ।

संकल्पे अस्याः कुमार्या इति विशेषः ॥ स्वस्तिवाचने एतन्नाम्न्यै अस्यै स्वस्तीत्यादिभक्त्यावंतं देवतानाम ॥ मासनामसु चक्रिणी वैकुंठी वासुदेवीति त्रीणि

ङीबंतानि हरिरित्यविकृतम् अवशिष्टानि अष्टावावंतानि रोहिणीकृत्तिकेत्येवं यथायथं नाक्षत्रनामेति मातृदत्तमते ॥ आश्वलायनैर्नाक्षत्रनाम स्त्रीणां न कार्यम् ॥ व्यावहारिकं यज्ञदा शर्मदेति पुंवत् ॥ पूजादिकं वैदिकमंत्ररहितं पुंवत्कार्यम् ॥ पितुरसन्निधौ स्त्रीपुंसयोर्नाम पितामहादिः कुर्यात ॥ इति नामकरणम् ॥

अब स्त्रियोंके नामकर्मको कहते हैं । संकल्पमें 'अस्य कुमारस्य' इसकी जगह 'अस्याः कुमार्याः' यह विशेष कहना और सब पूर्वकी समान है । और स्वस्तिवाचनमें 'अमुकनाम्न्यै अस्यै स्वस्ति' यह विशेष है, अन्य पूर्वकी समान है । मातृदत्तके मतमें देवता और मासनामोंमें स्त्रियोंके ये नाम समझने कि, चक्रिणी, वैकुण्ठी, वासुदेवी ये तीन ङीप्प्रत्ययान्त और हरि ये ङीप् टाप्से रहित और बाकीके अन्य आठ नाम आप्प्रत्ययान्त समझने । और नाक्षत्रनाम रोहिणी, कृत्तिका यह नाक्षत्रनाम समझना । और आश्वलायन तो यह कहते हैं कि, स्त्रियोंका नाक्षत्रनाम नहीं करना । और व्यावहारिक नाम तो यज्ञदा शर्मदा इसप्रकार पुरुषके नामकी समानही समझना । और पूजाआदिभी वेदके मंत्रोंके विना पुरुषके समानही करना पिता पास न होय तो स्त्री और पुरुषका नाम दादाआदि करैं । नामकरणसंस्कारकी विधि समाप्त हुई ॥

अथांदोलारोहणम् ।

"आंदोलाशयने पुंसो द्वादशो दिवसः शुभः ॥ त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा ॥ अन्यस्मिन्दिवसे चेत्स्याच्छुभकालं विचारयेत् ॥" उत्तरात्रयरोहिणीहस्ताश्विनीपुष्यरेवत्यनुराधामृगचित्रापुनर्वसुश्रवणस्वातीनक्षत्रेषु शुभवारे रिक्तातिरिक्ततिथौ चंद्रताराबले कुलयोषिद्भिरांदोलाशयनं कार्यम् ॥

अब दोलारोहणसंस्कारकी विधिको कहते हैं। कि, बालकको दोला (पालना) में सुवानेके लिये पुरुषको बारहवां दिन और कन्याको तेरहवां दिन शुभ है, इसमें नक्षत्रआदिका विचार नहीं । और जो अन्यकालमें करना होय तो शुभकालको देखकरकरै । तीनो उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, रेवती, अनुराधा, मृगशिर, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, स्वाति ये नक्षत्र, सोमआदि शुभवार, रिक्तासे भिन्न तिथि और चन्द्र ताराका बल देखकर कुलकी स्त्रियोंसे पालनेमें बालकको शयन करावे ॥

अथ दुग्धपानम् ।

एकत्रिंशे दिने द्वितीयजन्मर्क्षे वा दोलारोहोक्तनक्षत्रैर्वा पूर्वाह्णमध्याह्नयोः कुलदेवताविप्रयोः पूजां विधाय शंखेन गोदुग्धं पाययेत् ॥ इति दुग्धपानम् ॥

और इकतीसवें दिन वा दूसरे जन्मनक्षत्रमें दोलारोहणमें कहे नक्षत्रोंमें, पूर्वाह्ण, मध्याह्नकालमें कुलदेवता और ब्राह्मणकी पूजा करके शंखसे गौके दूधको प्यावै । दुग्धपानसंस्कारको कह चुके ॥

अथ जलपूजनम् ।

सूत्या मासोत्तरं बुधसोमगुरुवारेषु रिक्तान्यतिथौ श्रवणपुष्यपुनर्वसुमृगहस्तमू-

लानुराधानक्षत्रेषु जलस्थानं गत्वा जलपूजा कार्या ॥ अत्र गुरुशुक्रास्तचैत्रपौषमासाधिमासा वर्ज्याः ॥ इति जलपूजनम् ॥

जिस दिन जन्म हुआ हो उससे महीना पीछे बुध, सोम, गुरुवार, रिक्तासे अन्य तिथि, श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिर, हस्त, मूल, अनुराधा ये नक्षत्र इनमें जलस्थान (कूपआदि) में जाकर जलकी पूजा करनी । इस जलपूजामें गुरु, शुक्रका अस्त, चैत्र, पौष मास और मलमास ये वर्जित हैं । जलपूजा समाप्त हुई ॥

अथ सूर्यावलोकननिष्क्रमणे ।

तृतीये मासि सूर्यावलोकनं चतुर्थे मासि अन्नप्राशनकाले वा निष्क्रमणम् ॥ तत्र कालः ॥ "शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चांत्यत्रिकं विना ॥ रिक्ता षष्ठ्यष्टमी दर्शो द्वादशी च विवर्जिता ॥" गुरुशुक्रबुधवारा अश्विनीरोहिणीमृगपुष्योत्तरात्रयहस्तधनिष्ठाश्रवणरेवतीपुनर्वस्वनुराधानक्षत्राणि च शस्तानि ॥ इदं निष्क्रमणं नित्यं काम्यं च ॥ सूर्यावलोकननिष्क्रमणयोर्नांदीश्राद्धं कृताकृतम् ॥

तीसरे मासमें सूर्यावलोकन कर्म करावै । चौथे महीनेमें वा अन्नप्राशनके समय निष्क्रमण करावै । अर्थात् बालकको घरसे बाहर निकाले । उसका काल यह है कि, शुक्लपक्ष और अन्तकी तीन तिथियोंको छोडकर कृष्णपक्ष, रिक्ता, षष्ठी, अष्टमी, अमावस्या, द्वादशी इनसे भिन्न तिथि; गुरु, शुक्र, बुध ये वार; अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुष्य तीनों उत्तरा, हस्त, धनिष्ठा, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु, अनुराधा ये नक्षत्र ये सब निष्क्रमणमें उत्तम होते हैं । यह निष्क्रमण नित्य और काम्य उभयरूप समझना । सूर्यावलोकन और निष्क्रमणमें नांदीश्राद्ध करै चाहै न करै ॥

अथ भूम्युपवेशनकालः ।

पंचममासे निष्क्रमोक्ततिथ्यादौ भौमबले सति भूम्युपवेशनं कार्यम् ॥

अब भूमिपर बैठानेके कालको कहते हैं । पांचमें मासमें और निष्क्रमणमें कही तिथि आदिमें मंगलका बल होनेपर भूमिमें उपवेशन करै ॥

अथान्नप्राशनकालः ।

षष्ठेऽष्टमे दशमे द्वादशे वा मासे पूर्णे वत्सरे वा पुंसोन्नप्राशनम् ॥ पंचमसप्तमनवममासेषु स्त्रीणाम् ॥ "द्वितीया च तृतीया च पंचमी सप्तमी तथा ॥ त्रयोदशी च दशमी प्राशने तिथयः शुभाः ॥" बुधगुरुशुक्रवाराः शुभाः ॥ रविचंद्रवारौ क्वचित् ॥ अश्विनीरोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्योत्तरात्रयहस्तचित्रास्वात्यनुराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यः शुभाः ॥ जन्मनक्षत्रमशुभमिति केचित् ॥ भद्रावैधृतिव्यतीपातगंडातिगंडवज्रशूलपरिघा वर्ज्याः ॥ विष्णुशिवचंद्रार्कदिक्पालभूमिदिशाब्राह्मणान् संपूज्य मातुःसंगगतस्य शिशोः कांचने कांस्ये वा पात्रे स्थितं दधिमधुघृतमिश्रं पायसं सुवर्णयुतहस्तेन समंत्रं प्राशयेत् ॥ सूर्यावलोकनादीन्यन्नप्रा-

शनांतानि अन्नप्राशनकाले शिष्टाः सहैवानुतिष्ठंति एतेषां सहप्रयोगसंकल्पादिकं कौस्तुभादौ ज्ञातव्यम् ॥

अब अन्नप्राशनके समयको कहते हैं। छठे,आठमें, दशमें, बारहमें मास वा वर्ष जिस दिन पूर्ण होय उसमें पुरुषका; और पांचमें, सातमें, नौमें मासमें स्त्रीका अन्नप्राशन करै। इसमें द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, त्रयोदशी, दशमी ये तिथि और कहीं सूर्य, चन्द्र-वार; अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती ये नक्षत्र शुभ हैं। कहीं जन्मनक्षत्रभी वर्जित कहा है। इसमें भद्रा, वैधृति, व्यतीपात, गण्ड, अतिगंड, शूल और परिघ ये वर्जित हैं। इसमें विष्णु, शिव, सोम, सूर्य, दिक्पाल, भूमि, दिशा और ब्राह्मण इनको पूजकर माताकी गोदमें बैठेहुए बालकको कांसी वा सुवर्णके पात्रमें रक्खीहुई दही, मधु, घी इनसे मिली खीरको सुवर्णसहित हस्तमें लेकर मन्त्र पढताहुआ खवावै। और सूर्यावलोकनसे अन्नप्राशनपर्यंत कर्मको कोई शिष्ट अन्नप्राशनके साथही करते हैं। इन कर्मोंके सहप्रयोगके संकल्पआदि कौस्तुभ आदि ग्रंथमें समझने ॥

अथ जीविकापरीक्षा।

अथान्नप्राशनांते कर्तव्यम् ॥ "अग्रतोऽथ परिन्यस्य शिल्पवस्तूनि सर्वशः ॥ शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत्स्पृशेद्बालः पुस्तकादि स्वयं तदा ॥ जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति ॥" अन्नप्राशनांतसंस्कारेषु मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्ति इत्युक्तं तच्छुद्धकालेष्वसंभवे ज्ञेयम् ॥ तेन षष्ठादिमासे अस्तादिदोषसत्त्वेऽष्टमादिमासे कार्यम् ॥ इति सूर्यावलोकननिष्क्रमणभूम्युपवेशनान्नप्राशनजीविकापरीक्षणानि ॥

अब अन्नप्राशनके अन्तमें जो कर्म है उसको कहते हैं। कि, बालकके अगाडी चारों तरफ शिल्पवस्तु, शस्त्र, अस्त्र इनको रक्खे। फिर लक्षण देखै कि, जो बालक जिस पुस्तक-आदि वस्तुको स्वयं प्रथम स्पर्श करै उससे यह समझे कि, बालककी जीविका इसी वस्तुसे होवेगी। अन्नप्राशनपर्यंत संस्कारोंमें मलमास, गुरु शुक्रका अस्त आदिका जो दोषाभाव कहा है वह शुद्धकालके न मिलनेपर समझना। तिससे जो षष्ठआदि मासमें शुक्रआदिका अस्त होय तो अष्टमआदि मासमें करना। सूर्यावलोकन, भूम्युपवेशन, निष्क्रमण अन्नप्राशन और जीविकापरीक्षणकी विधि समाप्त हुई ॥

अथ कर्णवेधः।

"दशमे द्वादशे वाह्नि षोडशे कर्णवेधनम् ॥ मासे षष्ठे सप्तमे वा अष्टमे दशमेऽपि वा ॥ द्वादशे वा ततोऽब्दे च प्रथमे वा तृतीयके ॥ न कर्तव्यं समे वर्षे स्त्रीपुंसोः श्रुतिवेधनम् ॥" तृतीयादिवत्सरे मासाः ॥ "कार्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेपि वा ॥ शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तो जन्ममासो निषेधितः ॥ भद्रायां विष्णुशयने कर्णवेधं विवर्जयेत् ॥" तेन कार्तिकमासविधिः शुक्लद्वादश्युत्तरं ज्ञेयः ॥

केचिन्मीनस्थसूर्ये चैत्रं धनुःस्थे पौषं मासं वर्जयंति ॥ "द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी ॥ द्वादशी पंचमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने ॥" चन्द्रबुधगुरुशुक्रवाराः पुष्यपुनर्वसुमृगोत्तरात्रयहस्तचित्राश्विनीश्रवणरेवतीधनिष्ठाः शुभाः ॥ विष्णुरुद्रब्रह्मसूर्यचन्द्रदिक्पालनासत्यसरस्वतीगोब्राह्मणगुरुपूजां कृत्वालक्तकरसांकितं कर्णं पुंसः पूर्वं दक्षिणं विध्येत् पश्चाद्वामम् ॥ स्त्रीणां पूर्वं वामम् ॥ "सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः ॥ शूद्रस्य चायसी सूची बालकाष्टांगुला मता ॥ कर्णरंध्रे रवेश्छाया प्रविशेद्वर्द्धयेत्तथा ॥ अन्यथा दर्शने तस्य पूर्वपुण्यविनाशनम् ॥" इति कर्णवेधः ॥

अब कर्णवेधकी विधिको कहते हैं । कि, दशमें, बारहमें वा सोलहमें दिन वा छठे, आठमें, सातमें, दशमें वा बारहमें मास वा पूर्ण वर्ष वा प्रथम, तीसरे वर्षमें कर्णवेधको करै । और स्त्री और पुरुषका कर्णवेध समवर्षमें न करना । तृतीयआदि वर्ष, कार्तिक, पौष, चैत्र, फाल्गुन ये मास और शुक्लपक्ष ये शुभ हैं । और जन्ममास निषिद्ध समझना । तथा भद्रा, विष्णुशयन येभी वर्जित हैं । इस कार्तिकमासमें इस कर्मकी विधि शुक्लपक्षकी द्वादशीके पश्चात् समझनी । और कोई मीनका सूर्य होय तो चैत्रमासको और धनका होय तो पौषमासको निषिद्ध कहते हैं । द्वितीया–१०–६–७–१३–१२–५–३–ये तिथि ; चंद्र, बुध, गुरु, शुक्र ये वार; पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, अश्विनी, श्रवण, रेवती, धनिष्ठा ये नक्षत्र शुभ हैं । विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य,चंद्र, दिक्पाल, नासत्य (अश्विनीकुमार), सरस्वती, गौ, ब्राह्मण इनकी पूजाको करके महावरके रससे चर्चकर पुरुषके दाहिने कर्णको पूर्व और पश्चात् वाम; और स्त्रीके पूर्व वामकर्णको वींधे । और बालकके आठ अंगुल लंबी सुवर्णकी क्षत्रियकी, और उतनीही चांदीकी ब्राह्मण और वैश्यके लिये, और लोहेकी शूद्रके लिये सूची कही है । उस सूईसे इतना छिद्र वींधे जितनेमें सूर्यकी छाया प्रविष्ट होजाय । यदि अन्यथा छिद्र दीखै तो उसके पूर्वपुण्यका विनाश होता है । इति कर्णवेधः ॥

अथ बालस्य दृष्टिदोषादौ रक्षाविधिः ।

"वासुदेवो जगन्नाथः पूतनातर्जनो हरिः ॥ रक्षतु त्वरितो बालं मुंचमुंच कुमारकम् ॥ कृष्ण रक्ष शिशुं शंखमधुकैटभमर्दन ॥ प्रातःसंगवमध्याह्नसायाह्नेषु च संध्ययोः ॥ महानिशि सदा रक्ष कंसारिष्टनिषूदन ॥ पन्नोरगःपिशाचांश्च ग्रहान्मातृग्रहानपि ॥ बालग्रहान्विशेषेण च्छिंधिच्छिंधि महाभयान् ॥ त्राहि त्राहि हरे नित्यं त्वद्रक्षाभूषितं शिशुम् ॥ इति भस्माभिमंत्र्यैव भूषयेत्तेन भस्मना ॥ शिरोललाटाद्यंगेषु रक्षां कुर्याद्यथाविधि ॥" इति प्रयोगसारे ॥ "रक्षरक्ष महादेव नीलग्रीव जटाधर ॥ ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुंचमुंच कुमारकम् ॥" अमुं मंत्रं भूर्जपत्रे विलिख्य तत्पत्रं भुजे बध्नीयात् ॥ बालरोदनपरिहारार्थं यंत्रमुक्तं मयूखे ॥ षडस्रमध्ये ह्रींकारं तन्मध्ये शिशोर्नाम विलिख्य षट्कोणेषु ॐलुलुवस्वाहेतिमंत्रषडक्षराणि विलिख्य तद्बहिर्नेमिवद्वृत्तद्वयं विलिख्य तद्बहिरधोमुखैरर्धचंद्रैरावेष्ट्य

पंचोपचारैः संपूज्य बालहस्ते बध्नीयादिति ॥ बालग्रहशांत्यादिकं बालग्रहस्तवश्च शांतिकमलाकरशांतिमयूखयोर्द्रष्टव्यम् ॥

इसके अनंतर बालकके दृष्टिदोष (नजर) आदिमें रक्षाकी विधिका वर्णन करते हैं। वासुदेव, जगन्नाथ, पूतनाके हिंसक, हरि देव बालककी सदैव रक्षा करो और बालकका सब दोष त्याग करो। हे कृष्ण ! हे शंख और मधुकैटभके मर्दन ! प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल, दिनके समयमें और दोनों संध्याओंमें और अर्द्धरात्रके समयमें हे कंस और अरिष्टासुरके नाशक ! सदैव बालककी रक्षा करो। और पादचारी और सर्पादिक, पिशाच, ग्रह और माताके ग्रह और बालकके ग्रह जो हैं उन महाभयानकोंका छेदन करो २। और हे हरे:! आपकी रक्षासे भूषित (युक्त) जो बालक है, उसकी तुम रक्षाकरो २। इन मंत्रोंसे भस्मको पढकर उस भस्मको बालकके लगावे। और शिर ललाटआदि अंगोंके विषे विधिपूर्वक रक्षा करै। प्रयोगसारमें लिखा है कि, हे महादेव ! हे नीलग्रीव ! हे जटाधर ! रक्षा करो। और ग्रहोंसहित आप इस बालककी रक्षा करो और छोडदो। इस मंत्रको भोजपत्रपर लिखकर भुजामें बांध दे। और बालकके रोदनकी निवृत्तिके लिये यंत्र मयूखमें कहा है कि, षट् ६ कोणयंत्रके मध्यमें ' ह्रीं ' लिखै और ह्रींके मध्यमें बालकका नाम लिखै। और छओं कोणोंमें (ॐ लुलुव स्वाहा) इस मन्त्रके छओं अक्षरोंको लिखकर उसके बाहिर नोमिके समान दो वृत्त लिखकर और उस वृत्तके बाहर नीचेको है मुख जिनका ऐसे दो अर्द्धचंद्रोंसे लपेटकर पंचोपचारोंसे पूजकर बालकके हाथमें बांध दे। बालग्रहकी शांतिआदि और स्तोत्र शांतिकमलाकर और शांतिमयूखमें देखने योग्य हैं इति बालग्रहशान्तिविधिः ॥

अथ वर्धापनविधिः ।

स च वर्षपर्यंतं प्रतिमासं जन्मतिथौ कार्यः ॥ वर्षोत्तरं प्रत्यब्दं जन्मतिथौ कार्यः ॥ तिथिद्वैधे यत्र जन्मर्क्षयोगः सा ग्राह्या दिनद्वये जन्मनक्षत्रयोगसत्त्वासत्त्वयोरौदयिकी द्विमुहूर्ताधिका ग्राह्या ॥ द्विमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ॥ जन्ममासाधिमासत्वे शुद्धे मासे प्रत्याब्दिकवद्वर्धापनविधिर्न त्वधिके ॥ अथ संक्षेपतः प्रयोगः ॥ आयुरभिवृद्ध्यर्थं वर्षवृद्धिकर्म करिष्ये इति संकल्प्य तिलोद्वर्तनपूर्वकं तिलोदकेन स्नात्वा कृततिलकादिविधिर्गुरुं संपूज्याक्षतपुंजेषु देवताः पूजयेत् ॥ तत्रादौ कुलदेवतायै नम इति कुलदेवतामावाह्य जन्मनक्षत्रं पितरौ प्रजापतिं भानुं विघ्नेशं मार्कंडेयं व्यासं जामदग्न्यं रामम् अश्वत्थामानं कृपं बलिं प्रह्लादं हनूमंतं बिभीषणं षष्ठीं च नाम्नैवावाह्य पूजयेत् ॥ षष्ठ्यै दधिभक्तनैवेद्यः पूजांते प्रार्थना च ॥ "चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने ॥ रूपवान्वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा ॥ मार्कंडेय नमस्तेस्तु सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन् मुने ॥ चिरंजीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवरो द्विज ॥ कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम् ॥ मार्कंडेय महाभाग सप्तकल्पांतजीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव ॥" अथ षष्ठीप्रार्थना ॥ "जय देवि जगन्मातर्जग-

दानंदकारिणि ॥ प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठिदेवते ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वंतु तानि मे ॥" ततस्तिलगुडमिश्रं पयः पिबेत् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "सतिलं गुडसंमिश्रमंजल्यर्धमितं पयः ॥ मार्कंडेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥" क्वचित्पूजितषोडशदेवताभ्यो नाम्ना प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यतिलहोम उक्तः ॥ ततो विप्रभोजनम् ॥ तद्दिने नियमाः ॥ "खंडनं नखकेशानां मैथुनाध्वगमौ तथा ॥ आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥ मृते जन्मनि संक्रांतौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ॥ अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥"

इसके अनंतर वर्द्धापन विधिको कहते हैं । कि, वह वर्षपर्यंत प्रतिमास जन्मतिथिमें करना और वर्षके अनंतर तो प्रतिवर्ष जन्मतिथिमें करना । यदि दो तिथि हों तो जिसमें जन्मनक्षत्रका योग हो वह ग्रहण करनी । यदि दोदिन जन्मनक्षत्र योग होय तो सत्त्व और असत्त्वमें दो मुहूर्तसे अधिक औदायिकी लेनी अर्थात् जिसमें सूर्य उदय हुआ हो वह ग्रहण करनी । दो मुहूर्तसे न्यून होय तो पहिली लेनी । यदि जन्मका मास अधिकमास होय तो शुद्धमासमें प्रत्याब्दिक (वर्ष २ में) वर्द्धापन विधि करनी अधिकमें नहीं । अब संक्षेपसे इसके प्रयोगकी विधिको कहते हैं । अवस्थाकी वृद्धिके लिये वर्षवृद्धिकर्मको करताहूं । यह संकल्प करके और तिलोंका उबटना करनेके अनन्तर तिलजलसे स्नान करके, की है तिलक आदिकी विधि जिसने ऐसा यजमान गुरुको भलीप्रकार पूजकर अक्षतोंके पुंजोंपर देवताओंका पूजन करै । उन देवताओंमें प्रथम कुलदेवताको नमस्कार है, इस मन्त्रसे कुलदेवताका आवाहन करके जन्मनक्षत्र, माता, पिता, प्रजापति, सूर्य, गणेश, मार्कण्डेय, व्यास, जामदग्न्य, राम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि, प्रह्लाद, हनुमान्, विभीषण और षष्ठीदेवता इनका नाममंत्र (जन्मनक्षत्रं यथा रोहिणी तहां ब्रह्मणे नमः) से आवाहन और पूजन करै । षष्ठीदेवताको दही, भक्त (भात) आर नैवेद्य अर्पण करै । इसप्रकार पूजाके अन्तमें प्रार्थना करै कि, हे मार्कण्डेय मुने ! जैसे आप चिरंजीवी हो तिसीप्रकार मैंभी होऊं, और सब कालमें रूप और लक्ष्मीसहित रहूं । हे सातकल्पपर्यंत जीनेवाले मार्कण्डेय मुने ! आपको नमस्कार है । आप अवस्था और आरोग्यकी सिद्धिके लिये प्रसन्न हो । हे मुनियोंमें श्रेष्ठ ! जैसे आप चिरंजीव हो उसीप्रकार हे मुनिशार्दूल ! मुझे भी चिरंजीव करो । हे मार्कण्डेय ! हे महाभाग! हे सप्तकल्पपर्यंत जीनेवाले ! आयु आरोग्यकी सिद्धिके लिये वरको दो । फिर षष्ठीकी प्रार्थना करै कि, हे देवि ! आपकी जय हो, हे जगत्की माता ! हे जगत्को आनन्द करनेवाली ! हे कल्याणरूप! हे षष्ठिदेवता ! तू प्रसन्न हो तुझको नमस्कार है । तीनों लोकोंके विषे जो स्थावर और जंगम (विचरनेवाले) भूत हैं वे सब ब्रह्मा, विष्णु और शिवसहित मेरी रक्षा करो । इसप्रकार प्रार्थनाके पीछे तिल और गुडसे मिश्रित दुग्ध पान करै । उसका यह मन्त्र है कि, तिल, गुडसे मिश्रित आधी अंजलि भरके दुग्धको मार्कण्डेयसे वरको प्राप्त होकर अवस्थाकी वृद्धिके लिये पीताहूं । किसी ग्रन्थमें पूजेहुए षोडशदेवताओंके लिये नाममन्त्रसे एक एकको अट्ठाईस तिलकी आहुति कही हैं । फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावै । अब जिस दिन यह कर्म होताहै उस दिनके नियमोंको कहते हैं । कि, नख और बालोंका कतरवाना, मैथुन,

मार्ग चलना, मांसभक्षण, लडाई, हिंसा इनको वर्षवृद्धि (जन्मगांठ) के दिन वर्जदे । मरण-दिन, संक्रान्ति, श्राद्ध और जन्मदिनके विषे तथा चाण्डालआदिके स्पर्शके विषे उष्ण जलसे स्नान न करै ॥

अथ चौलम् ।

"जन्मतो गर्भतो वाब्दे प्रथमेऽथ द्वितीयके ॥ तृतीये पंचमे वापि चौलकर्म प्रशस्यते ॥ यद्वा सहोपनीत्यात्र कुलाचाराद्व्यवस्थितिः ॥ माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठे मासि शुभं स्मृतम् ॥ जन्ममासेधिमासे न ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य नो भवेत् ॥ शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चांत्यत्रिकं विना ॥ द्वितीयाथ तृतीया च पंचमी सप्तमी शुभा ॥ दशम्येकादशी वापि त्रयोदश्यपि शस्यते ॥ रविभौमार्किशनयो वारा विप्रादिवर्णतः ॥ गुरुशुक्रबुधाः शुक्रे सोमः सर्वे शुभावहाः ॥" अश्विनीमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वातीज्येष्ठाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यः शुभाः॥ "क्षौरप्रयाणभैषज्ये जन्मर्क्षं वर्जयेत्सदा ॥ आयुःक्षयोनुराधाभित्र्युत्तरारोहिणीमघे" ॥ सिंहस्थे गुरौ चौलादिशुभकर्म न कार्यम् ॥ "सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् ॥ पंचमाब्दात्प्रागूर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ॥" पृथक् चूडाकर्म पृथगुपनयनं च मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् ॥ उभयोः सहानुष्ठाने तु न दोषः ॥ गर्भिण्यामपि पंचममासपर्यंतं न दोषः ॥ "पंचमासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥" इत्युक्तेः । ज्वरितस्य चौलादिमंगलं न कार्यम् ॥ "विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ॥ तस्याः शुद्धेः परं कार्यं मंगलं मनुरब्रवीत् ॥" नांदीश्राद्धोत्तरं रजस्वलायां शांतिं कृत्वा कार्यम् ॥ केचित्तु मुहूर्तांतराभावे प्रारंभात्प्रागपि रजोदोषे श्रीपूजनादिविधिना शांतिं कृत्वा कार्यमित्याहुः ॥ मातुलपितृव्यादौ कर्तरि तत्पत्न्यां रजस्वलायामपि मंगलं नेति सिंधुः ॥ त्रिपुरुषात्मककुले षण्मासमध्ये मौंजीविवाहरूपमंगलोत्तरं मुंडनाख्यं चूडाकर्मादि न कार्यम् ॥ संकटे तु अब्दभेदे कार्यम् ॥ चतुःपुरुषपर्यंतं कुले सपिंडीकरणमासिकश्राद्धांतप्रेतकर्मसमाप्तेः प्राक् चूडाकर्मादिकमाभ्युदयिकं कर्म न कार्यम् ॥ "एकमातृजयोरेकवत्सरेपत्ययोर्द्वयोः ॥ न संस्कारः समानः स्यान्मातृभेदे विधीयते ॥" प्रारंभोत्तरं सूतकप्राप्तौ कूष्मांडीभिर्ऋग्भिर्घृतं हुत्वा गां दत्त्वा चूडोपनयनोद्वाहनादिकमाचरेत् ॥ अत्र विशेषो विवाहप्रकरणे वक्ष्यते ॥ मध्येमुख्यैका शिखा अन्याश्च पार्श्वादिभागेष्विति यथाकुलाचारं प्रवरसंख्यया शिखाश्चूडासमये कार्याः ॥ उपनयनकाले मध्यशिखेतरशिखानां वपनं कृत्वा मध्यभागे एवोपनयनोत्तरं शिखा धार्या ॥ चौलकर्मणि जातकर्मणि च भोजने सांतपनकृच्छ्रं प्रायश्चित्तम् ॥ अन्येषु संस्कारेषु उपवासेन शुद्धिः ॥ चूडांताः सर्वे संस्काराः स्त्रीणाममंत्रकाः कार्याः ॥ होमस्तु समंत्रकः॥ होमोप्यमंत्रकः कार्यो न वा कार्य इति वृत्तिकृदादिमतम् ॥ एवं

शूद्रस्याप्यमंत्रकं चौलम् ॥ इदानीं शिष्टेषु स्त्रीणां चूडादिसंस्कारकरणं न दृश्यते ॥ विवाहकाले चूडादिलोपप्रायश्चित्तमात्रं प्रकुर्वंति ॥ चौलोत्तरं मासत्रयपर्यंतं सपिंडैः पिंडदानं तिलतर्पणं च न कार्यम् ॥ महालये गयायां पित्रोः प्रत्यब्दश्राद्धे च पिंडदानादि कार्यम् ॥

अब मुण्डनकर्म कहते हैं। जन्म वा गर्भादिनसे प्रथम वा द्वितीय, तृतीय वा पांचमें वर्षमें मुण्डनकर्म श्रेष्ठ होताहै। अथवा कुलाचारके अनुसार यज्ञोपवीतके साथ श्रेष्ठ होता है। माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ इन मासोंमें शुभ और जन्ममास, अधिकमास इनमें शुभ नहीं होता। और ज्येष्ठपुत्रका ज्येष्ठमासमें शुभ नहीं होता। तथा इसमें शुक्लपक्ष समस्त और अन्तकी तीन तिथियोंको छोडकर कृष्णपक्ष शुभ होताहै। तथा द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी ये तिथि रवि, मंगल, शनैश्चर, शुक्र ये वार क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इनको शुभ समझने। और शुक्लपक्षमें गुरु, शुक्र, बुध और सोम ये सब शुभ हैं। और अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ये नक्षत्र शुभ है। क्षौर, यात्रा, औषधिसेवन इनमें सदैव जन्मनक्षत्रको वर्ज दे। और अनुराधा कृत्तिका, तीनों उत्तरा रोहिणी, मघा इनमें पूर्वोक्त कर्म होनेसे अवस्थाका क्षय होता है। सिंहके बृहस्पतिमें चूडाआदि शुभकर्म न करै। लडकेकी माता गर्भवती होय तो मुण्डन न करै। यह नियमसे पांच वर्षसे पूर्व २ समझना। उससे पीछे तो गर्भिणी होय तो भी करले। और यज्ञोपवीतके साथ करनेसे भी वह दोष न समझना। परन्तु चूडाकर्म और यज्ञोपवीत ये पृथक् २ करने होंय तो माताके गर्भिणी होनेपर न करै। और जो दोनों एक साथ होंय तो दोष नहीं होता। और गर्भिणीके होतेभी पांचमें वर्षपर्यंत दोष नहीं। क्योंकि, यह वचन है कि, पांचमें वर्षसे नीचे करले इससे ऊपर न करै। जो लडकेको ज्वरआदिकी पीडा होय तो भी न करना। विवाह, व्रतबंध (यज्ञोपवीत), मुण्डन इनमें यदि बालककी माताको रजोधर्म होजाय तो शुद्धि होनेके अनन्तर यह कर्म करै, यह मनुने कहा है। जो नांदीश्राद्ध किये पीछे रजस्वला होय तो शान्ति कराकर कर्मको करले। कोई तो यह कहते हैं कि, अन्यमुहूर्त शुभ न बनै तो प्रारंभसे (नांदीश्राद्ध) पूर्वभी रजोदर्शन होजाय तो भी श्रीपूजनआदि विधिसे शांति करके कर्म करना। सिन्धुग्रन्थमें लिखा है कि, मामा, चाचाआदि जो इन कर्मोंको करावै तो इनकी स्त्री रजस्वला होंय तो भी न करने। तीन पीढीके भीतर छः महीनाके भीतर यज्ञोपवीत, विवाहआदि कोई मंगल कार्य होय तो इनके अनन्तर मुण्डनरूप चूडाकर्म न करना और जो संकट होय तो वर्षको बचाकर करले। और चार पीढीके भीतर सपिण्डीकरण और मासिक श्राद्धपर्यंत प्रेतकर्मकी समाप्तिसे पूर्व चूडाकर्म आदि मांगलिक कर्म न करना। तिसीप्रकार एकमातासे उत्पन्न दो लडकाओंका एकवर्षमें मुण्डन न करना क्योंकि, ये बचन हैं कि, एकवर्षमें दो संस्कार नहीं करने। यदि माता दो होंय तो दोष नहीं। जो प्रारंभसे पीछे सूतक होजाय तो कूष्माण्डी ऋचाओंसे घीका होम करके गौदान किये पीछे चूडा, उपनयन, विवाहआदि कर्म करै। इसमें विशेष विवाहप्रकरणमें कहेंगे। मुण्डनके समय एक शिखा (चोटी) तो मुख्यही है। और अन्य जो पार्श्वभागमें शिखा रखनेका आचारहै वह अपनी कुलमर्यादानुसार समझना। यज्ञोपवीतके समय बीचकी

शिखासे अन्य ओर पासकी शिखाओंका मुण्डन कराकर उपनयनसे पीछे मध्यभागमेंही शिखा-का धारण करना । मुण्डन और जातकर्मके विषे जो भोजन करले तो कृच्छ्रसान्तपनव्रतरूपी प्रायश्चित्तको करै । और अन्यसंस्कारोंके विषै तो एक उपवाससे शुद्धि होजाती है । चूडापर्यंत-समस्त संस्कार स्त्रियोंके मंत्रोच्चारणके विनाही करने और होम तो मंत्रसे करै । और वृत्तिकृत् आदिका तो यह मत है कि, होमभी मंत्रके विनाही करना अथवा न करना । इसीप्रकार शूद्रकाभी मंत्रसे विना मुण्डन कर्म करना । इस समयमें शिष्टपुरुषोंमें स्त्रियोंका चूडाआदि संस्कार नहीं देखा जाता वे केवल विवाहके विषे उनके लोपका प्रायश्चित्तमात्र करते हैं । चूडाकर्मके अनन्तर तीन महीनातक सपिण्डपुरुषोंको पिण्डदान और तिलोंका तर्पण नहीं करना । और महालय श्राद्ध, गया, माता पिताका प्रतिवार्षिक श्राद्ध इनमें पिण्डदान आदि करना ॥

अथ विद्यारंभः ।

पंचमे वर्षे अक्षरलेखनारंभ उत्तरायणे कार्यः ॥ अत्र कुंभस्थः सूर्यो वर्ज्यः ॥ "शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चांत्यत्रिकं विना ॥" द्वितीया तृतीया पंचमी दशम्येकादशीद्वादशीत्रयोदश्यः श्रेष्ठाः ॥अश्विनीमृगार्द्रापुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वात्यनुराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यो भौमशनिभिन्नवाराश्च शुभाः ॥ विघ्नेशं लक्ष्मीनारायणौ सरस्वतीं स्ववेदं सूत्रकारं च पूजयित्वा गुरुं ब्राह्मणान् धात्रीं च संपूज्य नत्वा सर्वांस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य प्रणवपूर्वकमक्षरमारभेत् ॥ ततो गुरुं नत्वा देवताः विसर्जयेत् ॥ ततोत्र भुवनमातः सर्ववाङ्मयरूपेणागच्छागच्छेति सरस्वत्यावाहनमंत्रः ॥ प्रणवेन षोडशोपचारार्पणम् ॥

अब विद्यारंभको कहते हैं कि, पांचमें वर्षमें अक्षरोंके लिखानेका आरंभ उत्तरायण सूर्यमें करना । इसमें कुंभराशिके सूर्य वर्जित है । शुक्लपक्ष, अन्तकी तीन तिथियों रहित कृष्णपक्ष, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी तिथि और अश्विनी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती ये नक्षत्र; मंगल, शनैश्चर इनसे रहित वार शुभ हैं । इसमें गणेश, लक्ष्मी, नारायण, सरस्वती, अपना वेद और सूत्रकार इनका पूजन और गुरु, ब्राह्मण और धात्री इनका पूजन करके और नमस्कार तीन परिक्रमा करके ॐकारपूर्वक अक्षरका आरंभ करै । फिर गुरुको नमस्कार करके देवताओंका विसर्जन करै । तिससे पीछे हे लोकोंकी माता ! समस्तशास्त्ररूपसे तू आ इस मंत्रसे सरस्वतीका आवाहन करै । ॐकारमन्त्रसे फिर आवाहनआदि षोडश उपचारोंको अर्पण करै ॥

अथानुपनीतधर्माः ।

प्रागुपनयनात्कामचारकामवादकामभक्षाः ॥ तेन मूत्रपुरीषोत्सर्गादावाचमनाद्याचारो नास्ति लघुपातकहेतुलशुनपर्युषितोच्छिष्टादिभक्षणे दोषाभाव ॥ एवमपेयपाने अनृतावाच्यभाषणेपि ॥ महादोषहेतुमांसांत्यजरजस्वलादिस्पृष्टान्नभ-

क्षणे मद्यादिपाने च दोषोस्त्येव ॥ "रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके ॥ शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम् ॥" तत्र प्रागन्नप्राशनाच्छिशुसंज्ञा ॥ तत ऊर्ध्वं प्राक् चौलात्त्रिवर्षाद्वा बालसंज्ञा ॥ तत आमौंजीबंधनात्कुमारसंज्ञा ॥ अत्राचमनमिति त्रिरुदकपानमेव ॥ नतु ओष्ठमार्जनादिकल्प इति ज्ञेयम् ॥ न चानुपनीतो वेदमुच्चारयेत् ॥ पित्रोरंत्यक्रियायां त्वनुपनीतेनापि मंत्रोच्चारः कार्यः ॥ स च द्वित्रिवर्षयोः कृतचूडस्यैव ॥ त्रिवर्षोर्ध्वं त्वकृतचूडस्यापि ॥ एतच्चौरसपुत्र-विषयम् ॥ "पित्रोरनुपनीतोपि विदध्यादौरसः सुतः ॥ और्ध्वदेहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारकाः॥" इति स्कांदात् ॥ बालानामपथ्यं पित्रादिभिर्निवारणीयम् ॥ "तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बालानग्रे तु भोजयेत् ॥" बालानां क्रीडनदाने स्वर्गसुखम् ॥ तेषां भोज्यप्रदाने गोदानफलम् ॥

अब जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ उनके धर्मोंको कहते हैं। कि, यज्ञोपवीतसे पूर्व यथेच्छ बोलना, यथेच्छ भक्षण करना अर्थात् कोई भोजनआदिका नियम नहीं । तिससे मूत्र और मलके त्यागनेके अनन्तर इनको आचमनआदि करनेका नियम नहीं । और लघुपातकके लगानेवाले लहसन, पर्युषित (बासी) अन्न और उच्छिष्टआदि भक्षण करनेमें दोष नहीं होता । इसीप्रकार जो पीने योग्य नहीं उनके पीने और असत्य भाषण आदिका भी दोष न समझना । परन्तु महापातकके कारण जो मांस और चाण्डाल, रजस्वलाआदिका छुआ अन्न इनके भक्षण और मदिराके पीनेमें तो दोष होताही है। क्योंकि, यह वचन है कि, रजस्वला आदिके स्पर्शमें कुमारको स्नानमात्र, शिशुको जलसे अभ्युक्षण (छिडकना) और बालकको आचमन कराना । अन्नप्राशनसे पूर्व शिशुसंज्ञा और अन्नप्राशनसे लेकर चूडाकर्मके पूर्व अथवा तीन वर्षतक बालसंज्ञा और इससे पीछे यज्ञोपवीतपर्यंत कुमारसंज्ञा होती है । यहां आचमनशब्दसे तीनवार जलका पीना समझना। ओष्ठका मार्जनआदि नहीं । जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो वह वेदका उच्चारण न करै । परन्तु माता पिताके अन्त्येष्टिकर्म, श्राद्ध-आदिमें तो अनुपनीतको भी मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। वह मन्त्रका उच्चारण दो और तीनवर्षकी अवस्थामें तो जिसका मुण्डन हो लियाहो उसकोही करना । और तीनवर्षसे पीछे तो जिसका मुण्डन न हुआहो उसको भी करना । यह मन्त्रका उच्चारण औरसपुत्रके विषयमें समझना । क्योंकि, यह स्कान्दपुराणका वचन है कि, माता पिताकी और्ध्वदेहिक क्रिया जिसका यज्ञोपवीत न हुआहो ऐसाभी औरसपुत्र करै और अन्य दत्तकआदि पुत्र संस्कारके अनन्तर करैं । बालकोंको जो कर्म योग्य न हों उनसे पिता निवृत्त करावै तिससे समस्त प्रयत्नोंसे बालकोंको अगाडी भोजन करावै । बालकोंको खिलानेके पदार्थ देनेमें स्वर्गआदि सुख होताहै और भोज्य पदार्थोंके देनेमें गोदानका फल होता है ॥

अथोपनयनम् ।

उपनयनं नाम आचार्यसमीपनयनांगको गायत्र्युपदेशप्रधानकः कर्मविशेषः उपनयनपदस्य योगरूढत्वात् ॥ तत्राधिकारिणः ॥ "पितैवोपनयेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता ॥ तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः ॥ " तदभावे सगोत्रस-

पिंडाः तदभावे मातुलादयः सगोत्रसपिंडाः तदभावे असपिंडसगोत्रजाः ॥ एते च कुमारापेक्षया वयोज्येष्ठा विवक्षिताः ॥ कनिष्ठकर्तृकोपनयनस्य निषिद्धत्वात् ॥ सर्वाभावे श्रोत्रियः ॥ "जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥ विद्वत्त्वाच्चापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥ कृच्छ्रत्रयं चोपनेता त्रीन् कृच्छ्रांश्च बटुश्चरेत् ॥" गायत्र्या द्वादशाधिकसहस्रजपश्चोपनेतृत्वाधिकारसिद्ध्यर्थं कार्यः ॥ केचिद्द्वादशसाहस्रीं जपंति ॥

अब यज्ञोपवीत संस्कारको कहते हैं । कि, यज्ञोपवीत आचार्यके समीप जानाहै अंग जिसमें और गायत्रीका उपदेश है प्रधान जिसमें ऐसे कर्मको कहते हैं । क्योंकि, ऐसेही अर्थमें उपनयनपद योगरूढ है । उसमें अधिकारी पुरुषोंको कहते हैं कि, पिताही पुत्रका उपनयन करै । जो पिता न होय तो बाबा । बाबा न होय तो चाचा वा ताऊ, चाचा न होय तो सहोदर भाई, सहोदरभी न होय तो सगोत्री वा सपिण्ड, और सगोत्री न होय तो मामाआदि कि, जो अपने सगोत्र और सपिण्ड न हों ये पूर्वोक्त चाचाआदि बालककी अपेक्षा आदिसे अवस्थासे ज्येठे होने चाहिये । क्योंकि, जो अवस्थामें छोटे हों उनका किया यज्ञोपवीत निषिद्ध होताहै । जो इनमें कोई न होय तो श्रोत्रिय (वेदपाठी) करै । श्रोत्रिय वह होताहै कि, जन्मसे ब्राह्मण और संस्कारोंसे द्विज होता है, और विद्या पढनेसे विप्रत्व और इन तीनोंसे श्रोत्रिय कहाताहै । जो यज्ञोपवीत करनेवाला है वह और जिसको हो वह तीन कृच्छ्र करैं । और गायत्रीमन्त्रका बारह अधिक हजार १०१२ जप उपनयन करानेके अधिकारकी सिद्धिके लिये करना । कोई तो १२००० बारह हजारको जपते हैं ॥

अथोपनयनकालः ।

गर्भतो जन्मतो वा पंचमेऽष्टमे वा वर्षे ब्राह्मणस्योपनयनम् ॥ एकादशे द्वादशे वा क्षत्रियस्य ॥ द्वादशे षोडशे वा वैश्यस्य ॥ "षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे ॥ अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कांतिमिच्छतः ॥" केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यंते ॥ आ षोडशादा द्वाविंशादा चतुर्विंशाच्च वर्षाद्ब्राह्मणादेर्गौणकालः ॥ अत्र गर्भादिसंख्या ॥ तथा च जन्मतः पंचदशवर्षपर्यंतं विप्रस्य न विशेषतः प्रायश्चित्तम् ॥ षोडशे वर्षे सशिखवपनमेकविंशतिरात्रं यावकाशनमंते सप्तब्राह्मणभोजनमिति प्रायश्चित्तम् ॥ सप्तदशादिवर्षेषु कृच्छ्रत्रयादिप्रायश्चित्तपूर्वकमुपनयनं बोध्यम् ॥ विप्रक्षत्रिययोरुत्तरायणे मौंजीबंधः ॥ वैश्यस्य दक्षिणायनेपि ॥ वसंते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम् ॥ माघादिशुक्रांतपंचमासाः साधारणा वा सकलद्विजानामिति गर्गोक्तेर्वसंतालाभे शिशिरग्रीष्मावपि ग्राह्यौ ॥ वसंतविधिनोत्तरायणादिविधेः संकोचायोगात् ॥ एवं माघादिमासपंचकनियमात्पौषाषाढयोः सत्यप्युत्तरायणे उपनयनं न कार्यम् ॥ तत्रापि मीनार्कमारभ्य यावत् मिथुनप्रवेशं प्रशस्तः कालः मीनमेषयोस्तु प्रशस्ततरः ॥ मकरकुंभस्थेर्के मध्यमं मीनमेषस्थे उत्तमं वृषभमिथुनस्थेऽधममुपनयनमित्यभिधानात् ॥ मीनार्कविशिष्टश्चैत्रो-

ऽनिष्टबृहस्पत्यादिबहुविधदोषापवादकतया प्रशस्ततमः ॥ "जीवभार्गवयोरस्ते सिंहस्थे देवतागुरौ ॥ चंद्रसूर्ये दुर्बलेपि गोचरेनिष्टदे गुरौ ॥ मेखलाबंधनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ॥" इत्यर्थकस्मृतेः ॥ अत्र गुरुशुक्रास्तदोषापवादोऽतिमहासंकटविषयत्वान्न कथनीयः॥मीनार्कचैत्रे जन्ममासनक्षत्रदोषो नास्ति॥ जन्ममासजन्मनक्षत्रजन्मतिथिजन्मलग्नजन्मराशिलग्नेषु विप्राणामुपनयनं न दोषाय ॥ क्षत्रियवैश्ययोरप्रथमगर्भे दोषो न ॥ ज्येष्ठापत्यस्य ज्येष्ठमासे मंगलं न ॥ "शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चांत्यत्रिकं विना ॥" इति गुरूक्तेः कृष्णपक्षे दशमीपर्यंतं संकटे कार्यम् ॥ शिष्टास्तु संकटेपि कृष्णपक्षे पंचमीपर्यंतमेव कुर्वंति ॥

अब उपनयनके समयको कहते हैं। कि, गर्भसे पांचमें वा आठमें वर्षमें ब्राह्मणका उपनयन, ग्यारहमें वा बारहमें वर्षमें क्षत्रियका, बारहमें वा सोलहवें वर्षमें वैश्यका करना। धनकी कामनावाला छठेमें, विद्याकी कामनावाला सातमेंमें, समस्त वस्तुओंकी कामनावाला आठमेंमें और तेजकी इच्छावाला नौमें वर्षमें उपनयन करै । कोई तो ब्राह्मणको छठे वर्षको नहीं मानते। सोलह वर्षसे पूर्व ब्राह्मण, बाईस वर्षसे पूर्व क्षत्रिय, चौबीस वर्षसे पूर्व वैश्यका गौणकाल है। यहां गर्भदिनसे संख्या समझनी। तिससे ब्राह्मणको जन्मवर्षसे पन्द्रह १५ में वर्षतक गौणकाल समझना । उसमें विशेषतः यह वक्ष्यमाण प्रायश्चित्त नहीं करना कि, सोलहवें वर्षमें शिखासहित मुण्डन इक्कीस २१ रात्रितक जौके सत्तूआदिका भोजन और फिर व्रतके अन्तमें सात ब्राह्मणोंका भोजन कराना । और फिर सोलह वर्षसे पीछे सत्रह आदि वर्षमें तीन कृच्छ्र करने और इस पूर्वोक्त प्रायश्चित्तके पीछे उपनयन करना । ब्राह्मण और क्षत्रियका उपनयन उत्तरायण सूर्यमें करना। और वैश्यका दक्षिणायन सूर्यमें भी करना क्योंकि, यह वचन है कि, वसन्तमें ब्राह्मणका, ग्रीष्मऋतुमें क्षत्रियका और शरदृऋतुमें वैश्यका उपनयन करै । और माघमाससे लेकर आषाढपर्यन्त पांच महीना सब द्विजोंको यज्ञोपवीतमें साधारण काल है। इस गर्गाचार्यके वचनसे जो वसन्तऋतु न मिलै तो शिशिर और ग्रीष्मऋतु भी ग्रहण करनी । क्योंकि, वसन्तऋतुके विधिवाक्यसे उत्तरायण आदिमें सामान्यतः यज्ञोपवीतकी विधि है, उसका संकोच युक्त नहीं । इसीप्रकार माघमासआदि पांच महीनोंके नियमवाक्यसे पौष और आषाढमें उत्तरायण सूर्य हो तौभी यज्ञोपवीत नहीं करना । तिसमें भी मीनके सूर्यसे लेकर जबतक मिथुनसंक्रांतिका प्रवेश हो तबतक उत्तम काल है और मीन मेषकी संक्रांतिमें अतिउत्तम है। क्योंकि, यह कहाहै कि, मकर, कुम्भके सूर्योंमें मध्यम, मीन मेषमें उत्तम, वृष और मिथुनमें अधम यज्ञोपवीतकर्म होताहै । और मीनकी संक्रांतिमें चैत्रमास, अनिष्ट बृहस्पतिआदि हों उनके भी दोषका बाधक होता है । इससे मीनके सूर्यसहित चैत्रमास अतिउत्तम है। क्योंकि, यह अर्थ स्मृतिके वचनमें लिखा है कि, गुरु और शुक्र ये अस्त हों अथवा बृहस्पति सिंहराशिपर हो चन्द्र और सूर्य चौथे, आठमें आदि स्थानपर हों तिसीप्रकार बृहस्पति भी अरिष्टकारी हो तोभी चैत्रमासमें मीनकी संक्रांति हो तो मेखलाबन्ध (उपनयन) करना। यहां गुरु और शुक्रास्तदोषका अपवाद अतिसंकटके विषय न समझना। मीनार्कसहित चैत्रमासमें जन्ममास और जन्मनक्षत्रका दोष नहीं होता। जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि, जन्मलग्न, जन्मराशि इनमें ब्राह्मणोंका उपनयन होय तो

दोष नहीं । और क्षत्रिय वैश्यको, प्रथमगर्भको छोडकर दोष नहीं । और ज्येठीसन्तानका ज्येष्ठमासमें मंगल नहीं करना । और शुक्लपक्ष शुभ हैं और कृष्णपक्ष अन्तके त्रिकको छोडकर शुभ है, इस गुरुके वचनसे कृष्णपक्षम भी दशमीपर्यंत जो संकट होय तो यह कर्म करना । और शिष्ट तो संकटमें भी पंचमीपर्यंतही करते हैं ॥

अथ तिथिविचारः ।

द्वितीयातृतीयापंचमीषष्ठीदशम्येकादशीद्वादश्यः प्रशस्ताः ॥ क्वचित्सप्तमीत्रयोदशीकृष्णप्रतिपद्विधिः पुनरुपनयनमूकाद्युपनयनविषयः ॥ "तिथौ सोपपदाख्यायामनध्याये गलग्रहे ॥ अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥ सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता ॥ चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ॥ अनध्यायाः पौर्णमासी चतुर्दश्यष्टमी अमा ॥ प्रतिपत्सूर्यसंक्रांतिर्मन्वाद्याश्च युगादयः ॥ कृष्णपक्षे द्वितीयाश्च कार्तिकाषाढफाल्गुने ॥" विषुवायनसंक्रांत्योः पक्षिणी अनध्याय इति पूर्वपरिच्छेदे उक्तम् ॥ सोपपदानामनध्यायतिथीनां च दिनद्वये सूर्योदयोत्तरं सूर्यास्तात्पूर्वं च त्रिमुहूर्तसत्त्वे दिनद्वयमनध्यायः ॥ शिष्टास्तु प्रतिपच्छेषघटिकादिमात्रेऽपि व्रतबंधेऽनध्यायं वदंति ॥ विषुवायनेतरसंक्रांतिमन्वादियुगादिषु तु प्रथमद्वितीयपरिच्छेदोक्तरीत्या यत्र दिने संक्रांतिपुण्यकालो युगमन्वादिश्राद्धकालश्च तद्दिनेऽनध्यायः ॥ न तु तेषामस्तादौ मुहूर्तत्रयसत्त्वमनध्यायहेतुः ॥ "त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादि दिनत्रयम् ॥ चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः ॥" अत्र चतुर्थी नवमी च व्रतकाले त्याज्येति भाति ॥ केचिच्चतुर्थीशेषयुतपंचम्यां व्रतबंधं न कुर्वंति ॥ तत्र मूलं मृग्यम् ॥ नवमीशेषयुतदशम्यां मौंजी न कार्येति मयूखे ॥ अपराह्णस्त्रेधाविभक्तदिनतृतीयांशो व्रतबंधे वर्ज्यः ॥ दिनमध्यमभागो मध्यमः प्रथमभागो मुख्यः ॥ मन्वादियुगादयो द्वितीयपरिच्छेदे दर्शिताः ॥ तत्रोपनयने चैत्रशुक्लतृतीयाया मन्वादेर्वैशाखशुक्लतृतीयाया युगादेश्च प्रसक्तिः ॥ अन्येषां युगादिमन्वादितिथीनां प्रसक्तिर्नास्ति ॥ अनयोरपवादः सिंधुकौस्तुभादौ स्मर्यते ॥ "या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य ॥ कृष्णद्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनींद्रमुख्यैः ॥" इति ॥ अत्र माघसप्तम्याः मन्वादेरपवादः पुनरुपनयनादिविषयः फाल्गुनकृष्णद्वितीयायाश्चातुर्मास्यद्वितीयात्वेनानध्यायत्वं प्राप्तं तस्यापवादोयम् ॥ यत्तु "अनध्यायस्य पूर्वेद्युरनध्यायात्परेऽहनि ॥ व्रतारंभं विसर्गं च विद्यारंभं च वर्जयेत् ॥" इति स्मृत्यंतरं तद्द्वितीयाविध्यनुपपत्त्या गलग्रहत्वेन प्राप्तसप्तमीनवमीत्रयोदशीनिषेधानुवादकमिति भाति ॥ अप्राप्तनिषेधकत्वे मन्वादियुगादिसंक्रांत्यादिप्रयुक्तानध्यायेभ्योऽपि पूर्वपरदिनयोर्निषेधापत्त्या चैत्रशुक्लद्वितीयादेरपि निषिद्धत्वापातान्न चेष्टापत्तिः ॥ शिष्टाचारग्रंथेषु चानुपलंभान्मुहूर्तमार्तंडोक्त्या माघशुक्लद्वितीया कृष्णद्वितीया

वैशाखकृष्णद्वितीया चेत्यनध्यायत्रयमुपनयनेधिकं प्राप्नोति ॥ एतदपरे नाद्रियंते ॥ बहुग्रंथेषु मूलानुपलंभात् ॥ मौंजीप्रकरणे मुहूर्तचिंतामण्यादिग्रंथेषु काप्यनुक्तेश्च ॥ अतो मार्तंडोक्तानामतिरिक्तानध्यायानामुपनिषत्पाठादिविषयत्वं नतु मौंजीविषयत्वमिति युक्तं भाति ॥ तत्र तृतीयाषष्ठीद्वादशीषु प्रदोषसत्त्वे मौंजी न कार्या ॥ रात्रेः प्रथमयामे चतुर्थी सार्द्धयामे सप्तमी यामद्वये त्रयोदशी चेत्तदा प्रदोषः ॥ दिनद्वये प्रथमयामादिषु चतुर्थ्यादिव्याप्तौ पूर्वदिने प्रदोषो नोत्तरदिने इति कौस्तुभे ॥ प्रदोषदिने मंदवारे कृष्णपक्षांत्यत्रिके चोपनयने पुनरुपनयनमिति मयूखे ॥ एते नित्यानध्यायाः ॥

अब तिथिका निर्णय कहते हैं । कि, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी ये प्रशस्त काल हैं । और कहीं सप्तमी, त्रयोदशी और कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको भी यह कर्म कहते हैं सो वह पुनः (दूसरीबार) यज्ञोपवीत वा मूक (गूंगा) के यज्ञोपवीतके विषयमें समझना । सोपपदा तिथि, अनध्याय और गलग्रह और मध्याह्नसे उत्तरकालमें जिसका यज्ञोपवीत हो वह पुनःसंस्कारके योग्य होताहै । सोपपदा तिथि ये होती हैं कि, ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी द्वितीया, आश्विनके शुक्लपक्षकी दशमी, माघमासकी चतुर्थी, द्वादशी ये सोपपदा होती हैं । पूर्णमासी, चतुर्दशी और अष्टमी ये अनध्याय समझने । तथा प्रतिपदा, सूर्यसंक्रांति और मन्वादि और युगादि तिथि और कार्तिक, आषाढ और फाल्गुन इनके कृष्णपक्षकी द्वितीया और विषुव (कर्क तुल) और दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रांति इनमें पक्षिणी (दो दिन एकरात) अनध्याय होताहै । यह प्रथमपरिच्छेदमें कहआये । सोपपदा और अनध्यायकी तिथि ये दोनों दिन सूर्योदसे पीछे और पहिले तीन मुहूर्त (छः घडी) होय तो दो दिन अनध्याय होताहै । और शिष्ट तो प्रतिपदा जो १ घडीमात्र भी शेष होय तो व्रतबन्धके विषयमेंही अनध्याय कहते हैं । और विषुव और अयनसंक्रान्ति छोडकर अन्य संक्रान्ति और मन्वादि, युगादि तिथि इनमें प्रथम और द्वितीयपरिच्छेदमें कही रीतिके अनुसार जिसदिन संक्रांतिका पुण्यकाल हो और जब मन्वादि और युगादिका श्राद्धकाल हो उस दिन अनध्याय होताहै । उन तिथियोंका अस्तआदिमें तीन मुहूर्तका होना अनध्यायका कारण नहीं । त्रयोदशीआदि चार तिथि (१३-१४-१५-१) और सप्तमी आदि तीन । और एक चतुर्थी ये आठ गलग्रह कहाती हैं । यहां यह प्रतीत होता है कि, व्रतके समय चतुर्थी और नवमी त्यागने योग्य हैं । और जो कोई यह मानतेहैं कि, चतुर्थीके शेष घटीआदिसे युक्त पंचमीके विषे व्रतबन्ध नहीं करना उसमें प्रमाण ढूँढनेयोग्य है । अर्थात् निष्प्रमाण है । मयूखग्रंथमें लिखा है कि, नवमीके शेषकालयुक्त दशमीमें मौंजीबंधन नहीं करना । दिनके तीन विभाग करके तीसरे दिनके हिस्सेको अपराह्णकाल कहते हैं वह उपनयन वर्जित है । दिनका मध्यभाग मध्यम है और प्रथमभाग मुख्य है । मन्वादि और युगादि तिथि दूसरे परिच्छेदमें दिखाय आये, परन्तु उपनयनमें चैत्रके शुक्लपक्षकी तृतीया मन्वादि और वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया युगादि इन दो तिथियोंकीही प्राप्ति है । अन्य मन्वादि युगादिकी नहीं । इन दोनों तिथियोंका अपवाद सिंधु, कौस्तुभआदि ग्रंथोंमें लिखाहै कि, चैत्र वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, माघके शुक्लपक्षकी सप्तमी, फाल्गुनके कृष्णपक्षकी द्वितीया ये उपनयनमें

भरद्वाजआदि उत्तम मुनियोंनें कहीहैं। यहां माघमासकी सप्तमी जो मन्वादि है उसका इस वचनसे जो अपवाद है वह उपनयनके विषयमें है। और फाल्गुनके कृष्णपक्षकी द्वितीया चातुर्मास्यकी द्वितीया है इससे वह अनध्याय थी, इसमें यज्ञोपवीतका अभाव पाया उसका अपवाद पूर्वोक्त वचन है। और जो कि, यह लिखाहै कि, अनध्यायके पहिले और पिछले दिनमें व्रतका आरंभ और समाप्ति इनको वर्जदे सो वह द्वितीयामें उपनयनकी विधि व्यर्थ न हो इसलिये है; गलग्रह जो सप्तमी, नवमी और त्रयोदशीतिथि हैं इनमें जो गलग्रहसंज्ञासे निषेध सिद्ध था उसकाही अनुवादक है (द्वितीयाके विषे नहीं। क्योंकि, द्वितीयामें यज्ञोपवीतकी विधि व्यर्थ होजायगी) क्योंकि, जो उसे अनुवाद न मानोगे किन्तु जो निषेध नहीं प्राप्तथा उसमें निषेध करनेवाला मानोगे तो मन्वादि और युगादि और संक्रांतिआदिकी तिथिभी अनध्याय हैं। तो उनके पहिले और पिछले दिनोंमें जब उपनयनका निषेध पाया तब चैत्रके शुक्लपक्षकी द्वितीयाकाभी इस उपनयनमें निषेध होजावेगा। कदाचित् कहो कि, होजाओ हमको यह इष्ट है, सो ठीक नहीं क्योंकि,शिष्टाचारके ग्रंथोंमें यह बात कहीं नहीं मिलती। मुहूर्तमार्तण्डके वचनानुसार माघके शुक्लपक्षकी द्वितीया, कृष्णपक्षकी द्वितीया, वैशाखकृष्णद्वितीया ये तीन अनध्याय और मिलते हैं। सो इसको अन्य शिष्टजन नहीं मानते क्योंकि, बहुतसे ग्रंथोंमें इसका प्रमाण नहीं मिलता। और इस मौंजी (जनेऊ) कर्मके प्रकरणमें मुहूर्तचिन्तामणिआदि किसी ग्रंथमें कहा नहीं। इससे मार्तण्डके कहेहुए ये अधिक अनध्याय उपनिषत्के पाठके विषयमें समझने, मौंजीबंधनके विषयमें नहीं। यही बात यहां युक्त प्रतीत होती है। तहां तृतीया, षष्ठी और द्वादशी इनमें जो प्रदोष होय तो जनेऊ नहीं करना। जो रात्रिके पहिले प्रहरके भीतर तीजमें चौथ आजाय, डेढप्रहर भीतर छठमें सातें आजाय, दो प्रहरके भीतर द्वादशीमें त्रयोदशी आजाय तो प्रदोष होता है। जो दोनों अर्थात् तीज और चौथमें प्रथमप्रहरआदिमें चौथ व्याप्त होय तो पहिले दिन प्रदोष है, परलेदिन नहीं। यह कौस्तुभमें लिखाहै। और मयूखमें यह लिखा है कि, प्रदोष और शनैश्चर और कृष्णपक्षकी अन्तकी पांच तिथि इनमें यदि जनेऊ होजावै तो दूसरीबार यज्ञोपवीत करना। ये नित्य अनध्याय कहे ॥

अथ नैमित्तिकाः।

विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वा समाप्तेः सगोत्राणामनध्याय इति स्मृत्यर्थसारोक्तेस्त्रिपुरुषसपिंडेषु ब्रह्मयज्ञादिवर्जनात् मौंजीविवाहादिनिमित्तकमंडपप्रतिष्ठाद्युत्सवसमाप्तिपर्यंतमुपनयनं न कार्यमिति भाति॥ विवाहादिमंगलकरणे दोषो न॥ शोभनदिने चानध्याय इत्युक्तेर्गर्भाधानादिशुभकार्यदिने एककुले एकगृहे वा व्रतबंधो न कार्य इति भाति॥ भूकंपे भूविदारणे वज्रपाते उल्कापाते धूमकेतूत्पत्तौ ग्रहणे च दशाहं सप्ताहं वा व्रतबंधादिमंगलं न कार्यम्॥ केचित्संकटे त्रिदिनमनध्यायमाहुः॥ अकालवृष्टौ त्रिरात्रं पक्षिणी वानध्यायः॥ पौषादिचैत्रांतमकालवृष्टिः॥ केचिदार्द्रादिज्येष्ठांतसूर्यनक्षत्रादन्यत्राकालवृष्टिरित्याहुः॥ यस्मिन् देशे यो वर्षाकालस्ततोन्यत्राकालवृष्टिरिति सिद्धांतः॥ अतिवृष्टौ करकावृष्टौ रुधिरवृष्टौ च त्र्यहम्॥ प्रातःसंध्यागर्जने त्वहोरात्रं गुरुशिष्यऋत्विङ्मरणे त्र्यहम् ॥ पशुमंडूकनकुलश्वाहिमा-

र्जारमूषकैरंतरागमनेऽहोरात्रम् ॥ आरण्यमार्जारादिगमने त्रिरात्रम् ॥ सृगालवानरैर्द्वादशरात्रम् ॥ श्रवणद्वादशीयमद्वितीयामहाभरण्यादयोऽन्येप्यनध्याया नित्या नैमित्तिकाश्च बहवो ग्रंथेषूक्तास्तेषामुपनयने प्रसक्त्यभावादत्र नोक्ताः ॥ व्रतबंधे नांदीश्राद्धोत्तरं पूर्वोक्तप्रातर्गर्जितादिनैमित्तिकानध्यायप्राप्तौ ज्योतिर्निबंधे "नांदीश्राद्धं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः ॥ तदोपनयनं कार्यं वेदारंभं न कारयेत्॥" इति ॥ वेदारंभं न कारयेदिति निषेधो याजुषादिविषयः ॥ बह्वृचानामुपाकर्मण्येव वेदारंभोक्त्या मौंजीदिने वेदारंभाप्रसक्तेः तदोपनयनं कार्यमिति बह्वृचादिसर्वसाधारणः ॥ याजुषादिभिर्मौंज्युत्तरमपि अनध्यायप्राप्तौ वेदारंभो वर्ज्यः ॥ नांदीश्राद्धात्प्राक् नैमित्तिकानध्याये मुहूर्तांतरे कार्यम् ॥ मौंज्युत्तरमनुप्रवचनीयात्प्राक् गर्जने वक्ष्यते ॥ इति अनध्यायादिनिर्णयः ॥ इत्थं तिथि तत्प्रसंगप्राप्तमनध्यायादिकं च विचार्य वारादि चिंत्यते ॥ गुरुशुक्रबुधवाराः श्रेष्ठाः ॥ सूर्यवारो मध्यमः ॥ चंद्रवारोऽधमः ॥ भौममंदवारौ निषिद्धौ ॥ सामवेदिनां क्षत्रियाणां च भौमवारः प्रशस्तः ॥ "शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं तथा ॥ शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥ गुरुशुक्रौ भौमबुधावृग्वेदाद्यधिपाः स्मृताः ॥ पती सितेज्यौ विप्राणां नृपाणां कुजभास्करौ ॥ वैश्यानां शशभृत्सौम्याविति वर्णाधिपाः स्मृताः ॥ पितुः सूर्यबलं श्रेष्ठं शाखावर्णेशयोर्बटोः ॥ पितुर्बटोश्च सर्वेषां बलं वाक्पतिचंद्रयोः ॥" बटुतत्पित्रोरुभयोर्गुरुचंद्रबलालाभे बटोरुभयबलमावश्यकम् ॥ तत्र चंद्रबलं गर्भाधानप्रसंगे उक्तम् ॥ द्विपंचसप्तनवैकादशस्थो गुरुः शुभफलप्रदः ॥ जन्मतृतीयषष्ठदशमस्थानेषु पूजाहोमात्मकशांत्या शुभः ॥ चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानेषु दुष्टफलः ॥ कर्कधनुर्मीनराशिषु चतुर्थादिस्थानेपि न दोषः ॥ अतिसंकटे चतुर्थद्वादशस्थो द्विगुणपूजाहोमादिना शुभः ॥ अष्टमस्तु त्रिगुणपूजादिना शुभः ॥ केचिदनिष्टो वामवेधेन शुभ इत्याहुस्तन्नेति राजमार्तंडः ॥ अष्टमवर्षादिमुख्यकाले गुरुबलाभावेपि मीनगतरवियुतचैत्रे वा शांत्या वा व्रतबंधः कार्यो न तु मुख्यकालातिक्रमः ॥ नित्यकालस्य बलीयस्त्वात् ॥

अब नैमित्तिक अनध्यायोंको कहते हैं । कि, विवाह, प्रतिष्ठा और उद्यापन इनमें समाप्तिपर्यन्त सगोत्रियोंको अनध्याय होता है । इस स्मृत्यर्थसारके वचनसे तीनपीढीतकके जो सपिण्ड हैं उनको ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) आदि वर्जित हैं इससे विवाहमें स्थापन किये मण्डपप्रतिष्ठाआदि उत्सव इनकी समाप्ति पर्यन्त उपनयन नहीं करना । विवाहआदि मंगलकर्मके करनेमें दोष नहीं, परन्तु मंगलदिनके विषे अनध्याय होताहै । इस वचनसे गर्भाधानआदि शुभकार्यके दिन एक कुल वा एक गृहके विषे व्रतबंध (उपनयन) नहीं करना । पृथिवीका हिलना, पृथ्वीका फटना, वज्रका पडना, उल्का (तारा) का पडना, धूमकेतु (पूंछातारा) का उदय होना और ग्रहण इनके विषे दश दिन वा सात दिन व्रतबंधआदि मंगलकार्य नहीं करना । कोई संकटके विषे तीन दिन अनध्याय कहतेहैं । अकालवर्षाके होनेमें तीनरात वा

पक्षिणी (दो दिन एकरात) अनध्याय होताहै। पौषमहीनासे चैत्रमासपर्यंत जो वर्षा हो उसे अकालवृष्टि कहते हैं और कोई कहते हैं आर्द्रानक्षत्रसे ज्येष्ठानक्षत्रतक जो सूर्यका नक्षत्र है इससे अतिरिक्त नक्षत्रोंमें वर्षा हो वह अकालवृष्टि होती है। परन्तु यहां सिद्धांतपक्ष तो यह है कि, जिस देशमें जो वर्षाका समय है उससे अन्यकालमें जो वर्षाहो वह अकालवृष्टि होती है। अत्यंत वर्षा, ओलाकी वर्षा और रुधिरकी वर्षा होय तो तीनरात अनध्याय होता है। प्रात:काल और सायंकालके गर्जनेमें दिनरात। और गुरु शिष्य और अपने ऋत्विक्के मरणमें तीनदिन। पशु, मेंडक, नोला, कुत्ता, मूंसा, सर्प, बिलाई ये पढनेके समय बीचमें होके निकलजांय तो रात्रिदिन। जो वनका बिलाय बीचमें होके निकले तो तीनरात। गीदड वा बंदर बीचमें होकर निकले तो बारह रात्र। श्रवणद्वादशी, यमद्वितीया, महाभरणी आदि अन्यभी बहुतसे नित्य नैमित्तिक अनध्याय ग्रंथोंमें कहेहैं। उनकी उपनयनमें प्राप्ति नहीं इससे यहां नहीं कहे। व्रतबंधके समय नांदीश्राद्ध कियेपीछे पूर्वकहे प्रात:कालके गर्जनसे अनध्याय होजाय तो उसके विषयमें ज्योतिर्निबन्धके विषयमें लिखाहै कि, नांदीश्राद्धके किये पीछे जो अकालिक अनध्याय होजाय तो वेदउपनयनसंस्कारको करै परन्तु वेदारंभ न करै। यह वेदारंभ न करना यह निषेध यजुर्वेदियोंके लिये है और बह्वृचशाखावालोंको तो उपाकर्मके विषे वेदारंभ करना कहा है। इससे उपनयनके वेदारंभकी प्राप्ति नहीं है। इससे पूर्वोक्त अनध्यायके होनेपर उपनयन करना यह वचन बह्वृचआदि सबके लिये है। और यजुर्वेदियोंको तो उपनयनके अनंतर कालान्तरमेंभी अनध्याय होजाय तो वेदारंभ नहीं करना। और नांदीश्राद्धसे पूर्व नैमित्तिक अनध्याय होय तो अन्य मुहूर्तमें करना। और जो उपनयनसे पीछे वेदारंभसे पूर्व जो गर्जे उसके विषे अगाडी कहेंगे। अनध्यायनिर्णय समाप्त हुआ। इस प्रकार तिथि और उसके प्रसंगसे अनध्यायोंका निर्णय करके वारआदिका निर्णय कहतेहैं। गुरु, शुक्र, बुध ये वार श्रेष्ठ हैं। सूर्यवार मध्यम है, चंद्रवार अधम और मंगल, शनैश्चर, वर्जित हैं। सामवेदी और क्षत्रिय इनको मंगलवार श्रेष्ठ है। अपनी शाखाका जो स्वामी हो वह वार, शाखाके अधिपतिका बल और शाखाके अधिपतिकी लग्न ये तीन इस व्रतबंधके विषे दुर्लभ हैं। ऋग्वेदआदि चारों वेदोंके क्रमसे गुरु,शुक्र, मंगल, बुध ये स्वामी हैं। ब्राह्मणोंके शुक्र बृहस्पति स्वामी हैं। क्षत्रियोंके मंगल, सूर्य। वैश्योंके चंद्र, बुध स्वामी इसप्रकार ये वर्णोंके स्वामी हैं। पिताको सूर्यबल, बटु (लडके) को वर्ण शाखाके स्वामीका बल और पिता, बटुआदि सबको गुरु और चन्द्रमाका बल श्रेष्ठ है। और जो बटु और उसके पिताको बृहस्पति और चन्द्रमाका बल न होय तो बटुको इन दोनोंका बल अवश्य होना चाहिये। तिसमें चन्द्रमाका जिसप्रकार बल होताहै वह गर्भाधानके विषयमें कहआये। दूसरे, पांचवें, सातवें, नौवें और ग्यारहवें स्थानपर गुरु होय तो शुभ फलके देनेवाला है। जन्म, तीसरे, छठे, दशवें स्थानपर होय तो पूजा और होमरूप शांति करानेसे शुभफलके देनेवाला है। और चौथे, आठवें, बारहवें स्थानपर होय तो अशुभफलके देनेवालाहै। और जो कर्क, धन, मीन, इन राशियोंपर होय तो चतुर्थस्थान आदिका भी दोष नहीं। और जो अत्यन्त संकट होय तो चौथे, बारहवें स्थानका गुरु दुगुणी पूजा होमआदि करनेसे शुभ होताहै। और आठवें स्थानका तिगुणी पूजाआदिसे शुभ होताहै। और जिस किसीने यह कहा है कि, अनिष्ट भी वामवेधसे शुभ हो सो ठीक नहीं है यह राजमार्तण्डमें लिखाहै। और जो अष्टमवर्षआदि मुख्यकाल होय

तो गुरुका बल न होय तोभी अथवा मीनसंक्रांतिसहित चैत्रमासमें वा शांतिसे उपनयन कर-लेना । परन्तु मुख्य कालका अवलंघन नहीं करना क्योंकि, नित्य कालही बलवान् होता है ॥

अथ नक्षत्राणि ।

पूर्वात्रयहस्तचित्रास्वातीमूलाश्लेषार्द्राश्रवणेषु ऋग्वेदिनां मौंजी प्रशस्ता॥ रोहिणी-मृगपुष्यपुनर्वसुत्र्युत्तराहस्तानुराधाचित्रारेवतीषु याजुषाणाम् ॥ अश्विनीपुष्योत्तरा-त्रयार्द्राहस्तधनिष्ठाश्रवणेषु सामगानाम् ॥ अश्विनीमृगानुराधाहस्तधनिष्ठापुनर्वसु-रेवतीषु अथर्ववेदिनाम् ॥ एषां नक्षत्राणामसंभवे भरणीकृत्तिकामघाविशाखाज्ये-ष्ठाशततारका वर्जयित्वा सर्वाणि सर्वेषां ग्राह्याणि ॥ राजमार्तंडे पुनर्वसुनिषेधो निर्मूल इति बहवः ॥ केचित्तत्सामवेदिविषयः पुनर्वसुनिषेध इत्याहुः ॥ व्यतीपात-वैधृतिपरिघार्धेषु विष्कंभादीनां निषिद्धनाडीषु भद्रायां ग्रहणे च मौंजी वर्ज्या ॥

अब नक्षत्रोंको कहते हैं । पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा और श्रवण इन नक्षत्रोंमें तो ऋग्वेदियोंका उपनयन उत्तम है । रोहिणी, मृग-शिर, पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, अनुराधा, चित्रा, रेवती इनमें यजुर्वेदियोंका । अश्विनी, पुष्य, तीनों उत्तरा, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा, श्रवण इनमें सामवेदियोंका । अश्विनी, मृगशिर, अनुराधा, हस्त, धनिष्ठा, पुनर्वसु और रेवती इनमें अथर्ववेदियोंका उपनयन उत्तम होताहै । जो यदि ये नक्षत्र न मिलैं तो भरणी, कृत्तिका, मघा, विशाखा, ज्येष्ठा, शतभिषा इनको छोडकर और सब नक्षत्र ग्रहण करने । कोई तो यह कहते हैं कि, राजमार्तण्डमें जो पुनर्वसु नक्षत्रका निषेध है वह निर्मूल है । और कोई पुनर्वसुका निषेध सामवेदियोंके विषयमें कहते हैं । व्यतीपात, परिघ, वैधृति इनके अर्द्धभाग और विष्कम्भआदिकी निषिद्ध घडि-योंके विषे, भद्रा और ग्रहणके विषे उपनयनकर्म वर्जित हैं ॥

अथ लग्ने ग्रहबलम् ।

"व्रते ग्राह्या द्वादशाष्टषड्वर्ज्याः शुभखेचराः ॥ खलास्त्र्यायारिगाश्चंद्रः शुक्रगः कर्कगस्तनौ ॥ क्वचित्सूर्यस्तनौ श्रेष्ठोऽष्टमे वर्ज्योऽखिलग्रहः ॥ लग्नेशः शुक्रचंद्रौ च षष्ठे वर्ज्याः सितोंत्यगः ॥ लग्ने चंद्रखलाश्चैवेंदुर्वर्ज्यो द्वादशाष्टमे ॥ पंचेष्टग्रहहीनं च लग्नं सर्वत्र वर्जयेत् ॥ तुलामिथुनकन्याख्या धनुर्वृषझषाह्वयाः ॥ नवमांशाः शुभाः प्रोक्ताः कर्कांशं वर्जयेद्व्रते ॥" षड्वर्गशुद्ध्यादिकमिष्टकालसाधनादिविचारश्च ज्योतिर्ग्रंथेभ्यो ज्ञातव्यः ॥ मातरि रजस्वलायां मातुलज्येष्ठभ्रात्रादीनां पित्रसान्नि-ध्यात्कर्तॄणां पत्न्यां रजस्वलायां च मौंजीविवाहादि न कार्यम् ॥ नांदीश्राद्धोत्तरं मातृरजसि भ्रात्रादिकर्त्रंतरसत्त्वेपि संनिहितमुहूर्तांतरालाभे शांतिं कृत्वा कार्यम् ॥ अन्यथा मुहूर्तांतरे एव नांदीश्राद्धोत्तरं मातुलादिकर्तॄणां पत्नीरजोदोषे आरब्धत्वा-च्छांतिं विनैव कार्यम् ॥ मौंजीविवाहोत्तरं मंडपोद्वासनात्प्राक् मातृरजोदोषेपि शांतिः कार्या मंगलस्यासमाप्तत्वादिति मुहूर्तचिंतामणिटीकायाम् ॥ प्रारंभा त्प्रागपि रजोदोषे मुहूर्तांतरालाभे शांतिं कृत्वातिसंकटे व्रतबंधादिकं कार्यमिति

कौस्तुभे ॥ शांतिप्रकारश्च ॥ ममामुकमंगले संस्कार्यजननीरजोदोषजनिताशुभफलनिरासार्थं शुभफलावाप्त्यर्थं श्रीपूजनादिशांतिं करिष्य इति संकल्प्य माषसुवर्णनिर्मितां लक्ष्मीं श्रीसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य स्वगृह्योक्तविधिना श्रीसूक्तेन प्रत्यृचं पायसं हुत्वा कलशोदकेनाभिषिच्य विष्णुं स्मृत्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यादिति ॥ प्रारंभोत्तरं सूतकप्राप्तौ एकोदरयोः समानसंस्कारे प्रेतकर्मासमाप्तौ च चौलप्रकरणे उक्तम् ॥ विशेषस्तु वक्ष्यते ॥ अथ पदार्थसंपादनम् ॥ कौपीनं प्रावारार्थं कार्पासजमहतं संपाद्यम् ॥ ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं वस्त्रमहतसंज्ञम् ॥ प्रावारार्थमजिनं वा ॥ तच्च त्र्यंगुलं चतुरंगुलं वा बहिर्लोमाखंडं त्रिखंडं वाष्टचत्वारिंशदंगुलं धार्यम् ॥ त्रिखंडपक्षे चतुर्विंशत्यंगुलाष्टांगुलषोडशांगुलाः क्रमेण त्रयः खंडाः ॥ कार्पासं यज्ञोपवीतम् ॥ तन्निर्माणप्रकारः ॥ ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्त्रीभिर्विधवादिभिश्च निर्मितं सूत्रं ग्राह्यम् ॥ संहतचतुरंगुलिमूलेषु षण्णवत्या सूत्रमावेष्ट्य तत्त्रिगुणीकृत्योर्ध्ववृत्तं वलितं कृत्वा पुनरधोवृत्तरीत्या त्रिगुणीकृतं तत्सूत्रं नवतंतुकं संपद्यते ॥ तत्त्रिरावेष्ट्य दृढग्रंथिं कुर्यात् ॥ "स्तनादूर्ध्वमधोनाभेर्न धार्यं तत्कथंचन ॥ विच्छिन्नं वाप्यधो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत् ॥ सिद्धे मंत्राः प्रयोक्तव्याः" इति न्यायेन सिद्धं यज्ञोपवीतं त्रिगुणीकरणादिमंत्रैरभिमंत्रितं यज्ञोपवीतं परममिति मंत्रेण धारयेत् ॥ तद्यथा ॥ गायत्र्या त्रिगुणीकृत्यापोहिष्ठेति तिसृभिः प्रक्षाल्य पुनर्गायत्र्या त्रिगुणीकृत्य ग्रंथौ विष्णुब्रह्मरुद्रान्नमेत् ॥ केचिन्नवतंतुषु नवदेवतान्यासमाहुः ॥ ततो गायत्र्या दशवारमभिमंत्रिताभिरद्भिर्यज्ञोपवीतं प्रक्षाल्योदुत्यमिति तृचेन सूर्याय प्रदर्श्य यज्ञोपवीतमिति मंत्रेण प्रथमं दक्षिणबाहुमुद्धृत्य पश्चात्कंठे धारयेदिति ॥ "उपवीतं ब्रह्मसूत्रं प्रोद्धृतं दक्षिणे करे ॥ प्राचीनावीतमन्यस्मिन्निवीतं कंठलंबितम् ॥" चितिकाष्ठचितिधूमचांडालरजस्वलाशवसूतिकास्पर्शे स्नात्वा यज्ञोपवीतत्यागः ॥ कंठविलंबितत्वाद्यकृत्वा मलमूत्रोत्सर्गे च त्यागः ॥ मासचतुष्टयोत्तरं च यज्ञोपवीतत्यागः ॥ केचिज्जननशावाशौचयोरंतेपि तत्त्यागमाहुः ॥

अब लग्न और ग्रहके बलको कहते हैं । कि, उपनयनके विषे शुभग्रह जो बारहवें, छठे, आठवें स्थानपर न होय तो शुभ है। और पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे भवनमें हों और चन्द्रमा शुक्लपक्षमें कर्कराशि वा लग्नमें हो और कहीं सूर्य भी तनु (लग्न) भवनका श्रेष्ठ होताहै । परन्तु आठवें स्थानपर सम्पूर्ण ग्रह वर्जित हैं । लग्नका स्वामी और शुक्लपक्षका चन्द्रमा ये छठे भवनमें वर्जित हैं। और शुक्र बारहवें भवनका, चन्द्र और पापग्रह ये लग्नभवनके तथा बारहवें, आठवें भवनका चन्द्रमा वर्जित है । और जो पांचों इष्टग्रहों (शुभग्रहों)से रहित हो उसको सदैव वर्ज दे । तुला, मिथुन, कन्या, धन, वृष, मीन इनका नवांश श्रेष्ठ होताहै । और कर्कके नवांशको इस उपनयनमें सदैव वर्ज दे । और षड्वर्ग (त्रिंशांशक

आदि) आदिकी शुद्धि और इष्टकाल साधनेकी विधि ये ज्योतिषक मुहूर्तचिन्तामणिआदि ग्रन्थसे समझनी । माता रजस्वला हो वा पिताके समीप न होनेपर मामा वा ज्येठा भाई जनेऊ कराते होयँ तो उनकी स्त्री रजस्वला होयँ तो मौंजीबन्धन और विवाहआदि कर्म न करना । और जो यद्यपि भाईआदि करानेवाले हों तोभी जो नांदीश्राद्ध किये पीछे माता रजस्वला होजाय तो जो समीप कोई मुहूर्त्त न बनै तो शांतिकर्म करके जनेऊआदि करना नहीं तो अन्य मुहूर्त्तमेंही करै । और जो नांदीश्राद्ध कियेपीछे मामाआदि जो जनेऊ करानेवाले हैं उनकी स्त्री रजस्वला होजाय तो कार्यके आरम्भ होजानेसे शान्तिके विनाभी करले । और यज्ञोपवीत और विवाहसे पीछे और मण्डपके उद्वासन (दूर करना) से पूर्व जो रजोदोष होजाय तोभी शांति करनी । क्योंकि, तबतक मंगलकार्यकी समाप्ति नहीं हुई यह बात मुहूर्तचिन्तामणिकी टीकामें लिखी है । और कौस्तुभग्रन्थमें यह लिखाहै कि, प्रारम्भसे पूर्वभी रजोदोष होजाय तोभी जो अतिसंकट होय और मुहूर्त्त कोई अन्य न मिलै तब शान्तिकर्म करके जनेऊ करना । उस शान्तिका प्रकार यह है कि, मेरे इस (जनेऊ आदि जो हो) मंगलमें जो मेरे पुत्रके संस्कारमें मेरी स्त्रीका रजोदोष होगया उससे उत्पन्नहुए अशुभ फलकी निवृत्तिके लिये और शुभफलकी प्राप्तिके लिये श्रीपूजन और शांतिकर्मको करताहूं, यह संकल्प करके एक मासेभर सोनेकी रचीहुई प्रतिमाको श्रीसूक्त (हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजामित्यादि) को पढकर षोडशोपचारोंसे पूजन करै । फिर अपने गृह्यसूत्रमें कही विधिसे श्रीसूक्तकी एक एक ऋचासे पायस (खीर) की आहुति देकर और कलशके जलसे अभिषेक करके विष्णुका स्मरण किये पीछे कर्मको ईश्वरके अर्पण करै । प्रारम्भ किये पीछे सूतक होजाय वा एक उदरसे पैदा हुओंका एकवार संस्कार और जो प्रेतकर्म समाप्त न हुआ हो इन सब विषयमें निश्चय चौलप्रकरणमें कह आये । विशेष अगाडी कहेंगे । अब पदार्थोंको कहते हैं । कौपीन, ओढनेका कपडा ये दोनों पदार्थ और कपास अर्थात् सूतका और कहींसे फटा न हो ऐसा अहतवस्त्र; अहत वह होताहै कि, जो कुछ धुलाहो नवा और सुफेद जिसका वर्ण हो और दोनोंतरफ जिसके छोर हों । अथवा प्रावारके लिये मृगचर्मको मंगाले । वह मृगचर्म तीन वा चार अंगुल हो, बाहर जिसके लोम हों, कहींसे फटी न हो अथवा तीन जिसके खण्ड हों ऐसी अडतालीस ४८ अंगुलकी धारण करै । त्रिखण्डपक्षमें चौबीस अंगुलका एक खण्ड, एक आठ अंगुल और एक सोलह अंगुल इसप्रकार तीन खण्ड समझने । यज्ञोपवीत सूतका हो उसके बनानेका प्रकार यह है कि, ब्राह्मण तो जो ब्राह्मणस्त्री हो वा विधवा आदिने सूत काताहो उसे ग्रहण करै । उस सूत्रको चार अंगुलियोंको मिलाकर छानवें ९६ बेर उनपर सूत्रको लपेटै । फिर उसे त्रिगुणा करै । फिर उसको गोल गोल बटडालै । फिर उसे अधोवृत्तरीतिसे तिगुना करै इसप्रकार वह सूत्र नौ तागोंका होजाता है । फिर उसे तीन लड करके दृढ ग्रन्थिसे युक्त करै । जो स्तनोंसे ऊंचा हो वा नाभिसे नीचा हो ऐसे जनेऊको कदाचित् न धारै । जो टूटजाय वा नीचे आजाय और जो भोजन किये पीछे बनाया हो उसे त्याग दे । जब यज्ञोपवीत बनचुकै तब मन्त्रोंको प्रयुक्त करै । इस न्यायसे जो यज्ञोपवीत सिद्ध होचुका हो अर्थात् तिलडआदि करनेके मन्त्रोंसे जिसको अभिमन्त्रित करलिया हो उसको 'यज्ञोपवीतम्परमम्प०' इस मन्त्रसे धारण करै । वह इसप्रकार समझना कि, गायत्रीमन्त्रसे तिगुना करके और 'आपोहिष्ठा मयोभुवः०' इन तीन ऋचाओंसे जलसे धोकर फिर

गायत्रीसे तिगुना करै । ग्रन्थिके विषे विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र इनको नमस्कार करै । कोई तो नौ तन्तुओंके विषे नौ देवताओंका न्यास कहते हैं । फिर गायत्रीसे दशबार पढेहुए जलसे यज्ञोपवीतको धोकर और 'उदुत्यं जातवेदसं०' इन तीन ऋचाओंसे सूर्यको दिखाकर 'यज्ञोपवीतं०' इस मन्त्रसे पहिले दक्षिण बाहुको उठाकर पीछे कण्ठमें धारण करै । जो यज्ञोपवीत दक्षिण हाथके ऊपर धारण कियागया वह उपवीत और वामहाथके ऊपर हो वह प्राचीनावीत और जो कण्ठमें कण्ठीकी समान लटका कियाहो वह निवीत होताहै । चिताका काष्ठ वा चिताका धूवां, चाण्डाल, रजस्वला, मुर्दा, सूतिका स्त्री इनके साथ स्पर्श होजाय तो स्नान करके यज्ञोपवीतको त्याग दे । कानपर विना चढाये मल मूत्रका त्याग करै तो यज्ञोपवीतको त्यागदे । चारमाससे पीछे यज्ञोपवीतको त्याग दे । और जन्मसूतक और मरणसूतकके अन्तमेंभी त्याग करना कहतेहैं ॥

अथ जीर्णयज्ञोपवीतत्यागमंत्रः ।

समुद्रं गच्छ स्वाहेति मंत्रेण सप्रणवव्याहृतिभिर्वा जीर्णयज्ञोपवीतत्यागः ॥

अब जो यज्ञोपवीत जीर्ण होगया हो उसके त्यागनेके मंत्रको कहते हैं । कि, 'समुद्रं गच्छ स्वाहा' इस मंत्रसे अथवा "ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यम्" इन ॐकारसहित व्याहृतियोंसे जीर्णयज्ञोपवीतका त्याग करै ॥

अथ यज्ञोपवीतनाशे प्रायश्चित्तम् ।

यज्ञोपवीतं प्रमादाद्धृतं चेत्तूष्णीं लौकिकं धृत्वा मनोज्योतिरिति अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ॥ वायो व्रतपते० आदित्य व्रतपते० इत्यादिमंत्रचतुष्टयेन चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा विधिवन्नूतनं धारयेत् ॥ अथवा यज्ञोपवीतनाशजन्यदोषनिरासार्थं प्रायश्चित्तं करिष्ये इति संकल्प्य आचार्यवरणाग्निप्रतिष्ठाद्याज्यभागांते सवितारं गायत्र्या तिलैराज्येनाष्टोत्तरशतं सहस्रं वा जुहुयात् ॥ नूतनं धृत्वातिक्रांतसंध्याद्याचरेदिति ॥ यज्ञोपवीतहीनः क्षणं तिष्ठेच्चेच्छतगायत्रीजपः ॥ यज्ञोपवीतं विना भोजने विण्मूत्रकरणे वा गायत्र्यष्टसहस्रं जपः ॥ वामस्कंधात्कूर्परे मणिबंधांते वा पतिते यथास्थानं धृत्वा त्रीन् षड्वा यथाक्रमं प्राणायामान्कृत्वा नवं धारयेत् ॥ कोपादिना स्वयं यज्ञोपवीतत्याग पूर्ववल्लौकिकं धृत्वा प्रायश्चित्तांते नवं धारयेत् ॥ ब्रह्मचारिणैकं यज्ञोपवीतम् ॥ स्नातकस्य द्वे ॥ उत्तरीयाभावे तृतीयकम् ॥ जीवत्पितृकेण जीवज्ज्येष्ठभ्रातृकेण चोत्तरीयं तत्स्थाने तृतीयं यज्ञोपवीतं वा न धार्यम् ॥ आयुष्कामस्य त्र्यधिकानि बहूनि यज्ञोपवीतानि ॥ "अभ्यंगे चोदधिस्नाने मातापित्रोर्मृतेहनि ॥ तैत्तिरीयाः कठाः कण्वाश्चरका वाजसनेयिनः ॥ कंठादुत्तार्य सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः ॥" अन्ययाजुषैर्बह्वृचैः सामगैश्च कंठादुत्तारणे तत्त्यक्त्वा नवं धार्यम् ॥

अब जो यज्ञोपवीतका नाश हो अर्थात् बिलकुल गलेमें न रहै तो उसका प्रायश्चित्त कहते हैं । कि, जो प्रमादसे यज्ञोपवीत नष्ट होजाय तो तूष्णीं होकर लौकिक यज्ञोपवीतको धारण

करके "मनोज्योतिः०, अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मेराध्यतां० वायो व्रतपते०
तथा आदित्य व्रतपते०"इत्यादि चार मंत्रोंसे चार घीकी आहुति देकर विधिपूर्वक नवीन यज्ञो-
पवीतको धारण करै। अथवा मैं यज्ञोपवीतके नाशसे उत्पन्नहुए पापके दूर करनेके लिये प्राय-
श्चित्तको करताहूं यह संकल्प करके आचार्यका वरण, अग्निका स्थापन और आज्यभाग किये
पीछे गायत्रीमंत्रको पढकर सूर्यके लिये तिलोंकी १०८ वा १००० आहुति दे । और नवीन
यज्ञोपवीतको धारण करके जो संध्याआदिका अवलंघन होगया हो उनको करै। जो यज्ञो-
पवीतसे रहित क्षणमात्रभी रहै तो सौ १०० गायत्रीका जप करै। और जो यज्ञोपवीतके
विना भोजन करै वा विष्ठा मूत्रका त्याग करै तो आठ हजार ८००० गायत्रीका जप करै।
वा कंधासे कोहनीपर वा पौंहचेपर आन पडै तो फिर उसको यथास्थान रखकर कोहनीपर
तीन और पौंहचेपर गिरा हो तो छः प्राणायाम करके नवेको धारण करै। और जो क्रोध-
आदिसे आपही यज्ञोपवीतको त्याग दिया होय तो पूर्वकी समान लौकिक जनेऊको पहिरकर
प्रायश्चित्तके अन्तमें नवीनको धारण करै । ब्रह्मचारीको एक, स्नातक (जो ब्रह्मचर्य करके
ग्रहस्थाश्रममें आनेवाला हो) को दो, जो अंगोछा न होय तो तीन जनेऊ धरने । जिसका
पिता वा ज्येठा भाई जीता हो उसने दुपट्टा वा तृतीय यज्ञोपवीत धारण नहीं करना । और
जो अवस्थाकी कामनावाला हो उसने तीनसेभी अधिक बहुतसे यज्ञोपवीत धारण करने।
तैत्तिरीयशाखा, कठशाखावाले, कण्व, चरक और वाजसनेयी ये अभ्यंग, समुद्रमें स्नान, मा-
ता पिताका मरणदिन इनमें ब्रह्मसूत्रको कंठसे उतारकर प्रक्षालन करै, और अन्य यजुर्वेदी,
बहूवृच और सामवेदी जो कण्ठसे यज्ञोपवीतको उतारलें तो नवीन धारण करै ॥

अथ मेखला।

"मौंजी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ॥ त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पंचभिरेव च ॥ मुंजाभावे तु कर्तव्या कुशाश्मंतकबल्वजैः ॥ ब्राह्मणस्य भवेद्दंडः पालाशः केशसंमितः ॥ सर्वेषां यज्ञियो वा स्यादूर्ध्वं नासाग्रसंमितः ॥" बटुहस्तेन चतुर्हस्ता हस्तोच्छ्रिता चतुरस्रा सोपानांकिता प्रागुदक्प्रवणा कदलीस्तंभाद्यलंकृता वेदिः संपाद्या ॥ अथोपनयनांतर्गतपदार्थेषु विशेष उच्यते ॥ वासःपरिधानोत्तरं लौकिकमाचमनम् ॥ यज्ञोपवीतधारणोत्तरं तु यथाविधि ॥ आचमनविधिर्वक्ष्यते ॥ एवमाज्यपात्रादुत्तरभागे बटुमाचमय्य प्रणीतापश्चिमदेशरूपतीर्थेन प्रवेश्याचार्याग्न्योर्मध्येन नीत्वाचार्यदक्षिणत उपवेशयेत्॥ ततो बर्हिरास्तरणादिस्रुवसंमार्गांते यज्ञोपवीतदानाद्याचमनांतम् ॥ ततः शिष्यांजलौ जलावक्षारणादिसमिदाधानांतं गायत्र्युपदेशांगं बटोः शुचित्वसिद्ध्ये अग्नये समिधमिति मंत्र एकश्रुत्या प्रयोक्तव्यः ॥ ततः परिदानाभिवादनांते आचारप्राप्तं गायत्रीपूजनं कृत्वाऽग्नेरुत्तरदेशे गायत्र्युपदेशः कार्यः ॥अवक्षारणमप्युत्तरदेशे उक्तम् ॥ प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टाय बटवे गायत्रीमुपदिशेत् ॥

अब मेखलाके विषयमें कहते हैं। मेखला मूंजकी जेवरीको बराबर तिलडी करके बडी उत्तम ब्राह्मणको बनानी। और तीन, पांच वा एक ग्रंथि लगावै और जो मूंज न होय तो

कुशा, अश्मन्तक (बहेडा) और बल्बज इनकी बनावै । और ब्राह्मणको केशपर्यंत ढाकका दण्ड ग्रहण करना । अथवा समस्तद्विजोंको यज्ञिय वृक्षका नासिकापर्यंत दण्ड होना चाहिये । और बटुके हाथसे तृणको मांपकर चार हाथ और एक हाथ ऊंची, चौकोर सीढी जिसमें लगी हो, पूर्व और उत्तरकी तरफ प्रवण (नीची) हो, चारों तरफ केलाके खंभ हों ऐसी वेदीको बनावै । अब यज्ञोपवीतके पदार्थोंके विषे विशेष कहते हैं । वस्त्रोंके पहिरनेके अनन्तर आचमन करै। और यज्ञोपवीत धारण किये पीछे जहा विधि आवै वहां आचमन करना। आचमनकी विधि आगे कहेंगे । इसी प्रकार घीके पात्रकी उत्तरकी तरफ बटुको आचमन कराकर और प्रणीताके पश्चिमकी तरफसे वेदीके भीतर प्रविष्ट कराके और आचार्य अग्निके बीचमें होकर निकालकर आचार्यकी दक्षिणकी तरफ बैठावै। फिर बर्हियोंको आस्तरणसे लेकर स्रुवके संमार्जनपर्यंत कर्मको करके यज्ञोपवीतके देनेसे लेकर आचमनपर्यंत कर्मको करै । फिर शिष्यकी अंजलिमें जलावक्षारण (जल देना) रूप कर्मसे लेकर समिधोंके आधानपर्यंत कर्मको करै । फिर गायत्रीमंत्रके उपदेशका एक अंगरूप 'अग्नये समिधम्०' इस मंत्रका बटुकी शुद्धिके लिये एकश्रुतिस्वरसे उच्चारण करना । फिर अभिवादन किये पीछे जो अपने कुलाचारसे प्राप्त होय तो गायत्रीका पूजन करके अग्निकी उत्तरके तरफ गायत्रीका उपदेश करै । जलका अवक्षारणभी अग्निसे उत्तरकी तरफही कहाहै । आचार्य पूर्वदिशाकी तरफ मुखकरके बटुको पश्चिमाभिमुख बैठाकर गायत्रीका उपदेश करै ॥

अथोपसंग्रहणप्रकारः ।

उपसंग्रहणं नामामुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोमुकशर्माहं भो अभिवादय इत्युक्त्वा दक्षिणोत्तरकर्णौ वामदक्षिणपाणिभ्यां स्पृष्ट्वा दक्षिणहस्तेन गुरोर्दक्षिणपादं वामेन वामं स्पृष्ट्वा शिरोवनमनमिति ॥ एवं गुरुषु मातापित्रादिषु च अभिवादनपूर्वकपादस्पर्शात्मकमुपसंग्रहणम् ॥ वृद्धतरेषु त्वभिवादनमात्रम् ॥ वृद्धेषु नमस्कारः ॥

अब उपसंग्रहणका प्रकार दिखाते हैं । उपसंग्रहण नाम उसका है कि, अमुकप्रवर और अमुकगोत्रवाला और अमुकशर्मा मैं आपको नमस्कार करताहूं ऐसे कहकर दक्षिण और उत्तर कानको वांये और दाहिने हाथसे छूकर फिर दक्षिण हाथसे गुरुके दक्षिण चरण और वामें हाथसे वामें चरणको छूकर शिरसे नमस्कार करना । इसीप्रकार गुरु और माता पिता आदिकाभी नमस्कारपूर्वक चरणोंका छूनाभी उपसंग्रहण है । और जो अत्यंत वृद्ध हैं उनको तो अभिवादनमात्र करै । और वृद्धोंको नमस्कार करै ॥

अथाभिवादननिषेधः ।

अशुचिं वमंतमभ्यक्तं स्नानं कुर्वंतं जपादिरतं पुष्पजलभैक्षादिभारवाहं न नमेत् ॥ तन्नमने उपवासः ॥ उपवासत्रयमन्यत्र ॥ शूद्रनतौ त्रिरात्रम् ॥ अंत्यजे कृच्छ्रं देवतागुरुयतिनमनाकरणे उपवासः ॥ अथ प्रत्यभिवादनम् ॥ तत्रांत्यस्वरः प्लुतः कार्यः ॥ तद्यथा ॥ आयुष्मान् भव सौम्य देवदत्ता ३ ॥ एकारौकारांते नाम्नि हरा ३ इ शंभा ३ उ इति संध्यक्षरविश्लेषेण पूर्वभागाकारप्लुत इति ॥ अनुप्रवचनीयार्थ-

भिक्षायां भिक्षां भवान्ददातु भिक्षां भवती ददात्विति वा भवच्छब्दमध्यकभिक्षा-वाक्यप्रयोगः ॥ अन्यभिक्षायामादावंते वा भवच्छब्द इति ॥

अब अभिवादनका निषेध कहते हैं । कि, जो शुद्ध न हो, वमन करता हो, शरीरसे जिसने उवटना कररक्खाहो, स्नान कर रहा हो, जपआदिमें तत्पर हो, पुष्प, जल वा भिक्षाआदिके भारको लाता हो उसको नमस्कार न करै । यदि इनको नमस्कार करै तो उपवास करै । और अन्य ग्रंथमें तीन उपवास कहे हैं । शूद्रको नमस्कार करनेमें तीन रात उपवास करना । चाण्डालके करनेमें कृच्छ्रव्रत, देवता,गुरु, संन्यासी इनको नमस्कार न करै तो उपवासकरना । अब प्रत्यभिवादको कहते हैं, तिसमें अन्त्यका स्वर प्लुत (ऊंचे स्वर) उच्चारण करना । जैसे कि, हे देवदत्त ३ तू अवस्थावाला हो । और कि, जिस नामके अन्तमें एकार वा ओकार हो जैसे कि, हरे ! शम्भो ! इत्यादि तो इनके संधिसे उत्पन्नहुए अक्षरको जुदा २ बोलकर पूर्व-भागके अकारको प्लुत बोलना । जैसे कि, (हरा ३ इ शम्भा ३ उ) । जो वेदाध्ययनके लिये भिक्षा मांगने जायँ तो भिक्षा मांगनेमें 'भिक्षां भवान्ददातु, भिक्षाम्भवती ददातु' इसप्रकार 'भवत्' इस शब्दको बीचमें देकर वाक्यका उच्चारण करना । और अन्य भिक्षाओंमें आदि वा अन्तमें भवत्शब्दको लगावै ॥

अथ विनायकशांतिविचारः ।

अथोपनयनविवाहादौ निर्विघ्नफलप्राप्त्यर्थमुपसर्गनिरासाय वा सपिंडमरणादि-निमित्तकप्रातिकूलनिवृत्त्यर्थं वा विनायकशांतिः कार्या ॥ तत्र कालः ॥ शुक्लपक्षच-तुर्थी गुरुवारः पुष्यश्रवणोत्तरारोहिणीहस्ताश्विनीमृगनक्षत्राणि शस्तानि ॥ उपनय-नादौ तु प्रधानकालानुरोधेन यथासंभवकालो ग्राह्यः ॥ तत्रामुककर्मणो निर्विघ्न-फलसिद्ध्यर्थमिति वा उपसर्गनिवृत्त्यर्थमिति वामुकसपिंडमरणनिमित्तकाशु-चित्वप्रातिकूल्यनिरासार्थमिति वा संकल्प ऊह्यः ॥ अवशिष्टप्रयोगोन्यत्र ज्ञेयः ॥

अब विनायकशान्तिको कहते हैं । कि, अब जनेऊ वा विवाहआदिमें निर्विघ्नफलकी प्राप्ति-के लिये अथवा विघ्नकी शांतिके लिये वा सपिण्डके मरणआदिमें जो कुछ विपरीत हो उसकी शांतिके लिये विनायक (गणेश) की शांतिको तथा उसके समयको कहते हैं । कि, शुक्लपक्षकी चौथ, बृहस्पतिवार, पुष्य, श्रवण, तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, मृगशिर ये नक्षत्र अतिउत्तम हैं। और यज्ञोपवीतआदिमें प्रधान (मुख्य) कार्यके अनुसार जैसा समय मिलै वैसाही ग्रहण करना । तिस शांतिमें जो कर्म हो उस कर्मका और अपने मनोरथके अनुसार निर्विघ्नफलकी प्राप्तिके लिये वा विघ्नकी शांतिके लिये वा अमुकमनुष्य (जो मरगया हो) की मरणसे अशुद्धि और प्रतिकूलताकी हानिके लिये इसप्रकार कर्म और मनोरथके अनुसार संकलपमें ऊह करना । और अवशिष्ट प्रयोग अन्यत्र समझना ॥

अथ ग्रहमखविचारः ।

विवाहोपनयनादिष्वभ्युदयकर्मस्वादौ ग्रहयज्ञं कुर्यात् ॥ श्राद्धातिरिक्तेष्वनाभ्यु-दयिकेष्वपि शांत्यादिकर्मसु ग्रहानुकूल्यकामो ग्रहयज्ञं कुर्यात् ॥ अरिष्टनिरासार्थमुत्पा-तेषु शांतिस्थानेष्वप्रधानोपि ग्रहमख उक्तः ॥ प्रधानकर्मणः पूर्वमव्यवहिते व्यव-

हिते वा काले कुर्यात् ॥ व्यवहितपक्षे सप्तदिनाधिकव्यवधानं न कार्यं प्रतिग्रहं दशावरप्रधानाहुतिसंख्यायामेक एव ऋत्विक् ॥ दशाधिकपंचाशत्पर्यंतसंख्यायां चत्वार ऋत्विजः ॥ तत ऊर्ध्वं शतावरहोमेष्टौ ऋत्विजो नवम आचार्यः ॥ तत्राचार्य आचार्यकर्म कृत्वा आदित्याय जुहुयात् ॥ अष्टभ्यः सोमादिभ्योष्टौ ऋत्विजो जुहुयुः ॥ ऋत्विक्चतुष्टयपक्षे द्वाभ्यां ग्रहाभ्यामेकैको जुहुयात् ॥ आचार्योर्काय ॥ ताम्रादिमयीषु प्रतिमासु सर्वासु सौवर्णीषु वा फलेष्वक्षतपुंजेषु वा आदित्यादिपूजनम् ॥

अब ग्रहहोमके विचारको कहते हैं । कि, विवाह, यज्ञ, उपनयनआदिमें मांगलिककर्मोंमें प्रथम ग्रहयज्ञको करै । और श्राद्धसे अतिरिक्त जो मांगलिक नहीं हैं उन शान्तिआदि कर्मोंमें भी ग्रहोंकी अनुकूलताकी कामनावाला पुरुष ग्रहयज्ञको करै । अरिष्टकी शान्तिके लिये उत्पात और शान्तिस्थानोंमें गौण भी ग्रहयज्ञ कहा है । वह यज्ञ प्रधानकर्मसे प्रथम वा जिससमय प्रधानकर्म करै उससे पहिले कालमें ग्रहयज्ञको करै । और जो व्यवधान करना होय तो सात दिनसे अधिककालका व्यवधान न करै । जो एक एक ग्रहको दश २ आहुति देनी होयँ तो एक ऋत्विज और जो दशसे अधिक पचासतक दी जायँ तो चार ऋत्विज और पचाससेभी अधिक सौतक दी जायँ तो आठ ऋत्विज और नौमाँ आचार्य होना चाहिये। तिसमें आचार्य अपने योग्य कर्मोंको करके आदित्यकोही आहुति दे । और आठ चन्द्रआदि ग्रहोंको आठों ऋत्विज आहुति दें । और जो चार ऋत्विज होयँ तो एक २ ऋत्विज दो दो ग्रहोंको आहुति दें । और आचार्य सूर्यको दे । और ताम्र आदिकी बनी प्रतिमा वा फल वा सबकी सुवर्णकी प्रतिमा वा चाँवलोंकी ढेरी लगाकर उनमें आदित्यआदिका पूजन करै ॥

अथ होमसंख्यया कुंडादिमानम् ।

होमसंख्यानुसारेण कुंडस्य स्थंडिलस्य वा ग्रहवेद्याश्च हस्तादिमानम् ॥ तत्र प्रधानांगाहुतीनां पंचाशदवरसंख्यात्वे रत्निमितं कुंडम् ॥ शतावरत्वे अरत्निमितम् ॥ सहस्रावरत्वे हस्तमितम् ॥ अयुतादिहोमे हस्तद्वयम् ॥ लक्षहोमे चतुर्हस्तम् ॥ तत्र कृतमुष्टिकरो रत्निः मुक्तकनिष्ठिकः करः अरत्निः ॥ चतुर्विंशत्यंगुलो हस्तः ॥ यवोनचतुस्त्रिशदंगुलानि हस्तद्वयम् ॥ अष्टचत्वारिंशदंगुलानि हस्तचतुष्टयम् ॥ कुंडे मेखलायोनिनाभिखातादिमानं ग्रंथांतरेभ्यो ज्ञेयम् ॥ इदं कुंडादिमानं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ समिच्चर्वाज्यं द्रव्यम् ॥ "अर्कः पलाशः खदिरश्चापामार्गोथ पिप्पलः ॥ औदुंबरः शमी दूर्वा कुशोऽर्कादेः क्रमात्समित् ॥" केचिंत्तिलानपि आहुः ॥ अर्कादिप्रधानहोमसंख्यादशांशेनाधिदेवताप्रत्यधिदेवतानां होमः ॥ अधिदेवताद्यर्धसंख्यया क्रतुसंरक्षकक्रतुसाद्गुण्यदेवतानाम् ॥ शांत्यंगभूते ग्रहयज्ञे बलिदानं कुर्वंति ॥ अन्यत्र ग्रहमखे बलिदानं न कुर्वंति ॥ प्रधानभूतायाः एकाहुतेरेकविप्रभोजनं श्रेष्ठम् ॥ शताहुतेरेकविप्रभोजनं मध्यमम् ॥ सहस्राहुतेरेकविप्रभोजनं जघन्यम् ॥ सुविस्तरप्रयोगादिकमन्यत्र ॥ ॥ इति ग्रहयज्ञः ॥

अब होमकी संख्याके अनुसार कुण्डआदिका प्रमाण कहते हैं । होमकी संख्याके अनुसार कुण्ड, स्थण्डिल वा ग्रहोंकी वेदी हस्तआदि प्रमाणकी बनानी । तहां जो प्रधान और गौणकर्मोंकी आहुति पचासतक होंयँ तो रत्निप्रमाणका कुंड बनाना । सौतक होंयँ तो अरत्नि, हजारतक होंयँ तो हाथभर, दश हजारतक होंयँ तो दो हाथभर, लक्ष आहुति होंयँ तो चार हाथ भरका कुंड बनाना। मुट्ठी बँधे हाथको रत्नि और कन अंगुलीको फैलाकर हाथको अरत्नि, चौबीस अंगुलको हस्त, एक जौ कम चौतीस अंगुलको दो हाथ, अडतालीस अंगुलको चार हाथ कहते हैं । कुंडमें, मेखला, योनि और नाभिके खात (गट्ठे) के प्रमाणको अन्य ग्रन्थोंसे समझना । यह कुंडआदिका प्रमाण सर्वत्र समझना । समिध, चरु, घी ये होमके द्रव्य हैं । सूर्य आदिके होममें क्रमसे इनकी लकडी समझनी कि, आक, ढाक, खैर, ओंगा, पीपल, गूलर, छोंकर, दूब, कुशा । कोई तिलोंको भी कहते हैं । सूर्य आदिके प्रधान होमकी संख्या जितनी हो उसके दशांशसे अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताओंका होम करै । और अधिदेवताओंकी आधी संख्यासे क्रतुकी रक्षा करनेवाले जो क्रतुसाद्गुण्य देवता हैं उनका होम करै । शान्तिका अंग जो ग्रहयज्ञ है उसमें बलिदान भी करना । और अन्य ग्रहयज्ञके विषै बलिदान न करै । प्रधान आहुति जिसमें एकहो उसमें एक ब्राह्मणका भोजन श्रेष्ठ और जिसमें सौ (१००) आहुति हों उसमें एक ब्राह्मणका भोजन मध्यम, जिसमें हजार (१०००) आहुति हों उसमें अधम समझना । और अच्छीतरह विस्तारसे प्रयोग आदि अन्यत्र समझना । ग्रहयज्ञ समाप्त हुआ ॥

अथ बृहस्पतिशांतिप्रयोगः ।

कुमारस्योपनयनकाले कन्याया विवाहे वा बृहस्पत्यानुकूल्याभावे शौनकोक्ता शांतिः कार्या ॥ अस्य कुमारस्योपनयने अस्याः कन्यकाया विवाहे वा बृहस्पत्यानुकूल्यसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बृहस्पतिशांतिं करिष्य इति संकल्प्याचार्यं वृणुयात् ॥ स्थंडिलेशान्यां यथाविधि स्थापिते श्वेतकलशे पंचगव्यकुशोदकविष्णुक्रांताशतावरीप्रमुखौषधीप्रक्षेपपूर्णपात्रनिधानांते हरिताक्षतनिर्मितदीर्घचतुरस्रपीठे हैमीं गुरुप्रतिमां प्रतिष्ठाप्य स्थंडिलेग्निस्थापनादि ॥ अन्वाधाने बृहस्पतिमश्वत्थसमिदाज्यसर्पिर्मिश्रपायसैः साज्येन मिश्रितयवव्रीहितिलेन च प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशताहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्याज्यभागांते प्रतिमायां षोडशोपचारैर्गुरुपूजा ॥ तत्र पीतवस्त्रयुग्मपीतयज्ञोपवीतपीतचंदनपीताक्षतपीतपुष्पघृतदीपदध्योदननैवेद्यार्पणांते माणिक्यं सुवर्णं वा दक्षिणां दत्त्वा ग्रहमखोक्तरीत्या कुंभानुमंत्रणांते बृहस्पतिमंत्रेण दधिमध्वाक्तसमिदाज्यगृहसिद्धपायसमिश्रितयवाद्यैर्यथान्वाधानं होमः ॥ होमशेषं समाप्य गंधादिभिर्बृहस्पतिं संपूज्य पीतगंधाक्षतपुष्पयुतताम्रपात्रस्थजलेनार्घ्यं दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः॥ "गंभीरदृढरूपांग देवेज्य सुमते प्रभो ॥ नमस्ते वाक्पते शांत गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ॥" प्रार्थयेत् ॥ "भक्त्या यत्ते सुराचार्य होमपूजादि सत्कृतम् ॥ तत्त्वं गृहाण शांत्यर्थं बृहस्पत

नमोनमः ॥ जीवो बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुरंगिराः ॥ वाचस्पतिर्देवमंत्री शुभं कुर्यात्सदा मम ॥'' इति विसर्जनप्रतिमादानांते कुमारादियुतयजमानाभिषेकः ॥ तत्र मंत्राः ॥ आपोहिष्ठेति तिस्रः तत्त्वायामि० ३ स्वादिष्ठया० ३ समुद्रज्येष्ठाः० ४ इदमापःप्रवहत० १ तामग्निवर्णां० १ याऽओषधीः० १ अश्वावतीर्गोमतीर्न० १ यद्देवादेवहेडनमित्याद्याः कूष्मांडमंत्राः पुनर्मनः पुनरायुरित्यंतास्तैत्तिरीयशाखायां प्रसिद्धाः कौस्तुभादौ लिखिता एतैरभिषिच्य विप्रान् भोजयेदिति ॥ ॥ इति बृहस्पतिशांतिः ॥

अब बृहस्पतिकी शान्तिका प्रयोग कहते हैं । कन्याके विवाह और कुमारके जनेऊमें जो बृहस्पति अनुकूल न होय तो शौनक आदिकी कहीहुई शान्ति करनी । इस कुमारके यज्ञोपवीतके विषे अथवा इस कन्याके विवाहमें बृहस्पतिकी अनुकूलताके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये बृहस्पतिकी शांतिको करताहूं यह संकल्प करके आचार्यका वरण करै । स्थण्डिलकी भूमिसे ईशान दिशामें विधिपूर्वक स्थापन किये श्वेत कलशके विषे पंचगव्य, कुशा, जल, विष्णुक्रान्ता, शतावरीआदि औषधिओंको गेरकर ऊपर पूर्णपात्रको स्थापन करै । फिर हरे चावलोंके बनाये चौकोर आसनपर सुवर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमाका स्थापन और स्थंडिलके विषे अग्निका स्थापन आदि करै । अन्वाधानके विषे बृहस्पतिके लिये पीपल, ढाक, आज्य, घीमिली खीर और घीसे मिले जौ, तिल, चावल इन एक एक द्रव्यकी एकसौ आठ एकसौ आठ आहुति देकर और शेष द्रव्यसे स्विष्टकृत् होमको करै । इत्यादि कर्मके पीछे आज्यभागके अन्तमें प्रतिमाके विषे षोडश उपचारोंसे बृहस्पतिकी पूजा करै । तहां पीत कपडा दो, पीला यज्ञोपवीत, पीला चन्दन, पीले चांवल, पीले पुष्प, घीका दीपक और दधिसे मिला भात और नैवेद्य इनको अर्पण करके मणि वा सुवर्ण दक्षिणा दे । फिर ग्रहयज्ञमें कही रीतिके अनुसार कुम्भका अनुमन्त्रण करके बृहस्पतिके मन्त्रसे दही, सहतसे लिपटी समिधा, घी, घरमें बनाई खीरमें मिले जौआदिसे अन्वाधानके समान होम करै । और होम शेषको समाप्ति करके और गन्धआदिसे बृहस्पतिकी पूजा करके पीला गन्ध, चाँवल और पुष्पोंसे युक्त ताँबेके पात्रमें भरे जलसे अर्घ्य दे । उसका मन्त्र यह है कि, गम्भीर और दृढ जिनका शरीर, देवोंके गुरु ऐसे हे सुमते ! हे प्रभो ! वाणीके पति आपको नमस्कार है, आप अर्घ्यको ग्रहण करो । फिर प्रार्थना करै कि, हे देवताओंके गुरु ! जो होम पूजाआदि भक्तिसे अर्पण किया उस सबको हे बृहस्पते ! शान्तिके अर्थ ग्रहणकरो । जीव, बृहस्पति, सूरि, आचार्य, गुरु, अंगिरा, वाचस्पति, देवमन्त्री इन नामवाले बृहस्पतिदेव मेरे कल्याण करो । इसप्रकार प्रार्थनाके अनन्तर विसर्जन और प्रतिमाके दानके पीछे कुमार आदिसे युक्त यजमानका अभिषेक करै । तिसके मन्त्र ये हैं कि, 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन 'तत्त्वायामि०' तीन 'स्वादिष्ठया०' तीन 'इदमापःप्रवहत०' यह एक 'तामग्निवर्णां०' एक 'याऽओषधीः०, यह एक 'अश्वावतीर्गोमतीर्न०' इत्यादि एक 'यद्देवा देवहेडनम्०' इत्यादि कूष्मांडके मन्त्र इनसे तथा 'पुनर्मनः पुनरायुः०' इनमंत्रोंपर्यंत जो तैत्तिरीयशाखाओंमें प्रसिद्ध हैं ये सब कौस्तुभआदि ग्रथोंमें लिखेहुए हैं इनसे अभिषेक करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ बृहस्पतिकी शान्ति समाप्त हुई ॥

अथोपनयनादौ संकल्पाः।

तत्रोपनयनात्पूर्वेद्युराचार्यो ममोपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये ॥ तथा द्वादशाधिकसहस्रगायत्रीजपमुपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं करिष्ये इति संकल्पयेत् ॥

अब उपनयनआदिके संकल्पोंको कहते हैं। तहां उपनयनसे पहिले दिन आचार्य, मैं अपनेमें उपनयन करनेकी योग्यताकी सिद्धिके लिये तीन कृच्छ्र व्रतोंको उस व्रतके प्रत्याम्नायरूप जो एक गौका मूल्य वा शक्तिके अनुसार चाँदीकी दक्षिणाके दानको करताहूं। तथा बारह अधिक एकहजार (१०१२) गायत्रीमंत्रका जप करताहूं यह संकल्प करै ॥

अथ संस्कारलोपे प्रायश्चित्तम्।

यदि पूर्वसंस्कारा अतीतास्तदा अस्य कुमारस्य पुंसवनादीनामथवा जातकर्मादीनां चौलांतानां संस्काराणां कालातिपत्तिजनितप्रत्यवायपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रतिसंस्कारमेकैकां भूर्भुवःस्वःस्वाहेतिसमस्तव्याहृत्याज्याहुतिं होष्यामीति संकल्प्याग्निस्थापनेध्माधानादिपाकयज्ञतंत्रसहिता वह्निस्थापनाज्यसंस्कारपात्रसंमार्गमात्रसहिता वातीतसंस्कारसमसंख्यसमस्तव्याहृत्याज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ ततोस्य कुमारस्य पुंसवनानवलोभनसीमंतोन्नयनजातकर्मनामकर्मसूर्यावलोकननिष्क्रमणोपवेशनान्नप्राशनचौलसंस्काराणां लोपनिमित्तप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारं पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं चौलस्यार्धं कृच्छ्रं बुद्धिपूर्वकलोपे प्रतिसंस्कारमर्धकृच्छ्रं चूडायाः कृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये ॥ चौलस्योपनीत्या सहकरणस्य कुलधर्मप्राप्तत्वे कालातिपत्तिहोमं चौललोपप्रायश्चित्तं च न कार्यम् ॥ केचित्संस्कारलोपप्रायश्चित्तं बटुना कारयंति ॥ ततो बटुर्मम कामचारकामवादकामभक्षादिदोषपरिहारद्वारोपनेयत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्तं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्ति रजतदानद्वारा आचरिष्ये इति संकल्पयेत् ॥ निष्कं निष्कार्धं निष्कपादं निष्कपादार्धं वा रजतं गोमूल्यं देयं न तु न्यूनम् ॥ अष्टगुंजमाषरीत्या चत्वारिंशन्माषो निष्क इत्युक्तम् ॥ ततः ॥ "प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै ॥ कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्येपि विपश्चितः ॥" इति वचनाज्जातकर्मादिसंस्काराः कार्या न कार्या इति पक्षद्वयम् ॥ तत्र प्रायश्चित्तेन प्रत्यवायपरिहारेपि संस्कारजन्यापूर्वोत्पत्त्यर्थं संस्कारानुष्ठानपक्षे संकल्पः ॥ पत्न्या कुमारेण च सहोपविश्य देशकालौ संकीर्त्यास्य कुमारस्य गर्भांबुपानजनितदोषनिबर्हणायुर्मेधाभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमतिक्रांतं जातकर्म तथा बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणायुरभिवृद्धिव्यवहारासिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर० नामकर्म आयुरभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर०

सूर्यावलोकनमायुःश्रीवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीप० निष्क्रमण-मायुरभिवृद्धिद्वारा श्रीप० उपवेशनं मातृगर्भमलप्राशनशुद्ध्यन्नाद्यब्रह्मवर्च-सतेजइंद्रियायुरभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीप० अन्नप्राशनं चाद्य करिष्ये ॥ बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणबलायुर्वर्चोभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमे० प्रीत्यर्थं चूडाकर्म द्विजत्वसिद्ध्या वेदाध्ययनाधिकारार्थमुपनयनं च श्वः करिष्ये ॥ जातादिसर्वसंस्कारांगत्वेन पुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नांदीश्राद्धं च करिष्ये ॥ उपनयनांगत्वेन मंडपदेवतास्थापनं कुलदेवतास्थापनं च करिष्ये ॥ इति स्वस्वगृह्यग्रंथानुसारेण संकल्प्य नांदीश्राद्धांतं तंत्रेण[1] कृत्वा मंडपदेवतास्थापनादिकं बटुपितृभ्यां सुहृत्कृतवस्त्रदानांतं कृत्वान्नप्राशनांताः संस्कारा यथागृह्यं पूर्वदिने कार्याः ॥ चौलोपनयने परदिने कार्ये ॥ सर्वेषां सद्यःकरणे पूर्वोक्तसंकल्पवाक्यांते उपनयनं चाद्य करिष्य इतिसंकल्पः ॥ संस्काराणामकरणपक्षे चूडाकर्मोपनयने संकल्प्योभयांगत्वेन पुण्याहवाचनं नांदीश्राद्धमुपनयनांगत्वेन मंडपदेवतास्थापनं कुलदेवतास्थापनं च करिष्य इति संकल्पः ॥ नांदीश्राद्धांते पूर्वपूजितमातृकासहितमंडपदेवतास्थापनम् ॥ ततः पूर्वोक्तरीत्या वेदिनिर्माणम् ॥ इति पूर्वदिनकृत्यम् ॥ ततः परदिनेऽतिक्रांतं चौलं कृत्वा पूर्वं जातचौलं त्वभ्यंगस्नानेन स्नापयित्वा मात्रा सह भोजयेत् ॥ तदा ब्रह्मचारिभ्यो भोजनं देयमित्याचारः ॥ ततो देशकालौ संकीर्त्यास्य कुमारस्य द्विजत्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गायत्र्युपदेशं कर्तुं तत्प्राच्यांगभूतं वपनादि करिष्य इति संकल्प्य वपनादि कुर्यात् ॥ मुख्यशिखान्यशिखानां चौले धृतानामत्र वापनम् ॥ ततः स्नातमहतवस्त्रं बद्धशिखं कृतमंगलतिलकं बटुं कुर्युः ॥ मौहूर्तिकं संपूज्य तदुक्ते सुमुहूर्ते आचार्यो वेद्यां प्राङ्मुख उपविष्टोंतःपटमपसार्य बटुमुखमीक्षेत ॥ कृतनमस्कारांते स्वांके कुर्वीत ॥ ततो विप्रा यथाचारं मंत्रैरुभयोः शिरस्यक्षतान् क्षिपेयुः ॥ एवं यथागृह्यमुपनयनप्रयोगं ज्ञात्वानुष्ठेयम् ॥ सर्वत्र बटुना गायत्र्यादिमंत्रान्वाचयन् संधिकृतं वर्णविकारं नान्यथा कुर्यात् ॥ प्रयोगशेषं समाप्य द्वे शते शतं यथाशक्ति वा ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य विप्रेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दद्यात् ॥ ततो ब्रह्मचारी नूतनभिक्षाभाजने मातरं मातृष्वस्रादिकां वा भिक्षां भवती ददात्विति अनुप्रवचनीयार्थं तण्डुलान्याचेत ॥ पितरं भिक्षां भवान् ददात्विति याचेत ॥ भैक्षमाचार्याय निवेद्य मध्याह्नसंध्यामुपास्य गुरुसंनिधावहःशेषं नयेत् ॥ तद्दिने मध्याह्नसंध्या विकल्पितेत्यन्ये ॥ ब्रह्मयज्ञस्तु द्वितीयदिनमारभ्य गायत्र्या कार्यः ॥ अनुप्रवचनीयहोमारंभात्पूर्वं गर्जितवृष्ट्यादिसंभावनायां दिवैव चरुश्रपणांतं कृत्वास्तमिते जुहुयात् ॥ पाका-

---

१ अनेकोद्देशेन सकृदंगानुष्ठानं तन्त्रम् ।

भावे गर्जितादिनिमित्ते तु शांतिं कृत्वा पाकः कार्यः ॥ ॥ अथ शांतिप्रयोगः ॥ ब्रह्मौदनपाकात्पूर्वं गर्जितेन सूचितस्य ब्रह्मचारिकर्तृकाध्ययनविघ्नस्य निरसनद्वारा श्री०शांतिं करिष्ये इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनाचार्यवरणे कृते आचार्योऽग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यंते सवितारमष्टोत्तरशतसंख्यसाज्यपायसाहुतिभिर्गायत्रीमंत्रेण शेषेण स्विष्टकृतमित्यादिप्रायश्चित्तहोमांते गायत्र्या सवितारमाज्येनेत्यन्वाधाय गृहसिद्धपायसहोमांते बृहस्पतिसूक्तजपः ॥ अंते आचार्याय धेनुं दत्त्वा शतं यथाशक्ति वा विप्रान् भोजयिष्ये इति संकल्पयेत् ॥

अब जो संस्कारोंका लोप होजाय तो प्रायश्चित्तको कहताहूं । यदि पूर्वसंस्कार बीतचुके होंयँ तो इस कुमारके पुंसवनसे लेकर अथवा जातकर्मसे लेकर मुण्डनपर्यंत संस्कारोंका कालपर न करनेसे जो दोष उसके परिहारपूर्वक श्रीपरमेश्वरकी प्रसन्नताके लिये संस्कारकी एक-एक आहुति 'भूर्भुवः स्वः स्वाहा, इस समस्त व्याहृतिमंत्रसे होम करताहूं; यह संकल्प करके अग्निस्थापन, इंधनका आधान और पाकयज्ञ इनसे सहित अथवा अग्निस्थापन, घृतका संस्कार, पात्रोंका मार्जन इन सहित व्यतीतहुए संस्कारोंके लिये समस्त व्याहृतियोंसे घीकी आहुति दे । फिर इस बालकके पुंसवन, अनवलोभन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, सूर्यावलोकन, निष्क्रमण, उपवेशन, अन्नप्राशन और मुण्डन इन संस्कारोंके लोपसे उत्पन्नहुए दोषके परिहारके लिये संस्कार, संस्कारके लिये पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त, चूडाकर्मके लिये आधा कृच्छ्र और जो बुद्धिपूर्वक लोप हुआहो तो प्रतिसंस्कार आधा कृच्छ्र और मुण्डनके लिये कृच्छ्रको उसका प्रत्याम्नाय गौके मूल्यरूप वा शक्तिके अनुसार चाँदीके दानको करताहूं । जो यदि मुण्डन करना अपने कुलकी रीतिके अनुसार यज्ञोपवीतके साथही होय तो कालातिपत्तिहोम और मुण्डनकर्मके लोपका प्रायश्चित्त नहीं करना । कोई संस्कारके लोपका प्रायश्चित्त बटुसे कराते हैं, तहां बटु मैंने यथेच्छ करना, यथेच्छ कहना, यथेच्छ भक्षणआदि दोषके परिहारद्वारा अपने उपनयनकरानेकी योग्यताकी सिद्धिके लिये तीन कृच्छ्रव्रतरूपी प्रायश्चित्तको उसके प्रत्याम्नायरूप गौके मूल्यरूप द्रव्य वा यथाशक्ति चाँदीके दानको करता हूं । निष्क (तोलेभर) आधानिष्क वा चौथाई तोलेभर चाँदी गौका मूल्य दे । कम न दे । आठ चौंटनीका मासा होताहै इस रीतिसे चालीस मासेका निष्क होताहै, यह पूर्व कह आये । कोई आचार्य यह कहतेहैं कि, प्रायश्चित्त किये पीछे व्यतीतहुए कर्मकोभी करै । कोई कहतेहैं कि, न करै । इसवचनसे जातकर्म आदि संस्कार करै, न भी करै ये दोनों पक्ष हैं । तहां यद्यपि प्रायश्चित्तसे दोषका नाश होचुका तथापि संस्कारसे अन्तःकरणमें अपूर्व (धर्म) की उत्पत्तिके लिये संस्कारके अनुष्ठान करना इसपक्षमें जो संकल्प है उसको कहतेहैं कि, स्त्री वा बालकके साथ बैठकर देशकालका स्मरण करके इस कुमारके गर्भमें जल पीनेसे जो दोष उत्पन्न हुआ उसकी निवृत्ति और अवस्था बुद्धिकी वृद्धि और वीर्य और गर्भमें उत्पन्नहुए पापकी निवृत्तिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये व्यतीतहुए जातकर्म संस्कारको तथा वीर्य और गर्भमें उत्पन्नहुए पापकी निवृत्ति, आयुकी वृद्धि, व्यवहारमें चतुरता इनकी सिद्धिके लिये और इसके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये नामकर्मको और अवस्थाकी वृद्धिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये सूर्यावलोकनको तथा अवस्था, लक्ष्मीकी वृद्धिके बीज और गर्भसे उत्पन्नहुए पापकी

निवृत्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये निष्क्रमणकर्मको, अवस्थाकी वृद्धिके श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये उपवेशनसंस्कारको, माताके गर्भमें मलके भक्षणसे उत्पन्नहुए पापकी शुद्धि, अन्नआदिकी शुद्धि, ब्रह्मतेज इन्द्रियोंकी शक्ति और अवस्था इनकी वृद्धिके लिये तथा बीजगर्भसे उत्पन्नहुए पापकी निवृत्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये अन्नप्राशनकर्मको आज करता हूं। और बीजगर्भसे उत्पन्नहुए पापकी निवृत्तिसे बल और अवस्थाकी तथा तेजकी वृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये मुण्डनकर्म और द्विजत्व होना तथा वेदपढनेका अधिकारी होनेके लिये उपनयनकर्मको कल करूंगा। और जात कर्मआदि सब संस्कारोंके अंगरूप पुण्याहवाचन और मातृकापूजनको करताहूं। तथा यज्ञोपवीतके अंगरूप मण्डपके देवताओंका स्थापन और कुलदेवताओंका स्थापन करताहूं। इसप्रकार अपने अपने गृह्यसूत्रके अनुसार संकल्पसे लेकर नांदीश्राद्धपर्यन्त कर्मको तन्त्रसे करके मण्डपके देवताओंके स्थापनसे लेकर बटु और उसके पिताको किसी मित्रके बनवाये वस्त्रोंके दानपर्यन्त कर्मको करके अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कारोंको करै। अपने गृह्यसूत्रके अनुसार पहिलेदिन करै। और मुण्डन और यज्ञोपवीत परलेदिन करने और सब एकही दिन करनेहोंय तो पूर्वकहे संकल्प वाक्यके अन्तमें मैं आज उपनयन करताहूं यह संकल्प करै। और जो संस्कार नहीं करता वह पक्षहै तब चूडाकर्म और उपनयनका संकल्प करके और इन दोनों कर्मोंके अंगरूप पुण्याहवाचन नांदीश्राद्ध और उपनयनके अंगरूप मण्डपदेवताओंका स्थापन और कुलदेवताओंका स्थापन करताहूं यह संकल्प समझना। नांदीश्राद्धके अन्तमें पूर्व पूजीहुई मातृकाओंकरिके सहित मण्डपमें देवताओंका स्थापन करना फिर पूर्वकही रीतिसे वेदीको रचै। पूर्वदिनका कृत्य कह चुके। फिर उससे दूसरे दिन अवलंघन किये चूडाकर्मको करके और पूर्व जिसका जातकर्म होचुकाहो उसको अभ्यंग (उबटना) स्नान कराकर माताके साथ भोजन करावै। तिससमयमें ब्रह्मचारियोंको भोजन देना यह शिष्टोंका आचारहै। फिर देशकालका स्मरण करके इस लडकेको द्विजत्वसिद्धिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये गायत्रीके उपदेश करनेको इस पूर्वअंगरूप मुण्डनादिको करताहूं यह संकल्पकरके मुण्डन आदि करै। मुख्य एक शिखासे कुलाचारकी रीतिसे अन्य शिखा जो मुण्डनके समय रखाई थी उनका मुण्डन करा दे। फिर बटुको स्नान, अहतवस्त्रका धारण, शिखामें ग्रंथि लगाना, मंगलतिलक इनसे युक्त करै। मुहूर्तके स्वामीकी पूजा करके उत्तममुहूर्तमें आचार्य वेदीके विषे पूर्वदिशाको मुख करके बैठाहुआ अन्तःपटको अलहदाकरके बटुके मुखको देखै। और नमस्कार करनेके अनन्तर अपनी गोदमें बैठावै। फिर आचारके अनुसार दोनोंके शिरके ऊपर चावलोंको बखेरै इसीप्रकार गृह्यसूत्रके अनुसार उपनयनकी विधिको जानकर कर्म करना। सब जगह उस बटुसे गायत्रीआदिमंत्रोंको बुलाताहुआ सन्धिके कियेहुए वर्णोंके विकारोंको अन्यप्रकार न बोलने दे। सब प्रयोगको समाप्त करके दोसौ वा सौ ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजनका संकल्प करै। ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दे फिर ब्रह्मचारी नवीन भिक्षाके पात्रमें माता, मामसी आदिसे 'भिक्षां भवती ददातु' इसवचनसे चावलोंको मांगै। और पितासे 'भिक्षाम्भवान्ददातु' ऐसा कहकर मांगे। सब भिक्षाको गुरुके अर्पण करके मध्याह्न संध्याको करै। और गुरुके समीप अवशिष्टरहे दिनको बितावै तिस दिन मध्याह्नसंध्या करै चाहे न करै, यह विकल्प है यह कोई कहते हैं। और ब्रह्मयज्ञ दूसरे दिनसे लेकर कहना।

अनुप्रवचनीय होमारंभसे पहिले जो अकाल गर्जना वा वर्षा होनेकी संभावना होय तो दिनमेंही चरुको पकानाआदि कर्म करके सूर्यास्तके समय होम करै । जो गर्जना आदिके होनेसे पाक न बनाया होय तो शांति करके पाक बनाले । अब शांतिप्रयोगको कहते हैं । ब्रह्मयज्ञके भातपकानेसे पूर्व जो गर्जनेसे ब्रह्मचारीके अध्ययनमें विघ्न प्रतीत हुआहै उसके नाशद्वारा श्रीईश्वरकी प्रीतिके लिये शांतिकर्म करताहूं ऐसा संकल्प करके स्वस्तिवाचन और आचार्यका वरण करै । आचार्य अग्निकी स्थापना करके 'चक्षुषीआज्येन' इसके अंतमें गायत्रीमंत्रसे सूर्यको एकसौ आठ (१०८) खीरकी आहुति दे । शेष चरुसे स्विष्टकृत् होम करना इत्यादि प्रायश्चित्त होमके करनेके अन्तमें फिर गायत्रीमंत्रसे सविताका 'आज्येन' इस मंत्रपूर्वक अन्वाधान करके गृहमें बनायेहुए पायससे होम किये पीछे बृहस्पतिसूक्तका जप करै । आचार्यको गोदान करके सौ (१००) वा यथाशक्ति ब्राह्मणोंके भोजनका संकल्प करै ॥

अथ मेधाजननात्पूर्वमग्निनाशे विचारः ।

मेधाजननात्पूर्वकालिकाग्निकार्यं यावदुपनयनाग्निनाशे उपनयनाहुतिभिः कटिसूत्रधारणादिमाणवकसंस्कारावक्षारणाग्निकार्यगायत्र्युपदेशरहिताभिः पूर्वोत्तरतंत्रसहिताभिरग्निमुत्पाद्य तत्रानुप्रवचनीयपूर्वभाव्यग्निकार्यं कृत्वानुप्रवचनीयहोमं कृत्वा मेधाजननात्प्राक्तनान्यग्निकार्याणि कृत्वा मेधाजननं कार्यमिति कौस्तुभे उपपादितम् ॥ नष्टस्योपनयनाग्नेः पुनरुत्पत्तिं करिष्ये इति संकल्पः ॥ नष्टस्योपनयनाग्नेः पुनरुत्पत्तिहोमे विनियोग इति विशेष इति चोक्तम् ॥ मम तु उपनयनाहुतिभिरग्निमुत्पाद्य तत्र मेधाजननपूर्वभाव्यग्निकार्याणि कृत्वा मेधाजननं कार्यम् ॥ अनुप्रवचनपूर्वभाव्यग्निकार्यमनुप्रवचनीयहोमश्च न कार्य इति भाति ॥ गायत्र्युपदेशानुप्रवचनीयमेधाजननानां त्रयाणां समप्रधानभावेनाध्ययनांगत्वादग्नेस्त्रितयांगत्वात् कौस्तुभोक्तरीत्या गायत्र्युपदेशतत्पूर्वाग्निकार्यावृत्त्यभाववदनुप्रवचनीयतत्पूर्वाग्निकार्ययोरावृत्त्यभावौचित्यात् ॥ न ह्यग्निष्टोमांगपशुत्रयस्यांगे यूपे पशुद्वयानुष्ठानानंतरं नष्टे तृतीयपश्वर्थं यूपोत्पादने द्वितीयपश्वनुष्ठानमप्यावर्तते ॥ अत्र सदसत्सद्भिर्विचार्यानुष्ठेयम् ॥ सायंसंध्याग्निकार्ये कृत्वानुप्रवचनीयहोमं ब्रह्मचारी कुर्यात् ॥ बटोरशक्तौ चरुश्रपणांतमन्यः कुर्यात् ॥ होममात्रं बटुः कुर्यात् ॥ हुतचरुशेषेण त्र्यवरब्राह्मणभोजनम् ॥

अब जो मेधाजननसे पहिले अग्निका नाश होजाय तो उसके विषयमें कहते हैं । कौस्तुभग्रंथमें यह लिखाहै कि, अब मेधाजननसे पूर्व जो अग्निका कार्य है उसे इसप्रकार करे कि, जो यज्ञोपवीतकी समान अग्निका नाश होजाय तो कटिसूत्रका धारण आदि बटुके संस्कार, अवक्षारण, अग्निकार्य और गायत्रीका उपदेश इनको छोडकर पूर्व और उत्तरकर्मको एकतन्त्रसे करके उपनयनकी आहुतियोंसे फिर अग्निको उत्पन्न करके तिसमें अनुप्रवचनीयसे पूर्व होनेवाले कर्मको अग्निकार्य अनुप्रवचनीय होम और मेधाजननसे पूर्व होनेवाले अग्निकार्योंको करके मेधाजनन करना । उसका संकल्प यह है कि, मैं नष्ट-

हुए उपनयनके अग्निकी पुनः उत्पत्ति करताहूं । और यह विशेष है कि, नष्ट हुए उपनयन अग्निकी उत्पत्तिके लिये जो होम है उसमें विनियोग करताहूं यह पूर्व कहचुके । और मुझे तो यह प्रतीत होताहै कि, उपनयनकी आहुतियोंसे अग्निको उत्पन्न करिके तिसमें मेधाजननसे पूर्व होनेवाले अग्निकार्योंको करके मेधाजनन करना और अनुप्रवचनीयसे पूर्व कहा होम और अनुप्रवचनीयहोम नहीं करना।गायत्रीका उपदेश अनुप्रवचनीय और मेधाजनन ये तीनों प्रधानरूप वेदाध्ययनके अंग हैं । और अग्नि इन तीनोंका अंग है इससे जैसे कौस्तुभमें कही रीतिके अनुसार गायत्रीका उपदेश और इससे पूर्व होनेवाला अग्निकार्य नहीं होता, तिसी प्रकार अनुप्रवचनीय और इससे पूर्व होनेवाला अग्निकार्य इनको भी नहीं करना उचित है । क्योंकि, अग्निष्टोम यज्ञके जो अंगरूप तीन पशु हैं और उनका अंग जो यूपहै उसको दो पशुओंके अनुष्ठान होनेके अनन्तर जो नाश होजाय तो फिर तीसरे पशुके लिये यूप (यज्ञस्तंभ) तीसरा बनाया जाय उसके साथ उन दोनों पशुओंके अनुष्ठानकी आवृत्ति नहीं होती । इसी प्रकार उपनयन अग्निके सन्निधानमें जब अनुप्रवचनीय और इसके होम करचुके फिर अग्निके नाशहोनेपर अग्निकी उत्पत्ति करके पूर्व किये कर्मकी आवृत्ति युक्त नहीं है । इसमें सत् और असत्को सज्जन पुरुष विचारकर करैं । सायंकालकी संध्या और अनुप्रवचनीयको करके ब्रह्मचारी अनुप्रवचनीय होमको करै । जो बटुकी सामर्थ्य न होय तो चरुकेपकानेपर्यन्त कर्मको अन्यही कोई करै और होम मात्रको वटु करै जो होमसे चरु बाकी रहै उससे कमसे कम तीन ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥

अथ बटुव्रतम् ।

''क्षारादिवर्ज्यमश्नीयाद्ब्रह्मचारी दिनत्रयम् ॥ शयीताधश्चतुर्थेह्नि मेधाजननमाचरेत् ॥ यद्वा द्वादशरात्रं स्यादब्दव्रतमथापि वा ॥ मेधाजननविधिरन्यत्र ॥

अब बटुके व्रतको कहते हैं। कि ब्रह्मचारी तीन दिन क्षार (खारी)आदि रसको न खावै । फिर चौथे दिन नीचे सोवै । पीछे मेधाजननकर्मको करै अथवा इस व्रतको बारहरात्रि वा वर्ष दिनतक करै । मेधाजननकी विधि अन्य ग्रन्थमें समझनी ॥

अथ मंडपदेवतोत्थापनम् ।

तच्च स्थापनदिनात्समदिवसे पंचमसप्तमदिनयोश्च शुभम् ॥ षष्ठदिने विषमदिने चाशुभम् ॥

अब मंडपके देवताओंके उत्थापन (उठाना) को कहते हैं । वह स्थापन दिनसे दूसरे, चौथे आदि समदिन वा पांचमें सातमें दिन उत्तम होता है । और छठे तथा तीसरे आदि विषम दिनमें अशुभ समझना ॥

अथ मंडपोद्वासनपर्यंतं निषेधाः ।

''नांदीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम् ॥ दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च ॥ अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च ॥ ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमादिलंधनम् ॥ उपवासव्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च ॥ नैव कुर्युः सपिंडाश्च

मंडपोद्वासनावधि ॥" अत्र स्वधाकारग्रहणं तत्सहचरितवैश्वदेवनिषेधार्थम् ॥ अत्र सपिंडास्त्रिपुरुषपर्यंता इति पुरुषार्थचिंतामणौ ॥ "अभ्यंगे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि ॥ मांगल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचंदनम् ॥" एतेषु भस्मधारणमपि न कुर्वंति ॥ जननाशौचे भस्मगोपीचंदने निषिद्धे ॥ मृतके भस्म धार्यम् ॥

अब मण्डपके सिराने पर्यन्त जो निषेध हैं उनको कहते हैं । कि, नांदीश्राद्ध किये पीछे जबतक मातृकाओंका विसर्जन हो तबतक दर्शश्राद्ध, क्षयीश्राद्ध, ठंडेजलसे स्नान, अपसव्य होना, स्वधाशब्द तथा नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, अध्ययन, नदी वा ग्रामकी सीमाका लंघना, उपवास, व्रत तथा श्राद्धका भोजन इनको मण्डपके उद्वासन पर्यन्त सपिण्ड वर्ज दे । यहां स्वधाकारका ग्रहण उसके सहचारी बलिवैश्वदेवके निषेधके लिये है । यह सपिण्ड तीन पीढीतक समझने यह पुरुषार्थचिन्तामणिमें लिखाहै । तैल आदिका अभ्यंग, सूतक, विवाह, पुत्रका जन्म इनके मंगलार्थ सबकार्योंमें गोपीचन्दन नहीं लगाना । तथा इनमें भस्मका भी धारण नहीं करना । जन्मसूतकमें भस्म और गोपीचंदनका लगाना निषिद्ध है । और मृतकसूतकमें भस्मधारण करनी ॥

अथ विकलांगोपनयनविचारः ।

षंढांधबधिरमूकपंगुकुब्जवामनादयः संस्कार्याः ॥ "मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्यौ" इत्येके पातित्यं तु नास्ति ॥ कर्मानधिकारात् ॥ तदपत्यं संस्कार्यम् ॥ ब्राह्मण्यां ब्राह्मणादुत्पन्नो ब्राह्मण एवेति श्रुतेः ॥ अन्ये तु मत्तोन्मत्तावपि संस्कार्यावित्याहुः॥ तत्र होममाचार्यः करोति उपनयनं चाचार्यसमीपनयनमग्निसमीपनयनं वा गायत्रीवाचनं वा विकलांगविषये प्रधानम् ॥ एतत्रयान्यतममात्रं विकलांगे संपाद्यम् ॥ अन्यदंगं यथासंभवं कार्यम् ॥ मूकबधिरादेः सावित्रीवाचनासंभवे स्पृष्ट्वा सावित्रीजपः कार्यः ॥ संस्कारमंत्राः वासःपरिधानमंत्राश्चाचार्येण वाच्याः ॥ केचित्तूष्णीं वासःपरिधानादिकमाहुः ॥ एवं विवाहेपि कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेदित्यादिवाचनात् ॥ इति विकलांगोपनयनादिविचारः ॥ "अमृते जारजः कुंडो मृते भर्तरि गोलकः ॥" एतयोः कुंडगोलकयोः संस्कार्यत्ववचनं युगांतरविषयम् ॥ तस्य क्षेत्रजपुत्रविषयत्वात् ॥ कलियुगे दत्तौरसातिरिक्तपुत्राणां निषेधात् ॥ "ज्येष्ठे त्वकृतसंस्कारे गर्भाधानादिकर्मभिः ॥ कनिष्ठो नैव संस्कार्य इति शातातपोऽब्रवीत्॥" इदं चौलोपनयनांतसंस्कारविषयं विवाहविषये तु विकलांगेषु नायं नियमः ॥ कन्यास्वपि ज्येष्ठाया विवाहानंतरमेव कनिष्ठाया विवाहः ॥ ज्येष्ठपुत्रविवाहाभावेपि कनिष्ठा कन्या संस्कार्या ॥ ज्येष्ठस्योपनयनाभावे कनिष्ठा न विवाह्या ॥

अब जिनके अंग विकल अर्थात् जो गूंगे आदि हैं उनके उपनयनका विचार लिखते हैं । नपुंसक, अंधा, बहिरा, गूंगा, पंगू, कुबडा, बौनाआदि इनका संस्कार करना । कोई यह कहतेहैं कि, मत्त और उन्मत्तका संस्कार नहीं करना । न करनेसे ये पतित नहीं होते क्योंकि, इनको

कर्मका अधिकार नहीं इनसे उत्पन्न हुए पुत्र आदिका तो संस्कार करना क्योंकि,यह श्रुतिमें लिखा है कि, ब्राह्मणसे जो ब्राह्मणीमें उत्पन्न हो वह ब्राह्मणही होताहै । और अन्य तो यह कहते हैं कि, मत्त और उन्मत्तोंकाभी संस्कार करना तिसमें होम आचार्य करै । और उपनयन तो आचार्यके पास जाना वा अग्निके पास जाना वा गायत्रीका उच्चारण ये तीन विकलांग (बहिरेआदि) के उपनयनमें प्रधान हैं । इससे इन तीनोंमेंसे किसीएकको विकलांगसे करावै । और अन्य अंगरूपकर्म जो होसकैं उन्हें करने । मूक, बधिरआदि सावित्रीका उच्चारण नहीं करसक्ते इससे पूछकर सावित्रीका जप करै । और संस्कार और वस्त्रके पहिरनेके मंत्र आचार्य कहे । और कोई तो मौन होकर वस्त्रोंका पहिरना कहतेहैं । इसीप्रकार विवाहमेंभी समझना । क्योंकि, कन्याके स्वीकरणसे अतिरिक्त सम्पूर्ण कर्म ब्राह्मणसे करावै । इत्यादिवचन हैं. विकलांगके उपनयनका विचार समाप्त हुआ । पतिके जीतेहुए जो व्यभिचारसे लडका हो वह कुण्ड, और मरनेके पीछे जो पैदा हो वह गोलक इन दोनोंको संस्कारके योग्य कहाहै वह कलियुगसे अन्य युगके विषयमें हैं क्योंकि, उनका वह वचन क्षेत्रज पुत्रके विषयमें है । और कलियुगमें दत्तक और औरस पुत्रके सिवाय अन्य पुत्रोंका निषेध है । जो ज्येष्ठपुत्रके संस्कार न हुएहोयँ तो कनिष्ठके गर्भाधानआदि संस्कार नहीं करने यह शातातपका वचन है । यह वचन चूडाकर्मसे लेकर यज्ञोपवीततक संस्कारोंके विषयमें है । और जो मूकआदिहैं उनके विवाहके विषयमें यह नियम नहीं । और कन्याओंके विषयमेंभी जेठी बहिनके विवाह हुए पीछे छोटी बहिनका विवाह करना । और जेठेपुत्रका विवाह न हुआहोय तो कनिष्ठ कन्याके विवाहमें दोष नहीं और जो जेठेभाईका जनेऊ न हुआ होय तो कनिष्ठ कन्या न विवाहनी ॥

अथ पुनरुपनयनम् ।

तच्च त्रिविधम् ॥ प्रत्यवायनिमित्तकं प्रायश्चित्तभूतं पुनरुपनयनमाद्यम् ॥ तच्च जातकर्मादिसहितं तद्रहितं प्रायश्चित्तांतरसहितं केवलं चेत्यनेकविधम् ॥ कृतस्योपनयनस्योक्तकालाद्यंगवैगुण्येन वैफल्यापत्तावपरम् ॥ वेदांतराध्ययनार्थं विहितं तृतीयम् ॥ तत्र प्रथमं यथा ॥ अमत्या औषधांतरानाश्यरोगनाशार्थं पैष्ट्याः सुरायाः पाने त्रिमासं कृच्छ्राचरणं पुनरुपनयनं च ॥ मत्या पैष्ट्यन्यसुराया औषधार्थं पाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ पुनरुपनयनं च॥ पैष्टीपाने द्वादशाब्दम्॥अज्ञानाद्वारुणी गौडी माध्वी सुरा पीता चेत्पुनरुपनयनं तप्तकृच्छ्रं च ॥ अज्ञानाद्रेतोविण्मूत्राणामशने सुरासंस्पृष्टान्नजलादिभक्षणे च पुनः संस्कारस्तप्तकृच्छ्रं च ॥ ज्ञात्वा विण्मूत्राद्यशने चांद्रायणपुनःसंस्कारौ ॥ लशुनपलांडुगृंजनविड्वराहग्रामकुक्कुटनरगोमांसभक्षणे द्विजातीनां तत्तत्प्रायश्चित्तांते पुनरुपनयनम् ॥ अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीरपाने हस्तिनीवडवाक्षीरपाने च तप्तकृच्छ्रं पुनः संस्कारश्च ॥ रासभोष्ट्राद्यारोहणे कृच्छ्रः पुनः संस्कारश्च ॥ इदं हेमाद्रिमतमिति सिन्धौ क्वचित् मिताक्षरास्मृत्यर्थसारादिमते रासभोष्ट्रारोहे उपवासत्रयादिमात्रं न तु पुनः संस्कारः कौ-

स्तुभाशयोप्येवमेव ॥ वृषभारोहणे अमत्या कृच्छ्रं मत्या कृच्छ्रत्रयादि ॥ केचिद्वृषारोहे पुनः संस्कारं कुर्वंति तत्र मूलं मृग्यम् एवमजबस्तमहिषारोहेपि ॥ मांसभक्षकपशोर्विड्भक्षणे पुनरुपनयनमात्रम् ॥ केचित्तु मानुषमलभक्षणेपि पुनः संस्कारमात्रमाहुः ॥ "प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति ॥" जीवतो मृतवार्तां श्रुत्वांत्यकर्मकरणे तं घृतकुंभे निमज्योद्धृत्यस्नापयित्वा जातकर्माद्युपनयनांतसंस्कारान् कृत्वा त्रिरात्रव्रतांते पूर्वभार्यया तस्यां मृतायामन्यभार्यया वा विवाहः कार्यः आहिताग्निश्चेत्पुनराधानायुष्मदिष्ट्यादि ॥ तीर्थयात्रां विना कलिंगांगवंगांध्रसिंधुसौवीरम्लेच्छदेशप्रत्यंतवासिदेशगमने पुनः संस्कारः ॥ चांडालान्नभक्षणे चांद्रायणम् ॥ बुद्धिपूर्वभक्षणे कृच्छ्राब्दम् ॥ उभयत्र पुनः संस्कारः "अजिनं मेखलादंडो भैक्ष्यचर्याव्रतानि च ॥ निवर्तंते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥" वपनं मेखलेति स्मृत्यंतरे पाठः ॥ ब्रह्मचारिणो मधुमांसाशने पुनरुपनयनं प्राजापत्यं त्रिरात्रोपवासो वा ॥मत्या भक्षणे पराकः ॥ अभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारश्च ॥ पितृमातृगुरुभ्यो भिन्नस्य प्रेतस्यांत्यकर्मकरणे ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनम् ॥ हस्तमथितदधिभक्षणे बर्हिर्वेदिपुरोडाशाशने अभ्यासे कृच्छ्रः पुनः संस्कारश्च ॥ यः संन्यासं गृहीत्वा ततो निवृत्य गार्हस्थ्यं चिकीर्षति स षण्मासं कृच्छ्रान् कृत्वा जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृतः शुद्धो गार्हस्थ्यं कुर्यात् ॥ एवमनशनं मरणार्थं संकल्प्य निवृत्तोपि कुर्यात् ॥ "कर्मनाशाजलस्पर्शात् करतोयाविलंघनात् ॥ गंडकीबाहुतरणात्पुनः संस्कारमर्हति ॥"

अब पुनः (दूसरी बार) यज्ञोपवीतके विषयमें कहतेहैं। वह तीन प्रकारसे होताहै । किसी दोषआदिके निवृत्त करनेके लिये जो प्रायश्चित्तरूपसे कियाजाय वह प्रथम और यह प्रथमभी जातकर्म आदि सहित उनसे रहित अन्य प्रायश्चित्तसहित और केवल इसप्रकार अनेक प्रकारका है। और जो कियेहुए यज्ञोपवीतकीभी जो इसमें कहे समय आदिके न होनेसे निष्फलता होजाय तो पुनः उपनयन । और जो जानकर पैष्टीसे अन्य मदिराका पान औषधके लिये करलिया जाय तो कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और पुनः उपनयन इस प्रकार तीन भेद समझने । पैष्टी मदिराके पीनेमें द्वादशवर्षतक व्रत और अज्ञानसे वारुणी, गौडी और माध्वी इन मदिराओंके पीनेमें पुनः यज्ञोपवीत संस्कार और तप्तकृच्छ्र व्रत करना । और अज्ञानसे विष्ठा, मूत्र, वीर्य इनका भक्षण तथा मदिरासे वा रजस्वलाके छुए अन्न जलआदिका भक्षण करै तो पुनः संस्कार करै और तप्तकृच्छ्र करै और जानकर विष्ठा मूत्रआदिके भक्षणमें चांद्रायण व्रत और पुनः संस्कार करना । लहसन, सलगम, गाजर, विष्ठाखानेवाला सूकर, ग्रामका मुर्ग, मनुष्य और गौका मांस इनके भक्षणमें द्विजोंको तिसतिसके किये प्रायश्चित्तके अन्तमें पुनः उपनयन करना । भेड़,गधी, ऊँटनी, स्त्री इनके दूध पीनेमें वा हथिनी, घोडीके दूधपीनेमें तप्तकृच्छ्र और पुनः संस्कार करना । गधा और ऊंट आदिके ऊपर चढनेमें कृच्छ्रव्रत और पुनः संस्कार करै। यह हेमाद्रिका मतहै । और मिताक्षरा स्मृत्यर्थसार आदिके मतमें गधा, ऊंट पर चढनेमें तीन

उपवासमात्र करने पुनः संस्कार नहीं और कौस्तुभकाभी आशय इसीप्रकार है। बैलके ऊपर अज्ञानसे चढनेमें कृच्छ्रव्रत जानकर चढनेमें तीन कृच्छ्र करने। और कोई वृषपरचढनेमें पुन संस्कार करते हैं उसमें प्रमाण ढूंढना अर्थात् वह निष्प्रमाण है। इसीप्रकार अजा, बस्त और भैंस पर चढनेमें भी समझना। मांसखानेवाले पशुके विष्ठाखानेमें पुनः संस्कार मात्र करना। और कोई तो मनुष्यके मल भक्षण करनेपर भी पुनः संस्कार मात्र कहतेहैं। जो प्रेतकी शय्याका दान ले वह पुनः संस्कारके योग्य होताहै। जो जीतेहुए मनुष्यको मरा सुनकर उसकी अन्तकी त्रयोदशाहआदि क्रिया करदी होय तो फिर उस पुरुषको घीसे भरे पात्रमें डुबाकर और फिर निकालकर स्नान करावै। फिर जातकर्मसे लेकर उपनयनपर्यंत कर्मोंको करके तीन रात्रिके व्रतके अन्तमें पहिली स्त्रीके साथ, वह मरगयी होय तो किसी अन्यके साथ विवाह करावै। और जो अग्निहोत्री होय तो पुनः अग्निका आधान और आयुष्मत् इष्टि आदि करै। जो तीर्थयात्राके विना कलिंग, अंग, वंग, अंध, सिन्धु, सौवीर, म्लेच्छदेश इनदेश वा इनके आसपासके देशोंमें गमन करै तो पुनः संस्कार करना। चाण्डालका अन्न खायले तो चांद्रायण करै। जानकर भोजनमें कृच्छ्राब्द और दोनोंमें पुनः संस्कार करना। मृगचर्म, मेखला, दण्ड, भिक्षाको जाना, व्रत ये दूसरे संस्कारमें द्विजातियोंके निवृत्त होजातेहैं। और किसी स्मृतिमें वपन, मेखला ऐसा पाठ है अर्थात् मुण्डन और मेखला निवृत्त होजातीहैं। ब्रह्मचारी जो मधु और मांसभक्षण करै तो पुनः संस्कार प्राजापत्य वा तीनरात उपवास करै। और जो जानकर भक्षण करै तो पराकव्रत करै। और जो कईबार अभ्याससे करै तो दुगुणा प्रायश्चित्त और पुनः संस्कार करना। पिता माता और गुरु इनसे भिन्न मरेहुएका अन्तेष्टिकर्म करै तो ब्रह्मचारीको पुनः उपनयन करना। हाथसे मथा हुआ दही और वेदीसे बाहिर पुरोडशके भक्षणमें तथा अभ्याससे भक्षणमें कृच्छ्रव्रत और पुनः संस्कार करना। जो संन्यास आश्रममें आकर फिर गृहस्थाश्रममें आनेकी इच्छा करै वह छः महीना कृच्छ्र व्रतोंको करके जातकर्मआदि संस्कारोंसे शुद्ध होकर गृहस्थाश्रमको करै। इसीप्रकार संकल्पसे निवृत्त होकर मरणके लिये अनशनव्रतकोभी करै। कर्मका नाश, जलका स्पर्श तथा करतोया (जिसमें जल सदा न रहै) नदीके लंघनेसे और गंडकी नदीमें भुजाओंसे तरनेसे पुनः संस्कारके योग्य होताहै ॥

अथ द्वितीयं पुनरुपनयनम्।

"प्रदोषे निश्यनध्याये मंदे कृष्णे गलग्रहे ॥ अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति" ॥ अत्र प्रदोषः प्रदोषदिनं कृष्णः कृष्णपक्ष एकादश्यादिरंत्यत्रिकरूपोऽपराह्णश्च दिनतृतीयभागरूप इत्युक्तम् ॥ अनध्याया अपि नित्या एव पूर्णिमाप्रतिपदादयः पुनरुपनयननिमित्तं न तु नैमित्तिका अकालवृष्ट्यादिनिमित्तकत्रिरात्रादयः ॥ नैमित्तिकेषु प्रातर्गर्जितनिमित्तानध्याय एव पुनः संस्कारनिमित्तम् ॥ अत्र विस्तारः कौस्तुभे ॥ अंसाभिमर्शपूर्वकं बटोः समीपमानयनं प्रधानकर्म तस्य विस्मरणे पुनरुपनयनम् ॥ एवं गायत्र्युपदेशविस्मरणेऽपि ॥

अब दूसरे पुनः उपनयनको कहतेहैं। कि, प्रदोष, रात्रि, अनध्याय, शनिवार, कृष्णपक्ष, गलग्रह और अपराह्णकाल इनमें उपनयन होय तो पुनः संस्कारके योग्य होताहै। यहां प्रदो-

स्तुभाशयोप्येवमेव ॥ वृषभारोहणे अमत्या कृच्छ्रं मत्या कृच्छ्रत्रयादि ॥ केचित्तु खरोष्ट्रारोहे पुनः संस्कारं कुर्वंति तत्र मूलं मृग्यम् एवमजवस्तमहिषारोहेपि ॥ मांसभक्षकपशोर्विड्भक्षणे पुनरुपनयनमात्रम् ॥ केचित्तु मानुषमलभक्षणेपि पुनः संस्कारमात्रमाहुः ॥ "प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनः संस्कारमर्हति ॥" जीवतो मृतवार्ता श्रुत्वांत्यकर्मकरणे तं घृतकुंभे निमज्योद्धृत्यस्नापयित्वा जातकर्माद्युपनयनांतसंस्कारान् कृत्वा त्रिरात्रव्रतांते पूर्वभार्यया तस्यां मृतायामन्यभार्यया वा विवाहः कार्यः आहिताग्निश्चेत्पुनराधानायुष्मदिष्ट्यादि ॥ तीर्थयात्रां विना कलिंगांगवंगांध्रासिंधुसौवीरम्लेच्छदेशप्रत्यंतवासिदेशगमने पुनः संस्कारः ॥ चांडालान्नभक्षणे चांद्रायणम् ॥ बुद्धिपूर्वभक्षणे कृच्छ्राब्दम् ॥ उभयत्र पुनः संस्कारः "अजिनं मेखलादंडो भैक्ष्यचर्याव्रतानि च ॥ निवर्तंते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥" वपनं मेखलेति स्मृत्यंतरे पाठः ॥ ब्रह्मचारिणो मधुमांसाशने पुनरुपनयनं प्राजापत्यं त्रिरात्रोपवासो वा ॥मत्या भक्षणे पराकः ॥ अभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारश्च ॥ पितृमातृगुरुभ्यो भिन्नस्य प्रेतस्यांत्यकर्मकरणे ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनम् ॥ हस्तमथितदधिभक्षणे बर्हिर्वेदिपुरोडाशाशने अभ्यासे कृच्छ्रः पुनः संस्कारश्च ॥ यः संन्यासं गृहीत्वा ततो निवृत्य गार्हस्थ्यं चिकीर्षति स षण्मासं कृच्छ्रान् कृत्वा जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृतः शुद्धो गार्हस्थ्यं कुर्यात् ॥ एवमनशनं मरणार्थं संकल्प्य निवृत्तोपि कुर्यात् ॥ "कर्मनाशाजलस्पर्शात् करतोयाविलंघनात् ॥ गंडकीबाहुतरणात्पुनः संस्कारमर्हति ॥"

अब पुनः (दूसरी बार) यज्ञोपवीतके विषयमें कहतेहैं । वह तीन प्रकारसे होताहै । किसी दोषआदिके निवृत्त करनेके लिये जो प्रायश्चित्तरूपसे कियाजाय वह प्रथम और यह प्रथमभी जातकर्म आदि सहित उनसे रहित अन्य प्रायश्चित्तसहित और केवल इसप्रकार अनेक प्रकारका है । और जो कियेहुए यज्ञोपवीतकीभी जो इसमें कहे समय आदिके न होनेसे निष्फलता होजाय तो पुनः उपनयन । और जो जानकर पैष्टीसे अन्य मदिराका पान औषधके लिये करलिया जाय तो कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र और पुनः उपनयन इस प्रकार तीन भेद समझने । पैष्टी मदिराके पीनेमें द्वादशवर्षतक व्रत और अज्ञानसे वारुणी, गौडी और माध्वी इन मदिराओंके पीनेमें पुनः यज्ञोपवीत संस्कार और तप्तकृच्छ्र व्रत करना । और अज्ञानसे विष्ठा, मूत्र, वीर्य इनका भक्षण तथा मदिरासे वा रजस्वलाके छुए अन्न जलआदिका भक्षण करै तो पुनः संस्कार करै और तप्तकृच्छ्र करै और जानकर विष्ठा मूत्रआदिके भक्षणमें चांद्रायण व्रत और पुनः संस्कार करना । लहसन, सलगम, गाजर, विष्ठाखानेवाला सूकर, ग्रामका मुर्गा, मनुष्य और गौका मांस इनके भक्षणमें द्विजोंको तिसतिसके किये प्रायश्चित्तके अन्तमें पुनः उपनयन करना । भेड़,गधी, ऊँटनी, स्त्री इनके दूध पीनेमें वा हथिनी, घोडीके दूधपीनेमें तप्तकृच्छ्र और पुनः संस्कार करना । गधा और ऊंट आदिके ऊपर चढनेमें कृच्छ्रव्रत और पुनः संस्कार करै। यह हेमाद्रिका मतहै । और मिताक्षरा स्मृत्यर्थसार आदिके मतमें गधा, ऊंट पर चढनेमें तीन

उपवासमात्र करने पुनः संस्कार नहीं और कौस्तुभकाभी आशय इसीप्रकार है। बैलके ऊपर अज्ञानसे चढनेमें कृच्छ्रव्रत जानकर चढनेमें तीन कृच्छ्र करने। और कोई वृषपरचढनेमें पुन संस्कार करते हैं उसमें प्रमाण ढूंढना अर्थात् वह निष्प्रमाण है। इसीप्रकार अजा, बस्त और भैंस पर चढनेमें भी समझना। मांसखानेवाले पशुके विष्ठाखानेमें पुनः संस्कार मात्र करना। और कोई तो मनुष्यके मल भक्षण करनेपर भी पुनः संस्कार मात्र कहतेहैं। जो प्रेतकी शय्याका दान ले वह पुनः संस्कारके योग्य होताहै। जो जीतेहुए मनुष्यको मरा सुनकर उसकी अन्तकी त्रयोदशाहआदि क्रिया करदी होय तो फिर उस पुरुषको घीसे भरे पात्रमें डुबाकर और फिर निकालकर स्नान करावै। फिर जातकर्मसे लेकर उपनयनपर्यंत कर्मोंको करके तीन रात्रिके व्रतके अन्तमें पहिली स्त्रीके साथ, वह मरगयी होय तो किसी अन्यके साथ विवाह करावै। और जो अग्निहोत्री होय तो पुनः अग्निका आधान और आयुष्मत् इष्टि आदि करै। जो तीर्थयात्राके विना कलिंग, अंग, वंग, अंध, सिन्धु, सौवीर, म्लेच्छदेश इनदेश वा इनके आसपासके देशोंमें गमन करै तो पुनः संस्कार करना। चाण्डालका अन्न खायले तो चांद्रायण करै। जानकर भोजनमें कृच्छ्राब्द और दोनोंमें पुनः संस्कार करना। मृगचर्म, मेखला, दण्ड, भिक्षाको जाना, व्रत ये दूसरे संस्कारमें द्विजातियोंके निवृत्त होजातेहैं। और किसी स्मृतिमें वपन, मेखला ऐसा पाठ है अर्थात मुण्डन और मेखला निवृत्त होजातीहैं। ब्रह्मचारी जो मधु और मांसभक्षण करै तो पुनः संस्कार प्राजापत्य वा तीनरात उपवास करै। और जो जानकर भक्षण करै तो पराकव्रत करै। और जो कईबार अभ्याससे करै तो दुगुणा प्रायश्चित्त और पुनः संस्कार करना। पिता माता और गुरु इनसे भिन्न मरेहुएका अन्तेष्टिकर्म करै तो ब्रह्मचारीको पुनः उपनयन करना। हाथसे मथा हुआ दही और वेदीसे बाहिर पुरोडशके भक्षणमें तथा अभ्याससे भक्षणमें कृच्छ्रव्रत और पुनः संस्कार करना। जा संन्यास आश्रममें आकर फिर गृहस्थाश्रममें आनेकी इच्छा करैं वह छः महीना कृच्छ्र व्रतोंको करके जातकर्मआदि संस्कारोंसे शुद्ध होकर गृहस्थाश्रमको करै। इसीप्रकार संकल्पसे निवृत्त होकर मरणके लिये अनशनव्रतकोभी करै। कर्मका नाश, जलका स्पर्श तथा करतोया (जिसमें जल सदा न रहै) नदीके लंघनेसे और गंडकी नदीमें भुजाओंसे तरनेसे पुनः संस्कारके योग्य होताहै॥

अथ द्वितीयं पुनरुपनयनम्।

"प्रदोषे निश्यनध्याये मंदे कृष्णे गलग्रहे॥ अपराह्णे चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति"॥ अत्र प्रदोषः प्रदोषदिनं कृष्णः कृष्णपक्ष एकादश्यादिरंत्यत्रिकरूपोऽपराह्णश्च दिनतृतीयभागरूप इत्युक्तम्॥ अनध्याया अपि नित्या एव पूर्णिमाप्रतिपदादयः पुनरुपनयननिमित्तं न तु नैमित्तिका अकालवृष्ट्यादिनिमित्तकत्रिरात्रादयः॥ नैमित्तिकेषु प्रातर्गर्जितनिमित्तानध्याय एव पुनः संस्कारनिमित्तम्॥ अत्र-विस्तारः कौस्तुभे॥ अंसाभिमर्शपूर्वकं बटोः समीपमानयनं प्रधानकर्म तस्य विस्मरणे पुनरुपनयनम्॥ एवं गायत्र्युपदेशविस्मरणेपि॥

अब दूसरे पुनः उपनयनको कहतेहैं। कि, प्रदोष, रात्रि, अनध्याय, शनिवार, कृष्णपक्ष, गलग्रह और अपराह्णकाल इनमें उपनयन होय तो पुनः संस्कारके योग्य होताहै। यहां प्रदो-

षशब्दसे प्रदोषदिन समझना । कृष्ण शब्दसे कृष्णपक्षकी एकादशीआदि तिथि और अपराह्न शब्दसे दिनका तीसरा भाग पूर्व कहा हुआ समझना । और अनध्यायभी पूर्णिमा, प्रतिपदा आदि जो नित्य हैं वेही पुनः उपनयनमें कारणहैं अकालवृष्टि आदिसे जो तीनरात्रिआदि नैमित्तिक अनध्याय हैं वे नहीं । और नैमित्तिकोंमेंभी प्रातःकालके गर्जनेसे जो नैमित्तिक अनध्याय वही पुनः संस्कारमें निमित्त है । इसमें विस्तारसे कौस्तुभग्रंथके विषे लिखा है । अंसाभिमर्श (कन्धेका स्पर्श) पूर्वक जो बटुके समीप जो बुलाना यह इसमें प्रधान कर्महै इसको यदि भूलजाय तो पुनः उपनयन करै । इसीप्रकार गायत्रीके उपदेशको भूलजानेमेंभी समझना ॥

अथ तृतीयपुनरुपनयननिमित्तप्रकारः ।

एकं वेदमधीत्यवेदांतराध्ययनचिकीर्षायां प्रतिवेदं पुनरुपनयनमित्येके ॥ अन्यवेदिनामृग्वेदाध्ययनार्थं पुनरुपनयनमित्यपरे ॥ अन्ये तु एकेनैवोपनयनेन वेदत्रयाध्ययनाधिकारः ॥ अथर्ववेदाध्ययनार्थं द्वितीयमुपनयनमित्याहुः ॥ तेन ऋगादिवेदत्रयाध्यायिनो मुंडमांडूक्याद्यथर्वणोपनिषदो विना पुनः संस्कारं पठंति ते चिंत्याः ॥ युगपदनेकवेदारंभे नोपनयनावृत्त्यपेक्षेति सकृदुपनीत्या युगपत्सकलवेदारंभः सिध्यतीत्यपरे ॥ तत्रैकवेदाध्ययनानंतरं यद्वेदाध्ययनचिकीर्षा तद्वेदेतिकर्तव्यताकं पुनरुपनयनम् ॥ तत्र वपनं ब्रह्मौदनं मेधाजननं दीक्षा च कृताकृता ॥ परिदानांता क्रिया भवति ॥ अनध्यायादिके द्वितीयपुनरुपनयननिमित्ते सर्वमविकृतं यथोक्तकाले उपनयनम् ॥ अथ प्रायश्चित्तार्थे व्रतबंधे विशेषः ॥ तत्र निमित्तानंतरमेव करणे उदगयनपुण्यनक्षत्राद्युक्तकालो नापेक्ष्यते ॥ अन्यथा तु यथोक्तकालापेक्षा ॥ तत्र कर्ता पिता ॥ तदभावे पितृव्यादिः सपिंडः तदभावेन्यः कश्चित्॥ यत्र पुनरुपनयनमात्रं प्रायश्चित्तत्वेनोक्तं तत्र पर्षदुपदिष्टविधिना तदेव कार्यम् ॥ यत्र तु प्रायश्चित्तांतरसहितं विहितं तत्रोक्तविधिना प्रायश्चित्तं संस्कार्येण कारयित्वाचार्येण तस्योपनयनं कार्यम् ॥ यत्र च जातकर्मादिसंस्कारसहितमुपनयनं विहितं तत्र जातादिचौलांतसंस्कारान् कृत्वा कार्यम् ॥ पुनरुपनयने गायत्रीस्थाने तत्सवितुर्वृणीमह इत्यस्या उपदेशादाचार्येणास्या एव ऋचो द्वादशोत्तरसहस्रजपः कृच्छ्रत्रयं चोपनेतृत्वाधिकारार्थं कार्यम् ॥ तत्रास्य कृतोर्ध्वदैहिकस्य पुनः संस्कारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं जातकर्माद्युपनयनांतसंस्कारान् करिष्ये ॥ एवं निमित्तांतरेष्वपि संकल्प ऊह्यः सर्वसंस्कारोद्देशेन तंत्रेण नांदीश्राद्धादिश्मश्रुवपनानंतरं चौलकेशवपनम् ॥ मनुष्यादिक्षीरपानादिनिमित्तांतरे तु संस्कार्योमुकदोषपरिहारार्थं पर्षदुपदिष्टममुकप्रायश्चित्तं करिष्ये इति संकल्प्य तत्कुर्यात् ॥ आचार्यस्तु अस्यामुकदोषपरिहारार्थं पुनः संस्कारसिद्धिद्वारा श्री० पुनरुपनयनं करिष्ये इति संकल्प्योपनयनमात्रं कुर्यात् ॥ यत्रोपनयनमात्रोक्तिस्तत्र संस्कार्यस्य न संकल्पः किंत्वाचार्यस्यैव ॥ पुनरुपन-

यनं ग्रामाद्बहिः प्राच्यामुदीच्यां वा गत्वा कार्यम् ॥ नांदीश्राद्धांते मंडपदेवतास्थापनम् ॥ कृतमंगलस्नानं संस्कार्यं भोजयित्वा वपनपक्षे वपनस्नाने कारयित्वा अस्य प्रायश्चित्तार्थं पुनरुपनयनहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये अस्मिन्नन्वाहितेऽग्नावित्यादि नित्यवत् ॥ ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयने समंत्रकं वासोधारणं नित्यमन्यस्य वैकल्पिकम् ॥ ब्रह्मसूत्रधारणादिसूर्येक्षणांतं नित्यवत् ततो युवा सुवासा इत्येतन्मंत्रकं प्रदक्षिणमावर्तनादिवासोबद्धांजलिग्रहणांते प्रणवव्याहृतीनां ऋष्यादि स्मृत्वा तत्सवितुर्वृणी इत्यस्य मह श्यावाश्वः सवितानुष्टुप् ॥ पुनरुपनयने उपदेशे विनियोगः ॥ पादोर्धर्चशः सर्वामिति त्रिर्वाचयेत् ॥ ब्रह्मचारिणो मेखलादानादि नित्यवत् ॥ ब्रह्मचर्योपदेशांतम् अन्यस्य मेखलाजिनदंडधारणं पाक्षिकम् ॥ ब्रह्मचर्योपदेशो दिवा मास्वाप्सीरित्यंतः वेदमधीष्वेत्यादिकं न ततः स्विष्टकृदादि ॥ मेधाजननपक्षे तत्पर्यताग्निधारणं भिक्षापूर्वकानुप्रवचनीयः॥गायत्र्याः स्थाने तत्सवितुर्वृणीमह इति होमः ॥ त्रिरात्रव्रतांते यस्मिन्नाश्रमे पुनरुपनयनं तदाश्रमधर्मान्कुर्यात् ॥ यत्र पुनरुपनयनांते पुनर्विवाहः कृतौर्ध्वदैहिकादेः श्रूयते तत्र मेखलादिधारणपूर्वकं कतिचिद्दिनानि ब्रह्मचर्यं कृत्वोचितकाले समाप्य पूर्वभार्ययान्यया वा विवाहं कुर्यात् ॥ इति ऋग्वेदिनां पुनः संस्कारः ॥

अब तीसरे पुनः उपनयनमें जो कारण हैं उनको दिखाते हैं। एक वेदको पढकर जो दूसरे वेदकी पुनः पढनेकी इच्छा होय तो वेदवेदके प्रति उपनयन करना । और कोई यह कहतेहैं कि, जो अन्य वेदी ऋग्वेदको पढै तो पुनः उपनयन करावै । और कोई कहतेहैं कि, एकही उपनयनसे तीनों वेदोंके पढनेका अधिकार है। और कोई यह कहतेहैं कि, अथर्व वेदके पढनेके लिये पुनः उपनयन करना, तिससे जो ऋग्वेद आदि तीनों वेदोंके पढनेवाले मुण्डोपनिषत्, माण्डूक्योपनिषद्,आथर्वणोपनिषद् इनको विना पुनः संस्कारके पढतेहैं,वे विचारने योग्य हैं। अर्थात् उनका वह प्रमाद है। और कोई यह कहतेहैं कि,एक कालमें ही जो अनेक वेदोंका आरंभ होय तो पुनःसंस्कारकी अपेक्षा नहीं इससे एकबारही उपनयनसे समस्तवेदोंका आरंभ सिद्ध होताहै। तहां जो एक वेदके पढनेके अनन्तर जिस वेदके पढनेकी अपेक्षा हो उस वेदमें जो उपनयनकी विधि हो उसी विधिसे पुनः उपनयन करना । तिस पुनः उपनयनमें मुण्डन,ब्रह्मौदन, मेधाजनन और दीक्षा इनको चाहै करै चाहै न करै परन्तु परिदान (गायत्र्युपदेश) पर्यंत कर्म करना । जो अनध्यायआदिके वशसे पुनः उपनयन होय तो समस्त विकारसे रहित उपनयनकर्म यथोक्तकालपर करना । अब प्रायश्चित्तके लिये व्रतके नियममें विशेष कहतेहैं । जिस निमित्तसे प्रायश्चित्त करते हो उससे पीछेही जो प्रायश्चित्त करना होय तो, उत्तरायण सूर्य उत्तम नक्षत्र आदि कालकी अपेक्षा नहीं करनी । और जो कुछ काल पीछे करे तो शास्त्रोक्तकालमें करना उस प्रायश्चित्तको पिता न होय तो चाचा आदि सपिण्ड वेभी न होयँ तो अन्य कोई करै । और जहां उपन्यनमात्रही प्रायश्चित्तरूपसे कहा है वह पर्षद् (सभा) की बताई हुई विधिके अनुसार उसकोही करै । और जहां अन्य प्रायश्चित्तसहित उपनयन कहा है तहां पूर्वोक्त विधिसे संस्कार्य (बटु) का प्रायश्चित्त कराकर आचार्य यज्ञोपवीत करावै । और जहां

कि, जातकर्म आदि सहित उपनयन कहा है वहां जातकर्मसे मुण्डनपर्यंत संस्कारोंको करिके करना। पुनः उपनयनके विषे आचार्यको गायत्रीके स्थानमें 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इसका उपदेश करना कहा है। इससे आचार्यको उपनयन करानेके अधिकारकी सिद्धिके लिये इसी ऋचाका बारह अधिक एक हजार (१०१२) जप और तीन कृच्छ्र व्रत करने। तहां इसने और्ध्वदैहिक कर्म जो कियाथा इससे पुनः संस्कारके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये जातकर्मसे लेकर उपनयनपर्यन्त संस्कारोंको करताहूं इस प्रकार संकल्प करै। इसीसे अन्य निमित्तोंसे जो पुनः संस्कार हो वहांभी संकल्पका ऊह करना। सब संस्कारोंका तंत्ररूपसे एक नांदीमुखश्राद्ध करके उससे लेकर अन्य कर्म तथा श्मश्रु (डाढी मूंछ) मुण्डन किये पीछे चूडाकर्म और केशोंका मुण्डन कराना। नारी आदिके दूध पीनेसे जो प्रायश्चित्त है उसमें संस्कारके योग्यमें अमुकदोषकी निवृत्तिके लिये पर्षद्के बताये हुए अमुक प्रायश्चित्तको करताहूं ऐसा संकल्प करके उस प्रायश्चित्तको करै। और आचार्य तो इसके अमुक दोषके परिहारके लिये पुनः संस्कारके करनेद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये पुनः उपनयनको करताहूं इस प्रकार उपनयन मात्रको करै। और जहां उपनयन मात्रही करनाहो वहां संस्कार्यको संकल्प नहीं करना, किन्तु आचार्यकोही करना चाहिये। इस पुनः उपनयनको ग्रामसे वाहिर पूर्व वा उत्तरदिशामें करना। नांदीश्राद्ध कियेपीछे मण्डपमें देवताओंको स्थापन करै। मंगलस्नान संस्कारीको करानेके अनंतर भोजन करावै और जो मुण्डनका पक्ष है तब मुण्डन और स्नान कराकर इसके प्रायश्चित्तके लिये जो पुनः उपनयन उसके होममें देवताओंके परिग्रहके लिये अन्वाधानको करताहूं और इस अन्वाहित अग्निके विषे होम करताहूं इत्यादि नित्य कर्मके समान करै। ब्रह्मचारीके पुनः उपनयनके विषे मंत्रसहित वस्त्रोंका धारण करना यह नित्य अर्थात् आवश्यक है और अन्य वैकल्पिक है उसे करना नभी करना। ब्रह्मसूत्रके धारणसे लेकर सूर्यके अवलोकन पर्यंत कर्मको नित्यकर्मके समान करै। फिर 'युवा सुवासा०' इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा क्रमसे आवर्तन (धोती) आदि वस्त्रको बांधकर अंजलिके ग्रहणके अन्तमें ॐकार और व्याहृति इनके ऋषियोंका स्मरण करके इसप्रकार कहै कि, 'तत्सवितुर्वृणीमहे०' इस मन्त्रका श्यावाश्व सविता ऋषि है, अनुष्टुप् छन्दहै इसका पुनः उपनयनके विषे जो उपदेश है उसमें विनियोग देताहूं। फिर 'पादोर्धर्चशःसर्वाम्' इसका तीनवार उपदेश करै ब्रह्मचारीको मेखलादानआदि ब्रह्मचर्यके उपदेशपर्यंत कर्म नित्यकर्मकी समान करना। और अन्यको मेखला मृगचर्मआदिका धारण विकल्पसे समझना। दिनमें मत सोना इसतक ब्रह्मचर्यका उपदेश वेद पढना इससे लेकर नहीं करना। फिर स्विष्टकृत्आदि होम करै। और जब मेधाजनन भी करना यह पक्ष है तब तो मेधाजननतक अग्निको स्थिर रखना और भिक्षापूर्वक अनुप्रवचनीय करना। गायत्रीके स्थानपर 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस मन्त्रसे होम करना। तीन रात्रिके व्रत किये पीछे जिस आश्रममें पुनः उपनयन हुआ हो तिस आश्रमके धर्मोंको करै। और जिस जीतेका और्ध्वदैहिक किसीने मरनेको सुनकर भूलसे करलिया हो उसका जो पुनः संस्कारके अन्तमें पुनर्विवाह शास्त्रसे सुना है तिसमें मेखलाआदिको धारण करके कितनेही दिनतक ब्रह्मचर्यको करके और उसे उचितसमयपर समाप्त करके पहिली स्त्री वा अन्यस्त्रीके साथ विवाह करै। यह ऋग्वेदियोंका पुनः संस्कार समाप्त हुआ॥

अथ यजुर्वेदिनां पु० ।

तत्र बौधायनो ब्रह्मचारिणः पितृज्येष्ठाभ्यामन्योच्छिष्टभक्षणे स्त्रिया सह भोजने मधुमांसश्राद्धसूतकान्नगणान्नगणिकान्नाशने पुनरुपनयनमित्याद्युक्त्वाग्निमुखं कृत्वाज्याक्तपालाशसमिधमादाय वाचयति पुनस्त्वादित्या० कामाय स्वाहेति यन्म आत्मनो मिंदाभूदग्निः पुनरग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्यां हुत्वा चरुं पक्त्वा जुहोति सप्तते अग्ने० घृतेन स्वाहेति ततो येन देवाः पवित्रेणेति तिसृभिरुपहोमस्ततः स्विष्टकृत्प्रभृति सिद्धमाधेनुवरप्रदानात् ॥ अथापरमापरिधानात्कृत्वा पालाशीं समिधमादाय व्रात्यप्रायश्चित्तं जुहोति व्याहृतीर्जुहोति ॥ अथापरो ब्राह्मणवचनात् सावित्र्यां शतकृत्वोभिमंत्रितं घृतं प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भवतीत्यादिकमवदत् अत्रोक्तपक्षाणां शक्ताशक्तभेदेन व्यवस्था ॥ इदं कौस्तुभे द्रष्टव्यम् ॥ एवं शाखांतरेष्वपि वपनमेखलाजिनदंडभैक्ष्यचर्याव्रतादिकं वैकल्पिकं व्यवस्थयानुष्ठाय स्वस्वशाखोक्तोपनयनं कार्यम् ॥

अब यजुर्वेदियोंके संस्कारको कहते हैं। कि, इसमें बौधायनने जिस ब्रह्मचारीने पिता और ज्येष्ठभाईसे अन्यका उच्छिष्ट भोजन करलिया हो वा स्त्रीके साथ भोजन करलियाहो वा मधु, मांस,श्राद्ध और सूतकका अन्न,गणान्न,गणिकान्न, खालिया हो उसका उपनयन दूसरी बार करना। ऐसा कहकर कहाहै कि, अग्निके तरफ मुखको कर और घीसे भीगीहुई ढाककी लकडियोंको लेकर'पुनस्त्वादित्या० कामाय स्वाहा'ऐसा पढै। फिर'यन्म आत्मनो मिन्दाभूदग्निः पुनरग्निश्चक्षुरदात्०' इन दो ऋचाओंसे होम करके और चरुको पकाकर 'सप्त ते अग्ने० घृतेन स्वाहा' इसमन्त्रसे होम करै । फिर 'येन देवा पवित्रेण' इन तीन ऋचाओंसे होम करै। फिर स्विष्टकृत् होमसे धेनु और वर देने पर्यंत कर्मको करै । अब दूसरी यह बात है कि, परिधानपर्यंत कर्मको पलाशकी समिधाओंसे व्रात्य (जो सोलह वर्षतक जनेऊ न ले) प्रायश्चित्तरूप होम व्याहृतियोंसे करै । अब और यहभी है कि, ब्राह्मणके वचनसे गायत्रीमन्त्रसे सौबार घीको पढकर प्रायश्चित्तवाला होजाताहै । यह इन उक्तपक्षोंकी शक्त और अशक्त अर्थात् सामर्थ्य होय तो पहिलेको और न होय तो दूसरेको इसप्रकार व्यवस्था है । यह बात कौस्तुभग्रंथमें देखनी । इसीप्रकार अन्यशाखाओंमेंभी मुण्डन, मेखला, मृगचर्म, दण्ड, भिक्षाको जाना इनको विकल्पसे जो कहा है उसको शक्तआदि भेदकी व्यवस्थासे करके अपनी शाखामें कहे उपनयनकर्मको करै ॥

अथ ब्रह्मचारिधर्माः ।

तत्र संध्यात्रयमग्निपरिचरणं भैक्षं च नित्यम् ॥ तत्राग्निकार्यं प्रातः सायं च सायमेव सकृद्वा ॥ तत्र पलाशखदिराश्वत्थशमीसमिधः श्रेष्ठास्तदलाभेऽर्कवेतसाम् भवच्छब्दपूर्विका भिक्षा विप्राणाम् ॥ सा च विप्रगृहेष्वेव ॥ आपदि शूद्रगृहेषु आमान्नं गृह्णीयात् हव्ये श्राद्धभिन्नकव्ये चाभ्यर्थितो भुंजीत ॥ अस्य ब्रह्मयज्ञोपि नित्यः ॥ स चोपाकरणात्पूर्वं गायत्र्या कार्यः ॥ गुरूच्छिष्टं मध्वादिकं निषिद्धम-

पि तदन्यापरिहार्यरोगनिवृत्त्यर्थं भक्षणीयं निषिद्धान्यत् गुरूच्छिष्टं त्वनौषधमपि भक्ष्यम् ॥ एवं ज्येष्ठभ्रातुः पितुश्चोच्छिष्टेषु ज्ञेयम् ॥ दिवास्वापो नेत्रे कज्जलमुपानच्छत्रं मंचादौ शयनं च वर्ज्यम् ॥ "तांबूलाभ्यंजनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥" मधुसूतकान्नश्राद्धान्नादेर्निषेधाः पुनःसंस्कारप्रकरणोक्ता अनुसंधेयाः ॥ "मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः ॥ कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी विधारयेत् ॥" मेखलोपवीतादौ त्रुटिते जले प्रास्यान्यद्धारयेत् ॥ यज्ञोपवीतनाशे मनोज्योतिरित्यनेन व्रातपतिभिश्चेति चतस्र आज्याहुतीर्जुहुयादित्युक्तम् ॥ अस्य गुरुपरिचर्याप्रकारोऽन्यत्र ज्ञेयः ॥

अब ब्रह्मचारियोंके धर्मोंको कहते हैं। कि तीनों संध्याओंमें अग्निकी सेवा, नित्य भिक्षाटन करना, अग्निका कर्म प्रातःकाल और सायंकाल अथवा सायंकालको ही एकबार करना, तिस अग्निकर्म होमके विषे पलाश, खैर, पीपल, छोंकर इनकी समिधा श्रेष्ठ होती हैं । जो ये न मिलैं तो आक और वेतकीभी ग्रहण करनी। ब्राह्मणोंको भिक्षा भवत् शब्दका पूर्व उच्चारण करके करनी सो वहभी ब्राह्मणोंकेही घरमें अन्यत्र नहीं। जो आपत्तिकाल होय तो शूद्रोंके घरसे आमान्न (कच्चा अन्न) लेकर भोजन करै। हव्य और श्राद्धसे अन्यत्र कव्यको निमंत्रणसे भोजन करै। इसको ब्रह्मयज्ञ करनाभी नित्यकर्म है वह उपाकर्मसे पूर्व गायत्रीमंत्रसे करना। गुरुके उच्छिष्ट मधु आदि यद्यपि निषिद्ध हों तथापि जो इस उच्छिष्टसे अतिरिक्त किसी औषध आदिसे रोगनिवृत्त न हो सकै तो औषधरूपसे भक्षण करले । और मधुआदिसे भिन्न उच्छिष्ट तो औषधके बिनाभी भोजन करले । इसी प्रकार पिता और ज्येष्ठभाईके उच्छिष्टमेंभी समझना । दिनमें सोना, नेत्रोंमें काजर, जूता, छतरी, पलंग आदिपर सोना इनको वर्ज दे। ताम्बूल, उबटना, कांसीके पात्रमें भोजन इनको संन्यासी, ब्रह्मचारी और विधवा स्त्री ये वर्ज दें।मधु सूतक श्राद्ध आदिके अन्न आदिके निषेध पुनःसंस्कारप्रकरणमें कह आये वे समझने । मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत, कौपीन, कटिसूत्र इनको ब्रह्मचारी नित्य धारण करै। जो मेखला, जनेऊ टूटजाय तो इनको जलमें फैंककर अन्य ग्रहण करले। जो यज्ञोपवीतका नाश होजाय तो 'मनो ज्योतिः०' इससे 'व्रातपतिभिश्च०' इनसे चार आहुति देनी।यह पूर्व कह आये इसको गुरुकी सेवाका प्रकार अन्य शास्त्रसे समझना ॥

अथ ब्रह्मचारिव्रतलोपे प्रायश्चित्तम्।

संध्याग्निकार्यलोपेऽष्टसहस्रगायत्रीजपः ॥ क्वचित्सकृल्लोपे मानस्तोकेतिमंत्रस्य शतं जप उक्तः ॥ भिक्षालोपेऽष्टशतमभ्यासे द्विगुणं पुनः संस्कारश्च ॥ मधुमांसाद्यशने उक्तम् ॥ स्त्रीसंगे गर्दभपशुः एकानेकव्रतलोपसाधारणमृग्विधाने ॥ "तं वो धिया जपेन्मंत्रं लक्षं चैव शिवालये ॥ ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत्पूर्णमेति तत् ॥" उपाकर्म कृत्वा प्रागुक्तविद्यारंभकालेक्षरारंभोक्तविष्ण्वादिपूजाप्रकारेण वेदारंभः कार्यः ॥ द्विजस्त्रीणां युगांतरे मौंजीबंधो वेदाध्ययनं चासीत् ॥ कलियुगे तु नैतद्द्वयम् ॥ अतः स्त्रीणां वेदोच्चारणादौ दोषः ॥

अब जो ब्रह्मचारीके व्रतका लोप होजाय तो प्रायश्चित्त कहते हैं । सन्ध्याके समयका जो अग्निका कार्य है उसका लोप होजाय तो आठ हजार (८०००) गायत्री मंत्रका जप करै । और कहीं एकबार लोप होनमें 'मानस्तोक०' इसमंत्रका सौ बार जप करना लिखा है । भिक्षाका लोप होजाय तो आठसौ (८००) जो कईबार होजाय तो दुगुणा जप और पुनः संस्कार कराना । मधु मांस आदिके भक्षणमें प्रायश्चित्त कह आये स्त्रीके संगमें गर्द्धभ पशु करे, एक अनेक व्रतोंके लोपमें यह साधारण प्रायश्चित्त ऋग्विधानमें कहाहै कि, तंवोधिया, इस मन्त्रका शिवालयमें लक्ष जप करै तो जो ब्रह्मचारीके व्रतमें न्यूनता रहगई हो वह सब पूर्णताको प्राप्त होजाती है । उपाकर्म कर्मको करके पूर्व कहे विद्यारंभके मुहूर्तमें अक्षरोंके आरंभमें जो विष्णुआदिकी पूजा कहीहै उससे करके वेदका आरंभ करना । द्विजोंकी स्त्रियोंकाभी अन्य युगोंमें उपनयन और वेदारंभ होता था परन्तु कलियुगमें इन दोनोंका अधिकार नहीं इससे स्त्रियोंको वेदके उच्चारण आदि करनेमें दोष है ॥

अथानध्यायाः ।

ते च नित्यानैमित्तिकाश्च प्रायेण मौंजीप्रकरणे उक्ताः ॥ ततोन्येपि उभयविधानध्याया बहवो निबंधेषूक्तास्तेत्र न प्रपंच्यंते ॥ कलिकालेस्मिंस्तावदनध्यायपालनस्य दुर्मेधसामशक्यत्वात् ॥ तथा च हेमाद्रौ स्मृतिः ॥ "चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपत्स्वेव सर्वदा ॥ दुर्मेधसामनध्यायास्त्वंतरागमनेषु च" इति ॥ अतः कलौ प्रतिपद्द्वयमष्टमीद्वयं चतुर्दशीद्वयं पूर्णिमा दर्शोऽयनसंक्रांतिरित्येतावत एवानध्यायांस्त्यक्त्वा वेदशास्त्रादिकमध्येतव्यम् ॥ पुंसां प्रायोल्पप्रज्ञत्वात् शिष्टाचारोप्येवमेव ॥ पूर्वदिने सायं परत्र प्रातश्च त्रिमुहूर्तानध्यायतिथिसत्त्वे उदयेस्तमये वापीत्यनेन दिनद्वयेऽनध्यायप्राप्तौ वचनांतरं केचिदाहुः ॥ क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकास्तावदेव त्वनध्यायो न तन्मिश्रे दिनांतर इति ॥ इदमप्यल्पप्रज्ञविषयम् ॥ चतुर्थीसप्तम्यादौ प्रदोषनिर्णय उक्तः ॥ प्रदोषेषु 'न स्मरेन्न च कीर्तयेत' इत्युक्तेरितरानध्यायतो दोषाधिक्यम् ॥ "अनध्यायस्तु नांगेषु नेतिहासपुराणयोः ॥ न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥ नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेपि च ॥ नानध्यायोस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥"

अब अनध्यायोंको कहते हैं । कि, वे नित्य, नैमित्तिक पूर्व प्रायः मौंजीप्रकरणमें कह आये और उनसे अन्यभी दोनों प्रकारके अनध्याय अन्यशास्त्रोंमें लिखे हैं परन्तु उनको यहां ग्रंथके बढनेके भयसे नहीं लिखते । क्योंकि, कलियुगमें मलिन बुद्धिवाले उतने अनध्यायोंको नहीं पालसक्ते । सोई हेमाद्रिमें स्मृति कही है कि, मलिनबुद्धिवालोंको चतुर्दशी, अष्टमी, पर्व (अमा पूर्णिमा), प्रतिपदा और जब पढते समय बीचमें बिलाई आदि निकल जाय वह ये अनध्याय हैं । इससे कलियुगके विषे दोनों प्रतिपदा, दोनों अष्टमी, दोनों चौदश, पूर्णिमा, अमावस्या, अयन, संक्रांति इतने अनध्यायोंको छोडकर वेद शास्त्र आदिको पढना । क्योंकि प्रायः मनुष्य थोडीबुद्धिवाले होते हैं और शिष्टाचार भी इसीप्रकार हैं । पहिले दिन सायंकालके समय और उससे दूसरे दिन प्रातःकालके समय तीन मुहूर्त अनध्यायकी तिथि

होय तो और उदय वा अस्तके समय अनध्यायकी तिथि होय तो दोनोंदिन अनध्याय है इसवचनसे दोनोंदिन अनध्याय जो पाया उसके विषयमें किसीने यह वचन कहाहै कि, किसी देशमें जितनी अनध्यायतिथिकी घडी हों उतनेंही समयतक अनध्याय उससे मिलेहुए अन्य दिनमें नहीं। यह वचनभी अल्पबुद्धिवालोंके विषयमेंही है। चतुर्थी, सप्तमीआदिमें प्रदोषका निर्णय कहआये। प्रदोषोंके विषे न पढै न मनमें स्मरण करै। इस वचनसे अन्य अनध्यायोंकी अपेक्षा अधिक दोष होताहै। अंग, इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र इनमें पर्वसे अन्य कोई अनध्याय नहीं होता। नित्यजप तथा काम्यजप यज्ञके विषे पारायण इनमें वेदोंका अनध्याय नहीं किन्तु पढने पढानेमें होता है॥

अथाध्ययनधर्माः।

वेदारंभेवसाने च गुरोः पादोपसंग्रहणम्॥ आदौ प्रणवमुच्चार्य वेदमधीत्यांते प्रणवमुच्चार्य भूमिं स्पृष्ट्वा विरमेत्॥ रात्रेः प्रथमयामे चरमयामे च वेदाध्ययनम्॥ "यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते॥" गुरुं पितरं मातरं च मन्येत कदापि न द्रुह्येत॥ "अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियंते शिष्या वाचा मनसा कर्मणा वा॥ यथैव तेन गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत्॥" इत्यध्ययनधर्माः॥

अब पढनेके धर्मोंको कहते हैं। वेद पढनेके आदि और अन्तमें गुरुके चरणोंको ग्रहण करै। आदि में ॐकारका उच्चारण करके वेद पढनेका आरम्भ और अन्तमें ॐकारका उच्चारण और पृथिवीका स्पर्श करके विरामको प्राप्त होवै। रात्रिके पहिले प्रहर और अन्तके प्रहरमें वेदको पढै। और जो बीचके दोपहरोंमें सोवै तो वह ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै। गुरु, माता, पिता इनका सत्कार करै कदाचित् इनके साथ द्रोह न करै। जो गुरुसे पढकर शिष्य मन, वाणी और कर्म इनसे गुरुका आदर नहीं करे तो जैसे गुरुके भोगनेमें नहीं आते तिसीप्रकार शास्त्रभी उनको नहीं भोगता। अर्थात् उनको शास्त्रफलीभूत नहीं होताहै॥ अध्ययनके धर्म समाप्त हुए॥

अथ व्रतानि।

तानि महानाम्नीव्रतमहाव्रतोपनिषद्व्रतगोदानव्रताख्यानि चत्वारि क्रमेण जन्मतस्त्रयोदशादिषु वर्षेषूत्तरायणे चौलोक्ततिथिनक्षत्रवारादिषु कार्याणि॥ अत्र विस्तृतप्रयोगाः कौस्तुभादौ स्वस्वगृह्येषु च द्रष्टव्याः॥ एतेषां लोपे प्रत्येकमेकैकं कृच्छ्रं चरित्वा गायत्र्या शताज्याहुतीर्जुहुयात्॥ त्रीन् षट् द्वादश वा कृच्छ्रान् कुर्यात् इत्यन्यत्र॥

अब व्रतोंको कहतेहैं। कि, वे व्रत महानाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत और गोदानव्रत इसप्रकार चारहैं। ये चारों जन्मसे त्रयोदश आदि वर्षोंमें उत्तरायण जब सूर्यहों तब मुण्डनमें कहे तिथि, नक्षत्र और वारोंके विषे करने। इनमें विस्तारसे प्रयोग, कौस्तुभआदि ग्रन्थ अथवा अपने गृह्यसूत्रोंमें देखने। इनका लोप होय तो एकएकके लिये एकएक कृच्छ्र व्रतको

करके गायत्रीमंत्रसे सौ (१००) घीकी आहुति दे । अथवा तीन छः वा बारहकृच्छ्रव्रतोंको करै । यह अन्यग्रंथमें समझना ॥

अथ समावर्तनम्।

गुरवे क्षेत्राद्यन्यतमं दत्त्वा तदनुज्ञया स्नायात् ॥ स्नानं नाम समावर्तनम् ॥ तानि-च क्षेत्रं हेम गौरश्वश्च च्छत्रोपानहौ धान्यं वस्त्रत्रयं शाकमित्येतानि एषु यद्गुरोः प्रियं त-देयम् ॥ दानं विनैव गुरुप्रीतौ तदनुज्ञयैव स्नायात॥क्षेत्रादिनापि न विद्यानिष्क्रयः॥ " एकैकमक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ॥ पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा त्व-नृणी भवेत् " इत्युक्तेः ॥ स च स्नातकस्त्रिविधः ॥ विद्यास्नातको व्रतस्नातक उभय स्नातक इति ॥ तत्रैकं द्वौ त्रीन् चतुरो वा वेदान्वेदैकदेशं वाधीत्य तदर्थं च ज्ञात्वा द्वादशवर्षादिब्रह्मचर्यकालावधेः प्रागेव स्नाति स विद्यास्नातकः ॥ उपनयनव्रतसावि-त्रीव्रतवेदव्रतान्यनुष्ठाय वेदसमाप्तेः पूर्वमेव स्नातो व्रतस्नातकः ॥ द्वादशवर्षादिब्रह्म-चर्यसमाप्त्या वेदं समाप्य स्नातो विद्याव्रतोभयस्नातकः ॥ तत्रोपनयनोत्तरं मेधाज-ननपर्यंतं त्रिरात्रद्वादशरात्रादिव्रतमुपनयनव्रतम् ॥ मेधाजननोत्तरमुपाकर्मान्तं ब्रह्म-चारिधर्मानुष्ठानं सावित्रीव्रतम् ॥ तदुत्तरं वदाध्ययनार्थं द्वादशवर्षादिकालावच्छिन्नं व्रतं वेदव्रतम् ॥ स्वाध्यायोऽध्येतव्य इति विधेरर्थज्ञानपर्यंतत्वाद्वेदार्थज्ञानं विना वेदा-ध्ययनमात्रेण समावर्तनेऽधिकारो नेति पूर्वमीमांसकाः॥वेदग्रहणमेव विधिफलम्॥पूर्व-कांडार्थज्ञानं कर्मानुष्ठानाक्षिप्तम् ॥ उत्तरकांडार्थज्ञानं काम्यश्रोतव्यविधिप्राप्तमित्युत्तर-मीमांसकाः॥तत्र संहिताब्राह्मणं च मिलित्वैको वेदः आरण्यकांडब्राह्मणांतर्गतमेव ॥ संपूर्णैकवेदाध्ययनेष्वशक्तो वेदैकदेशं पठेत् ॥ अत्यशक्तेन संहितायाः प्रथमचरम-सूक्ते कतिपयसूक्तानां प्रथमा ऋचः सर्वसूक्तानां प्रथमा ऋचो वाध्येतव्याः ॥ एवं वेदैकदेशाध्ययनोत्तरं समावृतो विवाहितो वा ब्रह्मचर्योक्तनियमेन वेदाध्यनं कुर्यात् ॥ तत ऋतौ भार्यागमनं कार्यम्॥ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृच्छ्रत्रयं कृत्वा महाव्याहृ-तिहोमं च कृत्वा समावर्तनं कार्यम् ॥ एतच्च संध्याग्निकार्यभिक्षालोपशूद्रादिस्पर्श-कटिसूत्रमेखलाजिनत्यागदिवास्वापांजनपर्युषितभोजनादिव्रतभंगेषु अल्पकालमल्प-व्रतभंगे ज्ञेयं बहुधर्मलोपे तु तंवोधियानव्यस्याशविष्ठामिति मन्त्रस्य लक्षजपः शिवा-लये इत्युक्तम् ॥ एवं च महानाम्न्यादिव्रतलोपस्य ब्रह्मचर्यव्रतलोपस्य च प्रायश्चित्तो-त्तरं समावर्तनाधिकारः ॥

अब समावर्तनको कहतेहैं । कि, गुरुको क्षेत्रआदिमेंसे एक किसी पदार्थको देकर स्नान करै । इस स्नानको ही समावर्तन कहतेहैं । वे क्षेत्र आदि ये हैं कि, क्षेत्र, सोना, गौ, घोडा, छत्र, उपानह, धान्य, तीन वस्त्र, और शाक इनमें जो गुरुको अच्छा लगै उसे दे । और जो देनेके विना ही गुरु प्रसन्न होयँ तो उनकी आज्ञासे स्नान करले । क्योंकि, विद्याका निष्क्रय (बदला) क्षेत्र आदिसेभी नहीं दियाजाता । क्योंकि, यह वचन है कि, जो गुरु एक एक अक्षर-

को शिष्यके लिये निवेदन करताहै सो पृथिवीपर वह द्रव्य नहीं कि जिसे देकर उससे अनृणी होजाय। वह स्नातक तीनप्रकारके होतेहैं कि, विद्यास्नातक, व्रतस्नातक और तीसरा उभयस्नातक तिनमें जो एक, दो, तीन वा चारों वेद वा उनका थोडासा भाग पढकर और उसके अर्थको जानकर बारहवर्ष आदि ब्रह्मचर्यके कालकी अवधि है उससे पूर्वही जो स्नान करले वह विद्यास्नातक। और जो उपनयनका गायत्रीव्रत और वेदव्रतोंको करके वेदकी समाप्तिसे प्रथमही स्नान करले वह व्रतस्नातक। और जो द्वादशवर्ष आदिका ब्रह्मचर्य और वेदको समाप्त करै वह विद्या और व्रत इन दोनोंका कर्ता उभयस्नातक कहाताहै । तिसमें जनेऊसे पीछे मेधाजननपर्यंत जो तीनरात्रि वा बारहरात्रिआदि व्रत कियाजाताहै वह उपनयनव्रत और मेधाजननसे पीछे उपाकर्मतक जो ब्रह्मचारीके धर्मोंको वर्तना वह सावित्रीव्रत और इनसे पीछे जो वेद पढनेके लिये बारहवर्ष आदिका जो व्रत है वह वेदव्रत कहाताहै । पूर्वमीमांसक तो यह कहतेहैं कि, वेदको पढना चाहिये इस विधिवचनको वेदके अर्थको जाननेपर्यन्त पढनेके विषयमें होनेसे जो विना अर्थके जाने केवल वेदके पाठ मात्र पढनेसे समावर्तनके विषे ब्रह्मचारीका अधिकार नहीं क्योंकि, वेदके अर्थका ज्ञान होना ही विधिका फल है । और उत्तरमीमांसक यह कहतेहैं कि, वेदका ग्रहणही विधिका फल है कर्मकांडके अर्थका ज्ञान कर्म करनेसे ही होसकताहै उत्तरकांडके अर्थका ज्ञान तो कामनाके लिये सुनने योग्य है । तिसमें संहिता और ब्राह्मणभागको मिलकर एक वेद होताहै । और आरण्यकाण्ड तो ब्राह्मणभागके अन्तर्गत है और जो संपूर्ण एक वेदके पढनेमें समर्थ न होय तो उसके कुछ थोडेसे भागको पढै । और जो अत्यंतही असमर्थ होय तो संहिता पहिला और पिछला इसप्रकार दो सूक्तोंको अथवा कितनेही सूक्तोंकी पहिली ऋचा वा सब सूक्तोंकी पहिली ऋचा पढनी । इसीप्रकार वेदके एक देशके पढने पीछे जो समावर्तन करै वा जिसने विवाह किया हो वह फिर ब्रह्मचर्यमें कहे नियमोंके अनुसार वेदको पढै । उस वेदाध्ययनमें ऋतुहोनेपर स्त्रीसे गमन करै । ब्रह्मचारीव्रतके लोपकी शुद्धिके लिये तीन कृच्छ्रव्रत और महाव्याहृतियोंसे होमको करै । समावर्तन करना यह प्रायश्चित्त सन्ध्यासमयकी अग्निके कार्यका नाश, भिक्षालोप, शूद्रआदिसे स्पर्श, कटिसूत्र, मेखला, मृगचर्म इनका त्याग, दिनमें सोना, अंजन लगाना, पर्युषित (वासी) अन्नका भक्षण इत्यादि व्रतके लोप करनेवाले निमित्तसे होजाय तो उसके विषयमे समझना।और जो बहुतसे धर्मोंका लोप होगया तो 'तंवोधिया न व्यस्याशविष्ट०' इस मंत्रका एकलक्ष शिवालयमें जपकरना पूर्व कहआये । इसीप्रकार महानाम्नी आदि व्रतोंका लोप और ब्रह्मचर्यव्रतका लोप इनके प्रायश्चित्तके अनन्तर समावर्तनका अधिकार है ॥

अथ समावर्तनकालः ।

तत्रोपनयनोक्तकाले समावर्तनामिति बहवो ज्योतिर्ग्रंथाः तेनानध्याये प्रदोषदिने भौमशनिवारयोः पौषाषाढयोर्दक्षिणायने च न भवति॥मार्गशीर्षे विवाहप्रसक्तौ दक्षिणायनेपि भवति ॥ अन्यथा "अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः" इति निषेधातिक्रमापत्तेः ॥ अन्ये तु मौञ्ज्युक्तकालोपादाने मूलाभावात् रिक्तात्रयपूर्णिमामावास्याष्टमीप्रतिपद्भिन्नतिथिषु शुक्लेंत्यत्रिकभिन्नकृष्णे च गुरुशुक्रास्तादिदिनक्षयभद्राव्य-

तीपातादिदोषशून्ये शुभवारे समावर्तनं कार्यम् ॥ नात्र प्रदोषसोपपदादितिथिवर्जनमावश्यकमित्याहुः ॥ पुष्यपुनर्वसुमृगरेवतीहस्तानुराधोत्तरात्रयरोहिणीश्रवणविशाखाचित्राः श्रेष्ठाः॥एतदलाभे मौञ्ज्युक्तभानि क्वचिद्भौमशनिवारौ सिन्धावुक्तौ॥अथ मणिकुंडलवस्त्रयुगच्छत्रोपानद्युगदंडस्रगुन्मर्दनानुलेपनांजनोष्णीषाणि आत्मने आचार्याय च संपाद्यालाभे आचार्यायै वा संपादयेत् ॥ देशकालौ संकीर्त्य मम ब्रह्मचर्यनियमलोपजनितसंभावितदोषपरिहारेण समावर्तनाधिकारसंपादनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमाज्यहोमपूर्वकं कृच्छ्रत्रयमहानाम्न्यादिव्रतचतुष्टयलोपजनितप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमेकैकं कृच्छ्रं च गायत्र्याज्यहोमपूर्वकं तंत्रेणाहमाचरिष्ये इति संकल्प्याग्निप्रतिष्ठापनादि चक्षुषी आज्येनात्र प्रधानम् ॥ अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चतसृभिराज्याहुतिभिः ॥ अग्निं पृथिवीं महांतमेकयाज्याहुत्या वायुमन्तरिक्षं महांतमेकया० आदित्यं दिवं महांतमेकयाज्या० चन्द्रमसं नक्षत्राणि दिशो महांतमेकया० अग्निं द्विः० विभावसुं शतक्रतुमग्निमग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चेत्यष्टावेकैकयाज्याहुत्या शेषेणेत्यादि ॥ आज्यभागांते व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा ॥ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा अग्नये पृथिव्यै महते इदमित्यादि यथान्वाधानं त्यागः ॥ भुवो वायवे चांतरिक्षाय च महते च स्वाहा॥सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा ॥ भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा ॥ चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यश्च महत इदं पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा ॥ पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा ॥ यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा ॥ सर्वं पाहि शतक्रतो स्वाहा ॥ पुनरूर्जानिवर्तस्वपुनरग्न इहायुषा ॥ पुनर्नः पाह्यंहसः स्वाहा ॥ सहरय्या निवर्तस्वाग्नेपिन्वस्वधारया ॥ विश्वप्स्निया विश्वतस्परि स्वाहा ॥ पुनर्व्यस्तसमस्तव्याहृतिचतुष्टयम् ॥ व्रतचतुष्टयार्थं गायत्र्याज्यहोमः ॥ कृच्छ्रत्रयगोनिष्क्रयं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् ॥ महानाम्न्यादिलोपे प्रत्येकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा गायत्र्याज्याहुतीर्हुत्वा एकैकं कृच्छ्रं चरेत् ॥ इति प्रायश्चित्तप्रयोगः ॥

अब समावर्तनके कालको कहतेहैं। तिसमें बहुतसे ज्योतिषग्रंथोंमें तो यह लिखा है कि, उपनयनमें कहे कालके विषे समावर्तन करना। तिससे अनध्याय प्रदोषका दिन, मंगल, शनिवार, पौष, आषाढ मास और दक्षिणायन सूर्य इनमें समावर्तन नहीं करना। और जो मार्गशिर मासमें विवाह आजाय तो दक्षिणायनसूर्यमेंभी करना। अन्यथा आश्रमसे रहित एकदिन भी द्विज रहिकै इसनिषेधका अवलंघन होगा। और अन्य तो यह कहते हैं कि, यज्ञोपवीतमें कहे कालमें करनेका कोई प्रमाण नहीं। इससे रिक्ता, त्रयोदशी, पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी, प्रतिपदा इनसे भिन्न तिथि, शुक्लपक्ष, अन्तकी पांच तिथियोंको छोडकर कृष्णपक्ष,गुरु, शुक्र आदिका अस्त न हो, क्षयतिथि, भद्रा, व्यतीपात इनसे रहित शुभ वार इनमें समावर्तन करना। इसमें प्रदोष और सोपपदादि तिथियोंका वर्जना आवश्यक नहीं। पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिर, रेवती, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, विशाखा, चित्रा ये नक्षत्र

श्रेष्ठ हैं । यदि ये नक्षत्र न मिलैं तो यज्ञोपवीतके नक्षत्रोंमें करना । कहीं सिन्धुग्रन्थमें मंगल और शनैश्चरभी ग्राह्य लिखेहैं । अब मणिकुण्डल दो २ वस्त्र,* छतरी, पादत्राणका जोडा, दण्ड, माला, मलने और लेपनीय द्रव्य, पगडी, अंजन ये अपने और आचार्यके लिये और जो न मिलैं तो आचार्यमात्रको दे । फिर देशकालका स्मरण करके मेरे ब्रह्मचर्यव्रतके लोपसे उत्पन्नहुए सम्भावितदोषकी निवृत्तिद्वारा तथा समावर्तनमें अधिकारकी सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये घृतके होमपूर्वक तीन कृच्छ्रव्रतोंको और महानाम्नीआदि चार, व्रतोंके लोपजनित दोषके निवारणके लिये प्रतिसंस्कारमें एक २ कृच्छ्र और गायत्रीमंत्रसे आज्यहोमको करताहूं, इसप्रकार संकल्प करके अग्निके स्थापनके अनन्तर 'चक्षुषीआज्येन०' इस मंत्रसे, प्रधानरूप अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति इनको चार २ घीकी आहुति अग्नि, पृथिवी और महान् इनको एक एक । वायु, अन्तरिक्ष, महान् इनको एक २ । आदित्य, दिव, महान, इनको एक २ । चंद्रमा, नक्षत्र, दिशा, महान् इनको एक २ । अग्निको दो विभावसु, शतक्रतु, अग्नि, अग्नि, अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति इनआठों (८) को एक एक घीकी आहुति दे । और शेष घीसे स्विष्टकृत् होम करै । फिर आज्यभागके अन्तमें व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे अन्वाधानकी समान इसप्रकार होम करिकै(भू: अग्नये स्वाहा इदमग्नये इस मंत्रसे अग्निको भू: पृथिव्यै स्वाहा इदम्पृथिव्यै० इससे पृथिवीको भू: महते स्वाहा इदं महते इसमंत्रसे महान्‌को अन्वाधानकी विधिसे अग्निमें त्याग करै । जैसे कि, भुवो वायवेचान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा० इस मंत्रसे) "भू: अग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा अग्नये पृथिव्यै महते इदम् भुव: वायव्यै चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा भूर्भुव: स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा चंद्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यश्च महते इदं पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा सर्वं विश्वतस्परिस्वाहा पुनरूर्जानिवर्तस्व पुनरग्न इहायुषा पुनर्न: पाह्यंहस: स्वाहा, सहरय्यानि विर्तस्वाग्नेपि न्वस्वधारया विश्वश्रिया विश्वतस्परिस्वाहा" फिर पृथक् पृथक् और संपूर्ण चारों व्याहृतियोंसे होमको करै इसके अनन्तर चार व्रतोंके लिये गायत्रीमंत्रसे घीका होम करै । तीनों कृच्छ्रोंके प्रत्याम्नाय एक गौकी दक्षिणा देकर होमकर्मको समाप्त करै । महानाम्नी आदि व्रतोंका लोप होजाय तो एकके प्रति एकसौ आठ १०८ वा अट्ठाईस २८ वा आठ ८ घीकी आहुति देकर एकएक कृच्छ्रको करै । प्रायश्चित्तकी विधि समाप्त हुई ॥

अथ समावर्तनसंकल्पादि ।

मम गृहस्थाश्रमार्हतासिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं समावर्तनं करिष्ये इति संकल्प्य नांदीश्राद्धांतं बटुरेव कुर्यात् ॥ ब्रह्मचारी जीवत्पितृकश्चेत्पितुर्मात्राद्युद्देशः ॥ ब्रह्मचार्यसक्तश्चेत्पित्रादिस्तत्प्रतिनिधित्वेन नांदीश्राद्धांतं कुर्यात् ॥ समावर्तने उपनयनादाविव पित्रादिरेव नांदीश्राद्धकर्तेति मतांतरेण प्रागुक्तम् ॥ अवशिष्टप्रयोगः स्वस्वगृह्यानुसारेण ॥ दश त्रीन्वा विप्रान् भोजयेत् ॥ "दास्यंति मधुपर्कं ये तत्रैतां रजनीं वसेत् ॥" ततो व्रतानि संकल्पयेत् ॥ तानि च स्वसूत्रोक्तानि स्मृत्युक्तानि चेति द्विविधानि ॥ सर्वाण्यपि पुरुषार्थान्येव न तु

समावर्तनांगानि ॥ तत्राशक्तः सूत्रोक्तान्येव व्रतानि कुर्यात् ॥ शक्तस्तु स्मृत्युक्तान्यपि ॥ तानि यथा ॥ निमित्तं विना न नक्तं स्नास्यामि ॥ न नग्नः शयिष्ये ॥ न नग्नां स्त्रियमीक्षिष्येन्यत्र मैथुनात् ॥ वर्षति न धाविष्ये ॥ न वृक्षमारोहिष्ये ॥ न कूपमवरोहिष्ये ॥ न बाहुभ्यां नदीं तरिष्ये ॥ न प्राणसंशयमभ्यापत्स्ये इति सूत्रोक्तानि ॥ अथ स्मृत्युक्तानि ॥ नित्यं यज्ञोपवीतद्वयं धारयिष्ये ॥ सोदककमण्डलं छत्रमुष्णीषं पादुके उपानहौ सुवर्णकुंडले दर्भमुष्टिं च धारयिष्ये ॥ कर्तनेन ह्रस्वीकृतकेशश्मश्रुनखः स्याम् निमित्तं विना मुंडनं न करिष्ये इत्यर्थः ॥ 'न समावृत्ता मुंडेरन्' इति निषेधात् ॥ नित्यमध्ययनरतः स्याम् ॥ स्वशरीराद्धृतं स्वनिर्माल्यं पुष्पचन्दनादि पुनर्न धारयिष्ये ॥ शुक्लांबरधरः स्याम् ॥ सुगंधिप्रियदर्शनः स्याम् ॥ विभवे सति जीर्णवासा मलवद्वासाश्च न स्याम् ॥ रक्तं वासः शरीरपीडावहं वा वस्त्रं न धारयिष्ये ॥ गुरुं विनान्यैर्धृतं वस्त्रमलंकारं स्रजं च न धारयिष्ये ॥ अशक्तस्तु अन्यधृतमपि वस्त्रादि प्रक्षाल्य धारयेत् ॥ अन्यधृतोपवीतमुपानहौ च न धारये कंथां न धारयिष्ये ॥ न स्वरूपमुदके निरीक्षिष्ये ॥ न भार्यया साकमेकपात्रे एककाले वाश्नीयाम् ॥ एतद्विवाहभिन्नविषयम् ॥ शूद्राय धर्मज्ञानं नीतिज्ञानं व्रतकल्पं च नोपदिशामि ॥ एतत्साक्षादुपदेशपरम् ॥ 'कृत्वा ब्राह्मणमग्रत' इति ब्राह्मणद्वारकोपदेशे दोषाभावात् ॥ गृहमेधिशूद्राय स्वोच्छिष्टं न दास्ये ॥ शूद्राय होमशेषं न दास्ये ॥ उद्धृतोदकेन तिष्ठन्नाचमनं न करिष्ये ॥ जानुमात्रे तदधिके वा जले तिष्ठदाचमने दोषाभावात् ॥ अशुचिना एकहस्तेन वा आनीतजलैर्नाचमिष्ये ॥ पादेन पादधावनं न करिष्ये ॥ अकल्पां स्त्रियं न गमिष्यामि ॥ न प्रावृतमस्तकोहनि पर्यटिष्यामि ॥ रात्रौ मलमूत्रोत्सर्गे च प्रावृतशिराः स्याम् ॥ सोपानत्कोशनाभिवादननमस्कारांश्च न करिष्ये ॥ पादेनासनं नापकर्षिष्यामि ॥ एवमन्यान्यपि स्मृत्युक्तानि ज्ञेयानि ॥ एतेषु व्रतेषु यानि कर्तुं शक्नुयात्तावन्त्येव संकल्पयेत् ॥ अत्र संकल्पितव्रतोल्लंघने मत्या कृते त्र्यहमभोजनम् अमत्या कृते एकरात्रमभोजनं प्रायश्चित्तम् ॥ अशक्तस्त्रीनेकंवा विप्रं भोजयेत् ॥ इति स्नातकव्रतानि ॥

अब समावर्तनके संकल्प आदिको कहते हैं । मैं गृहस्थाश्रमकी योग्यताके प्राप्त होनेके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये समावर्तन कर्मको करताहूं । इसप्रकार संकल्प करके नांदीश्राद्धपर्यंत कर्मको बटु ही करै । जो ब्रह्मचारीके पिता माता जीतेहों तो पिताकी माता आदिका नामलेकर करै । जो ब्रह्मचारीकी सामर्थ्य न होय तो उसके पिताआदि उस बटुके प्रतिनिधि बनकर नांदीश्राद्धतक कर्मको करैं । उपनयनके समान समावर्तनके नांदीश्राद्धकेभी कर्ता उसके पिताआदि हैं यह मतभेदसे पूर्व कहआये । अवशिष्ट प्रयोग अपने २ गृह्यसूत्रके अनुसार समझना । फिर दश वा तीन ब्राह्मणोंको भोजन करावै और जो बटुको मधुपर्क दें वहां एकरात्रिवास करै फिर व्रतोंका संकल्प करै वे व्रत अपने गृह्यसूत्रके कहे और स्मृतियोंमें कहे

इसप्रकार दोप्रकारके हैं । वे सब व्रत पुरुषार्थके अंग हैं समावर्तनके नहीं । यदि उनके करनेकी सामर्थ्य न होय तो अपने सूत्रमें कहेहुएही व्रतोंको करै । और जो सामर्थ्य होय तो स्मृतियोंमेंभी कहेहुए करै । वे इसप्रकार हैं कि, निमित्तके विना रात्रिको स्नान नहीं करूंगा, नंगा होकर नहीं स्नान करूंगा, नग्न होकर शयन नहीं करूंगा, मैथुनको छोडकर नग्न स्त्रीको नहीं देखूंगा, मेघ वर्षतेमें दौडकर नहीं चलूंगा, वृक्षपर नहीं चढूंगा, कूऐमें नहीं उतरूंगा, भुजाओंसे नदीको नहीं तरूंगा, जहां प्राणोंका संशय हो वहां नहीं जाऊंगा येतो सूत्रमें कहेहुए हैं । और स्मृतिमें कहे हुए ये हैं कि, मैं नित्य दो यज्ञोपवीत धारण करूंगा । जलसे भराहुआ कमण्डलु (लोटा), छतरी, पगडी, खडाऊं, पादत्राण, सुवर्णके कुण्डल, एकमुट्ठी कुशा इनको धारण करूंगा, । मैं कर्तन्न (कैंची) से अपने नख, श्मश्रु (डाढी) और केश इनको छोटे रक्खूंगा अर्थात् किसी पर्व आदि निमित्तके विना मुण्डन न करूंगा । क्योंकि, जिसका समावर्तन हो चुका हो उसको मुण्डन नहीं कराना यह निषेध है । नित्य पढनेमें तत्पर रहूंगा । अपने शरीरसे उतारेहुए पुष्पमाला वा चंदनआदि निर्माल्यको फिर धारण नहीं करूंगा । सदा शुक्लवस्त्रोंको धारण करूंगा, सुगंधित और अच्छे स्वरूपसे रहूंगा, धनआदि विभवके होनेपर फटे वस्त्र और मलीन वस्त्रोंको नहीं पहिरूंगा, लालवस्त्र और जो शरीरको दुःखके देनेवाले हों ऐसे वस्त्रोंको नहीं धारण करूंगा, गुरुके सिवाय औरोंने जो वस्त्र, भूषण और माला धारण करली हों उसको नहीं धारण करूंगा, और जो सामर्थ्य न होगी तो औरोंकेभी धारण किये इनको धोकर पहिरलूंगा औरके धारण किये यज्ञोपवीत पादत्राण तथा कंथा इनको नहीं धारण करूंगा, जलमें अपने स्वरूपको नहीं देखूंगा, स्त्रीके साथ एक पात्र वा एकसमयमें भोजन नहीं करूंगा ये बात विवाहसे भिन्नके विषयमें हैं । शूद्रको धर्मका ज्ञान वा नीतिज्ञानका (और व्रतोंका) उपदेश नहीं करूंगा । यह साक्षात् शूद्रको उपदेशके विषयमें है क्योंकि, ब्राह्मणको अगाडी बैठाकर उपदेश करै इस वचनसे ब्राह्मणके द्वारा उपदेश करनेमें दोष नहीं । गृहमेधी (गृहस्थ) शूद्रको उच्छिष्ट नहीं दूंगा, शूद्रको होमकी शेष (खीर आदि) वस्तु नहीं दूंगा, कुएसे निकाले जलसे खडा होकर आचमन नहीं करूंगा, क्योंकि, जंघामात्र वा उससे अधिक जल हो उसमें खडे होकर आचमन करनेमें दोष नहीं । अशुद्ध वा एक हाथवालेके लाये हुए जलसे आचमन नहीं करूंगा, चरणसे चरणका प्रक्षालन नहीं करूंगा । अपने तुल्य जो न हो ऐसी स्त्रीसे गमन नहीं करूंगा, मस्तकको बांधकर दिनमें पर्यटन नहीं करूंगा, रात्रिके समय मल और मूत्रको शिर लपेटकर करूंगा, पादत्राणको पहिरे हुए भक्षण, अभिवादन और नमस्कार नहीं करूंगा, चरणसे आसनको नहीं खींचूंगा इसीप्रकार अन्यभी स्मृतिमें कहेहुए व्रत समझने । इन पूर्व कहे व्रतोंमें जितनोंके करनेकी शक्ति हो उतनोंकाही संकल्प करै । इन संकल्प किये व्रतोंको जो जानकर न करै तो तीन दिन भोजन न करै और जो अज्ञानसे न करै उसको एकरात्रि भोजन नहीं करनाही प्रायश्चित्त है । जो सामर्थ्य न होए तो एक वा तीन ब्राह्मणोंको भोजन करावै । स्नातकके व्रत समाप्त हुए ॥

अथातुरसमावर्तनम् ।

आतुरदशायां यथोक्तसमावर्तनासंभवे संक्षेपतस्तत्कार्यम् ॥ तत्प्रयोगः ॥ संकल्प्य ब्रह्मचारी लिंगानि मेखलादीनि त्यक्त्वा वपनं कृत्वा तीर्थे स्नात्वा वासः परि

धानाचमनतिलकधारणानि कृत्वाग्निं प्रतिष्ठाप्य तत्र प्रजापतिं मनसा ध्यायंस्तूष्णीं समिधमादध्यात् ॥ अन्यदपि अविरोधि तूष्णीमेव कर्तव्यमिति ॥ इति समावर्तनानुकल्पः ब्रह्मचर्यदशायां दशाहाशौचहेतुसपिंडमरणे समावर्तनोत्तरमुदकदानपूर्वकं त्रिरात्रमतिक्रांताशौचं कार्यम् ॥ अनुपनीतसपिंडे मातुलादौ च मृतेऽतिक्रांताशौचं न ॥ एवं जननाशौचेप्यतिक्रांताशौचं न ॥ ततश्च दशाहाशौचापादकसपिंडकमृतौ समावर्तनोत्तरं त्रिरात्रमध्ये विवाहो न कार्यः ॥ कस्यचिन्मरणाभावे तु न विवाहे दोषः ॥ "इत्थं व्रतांतकर्माण्यनंतोपाध्यायसूनुना ॥ निर्णीय श्रीविट्ठलांघ्र्योर्वाग्विलासः समर्पितः ॥ अथ श्रीभगवत्पादौ पुंडरीकवरप्रदौ ॥ श्रीगुरून्पितरौ नत्वा विवाहं वक्तुमुद्यतः ॥ उद्वहेच्च द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणैर्युताम् ॥ अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं मृद्वंगीं च मनोहराम् ॥" भाविशुभाशुभज्ञानहेतुलक्षणविचारोष्टौ मृत्पिंडान् कृत्वेत्यादिरूप आश्वलायनसूत्रे उक्तः ज्योतिःशास्त्रोक्तराशिनक्षत्रादिघटितविचारोपि शुभाशुभादिज्ञानहेतुः ॥

अब आतुरके कालमें समावर्तनको कहते हैं। आतुरदशामें यथोक्त समावर्तन न होसकै तो संक्षेपसे उसे करै। उसका प्रयोग इसप्रकार है कि, ब्रह्मचारी संकल्प करके अपने मेखला आदि लिंगोंको त्यागकर मुण्डन, तीर्थस्नान, वस्त्रोंका धारण, आचमन, तिलक इनका धारण, और अग्निका स्थापन करके वहां प्रजापतिका मनसे ध्यान करके तूष्णीं होकर समिधोंका आधान करै। और जभी जिनमें विरोध न हो उन कार्योंको तूष्णीं होकर करै। समावर्तनकी विधि समाप्त हुई। ब्रह्मचर्यदशाके विषे कोई दश दिनका जिसके मरणमें सूतक हो उस सपिण्डके मरनेमें समावर्तनसे पीछे जल दान देकर तीनरात आशौच मानना। जिसका जनेऊ न हुआ हो ऐसा सपिण्ड तथा मामाआदिके मरनेमें अतिक्रान्त आशौच नहीं होता। इसीप्रकार जन्मसूतकभी व्यतीत होनेपर नहीं होता। इससे दश दिनका आशौच जिसमें ऐसे सपिण्डके मरनेमें समावर्तनके पीछे तीनराततक विवाहआदि नहीं करना। और जो कोई न मरा होय तो विवाह करनेमें कोई दोष नहीं। इस प्रकार अनन्त उपाध्यायके पुत्रने व्रतपर्यन्त कर्मोंको निर्णयसे कहकर, श्रीविट्ठलजीके चरणोंमें यह वाग्विलास अर्पण किया। अब वरके देनेवाल कमलरूपी श्रीगुरुके चरणोंको नमस्कार करिके विवाहके कहनेका प्रारंभ करताहूं। द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये; अपने वर्णकी हो, अच्छे शुभलक्षणोंसे युक्त हो, जिसका अंग विकल न हो, सुंदरजिसका नाम हो, कोमल जिसका अंग हो, मनके हरनेवाली हो ऐसी कन्याको विवाहै। आश्वलायन सूत्रमेंभी भावी शुभ अशुभके ज्ञानके हेतु जो लक्षणहैं उनका विचार 'अष्टौमृत्पिण्डान्कृत्वा' अर्थात् आठ मिट्टीके पिंड बनाकर इत्यादि वचनोंसे कहाहै वह वही समझना। ज्योतिषशास्त्रमें राशि, नक्षत्र आदिका जो वधू वरके विषे परस्पर विचार कहा है वह शुभ अशुभके जाननेमें कारण है ॥

अथ विवाहे घटितविचारः।

स च संक्षेपेणोच्यते ॥ तत्र मेषादिराशिस्वामिनः "भौमः शुक्रो बुधश्चंद्रः सूर्यः सौम्यो भृगुः कुजः ॥ गुरुः शनैश्चरो मंदः सुरेज्यो राशिपाः स्मृताः ॥"

अब विवाहमें घटित विचारको कहते हैं । वह संक्षेपसे इसप्रकार समझना कि, मषआदि बारह राशियोंके भौम, शुक्र, बुध, चंद्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि, गुरु ये क्रमसे स्वामी समझने । अर्थात् मेषका स्वामी मंगल, वृषका शुक्र इत्यादि ॥

अथ ग्रहमैत्री ।

अत्र ग्रहाणां शत्रुमित्रादि ॥ रवेर्गुरुभौमचंद्रा मित्राणि शनिशुक्रौ शत्रू बुधः समः ॥ इंदोः सूर्यबुधौ मित्रे भौमगुरुशुक्रशनयः समाः अस्य शत्रुर्न ॥ कुजस्य बुधो रिपुः सूर्यगुरुचंद्रा मित्राणि शनिशुक्रौ समौ ॥ बुधस्यार्कशुक्रौ मित्रे चंद्रोरिः शनिभौमगुरवः समाः ॥ गुरोः सूर्यभौमचंद्रा मित्राणि ॥ शुक्रबुधौ शत्रू शनिः समः ॥ शुक्रस्य शनिबुधौ मित्रे सूर्यचंद्रावरी भौमगुरू समौ ॥ शनेः शुक्रबुधौ मित्रे कुजसूर्यचंद्रा अरयः गुरुः समः ॥

अब ग्रह मैत्रीको कहते हैं उसमें ग्रहोंके शत्रु मित्रआदि इसप्रकार समझने कि, सूर्यके गुरु, मंगल, चंद्रमा ये मित्र और शनि शुक्र ये शत्रु और बुध सम (न शत्रु न मित्र) हैं । चंद्रमाके सूर्य बुध मित्र और मंगल, गुरु, शुक्र, शनि ये सम और इसका शत्रु कोई ग्रह नहीं । मंगलका बुध शत्रु और सूर्य, गुरु, चंद्रमा ये मित्र । और शनि, शुक्र सम हैं । बुधके सूर्य, शुक्र, मित्र चंद्रमा शत्रु और शनि, मंगल और गुरु ये सम हैं । बृहस्पतिके सूर्य, मंगल और चंद्रमा ये मित्र और शुक्र, बुध ये शत्रु और शनैश्चर सम हैं । शुक्रके शनि, बुध ये मित्र और सूर्य, चंद्र शत्रु और मंगल बृहस्पति ये सम हैं । और शनिके शुक्र, बुध ये मित्र और मंगल, सूर्य, चंद्रमा ये शत्रु और गुरु सम हैं ॥

अथ गुणविचारः ।

राश्योरेकाधिपत्ये राशिपत्योर्मित्रत्वे च पंच गुणाः ॥ राशिपयोः समत्वशत्रुत्वेऽर्धो गुणः ॥ समत्वमित्रत्वे चत्वारः ॥ शत्रुत्वमित्रत्वे एकः ॥ द्वयोः समत्वे त्रयः ॥ द्वयोः शत्रुत्वे गुणाभावः ॥

अब गुणका विचार कहते हैं । जो वधू वरकी राशियोंका स्वामी एक हो वा उनके स्वामियोंकी मित्रता होय तो पांच गुण हैं । और जो राशियोंके स्वामीकी परस्पर समता और शत्रुता अर्थात् एकके स्वामीका दूसरा स्वामी मित्र हो और उसका वह शत्रु होय तो आधा गुणहै और जो समभाव और मित्रभाव दोनोंका परस्पर होय तो चार गुण और ॥ जो शत्रुभाव मित्रभाव परस्पर होय तो एक गुण ॥ और जो दोनोंमें समभाव होय तो तीन गुण ॥ और जो दोनोंकी शत्रुता होय तो गुणका सर्वथा अभाव समझना ॥

अथ गणाः ।

पूर्वात्रयोत्तरात्रयभरणीरोहिण्यार्द्रा मनुष्यगणः ॥ हस्तरेवतीपुनर्वसुपुष्यस्वातीमृगश्रवणाश्विन्यनुराधा देवगणः ॥ कृत्तिकाश्लेषामघाचित्राविशाखाज्येष्ठामूलधनिष्ठाशततारका राक्षसगणः ॥ गणैक्ये शुभम् ॥ देवमनुष्ययोर्मध्यमम् ॥ देवरक्ष-

सोर्वैरम् राक्षसमनुष्ययोर्मरणम् ॥ अतो मनुष्यराक्षसयोर्विवाहो न कार्यः ॥ अत्र गुणाः गणैक्ये षड्गुणाः ॥ वरो देवो नृगणा कन्यात्रापि षट् ॥ वैपरीत्ये पंच ॥ वरो राक्षसः कन्या देवगणा अत्रैकः ॥ वैपरीत्ये गुणाभावः ॥ मनुष्यराक्षसत्वेपि गुणाभावः ॥

अब गणोंको कहते हैं। कि, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, भरणी, रोहिणी और आर्द्रा ये मनुष्यगण। हस्त, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाती, मृगशिर, श्रवण, अश्विनी और अनुराधा ये देवतागण। कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा, शतभिषा ये राक्षसगण नक्षत्र हैं। एकगण जो दोनोंका होयँ तो शुभ, देव मनुष्य गण होयँ तो मध्यम और देव राक्षस होयँ तो वैर और मनुष्य राक्षस गण होयँ तो मरण समझना। इस मनुष्य राक्षस गणवाले वधू वरका परस्पर विवाह नहीं होता। और मनुष्य राक्षस होयँ तो गुणका अभाव समझना ॥

अथ राशिकूटम्।

द्विर्द्वादशकत्वे निर्धनत्वम् ॥ नवपंचमत्वे निःपुत्रता ॥ षट्काष्टके मरणं विपत्तिर्वा ॥ उभयसप्तमे तृतीयैकादशेचतुर्थे दशमे च शुभम् ॥ नक्षत्रैक्ये चरणभेदे शुभम् ॥ अत्र राश्यैक्येतिशुभम् ॥ राशिभेदेपि कूटदोषो न ॥ नक्षत्रभेदे राश्यैक्ये च शुभम् ॥ अत्र नाडीगणादिदोषो न ॥ चरणैक्यं षट्काष्टकं च वर्ज्यम् ॥ द्विर्द्वादशके नवपंचमे च मध्यमम् ॥ शेषं शुभम् ॥

अब राशिकूटको कहते हैं कि, जो वधू वरकी राशि दूसरी, बारहवीं होंयँ तो धनका नाश नौमें पांचमें होंय तो पुत्रका न होना, छठे आठमें होंय तो मरण वा विपत्तिका होना समझना। जो दोनोंकी सातमी वा तीसरे ग्यारमें और चौथे दशमें राशि होयँ तो शुभ समझना। और नक्षत्र एक हो और राशि जुदी २ होंयँ तो भी शुभ और जो राशि दोनोंकी एकही होयँ तो अत्यन्त शुभ समझना। राशिका भेद होय तो भी कूटदोष नहीं होता। नक्षत्र भिन्न २ हो और राशि एक होय तो शुभ समझना। इससे नाडी गणआदि दोष नहीं होते। जो चरण एक होय तो षट्काष्टक (छठी आठमी राशि) को वर्जदेना दूसरे बारहमें और नौमें पांचमें मध्यम और शेष शुभ समझना ॥

अत्र गुणाः।

सत्कूटे सप्त दुःकूटे ग्रहमैत्रीसत्त्वे चत्वारः ॥ अन्यथा एकः ॥ चरणैक्ये गुणाभावः ॥

जो राशिकूट श्रेष्ठ होय तो सातगुण और जो अशुभ हो और ग्रहोंकी भिन्नता होय तो चार गुण अन्यथा एक गुण समझना। और जो चरण एक होय तो सर्वथा गुण नहीं ॥

अथ नाडीविचारः।

अश्विन्यार्द्रापुनर्वसूत्तराफल्गुनीहस्तज्येष्ठामूलशततारापूर्वाभाद्रपदेति प्रथमनाडी॥ भरणीमृगपुष्यपूर्वाफल्गुनीचित्रानुराधापूर्वाषाढाधनिष्ठोत्तराभाद्रपदेति मध्यम

नाडी ॥ कृत्तिकारोहिण्याश्लेषामघास्वातीविशाखोत्तराषाढाश्रवणरेवतीति चरम-नाडी ॥ अत्र नाड्यैक्ये मृत्युः ॥ नाडीभेदेष्टौ गुणाः ॥ नाड्यैक्यं सर्वथा वर्ज्यम् शूद्रादौ पार्श्वैकनाडीद्वयं संकटे शुभम् ॥ अत्र वर्णवश्यभकूटयोनिकूटाना-मल्पगुणत्वात् विवाहविघटकत्वाभावाच्च स्वरूपं नोक्तम् ॥ अत्र सर्वगुणमेलनेन विंशतिगुणसंभवे मध्यमम् ॥ विंशत्यधिकगुणत्वेऽति शुभम् ॥ विंशत्यूनत्वे त्वशु-भम् ॥ इति नक्षत्रादिघटितविचारः ॥

अब नाडीके विचारको कहते हैं अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद ये तो आदि नाडी । भरणी, मृगशिर, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढ, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद ये मध्यमनाडी । कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढ, श्रवण, रेवती ये अन्तनाडी नक्षत्र हैं । जो नाडी एक होय तो मृत्यु, जो नाडी भिन्न हों तो आठ गुण परन्तु नाडियोंकी एकता होतो कदाचित् विवाह नहीं करना शूद्रआदिकोंको जो पार्श्वकी एक नाडी जैसे अश्विनी, रोहि-णीकी सो यदि संकट हो तो शुभ है । यहां वर्ण और वश्य नक्षत्रकूट और योनिकूट इनका गुण सूक्ष्म है । तथा ये प्रतिकूल होँय तो विवाहभी नहीं हटसकता । इससे उनको यहां नहीं कहा । जो यहां सब गुणोंको मिलाकर बीस २० गुण होजायँ तो मध्यम और जो बीससे अधिक गुण होँय तो अत्यंत शुभ और जो बीससे कम होँय तो अशुभ समझना । नक्षत्र आदि घटित (घटाना) का विचार समाप्त हुआ ॥

अथ कन्यासापिंड्यविचारः ।

"अनन्यपूर्विकां कांतामसपिंडां यवीयसीम् ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्ष-गोत्रजाम्" इति याज्ञवल्क्याद्युक्तकन्याविशेषणेषु कांतत्वनीरोगित्वभ्रातृमत्त्वभिन्न-विशेषणानामभावे इह परत्रपातित्यात्तानि प्रपंच्यंते ॥ तत्रान्यपूर्विकाः पुरुषांतर-पूर्विकाः ॥ मनोदत्ता वाचा दत्ताग्निं परिगता सप्तमं पदं नीता भुक्ता गृहीतगर्भा प्रसूतेति सप्तविधपुनर्भवास्तदभिन्नामनन्यपूर्विकाम् ॥ सप्तपदीविधेः पूर्वमाद्यानां तिसृणां संकटेन्येन विवाहो भवति ॥ सप्तपदीविधौ जाते बलाद्विवाहितापि नान्यत्र देया ॥ असपिंडां समानः एकः पिंडः पिंडदानक्रियामूलपुरुषशरीरं वा यस्याः सा सपिंडा तद्भिन्नाम् ॥

अब कन्याके सापिण्ड्यका विचार कहते हैं। जिस कन्याका अन्य कोई पहिले पति न हुआ हो, जो सुन्दर हो, अपने सपिण्डकी न हो, युवा अवस्थावाली हो, शरीरमें जिसके रोग न हो, और भाईवाली हो और जो अपने आर्षगोत्रकी न हो,ये याज्ञवल्क्यके कहेहुए जो कन्याके सात विशेषण हैं इनमें नीरोगित्व(रोगवाली न हो),भ्रातृमती (भाईवाली हो) इन दो विशेषणोंको छोडकर जो अन्य पांच विशेषण जिस कन्यामें न हों अर्थात् अपने सपिण्डआदि न हों होजावें

तो विवाहनेवाला इस लोक और परलोक इन दोनों लोकोंमें पतित होजाताहै । इन विशेषणों का निर्णय विस्तारसे यहां कहते हैं जिसके पूर्व अन्य कोई पति होचुका हो वह अन्यपूर्विका सात होती हैं कि, जो मनसे देदी, वाणीसे देदी, जो अग्निके (विवाहकी अग्नि) समीप पहुंच गई, सप्तपदीके सातमें चरणपर पहुंचगई, जिसके साथ भोग होलिया और जिसके गर्भ रहगया हो और जिसके संतति होली हो ये सातप्रकारकी पुनर्भवाको अन्यपूर्विका कहते हैं । इससे जो भिन्न हो वह अनन्यपूर्विका होती है । इन सातोंमेंसे आदिकी जो मन वाणीसे दी, जो अग्निके पास पहुंच गई इनका जो यदि कोई संकट होय तो अन्यके साथ विवाह होता है । सप्तपदी होचुके तब तो जो बलसेभी कोई विवाहले तोभी अन्य किसीको नहीं देनी । असपिण्ड वह होती है कि जिसका एक पिण्ड अर्थात् पिण्डदान एक साथ हो वा मूलपुरुष एक न होता हो ॥

अथ सापिंड्यलक्षणम् ।

तत्र ॥ "लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिंडभागिनः ॥ पिंडदः सप्तमस्तेषां सापिंड्यं साप्तपौरुषम्" इति मात्स्योक्तेरेकस्यां पिंडदानक्रियायां दातृत्वपिंडभाक्त्वलेपभाक्त्वान्यतमसंबंधेन प्रवेशो निर्वाप्य सापिंड्यमिति केषांचिन्मतम् ॥ अत्र स्त्रीणामपि पतिभिः सह कर्तृत्वात्सापिंड्यसिद्धिः मूलपुरुषैकशरीरावयवान्वयेनावयवसापिंड्यमित्यपरं मतम् ॥ यद्यपि भ्रातृपत्नीनां परस्परं नैतत्संभवति तथाप्याधारत्वेनैकशरीरान्वयः॥ एकमूलपुरुषावयवानां पुत्रद्वारा तास्वाधानादिति ज्ञेयम् ॥ उभयत्रापि गयादौ मित्रादेरपि पिंडभाक्त्वादेकशरीरान्वयस्य सप्तमात्परेषु परश्शतेष्वपि सत्त्वाच्चातिप्रसंगः "प्राप्तेर्वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः॥ पंचमीचत्तयोर्माता तत्सापिंड्यं निवर्तते" इत्यादिवचनैर्निरासः ॥ मातृत्वपितृत्वादिसंबंधे सत्येव पंचमसप्तमपर्यंतमेवेत्युभयनियमस्वीकारात्॥ तथा च पितृद्वारकसापिंड्यविचारे सप्तमादूर्ध्वं सापिंड्यनिवृत्तिः ॥ मातृद्वारकसापिंड्यविचारे तु पंचमादूर्ध्वं तन्निवृत्तिरिति निर्णयः ॥ अत्रोदाहरणानि ॥ "विष्णोर्मूलात्कांतिगौर्यौ जातौ ताभ्यां सुधीहरौ ॥ बुधमैत्रौ चैत्रशिवौ गणभूपौ मृडाच्युतौ ॥ १ ॥ तज्जातयोरष्टमयोर्विवाहो रतिकामयोः ॥ विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ॥ २ ॥ ताभ्यां श्यामारती तज्जशिवगौर्योः करग्रहः ॥ विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ॥ ३ ॥ ताभ्यां श्यामा नर्मदा च शिवकामौ रमाकवी ॥ मंडूकप्लुतिसापिंड्यं रमाकव्योर्विवाहहृत् ॥ ४ ॥ विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ॥ श्यामाशिवौ कांतिहरौ हरकांती न दंपती ॥ ५ ॥

विष्णुर्मूलभूतः	विष्णुर्मूलभूतः	विष्णुर्मूलभूतः	विष्णुर्मूलभूतः
कांतिः २ गौरी २	दत्तः २ चैत्रः २	दत्तः २ चैत्रः २	दत्तः २ चैत्रः २
सुधीः ३ हरः ३	सोमः ३ मैत्रः ३	सोमः ३ मैत्रः ३	सोमः ३ मैत्रः ३
बुधः ४ मैत्रः ४	सुधीः ४ बुधः ४	सुधीः ४ बुधः ४	सुधीः ४ बुधः ४
चैत्रः ५ शिवः ५	श्यामा ५ रतिः ५	श्यामा ५ नर्मदा ५	श्यामा ५ शिवः ५
गणः ६ भूपः ६	शिवः ६ गौरी ६	शिवः ६ कामा ६	कांतिः ६ हरः ६
मृडः ७ अच्युतः ७		रमा ७ कविः ७	
रतिः ८ कामः ८			अत्र कांतिहरयोर्न
अत्र रतिकामयोरष्टमयोर्विवाहः पितृद्वारकत्वात्	अत्र गौरीशिवयोः षष्ठयोर्विवाहः मातृद्वारकत्वात्	अत्र रमाकव्योर्न विवाहः मंडूकप्लुत्या सापिंड्यानुवृत्तेः	विवाहः एकतो निवृत्तावपि अन्यतो अनुवृत्तेः

निवृत्तमप्येकस्तदन्यतोप्यनुवर्तते ॥ दिङ्मात्रेणोदाहृतात्र सेयं सापिंड्यपद्धतिः ६॥" कूटस्थात्पंचम्योः कन्ययोः संततौ मातृद्वारकत्वात्सापिंड्यनिवृत्तिः ॥ पंचम्योः कन्ययोर्यौ पुत्रौ तयोः संततौ पितृद्वारकत्वात्सापिंड्यमनुवर्तत इतीदं मंडूकप्लुतिसापिंड्यं पंचम्याः कन्यायाः पुत्रस्य षष्ठस्य कूटस्थात् पंचमादिः सपिंडो न भवति ॥ तथापि द्वितीयसंततिपंक्तौ पंचमषष्ठादेः पितृद्वारकत्वादिना सापिंड्यसत्त्वादेकतो निवृत्तावप्यन्यतो निवृत्त्या पंचमषष्ठादिना पंचम्याः कन्यायाः संततिर्न विवाह्या ॥ एवं कूटस्थमारभ्याष्टमादेः कूटस्थमारभ्य द्वितीयादेश्चैकतो निवृत्तिपरतोनुवृत्त्योः सत्त्वमूह्यम् ॥ एवमाशौचविषयकसापिंड्येपि एकतो निवृत्त्यादिकं यथासंभवं सर्वमूह्यम्॥ एवं पितृद्वारकसापिंड्यं सप्तमादूर्ध्वं निवर्तते मातृद्वारकं तु पंचमादूर्ध्वमिति मुख्यकल्पेन वर्जनीयानां कन्यानां संख्या चेत्थं संपद्यते ॥ पितृकुले षोडशाधिकद्विसाहस्री (२०१६) मातृकुले पंचोत्तरशतम् (१०५) कुलद्वयमेलनेनैकविंशत्युत्तरशताधिकसहस्रद्वयसंख्या (२१२१) कन्या वर्ज्याः संपद्यंते॥ अत्र गणनाप्रकारस्तत्र मूलश्लोकास्तद्व्याख्या च कौस्तुभे स्पष्टा बालानां दुर्बोधतया नेहोच्यते ॥ तथा च मुख्यकल्पेन कुलद्वये एतावत्यो वर्जनीया एव ॥ न त्वनुकल्पानुसरणेन सप्तमात्पंचमादर्वाग्विवाहः कार्यः ॥ "पंचमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया ॥ क्रियापरा अपि हि ते पतिताः शूद्रतां गताः ॥ सप्तमात्पंचमाद्वीमान्यः कन्यामुद्वहेद्द्विजः ॥ गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्वहन् ॥" इत्यादिस्मृतिभ्यः ॥ यानि तु "चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पंचमो वरः ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि ॥" इत्यादिवचनानि तेषु कानिचिन्निर्मूलानि कानिचिद्दत्तकसापत्न्यादिसंबंधविषयतया विप्राणां क्षत्रियादिषु सापिंड्यविषयतया वा नेयानि

इति निर्णयसिंधुमतम् ॥ कौस्तुभे तु "उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमी ॥ पंचमी तदभावे तु पितृपक्षेप्ययं विधिः ॥ सप्तमीं च तथा षष्ठीं पंचमीं च तथैव च ॥ एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि ॥ विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्यो यमोंगिराः ॥ यस्तु देशानुरूपेण कुल मार्गेण चोद्वहेत् ॥ नित्यं स व्यवहार्यः स्याद्वेदाच्चैतत्प्रतीयते" इत्यादिवचनानां चतुर्विंशतिमतषट्त्रिंशन्मतादिषूपलभ्यमानत्वात् सापिंड्यसंकोचेन विवाहस्य बहुदेशेषु दर्शनाच्च ॥ येषां कुले देशे चानुकल्पत्वेन सापिंड्यसंकोचः परंपरया समागतस्तेषां सापिंड्यसंकोचेन विवाहो न दोषाय ॥ स्वकुलदेशविरुद्धेन सापिंड्यसंकोचेन विवाहे दोषो भवत्येव ॥ जनपदधर्मा ग्रामधर्मांश्च तान्विवाहे प्रतीयात् ॥ "येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति" ॥ इत्यादिवाक्यैः स्वकुलदेशाचाराविरुद्धस्यैव शास्त्रस्य विवाहेनुसर्तव्यत्वात् ॥ एवं मातुलकन्यापरिणयनेपि ॥ तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषाभागस्ते पैतृष्वसेयीवपामिवेति मंत्रलिंगैः ॥ "मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च ॥ समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चांद्रायणं चरेत्" ॥ इत्यादिस्मृतीनां बाधाद्येषां कुले मातुलकन्यापरिणयः परंपराप्राप्तस्तैः स कार्यः "गोत्रान्मातुः सपिंडाच्च विवाहो गोवधस्तथा" इति मातुलकन्याविवाहस्य कलिवर्ज्यत्ववचनमपि येषां कुले देशे मातुलकन्याविवाहो नास्ति तत्परम् ॥ मातुलकन्यापरिणयनस्यानेकश्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात् ॥ अत एव मातुलकन्योद्वाहिनां श्राद्धे निमंत्रणनिषेधोपि स्वकुलाचारादिविरोधेन तदुद्वाहिपरः॥ उक्तविधसापिंड्यसंकोचेन विवाहं कुर्वतां शिष्टैः श्राद्धादौ भोजनाद्याचारादित्यादिबहूपपादितम् ॥ परं तु सापिंड्यसंकोचस्वीकारेपि कतिथीं कन्या कतिथेन पुरुषेण विवाह्या कतिथेन न विवाह्येति व्यवस्था नोपपादिता ॥ सापिंड्यदीपिकाकारादयोर्वाचीनास्तु "चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पंचमो वरः ॥ पाराशरमते षष्ठीं पंचमो न तु पंचमीम्" ॥ इत्यादिवचनानां समूलत्वं निश्चित्य अशक्तैः संकटे समाश्रयणीयस्य सापिंड्यसंकोचस्य व्यवस्थामूचुः ॥ तथाहि ॥ चतुर्थी कन्या पितृपक्षे मातृपक्षे च चतुर्थेन पंचमेन वा पुंसा विवाह्या ॥ द्वितीयतृतीयषष्ठाद्यैश्चतुर्थी नोद्वाह्या ॥ पाराशरमते पंचमः षष्ठीमुद्वहेत् ॥ द्वितीयतृतीयचतुर्थादिः षष्ठीं नोद्वहेत्पञ्चमः पञ्चमीं नोद्वहेत् ॥ " मातृतः पितृतश्चापि षष्ठः षष्ठीं समुद्वहेत्" इति वचनांतरात् षष्ठेनापि षष्ठी विवाह्या ॥ पंचमषष्ठभिन्नैः षष्ठी न विवाह्येति पर्यवसन्नम् ॥ तथा पितृपक्षे सप्तमी मातृपक्षे पंचमी च तृतीयाद्यैः सर्वैः परिणेया ॥ "पितृपक्षाच्च सप्तमीं मातृपक्षात्तु पंचमीम्" इति व्यासवचनात् ॥ "उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम् ॥ पंच-

मीं तदभावे तु पितृपक्षेप्ययं विधिः" इति चतुर्विंशतिमतोक्तेश्च ॥ पितृपक्षेपि पंचमी तृतीयाद्यैः परिणेया ॥ तत्रापि मातृपक्षपितृपक्षेपि पंचमेन पंचमी नोद्वाह्या ॥ "पंचमो न तु पंचमीम्" इति सर्वत्र निषेधात् ॥ "तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि" इति वचनात्तु तृतीया विवाह्या प्राप्नोति तत्र व्यवस्थोच्यते ॥ मातृपक्षे तावत्तृतीया मातुलकन्या मातृष्वसृकन्या वा संभवति॥ पितृपक्षे तु तृतीया पितृव्यकन्या पितृष्वसृकन्या वा ॥ तत्र पितृव्यकन्या सगोत्रत्वात्त्याज्या ॥ "पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च॥ एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत बुद्धिमान्" ॥ इति मनूक्तेः पितृष्वसृमातृष्वसृकन्ये अपि त्याज्ये ॥ पितृष्वसृकन्यां मातुर्भगिनीं मातृष्वसारं मातुः स्वस्रीयां मातृष्वसृकन्यामेतास्तिस्रो नोद्वहेदिति तदर्थात् ॥ मातुलकन्यैव तृतीया पूर्वोक्तरीत्या कुलपरंपरागतत्वे परिणेया ॥ एवं च तृतीयापि तृतीयेनैव मातुलकन्यैव परिणेया न चतुर्थादिना केनापि ॥ केचित्संकटे पितृष्वसृकन्यापरिणयनमाहुः ॥ तत्र देशकुलाचाराद्व्यवस्था ज्ञातव्या ॥ अत्रायं सापिंड्यदीपिकादिसिद्धार्थसंग्रहः तृतीया मातुलकन्यैवोद्वाह्या चतुर्थी चतुर्थपंचमाभ्यामेव ॥ पंचमी पंचमभिन्नैस्तृतीयाद्यैः सप्तमांतैः ॥ षष्ठी पंचमषष्ठाभ्यामेव सप्तमी तृतीयाद्यैः सप्तमांतैरिति ॥ अयं सापिंड्यसंकोचेन विवाहः संकटेष्वशक्तेन कार्यः ।। कन्यांतरलाभे शक्तैर्न कार्यः ॥ गुरुतल्पादिदोषस्मृतेः ॥ सापिंड्यसंकोचवाक्यानामशक्तविषयत्वस्य स्पष्टत्वात् ॥ "प्रभुः प्रथमकल्पस्य योनुकल्पेन वर्तते ॥ स नाप्नोति फलं चेह" इति शक्तैरनुकल्पस्वीकारे दोषोक्तेः ॥ दत्तकसापिंड्यं दत्तकनिर्णये प्रागेवोक्तम् ॥ अथ सापत्नमातृकुले सापिंड्यप्रकारं सुमंतुराह ॥ पितृपत्न्यः सर्वा मातरः तद्भ्रातरो मातुलाः तद्भगिन्यो मातृष्वसारः तद्दुहितरश्च भगिन्यः तदपत्यानि भागिनेयानि अन्यथा संकरकारिणः स्युरिति ॥ अत्र लक्षणया सापत्नमातृकुले चतुःपुरुषसापिंड्यं विवाहनिषेधाय विधीयत इति केचित् ॥ अपरे तु विवाहमात्रविषयत्वे मानाभावादाशौचादि विषयकत्वस्यापि संभवात् यावद्वाचनिकं प्रमाणमिति न्यायेन परिगणितेष्वेव सापिंड्यमिति वदंति ॥ तथा च सुमंतुवाक्ये वाक्यभेदाश्रयणेनैवं वाक्यार्थाः पर्यवस्यंति ॥ पितृपत्न्यः सर्वा मातर इति प्रथमवाक्ये सापत्नमातरि मुख्यमातृवत् संमाननं तद्वधे मातृवधप्रायश्चित्तं तद्गमने मातृगमनप्रायश्चित्तादिकं चातिदिश्यते ॥ नात्रातिक्रांतविषये दशाहाशौचातिदेशः ॥ त्रिरात्रविधिना बाधात् ॥ तद्भ्रातरो मातुला इत्यत्र मातुलत्वप्रयुक्तमाशौचादिकं मातुलस्य स्वभगिनीसपत्न्याः कन्योद्वाहनिषेधश्च ॥ अत्र मातुलत्वातिदेशेपि न तत्पुत्रादिषु मातुलपुत्रत्वाद्यतिदेशः ॥ तेन बंधुत्रयत्वप्रयुक्तमाशौचं न मातुलकन्यादौ विवाह-

विधिनिषेधावपि न ॥ एवं मातुलकन्यादौ पितुर्भगिनीत्वातिदेशाभावेन तत्पुत्रं प्रत्यपि पितृष्वसृत्वाद्यतिदेशो न भवति ॥ तद्भगिन्यो मातृष्वसार इत्यत्राशौचं विवाहनिषेधश्च ॥ मातृष्वसृपुत्रे बंधुत्रयत्वं च न ॥ सापत्नमातृष्वसृकन्याविवाहनिषेधस्तु विरुद्धसंबंधत्वादेव वक्ष्यते॥तदपत्यानि भगिन्यइ त्यत्राशौचं संमाननादिकं च ॥ नात्र विवाहप्रसक्तिः सगोत्रत्वात् ॥अत्र सापत्नमातुलसापत्नभ्रातृसापत्न मातृष्वसृसापत्नभगिनीनां स्वमातुलसोदरभ्रात्राद्यनंतरं तर्पणं महालयादावुद्देशोप्यस्मादेव वचनादावश्यक इति भाति ॥ तदपत्यानि भागिनेयानि इत्यत्राशौचं विवाहनिषेधश्च ॥ भागिनेयीत्वातिदेशेपि तत्कन्यासु भागिनेयी कन्यात्वातिदेशो न यावदुक्तं प्रमाणमिति न्यायादिति दिक् ॥ क्वचित्सापिंड्याभावेपि वचनादविवाहः ॥ अविरुद्धसंबंधामुपयच्छेत ॥ दंपत्योर्मिथः पितृमातृसाम्ये विरुद्धसंबंधः ॥ यथा भार्या स्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नी स्वसा चेति परिशिष्टोक्तेः ॥ बौधायनः ॥ "मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत् ॥ पितृव्यपत्नीभगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत्" केचित् "ज्येष्ठभ्राता पितुः समः" इत्युक्तेर्ज्येष्ठभ्रातृपत्न्या भगिनीमातृष्वसृतुल्यत्वान्न विवाह्येत्याहुः ॥ यवीयसीं स्वापेक्षया वयसा वपुषा च न्यूनामुद्वहेत् ॥ 'असमानार्षगोत्रजाम् ॥' आर्षं प्रवरः ॥ स्वसमाने आर्षगोत्रे यस्य तज्जा न भवति या ताम्॥ असमानगोत्रामसमानप्रवरां चोद्वहेदित्यर्थः ॥

अब सापिण्ड्यके लक्षणको कहते हैं कि, लेपके भागी प्रपितामहके पिता आदि चौथी पीढीपर जो हों और पिण्डके ग्रहण करनेवाले पिता आदि तीन (पिता, बाबा, पडबाबा) और इनसे पडबाबाके पिता बाबा पडबाबा ये छः और सातमां पिण्डके दान करनेवाला इन सात मनुष्योंमें सपिण्डता होती है । इस मात्स्य के कहे हुए वचनसे जो पिण्डदान क्रियाके दाता, भोक्ता, लेपभोक्ता हैं वेभी आपसमें सपिण्ड हैं कितनेक आचार्योंके इस मतमें पिण्डदान करनेमें स्त्रियोंका भी पतिके साथ अधिकार है इससे ये भी सपिण्ड होती हैं । और दूसरा मत यह है कि, जिनके शरीरमें एक मूलपुरुषके शरीरके अवयवोंका सम्बन्ध वीर्यके द्वारा हो वेही सापिण्ड्यवाले होते हैं । यद्यपि यह बात भाइयोंकी जो स्त्री हैं उनमें संभव नहीं होसकती क्योंकि, उनके मूलपुरुष जुदे जुदे होते हैं; तथापि वे मूलपुरुषके अवयवोंकी आधाररूपी होती हैं । इससे पुत्रोंके द्वारा मूलपुरुषके अवयवोंका अंश उनमेंभी है । इससे उनमें भी एक मूलपुरुषका सम्बन्ध सिद्ध है । अब इस पूर्व कहे मात्स्यके वचनसे तो जो गया आदिमें मित्र आदिकोभी पिण्डभागी होना लिखा है इसकोभी सपिण्ड होना और मूलपुरुषके सम्बंधद्वारा जो सपिण्डता है वह सातमें पुरुषसे परलीतरफ सौ (१००) पुरुषतक उस शरीरका सपिण्ड है; तो वहांतक सपिण्ड होना प्राप्त हुआ उसका इन वचनोंसे खण्डन करते हैं । कि, वधू वा वरका पिता मूलपुरुषसे सातमीं पीढीपर हो और जो उनकी माता पांचमीं पीढीपर होय तो वह सपिण्ड निवृत्त होजाता है तो इसवचनमें दो नियम हैं कि, माता और पिताके द्वाराही सपिण्ड होता है । और उनमेंभी पांचमीं और सातमीं पीढीतक रहता है । इससे मित्र आदिका सपिण्ड होना परास्त हुआ, क्योंकि, उनमें माता पिताका

सम्बन्ध नहीं । आर दूसरेकी व्यवस्था इसप्रकारहै कि, जो पिताके द्वारा सापिण्ड्यका विचार होय तो सातमीं पीढीसे ऊपर जाकर सपिण्डताकी निवृत्ति और जो माताके द्वारा सापिण्ड्यका विचार होय तो पांचमीं पीढीसे ऊपर निकलकर सपिण्डताकी निवृत्ति होजाती है । अब इसमें उदाहरणोंको इसप्रकार समझना कि, एक विष्णुनामका मूलपुरुष है इससे कांति और गौरी दो कन्या हुईं, उन कन्याओंसे सुधी और हर ये दो लडके हुए । फिर उन लडकोंसे बुध, मैत्र, फिर इनसे भी चैत्र, शिव, इनसे भी गण,भूप,फिर इनसे मृड अच्युत ये दो लडके हुए ॥ १ ॥ तो इन लडकाओंसे मृडसे रति और अच्युतसे काम ये दो लडकी लडका हुए । इन आठमीं पीढीपर हुओंका विवाह निर्दोष है । तथा विष्णुसे दत्त चैत्र,इनसे सोम मैत्र,इनसे सुधी, बुध हुए ॥ २ ॥ इन दोनोंसे उत्पन्न हुए श्यामा और रति फिर इन दोनोंसे उत्पन्न हुए शिव, गौरी इन दोनोंका विवाह निर्दोष है । तथा विष्णु मूलपुरुषसे दत्त, चैत्र, सोम, मैत्र इनसे सुधी, बुध ॥३ ॥ इनसे श्यामा (शिव, फिर इनसे उत्पन्न हुए कान्ति हर इन दोनोंका विवाह नहीं होसक्ता) नर्मदा, फिर इनसे शिव, काम, फिर इनसे रमा, कवि, ये लडकी लडका हुए तो इन दोनोंमें मातृद्वारा सापिण्ड्य निवृत्त होचुका था तथा फिर पितृद्वारक सापिण्ड्य मण्डूकप्लुतिन्यायसे चलाजायगा इससे विवाह नहीं होता ॥ ४ ॥ तथा विष्णुमूलपुरुषसे दत्त, चैत्र, इनसे सोम, मैत्र, फिर इनसे सुधी, बुध, फिर इनसे श्यामा, शिव, फिर इनसे कान्ति, हर, फिर इनसे उत्पन्न हुए हर और कांतियोंका विवाह नहीं होता ॥ ५ ॥

इसको अब उदाहरणसे नीचे स्पष्टकरकै दिखाते हैं ।

विष्णु० यह पुरुष है ।		विष्णु		विष्णु		विष्णु	
कान्ति, २	गौरी, २	दत्त, २	चैत्र, २	दत्त, २	चैत्र, २	दत्त, २	चैत्र, २
सुधी, ३	हर, ३	सोम, ३	मैत्र, ३	सोम, ३	मैत्र, ३	सोम, ३	मैत्र, ३
बुध, ४	मैत्र, ४	सुधी, ४	बुध, ४	सुधी, ४	बुध, ४	सुधी, ४	बुध, ४
चैत्र, ५	शिव, ५	श्यामा,५	रति, ५	श्यामा, ५	नर्मदा, ५	श्यामा,५	शिव, ५
गण, ६	भूप, ६	शिव, ६	गौरी,६	शिव, ६	काम, ६	कांति, ६	हर, ६
मृड, ७	अच्युत, ७			रमा, ७	कवि, ७		
रति, ८	काम, ८						
यहां पिताके द्वारा जो सपिण्ड है, वह निवृत्त होगया क्योंकि, ये रतिकाम आठमीं पीढीपर हैं इस लिये इन रति कामके विवाह होनेमें दोष नहीं ॥		यहां गौरी और शिवके विवाह होनेमें दोष नहीं । मूलपुरुषविष्णुसे छठीपीढीपर ये हैं, इससे माताके द्वारा सापिण्ड्यनिवृत्त हो गया ॥		यहां रमा और कविका विवाह नहीं होसकता क्योंकि, यद्यपि माताके द्वारा सापिण्ड्य निवृत्त होचुका तथापि पिता जो सातमीं पीढीपर हो तो सापिण्ड्य नहीं रहता इस वचनसे पिताके द्वारा सापिण्ड्यहै क्योंकि, पिता छठी पीढीपर है।		यहां कान्ति हरका विवाह नहीं होसकता क्योंकि माताके द्वारा यद्यपि कान्तिका सापिण्ड्य हरके साथसे निवृत्त होगया तथापि वरकी सपिण्डकान्ति बनीरही क्योंकि,हरका पिता मूलपुरुषसे छठी पीढीपर है ॥	

जो सपिण्ड एकके द्वारा निवृत्त होचुका हो वह अन्यके द्वारा फिर आजाता है। इस संक्षेपसे यह सापिण्ड्यका मार्ग दिखाया है ॥ ६ ॥ यदि मूलपुरुषसे पांचमीं पीढीपर कन्या होय तो उनकी सन्ततियोंका परस्पर विवाह होजाता है। क्योंकि, माताके द्वारा सापिण्ड्य निवृत्त होचुका। और जो कूटस्थ पुरुषसे पांचमीं पीढीपर कन्या हैं उनके पुत्रोंकी सन्ततिमें पिताके द्वारा सापिण्ड्य चलाआता है इसीको मण्डूकप्लुतिसापिण्ड्य कहते हैं। पांचमीं कन्यासे जो छठी पीढीपर पुत्र है उसके सपिण्ड वे नहीं होते जो कूटस्थसे पांचमीं पीढीतक हैं तथापि उससे जो अगाडीकी सन्तति है उस सन्ततिके पिताके द्वारा पांचमीं, छठी आदि पीढीके पुरुष फिर सपिण्ड हुए तो पांचमीं कन्याकी सन्ततिका विवाह पांचमीं छठी पीढीतकके सन्तानके साथ नहीं करना। क्योंकि, एकपीढीपर न होनेपरभी दूसरी पीढीमें फिर प्रवृत्त होगया। इसीप्रकार कूटस्थसे लेकर अष्टम आदिका तथा कूटस्थसे लेकर दूसरे आदिका सापिण्ड्य एकसे निवृत्त होजाय तो दूसरेसे पुनः उसका होना समझना। इसी प्रकार आशौचके सापिण्ड्यमें भी एकसे निवृत्ति और दूसरेसे प्रवृत्ति होनी समझनी। इसप्रकार पिताके द्वारा सापिण्ड्य सातमीं पीढीपर और माताके द्वारा सापिण्ड्य पांचमीं पीढीसे निवृत्त होजाता है। इस मुख्य पक्षके अनुसार जो कन्या विवाहके विषे वर्जित हैं उनकी इतनी संख्या है कि, पिताके कुलमें तो दो हजार सोलह (२०१६) और माताके कुलमें एकसौ पांच (१०५) इसप्रकार दोनों कुलोंकी कन्याओंको मिलाकर दो हजार इक्कीस (२०२१) कन्या हुई इनके गिननेकी रीति और मूलश्लोक और उनकी व्याख्या यह सब कौस्तुभग्रन्थमें लिखी हुई है। इसको बालक नहीं समझ सकते इससे यहां नहीं लिखी। इससे इस मुख्यपक्षके अनुसार दोनों कुलोंकी इतनी कन्या वर्ज देनी। परन्तु नवीन कल्पित कल्पोंके अनुसार सातमीं वा पांचमीं पीढीसे पूर्व विवाह नहीं करना। क्योंकि, स्मृतियोंमें लिखा है कि, जिनकी पांचमीं वा सातमी पीढीमें विवाह होगया है वे यद्यपि कर्म आदिके करनेमें कुशल थे तथापि पतित होकर शूद्र होगये। तथा सातमीं पांचमीं पूर्व और अपने गोत्रकी कन्याको विवाहकरनेवाला द्विज गुरुतल्पी समझना। और जो कि ये वचन हैं कि, चौथी वा पांचमीं पीढीपर हो वह चौथी वा पांचमीं वा तीसरी पीढीकी कन्याको माताके पक्षकी वा पिताके पक्षकी हो विवाह लेवे। इन वचनोंमें कितनेही निष्प्रमाण हैं और कितनेही दत्तक आदिके सम्बन्ध तथा ब्राह्मणोंके जो क्षत्रिय सपिण्ड हैं उनके विषयमें लगाने। यह निर्णयसिन्धुका मत है। और कौस्तुभमें तो यह लिखा है कि, सातमीं पीढीसे जो ऊपर हो वा न होय तो सातमीं पीढीकी वहभी न होय तो पांचमीं पीढीकीही पितृपक्षकीभी कन्याको विवाह लेवे। तथा सातमीं, छठी, और पांचमीं कन्याको विवाह ले तो दोष नहीं यह शाकटायनने कहा है। तथा दोनों पक्षकी तीसरी वा चौथी कन्याको विवाह ले यह मनु, पाराशर, यम और अंगिराने कहा है। और जो कि, देश आचार और कुलाचारके अनुसार विवाहै उसके साथ विवाहसम्बन्ध व्यवहार बना रहता है यह बात वेदसेभी सिद्ध है। और ये वचन चतुर्विंशतिमत और षट्त्रिंशत् मत आदि ग्रंथोंमें मिलते हैं। और सापिण्ड्यके संकोचसे विवाह बहुतदेशोंमें देखा जाता है। और जिनके कुल वा देशमें सदासे सापिण्ड्यके संकोचसे विवाह चला आया है उनको दोष नहीं होता। और जो कि, अपने कुल वा देशसे विरुद्ध करैंगे उनको तो दोष होवैगा। क्योंकि, विवाहके विषे देश और ग्रामके धर्मोंको अवश्य विचारना चाहिये। क्योंकि, इस वचनसे

कि, जिससे अपने पिता, बाबा आदि जिस मार्गपर चले आये हों उसीमार्गसे वर्ताव करै। क्योंकि, उसप्रकार करनेमें दूषित नहीं होता। अपने कुलाचार और देशाचारसे जो कार्य विरुद्ध न हो उसकोही करना उचित है। यही मामाकी कन्याके विवाहनेमेंभी समझना। (तृप्तां जहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयीवपाम्) अर्थ यह है कि मामाकी कन्या इसप्रकार त्यागनेयोग्य है जैसे पिताकी भगिनीकी त्याज्य है इत्यादि मंत्रोंके प्रमाणसे मामाकी कन्या माताके जो गोत्रकी हो उसको तथा जो अपने प्रवरकी कन्याको व्याहकर चांद्रायण व्रतको करै, इत्यादि जो स्मृतियोंके वचन हैं इनका बाध होनेसे जिनके कुलमें मातुलकी कन्याके साथ विवाह चला आता हो उनको करना। और जो कि, यह वचन है कि, माताके गोत्र वा सपिण्डकी कन्याका विवाहना, गौका मारना ये कलियुगमें निषिद्ध हैं सो यह जिनके कुलमें परम्परासे मातुल कन्याके विवाहका आचार न हो उनके ही विषयमें है। क्योंकि, मामाकी कन्याके साथ अनेक श्रुति स्मृतियोंसे सिद्ध है। इससे मामाकी कन्याके विवाहनेवालोंका श्राद्धके निमंत्रणमें निषेधभी उसीके विषयमें है कि, जिसने अपने कुलाचार आदिके विरोधसे विवाह करलिया हो। पूर्व कहे कुलाचार आदिके अनुसार जो सापिण्ड्यके संकोचसे विवाह करनेवाले हैं उनको शिष्टोंमें श्राद्धभोजन आदिका आचार है। इत्यादि बहुतही कौस्तुभग्रंथमें लिखा है। परन्तु सापिण्ड्यके संकोचके विषयमेंभी कौनसी कन्या कौनसे पुरुषको विवाहनी और कौनसेको न विवाहनी यह व्यवस्था नहीं कही। और जो कि, नवीन सापिण्ड्यदीपिकाकार हुए हैं उन्होंने तो; जो चौथी पीढीपरहै वह चौथीको और पांचमीपर जो हो वह छठीको विवाहै परन्तु पांचमी पीढीपर जो हो वह पांचमीको न विवाहै यह पाराशरका मत है। इत्यादि वचनोंको समूल मानकर जो अशक्त हैं उनको संकटमें सापिण्ड्यका संकोच करके विवाह करना। सोई दिखाते हैं कि, जो मातृपक्ष वा पितृपक्षकी चौथी पीढीपर कन्या हो उसे चौथीपीढी वा पांचमी पीढीका पुरुष विवाह ले। और जो दूसरी तीसरी वा छठी पीढीके हैं वे न विवाहैं। और पाराशरके मतसे तो पांचमां छठी पीढीकीको विवाहै। दूसरी, तीसरी और चौथी पीढी आदिके छठीको और पांचमां पांचमीको न विवाहै। माता वा पिताके पक्षकी कन्या जो छठी पीढीपर हो उसको छठी पीढीपर जो हो सो विवाहै। इस वचनसे छठी कन्याको छठा पुरुष ग्रहण करै। इससे यह बात सिद्ध हुई कि, जो पांचमी और छठी पीढीपर न हो वह छठीपीढीकी कन्याको न विवाहै। तथापि पिताके पक्षकी सातमी और माताके पक्षकी पांचमीको तीसरे, चौथे आदि सब विवाहलें। क्योंकि, व्यासका वचन है कि, पिताके पक्षकी सातमी और माताके पक्षकी पांचमी कन्या विवाहने योग्य होती है। और चतुर्विंशतिके मतमेंभी कहा है कि, सातमी पीढीसे जो ऊपर हो, जो वह न मिलै तो सातमी और जो वहभी न मिलै तो पांचमी कन्याको विवाह ले यह विधि पितृपक्षमेंभी समझनी। इससे पितृपक्षकी पांचमी कन्या तृतीय आदि पुरुषको विवाहने योग्य है। और इसमेंभी मातृपक्ष और पितृपक्ष इन दोनोंमें पांचमी पीढीका पांचमी कन्याको न विवाहै। क्योंकि, यह सर्वसंमत निषेध है कि, पांचमां पांचमीको न विवाहै। परन्तु दोनों पक्षकी तीसरी वा चौथी कन्याको विवाह ले इस वचनसे तीसरी कन्याका विवाह तो शास्त्रसे प्राप्त होता है। अब इसमें यह व्यवस्था समझनी कि, माताके पक्षमें जब तीसरी पीढीकी मामाकी कन्या वा मामसीकी कन्या हो और पितृपक्षमेंभी तीसरी पीढीकी चाचा वा पितृ

ष्वसा (बूआ) की कन्या होय तो वहां चाचाकी कन्या सगोत्री होनेसे त्यागने योग्य है । तथा जो बूआकी बेटी, अपनी बहिन तथा मामसीकी कन्या इन तीनोंको विवाहार्थी पुरुष कदापि न विवाहै । इस मनुके वचनसे पितृष्वसा मातृष्वसाकी भी कन्या त्यागने योग्य लिखी हैं । क्योंकि, पितृष्वसा (बूआ) की लडकी, मातृष्वसा (मामसी) माताकी बहिनकी कन्या इन तीनोंको न विवाहै यह इस मनुवचनका अर्थ है । इससे जो तृतीय पीढीपर मामाकी कन्या हो वह कुलाचारके अनुसार विवाहनी । इसीप्रकार तृतीयपुरुषकोही तीसरी पीढीकीभी मामाकी कन्याविवाहनी चौथे आदिको नहीं । कोई संकटमेंभी बूआकी कन्याके साथ विवाह करना कहते हैं । तिसमें देशाचार और कुलाचारके अनुसार व्यवस्था समझनी।यहां सापिंड्यदीपिकाकारका सिद्धान्तअर्थ यह समझना कि,तीसरी पीढीकी मामाकी कन्याही विवाहनी अन्यकी नहीं । और चौथी पीढीकी कन्याको चौथे और पांचमेंही विवाहैं अन्य नहीं । और पांचमीं पीढीकी कन्याको तीसरी पीढीसे सातमीतकका ही पुरुष विवाहे अन्य नहीं । और छठी पीढीकी कन्याको पांचमें छठे विवाहैं अन्य नहीं। सातमीको तीसरीसे लेकर सातमेंतक विवाहैं । यह सापिण्डयके संकोचसे विवाह जो समर्थ न हो उसकोही करना अन्यको नहीं । और जो अन्य कन्याओंके विवाहनेमें समर्थ हो उसको नहीं क्योंकि, उनके लिये गुरुस्त्रीके गमन आदिका दोष कहाहै । और यह सापिण्डयका संकोच असमर्थ-विषयमें है यह बात स्पष्ट है । क्योंकि, समर्थ पुरुषको मामा आदिकी कन्याके विवाहनेमें ये दोष स्पष्ट कहा है कि, जो प्रथमपक्ष अर्थात् सपिण्ड सगोत्रकी कन्याको न विवाहै इसके पालनेमें समर्थ है जो वह फिर यह अनुकल्प जो मामा आदिकी कन्याका विवाहना है इससे वर्तें वह है । इसी लोकमें उस पापके फलको भोगता है । दत्तकसापिण्डय दत्तकके निर्णयमें पूर्व कह आये । अब सापत्नकी माताके कुलमें जो सापिण्डय है उसकी रीति जो सुमन्तुने कही है उसको दिखाते हैं । जो पिताकी स्त्री हैं वे सब माता, उनके भाई मामा, उनकी बहिन मामसी, उनकी कन्या अपनी बहिन और उन बहिनोंके पुत्र भानजे होते हैं। ये सपिण्ड होते हैं अन्यथा वर्णसंकरता हो जाती है। इसमें कोई सापत्नमाताके कुलमें जो चार पुरुष-तक सापिण्डच है वह विवाहके निषेधके लिये कहा है । और कोई तो यह कहते हैं कि, विवाहमात्रके विषयमें सापिण्डचको माननेमें कोई प्रमाण नहीं । इससे आशौच आदिके विषयमें इसके होनेसे जो वचनमें पडे हैं उन्हीका उनमें सापिण्डच है । चारपीढी आदिमें नहीं क्योंकि, जितने वचनसे सिद्ध पदार्थ हैं वेही प्रमाण हैं यह न्यायमार्ग है । सोई यहां इन सुमन्तुके वाक्योंको पृथक् पृथक् करके यह सिद्ध होता है कि, प्रथमवाक्य यह है कि, पिताकी पत्नी सब माता होती हैं सो इस वाक्यसे सापत्नमाताके विषे मुख्य अपनी माताके समान सत्कार करना । जो यदि उसकी हिंसा अपनेसे हो जाय तो माताके वधका प्रायश्चित्त, जो यदि उसके गमनमें माताके गमनका प्रायश्चित्त आदि करनेका अतिदेश सिद्ध होता है । परन्तु इसके विषयमें जो यदि माता मर-जाय तो आशौचके बीतनेके अनन्तर सुननेमें दशदिनका आशौच होता है । यह अतिक्रान्त आशौच नहीं होता । क्योंकि सपत्नीमाताके मरणके सुननेमें तीन दिनका आशौच होता है इस विशेषविधिसे उसका बाध है । और उसके भाई मामा होते हैं इस वचनसे भी मामाके मरनेसे जो आशौच उस आदिका तथा मामाकी भगिनी तथा उसकी सपत्नीकी कन्याके

विवाहका निषेध सिद्ध है । यहां सपत्नीके भाईमें मातुलत्वका अतिदेश यद्यपि है तथापि उसके पुत्र आदिमें मातुल पुत्रकी समानताका अतिदेश नहीं । इससे तीन बंधुओंके मरनेसे जो आशौच वह नहीं होता । और मामाकी कन्या आदिका जो विवाह और उसका निषेधभी नहीं होता तथा इसीप्रकार मामाकी कन्या आदि पिताकी भगिनी नहीं इससे उसके पुत्र आदिकी वे पितृष्वसा आदिभी नहीं और उसकी भगिनी मातृष्वसा (मामसी) होतीहैं । इससे उसके मरण आदिमें आशौच और विवाहका निषेध इन दोनोंका विधान है; परन्तु उस मातृ-ष्वसाके पुत्रमें तीन बंधु जो होते हैं उनमें गणना नहीं । सपत्नीमाताकी भगिनीकी कन्याके साथ जो विवाह उसका निषेध तो विरुद्धसम्बन्धके होनेसे अगाडी कहेंगे । उस मातृष्वसाकी जो सन्तति है वे भगिनी भाई होते हैं । इससे उनके मरण आदिमें आशौच और सत्कार (होली आदिमें भेट देना) यह करना । यहां विवाहकी योग्यता नहीं क्योंकि, वे सगोत्र होतीहैं यहां यह प्रतीत होता है कि, अपनी माताकी सपत्नीका जो पुत्र है उसके मामा,भाई, मामसी और बहिन इनका अपने मामाके सहोदर भाई आदिका पीछे तर्पण करना । और महालय श्राद्ध आदिमें नाम आदिका उच्चारण भी करना इसी वचनसे आवश्यक है । उसके भगिनी आदिकी सन्तान आदि भानजे होते हैं यहां आशौच और विवाहका निषेधका विधान है । यद्यपि भागिनेयी मानना इस वचन (तदपत्यानि भागिनेयानि) से यद्यपि भागिनेयी मानना विधानकिया तथापि उनकी कन्याओंसे भानजीकी कन्याकी तुल्यता नहीं क्योंकि वचनमें जो जिसको विधान किया यह विधि उसी पात्रके विषयमें होती है । यह न्याय है । यह दिग्दर्शन मात्र कह चुके । कहीं सपिण्ड न होय तो भी वचनके बलसे विवाह नहीं होता। जिसके साथ विरुद्ध सम्बध न हो उसके साथ विवाह होनेमें दोष नहीं । जो स्त्री और पुरुष इनको परस्पर मातापिताकी समानता अर्थात् जो स्त्री पतिकी माताकी समान वा स्त्रीके पिता की समान पति होय तो विरुद्ध सम्बन्ध है । सोई परिशिष्टमें कहा है कि, जैसे स्त्रीकी बहि-नकी पुत्री कन्याकी समान और चाचाकी स्त्रीकी बहिन ये दोनों एक (पूर्व) पक्षमें पति स्त्रीके पिताकी समान और दूसरे पक्षमें स्त्रीका पति पुत्रकी समान हुआ । इसीका नाम विरुद्धसम्बन्ध है । यहां बौधायनने वह कहा है कि, माताकी जो सपत्नी (सौत) उसकी बहिन और उस बहिनकी कन्या तथा चाचाकी स्त्री और उसकी बहिन इनको वर्ज दे । कोई तो यह कहते हैं कि, जेठाभाई पिताकी समान है । इससे ज्येष्ठ भाईकी स्त्रीकी भगि-नी मातृष्वसाकी समान है इससे उसको न विवाहना । अब पूर्वोक्त श्लोकमें असपिण्डा जो शब्द था उसका व्याख्यान समाप्त हुआ । अब यवीयसी शब्द आदिको कहते हैं कि, जो अपनी अपेक्षा अवस्थामें छोटी हो और शरीरसे भी कम पुष्ट हो वह यवीयसी है । आर्ष नाम प्रवरका है; जिसके प्रवर और गोत्र एक न हों वह असमानार्षगोत्रजा इन स्त्रियोंके साथ विवाह करना ॥

अथ संक्षेपतो गोत्रप्रवरनिर्णयः ।

तत्र गोत्रलक्षणम् ॥ विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः ॥ अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्तऋषयः ॥ सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्या-चक्षते ॥ यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्ष्टिषेणादिषु केवलांगिरसेषु हारीतादिषु च नैतल्ल-

क्षणं भृग्वंगिरसोरष्टऋषिष्वनंतर्गतत्वात् ॥ तथाप्यत्र प्रवरैक्यादेवाविवाहः ॥ यद्यपि गोत्राणि अनंतानि "गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च" इत्युक्तेस्तथाप्यूनपंचाशदेव गोत्रभेदाः ॥ व्यावर्तकप्रवरभेदानां तावतामेव दर्शनात् ॥ प्रवर लक्षणं तु गोत्रवंशप्रवर्तकऋषीणां व्यावर्तका ऋषिविशेषाः प्रवरा इत्येव संक्षेपतो ज्ञेयम् ॥ समानगोत्रत्वं समानप्रवरत्वं च पृथक् पृथक् विवाहप्रतिबंधकम् ॥ तत्र प्रवरसाम्यं द्विविधम् ॥ एकप्रवरसाम्यं द्वित्रिप्रवरसाम्यं च ॥ तत्र भृग्वंगिरोगणेतरेषु एकप्रवरसाम्यमपि विवाहप्रतिबंधकम् ॥ केवलभृगुगणेषु केवलांगिरोगणेषु चैकप्रवरसाम्यं न विवाहबाधकम् ॥ किं तु त्रिप्रवरेषु द्विप्रवरसाम्यमेव पंचप्रवरेषु त्रिप्रवरसाम्यमेव च विवाहबाधकम् ॥ "पंचानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ॥ भृग्वंगिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत्" इत्यादिवचनात ॥ जामदग्न्यभृगुगणेषु गौतमांगिरसेषु भरद्वाजांगिरसेषु चैकप्रवरसाम्येपि क्वचित् प्रवरसाम्याभावेपि च सगोत्रत्वादेवाविवाहः ॥

अब संक्षेपसे गोत्र प्रवरका निर्णय कहते हैं। तिन दोनोंमें गोत्रका लक्षण कहते हैं कि, विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम और अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप ये सात ऋषि होते हैं। इस वचनमें कहे सातऋषि और आठमें अगस्त्य इनकी जो सन्तान उसको (गोत्र) कहते हैं। यद्यपि यह तुम्हारा लक्षण, जो आर्ष्टिषेण आदि केवल भार्गव तथा जो केवल आंगिरस हैं उनमें नहीं घटसक्ता क्योंकि, भृगु और अंगिरा ये इन पूर्वोक्त आठ ऋषियोंमें नहीं आये तथापि इनका प्रवर एक होय तो विवाहका अभाव समझना। यद्यपि सहस्र, दशसहस्र और अर्बुदों गोत्र हैं इस वचनसे गोत्र अनन्त हैं तथापि गोत्रोंके भेद उनंचास ४९ ही समझने। क्योंकि जो गोत्रोंको जुदा २ करनेवाले प्रवर हैं वे इतनेही हैं तथा प्रवरका लक्षण तो गोत्र और वंशोंको प्रवृत्त करनेवाले जो ऋषि हैं उनके भिन्न २ करनेवाले जो ऋषि हैं उनको प्रवर कहते हैं। संक्षेपसे यही समझना। गोत्रका एक होना और प्रवरका एक होना ये दोनों स्वतन्त्र विवाहके प्रतिबन्धक हैं। परन्तु जो केवल भृगु हैं और जो केवल अंगिरा हैं उनमें जो एकप्रवर मिलजाय तो विवाहका प्रतिबंध नहीं। किन्तु तीन प्रवरोंमेंसे दोप्रवर मिल जायँ वा पांचप्रवरोंमेंसे तीन मिल जायँ तो विवाहका प्रतिबंध है। क्योंकि, इत्यादि वचन हैं कि, पांचप्रवरोंमेंसे तीन मिलजायँ और जो तीनोंमेंसे दोप्रवर मिल जायँ तो भृगु और अंगिरा इनमें विवाह नहीं और इनसे भिन्न सब गोत्रोंमें एकभी प्रवर मिल जाय तो विवाह नहीं। और कहीं तो जमदग्नि, भृगु, गौतम, आंगिरस और भरद्वाज, अंगिरा इन गोत्रोंमें कहीं एक गोत्र मिल जाय तो विवाह नहीं और प्रवर न मिलै तोभी गोत्रकी समानता होनेसे विवाह नहीं होता॥

अथ गोत्रगणना ।

"गोत्राणां प्रवराणां च गणना प्रोच्यतेऽधुना ॥ संक्षेपात्सुखबोधाय भगवन्नीतयेपि च"॥सप्त भृगवः॥सप्तदशांगिरसः । चत्वारोऽत्रयः । दश विश्वामित्राः । त्रयः

कश्यपाः । चत्वारो वसिष्ठाः । चत्वारोगस्तयः । इत्येकोनपंचाशद्गणास्तथापि सर्वग्रंथमत संग्रहेणाधिकास्तत्र तत्र वक्ष्यन्तेतत्र सप्त भृगुगणाः। वत्साः विदाः एतौ जामदग्न्यौ॥ आर्ष्टिषेणाः यस्काः मित्रयुवः वैन्याः शुनका एते च पंच केवलभृगवः एवं सप्त। तत्र वत्साः मार्कंडेयाः मांडूकेयाः इत्यादयः शतद्वयाधिका वत्सगोत्रभेदाः एतेषां पंच प्रवराः ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति ॥ भार्गवौर्वजामदग्न्येति त्रयो वा॥भार्गवच्यावनाप्नवानेति त्रयो वा ॥विदाः शैलाः अवटाः इत्यादयो विंशत्यधिका विदाः ॥ तेषां पंच प्रवराः भार्गवच्यावनाप्नवानौर्ववैदेति ॥ भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा ॥ आर्ष्टिषेणाः नैर्ऋतयः याम्यायणाः इत्यादयो विंशत्यधिका आर्ष्टिषेणाः ॥ एषां भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणानूपेति पंच ॥ भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति त्रयो वा ॥ एतेषां त्रयाणां वत्सविदार्ष्टिषेणानां परस्परमविवाहः द्वित्रिप्रवरसाम्यात् ॥ आद्ययोर्जामदग्न्यत्वेन सगोत्रत्वाच्च ॥ यद्यपि त्रिप्रवरार्ष्टिषेणानां वत्सविदैः सह न द्विप्रवरसाम्यं नापि सगोत्रत्वं जामदग्न्यत्वाभावात् ॥ तथापि पंचप्रवरपक्षगतमपि त्रिप्रवरसाम्यं विवाहबाधकम् एवमग्रेपि ज्ञेयम् ॥ वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्नवानेति त्रयः ॥ वत्सपुरोधसोर्भार्गवच्यावनाप्नवानवत्सपौरोधसेति पंच ॥ वैजमथितयोर्भार्गवच्यावनाप्नवानवैजमथितेति पंच ॥ एते त्रयः क्वचित् ॥ एतेषां परस्परं पूर्वोक्तैश्च त्रिभिर्न विवाहः त्रिप्रवरसाम्यात् ॥ यस्काः मौनाः मूकाः इत्यादयस्त्रिपंचाशदधिका यस्काः ॥ एषां भार्गववैतहव्यसावेतसेति त्रयः ॥ मित्रयुवः रौक्ष्यायनाः सापिंडिनाः इत्यादयस्त्रिंशदधिका मित्रयुवः ॥ तेषां भार्गववाध्र्यश्व दैवोदासेति त्रयः ॥ भार्गवच्यावनदैवोदासेति वा ॥ वाध्र्यश्वेत्येको वा ॥ वैन्याः पार्थाः बाष्कलाः श्येता इत्येते वैन्याः ॥ एषां भार्गववैन्यपार्थेति त्रयः ॥ शुनकाः गार्त्समदाः यज्ञपतयः इत्यादयः सप्तदशाधिकाः शुनकाः एषां शौनकेत्येकः । गार्त्समदेति वा ॥ भार्गवगार्त्समदेति द्वौ वा ॥ भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति त्रयो वा। यस्कादीनां चतुर्णां स्वस्वगणं हित्वा परस्परं पूर्वैर्जामदग्न्यवत्सादिभिश्च सह विवाहो भवति ॥ एकप्रवरसाम्येपि द्वित्रिप्रवरसाम्याभावात् ॥ भृगुगणेषु एकप्रवरसाम्यस्य दूषकत्वाभावात् ॥ अजामदग्न्यत्वेनासगोत्रत्वात् ॥ मित्रायुवां पाक्षिकद्विप्रवरसाम्यात् त्रिप्रवरैर्वत्सादिभिः सह न विवाह इति केचित् ॥ तत्प्रवरपक्षग्राहिणामविवाहः ॥ पक्षांतरग्राहिणां मित्रयूनां विवाह एवेत्यन्ये ॥ क्वचिदधिकं गणद्वयमुक्तम् ॥ वेदविश्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति त्रयः ॥ शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति त्रयः ॥ अनयोः परस्परं पूर्वैश्च सर्वैर्विवाहः ॥ इति भृगुगणाः॥ अथांगिरसः ॥ ते त्रिविधाः गौतमा भरद्वाजाः केवलाश्चेति ॥ तत्र गौतमांगिरसो दश आयास्याः शारद्वताः कौमंडाः दीर्घतमसः करेणुपालयः वामदेवाः औशनसाः राहूगणाः सोमराजकाः बृहदुक्थ्याश्चेति ॥ १॥ तत्र आयास्याः श्रोणिवेधाः

मूढरथा इत्यादयोष्टादशाधिका आयास्यास्तेषामांगिरसायास्यगौतमेति त्रयः ॥ शारद्वताः अभिजिता रौहिण्या इत्यादयः सप्तत्यधिकाः शारद्वतास्तेषामांगिरसगौतमशारद्वतेत्ति त्रयः कौमंडाः मामंथरेषणाः मासुराक्षा इत्यादयो दशाधिकाः ॥ कौमंड्यस्तेषामांगिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमकौमंडेति पंच ॥ आंगिरसौ तथ्यगौतमौशिजकाक्षीवतेति वा ॥ आंगिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा ॥ आंगिरसौशिजकाक्षीवतेति त्रयो वा ॥ आंगिरसौतथ्यकाक्षीवतेति वा ॥ औतथ्यगौतमकौमंडेति वा ॥ अथ दीर्घतमसो गौतमास्तेषामांगिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति पंच ॥ आंगिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा ॥ करेणुपालयः वास्तव्या श्वेतीया इत्यादयः सप्ताधिकाः करेणुपालयस्तेषामांगिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः वामदेवानामांगिरसवामदेव्यगौतमेति त्रयः ॥ आंगिरसवामदेव्यबार्हदुक्थ्येति वा ॥ औशनसाः दिश्याः प्रशस्ताः इत्यादिका नवाधिका औशनसास्तेषामांगिरसगौतमौशनसेति त्रयः ॥ रहूगणानामांगिरसराहूगणगौतमेति त्रयः ॥ सोमराजकानामांगिरससौमराज्यगौतमेति त्रयः ॥ बृहदुक्थानामांगिरसबार्हदुक्थगौतमेति त्रयः॥ १० ॥ क्वचिद्गणद्वयमधिकमुक्तम् ॥ उतथ्यानामांगिरसौतथ्यगौतमेति ॥ राघुवानामांगिरसराघुवगौतमेति ॥ गौतमानां सर्वेषामविवाहः ॥ सगोत्रत्वात्प्रायेण द्वित्रिप्रवरसाम्याच्च ॥

अब गोत्रोंकी गणना कहते हैं। कि, सुखसे बोधके लिये भगवान्‌की प्रीतिके अर्थ मैं गोत्र और प्रवरोंकी गणना करता हूं कि, भृगु, सात,(७) आंगिरस (१७) अत्रि (४) विश्वामित्र (१०) कश्यप (३) वसिष्ठ (४) अगस्ति (४) इस प्रकार उनंचास (४९) गोत्र हैं। तथापि सब ग्रंथोंके मतको मिलाकर जितने अधिक तहां तहां अगाडी कहेंगे तिनमें सातभृगु इसप्रकार हैं कि, वत्स और बिद ये दोनों जामदग्न्य और यस्क मित्रयु वैन्य शुनक ये पांच इसप्रकार सात हैं। इन सातोंमेंभी वत्स, माण्डूकेय, मार्कण्डेय, इत्यादि दोसौ (२००) वत्सगोत्रके भेद अधिक हैं इनके भार्गव,च्यावन,आप्रवान, और्व और जामदग्न्य ये पांच प्रवर अथवा भार्गव, और्व और जामदग्न्य ये तीन अथवा भार्गव, च्यावन,आप्रवान ये तीन प्रवर समझने और बिद, शैल, अवट इत्यादि बिदगोत्रभी बीस अधिक समझने। उनके भार्गव, च्यावन आप्रवान, और्व और बैद ये पांच प्रवर वा भार्गव, और्व, जामदग्न्य ये तीन प्रवर समझने । और आर्ष्टिषेण, नैर्ऋति और याम्यायण ये बीस आर्ष्टिषेण होते हैं। इनके भार्गव, च्यावन, आप्रवान, आर्ष्टिषेण और अनूप ये पांचप्रवर हैं । वा भार्गव, आर्ष्टिषेण अनूप ये तीन समझने। इन तीनों आर्ष्टिषेण वत्स, बिद इन तीनोंका दो और तीन प्रवरोंके होनेसे तथा वत्स और बिद ये दोनोंको सगोत्री होनेसे परस्पर विवाह नहीं होता। यद्यपि तीन प्रवर पक्षमें आर्ष्टिषेणोंका वत्स और बिदोंके साथ दो प्रवर नही मिलते हैं और गोत्र, मिलता है क्योंकि, आर्ष्टिषेणोंका जामदग्न्य गोत्र नहीं तो विवाह संभव है । तथापि पांच प्रवर पक्षमें जो दोनों (आर्ष्टिषेण बिद आदि) के पांच २ प्रवर हैं उनमेंसे तीनप्रवरमिले हैं। इससे विवाहका प्रतिबंध है। इसीप्रकार अगाडीभी समझना । वात्स्योंके भार्गव, च्यावन,

आप्रवान ये तीन प्रवर हैं । तथा वत्स और पुरोधा इनके भार्गव, च्यावन, आप्रवान, वत्स, पुरोधा ये पांच पवर हैं । तथा वैज और प्रमथित इनके भार्गव, च्यावन, आप्रवान मथित वैज ये पांच प्रवर समझने । कहीं भार्गव, च्यावन,आप्रवान ये तीन प्रवर समझने । इनका पूर्वोक्त तीनोंके साथ विवाह नहीं होता क्योंकि, तीनप्रवर मिलते हैं । यस्क, मौन, मूक इत्यादि तिरेपन ५३ यस्कोंके भेद हैं इनके भार्गव, वैत हव्यसाबेतस ये तीनभेद हैं । मित्रयु, रौष्ट्या-यन, सापिण्डिन ये तीस ३० मित्रयु हैं । इनके भार्गव, वाध्र्यश्व, दिवोदास, ये तीन प्रवरहैं । अथवा भार्गव, च्यावन दैवोदास ये समझने । अथवा वाध्र्यश्व यह एकही समझना । वैन्य, पार्थ, और वाष्कल ये तीन वैन्यगोत्रके भेद हैं । इनके भार्गव पार्थ, वैन्य ये तीनप्रवर हैं । शुनक, गार्त्समद, यज्ञपति इत्यादि सतरह (१७) शुनक होते हैं । इनका शौनक यह एक वा गार्त्समद ये प्रवर समझने । अथवा भार्गव, गार्त्समद ये दो प्रवर समझने । अथवा शौनक, अत्रि, गार्त्समद ये तीन प्रवर समझने । यस्क आदि जो चार हैं उनमें अपने अपने गणको छोडकर पूर्व कहे जामदग्न्य वत्स आदिके साथ परस्पर विवाह होता है । क्योंकि, इनमें यद्यपि एक प्रवरकी समता है तथापि दो, वा, तीन प्रवरकी समता नहीं क्योंकि, भृगुके गणोंमें एक प्रवर मिलजाय तो दोष नहीं होता । और सगोत्रभी नहीं क्योंकि, जामदग्न्य गोत्रमें नहीं । और कोई यह कहते हैं कि, मित्रयुओंके जो पक्षमें भार्गव, च्यावन आदि तीन प्रवर कहे ये उनमेंसे भृगुगणोंके साथ दो प्रवर मिलते हैं इससे तीन प्रवर वाले वत्स आदिके साथ विवाह नहीं होता । इससे जो उसपक्षको मानते हैं उनके परस्पर विवाह नहीं होते । और कोई यह कहते हैं कि, अन्य पक्षको माननेवाले जो मित्रयुओंका विवाह होता है । वहां किसीने दो अधिक गण कहे हैं । वेद विश्व और ज्योतिः इनके भार्गव वेदविश्व और ज्योतिष इनके तीन प्रवर हैं । शाठर माठर इनके भार्गव शाठर माठर ये तीन प्रवर हैं । इन दोनोंका पहिलोंके साथ परस्पर विवाह नहीं होता । भृगुगणोंके गोत्र और प्रवर कह चुके अब आंगिरसको कहते हैं । वे आंगिरस तीनप्रकारके हैं गौतम, भरद्वाज, केवल तिनमें गौतम जो आंगिरस उनके ये दश भेद हैं । आयास्य, शारद्वत, कौमण्ड, दीर्घतमस, करेणुपालि, वामदेव, औशनस, राहूगण, सोमराजक और बृहदुक्थ तिनमें आयास्य, श्रोणिवेधा, मूढरथ इत्यादि अठारह (१८) हैं । तिनके आंगिरस, आयास्य और गौतम ये तीन प्रवर हैं । और उनमें शारद्वतोंके आभिजित, शारद्वत, रौहिण्य इत्यादि सत्तर (७०) हैं । उनके गौतम, आंगिरस, शारद्वत ये तीन प्रवर हैं । कौमण्डोंके कौमण्ड, मासन्थरेषण और मासुराक्ष इत्या-दि दशभेद हैं । तिनके आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत, गौतम, और कौमण्ड, ये पांच प्रवर हैं। अथवा आंगिरस, औतथ्य, गौतम, औशिज, और काक्षीवत ये पांच समझने । अथवा आंगि-रस, आयास्य, औशिज, गौतम, काक्षीवत ये समझने । अथवा आंगिरस, औशिज, काक्षीवत ये तीन । अथवा औतथ्य, गौतम, कौमण्ड ये तीन समझने । अब जो दीर्घतमस जो गौतम हैं उनके आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत, गौतम, दीर्घतमस ये पांच प्रवर हैं । अथवा आंगिरस औतथ्य, काक्षीवत ये तीन प्रवर समझने । करेणुपालि, वास्तव, श्वेतीय इत्यादि सात करेणु-पालि हैं तिनके आंगिरस, गौतम करेणुपालि ये तीन प्रवर हैं । वामदेवोंके आंगिरस, वामदे-व्य और गौतम ये तीन प्रवर हैं । अथवा आंगिरस, वामदेव्य, बार्हदुक्थ ये तीन समझने । औशनस, आदित्य और प्रशस्त इत्यादि नौ औशनस हैं तिनके आंगिरस, गौतम और औश-

नस ये तीन प्रवर हैं। रहूगणोंके आंगिरस, राहूगण और गौतम ये तीन प्रवर हैं। सोमराजकोंके आंगिरस, सोमराज्य और गौतम ये तीन प्रवर हैं बृहदुक्थोंके आंगिरस, बार्हदुक्थ और गौतम ये तीनप्रवर हैं। कहीं इन दशगणोंसे दोगण अधिक कहे हैं। उतथ्योंके आंगिरस औतथ्य और गौतम ये तीनप्रवर हैं। और राघुवोंके आंगिरस, राघुव, गौतम ये तीन प्रवर हैं इन सब गौतमोंका परस्पर विवाह नहीं होता क्योंकि, कोई सगोत्र हैं और कितनोंमें दो तीन प्रवर मिलते हैं।

अथ भरद्वाजाः।

ते चत्वारः भरद्वाजाः गर्गाः ऋक्षाः कपयश्चेति भरद्वाजाः क्षाम्यायणाः देवाश्वा इत्यादयः षष्ट्युत्तरशताधिका भरद्वाजास्तेषामांगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः॥ गर्गाः सांभरायणाः सखीनयः इत्यादयः पंचाशदधिका गर्गास्तेषामांगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजशैन्यगार्ग्येति पंच॥ आंगिरसशैन्यगार्ग्येति त्रयो वा॥ अंत्ययोर्व्यत्ययो वा॥ भारद्वाजगार्ग्यशैन्येति वा गर्गभेदानामांगिरसतैत्तिरकापिभुवेति॥ ऋक्षाः रौक्षायणाः कपिला इत्यादयो नवाधिका ऋक्षास्तेषामांगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजवांदनमातवचसेति पंच॥ आंगिरसवांदनमातवचसेति त्रयो वा॥ कपयः स्वस्तितरयः दंडिन इत्यादयः पंचविंशत्यधिकाः कपयस्तेषामांगिरसामहय्यौरुक्षय्येति त्रयः॥ आंगिरसामहीयवौरुक्षयसेत्याश्वलायनपाठः॥आत्मभुवामांगिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यवरात्मभुवेति पंच॥ अयं गणः क्वचित्॥ भरद्वाजानां सर्वेषां परस्परमविवाहः॥ सगोत्रत्वात्॥ प्रायेण द्वित्रिप्रवरसाम्याच्च॥ ऋक्षांतर्गतानां कपिलानां विश्वामित्रैरप्यविवाहः॥ इति भारद्वाजांगिरसः॥

अब 'भरद्वाजोंको कहते हैं कि, वे भरद्वाज, गर्ग, ऋक्ष और कपि ये चार हैं। तिनमें भरद्वाजोंके क्षाम्यायण, देवाश्व इत्यादि एकसौ साठ (१६०) से अधिक भेद हैं उनके आंगिरस, बार्हस्पत्य और भारद्वाज ये तीन प्रवर हैं। और गर्गोंके गर्ग, सांभरायण, सखीनय इत्यादि पचास (५०) से अधिक भेद हैं। तिनके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज शैन्य और गार्ग्य ये पांचप्रवर हैं। अथवा आंगिरस शैन्य, गार्ग्य ये तीन प्रवर समझने। अथवा आंगिरस, गार्ग्य, शैन्य ये प्रवर समझने।अथवा भारद्वाज, गार्ग्य और शैन्य ये प्रवर समझने। गर्गगणोंके ये आंगिरस, तैतिर और कापिभुव ये तीन भेद समझने।ऋक्ष,रौक्षायण,कपिल, इत्यादि नौ(९) ऋक्ष समझने। तिनके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, वांदन, मातवचस ये पांच प्रवर समझने। अथवा आंगिरस वांदन, मातवचस ये तीन प्रवर समझने। कपि, स्वस्तितरि और दण्डी इत्यादि पचीस से अधिक कपि हैं। तिनके आंगिरस, आमहय्य, औरुक्षय्य ये तीन प्रवर हैं। और आश्वलायनने तो आंगिरसामहीय वौरुक्षयस ऐसा पाठ पढा है। आत्मभुओंके आंगिरस, भारद्वाज, बार्हस्पत्य, वर और आत्मभुव ये पांचप्रवर हैं ये गण कहीं लिखा है। इन भरद्वाजोंका गोत्र और दो तीन प्रवरके एक होनेसे परस्पर विवाह नहीं होता और ऋक्षोंके अन्तर्गत जो कपिल हैं उनका विश्वामित्रोंके साथभी विवाह नहीं होता। भरद्वाज और आंगिरसोंके कह चुके॥

अथ केवलांगिरसः ।

ते च षट् हरिताः कुत्साः कण्वाः रथीतराः विष्णुवृद्धाः मुद्गलाश्चेति ॥ हरिताः सौभगाः नैय्यगवा इत्यादयो द्वात्रिंशदधिका हरितास्तेषामांगिरसांबरीषयौवनाश्वेति ॥ आद्यो मांधाता वा कुत्सानामांगिरसमांधात्रकौत्सेति त्रयः ॥ कण्वाः औपमर्कटाः बाष्कलायना इत्यादय एकविंशत्यधिकाः कण्वास्तेषामांगिरसाजमीढकण्वेति त्रयः ॥ आंगिरसघौरकाण्वेति वा ॥ रथीतराः हस्तिदाः नैतिरक्षय इत्यादयश्चतुर्दशाधिका रथीतरास्तेषामांगिरसवैरूपरथीतरेति त्रयः ॥ आंगिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा अष्टादंष्ट्रवैरूपपार्षदश्वेति वा ॥ अंत्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ विष्णुवृद्धाः शठाः मरणा इत्यादयः पंचविंशत्यधिका विष्णुवृद्धास्तेषामांगिरसपौरुकुत्स्यत्रासदस्यवेति त्रयः ॥ मुद्गलाः सात्यमुग्रियः हिरण्यस्तंबय इत्यादिका अष्टादशाधिकास्तेषामांगिरसभार्म्याश्वमौद्गल्येति त्रयः ॥ आद्यस्तार्क्ष्यो वा ॥ आंगिरसतार्क्ष्यमौद्गल्येति वा ॥ येषां षण्णां केवलांगिरसानां स्वस्वगणं हित्वा परस्परं पूर्वैश्च सर्वैर्विवाहो भवति ॥ अंगिरसोगस्त्याष्टमसप्तर्षिभिन्नत्वेन तदपत्यानां सगोत्रत्वाभावात् ॥ द्वित्रिप्रवरसाम्याभावाच्च हरितकुत्सयोस्तु न विवाहः पाक्षिकद्विप्रवरसाम्यात् ॥

अब केवल आंगिरसोंको कहते हैं । वे छः हैं हरित, कुत्स, कण्व, रथीतर, विष्णुवृद्ध और मुद्गल उनमें हरितोंके हरित, सौभग, नैय्यगव इत्यादि बत्तीस भेद हैं । और उनके आंगिरस, अंबरीष और यौवनाश्व ये तीन प्रवर हैं । अथवा आंगिरसके स्थानमें मांधाता समझना । कुत्सोंका आंगिरस, मांधात्र और कौत्स ये तीनप्रवर समझने । कण्वोंके कण्व, औपमर्कट और बाष्कलायन इत्यादि इक्कीस भेद हैं । तिनके आंगिरस, आजमीढ और कण्व ये तीन प्रवर समझने । अथवा आंगिरस, घौर काण्व ये प्रवर समझने । रथीतरोंके हस्तिद, रथीतर, नैतिरिक्षि इत्यादि चौदह भेद समझने । तिनके आंगिरस, वैरूप, और रथीतर ये तीन प्रवर समझने । अथवा आंगिरस, त्रैरूप, पार्षदश्व ये समझने । अथवा अष्टादंष्ट्र, वैरूप, पार्षदश्व ये समझने । अथवा अष्टादंष्ट्र, पार्षदश्व, वैरूप ये समझने । और विष्णुवृद्धोंके विष्णुवृद्ध, शठ, मरण इत्यादि पच्चीस (२५) भेद समझने । तिनके आंगिरस, पौरुकुत्स और त्रासदस्यव ये तीन भेद हैं । तथा मुद्गलोंके मुद्गल सात्यमुग्रिय, हिरण्यस्तम्बय इत्यादि अठारह भेद हैं । उनके आंगिरस, भार्म्याश्व और मौद्गल्य ये तीन प्रवरहैं । इनमें आंगिरसके स्थानमें तार्क्ष्य समझना । अथवा आंगिरस, तार्क्ष्य, मौद्गल्य ये तीन प्रकारके प्रवर समझने । इन छः केवल आंगिरसों में अपने अपने गणको छोडकर पूर्व सबके साथ परस्पर विवाह होता है । क्योंकि, ये यह आंगिरस, अगस्त्य, और सात ऋषियोंसे भिन्न हैं इससे सगोत्र नहीं और दो तीन प्रवरकी समानता नहीं । हरित और कुत्स इनका विवाह नहीं होता क्योंकि, पक्षमें कहे दो प्रवरोंके संग एकता है ॥

अथात्रयः ।

ते चत्वारः अत्रयः गविष्ठिराः वाद्भुतकाः मुद्गलाश्चेति ॥ अत्रयो भूरयः छांदय इत्यादयश्चतुर्नवत्यधिका अत्रयस्तेषामात्रेयार्चनानसश्यावाश्वेति त्रयः ॥ गविष्ठिराः दक्षयः भलंदना इत्यादयश्चतुर्विंशत्यधिका गविष्ठिरास्तेषामात्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति त्रयः ॥ आत्रेयगाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा ॥ वाद्भुतकानामात्रेयार्चनानसवाद्भुतकेति त्रयः ॥ मुद्गलाः शालिसंधयः अर्णवा इत्यादयो दशावरा मुद्गलास्तेषामात्रेयार्चनानसपौर्वातिथेति त्रयः ॥ क्वचिदतिथयो वामरथ्याः सुमंगला बीजवापा धनंजयाश्चेति पंचगणा अधिकाः ॥ तत्राद्यचतुर्णामात्रेयार्चनानसातिथेति त्रयः ॥ आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति वा सुमंगलानामत्रिसुमंगलश्यावाश्वेति वा ॥ धनंजयानामात्रेयार्चनानसधानंजयेति ॥ वालेयाः कौन्द्रेयाः शौभ्रेयाः वामरथ्याः इत्यादयः अत्रेः पुत्रिकापुत्रास्तेषामात्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति त्रयः ॥ अत्रीणां सर्वेषामविवाहः ॥ सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च ॥ अत्रेः पुत्रिकापुत्राणां वामरथ्यादीनां च वासिष्ठविश्वामित्राभ्यामप्यविवाहः ॥ इत्यत्रयः ॥

अब अत्रियोंको कहते हैं। कि, वे चार हैं कि, अत्रि, गविष्ठिर वाद्भुतक और मुद्गल तिन में अत्रियोंके भूरिय छान्दि इत्यादि चौरानवें ९४ भेद हैं । इनके आत्रेय आर्चनानस और श्यावाश्व इत्यादि तीन भेद हैं। गविष्ठिरोंके दाक्षि, भलंदन इत्यादि चौबीस (२४) भेद हैं। तिनके आत्रेय, आर्चनानस और गाविष्ठिर इत्यादि तीन प्रवर हैं। अथवा आत्रेय, गाविष्ठिर पौर्वातिथ ये तीन समझने। वाद्भुतकोंके आत्रेय, आर्चनानस, वाद्भुतक ये तीन प्रवर हैं। मुगलोंके शालिसन्धि इत्यादि दश भेद हैं। तिनके आत्रेय, आर्चनानस, पौर्वातिथ ये तीन प्रवर हैं। और कहीं तो अतिथि वामरथ्य, सुमंगल, बीजवाप और धनंजय ये पांच गण अधिक कहे हैं। तिनमें पहिले चारोंके आत्रेय, आर्चनानस और धनञ्जय ये तीन प्रवर हैं । अथवा आत्रेय, आर्चनानस और गाविष्ठिर ये तीन समझने। अथवा इन चारोंमें सुमंगलोंके अत्रि, सुमंगल, श्यावाश्व ये तीन प्रवर समझने। धनंजयोंके आत्रेय, अर्चनानस, धानंजय,ये तीनप्रवर समझने। अत्रिकी पुत्रियोंके वालेय, कौन्द्रेय, शौभ्रेय, वामरथ्य इत्यादि पुत्र समझने। उनके आत्रेय, वामरथ्य, पौत्रिक ये तीन प्रवर हैं। इन अत्रियोंका परस्पर विवाह नहीं होता क्योंकि गोत्र और प्रवर एक है। और अत्रिके पुत्रिकाके जो पुत्र हैं वामरथ्य आदि उनका वासिष्ठ और विश्वामित्रोंके साथ भी विवाह नहीं होता। अत्रियोंको कह चुके ॥

अथ च विश्वामित्राः ।

ते दश कुशिकाः लोहिताः रौक्षकाः कामकायनाः अजाः कताः धनंजयाः अघमर्षणाः पूरणाः इंद्रकौशिकाश्चेति कुशिकाः पर्णजंघाः वारक्या इत्यादयः सप्तत्यधिकाः कुशिकास्तेषां वैश्वामित्रदेवरातौदलेति त्रयः १ ॥ लोहिताः कुडक्याश्चाक्रवर्णायना इत्यादयः पंचाधिका लोहिताः रोहिता इति केचित् ॥ तेषां वैश्वामित्राष्टकलौहितेति त्रयः॥ अंत्ययोर्व्यत्ययो वा वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाष्टकेति वा ॥

विश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा २ ॥ रौक्षकाणां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति त्रयः ॥ विश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा ॥ एते रैवणा वा ३ ॥ कामकायनाः देवश्रवसः देवतरसा इत्यादयः पंचावराः कामकायनाः ॥ श्रौमता वा ॥ तेषां वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति त्रयः ४ ॥ अजानां वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाज्येति त्रयः ५ ॥ कताः औदुंबरयः शैशिरयः इत्यादयो विंशत्यधिकाः कतास्तेषां वैश्वामित्रकात्यात्कीलेति त्रयः ६ ॥ धनंजयाः पार्थिवाः बंधुलाः इत्यादयः सप्तावरा धनंजयास्तेषां वैश्वामित्रमाधुच्छंदसधानंजयेति त्रयः॥ वैश्वामित्रमाधुच्छंदसाघमर्षणेति वा ७ ॥ अघमर्षणानां वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति त्रयः ८ ॥ पूरणानां वैश्वामित्रपूरणेति द्वौ वैश्वामित्रदेवरातपौरणेति वा ९ ॥ इंद्रकौशिकानां वैश्वामित्रेंद्रकौशिकेति द्वौ १० ॥ क्वचिदन्येप्येकादशोक्ताः आश्मरथ्याः १ ॥ साहुलाः २ ॥ गाथिनाः ३ ॥ वैणवाः ४ ॥ हिरण्यरेतसः ५ ॥ सुवर्णरेतसः ६ ॥ कपोतरेतसः ७ ॥ शालंकायनाः ८ ॥ घृतकौशिकाः ९ ॥ कथकाः १० ॥ रौहिणा इति ११ ॥ आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधुलेति त्रयः १ ॥ साहुलानां वैश्वामित्रसाहुलमाहुलेति त्रयः २ ॥ गाथिनानां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति त्रयः ३ ॥ वैणुवेति क्वचित्पाठः ॥ एत एव रेणव इति उदवेणव इति चोच्यंते ३ ॥ वैणवानां वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ४ ॥ हिरण्यरेतसां वैश्वामित्रहैरण्यरेतसेति द्वौ ५ ॥ सुवर्णरेतसां वैश्वामित्रसौवर्णरेतसेति द्वौ ६ ॥ कपोतरेतसां वैश्वामित्रकपोतरेतसेति द्वौ ७ ॥ शालंकायनानां वैश्वामित्रशालंकायनकौशिकेति त्रयः ॥ एत एव कौशिका इति जह्नव इति चोच्यंते ८ ॥ घृतकौशिकानां वैश्वामित्रघृतकौशिकेति द्वौ ९ ॥ कथकानां वैश्वामित्रकाथकेति १० ॥ रौहिणानां वैश्वामित्रमाधुच्छंदसरौहिणेति त्रयः ११ ॥ विश्वामित्रगणानां सर्वेषां परस्परमविवाहः सगोत्रत्वात्समप्रवरत्वाच्च ॥ कुशिकानां देवरातप्रवरसाम्येन देवराताद्भेदानिर्णयाद्वक्ष्यमाणदेवरातवदेव जामदग्न्यैरप्यविवाह इति भाति ॥ धनंजयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः ॥ कतानां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः द्विगोत्रत्वात् ॥ इति विश्वामित्राः ॥

अब विश्वामित्रोंको कहते हैं। वे कुशिक, लोहित, रौक्षक, कामकायन, अज, कत, धनंजय, अघमर्षण, पूरण, इन्द्र, और कौशिक इसप्रकार दश (१०) हैं। उनमें कुशिकोंके कुशिक, पर्णजंघ, वारक्य इत्यादि सत्तर (७०) भेद हैं। उनके विश्वामित्र, देवरात, औदल ये तीन प्रवर हैं (१) और लोहितोंके लोहित, कुडक्य, चाक्रवर्णायन इत्यादि पांच भेद हैं। कोई इनको रोहित कहते हैं। तिनके वैश्वामित्र, आष्टक, लौहित ये तीन प्रवर हैं इनमें लौहित आष्टक ऐसा समझना। अथवा विश्वामित्र, माधुच्छन्दस, आष्टक, ये प्रवर समझने। अथवा विश्वामित्र, आष्टक ये दो समझने रौक्षकोंके विश्वामित्र, गाथिन और रैवण ये तीन प्रवर समझने। अथवा विश्वामित्र, रौक्षक, रैवण ये तीन प्रवर समझने। अथवा इन सबको रैवण

समझना ३ । कामकायनोंके कामकायन, देवश्रवस और देवतरस इत्यादि पांच भेद समझने अथवा ये श्रौमतोंके भेद समझने । इनके वैश्वामित्र, देवश्रवस, देवतरस ये तीन प्रवर समझने ४ । अजोंके वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, आज्य ये तीन प्रवर हैं ५ । कतोंके कत, औदुम्बरि शैशिरि इत्यादि बीस भेद हैं । तिनके विश्वामित्र,कात्य, आत्कीलये तीन प्रवरहैं ६। धनंजयोंके धनंजय, पार्थिव, बन्धुल इत्यादि सात धनंजय हैं । तिनके वैश्वामित्र, माधुच्छंदस, धानंजय ये तीन प्रवर हैं । अथवा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस, अघमर्षण ये समझने ७। अघमर्षणोंके वैश्वामित्र, अघमर्षण, कौशिक ये तीन प्रवर हैं ८ । पूरणोंके वैश्वामित्र, पूरण ये दो अथवा वैश्वामित्र, देवरात, पौरण ये तीन समझने ९। इन्द्र कौशिकोंके वैश्वामित्र, इन्द्रकौशिक ये प्रवर समझने १० । कहीं अन्यभी ग्यारह (११) भेद कहे हैं । आश्मरथ्य १, साहुल २, गाथिन ३, वैणव ४, हिरण्यरेतस ५, सुवर्णरेतस ६, कपोतरेतस ७, शालंकायन ८, घृतकौशिक ९, कथक १० और रौहिण ११ इनमें आश्मरथ्योंके वैश्वामित्र, आश्मरथ्य, और वाधुल ये तीन प्रवर हैं १, साहुलोंके वैश्वामित्र, साहुल और माहुल ये तीन प्रवर हैं २, गाथिनोंके वैश्वामित्र, गाथिन, रैवण ये तीन प्रवर हैं ३, कहीं वैणुव ऐसा पाठहै और इन्हीं को रेणव और उद्वेणवभी कहते हैं । वैणवोंके वैश्वामित्र, गाथिन, वैणव ये तीन प्रवर हैं ४, हिरण्यरेताओंके वैश्वामित्र, हैरण्यरेतस ये दो प्रवर हैं ५, सुवर्णरेताओंके वैश्वामित्र, सौवर्णरेतस ये दो प्रवर हैं ६, कपोतरेताओंके वैश्वामित्र, कपोतरेतस ये दो प्रवर हैं ७, शालंकायनोंके वैश्वामित्र, शालंकायन, कौशिक, ये तीन प्रवर हैं । और इन्हींको कौशिक और जह्नुवभी कहते हैं ५, घृतकौशिकोंके विश्वामित्र और घृतकौशिक ये दो प्रवर हैं ९, कथकोंके वैश्वामित्र और काथक ये दो प्रवर हैं १०, रौहिणोंके वैश्वामित्र, मधुच्छन्दस, रौहिण, ये तीन प्रवर हैं ११, वैश्वामित्र इन सबोंका परस्पर विवाह नहीं होता । क्योंकि, ये सब विश्वामित्रगण समान गोत्री और समान प्रवरवाले हैं और यह प्रतीत होता है कि,कुशिकोंका देवरात प्रवरके मिलनेसे वक्ष्यमाण देवरातकी समान जामदग्न्यके साथ विवाह नहीं होता । क्योंकि, इस देवरातका वक्ष्यमाण देवरातसे जो भेद है उसका निश्चय नहीं । धनंजयोंका वैश्वामित्र और आत्रियोंके साथ विवाह नहीं होता कतोंका भारद्वाज और वैश्वामित्रोंके साथ विवाह नहीं होता क्योंकि, इनके दो गोत्र हैं इसप्रकार विश्वामित्रोंको कह चुके ॥

अथ कश्यपाः ।

ते त्रयः निध्रुवाः रेभाः शंडिलाश्चेति ॥ तत्र निध्रुवाः कश्यपाः अष्टांगिरसः इत्यादयश्चत्वारिंशदधिकशतावरा निध्रुवास्तेषां काश्यपावत्सारनैध्रुवेति त्रयः ॥ निर्णयसिंधौ तु निध्रुवगणोत्तरं कश्यपगणमुक्त्वा कश्यपानां काश्यपावत्सारासितेति प्रवरत्रयमुक्तम् ॥ अत्र शिष्टाचारोपि दृश्यते १ ॥ रेभाणां काश्यपावत्साररैभ्येति त्रयः २ ॥ शंडिलाः कोहलाः उदमेधा इत्यादयः षष्ट्यवराः शंडिलास्तेषां काश्यपावत्सारशांडिल्येति त्रयः अंत्यस्थाने देवलो वा असितो वा ३ ॥ काश्यपासितदेवलेति वा ॥ अंत्ययोर्व्यत्ययो वा देवलासितेति द्वौ वा ३॥ एषां कश्यपानां परस्परमविवाहः सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च ॥

अब कश्यपोंको कहते हैं कि, वे निध्रुव, रेभ, और शण्डिल इसप्रकार तीन हैं । तिनमें निध्रुव, कश्यप, अष्टांगिरस इत्यादि चालीस से अधिक सौ तक तिनके काश्यप अवत्सार नैध्रुव ये तीन प्रवर हैं । निर्णयसिन्धुमें तो निध्रुवगणके पीछे कश्यप गणको कहकर कश्यपोंके काश्यप अवत्सार असित ये तीन प्रवर कहे हैं । इसमें शिष्टाचारभी प्रतीत होता है १, रेभोंके काश्यप, अवत्सार, रैभ्य ये तीन प्रवर हैं २, शण्डिलोंके शंडिल, कोहल, उदमेधा इत्यादि साठ (६०) शंडिल हैं तिनके काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य ये तीन प्रवर हैं । अथवा शांडिल्य कीजगह देवल वा असित समझना । अथवा काश्यप, असित, देवल ये प्रवर समझने । अथवा देवल असित इस प्रकार अंत्योंका व्यत्यय समझना । अथवा देवल और असित ये दो समझने ३, इन कश्यपोंका गोत्र और प्रवरकी समता होनेसे परस्पर विवाह नहीं होता ॥

अथ वसिष्ठाः ।

ते चत्वारः वसिष्ठाः १ ॥ कुंडिनाः २ ॥ उपमन्यवः ३ ॥ पराशराश्च ४ ॥ वसिष्ठा वैतालकवयः रकय इत्यादयः षष्ट्यधिकाः वसिष्ठास्तेषां वासिष्ठेंद्रप्रमदाभरद्वस्विति त्रयः ॥ वासिष्ठेत्येको वा १॥ कुंडिनाः लोहितायनाः गुग्गुलयः इत्यादयः पंचविंशत्यवराः कुण्डिनास्तेषां वासिष्ठमैत्रावरुणकौंडिन्येति त्रयः २॥ उपमन्यवः औदलयः मांडलेखय इत्यादयः सप्तत्यवराः उपमन्यवस्तेषां वासिष्ठेंद्रप्रमदाभरद्वस्विति त्रयः ॥ आभरद्वसव्येति पाठांतरम् ॥ वासिष्ठाभरद्वस्विंद्रप्रमदेति वा ॥ आद्ययोर्व्यत्ययो वा ३ ॥ पराशराः कांडूशयाः वाजय इत्यादयः सप्तचत्वारिंशदवराः पराशरास्तेषां वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति त्रयः ४ ॥ एषां वसिष्ठानां परस्परमविवाहः ॥ इति वसिष्ठाः ॥

अब वशिष्ठोंको कहते हैं ये वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु, पराशर इसप्रकार चार समझने । इनमें वसिष्ठोंके वसिष्ठ, वैतालकवि, रकि इत्यादि साठ से अधिक भेद हैं इनके वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद, आभरद्वसु इत्यादि तीन प्रवर हैं । अथवा वासिष्ठ यह एकही प्रवर समझना१, कुण्डिनोंके कुण्डिन लोहितायन गुग्गुलि इत्यादि पचीस भेद हैं । उनके वासिष्ठ, मैत्रावरुण, कौण्डिन्य ये तीन प्रवर हैं २, उपमन्युके उपमन्यु औदलि, माण्डलेखि इत्यादि सत्तर (७०) भेद हैं । तिनके वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद, आभरद्वसु, ये तीन प्रवर हैं । कोई आभरद्वसव्य ऐसाभी पढते हैं । अथवा वासिष्ठ, आभरद्वसु, इन्द्रप्रमद ये प्रवर समझने । अथवा आभरद्वसु, वसिष्ठ इस प्रकार व्यत्ययसे समझने ३, पराशरोंके पराशर, काण्डूशय, वाजि इत्यादि सैंतालीस (४७) भेद समझने । तिनके वासिष्ठ, शाक्त्य, पाराशर्य ये तीन प्रवर हैं ४, इन वासिष्ठोंका परस्पर विवाह नहीं होता । वसिष्ठोंको कह चुके ॥

अथागस्त्याः ।

ते दश इध्मवाहाः १ ॥ सांभवाहाः २ ॥ सोमवाहाः ३ ॥ यज्ञवाहाः ४ ॥ दर्भवाहाः ५ ॥ सारवाहाः ६ ॥ अगस्तयः ७ ॥ पूर्णमासाः ८ ॥ हिमोदकाः ९ ॥ पाणिकाश्चेति १० ॥ इध्मवाहाः विशालाद्याः स्फालायनाः इत्यादयः पंचाशदधिका इध्मवाहास्तेषामागस्त्यदार्ढ्यच्युतेध्मवाहेति त्रयः आगस्त्येत्येको

वा १ ॥ सांभवाहानामागस्त्यदाढर्यच्युतसांभवाहेति त्रयः २ ॥ सोमवाहानां सोमवाहोंत्यः आद्यौ पूर्वोक्तावेव ३ ॥ एवं यज्ञवाहानां यज्ञवाहोंत्यः ४ ॥ दर्भवाहानां दर्भवाहोंत्यः ५ ॥ सारवाहानां सारवाहोंत्यः ६ ॥ अगस्तीनामागस्त्यमाहेंद्रमायोभुवेति ७ ॥ पूर्णमासानामागस्त्यपौर्णमासपारणेति त्रयः ८ ॥ हिमोदकानामागस्त्यहैमवर्चिहैमोदकेति त्रयः ९ ॥ पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति त्रयः १० ॥ अगस्तीनां सर्वेषामविवाहः ॥ सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च ॥ इत्यगस्तयः ॥

अब अगस्त्योंको कहते हैं। वे इध्मवाह १, सांभवाह २, सोमवाह३, यज्ञवाह४, दर्भवाह५, सारवाह ६, अगस्ति ७, पूर्णमास ८, हिमोदक ९, और पाणिक १०, इसप्रकार दश हैं। इनमें इध्मवाहोंके इध्मवाह, विशालाद्य, स्फालायन इत्यादि पचाससे अधिक भेद हैं। तिनके आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, इध्मवाह ये तीन प्रवर हैं। अथवा आगस्त्य यह एकही प्रवर समझना १, सांभवाहोंके आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, सांभवाह ये तीन प्रवर हैं २, सोमवाहोंके आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, सोमवाह, ये तीन प्रवर हैं ३, इसी प्रकार यज्ञवाहोंके आगस्त्य, दाढर्यच्युत, यज्ञवाह ये तीन प्रवर हैं ४, इसीप्रकार दर्भवाहोंके भी आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, दर्भवाह ये तीन प्रवर हैं ५, सारवाहोंके आगस्त्य, दाढर्यच्युत और सारवाह ये तीन प्रवर हैं ६, अगस्तियोंके आगस्त्य, माहेन्द्र, मायोभुव ये तीन प्रवर हैं ७, पूर्णमासोंके आगस्त्य, पौर्णमास, पारण ये तीन प्रवर हैं ८, हिमोदकोंके आगस्त्य, हैमवर्चि, हैमोदक ये तीन प्रवर हैं ९, पाणिकोंके आगस्त्य, पैनायक, पाणिक ये तीन प्रवर हैं१०, इन अगस्तियोंका परस्पर विवाह नहीं होता क्योंकि, इनके गोत्र और प्रवर समान हैं अगस्तियोंको कहचुके ॥

अथ द्विगोत्राः।

तत्र भारद्वाजाच्छुंगात् वैश्वामित्रस्य शैशिरेः क्षेत्रे जातः शौंगशैशिरिर्नाम ऋषिः तस्य गोत्रलक्षणाक्रांतत्वाद्गोत्रत्वं तद्गोत्राणामांगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजशौंगशैशिरेति पंच ॥ आंगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजकात्यात्कीलेति वा ॥ आंगिरसकात्यात्कीलेति त्रयो वा ॥ आद्यो भारद्वाजो वा ॥ एषां सर्वभरद्वाजैः सर्वैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः ॥ संकृतयः पूतिमाषास्तंडय इत्यादयोष्टाविंशत्यवराः संकृतयस्तेषामांगिरसगौरिवीति सांकृत्येति त्रयः ॥ शाक्त्यगौरिवीति सांकृत्येति वा ॥ अंत्ययोर्व्यत्ययो वा ॥ एषां स्वगणस्थैः पूतिमाषादिभिः सर्ववसिष्ठगणैश्चाहर्वसिष्ठसंज्ञकवक्ष्यमाणलौगाक्षिभिश्चाविवाहः केवलांगिरोगणैस्तु विवाहो भवत्येव ॥ आंगिरसत्वेपि सगोत्रत्वाभावात् ॥ द्वित्रिप्रवरसाम्याभावाच्च ॥ केचिद्भारद्वाजांगिरसत्वमाश्रित्य भारद्वाजशौंगशैशिरैः सहाविवाहमाहुस्तन्न ॥ भारद्वाजत्वे दृढप्रमाणाभावात् ॥ प्रयोगपारिजाते काश्यपैः सहैषामविवाह इत्युक्तं तत्र हेतुश्चिंत्य इति कौस्तुभे ॥ लौगाक्षयः दार्भायणाः इत्यादयोष्टत्रिंशदधिका लौगाक्षयस्तेषां काश्यपावत्सारवासिष्ठेति त्रयः ॥ काश्यपावत्सारासितेति वा ॥ एते अहर्वसिष्ठाः ॥

नक्तंकाश्यपाः दिनकर्मणि वासिष्ठत्वप्रयुक्तकार्यभाजः ॥ रात्रिकर्मणि काश्यपत्वप्रयुक्तकार्यभाज इत्यर्थः ॥ एतेषां सर्वैः काश्यपैः सर्वैश्च वसिष्ठैः संकृतिभिश्चाविवाहः ॥ अथ स्मृत्यर्थसाराद्युक्ता द्विगोत्राः ॥ देवरातानां वैश्वामित्रदेवरातौदलेति त्रयः ॥ एतेषां सर्वैर्जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः ॥ धनंजयानां वैश्वामित्रमाधुच्छंदसधानंजयेति त्रयः ॥ एषां सर्वैर्विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः ॥ अयं विश्वामित्रगणे प्रागुक्तः ॥ जातूकर्ण्यानां वासिष्ठात्रेयजातूकर्ण्येति ॥ एषां वसिष्ठैरत्रिभिश्चाविवाहः ॥ अयं वसिष्ठगणे सिंधावुक्तः ॥ पूर्वमत्रिगणेषूक्तानां वामरथ्यादीनामत्रिपुत्रिकापुत्राणां च वसिष्ठात्रिभ्यामविवाहः ॥ अत्रिविश्वामित्राभ्यामिति केचित् ॥ पूर्वं भरद्वाजगणस्थऋक्षांतरगणत्वेनोक्तानां कपिलानामांगिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजवांदनमातवचसेति पंचप्रवराणां विश्वामित्रभरद्वाजाभ्यामविवाहः ॥ पूर्वं विश्वामित्रेषूक्तानां कतानां वैश्वामित्रकात्यात्कीलेति त्रिप्रवराणां विश्वामित्रभरद्वाजाभ्यामविवाहः ॥ अनेनैव न्यायेन परगोत्रोत्पन्नदत्तकादीनामिदानींतनानामपि द्विगोत्रत्वात् जनकप्रतिग्रहीतृपित्रोर्द्वयोरपि सगोत्रैः सह अविवाहो ज्ञेयः ॥ नात्र पुरुषसंख्या ॥ तेन शतपुरुषोत्तरमपि द्विगोत्रत्वं नापैति ॥ क्षत्रियवैश्यौ तु पुरोहितगोत्रप्रवराविति सर्वसिद्धांतः ॥ अथ स्वगोत्राज्ञाने उपनयने य आचार्यस्तद्गोत्रप्रवरैरेव कर्माणि विवाहाविवाहौ चेति ॥ आचार्यगोत्राज्ञाने तु ॥ "दत्त्वात्मानं तु कस्मैचित्तद्गोत्रप्रवरो भवेत् ॥"

अब दो गोत्रवालोंको कहते हैं भारद्वाजगण जो शुंग उससे वैश्वामित्र, शैशिरिके क्षेत्र में शौंग शैशिरिनामक ऋषि उत्पन्न हुआ वह गोत्र और लक्षणसे गोत्र करके प्राप्त हुआ वह इस गोत्रसंज्ञक है । तिस गोत्रवालोंके आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, शौंग, शैशिर ये पांच प्रवर हैं । अथवा आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, कात्य, आत्कील ये अथवा आंगिरस, कात्य, आत्कील ये तीन प्रवर समझने । अथवा आंगिरसकी जगहपर भारद्वाज समझना । इन सबोंका भारद्वाज और वैश्वामित्रोंके साथ विवाह नहीं होता । संकृति, पूतिमाष, तण्डिय इत्यादि अट्ठाईस (२८) भेद संकृतियोंके हैं । तिनके आंगिरस, गौरिवीति और सांकृत्य ये तीन प्रवर हैं । अथवा शाक्त्य, गौरिवीति, सांकृत्य ये तीन प्रवर समझने । अथवा शाक्त्य, सांकृत्य गौरिवीति इस प्रकार व्यत्ययसे समझना । इन सबोंका अपने गण पूतिमाषआदि और समस्त वासिष्ठगण और जो अगारी कहेंगे ऐसे अहर्वसिष्ठसंज्ञक लौगाक्षियोंके साथ विवाह नहीं होता । और जो केवल आंगिरस हैं उनके साथ तो विवाह होजाता है । यद्यपि आंगिरस वेभी हैं तथापि गोत्र एक नहीं और दो तीन प्रवर नहीं मिलते कोई भारद्वाज और आंगिरस प्रवर मानकर भारद्वाज, शौंगशैशिरोंके साथ विवाह नहीं कहते सो ठीक नहीं । क्योंकि, इनको भारद्वाज होनेमें कोई दृढ प्रमाण नहीं और कौस्तुभग्रंथमें लिखा है कि, प्रयोगपारिजातके विषे जो इनका काश्यपोंके साथ विवाहका न होना लिखाहै सो उसमें कारण विचारने योग्य है लौगाक्षियोंके लौगाक्षि, दार्भायण इत्यादि अठतीस भेद हैं उनके काश्यप, अवत्सार, वासिष्ठ ये

तीन प्रवर हैं । अथवा काश्यप, अवत्सार, असित ये तीन समझने। इनको अहर्वसिष्ठ और नक्त-काश्यप, कहते हैं अर्थात् रात्रिमें काश्यपगोत्रके कार्य और दिनमें वासिष्ठगोत्रके कार्य करने-वाले हैं । इन सबका काश्यप वासिष्ठ और संकृति इन सबके साथ विवाह नहीं होता । अब स्मृत्यर्थसार आदिमें कहे द्विगोत्रोंको कहते हैं कि, देवरातोंके वैश्वामित्र, देवरात, औदल ये तीन प्रवर हैं । इन सबका जामदग्न्य और वैश्वामित्रोंके साथ विवाह नहीं होता । धनंजयोंके वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और धानंजय ये तीन प्रवर हैं । इन सबका वैश्वामित्र और अत्रियोंके साथ विवाह नहीं होता यह बात वैश्वामित्र गणके विषे पूर्व कह आये जातूकर्ण्योंके वासिष्ठ आ-त्रेय जातूकर्ण्य ये तीन प्रवर हैं । इनका वासिष्ठ और अत्रियोंके साथ विवाह नहीं होता । यह बात सिन्धुग्रन्थ वसिष्ठगण प्रकरणमें लिखी है । पूर्व अत्रिगणोंमें कहे वामरथ्य आदि और अत्रिकी पुत्रिकाके पुत्र इनका वासिष्ठ और अत्रिगोत्रवालोंके साथ विवाह नहीं होता । कोई अत्रि और वैश्वामित्रोंके साथ विवाहका न होना कहते हैं। भरद्वाज गणस्थित ऋक्षातर्गत गणके आंगिरस, वार्हस्पत्य, भारद्वाज, वांदन, मातवचस ये पूर्व पांच प्रवर कहे हैं उन प्रवरोंसे युक्त कपिलोंका विश्वामित्र और भरद्वाजोंके साथ विवाह नहीं होता । वैश्वामित्र, कात्य, आत्कील इन तीन प्रवरवाले जो विश्वामित्र गणमें कहे कत हैं, उनका विश्वामित्र और अत्रिके साथ विवाह नहीं होता । इसी न्यायसे जो आधुनिक दो गोत्रवाले दत्तक आदि हैं उनका भी जो एक उत्पन्न करनेवाला पिता और एक गोद लेनेवाला पिता इनके जो सगोत्री हों उनके साथ विवाह नहीं होता । यहां कुछ पुरुष (पीढी) की संख्या नहीं । तिससे सौ पीढीसे ऊपरभी द्विगोत्रता बनी रहती है । क्षत्रिय और वैश्य इनके तो जो पुरोहितके गोत्र और प्रवर होते हैं वेही गोत्र प्रवर होते हैं । ऐसा सर्वत्र सिद्धान्त है जो अपने गोत्रका ज्ञान न होय तो उपन-यनके विषे जो आचार्य हो उसकेही गोत्र प्रवरोंसे कर्म करने और विवाह होवे अथवा न हो उसकी व्यवस्था गोत्र प्रवरसे समझनी । और जो आचार्यका गोत्र भी मालूम न होय तो कि, जिस किसीको आत्माको (अर्पण करना) देकर उसके गोत्र प्रवरको ग्रहण करले ॥

अथ मातृगोत्रवर्जननिर्णयः ।

तत्र मातृगोत्रपदेन मातामहगोत्रमेव वर्ज्यम् ॥ तच्च गांधर्वादिविवाहोढापुत्राणां सर्वेषां वर्ज्यम् ॥ ब्राह्मविवाहोढापुत्राणां तु सर्वेषां मातामहगोत्रं न वर्ज्यम् ॥ किं तु माध्यंदिनानामेव ॥ मातृगोत्रं माध्यंदिनीयानामिति सत्याषाढवचनात् ॥ तथैव सर्वत्र शिष्टाचाराच्च ॥

अब माताके गोत्रको जो वर्जना उसका निर्णय कहते हैं । तहां माताके गोत्रका जो निषेध है उससे मातामहका गोत्र समझना । वह गोत्र गान्धर्वआदिसे स्त्री विवाही हैं उन सबके पुत्रोंको वर्जना चाहिये । और जो ब्राह्म विवाहसे स्त्री व्याहीहैं उन सबको तो नानाका गोत्र नहीं वर्जना, किन्तु जो माध्यन्दिनी शाखावाले हैं उनकोही वर्जना । क्योंकि, सत्याषा-ढका वचन है कि, माध्यंदिनी शाखावालोंको माताका गोत्र वर्जना । और इसीप्रकार सब जगह शिष्टजन करते हैं ॥

अथ सगोत्रादिविवाहादौ प्रायश्चित्तम् ।

तत्राज्ञानतः सगोत्रसप्रवरविवाहे कन्यां त्यक्त्वा चांद्रायणं प्रायश्चित्तं कार्यम् ॥ ज्ञानतो द्विगुणम् ॥ एवं कन्याया एतदर्धम् ॥ एवं सपिंडाया विवाहेपि त्यागश्च ब्राह्मण्याः संभोगधर्मकार्ययोरेव ॥ 'मातृवत्परिपालयेत्' इत्यन्नादिना पालनोक्तेः ॥ यस्तु सगोत्रादिकां विवाह्योपगच्छति तस्याज्ञाने विवाहप्रयुक्तचांद्रायणं सगोत्रागमनप्रयुक्तं चांद्रायणद्वयाधिकं ज्ञानतस्तु अधिकं कल्प्यमिति केचित् ॥ अन्ये तु गुरुतल्पव्रताच्छुध्येदिति गुरुतल्पसाम्योक्तेः षडब्दं प्रायश्चित्तम् ॥ अज्ञानतस्त्र्यब्दं चांद्रायणत्रयं वेत्याहुः ॥ अज्ञानतः सगोत्रादिषूत्पन्नानां जनकप्रायश्चित्तोत्तरं काश्यपगोत्रेण व्यवहारः कार्यो न तु त्यागः ॥ ज्ञानतस्तु सगोत्राद्युत्पन्नानां चांडालत्वमेव ॥ "आरूढपतितापत्यं ब्राह्मण्यां यश्च शूद्रजः ॥ सगोत्रोढासुतश्चैव चांडालास्त्रय ईरिताः" इति यमस्मृतेः ॥

अब जो सगोत्र आदिके साथ विवाह होजाय तो प्रायश्चित्तको कहते हैं । कि, जो अज्ञानसे गोत्र प्रवर जिसके एक हों ऐसी कन्याके साथ विवाह होजाय तो कन्याको त्यागकर चांद्रायण व्रत करै । और जो जानकर करै तो दुगुणा प्रायश्चित्त करै । इसीप्रकार कन्याको भी इससे आधा करना चाहिये । इसीप्रकार सपिण्ड कन्याके विवाहमें भी समझना । परन्तु उस ब्राह्मणीका त्याग मैथुन और धर्मकार्य (अग्निहोत्र आदि) इनमेंही समझना क्योंकि माताके समान उस स्त्रीका पालनकरै इस वचनसे उसका पालन कहाहै । और जो कि, सगोत्रा स्त्रीका विवाह उससे मैथुन करै वह जो अज्ञानसे करै तो विवाहनेका प्रायश्चित्तरूप एक चांद्रायण और दोसे अधिक चांद्रायण उसी सगोत्राके साथ मैथुन करनेके प्रायश्चित्तरूप कर्मको करै । और जो जानकर करै तो पहलेसे अधिक प्रायश्चित्तकी कल्पना करनी, यह किनीका मत है । और अन्य तो यह कहते हैं कि, गुरुतल्पके साथ गमन करनेमें जो व्रतहै उससे शुद्ध होता है इस वचनसे उस विवाहके गुरुतल्पको समान कहा है इससे छः वर्षतक प्रायश्चित्त करना । और जो अज्ञानसे करै तो तीन वर्ष वा तीन चांद्रायण व्रत करै । अज्ञानसे जो सगोत्राआदि स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए हैं उनका पिताके प्रायश्चित्त हुए पीछे काश्यपगोत्रसे विवाह करनेका परित्याग नहीं । और जो ज्ञानसे पैदा हुए हैं वे तो चाण्डालही हैं इससे त्यागने योग्य हैं । क्योंकि, यमस्मृतिमें यह लिखा है कि, पतितकी सन्तान, जो ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न हो और जो सगोत्रविवाही स्त्रीमें उत्पन्न हो ये तीन चाण्डाल कहे हैं ॥

अथान्येपि विवाहे निषेधाः ।

"प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् ॥ न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥" अत्रापवादः सोदरयोः सोदरकन्यके वत्सरादिकालव्यवधाने महानद्यादिव्यवधाने वा देये ॥ पूर्वकन्यायाः दत्तायाः मृतौ तस्यैव वरस्य द्वितीया कन्या देया ॥ प्रत्युद्वाहो दारिद्र्यादिसंकटे कार्यः सोदराणां तुल्यसंस्कारो वर्षमध्ये निषिद्धः ॥ गृहनिर्माणविवाहौ वर्षांतर्न कार्यौ ॥ गृहप्रवेशस्य निषेधाभावाद्गृह-

प्रवेशोत्तरं विवाहः कार्यः ॥ सोदरयोः पुत्रयोः कन्यापुत्रयोर्वा कन्ययोर्वा विवाहौ षण्मासाभ्यंतरे विशेषतो निषिद्धौ ॥ पुरुषत्रयात्मककुले विवाहान्मौंजीबंधः षण्मासे निषिद्धः ॥ षण्मासे शुभकार्यत्रयं न कार्यम् ॥ अत्र शुभकार्यपदेन मौंजीविवाहावेव ॥ तेन गर्भाधाननामकर्मादिसंस्काराणां न त्रित्वनिषेधः ॥ न वा गर्भाधानादिना चतुष्टादिसंपादनं नाग्निकार्यत्रयं भवेदित्यनेनैकवाक्यतालाघवादिति भाति ॥ भिन्नोदराणामग्निकार्यत्रयं न दोषायेति कश्चित् ॥ केचिन्न कुर्यान्मंगल-त्रयमित्यस्य भिन्नार्थत्वं स्वीकृत्य यत्किंचिच्छुभकार्याणामपि त्रित्वं न शुभमि-त्याहुः ॥ पुरुषोद्वाहात् स्त्र्युद्वाहः षण्मासाभ्यंतरे निषिद्धः ॥ ज्येष्ठमंगलाल्लघुमंगलं न कार्यम् ॥ बहिर्मंडपे विहितं ज्येष्ठमंगलम् ॥ तद्भिन्नलघुगर्भाधानादिकस्य प्राप्तकालस्य न निषेधः ॥ एवं शांत्यादेरपि नैमित्तिकस्य प्राप्तकालस्य न निषेधः ॥ अतिपन्नस्य त्वयं निषेधः ॥ एवं व्रतोद्यापनादीनां वास्तुप्रवेशादीनां च लघुत्वादेव विवाहाद्युत्तरं निषेधः ॥ इदं निषेधचतुष्टयं त्रिपुरुषात्मककुले षण्मासाभ्यंतर एव ॥ एवं मुंडनद्वयनिषेधं व्रतबंधाच्चौलनिषेधं च केचिदाहुः ॥ अथैषामपवादाः ॥ सोदराणामपि समानसंस्कारौ विवाहौ च संकटे अब्दभेदात्कार्यौ ॥ चतुर्दिनव्य-वधानादेकदिनव्यवधानाद्वा कार्यौ अतिसंकटे एकदिने कर्तृभेदेन मंडपभेदेन वा कार्यौ ॥ द्वाभ्यां कर्तृभ्यां एकस्मिन्नपि लग्ने एकस्मिन्नपि गृहे भिन्नोदरयोर्विवाहः कार्यः ॥ एवं पूर्वोक्तनिषेधचतुष्टयेपि वर्षभेदे दोषाभावः ॥ यमलयोरेककाले एक-मंडपे वा समानसंस्काराणां न दोषः ॥ एवं मातृभेदेपि षण्मासाभ्यंतरे समानसं-स्कारे दोषो न ॥ मातृभेदे एकजातकन्ययोरेकदिने एकमंडपेपि वेदीभेदेन विवाहो न दोषायेति केचित् ॥

अब अन्य भी विवाहमें निषेध दिखाते हैं । कि, प्रत्युद्वाह (बदलेमें व्याह) नहीं करना एकके लिये दो कन्या नहीं देनी । एक मातासे उत्पन्न हुए दो लडकोंको एक मातासे उत्पन्न हुई दो लडकी नहीं देनी । इसमें यह अपवाद है कि, सगे भाइयोंको सगी बहिन देना होय तो एक वर्ष आदि कालके बीतनेपर अथवा बीचमें नदी (गंगाआदि) हों तो देदेनी । जो पूर्व दीहुई कन्या मरजाय तो दूसरी कन्या उसी वरको देनी अन्यको नहीं । और प्रत्युद्वाह (बदलेमें व्याह) भी दरिद्रता आदि संकट होय तो करना अन्यथा नहीं । सगे भाइयोंको एक वर्ष दिनके भीतर मुण्डनआदि समान संस्कार भी निषिद्ध है । घरका बनाना और विवाह ये एक वर्षके भीतर नहीं करने । परन्तु गृहमें प्रवेश होनेका निषेध नहीं इससे गृहमें प्रवेश किये पीछे विवाह करना । सगे भाई और कन्या पुत्र अथवा दो कन्याओंके विवाह छः मासके भीतर विशेष कर निषिद्ध हैं । तीन पीढीतकके कुलमें विवाहसे पीछे छः मास तक उपनयन निषिद्ध है । छः मासके भीतर तीन शुभकर्म न करने । यहां शुभकार्य पदसे मौंजीबन्धन और विवाह समझने । तिससे गर्भाधान, नामकर्म संस्कारोंको तीन शुभकाय इस पदसे निषेध नहीं और गर्भाधान आदिके मिलानेसे चार कार्यकी पूर्ति नहीं करनी

अर्थात् पूर्वोक्त वचनसे तीन शुभकार्यका निषेध है तो गर्भाधान आदिको मिलाकर जब चार होगये तो तीनका निषेध न रहा यह किसीका अभिप्राय था सो उसके लिये यह कहा कि, गर्भाधान आदिसे चार भी नहीं होते । इसकी एक वाक्यता ' नाग्निकार्यत्रयं भवेत् ' तीन होम नहीं होते इस वचनके साथ लाघवसे करनी । जो सहोदर नहीं उनको तीन अग्निप्रयुक्त कार्य करनेमें दोष नहीं यह किसीका मत है। और कोई तो तीन मंगल कार्य नहीं करते इसका जुदाही अर्थ मानकर यत् किंचित् शुभकार्य (गर्भाधानआदि) को भी तीन मंगल कार्य होनेसे उनको नहींकरना यह कहते हैं पुरुषके विवाहसे पीछे छःमासतक कन्याका विवाह निषिद्ध है । ज्येष्ठ (वडा) मंगल किये पीछे लघुमंगल नहीं करना । जो ज्येष्ठ मंगलके मंडपके बाहिर जो विधान किये लघु गर्भाधान आदि मंगल हैं उनका जो यदि समय प्राप्त होय तो निषेध नहीं । इसी प्रकार किसी निमित्तसे जो शान्ति आदिभी करनी पडैं तो उनकाभी निषेध नहीं, परन्तु जो अन्यकालमें भी होसके तो उनके करनेमें निषेधहै कि, जैसे कि, व्रत, उद्यापन, गृहप्रवेश जो विवाहकी अपेक्षा लघुमंगल है इनका विवाह आदिके पीछे निषेध है। यह सगेभाइयोंका समान संस्कार विवाहसे पीछे जनेऊ तीन शुभकार्योंका करना । और पुत्रके विवाह पीछे कन्याका विवाह ये चारोंका निषेध छः मासके भीतरही समझना । इसीप्रकार एकवार दो मुण्डन जनेऊसे पीछे मुण्डनका निषेधभी कोई कहते हैं। अब इनके अपवादोंको कहते हैं कि, सहोदर भाइयोंकेभी एक संस्कार वा विवाह अतिसंकटमें वर्षके भेदसे करलेने अथवा चार दिनके व्यवधान वा एक दिनके व्यवधानसे करलेने । जो अत्यन्त संकट होय तो एक दिनही कर्ताके भेद वा मण्डपके भेदसे करलेने । और जो एक उदरसे न उत्पन्न हुएहों उनके एकदिन और एकही लग्नमें दो कर्ता होकर विवाह करलें इसीप्रकार पूर्वकहे चार निषेधोंमें वर्षके भेद होनेपर दोष नहीं । अर्थात् एक भाईका माघमें विवाह हो तो दूसरेका वैशाखमें विवाह होनेमें दोष नहीं । जो यमल अर्थात् एक उदरसे एक समय जो दो पैदा हुए उनका एक समय वा एक मण्डपमें मुण्डन आदि समान संस्कारोंका दोष नहीं । इसीप्रकार जो माता भिन्न २ होंयँ तो भी छः मासके भीतर समान संस्कार करनेमें दोष नहीं । जो माता भिन्न भिन्न होंय तो एकसे भी उत्पन्नहुई दो कन्याओंका एकदिन एक मंडप में वेदिको जुदी २ बनाकर विवाह करनेमें दोष नहीं होता यह कितनोंका मत है ॥

अथ मंडनान्मुंडननिषेधः ।

पुरुषत्रयात्मककुले मंगलकार्योत्तरं षण्मासाभ्यंतरे मुंडनयुक्तं कर्म न कार्यम् ॥ अत्र सर्वत्र पुरुषत्रयगणनाप्रकारः प्रतिकूलविचारे स्पष्टीकरिष्यते ॥

अब मंगलकार्यसे पीछे मुंडनका निषेध दिखाते हैं तीन पीढीतक कुटुम्बमें मंगलकार्य होनेसे पीछे छः महीनेके भीतर मुंडन कर्मसहित कर्म नहीं करना ।यहां सब जगह तीन पीढीके गिननेका प्रकार प्रतिकूल विचारसे अगाडी स्पष्ट करैंगे ॥

अथ मुंडनोदाहरणम् ।

मुंडनकर्म तु चौलं नामसंस्कारादिकमाधानादिकमभ्युदयार्थमैच्छिकसर्वप्रायश्चित्तादिकं क्षौरप्रापकतीर्थयात्रादिकं चोह्यम् ॥ व्रतबंधस्तु कात्यायनमते मंगलरूप-

त्वाद्विवाहाद्युत्तरं कार्यः ॥ अन्येषां मते मुंडनरूपत्वान्न कार्यः ॥ पित्रोरंत्यक्रियादिप्राप्तमुंडनमाकस्मिकप्राप्तप्रायश्चित्तमुंडनमासन्नमरणेन सर्वप्रायश्चित्तीयमुंडनं च कर्तव्यमेव ॥ नित्यत्वाद्दर्शपूर्णमासचातुर्मास्यादिमुंडनेपि न दोषः ॥ न च 'मुंडनं चौलमित्युक्तम्'' व्रतोद्वाहौ तु मंगलम्' इति वचसा मंडनमुंडनयोः परिगणनादाधानादीनां न दोष इति वाच्यम् ॥ वाक्यस्योदाहरणार्थत्वात् ॥ अन्यथा व्रतोद्वाहान्नचौलकमित्येव वक्तव्ये 'मंडनान्न तु मुंडनम् ॥' इति सामान्येन वचनरचनानर्थक्यापातात् ॥ तस्माद्गर्भाधानादिलघुमंगलादुद्वाहादिज्येष्ठमंगलाच्चाधानादि मुंडनमपि वर्ज्यमिति भाति ॥ एवं सति कुले बहुकर्मोपरोधः स्यादिति चेत् ॥ विवाहव्रतचूडोत्तरमंगलेषु पिंडदानादौ मासाद्यल्पकालप्रतिबंधवत् ॥ पित्राद्यन्यमरणेऽल्पकालप्रातिकूल्यनिर्णयवच्च लघुमंगलोत्तरं मासाद्यल्पकालमुंडननिषेधकल्पनं युक्तिबलादाश्रयणीयमिति भाति ॥ अत्र विषये प्राचीननिबंधेषु विशेषो न दृश्यते तथापि धाष्ट्र्येन मयोक्तो विशेषो युक्तश्चेद्ग्राह्यः ॥ इति मंडनमुंडननिर्णयः ॥

अब मुण्डनके उदाहरणको दिखाते हैं। कि, मुंडनकर्मसे चूडाकर्म, नाम संस्कार आदि अग्न्याधान आदि जो अभ्युदयके लिये इच्छासे किये जायँ ऐसे प्रायश्चित्त आदि और जिनमें जाकर क्षौर कराना पडै ऐसे तीर्थोंकी यात्रा आदि ये सब समझने । और यह व्रतबन्ध कात्यायनके मतमें मंगलरूप कहा है इससे यह विवाहके पीछे करना । और अन्योंके मतमें यह मुंडनरूप है इससे नहीं करना । परन्तु माता पिताकी अन्तेष्टिक्रियाके लिये मुंडन जो अकस्मात् प्रायश्चित्त कर न पडै उसके लिये मुंडन जो यदि मरणकाल समीप आन पहुंचा होय तो सब प्रायश्चित्तार्थ मुंडन ये तो मंगल कार्यसे छः मासके भीतरभी करले । और दर्श (अमावस्या) पूर्णमासीका जो नित्य मुंडन है उसमें भी दोष नहीं । कदाचित् कोई शंका करै कि, मुंडन नाम चूडाकर्म और व्रतबंध और विवाह ये मंगल हैं । इन वचनोंमें मण्डन मुण्डनोंको चूडाकर्मआदि कहनेसे आधानआदि जो मुण्डन नहीं हैं इनके करनेमें दोष नहीं सो ठीक नहीं । क्योंकि, 'मुण्डनं चौलमित्युक्तं' यह वचन उदाहरणके लिये है, कुछ यही मुण्डन है अन्य नहीं इस बातके विषयमें नहीं । क्योंकि, जो मुण्डनसे केवल चूडाकर्म और मुण्डन शब्दसे जनेऊ विवाह ही केवल ग्रहण करो तो 'व्रतोद्वाहान्न चौलकम्' अर्थात् जनेऊ और विवाहसे पीछे चूडाकर्म नहीं करना । ऐसाही कहना उचित था इससे 'मण्डनान्नतु मुण्डनम्' यह सामन्यसे जो वचन है वह अनर्थक हो जायगा । इससे गर्भाधानआदि लघुमंगल और विवाह आदिज्येष्ठमंगलसे पीछे अग्न्याधानआदि मुण्डन कर्म नहीं करना । यह प्रतीत होता है । कदाचित् कोई कहै कि, इसप्रकार सब लघु ज्येष्ठ मंगलोंसे पीछे जब निषेध है तो इसप्रकार बहुतकर्म रुक जायँगे । उसमें यह कहते हैं कि, जैसे विवाह, व्रतबंध, चूडाकर्म इनके पीछे जो मंगल हैं उनके विषे तथा पिंडदानके विषे मासआदि थोडे समयका प्रतिबंध होता है । तथा पिता आदिसे अन्यके मरनेमें थोडे कालतक प्रतिकूलत रहती है । तिसीप्रकार लघुमंगलसे पीछे मासआदि थोडे कालतक मुण्डनके निषेधकी कल्पनाभी युक्तिके बलसे अवश्य माननी चाहिये यह प्रतीत होता है । इस विषयमें प्राचीन

ग्रंथोंके विषे विशेष कुछ नहीं लिखा तथापि मैंने यह अपनी धृष्टतासे लिखा है सो इसको युक्तजानो तो ग्रहण करना । मंडन मुंडनका निर्णय समाप्त हुआ ।।

अथ प्रतिकूलविचारः ।

विवाहनिश्चयोत्तरं वरस्य कन्याया वा सगोत्रत्रिपुरुषात्मककुले कस्यचिन्मरणे प्रतिकूलदोषः ॥ विवाहनिश्चयश्च वैदिको लौकिको वा ग्राह्यः ॥ तत्र वैदिको वाग्दानाख्यविधिना कृतो मुख्यः ॥ लौकिको लग्नतिथिनिश्चयादिर्वरवध्वोः शुल्कभाषाबंधपूगीफलदानादिश्च ॥ सगोत्रत्रिपुरुषेत्युक्त्या मातामहकुलादिव्यावृत्तिः ॥ तथा च वरस्तत्पूर्वपत्नीवरमातापितरौ वरपितामहपितामह्यावनूढा पितृष्वसा चेति पूर्वत्रिपुरुषी ॥ वरस्तस्य भ्राता पत्नी पुत्रानूढकन्यासहितो वरस्यानूढा भगिनी वरस्य स्नुषापुत्रौ अनूढा कन्या च पौत्रस्तद्भार्या चानूढा पौत्री चेति परत्रिपुरुषी ॥ पितृव्यतत्पत्न्यौ पितृव्यपुत्रस्तत्पत्न्यावनूढा पितृव्यकन्या चेति संतानभेदे त्रिपुरुषी चेति सगोत्रत्रिपुरुषीपुरुषपरिगणना ॥ एतेषामन्यतममरणे प्रतिकूलमिति पर्यवसितोर्थः ॥ अत्र भ्रातापुत्रपौत्रादिश्चानुपनीतोपि त्रिवर्षाधिकवया ग्राह्यः ॥ एवमनूढभगिन्यादेरपि त्रिवर्षाधिकत्वं युक्तं भाति ॥ एवं वधूकुलेप्यूह्यम् ॥ एवमेव मंडनमुंडनादावपि त्रिपुरुषगणनोह्या ॥ अत्र विशेषः ॥ पिता माता पितामहः पितामही पितृव्यः पूर्वपत्नी पूर्वस्त्रियाः पुत्रो भ्रातानूढा भगिनी चैतेषां मरणे विशेषतः प्रतिकूलदोषान्नैव कर्तव्यो विवाहः ॥ एतदन्यत्रिपुरुषसपिंडमरणे शांत्यादिना दोषं परिहृत्य विवाहः कार्यः ॥ संकटे तु पित्रादिमरणेपि कालप्रतीक्षाशांतिभ्यां दोषं निर्हृत्य विवाहः कार्यः ॥ तत्र व्यवस्था ॥ निश्चयोत्तरं मातापित्रोर्द्वयोरपि मरणे कालप्रतीक्षाशांतिभ्यामपि दोषशांत्यभावान्न कार्यो विवाहः ॥ मातापित्रोरेकैकमरणे तु शांत्यादिना विवाहः ॥ तत्र ॥ "पितुरब्दमिहाशौचं तदर्धं मातुरेव च ॥ मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ अन्येषां तु सपिंडानामाशौचं माससंमितम् ॥ तदंते शांतिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते ॥ प्रतिकूले न कर्तव्यं लग्नं यावदृतुत्रयम् ॥ प्रतिकूले सपिंडस्य मासमेकं विवर्जयेत्" ॥ इत्यादिवाक्याश्रयेण व्यवस्थोच्यते ॥ अत्राशौचपदेन प्रतिकूलकृतं विवाहानधिकारमात्रं कालप्रतीक्षार्थमुच्यते ॥ अतः पितृमरणे वर्षोत्तरं विनायकशांतिं कृत्वा संकटे विवाहः कार्यः ॥ अतिसंकटे षण्मासोत्तरं विनायकशांतिं श्रीपूजनादिशांतिं च कृत्वा विवाहः ॥ ततोप्यतिसंकटे मासोत्तरं शांतिद्वयांते विवाह इति संकटतारतम्येन पक्षत्रयम् ॥ मातृमरणे षण्मासांते विनायकशांत्या विवाहः ॥ अतिसंकटे मासांते शांतिद्वयं कृत्वोद्वाहः ॥ यत्तु ॥ "प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् ॥ न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः" इति पित्रोर्मृतौ वर्षपर्यंतं सर्वशुभकर्मनिषेधवचनं तत्प्राग्वाङ्निश्चयात्पित्रोर्मृतौ संकटाभावे वा

ज्ञयम् ॥ भार्यामरणे मासत्रयांते मासांते वा श्रीपूजनादिशांतिः॥ भ्रातृमरणे सार्धमासांते मासान्ते वा विनायकशांतिः ॥ पुत्रमृतौ सार्धमासं मासं वा प्रतीक्ष्य श्रीपूजनादिशांतिः ॥ पितृव्यमरणे मासांते विनायकशांतिः ॥ पितामह्या अनूढभगिन्याश्च मरणे मासांते श्रीपूजनादिशांतिः ॥ एतदन्यत्रिपुरुषसपिंडमरणे मासांते श्रीपूजनादिशांतिः ॥ ततो विवाहः ॥ गुणवत्तरमातुर्मृतौ षण्मासेन मनःखेदानपगमे वर्षप्रतीक्षा ॥ एवं गुणवत्तरभार्यायाः षण्मासपर्यंतं प्रतीक्षा ॥

अब प्रतिकूलके विचारको कहते हैं । कि, विवाहके निश्चय किये पीछे वर कन्याके गोत्रमें तीन पीढीतकके कुलमें किसीका मरण होय तो प्रतिकूल दोष समझना । और विवाहका निश्चय वैदिक और लौकिक यह दो प्रकारका समझना । जो वाग्दानरूप विधिमें कहा है वह वैदिक मुख्य निश्चय और लग्न, तिथि आदिका निश्चय तथा वर और वधू के लिये शल्क भाषाबन्ध (चिट्ठीकी लिखावट) और पूगीफल आदिका दान ये लौकिक निश्चय कहाता है सगोत्रियोंकी तीन पीढीतक जो मरण हो ऐसा कहनेसे मातामह (नाना) आदि मरजायँ तो दोष नहीं अब त्रिपुरुषीको गिननेका प्रकार दिखाते हैं कि, वर उसकी पहिलीस्त्री वरके माता पिता, वरके बाबा दादी और विना विवाहीं वरकी पितृष्वसा (फूआ) यह पूर्व त्रिपुरुषी है । और वर इसका भाई और भाईकी स्त्री पुत्र, विनाविवाही कन्या, वरकी विना विवाही बहिन, वरकी स्नुषा (पुत्रवधू) पुत्र और विनाविवाही कन्या और पौत्र उसकी स्त्री और विना विवाही कन्या ये परत्रिपुरुषी है चाचा वा ताऊ इनकी स्त्री पुत्र, पुत्रकी स्त्री और विना विवाही कन्या यह सन्तानके भेदसे त्रिपुरुषी कहाती है । सगोत्री त्रिपुरुषीकी गिनती को कह चुके । इससे यह निश्चय हुआ कि, इनमेंसे कोई सा मरजाय तो प्रतिकूल होता है । यहां भाई और पुत्र पौत्र आदि यदि जो उपनयन न हुआ होय तो भी तीन वर्षसे अधिक अवस्थावाला समझना । इसीप्रकार विना विवाही कन्या आदिभी तीनवर्षसे अधिक होय तो त्रिपुरुषीमें है यह बात प्रतीत होती है । इसीप्रकार वधूके कुलमें भी समझना । इसीप्रकार मुंडन मण्डन आदिमेंभी त्रिपुरुषीकी गणना समझनी । परन्तु इसमें यह विशेष है कि, पिता, माता, बाबा दादी चाचा ताऊ पहिलीस्त्री पहिली स्त्रीका पुत्र भाई विना व्याही बहिन इनके मरनेमें प्रतिकूल दोष विशेष होता है इससे विवाह नहीं करना इनसे त्रिपुरुषी सपिण्डके मरनेमें शांति आदिसे दोषको हटाकर विवाह करना । और जो संकट होय तो पिताआदिके मरनेपर भी समय को देखकर और शांतिको करके विवाह करना । तिसमें यह व्यवस्था समझनी कि, निश्चय किये पीछे जो माता पिता दोनों मरजायँ तो कालप्रतीक्षा और शांतिसे भी जो दोषकी शांति न होय तो विवाह नहीं करना । जो माता वा पिता इनमेंसे एकका मरण हुआ होय तो शांति आदिसे विवाह करना । इनके मरनेमें यह है कि, पिताके मरनेमें वर्षदिनका आशौच, माताके मरनेमें छः मास, स्त्रीकेमें तीन मास, भाई और पुत्रकेमें डेढ मास इनसे अन्य सपिण्डोंकेमें एकमास आशौच होता है । इससे उस आशौचके अन्तमें शांतिको करके लग्नका निश्चय करै । प्रतिकूल दोष होनेपर तीन ऋतुपर्यंत लग्नका कार्य नहीं करना । जो सपिण्डका प्रतिकूल होय तो एकमास वर्ज दे यहां आशौचशब्दसे केवल विवाहके अधिकारका न होना समझना । इससे ये तीन पक्षहैं कि, पिताके मरणके पीछे जो संकट होय

तो वर्षदिनके अनंतर विनायकशांतिको करके विवाह करना । और जो अतिसंकट होय तो छः महीनेसे पीछे विनायकशांति और श्रीपूजनआदिको करकै विवाह और जो उससे भी अधिक संकट होय तो एकमास पीछे विनायकशांति और श्रीपूजन आदिको करके विवाह करना । माताके मरणमें छः माससे पीछे विनायकशांतिको करके विवाह अतिसंकट होय तो एकमास पीछे दोनों शांति करके विवाह करना । और जो कि, यह वचन है कि, जिसके माता और पिता मरजायँ उसका देह अशुद्ध होजाताहै । इससे वह वर्षदिनतक दैव और पित्र्य श्राद्ध कर्मको न करै । इस वचनसे जो मातापिताके मरणमें वर्षदिनतक समस्त शुभकर्मका निषेध है । वह वाग्दानके निश्चयसे जो पूर्व मातापिताका मरण होजाय वा संकट न होय तो समझना । स्त्रीके मरनेमें तीनमासके वा एकमासके अन्तमें श्रीपूजन आदिको करके करना । भाईके मरनेमें डेढमासके अन्तमें विनायकशांति, पुत्रके मरनेमें डेढमासमें वा मासके अन्तमें विनायकशांति, चाचाके मरनेमें मासके अन्तमें विनायकशांति, पितामही, विना विवाही बहिन इनके मरनेमें मासके अन्तमें विनायकशांति, इनसे अतिरिक्त त्रिपुरुष सपिण्डके मरनेमें मासके अन्तमें श्रीपूजन आदि शांति करके मंगलकर्मको करना । जो अपने पर प्रेम आदि वा अत्यंतहित करनेवाली हो ऐसी माताके:मरनेमें जो छः मासतक मनका खे दूर न होय तो वर्षदिनतक प्रतीक्षा करै इसीप्रकार गुणवाली स्त्रीके मरनेमेंभी छः मासतक कालकी प्रतीक्षा करै ॥

अथ प्रतिकूलापवादः ।

ज्योतिःप्रकाशे तु ॥ अतिसंकटवशेन मात्रादिमरणे मासाधिकप्रतीक्षाया असंभवे मासमध्येपि दशाहोत्तरं कंचित्कालं प्रतीक्ष्योक्तव्यवस्थया विनायकशांति श्रीपूजनादिशांतिं च कृत्वा गां दत्त्वा पुनर्वाग्दानादि चरेदित्युक्तम् ॥ सर्वोप्ययमपवादः संकटेषु तारतम्येन बुधैर्योज्यः ॥ अल्पसंकटविषये महासंकटविषयकविधिकथने वक्तुः कर्तुश्च दोष एव ॥ दुर्भिक्षराष्ट्रभंगादिभये पित्रोर्मरणाशंकायां च न प्रतिकूलम् ॥ दीर्घरोगिदूरदेशस्थविरक्तानां कन्यायाः प्रौढत्वे च प्रतिकूलदोषो नेत्यपवादः ॥

अब प्रतिकूलका अपवाद दिखातेहैं । कि, ज्योतिःप्रकाशमें लिखाहै कि, माता आदिके मरजानेपर जो अतिसंकटके होनेसे माससे अधिक कालकी प्रतीक्षा न करसके तो मासके मध्यमें भी दशाहके होनेके पीछे कुछकालकी प्रतीक्षा करके विनायकशांति, श्रीपूजन आदिकी शांति, गोदान आदिको करके फिर वाग्दान आदिको करै । यह समस्त अपवादकी व्यवस्था संकटके अधिक अधिक होनेसे पंडितोंको समझनी चाहिये और जो थोडासा भी संकट होनेपर महासंकटको बतावै तो कहनेवाले और करनेवाले दोनोंको दोष अवश्य होगा । और दुर्भिक्ष (अकाल) और राष्ट्र (देश) के भंग आदिका भय वा माता पिताके मरनेकी शंका होय तो प्रतिकूल दोष नहीं । जिनके शरीरमें कोई दीर्घ रोग हों, जो दूरदेशमें हों और जो विरक्तहों उनकी कन्या जो प्रौढा (द्वादशवर्षसे अधिक) हो जाय तो उनको प्रतिकूल दोष नहीं । अर्थात् उनको प्रतिकूल होनेपर भी विवाह करना । अपवादोंको कहचुके ॥

अथ श्रीपूजनादिशांतिः ।

श्रीपूजनादिशांतिश्च श्रिये जात इति श्रियम् ॥ इदं विष्णुरिति विष्णुम् ॥ गौरीर्मिमायेति गौरीम् ॥ त्र्यंबकमिति रुद्रम् ॥ परं मृत्योरिति यमं च संपूज्याष्टोत्तरशततिलाज्यं जुहुयात् ॥ भूः स्वाहा मृत्युर्नश्यतां स्नुषायै सुखं वर्धतां स्वाहेति ततो होमं समाप्याथ गोद्वयं दक्षिणा भवेदिति कौस्तुभे द्रष्टव्या ॥ इति प्रतिकूलविचारः ॥

अब श्रीपूजन आदि शान्तिको कहतेहैं । कि, श्रीपूजनआदि शान्ति इसप्रकार करै कि, 'श्रिये जातः' इत्यादि मंत्रसे श्रीको, 'इदं विष्णुः' इसमंत्रसे विष्णुको, 'गौरीर्मिमाय' इसमन्त्रसे गौरीका, और 'त्र्यम्बकं' इसमन्त्रसे रुद्रका पूजन करके तथा 'परंमृत्यो०' इस मंत्रसे यमराजका पूजन करै । फिर 'भूः स्वाहा मृत्युर्नश्यतां स्नुषायै सुखं वर्द्धतां०' इसमन्त्रसे एकसौ आठ (१०८) घीकी आहुति अग्निमें दे । फिर शेषहोमको समाप्त करके दो गौ आचार्यको दक्षिणामें दे । यह सब कौस्तुभग्रंथमें समझना ॥ प्रतिकूलविचार समाप्त हुआ ॥

अथांत्यकर्माभावनिमित्तकमंगलप्रतिबंधनिर्णयः ।

"प्रेतकर्माण्यनिर्वृत्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् ॥ आचतुर्थं ततः पुंसि पंचमे शुभदं भवेत् ॥" अत्र प्रेतकर्मपदेन सपिंडीकरणात्पूर्वभाविकर्माणि सपिंडीकरणं च सपिंडीकरणोत्तरं पार्वणविधिनोक्तानि मासिकानि चोच्यंते ॥ "सपिंडीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि ॥ पुनरप्यपकृष्यंते वृद्धयुत्तरनिषेधनात्" इत्यनुमासिकानाप्यपकर्षोक्तेः ॥ अभ्युदयपदेन नांदीश्राद्धयुक्तं कर्ममात्रं ग्राह्यम् ॥ कैश्चिद्विवाहाद्येव ग्राह्यमित्युक्तम् आचतुर्थमिति नांदीश्राद्धकर्तारं पुरुषमारभ्य जनकचतुःपुरुषी जन्यचतुःपुरुषी संतानभेदे च चतुःपुरुषी सगोत्रा गृह्यते॥ तथा च नांदीश्राद्धकर्तुः पितृपितामहप्रपितामहाः पत्नीसहिताः कर्तुर्भार्यापुत्रपौत्रप्रपौत्रास्तद्भार्याश्च भ्राता तत्पुत्रपौत्रास्तद्भार्याः पितृव्यतत्पुत्रपौत्रास्तद्भार्याश्च प्रपितामहस्य पुत्रपौत्रप्रपौत्रास्तद्भार्याश्चैतेषां मृतानामनुमासिकांतप्रेतकर्माकरणे मंगलं न कार्यमित्यर्थः ॥ नांदीश्राद्धकर्तात्र मुख्य एव ग्राह्यो न तु मातुलादिर्गौणः ॥ मृतपितृकस्योपनयनादौ संस्कार्यमारभ्यैव चतुःपुरुषी गणना ॥ मातामहादेर्भिन्नगोत्रत्वेपि नांदीश्राद्धदेवतात्वात् प्रेतकर्माभावे मंगलं न भवति ॥ मातामह्यादेः स्वातंत्र्येण देवतात्वाभावाद्दशाहांत्यकर्माभावेपि मंगलप्रतिबंधो नास्ति ॥ इत्यंत्यकर्माभावनिमित्तिकमंगलप्रतिबंधनिर्णयः ॥

अब जो अन्त्येष्टिकर्म न करचुकै तो मंगलकार्यका प्रतिबंध होजाता है, इसका निर्णय दिखातेहैं । कि, प्रेतकर्मको समाप्त कियेविना चौथी पीढीतक मंगलकर्म न करना परन्तु पांचमें पुरुषमें यह दोष नहीं होता । यहां प्रेतकर्मसे सपिंडीकरणसे जो पूर्व होते हैं वे कर्म और सपिंडीकरण ये और सपिंडीकरणसे पीछे जो पार्वणविधिसे मासिकश्राद्ध कियेजाते हैं वे

समझने। क्योंकि, जो सपिंडीकरणसे पहिले अपकर्षसे करलियेगयेहैं उनका पुनः भी अपकर्ष होताहै क्योंकि, उनका वृद्धिश्राद्धसे पीछे फिर निषेध है इस वचनसे मासिकश्राद्धोंका अपकर्ष कहाहै। अभ्युदयपदसे जिनकर्मोंमें नांदी श्राद्ध किया जाताहै व सब कर्मग्रहण करने। कोई तो इस पदसे विवाह आदिकोही कहते हैं। और आचतुर्थ इसपदसे नांदीश्राद्धके करनेवाले पुरुषसे लेकर जनक और जन्य इनकी सन्तानके भेदसे अपने गोत्रके चार पुरुष ये लेते हैं कि, नांदीश्राद्ध करनेवालेके पिता, पितामह, प्रपितामह ये स्त्रीसहित तीनों। और कर्ताको स्त्री, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और इनकी स्त्री। और भाई, भाईके पुत्र, प्रपौत्र इनकी स्त्री। चाचा इसके पुत्र, पौत्र इनकी स्त्री। प्रपितामहके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इनकी स्त्री। इनके मरनेके अनंतर अनुमासिकपर्यंत प्रेतकर्मके न होनेतक मंगलकर्म न करना। यहां नांदीश्राद्धका करनेवाला जो मुख्य हो वह ग्रहण करना। गौणरूप मातुलआदि नहीं। जिसका पिता मरजाय॥ उसके उपनयन आदि कर्ममें जिसका संस्कार हो उससे चतुः (चार) पुरुषोंकी गणना करनी। मातामह, मातृपितामह, मातृप्रपितामह यद्यपि इनका गोत्र भिन्न है इससे चतुःपुरुषोंमें नहीं, तथापि ये नांदीश्राद्धके देवताहैं इसमें मंगल नहीं होता। और मातामही आदि ये नांदीश्राद्धके देवता स्वतन्त्र नहीं किन्तु अपने २ पतिकी अपेक्षासे हैं इससे इनका दशाहसे पीछे अन्तेष्टि कर्म न भी होचुका हो तो भी मंगलकार्यका प्रतिबंध नहीं होता। यह अन्तकर्मके न होनेसे मंगलके प्रतिबंधका निर्णय कह चुके॥

अथ चतुर्थीकर्ममध्ये दर्शादिनिर्णयः।

अथ मौंजीविवाहयोर्नांदीश्राद्धमारभ्य मंडपोद्वासनपर्यंतं मध्ये दर्शदिनं यथा न पतेत्तथा कार्यम्॥ दर्शान्यत्पित्रोः क्षयाहादिश्राद्धदिनं यदि ज्ञानादज्ञानाद्वापतति तदा त्रिपुरुषसपिंडैर्विवाहादिमंगलसमाप्त्युत्तरं श्राद्धं कार्यम्॥ एवं च दर्शान्यश्राद्धस्यैव स्वरूपतो विवाहमध्ये निषेधः न तु दर्शवच्छ्राद्धरहितस्यापि श्राद्धतिथिमात्रस्य॥ 'वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धम्'॥ इत्याद्युक्तेः॥ एतेन संक्रांतिमन्वाद्यष्टकादिदिनानां श्राद्धदिनत्वाद्दर्शवन्मध्ये पातो निषिद्ध इति शंका निरस्ता॥ तेन षण्णवतिश्राद्धकर्तृभिः सपिंडैर्मध्यपतितमन्वादेः प्रायश्चित्तादिना संपत्तिः संपाद्या॥ इति चतुर्थीकर्ममध्ये दर्शादिनिर्णयः॥

अब जो चतुर्थीकर्मके मध्यमें दर्शादिका दिन हो उसका निर्णय कहते हैं कि, मौंजीबंधन और विवाहके जो नांदीश्राद्धसे लेकर मण्डपके उद्वासनपर्यंत कर्म हैं वे जैसे मध्यमें अमावस्याका दिन न आवै तिसप्रकार करने चाहिये। और दर्शसे भिन्न जो माता पिताके क्षयी आदिका दिन ज्ञान वा अज्ञानसे मध्यमें आजाय तो तीन पीढीतकके पुरुषोंको मंगलकर्मकी समाप्तिके पीछे वह क्षयी आदि श्राद्ध करना मध्यमें नहीं। इससे यह बात सिद्ध भई कि, दर्शसे अन्य जो श्राद्ध हैं उनको अपने विशेष पार्वण आदि रीतिसे करना हो उनकाही विवाहके मध्यमें निषेध है। कुछ जो दर्शकी समान जो श्राद्धसे रहित जितनी श्राद्धकी तिथि हैं उनका नहीं। क्योंकि ऐसे वचनहैं कि, विवाहके होनेके अनंतर श्राद्धको करै। इससे इस शंकाकाभी खण्डन हुआ कि, जो संक्रांतिदिन मन्वादि अन्वष्टकादि तिथियोंमें श्राद्ध किये जातेहैं ये

भी श्राद्धदिन हैं । इनकाभी दर्शके समान मध्यमें आना निषिद्धहै । इससे जो छयानवें (९६) श्राद्धोंके करनेवाले सपिण्ड हैं उनको जो मध्यमें अन्वष्टका आदि तिथि आजाय तो प्रायश्चित्त आदिसे उनका सम्पादन करना ॥ चतुर्थीकर्मके मध्यमें दर्श आदि आनेका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ विवाहादौ रजोदोषसूतकनिर्णयः ।

प्रारंभात्प्रागारंभोत्तरं वा मातुः पितृव्यादेः कर्त्रंतरस्य पत्न्या वा रजोदोषे यद्वक्तव्यं तद्व्रतबंधप्रकरणे विस्तरेणोक्तं तत एव ज्ञेयं रजोदोषजननाशौचादिसंभावनायां नांदी श्राद्धस्यापकृष्यानुष्ठाने दिनावधिः ॥ "एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दशवासराः ॥ त्रिषट्चौलोपनयने नांदीश्राद्धं विधीयते ॥ " दशदिनाद्यतिक्रमे पुनर्नांदीश्राद्धमित्यर्थात्सिद्धम् ॥ नांदीश्राद्धोत्तरं सूतकमृतकयोः प्राप्तौ न विवाहादिप्रतिबंधः ॥ " विवाहव्रतयज्ञेषु श्राद्धे होमेर्चने जपे ॥ आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ प्रारंभो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः ॥ नांदीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया " इत्युक्तेः ॥ इदं सन्निहितमुहूर्तांतराभावादिसंकटे एव ज्ञेयम् ॥ संकटाभावे तु नांदीश्राद्धेजातेपि सूतकांते मुहूर्तांतरे एव मंगलम् ॥ सर्वोप्याशौचापवादोऽनन्यगतिकत्वे आर्त्तौ च ज्ञेय इति सिंधूक्तेः ॥ तेन व्रते संकल्पोत्तरमाशौचेपि विप्रद्वारैव पूजादि ॥ यज्ञादौ मधुपर्कविधिना वरणोत्तरमपि ऋत्विगंतरालाभादिकेनन्यगतौ संकटे एव च मधुपर्कविधिना वृतस्याशौचाभावः ॥ एवं जपहोमादावप्यूह्यम् श्राद्धे पाकपरिक्रिया पाकप्रोक्षणम् ॥ एतदप्यार्तिसत्त्वे ॥ महासंकटे प्रारंभात्प्रागपि सूतकप्राप्तौ कूष्मांडमंत्रैर्घृतहोमं कृत्वा पयस्विनीं गां दत्त्वा पंचगव्यं प्राश्य शुद्धश्चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् ॥ उपकल्पितबहुसंभारस्य सन्निहितलग्नांतराभावेन नाशाद्यापत्तावप्येवं शुद्धिः ॥ इदं जननाशौचमात्रविषयमिति मार्तंडादौ ॥

अब विवाहादिमें रजोदोष तथा सूतक हो उसका निर्णय कहतेहैं । कर्मके आरंभसे पूर्व वा पीछे कन्याको अथवा वरकी माता अथवा चाचादि कर्ताओंकी स्त्रीको रजोदोष होनेमें जो कुछ कहनाथा वह सब व्रतबंधप्रकरणमें विस्तारसे पूर्व कह आये सो वहांसे ही समझना । रजोदोष वा जननसे आशौच आदिकी संभावना होय तो अपकर्षसे नांदीश्राद्ध करदिया होय तो एकदिन आशौच होता है । अहर्यज्ञ (नित्यहोम) होय तो इक्कीसदिन विवाहमें दसदिन मुंडनमें तीन दिन, यज्ञोपवीतमें छः दिन, आशौच होता है । इससे तिस आशौच आदिकी सम्भावना होय तो दशदिन आदिके वीतनेपर पुनः नांदीश्राद्धको करे । यह बात अर्थात् सिद्धहुई।जो नांदीश्राद्धकिये पीछे सूतक वा मृत्यु होजाय तो विवाह आदिका प्रतिबंध नहीं क्योंकि यह लिखाहै कि, विवाह, व्रत, यज्ञ, श्राद्ध, होम,देवपूजा,जप इनमें जो आरंभ होचुका होय तो सूतक नहीं और जो न हुआ होय तो सूतक होताहै । यज्ञका प्रारंभ वरणसे, व्रत सत्रयज्ञका प्रारंभ संकल्पसे, विवाहआदिकर्मका प्रारंभ नांदीमुखसे और श्राद्धका प्रारंभ पाक-

क्रियासे होताहै । यह बात जो कोई निकट मुहूर्त न बनै अथवा संकट होय तो समझनी और जो संकट न होय तो नांदीश्राद्ध होभीचुका हो तथापि सूतकके बीतनेपर अन्यमुहूर्तमेंही मंगल करै । यह समस्त आशौचका अपवाद जो किसीप्रकार अन्यमुहूर्तमें कार्य न होसकै वा संकट होय तो ही समझना अन्यथा नहीं । यह सिन्धुग्रन्थमें लिखाहै तिससे व्रतके विषे जो संकल्पसे पीछेभी सूतक हुआहो तोभी ब्राह्मणके द्वाराही पूजाआदिको करावै स्वयं नहीं । तिसीप्रकार यज्ञ आदिमेंभी जिसका मधुपर्ककी विधिसे वरण करचुकै उसके अनन्तर फिर आशौच होजाय वहांभी जो अन्य कोई ऋत्विज् हवन आदिके लिये न मिलै तभी उस वरण-किये पुरुषको आशौच नहीं । इसीप्रकार जप होम आदिमेंभी समझना । श्राद्धके विषे पाक-परिक्रिया पकायेहुए अन्नआदिके प्रोक्षणको कहतेहैं । यहभी दुःख होय तो समझना । जो यदि महासंकट होय तो प्रारंभसे पूर्वभी सूतक आ लगै तो कूष्मांडमन्त्रोंसे घीका होम करके दुग्ध देतीहुई गौका दान, पंचगव्यका पीना इन सबको करिके शुद्ध होकर मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, प्रतिष्ठा आदि कर्मको करै । जिसने सब सामग्री इकट्ठी करली हो उस पुरुषको जो अन्यकोई लग्न कर्मके लिये न मिलै तो जो यदि उस सामग्रीके नष्ट होनेकी संभावना होय तो पूर्वोक्तप्रकारसे शुद्धि समझनी । यह बात जन्म आशौचकेहीं विषयमें है यह मार्तण्डआदि ग्रंथोंमें लिखाहै ॥

अथ सूतक्यन्नभोजने दोषाभावविचारः ।

कूष्मांडहोमादिना शुद्धिपूर्वकं सूतकमृतकयोर्मध्ये आरब्धे विवाहादौ विप्राणां पूर्वसंकल्पितान्नभोजने दोषो न ॥ पाकपरिवेषणादिकमपि सूतकिभिः कार्यं होमादिविधिना शुद्धिसंपादनादिति कौस्तुभे स्थितम् ॥ नैतद्युक्तम् ॥ लोकविद्विष्टत्वादतः परगोत्रैरेवान्नदानं युक्तमिति भाति ॥ नांदीश्राद्धोत्तरं सूतकमृतकयोः प्राप्तौ पूर्वमन्नसंकल्पाभावेपि विवाहोत्तरकालसंकल्पितान्नभोजनं विप्रैः कार्यम् ॥ अत्रापि "परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः" इति सर्वसंमतं परैरसगोत्रैरिति सिंधुमयूखादौ व्याख्यानात् ॥ पूर्वसंकल्पितान्नस्यापि भोजनसमये सूतकप्राप्तौ भोक्तृभिर्भुक्तशेषं त्यक्त्वा परगृहोदकैराचांततादि विधेयम् ॥ पाकशेषः सूतकिभिर्भोक्तव्यः ॥ " भुंजानेषु च विप्रेषु त्वंतरामृतसूतके ॥ अन्यगेहोदकाचांताः " इति स्मृतेः ॥ नांदीश्राद्धोत्तरं भोजनादन्यकाले सूतकप्राप्तौ सूतकिगृहे भोक्तव्यम्॥ भुंजानेषु सूतकप्राप्तौ भोक्तृभिः पात्रस्थमप्यन्नं त्याज्यमिति वाचनिक एव विशेषः ॥ न हि वचनस्यातिभार इति न्यायात् ॥ मम तु भुंजानेष्विति वाक्यमारब्धानारब्धसर्वकर्मस्वसंकल्पितान्नविषयमिति भाति ॥ इति विवाहादौ रजोदोषसूतकप्राप्तिनिर्णयः ॥

अब सूतकीके अन्नखानेमें दोष न होनेका निर्णय करतेहैं । पूर्व कहे कूष्माण्डहोम आदिसे शुद्ध होकर जो मरण वा जन्म सूतकके होतेहुए भी विवाह आदि क्रिया करै तो ब्राह्मणोंको पूर्वसंकल्प किये अन्न आदिके भोजनमें दोष नहीं । पाक (पूरीआदि) का परिवेषण

(परोसना) आदि भी वे सूतकी करैं कि, जिनकी होम आदि विधिसे शुद्धि हो चुकीहै। यह बात कौस्तुभग्रंथमें लिखी है । सो यह ठीक नहीं है क्योंकि, यह बात लोकसे विरुद्ध है इससे जो सूतकीके गोत्रमें न हों वे ही अन्नदान करें यह प्रतीत होताहै। नांदीश्राद्ध किये पीछे सूतक वा मृत्यु होजाय और पहिले अन्नका संकल्प किया न होय तोभी विवाहसे पीछे जो अन्नका संकल्प किया उस अन्नके भोजनमें ब्राह्मणोंको दोष नहीं। यहांभी यही समझना कि, परगोत्री तो अन्नको दें और भोजन ब्राह्मण करैं । क्योंकि, सिन्धु मयूखआदि ग्रंथोंमें परा अन्नका दान करैं और ब्राह्मण भोजन करैं, इस वचनमें पर शब्दका असगोत्र अर्थात् जो अपने गोत्रके न हों ऐसा व्याख्यान किया है । और यद्यपि अन्न पूर्वसंकल्पित होय तो उसको भोजन करतेहुए जो सूतक आन लगै तो भोजन करनेवाले उस भोजनसे शेष अन्नको त्यागकर अन्य किसीके घरके जलसे आचमन आदिको करैं। और जो पाकसे अवशेष रहाहो उसे सूतकी भोजन करैं । क्योंकि, यह स्मृति है कि, ब्राह्मणोंके भोजन करतेहुए जो मध्यमें सूतक होजाय तो अन्य घरके जलके आचमनसे शुद्धि होती है । जो नांदीश्राद्धसे पीछे भोजनसे अन्यकालमें सूतक होय तो सूतकीके घरभी भोजन करले । तथा वचनसेही यह विशेष प्रतीति होती है कि, भोजन करतेहुए जो सूतक आन लगै तो पात्रमेंका भी अन्न त्याग दे । क्योंकि, वचनके ऊपर अत्यन्त भार नहीं ऐसा न्याय है और मुझको तो यह प्रतीत होता है कि, 'भुंजानेषु च विप्रेषु०' यह वचन जो आरम्भ करदिया और जिसका आरम्भ नहीं किया उन सब कर्मोंके विषे जिस अन्नका संकल्प नहीं किया उसी अन्नके विषयमें है । इसप्रकार विवाह आदिमें रजोदोष, सूतक आदिका निर्णय कह चुके ॥

अथ विवाहात्पूर्वं कन्यारजोदोषे प्रायश्चित्तम्।

विवाहात्पूर्वं कन्याया रजोदर्शने मातृपितृभ्रातॄणां नरकपातः कन्यायाः वृषलीत्वं तद्भर्तुर्वृषलीपतित्वम् ॥ अत्र शुद्धिप्रकारः ॥ कन्यादाता ऋतुसंख्यया गोदानानि एकं वा गोदानं यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं वा कृत्वा कन्यादाने योग्यो भवेत् ॥ कन्या तूपवासत्रयांते गव्यपयःपानं कृत्वा विप्रकुमार्यै सरत्नभूषणं दत्त्वोद्वाहयोग्या भवति ॥ वरश्च कूष्मांडहोमपूर्वकं तामुद्वहन्न दोषी स्यादिति ॥ विवाहहोमकाले रजोदोषे तां स्नापयित्वा युंजानेति तैत्तिरीयमंत्रेण प्रायश्चित्तं हुत्वा होमतंत्रं समापयेत् ॥ यदा तु दात्रभावाद्रजोदर्शनं तदा कन्या वर्षत्रयं प्रतीक्ष्य स्वयं वरं वृणुयात् ॥ नात्र वरस्यापि दोषः ॥ इति कन्यारजोदोषनिर्णयः ॥

अब जो रजोदोष कन्याको विवाहसे पूर्व होजाय तो उसका प्रायश्चित्त कहते हैं । कि, विवाहसे पूर्व जो कन्याको रजोदर्शन होजाय तो माता पिता और भाई इनका नरकमें पडना और कन्याको शूद्रत्व और उसके पतिको शूद्रापतित्व होता है । इससे उसकी शुद्धिका प्रकार दिखाते हैं कि, कन्याका पिता, जितने बार कन्या रजस्वला हुई हो उतनी गौओंका वा एक गौका दान अथवा शांतिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर कन्यादानके योग्य होता है। और कन्या भी तीन उपवास किये पीछे गौके दूधको पीकर ब्राह्मणकी कुमारी (कन्या) को रत्नोंके भूषणको देकर विवाहके योग्य होती है । और वर कूष्माण्ड होमको करके यदि

उसको विवाहै तो दोषका भागी नहीं होता । जो विवाहके होमके समय रजोदर्शन होय तो उसको स्नान कराकर फिर कर्ममें नियुक्त करके इस तैत्तिरीयके वचनानुसार प्रायश्चित्त होमको करके कर्म समाप्त करै । यदि दाताके न होनेसे कन्याके रजका दर्शन होय तो कन्या तीन वर्ष बाट देखकर स्वयंही वरको वरले । इसके वरनेमें वरको भी दोष नहीं होता । कन्याके रजोदोषका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ क्षयपक्षादिविचारः ।

पक्षमध्ये तिथिद्वयस्य क्षयेण यत्त्रयोदशदिनात्मकः पक्षः स क्षयपक्षः ॥ तदा बहुप्रजासंहारो राजसंहारो वा ॥ क्षयपक्षे चौलोपनयनोद्वाहादिवास्तुकर्मादि शुभं न कार्यम् ॥ क्षयमासाधिमासगुरुशुक्रास्तादौ विवाहनिषेधः प्रथमपरिच्छेदे ॥ एवं सिंहस्थगुरुनिषेधनिर्णयोपि प्रथमपरिच्छेदे द्रष्टव्यः ॥ क्षयसंवत्सरोपि निषिद्धः ॥ शीघ्रगत्या पूर्वराशिशेषमतिक्रम्य राश्यंतरसंचारोतिचारस्तं प्राप्तो गुरुः पुनः पूर्वराशिं वक्रगत्या यदि नायाति तदा स क्षयसंवत्सरः सर्वकर्मसु वर्ज्यः ॥ तत्र मेषवृषभवृश्चिककुंभमीनराशिषु न दोषः ॥ केचिद्गोदादक्षिणदेशे कोप्यतिचारादिगुरुदोषो नेत्याहुः ॥ इति क्षयपक्षादिविचारः ॥

अब क्षयपक्ष आदिका विचार करते हैं । कि एक पक्षमें दो तिथियोंका क्षय होनेसे जो तेरह दिनका पक्ष होजाय उस पक्षको क्षयपक्ष कहते हैं । उस समयमें बहुतसी प्रजा और राजाका संहार होता है । उस क्षयपक्षमें मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि और गृहप्रवेश आदि (वास्तुकर्म) ऐसे शुभकर्म न करै । क्षयमास, अधिकमास, गुरु शुक्र इनके अस्त आदिमें विवाहका निषेध प्रथम परिच्छेदमें कह आये । इसीप्रकार सिंह राशिपर जब गुरु आवै उस समयमें विवाहके निषेधका निर्णय भी प्रथम परिच्छेदमें समझना । और क्षयसंवत्सर भी विवाहमें निषिद्ध है । क्षयसंवत्सर वह होताहै कि, जो शीघ्र गतिसे बृहस्पति पहिली राशिके कुछ अंशोंको विना भोगे जो अगाडीकी राशिपर चलाजाय और फिर लौटकर वक्रगतिसे पूर्व उसी राशिपर न आवै तब यह क्षय संवत्सर होता है । वह समस्त कर्मोंमें वर्जित है । तिसमें भी जो मेष, वृष, वृश्चिक, कुम्भ और मीन इन राशियोंपर बृहस्पति होय तो दोष नहीं । और कोई यह कहते हैं कि, गोदावरी नदीसे दक्षिणदेशमें बृहस्पतिके अतिचार आदिका दोष नहीं होता । यह क्षयपक्ष आदिकी विधि समाप्त हुई ॥

अथ वधूवरयोर्गुर्वादिबलविचारः ॥

" मुख्यं गुरुबलं वध्वा वरस्येष्टं रवेर्बलम् ॥ " द्विपंचसप्तनवैकादशस्थो गुरु कन्यायाः शुभः जन्मतृतीयषष्ठदशमस्थानेषु पूजाहोमात्मकशांत्या शुभः ॥ चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानेषु दुष्टफलः ॥ कर्कधनुर्मीनगश्चतुर्थादिस्थानेपि न दुष्टः ॥ संकटे चतुर्थद्वादशस्थो द्विवारमष्टमस्त्रिवारं होमादिरूपपूजयार्चितः शुभः ॥ वरराशेस्त्रिषड्दशैकादशस्थाने रविः शुभः ॥ अन्यत्र ग्रहमखोक्तपूजया शुभः ॥ गुरुपूजाप्रकार उप नयनप्रकरणे उक्तः ॥

अब वर और वधूको गुरु आदिके बलका विचार कहते हैं । कि, कन्याको गुरुका बल मुख्य और वरको सूर्यका बल इष्ट है । कन्याको २ । ५ । ७ । ९ । ११ स्थानपर जो बृहस्पति होय तो शुभ और १ । ३ । ६ । १० इन स्थानोंपर होय तो पूजा, होम आदिके करनेसे शुभ होताहै । और जो ४ । ८ । १२ इन स्थानोंपर होय तो अशुभ फलका दाता है । और कर्क, धनु, मीन इन राशियोंपर होय तो चतुर्थ, अष्टम, द्वादश, स्थानका भी दुष्टफल नहीं देता । और जो संकट होय तो ४ । १२ में स्थानमें स्थितकी दोबार, आठमें स्थान स्थित होय तो तीनबार होम आदि पूजा करनेसे शुभ होता है । वरको राशिसे ३ । ६ । १० । ११ इन स्थानोंपर जो सूर्य होय तो शुभ । और जो अन्य स्थानोंपर होय तो ग्रहमखमें जो पूजाविधि कही है उससे शुभ होताहै । गुरुकी पूजाका प्रकार उपनयन प्रकरणमें पूर्व कह आये ॥

अथ कन्याविवाहकालः ॥

जन्मतो गर्भतो वा पंचमवर्षप्रभृति अष्टमवर्षपर्यंतं कन्याविवाहे उचितः कालः षड्वर्षोत्तरं वर्षद्वयं प्रशस्ततरः ॥ " षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः ॥ सोमो भुंक्ते ततस्तद्वद्गंधर्वश्च ततोनलः" इत्युक्तेः ॥ नवमदशमयोर्मध्यमः ॥ एकादशवर्षेधमः ॥ द्वादशादौ प्रायश्चित्तावहः ॥

अब कन्याके विवाहकालको कहते हैं । कि, जन्म वा गर्भ समयसे लेकर पांचमें वर्षसे आठमें वर्षतक कन्याके विवाहका उत्तम काल होताहै सो इनमें छः वर्षसे दोवर्ष तक कन्या का विवाह होय तो अति उत्तम है । क्योंकि, यह कहा है कि, छः वर्षतक कन्याका विवाह नहीं करना क्योंकि, पहिले दोवर्ष उस कन्याको सोम, फिर दोवर्ष गन्धर्व्व और फिर दोवर्ष अनल (अग्नि) इसप्रकार छः वर्षतक ये देवता भोगते हैं । नौमें और दशमेंमें मध्यम और ग्यारहमें वर्षमें विवाह अधम होताहै । और फिर इससे पीछे द्वादश आदि वर्षमें विवाह होय तो प्रायश्चित्तके योग्य कन्या होजाती है ॥

अथ ब्राह्मादिविवाहभेदाः ॥

ब्राह्मो दैव आर्षः प्राजापत्य आसुरो गांधर्वो राक्षसः पैशाच इत्यष्टौ विवाहाः ॥ योग्यवरमाहूयालंकृत्य कन्यादानविधिना तस्मै दानं ब्राह्मो विवाहः१ यज्ञे ऋत्विक्कर्म कुर्वतेऽलंकृत्य कन्यार्पणं दैवः २ वरादेकं गोमिथुनं द्वे वा गृहीत्वा तस्मै कन्यार्पणमार्षः ३ इदं गोमिथुनग्रहणं न निंदितम् ॥ तस्य कुमारीपूजनार्थत्वेन कन्याविक्रयाभावात् ॥ त्वयैतयैव सह गृहधर्म आचरणीय एतस्या जीवनपर्यंतं विवाहोत्तरं चतुर्थाश्रमो वा न कार्य इत्याभाष्य कन्यादानं प्राजापत्यः ४ ज्ञातिभ्यो यथेच्छं धनं दत्त्वा विवाह आसुरः ५ वरवध्वोरिच्छयान्योन्यसंयोगो गांधर्वः ६ युद्धादिना बलाद्धरणं राक्षसः ७ चौर्येण कन्याहरणं पैशाचः ८ पूर्वचतुष्टुं पूर्वःपूर्वः श्रेष्ठः उत्तरेषूत्तरउत्तरो निंद्यः ॥ तत्र विप्रस्य ब्राह्मदैवौ प्रशस्तौ ॥ क्षत्रियस्य गांधर्वराक्षसौ ॥ आसुरो वैश्यस्य ॥ आर्षप्राजापत्यपैशाचाः सर्वेषाम् ॥ संकटे

राक्षसभिन्नाः सप्त विप्रस्य ॥ ब्राह्मदैवेतरे षट् क्षत्रियस्य ॥ वैश्यशूद्रयोर्ब्राह्मदैवराक्षसभिन्नाः पंच ॥ सर्वेष्वपि विवाहेषु तत्तत्प्रकारैः कन्यापरिग्रहोत्तरं स्वस्वगृह्यरीत्या विवाहहोमादिविधिरावश्यकः ॥ दानविधिना दानं सर्वत्र न भवति ॥

अब ब्राह्म आदि विवाहोंको दिखाते हैं । कि, ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये आठ विवाह होते हैं । कुल आदिसे योग्य वरको बुलाकर उसको भूषण आदिसे सुशोभित कन्याका जो देना उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं १। ऋत्विजोंके कर्म करतेहुएको यज्ञके विषे अलंकार आदिसे शोभित कन्या दीजाय उसे दैवविवाह कहते हैं २। वरसे एक गौ और एक वृषभ वा दो वृषभ और दो गौओंको लेकर उसको कन्याका जो देनाहै उसे आर्ष कहते हैं ३। यह वृषभ और गौ का लेना निंदित न समझना; क्योंकि, वह कुमारीकी पूजाके लिये है इससे उसके लेनेमें कन्याका विक्रय नहीं होता । और हे वर ! तुझको इसीके साथ गृहस्थाश्रम भोगना अथवा इस कन्याके जीवनपर्यंत विवाहसे पीछे चतुर्थ (संन्यस्त) आश्रममें प्रविष्ट मत हूजियो ऐसे कहकर जो वरको कन्याका देना उसे प्राजापत्य कहते हैं ४ । जातिके पुरुषोंको यथेच्छ धन देकर जो विवाह करना वह आसुर विवाह है ५। वर और वधूकी इच्छासे जो परस्पर विवाह होना वह गान्धर्व है ६ । युद्ध आदिसे जो बल करिके कन्याको लेलेना वह राक्षस ७ । और चुराकर जो कन्याको लेआना वह पैशाच विवाह होता है ८ । पहिले चारोंमें पहिला पहिला विवाह श्रेष्ठ है । और उत्तरके चारोंमें परला परला निन्दित है । तिनमें भी ब्राह्मणके लिये ब्राह्म, दैव ये नों उत्तम । क्षत्रियको गान्धर्व, राक्षस और वैश्यके लिये आसुर उत्तम होताहै । और आर्ष, प्राजापत्य, पैशाच ये सबके लिये उत्तम होते हैं । संकट होय तो राक्षस विवाहको छोडकर सात विवाह ब्राह्मणको श्रेष्ठ होते हैं । संकटमें क्षत्रियको ब्राह्म, दैवको छोडकर छः और संकटमें वैश्य, शूद्रको ब्राह्म, दैव, राक्षस इनको छोडकर पांच प्रशस्त हैं । समस्त इन विवाहोंमें कन्या ग्रहणके अनन्तर अपने २ गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार विवाह होम आदिका करना आवश्यक है । दानकी विधिसे सर्वत्र दान नहीं होताहै ॥

अथ सप्तपदीविधेः पूर्वं कन्यान्यत्र देया ॥

पैशाचादौ सप्तपदीविधेः पूर्वमन्यस्मै कन्या देया ॥ ब्राह्मादिष्वपि कन्यादानोत्तरमपि सप्तपदीविधेः पूर्वं वरस्य षंढत्वादिदोषज्ञाने वरमृतौ वा कन्यान्यस्मै देया ॥ ब्राह्मविवाहोढायां जातः पुत्रो दश पूर्वान् दश परान्पितॄंस्तारयते॥ दैवोढापुत्रः सप्तसप्त ॥ प्राजापत्योढापुत्रः षट्षट् ॥ आर्षोढापुत्रस्त्रींस्त्रीन् ॥ आश्वलायनसूत्रे तु ब्राह्मादिषु द्वादशदशाष्टौ सप्त च पूर्वान्परांश्च पुत्रस्तारयत इत्युक्तम् ॥ "अन्येषु दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥ " वाग्दानोत्तरं वरस्य देशांतरगमने षण्मासं प्रतीक्ष्यान्यस्मै देया ॥ कन्यायाः शुल्कं प्रदाय गमने वर्षप्रतीक्षा ॥ यत्तु बलाद्विवाहे सगोत्रत्वक्लीवत्वादिवरदोषे वा कन्या सप्तपदीविध्युत्तरमपि अन्यस्मै देयेति तत्कलियुगे निषिद्धम् ॥

अब सप्तपदीके विधिसे पूर्व कन्याको अन्यके देनेका निर्णय करते हैं । पैशाच आदि विवाहमें सप्तपदी विधिसे पूर्व यदि वरमें दोष प्रतीत होय तो कन्या अन्यको देनेमें दोष नहीं ब्राह्म आदि विवाहोंमें भी कन्यादानके पीछे और सप्तपदी (एकमिषे द्वे ऊर्जे) से पूर्व वरको नपुंसक आदि दोषोंसे दूषित समझकर अथवा वरके मरनेपर कन्याको अन्यको देदे । ब्राह्म विवाहसे विवाही कन्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र दश पहिले और दश अगाडीके पितरोंका उद्धार करता है । दैव विवाहसे विवाही कन्यामें उत्पन्न हुआ पुत्र सात सातको उद्धारता है । प्राजापत्यसे विवाहीमें उत्पन्न हुआ पुत्र छह छहको उद्धारता है और आर्ष विवाहसे विवाहीमें उत्पन्न हुआ पुत्र तीन तीनको उद्धार करता है । आश्वलायन सूत्रमें तो यह लिखा है कि, ब्राह्म आदि चार विवाहोंसे विवाही हुई कन्याओंमें उत्पन्न हुए पुत्र क्रमसे ब्राह्मसे बारह, दैवसे दश, आर्षसे आठ और प्राजापत्यसे सात अगले पिछले पितरोंको तारते हैं । और अन्य आसुर आदि चार विवाहोंसे उत्पन्न हुए पुत्र ब्राह्मण और धर्मके द्वेषी होते हैं। वाग्दानके पीछे वर जो परदेशको चलाजाय तो छह मासतक बाट देखकर कन्याको अन्य वरको दे दे और जो कन्याको शुल्क (भूषण आदि) देकर जाय तो वर्ष दिनतक बाट देखै । और जो कि यह बात है कि, बलसे विवाह हो वा वरमें समान गोत्रता वा नपुंसक आदि दोष होयँ तो सप्तपदीसे पीछे भी कन्याको अन्यको देदे सो यह बात कलियुगमें निषिद्ध है ॥

अथ वाग्दानोत्तरं कन्यामदातुर्विवादः ॥

वाग्दानोत्तरं पातित्यादिदोषाभावेपि कन्यामदातुर्दंड उक्तः ॥ एवं कन्याया अपस्मारदोषमनुक्त्वा दातापि दंड्यः ॥ अधर्म्योद्वाहेषु द्विजैर्भोजनादौ कृते आसुरे एकरात्रमुपवासो गांधर्वे त्रिरात्रं राक्षसपैशाचयोश्चांद्रायणं प्रायश्चित्तम् ॥ इति विवाहभेदाः ॥

अब जो वाग्दानके पीछे कन्याको न दे उसके साथ जो विवाद है उसे कहते हैं । कि जो वाग्दानके पीछे पतित आदि वरके न होनेपर भी जो कन्याको न दे उसको शास्त्रमें दण्ड कहा है । इसीप्रकार जो कन्याके अपस्मार (मिरगी) आदि रोगको बिना बताये कन्याकी सगाई करदे उसको दण्डके योग्य कहा है । इसीप्रकार आसुर आदि अधम विवाहोंमे जो ब्राह्मण भोजन करै तो यह व्यवस्था है कि, आसुर विवाहमें भोजन करनेवालेको एक रात्रि उपवास, गान्धर्वमें तीन राति, राक्षस और पैशाचमें चान्द्रायण प्रायश्चित्त करै । ऐसे विवाहके भेद समाप्त हुए ॥

अथ परिवेत्रादिनिर्णयविचारः ।

"दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते॥" स कनिष्ठः परिवेत्ता ज्येष्ठः परिवित्तिः एवं ज्येष्ठायामनूढायां कनिष्ठकन्योद्वाहे ज्येष्ठा कन्या दिधिषुः कनिष्ठाग्रेदिधिषुः ॥ अत्र प्रायश्चित्तम् ॥ अज्ञानतः पित्रादिदत्तोद्वाहे भ्रात्रोः परिवेतृपरिवित्तिसंज्ञयोः कृच्छ्रद्वयं कन्यायाः कृच्छ्रं दातुरतिकृच्छ्रं याजकस्य चांद्रायणम् ॥

ज्ञानतः पित्राद्यदत्तोद्वाहे सर्वेषां वत्सरं कृच्छ्राचरणं कामतः पित्रादिदत्तोद्वाहे त्रैमासिकम् ॥ अज्ञानेनादत्तोद्वाहे चांद्रायणादि ॥ दिधिष्वादिपतेरतिकृच्छ्रकृच्छ्रौ ॥ अत्रापवादः ॥ सापत्ने दत्तके वा ज्येष्ठे कनिष्ठस्य दाराग्निहोत्रग्रहणे दोषो न ॥ सोदरेपि क्लीबे मूकबधिरवामनभग्नपादत्वादिदोषयुते देशांतरस्थे वेश्यासक्ते पतिते महारोगिण्यतिवृद्धे कृषिसक्ते धनवृद्धिराजसेवादिव्यापारासक्ते चौर्यादिसक्ते उन्मत्ते विवाहाग्निहोत्रेच्छानिवृत्ते च ज्येष्ठे कनिष्ठस्य दाराग्निहोत्रग्रहणे दोषो न ॥ देशांतरगतं ज्येष्ठमष्टौ द्वादश वा वर्षाणि कनिष्ठः प्रतीक्षेत् ॥ एवं कन्याया अपि ज्येष्ठाया भिन्नमातृजत्वे कनिष्ठाया विवाहे दोषो न ॥ एवं मूकत्वादिदोषयुतायां ज्येष्ठायामूह्यम् ॥ इति परिवेत्रादिनिर्णयः ॥

अब परिवेत्ता आदिके निर्णयको कहते हैं । कि, जो जेठे भाईके होनेपर उससे पूर्व कनिष्ठ भाई विवाह और अग्निहोत्रको ग्रहण करता है सो वह कनिष्ठ (छोटाभाई) परिवेत्ता और जेठाभाई परिवित्ति कहाता है । इसीप्रकार जेठी कन्याके विना विवाहे छोटी कन्याका विवाह होजाय तो जेठी कन्या दिधिषू और छोटी कन्या अग्रेदिधिषू कहाती है । इसमें प्रायश्चित्तको कहते हैं कि, जो पिता आदिने अज्ञानसे विवाह कर दिया होय तो उन परिवेत्ता और परिवित्ति दोनों भाइयोंको दो कृच्छ्र व्रत करने । और उस दिधिषु आदि कन्याओंको एक कृच्छ्र व्रत है पिता आदि दाताको अतिकृच्छ्र और याजकको चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । और जो पिता आदिने नहीं किया हो किन्तु ज्ञानसे स्वयंही किया होय तो सबोंको एक वर्षतक कृच्छ्र व्रत करना । और जो जानकर पिता आदिने किया होय तो तीन मासतक कृच्छ्र व्रत और अज्ञानसे जो अदत्त विना कन्यादान विवाह हुआ होय तो चान्द्रायण आदि करना । और दिधिषूके पतिको कृच्छ्र और अग्रेदिधिषूके पतिको अतिकृच्छ्र व्रत करन चाहिये । इसमें अपवादको कहते हैं । कि, जो सौतेली माताका पुत्र वा पिताने जो दत्तक लिया हो उस ज्येष्ठ भाईके विद्यमान रहते कनिष्ठ भाई जो विवाह और अग्निहोत्रका ग्रहण करै तो दोष नहीं । तिसीप्रकार जो सहोदर भी जेठा भाई नपुंसक, गूंगा, बधिर, बिलंदिया, लँगडा आदि दोषोंसे संयुक्त देशान्तरमें हो, वेश्या आदिके वशीभूतहो, पतित हो, महारोगी, अत्यन्त वृद्ध, कृषि कर्ममें लगाहुआ, धनवृद्धि, राजसेवा आदिमें लगाहुआ हो, चोरीमें आसक्त, उन्मत्त हो वा जिसकी विवाह वा अग्निहोत्रमें इच्छा न हो तो कनिष्ठ भाई विवाह और अग्निहोत्रको ग्रहण करले तो दोष नहीं है । यदि अन्य किसी देशमें जेठा भाई होय तो कनिष्ठ भाई आठ वा बारह वर्षतक प्रतीक्षा करै । इसीप्रकार जो कन्या भी जेठी बहिनकी माताके उदरसे उत्पन्न न हुई होय तो कनिष्ठाके विवाहमें दोष नहीं । इसीप्रकार जेठे भाई मूक, बधिर आदि होंयँ तोभी विवाहमें दोष नहीं ॥ परिवेत्ता आदिका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ कन्यादातृक्रमः ।

पिता पितामहो भ्राता पितृकुलस्थः पितृव्यादिर्मातृकुलस्थो मातामहमातुलादिः सर्वाभावे जननी चेत्येवं पूर्वाभावे परः परः ॥ भ्रातॄणामुपनीतानामेवाधिकारः ॥ अनुपनीतभ्रातुर्मात्रादेश्च सत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न त्वनुपनीतभ्रातुः ॥

अब कन्याके दाताओंका क्रम कहते हैं। कि, पिता, पिता न होय तो बाबा, भाई, पिताके कुलके पितृव्य (चाचा) आदि, माताके कुलमें मातामह मामा आदि ये पूर्व पूर्वके न होनेमें कन्यादान करैं। और इनमेंसे जो कोई न होय तो माताही स्वयं कन्यादानको करै । इस कन्यादानमें जिनका जनेऊ हो लिया हो उन्ही भाइयोंको अधिकार है। और जिसका जनेऊ न हुआ हो ऐसा भाई और माता ये दोनों होंयँ तो कन्यादानका अधिकार माताको ही है भाईको नहीं। जो इन सबमें कोई न होय तो नांदीमुखश्राद्धका अधिकार कन्याके वरको होताहै ॥

सर्वाभावे कन्या वरश्च नांदीमुखाधिकारी।

सर्वाभावे कन्या स्वयं वरं वृणुयात् ॥ कन्यास्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नांदीश्राद्धं कार्यम् ॥ तत्र माता कन्या वा स्वयं प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वान्यद्ब्राह्मणद्वारा कारयेत् ॥ वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नांदीश्राद्धं कुर्यान्न माता ॥ उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात् ॥ द्वितीयादिविवाहे वरः स्वयमेव नांदीश्राद्धं कुर्यात् ॥

जो कोई न होय तो कन्या स्वयं वरको वरले। जो स्वयंवर होय तो कन्या और जो माता कन्यादान करै तो माता, स्वयं नांदीमुख श्राद्धको करैं। तहां माता वा कन्या प्रधान संकल्पको स्वयं करके अन्य समस्त कर्म ब्राह्मणके द्वारा करावै । और वर तो जो संस्कारी भाई आदि न हों तो स्वयं नांदीश्राद्धको करै। मातासे न करावै क्योंकि, उपनयनसे कर्मका अधिकार उसको सिद्ध है। और द्वितीय आदि विवाहमें वर स्वयंही नांदीश्राद्धको करै ॥

अथ परकीयकन्यादाने विशेषः।

"आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम् ॥ धर्मेण विधिना दानमसगोत्रेपि युज्यते ॥" इति दातृनिर्णये वरवध्वोरपि नांदीकर्तृत्वनिर्णयः ॥

अब जो दूसरेकी कन्याका दान करै उसमें विशेष कहते हैं । कि, सुवर्णके दानसे कन्याको अपनी करके असगोत्रीको भी उस कन्याका धर्मविधिसे दान उचित है। अब दाताके निर्णयके साथ वधू वरको नांदीमुखके करनेका निर्णय कह दिया ॥

अथ वधूवरयोर्मूलजातत्वादिगुणदोषनिर्णयः।

मूलनक्षत्राद्यपादत्रयजातौ वधूवरौ स्वस्वश्वशुरं नाशयतः ॥ आश्लेषांत्यपादत्रयजातौ श्वश्रूं ज्येष्ठांत्यपादजातावन्योन्यज्येष्ठभ्रातरम् ॥ विशाखांत्यपादजातावन्योन्यकनिष्ठभ्रातरम् ॥ मघाप्रथमपादे मूलवत्फलं केचिदाहुः ॥ केचिदुपनयनस्य द्वितीयजन्मरूपत्वात्तेन च द्वितीयजन्मना पूर्वजन्मसंभवमूलादिदोषस्य निरस्तत्वाद्वरस्य श्वशुरघातित्वादिदोषो नेत्यपवादं संकटे वदंति श्वशुराद्यभावे वध्वा अपि न दोषः॥ "नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नांत्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकामुद्वहेत्" इति ॥ वराय पुंस्त्वं परीक्ष्य कन्या देया ॥ "यस्याप्सु प्लवते बीजं ह्रादि मूत्रं च फेनिलम्" इत्यादि पुंस्त्वपरीक्षा ॥ "कुलं च शीलं च वपुर्व-

यश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च ॥ एतान्गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिंतनीयम् ॥'' ॥ इति वधूवरयोर्मूलजातत्वादिगुणदोषनिर्णयः ॥

अब वधू वर जो मूल आदि नक्षत्रमें उत्पन्न हुए हों उनका निर्णय दिखाते हैं । कि, जो वधू और वर मूलनक्षत्रके पहिले तीन पादोंमें उत्पन्न हुए होंयँ तो श्वश्रू और श्वसुर इन दोनोंको नष्ट करते हैं । आश्लेषाके अन्तके तीन पादोंमें उत्पन्न हुए होंयँ तो श्वश्रूको, ज्येष्ठाके पिछले पादमें उत्पन्न हुए होंयँ तो परस्पर जेठे भाईको, विशाखाके पिछले पादमें उत्पन्न हुए होंयँ तो परस्पर कनिष्ठ भाइयोंको नष्ट करते हैं । इसीप्रकार कोई मघाके प्रथमचरणमें उत्पन्न हुएका मूलके समान फल कहते हैं । और कोई कहते हैं कि, उपनयनसस्कार द्वितीयजन्मरूपी होता है इससे उस द्वितीय जन्मके होनेसे पूर्वजन्ममें मूल आदिसे जो दोष वह नष्ट होजाता है । तो फिर श्वशुर आदिके नष्ट करनेवाला दोष नहीं होता । जो श्वशुर आदि न होंयँ तो वधूकोभी दोष नहीं । वहां जो ऐसी हो कि, नक्षत्र, वृक्ष, नदी, चाण्डाल, पर्वत, पक्षी, सर्प और प्रेष्य (भृत्य) इनके नामपर जिसका नाम हो और भयंकर जिसका नामहो उसको न विवाहै । और वरमें पुरुषत्वकी परीक्षा करिके कन्याका दान करना । पुरुषत्वकी परीक्षा इसप्रकार करनी कि, जिसका वीर्य जलमें गेरनेसे डूब जाय और जिसके मूत्रमें झाग उठने लगें उसे समझना कि, यह पुरुष है नपुंसक नहीं । इत्यादि और तथा उसका कुल, स्वभाव, शरीर, अवस्था, विद्या, धन और उसके सहायीजन इन सातबातोंकी परीक्षा करके बुद्धिमान् जन कन्याको दे और शेष बातकी चिन्ता न करै । ये वधू वरको मूल आदिमें उत्पन्न होनेके गुण और दोष कह चुके ॥

अथ विवाहे मासादिनिर्णयः ।

''माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः ॥ मार्गशीर्षो मध्यमः स्यात्क्वचिदाषाढकार्त्तिकौ ॥'' अत्र मिथुनेर्के आषाढो वृश्चिके कार्त्तिकश्च देशाचारानुरोधेन ग्राह्यौ न सर्वदेशे ॥ एवं मकरस्थपौषो मेषस्थचैत्रोपि ॥

अब विवाह आदिमें मास आदिका निर्णय कहते हैं । कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ ये मास शुभ करनेवाले हैं । मार्गशिर मध्यम है कहीं आषाढ और कार्तिक भी ग्राह्य लिखे हैं । यहां मिथुनकी संक्रांति होय तो आषाढ और वृश्चिककी संक्रांति होय तो कार्त्तिक मास देशाचारके अनुरोधसे ग्रहण करने सब देशोंमें नहीं । इसीप्रकार मकरकी संक्रांतिमें पौष, मेषकी संक्रांति होय तो चैत्रभी समझना ॥

ज्येष्ठस्य ज्येष्ठमासि विचारः ।

ज्येष्ठयोर्वधूवरयोर्ज्येष्ठे मासि विवाहो न शुभः ॥ मासांतरे मध्यमः ॥ ''न ज्येष्ठयोर्विवाहः स्याज्ज्येष्ठे मासि विशेषतः ॥ द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्यैष्ठ्यं सुखावहम् ॥ ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम्'' इत्युक्तेः ॥ तथा च ज्येष्ठमासो ज्येष्ठगर्भस्य मंगले मध्यमः ॥ जन्ममासजन्मनक्षत्रादिकं ज्येष्ठापत्यस्य निषिद्धम् ॥ सार्वकालमेके विवाहमिति त्वासुराद्यधर्मविवाहविषयम् ॥

अब जो ज्येष्ठ हो उसको ज्येष्ठमासका विचार कहते हैं। कि, जो ज्येष्ठ वधू और ज्येष्ठ वर होयँ तो ज्येष्ठमासमें उनका विवाह शुभ नहीं होता। और अन्यमासमेंभी मध्यम है क्योंकि, यह लिखाहै कि, ज्येष्ठ वधू वरका ज्येष्ठमासमें विवाह शुभ नहीं। और यदि दो ज्येष्ठ होयँ तो मध्यम और एक ज्येष्ठ होय तो शुभ। परन्तु विवाहमें तीन ज्येष्ठ न होने चाहियें ये सबको सम्मत है तिसीप्रकार ज्येष्ठ भाईको ज्येष्ठमासमें मंगल मध्यम समझना। जो जेठीसन्तान हो उसको जन्ममास, जन्मनक्षत्र आदि निषिद्ध हैं। और कोई यह जो कहते हैं कि, सबकालमें विवाह शुभ है अर्थात् विशेषमास आदिकी अपेक्षा नहीं सो वह आसुर आदि अधर्म विवाहोंके विषयमें है॥

अथार्द्राप्रवेशविचारः।

मयूखे आर्द्रादिदशनक्षत्रेषु सूर्याधिष्ठितेषु विवाहमौंज्यादिकं वसिष्ठादिभिर्निषिद्धमित्युक्तम्॥ नैतत्कौस्तुभसिंध्वादिग्रंथे मार्तंडादिज्योतिर्ग्रंथेपीति बहवः शिष्टाः आर्द्रादिप्रवेशदोषं न मन्यंते॥

अब आर्द्राके प्रवेशका विचार कहते हैं। मयूखग्रंथमें लिखाहै कि, वसिष्ठ आदिकोंने कहा है कि, आर्द्रादि दश नक्षत्रोंपर सूर्य होय तो विवाह, उपनयन आदि कर्म शुभ नहीं होते। परन्तु यह लेख कौस्तुभ, सिन्धु आदि ग्रंथोंमें और मुहूर्तमार्तण्ड आदि ज्योतिषके ग्रंथोंमें नहीं मिलता। इससे बहुतसे शिष्टजन इस आर्द्राप्रवेशको नहीं मानते॥

अथ तिथिनक्षत्रादिविचारः।

अमावास्या निषिद्धा रिक्ताष्टमीषष्ठ्योल्पफलाः॥ अन्यास्तिथयो बहुफलाः॥ शुक्लपक्षः श्रेष्ठः कृष्णस्त्रयोदशीपर्यंतो मध्यमः॥ सोमबुधगुरुशुक्रवाराः शुभाः॥ अन्ये मध्यमाः॥ रोहिणीमृगमघास्तिस्र उत्तराहस्तस्वातीमूलानुराधारेवत्यः सर्वसंमतनक्षत्राणि॥ हरदत्तमते चित्राश्रवणधनिष्ठाश्विन्य इत्यधिकानि चत्वारि॥ तत्रापि खलग्रहयुतं नक्षत्रं वर्ज्यम्॥ चंद्रताराबलं कन्यावरयोरुभयोरपि॥ अन्यतरस्य चंद्रबलाभावे रजतादिदानं कार्यम्॥ "मेषः कन्या घटः सिंहो नक्रं युग्मं धनुर्वृषः॥ मीनः सिंहो धनुः कुंभोजादीनां घातचंद्रमाः॥ यात्रायां युद्धकार्येषु घातचंद्रं विवर्जयेत्॥ विवाहे सर्वमांगल्ये चौलादौ व्रतबंधने॥ घातचंद्रो नैव चिंत्यो यज्ञे सीमंतजातयोः॥ मृत्युयोगे पारिघार्धे भद्रायां पातवैधृतौ॥ विष्कंभादेर्दुष्टभागे तिथिवृद्धिक्षयेपि च॥ यामार्धकुलिकादौ च गंडांते रविसंक्रमे॥ केतूद्गमे भूमिकंपे विवाहाद्यं विवर्जयेत॥" ग्रहणे पादादिग्रासे त्रिचतुःषडष्टदिवसाः प्रागर्धिता वर्ज्याः॥ भूकंपे उल्कापाते च त्रिदिनं वज्रपाते चैकं दिनं वर्ज्यम्॥ यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत्॥ अस्यापवादः भूकंपादेर्न दोषोस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति दिवाविवाहः प्रशस्तः॥ रात्रावपि कन्यादानं हेमाद्यादिमते प्रशस्तं भवति॥

अब तिथि नक्षत्र आदिके विचारको कहते हैं । कि, इस विवाहमें अमावस्या निषिद्ध तिथि है । रिक्ता, अष्टमी, षष्ठी ये कुछ अल्पफलके देनेवाली हैं और इनसे अन्यतिथि बहुतसे फलके देनेवाली हैं शुक्लपक्ष श्रेष्ठ और कृष्णपक्षभी त्रयोदशीपर्यंत मध्यम है । सोम, बुध, गुरु, शुक्र ये वार शुभ और अन्य मध्यम हैं । रोहिणी, मृगशिर, मघा, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, मूल, अनुराधा और रेवती ये नक्षत्र सबको संमत हैं । परन्तु हरदत्तके मतमें चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, अश्विनी ये चार नक्षत्र अधिक माने हैं । इसमेंभी जो दुष्टग्रहसे युक्त नक्षत्र हो वह त्यागने योग्यहै । कन्या और वर इनको चंद्रमा और ताराका बल होना चाहिये । जो इनमें यदि कोईसेको चंद्र आदिका बल न होय तो रजत (चांदी) आदिका दान करना । मेष आदि राशिवालेको मेष १ कन्या २ कुंभ ३ सिंह ४ मकर ५ मिथुन ६ धनुः ७ वृष ८ मीन ९ सिंह १० धनुः ११ कुंभ १२ ये चंद्रमा घातक होते हैं । अर्थात् मेषराशिवाले को मेषका, वृषवालेको कन्याका, इत्यादि प्रकारसे समझना । ये चन्द्रमा, यात्रा युद्धकार्य इनमें वर्जने । और विवाह आदि समस्त मंगलकर्म, मुण्डन आदि उपनयन, यज्ञ, सीमन्त और जातकर्म इनमें घातक चन्द्रमा न विचारने । मृत्युयोग परिघका आधाभाग, भद्रा, पात, वैधृति और विष्कम्भ आदिकी दुष्टघडी, तिथिवृद्धि और तिथिक्षय, यामार्द्ध कुलिक आदि गडान्त सूर्यके सक्रमणका दिन, केतु तारेका निकलना, पृथिवीकम्प इनमें विवाह आदि शुभ कर्मोंको वर्जे दे । ग्रहणमें जो पाद (चतुर्थांश) ग्रास होय तो तीन दिन, अर्द्ध हो तो चार दिन, तीन हिस्से होय तो छः दिन और सब ग्रास होय तो आठ दिन वर्जे देने । भूकम्प, उल्का, (ताराविशेष) का पात होय तो तीन दिन, जो वज्र पडै तो एकदिन वर्जना । जबतक उस केतु तारेका उदय रहै तबतक समय अशुभ होता है । अब इस पूर्वोक्तका अपवाद है कि, भूकम्प आदि जो वृद्धिश्राद्धसे पीछे होय तो दोष नहीं । दिनमें विवाह उत्तम होताहै और रात्रिमें भी हेमाद्रि आदिके मतके अनुसार कन्याका दान उत्तम है ॥

अथ मुहूर्तविचारः तत्र लग्ने ग्रहबलम् ।

त्रि ३ षष्ठा ६ ऽष्ट ८ स्वर्कस्त्रि३ जल ४ धन २ गोब्जः क्षितिसुतस्त्रि ३ षष्ठ ६ स्थौ ज्ञेज्यौ व्ययनिधन १२ । ८ वर्ज्यौ भृगुसुतः ॥ द्वितीयाब्धिष्वंकाभ्रतनुषु २ ४ । ५। ९ । १० । १ रिपु ६ त्र्य ३ ष्ट ८ सु शनिस्तमःकेतुश्चाये ११भवति सुखहेतुश्च सकलः ॥ ''

अब लग्नमें ग्रहोंके बलको कहते हैं । कि, जो लग्नसे ३ । ६ । ८ इन स्थानोंपर सूर्य, ३ । ४ । २ इन स्थानापर चन्द्रमा, ३ । ६ स्थानोंपर मंगल, १२ । ८ स्थानोंको छोडकर अन्य स्थानोंपर बुध और बृहस्पति ये दोनों और २ । ४ । ५ । ९ । १० । १ इन स्थानोंपर शुक्र, ६ । ८ इन स्थानोंपर शनि और ११ स्थानपर राहु, केतु होंयँ तो सब सुखके देनेवाले हैं ॥

अथ लग्ने वर्ज्यग्रहाः ।

" रविर्लग्ने१चंद्रस्तनु १ रिपु ६ मृति ८ स्थः क्षितिसुतोष्टलग्नाभे ८। १ ।१० ज्ञेज्यौ निधन ८ उशनास्त्र्य ३ ष्ट ८ ।रिपु ६ ष ॥ शनिः शेषौ लग्ने १ तनुपति

रथार्य६ष्टम८गृहे विवाहे स्युः सर्वे मदनसदने ७ नैवशुभदाः ॥ शेषौ राहुकेतू ॥ अन्ये द्वादशगं १२ चंद्रं दृक्केशनवमांशपौ ॥ षष्ठाष्ट ६ । ८। गौ बुधं चाभ्रे १० वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ मेषान्नक्रातुलात्कर्कात्रिर्गण्या नवमांशकाः ॥ शस्ता वृषनृयुकूकर्ककन्यातुलधनुर्झषाः ॥ "

अब लग्नमें वर्जित ग्रहोंको दिखाते हैं। कि, लग्नमें सूर्य, १।६।८ में चंद्रमा, अष्ट ८।१। १० में मंगल, ८ में बुध और गुरु, ३। ८। ६ में शुक्र, और शनैश्चर, राहु, केतु, ये लग्नमें हों। तथा तनु(लग्न)का स्वामी ६। ८.में गृहमें हो, और जो कोई सातमें गृहमें ग्रह होय तो वर्जित है। और अन्य कोई मनीषी जन, बारहमें स्थानपर चंद्रमाको, और द्रेष्काण और नवमांशके स्वामी जो ६। ८ स्थानपर हों, तथा दशमें स्थानमें जो बुध होय तो उनको निषिद्ध कहते हैं। मेष, मकर, तुला, कर्क इनसे तीनबार गिननेसे मेष आदिका नवमांशा निकल आजाता है। उनमें वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धन और मीन इनका नवमांशा होय तो उत्तम है ॥

अथैकविंशतिमहादोषाः।

"दुःपंचांग्यष्टमोसृक् सविधुखलतनुः षण्मृतींदुः सितोरौ संक्रांतिर्गंडदोषः सखलभादिनजौ चक्रचक्रार्धपातौ ॥ रंध्रं लग्नं कुवर्गोस्तगखल उदयास्ताशुचिः क्रूरवेधः कर्तर्येकार्गलांत्रिग्रहणभकुलवौ दुःक्षणोत्पातभे च ॥ "

अब इक्कीस महादोषोंको कहतेहैं। दुःपंचाग अर्थात् दुष्ट-तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण ये पांच कार्यमें वर्जना १, लग्नसे आठवें स्थानमें मंगल होवे २, चंद्रमा और पापग्रहसे युक्त लग्न होवे ३, लग्नसे छठे और आठवें स्थानमें चंद्रमा होवे ४, लग्नसे छठे स्थानमें शुक्र होवे ५, संक्रांति अर्थात् सूर्य एक राशिको छोडकर दूसरी राशिपर गमन करे वह दिन ६, तथा लग्नगंडांत, तिथिगंडांत और नक्षत्रगंडांत ये होवें ७, पापग्रहसे युत नक्षत्र होवे ८, वारसे उत्पन्न हुए कुलिक और अर्धयाम आदि दोष ९, तथा वैधृतिव्यतीपातसंज्ञक चंद्रसूर्यका क्रांतिसाम्य लक्षण १०, जन्मराशि और जन्मलग्नसे आठवां लग्न ११, षड्वर्गोंके मध्यमें पापग्रह अधिक होवे १२, लग्नसे सातमें स्थानमें पापग्रह होवे १३, लग्न और नवांश अपने २ पतिसे युक्त अथवा दृष्ट होवें यह उदयशुद्धि और लग्नांशसे सातमां लग्न और नवांश अपने २ पतिसे युक्त वा दृष्ट होवें यह अस्तशुद्धि, ऐसी उदयास्तशुद्धि न होवे सो १४, पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र हो १५, चंद्रमासे अथवा लग्नसे २–१२ स्थानोंमें पापग्रह हो १६, विष्कंभ, अतिगंड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ, वैधृति, शूल और गंड ये नव दुष्टयोग दिनके नक्षत्रसे अभिजित् सहित गिनके विषम नक्षत्रपर सूर्य न होवे तब एकार्गलयोग होताहै उससे विद्धनक्षत्रचरण हो १७, जिसपर ग्रहण होवे वह नक्षत्र १८, अनुक्त नवांश होवे वह १९, दुष्टमुहूर्त होवे सो २०, और शुक्र और सोमवारको नवमां मुहूर्त, गुरुवारको १२ वां मुहूर्त, शनिवारको पहला मुहूर्त ये दिनमें होनेवाले और मंगलवारको सातमां ऐसे ये इक्कीस (२१) महादोष (दुष्टमुहूर्त) होते हैं ॥

अथ संकटे गोधूलम्।

"गोधूले पदजादिके शुभकरं पंचांगशुद्धौ रवेरर्धास्तात्परपूर्वतोर्धघटिकं तत्रे-

दुमष्टारिगम् ॥ सोग्रांगं कुजमष्टमं गुरुयमाह:पातमर्कक्रमं जह्यादित्रमुखेति संकट इदं सद्यौवनाद्ये क्वचित् ॥"

अब संकट होय तो गोधूलि लग्नको कहते हैं। शूद्रआदिकोंमें गोधूलि शुभहै। यदि पंचांगसे शुद्ध गोधूलि हो और सूर्यके अर्द्धास्तसे पर और पूर्व आधीघटी होतीहै उसमें छठे,आठमें चन्द्रमा न हो, छठेभवनमें क्रूरग्रह न हो, आठमें मंगल न हो और गुरु, शनि इनका पात सूर्यकी संक्रांति इन सबको गोधूलि लग्नमें त्यागदे। और ब्राह्मणआदि वर्णोंमें तो अत्यन्त संकटमें ही यह गोधूलि लग्न होताहै। और कहींकहीं भलीप्रकार यौवन अवस्थामेंही इसका मानना कहाहै ॥

अथ यथोक्तचंद्रताराद्यभावे दानानि ।

" चंद्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तंडुलांश्च ॥ धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं च देयम् ॥ " षड्वर्गशुद्ध्यादिविचारः कालसाधनादिप्रकारः कुलिकादिस्वरूपाणि च ज्योतिर्ग्रंथेभ्यो ज्ञातव्यानि विस्तरभयान्नेहोच्यंते ॥ इति मुहूर्तविचारसंक्षेपः ॥

अब जो यथोक्त तारा आदिका बल न होय तो दानोंको कहते हैं। कि, जो चन्द्रमा प्रतिकूल होय तो शंख और तारा होय तो लवण, तिथि प्रतिकूल होय तो तण्डुल, जो करण वा वार प्रतिकूल होयँ तो अन्न और जो योग प्रतिकूल होय तो सुवर्णका दान करना। षड्वर्ग (द्वादशांश-त्रिंशांश-आदि) की शुद्धि और समयलग्न आदिके शोधनेकी रीति और कुलिक आदिके स्वरूप ज्योतिषग्रंथोंसे समझने विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखे ॥ इसप्रकार संक्षेपसे मुहूर्तका विचार कह चुके ॥

अथ मंडपादिमुहूर्ताः ॥

मंडपनिर्माणाद्यंगजातमंगिनो विवाहादेरुक्तनक्षत्रादौ कार्यम् ॥" कंडनदलनयवारकमंडपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् ॥ तत्संबंधिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् " इत्युक्तेः ॥ यवारकं चिकसा इति भाषायाम् ॥ एवं हरिद्रादि ॥ अंगेषु चंद्रबलं नापेक्ष्यम् ॥ विवाहांगं विवाहात्प्राक् तृतीयषष्ठनवमदिनेषु न कार्यम् ॥ तत्र मंडपः षोडशद्वादशदशाष्टान्यतमसंख्यहस्तश्चतुर्द्वारः कार्यः ॥ मंडपे चतुर्वरकरां पंचवधूकरां वा वेदीं चतुरस्रां सोपानयुतां प्राक्प्रवणां रंभास्तंभादिभिः सर्वतः सुशोभितां गृहनिर्गमाद्वामभागे कुर्यात् ॥ अथ कन्याया जन्मकालीनग्रहादियोगसूचितवैधव्यपरिहारोपायः ॥ तत्र मूर्तिदानम् ॥ कन्या देशकालौ संकीर्त्य वैधव्यहरं श्रीविष्णुप्रतिमादानं करिष्ये इति संकल्प्य पलतदर्धतदर्धान्यतमप्रमाणहेमनिर्मितां विष्णुप्रतिमां चतुर्भुजां सायुधां वृतेनाचार्येणाग्न्युत्तारणादिपूर्वकं षोडशोपचारैः पूजयेत् ॥ वस्त्रार्पणकाले पीतवस्त्रे पुष्पार्पणकाले कुमुदोत्पलमालां च दद्यात् ॥ पूजांते कन्या देवं प्रणम्य मंत्रेण दद्यात ॥ "यन्मया प्राश्चि जनुषि घ्नंत्या पतिस-

मागमम् ॥ विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वापि विरक्तया ॥प्राप्यमाणं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम् ॥ वैधव्याद्यतिदुःखौघं तन्नाशय सुखाप्तये ॥ बहुसौभाग्यवृद्धयै च महाविष्णोरिमां तनुम् ॥ सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज'' इति ॥ ततो यथाशक्ति हेमदक्षिणां दत्त्वा अनघाद्याहमस्मीति त्रिर्वदेत ॥ एवमस्त्विति विप्रोऽपि त्रिः ॥ ततो विप्रभोजनम् ॥

अब कण्डन आदिके मुहूर्तोंको कहते हैं। कि, जितने मण्डपकी रचना आदि अंगरूप कर्म हैं वे सब विवाहादिरूप जो प्रधानरूप कर्म हैं उनके मुहूर्तमें करने। क्योंकि, यह वचन है कि, कण्डन (छडना), दलन (दलना), यवारक (जौ भिजोना), मण्डप, मृत्तिकाकी वेदी और वर्णका (मूर्ति काढना) आदि अखिल कर्म विवाहके नक्षत्रोंमें करने। यवारक भाषामें चिकसाको कहते हैं। इसीप्रकार हरिद्राआदिभी समझनी। इन अंगकर्मोंमें चन्द्रमाके बलकी अपेक्षा नहीं। विवाहके जो अंगकर्म हैं वे विवाहसे पूर्व तीसरे, छठे, नौमें दिन नहीं करने। तहां मण्डप सोलह, बारह वा आठ हस्तका ऐसा बनाना कि, जिससे चारों दरवाजे हों। और मण्डपके भीतर वधूके चार हाथ वा वरके चार हाथ जितनी मपीहुई, चौकोर, सीढियों सहित जो पूर्वकी; तरफको नीची हो; जिसके चारों तरफ केलाके खंभ गढे हों ऐसी अतिशोभायमान गृहके दरवाजेसे वामभागकी तरफ वेदीको बनावै। अब कन्याके जन्मकालके ग्रह आदिसे जो वैधव्ययोग प्रतीत होय तो उसके नष्ट करनेका उपाय दिखाते हैं। उसमें मूर्त्तिका दान करना, तिसमें कन्या 'अद्येत्यादि' रीतिसे देश और कालका उच्चारण करके मैं वैधव्यके नष्ट करनेवाली विष्णुकी प्रतिमाका दान करती हूं, ऐसा संकल्प करके पलभर, आधापल वा उससेभी आधापल कितनी सुवर्णसे बनीहुई, चार भुजाओंसे युक्त, शंख चक्रआदि आयुधोंसे युक्त, विष्णुकी प्रतिमाका आचार्यका वरण करके और उसको अग्निसे उत्तारण आदि करके आचार्यसे पूजन करावै। जिस समय वस्त्रके अर्पणका काल आवै उस समय दो पीले वस्त्र और जब पुष्पोंको चढाने हों तब कुमुदके पुष्पोंकी माला चढावै। फिर पूजाके अनन्तर कन्या उस देवताको प्रणाम इन मंत्रोंको उच्चारण करिके करे कि, जो मैंने पूर्वजन्ममें अपने पतिको त्याग दिया वा विरक्त होनेके लिये विष, उपविष वा शस्त्र आदिसे मारा इससे प्राप्त हुआ जो यश और सुखके नष्ट करनेवाला वैधव्य आदि अत्यन्त दुःख उसको नष्टकर और सुखको दो। मैं अत्यंत सौभाग्यके बढनेके लिये महाविष्णुकी इस सुवर्णकी बनाई प्रतिमाको आपको देतीहूं। हे द्विज! आप ग्रहण करो। फिर अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण देकर मैं आज पापसे रहित हूं ॥ इसप्रकार तीनवार कहै। फिर 'इसीप्रकार हो' ऐसे ब्राह्मणभी तीनवार कहैं। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥

अथ वैधव्यहरः कुंभविवाहः।

विवाहकर्ता पित्रादिः कन्यावैधव्यहरं कुंभविवाहं करिष्ये इति संकल्प्य नांदीश्राद्धं कृत्वा महीद्यौरित्यादिना कुंभस्थापनांते तत्र वरुणप्रतिमायां वरुणं संपूज्य तत्र कलशमध्ये विष्णुप्रतिमायां विष्णुं षोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत् ॥ ''वरुणांगस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय ॥ पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु॥

देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः" इति ॥ ततो विष्णुरूपिणे कुंभायेमां कन्यां श्रीरूपिणीं समर्पयामीति समर्प्य परित्वेत्यादिमंत्रैरधस्तादुपरि च कुंभं कन्यां च मन्त्रावृत्त्या परिवेष्ट्य ततः कुम्भं निःसार्य जलाशये प्रभज्य शुद्धजलेन समुद्रज्येष्ठेत्यादिमन्त्रैः पंचपल्लवैः कन्यामभिषिच्य विप्रान् भोजयेदिति ॥ इति कुम्भविवाहः ॥

अब वैधव्यके हरनेवाले कुंभके साथ जो विवाह उसे भी कहते हैं । कि, विवाहके कर्ता पिता आदि मैं कन्याके वैधव्य नष्टहोनेके लिये कुंभविवाहको करताहूं ऐसे संकल्प किये पीछे नांदीश्राद्धपर्यंत कर्मको करके 'मही द्यौः' इस मंत्रसे घटका स्थापन करके और उसके ऊपर वरुणकी प्रतिमामें वरुणका पूजन करके और कलशके भीतर विष्णुकी प्रतिमामें विष्णुका षोडशोपचारोंसे पूजन करके प्रार्थनाकरै कि, हे जलोंके टिकनेके स्थान कुंभ ! वरुणके शरीररूपी तुझको नमस्कार है और तुम कन्याके पतिको चिरकालतक स्थिर रक्खो । और पुत्र, पौत्र आदिके सुखको करो । हे विष्णो ! हे देव ! इस कन्याकी दुःखसे पालना आप करो । फिर विष्णुरूपी कुंभको इस कन्याको अर्पण करताहूं इसप्रकार अर्पण करके 'परित्वा०' इत्यादि मंत्रोंसे नीचे और ऊपर कन्या और घट दोनोंको तन्तुसे तीनबार लपेटकर और उस कुंभको निकालकर जलाशय (तलाबआदि) में डुबोकर और शुद्ध जल लेकर 'समुद्रज्येष्ठा०' इत्यादि मंत्रोंसे कन्याका अभिषेक करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥

अथ वरस्य मृतभार्यत्वपरिहारोपायः ।

तत्र परिवेत्तृत्वपापान्मृतभार्यत्वम् ॥ तत्पापपरिहाराय प्राजापत्यत्रयं चांद्रायणत्रयं कृत्वा असकृन्मृतभार्यत्वयोगे तदुभयत्रयमावृत्त्या कृत्वा मृतभार्यत्वनिरासनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमयुतसंख्यचर्वाज्यहोमं करिष्य इति संकल्प्याग्निस्थापनांतेऽन्वाधानम् ॥ दुर्गाग्निविष्णून् अष्टाधिकायुतसंख्याभिश्चर्वाज्याहुतिभि शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि ॥ प्रतिदैवतं तूष्णीं निरूप्य प्रोक्ष्य च त्यागकाले अष्टोत्तरायुतसंख्याहुतिपर्याप्तं चर्वाज्यद्रव्यं यथामन्त्रलिंगं दुर्गायै अग्नये विष्णवे च न ममेति त्यजेत् ॥ जातवेदसेत्यनुवाकस्य उपनिषद ऋषयः ॥ दुर्गाग्निविष्णवो देवताः ॥ त्रिष्टुप्छन्दः॥चर्वाज्यहोमे विनियोगः ॥ अनुवाकानुवृत्त्या प्रत्यृचं होमः॥ तत्र प्रथमं चतुरधिकपंचसहस्रसंख्यश्चरुहोमस्ततश्चतुरधिकपंचसहस्राज्यहोम इत्येवमयुतहोमः ॥ होमशेषं समाप्य दश विप्रान् भोजयेदिति ॥ अथ वा कस्यचिद्ब्राह्मणस्य विवाहं कुर्यात् ॥ अथ मृतपुत्रत्वदोषे ब्राह्मणोद्वाहनं हरिवंशश्रवणं महारुद्रजपश्चेति त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि वा शक्त्यपेक्षया कुर्यात् ॥ रुद्रजपदशांशेनाज्याक्तदूर्वाहोमः ॥ हरिवंशश्रवणविधिरन्येऽपि विधयो विस्तरेण प्रागुक्ताः ॥

अब जो वरकी स्त्रीके मरनेमें दोष है उसके दूर करनेका उपाय दिखातेहैं । उसमें जो पहिले जन्मे जेठे भाईके पहिले जिसने विवाह करलिया हो उस परिवित्तिपनेसे उसकी स्त्रीका रण होताहै । उस पापके दूरकरनेके लिये तीन प्राजापत्य और तीन चांद्रायणोंको करके

और जो कईबार स्त्रीके मरनेका योग होय तो उन व्रतोंको आवृत्तिसे कईबार करके संकल्प करै कि, मैं मृतभार्यत्व (भार्याका मरणपन) के नष्ट होनेद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये दशहजार (१००००) आहुतियोंसे चरुका होम करताहूं । फिर अग्निके स्थापनकिये पीछे अन्वाधान करै । अर्थात् दुर्गा, अग्नि, विष्णु इनको आठ अधिक दशहजार (१०००८) आहुति देकर शेष चरुसे स्विष्टकृत् होम इत्यादि कर्मको करै । प्रतिदेवताको तूष्णीं निरूपण करिके और प्रोक्षणकरके त्यागके समय दुर्गा, विष्णु और अग्निको आठ अधिक दशहजार आहुति कितने चरुद्रव्यको मंत्रोंके अनुसार "दुर्गायै, विष्णवे, अग्नये स्वाहा न मम" इसप्रकार कहकर त्यागदे नाम होम करै। फिर अनुवाककी आवृत्ति करकेप्रत्येक ऋचासे होम करै । उस अनुवाकके उपनिषद् ऋषि हैं । दुर्गा, अग्नि, विष्णु, ये देवता हैं । और त्रिष्टुप् छंद है। सो इनका उच्चारण करके उसका चरु आज्यसे जो होमहै उसमें विनियोग दे । तिसमें पहिले पांच हजार चार (५००४) आहुतिसे चरुका होम और पांचहजार चार (५००४) आहुतिसे घीका होम इस प्रकार दशहजार (१००००) आहुतिसे होम करै । फिर समस्त होमको समाप्त करके दश ब्राह्मणोंको भोजन करावै । अथवा किसी ब्राह्मणका विवाह करादे। और जो पुत्र होकर मरजातेहों तो ब्राह्मणका विवाह, हरिवंशकी कथा और महारुद्रका जप इन तीनोंको व्यस्त (जुदे २) वा सबोंको एकबार अपनी शक्तिके अनुसार करै । और रुद्र-जपके दशांशका घीमें भीगीहुई दूर्वासे होम करै । और हरिवंशके सुननेकी विधि और अन्य विधि विस्तारसे पूर्व कहआये ॥

अथ कन्यादानप्रशंसा ।

यथाशक्ति भूषणालंकृतकन्याप्रदाताश्वमेधयाजीभयेषु प्राणदाता चेति त्रयः समपुण्याः ॥ "श्रुत्वा कन्याप्रदातारं पितरः सपितामहाः ॥ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजंति ते ॥" इति कन्यादानप्रशंसा ॥

अब कन्यादानकी प्रशंसाको कहतेहैं । कि, जो अपनी शक्तिके अनुसार कन्याको भूषण पहिनाकर दान करनेवाला, अश्वमेधयज्ञका कर्ता और जो भयके होनेपर जीवदान दे ये तीनों समान फलके भागी होतेहैं । कन्याके दानको सुनकर पितामहसाहित सब पितर पापोंसे छूट-कर ब्रह्मलोकको जाते हैं । यह कन्यादानप्रशंसा है ॥

अथ कन्यागृहे भोजननिषेधः स्त्रिया सह च ।

" विष्णुं जामातरं मत्वा तस्य कोपं न कारयेत् ॥ अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे ॥" इति कन्यागृहे पित्रोर्भोजननिषेधः ॥ विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेपि न दोषः ॥ अन्यदा पत्न्या सह भोजने चांद्रायणं प्रायश्चित्तम् ॥

अब कन्याके घर और स्त्रीके साथ भोजन करनेका निषेध कहतेहैं । कि, जामाताको विष्णुस्वरूप मानकर उसपर क्रोध न करै और कन्या तथा उसकी सन्तति हो इनके घर भोजन यह कन्याके घर मातापिताके भोजनका निषेध कहा । जो यदि विवाह होय तो स्त्रीके साथ भोजनमेंभी दोष नहीं होता और अन्यकालमें करै तो चांद्रायण प्रायश्चित्त करै ॥

अथ वाग्दानादिविचारः ।

विवाहनक्षत्रादियुते सुदिने वरस्य पित्रादिः कन्यागृहं गत्वा कन्यापूजनं करिष्ये ॥ तदंगत्वेन गणपतिपूजनं वरुणपूजनं च करिष्य इति संकल्पयेत् ॥ कन्यापिता तु करिष्यमाणकन्यादानांगभूतं वाग्दानं करिष्ये तदंगगणपतिपूजनं वरुणपूजनं च करिष्य इति संकल्पयेत् ॥ अवशिष्टः प्रयोगोन्यत्र ज्ञेयः ॥

अब वाग्दान (सगाई) आदिके निर्णयको कहते हैं । विवाहनक्षत्रआदिसे युक्त अच्छे उत्तम दिन वरका पिता आदि कन्याके घर जाकर मैं कन्याके पूजनको करताहूं और उसके अंगरूप गणपतिका पूजन और वरुणके पूजनको करताहूं यह संकल्प करै । और कन्याका पिता मैं जो कन्यादान करूंगा उसके अंगरूप इस वाग्दान कर्मको और इसके अंगरूप गणपति वरुणके पूजनको करताहूं यह संकल्प करै । और अवशिष्ट विधि अन्यग्रंथमें समझनी ॥

अथ पुत्रविवाहे संकल्पादि ।

अथ विवाहदिने तत्पूर्वदिने वा वध्वा हरिद्रातैलादिना मंगलस्नानं कारयित्वा तच्छेषहरिद्रादिना वरस्य मंगलस्नानं कारणीयमित्याचारः ॥ एवं वरस्य पित्रादिः पत्न्या संस्कार्येण च सह कृताभ्यंगस्नानोऽहतवासाः प्राङ्मुख उपविश्य स्वदक्षिणे पत्नीं तद्दक्षिणे संस्कार्यमुपवेश्य देशकालौ संकीर्त्य ममास्य पुत्रस्य दैवपित्र्यऋणापाकरणहेतुधर्मप्रजोत्पादनसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विवाहाख्यं संस्कारकर्म करिष्ये ॥ तदंगत्वेन स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनं नांदीश्राद्धं नंदिन्यादि मण्डपदेवतास्थापनं च करिष्ये ॥ तदादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिपूजनं करिष्य इति पुत्रविवाहे संकल्पः ॥ कन्याविवाहे तु जातकर्मादिलोपे ममास्याः कन्यायाः जातकर्मनामकर्मसूर्यावलोकननिष्क्रमणोपवेशनान्नप्राशनचौलसंस्काराणां बुद्धिपूर्वकलोपजन्यप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमर्धकृच्छ्रं चूडायाः कृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतदानेनाहमाचरिष्ये ॥ गर्भाधानसीमंतयोर्लोपे तयोरप्यूहः ॥ ततो ममास्याः कन्याया भर्त्रा सह धर्मप्रजोत्पादनगृह्यपरिग्रहधर्माचरणेष्वधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विवाहाख्यं संस्कारं करिष्य इति विशेषः ॥ शेषं पूर्ववत ॥ भ्राता मम भ्रातुरिति भगिन्या इति वा ॥ पितृव्यादिः कर्ता मम भ्रातुः सुतस्य भ्रातृकन्याया इति वा संकल्पोहं कुर्यात् ॥ वरवध्वोः स्वयं कर्तृत्वे मम दैवपित्र्यऋणेत्यादि मम भर्त्रा सहेत्यादि च संकल्पः ॥ केचित्स्वस्तिवाचनकाले कन्यादानादिकाले वा प्रधानविवाहसंस्कारसंकल्पं न कुर्वंति स प्रमाद इति बहवः ॥ अन्ये तु कन्यादानविवाहहोमादिसंकल्प एव प्रधानसंकल्पस्तदतिरिक्तविवाहपदार्थाभावादित्याहुः ॥

अब पुत्रके विवाहमें जो संकल्प हैं उनको कहतेहैं कि, विवाहके दिन वा उससे पहिलेदिन वधूको, हरिद्रा और तैल आदि द्रव्यसे मंगलस्नान कराकर उससे शेष हरिद्राआदिसे वरका

मंगलस्नान करावै, सो यह प्रायः आचार देखाजाताहै । इसप्रकार वरके पिता आदि, पत्नी वा जिसका विवाह हो उस वरके साथ अभ्यंग और स्नान करके, जो फटे न हों ऐसे वस्त्रोंको धारणकर पूर्वाभिमुख बैठकर और अपने दक्षिणअंगमें स्त्री और उसके दक्षिणअंगमें वर वा कन्या होय तो कन्याको बैठाकर, देशकालका स्मरण करके संकल्प करै । कि, मैं दैव और पित्र्य ऋणके जो दूरकरनेवाली है ऐसी धर्म और प्रजाकी उत्पत्तिकी सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये इस अपने पुत्रके विवाहरूप कर्मको करताहूं । तथा उसके अंगरूप स्वस्तिवाचन मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध और नन्दिनी आदि मण्डप देवताओंको स्थापन करताहूं । और उसकी आदिमें विघ्नके अभावकी सिद्धिके लिये गणपतिके पूजनको करताहूं, ये संकल्प पुत्रके विवाहके हैं । जो कन्याका विवाह होय तो जातकर्म आदि कर्म न हुए होयँ तो इसप्रकार संकल्प करै कि, मेरी कन्याके जो जातकर्म्म, नामकर्म, सूर्यावलोकन, निष्क्रमण, उपवेशन, अन्न प्राशन, चूडा कर्म इन संस्कारोंका जो ज्ञानसे लोप किया उससे उत्पन्नहुए दोषोंकी शान्ति के लिये संस्कार २ के प्रति अर्द्धकृच्छ्र और चूडाके लिये एक कृच्छ्र, व्रतको उसके प्रत्याम्नायरूप गौके मूल्यरूपी यथाशक्ति द्रव्यसे करताहूं, जो गर्भाधान और सीमन्त कर्मोंका लोप होगया होय तो उनकाभी इसीप्रकार ऊह करना । फिर मेरी इस कन्याको पतिके साथ धर्म प्रजाकी उत्पत्ति, गृह्याग्निका परिग्रह और धर्मकार्योंका अनुष्ठान इनकी सिद्धिपूर्वक श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये विवाहरूप संस्कारको करता हूं । यह वरके संकल्पसे कन्याके संकल्पोंमें विशेष है । शेष पूर्वकी समान समझना । जो भाई कर्म कर्ता होय तो ' मम भ्रातुः ' वा कन्या होय तो ' भगिन्याः ' और जो चाचा आदि कर्मकर्ता होयँ तो ' मम भ्रातुः सुतस्य ' अथवा ' मम भ्रातृकन्यायाः ' ऐसा कहकर संकल्पका ऊह करै । जो वर और वधू आपही कर्ता होयँ तो वर; मेरे दैव, पित्र्य ऋणके परिहार, और कन्या होय तो, मेरे पतिके साथ इत्यादि कहकर संकल्पका ऊह (पलटना) करै । और कोई स्वस्तिवाचनके समय वा कन्यादान आदिके समय प्रधान जो विवाहसंस्कार है उसके संकल्पको नहीं करतेहैं । सो वह उनका प्रमाद है ऐसा बहुतसे कहतेहैं । और कोई तो कन्यादान, विवाहहोम आदिका जो संकल्प है वही प्रधानसंकल्प कहते हैं क्योंकि, कन्यादान, विवाहहोम इनके अतिरिक्त कोई विवाहपदार्थ नहीं ॥

अथ नांदीश्राद्धे देवताभेदन संकल्पाः।

मातृकापूजांते मृतपितृमातृमातामहो वरवध्वोः पिता स्वपित्राद्युद्देशकपार्वणत्रयुतं नांदीश्राद्धं कुर्यादित्यसंदिग्धम् ॥

अब नांदीश्राद्धके विषे देवताओंके भेदसे जो संकल्प हैं उनको कहतेहैं । जिसके माता, पिता और मातामह मृतहुए होयँ ऐसा जो वर अथवा कन्याका पिता विनसे अपने पिताआदि तीनोंके उद्देशसे तीन पार्वणोंसे युत नांदीश्राद्ध करना चाहिये, इसमें संदेह नहीं ॥

अथ जीवत्पित्रादीनां नांदीश्राद्धे ।

मातर्येव जीवंत्यां तत्पार्वणलोपः ॥ मातामहमात्रजीवने तत्पार्वणमात्रलोपः ॥ तथा चोभयत्र पार्वणद्वयेनैव नांदीश्राद्धसिद्धिः ॥मातृमातामहयोर्जीवने पितृपार्वणे-

नैव तत्सिद्धिः पितृप्रपितामहमृतौ पितामहजीवने च पितृप्रपितामहतत्पितॄनुद्दिश्यापि-तृपार्वणम्॥ तथाच पितृप्रपितामहतत्पितरो नांदीमुखा इदं वः पाद्यमित्यादिप्रयोगः ॥ प्रपितामहमात्रजीवने पितृपितामहतात्पितामहा इत्युद्देशः ॥ पितृमृतौ पितामहप्र-पितामहजीवने पितः पितामहस्य पितामहप्रपितामहौ च नांदीमुखा इत्युच्चारः ॥ एवं मातृमरणे पितामहीमात्रजीवने मातः पितुः पितामहीप्रपितामह्यौ च नांदीमुखा इत्युच्चारः॥ प्रपितामहीमात्रजीवने मातृपितामह्यौ पितुः प्रपितामही च नांदीमुखा इत्युच्चारः ॥ पितामहीप्रपितामह्योर्जीवने मातः पितामहस्य पितामहीप्रपितामह्यौ चेत्युच्चारः ॥ मुख्यमातृजीवने सापत्नमातृमरणेपि न मातृपार्वणम् ॥ एवं मुख्यपितामहीजीवने पितामह्याः सपत्नीमृतावपि तया सह न मातृपार्वणं किं तु पूर्वोक्त एवोच्चारः ॥ एवं प्रपितामहीसपत्नीविषयेपि ॥ एवं मुख्यमातामहीजीवने तत्सपत्न्यादिमरणेपि न मातामहादीनां सपत्नीकत्वेनोच्चारः किं तु केवलानामेव ॥ दर्शादौ मातृजीवने सापत्नमातुर्मृतौ केवलानामेव पित्रादीनामुद्देश इति सिद्धां-तात् ॥ अथ मातामहमृतौ मातुः पितामहजीवने मातामहतत्पितामहप्रपिताम-हा इत्युच्चारः ॥ मातुः प्रपितामहमात्रजीवने मातामहमातृपितामहौ मातामहस्य प्रपितामहश्च नांदीमुखा इत्युच्चारः ॥ द्वयोर्जीवने मातामहमातुः पिताम हस्य पितामहप्रपितामहौ च नांदीमुखा इत्युच्चारः ॥ अथ जीवत्पितृको मृतमातृमातामहश्च विवाहोपनयनजातकर्मादिषु पुत्रसंस्कारेषु मातृमातामहपार्व-णद्वयमेव कुर्यात् ॥ मातर्यपि जीवत्यां मातामहपार्वणमेव ॥ मातामहजीवने मातृमरणे जीवत्पितृकः सुतसंस्कारे मातृपार्वणमेव देवरहितं कुर्यात् ॥ त्रिष्वपि जीवत्सु सुतसंस्कारे पितुः पित्रादीनुद्दिश्य पार्वणत्रयं कुर्यात् ॥ त्रिष्वपि जीवत्सु सुतसंस्कारे नांदीश्राद्धलोप एवेति पक्षांतरं ग्रंथारंभे उक्तम् ॥ द्वितीयविवाहसमा-वर्तनाधानादिषु स्वसंस्कारेषु नांदीश्राद्धं कुर्वन् जीवत्पितृक पितुः पित्रादीनुद्दि-श्य पार्वणत्रयं कुर्यात् ॥ पितुर्मातृपितामहीप्रपितामह्यः पितुः पितृपितामहप्रपिताम-हाः पितुर्मातामहमातुः पितामहमातुः प्रपितामहा नांदीमुखा इति तत्रोच्चारः ॥ अत्र पितुर्मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोपः॥ मृतपितृकस्तु स्वपित्रादीनुद्दिश्येति त्वसंदिग्धम्॥ पितृपितामहयोर्जीवने पितामहस्य मात्रादिपार्वणत्रयोद्देशः॥ त्रयाणां जीवने पितृपार्व-णलोपः तत्र सुतसंस्कार इव स्वसंस्कारे मातृमातामहयोः पार्वणाभ्यामेव नांदीश्राद्ध-सिद्धिः ॥ पित्रादित्रयजीवने मातृमातामहयोश्च जीवने प्रपितामहस्य पित्रादिपार्वण-त्रयोद्देशेन नांदीश्राद्धम् ॥ एवं प्रथमविवाहेपि कर्त्रंतराभावात् ॥ वर एव नांदी-श्राद्धं कुर्वन् मृतपितृकः स्वपित्रादीनुद्दिश्य जीवत्पितृकस्तु पितुः पित्रादीनुद्दिश्य कुर्यात् ॥ जीवत्पितृपितामहस्तु पितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन ॥ प्रपितामह-स्यापि जीवने प्रपितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन वा पितृपार्वणलोपेन वा

नांदीश्राद्धम् ॥ अत्र सर्वत्र पितुः पितामहादेर्वा पित्रादिपार्वणोद्देशपक्षे स्वमातृमातामहयोर्मरणेपि न स्वमातृमातामहयोः पार्वणं किं तु पित्रादेर्मातृमातामहयोरेवेति ज्ञेयम् ॥ इति जीवत्पितृकनांदीश्राद्धप्रयोगः ॥

जो माताही जीतीहोय तो उसका पार्वण नहीं होता। जो मातामहकी माता न जीती होय तो उसके पार्वणमात्रका लोप होजाताहै। तिससे दोनों पक्षोंमें दोपार्वणोंसेही नान्दीमुखश्राद्धकी सिद्धि है। और जो माता और मातामह जीते होयँ तो केवल पिताके पार्वणसेही नान्दीमुखकी सिद्धि है। और जो पिता, प्रपितामह मृत्युगत होगये होयँ और पितामह जीता होय तो पिता, प्रपितामह और प्रपितामहका पिता इनके उद्देशसे पितृपार्वणको करै। और उसमें मैं पिता, प्रपितामह और उनके पितर जो नान्दीमुख हों सो तुम इस पाद्यको ग्रहण करो यह प्रयोग करना और जो प्रपितामह ही जीता होय तो पिता, पितामह और उनके पितामह इस पाद्यको ग्रहण करो, इसप्रकार प्रयोग दे। और जो पिता मरगया होय और पितामह, प्रपितामह जीते होयँ तो पिता और उसके पितामहके जो पितामह और प्रपितामह हैं उनका उच्चारण करना। इसीप्रकार माताके मरनेपर पितामही जीती होय तो माता, पिताकी पितामही और प्रपितामहीका उच्चारण करना। जो प्रपितामही मात्र जीतीहोय तो माता और पितामही और पिताकी प्रपितामही इनका उच्चारण करै। और जो पितामही प्रपितामही जीती होयँ तो माता, पितामहकी पितामही और प्रपितामहीका उच्चारण करै। जो मुख्य माता जीतीहो और सापत्न (सौतेली) माता मरगई होय तो माताका पार्वण न करै। इसीप्रकार मुख्य पितामही जीती होय तो उसकी सापत्नी (सौत) मरभीगई होय तो भी उसके साथ माताका पार्वण न करै। किन्तु पूर्वोक्तप्रकारसे उच्चारण करै। इसी प्रकार प्रपितामही जीती होय और उसकी सौत मरगयी होय तो उसके विषयमेंभी ऐसाही समझना। इसीप्रकार मुख्य मातामही जीती होय और उसकी सपत्नी मरगई होय तो भी मातामह आदिकोंको सपत्नीक ऐसा कहकर उच्चारण न करै। किन्तु केवल उनका नाममात्रसे करना। क्योंकि, दर्श आदिके श्राद्धमें माता जीतीहो और सपत्नमाता मरगई होय तो पिताआदिकोंकाही केवल उच्चारण करना, यह सिद्धान्त है। और जो मातामह (नाना) मरगया हो और माताका पितामह जीता होय तो मातामह और इसके बाबा, पडबाबा इस पाद्यआदिको ग्रहण करैं इत्यादिप्रकारसे उच्चारण करै। और जो माताका पडबाबा जीता होय तो मातामह और माताका बाबा और नानाका जो पडबाबा वे इस पाद्यको इसप्रकार उच्चारण करै। और जो दोनों जीते होयँ तो मातामह और माताका पितामह (बाबा) और नानाका प्रपितामह जो नान्दीमुख है इत्यादि प्रकारसे उच्चारण करै। और जिसका पिता जीताहो और माता नाना मरगयेहों वह अपने पुत्रके विवाह, उपनयन, जातकर्म आदि संस्कारोंमें माता और नाना इन दोनोंकाही पार्वण करै। और माताभी जीती होय तो केवल नानाकाही पार्वण करना। जो मातामह जीताहो और माता मरगई हो और पिताभी जीता हो वह पुत्रके संस्कारमें माताकाही पार्वण वहभी विश्वेदेवाओंसे रहित करै। और जो माता, मातामह और पिता ये तीनों जीवेहों तो पुत्रके संस्कारमें पिताके पिता, पितामह, प्रपितामह इनके उद्देशसे तीन पार्वण करै। और दूसरा पक्ष यह भी है कि, इन तीनोंके जीतेहुए पुत्रके संस्कारमें नान्दीश्राद्धका

लोप ही होजाताहै। अर्थात् नान्दीश्राद्ध नहीं करै यह ग्रन्थके आरम्भमें कहाहै। और जो द्वितीय-विवाह समावर्तन वा अग्न्याधान आदि अपनेही संस्कार होयँ तो जीवत्पितृक नान्दीश्राद्धको पिताके पिता आदि तीनके उद्देशसे करै। और वहां पिताकी माता, पितामही, प्रपितामही, पिता तथा पिताके पिता, पितामह, प्रपितामह तथा पिताके मातामह, माताके पितामह और प्रपितामह नांदीमुख इनका उच्चारण करै । यहां जो पिताकी माता आदि जीती होयँ तो उनके पार्वणका लोप होजाता है। और जिसका पिता मरगया होय तो वह अपने पितरोंके उद्देशसे करै । इसमें कुछ संदेहही नहीं । जो पिता, पितामह जीते होयँ तो पितामहकी माता आदि जो पूर्व कहीं उनका पार्वण करै। जो तीनों जीते होयँ तो पितृपार्वणका लोप होजाताहै। वहां पुत्रके संस्कारके समान अपने संस्कारमेंभी माता और मातामहके पार्वण-सेही नांदीमुखश्राद्ध करै। जो पिता आदि तीन और माता, मातामह जीते होयँ तो प्रपिता-महके पिता आदि तीन पार्वणके उद्देशसे नांदीमुखश्राद्ध करै। इसीप्रकार जो अन्य कोई कर्ता न होय तो प्रथम विवाहमेंभी करना। जो वरही नांदीश्राद्धको करै तो पिताके मरनेपर अपने पितर और जीता होय तो पिताके पितर आदिका पार्वण करै। और जिसके पिता पितामह जीतेहोयँ तो पिताके पिता आदि तीनके उद्देशसे करै। और जो प्रपितामह जीता होय तो प्रपितामहके पिता आदि तीनके उद्देशसे करना। अथवा पितृपार्वणका लोप होनेसे नांदीश्राद्ध न करै। यहां सब जगह पिता पितामह आदिके पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध करनेके पक्षमें जो यदि अपने माता,मातामह मरभीगये हों तोभी अपने माता मातामहका पार्वण नहीं किन्तु पिता आदिके माता मातामहके उद्देशसेही करना। ऐसा जीवत्पितृकके नांदीश्राद्धका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ पित्रन्यकर्तृकनांदीश्राद्धप्रयोगः ।

यदा तु कन्याविवाहं पुत्रस्योपनयनं प्रथमविवाहं च पितृव्यमातुलादिः करोति तदा संस्कार्यस्य मृतपितृकत्वे अस्य संस्कार्यस्य पितृपितामहप्रपितामहा इत्यादि प्रयोगं कुर्यात् ॥ सोदरभ्रातुर्नोच्चारे विशेषः भ्रातुः पित्रादीनां संस्कार्यपित्रादीनां चैक्यात् ॥ सापत्नभ्राता तु संस्कार्यस्य मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्याद्युच्चार-येत् ॥ संस्कार्यमातृजीवने तत्पार्वणलोपः ॥ संस्कार्यस्य जीवत्पितृकत्वे मातुला-दिः कर्ता संस्कार्यपितुः मातृपितामहीप्रपितामह्यः संस्कार्यपितुः पितृपितामहप्रपि-तामहा इत्याद्युच्चार्य तत्पितुः पित्रादिपार्वणत्रयं कुर्यात् ॥ संस्कार्यस्य पितृपिता-महयोर्जीवने मातुलादिः संस्कार्यस्य पितुर्मात्रादीन् मातामहादींश्चोद्दिश्य पार्वणद्वयं कुर्यात् ॥ पितुर्वर्गद्वयाद्यजीवने एकैकवर्गपार्वणम् ॥ पितुर्वर्गत्रयाद्यजीवने मातु-लादिः पितामहस्य मात्रादिपार्वणत्रयोद्देशं कुर्यात् ॥ पितामहस्य मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोपः पूर्ववत् ॥ पितृव्ये जीवत्पितृकसंस्कारकर्तरि नोच्चारे विशेषः ॥ संस्कार्यपितुः पित्रादीनां पितृव्यस्य पित्रादीनां चैक्यात् ॥ पितामहस्य संस्कर्तृत्वे संस्कार्यपितृमरणे संस्कार्यस्य पितः मम पितृपितामहौ च नांदीमुखाः संस्कार्यस्य मात्रादयो मातामहादयश्चेत्याद्युच्चारः ॥ संस्कार्यपितृजीवने पितामहः कर्ता स्व-

मातृपितृमातामहपार्वणानि ममेति पदरहितानि तत्सहितानि वोच्चारयेत् ॥ एव प्रपितामहे कर्तर्यपि योज्यम् ॥ दातुमशक्नुवता कन्यादानाधिकारिणा त्वं कन्यादानं कुर्विति प्रार्थितो यः परकीयकन्यां दातुमिच्छति यश्च सुवर्णेनात्मीयां कृत्वा अनाथां ज्ञात्वा वाऽन्यकन्यां दातुमिच्छति सोपि संस्कार्यायाः कन्यायाः पित्रादीनुच्चारयेत् ॥ तस्याः पितृजीवने तदीयमात्रादीन् तस्या वर्गत्रयाद्यजीवन पितुः पित्रादीनिति यथासम्भवमूह्यम् ॥ इति पित्रन्यकर्तृकनांदीश्राद्धप्रयोगः ॥

अब जो पितासे अन्य कोई नांदीश्राद्धको करै तो उसके विषयमें कहते हैं । यदि कन्याका विवाह वा पुत्रका यज्ञोपवीत तथा प्रथमविवाह इनको जो पितृव्य (चाचा) वा मातुल (मामा) आदि करना चाहैं तो जो उस वर वा कन्याके पिता मरगये होंयँ तो इस संस्कार्य (वर कन्या) के पिता, पितामह, प्रपितामह इत्यादि प्रकारसे श्राद्धमें उच्चारण करै । जो सहोदर (सगा) भाईही करै तो उसके उच्चारणमें विशेष (भेद) नहीं । क्योंकि, उस भाई और संस्कार्य्य (वर वा कन्या) के पितर एक हैं अर्थात् भिन्न भिन्न नहीं । और जो सापत्नमाताका पुत्र भाई होय तो वह इस संस्कार्यके माता, पितामही, प्रपितामही इत्यादि प्रकारसे उच्चारण करै । और जो संस्कार्य्यकी माता जीती होय तो उसके पार्वणका लोप समझना । जो संस्कार्य्यके पिताके जीते हुए मामा आदि कर्मकर्ता होंयँ तो वे इस संस्कार्य्यके पिताकी माता, पितामही, प्रपितामही तथा संस्कार्य्यके इसके पिताके पिता, पितामह, प्रपितामह इत्यादिप्रकारसे पार्वण,पितरोंका उच्चारण करके उसके पिता आदिके तीन पार्वणश्राद्धोंको करै । जो संस्कार्य्यके पिता पितामह जीते होंयँ तो मातुल आदि संस्कार्य्यके पिताआदि और मातुल आदिके उद्देशसे दो पार्वणोंको करै। जो पिताके दोनों वर्ग (पिता पितामह) आदि न जीते होंयँ तो एक २ वर्गका पार्वण करै । पिताके तीनों वर्ग जीवते होंयँ तो पितामहकी माता आदि तीनका पार्वण मातुल आदि करैं। पितामहकी माता आदि जीती होंयँ तो उसके पार्वणका लोप पूर्वकी समान समझना । जिसका पिता जीता होय और चाचा ही कर्मकर्ता होय तो उसके उच्चारणमें विशेष नहीं । क्योंकि, संस्कार्य्यके पिता आदि और पितृव्यके पिता आदि समानहैं । और यदि पितामह कर्मकर्ता होय तो संस्कार्य्यके पिताके मरनेपर संस्कार्य्यका पिता और मेरा पिता, पितामह ये नांदीमुख हैं । और संस्कार्य्यकी माता आदि और मातामह आदि नांदीमुख ये इस पाद्य आदिको ग्रहण करो इत्यादि प्रकारसे उच्चारण करै । और जो संस्कार्यके पिताके जीतेहुए पितामह कर्मकर्ता होय तो 'स्वमातृपितृमातामहपार्वणानि' इस प्रकार 'मम' इसपदके विना वा इससे सहित उच्चारण करै । इसी प्रकार प्रपितामहके विषयमेंभी समझना । और जिस मनुष्यको कन्यादानके अधिकारी पिताआदिने अपनी शक्तिको न देखकर तू कन्यादान करदे इसप्रकार प्रार्थना करके कन्या सौंपदी हो ऐसा जो मनुष्य पराई कन्याको देनेकी इच्छा करता है वह और जो सुवर्ण देकर कन्याको अपनी करके अथवा दूसरेकी कन्याको अनाथ जान अपनी करके देनेकी इच्छा करै वह पुरुषभी उस कन्याके पिता आदिका उच्चारण करै । और जो पिता जीता होय तो उसकी माता आदिका उच्चारण और जो उस कन्याके वर्गत्रय (पिता, माता, भ्राता आदि) न जीवते होंयँ तो पिताके पिता आदि तीनोंके उद्देशसे श्राद्ध आदि करै । इसीप्रकार यथा संभव ऊह करना ॥ यह पितासे अन्य कर्मकर्ताके होनेपर नांदीश्राद्धका निर्णय कहचुके ॥

अथ दत्तककर्तृत्वे व्यवस्था ।

दत्तकन्याया विवाहं कुर्वन्प्रतिग्रहीता पिता स्वपित्रादीनुद्दिश्यैव कुर्यात् ॥ दत्तकस्तु पुत्रो यदि अधिकार्यंतराभावाल्लब्धजनकपितृधनस्तदाजनक पित्रादीन् प्रतिग्रहीतृपित्रादींश्च पितरौ पितामहौ प्रपितामहौ च नांदीमुखा इत्येवमुच्चार्य श्राद्धं कुर्यात् ॥ एवं मातृपार्वणे मातामहपार्वणे च द्विवचनप्रयोग ऊह्यः ॥ यदि तु जनकधनग्रहणेधिकार्यंतरसत्त्वादलब्धजनकधनस्तदा प्रतिग्रहीतृपित्रादीनेवोद्दिश्य कुर्यात् न पितृद्वयोद्देशेन अत्र सर्वत्र संभ्रमेण क्वचित्क्वचित् मातृपार्वण पितृपार्वणयोः क्रमवैपरीत्यपातेपि स क्रमो न विवक्षितः ॥ सर्वत्र नांदीश्राद्धेषु पूर्वं मातृपार्वणं ततः पितुः पार्वणं ततो मातामहस्येति क्रमस्य निश्चितत्वात् ॥ बह्वृचकात्यायनैर्मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्यादिनानुलोम्येन पार्वणत्रयेप्युच्चारः॥ तैत्तिरीयादिभिस्तु प्रपितामहपितामहपितर इत्येवमादिना व्युत्क्रमेणोच्चारः कार्यः ॥ एकसंस्कार्यस्यानेकसंस्काराणां सहानुष्ठानेपि नांदीश्राद्धं सकृदेव एवं यमलयोर्द्वयोः पुत्रयोः कन्ययोर्वा विवाहोपनयनादिसंस्काराणां सहैवानुष्ठानेपि नांदीश्राद्धं सकृदेव ॥ यमलयोः संस्काराणामेकमंडपे एककाले एकेन कर्त्रा सह करणे दोषो नेत्युक्तम् ॥ नांदीश्राद्धे अन्नाभावे आममामाभावे हिरण्यं दद्यात्॥ हिरण्याभावे युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तान्ननिष्क्रयीभूतं यथाशक्ति किंचिद् द्रव्यं स्वाहा न ममेति वदेत् ॥ अन्यः सर्वोपि विशेषो गर्भाधानप्रकरणे विस्तरेणोक्तस्तत एवानुसंधेयः ॥ इति नांदीश्राद्धम् ॥ ततो मंडपदेवतास्थापनं ग्रहयज्ञश्च स्वस्तिवाचनात्पूर्वं नांदीश्राद्धोत्तरं वा कार्यः ॥

अब जो दत्तक पुत्र कर्ता होय तो उसकी व्यवस्थाको कहते हैं। जो दत्तककन्याका विवाह करै तो प्रतिग्रहीता (गोद्लनेवाला) पिता उसके विवाहमें नांदीमुखको अपने पिताआदिके उद्देशसे करै। और यदि दत्तकपुत्र अन्य अधिकारीके न होनेसे आपही अपने जनक (जिससे पैदा हुआ) पिताके धनको ग्रहण करै तो वह अपने जनकपिता आदि और जिसने दत्तक बनाया हो उस प्रतिग्रहीता पिता आदिके उद्देशसे दोनों पिता (जनक, प्रतिग्रहीता) दोनों पितामह, दोनों प्रपितामह नांदीमुखा इत्यादिप्रकारसे उच्चारण करके श्राद्ध करै। इसीप्रकार माताके पार्वण और मातामहके पार्वणमेंभी द्विवचनके (पितरों इत्यादि) प्रयोगका ऊह करै। और जो अपने जनक पिताके धनको अन्य कोई अधिकारी ग्रहण करले तो वह अपने प्रतिग्रहीता पिताआदिकेही उद्देशसे श्राद्ध करै । दोनों पिताओंके उद्देशसे नहीं यहां समस्त पूर्व कहेहुए विषयोंमें कहीं सम्भ्रम (भूल) से यदि मातृपार्वण और पितृपार्वणका क्रम विपरीत (उलटा पलटा) लिखभी गया हो तो वह विवक्षित नहीं। क्योंकि, समस्त नांदीश्राद्धोंमें पहिले माताका पार्वण और पीछे पिताका पार्वण और उससे पीछे मातामहका पार्वण करना यही सिद्धान्त है। यहां बह्वृच और कात्यायन शाखावालोंने माता, पितामही, प्रपितामही इसप्रकार तीनों पार्वणोंमें अनुलोम रीतिसे उच्चारण करना और तैत्तिरीय शाखा-

वालोंने प्रपितामह, पितामह, पिता इसप्रकार व्युत्क्रम (प्रतिलोम) से उच्चारण करना। इसीप्रकार जो संस्कार्य्यके संस्कार कितनेही (अनेक) साथ करने होयँ तो उनका नांदीमुख एकबारही करना, अनेकबार नहीं। इसीप्रकार जो यमल (जो एकसाथ दो पैदा होते हैं) दो पुत्र वा दो कन्याओंके विवाह उपनयन आदि संस्कारोंके एकसाथ होनेमें नान्दीश्राद्ध एकही बार करना। यमलोंके संस्कार एक मण्डप एक कालमें एकही कर्मकर्ता एकसाथ करै तौभी दोष नहीं होता यह पूर्व कहआये। नांदीश्राद्धमें अन्न न होय तो आमान्न और आमान्न न होय तो उसके प्रत्याम्नाय (मोल) रूप सुवर्ण दे। और जो सुवर्ण न होय तो जितने अन्नसे दो ब्राह्मण तृप्त होजायँ उतने अन्नके मूल्य यथाशक्ति किंचित् द्रव्यको लेकर 'स्वाहा न मम' इसप्रकार कहकर दान कर दे। अन्य समस्त विशेष विधि गर्भाधानप्रकरणमें विस्तारसे कह आये वह वहांसेही समझना॥ नान्दीमुखश्राद्धका निर्णय समाप्त हुआ॥ मण्डप देवताओंका स्थापन और ग्रहयज्ञ, स्वस्तिवाचनसे पूर्व वा नांदीमुखसे पीछे करना॥

अथ सीमंतपूजा।

अथ कन्यादाता वरगृह गतः करिष्यमाणकन्याविवाहांगत्वेन वरस्य सीमांतपूजां करिष्य इति संकल्प्य गणेशवरुणौ संपूज्य वरं पादप्रक्षालनवस्त्रगंधपुष्पनीराजनैः संपूज्य यथाचारं दुग्धादि प्राशयेत्॥ ततो वरो मंगलघोषैर्वाहनारूढो वधूगृहं गच्छेद्वरपिता वधूं वस्त्रादिना पूजयेदिति यथाचारम्॥

अब सीमन्तकी पूजाको कहते हैं। कन्याका दाता वरके घर जाकर मैं करिष्यमाणविवाहके पूर्वांगरूप वरकी सीमन्तपूजाको करता हूं। इसप्रकार संकल्प करके और गणेश, वरुणकी पूजा करके फिर वरके चरणोंका प्रक्षालन, वस्त्रदान, गन्ध, पुष्प और नीरांजन (आरती) को करके आचारके अनुसार दुग्ध आदिका प्राशन करावै। फिर वर मंगलके शब्दोंसे सहित पान सवारीमें बैठकर वधूके घर जाय और वरका पिता वधूको वस्त्र आदि दे। यह अपने आचारके अनुसार समझना॥

अथ गौरीहरपूजा।

लग्नदिने कन्यापिता कन्या वा अन्योन्यालिंगितगौरीहरयोः प्रतिमां सुवर्णरौप्यादिनिर्मितां कात्यायनीमहालक्ष्मीशचीभिः सह पूजयेत्॥ तत्र कोणचतुष्टयस्थापितकलशश्रेणीनां मध्ये उपलयुतदृषदि वस्त्रे वा तंडुलपूर्णे गौरीहरौ मंत्रेण पूजयेत्॥ तत्र "सिंहासनस्थां देवेशीं सर्वालंकारसंयुताम्॥ पीतांबरधरं देवं चंद्रार्धकृतशेखरम्॥ करेणाधः सुधापूर्णं कलशं दक्षिणेन तु॥ वरदं चाभयं वामेनाश्लिष्य च तनुप्रियाम्" इति ध्यानमंत्रः॥ "गौरीहर महेशान सर्वमंगलदायक॥ पूजां गृहाण देवेश सर्वदा मंगलं कुरु॥" इति पूजामंत्रः॥ "कन्यादेहप्रमाणेन सप्तविंशतितंतुभिः॥" कृतया वर्त्तिकया दीपं प्रज्वाल्य सुवासिनीर्ब्राह्मणान् भोजयेत्॥ इति गौरीहरपूजा॥

अब गौरी और महादेवजीकी पूजाको कहते हैं। लग्नके दिन कन्याका पिता वा कन्या जो परस्पर मिले हुएहों ऐसे महादेव और गौरीकी प्रतिमा जो सुवर्ण वा चांदीकी हो उसकी पूजा कात्यायनी, महालक्ष्मी और इन्द्राणी सहित करै। अर्थात् चार कोनोंके विषे स्थापन किये-हुए कलशोंकी श्रेणी (पंक्ति) के मध्यमें उपल (छोटा पत्थर) सहित दृषद् वा तण्डुलोंसे पूर्ण वस्त्रको रखकर उसमें गौरी और हरकी मंत्रसे पूजा करके ध्यान करै उसमें ध्यानका मंत्र यह है। सिंहासनपर बैठी हुई देवताओंकी ईश्वरी समस्त आभूषणोंसे अलंकृत श्रीगौरी-को नमस्कार है। और पीतवस्त्रको धारण किये हुए और जिसने मस्तकपर अर्द्धचन्द्रको धारण किया है और जिसने दक्षिण हाथमें अमृतसे पूर्णकलशको धारण किया है और वाम-हाथसे प्यारी श्रीगौरीके शरीरका आलिंगन किया है ऐसा वरके दाता श्रीअभयरूप महादेव-का ध्यान करताहूं। और पूजाका मंत्र यह है कि, हे महेशान! हे समस्तमंगलोंके दायक! गौरीसहित आप पूजाको ग्रहण करो और सर्वदा मंगल करो । इसप्रकार पूजाका मंत्र है। फिर अपने शरीरके प्रमाणका सत्ताईस (२७) लडके तन्तुओंसे बत्तीको कन्या बनाकर दीपक जोडै और सुहागिन ब्राह्मणी और ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ इस प्रकार गौरीहरकी पूजा समाप्त हुई ॥

अथ मधुपर्के विचारः ।

पंचविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रग्रंथिसंयुतो लंबाग्रो विष्टरः संपाद्यः॥ "वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखा गृहचोदिता ॥ मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेपि दातरि ॥" दधिमधुमिश्रं मधुपर्कः ॥ तत्र दध्यलाभे पयो जलं वा ॥ मध्वलाभे सर्पिर्गुडो वा प्रतिनिधिः ॥ गृहागतं स्नातकं वरं मधुपर्केणार्हयिष्य इति संकल्पः ॥ वरस्य द्वितीयोद्वाहे तु स्नातकमिति पदलोपः ॥ ततो यथागृह्यं मधुपर्कप्रयोगो ज्ञातव्यः॥ एवं गुरुः श्रेष्ठविप्रा राजा चेति गृहागताः ॥ यज्ञे वृता ऋत्विजश्च मधुपर्केण पूजनीयाः ॥ ऋत्विगादीनामपि अर्च्यशाखयैव मधुपर्को न तु दातृशाखया ॥ जयंतस्तु सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्क इत्याह ॥ अत्र गंधपुष्पधूपदीपपूजांते उपहारो माषविकारसहितो भोजनार्थं देयः ॥ एवं मधुपर्के तत्पूर्वं वा कृतभोजनायैव वरायोपोषितो दाता कन्यां दद्यात् ॥

अब मधुपर्कके विचारको कहते हैं । पंचविंशति (२५) दर्भोंका विष्टर ऐसा बनाना जिसकी अग्रग्रंथि वेणीकी समान हो और अग्रभागमें लम्बा हो अन्यशाखावालाभी दाता जो वरका शाखा हो उसीकी रीतिसे मधुपर्क दे । मधु (सहत वा मिष्ट)से मिले हुए दधिको मधुपर्क कहते हैं । यदि दही न होय तो दूध वा जलकोही ग्रहण करै । और जो मधु न मिलै तो सर्पिः (घृत) वा गुडको ग्रहण करै । गृहपर आयेहुए स्नातक वरको मैं मधुपर्कसे पूज-ताहूं इसप्रकार संकल्प करै । और जो स्नातकका दूसरा विवाह होय तो 'स्नातकम्' इसपदका उच्चारण नहीं करना । फिर अपने गृह्यसूत्रके अनुसार मधुपर्ककी विधि समझनी । इसीप्रकार गुरु, उत्तम ब्राह्मण और राजा ये घरपर आवें तो इनकी और यज्ञमें जिनका वरण हुआ हो ऐसे ऋत्विजोंकी मधुपर्कसे पूजा करनी । और ऋत्विजोंकोभी अर्च्य (जिसको दिया जाय) की

शाखासे मधुपर्क देना, दाताकी शाखासे नहीं । और जयन्तने तो सर्वत्र यजमानकी शाखासेही मधुपर्क देना कहा है । यहां गन्ध, पुष्प,धूप, दीप इनसे कीहुई पूजाके अन्तमें कुछ उडदोंका बनाहुआ भोजन (इमरती आदि) वरको देना । इसीप्रकार मधुपर्कके पीछे वा उससे पूर्व जिसने भोजन करलिया हो उस वरके लिये उपवास रहकर दाता कन्याको दे ॥

अथ लग्नघटीस्थापनम्।

दशपलमिततामघटितं षडंगुलोन्नतं द्वादशांगुलविस्तृतं घटीयन्त्रं कुर्यादिति सिंधुः ॥ "द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरंगुलैः ॥ स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम्" इति तु श्रीभागवते तृतीयस्कंधे उक्तम् ॥ अस्यार्थः ॥ अशीतिगुंजात्मकः कर्षः अस्यैव सुवर्णसंज्ञा ॥ कर्षचतुष्टयं पलम् ॥ तथा च षट्पलताम्रविरचितं पात्रं विंशतिगुंजोन्मितसुवर्णनिर्मितचतुरंगुलदीर्घशलाकया मूले कृतच्छिद्रं कुर्यात् ॥ तेन छिद्रेण यावत्प्रस्थपरिमितं जलं प्रविशति तेन च प्रस्थजलपूरणेन तत्पात्रं जले मग्नं भवति तत्पात्रं घटीकालप्रमाणम् ॥ तत्र प्रस्थमानं तु षोडशपलात्मकम् ॥ "पलं सुवर्णाश्चत्वारः कुडवः प्रस्थमाढकम् ॥ द्रोणं च खारिका चेति पूर्वपूर्वचतुर्गुणम्"इत्युक्तेः ॥ ग्रंथांतरे चतुर्मुष्टिः कुडवश्चत्वारः कुडवाः प्रस्थ इति ॥ केचित्षष्टिसंख्याकगुरुवर्णोच्चारे पलसंज्ञः कालः षष्टिपलकाला नाडिकेत्याहुः ॥ एवं प्रमाणीकृतं घटीयंत्रं सूर्यमंडलस्यार्धोदयेऽर्धास्ते वा जलपूर्णे ताम्रपात्रे मृत्पात्रे वा क्षिपेत् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "मुख्यं त्वमसि यंत्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ भवभावाय दंपत्योः कालसाधनकारणम्॥" अनेन मंत्रेण गणेशवरुणपूजनपूर्वकं घटीयंत्रं स्थापयेत् ॥ एवं स्थापिता घटी आग्नेययाम्यनैर्ऋतवायव्यदिग्गता न शुभा ॥ मध्यस्थितान्यदिग्गता च शुभा ॥ एवमाग्नेयादिपंचदिक्षु पूर्णा न शुभा ॥ इति घटिकाविचारः ॥

अब लग्नघटीके स्थापनकी विधिको दिखाते हैं।निर्णयसिन्धुमें लिखा है कि,दश पल ताँबेकी छह अंगुल ऊंची और बारह अंगुल चौडा घटीका यंत्र बनावै । और श्रीमद्भागवतके तृतीयस्कन्धमें कहा है कि, छह पल तांबेके पात्रमें चार मासे सुवर्णकी चार अंगुल लम्बी शलाकासे छिद्र करै । जितने कालमें उसमें एकप्रस्थ जल भरै और तबहीं जो जलमें डूब जाय तो उतने कालका घटीकाल होता है । इसका आशय यह है कि, अस्सी गुंजा (चौंटनी) ओंका एक कर्ष होता है । और इसीकी सुवर्ण संज्ञा है । और चार कर्षका एक पल होता है । इसप्रकार छह पल तांबेके बनेहुए पात्रमें बीस गुंजाओं प्रमाणके सुवर्णसे जो चार अंगुल लम्बी बनाई हो ऐसी शलाकासे छिद्र करै । उस छिद्रके द्वारा जितने कालमें उसमें एक प्रस्थभर जल भरके उस पात्रको जलमें डुबादे उतने कालको घटी कहते हैं । इससे वह पात्र घटीकालका प्रमाण है । तहां सोलह पलको एकप्रस्थ कहते हैं क्योंकि, चार सुवर्णका पल, चार पलोंका कुडव, चार कुडवोंका प्रस्थ, चार प्रस्थोंका आढक, चार आढकोंका द्रोण और चार द्रोणोंकी खारिका इस पहिले पहिलेसे चार गुणोंको पूर्वोक्त अगले २ को कहते हैं यह वचन

है। और ग्रंथान्तरोंमें यहभी लिखा है कि, चार मुट्ठीको कुडव और चार कुडवोंको प्रस्थ कहते हैं। और कोई तो साठ गुरु (दीर्घ) वर्णोंका उच्चारण जितने कालमें हो उतने कालको पल कहते हैं। और साठ पलकी एक घडी होती है। इसप्रकारके प्रमाणसे बनेहुए घटीयंत्रको सूर्यमण्डलके आधे उदय होनेपर वा आधा अस्त होनेपर जलसे भरेहुए मट्टीके वा तांबेके पात्रमें गेर दे। उसका मंत्र यह है कि, तू सब यंत्रोंमें मुख्य है, तुझको ब्रह्माने रचा है, स्त्रीपुरुषोंके सन्तति आदिकी सिद्धिके लिये तू मुख्यकालका साधन कर। इस मंत्रसे गणेश और वरुणके पूजनको करके घटीयंत्रका स्थापन करै। इसप्रकार स्थापन की हुई घटी जो आग्नेयी, दाक्षिण, नैर्ऋत, वायव्य इन दिशाओंमें डूबै तो शुभ नहीं। और जो अन्यदिशामें डूबै वा मध्यमें डूबै तो शुभ होती है। इसीप्रकार आग्नेयआदि पांच दिशाओंमें पूर्णहुई घटी शुभ नहीं॥ घटिकायंत्रका निर्णय समाप्त हुआ॥

अथांतःपटधारणविधिः।

अथ ज्योतिर्विदादिष्टे शुभकाले हस्तांतराले तंदुलराशी पूर्वापरौ कृत्वा पूर्वराशौ प्रत्यङ्मुखं वरमपरस्मिन्प्राङ्मुखीं कन्यामवस्थाप्य तयोर्मध्ये कुंकुमादिकृतस्वस्तिकांकितमंतःपटमुदग्दशं धारयेयुः॥ कन्यावरयोः पित्रादिर्ज्योतिर्विदं संपूज्य तद्दत्ताक्षताः फलयुताः कन्यावरयोरंजलौ दद्यात्॥ कन्यावरौ साक्षतहस्तौ स्वस्तिकालोकनपरौ अमुकदेवतायै नम इति स्वस्वकुलदेवतां ध्यायंतौ तिष्ठेताम्॥ ज्योतिर्विदा मंगलपद्याष्टकपाठांते स्वोक्तकाले "तदेवलग्नं" इति पठित्वा सुमुहूर्तमस्तु॥ ॐ प्रतिष्ठेत्युक्ते अंतःपटमुत्तरतोपसारयेयुः॥ ततः कन्यावरौ परस्परशिरसोरक्षतप्रक्षेपं परस्परेक्षणं च कुर्याताम्॥ वरो वध्वा भ्रूमध्ये दर्भाग्रेण ॐ भूर्भुवः स्वरिति परिमृज्य दर्भं निरस्यापः स्पृशेत्॥ वैदिकैः पठ्यमानब्राह्मणखण्डवाक्यांते कन्यापूर्वकं ताभ्यामक्षतारोपणं प्रतिवाक्यं कार्यम्॥

अब अन्तःपटके धारण करनेकी विधिको कहते हैं। अब ज्योतिषीके बताये हुए कालमें एक हाथके अन्तर (फासला) से दो चांवलोंकी राशि (ढेरी) बनावै उनमेंसे पहिली राशिके ऊपर पश्चिमको जिसका मुख हो ऐसे वरको और पूर्वाभिमुख करके कन्याको दूसरी राशिपर बैठावै। फिर उन दोनोंके मध्यमें रोलीसे स्वस्तिक (सथिया) को लिखकर अन्तःपटको ऐसा जानै कि, जिससे उसकी दशा (छोर) उत्तरदिशाको रहैं। फिर कन्या और वरका पिता ज्योतिर्विद्की पूजा करके उनके दियेहुए अक्षत और पूगीफलको कन्या और वरकी अंजलिमें धरै और उस समय कन्या और वर हाथमें अक्षतोंके उस स्वस्तिकको देखतेहुए और जो अपना कुलदेवता हो उसको नमस्कार करते हुए अपने अपने कुलदेवताका ध्यान करैं। जब ज्योतिषी मंगलाष्टकको पढ चुकै और 'तदेव लग्नं सुदिनन्तदेव०' ऐसे पढकर 'सुमुहूर्तमस्तु ॐप्रतिष्ठा' ऐसे कहै, तब उस अन्तःपटको उत्तरकी तरफसे खैंच ले। और वे कन्या और वर उन अक्षतोंको परस्पर शिरके ऊपर फेंकैं, और परस्पर अवलोकन करैं। और वर कन्याकी भ्रुकुटीके मध्यमें दर्भके अग्रभागसे परिमार्जन करके और उस दर्भको फेंककर जलका स्पर्श करै। और जब वेदपाठी ब्राह्मणखण्डके वाक्योंको पढैं, तब उसके अन्तमें उन दोनोंसे पहिले कन्या फिर वर इसरीतिसे अक्षतोंका वाक्य २ में आरोपण करावैं॥

अथ कन्यादानविधिः ।

ततः प्राङ्मुखं वरं प्रत्यङ्मुखीं कन्यां कृत्वा दाता दक्षिणे सपत्नीक उपविश्य वरदत्तालंकारादिरहितामहतवस्त्रां स्वदेयालंकारमात्रयुतां कनकयुक्तांजलिं वरपूजावशिष्टगंधलिप्तहस्तपादां कन्यामेवं दद्यात् ॥ कुशहस्तो देशकालौ संकीर्त्यामुकप्रवरामुकगोत्रोमुकशर्माहं मम समस्तपितॄणां निरतिशयानंदब्रह्मलोकावाप्त्यादिकन्यादानकल्पोक्तफलावाप्तये अनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसंतत्या द्वादशावरान्द्वादशपरान् पुरुषांश्च पवित्रीकर्तुमात्मनश्च श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये ब्राह्मविवाहविधिना कन्यादानं करिष्य इति कुशाक्षतजलेन संकल्प्योत्थाय कन्यां संप्रगृह्य ॥ "कन्यां कनकसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् ॥ दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥ विश्वंभरः सर्वभूतः साक्षिण्यः सर्वदेवताः ॥ इमां कन्यां प्रदास्यामि पितॄणां तारणाय च" इत्युक्त्वा कांस्यपात्रस्थकन्याञ्जलेरुपरि वरांजलिं निधाय दक्षिणस्थितपत्न्या संततां क्रियमाणां शुद्धोदकधारां सहिरण्ये वरहस्ते निक्षिपेत् ॥ कन्या तारयतु ॥ पुण्यं वर्धयतु ॥ शांतिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु ॥ पुण्याहं भवंतो ब्रुवन्तु ॥ इत्यादिवाक्यचतुष्टयांते अमुकप्रवरामुकगोत्रोमुकशर्माहं मम समस्तेत्यादिप्रीतये इत्यन्तमुक्त्वा ॥ अमुकप्रवरोपेतामुकगोत्रायामुकशर्मणः प्रपौत्रायामुकशर्मणः पौत्रायामुकशर्मणः पुत्रायामुकशर्मणे श्रीधररूपिणे वराय अमुकप्रवराममुकगोत्राममुकशर्मणः प्रपौत्रीम् अमुकशर्मणः पौत्रीममुकशर्मणः मम पुत्रीम् अमुकनाम्नीं कन्यां श्रीरूपिणीं प्रजापतिदैवत्यां प्रजोत्पादनार्थं तुभ्यमहं संप्रददे इति सहिरण्यहस्ते साक्षतजलं क्षिपेत् ॥ प्रजापतिः प्रीयतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवानिति वदेत् ॥ एवं त्रिवारं कन्या तारयत्वित्यादिना कन्यादानं कार्यम् ॥ वरः ॐ स्वस्तीत्युक्त्वा कन्यादक्षिणांसं स्पृष्ट्वा क इदं कस्मा अदात्० पृथिवी प्रतिगृह्णात्विति त्रिरुक्त्वा धर्मप्रजासिद्ध्यर्थं प्रतिगृह्णामीति वदेत् ॥ दाता "गौरीं कन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषिताम् ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥ कन्ये ममाग्रतो भूयाः कन्ये मे देवि पार्श्वयोः ॥ कन्ये मे पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम् ॥ मम वंशकुले जाता पालिता वत्सराष्टकम् ॥ तुभ्यं विप्र मया दत्ता पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥" धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या त्वयेयम् ॥ वरो नातिचरामीति ॥ दातोपविश्य कन्यादानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं इदं सुवर्णमग्निदैवत्यं दक्षिणात्वेन संप्रददे ॥ ॐ स्वस्तीति वरः ॥ ततो भोजनपात्रजलपात्रादिदानानि ॥

अब कन्यादानकी विधिको कहते हैं। कि, वरको पूर्वाभिमुख और कन्याको पश्चिमाभिमुख बैठाकर दाता अपनी स्त्रीको दक्षिणांग बैठाकर जो वरके दियेहुए आभूषणोंको न पहनरही हो, वस्त्र फटा न हो, आप जितने अलंकारोंको देना चाहता हो उतने पहिनरही हो

सुवर्णसे युक्त जिसकी अंजलि हो और वरकी पूजासे जो गन्ध अवशेष रहा हो उससे जिसके हाथ, चरण चर्चित हों, ऐसी कन्याको इसप्रकार दे कि, कुशाको हाथमें लेकर देश, कालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, अमुक प्रवर, अमुक गोत्रमें उत्पन्न हुआ अमुक शर्मा मैं अपने समस्त पितरोंको निरतिशय (सबसे अधिक) आनंद और ब्रह्मलोककी प्राप्ति आदि जो कन्यादानकल्पमें फल कहे हैं उनकी प्राप्तिके लिये और इस वरके द्वारा जो इस कन्यामें सन्तति उत्पन्न होगी उससे द्वादश तो पहिली और द्वादश पिछली पीढियोंको पवित्र करनेके लिये और अपनी पवित्रताके लिये श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रीतिके अथ म ब्राह्मविवाहविधिसे कन्यादानको करताहूं। इसप्रकार संकल्प करके उठकर कन्याको ग्रहण करके इसप्रकार कहकर कि, सुवर्णसे युक्त और सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त कन्याको ब्रह्मलोकको जीतनेके लिये विष्णुरूप तुम (वर) को देताहूं। इसमें विश्वंभर, संपूर्णभूत और सब देवता साक्षी हैं। इस कन्याको पितरोंके उद्धारके लिये देताहूं ऐसा कहकर कांस्यपात्रमें रक्खीहुई कन्याकी अंजलिके ऊपर वरकी अंजलिको रखकर दक्षिणकी तरफ स्थित जो पत्नी है वह निरन्तर जलकी धाराको सुवर्णसहित वरके हाथपर गेर और कन्या उद्धार करो १, पुण्यको बढावो २, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि प्राप्त हो ३, पुण्यदिन प्राप्त हो ४ ऐसा दाता आप कहै। इसप्रकार चार वाक्योंके अन्तमें अमुकप्रवर, अमुकगोत्र, अमुकशर्मा मैं 'समस्त'इससे लेकर और 'प्रीतये' यहां तक पूर्वोक्तसंकल्पको कहकर अमुकप्रवरसे युक्त, अमुकगोत्र, अमुकशर्माका प्रपौत्र, अमुकशर्माका पौत्र, अमुकशर्माका पुत्र,अमुकशर्मा श्रीधररूपी इस वरको अमुकप्रवरकी, अमुकगोत्रकी, अमुकशर्माकी प्रपौत्री, अमुकशर्माकी पौत्री और अमुकशर्मा अपनी पुत्री इस अमुकनाम्नी लक्ष्मीरूपी जिसका प्रजापति देवताहै ऐसी कन्याको प्रजाकी उत्पत्तिके लिये तुझको देताहूं इस प्रकार कहकर सुवर्णसहित वरके हाथपर अक्षतसहित जलको गेरदे और प्रजापति प्रसन्नहो और आपमेरी कन्याको ग्रहण करो ऐसे कहै। इसीप्रकार तीन बार कहकर 'कन्या तारयतु' इत्यादि वचनसे कन्या दान करै। फिर वर 'ॐस्वस्ति' ऐसा कहकर और कन्याके दक्षिण अंस (कंधा) को छूकर"क इदं कस्मा अदात्। पृथिवी प्रतिगृह्णातु" इसप्रकार तीन बार कहके मैं धर्म और प्रजाकी सिद्धिके लिये इस कन्याके प्रतिग्रहको लेता हूं यह कहै। और दाता यथाशक्ति भूषणोंसे अलंकृत इस गौरीरूप कन्याको अमुकगोत्र, अमुकशर्मा तुझको देताहूं हे विप्र! तू ग्रहण कर। हे कन्ये तू मेरे अगाडी हो, हे कन्ये देवि मेरे पार्श्वभागोंमें तू हो, हे कन्ये! मेरे पृष्ठभागमें तू हो तेरे दानसे मैं मोक्षको प्राप्तहूं। हे विप्र! यह मेरे कुलमें उत्पन्न हुई, आठवर्षतक इसकी पालना की, पुत्र पौत्रोंके बढानेवाली यह तुझको दान की। इससे धर्म, अर्थ संग्रह और कामके विषे आप इसका अवलंघन नहीं करना। फिर मैं अवलंघन नहीं करूंगा इसप्रकार वर कहै। दाता बैठकर कन्यादानप्रतिष्ठाकी सिद्धिके लिये अग्नि जिसका देवता है, ऐसे सुवर्णको दक्षिणारूपसे आपको देता हूं यह कहै। और वर 'ॐस्वस्ति' ऐसा कहकर ग्रहण करै। फिर भोजनपात्र तथा जलपात्र आदिका दान करै॥

अथ पितामहादिकर्तृत्वे कन्यादाने ऊहे विशेषः।

पितामहो दानकर्ता चेत्पौत्रीमित्यतः पूर्वं ममेति वदेत्॥ पुत्रीमित्यतः पूर्वं न वदेत्॥ भ्रात्रादिः पुरुषत्रयकीर्तनमेव कुर्यात्॥ क्वापि ममेति न वदेत्॥ प्रपिता-

महः प्रपौत्रीमित्यत्र ममेति वदेत् ॥ मातुलादिरन्यो वा दाता स्वगोत्रं स्वविशेषणत्वेनोक्त्वामुकशर्मणः समस्तपितॄणामिति कन्यापितृनामषष्ठ्यंतमुक्त्वा कन्याविशेषणत्वेन तद्गोत्रादि वदेत् ॥ 'मम वंशकुले जाता' इत्यत्र ममेति स्थाने कन्यापितृनाम वदेत् ॥ दत्तककन्यादाने 'मम वंशकुले दत्ता' इति ऊहः ॥

अब जो पितामह आदि कन्यादानके कर्ता होंयँ तो उनके संकल्पका ऊह दिखाते हैं । जो पितामह दान करै तो 'मम' इस शब्दको 'पौत्रीं' इस शब्दसे पहिले पढै 'पुत्रीं' इससे नहीं । और भाई आदि दान करै तो तीन पुरुषोंका कीर्तन करै । 'मम' इस शब्दको न कहै और जो प्रपितामह दान कर्ता होय तो 'प्रपौत्रीम्' इससे पूर्व 'मम' ऐसा कहै । और जो मातुल आदि वा अन्य कोई कर्मकर्ता होय तो अपने गोत्रको अपना विशेषण करके 'अमुकशर्मणः' इत्यादि प्रकारसे कन्याके पितरोंका षष्ठ्यंत शब्दसे उच्चारण करके उनके गोत्रादि उनके साथमें उच्चारण करै । और 'मम वंशकुले जाता' इस जगह 'मम' इस शब्दके स्थानमें पिताके नामको कहै । और जो दत्त (दी हुई) कन्याका दान करै तो 'मम वंशकुले दत्ता' इस-प्रकार ऊह करै ॥

अथ कन्यादानांगत्वेन गवादिदाने मंत्राः ।

"यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघौघनाशिनी ॥ विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा ॥" इति गोः ॥ "हिरण्यगर्भसंभूतं सौवर्णं चांगुलीयकम् ॥ सर्वप्रदं प्रयच्छामि प्रीणातु कमलापतिः ॥" इत्यंगुलीयकस्य ॥ "क्षीरोदमथने पूर्वमुद्धृतं कुंडलद्वयम् ॥ श्रियासह समुद्भूतं ददे श्रीः प्रीयतामिति" ॥ कुंडलयोः ॥ "कांचनं हस्तवलयं रूपकांतिसुखप्रदम् ॥ विभूषणं प्रदास्यामि विभूषयतु मे सदा" इति वलययोः ॥ "परापवादपैशून्यादभक्ष्यस्य च भक्षणात् ॥ उत्पन्नपापं दानेन ताम्रपात्रस्य नश्यतु ॥" इति ताम्रजलपात्रस्य ॥ "यानि पापानि काम्यानि काम्योत्थानि कृतानि च ॥ कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यंतु मे सदा ॥" इति भोजनार्थकांस्यपात्रस्य ॥ "अगम्यागमनं चैव परदाराभिमर्शनम् ॥ रौप्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यंतु मे सदा ॥" इति जलार्थस्य भोजनार्थस्य च रौप्यपात्रस्य ॥ "पूरितं पूगपूगेन नागवल्लीदलान्वितम् ॥ पूर्णेन चूर्णपात्रेण कर्पूरपिष्टकेन च ॥ सपूगखंडनं दिव्यं गंधर्वाप्सरसां प्रियम् ॥ ददे देवनिरातंकं त्वत्प्रसादात्कुरुष्व माम्" इति तांबूलस्य ॥ एवं दासीमहिषीगजाश्वभूमिस्वर्णपात्रपुस्तकशय्यागृहरजतवृषभानां दानमंत्राः कौस्तुभे द्रष्टव्याः ॥

अब कन्यादानके अंगरूप जो गौ आदिके दान हैं उनके मंत्रोंको कहते हैं । कि, जो यज्ञकी हवन आदिके सिद्ध करनेवाली और जो विश्वके पापोंको नष्ट करनेवाली है, इस गौके दानसे श्रीनारायण प्रसन्न हो यह गौका मंत्र है । हिरण्यगर्भसे उत्पन्न हुए सुवर्णको तथा उसके अंगुलीयक जो सब कामनाओंको देता है उसको मैं देता हूं । कमलापति-भगवान् प्रसन्न हो यह सुवर्णदानका तथा अंगूठी दानका मंत्रहै । जो क्षीरसागरके मथनेके

समय दो कुण्डल लक्ष्मीसहित उत्पन्न हुएथे उनको मैं देताहूं इससे श्रीलक्ष्मी प्रसन्न हो । यह कुण्डलोंके दानका मंत्रहै। रूपकी कान्तिके देनेवालेइस सुवर्णके कंकणको मैं देताहूं यह मुझको भूषित करो यह कंकणदानका मंत्र है । दूसरेकी निन्दा वा कुटिलता करनेसे वा अभक्ष्यके भक्षणसे जो पाप उत्पन्न हुआ है वह इस ताम्रपात्रके दानसे नष्ट हो यह ताम्रपात्र दानका मंत्र है । जो मैंने पाप जानकर वा प्रमादसे किये हैं वे कांस्यपात्रके देनेसे सदा नष्ट हों यह भोजनके लिये कांसीके पात्रका दान है । जो मैंने अगम्या (गमनके अयोग्य) स्त्रीका गमन वा पराई स्त्रीका स्पर्श किया है वह पाप, इस चांदीके पात्रके दानसे नष्ट हो यह जल वा भोजनके लिये चांदीके पात्रका दान है । जो सुपारीके चूर्णसे युक्त है और ताम्बूलके दलसे युक्त है और जो कपूरके पिष्टसे युक्त है ऐसे गंधर्व और अप्सराओंको जो प्रिय है उस ताम्बूलको आपको देता हूं अपने प्रसादसे मुझे निर्भय कीजिये यह ताम्बूलदानका मंत्र है । इसीप्रकार दासी, महिषी, गज, अश्व, भूमि, सुवर्णपात्र, पुस्तक, शय्या, गृह, चांदी और वृषभ इनके दान करनेके मंत्र कौस्तुभग्रंथमें समझने ॥

अथ ऋग्वेदीनामनुष्ठानक्रमः ।

अंतःपटधारणादिकन्यादानांतं केचिदग्निप्रतिष्ठापनोत्तरं कुर्वंति ॥ केचित्पूर्वांगहोमोत्तरं केचिदाज्यसंस्कारोत्तरमित्यनेके पक्षास्तत्र स्वस्वगृह्यानुसारेणाचारानुसारेण च व्यवस्था ॥ ततो वधूवराभिषेकः ॥ ततः कंकणबंधनम् ॥ अथाक्षतारोपणम् ॥ वधूवराभ्यामन्योन्यतिलककरणं मालाबंधनम् ॥ अष्टपुत्रीकंचुकीमांगल्यतंत्वादिदानम् ॥ गणेशपूजा ॥ लड्डुकबंधनम् ॥ उत्तरीयवस्त्रांतग्रंथिसंयोजनम् ॥ लक्ष्म्यादिपूजा ॥ इति कन्यादानानुक्रमः ॥ प्रायो बह्वृचानामन्येषां च यथागृह्यं ज्ञेयः ॥

अब ऋग्वेदियोंके अनुष्ठानका क्रम कहते हैं । कोई अन्तःपटके धारणसे कन्यादानतक कर्मको अग्निस्थापनके पीछे करते हैं । और कोई पूर्वांग (पहिले) होमके पीछे और कोई घृतसंस्कारके पीछे करते हैं । इत्यादि अनेक पक्ष हैं । इनकी व्यवस्था अपने २ गृह्यसूत्रके अनुसार वा आचारके अनुसार समझनी । फिर वधूवरका अभिषेक करै । फिर कंकणबांधै फिर अक्षतारोपण और फिर वधू वरके तिलक करै और वर वधूके तिलक करै । और माला बांधै अष्टपुत्री (पिटारी), कंचुकी (चोली) और मांगल्यतन्तु (सूत्रकलावा) आदिका दान करै । गणेशपूजा, लड्डुक (मोदक), बंधन, उत्तरीय वस्त्रोंकी ग्रंथि लगानी और लक्ष्मी आदिकी पूजा करै । यह कन्यादानका क्रम समाप्त हुआ । इन सबकी विधि तथा बह्वृच वा अन्यशाखावालोंकी विधि उन २ के गृह्यसूत्रके अनुसार समझनी ॥

अथ विवाहहोमः ।

वधूवरौ पूर्वोक्तलक्षणां वेदीं मंत्रघोषेणारुह्य वरः स्वासन उपविश्य वधूं दक्षिणत उपवेश्य देशकालौ संकीर्त्य प्रतिगृहीतायामस्यां वध्वां भार्यत्वसिद्ध्ये विवाहहोमं करिष्ये इति संकल्प्य यथागृह्यं विवाह होमंकुर्यात् ॥ एतदादि विवाहा-

ग्निं रक्षेत् ॥ रक्षितोग्निश्चतुर्थीकर्मपर्यंतं गृहप्रवेशनीयहोमात्पूर्वमनुगतश्चेद्विवाहहोमः पुनः कार्यः ॥ गृहप्रवेशनीयोत्तरमनुगते होमद्वयमपि पुनः कार्यम् ॥ केचित्तु द्वादशरात्रपर्यंतं वृत्युक्तायाश्चेत्याज्याहुतेः सार्वत्रिकत्वमाश्रित्यात्रापि अयाश्चेत्याहुतिमेवाहुः ॥

अब विवाहहोमको कहते हैं। कि वधू और वर पूर्वप्रकारसे कही हुई वेदीके विषे मंत्रोंके शब्दोंसहित आकर वहां वर अपने आसनपर बैठकर वधूको दक्षिणकी तरफ बैठावै । और देश, कालका कीर्तन करके स्वीकार कीहुई इस वधूमें भार्य्यत्वसिद्धिके लिये मैं विवाहहोमको करताहूं । इसप्रकार संकल्प करके अपने गृह्यसूत्रके अनुसार विवाह होमको करै । और इसी हवनसे लेकर विवाहकी अग्निकी रक्षा करै । जो रक्षा कीहुई अग्नि चतुर्थीकर्मपर्यन्त गृहप्रवेशनीयहोमसे पहिले अनुगत (नष्ट) होजाय तो विवाहहोम पुनः करना । और गृहप्रवेशनीयसे उत्तर अनुगत होजाय तो फिर दो होम करने । और कोई तो बारहरात्रितक जो 'अयाश्च' इस वृत्तिमें कहे मंत्रसे घीकी आहुति कही है उसको सार्वत्रिक मान करके यहांभी उसी 'अयाश्च' इस आहुतिको कहते हैं ॥

अथ गृहप्रवेशनीयहोमः ।

स च वध्वा सह स्वगृहं गतस्य विहितस्तथापि शिष्टाः श्वशुरगृहे एव कुर्वंति ॥ तत्रार्धरात्रोत्तरं विवाहहोमे परेद्युः प्रातस्तिथ्यादिसंकीर्त्य ममाग्नेर्गृह्याग्नित्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृहप्रवेशनीयाख्यं होमं करिष्य इति संकल्पः कार्यः ॥ अर्धरात्रात्पूर्वं विवाहहोमे तदैव होमोत्तरं पुनस्तिथ्यादि संकीर्त्य संकल्पपूर्वकं रात्रावपि गृहप्रवेशनीयहोमकरणे दोषो न ॥ यत्तु विवाहहोमगृहप्रवेशनीयहोमयोरेकतंत्रेणानुष्ठानं कुर्वंति तन्न युक्तम् ॥ विवाहाग्नेरेव गृहप्रवेशनीयहोमोत्तरं गृह्यत्वसिद्धिराश्वलायनतैत्तिरीयादीनां भवति ॥ तैत्तिरीयकात्यायनादीनां पुनराधाने प्रकारांतरमस्ति ॥ यदि रात्रौ षट्घटीमध्येग्न्युत्पत्तिस्तदा गृहप्रवेशनीयाभावेपि व्यतीपातादिसंभवेपि तदैवोपासनहोमारंभः ॥ तदुत्तरं चेत्परादिने सायमौपासनारम्भः ॥ स चेत्थम् ॥ सायंसंध्यामुपास्य विवाहाग्निं प्रज्वाल्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्यास्मिन्विवाहाग्नौ यथोक्तकाले श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यावज्जीवमुपासनं करिष्य इति संकल्प्य पुनर्देशकालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायंप्रातरौपासनहोमौ करिष्ये ॥ तत्रेदानीं सायमौपासनहोमं करिष्ये ॥ प्रातस्तु पूर्वसंकल्पितप्रातरौपासनहोमं करिष्य इति संकल्प्य होमः कार्यः ॥ अथ त्रिरात्रं वधूवरौ ब्रह्मचारिणावलंकुर्वाणावधःशायिनावक्षारालवणाशिनौ तिष्ठेताम् ॥

अब गृहप्रवेशनीय होमको कहते हैं । वह होम यद्यपि वधूके साथ वरको अपने घर करना कहा है, तथापि शिष्टजन श्वशुरके घरही करते हैं । तहां जो अर्द्धरात्रिसे पीछे विवाहहोम होय तो परलेदिन प्रातःकालके समय तिथि आदिका कीर्तन करके संकल्प करै कि, मैं अपनी गृह्याग्निकी सिद्धिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये गृहप्रवेशनीय होमको करताहूं । और

जा अर्द्धरात्रिसे पहिले विवाहहोम हुआ होय तो उसी कालमें होमसे पीछे पुनः तिथि आदिका कीर्तन करके संकल्प करनेपर रात्रिमेंभी गृहप्रवेशनीय होमके करनेमें दोष नहीं । और जो विवाहहोम और गृहप्रवेश होमको एकतन्त्रसे करते हैं सो ठीक नहीं; क्योंकि, आश्वलायन और तैत्तिरीय आदिकोंको गृह्यत्वकी सिद्धि विवाहाग्निसे गृहप्रवेशनीय होम कियेपीछे होतीहै । तैत्तिरीय और कात्यायन आदिकोंका पुनः आधान करनेमें दूसरा प्रकार है । यदि रात्रिमें छः घडीके मध्यमें जो अग्निकी उत्पत्ति होजाय तो उस कालमें गृहप्रवेशनीय होम न हो, तथा व्यतीपात न हो तोभी उपासन होमका आरंभ करना । और जो छह घडीसे पीछे होय तो दूसरे दिन सायंकालके समय उपासन अग्निमें होमको करै वह होमकी विधि इसप्रकार है कि, सायंकालके समय संध्याको करके और अग्निको प्रज्वलित करके और प्राणोंको रोककर देश कालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, मैं इस विवाहाग्निमें यथोक्तकालमें श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये अपने जीवनपर्य्यन्त उपासनको करूंगा । फिर इस संकल्पके पीछे देशकालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, मैं श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये सायंकाल और प्रातःकाल उपासन होमोंको करताहूं । और उसमें पूर्व सायंकालके औपासन होमको करताहूं, और प्रातःकाल तो मैं पूर्वसंकल्पित प्रातःकालके औपासन होमको करताहूं । इसप्रकार संकल्पकरके होम करना । फिर तीनराततक वधू और वर अलंकारोंको पहिनकर नीचे सोवें, खारीनौंनको न खायँ और ब्रह्मचारी रहैं ॥

अथ चतुर्थदिवसे ऐरिणीदानम् ।

तच्च वधूपितृभ्यामुपोषिताभ्यामुपोषितायै वरमात्रे कार्यम् ॥ वरमातू रजोदोषे तस्याः शुद्धिप्रतीक्षाकरणासम्भवे मनसा पात्रमुद्दिश्येति रीत्या तां मनसोद्दिश्यैरिणीदानम् ॥

अब चौथे दिन ऐरिणी (तैयल आदि) दानका निर्णय कहते हैं । वह दान वधूके माता पिता उपासे रहकर उपासी रहीहुई वरकी माताके लिये करैं । और जो वरकी माताके रजोदर्शन होजाय और उसकी शुद्धिकी प्रतीक्षाके कालका असंभव होय तो मनसे पात्रका उद्देश करके पूर्वोक्त रीतिसे मनसे वरकी माताके उद्देशसे उसका दान करै ॥

अथ विवाहोत्तरं मात्रादे रजोदोषविधिः ।

वधूवरमात्रोर्विवाहोत्तरं देवकोत्थापनात् प्राक् रजोदोषे पूर्वोक्तां शांतिं कृत्वा शुद्ध्यंते संकटे शुद्धेः प्रागपि देवकोत्थापनं कार्यम् ॥ मातुलादेः कर्त्रंतरस्य पत्न्या रजसि मौंजीप्रकरणे उक्तम् ॥

अब जो विवाहसे पीछे माताके रजोदर्शन होय तो उसका निर्णय कहतेहैं। वधू और वरकी माताको विवाहसे पीछे और देवोंके उत्थापनसे पूर्व रजोदर्शन होजाय तो पूर्व कही शान्तिको करके शुद्ध होती है । और जो संकट होय तो देवोंकी उत्थापन शुद्धिसे पूर्वभी करना । मातुल आदि जो अन्य कर्ता होयँ और उनकी स्त्रीके रजोदर्शन होजाय तो उसका निर्णय मौंजीबन्धनप्रकरणमें कहआये ॥

अथ विवाहोत्तरमाशौचे प्राप्ते ।

एवं विवाहोत्तरमाशौचपाते चतुर्थीकर्मपर्यंतं प्राप्तकर्मकरणे दातुर्वरस्य कन्यायाश्च नाशौचम् ॥ आशौचांते देवकोत्थापनम् ॥ असंभवे आशौचमध्य एव देवकोत्थापनं कृत्वा आशौचं कार्यम् ॥ विवाहात्पूर्वमाशौचरजोदोषयोस्तु प्रागुक्तम् ॥ चतुर्थीकर्महोमः कौस्तुभे उक्तः ॥ एनं केचित् ऋक्शाखिनो न कुर्वंति ॥

अब जो विवाहसे पीछे आशौच होजाय तो उसका निर्णय कहते हैं । विवाहसे पीछे आशौच होजाय तो चतुर्थीकर्मतक जो आवश्यक कर्म हैं उनके करनेमें दाता, वर और कन्याको आशौच नहीं होता । परन्तु देवतोंका उत्थापन आशौचसे पीछे करै । और जो संकट होय तो आशौचके मध्यमेंही देवतोंका उत्थापन करके आशौच करना (मानना) और जो विवाहसे पूर्व आशौच रजोदर्शन होजाय तो उनका निर्णय पूर्व कह आये । चतुर्थीकर्मका होम कौस्तुभग्रन्थमें कहा है । इस होमको कोई ऋक्शाखावाले नहीं करते ॥

अथ मण्डपोद्वासनादि ।

मण्डपोद्वासनदिननिर्णयो मंडपोद्वासनपर्यंतं कर्तव्याकर्तव्यनिर्णयश्चोपनयनप्रकरणे उक्तस्तत्रैव द्रष्टव्यः ॥

अब मंडपके उद्वासन (बनाना) आदिको कहते हैं । मण्डपके उद्वासन दिनका निर्णय और कर्तव्यको उपनयनप्रकरणमें पूर्व कहआयेहैं, वह वहांहीसे समझना ॥

अथ विवाहोत्तरं निषेधाः ।

" न स्नायादुत्सवेतीते मंगलं विनिवर्त्य च ॥ अनुव्रज्य सुहृद्बंधूनर्चयित्वेष्टदेवताम् ॥ स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्म प्रेतानुयानं कलशप्रदानम् ॥ अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मंगलतोऽब्दमेकम् ॥ मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारंभणेपि च ॥ जीर्णभांडादि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ॥ ऊर्ध्वं विवाहात्पुत्रस्य तथा च व्रतबंधनात् ॥ आत्मनो मुंडनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च ॥ मासमन्यत्र संस्कारे त्रिमासं चौलकर्मणि ॥ पिंडदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" अयं विवाहव्रतबंधचौलोत्तरं वर्षषण्मासत्रिमासेषु अन्यवृद्धिश्राद्धयुतमंगलोत्तरं च मासमेकं पिंडदानतिलतर्पणनिषेधस्त्रिपुरुषसपिंडानामेव ॥ एवं मुण्डननिषेधोपि 'व्रतोद्वाहौ तु मंगलम्' इति पक्षे मौंज्युत्तरं मुंडननिषेधः ॥ व्रतबंधस्य मुंडनरूपत्वपक्षे तु न निषेधः ॥ 'आत्मनो मुंडनम्' इति कर्मांगतया प्राप्तं रागप्राप्तं च मुंडनं निषिध्यते ॥ अत्रापवादः ॥ "गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेहनि ॥ आधाने सोमयागादौ दर्शादौ क्षौरमिष्यते॥ महालये गयाश्राद्धे पित्रोः प्रत्याब्दिके तथा ॥ सपिंड्यंते प्रेतकर्म श्राद्धषोडशकेष्वपि ॥ कृतोद्वाहादिकः कुर्यात् पिंडदानं च तर्पणम् ॥ केचिद्भ्रातृपितृव्यादेराब्दिकेप्येवमूचिरे ॥" एवं पिंडपितृयज्ञे अष्टका-

न्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेषु न पिंडदाननिषेधः ॥ दर्शश्राद्धं त्वपिंडकमेव तेन बह्वृचानां व्यतिषंगो न ॥ इति मंडपोद्वासनोत्तरं कार्याकार्यनिर्णयः ॥

अब विवाहसे पीछे जो निषेध हैं उनको कहते हैं । कि, उत्सवके बीतनेपर तथा मंगलकार्य्यको व्यतीत करके जो अपने मित्र, बान्धव हों उनका अनुगमन करके तथा इष्टदेवताको पूजनेके पीछे स्नान न करै । मंगलकार्य्य हुए पीछे एक वर्षतक सचैलस्नान, तिलोंका जिसमें उपयोग हो ऐसा कर्म, प्रेत (मुर्दा) के पीछे गमन, कलशदान, अपूर्व तीर्थ और अपूर्व देवताका दर्शन इन कार्य्योंको वर्जे दे । विवाह आदि मंगल तथा व्रत प्रारंभ किये पीछे छह मासतक जो जीर्ण (फूटजाय) भाण्ड हो तथा घरमें बुहारीलगाना इनको न त्यागै । पुत्रके विवाहसे पीछे वर्षदिनतक तथा पुत्रके व्रतबंधसे पीछे छह मासतक (कर्ताने) अपना मुण्डन नहीं करना।और अन्य संस्कारोंमें एकमासतक और चूडाकर्मसे पीछे तीन मासतक पिण्डदान, मट्टीसे स्नान और तिलोंसे तर्पण इनको वर्जदे।यह विवाह,व्रतबंध और चूडाकर्मसे पीछे वर्षदिन, छह मास, तीन मासतक तथा जिनमें नांदीश्राद्ध होताहै वे मंगलकर्म उनसे पीछे एकमासतक जो पिण्डदान और तिलतर्पणका निषेध कहाहै वह तीनपीढीतक सपिण्डोंके लियेहै। इसी प्रकार मुण्डनके निषेधमेंभी समझना । और जो व्रत और उद्वाहको मंगल कहते हैं यह पक्षहै तब तो मौंजीबन्धनसे पीछे मुण्डनका निषेध समझना । और जो व्रतबंध मुण्डनरूप है मंगलरूप नहीं यह पक्षहै तब तो निषेध नहीं 'आत्मनो मुण्डनम्' यहां उस मुण्डनका निषेध है कि, जो किसीकर्मके वशसे वा राग (प्रवृत्ति) से प्राप्त होताहो । अब इसके अपवादको कहते हैं । गंगा, भास्करक्षेत्र, माता और पिताका मरण दिन, आधान, सोमयोग आदि तथा अमावस्या आदि इनमें मुण्डन इष्ट है अर्थात् दोष नहीं । महालय, गयाश्राद्ध, माता पिताके प्रतिवार्षिक श्राद्ध सपिण्डीकरणके अन्तमें जो प्रेतकर्ममें षोडशश्राद्ध होते हैं उनमें विवाह हुएपीछेभी पिण्डदान और तर्पण करै । और कोई तो इसको भाई, पितृव्य (चाचा वा ताऊ) के प्रतिवार्षिक श्राद्धमें कहते हैं । इसीप्रकार पिण्डपितृयज्ञके विषे अष्टका अन्वष्टका और जो पूर्वेद्युःश्राद्ध हैं उनमें पिण्डदानका निषेध नहीं । दर्शश्राद्ध तो पिण्डसे रहितही करना । तिससे बह्वृचोंके यहां व्यतिषंग (तंत्र) नहीं है ॥ यह मण्डपोद्वासनके पीछे कार्य और अकार्यका निर्णय कहचुके ॥

अथ वधूप्रवेशः ।

विवाहात्षोडशदिनांतःसमदिनेषु पंचमसप्तमनवमादिनेषु च रात्रौ स्थिरलग्ने नूतनभिन्नगृहे वधूप्रवेशः शुभः ॥ प्रथमदिनेपि क्वचित् षष्ठदिने निषेधः प्रयोगरत्नोक्तो निर्मूलः ॥ षोडशदिनमध्ये पूर्वोक्तदिनेषु प्रवेशोक्तनक्षत्रतिथिवारगोचरस्थचंद्रबलाद्यभावेपि गुरुशुक्रास्तादावपि न दोषः ॥ "व्यतीपाते क्षयतिथौ ग्रहणे वैधृतौ तथा ॥ अमासंक्रांतिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेपि नाचरेत् ॥" प्रथमनववधूप्रवेशे विवाहार्थगमने च प्रतिशुक्रास्तादिदोषो नास्ति ॥ द्विरागमने एव संमुखशुक्रदोषः॥ षोडशदिनोत्तरं मासपर्यंतं विषमदिनेषु मासोत्तरं विषममासेषु वर्षोत्तरं विषमवर्षेष वधूप्रवेशः शुभः ॥ समेष्वेतेषु वैधव्यादिदोषः ॥ पंचमवर्षोत्तरं समविषमवि-

चारो नास्ति ॥ षोडशदिनोत्तरं वधूप्रवेशे नक्षत्राणि ॥ अश्विनीरोहिणीमृगपुष्यमघोत्तरात्रयहस्तचित्रास्वात्यनुराधामूलश्रवणधनिष्ठारेवत्यः शुभाः ॥ मासोत्तरं मार्गशीर्षमाघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभाः ॥ चतुर्थीनवमीचतुर्दशीपंचदशीभिन्नतिथयो रविभौमेतरवाराश्च शुभाः ॥ इति नववधूप्रवेशः ॥

अब वधूप्रवेशके निर्णयको कहतेहैं । विवाहसे सोलहदिनके मध्यमें जो समदिन हों (४ । ८ । ६ इत्यादि) अथवा पांचमें, सातमें, नवमें दिन रात्रिके समय और स्थिरलग्न इनमें नूतन जो नहो अर्थात् पुराणे घरमें वधूका प्रवेश शुभ होताहै । कहीं पहिलेदिनभी प्रवेश कहतेहैं । और छठे दिनमें प्रवेशका निषेध जो प्रयोगरत्नमें कहाहै वह निर्मूल है । सोलहदिनके मध्यमें जो पहिले दिन कहे हैं, उन दिनोंमें जो प्रवेशके मुहूर्तमें नक्षत्र, तिथि, वार और जो गोचरप्रकरणमें चंद्रमा आदिका बल कहाहै, वह न होय तथा गुरु और शुक्रका अस्त होय तोभी दोष नहीं । और जो व्यतीपात, क्षयतिथि, ग्रहण, वैधृति, अमावस्या, संक्रान्तिकाल तथा भद्रा आदि होयँ तो शास्त्रोक्त मुहूर्तमें तथा पूर्व कहेदिनोंमें भी प्रवेश न करै । प्रथम नवीन वधूका प्रवेश तथा विवाहके लिये गमन इनमें सम्मुख शुक्र अस्त आदिका दोष नहीं द्विरागमनमेंही सन्मुख शुक्रका दोषहै । सोलहदिनके पीछे मासतक विषम दिनों (१७ । १९ इत्यादि) में, और माससे पीछे विषम मासोंमें, वर्षसे पीछे विषमवर्षोंमें वधूप्रवेश शुभ है । क्योंकि, इन समदिनादि मासोंमें प्रवेश होय तो वैधव्य आदि दोष होताहै । पांचवर्षके वीतनेपर फिर सम, विषम आदिका विचार नहीं करना । सोलहदिनसे पीछे वधूप्रवेशके नक्षत्रोंको कहतेहैं । अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुष्य, मघा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती ये नक्षत्र शुभ हैं । और माससे पीछे मार्गशिर, माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ ये मास शुभ हैं । चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा इनसे भिन्न तिथि और रवि तथा मंगलसे भिन्न वार शुभ हैं ॥ नववधूप्रवेशका मुहूर्तका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ द्विरागमनम् ।

तत्र माघफाल्गुनवैशाखाः शुक्लपक्षश्च शुभाः ॥ अश्विनीरोहिणीपुनर्वसुपुष्योत्तरात्रयानुराधाज्येष्ठाहस्तस्वातीचित्राश्रवणशततारकानक्षत्रेषु चंद्रबुधगुरुशुक्रवारे गुरुशुक्रास्तादिरहिते स्थिरलग्नादिशुभकाले द्वितीयवधूप्रवेशः शुभः ॥

अब द्विरागमनका निर्णय कहते हैं । तिसमें माघ, फाल्गुन, वैशाख ये मास और शुक्लपक्ष शुभ हैं। अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, स्वाती, चित्रा, श्रवण, शतभिषा ये नक्षत्र;चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र ये वार; गुरु, शुक्रका अस्त न हो; स्थिरलग्न आदिशुभकाल ये द्विरागमनके वधूप्रवेशके विषे उत्तम हैं ॥

अथ द्विरागमे वर्ज्यानि ।

द्विरागमनेऽधिमासविष्णुशयनमासाः समवत्सराः प्रतिशुक्रादिदोषाश्च वर्ज्याः ॥ द्विरागमोपि यदि विवाहमारभ्य षोडशदिनमध्ये क्रियते तदा प्रतिशुक्रादिदोषोऽस्तादिदोषश्च नास्ति ॥ "द्विरागमे षोडशवासरांतरे एकादशाहे समवासरेषु ॥ न

चात्र ऋक्षं न तिथिर्न योगो न वारशुद्ध्यादि विचारणीयम् ॥" केवलांगिरसकेवलभृगुभरद्वाजवसिष्ठकश्यपात्रिवत्सगोत्राणां प्रतिशुक्रदोषो न ॥ रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकाद्यचरणेषु चंद्रे सति शुक्रस्यांधत्वात्प्रतिशुक्रदोषो न ॥ दुर्भिक्षे देशविप्लवे विवाहे तीर्थगमने एकनगरग्रामयोश्च प्रतिशुक्रदोषो न ॥ इति द्विरागमः ॥

अब द्विरागमनमें वर्जित कालको कहते हैं । द्विरागमनके विषे अधिकमास, विष्णुशयनके मास, समवर्ष, सन्मुखशुक्र, शुक्रास्त आदि वर्जित हैं । और जो द्विरागमनभी विवाहके दिनसे सोलहदिनके भीतर करना होय तो सन्मुख शुक्र तथा शुक्रास्तादिका दोष नहीं । द्विरागमनमें सोलहदिनके भीतर समदिन तथा विषमोंमें केवल ग्यारहमें दिनमें प्रवेश शुभ कहना इसमें नक्षत्र, तिथि,योग, वार आदिकी शुद्धिका विचार नहीं करना । केवलांगिरस, केवल भृगु, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, वत्स गोत्रवालोंको सन्मुखशुक्रका दोष नहीं । रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिकाके प्रथम चरणतक चन्द्रमा होय तो शुक्र अन्ध होताहै इससे उसमें सन्मुख शुक्रका दोष नहीं । दुर्भिक्ष, देशमें उपद्रव हो, विवाह, तीर्थागमन, एक नगर और एक ग्राम होय तो सम्मुख शुक्रका दोष नहीं ॥ द्विरागमनका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ वध्वाः प्रथमाब्दे निवासः ।

"उद्वाहात्प्रथमे शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिज्येष्ठकम् ॥ पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये तिष्ठंती पितरं निहंति न भयं तेषामभावे भवेत् ॥" इति वध्वाः प्रथमाब्दे निवासविचारः ॥

अब वधूके प्रथमवर्षमें निवासको कहते हैं । जो विवाहसे पीछे पहिले वर्षमें शुचि (आषाढमें) पतिके घर बसै तो वरकी माताको, जो क्षयमासमें वसै तो अपने शरीरको, ज्येष्ठमास होय तो पतिके जेठे भाईको, पौषमासमें श्वशुरको, मलिनमासमें पतिको और जो चैत्रमें अपने पिताके घर बसै तो पिताको नष्ट करतीहै । और जो ये मास न होंय तो दोष नहीं ॥ वधूका प्रथम वर्षमें वसनेका निर्णय कहचुके ॥

अथ पुनर्विवाहः ।

दुष्टलग्ने यथोक्तग्रहताराद्यभावेऽन्यत्रापि दुष्टयोगाद्यशुभकाले कूष्मांडीघृतहोमादियथोक्तविधिं विना सूतकादौ च विवाहे जाते तयोरेव दंपत्योः सुमुहूर्ते पुनर्विवाहः कर्तव्यः ॥

अब पुनर्विवाहको कहते हैं । दुष्टलग्न जो यथोक्त तारा ग्रह, आदि न हों तथा और जो दुष्टयोग आदि अशुभ काल हो जो कूष्माण्डीघृत आदिसे होम यथाविधि न हो तथा सूतक आदिमें जो विवाह हो तो उन वर कन्याओंका विवाह अच्छे मुहूर्तमें फिर दुबारा करना ॥

अथ पुनर्विवाहनिमित्तानि ।

"सुरापी व्याधिता धूर्ता वन्ध्यार्थघ्न्यप्रियंवदा ॥ स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा" ॥ अधिवेदनं भार्यांतरकरणम् ॥ "अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत ॥ मृतप्रजां पंचदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम् ॥" अत्राप्रियवादो व्यभिचारः ॥

प्रतिकूलभाषणरूपस्य तस्य प्रायः कलौ सार्वत्रिकत्वात् ॥ आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम् ॥ पत्नीं त्यक्त्वा भोगार्थमन्योद्वाही पूर्वभार्याय स्वधनस्य तृतीयांशं दद्यात् ॥ निर्द्धनश्चेत्तां पोषयेत् ॥ मनुः "अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात् ॥ सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥"

अब पुनर्विवाहके निमित्तोंको कहते हैं । जो स्त्री मदिरा पीती हो, रोगिणी हो, धूर्त हो, वन्ध्या, धनके नाश करनेवाली, कठोर बोलनेवाली, कन्याही जिसके पैदा हों और पतिके साथ द्वेष रखती होय तो पति दूसरा विवाह करले । अधिवेदन भार्यान्तर करना है जिसके सन्तान न होती हो, उसको दशमें वर्षमें, जिसके कन्याही होती हों, उसको बारहमें वर्षमें, जिसकी संतति होकर मरजाय, उसको पंद्रहमें वर्षमें और जो कठोरभाषिणी उसको उसी समय त्यागदे यहां अप्रियवाद शब्दसे व्यभिचारिणी स्त्री समझना । क्योंकि प्रतिकूल बोलनेवाली स्त्री प्रायः कलियुगमें सर्वत्र होती हैं । आज्ञा माननेवाली, चतुर, वीरसू, प्रियवादिनी स्त्रीको त्यागकर जो केवल भोगके लियेही दूसरा विवाह करै वह अपनी पहिली स्त्रीको तीसरा हिस्सा दे । और जो निर्द्धन होय तो उसकी पालना करै । इस विषयमें मनुने कहाहै कि जो अधिविन्ना (त्यागी हुई) स्त्री रूठकर घरसे निकलजावै तो उसको शीघ्रही रोककर रक्खै वा उसके कुटुम्बियोंके पास छोडदे ॥

अथाग्निशुश्रूषाधर्मादिचरणे ज्येष्ठकनिष्ठस्त्रीव्यवस्था ।

अग्निशुश्रूषादिधर्माचरणं ज्येष्ठया सह कार्यं न तु कनिष्ठया ॥ इदं ज्येष्ठाया आज्ञासंपादिनीत्वे ॥ यदि तु रोषादिशीलेन समनंतरोक्तमनुवाक्याज्ज्येष्ठा कुलसन्निधौ त्यागार्हा गृहांतरे निरोधार्हा वा तर्हि कनिष्ठयापि सह धर्मं चरेदन्यथाःधर्मभ्रंशापातात् ॥ "तथा वीरसुता या स्यादाज्ञासंपादिनी च या ॥ दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत्" इति माधवीये स्मृतेश्च ॥

अब अग्निकी शुश्रूषा आदि धर्मकार्यमें ज्येष्ठा और कनिष्ठा स्त्रीका विचार कहतेहैं । अग्निकी शुश्रूषा आदिधर्मको जेठी स्त्रीके साथ करै, कनिष्ठाके साथ न करै । यह बात जो जेठी स्त्री आज्ञाकारिणी हो उसके विषयमें है । और जो रोष (क्रोध) आदि शीलसे पूर्व कहे मनुके वचनानुसार कुलके समीप त्यागने योग्य वा निरोधके योग्य होय तो कनिष्ठा स्त्रीके साथभी धर्म करै, अन्यथा धर्मका भ्रंश होताहै । तथा जिसके वीर पुत्र होतेहों, जो आज्ञा कारिणी हो, चतुरा, प्रियवादिनी, निर्मल स्वभाववाली हो वह धर्ममें नियुक्तकरनी । यह माधवस्मृतिका वचन है ॥

अथ द्वितीयविवाहेऽग्निविचारः ।

द्वितीयविवाहहोमः पूर्वविवाहसम्बन्धिगृह्याग्नावेव कार्यः ॥ तदसंभवे लौकिकाग्नौ कार्यः ॥ लौकिकाग्नौ करणपक्षे द्वितीयविवाहहोमादिनोत्पन्नाग्नेर्गृह्याग्नित्वाद्द्वयोर्गृह्याग्न्योः संसर्गः कार्यः ॥

अब दूसरे विवाहमें अग्निका निर्णय करते हैं । दूसरे विवाहका होम पूर्वविवाहकी गृह्य अग्निमेंही करना । और जो वह अग्नि न होय तो लौकिक अग्निमेंही करना । जब लौकिक अग्निमें होम करना यह पक्ष है तब दूसरे विवाहके होम आदिसे जो अग्नि उत्पन्न हुई है वह गृह्य अग्नि है, सो उन दोनों गृह्य अग्नियोंका संसर्ग करना ॥

अथाग्निद्वयसंसर्गप्रयोगः ।

देशकालौ संकीर्त्य मम द्वाभ्यां भार्याभ्यां सह निष्पन्नगृह्याग्न्योस्ताभ्यां सहाधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं संसर्गं करिष्ये इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनं कृत्वोदगपवर्गस्थंडिले कृत्वा दक्षिणे स्थंडिले ज्येष्ठाया गृह्याग्निमुत्तरे कनिष्ठाया गृह्याग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रथमाग्नौ ज्येष्ठपत्न्यान्वारब्धोन्वाधानं कुर्यात् ॥ अग्निद्वयसंसर्गार्थं प्रथमाग्निहोमकर्मणि देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये ॥ चक्षुषी आज्येनेत्यंते अग्निं नवभिराज्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि 'अग्निमीळे' इति नवानां मधुच्छंदाग्निर्गायत्री ॥ अग्निद्वयसंसर्गार्थं प्रथमाग्नौ प्रधानाज्यहोमे वि० । 'अग्निमीळे' इत्यादिनवभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचं स्रुवेण नवाज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ अग्नय इदमिति सर्वत्र त्यागः ॥ होमशेषं समाप्य अयं ते योनिरिति मंत्रेण ज्येष्ठाग्निं समिधि समारोप्य प्रत्यवरोहेति मंत्रेण तं द्वितीयाग्नौ प्रत्यवरोह्य ध्यात्वा पत्नीद्वयान्वारब्धोन्वाधानं कुर्यात ॥ अग्निद्वयसंसर्गार्थं प्रथमसंसृष्टद्वितीयाग्नौ विहितहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये ॥ आज्यभागांते अग्निं प्रधानं षड्वारमाज्येन शेषेणत्यादि ॥ प्रोक्षणीं कुशान् दर्वीस्रुवौ प्रणीताज्यपात्रे इध्माबर्हिषीत्यष्टौ पात्राणि ॥ स्रुचि चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा पत्नीद्वयान्वारब्धो जुहुयात् ॥ अग्नावग्निरित्यस्य हिरण्यगर्भोग्निरष्टी ॥ अग्निद्वयसंसर्गार्थं संसृष्टाग्नौ प्रधानाज्यहोमे० ॥ ॐ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः ॥ तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन मा देवानां नो मुहद्भागधेयं स्वाहा ॥ अग्नय इदं ० ॥ एवमग्रेपि ॥ आज्यस्य स्रुचि चतुर्ग्रहणं विनियोगस्त्यागश्च ॥ अग्निनाग्निर्मेधातिथिः काण्वोग्निर्गायत्री ॥ अग्निद्वयसं ० ॥ अग्निनाग्निः समिध्यते ० ॥ अस्तीदमिति तिसृणां विश्वामित्रोग्निरनुष्टुप् अन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥ अस्तीदमधि ० ॥ अरण्यो० ॥ उत्तानायाम ० ॥ पाहिनो अग्न इत्यस्य भर्गः प्रगाथोग्निर्बृहती ॥ पाहिनो अग्न एकया ० ॥ भिर्वसो स्वाहा ॥ होमशेषं समाप्याहिताग्नये गोयुग्मं दत्त्वा विप्रान् भोजयेत् ॥ इत्यग्निद्वयसंसर्गप्रयोगः ॥ "पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः ॥ आदधीतान्यया सार्धमाधानविधिना गृही ॥" द्वितीयादिविवाहकालः "प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च ॥ विषमे परिवत्सरे शुभो युगले चापि मृतिप्रदो भवेत् ॥" संकटे महारुद्राभिषेकं मृत्युंजयमन्त्रजपं वा कृत्वा विवाहः कार्य इति भाति ॥ "तृतीया मानुषी कन्या नोद्वाह्या म्रियते हि सा ॥ विधवा वा भवेत्तस्मात्तृतीयेर्कं समुद्वहेत् ॥

अब दो अग्नियोंके संसर्गकी विधिको कहते हैं । देशकालका कीर्तन करके संकल्प करै कि, मुझे दोनों स्त्रियोंके साथ उत्पन्न हुई गृह्यअग्नियोंका संसर्ग उन दोनों स्त्रियोंके साथ अधिकारकी सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये करताहूं फिर स्वस्तिवाचन करै फिर दक्षिण और उत्तरको ढलेहुए दो स्थण्डिलोंको बनाकर दक्षिणके स्थण्डिलपर ज्येष्ठाकी गृह्यअग्निको और उत्तरकी स्थंडिलपर कनिष्ठाकी गृह्यअग्निका स्थापन करके प्रथम अग्निके विषे ज्येष्ठा स्त्रीसहित अन्वाधान करै । और संकल्प करै कि, अग्निद्वयके संसर्गके लिये प्रथम अग्निके होम कर्ममें देवताओंके परिग्रहके लिये अन्वाधानको करताहूं । 'चक्षुषी आज्येन' इन आहुतियोंके अन्तमें 'शेषेण' इत्यादि करके 'अग्निमीडे' इन नौ९ मंत्रोंका मधुच्छंदा अग्निऋषि और गायत्रीछंद है । दो अग्नियोंके संसर्गके लिये पहिली अग्निमें प्रधान आज्यके होममें इनका विनियोग करते हैं, अर्थात् ये वहां काममें आते हैं, 'अग्निमीडे' इत्यादि नौ ऋचाओंसे ऋचा २ के प्रति स्रुवेसे नौ घीकी आहुति दे । 'अग्नये इदम्' (यह स्वाहा अग्निके लिये है) यह सब आहुतियोंमें त्याग (दान) है । शेष होमको समाप्त करके 'अयं ते योनिः' । इस मन्त्रसे ज्येष्ठाग्निको समिधोंमें रखकर फिर 'प्रत्यवरोह' इसमंत्रसे उस अग्निको दूसरी अग्निमें रखकर ध्यान करके दोनों स्त्रियोंसहित अन्वाधानको करै । फिर संकल्प करै कि, दोनों अग्नियोंके संसर्गके लिये जो प्रथम अग्निसे संसृष्ट द्वितीय अग्नि है उसमें जो होम करना शास्त्रसे विहित है उसमें देवतापरिग्रहके लिये अन्वाधानको करताहूं । आज्यभागके अन्तमें प्रधान अग्निमें छः वार घीसे होम करके शेष घीसे यथोक्त होमको करै इसमें प्रोक्षणी, कुशा, दर्वी, (कलछी) स्रुव, प्रणीता, आज्यपात्र, इध्मा (इंधन), बर्हि २ ये आठ पात्र होते हैं । स्रुवेमें चार वार जो ग्रहण किया हो ऐसे आज्यको ग्रहण करिके दोनों स्त्रियोंसहित होम करै । 'अग्नौ अग्निः' इसमंत्रका हिरण्यगर्भ अग्नि ऋषि है । दो अग्नियोंके संसर्गके लिये जो संसृष्ट अग्निमें आज्यहोम किया जाता है उसमें इसका विनियोग करते हैं । फिर "अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऋषीणां पुत्रोऽधिराज एषः । तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन मां देवानां नो मुहुर्भागधेयं स्वाहा । इदमग्नये" इसप्रकार कहकर घीकी आहुति दे इसीप्रकार अगाडीभी समझना । आज्यका स्रुवेके विषे चार वार ग्रहण और त्याग समझना । 'अग्निनाग्निः' इन ऋचाओंका मेधातिथि काण्व अग्नि ऋषि है गायत्री छंद है । दोनों अग्नियोंके संसर्गके लिये जो आज्य होम उसमें विनियोग करते हैं 'अग्निनाग्निः' समिध्यते अस्तीदं इन तीन ऋचाओंका विश्वामित्र अग्नि ऋषि है अनुष्टुप् छंद है और अन्तकी तीन ऋचाओंका त्रिष्टुप् छन्द है । 'अस्तीदमधि०' अरण्यो उत्तानायाम० पाहिनो अग्ने, इसका भर्ग, प्रगाथ, अग्नि, ऋषि है।बृहती छन्दहै। आज्य होमके विषे विनियोग करते हैं।फिर 'पाहि नो अग्ने' इस एक ऋचासे 'वसो स्वाहा' ऐसा कहकर आहुति दे । फिर शेष होमको समाप्त करिके अग्निहोत्रीको दो गौओंको देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै । यह दो अग्नियोंके संसर्गकी विधि समाप्त हुई, यदि पत्नियोंके मध्यमें एक पत्नी मरगयी होय तो उस अग्निसे उसका दाह. करके पुनः आधान अन्यस्त्रीके संग गृहस्थ करै । दूसरे विवाहका समय यह है । कि, स्त्रीके मरणदिनसे लेकर वरके पुनः विवाहकी विधि विषमवर्षमें शुभ होतीहै, और युग्ममें मृत्युको देती है । आर संकटमें तो महारुद्राभिषेक और मृत्युंजय मन्त्र जप करके विवाह करै, यह हमें भासता है । तीसरी मानुषी कन्याको कदाचित् न विवाहै । वह मृत अथवा विधवा होगी तिससे तीसरे विवाहमें अर्कविवाहको करै ॥

अथार्कविवाहः ।

रविशन्योर्वारे हस्तर्क्षे वान्यत्र शुभदिने वा पुष्पफलयुतमर्कं गत्वा अर्ककन्यादातारमाचार्यं कृत्वा रक्तगंधादिभूषितो देशकालौ स्मृत्वा मम तृतीयमानुषीविवाहजन्यदोषपरिहारार्थं तृतीयमर्कविवाहं करिष्ये ॥ आचार्यं वृत्वा नांदीश्राद्धांतं कुर्यात् ॥ दाता मधुपर्कयज्ञोपवीतवस्त्रगंधमाल्यादिभिर्वरं पूजयेत् ॥ अर्कस्य पुरतः स्थित्वा ॥ "त्रिलोकवासिन् सप्ताश्व च्छायया सहितो रवे ॥ तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु" इति प्रार्थ्य छायायुतं रविमर्के ध्यात्वाब्लिंगैरभिषिच्य वस्त्रादिभिराकृष्णेनेति मन्त्रेण संपूज्य श्वेतवस्त्रेण सूत्रेण वा वेष्टय गुडौदनं निवेद्य ताबूलं दद्यात् ॥ "मम प्रीतिकरा येयं मया स्पृष्टा पुरातनी ॥ अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टाद्यास्मान्संप्रति रक्षतु" इत्यर्कं प्रदक्षिणीकृत्य ॥ "नमस्ते मंगले देवि नमः सवितुरात्मजे ॥ त्राहि मां कृपया देवि पत्नी त्वं म इहागता ॥ अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च ॥ वृक्षाणामधिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धन ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय" इति च प्रदक्षिणीकुर्यात् ॥ अन्तःपटधारणादिकन्यादानपर्यंतं विधिं कृत्वा कन्यादाता आदित्यस्य प्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीमर्कस्य काश्यपगोत्रामर्ककन्याममुकगोत्राय वराय तुभ्यं संप्रददे ॥ "अर्ककन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥" दक्षिणां दत्त्वा गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामेति मन्त्रेणार्कवरयोः कंकणं बद्ध्वार्कस्य चतुर्दिक्षु कुंभेषु विष्णुं नाममन्त्रेण षोडशोपचारैः संपूज्यार्कस्योत्तरेर्कपत्न्यान्वारब्धो वर अस्याः सम्यक् भार्यत्वासिद्ध्यर्थं पाणिग्रहहोमं करिष्ये ॥ आघारदेवते आज्येनेत्यंते बृहस्पतिमग्निम् अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्यद्रव्येण शेषेण स्विष्टकृतमाघारांतं कृत्वा ॥ संगोभिरित्यस्यांगिरसो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् ॥ आज्यहोमे विनियोगः ॥ संगोभिरांगिरसो० ॥ बृहस्पतय इदं ० ॥ यस्मै त्वेति वामदेवोग्निस्त्रिष्टुप् ॥ यस्मै त्वाकामकामाय वयं सम्राड्यजामहे ॥ तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा ॥ अग्नय इदं ० ॥ ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा होमशेषं समाप्य ॥ "मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ॥ अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षंतुमर्हसि" इति प्रार्थ्य शांतिसूक्तपाठांते गोयुग्ममाचार्याय दत्त्वा स्वधृतवस्त्राणि गुरवे दत्त्वान्यानि धारयेत् ॥ दश त्रयो वा विप्रा भोज्याः ॥ इत्यर्कविवाहः ॥

अब अर्कविवाहको कहते हैं । रविवार और शनिवारको हस्तनक्षत्रमें वा अन्य शुभदिनमें पुष्पफलसहित जो अर्क उसके समीप जाकर अर्ककन्याके दाता आचार्यका वरण करिके रक्त गंध आदिसे भूषित यजमान देश कालका स्मरण करिके मेरे तीसरी मानुषी कन्यासे उत्पन्न हुए दोषकी निवृत्तिके लिये मैं तीसरा अर्कविवाह करता हूं । आचार्यका वरण करिके नांदीमुख श्राद्धपर्यन्त कर्मको करै । दाता मधुपर्क, यज्ञोपवीत, वस्त्र, गन्ध, माल्य आदि से

वरका पूजन करै। अर्कके आगे स्थित होकर। हे त्रिलोकके वासी हे सप्ताश्व हे छायाकरिके सहित सूर्यनारायण तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुए दोषको निवारण करिके सुख करो यह प्रार्थना करिके और छायासे युक्त सूर्यका अर्कमें ध्यान करिके और जलका है नाम जिनमें ऐसे मंत्रोंसे सींचकर 'आकृष्णेन' इस मंत्रको पढकर वस्त्र आदिसे पूजकर श्वेतवस्त्र वा सूत्रसे लपेटकर गुडौदनका निवेदन करिके ताम्बूलको दे। मेरी प्रसन्नताकी कारक जो सनातनकी अर्कशाखा मैंने स्पर्श की है ब्रह्माकी रची हुई यह शाखा आज हमारी रक्षा करै। इस मंत्रसे अर्ककी प्रदक्षिणा करिके। हे मंगले हे देवि आपको नमस्कार है हे सूर्यकी पुत्रि आपको नमस्कार है हे देवि कृपासे मेरी रक्षाकरो और मेरे घरमें आई हुई तू मेरी पत्नी है। हे अर्क तुझे ब्रह्माने सब प्राणियोंके हितके लिये रचा है और सब वृक्षोंमें उत्तम है और देवताओंकी प्रीतिको बढाता है। तीसरे विवाहसे उत्पन्न हुए पाप और मृत्युको शीघ्र निवारण करो इस मंत्रसे फिर प्रदक्षिणा करै। अन्तःपटके धारण आदिसे कन्यादान पर्यन्त विधिको करिके कन्यादाता आदित्यकी प्रपौत्री सविताकी पौत्री अर्ककी पुत्री काश्यपगोत्रकी इस अर्ककन्याको अमुकगोत्रके तुझ वरको देताहूं। हे विप्र यथाशक्ति विभूषित यह अर्ककी कन्या अमुकगोत्र अमुकशर्मा आपको दी है। हे विप्र! इसको ग्रहण करो, फिर दक्षिणा देकर गायत्रीसे बटेहुए सूत्रसे और बृहत्साम इस मन्त्रसे वर कन्याके कंकण बांधकर अर्ककी चारों दिशाओंमें स्थित जो चार घट हैं उनमें विष्णुका नाममंत्रसे षोडशोपचार पूजन करिके अर्ककी उत्तर दिशामें अर्ककी पत्नीसे अन्वारब्ध (मिलित) वर इसकन्याके विषे भलीप्रकार भार्याकी सिद्धिके लिये पाणिग्रहण सम्बन्धी होमको करताहूं। फिर 'आघारदेवते आज्येन' इसमंत्रके अन्तमें बृहस्पति अग्नि अग्नि वायु सूर्य प्रजापति इनको आज्याहुति और शेष मन्त्रसे स्विष्टकृत्से आघार पर्यंत स्विष्टकृत् होमको करिके फिर 'संगोभि' इसमंत्रका आंगिरस बृहस्पति देवता और त्रिष्टुप् छंद है। इसका आज्यहोममें विनियोग देते हैं। 'संगोभिरांगिरसो० यह स्वाहा' बृहस्पतिके लिये है 'यस्मै त्वा०' इसमंत्रका वामदेव अग्नि ऋषिहैं और त्रिष्टुप् छन्द है और 'यस्मै त्वा कामकामाय वयं सम्राड्यजामहे तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा'। यह स्वाहा अग्निके लिये है। फिर व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे होम करिके और शेष होमको समाप्त करिके प्रार्थना करै कि, हे अर्क जरायुरूप मैंने यह कर्म स्थावरके साथ किया है, इससे हे अर्क मुझे सन्ततिओंको दो और समस्त अपराधोंको क्षमा करो फिर शान्तिसूक्तके पढनेके अन्तमें दो गौ आचार्यको देकर अपने धारण किये वस्त्र गुरुको देकर आप नवे अन्य वस्त्रोंको धारण करै। फिर दश वा तीन ब्राह्मणोंको भोजन करावै। अर्कविवाहकी विधि समाप्त हुई॥

अथाह्निकप्रारंभः।

"श्रीमन्नाथाम्बिकमलं दीनानाथदयार्णवम्॥ स्मारंस्मारं कामपूरमाह्निकाचरणं ब्रुवे॥ प्रथमोक्तो बह्वृचानां प्रकारः स तु याजुषैः॥ ग्राह्यो यत्र स्वसूत्रोक्तो विशेषः स्यान्न बाधकः॥" ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय श्रीविष्णुं स्मृत्वा गजेंद्रमोक्षादि पठित्वेष्टदेवतादि स्मरेत्॥ "समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमंडिते॥ विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे" इति भूमिं प्रार्थ्य गवादिमंगलानि पश्येत्॥

अब दीन और अनाथोंके ऊपर जो दया उसके समुद्र जो श्रीमान् नाथजी महाराजके चरणकमल उनका वारंवार स्मरण करिके आह्निककृत्यकी विधिको कहताहूं। प्रथम कहा जो बह्वृचोंका प्रकार है, उसको यजुर्वेदीभी ग्रहण करैं, यदि अपने सूत्रमें कहा कोई विशेष बाधक न हो ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर श्रीविष्णुका स्मरण करके और गजेंद्रमोक्ष आदिको पढकर देवता आदिका स्मरण करै समुद्र हैं वस्त्र जिसके, पर्वत हैं स्तनमंडल जिसके, ऐसी हे देवि हे विष्णुकी पत्नी भूमि, आपको नमस्कार है, मेरे चरणोंके स्पर्शकी क्षमा करो। इस मंत्रसे भूमिकी प्रार्थना करके गौ आदि मंगलवस्तुओंका दर्शन करै॥

अथ मूत्रपुरीषोत्सर्गादिविधिः।

तृणाद्यंतर्हितभूमौ शिरः प्रावृत्य यज्ञोपवीतं निवीतं पृष्ठतः कर्णे वा कृत्वा घ्राणपिधानं कृत्वा दिवा संध्ययोरुदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखो मौन्यनुपानत्क आसीनो मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात्॥ यज्ञोपवीतस्य निवीतत्वं विनैव कर्णे धारणमनाचारः॥ मार्गजलदेवालयनदीतीरादौ मलोत्सर्गो निषिद्धः॥ "हस्तान्द्वादश संत्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात्॥ अवकाशे षोडश वा पुरीषे तु चतुर्गुणम्॥" प्रत्यर्कादिमेहने स्वशकृद्दर्शने च सूर्यं गां वा पश्येत्॥ ततो गृहीतशिश्न उत्थाय शौचं कुर्यात्॥ मूत्रोत्सर्गे शुद्धमृदं सकृल्लिंगे त्रिवारं वामकरे द्विवारमुभयोः करयोर्दत्त्वा तावद्वारं जलेन क्षालयेत्॥ " मूत्रात्तु द्विगुणं शुक्रे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम्॥ " पुरीषे तु॥ " एका लिंगे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश॥ उभयोः करयोः सप्त सप्त त्रिर्वापि पादयोः॥ द्विगुणं ब्रह्मचर्ये स्याद्यतीनां च चतुर्गुणम्॥ एवं मृद्भिर्जलैः शौचं तदर्धं निशि कीर्त्तितम्॥ तदर्धमातुरे शूद्रस्त्रीबालानां तदर्धतः॥ " उक्तसंख्यया गंधलेपक्षयाभावे यावता तत्क्षयस्तावच्छौचम्॥ मृदार्द्रामलकमात्रा॥ जलालाभेन शौचविलंबे सचैलं स्नानम्॥ यथोक्तशौचाकरणे तु॥ "गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा प्राणायामत्रयं चरेत्॥ " मूत्रे चत्वारो गंडूषा पुरीषे द्वादशाष्टौ वा भोजनांते षोडश कार्याः॥

अब मूत्र पुरीष (मल) के त्यागकी विधिको कहते हैं। तृण आदिसे अंतर्हित (ढकी) भूमिके ऊपर और शिरको ढककर निवीत यज्ञोपवीतको पीठपर वा कर्णपर करके नासिकाको ढककर दिन और संध्याके समय उत्तराभिमुख और रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर मौन धारै। उपानहपर नहीं बैठाहुआ मनुष्य मूत्र और मलका त्याग करै। यज्ञोपवीत निवीत वह है कि कर्णपर धारणकिये विना जिसका विचार न किया जाय अर्थात् ज्योंका त्योंही मार्ग, जल, देवालय, नदीका तीर आदि इनमें मलका त्याग निषिद्ध है। जलके स्थानसे बारह हाथ और अवकाश होय तो सोलह हाथ, भूमिको त्यागकर मूत्र करै और उससे चौगुने अवकाशको छोडकर पुरीषका त्याग करै। सूर्यके संमुख मूत्र आदिके करनेमें, और अपने मलके दर्शनमें सूर्य वा गौका दर्शन करै। फिर शिश्न (लिंग) को पकडकर और उठकर शौचको करै। मूत्रके त्यागमें शुद्धमिट्टीको एकवार लिंगमें, तीन वार वाम हाथमें, दो वार दोनों हाथोंमें,

लगाकर उतने २ वारही जलसे प्रक्षालन करै, मूत्रसे द्विगुण शौच वीर्यके पातमें और तिगुना मैथुनमें कहा है। पुरीषके त्यागमें तो लिंगमें एकवार, गुदामें तीन वार, वाम हाथमें दशवार, दोनों हाथोंमें सात २ वार और दोनों पादोंमें तीन २ वार मिट्टी लगाकर प्रक्षालन करै। यह शौच ब्रह्मचर्यमें दूना, संन्यासियोंको चौगुना कहा है, इसप्रकार मिट्टी जलसे शौच कहा है रात्रिमें इससे आधा कहाहै। उससे आधा आतुरको, उससे आधा स्त्री और बालकोंको कहा है। पूर्वोक्तसंख्यासे दुर्गंध और लेपका क्षय न होय तो जितनेसे क्षय हो उतना शौच करै। मिट्टीकी मात्रा गीले आंवलेके समान है। जलके न मिलनेसे शौचमें विलंब होय तो सचैल स्नान करै। यथोक्त शौचको न करै तो आठसौ गायत्रीका जप और तीन प्राणायाम करै। मूत्रके अनन्तर चार गंडूष और मलके अनन्तर बारह, वा आठ करै भोजनके अन्तमें सोलह गंडूष करै॥

अथाचमनविधिः।

अप्रावृतशिरःकंठ उपविष्टः उपवीती प्राङ्मुख उदङ्मुखो वांगुष्ठमूलेन मुक्तांगुष्ठकनिष्ठहस्तेनानुष्णं फेनादिरहितं जलं हृदयं गतं त्रिः पिबेत्॥ "केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वैकेन दक्षकरं मृजेत्॥द्वाभ्यामोष्ठौ च संमृज्य एकेनोन्मार्जयेच्च तौ॥ जलमेकेन संमंत्र्यैकेन वामकरं मृजेत्॥ एकेन दक्षिणं पादं वाममेकेन चैव हि॥ संप्रोक्ष्यैकेन मूर्धानमूर्ध्वोष्ठं नासिकाद्वयम्॥ नेत्रयुग्मं श्रोत्रयुग्मं दक्षिणोपक्रमं क्रमात्॥ नाभिं हृदयमूर्धानौ दक्षवामभुजौ स्पृशेत्॥" केचित् "केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ॥ गंडोष्ठौ मार्जयेद्विर्द्विरेकैकं पाणिपादयोः" यद्वा॥ "ओष्ठं मार्ज्योन्मृजेद्विर्द्विरेकैकं पाणिपादयोः" शेषं प्राग्वदित्याहुः॥ तत्रोर्ध्वौष्ठस्यांगुल्यग्रैः स्पर्शः॥ अंगुष्ठतर्जनीभ्यांनासिकयोः॥ अंगुष्ठानामिकाभ्यां नेत्रयोः॥ अंगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां कर्णयोर्नाभेश्च॥ तलेन हृदयस्य पाणिना मूर्ध्नः अंगुल्यग्रैर्भुजयोः॥ एतावदाचमनविधावशक्तस्त्रिः पीत्वा करं प्रक्षाल्य दक्षिणकर्णं स्पृशेत्॥ कांस्यायःसीसत्रपुपित्तलपात्रैर्नाचामेत्॥ श्रौताचमनं तु देव्यास्त्रयः पादा आपोहिष्ठेति नव पादाः सप्तव्याहृतयो देवीपादत्रयं द्वेधा विभक्तं देवीशिरश्चेति चतुर्विंशतिस्थानानि॥ अथाचमननिमित्तानि॥ कर्म कुर्वन्नधोवायुनिःसरणेऽश्रुपाते क्रोधे मार्जारस्पर्शे क्षुते वस्त्रपरिधाने रजकाद्यंत्यजदर्शने चाचामेत्॥ स्नात्वा पीत्वा भुक्त्वा सुप्त्वा चाचामेत्॥ विण्मूत्ररेतःशौचांते आचामेत्॥ सर्वत्राचमनासंभवे दक्षिणकर्णस्पर्शः॥ दंतलग्नमात्रं मृदूपायेन निर्हरेत्॥ रक्तनिर्गमे दोषोक्तेः॥ दंतलग्नं च दंतवत् तस्यान्नस्य कालांतरे निर्गमे आचमनम्॥ "वामहस्तस्थिते दर्भे दक्षिणेन न चाचमेत्॥ करद्वयस्थिते दर्भे आचामेत्सोमपो भवेत्॥ न चोच्छिष्टं पवित्रं तद्भुक्ते पित्र्ये च संत्यजेत्॥" विण्मूत्रोत्सर्गे च त्यजेत्॥

अब आचमनकी विधिको कहते हैं। शिर और कंठको न ढककर बैठाहुआ मनुष्य सव्य होकर पूर्वाभिमुख वा उत्तराभिमुख हुआ ऐसे हाथके अंगूठेके मूलसे जिसका अंगूठा और

कनिष्ठिका पृथक् हों शीतल फेन आदिसे रहित जलको इतना तीनवार पीवै, जो हृदयमें पहुंचजाय । केशव आदिका नाम लेकर तीनवार पीकर एक हाथसे दाहिने हाथका और दोनोंसे ओष्ठोंका मार्जन करके एक हाथसे ओष्ठोंका मार्जन करै एकहाथसे जलका अभिमन्त्रण करके एक हाथसे वामहाथका मार्जन करै । एकसे दक्षिणपादका और एकसे वामपादका, मार्जन करै । एकसे मस्तकका, प्रोक्षण करके ऊपरका ओष्ठ दोनों नासिका, दोनों नेत्र, दोनो कर्ण इनका दक्षिणके क्रमसे और नाभि, हृदय, मूर्द्धा दक्षिण, और वामभुजाका क्रमसे स्पर्श करै । कोई तो यह कहते हैं कि, केशव आदि तीन नामोंसे पीकर दोनोंसे हाथोंका प्रक्षालन करै । गंडस्थल और ओष्ठोंको दो२ वार मार्जन करै, एक २ वार हाथ और चरण धोवै । वा ओष्ठका मार्जन दो २ वार, और हाथ और चरणका एक २ वार मार्जन करै । शेष कर्म पूर्वके समान समझना । उसमें ऊपरके ओष्ठका अंगुलियोंके अग्रभागसे स्पर्श करै । अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासिकाओंका, अंगुष्ठ अनामिकासे नेत्रोंका, अंगुष्ठ कनिष्ठिकासे कर्ण और नाभिका । तलसे हृदयका, हाथसे मस्तकका, अंगुलियोंके अग्रभागसे भुजाओंका स्पर्श करै इतनी आचमनविधिके करनेमें अशक्त होय तो तीन वार जल पीकर हाथोंका प्रक्षालन करके दक्षिण कर्णका स्पर्श करै । कांसी, लोहा, सीसा, राग, पीतल इनके पात्रोंसे आचमन न करै । श्रौत (वेदोक्त) आचमन तो यह है कि, गायत्रीके तीनपाद, आपोहिष्ठा ये नौ पाद, सात व्याहृति, देवीऋचाके तीन पाद और दो वार विभाग किये 'देवी० और शिरश्च०' मंत्र ये चौवीस स्थानहैं । अब आचमनके निमित्तोंको कहते हैं । कर्म करतेहुये अधोवायुके निकसनेपर, रोदनमें, क्रोधमें, मार्जारके स्पर्शमें, छिक्कामें, वस्त्रके धारणमें, रजक आदि अंत्यजोंके दर्शनमें आचमन करै । स्नान, जलपान, भोजन, शयन इनके पीछेभी आचमन करै । विष्ठा, मूत्र, वीर्य इनके शौचके अनंतरभी आचमन करै । सर्वत्र आचमन न होसके तो दक्षिणकर्णका स्पर्श करै । दांतोंमें लगे अन्नको कोमल उपायसे दूर करै, क्योंकि रुधिरके निकसनेमें दोष कहा है । और दांतोंमें लगाहुआ दांतोंके समान होता है, वह अन्न कालांतरमें निकसै तो आचमन करै । बांयें हाथमें दर्भ होय तो दक्षिणहाथसे आचमन न करै । दोनों हाथमें दर्भ होय तो आचमन करनेसे सोमपानका फल होता है। और वह दर्भकी पवित्री उच्छिष्ट नहीं होती । भोजन करनेके समय पितृकर्ममें और मलमूत्रके त्यागमें वह पवित्री त्यागने योग्य हैं ॥

अथ दंतधावनम् ।

कंटकीक्षीरवृक्षापामार्गादिकाष्ठैः कार्यम् ॥ काष्ठालाभे श्राद्धोपवासादिनिषिद्धदिने च पर्णादिना प्रदेशिनीवर्ज्यांगुल्या वा द्वादशगंडूषैर्वा दंतान् शोधयेत् ॥

अब दंतधावनको कहते हैं कि, कण्टकी और क्षीरके वृक्ष और अपामार्ग आदिके काष्ठोंसे दांतोन करै काष्ठ न मिलै तो श्राद्ध उपवास आदि निषधके दिनोंमें पत्ते आदिसे वा प्रदेशिनी (तर्जनी) को छोडकर अंगुलियोंसे वा बारह गंडूषोंसे दंतशोधन करै ॥

अथ संक्षेपतः स्नानविधिः ।

नद्यादौ गत्वा शिखां बद्ध्वा जानूर्ध्वजले तिष्ठन्नन्यथा तूपविश्याचम्य मम कायिकवाचिकमानसिकदोषनिरसनपूर्वकं सर्वकर्मसु शुद्धिसिद्ध्यर्थं प्रातःस्नानं करिष्ये

इति संकल्प्य जलं नत्वा प्राङ्मुखः प्रवाहाभिमुखो वा त्रिरवगाह्यांगानि निमृज्य स्नात्वा द्विराचम्यापोहिष्ठेति मार्जनं कृत्वा 'इमं मे गंग इति त्रिर्जलमालोड्याघमर्षणे त्रिरावृत्तेन ऋतं च' इति सूक्तेन कात्यायनैर्द्रुपदेति ऋचा जले निमग्नतया कृत्वाप्लुत्याचम्य जलतर्पणं कुर्यान्न वा तादित्थम् ॥ उपवीती ॥ ब्रह्मादयो ये देवास्तान्देवांस्तर्पयामि ॥ भूर्देवांस्तर्प ० ॥ भुवर्देवांस्तर्प ० ॥ स्वर्देवांस्त ० ॥ भूर्भुवः स्वर्देवांस्तर्पयामि ॥ निवीती ॥ कृष्णद्वैपायनादयो ये ऋषयस्तान् ऋषींस्तर्पयामि ॥ भूर्ऋषींस्तर्पयामि ॥ भुवर्ऋषींस्तर्पयामि ॥ स्वर्ऋषींस्तर्पयामि ॥ भूर्भुवःस्वर्ऋषींस्तर्पयामि ॥ प्राचीनावीती ॥ सोमः पितृमान्यमोंगिरसाग्निष्वात्ताः कव्यवाहनादयो ये पितरस्तान्पितॄंस्तर्पयामि ॥ भुवः पितॄंस्तर्पयामि ॥ स्वः पितॄंस्तर्पयामि ॥ भूर्भुवः स्वः पितॄंस्तर्पयामि ॥ एकनद्यां स्नाने अन्यां नदीं न स्मरेत् ॥ अत्र तैत्तिरीयादिभिस्तर्पणे ऋष्यादीनां नामांतराण्युक्तानि तानि संक्षेपविधौ तस्य तर्पणस्य कृताकृतत्वान्नोक्तानि ॥ अथ गृहे उष्णोदकेन स्नानं न तु शीतोदकेन ॥ तद्विधिश्च पात्रे शीतोदकं प्रक्षिप्य तदुपरि उष्णोदकेनापूर्य ॥ " शं नो देवी ० ॥ आपः पुनंतु ० ॥ द्रुपदादिव ० ॥ ऋतं च ० ॥ आपोहिष्ठेति पंचभिर्ऋग्भिरभिमंत्र्येमं मे " इत्यादिना तीर्थानि स्मरन् स्नायात् ॥ गृहस्नाने संकल्प आचमनमघमर्षणं तर्पणं च न ॥ अंते आचमनं मार्जनं च कार्यम् ॥

अब संक्षेपसे स्नानविधिको कहते हैं । नदी आदिपर जाकर शिखामें ग्रन्थि देकर जानुसे ऊपर प्रमाणके जलमें खडा होकर अथवा प्रवेश कर आचमन करिके मेरे कायिक, वाचिक, मानसिक दोषोंकी निवृत्तिके अनन्तर सब कर्मोंमें शुद्धिके लिये प्रातःस्नानको करता हूं, यह संकल्प करिके जलको नमस्कारके अनंतर पूर्वाभिमुख वा प्रवाहके संमुख होकर तीन गोतोंको लगाकर अंगोंका मार्जन करिके फिर स्नान करिके दो वार आचमनके अनंतर 'आपोहिष्ठा०' इत्यादिसे मार्जन करिके 'इमम्मे गंगे०' इस मंत्रसे तीन वार जलको विलोकर अघमर्षणमें पढे हुए त्रिरावृत्त 'ऋतंच०' इस सूक्तसे और कात्यायन तो 'द्रुपदा०' इस ऋचासे जलमें डूबकर मंत्रको जपकर स्नानके अनन्तर आचमन कर जलतर्पणको करै वा न करै । वह तर्पण इस प्रकार है कि, उपवीती (सव्य) होकर ब्रह्मादिक जो देवता हैं उनको तृप्त करताहूं। "भूर्देवांस्तर्पयामि । भूवर्देवांस्तर्पयामि । भूर्भुव.स्वर्देवांस्तर्पयामि" फिर निवीती (कंठीकृत) होकर कहै कि, कृष्णद्वैपायन आदि जो ऋषि हैं उनको तृप्त करताहूं । "भूर्ऋषींस्तर्पयामि भुवर्ऋषींस्तर्पयामि । स्वर्ऋषींस्तर्पयामि । भूर्भुवःस्वर्ऋषींस्तर्पयामि ।" फिर प्राचीनावीती (अपसव्य) होकर सोम, पितृमान्, यम, अंगिरस, अग्निष्वात्ता, कव्यवाहन आदि जो पितर हैं उनका तर्पण करता हूं। "भूःपितृंस्तर्पयामि । भुवःपितॄंस्तर्पयामि । स्वःपितॄंस्तर्पयामि । भूर्भुवःस्वःपितॄंस्तर्पयामि ।" इसप्रकार कहकर तर्पण करै । एक नदीमें जब स्नान करै तब अन्य किसी नदीका स्मरण न करै । यहां तैत्तिरीय आदिकोंने इसतर्पणमें ऋषियोंके अन्यनामभी कहे हैं वे यहां संक्षेपके कारण नहीं कहे । क्योंकि, यह तर्पण कृताकृत है इससे उनकी कुछ आवश्यकता नहीं । अब गृहस्नानकी विधिको कहते हैं कि, गृहमें उष्णजलसे स्नान करना शीतजलसे नहीं । पात्रमें

शीतलजलको भरके और उसके ऊपर गरमजल भरकर "शं नो देवी०आप:पुनंतु द्रुपदादिव० ऋतञ्च० तथा आपोहिष्ठा" इन पांच ऋचाओंसे अभिमन्त्रण करिके 'इमम्मे गंगे०' इससे तीर्थोंका स्मरण करताहुआ स्नान करै । गृहमें संकल्प, आचमन, अघमर्षण और तर्पण इनको न करै फिर अन्तमें आचमन और मार्जनको करै ॥

अथ वस्त्रधारणविधिः ।

एवं स्नात्वा वस्त्रेण पाणिना वा जलापनयनमकृत्वा शुष्कं शुभ्रं कार्पासवस्त्रं परिधाय स्नानार्द्रवस्त्रमूर्ध्वत उत्तारयेत् ॥ " विकच्छोनुत्तरीयश्च नग्नश्चावस्त्र एव च ॥ श्रौतस्मार्ते नैव कुर्यात् ॥ " द्विगुणवस्त्रो दग्धवस्त्रस्यूतग्रथितवस्त्रः काषायवस्त्रादयो दिगंबरश्च नग्नाः ॥ निष्पीडितं वस्त्रं न स्कंधे क्षिपेत् ॥ चतुर्गुणीकृत्य वस्त्रं गृहेऽधोदशं नद्यामूर्ध्वदशं स्थले निष्पीडयेत् ॥ न तु त्रिगुणम् ॥ उत्तरीयं जीवत्पितृकजीवज्ज्येष्ठभ्रातृकैर्न धार्यम् ॥ प्रावारवस्त्रं तु सर्वैर्धार्यम् ॥ इति प्रात र्नित्यस्नानम् ॥

अब वस्त्रधारण विधिको कहते हैं । इसप्रकार स्नान किये पीछे वस्त्र वा हाथसे जलके अपनयन किये पीछे विना जो शुष्क हो ऐसे शुद्धवस्त्रको धारण करिके स्नानसे गीले हुए वस्त्रको ऊपरको होकर उतारै विकच्छ (लांग विना लगाये) उत्तरीय (डुपट्टा) से रहित नग्न तथा दूसरे वस्त्रसे रहित होकर श्रौत (वेदोक्त) और स्मार्त कर्मोंको न करै । द्विगुणवस्त्र, (दोफर्दआदि) जला वस्त्र, स्यूत (सिला) वस्त्र, और ग्रथितवस्त्र जिसपर गेरुवा वस्त्र हो और दिगम्बर ये नग्न कहाते हैं । निचोडेहुए वस्त्रको कन्धेपर न गेरै । और वस्त्रको चतुर्गुण (चौलर) करिके जो घर होय तो उसके छोर नीचेको और जो नदी होय तो ऊपरको करिके स्थलमें निचोडै । त्रिगुण करिके न निचोडै । जिसका पिता और ज्येष्ठ भाई जीता हो वह उत्तरीयवस्त्रको न धारै । और प्रावार (ओढनेका वस्त्र) को तो सब धारण करैं ।। यह प्रातःकालके नित्यस्नानकी विधि समाप्त हुई ।।

अथ नैमित्तिकस्नानानि ।

मध्याह्नस्नानमपि नित्यमित्यन्ये ॥ चांडालसूतकिसूतिकोदक्याचितिकाष्ठशवचांडालच्छायादिस्पर्शे स्नानम् ॥ चांडालादिस्पर्शिनमारभ्य तत्स्पृष्टस्पृष्टेषु तृतीयपर्यंतं सचैलं स्नानम् ॥ चतुर्थस्याचमनमात्रम् ॥ तदूर्ध्वं प्रोक्षणम् ॥ द्वितीयादेर्दंडतृणाद्यंतरितस्पर्शे त्वाचमनमेव ॥ वस्त्रांतरितः साक्षात्स्पर्श एवेति तत्र चतुर्थस्यैवाचमनम् ॥ नैमित्तिकस्नानं रात्रावपि ॥ " मृते जन्मनि संक्रांतौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ॥ अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ " नैमित्तिके जलतर्पणादिर्विधिर्न ॥ नित्यस्नानमकृत्वा भुक्तौ उपवासः ॥ ग्रहणसंक्रांत्यादिनैमित्तिकस्नानमकृत्वा भोजने पाने चाष्टसहस्रजपः ॥ शूद्रादिस्पर्शनिमित्ते उपवासः ॥ श्वकाकचांडालादिस्पर्शे स्नानमकृत्वा भुक्तौ पाने च त्रिरात्रम् ॥ रजकादिस्पर्शे तदर्धम् ॥ इति नैमित्तिकस्नानम् ॥

अब नैमित्तिक स्नानको कहते हैं। मध्याह्नस्नानको भी कोई नित्य कहते हैं। चाण्डाल, सूतकी, सूतिका, रजस्वला, चिताकी लकडी, मुर्दा और चाण्डालकी छायाका स्पर्श करनेपर स्नान करै। चाण्डाल आदिके स्पर्शसे लेकर और जो उसके छुए हुएसे छूजाय इसप्रकार तीसरे तकके स्पर्श होनेपर सचैल स्नान करै। और चौथेकी तो आचमन मात्रसे शुद्धि है। और उससे ऊपर प्रोक्षण करना। और जो दण्ड या तृण आदिसे चाण्डाल स्पृष्टस्पर्शी वा तत्स्पर्शीका यदि स्पर्श करे तो आचमनही करै। और जो वस्त्रके द्वारा स्पर्श होय तो वह साक्षात् स्पर्श समझना वहां तो जो चौथा है, उसकोही आचमन करना। नैमित्तिक स्नान रातमें भी होताहै। किसीके मरण वा जन्म होनेमें सङ्क्रान्तिके दिन श्राद्ध वा जन्मतिथिमें स्पर्श न करने योग्य चण्डालादिके स्पर्शमें गर्मजलसे स्नान न करै। नैमित्तिक स्नानमें जलतर्पणादि-विधि नहीं होती। नित्यस्नानके किये विना जो भोजन करै तो उपवाससे शुद्ध होता है। और जो ग्रहण संक्रांति आदिका नैमित्तिक स्नान है, उसके किये विना भोजन, पान, करनेमें आठ हजार (८०००) जप करना। और जो शूद्र आदिका स्पर्श करिके स्नान न करै तो उप-वास करै श्वा (कुत्ता), काक, चाण्डाल, आदिका स्पर्श होनेपर स्नान किये विना भोजन पान करै तो तीनरात उपवास करे। रजकआदिसे स्पर्श होय तो उससे आधा उपवास करना॥ यह नैमित्तिक स्नानभी समाप्तहुआ॥

अथ काम्यस्नानानि।

दर्शव्यतीपातरथसप्तम्यादौ स्नानं कार्तिकस्नानमाघस्नानादिकं च काम्यम्॥ इति जलावगाहादिरूपवारुणस्नानानि॥

अब काम्यस्नान कहते हैं। अमावस्या, व्यतीपात, रथसप्तमी, आदि तथा कार्तिक माघ-आदिका स्नान काम्यहै नित्य नहीं। यह जलमें गोता लगाना जो वारुण स्नान है, उसकी विधि समाप्त हुई॥

अथ गौणस्नानानि।

आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्षणं मन्त्रस्नानम्॥ गायत्र्या दशकृत्वो जलमभि-मंत्र्य तेन सर्वांगप्रोक्षणं गायत्रम्॥ भस्मना स्नानमाग्नेयम्॥ आर्द्रवस्त्रेणांगमा-र्जनं कापिलम्॥ विष्णुपादोदकविप्रपादोदकप्रोक्षणविष्णुध्यानादिभिश्च स्नाना-तराणि॥ गौणस्नानैर्जपसंध्यादौ शुद्धिर्न तु श्राद्धदेवार्चनादौ॥ ब्रह्मयज्ञे विकल्पः॥

अब गौणस्नानआदिको कहते हैं। 'आपोहिष्ठा' इन ऋचाओंसे जो प्रोक्षण करना वह मन्त्र-स्नानहै। गायत्रीमंत्रसे दशवार जलको पढकर तिससे सब अंगका प्रोक्षण करना सो गायत्र स्नानहै। भस्मसे स्नान करना आग्नेय स्नान है। गीले वस्त्रसे शरीरको अंगोछना कापिल स्नानहै। विष्णुके चरणोदकसे स्नान तथा ब्राह्मणके चरणोदकसे प्रोक्षण तथा विष्णुके ध्यान आदिसे अन्यभी स्नान कहे हैं। इन गौण स्नानोंके करनेसे जप, संध्याआदिमें शुद्धि होती है श्राद्ध, देवपूजन, आदिमें नहीं। और ब्रह्मयज्ञमें गौणस्नान और मुख्यस्नानसे भी शुद्धि होती है यह विकल्प है॥

अथ तिलकविधिः ।

"प्रातः पुंड्रं मृदा कुर्याद्धुत्वा चैव तु भस्मना ॥ " मृदश्च गोपीचंदनतुलसीमूलसिंधुतीरजाह्नवीतीरवल्मीकादिस्थाः ॥ ललाटोदरहृदयकंठे दक्षिणपार्श्वबाहुकर्णदेशे वामपार्श्वबाहुकर्णदेशे पृष्ठे ककुदि चेति द्वादशस्थानेषु शुक्ले केशवादिनामभिः ॥ कृष्णपक्षे संकर्षणादिनामभिः ॥ शिरसि वासुदेवेति मृदा तिलको विधेयः ॥

अब तिलककी विधिको कहतेहैं । प्रातःकाल मट्टीसे पुंड्र और होमके अन्तमें भस्मका पुंड्र चढावै । वह मट्टी गोपीचन्दन, तुलसी मूलकी, समुद्रतीर तथा गंगाके तीरकी मट्टी तथा वल्मीक (बामी) आदिकी मट्टी ये होतीहैं । ललाट, उदर, हृदय, कण्ठ और दक्षिणपार्श्व, दोनों भुजा, कर्ण, पीठ और ककुद, (गलेके ऊपर) इन बारह स्थानोंमें जो शुक्लपक्ष होय तो केशवआदि नामोंसे कृष्णपक्ष होय तो संकर्षण आदि नामोंसे और शिरके ऊपर मट्टीसे तिलक करना ॥

अथ भस्मत्रिपुंड्रः ॥

" श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ॥ भस्मत्रिपुंड्रैः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः" भस्म गृहीत्वा अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वꣳह वा इदं भस्म ॥ मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति मंत्रेणाभिमंत्र्य जलमिश्रितेन मध्यमांगुलित्रयगृहीतेन ललाटहृदयनाभिगलांसबाहुसंधिपृष्ठशिरःस्थानेषु शिवमंत्रेण नारायणाष्टाक्षरेण वा गायत्र्या वा प्रणवेन वा त्रिपुंड्रान्कुर्यात्॥

अब भस्मके त्रिपुंड्रकी विधिको कहतेहैं । श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, बलि, वैश्वदेव, सुरार्चन इनमें भस्मके त्रिपुंड्रको लगाकर मनुष्य मृत्युको जीतताहै । भस्मको ग्रहण करिके "अग्निः भस्म जलं भस्म स्थलं भस्म व्योम भस्म सर्वꣳह्वा इदम्भस्म मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि " इन मन्त्रोंसे अभिमंत्रण करिके और उसमें जल मिलाकर और तीन अंगुलियोंसे लेकर ललाट, हृदय, नाभि, गला, कन्धा, बाहुकी सन्धि पृष्ठ और शिर इनस्थानोंपर शिवमंत्र वा नारायणाष्टाक्षर मन्त्र गायत्री वा ॐकार उच्चारण करिके तीन पुंड्रोंको करै ॥

अथ संध्याकालः ॥

" उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ॥ अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा मता ॥ उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा ॥ अधमा तारकोपेता सायंसंध्या त्रिधा मता ॥ अध्यर्धयामादासायं संध्यामाध्याह्निकीष्यते ॥ " सर्वेषां संध्यात्रयं नद्यादौ बहिरेव प्रशस्तम् ॥ साग्निकस्य तु प्रादुष्करणाद्यनुरोधेन सायंप्रातःसंध्ये गृहे कर्तव्ये ॥

अब संध्याके समयको कहते हैं । जो तारोंके उदित रहते करी जाय वह उत्तम, जब तारे छिप जायँ तब मध्यम, सूर्यके उदय होतेहुए अधम इसप्रकार प्रातःकालकी सन्ध्या तीन प्रकारकी कही है । सूर्यके होतेहुए उत्तम, सूर्यके अस्तहोनेपर मध्यम, जब तारे निकलआवें

तब अधम इसप्रकार सायंकालकी सन्ध्या तीनप्रकारकी है। मध्याह्नसे लेकर सायंकालतक मध्यमा संध्या होती है। सबोंको ये तीनों संध्या नदी आदिपर बाहरही करनी। और जो अग्निहोत्री होय तो उसको प्रादुष्करण (अग्निहोत्रका कर्म) आदिके अनुरोधसे प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्या गृहपरही करनी॥

अथ संक्षेपतः संध्याप्रयोगो बह्वृचानाम्।

दर्भद्वयकृते पवित्रे ग्रंथियुते ग्रंथिरहिते वा हस्तयोर्धृत्वा द्विराचम्य प्राणायामं कुर्यात्॥ प्रणवस्य परब्रह्म ऋषिः परमात्मा देवता देवी गायत्रीछंदः सप्तानां व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयः अग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेंद्रविश्वेदेवा देवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तीत्रिष्टुब्जगत्यश्छंदांसि॥ गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता गायत्रीछंदः॥ गायत्रीशिरसः प्रजापतिर्ऋषिः ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवताः यजुश्छंदः॥ प्राणायामे विनियोगः॥ सर्वांगुलीभिस्तर्जनीमध्यमाभिन्नाभिर्वा नासां धृत्वा दक्षिणेन वायुमाकृष्य रोधयेत्॥ ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं० ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥ इति सप्रणवसप्तव्याहृतिगायत्रीशिरस्त्रिः पठित्वा वामनासया वायुं विसृजेदिति प्राणायामः सर्वशाखासाधारणः॥ ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्ये॥ आपोहिष्ठेति त्र्यृचस्यांबरीषः सिंधुद्वीप आपो गायत्री मार्जने विनियोगः॥ आपोहिष्ठेति नवभिः पादैः सप्रणवैः कुशोदकेन मूर्ध्नि नवकृत्वो मार्जयेत्॥ यस्य क्षयायेत्यधो मार्जयेत्॥ नद्यादौ तीर्थस्थं ताम्रमृन्मयादिभूमिष्ठपात्रस्थं वा वामकरस्थं वा जलं दर्भादिनादाय मार्जनं सर्वत्र न तु धाराच्युतजलेन॥ अथ मंत्राचमनम्॥ सूर्यश्चेति मंत्रस्य याज्ञवल्क्य उपनिषद ऋषिः॥ सूर्यमामन्युमन्युपतयो रात्रिश्च देवताः॥ प्रकृतिश्छंदः आचमने विनियोगः॥ सूर्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षंताम्॥ यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना॥ रात्रिस्तदवलुंपतु यत्किंच दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहेति जलं पिबेत्॥ आचम्य॥ आपोहिष्ठेति नवर्चस्यांबरीषः सिंधुद्वीप आपो गायत्री॥ पञ्चमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा॥ अंत्ये द्वे अनुष्टुभौ मार्जने विनियोगः॥ " प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवांतया॥ आपोहिष्ठेति सूक्तेन मार्जनं च चतुर्थकम्॥ ऋगंतेर्धर्चांते वा पादांते वापि मार्जयेत्॥ गायत्रीशिरसाचांते मार्जयित्वाघमर्षणम्॥ " ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छंदसोघमर्षणो भाववृत्तमनुष्टुप्॥ अघमर्षणे विनियोगः॥ दक्षिणहस्ते जलं कृत्वा॥ ऋतं चेति ऋक्त्रयं द्रुपदेति ऋचं वा जप्त्वा दक्षिणनासया पापपुरुषं निरस्य तज्जलं नावलोक्य वामभागे क्षितौ क्षिपेत्॥ आचम्य गायत्र्या विश्वामित्रः सविता

गायत्री ॥ श्रीसूर्यायार्घ्यदाने वि० ॥ प्रणवव्याहृतिपूर्वया गायत्र्या तिष्ठन्सूर्योन्मुख जलांजलिं त्रिः क्षिपेत् ॥ कालातिक्रमे प्रायश्चित्तार्थम् ॥ असावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं भ्रमन् जलं सिंचेत् ॥ अर्घ्यांजलौ तर्जन्यंगुष्ठयोगो न कार्यः ॥ इदमर्घ्यदानं प्रधानमित्येके ॥ अंगमित्यपरे ॥ अथ गायत्रीजपः ॥ प्राणायामं कृत्वा ॥ गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री जपे वि०॥ तत्सवितुर्हृदया०॥ वरेण्यं शिरसे स्वाहा ॥ भर्गोदेवस्य शिखायै वषट्॥धीमहि कवचायहुम् ॥ धियो यो नः नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ प्रचोदयात् अस्त्राय फट् ॥ इति षडंगन्यासः कार्यो न वा कार्यः ॥ न्यासविधेरवैदिकत्वादिति गृह्यपरिशिष्टे स्पष्टम् ॥ एतेनाक्षरन्यासपदन्यासपादन्यासादीनां मुद्रादिविधेः शापविमोचनादिविधेश्च तांत्रिकत्वेनाऽवैदिकत्वादनावश्यकत्वं वेदितव्यम् ॥ मन्त्रदेवतां ध्यायेत् ॥ केचिद्गायत्र्यादिध्यानं वदंति ॥ " आगच्छ वरदे देवि जपे मे सन्निधौ भव ॥ गायंतं त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृता " इत्यावाह्य ॥ "यो देवः सवितास्माकं धियो धर्माधिगोचरे ॥ प्रेरयेत्तस्य तद्भर्गस्तद्वरेण्यमुपास्महे ॥ इति मन्त्रार्थं चिंतयन् मौनी प्रातः सूर्याभिमुखस्तिष्ठन्नामंडलदर्शनात्सप्रणवव्याहृतिकायाः गायत्र्या अष्टशतमष्टाविंशतिं दशकं वा जपेत् ॥ सायं वायव्याभिमुखः आनक्षत्रदर्शनादिति विशेषः ॥ अनध्यायेष्टाविंशतिं प्रदोषे दशैव जपेदिति कारिकायाम् ॥ रुद्राक्षविद्रुमादिमालाभिरंगुलीपर्वभिर्वा जपः ॥ अष्टशतं चतुःपंचाशत् सप्तविंशतिर्वा मालामणयः ॥ उत्तरन्यासं कृत्वोपस्थानम् ॥ जातवेदसे० ॥ तच्छंयो ० नमो ब्रह्मण इति मन्त्रैः सायं प्रातश्चोपतिष्ठेदिति परिशिष्टमतम् ॥ स्मृत्यंतरे मित्रस्य चर्षणीत्यादिमित्रदेवताकैः प्रातः ॥ इमं मे वरुणेत्यादिभिर्वरुणपदोपेतैः सायं सूर्योपस्थानमुक्तम्॥प्राच्यै दिशे नम इंद्राय नमः॥ आग्नेय्यै दिशे अग्नये नमः इत्यादिना दश दिग्वंदनांते संध्यायै नमः ॥ गायत्र्यै नमः ॥ सावित्र्यै नमः ॥ सरस्वत्यै नमः ॥ सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः ॥ इति नत्वा " उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् " इति विसृज्य भद्रं नो अपि वातय मन इति त्रिरुक्त्वा प्रदक्षिणं भ्रमन् " आसत्यलोकात्पातालादालोकालोकपर्वतात् ॥ ये सन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्यं नमोनमः " इति भूम्युपसंग्रहं नमस्कृत्य द्विराचामेदिति ॥

अब संक्षेपसे सन्ध्याका प्रयोग बह्वृचोंका कहते हैं। दो दर्भोंकी पवित्रीको ग्रंथिसे युक्त वा विनाही ग्रंथिके उनको बनाकर दोनों हाथोंमें धारणकरिके और दोवार आचमन करिके प्राणायाम करै। ॐ कारका परब्रह्म ऋषिहै परमात्मा देवताहै और दैवी गायत्री छंदहै तथा सातव्याहृति (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः,सत्यं) योंके क्रमसे विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप ये ऋषिहैं। अग्नि, वायु, आदित्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र, विश्वेदेवा ये देवताहैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती ये छंदहैं। गायत्रीके विश्वामित्र ऋषिहैं सविता देवताहै और गायत्री छन्दहै और गायत्रीके शिरके

प्रजापति ऋषिहैं ब्रह्मा अग्नि वायु आदित्य ये देवताहैं और यजुः छन्दहै इन ॐकारआदिका प्राणायाममें विनियोग देतेहैं । समस्त अंगुलि वा तर्जनी और मध्यमासे भिन्न अंगुलियोंसे नासिकाको पकडकर और दक्षिण नासाछिद्रसे वायुका आकर्षणकरके रोधनकरै । "ॐ भूः ॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यम् ॐतत्सवितुर्वरेण्यं ॐ आपोज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों नमः" इसप्रकार प्रणव सप्तव्याहृति और शिरसहित गायत्रीको तीनवार पढकर वामनासारंध्रसे वायुको छोडदे यह प्राणायामकी विधिहै और सब शाखावालोंका साधारणसे यही मंत्रहै कि,मेरे पापोंके शांतिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिकेलिये प्रातःकालकी संध्याको करताहूं 'आपोहिष्ठा' इस त्र्यृचका अम्बरीष ऋषिहै सिन्धुद्वीप, जल, देवताहै गायत्री छन्दहै उसका मार्जनमें विनियोग देतेहैं 'आपोहिष्ठा' इन ॐ कारसहित नौ ऋचाओंसे कुशासे जल लेकर मस्तकपर नौ ९ वार मार्जन करै और यस्य क्षयाय इसऋचासे अधोभागमें मार्जनकरै जो नदीआदि तीर्थमें स्थितहो वा तामा मट्टीआदिका पात्र भूमिमें स्थितहो उसमें जो स्थित जल हो वामे हाथमें हो उस जलको कुशाआदिसे लेकर मार्जनकरै धारासे पडे हुए जलसे, न करै अब मन्त्रसे जो आचमन उसको कहतेहैं । कि, सूर्यश्च इसमंत्रका याज्ञवल्क्य उपनिषद् ऋषिहै सूर्य मामन्यु और मन्युपति तथा रात्रि ये देवताहैं प्रकृति छन्द है आचमनमें विनियोग देतेहैं "सूर्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पभ्द्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किंचिद्दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्येज्योतिषि जुहोमि स्वाहा" इसमंत्रसे जलपानकरै आचमनकरके आपोहिष्ठा इन नौ ऋचाओंका अंबरीष, सिन्धुद्वीप, जल ऋषिहैं गायत्री छंदहै अंत्यके दो मंत्रोंका अनुष्टुप् छंदहै, मार्जनमें इनका विनियोग है । ॐकारसे व्याहृतियोंसे ॐकारहै अंतमें जिसके ऐसी गायत्रीसे आपोहिष्ठा इससूक्तसे, मार्जन करै इसप्रकार चारप्रकारका मार्जन करै ऋचाके अंतमें वा आधी ऋचाके अंतमें वा चौथाई ऋचाके अंतमें, मार्जन करै गायत्री और शिरः मंत्रके अंतमें मार्जन करके अघमर्षणकरै ऋतं च इन तीन ऋचाओंका माधुछंदस, अघमर्षण, भावभृथ ऋषिहैं, अनुष्टुप् छन्दहै, अघमर्षणमें, इनका विनियोगहै दक्षिणहाथके ऊपर जलको करके ऋतं च ये तीन ऋचा वा द्रुपदा इस ऋचाको जपकर दक्षिणनासिकासे पापपुरुषको निकासकर और उस जलको न देखकर वामभागमें भूमिपर, फेंक दे आचमन करके गायत्रीका, विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्री, छन्दहै, सूर्यको अर्घ्यदेनेमें इसका विनियोगहै । सूर्यके संमुख खडा होकर ॐकार व्याहृतिहै, पूर्व जिसके ऐसी गायत्रीसे तीनवार जलकी अंजली दे कालका अतिक्रम होगयाहोय तो प्रायश्चित्तके लिये चौथी 'अंजलिदे असावादित्यो ब्रह्म' (यह सूर्य ब्रह्महै) यह पढकर तीनवार प्रदक्षिणाके क्रमसे भ्रमताहुआ जलको सींचै । अर्घ्यकी अंजलीमें तर्जनी और अंगुष्ठके योगको न करै । यह अर्घ्यदान प्रधानहै यह कोई कहतेहैं । यह अंगरूप है यह अपर कहतेहैं । अब गायत्रीके जपको कहतेहैं । कि, तीन प्राणायामोंको करके गायत्रीका विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्री छंदहै,जप करनेमें इसका विनियोग है। "तत्सवितुः हृदयायनमः वरेण्यं शिरसे स्वाहा भर्गोदेवस्य शिखायै वषट् धीमहि कवचाय हुं धियो यो नो नेत्रत्रयाय वौषट् प्रचोदयात् अस्त्राय फट्" इस षडंग न्यासको करै । वा न करै क्योंकि, न्यासकी विधि अवैदिकहै यह गृह्यपरिशिष्टमें स्पष्टहै इससे अक्षरन्यास, पदन्यास, पादन्यास, आदिकोंको और मुद्राआदिकी

विधिको और शापविमोचन आदिकी विधिको, तांत्रिक होनेसे अवैदिकताहै इससे आवश्यकता नहीं यह जानना । मंत्रकी देवताका ध्यानकरै । कोई तो गायत्री आदिके ध्यानको कहते हैं । कि, हे वरकी दाता, हे देवि, तू आय और मेरे जपमें समीपहो और गातेहुये मनुष्यकी तुम रक्षा करतीहो इससे तुमें गायत्री कहतेहैं इससे आवाहन करके जो देव सविता सूर्य वा ब्रह्म हमारी बुद्धियोंको धर्मके विषयमें प्रेरणा करताहै उसके उस स्वीकार करनेयोग्य तेजकी हम उपासना करते हैं इस गायत्रीमंत्रके अर्थका स्मरण करै । मौन धारै प्रातःकाल सूर्याभिमुख, खडाहुआ सूर्यमंडलके दर्शनपर्यंत, ॐकार व्याहृति सहित गायत्रीका आठसौ अट्ठाईस वा दशवार, जप करै । सायंकालको वायव्य (पश्चिम) दिशाके संमुख होकर नक्षत्रोंके दर्शनपर्यंत जप करै यह विशेषहै ।अनध्यायमें आठाईस प्रदोषमें दश, ही जपै यह कारिकामें लिखा है। रुद्राक्ष, मूंगा आदिकी मालासे वा अंगुलियोंके पर्वोंसे जपै। आठ सौ(१०८) चम्मन(५४) सत्ताईस (२७) मालाकी मणि हों उत्तरन्यासको करके उपस्थान (स्तुति) करै । कि, 'जातवेदसे० तच्छंयो० नमोब्रह्मणे०' इनमंत्रोंसे सायंकाल, और प्रातःकाल, उपस्थानकरै, यह गृह्यपरिशिष्टमें कहाहै अन्यस्मृतिमें तो 'मित्रस्यचर्षणी' इत्यादि मित्र देवताके मंत्रोंसे प्रातःकाल, और 'इमंमेवरुण' इत्यादि वरुणपदसे युक्त मंत्रोंसे सायंकालको सूर्यका उपस्थान कहा है पूर्व दिशा और इंद्रको नमस्कारहै (प्राच्यै दिशे इंद्राय नमः) अग्निदिशा और अग्निको नमस्कार है (आग्नेय्यै दिशे अग्नये नमः) इत्यादि मंत्रोंसे दशों दिशाओंके बंधनकिये पीछे, "संध्यायै नमः, गायत्र्यै नमः, सावित्र्यै नमः, सरस्वत्यै नमः, सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः" अर्थात् संध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, संपूर्ण देवता, इनको नमस्कारहै इसप्रकार नमस्कार करके हे उत्तम शिखरपर उत्पन्नहुई हे भूमिपर पर्वतोंपर वासवती, गायत्री, ब्राह्मणोंकी आज्ञासे सुखसे गमन करो, इसमंत्रसे विसर्जन करके भद्रंनोअपिवातयमनः इसको तीनवार कहकर प्रदक्षिणक्रमसे भ्रमता हुआ सत्यलोकपर्यंत पाताल लोकालोकपर्वतपर्यंत, जो ब्राह्मण और देवताहैं तिनको नित्य नमस्कारहै इसमंत्रसे भूमिका स्पर्श करताहुआ नमस्कार करके दोवार आचमन करै ॥

अथ तैत्तिरीयाणा संध्या ।

संकल्पांतं पूर्ववत् गायत्रीं ध्यात्वा ॥ " आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसंमितम् ॥ गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥ सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति ॥ अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोस्तु ते ॥ " ओजोसि सहोसि बलमसि भ्राजोसि देवानां धामनामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरों गायत्रीमावाहयामि ॥ सावित्रीमावाहयामि ॥ सरस्वतीमावाह० ॥ छन्दऋषीनावा०॥ श्रियमा०॥ ह्रियमा०॥ इत्यावाह्य मार्जनं पूर्ववत् ॥ आपोवा इद ँ सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणा वा आपः पशव आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छंदा ँ स्यापो ज्योती ँ ष्यापो यजू ँ ष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप आप ॐ इति जलमभिमंत्र्य॥ सूर्यश्चेति पूर्ववन्मंत्राचमनम् ॥ दधिक्राव्णो अकारिषमिति ऋचमुक्त्वा आपोहिष्ठेति तिसृभिः हिरण्य-

वर्णा इति पवमानः सुवर्चन इत्यनुवाकेन च ऋगंते मार्जनांतेऽघमर्षणं कृत्वा न कृत्वा वार्घ्यदानादिगायत्रीजपांतमावाहनं मन्त्रवर्ज्यं पूर्ववत् ॥ न्यासविधेरवैदिकत्वमुक्तमेव ॥ जपांते उपस्थानम् ॥ मित्रस्य चर्षणी० मित्रो जनान्० प्रसमित्र० यच्चिद्धिते० यत्किंचेदं० कितवासो यद्रि० ॥ इति षड्भिरुपस्थाय ॥ प्राच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसंत्येताभ्यश्च नमोनम इत्यादिना अधरांताः षण्नत्वा अवांतरायै दिशे याश्च देवता इति च नत्वा नमो गंगायमुनयोर्मध्य इत्यादिना मुनिदेवान्नत्वा स ५ स्रवंतु दिश इति मन्त्रं पठित्वा गोत्राद्युच्चार्य पूर्ववद्भूम्युपसंग्रहं नत्वा पूर्ववत्संध्यां विसृजेदिति ॥

अब तैत्तिरीयोंकी संध्या कहतेहैं । तैत्तिरीय संकल्पपर्यंत कर्मको पूर्वकी समान करिके और गायत्रीमंत्रका ध्यानकर हेवरके देनेवाली ! हे वेदोंकी माता ! ये जो ब्रह्मकी समान गायत्रीमंत्रके अक्षर उनको प्राप्तहो हे सर्ववर्णे हेमहादेवि हेसन्ध्ये हेसरस्वति हेअजरे हेअमरे हेदेवि हेसर्वदेवि तुझको नमस्कारहै तथा "ओजोसि सहोसि बलमसि भ्राजोसि देवानां धामनामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरों गायत्रीमावाहयामि । सावित्रीमावाहयामि । सरस्वतीमावाहयामि छन्दऋषीनावाहयामि श्रिय आवाहयामि ह्रिय आवाहयामि" इनमंत्रोंसे गायत्री आदिका आवाहनकरिके पूर्वकी समान मार्जन करै । "आपो वा इद ५ सर्वंविश्वाभूतान्यापः प्राणा वा आपः पशव आपोन्नमापोमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छंदा ५ स्यापो ज्योती ५ ष्यापो यजू ५ ष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः स्वः सुवरापआप ५" इस मंत्रसे जलका अभिमंत्रण करिके 'सूर्यश्च' इसमन्त्रसे आचमन करै । 'दधिक्राव्णोअकारिषं' इसमंत्रको कहकर आपोहिष्ठा इन तीन ऋचाओंसे हिरण्यवर्णा इति पवमानः सुवर्चनः इसअनुवाकसे ऋगंतमें मार्जन और अवमर्षण किये पीछे अर्घ्यदानसे लेकर गायत्रीजपपर्यंत कर्मको करै और आवाहन मंत्रसे रहित पूर्वकी समान करै । न्यासविधि तो वेदोक्त नहीं वह पहिले कहचुके।जपके अंतमें उपस्थानविधिको कहतेहैं। "मित्रस्यचर्षणी० मित्रोजनान्०प्रसमित्र०यच्चिद्धिते०यत्किंचेदम्०कितवासोयत्०" इन छः ऋचाओंसे उपस्थानको करिकै "प्राच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्यो ताभ्यश्च नमोनमः" इत्यादिमंत्रसे अधर (देव विशेष) पर्यंत छःको नमस्कार "करिके आवान्तरायै दिशे याश्च देवता०" इसमंत्रसे नमस्कारकरिके नमो 'गंगायमुनयोर्मध्ये०'इत्यादिमंत्रसे मुनि और देवताओंको नमस्कारकरिके 'स ५ स्रवन्तु दिशः'०इसमंत्रको पढकर गोत्र आदिका उच्चारण करिके पूर्वकी समान भूमिका उपसंग्रह (स्पर्श) करिके पूर्वकी समान सन्ध्याका विसर्जन करै ॥

अथ कात्यायनानां संध्याप्रयोगः ।

आचम्य भूः पुनातु ॥ भुवः पुनातु ॥ स्वः पुनातु ॥ भूर्भुवः स्वः पुनात्वित्यादिना पावनं कृत्वा ॥ ' अपवित्रः पवित्रोवा' इति विष्णुं स्मृत्वा ॥ आसनादिविधिं कृत्वा द्विराचम्य प्राणानायम्य पूर्ववत्संकल्प्य"गायत्रीं त्र्यक्षरां बालां साक्षसूत्रकमंडलुम् ॥ रक्तवस्त्रां चतुर्वक्त्रां हंसवाहनसंस्थिताम् ॥ ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम् ॥ आवाहयाम्यहं देवीमायांतीं सूर्यमंडलात् ॥ आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे

ब्रह्मवादिनी ॥ गायत्रीछंदसां मातर्ब्रह्मयोने नमोस्तु ते ॥ ” इत्यावाह्य ॥ पूर्ववदापोहिष्ठेति त्र्यृचेन मार्जयेत् ॥ सूर्यश्चेति मंत्रस्य नारायण ऋषिः सूर्यो देवता अनुष्टुप् छंदः ॥ आचमनेवि० सूर्यश्चेति० जलं प्राश्याचम्य ॥ आपोहिष्ठेति नव ऋङ्मार्जनं कुर्यादिति केचिदाहुः ॥ बहवस्तु संकल्पाद्यंते सूर्यश्चेति मंत्राचमनं कृत्वापोहिष्ठेति तिसृभिः प्रतिपादमार्जनांतेऽघमर्षणं कार्यं न तु मार्जनद्वयमित्याहुः ॥ सुमित्र्या दुर्मित्र्या इति द्वयोः प्रजापतिर्ऋषिरापो देवता यजुश्छंदः ॥ आदानप्रक्षेपणे वि० सुमित्र्या न आप ओषधयः संतु इति जलमादाय दुर्मित्र्यास्तस्मै संतु योस्मान्द्वेष्टि यं च वय द्विष्म इति वामभुवि क्षिपेत् ॥ तत ऋतं चेति त्र्यृचेन द्रुपदेति त्रिरुक्तं ऋचा वाघमर्षणं पूर्ववत् ॥ सायं प्रातश्च त्रिरर्घ्यदानं पुष्पयुतजलेन पूर्ववत् ॥ मध्याह्ने सकृद्गायत्र्या परित उक्षणम् ॥ अथोपस्थानम् ॥ उद्वयमुदुत्यमिति द्वयोः प्रस्कण्वः सूर्योनुष्टुब्गायत्र्यौ ॥ चित्रं देवानामांगिरसः कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप् ॥ तच्चक्षुर्दध्यङ्ङाथर्वणः सूर्यः पुर उष्णिक् ॥ उपस्थाने वि०॥ उद्वयं तमसस्परि० ॥ उदुत्यं जातवेदसं० चित्रं देवानां० तच्चक्षुर्देवहितमित्यूर्ध्वबाहुः सूर्यमुदीक्षमाणो यथाशाखं पठेत् ॥ प्राणायामादि विधाय ॥ न्यासमुद्रातर्पणादिविधिः कृताकृतः ॥ तेजोसीति परमेष्ठी प्रजापतिराज्यं यजुः ॥ आवाहने विनियोगः ॥ तजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ परोरजस इति विमलः परमात्मानुष्टुप् ॥ गायत्र्युपस्था० गायत्र्यस्येकपदीद्विपदी त्रिपदीश्चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परो रजसे सावदोम् ॥ ततो गायत्रीजपांतं पूर्ववत् ॥ ततः शक्तेन विभ्राडित्यनुवाकेन पुरुषसूक्तेन वा शिवसंकल्पेन वा मंडलब्राह्मणेन वोपस्थानं कार्यम् ॥ अत्र ऋक्शाखोक्तवत् दिग्वंदनं केचित्कुर्वंति ॥ तत उत्तमे शिखरे० ॥ देवा गातु विदो गातुमिति मंत्राभ्यां विसर्जनम् ॥ भूम्युपसंग्रहं नमस्कारादि पूर्ववत् ॥ इति कात्यायनसंध्या ॥ “ संध्यामुपासते ये वै निष्पापा ब्रह्मलोकगाः ॥ अन्यकर्मफलं नास्ति संध्याहीनोशुचिस्त्वतः ॥ जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा जायते ध्रुवम् ॥ ” संध्यात्रये कालातिक्रमे प्रायश्चित्तार्थमेकमर्घ्यमाधिकं दत्त्वा ॥ रात्रौ प्रहरपर्यंतं दिनोक्तकर्माणि कुर्यात् ॥ ब्रह्मयज्ञं सौरं च वर्जयेत् ॥ सर्वथा संध्यालोपे प्रतिसंध्यमेकोपवासोऽयुतमष्टोत्तरसहस्रं वा गायत्रीजपः ॥ अत्यशक्तौ प्रतिसंध्यालोपे शतगायत्रीजपः द्व्यहं त्र्यहं लोपे तदावृत्तिः ततः परं कृच्छ्रादिकल्प्यम् ॥

अब कात्यायनोंकी संध्याकी विधिको कहते हैं। आचमनकरके 'भूः पुनातु । भुवः पुनातु । स्वः पुनातु । भूर्भुवः स्वः पुनातु०' इत्यादिमंत्रसे पावनकरिके 'अपवित्रः पवित्रोवा०' इसमंत्रसे विष्णुका ध्यानकरिके आसनविधि करके दोवार आचमन और प्राणयाम तथा पूर्ववत्संकल्प करिके गायत्रीका आवाहन करै तीन अक्षरवाली बाल्यावस्था अक्षसूत्र और कमण्डलुसहित

जिसके रक्त वस्त्रहैं चार जिसके मुखहैं हंसपर बैठी हुई ब्रह्माणी है ब्रह्मा जिसका देवताहै जो ब्रह्मलोकमें निवास करतीहै। ऐसी सूर्यमण्डलसे आती हुई देवीका आवाहन करताहूं हेवरकी दात्रि देवि तू आ हे अक्षरे हे ब्रह्मवादिनि हे वेदोंकी माता हे ब्रह्मयोने तुझे नमस्कार है। इस मन्त्रसे आवाहनकरके पूर्वकी समान आपोहिष्ठा इन तीन ऋचाओंसे मार्जन करै सूर्यश्च० इसमंत्रका नारायण ऋषिह सूर्य देवताहै अनुष्टुप् छंदहै। और आचमनमें इसका विनियोगहै सूर्यश्च० इसमंत्रसे जलका आचमन करिके। आपोहिष्ठा० इन नौ ऋचाओंसे मार्जन करै यह कोई कहतेहैं। और बहुतसे यह कहतेहैं कि,संकल्प आदिके किये पीछे सूर्यश्च० इसमंत्रसे आचमन करिके आपोहिष्ठा० इन तीन ऋचाओंके प्रतिपादसे मार्जन किये पीछे अघमर्षण करै। दो मार्जन नहीं सुमित्र्या० दुर्मित्र्या० इन दो ऋचाओंका प्रजापति ऋषिहै आपो० ये देवताहैं यजुः छंदहै। आदान तथा प्रक्षेपणमें विनियोग देतेहैं। सुमित्र्यान आप ओषधयः सन्तु० इसमंत्रसे जललेकर "दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तुयोऽस्मान् द्वेष्टि यंच वयं द्विष्मः०"इस मंत्रसे वामीतरफ पृथ्वीपर जलको फैंकदे। फिर ऋतं च इस ऋचासे और द्रुपदा इसऋचाको तीनबार पढकर, पूर्वके समान अघमर्षणकरै सायंकाल और प्रातःकालके समय, पुष्पसहित जलसे पूर्वके समान तीनवार अर्घ्यका दान करै। मध्याह्नमें सकृत् (एकवार) गायत्रीको पढकर चारोंतरफ जल फेंकै। अब उपस्थानको कहते हैं उद्वयं० उदुत्यं० इन दोनों मंत्रोंका प्रस्कण्वऋषि सूर्य देवता अनुष्टुप् गायत्रीको छंद है। चित्रं देवानां० इसमंत्रका आंगिरस कुत्स ऋषि सूर्य देवता त्रिष्टुप् छंदहै। तच्चक्षुः० इसमंत्रका दध्यंगाथर्वण ऋषि सूर्य देवता पुर-उष्णिक् छंद है। उपस्थान (स्तुति) में इनका विनियोग है "उद्वयंतमसः० उदुत्यं जात-वेदसं०। चित्रं देवानाम्० तच्चक्षुर्देवहितं०" इन चारों मंत्रोंको ऊपरको भुजाउठाये सूर्यको देखताहुआ अपनी शाखाके अनुसार पढै। प्राणायाम आदिको करके। न्यास, मुद्रा, तर्पण, आदि विधिको करै चाहै न करै। तेजोसि० इसमंत्रका परमेष्ठी ऋषि प्रजापति आज्य देवता यजुः छंदहै। आवाहनमें विनियोगह। "तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवाना-मनाधृष्टं देवयजनमसि। परोरजसः" इस मंत्रसे आवाहन करै--गायत्र्यस्ये० इसमंत्रका विमल ऋषि, परमात्मा देवता अनुष्टुप्छंद है गायत्रीके उपस्थानमें विनियोगहै! "गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हिपद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसे सावदोम्" इसमंत्रसे गायत्रीकी स्तुतिकरै। फिर गायत्रीके जपके अंतमें पूर्वके समान करै। फिर समर्थ मनुष्य, विभ्राड् इस अनुवाकसे पुरुषसूक्तसे, वा शिवसंकल्पसे, वा मंडलब्राह्मणसे, उपस्थान करै। इसमें ऋक्शाखाके समान कोई२ तो दिग्बंधन करतेहैं। फिर उत्तमे शिखरेजाता०। देवागातु०। इनमंत्रोंसे विसर्जनकरै। भूमिका स्पर्शकरके नमस्कार आदि पूर्वके समानहैं। यह कात्यायनोंकी संध्या समाप्तहुई। जो संध्याकी उपासना करतेहैं वे निष्पाप होकर ब्रह्मलोकमें जातेहैं संध्यासे हीन मनुष्यको अशुद्ध होनेसे अन्यकर्मका फल नहीं होता। और वह जीवताहुआ शूद्र होताहै और मरकर निश्चयसे श्वा कुत्ता होताहै। तीनों संध्याओंके कालातिक्रमणमें प्रायश्चित्तके लिये एक अधिक अर्घ्य देकर। रात्रिके प्रहरपर्यंत दिनमें कहेहुये कर्मोंको करै। परंतु ब्रह्मयज्ञ और सूर्यके कर्मको न करै। सर्वथा संध्याके लोपमें संध्या २ के प्रति एक उपवास दशसहस्र वा अष्टोत्तरसहस्र गायत्रीका जपकरै। अल्पशक्तिमें संध्याके लोपमें संध्या २ के प्रति सौ गायत्री जपै दोदिन, वा तीनदिन, लोप होजाय तो संध्याकी आवृत्ति करै उससे आगे लोपमें कृच्छ्रआदिकी कल्पना करै॥

अथोपासनहोमे अधिकारिणः ।

स्वयं होमो मुख्यः ॥ अशक्तौ पत्नी पुत्रः कुमारी भ्राता शिष्यो भागिनेयो जामाता ऋत्विग्वा ॥ पुत्रादिर्दंपत्योः संनिधाने एकतरसंनिधाने वा जुहुयात् ॥ त्यागं यजमानः पत्नी वा कुर्यात् ॥ तस्या असन्निधौ तदाज्ञया ऋत्विगादिरपि ॥ पत्न्या ऋतुप्रसवोन्मादादिदोषे तु तदाज्ञां विनापि ऋत्विगादिस्त्यागं कुर्यात् ॥ "स्वयं होमे फलं यत्स्यादन्यैर्होमे तदर्धकम् ॥" पर्वणि तु स्वयमेव जुहुयात् ॥ तत्र प्रातः सूर्योदयात्प्राक् सायं सूर्यास्तात्प्राक अग्नीनां गृह्याग्नेर्वा प्रादुष्करणं कृत्वा सूर्योदयास्तोत्तरं होमः कार्यः ॥ प्रादुष्करणकालातिक्रमे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहेति मंत्रेण स्रुवाज्याहुतिरूपं सर्वप्रायश्चित्तमाज्यसंस्कारपूर्वकं कृत्वा होमः सूर्योदयोत्तरं दशघटिकापर्यंतं प्रातर्होमकालो मुख्यः ॥ तत् आसायं गौणः ॥ सायं नवनाडिकापर्यंतं मुख्यः ॥ तत आप्रातर्गौणः ॥ मुख्यकालातिक्रमे कालातिक्रमनिमित्तप्रायश्चित्तपूर्वकममुकहोमं करिष्य इति संकल्प्याज्यं संस्कृत्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा सायंकाले दोषावस्तर्नमः स्वाहेति हुत्वा प्रातस्तु प्रातर्वस्तर्नमः स्वाहेति हुत्वा हौम्यं संस्कृत्य नित्यहोमः ॥ श्रौतहोमं कृत्वा स्मार्तहोमः ॥ केचित्स्मार्तहोमं पूर्वमाहुः ॥ आधाने पुनराधाने सायमुपक्रमो होमः ॥ सायंप्रातर्होमयोर्द्रव्यैक्यं कर्त्रैक्यं च ॥ प्रातर्यजमान कर्ता चेत्कर्तृभेदो न दोषाय ॥

अब औपासन होमके अधिकारियोंको कहतेहैं । स्वयं होम करना मुख्यहै । अशक्तिमें पत्नी वा पुत्र करै कुमारी, भ्राता, शिष्य, भानजा, जामाता, ऋत्विज, वा पुत्रआदि इनमेंसे कोई स्त्री पुरुष दोनोंके संनिधानमें वा एकके सन्निधानमें होम करै । त्याग (दान) को यजमान वा पत्नी करै । पत्नी समीप न होय तो उसकी आज्ञासे ऋत्विज आदिभी करै । पत्नीको ऋतु, प्रसव, उन्माद, आदि दोष होंयँ तो उसकी आज्ञाके विनाभी ऋत्विज आदि त्याग (होम) को करै । अपना होमकरनेमें जो फलहोताहै, उससे आधाफल, अन्यके होम करनेसे होताहै । पर्वमें तो स्वयं ही होमको करै । फिर प्रातःकाल सूर्योदयसे पहिले, और सायंकाल सूर्यास्तसे पहिले, सब अग्नियोंका, वा गृह्यअग्निका, प्रादुष्करण (जलाना) करके, सूर्यके उदय और अस्तके पीछे होमको, करै । प्रादुष्करणके समयका अतिक्रमण होजाय तो ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा इसमंत्रसे स्रुवेसे घीकी आहुतिरूप सबके प्रायश्चित्तको घीके संस्कारको करके होम करै । सूर्योदयसे दशघटीपर्यंत प्रातःकालके होमका मुख्य कालहै । उससे आगे संध्यापर्यंत गौण कालहै । सायंकालको नौघडीपर्यंत मुख्यहै । उससे आगे प्रातःकालपर्यंत गौण है मुख्यकालके अवलंघनमें कालके अवलंघनके निमित्तके प्रायश्चित्तपूर्वक अमुकहोमको करताहूं यह संकल्प करके आज्यके संस्कारको करके स्रुवमें चारबार ग्रहणकिये घीको लेकर सायंकालको 'दोषावस्तर्नमः स्वाहा' इसमंत्रसे होम करके प्रातःकाल तो प्रातर्वस्तर्नमः स्वाहा' इसमंत्रसे होम करके होमके द्रव्यका संस्कार करके नित्यके होमको करै । श्रौत (वैदिक) होमको करके स्मार्त होमकरै । कोई तो स्मार्त होमको पहिले कहतेहैं । आधानमें, पुनः

आधानमें सायंकालको उपक्रम होमकरै। सायंकाल और प्रातःकालके होममें एक द्रव्य एक कर्ता होताहै। प्रातःकाल यजमान कर्ता होय तो कर्ताके भेदका दोष नहीं।

अथाश्वलायनस्मार्तहोमः।

आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायमौपासनहोमं प्रातरौपासनहोमं वाऽमुकद्रव्येण करिष्ये ॥ चत्वारि शृंगेति ध्यात्वा सोदकहस्तेन त्रिः परिसमुह्य परिस्तीर्य त्रिः पर्युक्ष्य होमद्रव्यं समिद्युतमुत्तरतः स्थितं दर्भेणावज्वाल्य प्रोक्ष्य त्रिः पर्यग्नि कृत्वाग्नेः पश्चिमतो दर्भे निधाय विश्वानिन इत्यभ्यर्च्य प्रजापतिं मनसा ध्यायन् समिधमग्नौ प्रक्षिप्य तथैव त्यक्त्वा समिधि दीप्तायां शततंडुलैरग्नये स्वाहेति सायं प्रथमाहुतिः सूर्याय स्वाहेति प्रातः प्रथमाहुतिः शताधिकतंडुलैः प्रजापतय इति मनसोच्चार्य होमत्यागाभ्यां द्वितीयाहुतिरुभयकाले ॥ परिस्तरणं विसृज्य परिसमूहनपर्युक्षणे कृत्वोपस्थानम् ॥ अग्न आयूंषीति तिसृणां शतं वैखानसा अग्निः पवमानो गायत्री ॥ अग्न्युपस्थाने वि० ॥ अग्ने त्वं न इति चतसृणां गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबंधुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चाग्निर्द्विपदा विराट् ॥ अग्न्युपस्थाने वि० ॥ प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ प्रजापत्युपस्थाने० ॥ तंतु तन्वन्देवा अग्निर्जगती ॥ यद्वा देवा प्रजापतिर्जगती ॥ उपस्थाने वि० ॥ हिरण्यगर्भो हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप ॥ प्रजापत्यु० ॥ इति वायव्यदेशे तिष्ठन्नुपस्थाय ॥ उपविश्य मानस्तोक इत्यादिना विभूतिधारणं क्वचिदुक्तम् ॥ विष्णुं स्मृत्वा अनेन होमकर्मणा परमेश्वरः प्रीयतामित्यर्पयेत् ॥ प्रातस्तु ॥ सूर्यो नो दिवः सूर्यश्चक्षुः सूर्यो गायत्री ॥ सूर्योप० ॥ उदुत्यं काण्वः प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री ॥ सूर्योप० ॥ चित्रं देवानामांगिरसः कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप् ॥ सूर्योप० ॥ नमो मित्रस्य सौर्योभितपाः सूर्यो जगती ॥ सूर्यो० ॥ इति चतुर्भिः पूर्वोक्तैस्त्रिभिः प्राजापत्यैश्चोपस्थानम् ॥ केचित्प्रातस्तंतुं तन्वन्निति न पठंति ॥ पत्नीकुमारीकर्तृकहोमे ध्यानोपस्थानादौ मंत्रा वर्ज्याः ॥

अब आश्वलायनोंके स्मार्त होमको कहते हैं। आचमन और प्राणायाम, और देशकालका कीर्तन करके श्रीपरमेश्वरके प्रीत्यर्थ सायं औपासनहोमको वा प्रातः औपासनहोमको अमुकद्रव्यसे करताहूं यह संकल्प करै। 'चत्वारि शृंगा०' इसमंत्रसे ध्यान करके, जलसहित हाथसे तीनवार समूहन करके परिस्तरण (कुशारखना) करके तीनवार छिडककर समिधासहित होमका द्रव्य जो समिधसहित उत्तरमें स्थितहै उसको कुशासे प्रज्वलितकर प्रोक्षण करके तीनवार पर्यग्निकरण, करके अग्निके पश्चिमकी तरफ, दर्भपर रखकर 'विश्वानिनः' इसमंत्रसे पूजकर प्रजापतिका मनसे ध्यान करताहुआ समिधको अग्निमें फेंककर, और तिसीप्रकार त्यागकर, जब समिध प्रज्वलित होजाय शत (१००) तंडुलोंसे 'अग्नयेस्वाहा' इसमंत्रसे सायंकालको प्रथम आहुति दे 'सूर्यायस्वाहा' इसमंत्रसे प्रातःकाल प्रथम आहुति दे सौसे अधिक तंडुलोंसे प्रजापतये, इसका मनसे उच्चारणकरके होम और त्यागसे दूसरी आहुति दे दोनों

कालमें परिस्तरणका विसर्जनकरके परिसमूहन और पर्युक्षणको करके उपस्थान करै । 'अग्नआयू ॅषि०' इन तीनऋचाओंका शतवैखानसऋषि अग्नि, पवमानदेवताहैं, गायत्री छन्दहै अग्निके उपस्थानमें विनियोगहै । 'अग्नेत्वन्न०' इनचार ऋचाओंका गौपायन वा लौपायन जो बंधु, सुबंधु, श्रुतबंधु, विप्रबंधु ये ऋषिहैं, अग्नि देवताहै, द्विपदा, विराट् छंदहैं, अग्निके उपस्थानमें विनियोगहै । 'प्रजापते०' इसमंत्रका हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, त्रिष्टुप् छंदहै । प्रजापतिके उपस्थानमें विनियोगहै । 'तंतुंतन्वं०' इसमंत्रका देवाऋषि, अग्नि देवता, जगती छन्दहै, उपस्थानमें विनियोगहै । 'हिरण्यगर्भः०' इसमंत्रका हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, त्रिष्टुप् छन्दहै । प्रजापतिके उपस्थानमें विनियोगहै । इन मंत्रोंसे वायव्यदेशमें खडाहोकर उपस्थानकरके । बैठकर 'मानस्तोके' इत्यादि मंत्रोंसे कहीं विभूतिका धारणभी कहाहै । विष्णुका स्मरण करके इस होमकर्मसे परमेश्वर प्रसन्नहो यह कहकर अर्पणकरै । प्रातःकालको तो 'सूर्यो नो दिव०' इसमंत्रका सूर्यचक्षु, ऋषि, सूर्यदेवता, गायत्री छन्दहै, सूर्यके उपस्थानमें विनियोगहै । 'उदुत्यं०' इसमंत्रका काण्व प्रस्कण्व ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्दहै । सूर्यके उपस्थानमें विनियोगहै । 'चित्रंदेवानां०' इसमंत्रका आंगिरस, कुत्स, ऋषि, सूर्य देवता, त्रिष्टुप् छन्दहै । सूर्यके उपस्थानमें विनियोगहै । 'नमोमित्रस्य०' इसमंत्रका सौर्योभितपा ऋषि सूर्य देवता जगती छन्दहै । सूर्यके उपस्थानमें विनियोगहै । इनचार मन्त्रोंसे और पूर्वोक्त तीन मन्त्रोंसे और प्रजापतिके मन्त्रोंसे उपस्थान (स्तुति) करै । कोई तो प्रातःकालको 'तंतुंतन्वं०' इसमंत्रको नहीं पढते । पत्नी कुमारी ये दोनों होमकरै तो इनको ध्यान और उपस्थानके मंत्र वर्जितहैं ॥

अथ हिरण्यकेशीयानाम् ।

पूर्वोक्तसंकल्पाद्यंते यथाह तद्वसव इति परिसमुह्य परिस्तीर्य ॥ अदितेऽनुमन्यस्वेति दक्षिणतः प्राचीनं पर्युक्षेत् ॥ अनुमतेनुमन्यस्वेति पश्चादुदीचीनम् ॥ सरस्वतेनुमन्यस्वेति उत्तरतः प्राचीनम् ॥ देवसवितः प्रसुवेति सर्वतः॥ तूष्णीं समिधमाधाय होमादिप्राग्वत्॥ अदितेऽन्वम ॅ स्थाः॥ अनुमतेन्वमॅस्थाः सरस्वतेऽन्वम ॅस्थाः ॥ देवसवितः प्रासावीरिति पूर्ववत् परिषेचनम् ॥ उदुत्यं चित्रं देवानामिति प्रातरुपस्थानम् ॥ अग्निर्मूर्धादिव इति त्वामग्ने पुष्करादधीति द्वाभ्यां सायमुपस्थानम् ॥ आपस्तंबानां सायमग्नये स्वाहाग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति द्वे आहुती प्रातस्तु सूर्याय स्वाहाग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति विशेषः ॥ शेषं हिरण्यकेशीयवत् ॥

अब हिरण्यकेशीयोंको हो० । इनके यहां पूर्वोक्त संकल्पआदिके अंतमें 'यथाहतद्वसव०' इसमंत्रसे परिसमूहन करके परिस्तरण करके । 'अदितेनुमन्यस्व०' इसमंत्रसे दक्षिणसे प्राचीतक पर्युक्षण (सेचन) करै । 'अनुमतेनुमन्यस्व' इस मंत्रसे पश्चिमसे उत्तरतक । 'सरस्वते नुमन्यस्व' इस मंत्रसे उत्तरसे प्राचीतक । 'देवसवितः प्रसुव०' इस मंत्रसे सर्वत्र तूष्णीं समिधोंको रखकर, पूर्वके समान होम आदिको करै । "अदितेन्वमॅस्थाः अनुमतेन्वमॅस्थः सरस्वतेन्वमॅस्थाः । देवसवितः प्रासावी" । इनको पूर्वके समान पढकर परिषेचन करै

'उदुत्यं० चित्रं देवानाम्०' इस मंत्रसे प्रातःकाल उपस्थान करै । 'अग्निर्मूर्द्धादिवः०' इससे और 'त्वामग्ने पुष्करादधि०' इसमंत्रसे सायंकालको उपस्थान करै। आपस्तंबोंके यहां सायंकालको 'अग्नये स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' ये दो आहुति हैं प्रातःकालको तो 'सूर्याय स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' ये दोहैं यह विशेषहै। शेषकर्म हिरण्यकेशीयोंके समानहै ॥

अथ कात्यायनानाम् ।

सायमस्तमिते होमः ॥ प्रातः सूर्येऽनुदिते होमः ॥ तत्र प्रातरुपस्थानांतां संध्यां कृत्वा होमांते गायत्रीजपादिसंध्यासमापनम् ॥ तत्र पूर्ववत्संकल्पांते उपयमनात्कुशानादाय सव्ये कृत्वा दक्षिणकरेण तिस्रः समिधोऽग्नावाधाय मणिकोदकेन पर्युक्ष्याग्निमर्चयित्वाग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति सायं दध्ना तंडुलैर्वा हुत्वा प्रातस्तथैव सूर्याय प्रजापतये च जुहुयात् ॥ समास्त्वेत्यनुवाकेन सायमुपस्थानं प्रातस्तु विभ्राडित्यनुवाकेन ॥ अत्र दधिहोमादौ संस्रावप्राशनमाहुः ॥ होमलोपेऽष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः ॥ मुख्यकालातिक्रमे अनादिष्ट होमः ॥ अथ होमद्रव्याणि ॥ व्रीहिश्यामाकयवानां तंडुलाः पयोदधिसर्पिर्यवव्रीहिगोधूमप्रियंगवः स्वरूपेणापि होम्याः ॥ तिलास्तु स्वरूपेणैव ॥ तंडुलादयः शतसंख्याहस्तेन होतव्याः ॥ दध्यादिद्रवद्रव्यं स्रुवेण ॥ सर्वत्रोत्तराहुतिः पूर्वतो भूयसी ॥ समिधश्चार्कपलाशखदिरापामार्गपिप्पलोदुंबरशमीदूर्वादर्भमया दश द्वादशांगुलाः सत्वचः वटप्लक्षबिल्वादिजा हेमाद्रौ ॥ होमाहुत्योः संसर्गे यत्र वेत्थेति मन्त्रेणाग्नये समिद्धोमः ॥

अब कात्यायनोंके होम० । इनके यहां सायंकालको अस्तहोनेपर होमकहा है। और प्रातःकालको सूर्योदयसे प्रथम होम होताहै। उसमें प्रातःकाल उपस्थानपर्यंत संध्याको करके होमके अंतमें गायत्रीके जपआदि संध्याको समाप्त करै। उसमें पूर्वके समान संकल्पके अंतमें उपयमन कुशाओंको सव्यमें लेकर गिनकर तीनसमिधें दक्षिण हाथसे लेकर अग्निमें रखकर माणिकके जलसे पर्युक्षण (सेचन) करके अग्निको पूजकर 'अग्नयेस्वाहा, प्रजापतयेस्वाहा' इस मंत्रसे सायंकालको दही वा तंडुलोंसे होमकरके प्रातःकालको, तिसीप्रकार सूर्य प्रजापतिके निमित्त होम करै। 'समास्त्व०' इस अनुवाकसे सायंकालको और 'विभ्राड्०' इस अनुवाकसे प्रातःकालको उपस्थान करै। यहां दहीके होम आदिमें संस्रवके प्राशन (भक्षण) को कोई कहतेहैं। होमके लोपमें अष्टोत्तरसहस्र (१००८) गायत्रीका जप करै। मुख्यकालके अतिक्रमणमें अनादिष्ट होमको करै। अब होमके द्रव्योंको कहतेहैं। कि, विना छिकलेके व्रीहि, श्यामक, जौं, दूध, दही, घी, जौ व्रीहि, गेहूं, प्रियंगु इनका तो स्वरूपसे भी होमकरै। और तिलभी स्वरूपसे होम करने योग्यहैं। सौ तंडुलोंकी आहुति हाथसे दे। दधि आदि द्रव्यका होम स्रुवसे करै। सब जगह उत्तर आहुतियोंसे पहिली आहुति भारी होतीहै। समिध तो ये हैं कि, आक, ढाक, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा, कुशा ये सब दश वा बारह, अंगुलकी त्वचा सहित हों, बड, पिलखन, बेल, आदिकी हेमाद्रिमें कही है। होम और आहुतिके संसर्गमें 'यत्र वेत्थ०' इसमंत्रसे अग्निमें समिधका होम करै ॥

अथ होमलोपे प्रायश्चित्तम् ।

नित्यहोमे त्वतिक्रांते आज्यं संस्कृत्य चतुर्गृहीत्वा मनोज्योतिर्जुषतामिति जुहुयात् ॥ द्वादशदिनपर्यंतं होमलोपे इदमेव प्रायश्चित्तम् ॥ ततः परमग्निनाशः ॥ एवं होमलोपप्रायश्चित्तं कृत्वातिक्रांतहोमार्थं द्रव्यं संस्कृत्य सायं प्रातः क्रमेण द्वेद्वे आहुती दिनगणनया जुहुयात् ॥ अग्निसूर्यप्रजापतीनुपतिष्ठेन्न वा जुहुयात् ॥ प्रायश्चित्तेन चारितार्थ्यात् ॥ सूतकादिना होमलोपेप्येवम् ॥ हिरण्यकेशीयानामप्येवम् ॥ आपस्तंबादीनां त्रिरात्रात्परमग्निनाशो भवतीति सूतकेपि स्वयं होमः कार्यः ॥ समारोपोत्तरं सूतकपाते प्रत्यवरोहासंभवेन त्रिरात्रं होमलोपे पुनराधानम् ॥ अथ समस्य होमः ॥ सायं प्रातर्होमौ समस्य करिष्ये ॥ पूर्ववत्सायंकालहोमांतं कृत्वा पर्युक्ष्य पुनर्द्रव्यं संस्कृत्य समिधं प्रक्षिप्य सूर्यप्रजापत्याहुतीर्दत्त्वा हविष्पांतमित्युपतिष्ठेत् ॥ हविष्पांतमिति पंचर्चस्य वामदेवः सूर्यवैश्वानरौ त्रिष्टुप् ॥ नित्यवत्प्रजापत्युपस्थानम् ॥

नित्यहोमका अतिक्रमण होजाय तो घीका संस्कार करके चार वार ग्रहण करके 'मनोज्योतिर्जुषतां०' इस मंत्रसे होमकरै । बारह दिनतक होमका लोप होजाय तो यही प्रायश्चित्तहै । उससे परे अग्निका नाश होजाता है । इस प्रकार होमके लोपका प्रायश्चित्त करके अतिक्रांतहोमके लिये द्रव्यका संस्कार करिके सायंकाल और प्रातःकाल दो दो आहुति दिनकी गणना करिके दे । अग्नि, सूर्य, प्रजापति इनका उपस्थान करै होमको न करै क्योंकि, प्रायश्चित्तसे ही होम चरितार्थहै । सूतक आदिसे होमका लोप होजाय तो उसमें भी इसीप्रकार समझना । हिरण्यकेशीयोंके मतमें भी इसीप्रकार है । आपस्तम्बआदिके तो तीनरातसे परे अग्निका नाश होजाताहै इससे सूतकमें भी स्वयं होम करना । समारोपसे पीछे सूतक आनपडै तो प्रत्यवरोह हो नहीं सक्ता इससे तीन राततक होम लोप होजाय तो पुनः अन्वाधान करना । अब समस्य होमको कहतेहैं । सायंकाल प्रातःकालके होमोंको संक्षेपसे करताहूं । पूर्वकी समान सायंकालके होमपर्यंत कर्मको करिके फिर प्रोक्षणकर फिर द्रव्यका संस्कार करिके और समिधको रखकर सूर्य, प्रजापतिके लिये आहुति देकर 'हविष्पान्तं०' इसमंत्रसे उपस्थान करै । 'हविष्पान्तं०' इन पांच ऋचाओंका वामदेव ऋषि, सूर्य वैश्वानर देवताहैं, त्रिष्टुप् छन्दहै । उपस्थानमें विनियोगहै ॥ नित्यकी समान प्रजापतिका उपस्थान करै ॥

अथ पक्षहोमः ।

प्रतिपदि ॥ अद्य सायमारभ्य चतुर्दशीसायमवधिकान् पक्षहोमान् तन्त्रेण करिष्ये ॥ सायं तण्डुलान् पात्रद्वये वृद्धिक्षयानुसारेण चतुर्दशादिवारं गृहीत्वा होमकालेग्नये स्वाहेति सर्वान्पूर्वपात्रस्थानेकदैव हुत्वा द्वितीयपात्रस्थान् प्रजापतये तथैव जुहुयात्॥एवं द्वितीयायां प्रातरद्यावधि पर्वप्रातरवधिकान् पक्षहोमान् तन्त्रेण करिष्य इत्यादि सायंवत् ॥ विशेषस्तु प्रथमपात्रस्थान्सूर्याय स्वाहेति जुहुयात् ॥ द्वितीय–

पात्रस्थान्प्रजापतये हुत्वोभयत्र समिदेकोपस्थानादि सकृत ॥ पक्षमध्ये आपत्प्राप्तौ तत्सायंकालाच्चतुर्दशीसायंपर्यंतान् शेषहोमान् सायं पक्षहोमवद्धुत्वा पर्वप्रातर्होमांतान् प्रातर्जुहुयात् ॥ सर्वथा पर्वसायंहोमः प्रतिपत्प्रातर्होमश्च पृथगेव ॥ इति पक्षहोमशेषहोमौ ॥ पक्षमध्ये आपन्निवृत्तावपकृष्टा होमाः पुनः कार्याः ॥ संततपक्षहोमत्रयेऽग्निनाशात्तृतीये पक्षे प्रतिदिनं होमः ॥ सर्वथापन्निवृत्त्यभावे यावज्जीवं पक्षहोमाः ॥

अब पक्षहोमको कहतेहैं । प्रतिपदाके दिन आज सायंकालसे लेकर चतुर्दशीके सायंकालपर्यंत जो पक्षहोम हैं उनको तन्त्रसे करताहूं । सायंकाल तण्डुलोंको दो पात्रोंमें तिथिके वृद्धि और क्षयके अनुसार चतुर्दश आदि वार लेकर होमके समय 'अग्नये स्वाहा' इसमन्त्रसे पूर्वपात्रमें रक्खेहुए तंडुलोंको एककालमें ही होम करिके द्वितीयपात्रमें स्थित तंडुलोंको प्रजापतिके लिये तिसीप्रकार होम दे । इसीप्रकार द्वितीयाके दिन आजसे लेकर पर्व (पू-१५-३०अ०) के प्रातःकालपर्यन्तके होमको तन्त्रसे करताहूं इत्यादिरीतिसे सायंकालकी समान करै । जो पात्रमें अधिक रहजाय तो 'सूर्याय स्वाहा०' इसमन्त्रसे होम दे । इसीप्रकार द्वितीयपात्रके शेष अन्नको प्रजापतिके होमको करिके एक समिधका उपस्थान आदि सकृत् करै जो सकृत् कर्मके मध्यमें कोई आपत्ति आनपड़ै तो तिस सायंकाल से लेकर चतुर्दशीके सायंकालपर्यंत शेषहोमको सायंकालके होमके समान करिके पर्वके प्रातःकालतकके जितने होम हैं उनको पर्वके प्रातःकालमें करै । सर्वथा पर्वके सायंकालका होम और प्रतिपदाका प्रातःकालिक होम पृथक् ही करना । यह पक्षहोम और शेषहोमकी विधि समाप्त हुई । जब पक्षमें आपत्तिकी निवृत्ति होजाय तब अपकृष्ट होमको पुनः करै । जो तीनों होमोंके पक्षहैं उनमें अग्निनाशसे तृतीयपक्षमें प्रतिदिन होम करना । जो सर्वथा आपत्ति की निवृत्ति न होय तो जीवनपर्यंत पक्षहोमोंको करै ॥

अथ समारोपः ।

अयं ते योनिरित्यस्य विश्वामित्रोऽग्निरनुष्टुप् ॥ अग्निसमारोपे वि० ॥ अनेन मंत्रेण होमोत्तरमरणीमश्वत्थसमिधं वा प्रताप्याग्निसमारोहं तत्र भावयेत् ॥ होमादिकाले अरणीं निर्मथ्य प्रत्यवरोहेति मंत्रेण स्थंडिलेऽग्निं प्रतिष्ठापयेत ॥ समित्समारोप श्रोत्रियागारादग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रत्यवरोहेति मंत्रेण तां समिधमग्नावादध्यात ॥ सूत्रांतरे आजुह्वान उद्बुध्यस्वेति मंत्राभ्यां प्रत्यवरोहणम् ॥ प्रत्यहं समारोपादिद्वादशदिनमेव ॥ पर्वणि सायंतनहोमकालपर्यंतं प्रत्यवरोहणाभावेऽग्निनाश इति केचित ॥ समारोपप्रत्यवरोहौ यजमानकर्तृकावेव ॥ तेन समारोपोत्तरं पर्वण्याशौचप्राप्तौ प्रत्यवरोहासंभवादग्निनाशः ॥ एतत्रिदिनं होमलोपे विहितपुनराधानानामापस्तंबादीनामेव ॥ आश्वलायनानां तु द्वादशरात्रमध्ये पर्वणि प्रत्यवरोहाभावेपि नाग्निनाशः किं तु द्वादशरात्रोत्तरं होमलोप एवेत्यपरे ॥ आश्वलायनानां तु द्वादशदिनं होमलोप एवाग्निनाशः ॥ राजकांत्यादिसंकटे ऋत्विग्द्वारापि समारो-

पादि ॥ केचिदृत्विगाद्यभावेनानन्यगतिकत्वे आशौचपातात्पूर्वं पर्वहोमसहितानपि होमानपकृष्य कृत्वा न कृत्वा वा समारोपं कृत्वा सूतकांते प्रत्यवरोहः कार्यो नात्र पर्वोल्लंघनदोष इत्याहुः ॥

अब समारोपोंको कहतेहैं। 'अयं ते योनिः' इस मन्त्रका विश्वामित्र ऋषि और अग्नि देवता अनुष्टुप् छंदहै अग्निसमारोपमें विनियोगहै। इस मंत्रसे होमकिये पीछे अरणि, पीपल, वा समिधको अग्निके ऊपर तपाकर तहां अग्निके समारोपकी भावना करै। होमआदिके समय अरणिको मंथकर 'प्रत्यवरोह०' इस मंत्रसे स्थण्डिलपर अग्निको स्थापन करै। समिधके समारोपके विषयमें श्रोत्रियके घरसे समिधको लाकर अग्निका स्थापन करिके 'प्रत्यवरोह०' इस मंत्रसे उस समिधको अग्निमें स्थापनकरै। और अन्य सूत्रमें "आजुह्वान उद्बुध्यस्व०" इन मंत्रों से प्रत्यवरोहण करना कहा है। यहां समारोप आदि प्रतिदिन बारहदिनतक करना। पर्वके विषे सायंकालके होमकालपर्यन्त जो प्रत्यवरोह न होय तो अग्निका नाश होजाताहै यह कोई कहतेहैं। समारोप और प्रत्यवरोह इनको यजमानही स्वयंकरै तिससे जो समारोप किये पीछे पर्वके दिन आशौच आनलगै तो प्रत्यवरोहके अभावसे अग्निका नाश होजाताहै। यह तीन दिनमें होमके लोप होनेपर अग्निका नाश जिन्होंने पुनराधान कियाहै उन आपस्तम्बों के लिये है और आश्वलायनोंको तो द्वादशरात्रके मध्यमें पर्वमें प्रत्यवरोह न होसकै तोभी अग्निका नाश नहीं होता और कोई तो यह कहतेहैं कि, द्वादशरात्रसे पीछे होमका लोपही होजाता है। और आश्वलायनोंको द्वादशदिनतक होमका लोप होजाय तबभी अग्निका नाश होजाताहै। राजदण्ड आदि संकट आनलगै तो ऋत्विक् द्वारा भी समारोप आदि करै। और कोई तो यह कहतेहैं कि, ऋत्विक् आदिके न होनेपर जो समारोप आदि अनन्यगतिक होय तो आशौच होनेसे पूर्व पूर्व होमसहित होमोंका अपकर्षसे अनुष्ठान करिके अथवा विना किये समारोपकरिके सूतकके अन्तमें प्रत्यवरोहको करै यहां पर्वके उल्लंघनका दोषनहीं॥

अथ यजमानस्य प्रवासोपस्थितौ।

समारोपोत्तरं दंपत्योः प्रवासे सीमानद्योरुल्लंघनकाले उभाभ्यामन्यतरेण वा समिदाद्यन्वारंभः कार्यः ॥ अन्यथाग्निनाशः ॥ यजमानस्यैव प्रवासे कृत्यम् ॥ अभयं वोभयं मेस्त्विति अग्निमुपस्थाय प्रवासं गच्छेत् ॥ तत आगत्य गृहामाबिभीतोपवः स्वस्त्येवोस्मासु च प्रजायध्वं मा च वो गोपतीरिषदिति मन्त्रेण स्वगृहं निरीक्ष्य ॥ गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरघ्नो वीरवतः सुवीरान् ॥ इरां वहंतो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनाः संविशानीति गृहं प्रविश्य शिवं शग्मं शंयोरिति पुनस्त्रिरनुवीक्ष्य नित्यहोमांते अभयं वोभयं मेस्त्वित्यग्निमुपतिष्ठेत् ॥ ज्येष्ठपुत्रशिरः पाणिभ्यां परिगृह्य अंगादंगात्संभवसीति मन्त्रं जपित्वा मूर्द्धानं त्रिर्जिघ्रेत् ॥ एवमितरपुत्राणाम् ॥ प्रत्तकन्यानां तूष्णीं जिघ्रेत् ॥ प्रवासादागतं प्रतिज्ञातमपि अप्रियं तद्दिने न वदेयुः ॥ प्रोषिते पत्यौ पत्नी स्मार्तहोमौ स्वयं कृत्वा दर्शपूर्णमासस्थालीपाकपिंडपितृयज्ञान्विप्रेण कारयेत् ॥ अनुगतप्रायश्चित्तादिपत्न्यां रजस्वलायामपि ऋत्विक्कुर्यात् ॥ पुनः संधानं तु पत्यौ प्रोषिते न भवेत् ॥ नैमित्ति-

काजातेष्टिगृहदाहेष्टयोपि न भवंति ॥ प्रायश्चित्तेष्टः पूर्णाहुतिः ॥ अथोपासनाग्न्यनुगमने गृह्याग्नेरनुगमनप्रायश्चित्तं करिष्य इति संकल्प्य आयतनस्थं भस्म दूरीकृत्योपलेपादि कृत्वाग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यं संस्कृत्य अयाश्चेति मन्त्रेणैकामाज्याहुतिं सर्वप्रायश्चित्तं च हुत्वा दंपत्योरन्यतरेणादरहोमकालपर्यंतमुपोषितेन स्थातव्यम् ॥ एवं द्वादशरात्रपर्यंतम् ॥ केचिदुपवासमयाश्चेति होमं वा कुर्यात् न द्वयमित्याहुः ॥ एतद्वृत्तिकारमतम् ॥ केचित्तु यद्यग्न्यनुगमने होमकालद्वयातिक्रमस्तदा नष्टाग्निसंधानम् ॥ तत्र त्रिरात्रमग्निनाशे प्राणायामशतम् ॥ तत आविंशतिरात्रमेकदिनोपवासः ॥ तत आमासद्वयं त्रिरात्रोपवासः ॥ तत ऊर्ध्वं संवत्सरपर्यंतं प्राजापत्यकृच्छ्रम् ॥ ततः प्रतिवर्षं कृच्छ्रावृत्तिः ॥ एवं प्रायश्चित्तं कृत्वा आधानोक्तसम्भारान्निधाय नष्टस्य गृह्याग्नेः प्रायश्चित्तं करिष्य इति संकल्प्यायाश्चेत्याज्येन स्रुवाहुतिपत्न्युपवासादि पूर्ववत् लाजाहोमादिकं वा ॥ एवं द्वादशरात्रपर्यंतमग्न्युत्पत्तिरित्याहुः ॥ द्वादशदिनोत्तरं विच्छेदप्रायश्चित्तं होमादिद्रव्यदानं च कृत्वा विवाहहोमादिविधिना यथास्वस्वगृह्यं पुनः संधानम् ॥ अथान्वाहिताग्नेः प्राक् यागादनुगतौ अयाश्चेति पूर्ववदग्निमुत्पाद्य पुनरन्वाधानं कृत्वा भूर्भुवः स्वरित्युपस्थाय सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वा स्थालीपाकं कुर्यात् ॥ अन्वाधानोत्तरं प्रयाणप्राप्तौ तुभ्यं ता अंगिरस्तम इत्याज्याहुतिमग्नये हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वाग्निं समारोप्य गच्छेत् ॥ 'समारूढे समिन्नाशे पुनराधेयमिष्यते ॥' उपलेपादिकं कृत्वा नष्टाग्निप्रायश्चित्तं पुनराधेयं संकल्प्य आधानोक्तसंभारान्निधायाग्निं प्रतिष्ठाप्य अयाश्चेतिस्रुवाज्याहुतिं सर्वप्रायश्चित्तं च जुहुयादिति पुनराधेयम् ॥ स्वाग्निभ्रमेणान्याग्नौ स्वयं यजने स्वाग्नावन्ययजने वा पथिकृत्स्थालीपाकं करिष्ये इति संकल्प्य चरुः कार्योथ वा पथिकृत्स्थाने पूर्णाहुतिं होष्यामीति संकल्प्य स्रुचि द्वादशवारं चतुर्वारं वाज्यं गृहीत्वा अग्नये पथिकृते स्वाहेति जुहुयात् ॥ विवाहोत्तरमाधानोत्तरं वा पौर्णमास्यां स्थालीपाकारंभः ॥ प्रतिपदि यागोतिक्रांतश्चेदागामिपर्वपूर्वतिथिषु चतुर्थीनवमीचतुर्दशीद्वितीयापंचम्यष्टमीर्विहाय कार्यः ॥ नात्र कालातिक्रमप्रायश्चित्तम् ॥ अन्वाधानोत्तरं प्रतिपदीष्ट्यकरणे तृतीयादितिथिषु सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वा पुनरन्वाधाय यागः ॥ द्वितीयपर्वप्राप्तौ अतीतेष्टिः पथिकृच्चरुपूर्वकं पर्वणि कार्या ॥ तत्राप्यतिक्रमे द्वितीयप्रतिपदि लुप्तेष्टेः पादकृच्छ्रं कृत्वा प्राप्तकालयागः ॥ द्वितीययागस्यापि आगामितिथिषु लोपे तत्पर्वणि पादकृच्छ्रपथिकृत्पूर्वकं द्वितीययागः ॥ तत्राप्यतिक्रमे तृतीयप्रतिपदि अर्धकृच्छ्रं यागद्वयस्य कृत्वा प्राप्तयागः ॥ तृतीययागस्योक्ततिथावर्धकृच्छ्रपथिकृत्पूर्वकं चतुर्थपर्वणि वाऽकरणे अग्निनाशात्पुनराधेयम् ॥ अत्र पुनराधेयस्वरूपं संभारनिधानपूर्वकमयाश्चेतिस्रुवाज्याहुतिरित्यन्वारूढसमिन्नाशस्थले उक्तमेव ॥

पुनराधानं तु विवाहहोमादिरूपं पुनराधेयाद्भिन्नम् ॥ आयतनाद्बहिः शम्यापरासात्प्राक् वह्निपाते इदं त एकमित्यृचा तमायतने प्रक्षिप्य सर्वप्रायश्चित्तं जुहुयात ॥

समारोपसे पीछे जो स्त्रीपुरुषोंको परदेश जाना पड़ै तो सीमाआदिके उलंघन समय दोनोंमेंसे कोई समिधआदिका अन्वारंभ करै नहीं तो अग्निका नाश होजाताहै। प्रवासमें यजमान एकाकीही जाय तो यह कृत्यकरै। कि, 'अभयंवोऽभयंमेस्तु' इस मन्त्रसे अग्निका उपस्थान करके प्रवासमें गमन करै। फिर परदेशसे आनकर "गृहामाबिभीतोपव:स्वस्त्येवोस्मासुचप्रजायध्वंमाचवोगोपतीरिषत्०" इस मन्त्रसे अपने घरको देखकर "गृहानहंसुमनस:प्रपद्येवीरघ्नोबीरवत:सुवीरान्। इरांवहंतोघृतमुक्षमाणास्तेष्वहंसुमना:संविशानि" इस मन्त्रसे घरमें प्रवेशकरके 'शिवं शग्मं शंयोशंयो०' इस मन्त्रसे फिर तीनवार देखकर नित्यहोमके अन्तमें 'अभयंवोभयंमेस्तु०' इस मन्त्रसे अग्निकी स्तुति करै। ज्येष्ठपुत्रके शिरको हाथोंसे ग्रहण करके "अंगादंगात्संभवसि" इसमन्त्रको जपकर तीनवार उसके मस्तकको सूंघै। इसीप्रकार अन्यपुत्रोंके सूंघै और विवाहित कन्याओंके मस्तकको तूर्ष्णीं सूंघै। परदेशसे आये मनुष्यको प्रतिज्ञा किये हुयेभी अप्रियवचनको उस दिन न कहै। पतिके परदेश जानेपर पत्नी स्मार्त होमोंको स्वयं करके दर्श, पूर्णमास, स्थालीपाक, पिंडपितृयज्ञ इनको ब्राह्मणसे करावै। प्राप्तहुये प्रायश्चित्तआदिको पत्नीके रजस्वला होनेपर ऋत्विज, स्वयं करै। पुन:संधान तो पतिके परदेशजानेपर नहीं होता। और नैमित्तिक जो जातेष्टि,गृहदाहेष्टि आदिहैं वे भी नहीं होतीं। प्रायश्चित्तेष्टिकी पूर्णाहुति होतीहै अब आपासन अग्निके अनुगमनमें कहतेहैं गृह्यअग्निके अनुगमप्रायश्चित्तको करताहूं यह संकल्पकरके अग्निके स्थानकी भस्मको दूरकरके लेपनआदिको करके अग्निस्थापन, घीका संस्कार, करके 'अयाश्च०' इस मन्त्रसे एक घीकी आहुति और सर्वप्रायश्चित्तको होमकर स्त्रीपुरुषमेंसे कोई एक होमकालपर्यंत उपासा रहै। इसप्रकार द्वादशरात्रपर्यंत करै। कोई तो यह कहतेहैं कि, उपवासकरै वा 'अयाश्च०' इससे होमकरै दोनोंको न करै। यह वृत्तिकारका मतहै। कोई तो यह कहतेहैं कि, यदि अग्निके अनुगमनमें दो होमके कालोंका अतिक्रमण होय तो तब नष्ट अग्निका संधान करै। वहां तीन रात्रितक अग्निके नाशमें सौ प्राणायाम कहेहैं, फिर बीसरात्रिपर्यंत अग्निके नाशमें एकदिन उपवासहै, फिर दोमासपर्यंत तीनरात्रि उपवासह, उससे आगे वर्षदिनपर्यंत प्राजापत्यकृच्छ्रहै। फिर प्रतिवर्ष कृच्छ्रकी आवृत्ति करै। इसप्रकार प्रायश्चित्त करके आधानमें कहेहुये संभारों (सामग्री) को रखकर नष्टहुई अग्निके प्रायश्चित्तको करताहूं यह संकल्प करके 'अयाश्च०' इसमन्त्रसे घीके स्रुवेको आहुति और पत्नीके उपवासआदि पूर्वके समान हैं। वा लाजाहोम आदिको करै। इसप्रकार द्वादशपर्यंत करनेसे अग्निकी उत्पत्ति होतीहै। द्वादशदिनके पीछे अग्निके नाशका प्रायश्चित्त और होम आदि द्रव्यका दान करिके विवाहके होमकी विधिसे अपने अपने गृह्यके अनुसार पुन:सन्धान करै। अब अन्वाहिताग्निको यहांसे पहिले अनुगति होय तो 'अयाश्च०' इसमन्त्रसे पूर्ववत् अग्निको उत्पन्न करिके और पुन: अन्वाधान करिके 'भूर्भुव:स्व:०' इसमन्त्रसे उपस्थान करिके सर्वप्रायश्चित्त होम करिके स्थालीपाकको करै। अन्वाधानके पीछे यात्रा प्राप्त होय तो 'तुभ्यं ताअंगिरस्तम:०' इसमंत्रसे घीकी आहुति अग्निके हेतु देकर सर्वप्रायश्चित्तहोम करिके समारोप करिके गमन करै। अग्निके समारूढहोनेपर समिधका नाश होजाय तो पुन: आधान करै कि, लेपनआदि करिके नष्टाग्निके

प्रायश्चित्तका और पुनः आधेयका संकल्प करिके आधानमें कहीहुई सामग्रियोंको इकट्ठी करिके अग्निका स्थापन करिके स्रुवेसे 'अयाश्च०' इसमन्त्रसे घीकी आहुति और सर्वप्रायश्चित्त आहुतियोंस होमकरै यह पुनः आधेय अपनी अग्निके भ्रमसे अन्यकी अग्निमें स्वयं यज्ञकरनेमें और अपनी अग्निमें अन्यके यज्ञकरनेमें होताहै। पथिकृत् स्थालीपाकको करूंगा ऐसा संकल्प करके चरु बनाना अथवा पथिकृत्अग्निके स्थानमें पूर्णाहुतिका होम करूंगा यह संकल्प करिके स्रुवेसे द्वादशवार वा चारवार घीको ग्रहण करिके 'अग्नये पथिकृते स्वाहा०' इसमन्त्रसे होमकरै। विवाहके पीछे आधानके अनंतर वा पूर्णिमामें स्थालीपाकका आरंभ करै। प्रतिपदामें यागका अतिक्रम होगया होय तो आगामी पर्वसे पहिली जो चतुर्थी नवमी चतुर्दशी द्वितीया पंचमी अष्टमी इनसे भिन्न तिथिहैं उनमें यागकरै। इसमें कालके अतिक्रमणका प्रायश्चित्त नहीं। अन्वाधानके पीछे प्रतिपदामें इष्टि न करै तो तृतीयाआदि तिथियोंमें सर्वप्रायश्चित्तहोमके अनन्तर पुनः अन्वाधानको करिके याग करै। दूसरा पर्व आजाय तो अतीतेष्टिको पथिकृत् चरु बनाकर पर्वमें करै। उसमें भी अतिक्रम होजाय तो दूसरी प्रतिपदामें लुप्तेष्टिका पादकृच्छ्र प्रायश्चित्तकरिके प्राप्तकालमें यागकरै। द्वितीय यागका भी आगामी तिथियोंमें लोप होजाय तो उसके पर्वमें पादकृच्छ्र पथिकृत् चरुके अनंतर द्वितीय याग करै। उसमेंभी अतिक्रम होजाय तो तीसरी प्रतिपदामें दोनों यागोंके अर्धकृच्छ्र प्रायश्चित्तको करिके प्राप्तकालमें याग करै। तीसरे यागका उक्ततिथिमें अर्धकृच्छ्र पथिकृत् चरुके अनन्तर अर्थात् अर्द्धकृच्छ्र करिके न करै तो, वा चौथे पर्वमें भी न करै तो अग्निके नाशसे पुनः आधान करै। यहां पुनः आधानका स्वरूप सामग्रियोंके स्थापनपूर्वक 'अयाश्च०' इसमन्त्रसे स्रुवेसे घीकी आहुतिरूप जो है वह अन्वारूढ समिधके नाशस्थलमें कहही आये। पुनः आधान तो विवाहहोम आदिरूप पुनः आधेयसे भिन्नहै स्थानसे बाहिर शम्यापरासात्प्राक्से पूर्व वह्निके पातमें 'इदन्तएकं०' इस ऋचासे उस अग्निको स्थानमें रखकर सर्वप्रायश्चित्तहोमको करै॥

अथ पर्वणि व्रतलोपेऽश्रुपाते च।

पर्वणि व्रतलोपेऽग्नये व्रतपतये चरुः पूर्णाहुतिर्वा॥ पर्वणि दंपत्योरन्यतराश्रुपातेऽग्नये व्रतभृते चरुः पूर्णाहुतिर्वा॥ पवित्रनाशेऽग्नये पवित्रवते चरुः पूर्णाहुतिर्वा॥ अन्वाधानेष्टिमध्ये चंद्रग्रहणेऽत्राह गौरिति चंद्रायाज्यं हुत्वा नवो नव इत्युपस्थायेध्माधानादियागः॥ सूर्योपरागे उद्वयमिति सूर्यायाज्यं हुत्वा चित्रं देवानामित्युपस्थानम्॥ अन्वाधानोत्तरं स्वप्ने रेतोविसर्गे इमं मे वरुण तत्त्वायामीति वरुणाय द्वे आज्याहुती रविपूजा॥ पुनर्मामैत्विति सौत्रमंत्रयोर्जपश्च॥ बुद्ध्या रेतोविसर्गेऽग्निव्रतपतिचरुः॥ अन्यदा स्वप्ने रेतोविसर्गे सूर्यनमस्कारत्रयम्॥ इध्माधानोत्तरं हविर्दोषे दुष्टस्थाने आज्यं प्रतिनिधिं कृत्वा यागं समाप्य दुष्टं जले त्यक्त्वान्वाधानादिस्तद्देवताकः पुनर्यागः॥ इध्माधानात्पूर्वं हविर्दोषे तद्देवताकं हविः पुनरुत्पाद्य यागः॥ स्विष्टकृदर्थहविर्दोषे आज्येन स्विष्टकृतं कुर्यात्॥ अंगहविर्दोषे तदाज्यं पुनरुत्पादयेत्॥ हविर्दोषास्तु॥ प्रच्युतनखकेशैः कीटै रक्तास्थिविण्मूत्रश्लेष्माद्यै-

र्बीभत्सितैश्च मार्जारनकुलकाकैर्मुखजलबिंदुघर्मनासिकामलाश्रुकर्णमलैः सूतिका-रजस्वलाचांडालादिदृष्टिभिश्च संसर्गाः ॥ देवताहविर्मंत्रादिविपर्यासे यद्वो देवा इति मरुद्भ्य आज्यहोमः ॥ कृत्स्नहविर्दाहे तद्धविरुत्पाद्य स एव यागो न तु पुनर्यागः ॥ पूर्वादिचतुर्दिक्षु चरूत्सेके अग्नये यमाय वरुणाय सोमायेति क्रमेण हुत्वा सर्वत उत्सेके चतुर्भ्योपि हुत्वा कोणेषूत्सेके व्याहृतीर्हुत्वा चरुमाप्यायस्वसंतेपयांसीति मंत्राभ्यामाज्येनाप्याययति ॥ अग्नौ मिंदाहुती च द्वे इति केचित् ॥ स्वगृह्याग्नेरन्यगृह्याग्निना संसर्गे उभौ यजमानौ युगपत्तमग्निं समारोप्योभौ प्रत्यवरोहणं कृत्वाऽग्नये विविचये चरुं कुर्याताम् ॥ शवाग्निना संसर्गेऽग्नये शुचये चरुः पचनाग्निना संसर्गे संवर्गायाग्नये चरुः सर्वत्र संसर्गे समारोपप्रत्यवरोहणोत्तरं चरुः स्वयमग्निप्रज्वलने उद्दीप्यस्व जातवेदो० मानोहि ँ सीर्जातवेदो गामश्वं पुरुषं जगत् ॥ अबिभ्रदग्न आगहि श्रियामा परिपातयेति द्वाभ्यां द्वे समिधावग्नये जुहुयात् ॥ सर्वत्र विध्यपराधे सांगतार्थं सर्वप्रायश्चित्तम् ॥ गृहदाहेग्नये क्षामवते चरुः ॥ एवमन्यान्यपि प्रायश्चित्तानि बह्वृचब्राह्मणादिषूक्तानि ज्ञेयानि ॥ यत्र तु प्रायश्चित्तविशेषो नोक्तस्तत्र सर्वप्रायश्चित्तम् ॥ भूर्भुवःस्वरित्यनेनाज्याहुतेः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञा ॥

अब पर्वमें व्रतलोपके वा अश्रुपातके विषयमें प्रायश्चित्तहोमको कहतेहैं। पर्वमें व्रतका लोप होनेपर व्रतके पति अग्निको, चरु, वा पूर्णाहुति दे। पर्वकालमें स्त्रीपुरुषोंके बीचमें किसीके भी आंसू गिरैं तो 'अग्नये०' इसमन्त्रसे चरुहोम वा पूर्णाहुतिहोम करै। और पवित्रके नाशमें 'अग्नये पवित्रवते०' इस मन्त्रसे चरु वा पूर्णाहुति होम करना। अन्वाधान इष्टिके मध्यमें चन्द्रमाका ग्रहण होजाय तो 'अत्राहगौः०' इसमंत्रसे चन्द्रमाके निमित्त घीका होम करिके 'नवो नवः०' इसमन्त्रसे उपस्थान करिके इध्मके आधान आदि यागको करै। सूर्यका ग्रहण होय तो 'उद्वयं०' इस मन्त्रसे सूर्यको घीकी आहुति देकर 'चित्रंदेवानां०' इसमंत्रसे सूर्यका उपस्थान करै। अन्वाधानके पीछे स्वप्नमें वीर्यका पात होजाय तो 'इमम्मेवरुण० तत्त्वायामि०' इन दो मंत्रोंसे वरुणके निमित्त दो घीकी आहुतिदे। सूर्यकी पूजा। 'पुनर्मां०' इन सूर्यके मन्त्रोंका जप करै। बुद्धिसे वीर्यका त्याग करै तो व्रतपति अग्निका चरु बनावै। अन्यसमयके स्वप्नमें वीर्यका पात होय तो सूर्यको तीन नमस्कार करै। इध्माधानके पीछे हवि दूषित होजाय तो उस दुष्टस्थानमें आज्यको प्रतिनिधि करिके यज्ञको समाप्तकर दुष्टहविको जलमें फैंककर अन्वाधानसे लेकर उस देवताके यागको पुनः करै। इध्माधानसे हवि दूषित होजाय तो उस देवताके हविको पुनः बनावै। स्विष्टकृदर्थ हवि दुष्टरहते आज्यकरके स्विष्टकृत्को करै। अंग हविदुष्टरहते आज्यको फिर ग्रहण करै। गिरेहुये नख, केश, कीट, रुधिर, अस्थि, मल, मूत्र, श्लेष्म आदिकोंसे और भयानक मार्जार, नकुल, काक, मुखजलबिन्दु, घर्म, नासामल अश्रु, कर्णमल, इनसे सूतिका, रजस्वला, चाण्डाल, आदिकी दृष्टिसे हविमें दुष्टसंसर्ग होताहै। देवता, हवि, मन्त्र आदिके विपर्यय होनेमें 'यद्वोदेवा०' इस मन्त्रसे मरुतोंके निमित्त घीका होमकरै। संपूर्ण हविके दाह होनेपर उस हविको फिर बनाकर उसी

यागको करै पुनः याग न करै। पूर्वआदि चारों दिशाओंमें चरुको छिडकेमें 'अग्नये यमाय वरुणाय सोमाय स्वाहा०' क्रमसे ये आहुति देकर और सर्वत्र हवि छिडके तो चारोंके निमित्त आहुति देकर कोणोंमें चरु छिडकै तो व्याहृतियोंसे होम करिके 'चरुमाप्यायस्व० सन्तेपयांसि०' इन दो मन्त्रोंसे चरुकी आहुति और 'आप्यायस्व०' इसमन्त्रसे घीकी आहुति अग्निमें मिंदाहुति, दो होतेहैं यह कोई कहतेहैं अपनी गृह्याग्निका और दूसरेकी गृह्याग्निका संसर्ग होजाय तो दोनों यजमान एकवार उस अग्निका समारोप करिके और दोनोंही प्रत्यवरोहणको करिके अग्निके पृथक् २ करनेकेलिये चरुको करैं। जो शवकी अग्निके साथ संसर्ग होजाय तो शुचि अग्निके लिये चरु पचनाग्निके साथ संसर्ग होजाय तो संवर्ग अग्निके लिये चरुको सर्वत्र संसर्ग होनेपर समारोप प्रत्यवरोहसे पीछे चरुको होमै। स्वयं अग्निके प्रज्वलन होनेपर 'उद्दीप्यस्व जातवेदो० मानोहिꣳसीजातवेदोगामश्वम्पुरुषंजगत्' 'अविभ्रदग्नआगहि श्रिया मा परिपातय०' इन दो ऋचाओंसे दो समिधाओंको अग्निमें होम दे। संपूर्ण विधियोंके अपराधमें सांगताके लिये सर्वप्रायश्चित्त होमहै गृहदाहमें क्षमावान अग्निकेलिये चरु प्रायश्चित्त, है। इसीप्रकार अन्य भी प्रायश्चित्त बह्वृच ब्राह्मणआदिमें कहेहुए जानने । जहां प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहा वहां सर्वप्रायश्चित्त है। 'भूर्भुवःस्वः' इसमन्त्रसे करी घीकी आहुतिकी सर्वप्रायश्चित्त संज्ञा है॥

अथाग्न्युपघातनिमित्तानि।

श्वसूकररासभकाकसृगालमर्कटशूद्रांत्यजपतितकुणपसूतिकारजस्वलाभिः पुरीषमूत्ररेतोश्रुपूयश्लेष्मशोणितास्थिमांसादिभिरन्यैर्वा जुगुप्सितैरारोपितारणिस्पर्शेऽग्नेः स्पर्शे वाग्निनाशः॥ तत्रारणिगते वह्नौ नष्टे पुनराधेयमग्नेः स्पर्शे पुनराधानं यद्वा पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिंधतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः॥ घृतेन त्वं तन्वँव्वर्धयस्व सत्याः संतु यजमानस्य कामाः स्वाहा॥ आदित्यरुद्रवसुब्रह्मभ्य इदं न ममेति समिद्धोमः स्रुवेणाज्याहुतिर्वा॥ अग्नौ जलोपघातेपीदमेव॥ स्वस्य जीविनो मृतशब्दश्रवणेग्नये सुरभिमतेचरुः पूर्णाहुतिर्वा॥ प्रधानाहुतीनां स्विष्टकृता संसर्गे सर्वप्रायश्चित्तम्॥ पिंडपितृयज्ञेऽतिप्रणीतनाशे तत्राहोमपक्षे सर्वप्रायश्चित्तम्॥ होमपक्षे पुनः प्रणयनमपि॥ आपस्तंबानां प्रायश्चित्तान्ते प्रणयनमेव नित्यम्॥ पिंडपितृयज्ञलोपे वैश्वानरश्चरुः सप्तहोत्राख्यमहाहविर्होतेत्यादिमंत्रैः पूर्णाहुतिर्वा॥

अब अग्निके उपघातनिमित्त प्रायश्चित्तोंको कहतेहैं। श्वा, सूकर, गर्दभ, काक, शृगाल, मर्कट, शूद्र, अन्त्यज, पतित, कुणप, (मुर्दा), सूतिका, रजस्वला इनसे और मल, मूत्र, वीर्य्य, अश्रु, राध, श्लेष्म, रुधिर, अस्थि, मांस आदिसे वा अन्य निन्दितोंसे रक्खीहुई अरणिका स्पर्श होजाय तो वा अग्निका स्पर्श होवै तो अग्निका नाश होताहै । उनमें अरणिपर स्थितहुई अग्निका नाशहोनेपर पुनः आधेयकरै और अग्निके स्पर्शमें पुनराधानकरै यद्वा "पुनःस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिंधतां० पुनर्ब्रह्माणोवसुनीथयज्ञैः घृतेन त्वं तन्वँव्वर्द्धयस्व सत्भाःसन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा आदित्य०रुद्रवसुब्रह्मभ्य इदन्न मम" स्वाहा० इसमन्त्रसे

समिधोंका होम करै वा स्रुवेसे घीकी आहुति दे । अग्निके जलसे नाशहोनेपर भी यही प्रायश्चित्तहै । अपने जीतेहुए मरनेका शब्द सुननेमें सुरभिमान् अग्निकेलिये चरु प्रायश्चित्त है वा पूर्णाहुतिहै प्रधान आहुतियोंका स्विष्टकृत् आहुतिके संगसंसर्ग होनेपर सर्वप्रायश्चित्त होताहै और पिण्डपितृयज्ञ में प्रणीत (स्थित) अग्निके नाशमें उसमें होम न करै तो सर्वप्रायश्चित्त है । और होमकरै तो पुनः प्रणयनभी करै । आपस्तंबोंके यहां तो प्रायश्चित्तके अन्तमें प्रणयनही नित्य है । पिण्डपितृयज्ञके लोपमें वैश्वानर चरुहै अथवा सप्तहोत्रके महाहविर्होता इत्यादि मन्त्रोंसे पूर्णाहुति करै ॥

अथ श्रवणाकर्मलोपे ।

श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुज्याग्रयणप्रत्यवरोहणकर्मणामन्यतमलोपे प्राजापत्यकृच्छ्रम् ॥ अकृताग्रयणस्य नवान्नभक्षणेऽग्नये वैश्वानराय चरुः ॥ अष्टकालोपे उपवासः पूर्वेद्युः श्राद्धलोपेप्युपवासः ॥ उपवासप्रत्याम्नाय एकविप्रभोजनं वा ॥ अन्वष्टक्या लोपे एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिंदुभिरिति ऋचः शतं जपः ॥ सर्वत्र चरुस्थाने पूर्णाहुतिः दर्शपूर्णमासानारंभे आलस्यादिना पूर्णाहुतिकरणे तु यागपर्याप्तं व्रीह्याज्यं देयमिति गृह्याग्निसागरे ॥ निषिद्धतिथ्यादौ स्वभार्यागमने अयाज्ययाजने लशुनादिगणिकान्नाद्यभोज्यभोजने निषिद्धप्रतिग्रहे पुनर्मामैत्विंद्रियम् इमेये धिष्णया स इति द्वाभ्यामाज्यहोमः समिद्धोमो वा जपो वा ॥ गृहोपरि कपोतोपवेशने देवाः कपोत इति पंचर्चसूक्तजपः प्रत्यृचमाज्यहोमो वा पाकयज्ञतंत्रेण ॥ दुःस्वप्नदर्शने यो मे राजन्युज्योवेत्यृचा सूर्योपस्थानम् ॥ आतुरत्वनाशाय यक्ष्मरोगनाशाय वा मुंचामित्वेति सूक्तेन प्रत्यृचं चरोर्होमः यक्ष्मनाशायेदं न ममेति पंचसु त्यागः ॥ षष्ठं स्विष्टकृदिति ॥ प्रोक्षणीप्रणीतास्थजलानां बिंदुपाते स्रावे वा आपोहिष्ठेतित्र्यृचेन पुनः पूरणं ततं मे अपस्तदुतायते इत्यृचाज्याहुतिः ॥ इध्माधानलोपे तस्याज्यभागोत्तरं स्मरणे विपर्यासप्रायश्चित्तं कृत्वेध्माधानं च कृत्वा प्रधान यागः ॥ प्रधानयागोत्तरं स्मरणेऽग्निसमिंधनरूपद्वारस्याभावाल्लोप एवेति प्रायश्चित्तेनैव सिद्धिः ॥ अन्यांगेष्वप्येवमूह्यम्॥

श्रवणाकर्मलोपमें प्रा० कहतेहैं । श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजि, आग्रयण, प्रत्यवरोहण इन कर्मोंमें कोई कर्मके लोपमें प्राजापत्यकृच्छ्र करै । जिसने आग्रयण न कियाहो वह नवान्नभक्षण करले तो वह वैश्वानर अग्निकेलिये चरु बनावै । अष्टकाके लोपमें और पहिलेदिन श्राद्धके लोपमें भी एक उपवास करै । अथवा उपवासका प्रत्याम्नायरूप एक ब्राह्मणको भोजन करावै । अन्वष्टकीके लोपमें, 'एभि र्द्युभिःसुमनाएभिरिंदुभिः०' इस ऋचाको सौवार जपै । सब जगह चरुके स्थानमें पूर्णाहुति करै दर्शपूर्णमासके अनारंभमें और आलस्य आदिसे पूर्णाहुतिके न करनेमें यज्ञके योग्य व्रीहि और घी दे यह गृह्याग्निसारमें लिखाहै । निषिद्ध तिथिआदिमें अपनी भार्याका गमनकरै तो और यज्ञके अयोग्यको यज्ञकरानेमें लशुनआदि और गणिकाके अन्न, आदि अभोज्यके भोजनमें निषिद्ध प्रतिग्रहमें "पुनर्मामैत्विंद्रियम्० इमे

येधिष्णयास०' इन दो ऋचाओंसे घीका होम करै, वा समिध होम करै, वा जप करै। गृहके ऊपर कपोत बैठजाय तो 'देवाःकपोत०' इन पांच ऋचाओंके सूक्तको जपै वा ऋचा २ के प्रति घीका होम करै पाकयज्ञके तंत्रसे दुःस्वप्न दीखै तो 'योमेराजन्युज्योवा०' इस ऋचासे सूर्यकी स्तुतिकरै। आतुरताके नाशार्थ 'मुंचामि त्वा०' इस सूक्तसे ऋचा २ के प्रति चरुका होम करै। यक्ष्मरोगके नाशार्थ 'इदं न मम' यह पांचसे त्याग करै। और छठा स्विष्टकृत् करै। प्रोक्षणी प्रणीताके जलोंमें बिंदु पडजाय तो जल गिरजाय तो 'आपोहिष्ठा०' इस ऋचासे पुनः जलसे पूर्णकरै 'ततं मे अपस्तदुतायते०' इस ऋचासे घृतकी आहुति दे। इध्मके आधानका लोप होजाय तो और उसका आज्यभागके पीछे स्मरण होय तो विपरीत होनेके प्रायश्चित्तको करके इध्माधान करनेके अनंतर प्रधान यागको करै। प्रधानयागके पीछे स्मरणहोय तो अग्निके भलीप्रकार प्रज्वलनरूप द्वारके अभावसे लोप (नाश) ही है इससे प्रायश्चित्तसे ही यज्ञसिद्धि होगी। अन्य अंगोंमें भी इसीप्रकार समझना॥

अथाग्निनाशकानि।

दंपत्योरन्यतरोऽग्निसमीपे उदयास्तमयकाले वसेत्॥ उभौ दंपती गृहसीमां ग्रामसीमां वा नदीं वोल्लंघ्य होमकाले बहिर्वसेतां तदा पुनराधानम्॥ अग्नीनामजस्रहरणे शम्याप्रासात्प्रागुच्छ्वासेऽग्निनाशः॥ कर्मार्थं हरणेऽग्नीनां नानुच्छ्वासादि चोद्यते॥ आत्मसमारोपणपक्षेप्सु मज्जने मैथुने शूद्रादिस्पर्शनेऽग्निनाशः॥ पत्न्यनेकत्वेप्येकस्यामपि होमकाले गृहसीम्नो बहिर्गतायामग्निनाशः ज्येष्ठायामग्निसमीपस्थायां कनिष्ठया सह यजमानप्रवासो न दोषाय॥ दम्पती उभावपि ग्रामगृहयोः सीम्नोर्बहिर्गत्वा होमकालात्पूर्वमागतौ चेन्न दोषः॥ यजमानेऽग्निसमीपस्थेपि होमकाले पत्न्या ग्रामांतरस्थितौ पुनराधानमाहुः॥ प्रवासेन्यतरेण समारूढाग्नेरन्वारंभासत्त्वे नदीसीम्नोरुल्लंघने पुनराधानम्॥ अग्निं विहाय यजमानस्य शतयोजनगमने वर्षपर्यंतं स्वयं होमाभावेऽग्निनाशः॥ तत्र पुनराधानं पवित्रेष्टिर्वा॥ "विनाग्निभिर्यदा पत्नी नदीमंबुधिगामिनीम्॥ अतिक्रमेत्तदाग्नीनां विनाशः स्यादिति श्रुतिः॥" अग्निसमीपे पत्यौ पत्न्यंतरे वा पत्न्या नदीलंघने दोषो न॥ पतिप्रवासे पत्न्या अग्निभिः सह सीमोल्लंघनेऽग्निनाशः॥ एवं पत्युरपि पत्नीप्रवासे जलेन हेतुनाग्निरुपशांतश्चेत्पुनराधेयम्॥ तदैव पुनराधेयमग्नावनुगते सति॥ असमाधाय चेत्स्वामी सीमामुल्लंघ्य गच्छति॥" समारोपणं विना शम्यापरासादूर्ध्वमग्नीनां हरणे नाशः॥" रजोदोषे समुत्पन्ने सूतके मृतकेपि वा॥ प्रवसन्नग्निमान्विप्रः पुनराधानमर्हति॥ बह्वीनामपि चैकस्यामुदक्यायां न तु व्रजेत्॥ एकादशे चतुर्थेह्नि गंतुमिच्छेन्निमित्ततः॥ न चाग्निहोमवेलायां प्रवसेन्न च पर्वणि॥" होमद्वयात्यये दर्शपूर्णमासात्यये पुनराधेयमापस्तंबादिविषयम्॥ "पचनाग्नौ पचेदन्नं सूतके मृतकेपि वा॥ अपक्का तु वसेद्रात्रिं पुनराधानमर्हति" इदं कात्यायनादिपरम्॥ पत्नीप्रवासे पुनराधानमुक्तं तदेकभार्यस्य॥ बहुभार्यस्य

तु ज्येष्ठाप्रवास एव पुनराधानमिति केचित् ॥ एतेषु निमित्तेषु स्थितानग्नीनुत्सृज्यान्येषामाधानम् ॥ आरादुपकारकांगलोपे कर्मसमाप्तेः प्राक् प्रायश्चित्तं कृत्वा तदंगं कुर्यात् ॥ कर्मसमाप्तौ प्रायश्चित्तमेव नांगावृत्तिः ॥ सन्निपत्योपकारकांगस्य द्रव्यसंस्काररूपस्य लोपे प्रधानात्प्राक् तत्कार्यम् ॥ प्रधानोत्तरं प्रायश्चित्तमेव नावृत्तिः ॥

अब अग्निके नाशकोंको कहतेहैं । कि, स्त्रीपुरुषोंके मध्यमें, एक कोई अग्निके समीप उदय अस्त समयमें बसै । दोनों स्त्रीपुरुष घरकी सीमा, वा ग्रामकी सीमा, वा नदी इनको लांघकर होमके समयमें बाहिर बसैं तो पुनः आधान होताहै । अग्नियोंके वारंवार लानेमें शम्याप्राशसे पूर्व उच्छ्वास (बूझना) होनेसे अग्निका नाश होताहै । कर्मकेलिये अग्नियोंके हरणमें अनुच्छ्वास (नाश) आदि नहीं कहा । स्वयं समारोपणके पक्षमें जलोंमें डूबने मैथुन शूद्र आदिका स्पर्श इनमें अग्निका नाश होताहै । पत्नियोंके अनेक होनेपर भी एक पत्नीभी होमकालमें घरसे बाहिर चलीजाय तो अग्निका नाश होताहै । जेठी पत्नीके अग्निके समीप रहनेपर कनिष्ठा पत्नीके साथ यजमान परदेशमें चलाजाय तो दोष नहीं । दोनों स्त्रीपुरुष ग्राम और घरकी सीमासे बाहिर जाकर होमकालसे पहिले आजायँ तो दोष नहीं । यजमान अग्निके समीपमें स्थितभी हो और पत्नी होमकालमें अन्यग्राममें स्थितहोय तो पुनः आधान कहते हैं । परदेशमें स्त्री पुरुषके मध्यमें, एक समारूढ अग्निके अन्वारंभ (संयोग) विना नदी और सीमाको लांघै तो पुनः आधान करै । अग्निको छोडकर यजमान सौ (१००) योजन गमनकरै वा वर्षपर्यंत स्वयं होम न करै तो अग्निका नाश होताहै । उसमें पुनः अधान करै वा पवित्रेष्टि करै । यदि पत्नी अग्नियोंके विना समुद्रगामिनी नदीका अवलंघन करै तो अग्नियोंका नाश होता है यह श्रुति है । अग्निके समीप पति हो वा दूसरी पत्नी होय तो पत्नीको नदीके लँघनेमें दोष नहीं । पतिके प्रवास (परदेश) में रहते पत्नी अग्नियोंसमेत सीमाको लंघै तो अग्नियोंका नाश होताहै । ऐसेही पतिको भी समझना पत्नीके प्रवासमें जलके कारण अग्नि शान्त होजाय तो पुनः आधेय करै । और वही पुनः आधेय अग्निके अनुगमनमें भी होता है । यदि स्वामी अग्निके समाधानकिये विना सीमाका लंघन करिके जाय समारोपण कियेविना शम्याप्राशसे परे अग्नियोंका आहरण करै तो अग्निका नाश होता है । और रजोदोषके होनेपर सूतक और मरणमें अग्निहोत्री प्रवास करै तो पुनः आधानके योग्य है । बहुत पत्नियोंमें यदि एक स्त्री, रजस्वला होय तो गमन न करै । किसी निमित्तसे ग्यारमें, चौथे, दिन गमनकी इच्छाकरै तो होमके समयमें और पर्वमें प्रदेशमें न रहै । दो होमोंके और दर्श पूर्णमासके अवलंघनमें पुनः आधेय करना आपस्तम्बोंके विषयमें है । सूतक और मृतकके विषयमें पाककी अग्निमें अन्नको पकावे विना पकाये जो एकरात्रभर बसता है वह पुनः आधान करने योग्यहै यह कात्यायन आदिके विषयमें है । पत्नीके प्रवासमें जो पुनः आधान कहा है वह उसके लिये है जिसके एक भार्या हो और जिसके बहुत भार्या हैं उसको तो तभी अन्वाधान है जब ज्येष्ठाका प्रवास हो, यह कोई कहतेहैं । इन पूर्वोक्त निमित्तोंके होनेपर स्थित अग्नियोंको त्यागकर अन्य अग्नियोंका आधान करै । प्रथमही उपकारी अंगका लोप होजाय तो कर्मकी समाप्तिसे पहिले प्रायश्चित्त करिके उस

अङ्गको करै । कर्मकी समाप्ति होनेपर तो प्रायश्चित्त ही करै अङ्गकी आवृत्ति नहीं करै । सन्निपात (परस्परमेल) से द्रव्यके संस्काररूप उपकारी अंगका लोप होजाय तो प्रधान कर्मसे पहिले उसको करले । प्रधानसे पीछे तो प्रायश्चित्त ही करै आवृत्ति न करै ॥

अथ पूर्वं भार्यामृतौ अग्निदाहविचारः ।

मृतायै पत्न्यै दाहायार्धाग्निं दत्त्वावशिष्टाग्नौ सायं प्रातर्होमस्थालीपाकाग्रयणानि कुर्यात् ॥ कौस्तुभे त्वर्धाग्निदानादिकमुक्त्वा विधुरस्यापूर्वाधानप्रकारस्तस्य विच्छेदे पुनराधानप्रकारश्चोक्तः॥ तत्राधानप्रकारोवशिष्टाग्नेः प्राक् होमान्नाशपरः॥ यद्वा श्रौताग्निषु भार्यायै अर्धाग्निदानं कृत्वा उत्सर्गेष्ट्या पूर्वाग्नीन्परित्यज्य पुनराधानं कृत्वाग्निहोत्रं कार्यमित्युक्तं तद्वदत्रापि उत्सर्गेष्ट्या पूर्वाग्नित्यागोत्तरमपूर्वाधानं कौस्तुभे उक्तमिति योज्यमिति भाति ॥ अरणिस्रुवादिपात्राणां लक्षणवृक्षादिविचारोन्यत्र ज्ञेयः ॥ एतेषां विधीनां संकल्पादिविस्तरयुक्ताः प्रयोगा गृह्याग्निसागरे ॥ प्रायश्चित्तादिविधयः प्रायः सर्वसूत्रेषु समाना एव ॥ क्वचित्क्वचित्स्वस्वसूत्रोक्ता विशेषा ऊह्याः ॥ विवाहहोमो गृहप्रवेशनीयहोमेन समानतंत्रोनुष्ठीयमानो बह्वृचानां पुनराधानमन्येषां विवाहहोमाद्भिन्नमेवेति विशेषः ॥

अब प्रथमभार्यामरणमें अग्निदाहविचार कहतेहैं। मरीहुई पत्नीके दाहार्थ आधी अग्निको देकर अवशिष्ट अग्निमें सायंकाल प्रातःकाल होममें स्थालीपाक आग्रयणको करै । कौस्तुभमें तो आधी अग्निके दान आदिको कहकर विधुरको अपूर्व आधानका प्रकार और अग्निके विच्छेदमें पुनः आधानका प्रकार कहाहै । उनमें आधानका प्रकार अवशिष्ट अग्निसे पहिले होम करनेसे नाशका बोधक है । यद्वा श्रौताग्नियोंमें भार्याको आधी अग्निका दान करके उत्सर्ग इष्टिको करके पूर्व अग्नियोंको त्यागकर पुनः आधान करके अग्निहोत्र करै यह कहाहै तिसीप्रकार यहां भी उत्सर्ग इष्टिसे पूर्व अग्निके त्यागानन्तर अपूर्व आधान कौस्तुभमें कहाहै वह युक्त करनेयोग्यहै यह हमें भासताहै अरणि, स्रुव, आदि पात्रोंका लक्षण और वृक्षोंका विचार अन्यत्रसे जानना । इन विधियोंका संकल्प आदिके विस्तार सहित प्रयोग गृह्याग्निसागरमें है । प्रायश्चित्तआदिकी विधितो प्रायः सब सूत्रोंमें समानहीहै । कहीं २ अपने २ सूत्रमें कहेहुये विशेषोंका ऊह करलेना । विवाहका होम गृहप्रवेशके होमके समान तंत्रसे कियाजाय तो बह्वृचोंके यहां पुनः आधान होताहै अन्योंके यहां तो विवाहके होमसे भिन्न होताहै यह विशेष है ॥

अथ पराग्निपक्वनिषेधः ।

अथ कात्यायनोपयोगि किंचिदुच्यते ॥ " पराग्निपक्वं नाश्नीयाद्गुडगोरसमंतरा ॥ आहिताग्नेरयं धर्मो याज्ञिकानां तु संमतः ॥ इक्षुक्षीरविकाराश्च भ्राष्ट्रभृष्टयवा अपि ॥ पराग्निपक्वं न ज्ञेयं प्रवासे चाग्निहोत्रिणः ॥ यदन्नं वारिहीनं च पक्वं केवलपावके ॥ तदन्नं फलवद्ग्राह्यमन्नदोषो न विद्यते ॥ "

अब पराग्निपक्वनिषेधको कहतेहैं । अब कात्यायनोंके उपयोगी किंचित्को कहतेहैं । कि, गुड और गोरससे भिन्न पराग्निमें पक्वका भक्षण न करै आहिताग्निका यह धर्म यज्ञके

कर्ताओंको संमत है । इक्षु और क्षीरके विकार और श्राद्धमें भुने जो ये अग्निहोत्रीके प्रवासमें पराग्निपक्व न समझने । जो जलसे हीन अन्न केवल अग्निमें पकाहो, वह अन्न फलके समान ग्रहणकरनेयोग्य है । उस अन्नमें दोष नहींहै ॥

अथ गृह्याग्नौ पाकविचारः ।

"प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात् ॥ शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥ पूर्वेण योजयित्वा तं तस्मिन्होमो विधीयते ॥ अतोस्मिन्वैश्वदेवादि कर्म कुर्यादतंद्रितः ॥" बह्वृचकारिकायाम् ॥ "नित्यपाकाय शालाग्नेरेकदेशस्य कार्यतः ॥ पाकार्थमुल्मुकं हृत्वा तत्र पक्का महानसे ॥ वैश्वदेवोग्न्यगारेस्यात्पाकार्थोग्निश्च लौकिकः ॥ भूरिपाको भवेद्यत्र श्राद्धादावुत्सवेषु च ॥ कृते च वैश्वदेवेथ लौकिको नैव कार्यतः ॥ दीपको धूपकश्चैव तापार्थं यश्च नीयते ॥ सर्वे ते लौकिका ज्ञेयास्तावन्मात्रापवर्गतः ॥ बहुधा विहृतोह्यग्निरावसथ्यात्कथंचन ॥ यावदेकोपतिष्ठेत तावदन्यो न मथ्यते ॥ वैश्वदेवात्तथा होमात्प्राग् ज्ञेयं नैव मंथनम् ॥ पचनाग्नावपक्काहः पुनराधानमर्हति ॥ आरोपितारणी चोभे एका वा यदि नश्यति ॥ तत्राग्न्याधेयमिच्छंति पुनराधेयमेव वा ॥ "

अब गृह्याग्निमें पाकविचारको कहतेहैं । प्रातःकालके होमको करके और हुताशनसे उद्धार करके और शेष अग्निको महानसमें लेजायकर उसमें पाककरै उसको पहिली अग्निमें मिलाकर उसमें होम करना कहाहै । इससे इसमें आलस्यको त्यागकर वैश्वदेव आदिकर्मको करै । बह्वृचकारिकामें तो नित्यके पाकार्थ शालाकी अग्निका एकदेश, कार्यके लिये पाकके अर्थ उल्मुकको लेकर उस अग्निमें महानसमें पकाकर वैश्वदेव अग्निके स्थानमें होताहै और पाकके लिये लौकिक अग्नि होतीहै । और जहां श्राद्ध उत्सवआदिमें बहुतसा पाकहोताहै वह वैश्वदेव कियेपीछे लौकिक अग्नि होतीहै कार्यसे नहीं । दीपक (प्रकाशार्थ) धूपक (धूपार्थ) और तापनेके लिये जिसको लेजाते हैं वे सब अग्नि लौकिक जाननी क्योंकि, उनका उतनाही प्रयोजनहै । और आवसथ्यमेंसे कदाचित् बहुतसी (कई) अग्निको लेजाय तो उनमेंसे इतने एकभी अग्नि रहै, तबतक अन्य नहीं मथीजाती और वैश्वदेव और होमसे पहिले अग्निको न मथै । पाककी अग्निमें विनापकाये करै तो पुनः आधानके योग्य होताहै । आरोपिता अरणि और उभे (नीचेऊपरकी) इनमेंसे एकभी यदि नष्ट होजाय तो वहां अग्निको आधेयकी वा पुनः आधेयकी इच्छा करतेहैं ॥

अथारणिनाशे ।

"आधानारोपितारण्योः क्षये ग्राह्ये नवे पुनः ॥ तदलाभे यदोद्वायादत्र स्यात्पुनराहितिः ॥ शूद्रोदक्यांत्यजैश्चैव पतितामेध्यरासभैः ॥ अनारूढारणिस्पर्शे ते विहायान्ययोर्ग्रहः ॥" आरूढारणिस्पर्शे पुनराधेयमुक्तम् ॥ " भवंतं नः समेत्यप्सु मज्जयेद् दूषितारणी ॥ एकारण्येव दुष्टा चेत्तामेवाप्सु निमज्जयेत् ॥ तत्रान्यारणिलाभात्प्रागुद्वाते पुनराहितिः ॥ " उद्वाते अग्नौ नष्टे ॥ " नष्टायामरणौ

यावदग्निस्तिष्ठति वेश्मनि ॥ तावद्धोमादिकं कृत्वा तन्नाशे पुनराहरेत् ॥" अत्रैकारणिनाशेन्यामेकां मन्त्रेणोपादायोभाभ्यां मंथनमिति केचित ॥ अवशिष्टां तामेव छित्त्वा मंथनमित्यपरे॥एकस्याः दोषेप्यरणिद्वयं त्यक्त्वा नूतनद्वयोपादानमिति नारायणवृत्त्याशयः॥अयमरणिविचारः श्रौतस्मार्तसाधारणः सर्वशाखासाधारणश्च॥ अग्निसमारोपे कार्तीयैर्वैश्वदेवः पाकश्च लौकिकेग्नौ कार्य इत्याहुः॥ "यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्॥स वै दुर्ब्राह्मणो ज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥अग्निहोत्रं प्रकुर्वीत ज्ञानवाञ्छ्रद्धयान्वितः ॥ अग्निहोत्रात्परो धर्मो न भूतो न भविष्यति ॥ श्रौते कर्मणि नो शक्तो ज्ञानद्रव्याद्यभावतः ॥ स्मार्तं कुर्याद्यथा शक्त्यात्राप्याचारं लभेत्सदा ॥ कृतदारो न तिष्ठेत क्षणमप्यग्निना विना॥ तिष्ठेत चेद्द्विजो व्रात्यस्तथा च पतितो भवेत् ॥ न गृह्णीयाद्विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते ॥ अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथा पाको हि स स्मृतः ॥ यो दद्यात्कांचनं मेरुं पृथिवीं च ससागराम् ॥ तत्सायंप्रातर्होमस्य तुल्यं भवति वा न वा ॥" इति होमप्रकरणम् ॥

अब अरणिनाशविषयमें कहतेहैं। और अनारोपित (मथनेके अर्थ न लगाये) अरणियोंका नाश होजाय तो नवीन अरणि ग्रहण करनी। उनके न मिलनेपर यदोद्वायमेंसे अग्निको पुनः आहरण करै। शूद्र, रजस्वला, अंत्यज, पतित, अपवित्र, रासभ ये अनारूढ (विना-चढी) अरणिका स्पर्श करलें तो पुनः आधेयकरै। और उन दूषित अरणियोंको इकट्ठी करके जलमें डबोदे। एकही अरणि दूषित होय तो उसको ही जलमें डबोवै वहां अन्य अरणिके लाभसे पहिले उद्वात (बुझना) होजाय तो पुनः आहरण करै। 'उद्वात' अग्निनाशको कहतेहैं। अरणि नष्ट होजाय और जबतक अग्नि घरमें हो उसमें प्रथम होमआदिको करके उसके नाशहोनेपर पुनः आहरणकरै। यहां एक अरणिके नाश होनेपर अन्य एक अरणिको मंत्रसे लेकर दोनोंसे मथै यह कोई कहतेहैं। अवशिष्ट उस एक कोई छेदन करके मथै यह अपर कहते हैं। एकके दूषित होनेपर भी दोनों अरणियोंको त्यागकर नवीन दो अरणियोंका ग्रहणकरै यह नारायणवृत्तिका अभिप्रायहै। यह अरणिका विचार श्रौत स्मार्त दोनों कर्मोंमें और सब शाखाओंमें साधारणहै। अग्निका समारोप होनेपर कातीय; वैश्वदेव और पाक, लौकिक अग्निमें करैं यह कोई कहतेहैं। जिसका वेद और होमकी वेदी ये दोनों तीन पुरुषोंतक विच्छिन्न (नष्ट) होजायँ वह सब कर्मोंमें निंदित दुष्ट ब्राह्मण जानना। ज्ञानवान् मनुष्य श्रद्धासहित अग्निहोत्रको करै, अग्निहोत्रसे परे कोई धर्म न हुआ न होगा। यदि ज्ञान द्रव्य आदिके अभावसे श्रौतकर्ममें अशक्त होय तो यथाशक्तिसे स्मार्त कर्मको करै उसमें सदैव आचरणको प्राप्त होताहै। विवाहकिये पीछे एक क्षणभी अग्निके विना न टिकै यदि टिकै तो द्विज व्रात्य और पतित होताहै। जो विवाहकी अग्निको ग्रहण न करै और अपनेको गृहस्थ मानै उसके अन्नका भक्षण न करै, क्योंकि वह वृथापाक कहाहै। जो सुवर्णके, मेरुका दान करै और समुद्रोंसहित पृथिवीको दे वह सायंकाल प्रातःकालके होमकी तुल्य होताहै वा नहीं होताहै॥ ऐसे होमप्रकार समाप्त हुआ॥

अथ नित्यदानम् ।

"एकस्मिन्नप्यतिक्रांते दिने दानविवर्जिते ॥ दस्युभिर्मुषितस्येव युक्तमाक्रंदितुं भृशम्" ॥ तस्माद्विभवानुसारेण धनधान्यादि देयमसंभवे पूगीफलादिकमपि प्रत्यहं देयम् ॥ ततो गोब्राह्मणादिमंगलदर्शनमित्यष्टधा विभक्तदिनस्य प्रथमभागकृत्यम् ॥ द्वितीयभागे वेदशास्त्राभ्यासः ॥" पठेदध्यापयेद्वेदान् जपेच्चैव विचारयेत् ॥ अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमः ॥" देवार्चनमपि प्रातर्होमोत्तरं वा चतुर्थभागे ब्रह्मयज्ञोत्तरं वा कार्यम् ॥ "विधाय देवतापूजां प्रातर्होमादनंतरम् ॥ कुर्वीत देवतापूजां जपयज्ञादनंतरम्" इत्यादिद्विविधस्मृतेः ॥

अब नित्यदानको कहते हैं । एकभी दिन दानके विना बीतजाय तो चोरोंके चुरायेके समान अत्यंत रोदनसे युक्तहै । तिससे मनुष्य विभवके अनुसार धन, धान्य आदिको दे और असंभवमें पूगीफलआदिकोभी प्रतिदिन दे । फिर गौ ब्राह्मण आदि मंगलवस्तुओंका दर्शन करै; यह आठ प्रकारसे विभाग किये दिनके प्रथमभागका कृत्य समाप्त हुआ । दूसरे भागमें वेद और शास्त्रका अभ्यास करै । वेदोंको पढै और पढावै जपै और विचारै, और द्विजोंमें उत्तम; धर्मशास्त्रआदिको देखै । यह देवपूजन; प्रातःकाल करै वा होमके अनंतर करै, वा चौथेभागमें ब्रह्मयज्ञके अनंतर करै । क्योंकि, यह दोप्रकारकी स्मृति है कि, प्रातः होमके अनंतर देवपूजा करै वा देवपूजा करके होम करै वा जपयज्ञके अनन्तर देवपूजा करै ॥

अथ पूज्यप्रतिमादिविचारः ।

तत्र विष्णुशिवब्रह्मसूर्यशक्तिविनायकादिष्वभिमतां देवतामर्चयेत् ॥ तत्रापि कलौ हरिहरयोः पूजा प्रशस्ता ॥ "न विष्ण्वाराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ॥ तस्मादनादिमध्यांतं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥ अथ वा देवमीशानं भगवंतं सनातनम् ॥ प्रणवेनाथ वा रुद्रगायत्र्या त्र्यंबकेन वा ॥ तथोन्नमः शिवायेति मंत्रेणानेन वा यजेत् ॥" तत्रापि प्रतिमास्थंडिलादिभ्यः शालग्रामे बाणलिंगे च प्रशस्ता ॥ आवाहनादिकं विना सदा देवतासंनिधानात् ॥ श्रीमद्भागवते ॥ " उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थंडिले तु भवेद्द्वयम् ॥ " तत्र संक्षेपतः पूजाप्रयोग उच्यते ॥ विशेषविचारस्तु मूर्तिप्रतिष्ठाप्रसंगेन वक्ष्यते ॥ " देवार्चनं प्रकर्तव्यं त्रिकालेपि यथाक्रमम् ॥ अशक्तौ विस्तरात्प्रातर्मध्याह्ने चंदनादितः ॥ सायं नीराजनं कुर्यात्त्रिकाले तुलसीदलम् ॥ यथा संध्या तथा पूजा त्रिकाले मोक्षदा स्मृता" इति कमलाकरः ॥ तत्रोदयात्पूर्वं निर्माल्यमपसार्य यथाकाले पूजारंभः ॥ येभ्यो माता० एवापित्रे विश्वदेवाय० इति पठन् घंटानादं कृत्वाचम्य प्राणानायम्य देशकालादिसंकीर्तनांते श्रीमहाविष्णुपूजां करिष्ये इति पंचायतनपक्षे श्रीरुद्रविनायकसूर्यशक्तिपरिवृतश्रीमहाविष्णुपूजां करिष्य इति संकल्प्यासनादि विधाय सहस्रशीर्षेति

षोडशर्चस्य सूक्तस्य नारायणः पुरुषोऽनुष्टुप् अन्त्या त्रिष्टुप् ॥ न्यासे पूजायां च विनियोगः ॥ ततः प्रथमामृचं वामे करे। द्वितीयां दक्षिणे न्यसेत्। तृतीयां वामे पादे। चतुर्थीं दक्षिणे पादे। पंचमीं वामे जानुनि। षष्ठीं दक्षिणे। सप्तमीं वामकटौ। अष्टमीं दक्षिणे। नवमीं नाभौ। दशमीं हृदि। एकादशीं कंठे। द्वादशीं वामबाहौ। त्रयोदशीं दक्षिणे। चतुर्दशीं मुखे। पंचदशीमक्ष्णोः। षोडशीं मूर्ध्नि ॥" एवं देहे च देवे च न्यासं कुर्याद्विधानतः ॥ अन्त्याभिः पंचभिर्ऋग्भिर्हृदयाद्यंगपंचके ॥ कलशं शंखघंटे च पाद्यार्घ्याचमनीयकम् ॥ संपूज्य प्रोक्ष्य चात्मानं पूजासंभारमेव च ॥ ध्यायेदभिमतां विष्णुमूर्त्तिं संपूजयेत्ततः॥" प्रथमया पुरुषसूक्तस्य ऋचावाहनम् ॥ शालग्रामादौ आवाहनाभावान्मंत्रपुष्पं ऋगंते श्रीमहाविष्णवे श्रीकृष्णायेत्येवमभिमतमूर्त्तिं चतुर्थ्योद्दिश्य सर्वोपचारार्पणम्॥ पंचायतने तु श्रीविष्णवे शिवविनायकसूर्यशक्तिभ्यश्चेत्येवं यथोपास्यमुच्चारः॥ नैवेद्यादौ पार्थक्याभावे यथांशत इति वदेत् ॥ द्वितीययासनं दद्यात् ॥ तृतीयया पाद्यम् ॥ चतुर्थ्यार्घ्यम् ॥ पंचम्याचमनम् ॥ षष्ठ्या स्नानम् ॥ संभवे पंचामृतस्नानान्याप्यायस्वेत्यादिमंत्रैः ॥ चंदनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितजलैः सुवर्णघर्मानुवाकमहापुरुषविद्यापुरुषसूक्तनीराजनसामभिरभिषेकः ॥ सप्तम्या वस्त्रम् ॥ अष्टम्या यज्ञोपवीतम् ॥ नवम्या गंधम् ॥ दशम्या पुष्पाणि ॥ एकादश्या धूपम् ॥ द्वादश्या दीपम् ॥ " स्नाने धूपे च दीपे च घंटादेर्नादमाचरेत् ॥" त्रयोदश्या नैवेद्यम्॥संभवे फलतांबूलदक्षिणाः नीराजनश्च॥ चतुर्दश्या नमनम्॥ पंचदश्या प्रदक्षिणाः ॥ षोडश्या विसर्जनं पुष्पांजलिर्वा ॥ "स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनं तथा॥ दत्त्वा षोडशभिर्ऋग्भिः षोडशान्नस्य चाहुतीः ॥ सूक्तेन प्रत्यृचं पुष्पं दत्त्वा सूक्तेन संस्तुयात् ॥ " ततः पौराणैः प्राकृतैश्च स्तुत्वा ॥ "शिरोमत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम्॥प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात्॥" इति वदन्नमेत् ॥ निर्माल्यं देवदत्तं भावयित्वा शिरसि धारयेत् ॥ शंखोदकं शिरसि धृत्वा देवतीर्थं पूजांते वैश्वदेवांते वा शिरसि धार्यं पेयं च॥ तत्र क्रमः ॥ "विप्रपादोदकं पीत्वा विष्णुपादोदकं पिबेत् ॥ शालग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके ॥ प्रक्षेपणं च कुरुते ब्रह्महा स निगद्यते॥ पात्रांतरेण वै ग्राह्यं न करेण कदाचन" इति कमलाकरः॥ क्षालनेन एकस्यैव वस्त्रस्य प्रतिदिने दाने दोषो न॥ एवं सुर्णादिभूषणानामपि ॥ सुवर्णमययज्ञोपवीतेप्येवमाचारः॥ एवं पूजायाः फलं स्कांदे ॥ " कामासक्तोथ वा क्रुद्धः शालग्रामशिलार्चनात् ॥ भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या कलौ मुक्तिमवाप्नुयात्॥ कथां यः कुरुते विष्णोः शालग्रामशिलाग्रतः ॥ वैवस्वतभयं नास्ति तथा च कलिकालजम् ॥ प्रायश्चित्तं हि

पापानां कलौ पादोदकं हरेः ॥ धृते शिरसि पीते च सर्वास्तुष्यंति देवताः ॥ विष्णुमूर्ध्नि स्थितं पुष्पं शिरसा न वहेन्नरः ॥ " बौधायनोक्तो हरिहरयोः पूजाविधिः पराशरमाधवे ॥ मया तु शिवपूजाविधिः शिवरात्रिप्रकरणे द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः इति नेहोच्यते ॥

अब पूज्यप्रतिमादिविचार कहतेहैं । उसमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, शक्ति, विनायक इनमेंसे अपने अभीष्ट देवताका पूजन करै । उसमें भी कलियुगमें हरिहरकी पूजा प्रशस्त है । विष्णुके आराधनसे पवित्र, वैदिककर्म नहींहै । तिससे आदि, मध्य, अन्तसे रहित हरिकी नित्य आराधना करै अथवा सनातन ईशान भगवान्का ॐकारसे वा रुद्रगायत्रीसे, वा त्र्यंबकमंत्रसे, वा ॐनमः शिवाय इस मन्त्रसे पूजन करै । उसमें प्रतिमा स्थंडिल आदिसे शालग्राममें वा बाणलिंगमें प्रशस्त है । क्योंकि उनमें आवाहन आदिके विना भी सदैव देवताका संनिधान रहताहै । श्रीभागवतमें कहाहै कि, स्थिरप्रतिमामें विसर्जन और आवाहन पूजनके विषे हे उद्धव नहीं होते, अस्थिर प्रतिमामें विकल्प होताहै (करै वा न करै) और स्थंडिलमें तो दोनों होतेहैं । उसमें अब संक्षेपसे पूजाके प्रयोगको कहतेहैं । विशेष विचार तो मूर्तिपूजाके प्रसंगमें कहेंगे । देवपूजनको तीनों कालोंमें भी यथाक्रम करै, असमर्थ होय तो प्रातःकाल विस्तारसे करै,मध्याह्नमें चन्दन आदिसे करै। सायंकालको नीराजन करै तीनों कालमें तुलसीदल चढावै,जैसी संध्या वैसीही त्रिकालपूजाभी मोक्षकी दाता कही है यह कमलाकर-कहतेहैं । तहां उदयसे पूर्व निर्माल्य हटाकर यथाकालमें पूजारम्भ करै, 'येभ्यो माता० एवा पित्रेविश्वेदेवाय०, इन ऋचाओंको पढताहुआ घंटानादको करके आचमन, और प्राणायाम करके देशकाल आदिके कीर्तनके अन्तमें श्रीमहाविष्णुकी पूजाको करताहूं पंचायतन पूजाके पक्षमें तो श्रीरुद्र,विनायक,सूर्य,शक्ति इनसे परिवृत (युक्त) श्रीमहाविष्णुकी पूजाको करताहूं,यह संकल्प करके आसनआदि करके। 'सहस्रशीर्षा०'इन सोलहऋचाके सूक्तका नारायण पुरुष ऋषि देवता अनुष्टप् और अंत्यकी ऋचाका त्रिष्टुप् छंदहै, न्यास और पूजामें विनियोग है । फिर पहिली ऋचाको वामकरमें दूसरीको दक्षिणकरमें न्यास करै । तीसरीको वामपादमें । चौथीको दक्षिणपादमें । पांचमीको वामजानुमें । छठीको दक्षिणजानुमें । सातवींको वामकटिमें । आठमीको दक्षिणकटिमें । नवमीको नाभिमें । दशमीको हृदयमें । एकादशीको कंठमें । द्वादशीको वामभुजामें । त्रयोदशीको दक्षिणभुजामें । चौदहवींको मुखमें । पंद्रहवींको नेत्रोंमें । सोलहवींको मस्तकपर न्यास करै । इसप्रकार देह और देवतामें विधिसे न्यासको करै । अंत्यकी पांच ऋचाओंसे हृदयआदि पांच अंगोंमें न्यास करै । कलश, शंख, घंटा, पाद्य, अर्घ्य आचमनीयसे भलीप्रकार पूजकर अपना और पूजाकी सामग्रियोंका प्रोक्षण करके अपने अभिमत विष्णुका ध्यान करै, फिर मूर्तिकी पूजा करै । पहिली पुरुषसूक्तकी ऋचासे आवाहन करै. शालग्रामआदिमें आवाहनके न होनेसे मंत्रसे पुष्पदे ऋचाके अंतमें, 'श्रीमहाविष्णवे श्रीकृष्णाय' इसप्रकार चतुर्थीविभक्तिसे अभिमतमूर्तिके उद्देशसे सब उपचारोंका अर्पण करै। पंचायतनपूजामें तो 'श्रीविष्णवे शिवविनायकसूर्यशक्तिभ्यश्च' इसप्रकार अपने पूजनयोग्य देवताके अनुसार ऊहकरके उच्चारण करै । नैवेद्य आदि पृथक् २ न होंय तो यथाभागसे अर्पण करै। दूसरी ऋचासे आसन दे । तीसरीसे पाद्य । चौथीसे अर्घ्य । पांचमीसे आचमन । छठीसे स्नान । संभव होय तो पंचामृतके स्नान, 'आप्यायस्व' इत्यादिमंत्रोंसे करावै । चंदन, उशीर,

कपूर, कुंकुम, अगरु, इनसे सुगंधित किये जलोंसे स्नान करावै । सुवर्णघर्मानुवाक, महापुरुष-विद्या, पुरुषसूक्त नीराजनसाम, इनसे अभिषेक करै । सातवीं ऋचासे वस्त्र दे, आठमीसे यज्ञोपवीत, नवमीसे गंध, दशमीसे पुष्प, ग्यारहवींसे धूप, बारहवींसे दीप दे और स्नान, धूप, दीप, इनके दानमें घंटाका शब्द करै । तेरहवीं ऋचासे नैवेद्य दे । संभव होय तो फल तांबूल दक्षिणा दे । चौदहवींसे नमस्कार करै । पंद्रहवींसे परिक्रमा करै । सोलहवीं ऋचासे विसर्जन करै वा पुष्पांजलि दे । स्नान, वस्त्र, नैवेद्य इनके अंतमें आचमन दे । इन सोलह ऋचाओंसे अन्नकी सोलह आहुति देकर सूक्तकी प्रत्येकऋचासे पुष्पोंको देकर सूक्तसे स्तुति करै । फिर पुराण और प्राकृत मन्त्रोंसे स्तुति करके मेरे चरणोंमें शिरको करके परस्पर भुजाओंको मिलाकर कहै कि, शरणमें आये, भयभीत, मेरी मृत्युग्रहरूप समुद्रसे रक्षा करो । यह कहताहुआ नमस्कार करै । निर्माल्यमें देवके दियेकी भावना करताहुआ शिरपर धारै । शंखके जलको शिरपर धारकर देवतीर्थ जलको पूजाके अन्तमें वा वैश्वदेवके अन्तमें शिरपर धारणकरै और पान करै । उसमें क्रम यहहै कि, ब्राह्मणके चरणोदकको पीकर, विष्णुके पादोदकको पीवै । शालग्रामशिलाके जलको विनापीये जो मस्तकपर फेंकताहै, वह ब्रह्मह-त्यारा कहाताहै । उसको दूसरे पात्रमें लेकर पीवै, हाथसे कदाचित् न पीवै यह कमलाकर कहतेहैं । प्रक्षालन करके एक वस्त्रकेही प्रतिदिन देनेमें दोष नहीं । ऐसे सुवर्णआदिके भूषणोंमें समझना । सुवर्णके यज्ञोपवीतमेंभी ऐसाही आचारहै । इसप्रकार पूजाका फल स्कंदपुराणमें कहाहै कि, काममें आसक्त, अथवा क्रुद्ध मनुष्य, भक्तिसे वा अभक्तिसे, शालग्रामशिलाके पूजनेसे कलियुगमें मुक्तिको प्राप्तहोताहै । जो मनुष्य शालग्रामशिलाके आगे विष्णुकी कथाको कहताहै, उसको यमराज और कलियुगका भय नहींहोता । कलियुगमें पापोंका प्रायश्चित्त हरिका चरणोदक है, उसके शिरपर धारण और पीनेसे, सब देवता प्रसन्न होतेहैं । विष्णुके मस्तकपर चढेहुये पुष्पको मनुष्य अपने शिरपर न धारै । बोधायनऋषिकी कही-हुई हरिहरकी पूजाकी विधि पराशरमाधवमें है । मैं तो शिवपूजाकी विधि शिवरात्रिप्रकरणमें दूसरे परिच्छेदमें कहदी है इससे यहां नहीं कहता ॥

अथ पूजालोपे दोषः ।

कौर्मे ॥ " यो मोहादथ वालस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ॥ भुंक्ते स याति नरकं सूकरेष्वभिजायते ॥ " एवं देवं संपूज्य मातापितृप्रमुखान् गुरून्पूजयेत् ॥ " यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ " इति श्रुतेरिति माधवः ॥

अब पूजालोपमें दोषको कहतेहैं । कूर्मपुराणमें कहाहै कि, जो मोहसे, वा आलस्यसे देवपूजन किये विना, भोजन करता है वह नरकमें जाताहै और सूकरोंकी योनिमें पैदा होताहै । इसप्रकार देवको पूजकर माता पिता हैं मुख्य जिनमें ऐसे गुरुओंका पूजन करै । जिसको देवमें परमभक्ति है और जैसी देवमें तैसीही गुरुमें है उसके सब मनोरथ सिद्ध होतेहैं यह माधव कहते हैं ॥

अथतृतीयेऽह्नो भागे जीविकाविचारः ।

तृतीयभागे पोष्यवर्गार्थं धनार्जनम् ॥ यजनाध्ययनदानयाजनाध्यापनप्रतिग्रहाः षट् विप्रकर्माणि ॥ " षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ॥

याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ '' श्रीभागवते-"प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ॥ अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः '' इति ॥ तथा-'वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् ॥' विचित्रा वार्ता कृष्यादि ॥ शालीनमयाचितम् ॥ यायावरं प्रत्यहं धान्ययाच्ञा ॥ कणिशोपादानं कणोपादानं च शिलोञ्छनम् ॥ अत्रोत्तरोत्तरा प्रशस्ता॥ शिलोञ्छनं कलौ निषिद्धम् ॥ "कुसूलकुंभीधान्यो वा त्र्याहिकोश्वस्तनोपि वा ॥ '' कुटुंबपोषणे द्वादशाहपर्याप्तधान्यः कुसूलधान्यः ॥ षडहपर्याप्तधान्यः कुंभीधान्यः ॥ न कुर्यात्कृषिवाणिज्यं सेवावृत्तिं तथैव च॥ ब्राह्मण्याद्धीयते तेन तस्मात्तानि विवर्जयेत् ॥'' इत्युक्तेर्वार्तावृत्तिरापद्विषया ॥ " पुत्रमांसं वरं भोक्तुं न तु राजप्रतिग्रहः '' इति वाक्यमधर्मवर्त्तिराजप्रतिग्रहविषयम् ॥

अब दिनके तृतीयभागमें जीविकाविचार कहतेहैं । दिनके तीसरे भागमें पालनके योग्य पुत्र आदिके लिये धनका संचय करै । यज्ञ करना, पढना, दानदेना, यज्ञकराना, पढाना, प्रतिग्रह लेना ये छः ब्राह्मणके कर्म हैं । इन छः कर्मोंमें तीन कर्म इस ब्राह्मणकी जीविका है कि, यज्ञ कराना, पढाना और शुद्धमनुष्यसे प्रतिग्रह लेना । श्रीभागवतमें लिखाहै कि, प्रतिग्रहको तप, तेज, यशका नाशक मानताहुआ ब्राह्मण याजन, अध्यापन, इन दोनोंसे ही जीवै उनमेंभी दोष देखै तो शिलोंच्छोंसे जीवै । तिसीप्रकार विचित्रवार्ता शालीन, यायावर शिलोंछन ये जीविका हैं । इनमें विचित्रवार्ता कृषि आदि है, शालीन अयाचित, यायावर प्रतिदिन क्षेत्र कटनेके अनंतर कणिश (वाल) को लाना, और एक २ दानेको ग्रहण करना शिलोंछन कहाताहै । इन चारोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है । शिलोंछन कलियुगमें निषिद्ध है अथवा कुसूलधान्य रहै वा कुंभी धान्य रहै वा त्र्याहिक रहै, वा अश्वस्तन रहै । बारहदिनतक कुटुंबपोषणका जिसके अन्न हो वह कुसूलधान्य । और छः दिनका जिसके अन्न हो वह कुंभीधान्य होताहै । तीन दिनका अन्न होय तो त्र्याहिक और उसीदिनका जिसके हो वह अश्वस्तन, होताहै । कृषि और वाणिज्य और तैसेही सेवावृत्तिको न करै, क्योंकि, इनके करनेसे ब्राह्मणत्व नष्ट होजाताहै तिससे तिनको वर्जे दे । इसवचनसे वार्ताकी जीविका आपत्तिके विषयमें है । पुत्रका मांस भोजनमें श्रेष्ठ है परन्तु राजाका प्रतिग्रह श्रेष्ठ नहीं यह वचनभी अधर्मी राजाके प्रतिग्रहमें है ॥

अथापद्वृत्तिः पक्वान्नभिक्षा च ।

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या सुतः शिशुश्चायाज्ययाजनशूद्रप्रतिग्रहादिनापि पोषणीया इत्यप्यापदि ॥ शाकपयोदधिपुष्पजलकुशभूमयः कुलटाषंढपतितभिन्नान्नीचादप्ययाचितप्राप्ता ग्राह्याः ॥ " ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥ अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षट् पक्वान्नस्य भिक्षुकाः ॥ '' शूद्रस्य द्विजशुश्रूषावृत्तिः ॥ आपदि कृष्यादिः ॥ चतुर्थभागे मध्याह्नस्नानम् ॥ प्रातर्गोमयस्नानं मध्याह्ने मृत्तिकास्नानमनयोर्विधिः प्रायश्चित्ते उक्तः । शेषविधिः प्रातःस्नानवत् ॥

ब्रह्मयज्ञांगतर्पणात्प्राक् वस्त्रं न निष्पीडयमिति विशेषः॥ततो धृतपुंड्रो मध्याह्नसंध्यां कुर्यात् ॥

अथ आपद्वृत्ति और पक्वान्नभिक्षा कही जातीहै। वृद्ध माता,पिता, साध्वी भार्या, बालक, शिशु (दूधपीनेवाला) इनका अयाज्य याजन, शूद्रसे प्रतिग्रह, आदिसेभी पोषण करना योग्य है; यहभी आपत्तिके विषयमें समझना। शाक, दूध, दधि, पुष्प, जल, कुशा, भूमि इनको व्यभिचारिणी, पतित, नपुंसक, इनसे भिन्न नीचसेभी विना याचनाके मिलें तो ग्रहण करलेने। ब्रह्मचारी, संन्यासी, गुरुका विद्यार्थी, गुरुका पोषक, अध्वग और क्षीणवृत्ति ये छः पक्वान्नके भिक्षुक हैं। शूद्रकी वृत्ति द्विजोंकी सेवा है। आपत्तिमें कृषि आदिहै चौथे दिनके भागमें मध्याह्नस्नान करै। प्रातःकाल गोमयस्नान, मध्याह्नमें मृत्तिकास्नान इनकी विधि प्रायश्चित्तप्रकरणमें कह आये। शेष विधि प्रातःकालके स्नानके समान है। ब्रह्मयज्ञका अंग जो तर्पण उससे पहिले वस्त्रको निचोडै यह विशेष है। फिर पुंड्रको धारण करके मध्याह्न सन्ध्याको करै ॥

अथ ऋग्वेदिनां मध्याह्नसंध्या।

"अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकीष्यते" तत्र विशेषः॥ सूर्यश्चेति स्थाने आपः पुनंत्विति मन्त्राचमनम् ॥ आपः पुनंत्वित्यस्य नारायणयाज्ञवल्क्य आपः पृथिवी ब्रह्मणस्पतिरष्टी मन्त्राचमने विनियोगः॥ ॐ " आपः पुनंतु पृथिवीं पृथिवी पूता पूनातु माम् ॥ पुनंतु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् ॥ यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम॥ सर्वं पुनंतु मामापोसतां च प्रतिग्रह॰स्वाहा" इति पिबेत्॥ अघमर्षणांते तिष्ठन्॥ हंसः शुचिषदित्यस्य गौतमः सूर्यो जगती॥सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः॥ ॐहंसः शुचिष०एकार्घ्यम्॥अर्घ्यान्ते उपस्थानम्॥ऊर्ध्वबाहुः॥ उदुत्यमिति त्रयोदशर्चस्य काण्वः प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री॥अन्त्याश्चतस्रोनुष्टुभः॥ सूर्योपस्थाने०॥ केचित् चित्रं देवानामिति षड्भिरप्युपतिष्ठंते शेषमुपस्थानवर्ज्यं प्रातःसंध्यावत् ॥ रात्रौ मध्याह्नसंध्यायामाकृष्णेनेत्यर्घ्यदानम् ॥ गायत्र्या प्रायश्चित्तार्थं द्वितीयं दत्त्वा हविष्पांतमिति पंचर्चोपस्थानम् ॥

अब ऋग्वेदियोंकी मध्याह्नसन्ध्याको कहतेहैं। आधे प्रहरसे पीछे सायंकालपर्यंत मध्याह्नकी संध्या इष्ट है उसमें विशेष यह है। 'सूर्यश्चमा०' इस मंत्रके स्थानमें 'आपःपुनंतु०' इस मंत्रसे आचमन है। 'आपःपुनंतु०' इस मंत्रका नारायणः याज्ञवल्क्यऋषि, आप पृथिवी, ब्रह्मणस्पति देवता, अष्टी छंद है आचमनमें विनियोग है। "ॐ आपः पुनंतु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनंतु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनंतु मामापो सतां च प्रतिग्रह॰ स्वाहा" इस मंत्रसे जल पीवै। अघमर्षणके अंतमें खडा होकर। 'हंसःशुचिषत्०' इस मंत्रका गौतमऋषि, सूर्यदेवता, जगतीछंद है अर्घ्यदानमें विनियोग है। 'ॐहंसःशुचि०' इससे एक अर्घ्य दे। अर्घ्यके अंतमें उपस्थान करै। फिर, ऊर्ध्व बाहु करके। 'उदुत्यं०' इन त्रयोदश ऋचाओंका काण्व, प्रस्कण्व ऋषि, सूर्यदेवता, गायत्री छंद है। और अंत्यकी चार ऋचाओंका अनुष्टुप् छंद है। सूर्यके उपस्थानमें विनि-

योग है। कोई तो 'चित्रंदेवानां०' इन छः ऋचाओंसेभी उपस्थान करते हैं। उपस्थानके विना शेषकर्म प्रातःकालकी संध्याके समान है। रात्रिमें मध्याह्नसंध्या करै तो 'आकृष्णेन०' इस मंत्रसे अर्घ्य दे। और प्रायश्चित्तके लिये गायत्रीसे दूसरे अर्घ्यको देकर 'हविष्पान्तम्०' इन पांच ऋचाओंसे उपस्थान करै ॥

अथ तैत्तिरीयाणाम् ।

आपः पुनंत्वित्यपः पीत्वा दधिक्राव्णेति पूर्ववत्कृत्वा सूर्यायैकमर्घ्यं गायत्र्या दत्त्वोर्ध्वबाहुस्तिष्ठन्नुपतिष्ठेत् ॥ उद्वयं० १ उदुत्यं जातवेदसं० १ चित्रं देवाना० १ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात् १ य उदगान्महतो० ॥ ततो जपादि उपस्थानवर्ज्यं प्राग्वत् ॥

अब तैत्तिरीयोंकी संध्याको कहते हैं। 'आपः पुनंतु०' इस मंत्रसे जलको पीकर 'दाधक्राव्ण०' इस मंत्रसे पूर्वके समान करके गायत्रीसे सूर्यको एक अर्घ्य देकर ऊर्ध्वबाहु खडा होकर उपस्थान करै। कि, "उद्वयं० उदुत्यं जातवेदसं० चित्रंदेवानां० तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्० यउदगान्महतो०"। फिर उपस्थानसे भिन्न जप आदि पूर्वके समान करै ॥

अथ कातीयानाम् ।

आपः पुनंत्विति प्राग्वत्॥ गायत्र्यैकार्घ्यम् ॥ उद्वयमित्यादि चतुर्भिरुपस्थानम् ॥ जपांतेऽशक्तस्य पूर्वोक्तैर्विभ्राडित्यनुवाकादिभिरुपस्थानं शेषं प्राग्वत् ॥

अब कात्यायनोंकी संध्या कहते हैं। कि, 'आपःपुनंतु०' इस मंत्रसे पूर्वोक्तको करै। गायत्रीसे एक अर्घ्य दे। 'उद्वयं तं० ' इत्यादि चारमंत्रोंसे उपस्थान करै । और समर्थको पूर्वोक्त 'विभ्राड्०' इत्यादि अनुवाकोंसे उपस्थान है, शेषकर्म पूर्वके समान है ॥

अथ ब्रह्मयज्ञः।

स च प्रातर्होमोत्तरं वा मध्याह्नसंध्योत्तरं वा वैश्वदेवांते वा सकृदेव कार्यः॥ भट्टोजिदीक्षितीये तु प्रातराहुतेरनंतरकालः शाखांतरविषयः ॥ आश्वलायनैस्तु मध्याह्नसंध्योत्तरमेवानुष्ठेय इत्युक्तम् ॥

अब ब्रह्मयज्ञको कहते हैं। वह प्रातःकालके होम पीछे वा मध्याह्नसंध्याके अनंतर वा वैश्वदेवके अंतमें, एकवारही करना। भट्टोजिदीक्षितीयमें तो प्रातःकालकी आहुतिके अनंतर जो काल है वह शाखांतरके विषयमें है। आश्वलायन तो मध्याह्नसंध्याके अनंतर अनुष्ठेय करैं यह कह आये ॥

अथ बह्वृचां ब्रह्मयज्ञप्रयोगः ।

शुष्कं वासस्तदभावे आर्द्रं त्रिर्विधुन्वन्परिधायाचम्य प्राणानायम्य श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं ब्रह्मयज्ञं करिष्ये ॥ तदंगतया देवऋष्याचार्यतर्पणं करिष्ये ॥ मृतपितृकैः पितृतर्पणं च करिष्ये ॥ इति संकल्प्य दर्भेषु दर्भपाणिः प्राङ्मुख एवोपविश्य वामजंघोपरि मूलदेशे दक्षिणपादं निधायाथ वा वामपादांगुष्ठोपरि

दक्षिणपादांगुष्ठं निधायैवोपस्थं कृत्वा दक्षिणजानुस्थे वामे करे उत्ताने प्रागग्रांगुलौ प्रागग्रे द्वे पवित्रे धृत्वा दक्षिणकरेण तथैव संपुटीकृत्य द्यावापृथिव्योः संधिमीक्षमाणो निमीलिताक्षो वौंकारव्याहृतीः सकृदुच्चार्य गायत्रीं पच्छोर्धर्चशः सर्वामनवानामिति त्रिर्जपेत् ॥ ततोग्निमीळ इति सूक्तं पठित्वा संहिताब्राह्मणषडंगानि एकं समाप्यापरमित्यध्यायं सूत्रमृचं वा यथाशक्ति क्रमशः पठेत् ॥ मन्त्रब्राह्मणादीनि भागशः सर्वाणि यथाशक्ति प्रतिदिनं पठेदिति केचित् ॥ एवं चतुर्वेदाध्यायी क्रमशश्चतुर्वेदान् भागशः सर्वानेव वा ऋग्वेदपूर्वकान् पठेत्॥ एकैकशाखाध्यायी तु स्वशाखामेव ॥ शाखाध्ययनाभावे सूक्तमृचं वा पठित्वैकं यजुः साम चोपनिषदश्चेतिहासपुराणादींश्च पठेत् ॥ पुरुषसूक्तमुक्त्वा नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नय इत्यृचं त्रिः पठेत्॥ नात्र ऋष्यादिस्मरणम् ॥विद्युदसीत्यादेराद्यंते पाठस्तैत्तिरीयविषयः ॥ उपविश्य पाठाशक्तास्तिष्ठन्व्रजन् शयानो वा पठेदित्याश्वलायनः ॥ अनध्यायेष्वल्पं पठेत् ॥

अब बहवृचोंके ब्रह्मयज्ञप्रयोगको कहताहूं । शुष्कवस्त्रको पहिने वह न होय तो आर्द्रवस्त्रको तीनवार झाडकर, धारण करके आचमन प्राणायाम करके " श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये ब्रह्मयज्ञ करताहूं । और उसके अंग देव, ऋषि, आचार्य, इनके तर्पणको करता हूं । जो मृतपितृक हैं वे पितृतर्पणको करताहूं " यह संकल्प करके कुशोंपर दर्भ हाथमें लेकर पूर्वाभिमुख बैठकर, वामजंघाके ऊपर मूलदेशमें दक्षिणपादको रखकर और तिसीप्रकार दक्षिण करसे संपुट (मिला) करके द्यावापृथिवीकी संधिको दिखाता हुआ नेत्रोंको मींचकर, ओंकार व्याहृतियोंको एकवार उच्चारण करके, गायत्रीके पदपदका आधी ऋचाके क्रमसे सबको 'अनवानां०' इसमंत्रको तीनवार जपै । फिर अग्निमीले इस सूक्तको पढकर संहिता ब्राह्मण षडंगोंको एकको समाप्त करके, 'अपरम्' इति० अध्याय सूक्त वा ऋचाको यथाशक्ति क्रमसे पढै । मंत्रब्राह्मण आदिके भागको, वा संपूर्णोंको, यथाशक्ति प्रतिदिन पढै यह कोई कहते हैं । ऐसेही चतुर्वेदाध्ययी क्रमसे चतुर्वेदी भागसे सब ऋग्वेदपूर्वकोंकी पढै । एक २ शाखाका अध्यायी तो अपनी २ शाखाकोही पढै, शाखा भी न पढा होय तो एकसूक्तको वा ऋचाको, पढकर एक यजुर्वेद, सामवेद, उपनिषद् और इतिहास, पुराण-आदिको पढै । पुरुषसूक्तको पढकर 'नमो ब्रह्मणे' 'नमो अस्त्वग्नये०' इस ऋचाको तीनवार पढै । इसमें ऋषि आदिका स्मरण नहीं है । 'विद्युदसि०' इत्यादिका अंतमें जो पाठ है वह तैत्तिरीयोंके विषयमें है । बैठकर पढनेमें जो अशक्त है वह खडा होकर गमन करता हुआ, सोता हुआ, पढै यह आश्वलायन कहते हैं । अनध्यायोंमें अल्पको पढै ॥

अथ तर्पणम् ।

तत्र सव्येन देवतीर्थेन दर्भाग्रैर्देवतर्पणम् ॥ तद्यथा ॥ साक्षतजलैर्देवर्षितर्पणम् ॥सतिलजलैराचार्यपितृतर्पणम् ॥ प्रजापतिस्तृप्यतु ॥ ब्रह्मातृ० ॥ वेदास्तृप्यंतु ॥देवास्तृ० ॥ ऋषयस्तृ० ॥ सर्वाणि छंदांसि० ॐकारस्तृ० वषट्कारस्तृ० व्याह-

तयस्तृ० सावित्री० यज्ञास्तृ० द्यावापृथिवी तृप्यताम् ॥ अन्तरिक्षं० अहोरात्राणि तृप्यंतु० सांख्यास्तृ० सिद्धास्तृ० समुद्रास्तृ० नद्यस्तृ० गिरयस्तृ० क्षेत्रौषधिवनस्पतिगंधर्वाप्सरसस्तृ० नागास्तृ० वयांसि० गावस्तृ० साध्यास्तृ० विप्रास्तृ० यक्षास्तृ० रक्षांसि० भूतानि० एवमन्तानि तृप्यंतु० ॥ २९ ॥अथ ऋषयः ॥ निवीती ॥ कनिष्ठिकामूलेन दर्भमध्यैः ॥ शतर्चिनस्तृ० माध्यमास्तृ० गृत्समदस्तृ० विश्वामित्रस्तृ० वामदेवस्तृ० अत्रिस्तृ० भरद्वाजस्तृ० वसिष्ठस्तृ० प्रगाथास्तृ० पावमान्यस्तृ० क्षुद्रसूक्तास्तृ० महासूक्तास्तृ० ॥ १२ ॥ एकत्वद्वित्वबहुत्वेषु तृप्यतु तृप्यतां तृप्यंत्विति यथायथं वदेत् ॥ अथ प्राचीनावीती ॥ पितृतीर्थेन द्विगुणीकृतदर्भमूलाग्रैः ॥ सुमंतुजैमिनिवैशंपायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्यास्तृप्यंतु ॥ जानंतिबाहविगार्ग्यगौतमशाकल्यबाभ्रव्यमांडव्यमांडूकेयास्तृप्यंतु ॥ गर्गीवाचक्नवी तृ० वडवाप्रातीथेयी० सुलभामैत्रेयी० कहोळं तर्प० कौषीतकं०महाकौषीतकं० पैंग्यं० महापैंग्यं० सुयज्ञं० सांख्यायनं० ऐतरेयं० महैतरेयं० शाकलं० बाष्कलं० सुजातवक्रं० औदवाहिं० महौदवाहिं० सौजामिं० शौनकं० आश्वलायनं० ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यंतु ॥२३॥ ततो मृतपितृकः पितृत्रयीं मातृत्रयीं सपत्नीकमातामहत्रयीं पत्न्याद्येकोद्दिष्टगणांश्च महालयप्रकरणोक्तान्मृतांस्तर्पयेत् ॥ " संबंधं प्रथमं ब्रूयान्नामगोत्रमनन्तरम् ॥ पश्चाद्रूपं विजानीयात्क्रम एष सनातनः "॥ एकैकमंजलिं देवेभ्यो द्वौ द्वौ ऋषिभ्यस्त्रींस्त्रीन्पितृभ्य इति संख्याविशेषः ॥ आश्वलायनानां वैकल्पिकः तत्सूत्रे संख्याऽनुक्तेः ॥ येषां सूत्रे संख्योक्तिस्तेषां नित्य इति माधवः ॥ मातृत्रयीभिन्नस्त्रीभ्य एकांजलिः ॥ एतावद्भिस्तृततर्पणाशक्तौ ॥ " आब्रह्मस्तंबपर्यंतंदेवर्षिपितृमानवाः ॥ तृप्यंतु पितरः सर्वेमातृमातामहादयः ॥ अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् " इति त्रिस्त्रिर्दद्यात् ॥ ततो " ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ॥ ते गृह्णंतु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् " इति परिधानवस्त्रं भूमौ निष्पीड्य दद्यात ॥ अत्र बह्वृचानां प्राचीनावीती ॥ अन्येषां निवीती ॥ इदं गृहे निषिद्धम् ॥ ब्रह्मयज्ञो ग्रामाद्बहिरुदकसमीपे विहितः ॥ ग्रामे मनसाधीयीत ॥ सव्यान्वारब्धदक्षिणेन वा अंजलिना वा तर्पणम् ॥ " तर्पणं बर्हिषाच्छन्ने स्थले कार्यं तु नो जले ॥ पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रांतरे क्षिपेत् ॥ जलपूर्णेथवा गर्ते न स्थले तु विबर्हिषि॥ हेमरौप्यताम्रकांस्यमये पात्रे न मृन्मये ॥ यत्राशुचिस्थलं तत्र तर्पणं स्यान्नदीजले॥अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रौप्यमेव च ॥ कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥ अंगुल्यग्रे तीर्थं दैवं स्वल्पांगुल्योर्मूले कायम्-॥ मध्येंगुष्ठांगुल्योः पित्र्यं मूले त्वंगुष्ठस्य ब्राह्मम्॥" उद्धृतजलेन पितृतर्पणे तिलान्संमिश्रयेज्जले ॥ अनुद्धृतजलेन तर्पणे वामहस्ते तिला ग्राह्याः ॥ तिलतर्पणं

गृहे निषिद्धम् ॥ रविभृगुवारे सप्तमीनंदासु कृत्तिकामघाभरणीषु मन्वादौ युगादौच ॥ पिंडदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ पित्रोः श्राद्धदिने नित्यतर्पणे तिला निषिद्धाः ॥ पर्वादिने निषिद्धतिथिवारादिष्वपि तिलतर्पणम् ॥ " विकिरे पिंडदाने च तर्पणे स्नानकर्माणि ॥ आचांतः सम्प्रकुर्वीत दर्भसंत्याजनं बुधः " दर्भत्यागमंत्रस्तु ॥ " येषां पिता न च भ्राता न पुत्रो नान्यगोत्रिणः॥ ते सर्वे तृप्तिमायांतु मयोत्सृष्टैः कुशैस्तथा " इति ॥

अब तर्पणको कहते हैं। उसमें सव्य होकर देवतीर्थसे दर्भके अग्रभागोंसे देवतर्पण करै। वह ऐसे है कि, अक्षतसहित जलोंसे देव ऋषितर्पणको करै । सतिल जलोंसे आचार्य पितृतर्पण करै । "प्रजापतिस्तृप्यतु । वेदास्तृप्यंतु। देवास्तृप्यंतु । ऋषयस्तृ० सर्वाणिच्छंदांसि तृ० । ॐकारस्तृ० वषट्कारस्तृ० व्याहृतयस्तृ० सावित्रीतृ० यज्ञास्तृ० द्यावापृथिवी तृप्येताम् । अंतरिक्षंतृ० अहोरात्राणि तृ० सांख्यास्तृ० सिद्धास्तृ० समुद्रास्तृ० नद्यस्तृ० गिरयस्तृ० क्षेत्रौषधिवनस्पतिगंधर्वाप्सरसस्तृ० नागास्तृ० वयांसितृ० गावस्तृ० साध्यास्तृ० विप्रास्तृ० यक्षास्तृ० रक्षांसितृ० भूतानि तृ०" इसप्रकार ये २९ हैं, अब ऋषियोंको कहते हैं । निवीती (कंठमें जनेऊ) होकर कनिष्ठिकाके मूलसे और दर्भके मध्यभागसे तर्पण करै "शतर्चिनस्तृ० माध्यमास्तृ० गृत्समदस्तृ० विश्वामित्रस्तृ० वामदेवस्तृ० अत्रिस्तृ० भारद्वाजस्तृ० वसिष्ठस्तृ० प्रगाथास्तृ० पावमान्यस्तृ० क्षुद्रसूक्तास्तृ० महासूक्तस्तृ०" १२ । एक होय तो 'तृप्यतु' दो होंयँ तो 'तृप्येताम्' बहुत होंय तो 'तृप्यंताम्' इनको कहै यथायोग्य इसके अनंतर अपसव्य होकर पितृतीर्थसे और द्विगुण किये हुये दर्भोंके मूलाग्रोंसे तर्पण करै । कि, " सुमंतुजैमिनिवैशंपायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्यास्तृप्यंतु । जानंतिबाहविगार्ग्यगौतमशाकल्यबाभ्रव्यमांडव्यमांडूकेयास्तृप्यंतु" । 'गर्गी वाचक्नवी तृप्यतु०' । वडवा प्रातिथेयीतृ० सुलभा मैत्रेयीतृ० "कहोलं तर्प० कौषीतकं तर्पयामि । महाकौषीतकं तर्प० पैंग्यं त० महापैंग्यं त०सुयज्ञं० सांख्यायनं० ऐतरेयं० महैतरेयं० शाकलं० बाष्कलं० सुजातवक्रं० औदवाहिं०महौदवाहिं० सौजामिं० शौनकं० आश्वलायनं" और जो अन्य आचार्य हैं वे सब तृप्त हों ॥ २३॥ फिर मृतपितृक तो पिता आदि तीन और माता आदि तीन और सपत्नीकमातामह आदि तीनका और पत्नी आदि एकोद्दिष्टगणोंका महालयप्रकरणमें जो मृतक कहेहैं उनका तर्पण करै।पहिले संबन्धको कहै फिर नामगोत्रको कहे फिर रूपको जानै यह सनातन क्रमहै।एक२ अंजलि देवताओंको, दो२ऋषियोंको, तीन २ पितरोंको अंजलि दे यह संख्याका विशेष आश्वलायनोंके यहां वैकल्पिक है, क्योंकि, उनके सूत्रमें संख्या नहीं कही । जिनके सूत्रमें संख्या कही है उनके मतमें नित्य है, यह माधव कहते हैं । माता आदि तीनसे भिन्न स्त्रियोंको एक २ अंजलि दे । इतने विस्तारके तर्पण करनेमें अशक्त होय तो । ब्रह्मासे स्तंबपर्यंत जो देव, ऋषि,मानव हैं और माता मातामह आदि संपूर्ण पितर तृप्त हों पिछले मृतक कुल कोटियोंको, सातद्वीपोंके निवासी जो ब्रह्माके भुवनपर्यंत हैं उनको यह तिलोदक प्राप्त हो । यह पढकर तीन २ अंजलि दे । फिर जो कोई हमारे कुलमें पैदा हुये पुत्ररहित सगोत्रीमरे हैं वे मेरे दिये हुये वस्त्रनिचोडनेके जलका ग्रहण करो इस मंत्रसे परिधानवस्त्रको भूमिमें निचोडकर दे यहां बह्वृचोंका तर्पण प्राचीनावीति (अपसव्य) होकर और अन्योंका निवीती (सव्य) होकर दे । यह

तर्पण घरमें निषिद्ध है । ब्रह्मयज्ञ ग्रामसे बाहिर जलके समीपमें कहा है । ग्राममें मनसे पढै वा वामहाथसे मिले हुये दक्षिण हाथसे, तर्पण करै । तर्पणभी बर्हि (कुशा) से ढके हुये स्थलमें करना, जलमें न करै । अथवा पात्रमें से जल लेकर शुभ दूसरे पात्रमें, जल डारे । वा जलसे भरे गर्तमें डारै बर्हिसे रहित स्थलमें न डारै । सुवर्ण, चांदी, ताम्र, कांसीके पात्रमें तर्पण करै मिट्टीकेमें न करै । जहां स्थल अशुद्ध हो, वहां तर्पण, नदीके जलमें होता है । जिसकी अनामिकामें सुवर्ण हो, तर्जनीमें चांदी हो, कनिष्ठिकामें खड्ग (गैंडा) हो तिससे वह मनुष्य पवित्र होता है । अंगुलियोंके आगे देवतीर्थ है, छोटी अंगुलियोंके मूलमें काय (प्रजापति) तीर्थ है, अंगूठा और अंगुलियोंके मध्यमें पितृतीर्थ है, अंगूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ है । उद्धत (निकासे) जलसे तर्पण करै तो जलमें तिल मिलाले । विना उद्धृत जलसे तर्पणमें वामहाथमें तिलोंका ग्रहण करै । तिलतर्पण घरमें निषिद्ध है । रविवार, शुक्रवार को, सप्तमीको, नंदा (१–६–११) कृत्तिका, मघा, भरणी, मन्वादि और युगादि इनमें पिंड दान, मिट्टीसे स्नान और तिलोंसे तर्पण, न करै । मातापिताके श्राद्धके दिन, नित्य तर्पणमें तिल निषिद्ध हैं । पर्वके दिन तो निषिद्ध तिथि वार आदिमें भी तिलतर्पण करै । विकिरमें, पिंडदान, तर्पणमें, स्नानकर्ममें बुद्धिमान् मनुष्य आचमन करके दर्भका त्याग करै । दर्भके त्यागका मंत्र तो यह है । कि, जिनके पिता भ्राता पुत्र और अन्यगोत्री कोई नहीं है, वे सब मेरे त्यागे हुये कुशाओंसे तृप्त हों ।

अथ हिरण्यकेशीयानाम् ।

संकल्पादित्रिर्गायत्रीजपांतं प्राग्वत् ॥ तत इषेत्वोर्जेत्यध्यायमनुवाकं वा यथाशक्ति पठित्वा ऋचं सामषडंगेतिहासपुराणादीनि पठित्वा नमो ब्रह्मण इत्येतया त्रिः परिदधाति ॥ अथ तर्पणम् ॥ तच्च तैत्तिरीयाणां ब्रह्मयज्ञांगं न भवति ॥ तेन ब्रह्मयज्ञोत्तरं व्यवहितकालेपि ब्रह्मयज्ञात्प्रागपि भवति ॥ एवं काण्वमाध्यंदिनानापि ॥ अतो देवर्ष्याचार्यपितृतृप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वर० देवर्ष्याचार्यपितृतर्पणं करिष्ये इति पृथगेव संकल्पः॥ पूर्ववदेकैकांजलिना देवतर्पणम्॥ब्रह्माणं तर्पयामि ॥ प्रजापतिंत० बृहस्पतिं त० अग्निं त० वायुंत०सूर्यंत० चन्द्रमसं त० नक्षत्राणि० इन्द्र ँ राजानं० यम ँ राजानं० वरुण ँ राजानं० सोम ँ राजानं० वैश्रवण ँ राजानं० वसून्० रुद्रान्० आदित्यान्० विश्वान्देवान्० साध्यान्० ऋभून्० भृगून्० मरुतः० अथर्वणः० अंगिरसस्तर्पयामीति ॥ निवीती उदङ्मुखः ॥ विश्वामित्रं० जदमग्निं० भरद्वाजं० गौतमं० अत्रिं० वसिष्ठं० कश्यपं० अरुंधतीं० अगस्त्यं० कृष्णद्वैपायनं० जातूकर्ण्यं० तरुक्षं० तृणबिंदुं० वर्मिणं० वरूथिनं० वाजिनं० वाजिश्रवसं० सत्यश्रवसं० सुश्रवसं० सुतश्रवसं० सोमशुष्मायणं० सत्त्ववंतं० बृहदुक्थ्यंत० वामदेवं० वाजिरत्नं० हर्यज्वायनं० उदमयं० गौतमं० ऋणंजयं० ऋतंजयं० कृतंजयं० धनंजयं० बभ्रुं० त्र्यरुणं० त्रिवर्षं० त्रिधातुं० शिबिंतुं० पराशरं० विष्णुं० रुद्रं० स्कंदं० काशीश्वरं० ज्वरं० धर्मं० अर्थं० कामं० क्रोधं० वसिष्ठं० इंद्रं० त्वष्टारं०

कर्तारं० धर्तारं० धातारं० मृत्युं० सवितारं० सावित्रीं० ऋग्वेदं० यजुर्वेदं० सामवेदं० अथर्ववेदं० इतिहासपुराणं० ६१ इति द्वौ द्वावंजली ॥ प्राचीनावीती दक्षिणामुखः ॥ वैशंपायनं त० पिलिंगुं त० तित्तिरिं त० उखं त० आत्रेयं पदकारं० कौंडिन्यं वृत्तिकारं० सूत्रकारान्० सत्याषाढं० प्रवचनकर्तॄन्० आचार्यान्० ऋषीन्० वानप्रस्थान्० ऊर्ध्वरेतसः० एकपत्नीस्तर्पयामीति त्रींस्त्रीनंजलीनिति विशेषः ॥ शेषं पितृतर्पणादि सर्वं प्रागुक्तमेव ॥

अब हिरण्यकेशीयोंके ब्रह्मयज्ञ तर्पणको कहते हैं। संकल्पसे तीनवार गायत्रीके जपपर्यंत का कर्म तो पूर्वके समान है। फिर 'इषेत्वोर्जे०' इस अध्यायको वा अनुवाकको यथाशक्ति पढकर ऋग्वेद, सामवेद, षडंग, इतिहास, पुराण आदिको पढकर, 'नमोब्रह्मणे०' इसका तीनवार पाठ करै। अब तर्पणको कहते हैं। वह तैत्तिरीयोंके यहां ब्रह्मयज्ञका अंग नहीं होता है, तिससे ब्रह्मयज्ञोत्तर व्यवहितकालमेंभी ब्रह्मयज्ञसे पूर्वमेंही होताहै। ऐसे काण्व, माध्यंदिनीयोंके यहां भी, नहीं है। इससे देव, ऋषि, आचार्य, पितर इनकी तृप्तिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये देव, ऋषि, आचार्य, पितृ इनके तर्पणको करता हूं यह पृथक् ही उनका संकल्प है। पूर्वके समान एक २ अंजलिसे देवतर्पण करै। कि, "ब्रह्माणं तर्पयामि०। प्रजापतिं तर्प०। बृहस्पतिं तर्प०। अग्निं त०। वायुं त०। सूर्यं त०। चंद्रमसं त०। नक्षत्राणि त०। इंद्रꣳ राजानं त०। यमꣳ राजानं०। वरुणꣳ राजानं० सोमꣳ राजानं० वैश्रवणꣳ राजानं० वसून्० रुद्रान्० आदित्यान्० विश्वान्देवान्० साध्यान्० ऋभून्० भृगून्० मरुतः०। अथर्वणः०। अंगिरसस्तर्पयामि" इति निवीती होकर उत्तराभिमुख हुये पीछे "विश्वामित्रं०। जमदग्निं०। भरद्वाजं०। गौतमं०। अत्रिं०। वसिष्ठं०। कश्यपं०। अरुंधतीं०। अगस्त्यं०। कृष्णद्वैपायनं०। जातूकर्ण्यं०। तरुक्षं०। तृणबिंदुं०। वर्मिणं०। वरूथिनं०। वाजिनं०। वाजिश्रवसं०। सत्यश्रवसं०। सुश्रवसं०। सुतश्रवसं०। सोमाशुष्मायणं०। सत्त्ववंतं०। बृहदुक्थं०। वामदेवं०। वाजिरत्नं०। हर्यज्वायनं०। उदमयं०। गौतमं०। ऋणंजयं०। ऋतंजयं०। कृतंजयं०। धनंजयं०। बभ्रुं०। त्र्यरुणं०। त्रिवर्षं०। त्रिधातुं०। शिबिंतुं०। पराशरं०। विष्णुं०। रुद्रं०। स्कंदं०। काशीश्वरं०। ज्वरं०। धर्मं०। अर्थं०। कामं०। क्रोधं०। वसिष्ठं०। इंद्रं०। त्वष्टारं०। कर्तारं०। धर्तारं०। धातारं०। मृत्युं०। सवितारं०। सावित्रीं०। ऋग्वेदं०। यजुर्वेदं०। सामवेदं०। अथर्ववेदं०। इतिहासं०। पुराणं०"। इसप्रकार दो दो अजलि दे। अपसव्य होकर दक्षिणाभिमुख हुआ। वैशंपायनं०। पिलिंगुं०। तित्तिरिं०। उखं०। आत्रेयं पदकारं०। कौंडिन्यं वृत्तिकारं०। सूत्रकारान्०। सत्याषाढं०। प्रवचनकर्तॄन्०। आचार्यान्०। ऋषीन्०। वानप्रस्थान्०। ऊर्ध्वरेतसः०। एकपत्नीः तर्पयामि" इनको तीन २ अंजालि दे यह विशेष है। पितृतर्पण आदि शेष सब कर्म पूर्वोक्त ही हैं॥

अथापस्तंबादीनाम्।

ब्रह्मादयो ये देवास्तां० सर्वान्देवां० सर्वान्देवगणां ॥ सर्वा देवपत्नीः ॥ सर्वान्पुत्रां० सर्वान्पौत्रां० भूर्देवां० भुवर्देवां० सुवर्देवां० भूर्भुवःसुवर्देवां० कृष्णद्वैपायनादयो ये ऋषयः ॥ तानृषीं० सर्वानृषीं० सर्वानृषिगणान० सर्वा ऋषि-

पत्नीः० सर्वान्नृषिपुत्रां० सर्वान्नृषिपौत्रां० । ६ भूर्ऋषीं० ४१० एवं सोमः पितृमान्यमोंगिरस्वानग्निष्वात्ताः० ॥ तान्पितॄनित्यादयो दश पितृपर्याया ऊह्याः ॥ एवमन्येषामप्यूह्यम् ॥

अब आपस्तम्बोंके ब्रह्मयज्ञको कहते हैं। "ब्रह्मादयो ये देवास्तांस्तर्पयामि । सर्वान्देवान्० । सर्वान्देवगणान्० । सर्वादेवपत्नीः० । सर्वान्पुत्रान्० । सर्वान्पौत्रान्० । भूर्देवान्० । भुवर्देवान्० । सुवर्देवान्० । भूर्भुवःस्वर्देवान्० । तर्पयामि," । व्यास आदि जो ऋषि हैं, तान्ऋषीन्० । सर्वान्ऋषीन्० । सर्वान्नृगणान्० ।सर्वाऋषिपत्नीः० । सर्वान्ऋषिपुत्रान्० । सर्वान्ऋषिपौत्रान्० । भूऋषीन्० । ४१० एवं सोमः पितृमान् यमेअंगिरस्वानग्निष्वात्तान्० । तान् पितॄन् इत्यादि दश पितरोंके पर्याय समझने । इसीप्रकार अन्योंकाभी तर्पण समझना ॥

अथ कात्यायनानाम् ।

प्राङ्मुख आचम्य पवित्रे धृत्वा प्राणानायम्य श्रीपरमे०र्थं ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्ये ॥ दर्भानंजलौ धृत्वा दक्षिणजानौ कृत्वा सूत्रांतराद्गायत्रीं त्रिरुच्चार्य ॥ इषेत्वेत्यादि आरभ्य संहितां ब्राह्मणं च पूर्वोक्तरीत्या पठेत् ॥ अंते उपनिषदितिहासपुराणादि पठित्वा अंते ॐ स्वस्तीति वदेत् सूत्रांतरोक्तत्वात् ॥ नमो ब्रह्मण इति त्रिः पठंति केचित् ॥ अथ तर्पणम् ॥ एतच्च प्रातःसंध्योत्तरं वा मध्याह्ने ब्रह्मयज्ञोत्तरं वा सकृदेव कार्यम् ॥ ब्रह्मयज्ञस्य वैकल्पिकं कालत्रयमुक्तम् ॥ तत्र देवर्षिपितृतर्पण करिष्ये इति संकल्प्यादौ पूर्वोक्तधर्मेण देवतर्पणम् ॥ भूमौ ताम्रादिपात्रे वा दर्भानास्तीर्य ॥ विश्वेदेवास आगतेति देवानावाह्य विश्वेदेवाः शृणुतेममितिजपित्वा त्रीन्प्रागग्रान्दर्भान्धृत्वा देवतीर्थेन ॥ ॐ ब्रह्मातृप्यताम् ॥ विष्णुस्तृप्यताम् ॥ रुद्र० प्रजापति० देवास्तृ० छंदांसि० वेदा० ऋषयः० पुराणाचार्या० गंधर्वा० इतराचार्या० संवत्सरः सावयव० ॥ देव्यस्तृप्यंताम् ॥ अप्सरस० देवानुगा० नागा० सागरा० पर्वता० सरित० मनुष्या० यक्षा० रक्षांसि० पिशाचा० सुपर्णा० भूतानि० पशव० वनस्पतय० ओषधय० भूतग्रामचतुर्विधस्तृप्यतामिति ॥ सर्वत्र सप्रणवं प्रथमांतं नामोच्चार्य तर्पयेत् २९ सप्तऋषय इति मंत्रेणर्षीनावाह्य निवीती द्विर्द्विः ॥ सनकस्तृप्यतु ॥ सनंदन० सनातन० कपिलस्तृ० आसुरि० वोढुस्तृ० पंचशिख० अपसव्यम् ॥ उशंतस्त्वेति पितॄनावाह्यायंतु नः पितर इति जपित्वा पितृतीर्थेन त्रिस्त्रिः ॥ कव्यवाडनलस्तृप्यताम् ॥ सोम० यम० अर्यमा० अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यंताम् ॥ सोमपाः पितरः० बर्हिषदः० यमाय नमः तर्पयामि ॥ धर्मराजाय० मृत्यवे० अंतकाय० वैवस्वताय० कालाय० सर्वभूतक्षयाय० औदुंबराय० दध्नाय० नीलाय० परमेष्ठिने० वृकोदराय० चित्राय० चित्रगुप्ताय० २१ यमतर्पणं वैकल्पिकं सूत्रे एके इत्युक्तेः ॥ जीवत्पितृकस्य मणिबंधपर्यंतमपसव्यं सर्वत्र ॥ ततो मृतपितृकः ॥ पित्रादित्रयीं मात्रादित्रयीं च तर्पयित्वा ॥ उदीर

तामिति नवभिर्ऋग्भिस्तर्पणं जलस्थाने अंजलिना धारां निषिंचेत् ॥ उदीरतां० १ अंगिरसोनः पितरो०२ आयंतु नः० ३ऊर्जंवहंतीरमृतं० ४ पितृभ्यः स्वधा नमः ५ ये चेह० ६ मधुवाता इति तिस्र इति ९ प्रत्यृचं प्रत्येकं कुर्यात्तृप्यध्वमिति च त्रिः सिंचेत् ॥ ततो नमो वः पितर इत्यष्टौ यजूंषि पठित्वा मातामहादीनेकोद्दिष्टगणांश्च तर्पयेत् ॥ देवा गातु विदइति विसर्जयेत् ॥ स्नानवस्त्रनिष्पीडनोदकदानादि प्राग्वत् ॥ प्रातर्होमोत्तरं देवतार्चनं न कृतं चेच्चतुर्थभागे ब्रह्मयज्ञोत्तरं कार्यम् ॥ १ ॥

अब कात्यायनोंका ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। पूर्वाभिमुख आचमन करके पवित्रीधारण और प्राणायाम करके श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये ब्रह्मयज्ञसे पूजन करता हूं । कुशाओंको अंजलिमें धारण कर, दक्षिणजानुको नवाकर, सूत्रांतरमें तीनवार गायत्रीका उच्चारण करके 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादिसे लेकर संहिता और ब्राह्मणको पूर्वोक्तरीतिसे पढै। अंतमें उपनिषद्, इतिहास, पुराण आदिको पढकर अंतमें, स्वस्ति इसको कहै; अन्यसूत्रमें उक्त होनेसे 'नमो ब-ह्मण' इसको तीनवार पढै यह कोई कहते हैं। अब तर्पणको कहते हैं । यह प्रातःकालकी संध्याके अनंतर वा मध्याह्नमें ब्रह्मयज्ञके अनंतर एकवारही करना। ब्रह्मयज्ञके विकल्पसे तीन काल कहे हैं। उसमें "देव, ऋषि, पितृतर्पणको करताहूं" यह संकल्प करके,प्रथम पूर्वोक्त धर्मसे देवतर्पण करै। भूमिपर वा तांबेके पात्रमें दर्भोंको बिछाकर 'विश्वेदेवासः आगत०' इस मंत्रसे देवताओंका आवाहन करके, 'विश्वेदेवाः शृणुतेमम्०' इस मंत्रको जपकर पूर्वको है अग्र जिनका ऐसे दर्भोंको धारण करके देवतीर्थसे तर्पण करै। कि, "ब्रह्मातृप्यताम्। विष्णुः०। रुद्रः०। प्रजापतिः०। देवाः०। छंदांसि०। वेदाः०। ऋषयः०। पुराणाचार्याः०। गंधर्वाः०। इतराचार्याः०। संवत्सरः सावयवः०। देव्यस्तृप्यंताम्०। अप्सरसः०। देवानुगाः०। नागाः०। सागराः०। पर्वताः०। सरितः० मनुष्याः०। यक्षाः०। रक्षांसि०। पिशाचाः०। सुपर्णाः०। भूताः०। पशवः०। वनस्पतयः०। औषधयः०। भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यताम्" इस प्रकार सब जगह ॐकारसहित प्रथमांतका उच्चारण करके तर्पण करै २९ 'सप्तऋषयः' इस मंत्रसे ऋषियोंका आवाहन करके निवीती होकर दो२ अंजलि दे। "सनकस्तृप्यतु। सनंदनस्तृ०। सनातनः०। कपिलः०। आसुरिः०। वोढुः०। पंचशिखस्तृप्यतु। अपसव्य होकर 'उशंतस्त्वा०' इस मंत्रसे पितरोंका आवाहन करके "आयंतु नः पितरः०" इस मंत्रको जपकर पितृतीर्थसे तीन २ अंजलि दे। "कव्यवाडनलस्तृप्यताम्"। "सोम०। यमः। अर्यमा०। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यंताम्०। सोमपाः पितरः०। बर्हिषदः यमाय नमः तर्पयामि। धर्मराजाय नमः ०। मृत्यवे०। अंतकाय०। वैवस्वताय०। कालाय०। सर्वभूतक्षयाय०। औदुंबराय०। दध्नाय०। नीलाय०। परमेष्ठिने०। वृकोदराय ०। चित्राय०। चित्रगुप्ताय० २१।" यमका तर्पण वैकल्पिक है, क्योंकि, सूत्रमें कोई यमतर्पणको कहते हैं यह कहा है, जीवत्पितृकको तो मणिबंधपर्यंत अपसव्य, सर्वत्र होना कहाहै। फिर मृतपितृक ऐसे करै। पिता आदि तीन, माता आदि तीनका तर्पण करके, 'उदीरतामवर०'। इन नौ ऋचाओंसे तर्पण करै और जलस्थानमें तो अंजलिसे धाराका सेचन करै। "उदीरता०"। 'अंगिरसोनःपितरः०'। 'आयंतुनः०। ऊर्जंवहंतीरमृतं०। पितृभ्य-

स्वधायिभ्यः०' । येचेह ६ मधुवाता," ये तीन ऋचा इन नौ ९ मंत्रोंसे ऋचा २ के प्रति तर्पण करै। और तृप्यध्वं यह कहकर तीनवार सींचै। फिर 'नमोवःपितरः०' इन आठ यजुःके मंत्रोंको पढकर मातामह आदि एकोद्दिष्टगणोंका तर्पण करै। 'देवागातुविदः०' इस मंत्रसे विसर्जन करै। स्नानवस्त्रको निचोडकर जलदानआदि पूर्वके समान हैं। प्रातः होमके अनंतर देवपूजा न की होय तो चौथेभागमें ब्रह्मयज्ञके अनंतर करै ॥

अथ पंचमभागकृत्यम्।

"वैश्वदेवः प्रकर्तव्यः पंचसूनापनुत्तये ॥ कंडणीपेषणीचुल्लीजलकुंभोथमार्जनी" इतिपंचहिंसास्थानानि पंचसूनाः ॥ वैश्वदेवस्य प्रातरेव प्रारंभो न त्वग्निहोत्रादिवत्सायं तेन प्रातः सायं वैश्वदेवेत्यादिरेव संकल्पः ॥ पंचमहायज्ञा अहरहः कर्तव्याः ते च ब्रह्मयज्ञदेवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञमनुष्ययज्ञाख्याः ॥ तत्र ब्रह्मयज्ञ उक्तः ॥ बह्वृचादीनां वैश्वदेवो देवयज्ञादियज्ञत्रयरूपः ॥ मनुष्ययज्ञस्तु मनुष्येभ्योन्नदानम् ॥ "गृहपक्वहविष्यान्नैस्तैलक्षारादिवर्जितैः॥ जुहुयात्सर्पिषाभ्यक्तैर्गृह्येग्नौ लौकिकेपि वा ॥ यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते" ॥ वैश्वदेवांतर्गतपितृयज्ञेनैव नित्यश्राद्धसिद्धेर्न नित्यश्राद्धार्थविप्रभोजनम् ॥ अनेनैव दर्शश्राद्धस्यापि सिद्ध्या दर्शश्राद्धमप्यशक्तैः संवत्सरमध्ये सकृदेव कार्यमिति भट्टोजीये ॥ सूतके पंचमहायज्ञानां लोप इत्युक्तम् ॥ स चायं वैश्वदेव आत्मसंस्कारार्थोन्नसंस्कारार्थश्च ॥ तेनाविभक्तानां पाकैक्ये पृथग्वैश्वदेवो न ॥ विभक्तानां तु पाकैक्येपि हविष्यांतरेण पृथगेव ॥ अविभक्तानां पाकभेद पृथक् वैश्वदेवः कृताकृत इति भट्टोजीये ॥ पाकासंभवे एकादश्यादौ तंडुलैर्वा पयोदधिघृतफलोदकादिभिर्वा कार्यः ॥ "हस्तेनान्नादिभिः कुर्याद‌द्भिरंजलिना जले ॥ कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम् ॥ क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥" प्रवसता गृहे पुत्रर्त्विगादिद्वारा वैश्वदेवः कारयितव्यः ॥ गृहे कर्त्रंतराभावे प्रवासे स्वयं कार्यः वैश्वदेवो बह्वृचैस्तैत्तिरीयैश्च दिवारात्रौ चेति द्विवारं कार्यः ॥ अशक्तैस्त्वेककाले एव द्विरावृत्त्या सह वा कार्यः ॥ बह्वृचतैत्तिरीययोर्लौकिकाग्नौ पाको वैश्वदेवश्चेति प्रायेणाचारः ॥

अब पांचमें भागके कृत्यको कहते हैं। पांचसूना (हत्या) के दूर करनेके लिये वैश्वदेव करै, कंडनी,पेषणी, चुल्ली, उदकुंभ, मार्जनी, (खोटना, पीसना, पकाना, जलघट, बुहारी) ये पांच हिंसाके स्थान पञ्चसूना कहे हैं, वैश्वदेवका प्रातःकालही प्रारंभ करै, अग्निहोत्रके समान सायंकालको न करै, तिससे प्रातःकाल और सायंकालको वैश्वदेव इत्यादि, ही संकल्प कहा है। पांचमहायज्ञ प्रतिदिन करने वे यज्ञ ये हैं कि, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ। उनमें ब्रह्मयज्ञको कह आये बह्वृचोंके यहां वैश्वदेव देवयज्ञ आदि तीन यज्ञरूप हैं। मनुष्ययज्ञ तो मनुष्योंको अन्नदान है। घरमें पके हुये अन्नोंमें तो तेल, क्षार आदि वर्जित हैं। घी मिले उन अन्नोंसे गृह्यअग्निमें, वा लौकिक अग्निमें, होम करै। जिस अग्नि

में अन्नका पाक करै उसीमें होम करै। वैश्वदेवके अंतर्गत पितृयज्ञसेही नित्यश्राद्धकी सिद्धि होनेसे नित्यश्राद्धके लिये ब्राह्मणभोजन न करावै। इसीसे दर्शश्राद्धकी भी सिद्धि होनेसे दर्शश्राद्धकोभी असमर्थ मनुष्य वर्षके मध्यमें एकवारही करै, यह भट्टोजीयमें कहा है। सूतकमें पांचमहायज्ञोंका लोप हो जाता है यह कह आये। यह वैश्वदेव अपने संस्कारके लिये है और अन्नके संस्कारार्थ भी है। तिससे जो भाई विभक्त नहीं हैं उनका पाक एकहोय तो वैश्वदेव पृथक् नहीं होता। विभक्तोंका तो एकपाक होनेपरभी अन्य हविष्यसे पृथक्ही होताहै और अविभक्तोंका पाक भिन्न २ होय तो पृथक् वैश्वदेव कृताकृत होता है, अर्थात् करो, चाहै न करो यह भट्टोजीयमें लिखा है। एकादशी आदिमें पाकका असंभव होय तो तंडुलोंसे वा दूध, दही, घृत, फल, जलसे करना। अन्न आदिसे हाथसे करै, जलोंसे जलमें अंजलिसे करै। कोदूं, चना, उडद, मसूर, कुलथी, क्षारलवण इन सबको वैश्वदेवमें वर्ज दे। प्रवासी मनुष्य घरमें पुत्र ऋत्विज आदिके द्वारा वैश्वदेवकरावै घरमें दूसरा कर्ता न होय तो परदेशमें स्वयं करै बह्वृच और तैत्तिरीयोंका प्रायसे यह आचार है कि, पाक, और वैश्वदेव, लौकिक अग्निमेंही होते हैं॥

अथ प्रातः सायं वैश्वदेवस्य सहकरणपक्षे तंत्रप्रयोगः।

तत्र वैष्णवैर्भगवते षोडशोपचारेषु दीपांतानुपचारान्समर्प्य सर्वान्नात्पुरुषाहारपर्याप्तं नैवेद्यं समर्प्य शेषान्नेन वैश्वदेवः कार्यः॥ वैष्णवभिन्नैस्तु वैश्वदेवांते तच्छेषेण नैवेद्यः कार्यः॥ "विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतांतरम्॥ पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानंत्याय कल्पते" इत्यादिवचनानां वैष्णवविषयकत्वस्य निबंधकारैरुक्तत्वात्॥

अब प्रातःकाल और सायंकालको वैश्वदेवके संगकरनेके पक्षमें तन्त्रसे प्रयोगको कहते हैं। उसमें वैष्णव तो षोडश वा पांच; दीपक पर्यंत उपचार भगवान्‌को समर्पण करके और एक पुरुष आहारयोग्य संपूर्ण अन्नोंका अर्पणकरके शेष अन्नसे वैश्वदेव करै। वैष्णवोंसे भिन्न तो वैश्वदेवके अंतमें उसके शेषसे नैवेद्य करैं। विष्णुको निवेदन किये अन्नसे अन्यदेवताओंका पूजन करै और पितरोंकोभी वही दे तो वह अनंतफल देता है, इत्यादि वचनोंको तो निबन्ध (ग्रंथ) कारोंने वैष्णवोंके विषयमें कहा है॥

अथ वैष्णवस्वरूपम्।

अत्र वैष्णवा नारायणाष्टाक्षरादिवैष्णवमंत्रदीक्षोपदेशजपवंतो मुख्याः॥ 'उपदेशः कलौ युगे' इति स्मृत्योपदेशमात्रस्यापि दीक्षासमफलत्वात्॥ गौणाश्च पारंपर्यागतारुणोदयविद्धैकादश्यनुपवासशुक्लकृष्णैकादश्युपवासादि यत्किंचिद्धर्ममात्रपरा मंत्रोपदेशादिरहिताः॥ ननु "पांचरात्राद्यागमोक्तदीक्षां प्राप्तो हि वैष्णवः" इत्युक्तेः किंचिद्धर्ममात्रानुष्ठानेन कथं वैष्णवत्वमिति चेत्॥ गायत्र्यध्ययनादिक्षत्रियवैश्यसाधारणधर्मवतां याजनाध्यापनप्रतिग्रहरूपासाधारणधर्मशून्यानां पित्रादिपरंपरया वैश्यादिवृत्तिपराणामप्यव्यभिचरितैकगोत्रत्वादि यत्किंचिद्ब्राह्मणधर्म-

मात्रेण यथा ब्राह्मणत्वं तदुचितसूतकाद्याचारश्च तथा कलियुगे किंचिद्धर्मेणापि वैष्णवत्वं तदुचिताचारश्च युज्यते ॥ क्षत्रियाणां हि पुरोहितभेदेन गोत्रभेदस्तेन यदुवंशेषु परस्परं विवाहो नैवं ब्राह्मणेष्विति स्पष्टम् ॥ एवं श्राद्धेपि नैवेद्यं समर्प्य पितृभ्योऽन्ननिवेदनं ज्ञेयम् ॥

अब वैष्णवस्वरूपको कहतेहैं। वैष्णव वे मुख्यसमझने जो नारायणके अष्टाक्षर आदि वैष्णव-मंत्रकी दीक्षासे युक्त हैं और उनका जप करते हैं । क्योंकि, कलियुगमें उपदेशही दीक्षा है इस स्मृतिसे उपदेशमात्रकाभी दीक्षाके समान फल है । और गौणवैष्णव ये हैं कि, परंपरासे चले आये अरुणोदयविद्ध एकादशीका उपवास न करना और शुक्ल कृष्ण एकादशीको उप-वास करना । आदि यत् किंचित् धर्महीमें जो तत्पर होकर मंत्रोपदेश आदिसे रहित हों वे गौणवैष्णव कहाते हैं । कदाचित् कोई शंका करै कि, पंचरात्र शास्त्रमें कही दीक्षाको जो प्राप्त हो वह वैष्णव होता है, इस वचनसे किंचित् धर्ममात्रके करनेसे कैसे वैष्णव हो जायँगे । इस शंकाका उत्तर कहते हैं, कि, क्षत्रिय, वैश्य साधारण जो गायत्रीके अध्ययन आदि धर्मवाले हैं और याजन अध्यापन प्रतिग्रहरूप अपने असाधारण धर्मसे शून्य, हैं और पिता आदि की परंपरासे वैश्य आदिकी वृत्तिमें तत्पर हैं, उनको भी जैसे अव्यभिचारी (एकसा) एक गोत्रत्व आदि धर्ममात्रसे ब्राह्मणत्व है और ब्राह्मणोंको उचित सूतक आदिका आचरण है, तैसेही कलियुगमें किंचित् धर्ममात्रसे भी वैष्णव होते हैं और वैष्णवोंके योग्य आचरणभी उनको उचित हैं । क्षत्रियोंका पुरोहितके भेदसे गोत्रका भेद है, तिससे यदुवंशियोंमें पर-स्पर विवाह जैसे हो जाता है, इस प्रकार ब्राह्मणोंमें नहीं होता यह बात स्पष्ट है । इसीप्रकार श्राद्धमें भी नैवेद्यका समर्पण करके पितरोंको अन्नका निवेदन जानना ॥

अथ ऋग्वेदिवैश्वदेवप्रयोगः ।

ममात्मान्नसंस्कारपंचसूनाजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातर्वैश्व-देवं सायं वैश्वदेवं च सह तंत्रेण करिष्ये ॥ कुंडे स्थंडिलादौ वा पचनाग्निं व्याहृ-तिभिः पावकनामानं प्रतिष्ठाप्य ॥ चत्वारिशृंगेति ध्यात्वा परिसमुह्य पर्युक्ष्य विश्वानिन इत्यर्चनादि विधाय घृताक्तमन्नममावधिश्रित्य प्रोक्ष्योद्वास्याग्नेः पश्चान्नि-धाय त्रिधा विभज्य प्रथमं भागं देवेभ्यो जुहुयात् ॥ तद्यथा हृदि सव्यं करं निधायोत्तानहस्तेन सूर्याय स्वाहा सूर्यायेदं न मम ॥ प्रजापतये० सोमाय वनस्प-तये० अग्नीषोमाभ्यां० इंद्राग्निभ्यां० द्यावापृथिवीभ्यां० धन्वंतरये० इंद्राय० विश्वेभ्यो देवेभ्यः० ब्रह्मणे० इति दश प्रातर्वैश्वदेवाहुतयः ॥ अथ सायं वैश्वदेवीयाः ॥ अग्नये स्वाहेति हुत्वा प्रजापतय इत्यादिपुनर्नव जुहुयात् ॥ एवं विंशत्याहुतीर्हुत्वा प्रायश्चित्तार्थं व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा न हुत्वा वा परिसमूहनपर्युक्षणे कुर्यात् ॥ ॐ चम इत्युपतिष्ठेत् ॥ इति देवयज्ञः ॥

अब ऋग्वेदियोंका वैश्वदेव प्रयोग कहतेहैं। "मेरे; अपने अन्नके संस्कारमें पांचसूनासे उत्पन्न दोषकी निवृत्तिके द्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये प्रातःकालके और सायंकालके वैश्वदेवको तंत्रसे करताहूं" यह संकल्प करके कुंडमें वा स्थंडिलमें, पावक नाम अग्निका व्याहृतियोंसे

स्थापन करके। 'चत्वारि शृंगा०' इस मंत्रसे ध्यान करके परिसमूहन, पर्युक्षण, करके 'विश्वानिनः०' इस मंत्रसे पूजन आदिको करके घी मिले हुये अन्नको अग्निपर रखकर, प्रोक्षण कर, अग्निपरसे उतार कर, अग्निसे पश्चिमकी तरफ रखकर तीनभाग अन्नके करके प्रथमभागका देवताओंके निमित्त होम करै। वह होम ऐसे है कि, हृदयके ऊपर, वामहाथ रखकर ऊँचे उठाये दक्षिण हाथसे 'सूर्याय स्वाहा, सूर्याय इदं न मम०।प्रजापतये०। सोमाय०। वनस्पतये०। अग्नीषोमाभ्यां०। इंद्राग्निभ्यां०। द्यावापृथिवीभ्यां०। धन्वंतरये०। इंद्राय०। विश्वेभ्यो देवेभ्य०। ब्रह्मणे स्वाहा०। ये दश प्रातःकालके वैश्वदेवकी आहुति हैं। अब सायंकालके वैश्वदेवकी आहुतियोंको कहते हैं। कि, 'अग्नये स्वाहा' इस आहुतिको देकर फिर 'प्रजापतये स्वाहा०' इत्यादि नौ आहुति दे। इसप्रकार बीस आहुतियोंसे होम करके प्रायश्चित्तके लिये व्यस्त और समस्त व्याहृतियोंसे होम करके वा न करके परिसमूहन और पर्युक्षणको करै। 'ॐ वाक् च मे०' इससे उपस्थान करै। यह देवयज्ञ समाप्त हुआ ॥

अथ बलिहरणाख्यो भूतयज्ञः।

द्वितीयभागाद्गृहीत्वा शुद्धायां भूमौ सूर्याय स्वाहा ॥ सूर्यायेदं न ममेत्येवं दशाहुतीः प्राक् संस्था निरंतरा हुत्वा मध्येंतरालं त्यक्त्वा ॥ अद्भ्यः स्वाहा ओषधिवनस्पतिभ्यः० गृहाय० गृहदेवताभ्यः० वास्तुदेव इति प्राक्संस्था हुत्वा ॥ अद्भ्य आहुतेः पश्चात् इंद्राय० तदुत्तरे इंद्रपुरुषेभ्यः अंतरालस्य दक्षिणे यमाय० तदुत्तरे यमपुरुषेभ्यः ब्रह्मण आहुतेः प्राक्॥ वरुणायः० तदुत्तरे वरुणपुरुषेभ्यः० अन्तरालस्योत्तरे सोमाय० तदुत्तरे सोमपुरुषेभ्यः०अन्तराले ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्यः०विश्वेभ्यो देवेभ्यः० सर्वेभ्यो भूतेभ्यः० दिवाचारिभ्यः सोमपुरुषोत्तरे रक्षोभ्यः०एवमेव सूर्यस्थाने प्रथममग्नये हुत्वा प्रजापतय इत्यादि पूर्ववत् ॥ सायं वैश्वदेवसंबंधि द्वितीयबलिहरणं कुर्यात्॥ तत्र दिवाचारिभ्य इत्यस्य स्थाने नक्तंचारिभ्यः स्वाहेति जुहुयादितिविशेषः॥ इति भूतयज्ञः ॥ प्राचीनावीती तृतीयभागादादाय स्वधा पितृभ्यः इति यमबलेर्दक्षिणतो दत्त्वा पितृभ्य इदं न ममेति त्यक्त्वा द्वितीयबलेर्दक्षिणतः द्वितीयपितृयज्ञमेवं कुर्यात ॥ इति पितृयज्ञः ॥अपरे चक्राकारं बलिमाहुः "बलावनुद्धृतेनाद्यान्नोद्धरेच्च स्वयं बलिम्॥" ततो गृहांगणे भूमावप आसिच्य॥"ऐंद्रवारुणवायव्यां याम्यां नैर्ऋतिकाश्च ये॥ ते काकाः प्रतिगृह्णंतु भूम्यां पिंडं मयोज्झितम्" इति पितृयज्ञशेषेण दत्त्वा "वैवस्वतकुले जातौ द्वौ श्यामशबलौ शुनौ ॥ ताभ्यां पिंडो मया दत्तो रक्षेतां पथि मां सदा॥" 'ये भूताः प्रचरंति०' इति द्वयं भूतयज्ञशेषेण दद्यात् ॥ ये भूता इति मंत्रे तंत्रेण वैश्वदेवप्रयोगे दिवा नक्तं बलिमिति पाठः॥अह्नि रात्रौ च पृथक् प्रयोगे दिवा बलिमिच्छंतो नक्तं बलिमिच्छन्त इति विभागेन पाठः ॥ प्रक्षालितपाणिपाद आचम्य गृहं प्रविश्य शांता पृथिवीत्यादि जपित्वा विष्णुं स्मृत्वा कर्मार्पयेत ॥

अब बलिहरणनामके भूतयज्ञको कहते हैं। दूसरे भागमेंसे अन्न लेकर शुद्धभूमिमें 'सूर्याय स्वाहा,' 'सूर्याय इदं न मम' इसप्रकार पूर्वमें दश आहुति निरंतर देकर। फिर मध्यमें

अंतरालको त्याग कर । "अद्भ्यः स्वाहा औषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा।गृहाय० । गृहदेवताभ्यः०। वास्तुदेवताभ्यः०। " ये पूर्वकी आहुति देकर । जलोंकी आहुति पश्चिममें 'इंद्रायस्वाहा' उसके उत्तरमें 'इंद्रपुरुषेभ्यः स्वाहा०' अंतरालके दक्षिणमें 'यमाय स्वाहा' उसके उत्तरमें, 'यमपुरुषेभ्यः०' ब्रह्माकी आहुतिसे पूर्वमें । 'वरुणाय०' उसके उत्तरमें, 'वरुणपुरुषेभ्यः०' अंतेराल (मध्य) के उत्तरमें, 'सोमाय०' उसके उत्तरमें, 'सोमपुरुषेभ्यः०' अंतरालमें, 'ब्रह्मणे०' ब्रह्मपुरुषेभ्यः०' 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः०' । 'सर्वेभ्यो भूतेभ्यः'० । दिवाचारिभ्यः० । सोमपुरुषके उत्तरमें, 'रक्षोभ्यः'० । इसीप्रकार सूर्यके स्थानमें प्रथम 'अग्नये स्वाहा' । यह आहुति देकर, 'प्रजापतये'० । इत्यादिको पूर्वके समान दे । तहां सायंकालके वैश्वदेव संबंधि दूसरे बलिदानको करै । 'दिवाचारिभ्यः०' इसके स्थानमें 'नक्तंचारिभ्यः' स्वाहा । यह आहुति दे यहँ विशेषहै । यह भूतयज्ञ समाप्त हुआ । प्राचीनावीती (अपसव्य) होकर, तीसरे भागमेंसे अन्न लेकर 'स्वधा पितृभ्यः०' इस मंत्रसे यमकी बलिसे दक्षिणमें, बलि देकर'पितृभ्य इदं न मम' यह कह कर दूसरी बलिके दक्षिणमें दूसरे पितृयज्ञकोही करै।।यह पितृयज्ञ समाप्त हुआ ।। अपरतो चक्राकारसे बलिको कहते हैं । बलिके किये विना भोजन न करै न बलिको उठावै । फिर घरके आंगनकी भूमिमें जळ सींचकर पूर्व, पश्चिम, वायव्य, दक्षिण, नैर्ऋतिमें, जो काक हैं; वे मेरे त्यागे हुये पिंडको ग्रहण करो । इस मंत्रसे पितृयज्ञसे शेष अन्नको दे वैवस्वतके कुलमें पैदाहुये जो दो शाम शवलनामके श्वान हैं; उनको यह पिंड मैं देता हूं वे मेरी मार्गमें सदैव रक्षा करैं । 'ये भूताः प्रचरंतिः' (जो भूत विचरते हैं) वे मेरी बलिको ग्रहण करो, इन दोनोंको भूतयज्ञके शेष अन्नमें से दे । 'ये भूताः०' इस मंत्रमें, तंत्रसे वैश्वदेवके प्रयोगमें 'दिवानक्तं बलिं' यह पाठहै । और दिन रातके पृथक् २ प्रयोगमें 'दिवा बलिमिच्छंतो नक्तं बलिमिच्छंतः' (दिन रात्रिकी बलिके अभिलाषी) यह विभागसे (पृथक् २) पाठ है। पाणि पादका प्रक्षालन, करके आचमनके अनंतर, घरमें प्रवेश करके 'शांता पृथिवी०' इत्यादिका जप करके विष्णुस्मरणके पीछे कर्मका अर्पण करै ।।

अथ मनुष्ययज्ञः ।

अतिथिभोजनपर्याप्तं वा षोडशग्रासमितं वा ग्रासचतुष्टयं वा ग्रासमितं वान्नं सनकादिमनुष्येभ्यो हंत इदं न ममेति दद्यात् ॥ बहुषु भिक्षुकेष्वागतेष्वशक्तेन त्रिभ्यो ग्रासत्रयं देयम् ॥ अथ तैत्तिरीयाणाम् ॥ श्राद्धदिने भिन्नपाकेनादौ वैश्वदेवः देवयज्ञादिचतुष्टयं च भवति ॥ अपरे आदौ वैश्वदेवांते पंचमहायज्ञा इत्याहुः ॥ "याजुषाः सामगाः पूर्वं मध्ये कुर्वंत्यथर्वणाः ॥ बह्वृचाः श्राद्धशेषेण तत्राप्यादौ तु साग्निकाः ॥ " स्वर्गपुष्ट्यर्थमात्मसंस्कारार्थं प्रातः सायं वैश्वदेवौ तंत्रेण करिष्ये ॥ औपासनाग्निं पचनाग्निं वा प्रतिष्ठापितमौपासनहोमवत् परिसमुह्य परिषिच्यान्नमग्नावधिश्रित्य प्रोक्ष्योद्वास्याभिघार्याग्निं संपूज्याऽन्नं त्रेधा विभज्य हस्तेन जुहुयात् ॥ अग्नये स्वाहा ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः० ध्रुवाय भूमाय० ध्रुवक्षितये० अच्युतक्षितये० अग्नये स्विष्टकृते० परिसमुह्य पर्युक्ष्याग्नेः पश्चादेकत्रैव देशे व्यजनाकारश्चक्राकारो वा बलिः ॥ तत्र देवताः ॥ धर्माय स्वाहा ॥ धर्मायेदं० अधर्माय० अद्भ्यः०

ओषधिवनस्पतिभ्यः० रक्षोदेवजनेभ्यः० गृह्याभ्यः० अवसानेभ्यः० अवसानपतिभ्यः० सर्वभूतेभ्यः० कामाय० अंतरिक्षाय० यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागो यन्नाम्ने स्वाहा ॥ नाम्न इदं० केचिद्वायव इदमिति त्यागमाहुः ॥ पृथिव्यै स्वाहा ॥ अंतरिक्षाय० दिवे० सूर्याय० चंद्रमसे० नक्षत्रेभ्य० इंद्राय० बृहस्पतये० प्रजापतये० ब्रह्मणे० सर्वान्सकृत्परिषिच्य ॥ पृथक् पृथक् परिषेचनपक्षे ॥ "द्वावेकं द्वे च चत्वारि प्रत्येकं त्रीणि चैव हि ॥ पृथिव्यादिदशस्वेकमत ऊर्ध्वं पृथक् क्रमात्" इति ज्ञेयम् ॥ प्राचीनावीती तद्दक्षिणतः स्वधा पितृभ्यः स्वाहा एतदुत्तरत उपवीती नमो रुद्राय पशुपपतये स्वाहा ॥ पितृरुद्रवली पृथक् परिषिंचेत् ॥ इति वैश्वदेवः ॥

अब मनुष्य यज्ञको कहते हैं। कि, अतिथिके पूरेभोजनयोग्य सोलह ग्रास वा चारग्रास वा ग्रासपरिमित, अन्नको 'सनकादिमनुष्येभ्यो हंत न मम०' इस मंत्रसे दे । बहुत भिक्षुक आगये होयँ तो अशक्त तीनको तीन ग्रासदे । अब तैत्तिरीयोंके वैश्वदेवको कहते हैं । श्राद्धके दिन भिन्नपाकसे प्रथम वैश्वदेव और चारों देवयज्ञ आदि होते हैं । अपरतो यह कहते हैं कि, प्रथम वैश्वदेवके अंतमें पांच महायज्ञ होते हैं । यजुर्वेदी, सामवेदी, पहिले और अथर्ववेदी मध्यमें और वहृचं श्राद्धके शेपसे करते हैं और उनमेंभी साग्निक आदिमें करते हैं । 'स्वर्गकी पुष्टिके और अपने संस्कारके लिये प्रातःकाल सायंकालके वैश्वदेवोंको तंत्रसे करताहूं' यह संकल्प करके । औपासन अग्निको वा पचनाग्निको स्थापित करके, औपासन होमके समान परिसमूहन, परिषेचन करके, अन्नको अग्निके ऊपर रखकर, प्रोक्षणके अनंतर उतार कर, घी मिलाकर, अग्निपूजन करके अन्नके तीन भाग करके हाथसे आहुति दे । "अग्नये स्वाहा०' । विश्वेभ्यो देवेभ्यः० । ध्रुवाय भूमाय० । ध्रुवक्षितये० । अच्युतक्षितये० । अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" । परिसमूहन और पर्युक्षण करके, अग्निकी पश्चिमदिशाके एकही देशमें व्यजनके आकारकी वा चक्रके आकारकी बलि दे । तिसमें देवता ये हैं । "धर्माय स्वाहा । धर्मायेदं न मम । अधर्माय०। अद्भ्यः० । औषधिवनस्पतिभ्यः०। रक्षोदेवजनेभ्यः०। गृह्याभ्य इदं०। अवसानेभ्यः० । अवसानपतिभ्यः० । सर्वभूतेभ्यः० । कामाय० । अंतरिक्षाय० । यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागोयं नाम्ने स्वाहा। तन्नाम्न इदं०" कोई तो 'वायवे इदं' इसप्रकार त्यागको कहते हैं । 'पृथिव्यै स्वाहा० । अंतरिक्षाय० । दिवे० । सूर्याय० । चंद्रमसे० । नक्षत्रेभ्यः० । इंद्राय० । बृहस्पतये० । प्रजापतये० । ब्रह्मणे स्वाहा । सबका एकवार सेचन करके । पृथक् २ सींचनेके पक्षमें तो यह क्रम जानना । कि, दोका सेचन एकबार, दोका चारबार तीनका प्रत्येक पृथिवी आदि दशका एकवार सेचन करै इससे आगे क्रमसे पृथक् २ करै । प्राचीनावीती होकर उसके दक्षिणभागमें 'स्वधा पितृभ्यः स्वाहा' उसके उत्तरमें उपवीती होकर, 'नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा ' इन पितृ और रुद्रबलियोंका पृथक् सेचन करै यह वैश्वदेव समाप्त हुआ ॥

अथ देवयज्ञादिचतुष्टयम् ।

देवयज्ञेन यक्ष्ये इति संकल्प्याग्निं परिषिच्य देवेभ्यः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वोत्तरपरिषेकः ॥ प्राचीनावीती पितृयज्ञेन यक्ष्ये दक्षिणतो भूमौ पितृभ्यः स्वधास्तु इति

दत्त्वा त्यक्त्वा परिषिच्य ॥ यज्ञोपवीती अपः स्पृष्ट्वा ॥ भूतयज्ञेन यक्ष्ये ॥ भूतेभ्यो नम इति भूमौ दत्त्वा ॥ परिषिच्य ॥ निवीती मनुष्ययज्ञेन यक्ष्ये ॥ उक्तप्रमाणमन्नं मनुष्येभ्यो हंत इति दद्यात् ॥ सर्वयज्ञेष्वाद्यंतयोः क्रमेण विद्युदसि वृष्टिरसीति मंत्रयोः पाठः प्रायेणैषाम् ॥ बलिशिष्टमन्नं ये भूताः प्रचरंतीति गृहांगणे गत्वाकाशे उत्क्षिपेत् ॥ ततो यथाचारं श्ववायसादिबलिः ॥

अब चारों देवयज्ञ आदिको कहते हैं। देवयज्ञ करके पूजन करताहूं यह संकल्प करके अग्निको सींचकर, देवेभ्यः स्वाहा यह आहुति अग्निमें देकर उत्तर सेचन करै प्राचीनावीती होकर पितृयज्ञसे पूजन करताहूं। यह कहकर दक्षिणको भूमिमें पितृभ्यः स्वधास्तु यह कहकर देकर और त्यागकर, परिसेचन करके । यज्ञोपवीती होकर जलस्पर्शकर 'भूतयज्ञसे पूजन करता हूं।' यह संकल्प, जलका स्पर्श करके, करै। 'भूतेभ्यो नमः' इसमन्त्रसे भूमिमें अन्नदेकर। सेचन करके । निवीती होकर मनुष्ययज्ञसे पूजन करता हूं । यह संकल्प करके पूर्वोक्त प्रमाणका अन्न, 'मनुष्येभ्यो हंत, इस मन्त्रसे दे। सब यज्ञोंके आदि अन्तमे क्रमसे 'विद्युदसि० वृष्टिरसि०' इन मन्त्रोंका पाठ है, प्रायः इनकी बलिका शेष अन्न। 'ये भूताः प्रचरंति०' इस मन्त्रसे घरके आंगनमें जाकर ऊपर को फेंक दे । फिर अपने आचरणके अनुसार श्वान, वायस आदिको बलिदे ॥

अथ कातीयानाम्।

तत्र साग्निकानामेकपाकेनैव श्राद्धदिने आदौ वैश्वदेवः ॥ अन्येषामते ॥ आवसथ्योल्मुकं महानसे कृत्वा तत्र पाकं विधाय महानसस्थांगारान् गृह्याग्नौ निधाय पाकादन्नं घृताक्तमादाय पूर्ववदात्मार्थं वैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्य इति संकल्पः ॥ अथवा देवभूतपितृमनुष्यान् वैश्वदेवान्नेन यक्ष्ये ॥ गृह्याग्निं मणिकोदकेन पर्युक्ष्य हस्तेनाग्नौ जुहुयात् ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ इदं ब्रह्मणे न मम ॥ एवमग्रेपि प्रजापतये० गृह्याभ्य० कश्यपाय० अनुमतये० ॥ इति देवयज्ञः ॥ ततो मणिकसमीपे बलित्रयमुदक्संस्थम् ॥ पर्जन्याय नमः स्वाहा ॥ इदं पर्जन्याय न मम॥ अद्भ्यो न० पृथिव्यै न० अथ द्वार्यशाखयोः प्राक्संस्थं बलिद्वयम् ॥ धात्रे० विधात्रे० उदकेन चतुरस्रं कृत्वा ॥ तत्र पूर्वे वायवे० दक्षिणे वायवे० पश्चिमे वायवे० उत्तरे वायवे० प्रागादिषु वायुबलेः प्रागुदग्वा ॥ प्राच्यै दिशे० दक्षिणस्यै दि० प्रतीच्यै दिशे०॥ उदीच्यै दि० मध्ये प्राक्संस्थम्॥ ब्रह्मणे० अंतरिक्षाय० सूर्याय० एषामुत्तरे विश्वेभ्यो देवेभ्यो० विश्वेभ्यो भूतेभ्यो० अनयोरुत्तरे ॥ उषसे० भूतानां च पतये० ॥ इति भूतयज्ञः ॥ प्राचीनावीती ब्रह्मादिबलित्रयस्य दक्षिणे पितृतीर्थेन पितृभ्यः स्वधा नम इदं पितृभ्यो न ममेति दद्यात्॥ इति पितृयज्ञः॥ पात्रं प्रक्षाल्य सव्येन ब्रह्मादिबलितो वायव्यां यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनमिति तज्जलं निनयेत् ॥ पूर्ववन्मनुष्ययज्ञः ॥ निरग्निकस्तु लौकिकाग्निमाहृत्य पृष्टोदिवीति प्रतिष्ठाप्य तत्सवितु० ताꣳसवितु० विश्वानिदेव० इति त्रिभिः सावित्रैः प्रज्वाल्य

तत्र नित्योपासनहोमं कृत्वा पाकं पचेद्वैश्वदेवं च कुर्यादिति गदाधरः ॥ तत्राप्यशक्तौ बह्वृचाद्युक्तरीत्या पचनाग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा संपूज्य तत्र पूर्वोक्तरीत्या वैश्वदेवस्तत्र अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति पंचाहुतीनामुत्तरं होमः ॥ सर्वत्र निरग्नेरिति विशेषः शेषं प्राग्वत ॥ कात्यायनानां दिवैवैको वैश्वदेवो न द्वितीयो रात्रौ ॥ सामगाथर्वणैरपि स्वगृह्योक्तरीत्या पंचमहायज्ञाः कार्याः ॥ स्वगृह्यानुपलंभे बह्वृचोक्तरीत्योपनयनादिसंस्काराः पंचमहायज्ञादयश्च कार्याः ॥ "शाखांतरमतं सम्यगनालोच्य स्वधाष्टर्यतः ॥ शाखांतराह्निकं प्रोक्तं ज्ञात्वा शोध्यं स्वशाखिभिः ॥"

अब कात्यायनोंके वैश्वदेवको कहते हैं । उसमें साग्निकोंका एकही पाकमें, श्राद्धके दिन प्रथम वैश्वदेव होता है । अन्योंके मतमें तो आवसथ्य अग्नि (घरकी) के उल्मुकको महानसमें करके, उसमें पाककरके, महानसके अंगारोंको, गृह्य अग्निमें रखकर पाकमेंसे घी मिले अन्नको लेकर पूर्वके समान, अपनी शुद्धिके लिये वैश्वदेवनामके कर्मको करता हूं, यह संकल्प करै अथवा देव, भूत, पितृ, मनुष्य इनको वैश्वदेवके अन्नसे पूजता हूं यह संकल्प करै । गृह्य अग्निको माणिकके जलसे पर्युक्षण करके, हाथसे अग्निमें आहुति दे । 'ब्रह्मणे स्वाहा । इदं ब्रह्मणे न मम । ऐसेही आगेभी समझना । 'प्रजापतये० । गृह्याभ्यः० । कश्यपाय० । अनुमतये स्वाहा ।' यह देव यज्ञ है । फिर मणिकके समीप, उत्तरमें तीन बलिदे । 'पर्जन्याय नम स्वाहा । इदं पर्जन्याय न मम । अद्भ्यो नमः० । पृथिव्यै नमः । इसके अनंतर द्वारशाखाओंमें पूर्वदिशामें दो बलिदे । 'धात्रे० । विधात्रे०' जलसे चौकोरमंडल करके । उसमें पूर्वमें 'वायवे नमः०' । दक्षिणमें 'वायवे०' । पश्चिममें 'वायवे०' । उत्तरमें 'वायवे०' । पूर्व आदिमें वायुकी बलिसे पूर्व वा उत्तरमें । 'प्राच्यै दिशे० । दक्षिणस्यै दिशे० । प्रतीच्यै दिशे० । उदीच्यै दिशे०' । मध्यमें पूर्वभागमें, 'ब्रह्मणे० । अंतरिक्षाय० । सूर्याय०' इनके उत्तरमें 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो० । विश्वेभ्यो भूतेभ्यो०' । इन दोनोंके उत्तरमें । 'उषसे० । भूतानां पतये नमः' । यह भूत यज्ञ है । प्राचीनावीती होकर ब्रह्माआदिकी तीन बलियोंके दक्षिणमें पितृतीर्थसे बलिदे कि, 'पितृभ्यः स्वधा नमः । इदं पितृभ्यो न मम' यह पितृ यज्ञ है । पात्रको धोकर सव्य होकर ब्रह्माआदिकी बलिसे वायव्यमें 'यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम्' इस मंत्रसे पात्रके जलको डारदे । मनुष्ययज्ञ, पूर्वके समान है । अग्निहोत्रीसे भिन्नसो लौकिकाग्निको लाकर 'वृषोदिवि०' इस मंत्रसे स्थापन करके 'तत्सवितुः० ता३सवितु० विश्वानि देव०' । इन तीन सावित्रियोंसे प्रक्षालन करके, उसमें नित्यउपासनाके होम को करके, पाक और वैश्वदेवको करै, यह गदाधर कहते हैं । उसमेंभी अशक्त होय तो बह्वृच आदिकोंमें कहीहुई रीतिसे पचनाग्नि स्थापन और ध्यान पूजन करके उसमें पूर्वोक्त रीतिसे वैश्वदेव करै, उसमें 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इन पांच आहुतियोंके पीछे होम करै । सर्वत्र निरग्निको यह विशेष है; शेषकर्म पूर्वके समान है । कात्यायनोंके यहां दिनमें एक वैश्वदेव होता है, दूसरा रात्रिमें नहीं होता सामग और आथर्वणभी अपनी गृह्यसूत्रमें कहीहुई रीतिसे पंचमहायज्ञोंको करैं । अपना गृह्यसूत्र न मिलै तो बह्वृचोंके यहां कहीहुई रीतिसे, उपनयन आदि संस्कार और पंच महायज्ञ करने । अन्य शाखाओंके मतका भली प्रकार आलोचन न करके अपनी धृष्टतासे अन्य शाखाओंका आह्निक कर्म हमने जो कहा है, उसको अपनी अपनी शाखावाले शोधन करलें ॥

अथ फलादिभक्षणेपि पंचमहायज्ञादिकरणे दोषो न ।

"इक्षूनपः फलं मूलं तांबूलं पय औषधम् ॥ भक्षयित्वापि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥" पंचमहायज्ञेष्वन्यतमस्य लोपे उपवासः प्रायश्चित्तम् ॥ धनिकस्यातुरस्य च प्रतियज्ञं कृच्छ्रार्धम् ॥ अन्ये त्वेकाहं लोपे मनस्वत्याहुतिर्द्व्यहं त्र्यहं लोपे तिसृभिस्तंतुमतीभिर्होमो वारुणीनां चतसृणां जपो द्वादशाहं लोपे तंतुमतीस्थालीपाको वारुणीभिराज्यहोमश्चेत्याहुः ॥

अब फलादि भक्षण करे पीछे पंचमहायज्ञादि करनेमें दोष नहीं यह कहते हैं । इक्षु, जल, फल, मूल, तांबूल, दूध, औषध इनको भक्षण करके भी स्नान, दान, आदि कर्मोंको करै । पंचमहायज्ञोंमें किसी यज्ञका लोप होजाय तो उपवासकरै । धनवान् और आतुरको तो प्रतियज्ञमें आधा कृच्छ्र है । अन्य तो यह कहते हैं कि, एकदिनके लोपमें 'मनस्वती०' आहुति दे । दो तीन दिनके लोपमें तौ तंतुमती ऋचाओंसे होम करै और वरुणकी चार ऋचाओंको जपै, बारहदिनके लोपमें तंतुमतीओंसे स्थालीपाक और वारुणीओंसे होम करै॥

अथ सर्वसाधारणो भोजनादिविधिः ।

हैमे राजते पात्रे आम्रादिपत्रे वा भोजनं शस्तम् एक एव तु भुंजीत कांस्यपात्रे नान्योच्छिष्टे ॥" तांबूलाभ्यंजनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥" पलाशपर्णेषु यत्यादेः प्रशस्तम् ॥ गृहिणस्तु चांद्रायणम् ॥ इदं वल्लीपलाशविषयमिति स्मृत्यर्थसारे ॥ कदलीकुटजमधुजंबूपनसाम्रचंपकोदुंबरपत्राणि शस्तानि ॥ अर्काश्वत्थवटादिपत्राणि निषिद्धानि ॥ चतुरस्रमंडले प्रक्षालितपात्रं निधाय पंचमहायज्ञावशिष्टं घृतादियुतं परिविष्टमन्नमस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति वदन्नत्वा ग्रंथिरहितपवित्रयुतदक्षिणपाणिः पादाभ्यां पादेन वा भुवं स्पृशन् व्याहृतिभिर्गायत्र्या चाभिमंत्र्य सत्यंत्वर्तेन परिषिंचामीति दिवा ऋतं त्वा सत्येन परिषिंचामीति रात्रौ परिषेचनं कृत्वा ॥" अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः॥त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वं विष्णुः पुरुषः परः॥" पात्राद्दक्षिणे भूमौ॥ भूपतये नमः॥भुवनपतये०भूतानां पतये० इतित्रीन्बलीन्दद्यात्॥यद्वा चित्राय०चित्रगुप्ताय० यमाय० यमधर्माय० सर्वेभ्यो भूतेभ्य० इति वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्वा चत्वारः धर्मराजाय चित्रगुप्तायेति द्वौ वा भूपत्यादित्रययतावेताविति पंच वा देयाः ॥ हस्तपादमुखार्द्रः ॥ आपोशनार्थं जलमादायान्नं ब्रह्मरसो विष्णुः० 'अहं वैश्वानरो भूत्वा' इत्यर्थं ध्यात्वा वामकरेण पात्रं धृत्वामृतोपस्तरणमसीत्यपः प्राश्य ॥ मौनी ॐ प्राणाय स्वाहा ॥ ॐ अपानाय स्वाहा ॥ ॐ व्यानाय स्वाहा ॥ ॐ उदानाय स्वाहा ॥ ॐ समानाय स्वाहा ॥ इति सघृताः सक्षीरा वा पंचाहुतीः सर्वांगुलिभिः सर्वं ग्रासं ग्रसन् मुखे जुहुयात् ब्रह्मणे स्वाहेति षष्ठी क्वचित् ॥ प्राणाहुतिपर्यंतं पात्रालंभो मौनं च नियतमग्रे ऐच्छिकं द्वयम् ॥ भोजनं प्राङ्मुखं प्रत्यङ्मुखं वा

शस्तम् ॥ दक्षिणामुखं यशःफलं काम्यम् ॥ उदङ्मुखं मध्यमम् ॥ विदिङ्मुखं निषिद्धम् ॥ कृत्स्नं ग्रासं ग्रसन् द्वात्रिंशदादिनियतग्रासमनियतग्रासं वा भुक्त्वामृतापिधानमसीति गंडूषार्धं पीत्वार्धं भूमौ निनीय पवित्रं त्यक्त्वा मुखहस्तोच्छिष्टं सम्यक् प्रक्षालयेत् ॥ तर्जन्या मुखं न शोधयेत ॥ किंचिद्गंडूषोत्तरं हस्तप्रक्षालनं षोडशगंडूषाते द्विराचामेत् ॥ भोजनगृहे च नाचामेत ॥ अनाचांतो मूत्रपुरीषौ न कुर्यात् ॥

अब सर्वसाधारण भोजन आदिकी विधिको कहते हैं । सुवर्ण चांदीके पात्रमें वा आम आदिके पत्तोंमें भोजन श्रेष्ठ है । कांसीके पात्रमें एकही मनुष्य भोजन करै अन्यके उच्छिष्टमें न करै; तांबूल, अभ्यंजन, (उबटना) कांसीके पात्रमें भोजन, इनको संन्यासी, ब्रह्मचारी, विधवा ये तीनों वर्ज दें । पलाशके पत्तोंमें संन्यासी आदिका भोजन श्रेष्ठ है । गृहस्थ तो इनमें भोजन करै तो चांद्रायण करै । यह वल्ली और पलाशके विषयमें है यह स्मृत्यर्थसारमें कहा है । केला, कुटज, महुआ, जामन, पनस, आम्र, चंपा, गूलर इनके पत्र श्रेष्ठ हैं । आक, पीपल, बडआदिके पत्ते निषिद्ध हैं । चौकोर मंडलमें प्रक्षालन किये पात्रको रखकर, पांच यज्ञोंके अवशिष्ट घी आदिसे युक्त परिशिष्टमें यह अन्न हमारे सदा हो, यह कहताहुआ नमस्कार करके ग्रंथी जिसमें न हो ऐसी पवित्री को दक्षिण हाथमें लेकर दोनों पादोंसे वा एक पादसे भूमिका स्पर्श करता हुआ व्याहृतियोंसे वा गायत्रीसे अभिमंत्रित करके 'सत्यं त्वर्तेन परिषिंचामि' इस मंत्रसे दिनमें 'ऋतं त्वा सत्येन परिषिंचामि०' इससे रात्रिमें, अन्नका सेचन करके; तू भूतोंके अंतः (मध्यमें) विचरता है और गुहामें विराजमान व्यापक है, तूही यज्ञ है, तूही वषट्कार है, तूही परम विष्णुरूप है, पात्रसे दक्षिणकी भूमिमें 'भूपतये नमः । भुवनपतये नमः । भूतानां पतये नमः' । इन तीन बलियोंको दे । अथवा 'चित्राय० । चित्रगुप्ताय० । यमाय० । यमधर्माय० । सर्वभूतेभ्यः०' । इनसे वा व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे चारदे, वा 'धर्मराजाय० । चित्रगुप्ताय०' । ये दो दे, वा भूपति आदि तीनसे युक्त ये आहुति दे । वा पांच आहुति दे । हाथ, पाद, मुख इनको धोकर; आपोशानके लिये जलको लेकर 'अन्नं ब्रह्म रसो विष्णुः । 'अहं वैश्वानरो भूत्वा०' । इत्यादिके अर्थका ध्यान करके वामहाथसे पात्रका स्पर्श करके, 'अमृतोपस्तरणमसि' इसमंत्रसे जलका प्राशन करके मौन धारे हुये 'ॐ प्राणाय स्वाहा । ॐ अपानाय स्वाहा । ॐ व्यानाय स्वाहा । ॐ उदानाय स्वाहा । ॐसमानाय स्वाहा० ।' इन मंत्रोंसे पांचआहुति घीसे मिली वा दूधमिली, सब अंगुलियोंसे संपूर्ण ग्रासको खाता हुआ मुखमें होम करै, 'ब्रह्मणे स्वाहा' यह छठी आहुतिभी कहीं कही है । प्राणाहुतिपर्यंत पात्रका स्पर्श और मौनका नियम है, आगे दोनोंमें अपनी इच्छा है । भोजन पूर्वाभिमुख वा पश्चिमाभिमुख श्रेष्ठ है । और यशरूप फलकी कामनासे दक्षिणाभिमुखहै, उत्तराभिमुख मध्यम है । विदिशामें मुखकरके भोजन निषिद्धहै । संपूर्णग्रासको ग्रसता हुआ, बत्तीस (३२) आदि नियतग्रासोंको वा अनियतग्रासोंको खाकर 'अमृतापिधानमसि' इसमंत्रसे आधे गंडूषको पीकर आधेको भूमिमें गेरकर, पवित्री त्यागकर, मुख और हाथके उच्छिष्टका भलीप्रकार प्रक्षालन करै । तर्जनीसे मुखशुद्धिको न करै । किंचित् गंडूषोंके अनंतर हस्तका प्रक्षालन करै, सोलह गंडूषोंके पीछे दोवार आचमन करै । भोजनके घरमें आचमन न करै ॥ विना आचमन किये मलमूत्र का त्याग, न करै ।

अथ भोजने विधिनिषेधाः ।

उत्तरापोशनमकृत्वोत्थाने स्नात्वा शुद्धिः हस्तौ संमृज्य प्रस्राव्यांगुष्ठेन नेत्रयोर्निषिंच्येष्टदेवतां स्मरेत् ॥ नांजलिना पिबेत् ॥ पालाशं दग्धमयोबद्धं च पीठं वर्जयेत्॥न शिशुभिः सह भुजीत ॥ भार्यया च सह विवाहवर्ज्यं न भुंजीत॥बालवृद्धेभ्योन्नमदत्त्वा न भुंजीत ॥ न प्रौढपादो नासनारूढपादो न प्रसारितपादो न विदिङ्तुंडो न दुष्टैकपंक्तौ न शून्याग्निपाकगृहे न देवालये भुंजीत ॥ न संध्ययोर्न महानिशायां न यज्ञोपवीतहीनो न वामहस्तेन न शूद्रशेषं भुंजीत ॥ आदौ मधुरं मध्ये लवणाम्लमंते तिक्तादि ॥ पूर्वं द्रवं मध्ये कठिनमंते द्रवम् ॥ अष्टौ ग्रासा यतेः षोडश द्वात्रिंशद्वा गृहिणो वनस्थस्य षोडश यथेष्टं ब्रह्मचारिणः॥"सर्वं सशेषमश्नीयान्निःशेषं घृतपायसम् ॥" क्षीरं दधि मधु भुंजीत ॥ दिवा रात्रौ चेति द्विवारमेव नांतराभोजनम् ॥" अर्कपर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा॥ एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ यस्तु पाणितले भुंक्ते यश्च फूत्कारसंयुतम् ॥ प्रसृतांगुलिभिर्यश्च तस्य गोमांसवच्च तत् ॥ नाजीर्णे भोजनं कुर्यात्कुर्यान्नातिबुभुक्षितः ॥ नार्द्रवासा नार्द्रशिरा न पादारोपिते करे ॥ ग्रासशेषं च नाश्नीयात्पीतशेषं पिबेन्न च ॥ शाकमूलफलादीनि दंतच्छेदैर्न भक्षयेत् ॥ नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥ पिबतो यत्पतेत्तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ॥ अभोज्यं तत् ॥" पीतावशिष्टतोयपाने चांद्रायणम् ॥ हस्तनखस्पृष्टजलपाने वामहस्तोद्धृतजलपाने च सुरापानसमम्॥एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां भुंजानानामेकस्मिन्नप्युत्थिते आचांते वाऽन्यैर्न भोज्यम् ॥ अत्रोत्थितस्य भोक्तुश्च दोषः गुरोर्न दोषः ॥"लवणं व्यंजनं चैव घृतं तैलं तथैव च ॥ लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ॥" ताम्रे गव्यं कांस्ये नारिकेलेक्षुरसौ सगुडं दधि सगुडमार्द्रकं च मद्यसमम् ॥ सैंधवसामुद्रभिन्नप्रत्यक्षलवणभक्षणं मृद्भक्षणं च गोमांससमम् ॥"उदक्यामपि चांडालं श्वानं कुक्कुटमेव च ॥ भुंजानो यदि पश्येत्तु तदन्नं तु परित्यजेत् ॥" भुंजानस्य गुदस्रावे उपवासः पंचगव्यं च आपोशनोत्तरं प्राणाहुतेः प्राक् तत्स्रावे स्नानं षट् प्राणायामाः भुंजानस्याशौचप्राप्तौ ग्रासं त्यक्त्वा स्नानम् ॥ ग्रासाशने उपवासः सर्वाशने त्रिरात्रम् ॥ विष्ठादिस्पर्शे स्नानं प्राणायामत्रयं च ॥ चांडालपतितोदक्या वाक्यं श्रुत्वा भोजने एकोपवासः ॥ स्नात्वा शतगायत्रीजपो वा ॥ कलहघरट्टोलूखलमुसलानां यावच्छब्दस्तावदभोजनम् ॥"अप्येकपंक्त्यां नाश्नीयाद्ब्राह्मणैः स्वजनैरपि ॥ कोपि जानाति किं कस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥ ततोऽग्निना भस्मना च स्तंभेन सलिलेन च ॥ द्वारेणैव च मार्गेण पंक्तिभेदं चरेद्बुधः ॥" केशपिपीलिकामाक्षिकाभिः १ पक्वमन्नं त्यजेदेव ॥ पाकोत्तरं केशपिपीलिकादिकीटकमक्षिकासंसृष्टे गवाघ्राते

वान्ने ॥ "सलिलं भस्म मृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये ॥" इति विज्ञानेश्वरः ॥ शूद्रान्नं शूद्रदत्तब्राह्मणान्नं रात्रिपर्युषितं रजस्वलाचांडालपतितादिदृष्टं काकादिपक्ष्युच्छिष्टमभोज्यम् ॥ स्नेहपक्कं मंडकादि च पर्युषितं ग्राह्यम् ॥

अब भोजनमें विधिनिषेधको कहतेहैं । उत्तरापोशानकिये विना भोजनसे उठजाय तो स्नानसे शुद्धि होती है, हाथोंका भली प्रकार मार्जन करके जलका स्राव(बहाना) करके, अंगूठेसे नेत्रोंमें सींचकर, इष्टदेवताका स्मरण करै । अंजलिसे जल न पीवै । ढाकका, जलाहुआ और लोहेसे जडे आसन (पट्टा) को वर्जदे । बालकोंके संग भोजन न करै । विवाह को छोडकर भार्याके संग भोजन न करै । बालक वृद्धोंको अन्नके विनादिये भोजनन करै । प्रौढपाद (गोडे खडे किये) होकर, आसनपर पादोंको रखकर, पाद पसारकर, विदिशाको मुखकरके दुष्टोंके संग एकपक्तिमें, जिसमें अग्नि न हो ऐसे पाकघरमें, देवमंदिरमें, भोजन न करै । संध्याओंमें, अर्द्धरात्रमें, यज्ञोपवीतसे हीन तथा वामहाथसे तथा शूद्रके शेषको भोजन न करै । प्रथम मधुरका भोजन करै मध्यमें लवण अम्लका अंतमें तिक्तआदिका, भोजन करै । प्रथम द्रवपदार्थका, मध्यमें कठिनका, अंतमें द्रवपदार्थका भोजन करै, संन्यासी आठ ग्रास, गृहस्थ सोलह ग्रास, वा बत्तीसग्रास, वानप्रस्थके सोलह, ब्रह्मचारी यथेष्ट ग्रासों का भक्षण करै । सब पदार्थोंका शेष त्यागकर भक्षण करै, घी और पायसका शेष न छोडै और दूध-दही, मधु इनकाभी निःशेष भोजन करै । दिनमें और रात्रिमें दोवार ही भोजन करै। मध्यमें न करै । द्वादशी और दोनों पर्वों (१५–३०) में रात्रिको; चौदश, अष्टमीको, दिनमें; एका, दशीको अहोरात्रमें भोजन करके चांद्रायण करै । जो पाणिके तलपर भोजन करता है, जो फूत्कार सहित खाता है और अंगुलियोंको फैलाकर, खाता है उसका वह भोजन गोमांसके समान है । अजीर्णमें भोजन न करै, अत्यंत बुभुक्षित (भूखा) न करै, गीले वस्त्र और गीले शिरसे न करै, पैरके ऊपर हाथ रखकर भोजन न करै ग्रासके शेषको न खाय और न पीतके शेषको पीवै । शाक, मूल, फल इनको दांतोंसे छेदकर न खाय । उच्छिष्ट मनुष्य घृतका ग्रहण न करै और पादसे पात्रका स्पर्श न करै, पीतेहुये मनुष्यका भोजनमें जो मुखसे जल गिरजाय वह भोजन अभोज्य है । पीनेसे शेषजलके पानमें चांद्रायण करै । हाथके नखोंसे स्पर्श किये जलके पीनेमें, वामहाथसे निकासे जलके पीनेमें, सुरापीने की तुल्यता है । एकपंक्तिमें बैठकर भोजन करते हुये ब्राह्मणोंमेंसे एक उठजाय वा आचमन करलेय, तो अन्य ब्राह्मण भोजन, न करैं । इसमें उत्थित और भोक्ता दोनोंको दोष है गुरु उठजाय तो कुछ दोष नहीं। लवण, व्यंजन, घृत, और तैल और अनेक प्रकारके लेह्य, और पेय, इनको हाथसे दिये होयँ तो न खाय । तामेके पात्रमें गव्यको, कांसीकेमें नारियल और इक्षुके रसको, गुडदही और गुडसहित अदरखको भक्षण करै तो मदिराके समान है । समुद्रसे भिन्न प्रत्यक्षलवणका भक्षण और मिट्टीका भक्षण, गोमांसके समान हैं । रजस्वला, चांडाल, श्वान, कुक्कुट इनको भोजन करता हुआ देखले तो उस अन्नको त्यागदे । भोजन करते समय मलसहित अधोवायु निकसजाय तो उपवास करै और पंचगव्य पीवै । आपोशानके पीछे प्राणाहुतिसे पहिले गुदाका स्राव होजाय तो स्नान और छः प्राणायाम करै । भोजन करते समय अशौच प्राप्त होजाय तो ग्रासको त्यागकर स्नान करै । ग्रासके

भक्षणमें तो उपवास करै, सब अन्नके भक्षणमें त्रिरात्र उपवास करै । विष्ठाआदिके स्पर्शमें स्नान और तीन प्राणायाम करै । चांडाल, पतित, रजस्वला, इनके वाक्यको सुनकर भोजन करै तो एक उपवास करै । वा स्नान करके सौ गायत्री जपै । कलह (झगडा) घरट्ट (जांत) ऊलूखल, मूसल, इनका जबतक शब्द हो तबतक भोजन न करै । ब्राह्मण अपने जनोंसे भिन्नोंके संग एक पंक्तिमें भोजन, न करै; क्योंकि किसके छिपे हुये किसी पातकको कौन जान सकता है । तिससे बुद्धिमान् मनुष्य, अग्निसे, भस्मसे, स्तम्भसे, जलसे, द्वारसे, मार्गसे पंक्ति पृथक् करले । केश, चेंटी, मक्षिका ये जिसमेंहों ऐसे पके अन्नको तो त्यागही दे । पाकके अनंतर केश,चेंटी,कीट,मक्षिका इनसे युक्त और गौके सूंघे हुये अन्नमें शुद्धिके अर्थ जल, भस्म, वा मिट्टीको, डारदे यह विज्ञानेश्वर कहते हैं । शूद्रका अन्न, शूद्रका दिया ब्राह्मणोंका अन्न, रात्रिका पर्युषित (बासी), रजस्वला, चांडाल, पतित इनका देखा काकआदि पक्षियोंका उच्छिष्ट अन्न; भोजनके अयोग्य हैं । स्नेहमें पक्क और मंडक आदि पर्युषित होय तो ग्रहण करने योग्य है ॥

अथ वर्ज्यक्षीराणि ।

अवत्साया गोरनिर्दशानां गोमहिष्यजानां गर्भिण्या एककालांतरितदोहाया यमलसूस्रवत्स्तन्योरजवर्जद्विस्तनीनामुष्ट्रीवडवयोरारण्यकमृगादेरवेश्च क्षीराणि वर्ज्यानि ॥ शिग्रुं हिंगुवर्ज्यं रक्तं वृक्षनिर्यासं पुरीषस्थानोत्पन्नतडुलीयकादिकं देवाद्युद्देशं विना कृतं संयावपायसापूपशष्कुलीकृसरं वर्जयेत् ॥ शणकुसुंभालाबुवार्ताककोविदारवटादिफलानि मातुलिंगं च वर्ज्यम् ॥ पलांडुलशुनगृंजनभक्षणे चांद्रायणम् ॥ भुंजानेषु परस्परस्पर्शे अन्नत्यागः ॥ पात्रस्थान्नभक्षणे स्नात्वाष्टोत्तरशतगायत्रीजपः अधिकभोजने सहस्रम् ॥ भुंजानस्याशुचिना विप्रेण स्पर्शेन्नत्यागः ॥ भुक्तोच्छिष्टस्पर्शे सवर्णे स्नानं जपो वा ॥ असवर्णे तूपवासः ॥ भुक्तोच्छिष्टस्य श्वशूद्रादिस्पर्शे उपोष्य पंचगव्यम् ॥ रजकादिस्पर्शे त्रिरात्रम् ॥ परिवेषणं कुर्वन्नुच्छिष्टस्पर्शे पयोदधिघृतादिलघुद्रव्यमत्यजन्नाचांतः शुचिः ॥ भक्ष्याद्यन्नस्य त्याग एव वस्त्रे विकल्पः ॥ परिवेषणादिकाले रजोदृष्टौ तत्स्पृष्टान्नत्यागः ॥ भोजनांत उच्छिष्टशेषान्नं"रौरवे पूयनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥ प्राणिनां सर्वभूतानामक्षय्यमुपतिष्ठतु" इति दद्यात् ॥" आचांतोप्यशुचिस्तावद्यावत्पात्रमनुद्धतम्॥उद्धृतेप्यशुचिस्तावद्यावन्नोन्मृज्यते मही ॥ पर्णस्याग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः ॥ चूर्णपर्णं वर्जयित्वा तांबूलं खादयेद्बुधः ॥ अनिधाय मुखे पूर्णं पूगं वै भक्षयेन्न च" ॥ इति पंचमभागकृत्यम् ॥ अथ षष्ठभागादिकृत्यविचारः ॥ "इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत् ॥ अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः संध्या ततः पुनः ॥"

अब वर्ज्यक्षीरको कहतेहैं । विनावत्सकी गौका और दशदिनके भीतर गौ, भैंस, बकरी, इनका; गर्भिणीका; एककाल अंतरायसे जो दुहीजाय (तिवास) यमल (दो) वत्सवतीका, जिसके स्तनोंमें दूध झरताहो, अजासे भिन्न दो स्तनवतीका, ऊंटनी, घोडी, भयानक वन

वासी मृगआदि और भेड, इन सबके दूध वर्जित हैं। सोहेंजना, हींग से भिन्न, रक्त वृक्षका गोंद, पुरीषके स्थानमें उत्पन्न तंडुलआदि, देवताके उद्देशके विना बनाये संयाव (हलवा) पायस, अपूप, शष्कुली, कृसर ये सब वार्जितहैं। शण, कुसुंभ, अलाबु, (तुंवी) वृन्ताक, कोविदार, (कचनार) बडआदिके फल वर्जित हैं। और मातुलिंग (कासीफल) वर्जितहै। पलांडु लहसन, गाजर इनके भक्षणमें चांद्रायण करै। भाजनकरते हुये परस्पर स्पर्शकरलें तो अन्नको, त्यागदें। पात्रमें स्थित (जूंठा) अन्नको भक्षण करके स्नानकरके अष्टोत्तरशत (१०८) गायत्री जपै। अधिकके भक्षणमें तो सहस्रगायत्री जपै। भोजनकरते हुयेका, अशुद्धब्राह्मण स्पर्शकरले तो उस अन्नको त्यागदे। भुक्तके उच्छिष्टका स्पर्श सवर्णी करले तो स्नान वा जप, करै। असवर्ण स्पर्शकरलेतो, उपवास करै। भुक्तउच्छिष्टका श्वा (कुकुर) आदिका स्पर्श होजाय तो उपवास करके पंचगव्य पीवै। रजकआदि स्पर्श करलें तो त्रिरात्र उपवास करै। परोसतेहुयेका उच्छिष्ट मनुष्य स्पर्श करलेतो दूध, दधि, घृत, आदि लघुद्रव्यको न त्यागता हुआ आचमनसे शुद्ध होता है। भक्ष्यआदि अन्नका तो त्यागही है। वस्त्रके त्यागमें तो विकल्प है। परोसनेके समयमें रजोदर्शन हो जाय तो स्पर्श किये हुये अन्नको त्यागदे। भोजन करने पर उस उच्छिष्ट शेष अन्नको रौरव, पूयनरकोंमें पद्म अर्बुदपर्यंत जिनका निवास है ऐसे संपूर्ण भूत और प्राणियोंको अक्षय प्राप्त हो, इसमंत्रसे देदे। इतने पात्र न उठाये जायँ तबतक आचमन करनेपरभी अशुद्ध रहता है, पात्रोंके उठानेपरभी तबतक अशुद्ध रहता है जबतक भूमिका मार्जन न हो। बुद्धिमान् मनुष्य पत्तेके अग्रभाग और मूल और शिरा और विशेषकर चूर्ण, इनको त्याग कर तांबूलका भक्षण करै। विनापत्तेके मुखमेंदिये सुपारीका भक्षण न करै। यह पांचमें भागका कृत्य है। इतिहास और पुराण आदिसे छठे सातमें भागोंको व्यतीत करै; आठमें भागमें लोकयात्रा करै फिर बाहिर जाकर संध्या करै अब सायंसन्ध्याको कहतेहैं ॥

अथ सायंसंध्या।

सायंसंध्या प्रातःसंध्यावत् ॥ अग्निश्च मामन्युश्च० यदह्नापापमकार्ष० अहस्तदवलुंपतु० सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहेति मन्त्राचमने विशेषः ॥ पश्चिमाभिमुखस्तिष्ठन् अर्घ्यं दद्यात् ॥ ऊर्ध्वजानुरुपविश्य प्रत्यङ्मुख एव गायत्रीं जपेत् ॥ सायंहोमस्तूक्त एव सायंवैश्वदेवे पुनः पाकः अतिथिं संपूज्य घटीत्रयानंतरं सार्धयामात्प्राग् भुक्त्वा शयीत ॥ भोजनकाले दीपनाशे पात्रमालभ्य सूर्यं स्मृत्वा पुनर्दीपं दृष्ट्वा पात्रस्थं भुंजीत नान्यत् ॥ श्राद्धतत्पूर्वदिने पातव्यतिसंक्रांत्यादिषु न निशि भोजनम् ॥"चतुर्थप्रथमौ यामौ विद्याभ्यासैर्नयेन्निशि ॥ प्रहरद्वयशायी तु ब्रह्मभूयाय कल्पते॥" प्राक् प्रत्यग्दक्षिणस्यां शिरः कृत्वा शयीत न कदाचिदुदक्शिराः॥ रात्रिसूक्तं जपित्वा सुखशायिनः स्मृत्वा विष्णुं नत्वा स्वप्यात् ॥"अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुंदो महामुनिः ॥ कपिलो मुनिरास्तीकः पंचैते सुखशायिनः॥ न संध्यायां न धान्ये न गोगेहे न देवविप्रगुरूणामुपरि नोच्छिष्टो न दिवा न नग्नः शयीत॥ निद्राकाले तांबूलं मुखात्स्त्रियं शयनाद्बालातिलकं शिरसः पुष्पं च त्यजेत्॥ गर्भाधान-

प्रकरणोक्तकाले सार्धयामोत्तरं दीपे सत्यसति वा निवीतं यज्ञोपवीतं कंठादौ कृत्वा पत्नीं गच्छेत् ॥" अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ॥ कृत्वा सचैलं स्नात्वा तु वारुणीभिश्च मार्जयेत् ॥" पुनर्मामैत्विति जपश्चोक्त एव ॥

सायंकालकी संध्या प्रात:संध्याके समानहै । "अग्निश्च मामन्युश्च० यदह्ना पापमकार्षं अहस्तदवलुंपतु०सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा"इतना आचमनके मंत्रमें विशेषहै,पश्चिमाभिमुख खडा होकर अर्घ्यदे । ऊर्द्ध्वजानु बैठकर पश्चिमको मुखकिये गायत्रीको जपै सायंकालके होम को तो कह आये । सायंकालके वैश्वदेवमें पुन:पाक होता है, अतिथि सत्कार करके तीन घडीके अनंतर डेढ प्रहरसे पहिले भोजन करके शयन करै। भोजनके समयमें दीपक नष्ट होजाय तो पात्रका स्पर्श करके और सूर्यका स्मरणकर, पुन: दीपकको देखकर, पात्रमें स्थित अन्नका भोजन करै; अन्यका न करै । श्राद्धके दिन और श्राद्धसे पहिलेदिन, व्यतीपात, संक्रांतिआदिमें रात्रिको भोजन न करै । रात्रिमें चौथे और पहिले प्रहरोंको जो विद्याके अभ्याससे वितावै और दोप्रहर जो शयन करै, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है । पूर्व, पश्चिम. दक्षिणको शिर करके शयन करै उत्तरको शिरकिये कदाचित् न सोवै ।रात्रिसूक्तको जपकर और सुखसे शयनकर्ताओंका स्मरण करके विष्णुको नमस्कार करके शयन करै । अगस्ति, माधव, मुचुकुंद, महामुनिकपिलमुनि,आस्तीकमुनि ये पांचसुखसे शयन कर्ता हैं।संध्याके समय, धान्यमें, गोगृहमें देव, विप्र, गुरु इनसे ऊंचेपर न सोवै, न उच्छिष्ट सोवै, न नंगा सोवै । निद्राके समयमें मुखमेंसे तांबूलको, शय्यासे स्त्रीको, मस्तकसे तिलकको, शिरसे पुष्पको, त्यागदे । गर्भाधानप्रकरणमें उक्तसमयके विषे डेढप्रहरके अनंतर, दीपक हो, चाहै न हो, निवीत यज्ञोपवीतको कंठआदिमें करके, पत्नीके संग, गमन (भोग) करै । अष्टमी, चौदस, दिन, पर्व इनमें मैथुनको करै तो सचैल स्नान करके वारुणी ऋचाओंसे मार्जन करै । 'पुनर्मामैतु०' इसका भी जप कहा है ॥

अथ सर्वत्र विष्णूच्चारणं प्रायश्चितम् ।

एवं स्नानभोजनादिके बहुविधविधिनिषेधाकुले आह्निककर्मणि न्यूनाधिकदोषविधिनिषेधातिक्रमदोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्ताज्ञाने तत्सांगतार्थं प्रायश्चित्तसांगतार्थं च श्रीविष्णुनामोच्चारणादिकं कार्यम् ॥"प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि च॥ यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वंदे तमच्युतम् ॥ नाम्नोस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ॥ तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥" लौकिकं वैदिकं कर्मेश्वरेर्पणीयम् ॥" यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥ यत्तपस्यासि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्" इत्युक्तेः ॥ युगपत्सर्वकर्मार्पणे मंत्रः ॥ " कामतोकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम्॥तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्॥ अपारमाह्निकं कर्म गहनं बहुभेदयुक् ॥ निःशेषमक्षमो वक्तुं यथामत्यवदल्लघु ॥ अनंतोपाध्यायजनिः काशीनाथाभिधः सुधीः ॥ तुष्यतां तेन भगवाञ्छ्रीनाथो

विट्ठलः प्रभुः ॥" इत्यनंतोपाध्यायसुतकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे तृतीयपरिच्छेदे आह्निकाचारप्रकरणं समाप्तम् ॥

अब समस्तकृत्यमें विष्णुके विष्णुनामका उच्चारणरूप प्रायश्चित्त कहतेहैं । इसप्रकार स्नान, भोजन, आदि और अनेक प्रकारके विधिनिषेधोंसे आकुल (युक्त) आह्निक कर्ममें न्यून अधिकका दोष और विधि निषेधके अवलंबनका जो दोष, प्रायश्चित्तके न जाननेमें उसके परिहारके लिये और प्रायश्चित्तके जाननेमें प्रायश्चित्तकी सांगताके लिये श्रीविष्णुके नामका उच्चारण आदि करै । तप, कर्म, रूप जो अशेषप्रायश्चित्त हैं, उन सबमें कृष्णका स्मरण उत्तम है । जिसके स्मरण और नामकी उक्तिसे तपःकर्म आदिमें जो न्यून है वह संपूर्णताको प्राप्त होता है, उस अच्युतको मैं शीघ्र नमस्कार करता हूं । और पापोंके नाशकरनेमें जितनी शक्ति हरिके नाममें है, उतने पापोंको पातकी मनुष्य नहीं करसकता । लौकिक और वैदिक कर्मको ईश्वरके अर्पण करै । क्योंकि, जो करता है, जो भक्षण करता है, जो होम करता है, जो देता है और जो तप करता है; हे अर्जुन ! वह सब मेरे अर्पण करदे, यह भगवान्ने कहा है । एक वार सब कर्मोंके अर्पणका यह मन्त्र है कि, सकाम वा निष्काम जानकर वा विना जाने जो मैं शुभ, अशुभ, कर्मको करता हूं वह सब तुमको सौंपदिया; क्यों कि, आपकी प्रेरणासे मैं करता हूं । यह आह्निक कर्म अपार है और गहनहै और बहुत भेदोंसे युक्त है उससंपूर्णके कहनेमें मैं असमर्थ हूं; इससे मैंने यथामति लघुही वर्णन किया है ॥ अनंत उपाध्यायके पुत्र काशीनाथ सुधीने यह जो कर्म वर्णन किया है; उससे भगवान् श्रीनाथ विट्ठल, प्रभु प्रसन्न हों ॥ इत्यनंतोपाध्यायसुतकाशीनाथविरचिते धर्मसिंधुसारे तृतीयपरिच्छेदे पं०मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते आह्निकाचरणप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ काम्यनैमित्तिकविचारः ।

"अवश्यं प्रत्यहं कृत्यमुक्त्वा तच्छेष उच्यते ॥ काम्यं नैमित्तिकं चापि प्रायः सिंधुक्रमादथ ॥

अब काम्य नैमित्तिकविचार कहतेहैं । आवश्यक प्रतिदिनके कृत्यको कहकर उसका शेष जो काम्य, नैमित्तिकहै वह सब प्रायः निर्णयसिंधुके क्रमसे कहतेहैं ॥

अथाधानविचारः ।

तत्राधाननक्षत्रादिकालविचारः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः ॥ आवसथ्याधानं तु दारकाले दायविभागकाले वा ॥ "अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादिना ॥ पितर्युपरते तेन ग्रहीतव्यः प्रयत्नतः ॥" गृह्याग्निहीनस्यान्नमभोज्यम् ॥ पितरि ज्येष्ठभ्रातरि वा साग्निके कनिष्ठादेरविभक्तस्य निरग्निकत्वदोषो न ॥ एवं ज्ञानाध्ययनादिनिष्ठस्यापि न दोषः ॥ गृहस्थस्याप्यध्ययनोक्तेः स्मार्ताधानमपि ज्येष्ठे भ्रातरि अकृताधाने सति न कार्यमिति निर्णयसिंध्वादौ गार्ग्योक्तिः ॥ अत्रैवं निर्णयो भाति ॥ यत्र ज्येष्ठेन दायाद्यपक्षमवलंब्य विवाहकाले यावज्जीवमौपासनं करिष्ये इत्येवं संकल्पपूर्वकं विवाहाग्निर्न गृहीतस्तद्विषयोयं कनिष्ठस्य निषेधः ॥ येन

ज्येष्ठेन विवाहकाले तथा संकल्पपूर्वकमग्निः परिगृहीतः स पश्चात्परिचरणाभावे नाविद्यमानाग्निकोप्युच्छिन्नाग्निरेव न त्वकृताधान इति तत्र कनिष्ठस्याधाने दोषो नेति ॥ अत्राधिकारिणोपि भ्रातुरनुज्ञया कनिष्ठस्याधानं भवति विवाहस्त्वनुज्ञयापि न ॥ एवं पितुरनुज्ञयाप्याधानम् ॥ "संन्यस्ते छिन्नहस्तादौ यद्वा षंढादिदूषणे ॥ जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्यादेवेतरः क्रियाम्" इत्यादिविशेषः विवाहप्रकरणे परिवेत्तृप्रसंगे उक्तः ॥

अब आधनविचारको कहतेहैं । उसमें आधानके नक्षत्रआदिकालका विचार प्रथम परिच्छेदमें कह आये । आवसथ्य, अग्निका आधानतो विवाहकालमें वा दायविभागकालमें, होता है । जिसप्रमादीने विवाहकी अग्निका ग्रहण नहीं किया, वह पिताके मरनेपर यत्नसे ग्रहण करै । गृह्यअग्निसे हीनका अन्न, भोजनके अयोग्य है । पिता वा ज्येष्ठ भ्राता साग्निक होंयँ तो कनिष्ठआदि जो अविभक्त हैं उनको निरग्नि रहनेका, दोष नहीं । इसीप्रकार ज्ञान, अध्ययन आदिकमें तत्परको भी दोष नहीं । क्यों कि, गृहस्थको भी अध्ययन आदि कहे हैं । स्मार्त अग्निका आधान तो ज्येष्ठ भ्राताके आधान न करनेपर कनिष्ठको न करना यह निर्णयसिंधुआदिमें गर्गने कहा है । इसीमें ऐसा निर्णय करना भान होता है । जहां ज्येष्ठने दायाद्य पक्षको, लेकर अर्थात् अपनेको दायाद समझकर विवाहके समयमें जबतक जो जीवोंगा, तबतक औपासन (पूजा) करूंगा, इसप्रकार संकल्प करके विवाहकी अग्निका ग्रहण नहीं किया, उसकेही विषयमें यह कनिष्ठको निषेध है । और जिस ज्येष्ठने विवाह कालमें तिसप्रकार संकल्पपूर्वक अग्निग्रहण करलिया है, वह पीछे परिचार (सेवा) के न होनेसे अविद्यमान अग्निभी हो, परन्तु उच्छिन्नाग्नि है अकृताधान नहीं है उसमें कनिष्ठको आधानका दोष नहीं । यहां अधिकारी कनिष्ठको भ्राताकी आज्ञासे भी आधान होता है । कनिष्ठका विवाहतो ज्येष्ठसे पहिले आज्ञा देनेसे भी नहीं होता । ऐसेही पिताकी आज्ञासे भी आधान होता है।संन्यासी और छिन्नहस्त आदि यद्वा नपुंसक आदिदूषण पिता और बडे भ्रातामें होयँ तो छोटाभाई कर्मको करै, इत्यादिविशेष विवाहप्रकरणके परिवेत्ताके प्रसंगमें कह आये ॥

अथ शूद्रादिसंस्कारविचारः ।

गर्भाधानपुंसवनानवलोभनसीमंतोन्नयनजातकर्मनामकर्मनिष्क्रमणान्नप्राशनचौलोपनयनमहानाम्न्यादिव्रतचतुष्टयसमावर्तनविवाहा इति षोडश संस्कारा द्विजानाम् ॥ जातकर्मनामकर्मनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाविवाहा इति षट् द्विजस्त्रीणाम् ॥ तत्र विवाहः समंत्रकोऽन्ये मंत्ररहिताः ॥ गर्भाधानसीमंतौ स्त्रीपुरुषसाधारणौ चूडांता नव विवाहश्चेति दशामंत्रकाः शूद्राणामिति बहुसंमतम् ॥ शूद्रकमलाकरे शूद्राणां पंचमहायज्ञा अप्युक्ताः॥ केचिदवैदिकमंत्रेणोपनयनमप्याहुः ॥ ब्राह्मे तु ॥ "विवाहमात्रं संस्कारं शूद्रोपि लभतां सदा" इत्युक्तम् ॥ अत्र सदसच्छूद्रगोचरत्वेन वा परंपराप्राप्तप्रकारेण वा व्यवस्था ॥

अब शूद्रके संस्कार विचारको कहते हैं। गर्भाधान, पुंसवन, अनवलोभन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन, उपनयन, महानाम्नी आदि चारव्रत समावर्तन, विवाह ये सोलह संस्कार द्विजोंके होते हैं। जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुंडन, विवाह ये छः द्विजोंकी स्त्रियोंके होते हैं। उनमें विवाह मंत्रोंसे होता है और अन्य मंत्रोंसे नहीं होते। गर्भाधान और सीमंत ये दो स्त्रीपुरुषके साधारणकर्म हैं और मुंडनपर्यंत नौ और विवाह ये दश संस्कार शूद्रोंके मंत्रोंसे रहित होते हैं, यह बहुतोंको संमत है। शूद्रकमलाकरमें शूद्रोंको पांचमहायज्ञभी कहे हैं। कोई तो अवैदिक मंत्रसे उपनयनकोभी कहते हैं। ब्रह्मपुराणमें तो यह कहा है कि, विवाहमात्र संस्कारको शूद्र सदा प्राप्त होवै इसमें सत्, असत् शूद्रके विचारसे वा परंपरासे चलेआये प्रकारसे व्यवस्था समझनी ॥

अथ शूद्रधर्मविचारः।

अस्य द्विजसेवा वृत्तिः ॥ आपदि वाणिज्यशिल्पादि॥ शूद्रेण लवणादि विक्रेयम्। मद्यं मांसं च न ॥ "कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ॥ वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चांडालतां व्रजेत् ॥ शूद्रो वर्णश्चतुर्थोपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ॥ वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥" स्त्रीशूद्रधर्मेषु व्रतादिषु सर्वत्र विप्रेण मंत्रः पठनीयः ॥ सोपि पौराण एव ॥ भारतपुराणयोः श्रवणे स्त्रीशूद्रयोरधिकारो न त्वध्ययने ॥ 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः॥' शूद्रस्य पंचयज्ञश्राद्धादिकर्माणि कातीयसूत्रानुसारेणेति मयूखे ॥ आगमोक्ता विष्णुशिवादिमंत्रा नमोंताः प्रणवरहिताः ॥ पुराणादिश्रवणनिदिध्यासनादि कृत्वा ब्रह्मज्ञानमपि स्त्रीशूद्रैः संपाद्यम् ॥ उपनिषच्छ्रवणे तु नाधिकार "इति शूद्रस्य तदनादरश्रवणात्" इत्यधिकरणे॥ शूद्रस्य सर्वश्राद्धान्यामेनैव ॥ केचित्सर्वप्रजानां काश्यपत्वात्सर्वशूद्राणां काश्यपगोत्रं तच्च श्राद्ध एव कीर्तनीयं नान्यत्रेत्याहुः ॥ एवं शांतिकादावधिकारो विप्रद्वारैव ॥ यदि विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय वैदिकमंत्रैस्तदीयहोमाभिषेकादि करोति तदा तत्र शूद्रस्तत्पुण्यफलभाक् विप्रस्तु महाप्रत्यवायीति माधवः ॥ अहिंसासत्यास्तेयशौचेंद्रियनिग्रहदानशमदमक्षमादयः शूद्रादिसर्वसाधारणा धर्माः परपदप्रापकाः ॥ स्वस्तिवाचनादिशूद्रकर्मणां प्रयोगास्तु शूद्रकमलाकरे ज्ञेयाः ॥

अब शूद्रधर्मविचार कहते हैं। शूद्रकी वृत्ति द्विजोंकी सेवा करना है, आपत्कालमें वाणिज्य, शिल्प आदि है, शूद्र लवण आदिको बेचै; मदिरा, मांसको नहीं। कपिला गौके दूध पीनेसे, ब्राह्मणीके गमनसे, वेदके अक्षरोंके विचारसे शूद्र चांडालभावको प्राप्त होता है। चौथावर्ण शूद्रभी वर्ण होनेसे वेदमंत्र, स्वधा, स्वाहा, वषट्कार आदिके विना धर्मके योग्य है। स्त्री और शूद्रोंके धर्म और व्रत आदिमें सर्वत्र ब्राह्मण मंत्रको पढै। वह मंत्रभी पुराणका हो। क्यों कि, भारत पुराणके श्रवण करनेमें स्त्रीशूद्रोंका अधिकार है पढनेमें नहीं। ब्राह्मणको आगे करके चारों वर्णोंको सुनावै यह लिखा है। शूद्रके पांच महायज्ञ और श्राद्ध आदि कर्म, कात्यायन सूत्रके अनुसार होते हैं, यह मयूखमें लिखा है। ओंकारसे रहित नमः जिनके अंतमें ऐसे आगममें कहे हुये विष्णु शिव आदिके मंत्र हैं। पुराण आदिके श्रवण, निदिध्यासन आदिको

करके ब्रह्मज्ञानका संपादनभी, स्त्री शूद्र आदि करैं । अधिकरणमें तिसके अनादर श्रवणसे उपनिषद्के श्रवणमें तो शूद्रको अधिकार नहीं । शूद्रको श्राद्धमें पाकका अनादर श्रवण है, इससे जो शूद्र अधिकारी है, वह शूद्र सब श्राद्धोंको आम अन्नसेही करै । कोई तो यह कहते हैं कि, सब प्रजा काश्यप हैं; इससे संपूर्ण शूद्रोंका काश्यपगोत्र है, वहभी श्राद्धमें ही कीर्तन करना, अन्यत्र नहीं, इसीप्रकार शांति आदिके कर्मोंमेंभी ब्राह्मणके द्वाराही अधिकार है । यदि ब्राह्मण, दक्षिणा आदिको ग्रहण करके वेदके मंत्रोंसे शूद्रके होम अभिषेक आदिको करै तो शूद्र तो वहां पुण्यफलका भागी होता है, ब्राह्मण तो महापापी है यह माधव कहते हैं । अहिंसा, सत्य, चोरीका त्याग, शौच, इंद्रियोंका निग्रह, दान, शम, दम, क्षमाआदि शूद्र आदि सबके साधारण धर्म हैं और परमपदके दाता हैं । स्वस्तिवाचनआदि शूद्रके कर्मोंके प्रयोग तो शूद्रकमलाकरमें जानने ॥

अथ वापीकूपाद्युत्सर्गादिकालः ।

गृहग्रामयोराग्नेयदक्षिणनैर्ऋत्यवायव्येषु मध्ये च दुष्टफलः कूपः शेषदिक्षु शुभः ॥ वापीकूपतडागाद्युत्सर्ग उत्तरायणे माघादिमासषट्कस्य शुक्लपक्षेषु प्रशस्तः ॥ जलक्षयसंभावनायां कार्तिकमार्गशीर्षयोरपि ॥ "न कालनियमस्तत्र सलिलं कारणं परम्" इत्युक्तेः ॥ चतुर्षु विष्णुशयनमासेषु शुक्रास्तादौ च वर्ज्यम् ॥ अश्विनीरोहिणीमृगपुष्यमघात्र्युत्तरामूलश्रवणादित्रयहस्तज्येष्ठानुराधारेवतीषु द्वितीयातृतीयापंचमीसप्तमीदशम्येकादशीत्रयोदशीतिथिषु बुधगुरुशुक्रसोमवारेषु जलोत्सर्गः शुभः ॥ उत्सर्गाभावे जलं न ग्राह्यम् ॥ "वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम् ॥ न स्प्रष्टव्यं न पेयं च पीत्वा चांद्रायणं चरेत्" ॥ उत्सर्गप्रयोगोऽन्यतो ज्ञेयः ॥

अब बापी कूप तलाव आदिके उत्सर्ग आदि कालको कहते हैं । घर और ग्रामके आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत, वायव्यमें और मध्यमें कूपका दुष्ट फल है; शेष दिशाओंमें शुभ है । वापी, कूप, तडाग आदिका उत्सर्ग उत्तरायणमें माघ आदि छः मासोंके शुक्लपक्षमें श्रेष्ठ है । और जलके क्षयकी संभावना होय तो कार्तिक मार्गशिरमेंभी श्रेष्ठ है क्योंकि, यह कहा है कि, कूप आदिमें कालका नियम नहीं है, क्यों कि, जलही परम कारण है । चार विष्णुशयनके मासोंमें, शुक्रके अस्तआदिमें, वर्जित है । अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुष्य, मघा, तीनों उत्तरा, मूल, श्रवण आदि तीन, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा, रेवती इन नक्षत्रोंमें द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी इन तिथियोंमें बुध, शुक्र, गुरु, सोम इन वारोंमें जलका उत्सर्ग (प्रतिष्ठा) शुभ है । उत्सर्गके अभावमें जलको ग्रहण न करै । वापी, कूप, तडाग आदिमें जो जल असंस्कृत हो, उसका स्पर्श न करै और न पीवै पीवै तो चांद्रायण करै । उत्सर्गका प्रयोग अन्यग्रंथोंमें जानना ॥

अथ वृक्षादिरोपणकालः ।

अश्विनीरोहिणीमृगपुष्यमघोत्तरात्रयहस्तचित्राविशाखानुराधामूलशततारकारेवतीषु सत्तिथिवारेषु वृक्षलतारोपः शस्तः ॥ "आश्लेषायां सोमवारः सोमो लग्ने

बलान्वितः ॥ योगेस्मिन् रोपयेदिक्षुकदलीक्रमुकादिकान् ॥ नारिकेलान्वपेद्भूमावश्विन्यां लग्नगे रवौ ॥ नागवल्लीं गुरौ लग्ने चंद्रे स्वांशस्थिते सति ॥''

अब वृक्ष आदिके रोपण कालको कहते हैं । अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुष्य, मघा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, मूल, शतभिषा, रेवती, इनमें श्रेष्ठ तिथियों और वारोंमें वृक्ष, लताओंका, आरोपण श्रेष्ठ है । आश्लेषामें, सोम वारमें, लग्नमें चंद्रमा बलवान् होय तो, इस योगमें सब दिशाओंमें केला और क्रमुक (सुपारी) आदिको लगावै । अश्विनी नक्षत्रमें लग्नमें सूर्य होय तो, भूमिमें नारियल बोवै गुरु लग्नमें होय और चंद्रमा अपने अंशका होय तो नागवल्लीको लगावै ॥

अथ मूर्तिप्रतिष्ठाकालः ।

''प्रतिष्ठा सर्वदेवानां वैशाखज्येष्ठफाल्गुने ॥ चैत्रे तु स्याद्विकल्पेन माघे विष्णवन्यमूर्तिषु ॥ सौम्यायने शुभा प्रोक्ता निंदिता दक्षिणायने ॥ मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः ॥ दक्षिणेप्ययने स्थाप्या देव्यश्चेत्यूचिरे परे ॥ विष्णोः शस्ताश्चैत्रमासाश्विनश्रावणका अपि ॥ माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढसहःसु च ॥ श्रावणे च नभस्ये च लिंगस्थापनमुत्तमम् ॥ देव्या माघेश्विने मासेप्युत्तमा सर्वकामदा ॥'' अश्विनीरोहिण्युत्तरात्रयमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वात्यनुराधाश्रवणत्रयरेवतीषु शनिभौमान्यवासरे दर्शरिक्तान्यतिथौ सर्वदेवप्रतिष्ठा शुभा ॥ श्रवणे कृत्तिकादिविशाखांतेषु च द्वादश्यां च विष्णोः प्रशस्ता ॥ चतुर्थी गणेशस्योक्ता नवमी मूलभं च देव्याः ॥ तथा स्वस्वनक्षत्राणि सर्वेषाम् ॥ यथार्द्रा शिवस्य, हस्तः सूर्यस्येत्यादि ॥ ''हंत्यर्थहीना कर्तारं मंत्रहीना तु ऋत्विजम् ॥ स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥''

अब मूर्तिकी प्रतिष्ठाके कालको कहते हैं । सब देवताओंकी प्रतिष्ठा, वैशाख, ज्येष्ठ, फाल्गुनमें होती है; चैत्रमें तो विकल्पसे होती है और विष्णुसे अन्यमूर्तियोंकी माघमें होती है । उत्तरायणमें शुभ कही है और दक्षिणायनमें निंदित है मातृ, भैरव, वाराह, नरसिंह, त्रिविक्रम और देवी इनका दक्षिणायनमेंभी स्थापन करै, यह अपर कहते हैं, विष्णुकी प्रतिष्ठामें चैत्र, आश्विन, श्रावण भी श्रेष्ठ हैं । माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ सहः (मार्गशिर) श्रावण, भाद्रपद इनमें लिंगका स्थापन उत्तम है । देवीकी प्रतिष्ठा माघ, अश्विन मासमें उत्तम है और सब कामनाओंको देतीहै । अश्विनी, रोहिणी तीनों उत्तरा, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवणसे तीन रेवती इन नक्षत्रोंमें, शनि भौमसे अन्य वारोंमें, दर्श रिक्तासे अन्य तिथियोंमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभ है । श्रवण और कृत्तिकासे विशाखापर्यंत नक्षत्रोंमें और द्वादशीको विष्णुकी प्रतिष्ठा प्रशस्त है । चतुर्थी गणेशको कही है, नवमी और मूल नक्षत्र, देवीको । तैसेही अपने अपने नक्षत्र सबको श्रेष्ठ हैं । जैसे शिवको आर्द्रा, सूर्यको हस्त आदि हैं। धनसे हीन प्रतिष्ठा कर्ताको नष्ट करती है, मंत्रसे हीन ऋत्विजको, लक्षणसे हीन स्त्रीको, नष्ट करती है इससे प्रतिष्ठाके समान शत्रु नहीं है ॥

अथ प्रतिष्ठाधिकारिणः ।

"ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ॥ सर्ववर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः ॥" मातृभैरवाद्याः सर्वैः शिवलिंगं यतिनापि ॥ पुराणप्रसिद्धजीर्णलिंगं स्त्रीशूद्रैरपि पूज्यम् ॥ नूतनस्थापितं लिंगं स्त्रीशूद्रो वापि न स्पृशेत् ॥ शिवादिप्रतिष्ठायां स्त्रीशूद्रादेर्नाधिकारः ॥ "शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोपि वा ॥ केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥" स्थिरप्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखो यजेत ॥ चलप्रतिमास्तु प्राङ्मुखः ॥

अब प्रतिष्ठाधिकारी कहेजाते हैं । गायत्री सहित ब्रह्माका स्थापन तो ब्राह्मणही करैं और सुखके अभिलाषी संपूर्ण वर्ण विष्णुका स्थापन करैं, मातृ भैरव आदिका सब स्थापन करैं, संन्यासीभी शिवलिंगका स्थापन करै । पुराणोंमें प्रसिद्ध जीर्णलिंगका पूजन स्त्रीशूद्रभी करैं । नवीन स्थापन किये लिंगका स्त्री और शूद्र स्पर्श न करैं । शिवआदिकी प्रतिष्ठामें स्त्री, शूद्र-आदिका अधिकार नहीं है । क्यों कि, यह वचन है कि, स्त्री, शूद्र वा अनुपनीत पतित ये सब केशव और शिवका स्पर्श करके नरकको भोगते हैं । पूर्वको जिनका मुख है ऐसी स्थिर प्रतिमाओंका पूर्वाभिमुख होकर पूजन करै । चलप्रतिमाओंका पूजन प्राङ्मुख होकर करै ॥

अथ प्रतिमाविचारः ।

"सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी प्रतिमा भवेत् ॥ पाषाणधातुयुक्ता वा कांस्यपित्तलयोरपि ॥ अंगुष्ठपर्वमानात्सा वितस्ति यावदेव तु ॥ गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यत बुधैः ॥"मृद्दारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टेन चेति केचित् ॥ श्रीमद्भागवते ॥ "शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ॥ मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥" लौही सौवर्णी ॥ दारु मधूकवृक्षस्यैव ॥ सप्तांगुलाधिका द्वादशांगुलपर्यंता गृहे प्रतिमेति देवीपुराणे ॥ "अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात् ॥ आभिरूप्याच्च बिंबानां देवः सान्निध्यमृच्छति ॥ प्रतिमापट्टयंत्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत् ॥ कारयेत्पर्वदिवसे यदा च मलधारणम् ॥" पार्थिवलिंगपूजादिविचारो द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः ॥

अब प्रतिमाविचार कहतेहैं । सुवर्णकी, चांदीकी, तांबेकी, मिट्टीकी, प्रतिमा होती है वा पाषाण, धातु, मुक्ता, कांसी, पित्तलकी भी होतीहै । अंगुष्ठके पर्वके प्रमाणसे वितस्तिपर्यंतकी प्रतिमा घरोंमें करानी; इससे अधिक बुद्धिमानोंने श्रेष्ठ नहीं कही । मिट्टी, काष्ठ, लाख, गोमेद मोम इनकीभी प्रतिमाको कोई कहते हैं । श्रीमद्भागवतमें लिखाहै । कि पत्थरकी, काष्ठकी, लोहेकी, लिपी हुई, लिखीहुई, रेतकी, मानसी, मणिकी यह आठप्रकारकी प्रतिमा कही हैं । यहां लोहेकीसे सुवर्णकी लेनी और काष्ठभी महुवेका लेना । जो सात अंगुलसे अधिक बारह अंगुल पर्यंत हो, वह गृहकी प्रतिमा होती है, यह देवीपुराणमें कहा है । पूजकके तपके योगसे, तथा पूजनकी अधिकतासे है, और बिंबोंके आभिरूप्य (सुंदरता) से, देवता सन्निधिको प्राप्त होजाता है । पट्टे और यंत्रोंकी प्रतिमाओंको नित्यस्नान, न करावै । किंतु

पर्वके दिन, वा जब मलिन हो जाय, तब करावै। पार्थिवलिंगपूजा आदिका विचार, दूसरे परिच्छेदमें कह आये॥

अथ पंचसूत्रीनिर्णयः।

लिंगोच्चता लिंगविस्तारो लिंगस्थौल्यं पीठविस्तारः प्रनालिकामानं चेति पंचसूत्राणि॥ तत्र लिंगमस्तकविस्तारं लिंगोच्चतातुल्यं कृत्वा तद्द्विगुणसूत्रवेष्टनार्हं लिंगस्थौल्यं कृत्वा लिंगात्सर्वतो लिंगसमविस्तारं पीठं वर्तुलं कुर्यात्॥ पीठोच्चता लिंगोच्चताद्द्विगुणा॥ पीठाद्बहिः पीठोत्तरभागे लिंगसमदीर्घा मूले दैर्घ्यसमविस्तारा॥ अग्रे तदर्धविस्तारा प्रनालिका॥ लिंगोच्चत्वत्रिगुणा पीठोच्चतेति केचित्॥ अथ पीठमध्यभागे लिंगाद्द्विगुणं स्थूलं पीठोच्चतातृतीयांशेन कंठं कुर्यात्॥ कण्ठस्योर्ध्वाधोभागयोः समं वप्रद्वयं कृत्वा पीठोपरि लिंगविस्तारषष्ठांशेन मेखलां कृत्वा तदंतःसंलग्नं तत्समं खातं कुर्यात्॥ प्रनालिकायामपि विस्तारतृतीयांशेन खातः पीठवन्मेखला च कार्येति॥

अब पंचसूत्रीके निर्णयको कहते हैं। लिंगकी उंचाई, लिंगका विस्तार, लिंगकी स्थूलता, पीठका विस्तार और प्रनालिकाका मान ये पांचसूत्र होते हैं। उनमें लिंगके मस्तकका विस्तार, लिंगकी उंचाईके तुल्यकरके, उसके तिगुने सूत्र वेष्टनके योग्य लिंगकी स्थूलताको करके, लिंगसे चारोंतरफ लिंगके समान जिसका विस्तार हो, ऐसे वर्तुल पीठको करै। पीठकी उँचाई लिंगकी उंचाईसे द्विगुनी। पीठके बाहिर और पीठके उत्तरभागमें लिंगके समान दीर्घ और मूलमें दीर्घताके समान जिसका विस्तार हो। अग्रिम भागमें उससे आधा विस्तार हो, ऐसी प्रनालिका होती है, कोई तो यह कहते हैं कि, लिंगकी उंचाईसे तिगुनी पीठकी उंचाई हो। अब पीठके मध्यभागमें लिंगसे दूना स्थूल, पीठकी उंचाईके तीसरे भागसे कंठको बनावै। कंठके ऊपर और अधोभागोंमें, समानके दो वप्र करके पीठके ऊपर लिंगके छठे-भागसे मेखलाको बनाकर, उसके मध्यसे मिला हुआ उसके समान खात (गढा) करै। प्रनालिकामें भी विस्तारके तीसरे भागसे खात होता है पीठके तुल्य मेखलाभी बनवानी॥

अथ शालग्रामादिपूज्यसंख्या।

"गृहे लिंगद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा॥ द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्चेत्सूर्यद्वयं तथा॥ शक्तित्रयं त्रिविघ्नेशं द्वौ शंखौ नार्चयेत्सुधीः॥" अन्यत्र तु "चक्रांकमिथुनं पूज्यं नैकं चक्रांकमर्चयेत्" इत्युक्तं तेन विकल्पः॥ "नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं गृहे॥ अग्निदग्धाश्च भग्नाश्च न पूज्याः प्रतिमा गृहे॥ भग्ना वा स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा॥ शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि॥ विषमा नैव पूज्यंते विषमेष्वेक एव हि॥" ससुवर्णशालग्रामदाने पृथ्वीदानफलम्॥ शतशालग्रामपूजनेऽनन्तफलम्॥ अविभक्तानामपि भ्रातॄणां देवतार्चनमग्निहोत्रं संध्या ब्रह्मयज्ञश्च पृथगेव॥ स्त्री शूद्रो वा स्पर्शसहितं शालग्रामचक्रांकितवाणलिंगानि नार्चयेत्॥ "शूद्रो वानुपनीतो वा सधवा विधवांगना॥ दूरादे-

वास्पृशन्पूजां प्रकुर्याच्छिवकृष्णयोः ॥'' शालग्रामबाणयोरेव स्पर्शननिषेधो न तु प्रतिमादौ ॥ सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः ॥ लिंगान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च॥'' इत्युक्तेः ॥'' शालग्रामशिला क्रीता मध्यमा याचिताधमा ॥ उक्तलक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता ॥ उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्ता तु तत्समा ॥ तत्राप्यामलकी तुल्या पूज्या सूक्ष्मैव या भवेत् ॥ यथायथा-शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु महत्फलम् ॥ यवमात्रं तु गर्तः स्याद्यवार्धं लिंगमुच्यते ॥ शिवनाभिरिति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ॥ शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते ॥ महापूजां तु कृत्वादौ पूजयेत्तां ततो बुधः ॥ बाणलिंगानि राजेंद्र ख्यातानि भुवनत्रये ॥ न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा॥''वासुदेवसंकर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धा विप्राद्यैः क्रमेण पूज्याः ॥ तल्लक्षणं तु ॥ पंचचक्रो वासुदेवः षड्भि-श्चक्रैः प्रद्युम्नः सप्तभिः संकर्षण एकादशभिरनिरुद्ध इति ॥'' प्रणवोच्चारणाच्चैव शाल-ग्रामशिलार्चनात् ॥ ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाडालतां व्रजेत् ॥''

अब शालग्रामादिपूज्योंकी संख्या कहतेहैं । घरमें दो लिंगोंका और दो शालग्रामोंका पूजन न करै तैसेही द्वारकाके दो चक्रोंका और दो सूर्योंका । तीन शक्तियोंका, तीन गणेशोंका, दो शंखोंका, बुद्धिमान् मनुष्य पूजन न करै । अन्यत्र तो यह कहा है कि, चक्रांकका मिथुन पूज्य है, एक चक्रांकको न पूजै, तिससे विकल्प समझना । तैसेही मत्स्य, कूर्म आदि-दशों अवतारोंका घरमें पूजन न करै, अग्निसे दग्ध और भग्न (टूटी) प्रतिमाका पूजन घरमें न करै । और शालग्राम शिला तो भग्न और स्फुटितभी शुभ होती है । सम शालग्राम पूजने योग्य हैं, समोंमेंभी दो नहीं । विषम शालग्राम पूजे नहीं जाते, विषमोंमेंभी एकही पूजे जाते है । सु वर्णसहित शालग्रामके दानमें पृथ्वीके दानका फल होता है । सौ शालग्रामोंके पूजनमें अनंत फल होता है । अविभक्त (इकट्ठे) भी भ्राताओंके देवपूजन, अग्निहोत्र, संध्या और ब्रह्मयज्ञ ये सब पृथक् २ ही होते हैं । स्त्री, वा शूद्र स्पर्श करके शालग्राम चक्रांकित, बाणलिंग इनका पूजन न करैं । शूद्र हो वा अनुपनीत हो, स्त्री सधवा हो वा विधवा हो, दूरसेही स्पर्शको न करके शिव और कृष्णकी पूजाको करैं । शालग्राम और बाण-लिंगोंकेही स्पर्शका निषेध है, प्रतिमा आदिमें नहीं । संपूर्ण वर्ण सबदेवताओंका प्रतिमाओंमें पूजन करैं और मणियोंसे बनाये हुये लिंगभी पूजने योग्य हैं यह कहा है । मोल ली हुई शालग्रामशिला मध्यम है और याचित (मांगी) अधम है, पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त परंपरासे चली आई जो हो वह उत्तम होती है और गुरुकी दी हुई भी उसके ही समान है, उनमेंभी आंवलेके समान जो सूक्ष्म है वह पूजने योग्य है । जैसी २ शिलासूक्ष्म हो; वैसा ही महान् फल होता है । यवमात्र तो गर्त होता है और आधा यव लिंग कहाता है । उसको शिवनाभि कहते हैं, वह तीन लोकोंमें दुर्लभ है । शालग्राम शिलाकी प्रतिष्ठा नहीं है, उसकी प्रथम महापूजाको करके बुद्धिमान् मनुष्य प्रतिदिन पूजा करै । हे राजेंद्र! बाणलिंग तीनों भुवनोंमें विख्यात हैं, उनकी प्रतिष्ठा, संस्कार, आवाहन नहीं हैं । वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, इनका ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमसे पूजन करैं । उनके लक्षण तो ये

है। कि, पांच चक्रका वासुदेव छः वा सात चक्रोंके क्रमसे प्रद्युम्न संकर्षण होते हैं, ग्यारह चक्रोंका अनिरुद्ध होताहै । ॐकारके उच्चारणसे और शालग्रामके पूजनसे और ब्राह्मणीके गमनसे शूद्र चांडालभावको प्राप्त होताहै ॥

शूद्रस्य विप्रद्वारा शालग्रामपूजा ।

"दीक्षायुक्तैस्तथा शूद्रैर्मद्यपानविवर्जितैः ॥ कर्तव्यं ब्राह्मणद्वारा शालग्रामशिलार्चनम् ॥ विष्णुप्रीतिकरं नित्यं तुलसीकाष्ठचंदनम् ॥ कार्तिके केतकीपुष्पं येन दत्तं हरेः कलौ ॥ दीपदानं च देवर्षे तारितं तेन वै कुलम् ॥" शालग्रामसंबंधितोयवच्चक्रांकशिलातोयस्यापि पानविधानात्सापि शालग्रामसन्निधौ पूज्या ॥ "अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ शालग्रामस्य संस्पर्शात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥ मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत् ॥ अंगुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत् ॥ विना भस्मत्रिपुंड्रेण विना रुद्राक्षमालया ॥ पूजितोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ विना मंत्रं न बिभृयाद्रुद्राक्षान्भुवि मानवः ॥ पंचामृतं पंचगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् ॥ रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पंचाक्षरं तथा ॥ त्र्यंबकादिकमंत्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत ॥ अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपंचाशदेव तु ॥ सप्तविंशतिमाना वा माला हीना न युज्यते ॥ सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया ॥ यः करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥"

अब शूद्रको विप्रद्वारा शालग्रामपूजा कहते हैं । दीक्षासे युक्त जो शूद्र हैं और मद्यपानसे वर्जित हैं वे ब्राह्मणके द्वारा शालग्राम शिलाका पूजन करैं । तुलसीके काष्ठका चंदन प्रतिदिन विष्णुकी प्रीतिको करता है, कार्तिकमें केतकी का पुष्प, जिसने कलियुगमें हरिको दिया है और हे देवर्षे दीपदान दिया है, उसने अपने कुलका तारण किया । शालग्राम संबंधि जलके समान चक्रांकित शिलाके जलका भी पान कहा है इससे उसकाभी शालग्रामशिलाके समीप पूजन करै । शिवका निर्माल्य जो पत्र, पुष्प, जल है वह ग्रहण करने योग्य नहीं है । शालग्रामके स्पर्शसे सब पवित्र होजाते हैं । मध्यमा और अनामिकाके मध्यमें पुष्पको लेकर पूजन करै । अंगुष्ठ और तर्जनीके अग्रभागसे निर्माल्यको दूर करै । भस्मके त्रिपुंड्रविना और रुद्राक्षकी मालाके विना पूजितभी महादेव, पूजकको फल नहीं देते । मनुष्य भूमिके विषे विना मंत्र रुद्राक्षोंका धारण न करै, पंचामृत और पंचगव्यको स्नानके समय प्रयुक्त करै (दे)। रुद्राक्षकी प्रतिष्ठामें पंचाक्षरमंत्र औरत्र्यंबकं० आदिमंत्रको प्रयुक्त करै । अष्टोत्तरशत वा चौवन वा सत्ताईस रुद्राक्षोंकी माला हो, इससे हीन युक्त नहीं है, देहमें स्थित सत्ताईस रुद्राक्षोंकी मालासे जो पुण्य मनुष्य करता है वह कोटिगुणा होता है ॥

अथ रुद्राक्षतुलस्यादिसर्वजपमालानां संस्कारः।

कुशोदकसहितैः पंचगव्यैर्मालां प्रक्षाल्य॥ ॐ ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः॥ कं खं गं घं ङं ॥ चं छं जं झं ञं ॥टं ठं डं ढं णं ॥ तं थं दं धं नं ॥ पं फं बं भं मं ॥ यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं इत्येतानि पञ्चाशन्मा-

तृकाक्षराणि अश्वत्थपत्रस्थापितमालायां विन्यस्य ॥ ॐ सद्यो जातं० वामदेवाय० अघोरेभ्यो० तत्पुरुषाय० ईशानः सर्वविद्याना० इति पंचमंत्रान् जपित्वा ॥ सद्यो जातेति मन्त्रेण मालां पंचगव्येन प्रोक्ष्य सितजलेन प्रक्षाल्य वामदेवेति चन्दनेनाघृष्याघोरेति मालां धूपयित्वा तत्पुरुषेति चन्दनकस्तूर्यादिना लेपयित्वेशान इति मन्त्रेण प्रतिमणिं शतवारं दशवारं वाभिमन्त्र्याघोर इति मन्त्रेण मेरुं शतवारमभिमन्त्रयेत् ॥ तत एतैरेव पञ्चभिर्मंत्रैर्मालां पञ्चोपचारैः पूजयेदिति बोपदेवः ॥

अब रुद्राक्ष तुलसी आदिकी जो संपूर्ण जपमाला हैं उनके संस्कारको कहते हैं। कुशाके जल सहित पंचगव्यसे मालाका प्रक्षालन करके, ॐ ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः । कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं । टं ठं डं ढं णं। तं थं दं धं नं। पं फं बं भं मं। यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं ये पचास मातृकाके अक्षर हैं इनका अश्वत्थके पत्तोंपर रक्खी हुई मालामें न्यास करके । 'ॐ सद्योजातं० । वामदेवा० । अघोरे० तत्पुरुष० । ईशानः सर्वविद्यानां०' इन पांच मंत्रोंका जप करके 'सद्योजातं' इस मन्त्रको पढकर पंचगव्यसे माला का प्रोक्षण करके, शुक्लजलसे धोकर, 'वामदेव०' इसमंत्रसे चंदनसे घिसकर 'अघोरे०' इसमंत्रसे मालाको धूपदेकर, 'तत्पुरुष०' इसमंत्रसे चन्दन, कस्तूरी आदिसे लीपकर 'ईशान०' इसमंत्रसे प्रत्येक मणिपर शतवार वा दशवार, अभिमंत्रित करके 'अघोरेभ्य०' इसमंत्रसे मेरुका सौवार, अभिमंत्रण करै । फिर इन्हीं पांच मंत्रोंसे मालाका पंचोपचारोंसे पूजन करै, यह बोपदेव कहते हैं ॥

अथ रुद्राक्षधारणसंख्याः ।

" रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशन३२परिमितान्मस्तके विंशती द्वे ४० षट् ६ षट् ६ कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश १२ द्वादशैव १२ ॥ बाह्वोरिंदोः कलाभि१६ र्नयनयुगकृते एक१मेकं १ शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ " रुद्राक्षदानाद्रुद्रपदप्राप्तिः ॥

अब रुद्राक्षधारणसंख्याको कहतेहैं । जो मनुष्य, कंठमें बत्तीस रुद्राक्ष और मस्तकपर चालीस, दोनों कर्णोंमें छः २, दोनों हाथोंमें बारह २, भुजाओंपर सोलह २, दोनों नेत्रोंमें एक २, शिखामें एक, वक्षस्थलपर आठसे अधिक शत १०८ जो मनुष्य धारण करता है, वह स्वयं नीलकंठ है । रुद्राक्षके दानसे रुद्रपदकी प्राप्ति होती है ॥

अथ शिवे अभ्यंगस्नानादिमानम् ।

"पञ्चविंशत्पलं लिंगेष्वभ्यंगं कारयेदथ॥स्नापयेत्तिलतैलैश्च करयन्त्रोद्भवैः शिवम्॥ स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यंगः पंचविंशतिः ॥ पलानां द्विसहस्रेण महास्नानं जलेन तत् ॥ पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैस्ततः क्रमात् ॥ शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन वै ॥ तावता मधुना चैव दध्ना च पयसापि च ॥ पलसार्धसहस्रेण रसेनैवेक्षवेण च ॥ भक्त्या चोष्णोदकैः शीतोदकैः संस्नापयेच्छिवम् ॥ श्रीविष्णुं क्षीरदध्याद्यैः क्रमाद्दशगुणोत्तरैः ॥ स्नापयेत्केचिदूचुश्च क्षीराद्यैः पंचाभिः समैः ॥"

अब शिवमें अभ्यंग स्नानादिमानको कहतेहैं । पच्चीस पल परिमितसे अभ्यंग शिवलिंगपर करै । फिर उस तिलके तेलसे शिवको स्नान करावै, जो अपने हाथोंके यंत्रसे निकासा हो । सौ पलसे स्नान जानना और पच्चीस पलसे अभ्यंग और दो सहस्रपलसे महास्नान कहा ह । दूध, दही, घी, सहत, शर्करा इनसे क्रमसे स्नान करावै, सौ पल घीसे शिवजीका स्नान कहा है और उतने ही सहत, दही, दूधसे करावै । और सार्द्ध सहस्र (१५००) इक्षुके रस (शर्करा) से, करावै । और उष्ण जल और शीतल जलसेभी भक्तिसे शिवको स्नान करावै; श्रीविष्णुको दूध, दधि आदिक जो क्रमसे दशगुने उत्तरोत्तरहों उनसे स्नान करावै और किंचित् उष्ण जो दूध आदिसम हैं उन पांचोंसे स्नान करावै ॥

अथ श्रीविष्णवादिपंचायतनानि ।

"विष्णुर्मध्ये शिवेभास्यसूर्यार्या ईशादिक्क्रमात् ॥ शंभौ मध्ये विष्णुसूर्यगजास्यार्यास्तथाक्रमात् ॥ १ ॥ रवौ मध्यगते रुद्रगणेशाच्युतशक्तयः॥ मध्ये देवीविष्णुशिवगणेशरवयः क्रमात् ॥ २ ॥ मध्ये गणपतिर्विष्णुशिवसूर्याबिकास्तथा ॥ ॥ ईशानादिक्रमेणैव पंचायतनपंचकम् ॥ ३ ॥"

अब श्रीविष्णुआदिके पंचायतनोंको कहतेहैं । कि, विष्णुमध्यमें हो और ईशानदिशाके क्रमसे शिव, गणेश, सूर्य, शक्ति हों; शंभुमध्यमें होय तो विष्णु, सूर्य, गणेश, शक्ति तथा पूर्वोक्त क्रमसे हों । सूर्य मध्यमें होय तो रुद्र, गणेश, विष्णु, शक्ति पूर्वोक्त क्रमसे हों; मध्यमें देवी होय तो विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य क्रमसे हों । मध्यमें गणेश होंयँ तो विष्णु, शिव, सूर्य, अंबिका क्रमसे हों; यह ईशान आदिक्रमसे पञ्चक पंचायतन पूजा है ॥

अथ केशवादिचतुर्विंशतिमूर्तयः ।

अथ केशवादिचतुर्विंशतिमूर्तिनिर्णायकबोपदेवश्लोकः सिंधौ व्याख्यातः॥ तस्यायं संग्रहः॥ "केशवादेश्चतुर्बाहोर्दक्षिणोर्ध्वकरक्रमात् ॥ शंखचक्रगदापद्मायुधैः केशवउच्यते ॥१॥ नारायणः पद्मगदाचक्रशंखायुधैः क्रमात् ॥ माधवश्चक्रशंखाभ्यां पद्मेन गदया भवेत् ॥ २ ॥ गोविंदो गदया पद्मशंखचक्रैः क्रमाद्भवेत् ॥ विष्णुः पद्मेन शंखेन चक्रेण गदया क्रमात् ॥ ३ ॥ शंखपद्मगदाचक्रैर्मधुसूदन ईरितः ॥ त्रिविक्रमो गदाचक्रशंखपद्मैरनुक्रमात् ॥४॥ वामनः शंखचक्राभ्यां पद्मेन गदयापि च ॥ चक्रेण गदया शङ्खपद्माभ्यां श्रीधरः स्मृतः ॥ ५ ॥ हृषीकेशः स्मृतश्चक्रपद्मशंखगदायुधैः ॥ पद्मनाभः पद्मचक्रगदाशङ्खैः क्रमात्स्मृतः ॥ ६ ॥ दामोदरः शङ्खगदाचक्रपद्मैरुदीर्यते ॥ संकर्षणः शङ्खपद्मचक्रायुधगदायुधैः ॥ ७ ॥ वासुदेवश्चक्रगदापद्मशङ्खाख्यलक्षणैः ॥ प्रद्युम्नः स्याच्छङ्खगदापद्मचक्रैः क्रमाद्धृतैः॥८॥अनिरुद्धो गदा शङ्खपद्मचक्रैरनुक्रमात् ॥ पद्मशङ्खगदाचक्रायुधैः स्यात्पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥ अधोक्षजो गदाशङ्खचक्रपद्मैः करस्थितैः ॥ नरसिंहः पद्मगदाशङ्खचक्रायुधैर्भवेत् ॥१०॥ अच्युतः पद्मचक्राभ्यां शङ्खेन गदया क्रमात् ॥ जनार्दनश्चक्रशङ्खगदापद्माढ्यबाहुभिः

॥ ११ ॥ उपेंद्रो गदया चक्रपद्मशंखान्वितैः करैः ॥ चक्रपद्मगदाशङ्खैः करस्थैः स्यात्क्रमाद्धरिः ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णाख्यो गदापद्मचक्रशङ्खैर्मतो विभुः॥ इति प्रोक्ताः केशवादिचतुर्विंशतिमूर्तयः ॥ १३ ॥"

अब केशवादि चतुर्विंशति मूर्ति कहतेहैं। अब केशव आदि चौवीस(२४)अवतारोंका निर्णय जिससेहो वह बोपदेवका श्लोक निर्णयसिंधुमें अर्थ सहित लिखा है। उसका संग्रह यह है। चतुर्भुजी केशवआदिकी दक्षिण ऊर्द्धकरके क्रमसे शंख, चक्र, गदा, पद्म आयुध होंयँ तो उसको केशव कहते हैं ॥ १ ॥ और पद्म, गदा, चक्र, शंख ये आयुध क्रमसे होंयँ तो नारायण कहते हैं। और चक्र, शंख, पद्म, गदा होंयँ तो माधव कहते हैं ॥ २ ॥ और गदा, पद्म, शंख, चक्र, क्रमसे होंयँ तो गोविंद कहते हैं और पद्म, शंख, चक्र, गदा क्रमसे होंयँ तो विष्णु कहते हैं ॥ ३ ॥ और क्रमसे शंख, पद्म, गदा, चक्र, होंयँ तो मधुसूदन कहते हैं और गदा, चक्र, शंख, पद्म क्रमसे होंयँ तो त्रिविक्रम कहते हैं ॥ ४ ॥ और शंख, चक्र, पद्म, गदा क्रमसे होंयँ, तो वामन कहते हैं और चक्र, गदा, शंख, पद्म, होंयँ तो श्रीधर कहते हैं ॥ ५ ॥ और चक्र, पद्म, शंख, गदा आयुध क्रमसे होंयँ तो हृषीकेश कहते हैं और पद्म, चक्र, गदा, शंख क्रमसे होंयँ तो पद्मनाभ कहते हैं ॥ ६ ॥ शंख, गदा, चक्र, पद्म होंयँ तो दामोदर कहतेहैं और शंख पद्म, चक्र, गदा आयुध क्रमसे होंयँ तो संकर्षण कहते हैं ॥ ७ ॥ चक्र, गदा, पद्म, शंख आदि लक्षण होंयँ तो वासुदेव कहते हैं और शंख, गदा, पद्म, चक्र इनका क्रमसे धारण करें तो प्रद्युम्न कहते हैं ॥ ८ ॥ गदा, शंख, पद्म, चक्र क्रमसे होंयँ तो अनिरुद्ध कहते हैं और पद्म, शंख, गदा, चक्र आयुध होंयँ तो पुरुषोत्तम कहते हैं ॥ ९ ॥ गदा, शंख, चक्र, पद्म करमें स्थित होंयँ तो अधोक्षज कहते हैं और पद्म, गदा, शंख, चक्र आयुध होंयँ तो नरसिंह कहते हैं॥१०॥ पद्म, चक्र, शंख, गदा क्रमसे होंयँ तो अच्युत कहते हैं और चक्र, शंख, गदा, पद्म आयुध भुजाओंमें क्रमसे होंयँ तो जनार्दन कहते हैं ॥ ११ ॥ गदा, चक्र, पद्म, शंख इनसे शोभित भुजा होंयँ तो उपेंद्र कहतेहैं और चक्र, पद्म, गदा, शंख क्रमसे करमें स्थित होंयँ तो हरि कहते हैं ॥ १२ ॥ गदा, पद्म, चक्र, शंख, होंयँ तो उसको श्रीकृष्ण विभुकहते हैं; ये केशव आदिचौवीस (२४) मूर्तिकही हैं ॥ १३ ॥

अथ सिंध्वनुसारेण देवमूर्तिप्रतिष्ठाप्रयोगः ।

यजमानो द्वादशादिहस्तं मण्डपं कृत्वाग्नेये पूर्वतो वा हस्तमात्रं कुण्डं स्थंडिलं वा कृत्वा मध्ये वेदीं तदुपरि सर्वतोभद्रं ग्रहचिकीर्षायां पूर्वत ईशान्यां वा ग्रहवेदीं प्रासादसंस्कारे मंडपसंस्कारे वा चिकीर्षिते नैर्ऋते वास्तुपीठं कृत्वा ॥ अस्यां मूर्तौ लिंगे वा देवतासान्निध्यार्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकदेवमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादिनांदीश्राद्धांते आचार्यं वृत्वाष्टौ चतुरो वा ऋत्विजो वृत्वा पूजयेत ॥ आचार्यो यदत्रेति सर्षपान् विकीर्यापोहिष्ठेति कुशोदकैर्भूमिं प्रोक्ष्य देवा आयांतु यातुधाना अपयांतु विष्णो देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वा ॥ मण्डपप्रतिष्ठां तद्विधिस्तु मूर्तिप्रतिष्ठाग्रंथाद्वगंतव्य-

स्तदनुसारेण कृत्वा न कृत्वा वा" यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य तिष्ठति ॥ स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥" अपक्रामंतु० मूर्तिं पंचगव्यहिरण्य-यवदूर्वाश्वत्थपलाशपर्णान्युदकुंभे प्रक्षिप्य ताभिरद्भिरापोहिष्ठेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विंद्रः ॥ अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः श ँ स्योना भवन्तु ॥१॥ यासा ँ राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अव-पश्यं जनानाम् ॥ मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता०॥२॥यासां देवा दिवि कृण्वंति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवंति ॥ याः पृथिवीं पयसोंदन्ति शुक्रास्तान०॥३॥शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तनुवोपस्पृश तत्वचं मे सर्वा ँ अग्नि ँ रप्सु षदो हुवेवो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त ॥४॥ पवमानः सुवर्जनः पवित्रेण विचर्षणिः॥ यः पोता स पुनातु मा ॥ पुनंतु मा देवजनाः पुनंतु मनवो धिया ॥ पुनंतु विश्व आयवः जातवेदः पवित्रवत् ॥ पवित्रेण पुनाहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ॥१॥ अग्ने क्रत्वाक्रतू ँ रनु यत्ते पवित्रमर्चिषि ॥ अग्ने विततमंतरा ॥ ब्रह्म तेन पुनीमहे ॥ उभाभ्यां देवसवितः ॥ पवित्रेण सवेन च ॥ इदं ब्रह्म पुनीमहे ॥ वैश्वदेवी पुनती देव्यागात् यस्यै बह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः ॥ तया मदन्तः सधमाद्येषु वय ँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २ ॥ वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु ॥ वातः प्राणेनेषि रोमयो भूः ॥ द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः ॥ ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् ॥ बृहद्भिः सवितस्तृभिः ॥ वर्षिष्ठैर्देवमन्मभिः॥ अग्ने दक्षैः पुनाहि मा ॥ येन देवा अपुनत ॥ येनापो दिव्यंकशः ॥ तेन दिव्येन ब्रह्मणा ॥ ३ ॥ इदं ब्रह्म पुनीमहे ॥ यः पाव-मानीरध्येति ॥ ऋषिभिः संभृत ँ रसम् ॥ सर्व ँ सपूतमश्नाति ॥ स्वदितं मातरिश्वना ॥ पावमानीर्यो अध्येति ॥ ऋषिभिः संभृत ँ रसम् ॥ तस्मै सर-स्वतीदुहे ॥ क्षीर ँ सर्पिर्मधूदकम् ॥ पावमानीः स्वस्त्ययनीः ॥ ४ ॥ सुदुघाहि पयस्वतीः ॥ ऋषिभिः संभृतो रसः ॥ ब्राह्मणेष्वमृत ँ हितम् ॥ पावमानीर्दिशंतु नः ॥ इमं लोकमथो अमुम् ॥ कामान्त्समर्धयंतु नः ॥ देवीर्देवैः समाभृताः ॥ पावमानीः स्वस्त्ययनीः ॥ सुदुघाहि घृतश्चुतः ॥ ऋषिभिः संभृतो रसः ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेष्वमृत ँ हितम् ॥ येन देवाः पवित्रेण ॥ आत्मानं पुनते सदा ॥ तेन सहस्रधारेण ॥ पावमान्यः पुनंतु मा प्राजापत्यं पवित्रम् ॥ शतोद्याम ँ हिरण्म-यम् ॥ तेन ब्रह्मविदो वयम् ॥ पूतं ब्रह्म पुनीमहे ॥ इन्द्रः सुनीती सह मा पुनातु॥ सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या ॥ यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा ॥ जातवेदा मोर्जयंत्या पुनातु सः ॥ ६ ॥ इत्यनुवाकेनचाभिषिच्य ॥ व्याहृतिभिरिदं विष्णुरिति च फलयवदूर्वाः समर्प्य रक्षोहणमिति देवहस्ते कंकणं बद्ध्वा वाससाच्छाद्य ॥ अव-तेहेळो उदुत्तममिति जलेधिवासयेत ॥ अथ चलप्रतिष्ठायामाग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा ग्रहादितद्विधिपक्षे ग्रहान् वासुदेवताश्च प्रतिष्ठाप्यान्वादध्यात ॥ चक्षुषी आज्येनेत्यंते

ग्रहादि होमपक्षे ग्रहानाधिदेवतादींश्च समिच्चर्वाज्येन वास्तुपीठदेवताश्चान्वाधाने उद्दिश्य ॥ इद्रं पृथिवीं शर्वम् अग्निम् अग्निमूर्तिं पशुपतिं यमं यजमानमूर्त्तिम् ॥ उग्रं निर्ऋतिं सूर्यमूर्तिं रुद्रं वरुणं जलमूर्तिं भवं वायुं वायुमूर्तिम् ईशानं कुबेरं सोममूर्तिं महादेवम् ईशानम् आकाशं भीमम् एताः लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिदेवताः ॥ पलाशोदुंबराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्भिराज्याहुतिभिस्तिलाहुतिश्च प्रतिदैवतं प्रतिद्रव्यमष्टाष्टसंख्याकाभिः स्थाप्य देवताममुकां पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमित्तिलचर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिसंख्यया वा ॥ अग्निर्यजुर्भिरित्यनुवाकेन विश्वान्देवांस्तिलाज्याभ्यां दशदशाहुतिभिः ॥ एवं द्वितीये पर्याये एता एव देवतास्तत्तत्संख्याकैस्तैरेव द्रव्यैरेवं तृतीये पर्याये एता एव देवतास्तत्तत्संख्याकैस्तैरेव द्रव्यैर्ब्रह्मादिमंडलदेवतास्तिलाज्याहुतिभिः प्रतिदैवतं दशदशसंख्याकाभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि ॥ शूर्पे प्रधान देवतार्थं तूष्णीं चतुरो मुष्टीन्निरूप्य होमपर्याप्तं गृहीत्वा तथैव प्रोक्ष्य गोक्षीरे नीवारचरुं श्रपयेदाज्यभागांते यजमान इदमुपकल्पितमन्वाधानोक्तद्रव्यजातमन्वाधानोक्ताहुतिसंख्यापर्याप्तमन्वाधानोक्ताभ्यो यक्ष्यमाणाभ्यो देवताभ्योस्तु न ममेति त्यागं कुर्यात् ॥ गृहसिद्धान्नादिना ग्रहादि होमंविधाय लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिभ्यः समित्पंचकं तिलाज्ये च जुहुयात् ॥ प्रतिद्रव्यहोमांते देवं पादनाभिशिरसि स्पृशेत् ॥ आज्यहोमे चोत्तरतः सजलकुंभे संपातान्नयेत् ॥ तेषां मंत्राः ॥ इंद्रायेंदो इतींद्रस्य स्योनेति पृथिवीमूर्त्तेः ॥ अघोरेभ्य इति तत्पतेः शर्वस्य ॥ अग्न आयाहीत्यग्नेः ॥ अग्निंदूतमित्यग्निमूर्त्तेः ॥ नमः शर्वाय च पशुपतये चेति पशुपतेः ॥ यमाय सोममिति यमस्य ॥ असिहि वीरेति यजमानमूर्तेः ॥ स्तुहि श्रुतमिति तत्पतेरुग्रस्य ॥ असुन्वंतमिति निर्ऋतेः ॥ आकृष्णेनेति सूर्यमूर्तेः ॥ यो रुद्रो अग्नाविति तत्पतेरुद्रस्य इमं मे वरुणेति वरुणस्य ॥ शन्नो देवीति जलमूर्तेः नमो भवाय चेति भवस्य ॥ आनो नियुद्भिः० वायोः ॥ वात आवातु वायुमूर्तेः ॥ तमीशानं० ॥ ईशानस्य ॥ आप्यायस्व० कुबेरस्य ॥ वयं सोम० सोममूर्तेः ॥ तत्पुरुषाय० महादेवस्य ॥ अभित्वा देव० ईशानस्य ॥ आदिप्रत्नस्य० आकाशस्य ॥ नम उग्राय चेति भीमस्य ॥ ततः स्थाप्यदेवमंत्रेण समित्पंचकपायसचरुतिलाज्यहोमः ॥ प्रतिद्रव्यहोमांते देवे पादनाभिशिरःस्पर्शः ॥ देवमंत्रश्च तांत्रिको मूलमंत्रो देवगायत्री वा वैदिको वा ग्राह्यः ॥ अग्निर्यजुर्भिः ॥ सवितास्तोमैः ॥ इंद्र उक्थामदैः ॥ मित्रावरुणावाशिषा ॥ अंगिरसो धिष्णियैरग्निभिः ॥ मरुतः सदोहविर्धानाभ्याम् ॥ आपः प्रोक्षणीभिः ॥ ओषधयो बर्हिषा ॥ अदितिर्वेद्या ॥ सोमो दीक्षया ॥ त्वष्टेध्मेन ॥ विष्णुर्यज्ञेन ॥ वसव आज्येन ॥ आदित्या दक्षिणाभिः॥ विश्वेदेवा ऊर्जा ॥ पूषा स्वगाकारेण ॥ बृहस्पतिः पुरोधसा ॥ प्रजापतिरुद्गीथेन ॥

अंतरिक्षं पवित्रेण ॥ वायुः पात्रैः ॥ अह ४ श्रद्धया स्वाहेत्यनुवाकेन तिलाज्ययो- र्दशदशाहुतयः ॥ ततो देवस्य पादौ स्पृशेत् ॥ संपातजलेन देवमभिषिंचेत् ॥ एवमेव द्वितीयपर्यायेण हुत्वा देवस्य नाभिं स्पृशेत् ॥ एवं तृतीयपर्यायेण हुत्वा शिरः स्पृशेत् ॥ प्रतिपर्यायं संपाताभिषेकः ॥ एकपर्याये आहुतिसंख्या ॥ पला- शसमिधः १९२ औदुंबर १९२ अश्वत्थ १९२ शमी १९२ अपामार्ग १९२ आ- ज्यं १९२ तिलाः १९२ स्थाप्य देवस्याष्टाविंशतिपक्षे ॥ समित्पंचकं १४० चर्वा- ज्यतिलाः ८४ अनुवाक २० मिलिताः १५८८ पर्यायत्रये ४७६४ एवं हुत्वार्चां शोधयेत् ॥ देवं नत्वा ॥ "स्वागतं देवदेवेश विश्वरूप नमोस्तुते ॥ शुद्धेपि त्वद- धिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्व ताम्" इति प्रार्थ्य ॥ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति सर्विगु- त्थाप्याभ्युत्तारणं कार्यम् ॥ अग्निः सप्तिमिति सूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत् ॥ एवमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वा पठन् जलं पातयेत् ॥ ततोर्चां द्वा- दशवारं मृदा जलेन च प्रक्षाल्य मंत्रैः पंचगव्यं कृत्वा ॥ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यंतरिक्षे पयोधाः ॥ पयस्वतीः प्रदिशः संतु मह्यम् ॥ आवो राजानमिति च संस्नाप्य आप्यायस्वेति पञ्चमन्त्रैः पञ्चामृतेन संस्नाप्य लिंगं चेन्नमस्ते रुद्र इत्यष्टाभिः संस्नाप्य घृताभ्यंगमुद्वर्तनमुष्णोदकेन क्षालनं च कृत्वा गंधं दत्त्वा संपातोदकैरभि- षिच्य सपल्लवैश्चतुर्भिः कुंभैः क्रमेणापोहिष्ठा० यो वः शिवतमो० तस्मा० आकल- शेषु० इति सस्नाप्य समुद्रज्येष्ठेति चतसृभिराकलशेष्विति च मिलितचतुः कुंभैः संस्नाप्य ॥ औदुम्बरादिपीठेर्चामुपवेश्य परितोष्टदिक्षु सजलकुंभेषु गन्धपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वाद्यकुंभे सप्तमृदः ॥ द्वितीये पुष्करपर्णशमीविकंकताश्मन्तकत्वचः पल्लवांश्च ॥ तृतीये सप्तधान्यानि ॥ चतुर्थे पञ्चरत्नानि ॥ पंचमे फलपुष्पाणि ॥ षष्ठे कुशदूर्वा गोरोचनाः सप्तमे संपातोदकम् ॥ अष्टमे सर्वौषधीः क्षिप्त्वा क्रमेणापोहिष्ठेति त्रिभिः हिरण्यवर्णाः शुचय इति चतुर्भिः पवमानानुवाकेन चाभिषिच्य एककुंभे शमी- पलाशवटखदिरबिल्वाश्वत्थविकंकतपनसाम्रशिरीषोदुंबराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वाश्वत्थेव इत्यभिषिच्य पंचरत्नोदकेन हिरण्यवर्णाः शुचय इति संस्नाप्य वाससी दत्त्वोपरि वितानं बध्नंति केचित ॥ यज्ञोपवीतगंधपुष्पधूपदीपान्दत्त्वा ॥ हिरण्य- गर्भः० १ य आत्मदा० २ यः प्राणतो० ३ यस्येमे० ४ येन द्यौ० ५ यं क्रंदसी० ६ आपो हयत्० ७ यश्चिदापो० ८ इत्यष्टौ पीठदीपान्दत्त्वा सुवर्णशलाकया तैजस- पात्रस्थं मधुघृतं च गृहीत्वा चित्रं देवाना० तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामना- मासि ॥ प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनम् इति मन्त्राभ्याम् ॥ ॐ " नमो भग- वते तुभ्यं शिवाय हरये नमः ॥ हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः" इति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मन्त्रावृत्त्या लिखेत् ॥ अंजंति त्वेत्यंजनेनाङ्क्त्वा ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे० इंद्रस्येंद्रियेणानज्मीति मध्वाज्यशर्कराभिरंक्त्वा अंजनेन पुनरं-

जयेत् ॥ तत आदर्शभक्ष्यादि दर्शयेत् ॥ अत्र कर्ता चार्याय गामृत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात् ॥ आचार्यः प्रत्यृचमादौ प्रणवं वदन्पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा वंशपात्रस्थपंचवर्णौदनेन देवं नीराजयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात् ॥ मन्त्रस्तु ॥ ॐ" नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमो नमः ॥ शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहा ॥" इति ॥ अश्वत्थपर्णे भूतेभ्यो नम इति ॥ अथाचार्यः सर्वतो भद्र देवता आवाहयेत् ॥ मध्ये ब्रह्माणम् ॥ पूर्वादिदिक्षु इंद्रादिलोकपालान् ॥ ईशानेंद्राद्यंतरालेषु ॥ वसून् १ रुद्रान् २ आदित्यान् ३ अश्विनौ ४ विश्वान्देवान् ५ पितॄन् ६ नागान् ७ स्कंदवृषौ ८ ब्रह्मेशानाद्यंतरालेषु दक्षम् १ विष्णुम् २ दुर्गाम् ३ स्वधाकारम् ४ मृत्युरोगान् ५ ॥ समुद्रान्सरितः ६ मरुतः ७ गणपतिं ८ मध्ये पृथिवीं मेरुं संस्थाप्य देवं चावाह्य प्रागादिदिक्षु ॥ वज्रं शक्तिं दंडं खड्गं पाशम् अंकुशं गदां शूलम् ॥ तद्बाह्ये गौतमं भरद्वाजं विश्वामित्रं कश्यपं जमदग्निं वसिष्ठमत्रिमरुंधतीं च ॥ तद्बाह्ये नवग्रहान् ॥ तद्बाह्ये ऐंद्रीं कौमारीं ब्राह्मीं वाराहीं चामुंडां वैष्णवीं माहेश्वरीं वैनायकीम् ॥ एतानामभिरावाह्य संपूज्य प्रतिमायां देवं तन्मंत्रेणावाह्य मंडलमध्ये प्रतिमां सुप्रतिष्ठितो भवेति निवेश्य संपूज्य वह्नौ मंडलदेवतानां नामभिस्तिलाज्येन दशदशाहुतीर्हुत्वा पुष्पांजलिं समर्प्य नमो महदिति देवं नत्वा मंडलादुत्तरतः स्वस्तिके मंचकं तदुपरि शय्यां कृत्वोत्तिष्ठेति देवमुत्थाप्य मंगलघोषैः शय्यायां देव मुपवेश्य ॥ पुरुषसूक्तोत्तरमहान्यासनारायणाभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात् ॥ तथाहि ॥ पुरुषात्मने नमः ॥ प्राणात्मने० प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० अहंकारतत्त्वाय० मनस्तत्त्वाय० इति सर्वांगेषु ॥ प्रकृतितत्त्वाय० बुद्धितत्त्वाय० हृदि शब्दतत्त्वाय० शिरसि ॥ स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि ॥ रूपतत्त्वाय० हृदि ॥ एवं हृद्येव रसगंधश्रोत्रत्वचक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसत्त्वरजस्तमोदेहतत्त्वानि विन्यसेत् ॥ ततः पुरुषसूक्ताद्यम् ऋग्द्वयं करयोः ॥ तदुत्तरद्वयं जानुनोः ॥ तदुत्तरद्वयं कट्योः ॥ ततः तिस्रो नाभिहृत्कंठेषु ततो द्वयं बाह्वोः ॥ ततो द्वयं नासयोः ॥ ततो द्वयमक्ष्णोः ॥ अंत्यां शिरसि ॥ ततः सुखशायी भवेति शय्यायां देवं स्वापयित्वा ॥ मण्डलशय्ययोरंतरा न गंतव्यमिति प्रैषं दत्त्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य मंडलदेवताभ्यो नामभिश्चरुणा बलीन्दद्यात् ॥ नीवारचरुशेषेण दिग्बलिम् ॥ ततो धामंत इति पूर्णाहुतिं जुहुयात् ॥ इत्यधिवासनम् ॥

अब निर्णयसिंधुके अनुसार देवप्रतिष्ठाके प्रयोगको कहते हैं। कि, यजमान द्वादश हस्त आदिके मंडपको बनाकर, अग्निके लिये पूर्वमें हस्तमात्र कुंड वा स्थंडिलको बनाकर, मध्यमें

वेदीके ऊपर सर्वतोभद्रको ग्रहोंके बनानेकी इच्छासे पूर्वमें वा ईशानमें ब्रह्माकी वेदीको नावै, प्रासादके संस्कार वा मण्डपके संस्कार करनेकी इच्छा होय, तो नैर्ऋतमें वास्तुपीठको बनाकर। इसमूर्तिमें वा लिंगमें देवताकी संनिधिके लिये और दीर्घ अवस्था, लक्ष्मी, सब कामना, अक्षयसुख इनका अभिलाषी मैं अमुक देवताकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करता हूं, यह संकल्प करके, स्वस्तिवाचन आदिनांदी श्राद्धके अन्तमें आचार्यका वरणकरके आठ वा चार ऋत्विजोंका वरण करके पूजन करै। आचार्य 'यदत्र०' इसमंत्रसे सर्षपोंको बखेरकर, 'आपोहिष्ठा०' इनमन्त्रोंसे कुशाके जलसे भूमिका प्रोक्षण करके, देवता आओ, राक्षस जाओ, हे विष्णो ! देव यजनकी रक्षा करो, इसमंत्रसे भूमिमें प्रादेशमात्र मंडल करके मण्डपकी प्रतिष्ठा करै, उसकी विधिवो मूर्तिप्रतिष्ठाके ग्रंथोंसे जाननी वा उसके अनुसार प्रतिष्ठाको करके वा न करके जो इस भूमिमें किसी स्थानके विषे भूत स्थितहैं, वे सब स्थानको त्यागकर जहांके हो वहां जाओ। फिर 'अपक्रामंतु०' पंचगव्य, सुवर्ण, जौ, दूर्वा, पीपल, पलाशक पत्ते इनको जलके घटमें डारकर, तिन जलोंसे इन ऋचाओंसे अभिषेक करै, कि, 'आपोहिष्ठा०' इन तीन ऋचाओंसे और "हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः यासु जातः कश्यपो यास्विंद्रः अग्निंयागर्भं दधिरे विरूपास्तान आपः श ꣳ स्योना भवंतु ॥ यासां राजा वरुणो यातिमध्ये सत्यानृते अवपश्यं जनानाम् मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता० यासां देवा दिवि कृण्वंति भक्षं या अंतरिक्षे बहुधा भवंति। याः पृथिवीं पयसोंदंति शुक्रास्ता० ॥ शिवेन माचक्षुषा पश्यताप शिवया तनुवोपस्पृशत त्वचं मे सर्वा ꣳ अग्नि ꣳ रक्षु षदो हुवे वो मयि वर्चोबलमोजो निधत्त ॥ पवमानः सुवर्जनः पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा। पुनंतु मा देवजनाः पुनंतु मनवो धिया। पुनंतु विश्वाआयवः जातवेदः पवित्रवत्। पवित्रेण पुनीहि मा। शुक्रेण देव दीद्यत् अग्नेक्रत्वा क्रतूं ꣳ रनु ॥१॥ यत्ते पवित्रमर्चिषि। अग्ने विततमंतरा। ब्रह्म तेन पुनीमहे। उभाभ्यां देवसवितः। पवित्रेण सवेन च। इदं ब्रह्मपुनीमहे। वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्। यस्यैबह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः। तया मदंतः सधमाद्येषु। वय ꣳ स्याम पतयोरयीणाम ॥ २ ॥ वैश्वानरो रश्मिभिर्मापुनातु। वातः प्राणेनेषिरोमयोभूः। द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः ऋतावरीयज्ञिये मा पुनीताम्। बृहद्भिः सवितस्त्रिभिः। वर्षिष्ठैर्देवमन्मभिः। अग्नेदक्षैः पुनीहि मा। येन देवापुनत। येनापो दिव्यं कशः। तेन दिव्येन ब्रह्मणा ॥ ३ ॥ इदं ब्रह्मपुनीमहे। यः पावमानीरध्येति। ऋषिभिः संभृत ꣳ रसम् सर्व ꣳ सपूत मश्नाति। स्वदितं मातरिश्वना। पावमानीर्यो अध्येति। ऋषिभिः संभृत ꣳ रसम्। तस्मै सरस्वती दुहे। क्षीर ꣳ सर्पिर्मधूदकम्। पावमानीः स्वस्त्ययनीः (कल्याणकाघर) ॥ ४ ॥ सुदुघाहि पयस्वतीः। ऋषिभिः संभृतो रसः। ब्राह्मणेष्वमृत ꣳ हितम्। पावमानीर्दिशंतु नः। इमं लोकमथो अमुम्। कामान्समर्द्धयंतु नः। देवीर्देवैः समाभृताः। पावमानीः स्वस्त्ययनीः। सुदुघाहि घृतश्चुतः। ऋषिभिः संभृतो रसः ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेष्वमृत ꣳ हितम्। येन देवाः पवित्रेण। आत्मानं पुनते सदा तेन सहस्रधारेण। पावमान्यः पुनन्तु मां। प्राजापत्यं पवित्रं। शतोद्याम ꣳ हिरण्मयम्। तेन ब्रह्मविदो वयम्। पूतं ब्रह्म पुनीमहे। इंद्रः सुनीतीं सह मा पुनातु। सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या। यमोराजा प्रमृणाभिः पुनातु मा। जातवेदामोर्जयंत्या पुनातु" ॥६॥ इस अनुवाकसे अभिषेक करके। व्याहृतियोंसे और 'इदंविष्णु' इसमंत्रसे फल, जौ, दूर्वा इनका 'अर्पण करके 'रक्षोहणं' इसमंत्रसे देवके हाथमें कंकण बांधकर और वस्त्रसे आच्छादन करके। अव-

तेहेळो० उदुत्तमम्'। इन मंत्रोंसे जलमें अधिवासन करावे । अब चल प्रतिष्ठामें कहते हैं कि, अग्निका स्थापन करके ध्यानकर, ग्रहादि तद्विधिपक्षमें ग्रह और वास्तुदेवतोंको स्थापन करके अन्वाधान करै, 'चक्षुषी आज्येन' इन आहुतियोंके अंतमें जब ग्रहआदिके भी होम करनेका पक्ष है, तब ग्रह और अधिदेवताओंको, समिध, चरु, आज्यसे वास्तुपीठ देवताओंका आन्वाधानमें, उद्देश करके (होम करके) इंद्र, पृथिवी, शर्व, अग्नि, अग्निमूर्ति, पशुपति, यम, यजमानकी मूर्ति, उग्र, निर्ऋति, सूर्यमूर्ति, रुद्र, वरुण, जलमूर्ति, भव, वायु, वायुमूर्ति, ईशान, कुबेर, सोममूर्ति, महादेव, ईशान, आकाश, भीम इनका और लोकपालकी मूर्ति और मूर्तियोंके पतिदेवताओंका । पलाश, गूलर, पीपल, शमी, अपामार्ग इनकी समिधोंसे घीकी आहुतियोंसे और तिलकी आहुतियोंसे प्रत्येक देवताके निमित्त प्रत्येक द्रव्यकी आठ २ संख्यासे होम करै, स्थापन किये हुये अमुक देवताको पलाश, गूलर, पीपल, शमी, अपामार्ग, इनकी समिध करके आज्याहुतिकरके प्रतिदेवताके प्रति प्रतिद्रव्यकी आठ २ उस स्थाप्य देवताको पलाश, गूलर, पीपल, शमी, अपामार्ग इनके समिध, और तिल, चरु घीसे प्रतिद्रव्य, आठ ऊपर सहस्र वा अष्टोत्तरशत वा अट्ठाईस आहुति दे । अग्निर्यजुर्भिः इस अनुवाकसे विश्वेदेवोंको तिल, घीकी दश २ आहुति दे । इसी प्रकार दूसरे पर्याय (फेर) में इन्ही देवताओंको तिस २ संख्याकी तिस २ द्रव्यहीकी आहुति दे, इसी प्रकार तीसरे पर्यायमें इन्ही देवताओंको तिस २ संख्यासे तिसी २ द्रव्यकी आहुति दे, ब्रह्माआदि मंडलके देवताओंको तिल घीकी आहुति प्रत्येक देवताके निमित्त दश २ दे, शेष चरु आदिसे स्विष्टकृत करै, इत्यादि० । शूर्पमें प्रधान देवताके लिये तूष्णीं चारमुष्टिभर रखकर होमके योग्य ग्रहण करके, तिसीप्रकार प्रोक्षण करके, गौके दूधमें नीवारके चरुको पकावै, आज्यभाग आहुतिके अनंतर यजमान यह सिद्ध किया जो अन्वाधानमें कहा हुआ द्रव्यसमूह अन्वाधानमें उक्तसंख्याके पर्याप्त (पूरा) है यह सब अन्वाधानमें उक्त जो यक्ष्यमाणा (आगे पूजनीय) देवताओंका हो, मेरा नहीं यह त्याग (दान) करै । ग्रहमें सिद्धअन्न आदिसे ग्रह आदिके होमको करके, लोकपालकी मूर्ति और मूर्तियोंके पतियोंके निमित्त पांच समिधोंमें तिल घी मिलाकर होम करै । द्रव्य २ के होमके अनंतर देवताके पाद, नाभि, शिरमें स्पर्श करै । घीके होममें उत्तरसे जलसहित घटको संपातसे लेजाय । उनके मंत्र ये हैं । कि, 'इंद्रायेंद्री०' इसमंत्रसे इंद्रको 'स्योना०' इसमंत्रसे पृथिवी मूर्तिको 'अघोरेभ्य' इसमंत्रसे उसके पतिशर्वको । 'अग्नआयाहि०' इसमंत्रसे अग्निको । 'अग्निंदूतं०' इसमंत्रसे अग्निमूर्तिको 'नमः शर्वाय च पशुपतये च०' इसमंत्रसे पशुपतिको । 'यमाय सोमं०' इसमंत्रसे यमको । 'असिहिवीर० इसमंत्रसे यजमान मूर्तिको । 'स्तुहिश्रुतं०' इसमंत्रसे उसके पतिउग्रको । 'असुन्वंतं०' इसमंत्रसे निर्ऋतिको । 'आकृष्णेन०' इसमंत्रसे सूर्यमूर्तिको । 'यो रुद्रो अग्नौ०' इसमंत्रसे उसके पतिरुद्रको । 'इमंमेवरुण०' इसमंत्रसे वरुणको । 'शन्नोदेवी०' इसमंत्रसे जलमूर्तिको । 'नमोभवाय च'० इसमंत्रसे भवको । 'आनोनियुद्भिः'० इसमंत्रसे वायुको । 'वातआवातु०' इसमंत्रसे वायुमूर्तिको । 'तमीशान' इसमंत्रसे ईशानको । 'आप्यायस्व'० इसमंत्रसे कुबेरको । 'वयं सोम०' इसमंत्रसे सोममूर्तिको । 'तत्पुरुषाय०' इसमंत्रसे महादेवको । 'अभित्वादेव०' इसमंत्रसे ईशानको । 'आदित्प्रत्नस्य०' इसमंत्रसे आकाशको । 'नम उग्राय च०' इसमंत्रसे भीमको । आहुति दे । फिर स्थापन करनेयोग्य देवके मंत्रसे पांच समिध, पायस, चरु

तिल घी इनका होम करै। और प्रतिद्रव्यके होम किये पीछे देवताके पाद नाभिका स्पर्श करै। और देवताका मंत्र तांत्रिकहो वा मूलमंत्र, देवगायत्री वा वैदिक ग्रहण करना। फिर 'अग्निर्यजुर्भिः' 'सविता स्तोमैः' 'इंद्र उक्थामदैः' 'मित्रावरुणा वा शिषा' 'अंगिरसोधिष्णियैरग्निभिः' 'मरुतः सदोहाविर्धानाभ्याम्' 'आपः प्रोक्षणीभिः' 'औषधयो बर्हिषा' 'अदितिर्वेद्या' 'सोमोदीक्षया'। 'त्वष्टेध्मेन'। 'विष्णुर्यज्ञेन' 'वसव आज्येन'। 'आदित्या दक्षिणाभिः' 'विश्वेदेवा ऊर्जा'। 'पूषा स्वधाकारेण'। 'बृहस्पतिः पुरोधसा' 'प्रजापतिरुद्गीथेन' 'अंतरिक्षं पवित्रेण'। 'वायुः पात्रैः'। 'अहॅ श्रद्धया स्वाहा'। इस अनुवाकसे तिल, आज्यकी दश २ आहुति दे। फिर देवके पादोंका स्पर्श करै। संपातके जलसे देवका अभिषेक करै। इसीप्रकार दूसरे पर्यायसे होम करके देवकी नाभिका स्पर्श करै। तीसरे पर्यायसे होम करके शिरका स्पर्श करै। प्रत्येक पर्यायमें संपातका अभिषेक करै। एक पर्यायमें आहुतियोंकी संख्या पलाशकी समिध् १९२, गूलरकी १९२, पीपलकी १९२, शमीकी १९२, अपामार्गकी १९२, आज्यकी १९२, तिलकी १९२ और स्थापनयोग्य देवकी अट्ठाईसके पक्षमें पांच समिधोंकी १४०, चरु आज्य तिलकी ८४ अनुवाककी २० सबको मिलानेसे १५८८ तीनों पर्यायोंमें ४७६४ आहुतियाँ होती हैं इस प्रकार होम करके अर्चाका शोधन करै। फिर देवको नमस्कार करके कहै कि, हे देवदेवेश! हेविश्वरूप! आपका स्वागत है और आपको नमस्कार है। शुद्ध भी आपके अधिष्ठान में हम, बलवान् शुद्धिको करते हैं। इससे प्रार्थना करके "उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०" इस मंत्रसे, ऋत्विजों सहित उठकर अभ्युत्तारणको करै। 'अग्निःसप्तिं०' इस सूक्तको अग्निपदसे रहित पढकर पुनः अग्निपदसहितको पढै इस प्रकार आठसौ वा अठाईस बार पढता हुआ और जलका संपात करता हुआ फिर अर्चा (मूर्ति) को द्वादशवार मिट्टी जलसे प्रक्षालन करके, पंचगव्यके मन्त्रोंसे और "पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयोदिव्यंतरिक्षे पयोधाः पयस्वतीः प्रदिशः संतु मह्यम्' आवो राजानं०" इन मन्त्रोंसे स्नान कराके, 'आप्यायस्व०' इन पांचमंत्रोंसे, पंचामृतसे; स्नान कराकर लिंग होय तो 'नमस्ते रुद्र०' इन आठमंत्रोंसे, स्नान कराकर घृतका अभ्यंग, उबटना, उष्णजलसे प्रक्षालन करके गंध देकर संपातके जलोंसे सींचकर पल्लवसहित च्यारघटोंके जलसे, "आपोहिष्ठा०। योवः शिव०। तस्मा०। आकल०" इन मंत्रोंको क्रमसे पढकर स्नान कराकर 'समुद्र ज्येष्ठ०' इन चार ऋचाओंसे और 'आ कलशेषु०' इससे मिलाकर चार घटोंसे स्नान कराकर, गूलर आदिके पीठपर अर्चाका स्थापन करके चारों तरफ आठदिशाओंमें जलसहित घटोंमें; गंध, पुष्प और दूर्वा इनको डारकर पहिले घटमें सातमिट्टी; दूसरेमें कमलकापत्र, शमी, विकंकत, बहेडाकी त्वचा और पत्ते; तीसरेमें सप्तधान्य; चौथेमें पंचरत्न; पांचमें में फल पुष्पको; छठेमें कुशा, दूर्वा, गोरोचनको; सातमें में संपातोदकको; आठमें में सर्वौषधियोंको डारकर क्रमसे 'आपोहिष्ठा०' इन तीन ऋचाओंसे तीन घटोंसे 'हिरण्यवर्णाः शुचयः' इस मन्त्रसे पांच घटोंसे और पवमान अनुवाकसे अभिषेक करके एक कुंभमें शमी, पलाश, बड, खैर, बेल, पीपल, विकंकत, पनस, आम्र, शिरस, गूलर इनके पत्तोंको और कषायोंको डालकर 'अश्वत्थेव०' इस मन्त्रसे अभिषेक करके पंचरत्नके जलसे 'हिरण्यवर्णाः शुचयः०' इस मंत्रको पढकर स्नान कराकर वस्त्रोंको देकर ऊपर वितान (चंदोआ) करते हैं। और कोई; यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीप देकर; 'हिरण्यगर्भः०। य आत्मदा०। यः

प्राणतो० । यस्य मे० । येन द्यौ० । यं क्रंदसी० । आपोह्यत्० । यश्चिदापो० इन आठ (८) मन्त्रोंसे पीठके दीपकोंको देकर सुवर्णकी शलाकासे तैजस पात्र (सुवर्ण) में स्थित मधु-घृतको "चित्रंदेवानां० । तेजोसि० । शुक्रमस्यमृतमसि प्रियंदेवानामनाधृष्टं देवयजनमसि" इन दो मन्त्रोंसे ग्रहण करके शिव, हरि, भगवान् रूप, आपको नमस्कार है । हिरण्यरेता, विष्णु, विश्वरूप, आपको नमस्कार है । इस मन्त्रसे दक्षिण और वाम देवके नेत्रोंको मंत्रकी आवृत्तिसे लिखै । 'अंजंति त्वा०' इस मंत्रसे अंजनलगाकर 'देवस्यत्वा० इंद्रस्येंद्रियेणानज्मि' इस मंत्रसे मधु, आज्य, शर्कराओंको आंजकर फिर अंजनसे आंजै फिर आदर्श (सीसा) और भक्ष्य आदिको दिखावै इस समयमें कर्ता, आचार्यको गौ और ऋत्विजोंको दक्षिणा दे । आचार्य ऋचा २ के प्रति आदिमें ॐकारको पढकर पुरुषसूक्तसे स्तुति करके वंशके पात्रमें स्थित पांचवर्णके ओदनोंसे देवका नीराजन करके रुद्रको चतुष्पथ आदिमें ओदन दे उसके मंत्र तो ये हैं कि, "ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय नमो नमः शिवमगार्हितं कर्मास्तु स्वाहा," पीपलके पत्तेपर 'भूतेभ्यो नमः' यह मंत्र पढकरदे । इसके अनंतर आचार्य; सर्वतोभद्रमें देवताओंका आवाहन करै । मध्यमें ब्रह्माका पूर्व आदि दिशाओंमें इंद्र आदि लोकपालोंका ईशान और इंद्र आदिके अन्तरालोंमें; वसुओंका १, रुद्रोंका २, आदित्योंका ३, अश्विनीकुमारोंका ४, विश्वेदेवोंका ५, पितरोंका ६, नागोंका ७, स्कंद और वृषका ८, आवाहन करै और ब्रह्मा तथा ईशानके मध्यभागोंमें दक्ष १, विष्णु २, दुर्गा ३, स्वधाकार ४, मृत्युरोग ५, समुद्र ६, सरित् ७, मरुत् ८, और गणपति ९ इनका आवाहन करै और मध्यमें पृथिवी, मेरुका स्थापन करके और देवका आवाहन करके पूर्व आदि दिशाओंमें; वज्र, शक्ति, दंड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा और शूल इनका आवाहन करै । फिर उनके बाह्यदेशमें गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, अत्रि और अरुंधती, इनका आवा० । और इनके बाह्यदेशमें नवग्रहोंका उनके बाह्यदेशमें; ऐंद्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुंडा, वैष्णवी, माहेश्वरी और वैनायकी, इन सबका नाम लेलेकर आवाहन करके पूजन करके प्रतिमामें देवका; देव मन्त्रसे आवाहन करके मण्डलके मध्यमें 'सुप्रतिष्ठितो भव' यह कहकर प्रतिमाका स्थापन और पूजन करके अग्निमें मण्डलके देवताओंकी नाममंत्रोंसे तिल घीकी दश २ आहुति होमकर पुष्पांजलिका समर्पण करके, 'नमोमहत्०' इस मन्त्रसे देवको नमस्कार करके मण्डलसे उत्तर स्वस्तिकपर विछाये मंचकपर शय्या विछायकर शयनके अनन्तर देवको उठाकर, मंगलके शब्दोंसे शय्याके ऊपर देवको बैठाकर, पुरुषसूक्तके अनंतर महान्यास और नारायणकवचसे स्तुति करके देवके न्यासोंको करै । सोई दिखाते हैं कि, "पुरुषात्मनेनमः । प्राणात्मने० । प्रकृतितत्त्वाय० । बुद्धितत्त्वाय० । अहंकारतत्त्वाय० । मनस्तत्त्वाय० । इन मंत्रोंसे सब अंगोंमें न्यास करै । फिर प्रकृतितत्त्वाय० । बुद्धितत्त्वाय० । इनसे हृदयमें; शब्दतत्त्वाय० । इससे शिरमें; स्पर्शतत्त्वाय० । इससे त्वचामें; रूपतत्त्वाय० । इससे हृदयमें करै । इसीप्रकार हृदयमें ही रस, गंध, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सत्त्व, रज तम; इन देहके-तत्त्वोंका न्यास करै । फिर पुरुषसूक्तकी पहिली दो ऋचा, हाथोंमें, उससे उत्तरकी दो ऋचा जानुओंमें, उससे उत्तरकी दो ऋचा, कटियोंमें, उससे, उत्तरकी तीन ऋचा, क्रमसे नाभि,

हृदय, कंठमें; फिर दो दोनों भुजाओंमें, उससे आगेकी दो नासिकाओंमें, उससे अग्रिम दो नेत्रोंमें, अंत्यकी एक ऋचा शिरमें न्यास करै । फिर, 'सुखसे शयन करो यह कहकर शय्या-पर देवका स्थापन करके, मंडल और शय्याके मध्यमेंसे कोई न जाय, यह प्रेरणा करके स्विष्टकृत् आदि होमके शेषको समाप्त करके मंडलदेवताओंको नाम ले २ कर चरुकी बलि दे, और नीवार चरुके शेषसे दिग्बलि दे । फिर 'धामंते०' इस मंत्रसे पूर्णाहुतिकी आहुति दे'। यह अधिवासन पूर्ण हुआ ॥

अथ स्थिरार्चायां क्रमो विशेषश्च ।

संकल्पादिजलाधिवासांतं कृत्वा देवं नत्वा "स्वागतं देवदेवेश ॥" इत्यादि प्रार्थनोत्थापनाग्न्युत्तारणादिनेत्रोन्मीलनांतं पूर्ववत्॥ तत्र स्थिरे शिवलिंगे स्वर्णसूच्या गंधेन ॥ ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमा-प्रियाय नम इत्युक्त्वा अंजनादिनांजयेदिति नेत्रोन्मीलने लिंगे विशेषः ॥ ततः सूक्तस्तुत्यादिमंडलदेवतास्थापनांतम् ॥ ततो मंडले मूर्तिनिवेशस्ततः शय्यायां देवतारोहणं ततः स्तुतिः पूर्वोक्तन्यासाः ततः शय्यायां देवशयनम् ॥ ततोऽग्नि-स्थापनादि । पूर्वोक्तान्वाधाने विष्णौ नारायणं षोडशाज्याहुतिभिः शिवश्चेत् यातइषुः द्रापेसहस्राणीत्यनुवाकस्थऋग्भी रुद्रमाज्येनेति प्रधानोत्तरमूह इति विशेषः ॥ लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिहोमांतं पूर्ववत् ॥ स्थाप्यदेवताहोमे नैवारश्चरुर्नास्ति सप्तैव हवींषि ॥ ततश्च विष्णोः स्थिरार्चायां पूर्वोक्तसमित्तिलाज्यहोमोत्तरं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा इदं विष्णुरिति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा ॥ अतो देवेति शिरः स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा पुरुषसूक्तेन सर्वांगं स्पृशेत् ॥ स्थिरं लिंगं चेत्समिदाज्यतिलहोमांते यात इषुरित्यनुवाकांतेन द्रापे इति सहस्राणीत्यनुवाकाभ्यां च प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा सर्वो वै रुद्र इति मूलं स्पृशेत् ॥ पुनस्ता एव हुत्वा कद्रुद्रायेति मध्यं पुनस्ता एव हुत्वा नमो हिरण्यबाहव इत्यग्रं स्पृशेत् पुनस्ता एव हुत्वा सर्वरुद्रेण सर्वांगं स्पृशेत ॥ इत्यधिवासने विशेषः ॥ परेद्युः पीठिकां स्नापयित्वा महीमूष्वित्यावाह्य ॥ अदितिर्द्यौरिति स्तुत्वा ह्रीं नम इति संपूज्य तेनैव पूर्णाहुतिं हुत्वा ॥ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति देवमुत्थाप्य पुष्पांजलिं दत्त्वा पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा ॥ उदुत्यमित्युत्थाप्य कनिक्रददिति सूक्तेन विष्णुं सद्यो जातामिति पंचानुवाकैर्लिंगं गृहं प्रवेश्य पीठिकायामिंद्रादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरौप्यमनःशिलाः क्षिप्त्वा पायसेन संलिप्य प्रणवेनांगन्यासं कृत्वा सुवर्ण-शलाकामंतरितां कृत्वा सुलग्ने प्रतितिष्ठ परमेश्वरेत्युक्त्वाऽतो देवेति विष्णुं रुद्रेण लिंगं च स्थापयेत् ॥ ततश्चरुहोमप्राणप्रतिष्ठादि इति ॥ ततः स्थिरार्चायामधिवासने परेद्युःकृत्ये च विशेषोन्यत्सर्वमुक्तवक्ष्यमाणचलार्चावदेव ॥ अथ चलप्रतिष्ठाया-मधिवासनांते परेद्युरेकाहपक्षे सद्यो वा उत्तिष्ठ ब्रह्मण इति देवमुत्थाप्य पुरुषसूक्तो-त्तरनारायणाभ्यां स्तुयात् ॥

अब स्थिर अर्चामें क्रम और विशेषको कहते हैं। संकल्पसे लेकर जलाधिवासनपर्यंत कर्म को करके, देवको नमस्कार करके; हे देवदेवेश आपका स्वागत है। इत्यादि प्रार्थना; उत्थापन, अग्युत्तारणसे लेकर नेत्रोन्मीलनपर्यंत कर्म पूर्वके समान है। उसमें अस्थिरशिवलिंगमें; सुवर्णकी सलाईमें लगे गंधसे "ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नमः" यह पढकर अंजनआदिसे नेत्रोंको आंजै इतना नेत्रोन्मीलनमें लिंगविशेष है। फिर सूक्तोंसे स्तुति आदि, मण्डलदेवतास्थापनपर्यंत; कर्म करै। फिर मण्डलमें मूर्तिका निवेश; फिर शय्यापर देवका स्थापन; फिर स्तुति; पूर्वोक्तन्यास; फिर शय्यापर देवका शयन; कर्म करे फिर अग्निस्थापन आदि। पूर्वोक्त अन्वाधानमें नारायणको सोलह घृतकी आहुतियों करके यदि शिव होवैं तो 'यातइषुःद्रापेसहस्राणि' इस अनुवाककी ऋचोंकरके शिवजीको घीसे ऐसा प्रधानोत्तर ऊह (तर्क) करै यह विशेषहै। और लोकपालमूर्ति; मूर्तिपतिके होमपर्यंत कर्म पूर्वके समान है। स्थापन करने योग्य देवताके होममें नीवारका चरु नहीं है, सातही हविः हैं। फिर विष्णुकी स्थिर अर्चामें पूर्वोक्त समिध, तिल, आज्यके होमसे, पीछे पुरुषसूक्तसे प्रत्येक ऋचा पढकर, घीका होमकर 'इदंविष्णु०' इस मन्त्रसे पादोंका स्पर्श करके, फिर वेही आहुति देकर; 'अतो देव०' इस मन्त्रसे शिरका स्पर्श करके; फिर वेही आहुति देकर पुरुषसूक्त पढकर सब अंगोंका स्पर्श करै। स्थिर लिंग होय तो; समिध, तिल, आज्य, होमके अन्तमें 'याते इषु०' इस अनुवाक पर्यंतसे 'द्रापे०।' और 'सहस्राणि०' इन दो अनुवाकोंसे ऋचा ऋचाके प्रति, घीका होम करके; 'सर्वोवै रुद्र' यह कहकर मूलका स्पर्शकरै। फिर वेही आहुति होम कर 'कद्रुद्राय०' इस मन्त्रसे मध्य आहुति दे। फिर वेही आहुति होमकर 'नमोहिरण्यबाहवे०'इससे अग्निमें आहुति दे। फिर वेही आहुति देकर संपूर्णरुद्रीसे संपूर्ण अंगका स्पर्श करै॥ यह अधिवासनमें विशेष है॥ परदिनमें पीठिकाको स्नान कराकर 'महीमुषी०' इस मंत्रसे आवाहन करके, 'अदितिर्द्यौ०' इस मन्त्रसे स्तुति करके, 'ह्रीं नमः' इस मंत्रसे, पूजकर उसी मंत्रसे पूर्णाहुति होमको करके, 'उत्तिष्ठब्रह्मणस्पते०' इस मंत्रसे देवको उठाकर, पुष्पांजलि देकर, पुरुषसूक्तसे स्तुतिकरके 'उदुत्यं०' इस मंत्रसे उठाकर, 'कनिक्रदत्०'इस मंत्रसे विष्णुको 'सद्योजातं०' इन पांच अनुवाकोंसे लिंगको गृहमें प्रवेश करके, पीठिकामें इंद्र आदि नामोंसे आठरत्नोंको डारकर; सप्तधान्य, चांदी, मनसिल इनको डारकर, पायससे लीपकर ॐकारसे अंगन्यास करके, सुवर्णकी शलाकाको मध्यमें करके, शुभलग्नमें हे 'परमेश्वर! प्रतिष्ठितहो' यह कहकर 'अतोदेव०' इस मन्त्रसे विष्णु रुद्र और लिंगका स्थापन करै। फिर चरुहोम, प्राणप्रतिष्ठा, आदि करै। फिर स्थिरअर्चाके अधिवासन में और पहले दिनके कृत्यमें, विशेष है, अन्य सब कर्म उक्त और वक्ष्यमाण चल अर्चाके समान है। इसके अनंतर चल प्रतिष्ठामें अधिवासनके अंतमें परलेदिन वा एकदिनके पक्षमें, 'सद्यः उत्तिष्ठब्रह्मण०' इसमंत्रसे देवको उठाकर, पुरुषसूक्त और उत्तरनारायण इनसे स्तुति करै॥

अथ प्रायः स्थिरचलार्चयोः साधारणप्रयोगः।

प्रतिष्ठांगं परेद्युर्होमं करिष्य इति संकल्प्य चक्षुषी आज्येनेत्यंते स्थाप्यदेवं तन्मंत्रेण घृतपक्वव्रीहिचरुणा दशाहुतिभिरग्निं सोमं धन्वंतरिं कुहूमनुमतिं प्रजापतिं परमेष्ठिनं ब्रह्माणमग्निं सोमम् अग्निमन्नादमग्निमन्नपतिं प्रजापतिं विश्वान्देवान्

सर्वान्देवानाग्निं स्विष्टकृतम् ॥ पूजांगहोमे विष्णुश्चेत्संकर्षणादिद्वादशदेवताः शार्ङ्गिणं श्रियं सरस्वतीं विष्णुं कृसरेणैकैकयाहुत्या विष्णुं षड्वारं कृसरेण ॥ शिवश्चेद्भवं शर्वमीशानं पशुपतिं रुद्रमुग्रं भीमं महांतं कृसरेणैकैकया० भवस्य देवस्य पत्नी-मित्याद्यष्टौ गुडौदनेनैकैकया भवस्य देवस्य सुतमित्यादि ८ हरिद्रौदनेन एकै० रुद्रं सप्तदशवारं शिवं शंकरं सहमानं शितिकंठं कपर्दिनं ताम्रमरुणमपगुरमाणं हिरण्यबाहुं सस्पिंजरं बभ्लुशं हिरण्यमेताः कृसरेणैकैकया० ॥ शेषेण स्विष्ट-कृतमित्यादि ॥ शूर्पे तूष्णीं स्थाप्यदेवतायै चतुर्मुष्टीनग्न्यादिषोडशदेवताभ्यो नाम्ना चतुश्चतुर्मुष्टीन्निरूप्य तथैव प्रोक्ष्य सघृतजले श्रपयित्वा स्रुच्यावदान-धर्मेण स्थाप्यदेवमंत्रेण दशाहुतीर्हुत्वा नामभिर्जुहुयात् ॥ अग्नये स्वाहा ॥ सोमाय० धन्वंतरये० कुह्वै० अनुमत्यै० प्रजापतये० परमेष्ठिने० ब्रह्मणे० अग्नये० सोमाय० अग्नयेन्नादाय० अग्नयेन्नपतये० प्रजापतये० विश्वेभ्यो देवे-भ्यः० सर्वेभ्यो देवेभ्यः० भूर्भुवः स्वरग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥ १६ ॥ इति ॥ सप्त ते अग्ने समिधः सप्तजिह्वाः सप्तऋषयः सप्तधामप्रियाणि ॥ सप्तहोत्राः सप्त-धात्वा यजंति सप्तयोनीरापृणस्वाघृतेन ॥ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथयज्ञैः ॥ घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः संतु यजमानस्य कामा इति मंत्राभ्यां पूर्णाहुतिं कृत्वाचार्यो या ओषधीरिति पुष्पफलसर्वौषधीः समर्प्य संपातोदकं ताम्रपात्रे आदाय देवमंत्रेण शतवारमभिमंत्र्य तेन देवशिरसि सिंचेत् ॥ तत उत्तिष्ठ ब्रह्मण० इति देवमुत्थाप्य विश्वतश्चक्षुरित्युपतिष्ठेत् ॥ एते उत्थापनोपस्थाने चलार्चायामेव ॥ देवं ध्यात्वा जपेत् ब्रह्मणे नमः विष्णवे नमः रुद्राय नमः इंद्रादीनष्टौ० ८ वसुभ्यो० रुद्रेभ्यो० आदित्येभ्यो० अश्विभ्यां० मरु द्भ्यो० कुबेराय० गंगादिमहानदीभ्यो० अग्नीषोमाभ्यां० इंद्राग्निभ्यां० द्यावापृथि-वीभ्यां० धन्वंतरये० सर्वेशाय० विश्वेभ्यो देवेभ्यो० ब्रह्मण इति ॥ ततः संपातो-दकेन यजमानाभिषेकः ॥ देवं ध्यात्वा प्रतितिष्ठ परमेश्वरेति पुष्पांजलिं दत्त्वा सच्चिदानंदं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं स्वायुधाढ्यं निजवाहनाद्युपेतं निजहृ-त्कमलेवस्थितं सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं परमेष्ठ्यसि परमां श्रियं गमयेति मंत्रेण पुष्पांजलावागतं विभाव्यार्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ॥ यथा ॥ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ॥ ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः ॥ ऋग्यजुःसामानि च्छंदांसि ॥ क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता ॥ आं बीजं क्रौं शक्तिः ॥ प्राणप्रतिष्ठायां विनि-योगः ॥ ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि ॥ ऋग्यजुःसामच्छंदोभ्यो० मुखे ॥ प्राणाख्यदेवतायै० हृदि ॥ आं बीजाय नमः गुह्ये ॥ क्रौं शक्त्यै० पादयोः ॥ ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय० ॥ ॐ चं छं जं

झं ञं ईं शब्दस्पर्शरूपरसगंधात्मने ईं शिरसे स्वाहा ॥ ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट् ॥ ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुं॥ ॐ पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानंदात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट् ॥ एवमात्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत् ॥ ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः ॥ ॐ आं ह्रीं हं सः देवस्य जीव इह स्थितः ॥ ॐ आं ह्रीं० हं सः देवस्य सर्वेंद्रियाणि ॥ ॐ आं ह्रीं० हं सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठंतु स्वाहा ॥ अर्चाहृदंगुष्ठं दत्त्वा जपेत् ॥"अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठंतु अस्यै प्राणाश्चरंतु च ॥ अस्यै देवत्वमर्चायै मा महेति च कश्च न ॥"प्रणवेन संनिरुध्य सजीवं ध्यात्वा ध्रुवाद्यौरिति त्र्यृचं जपित्वा कर्णे गायत्रीं देवमंत्रं च जपित्वा पुरुषसूक्तेनोपस्थाय पादनाभिशिरः स्पृष्ट्वा ॥इहैवैधीति त्रिर्जपेत् ॥ ततः कर्ता "स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः ॥ प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत्परिपालय ॥ धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शिवाय नः ॥ सान्निध्यं तु तदा देव स्वार्चायां परिकल्पय ॥ यावच्चंद्रावनीसूर्यास्तिष्ठंत्यप्रतिघातिनः ॥ तावत्त्वयात्र देवेश स्थेयं भक्तानुकंपया ॥ भगवन्देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम् ॥ येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम् ॥ तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधौ भव" इति नमेत् ॥ अथाचार्यः कर्ता वा लिंगमर्चां वा भूः पुरुषमावाहयामि ॥ भुवः पुरुषमावाह० ॥ स्वः पुरुष० ॥ भूर्भुवस्वः पुरुष० ॥ इत्यावाह्य प्रणवेनासनं दत्त्वा दूर्वाश्यामाकविष्णुक्रांतापद्मामिश्रं पाद्यम् ॥ ॐ इमा आपः शिवतमाः पूताः पूततमा मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः ॥ पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवे नम इति पाद्यं भगवान् महादेवो रुद्राय नम इति लिंगे ॥ एवं देवतांतरेषूह्यम् ॥ इमा आपः शिवतमा० आचमनीयास्ताजुषतां प्रतिगृह्य० इत्याचमनम् ॥ इमा आ०अर्घ्यास्ता० इत्यर्घ्यं० पश्चामृतस्नानम् ॥ देवं मंत्रैः संस्नाप्य इदं विष्णुरिति विष्णौ नमो अस्तु नीलग्रीवायेति लिंगे कंकणं विसृज्य वस्त्रं यज्ञोपवीतं च दत्त्वा ॥ " इमे गंधाः शुभा दिव्याः सर्वगन्धैरलंकृताः ॥ पूता ब्रह्म पवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः " ॥ पूता इत्यादिपूर्ववदिति गन्धम् ॥ "इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः ॥" पूता इत्यादि इति मालाः ॥ इमे पुष्पा इति पुष्पाणि॥ वनस्पतिरसोद्भूतो० धूपोयं प्रतिगृह्यताम्॥ "प्रतिगृह्णातु भगवानित्यादि ॥ ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियम् ॥ भास्करः सर्वभूतानां दीपो० ताम् ॥" प्रतिगृह्णातु भगवानिति दीपं दत्त्वा ॥ विष्णौ संकर्षणादिद्वादशनामभिः पुष्पाणि समर्प्य तैरेव तर्पणं कृत्वा पायसगुडौदनचित्रोदनानि

पवित्रं ते विततमिति निवेद्य संकर्षणादिनामभिर्द्वादशगृहासिद्धान्नकृसराहुतीर्हुत्वा कृसरेणैव शार्ङ्गिणे० श्रियै० सरस्वत्यै० विष्णवे० इति हुत्वा ॥ विष्णोर्नुकं० तदस्य प्रियम्० प्रतद्विष्णु० परोमात्रया० विचक्रमे० त्रिर्देवः पृथिवीं० इतिषण्मंत्रैर्जुहुयात् ॥ लिंगे तु दीपांतं कृत्वा भवाय देवाय० शर्वाय ईशानाय देवाय० पशुपतये दे० रुद्राय देवाय० उग्राय दे० भीमाय दे० महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्त्वा तैरेव तर्पणं कृत्वा पवित्रं ते इति पायसं गुडौदनं च निवेद्य भवाय देवाय स्वाहेत्याद्यष्टभिः कृसरं जुहुयात् ॥ तिलमिश्रौदनः कृसरः ॥ भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहेत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं हुत्वा ॥ भवस्य देवस्य सुताय स्वाहेत्याद्यष्टभिर्हरिद्रौदनं हुत्वा त्र्यंबकं० ॥ मानोमहांतं० ॥ मानस्तोके० आरात्ते० विकिरिद्र० सहस्राणि सहस्र० इति द्वादश ऋचः ॥ एतैः कृसरं हुत्वा ॥ शिवाय० शंकराय० सहमानाय० शितिकंठाय० कपर्दिने० ताम्राय० अरुणाय० अपगुरमाणाय० हिरण्यबाहवे० शष्पिंजराय० बभ्लुशाय० हिरण्यायेति द्वादशनामभिर्जुहुयात् स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिंगाय वा बलिं दद्यात् ॥ मंत्रस्तु ॥ "त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे ॥ त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन्प्रतिगृह्णीष्व हव्यम्" ॥ लिंगे तु नारायणपदे रुद्रं शिवमिति वदेत् ॥ अश्वत्थपर्णे भूर्भुवः स्वरोमिति हुतशेषं निधाय प्रदक्षिणीकृत्य ॥ विश्वभुजे सर्वभुजे आत्मने परमात्मने नम इति नत्वाचार्याय द्वादश तिस्र एकां वा गां दत्त्वा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा शतं द्वादश वा विप्रान्भोजयेदिति ॥ प्रासादे नूतने जलाशयोक्तप्रतिष्ठाविधिः कार्यः ॥ तत्र गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादि न कुर्यात् ॥ वारुणहोमस्थाने वास्तुहोमः ॥ इति स्थिरार्चाचलार्चयोः प्रतिष्ठाप्रयोगः ॥

अब प्रायः स्थिर और चल अर्चाके साधारण प्रयोगको कहतेहैं । इसके अनंतर 'प्रतिष्ठाके अंग होमको परले दिन करूंगा' यह संकल्प करके 'चक्षुर्षीआज्येन०' इसके अंतमें; स्थापनके योग्य देवको तिसकेही मंत्रसे घीमें पकाये व्रीहिके चरुसे दश आहुतियोंसे; अग्नि, सोम, धन्वंतरि, कुहू, अनुमति, प्रजापति, परमेष्ठी, ब्रह्मा, अग्नि,सोम, अग्नि, अन्नाद, अग्नि, अन्नपति, प्रजापति, विश्वेदेवा, सबदेवता, अग्निस्विष्टकृत् इनको एक एक आहुति दे । पूजाके अंगहोममें विष्णु होयँ तो, संकर्षण आदि द्वादश (१२) देवता, शार्ङ्गी, श्री, सरस्वती, विष्णु इनको कृसरअन्नकी एक एक आहुति देकर विष्णुका छः वार कृसरसे; शिवजी होयँ तो भव, शर्व, ईशान, पशुपति, रुद्र, उग्र, भीम, महान् इनको कृसरसे एक २ आहुति दे । 'भवस्य देवस्य पत्नीं०' इत्यादि आठको गुडौदनसे, एक एक आहुति दे, 'भवस्य देवस्य सुतं०' इत्यादि आठको हरिद्रौदनसे एक एक आहुति दे । सत्रहवार; शिव, शंकर, सहमान, शितिकंठ, कपर्दी, ताम्र, अरुण, अपगुरमाण, हिरण्यबाहु, सष्पिंजर, बभ्लुश, हिरण्यरेता; इनको कृसरकी एक एक आहुति दे और शेषसे स्विष्टकृत् करै इत्यादि विशेष है । शूर्पमें तूष्णीं स्थापनकेयोग्य देवताके चार मुष्टियोंको अग्नि आदि सोलह देवताओंको नाम लेलेकर चार मुष्टि रखकर तैसेही

प्रोक्षण करके उनको घीसहित जलमें पकाकर स्रुक्‌से दान करता हुआ स्थापन योग्य देवके मंत्रसे दश आहुति होम कर नाम ले २ कर होम करै, कि, 'अग्नये स्वाहा । सोमाय० । धन्वंतरये० । कुह्वै० । अनुमत्यै० । प्रजापतये०। परमेष्ठिने० । ब्रह्मणे०। अग्नये० । सोमाय० । अग्नयेऽन्नादाय० । अग्नयेऽन्नपतये० । प्रजापतये०। विश्वेभ्यो देवेभ्यः०। सर्वेभ्यो देवेभ्यः०। भूर्भुवः स्वरग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । ये सोलह (१६) आहुति दे । फिर "सप्तते अग्नेसमिधः सप्तसप्तजिह्वाः सप्तऋषयः सप्तधाम प्रियाणि सप्त होत्राः सप्तधात्वायजंति सप्तयोनीरापृणस्वाघृतेन स्वाहा । पुनस्त्वादित्यारुद्रावसवः समिंधताम् । पुनर्ब्रह्माणोवसुनीथयज्ञैः ॥ घृतेनत्वंतन्वं बर्द्धयस्वसत्याः संतु यजमानस्य कामाः" इन दो मंत्रोंसे पूर्णाहुति करके आचार्य; "याओषधीः०" इस मंत्रसे पुष्प, फल, सर्वौषधियोंका समर्पण करके संपातके जलको तांबेके पात्रमें लेकर । देवके मंत्रसे उसका सौवार अभिमंत्रण करके, उससे देवके शिरपर सेचन करै । फिर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मण०' इस मन्त्रसे देवको उठाकर 'विश्वतश्चक्षुः०' इस मन्त्रसे उपस्थान करै । ये उत्थापन और उपस्थान चल अर्चामें ही होते हैं। इस प्रकार ध्यान करके जपै; कि, "ब्रह्मणे नमः । विष्णवे० । रुद्राय० । इंद्राद्यष्टभ्यो० । वसुभ्यो० । रुद्रेभ्यो० । आदित्येभ्यो० । अश्विभ्यां० । मरुद्भ्यो० । कुबेराय० । गंगादिमहानदीभ्यो० । अग्नीषोमाभ्यां० । इंद्राग्निभ्यां० । द्यावापृथिवीभ्यां० । धन्वंतरये० । सर्वेशाय० । विश्वेभ्यो देवेभ्यो० । ब्रह्मणे नमः ।" इति । फिर संपातके जलसे यजमानका अभिषेक करै । देवका ध्यान कर 'हे परमेश्वर ! प्रतिष्ठित हो' यह कहकर पुष्पांजलि देकर; "सच्चिदानंदं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं स्वायुधाढ्यं निजवाहनाद्युपेतं निजहृत्कमले स्थितं सर्वसाक्षिणमणीयांसं परमेष्ठ्यसि परमां श्रियं गम" इस मन्त्रसे पुष्पांजलिमें आयेहुये देवकी भावना करके अर्चामें रखकर प्राणप्रतिष्ठा करै । जैसे इस प्राणप्रतिष्ठाके मन्त्रके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ऋषि हैं । ऋक्, यजुः, साम छन्दहैं । क्रियामय वपुः (देह) है । प्राणनामकी देवता है । आं बीज है; क्रौं शक्ति है । प्राणप्रतिष्ठामें विनियोग है । 'ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः' इस मन्त्रसे शिरमें; 'ऋग्यजुःसामच्छंदोभ्यो नमः' इससे मुखमें; 'प्राणाख्यदेवतायै नमः' इससे हृदयमें; 'आं बीजाय नमः' इससे गुह्यमें; 'क्रौं शक्त्यै नमः' इससे पादोंमें; स्पर्श करै । "ॐ कंखंगंघंङंअं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः, ॐ चंछंजंझंञंइं शब्दस्पर्शरूपरसगंधात्मने ईं शिरसे स्वाहा । ॐटंठंडंढंणंउं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट् । ॐतंथंदंधंनंएं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम् । ॐ पंफंबंभंमंओं वचनादानविहरणोत्सर्गात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ यंरंलंवंशंषंसंहंक्षंत्रंअं मनोबुद्ध्यहंकारात्मने अः अस्त्राय फट्" इसप्रकार अपने शरीरमें और देवमें करके देवका स्पर्श करके जपै कि, "ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणा इह प्राणाः ॐ आं ह्रीं० हंसः देवस्य जीवः इह स्थितः ॐ आं ह्रीं० हंसः देवस्य सर्वेंद्रियाणि ॐ आं ह्रीं० देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठंतु स्वाहा" फिर अर्चा (देव) के हृदयपर अंगूठा रखकर जपै कि, "अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठंतु अस्यै प्राणाःक्षरंतु । च अस्यै देवत्वमर्चायैमामहेति च कश्चन" ॐकारसे निरोध करके जीवसहित देवका ध्यान करके 'ध्रुवाद्यौः०' इन तीन ऋचाओंको जपकर कर्णमें गायत्री और देवमंत्रको जपकर पुरुषसूक्तसे स्तुति करके देवके; पाद, नाभि, शिरका स्पर्श करक 'इहैवैधि' इस मंत्रको तीन वार जपै । फिर कर्ता यह कहै कि,

हे देवदेवेश ! आपका स्वागत है मेरे भाग्यसे तुम यहां आये हो, तुम मुझे प्राकृत न देखकर बालकके समान पालना करो । और धर्म, अर्थ, काम, की सिद्धिके लिये, आप हमारे कल्याणके लिये स्थिर हो और हे देव ! इस अर्चामें अपनी संनिधि करो। इतने सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, यथार्थ रीतिसे टिकते हैं तबतक आपभी इस मूर्तिमें भक्तोंपर दया करके टिको । हे भगवन्! हे देवदेवेश ! तुम सब देहधारियोंके पिता हो; हे भगवन् जिस रूपसे तुमसे चराचर व्याप्त (पूर्ण) है तिसी रूपसे हे देवेश ! अपनी अर्चामें संनिधिको प्राप्त हो । इन मंत्रोंको पढकर नमस्कार करै । इसके अनंतर आचार्य वा कर्ता लिंग का वा अर्चाका 'भूः पुरुषमावाहयामि ० भुवः पुरुषमा० । स्वः पुरुषमा० । भूर्भुवः स्वः पुरुषमा० । इन मंत्रोंसे आवाहन करके; ॐकारसे आसन देकर; दूर्वा, श्यामाक, पद्म इनसे मिले पाद्यको; इस मन्त्रसे दे । कि, "ॐ इमा आपः शिवतमाः पूततमा मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः । पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भवान् महाविष्णुर्विष्णवे नम इति पाद्यं भगवान् महादेवो रुद्राय नमः" इससे लिंगको पाद्य दे। इसी प्रकार अन्यदेवतामेंभी समझना। "ॐ इमा आपः शिवतमा० आचमनीयास्तेजुषतां प्रति०" इससे आचमन 'इमा आप अर्घ्यास्ते०' इससे अर्घ्य दे । पंचामृतस्नान देवके मंत्रोंसे कराकर । 'इदं विष्णुर्मे' इस मन्त्रसे विष्णु में, 'नमोस्तु नीलग्रीवाय०' इससे लिंगमें, कंकणका विसर्जन करके वस्त्र, यज्ञोपवीत, देकर, "इमे गंधाः शुभा दिव्याः सर्वगंधैरलंकृताः ।। पूताः ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः" पूता, अर्थात् ये गंध शुभ सब गंधोंसे शोभित, पवित्र वेद और सूर्य किरणोंसे पवित्र हैं इत्यादि पढकर पूर्वके समान गंध दे । "इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः पूता०" इससे मालाको दे । "इमे पुष्पा०" इससे पुष्पको दे । "वनस्पतिरसोद्भूतो० । धूपोयं प्रतिगृह्यताम् । प्रतिगृह्णातु भगवान्" इससे धूपको दे । "ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियः । प्रभाकरः स भूतानां दीपोयं० तं प्रतिगृह्णातु भवान्" इससे दीपकको देकर विष्णुको संकर्षण आदि द्वादश नामोंसे पुष्पोंका समर्पण करके उन नामोंसे ही तर्पण करके पायस, गुडौदन, चित्रौदन, इनको "पवित्रं ते विततं०" इस मन्त्रसे निवेदन करके, संकर्षण आदि द्वादश नामोंसे घरमें पकाये अन्न कृसर आदिसे बारह आहुति होम कर कृसर अन्नसे ही "शार्ङ्गिणे नमः स्वाहा । श्रियै० । सरस्वत्यै० । विष्णवे० ।' ये आहुति होम कर; 'विष्णोर्नुकं० । तदस्यप्रि० । प्रतद्विष्णु० । परोमात्र० । विचक्र० । त्रिर्देवः । पृ० । " इन छः मन्त्रोंसे होम करै । लिंगप्रतिष्ठामें तो दीपकदानपर्यंत क्रम करके 'भवाय देवाय० । शर्वाय देवाय० । ईशानाय देवाय० । पशुपतये देवाय० । रुद्राय देवाय० । उग्रायदेवाय०। भीमाय देवाय० । महादेवाय नमः ।' इन मन्त्रोंसे पुष्पोंको देकर और इनसेही तर्पणको करके,'पवित्रं ते० ।' इससे पायस और गुडौदनका निवेदन करके, 'भवायस्वाहा' इत्यादि आठमंत्रोंसे कृसरका होम करै । तिल मिले ओदनको कृसर कहते हैं । 'भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' इत्यादि आठ आहुतियोंसे गुडौदनका होम करके 'भवस्य देवस्य सुताय स्वाहा' इत्यादि आठ आहुतियोंसे हरिद्रौदनका होम करके "त्र्यंबकं० । मानोमहा० । मानस्तो०। आरात्ते०। विकिरि०। सहस्राणि सहस्र०।" इत्यादि द्वादशमन्त्रोंसे कृसरका होम करके; "शिवाय० । शंकराय० । सहमानाय० । शितिकंठाय० । कपर्दिने० । ताम्राय० । अरुणाय० । अपगुरमाणाय० । हिरण्यबाहव । सस्पिंजराय० । बभ्लुशाय० । हिरण्याय० ।" इन द्वादश नामोंसे होम करै। स्विष्टकृत् आदि होमके

शेषको समाप्त करके पूर्वोक्त संपूर्ण हवियोंसे, विष्णुको वा लिंगको, बलि दे । मन्त्र तो यह है कि, आप एक आद्य पुरातन पुरुष नारायणका हम पूजन करते हैं, तुमही करने योग्य यज्ञ हो, तुम अपनी आत्मासे आत्मामें हव्य (देवअन्न) को ग्रहण करो । लिंगम नारायणपदके स्थानमें रुद्र, शिव, पदको कहै । पीपलके पत्तेपर 'भूर्भुवःस्वरोम्०' इस मंत्रसे होमके शेषको रखकर प्रदक्षिणा करके "विश्वभुजे सर्वभुजे आत्मने परमात्मने नमः" इससे नमस्कार करके आचार्यको बारह, तीन वा एक, गौ देकर ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर सौ वा द्वादश ब्राह्मणोंको भोजन करावै इति । प्रासादमें, नवीनजलाशयमें, उक्त प्रतिष्ठाकीही विधि करनी । उसमें गौका उत्तारण, पात्रीप्रक्षेप, आदिको न करै । वारुणहोमके स्थानमें वास्तुहोम करै । यह स्थिर और चल अर्चाओंकी प्रतिष्ठाका प्रयोग समाप्त हुआ ॥

अथातोपि संक्षिप्त एकाध्वरविधानेन चलप्रतिष्ठाप्रयोगः ।

संकल्पादिनांदीश्राद्धांतं प्राग्वत् ॥ एकमाचार्यं वृणुयात् ॥ आचार्योऽमुकदेवप्रतिष्ठाकर्म करिष्ये इत्यादिसर्षपविकिरणांते ॥ सर्वतोभद्रमंडलेप्राग्वन्नामभिर्ब्रह्मादिमंडलदेवता आवाह्य संपूज्य यथागृह्यमग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वादध्यात् ॥ आज्यभागांते स्थाप्यदेवतां सहस्रमष्टोत्तरशतं वा समिदाज्यचरुतिलद्रव्यैर्ब्रह्मादिमण्डलदेवताः प्रत्येकं दशदश तिलाज्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि ॥ तूष्णीं निर्वापप्रोक्षणे आज्यभागांते तडागनदीतीरगोष्ठचत्वरपर्वतगजाश्वह्रदवल्मीकसंगमेति दशमृद्भिरष्टवारं देवं संस्नाप्य पञ्चगव्यैः क्रमेण स्थापयित्वा दूर्वासिद्धार्थपल्लवोपेतैरष्टकलशैरापोहिष्ठादिमन्त्रैरभिषिच्याग्न्युत्तारणं कुर्यात ॥ सर्वतोभद्रपीठे देवमुपवेश्य नाम्ना वस्त्रगन्धधूपादि दत्त्वाष्टदिक्षु पल्लवादियुतोदकुंभानष्टौ दीपांश्च संस्थाप्य प्राग्वन्नेत्रोन्मीलनं चित्रान्नेन बलिं दत्त्वा पुरुषसूक्तेन स्तुत्वोक्तद्रव्यचतुष्टयं स्थाप्यदेवमंत्रेण हुत्वा एकैकद्रव्यहोमांते देवं स्पृशेत् आज्यहोमे कुंभे संपातान् क्षिपेत ॥ मंडलदेवताभ्यो हुत्वा होमशेषं समाप्य पूर्णाहुतिं कुर्यात् ॥ ततः पूर्वोक्तरीत्या सूक्तन्यासावाहनप्राणप्रतिष्ठांतं कृत्वा इहैवैधीति त्र्यृचं पुरुषसूक्तं च जपित्वा मूलमंत्रादिनावाहनादिपंचामृतस्नानांते संपातोदकैरिमा आपः शिवतमा इत्यादिनाभिषेकः॥ वस्त्रादिनैवेद्यांतं प्राग्वत् ॥ तांबूलफलदक्षिणानीराजननमस्कारप्रदक्षिणादि विधाय ॥ पुष्पांजलिं दत्त्वा साचार्यः कर्ता देवं नत्वा क्षमाप्याचार्यदक्षिणांतेऽष्टकुंभोदकैर्यजमानाभिषेकः ॥ विष्णुं स्मृत्वा कर्मेश्वरेर्पयेदिति संक्षेपः ॥

अब इससेभी संक्षेप विधिसे एकयज्ञकी विधिसे चलप्रतिष्ठाके प्रयोगको कहते हैं। कि, संकल्पसे नांदीश्राद्धपर्यंत कर्म पूर्वके समान है । एक आचार्यका ही वरण करै । आचार्य 'अमुकदेवकी प्रतिष्ठाके कर्मको करता हूँ' इत्यादिसे सर्षपविकिरणपर्यंतको करके, सर्वतोभद्रमंडलमें पूर्वके समान नाममंत्रोंसे मंडलदेवताओंका आवाहन करके; पूजन करके; यथायोग्य गृह्यअग्निका स्थापन करके अन्वाधान करै । आज्यभागके अन्तमें स्थापनके योग्य देवताको सहस्र वा अष्टोत्तरशत समिध, घी, चरु, तिल, इन द्रव्योंसे और ब्रह्मा आदि मंडलदेवताओंका

प्रत्येक दश २ तिल घीकी आहुति दे। शेषेण इत्यादिसे, तूष्णीं निर्वाप, प्रोक्षण करै आज्यभागके अन्तमें तालाब, नदीतीर, गोष्ठ, चौराहा, पर्वत, गजस्थान, अश्वस्थान, कुंड, वमी, संगम इन दश मिट्टियोंसे आठवार देवको स्नान कराकर; दूर्वा, सरसों, पंचपल्लव इनसे युक्त आठ कलशोंसे; 'आपोहिष्ठा०' इत्यादि मन्त्र पढकर अभिषेक करके अग्न्युत्तारणको करै। पश्चात् सर्वतोभद्रके पीठपर देवको बैठाकर नाममंत्रसे गंध, धूप आदि देकर आठों दिशाओंमें पंचपल्लवआदिसे युक्त आठ जलके घटोंको, स्थापन करके पूर्वके समान नेत्रोंका उन्मीलन करे। और चित्रान्नसे वलि, देकर पुरुषसूक्तसे स्तुति करके पूर्वोक्त चारद्रव्योंका स्थापन करके देवमंत्रसे होम करके एक २ द्रव्यका होमके अन्तमें देवका स्पर्श करै। आज्यके होममें कुंभमें संपात डारै। मंडलदेवताओंके निमित्त होम करके होमके शेषको समाप्त करके पूर्णाहुति करै। पश्चात् पूर्वोक्त रीतिसे सूक्तन्यास, आवाहन, प्राणप्रतिष्ठापर्यंत कर्मको करके 'इहैवैधि०' इन तीन ऋचाओंको और पुरुषसूक्तको जप कर मूल मन्त्र आदिसे आवाहन आदि और पंचामृत स्नानके अन्तमें संपातके जलोंसे 'इमा आपः शिवतमा:०' इत्यादि मन्त्रोंसे अभिषेक करै। और वस्त्र आदि नैवेद्यपर्यंत कर्म पूर्वके समान करै। तांबूल, फल, दक्षिणा, नीराजन, नमस्कार, प्रदक्षिणा आदिको करके पुष्पांजलि देकर आचार्यसहित यजमान देवको नमस्कार करके क्षमा कराकर आचार्यकी दक्षिणाके अन्तमें आठ कुंभोंके जलसे यजमानका अभिषेक करै। विष्णुका स्मरण करके ईश्वरको कर्मका समर्पण करै, यह संक्षेप है॥

अथ पुनरर्चानिमित्तानि पुनः प्रतिष्ठा।

मद्यचांडालस्पृष्टा वह्निदग्धा विप्ररक्तदूषिता शवपापिस्पृष्टा च प्रतिमा पुनः संस्कार्या॥ खंडिते स्फुटिते स्थानभ्रंशे पूजनाभावेश्वगर्दभादिस्पर्शे पतितरजस्वलाचोरैः स्पर्शे च पुनः प्रतिष्ठा॥ खंडितां भग्नां विधिनोद्धृत्यान्यां स्थाप्यार्चाया भंगचौर्यादौ तद्दिने उपवासः॥ ताम्रादिधातुमूर्तीनां चोरचांडालादिस्पर्शे ताम्रादिधातूक्तशुद्धिं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठा॥ पूर्वः प्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वकमेकरात्रमेकमासं द्विमासं वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्वलाद्युपस्पर्शने वा जलाधिवासं कृत्वा कलशेन स्नपयेत्॥ ततः पंचगव्येन स्नपयित्वाऽष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिसंख्यं वा कलशैः शुद्धोदकेन पुरुषसूक्तेन स्नपयेत्॥ गंधपुष्पादिना पूजयित्वा गुडौदनं निवेदयेदिति शुद्धिः॥ बुद्धिपूर्वं पूजनविच्छेदे शूद्रस्पर्शादौ च पुनः प्रतिष्ठयैव शुद्धिः॥ अन्ये तु॥ एकाहपूजाविहतौ कुर्याद्द्विगुणमर्चनम्॥ द्विरात्रे तु महापूजां संप्रोक्षणमतः परम्॥ मासादूर्ध्वं पूजाविहतौ पुनः प्रतिष्ठा प्रोक्षणविधिर्वा कार्य इत्याहुः॥ पुनः प्रतिष्ठादिमलमासशुक्रास्तादावपि कार्यम्॥

अब पुनः प्रतिष्ठाको कहते हैं। मदिरा, चांडालका स्पर्श हो जाय; अग्निसे दग्ध, ब्राह्मणके रक्तसे दूषित, पापीने स्पर्श किया हो ऐसी प्रतिमाका पुनः संस्कार करै। खंडित होनेमें, फूटनेमें, स्थानसे डिगनेमें, पूजनके अभावमें, श्वा, गर्दभ, आदिके स्पर्शमें, पतित, रजस्वला, चोर

इनके स्पर्शमें पुनः प्रतिष्ठा होती है। खंडित और भग्न प्रतिमाको विधिसे उखाडकर अन्य प्रतिमाका स्थापन करके अर्चाके भंगमें और चोरी आदिमें उस दिन उपवास करै। तांबे आदि धातुओंकी मूर्तियोंको चांडाल आदिका स्पर्श होजाय तो ताम्र आदि धातुओंकी पूर्वोक्त शुद्धिको करके पुनः प्रतिष्ठा करै। पहिले प्रतिष्ठा कीहुई मूर्तिका अज्ञानसे; एकरात्र, एकमास दोमासतक, पूजाके विच्छेदमें, वा शूद्र, रजस्वला आदिके स्पर्शमें जलमें अधिवासको करके कलशसे स्नान करावै। फिर पंचगव्यसे स्नान कराकर, आठसहस्र, आठसौ, वा अठाईस कलशोंसे शुद्ध जलसे पुरुषसूक्त पढकर स्नान करावै। गंध, पुष्प आदिसे पूजकर गुडौदनका निवेदन करै; यह शुद्धि है। जानकर पूजाका विच्छेद होनेमें और शूद्रके स्पर्श आदिमें पुनः प्रतिष्ठा करना ही शुद्धि है। अन्य तो यह कहते हैं। कि, एकदिन पूजाके अभावमें दूना पूजन करै। दो रात्रिके अभावमें महापूजाको करै फिर संप्रोक्षण करै। माससे ऊपरतक पूजाका भंग हो जाय तो, पुनःप्रतिष्ठा वा प्रोक्षणविधिको करै। पुनः प्रतिष्ठा आदिको मलमास, शुक्रास्त आदिमें भी करै॥

अथ देवालयादिभंगे विचारः।

देवालयवापीकूपतडागभेदने आरामसेतुसभाभंगे इदं विष्णुर्मानस्तोके विष्णोः कर्माणि पादोस्येति चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति॥ अथ प्रोक्षणाविधिः॥ देवमुद्वास्य पंचवारं मृज्जलैः प्रक्षाल्य पंचगव्यैः स्नापयित्वा कुशोदकैर्विशोध्य मूलेनाष्टोत्तरशतवारं प्रोक्ष्य मूलेन मूर्धादिपीठांतं संस्पृश्य तत्त्वन्यासलिपिन्यासमंत्रन्यासपूर्वकं प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा महापूजां कुर्यात्॥ पूजाहीनादिषु ह्येष संप्रोक्षणविधिः स्मृतः॥

देवमंदिर, वापी, कूप, तालाव, इनके भेदनमें और आराम, सेतु, सभा इनके भंगमें "इदं विष्णु०। मानस्तोके०। विष्णो कर्माणि०। पादोस्य०"। इत्यादि मंत्रोंसे चार आहुति होमकर ब्राह्मणोंको भोजन करावै इति। अब प्रोक्षणविधिको कहतेहैं देवका उद्वासन करके पांचबार मिट्टी जलसे प्रक्षालन करके; पंचगव्योंसे स्नान कराकर;कुशाके जलोंसे शोधन करके;मूलमंत्रसे अष्टोत्तरशत बार प्रोक्षण करके; मूलमंत्रसे मस्तकसे लेकर पीठपर्यंत स्पर्श करके; तत्त्वन्यास, लिपिन्यास, मन्त्रन्यासपूर्वक प्राणप्रतिष्ठाको करके; महापूजाको करै। पूजाहीन आदिमें यह संप्रोक्षण विधि कही है॥

अथ जीर्णोद्धारविधिः।

स च लिंगादौ भग्ने दग्धे वा कार्यः॥ अयं चानादिसिद्धप्रतिष्ठितलिंगादौ भंगादिदोषेपि न कार्यः॥ तत्र तु महाभिषेकः कार्यः॥ कर्तामुकदेवस्य जीर्णोद्धारं करिष्ये इत्युक्त्वा नांदीश्राद्धांतं कृत्वाचार्यं वृत्वा पीठे मण्डलदेवता आवाह्य लिंगे ॐ व्यापकेश्वरहृदयाय नमः॥ ॐ व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहेत्यादिषडंगं कृत्वा देवतांतरे मूलमंत्रेण षडंगं कृत्वार्चयेत्॥ अघोरेति मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वाग्निं प्रतिष्ठाप्य॥ अघोरेण घृताक्तसर्षपैः॥ सहस्रं हुत्वेंद्रादिभ्यो नाम्ना बलिं दत्त्वा जीर्णं

देवं प्रणवेन संपूज्य साज्यतिलैर्मंडलदेवताहोमं कृत्वा प्रार्थयेत् ॥ "जीर्णभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम् ॥ अस्योद्धारे कृते शांतिः शास्त्रेस्मिन्कथिता त्वया ॥ जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम् ॥ तदधस्तिष्ठतो देव प्रहरामि तवाज्ञया ॥" क्षीराज्यमधुदूर्वासमिद्भिर्देवमंत्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा तिलैः सहस्रं हुत्वा पायसेन शतं हुत्वा लिंगं प्रार्थयेत् ॥ लिंगरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम् ॥ यायास्त्वं संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ १ ॥ अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता ॥ शिवेन सह संतिष्ठेति मंत्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत् ॥ अस्त्रमंत्रितेन खनित्रेण खात्वा लिंगमादाय वामदेवमंत्रेण नद्यादौ क्षिपेत् ॥ मूर्तिं प्रणवेन क्षिपेत् ॥ दारुजं मधुनाभ्यज्याघोरेण दहेत् ॥ हेमादिमयं योग्यं कृत्वा तत्रैव स्थापयेत् ॥ ततः शांत्यर्थमघोरेण घृतक्षीरमध्वक्तैस्तिलैः सहस्रं हुत्वा प्रार्थयेत् ॥ "भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ॥ जीर्णलिंगसमुद्धारः कृतस्ते चाज्ञया मया ॥ अग्निना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले ॥ प्रायश्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम् ॥ ज्ञानतोज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि ॥ तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥" ॥ अथ यजमानः प्रार्थयेत् ॥ "गोविप्रशिल्पिभूपानामाचार्यस्य च यज्वनः ॥ शांतिर्भवतु देवेश अच्छिद्रं जायतामिदम् ॥" मूर्तौ तु विशेषः ॥ "त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्मापयत्यसौ ॥ वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥ वस क्लेशं सहित्वेह मूर्तिं वै तव पूर्ववत् ॥ यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वांछितम् ॥" ततो नवां मूर्तिं लिंगं वा कृत्वोक्तविधिना प्रतिष्ठाकालानपेक्षया मासादर्वाक्स्थापयेत् ॥ इति जीर्णोद्धारः ॥

अब जीर्णोद्धारको कहते हैं। वह लिंगआदिके भंग वा दग्ध होनेपर करना। और यह अनादिसिद्ध, प्रतिष्ठित, लिंग आदिमें भंग आदिदोष होनेपर भी न करना। वहां तो केवल महाभिषेक करै। यजमान; 'अमुकदेवके जीर्णोद्धारको करता हूं' यह कहकर नांदीश्राद्धपर्यंत कर्म करके; आचार्यका वरण करके; पीठपर मण्डलदेवताओंका आवाहन करके; लिंगमें "व्यापकेश्वर हृदयाय नमः। व्यापकेश्वर शिरसे स्वाहा।" इत्यादि षडंगन्यास करके; अन्य-देवताओंमें मूलमंत्रसे षडंगन्यास करके पूजन करै। पश्चात् अष्टोत्तरशत वार अघोर मंत्रको जपकर; अग्निस्थापन करके; अघोर मन्त्रसे घीमिली सर्षपकी सहस्र आहुति देकर; इंद्र आदिको नाममंत्रोंसे बलि देकर; जीर्णदेवताकी ॐ कारसे पूजा करके, घीमिले तिलोंसे मण्डलदेवताओंके होमको करके; प्रार्थना करै। कि, जीर्ण और भग्न यह आपका देह, मनुष्योंको सब दोषोंका दाता है इसके उद्धार करनेमें आपने इस शास्त्रमें शांति कही है और जीर्णोद्धारकी विधि पुर और देशको हितकारी है, उसको मानकर हे देव! आपकी आज्ञासे प्रहार करता हूं। दूध, घी, मधु, दूर्वा, समिध, इनकी देवमंत्रसे अष्टोत्तर शत (१०८) आहुति होमकर; तिलोंसे सहस्र आहुति देकर; पायसकी सौ (१००) आहुति देकर; लिंगकी प्रार्थना करै। कि, लिंगरूपमें आकर जिससे लिंग अधिष्ठित था शिवजीकी आज्ञासे तुम प्रमि-

तस्थानमें जाओ और इस स्थानमें जो विद्या सब विद्याके ईश्वरोंसे युक्त है वह शिवके सहित टिको। इस मन्त्रसे अभिमंत्रितकिये जलसे अभिषेक करके विसर्जन करै। अस्त्रसे अभिमंत्रित खनित्र (फावला) से खोदकर लिंगको लेकर वामदेवके मन्त्रसे नदी आदिमें डारदे। मूर्तिको ॐकारसे डारै। दारुकी मूर्तिका मधु लगाकर अघोर मन्त्रसे दाह करै। सुवर्ण आदिकको योग्य करके वहां ही स्थापन करदे। फिर शांतिके लिये; अघोर मन्त्रसे घृत, दूध, मधु मिले तिलोंसे सहस्र आहुति देकर प्रार्थना करै। कि, हेभगवन्! हेभूतभव्यकेईश! हेलोकनाथ! हेजगत्पते! जीर्णलिंगका समुद्धार आज आपकी आज्ञासे मैं किया है; काष्ठके लिंगको अग्निसे दग्ध किया; पत्थरको जलमें फेंक दिया। हे देवेश! प्रायश्चित्तके लिये अघोरमंत्रसे तर्पण किया ज्ञानसे वा अज्ञानसे यदि यथोक्त न किया होय तौ वह सब हे महेश्वर! आपकी प्रसन्नतासे पूर्ण हो। फिर यजमान प्रार्थना करै। कि, गो, ब्राह्मण, शिल्पी, राजा, आचार्य, यजमान, इन सबके शांति हो और देवताके सब ये कर्म अच्छिद्रहों। मूर्तिमें तो यह विशेष है, कि, तुम्हारी प्रसन्नतासे इतने निर्विघ्न देहको यह बनावै तबतक हे सुरश्रेष्ठ! छोटेसे घरमें तुम वास करो क्लेशको सहकर इसमें बसो; इतने आपकी मूर्ति पूर्वके समान हो और इतने आपका भक्त बनवाता है तबतक उसके वांछितको करो॥ फिर नवीन मूर्ति, वा लिंगको बनाकर विधिसे प्रतिष्ठा कालके मूहूर्तके विना ही माससे पहिले स्थापन, करै॥ यह जीर्णोद्धार समाप्त हुआ॥

अथ प्रतिमाभंगादिशांतिः ।

प्रतिमाशिवलिंगप्रासादकलशादिभंगे स्वामिनो मरणं भवेत्॥ तत्र शांतिः॥ "कुंडं कृत्वा विधानेन ततो होमं समाचरेत्॥ चरुं च यमदैवत्यं साधयित्वा विधानतः॥ दधिक्षौद्रघृताक्तानामश्वत्थसमिधां ततः॥ जुहुयादष्टशतं प्राज्ञ इमा रुद्रेति मंत्रवित्॥ माषैर्मुद्गैस्तिलैश्चैव घृतेन मधुनापि च॥ एभिः पंचसहस्राणि शक्तिबीजेन होमयेत्॥" शक्तिबीजं ह्रीं बीजम्॥ "भूमिं धेनुमनड्वाहं स्वर्णं धान्यं सदक्षिणम्॥ दत्त्वाथ पंचगव्येन स्नायाद्देवालये द्विजः॥ बलिं दद्याद्यमायाथ कृसरैः पायसैस्तथा॥ ईशानाय बलिं दत्त्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः"॥ अत्र मूलं कमलाकरे॥

अब प्रतिमाभंग आदिकी शांतिको कहतेहैं। प्रतिमा, शिवलिंग, प्रासाद, कलश आदिके भंगमें स्वामीका मरण होता है। उसकी शांति यह है कि, कुंड बनाकर, विधिसे उसमें होम करै, यमदेवताके लिये चरु, विधिसे बनाकर दही, सहत, घृत, मिली पीपलकी समिधोंसे बुद्धिमान्, मंत्रका ज्ञाता, "इमा रुद्रा०" इस मन्त्रसे आठसौ (८००) आहुति दे। और माष, मूंग, तिल, घी, मधु इनकी पांचसहस्र आहुति शक्तिके बीजसे दे। शक्ति बीज 'ह्रीं' है भूमि, गौ, बैल, सुवर्ण, धान्य इनको दक्षिणासहित देकर पंचगव्यसे देवालयमें द्विज स्नान करै और यमको पायस और कृसर की बलि दे। ईशानको बलि देकर मनुष्य कृतकृत्य होताहै। इसमें मूल कमलाकरमें लिखा है॥

अथ पुष्पे ग्राह्याग्राह्यविधिः ।

"अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जंतुवर्जितैः ॥ आत्मारामोद्भवैर्मुख्यैर्भक्त्या संपूजयेत्सुरान् ॥ त्यजेत्कीटावपन्नानि शीर्णपर्युषितानि च ॥ स्वयं पतितपुष्पाणि मलाद्युपहतानि च ॥ मुकुलैर्नार्चयेद्देवमपक्वैः कृमियुक्फलैः ॥ पुष्पाभावे पत्रपूजा पत्रालाभे फलैरपि ॥ निवेदयेत्फलालाभे तृणगुल्मौषधीरपि ॥ समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ॥ शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन्पतत्यधः ॥"लक्षपुष्पार्चनं क्रयक्रीतैरपि ॥ केचित्तु "धर्मार्जितधनक्रीतैर्यः कुर्यात्केशवार्चनम् ॥ न पर्युषितदोषोस्ति मालाकारगृहेषु च" इत्याद्युक्तेर्मालाकारानीतैः क्रयक्रीतैरपि पुष्पपत्रैः पूजयंति ॥ नित्यपूजार्थं परोपवनादेरपि पुष्पादिग्रहे चौर्यदोषो न ॥ पूजार्थं पुष्पादि न याचेत् ॥ "समित्पुष्पकुशादीनि वहंतं नाभिवादयेत् ॥ तद्धारी चैव नान्यान्हि निर्माल्यं तद्भवेत्तयोः ॥" देवोपरि धृतं वामहस्तेधोवस्त्रे च धृतं जलेंतः क्षालितं च पुष्पं निर्माल्यम् ॥ "वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम् ॥ न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं तीर्थजं जलम् ॥ प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ॥ नैव पर्युषितं पद्मं तुलसीविल्वपत्रकम् ॥ कुंदं च दमनं चैवागस्त्यं च कलिका तथा ॥" विल्वादेरपर्युषितत्वादिनसंख्या ॥ बिल्वः ३० अपामार्गः ३ जाती १ तुलसी ६ शमी ७ शतावरी ११ केतकी ४ भृंगराजः ९ दूर्वा ८ मंदारः १ पद्मं १ नागकेसरः २ दर्भाः ३० अगस्त्यः ३ तिलः १ तगरः ६ पलाशः ६ कह्लारं ११ मल्लिका ४ चंपकः ९ करवीरं ८ कुंभी १ दमनः १ मरुबकः २ एतेषामेतद्दिनोत्तरं पर्युषितत्वम् ॥ तुलसीग्रहणकालः ॥ "वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु ॥ पर्वद्वये च संक्रांतौ द्वादश्यां सूतकद्वये॥ तुलसीं ये विचिन्वंति ते छिंदंति हरेः शिरः॥ नैव च्छिन्द्याद्रवौ दूर्वां तुलसीं निशि संध्ययोः ॥ धात्रीपत्रं कार्तिके च पुण्यार्थी मतिमान्नरः ॥ द्वादश्यां च दिवा स्वापस्तुलस्यवचयस्तथा ॥ विष्णोश्चैव दिवा स्नानं वर्जनीयं सदा बुधैः॥अत्रदिवानिषेधाद्रात्रौ स्नानादिषोडपचारैः पूजा कार्या॥ दिवा तु गंधादिपुष्पांजल्यंता एवोपचारा इति कमलाकराह्निके ॥" विष्णोर्द्वादश्यां निर्माल्यापनयमपि न कार्यमिति तंत्रांतरे स्मर्यते ॥ एतदपवादः पुरुषार्थचिंतामणौ नारदीये ॥ "पंचामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम् ॥ द्वादश्यां पयसास्नाप्य हरिसायुज्यमश्नुते" इति ॥ "देवार्थे तुलसीछेदो होमार्थे समिधां तथा ॥ इंदुक्षये न दुष्येत गवार्थं तु तृणस्य च॥"तुलसीग्रहणमंत्रः॥ "तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये ॥ केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥" जातिमल्लिकाकरवीराशोकोत्पलचंपकबकुलबिल्वशमीकुशा एतानि सर्वदेवानां विहितानि ॥ अथ विहितप्रतिषिद्धत्वाद्वैकल्पिकानि ॥ पाटला शमीपत्रं च दुर्गायाः ॥ कुन्द-

पलाशबकुलदूर्वाः शिवस्य ॥ कुमुदतगरे सूर्यस्य ॥ तुलसीभृंगराजतमालपत्राणि शिवदुर्गयोः ॥ अगस्ती माधवी लता लोध्रपुष्प विष्णुशिवयोः ॥ धत्तूरमंदारौ विष्णुसूर्ययोः ॥ इति विकल्पितानि ॥ अथ विष्णोः प्रियाणि ॥ मालतीजातीकेतकीमल्लिकाशोकचंपकपुन्नागबकुलोत्पलकुंदकरवीरपाटलातगरपुष्पाणि ॥ अन्यानि च सुरभीणि विष्णोः प्रियाणि ॥ अपामार्गभृंगराजखदिरशमीदूर्वाकुशदमनकबिल्वतुलसीपत्राण्युत्तरोत्तराधिकप्रियाणि ॥ तुलसी सर्वाधिका ॥ जातिपुष्पसहस्रेण मालार्पणे कल्पकोटिसहस्रं विष्णुपुरे वासः ॥ आम्रमंजर्या पूजने गोकोटिदानफलम् ॥ ॥ अथ शिवस्य ॥ " चतुर्णां पुष्पजातीनां गन्धमाघ्राति शंकरः ॥ अर्कस्य करवीरस्य बिल्वस्य बकुलस्य च ॥ " दशसुवर्णदानफलं श्वेतार्कपुष्पम् ॥ ततः सहस्रगुणं बकुलं पुष्पम् ॥ एवं धत्तूरशमीपुष्पद्रोणपुष्पनीलोत्पलानामुत्तरोत्तराणां सहस्रगुणत्वम् ॥ " मणिमुक्ताप्रवालैस्तु रत्नैरप्यर्चनं कृतम् ॥ न गृह्णामि विना देवि बिल्वपत्रैर्वरानने ॥ सर्वकामप्रदं बिल्वं दारिद्र्यस्य विनाशनम् ॥ " नीलोत्पलसहस्रेण मालार्पणे कल्पकोटिसहस्रं शिवपुरे वासः ॥ धत्तूरैर्बृहतीपुष्पैश्च पूजने गोलक्षफलम् पाटलामन्दारापामार्गजातीचंपकोशीरतगरनागकेसरपन्नागजपामल्लिकासहकारकुसुम्भपुष्पाणि शिवप्रियाणि ॥ धत्तूराणि कदंबानि रात्रौ देयानि शंकरे ॥ मदनरत्ने ॥ केतकानि कदंबानीति पाठः ॥ अभावे पुष्पपत्राणामन्नाद्येनापि पूजयेत् ॥ शालितंदुलगोधूमयवैर्वापि समर्चयेत् ॥ अथ निषिद्धानि ॥ बन्धूककुन्दातिमुक्तकेतकीकपित्थबकुलशिरीषनिंबानि ॥ पुष्पपत्रादिकं स्वाभिमुखमुत्तानमर्पयेत ॥ " पत्रं पुष्पं फलं चैव यथोत्पन्नं तथार्पयेत " इति वचनात् बिल्वपत्रं तु स्वाभिमुखाग्रं न्युब्जमर्पयेत ॥ पक्वाम्रफलस्य शिवार्पणे वर्षायुतं शिवपुरे वासः ॥ सव्यं व्रजेत्ततो सव्यं प्रणालीं नैव लंघयेदित्यादिस्थिरलिंगे प्रदक्षिणाप्रकारः ॥ चरे तु सव्येनैव ॥ देव्या अपि बकुलकुन्दादिसहितान्येतान्येव प्रियाणि ॥ धान्यानां सर्वपत्रैश्च पुष्पैर्देवीं प्रपूजयेत ॥ दूर्वाकुन्दैः सिंधुवारैर्बन्धूकागस्तिसंभवैः ॥ बिल्वपत्रैः पूजने राजसूयफलं करवीरस्रजाग्निष्टोमस्य ॥ बकुलस्रजा वाजपेयस्य ॥ द्रोणस्रजा राजसूयस्येति ॥ एवं सूर्यविघ्नेशादेरपि प्रायो विष्णुवज्ज्ञेयानि ॥

अब पुष्पोंके ग्राह्य और अग्राह्यकी विधि कहते हैं। अपर्युषित छिद्ररहित, प्रोक्षित, जीव रहित वा अपने आराममें उत्पन्न फलोंसे, देवताओंकी भक्तिसे पूजा करै। और कीटोंसे युक्त, शीर्ण (स्वयंगिरे) पर्युषित फलोंको त्याग दे। स्वयं पतित पुष्पोंको, मलसहितोंको, त्यागदे। मुकुलों (कलियों) से देवपूजा न करै। अपक्व और कृमियुक्तफलोंसे न करै। पुष्पोंके अभावमें पत्रोंसे पत्रोंके अभावमें फलोंसे, पूजा करै । फल न मिलै तो तृण, गुल्म, लता, औषधियोंको निवेदन करै। समिध, पुष्प, कुशा आदिको ब्राह्मण स्वयं लावै। शूद्रके लाये, मोललिये इनसे पूजा करै तो नरकमें पडता है । लक्षपुष्पोंसे पूजन तो मोल लेकर

भी करै। कोई तो कहतेहैं कि, धर्मसे संचित, धनसे मोललिये पुष्पोंसे; केशवकी पूजा करने का और मालीके घरके पर्युषितका दोष नहीं है। इत्यादि वचनोंसे मालीके लाये और मोल-लिये पुष्प पत्रोंसे भी पूजते हैं। नित्य पूजाके लिये पराये उपवन आदिमेंसे पुष्प आदि-के ग्रहण करनेमें चोरीका दोष नहीं। पूजाके लिये पुष्प आदिकी याचना न करै। समिध, पुष्प, कुशा आदि जो ले जाता हो उसको प्रणाम न करै। और उनको जो ले जारहा हो; वहभी अन्योंको प्रणाम न करै। करै तो उनके समिध आदि निर्माल्य हो जाते हैं। देवके ऊपर चढाया; वामहाथमें, अधोवस्त्रमें, धारण करा पुष्प; और वामहाथ और अधोवस्त्रके जलसे धुला पुष्प निर्माल्य होनेसे वर्जित है। पर्युषित पुष्प तथा पर्युषित जल वर्जित है। तुलसीपत्र तथा तीर्थजल पर्युषित होनेपर भी वर्जित नहीं। और जाती (जाई) पुष्प एक प्रहरतक टिकता है। करवीर (कनेर) के पुष्प एकरातादिन टिकते हैं। अर्थात् इतने कालमें पर्युषित नहीं होते हैं। और पद्म, तुलसी, बेलपत्र, कुंद, दमन, अगस्त्य और कलिका ये पर्युषित नहीं होते। बिल्व आदिके अपर्युषित रहनेमें दिनोंकी संख्या यह है। कि, बिल्व ३०, अपामार्ग ३, जाती १, तुलसी ६,शमी ६, शतावरी ११, केतकी ४, भांगरा ९, दूर्वा ८, मंदार १, पद्म १, नागकेशर २, दर्भ ३०, अगस्त्य ३, तिल १, तगर ६, पलाश ६, कह्लार ११, चमेली ४, चंपा ९, करवीर ८, कुंभी १, दमन १, मरुवा २, ये सब इतने दिनोंके अनन्तर पर्युषित हो जाते हैं। तुलसीके ग्रहण करनेके कालको कहते हैं। कि, वैधृति, व्यतीपात, मंगल, शुक्र, रविवार, पूर्णिमा, अमावस्या, संक्रांति, द्वादशी, दोनों सूतक, इनमें जो तुलसीको बीनते हैं वे हरिके शिरका छेदन करते हैं। दूर्वाका रविवारमें; तुलसीका रात्रि और संध्याओंमें; धात्री (आँवला) के पत्रोंका कार्तिकमें; पुण्यका अभि-लाषी बुद्धिमान् मनुष्य छेदन न करै। द्वादशीको दिनमें सोना, और तुलसीका बीनना, विष्णुका दिनमें स्नान, इनको बुद्धिमान् मनुष्य सदा वर्ज दे। यहां दिनमें निषेधसे रात्रिमें स्नान आदि षोडशोपचार पूजा करनी; दिनमें तो गंधपुष्पांजलिपर्यंतही पूजा करनी; यह कमलाकराह्निकमें कहा है। द्वादशीको विष्णुके निर्माल्यका अपनयन भी न करै यह अन्यतंत्रोंमें कहा है। इसका अपवाद पुरुषार्थचिंतामणिमें यह है नारदपुराणमें लिखा है कि, जनार्दनको एकादशीके दिन, पंचामृतसे स्नान कराकर और द्वादशीको दूधसे स्नान कराकर, विष्णुकी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त होता है। देवताके लिये तुलसी का छेदन और होमके लिये समिधोंका छेदन, अमावस्याको और गौओंके लिये तृणों-का छेदन दूषित नहीं होते। तुलसीग्रहण करनेका मन्त्र यह है। कि, हे तुलसि! तू अमृतनामा है सदैव तू केशवकी प्यारी है केशवके लिये तूझे बीनता हूं; हे शोभने! तू वरकी दाता हो। जाती, चमेली, करवीर, अशोक, उत्पल, चंपक, बकुल, बेल, शमी, कुशा, ये सब संपूर्ण देवताओंके लिये कहे हैं। अब विहित और निषिद्ध होनेसे वैकल्पिकोंको कहते हैं। कि, पाटल और शमीका पत्र दुर्गाको; कुंद, पलाश, बकुल, दूर्वा ये शिवको; कुमुद, तगर सूर्यको; तुलसी, भांगरा, तमालपत्र, ये शिव दुर्गाको; अगस्त्य, माधवी-लता, लोधका पुष्प, ये विष्णु और शिवको; धतूरा, मंदार ये विष्णु और सूर्यको विहित और निषिद्ध होनेसे विकल्पित कहे हैं। अब विष्णुके प्रियोंको कहते हैं। मालती, जाती, केत-की, चमेली, अशोक, चंपा, पुन्नाग, बकुल, उत्पल, कुंद, करवीर, पाटल, तगर, इनके पुष्प

और अन्य जो सुगंधित हैं वे विष्णुप्रिय हैं । अपामार्ग, भृंगराज, खैर, शमी, दूर्वा, कुशा, दमन, बेल, तुलसीपत्र, ये सब उत्तरोत्तर अधिक प्रिय हैं तुलसी सबमें अधिक है । जातीके सहस्र पुष्पोंकी माला अर्पण करनेसे सहस्र कोटिकल्पतक विष्णुके पुरमें वास होता है । आमकी मंजरीसे पूजन करनेसे कोटि गोदानका फल होता है । अब शिवजीके प्रियोंको कहते हैं । इन चार पुष्पोंकी गंधको शंकर सूंघते हैं, कि, आक, करवीर, बेल, बकुल । संपद् आकके पुष्पसे दश सुवर्ण दानका फल होता है । उससे सहस्रगुण बकुल पुष्प है । इसी प्रकार धतूरा, शमीका पुष्प, द्रोणपुष्प, नीलोत्पल, ये उत्तरोत्तर सहस्रगुणा फल देतेहैं । मणि, मोती, मूंगा, रत्न, इनसे भी पूजन किया हो; हे देवि ! हे वरानने ! बिल्वपत्रके विना शिवजी ग्रहण नहीं करते बेलपत्र सब कामनाओंको देता है दारिद्र्यका नाश करता है । सहस्रनीलोत्पलोंकी मालाके अर्पण करनेसे सहस्रकल्प कोटिपर्यंत शिवपुरमें वास होता है । धतूरा और कटहलीके पुष्पोंसे पूजनमें लक्ष गोदानका फल है । पाटला, मंदार, अपामार्ग, जाती, चंपा, उशीर, तगर, नागकेशर, पुन्नाग, जपा, मल्लिका, आम्र, कुसुंभ, इनके पुष्प शिवको प्रिय हैं । धतूरा, कदंब, शंकरको रात्रिमें भी प्रिय हैं । मदनरत्नमें तो यह पाठ है, कि, केतकी, कदंब प्रिय हैं पुष्प और पत्रोंके अभावमें अन्न आदिसे पूजन करै । वा शाली, तंडुल, गेहूं, जौ, इनसे पूजा करै । अब निषिद्धोंको कहते हैं । बंधूक, कुंद, अतिमुक्त, केतकी, कैंथ, बकुल, शिरस, नीम, ये निषिद्ध हैं । पुष्प पत्र आदिको अपने संमुख सीधा रक्खै । क्योंकि, यह वचन है । पत्र, पुष्प, फल, इनको जैसे पैदा हुये हों वैसेही अर्पण करै । बेलपत्रको तो अपने संमुख न्युब्ज (औंधा) अर्पण करै । पक्व आम्रफलको शिवके अर्पण करै तो दशसहस्र वर्षोंतक शिवपुरमें वास होता है । प्रथम सव्य होकर परिक्रमा करके अपसव्यसे फिर करै, प्रणालीको न लंघै; इत्यादि स्थिरलिंगकी प्रदक्षिणाका प्रकार है । और चरलिंगकी परिक्रमाको तो सव्यसेही कहते हैं । देवीको भी बकुल, कुन्द आदि सहित ये ही पुष्प प्रिय हैं । धान्योंके संपूर्ण पत्रोंसे और पुष्पोंसे देवीको पूजै । दूर्वा, कुन्द, सिंधुवार, बंधूक, अगस्त्य, बिल्वपत्र, इनके पूजनमें राजसूय यज्ञका फल है; करवीरकी मालासे अग्निष्टोम यज्ञका; बकुलकी मालासे वाजपेय यज्ञका; द्रोणकी मालासे राजसूय यज्ञका, फल होता है । इसी प्रकार सूर्य और गणेश आदिके भी पुष्प प्रायः विष्णुके समानही जानने ॥

अथ शिवनिर्माल्यग्रहणविचारः ।

"अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ शालग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥" शैवसौरनैवेद्यभक्षणे चांद्रायणम् ॥ अभ्यासे द्विगुणं मत्याभ्यासे सांतपनम् ॥ अन्यनिर्माल्येप्यनापद्येवम् ॥ इदं च ज्योतिर्लिंगस्वयंभूलिंगसिद्धप्रतिष्ठापितलिंगातिरिक्तस्थावरलिंगविषयम् ॥ ज्योतिर्लिंगादौ तु पूजकेन दत्तं फलतीर्थादिकं भक्त्या शुद्ध्यर्थं ग्राह्यं न लोभेन पंचायतनस्थितलिंगेषु चरेषु प्रतिमासु चान्नादेरपि स्वयंग्रहणेपि न दोषः ॥ ज्योतिर्लिंगाद्यन्यस्थिरलिंगेषु तीर्थोदकचन्दनमात्रं श्रद्धावद्भिः शिवोपासकैरेव ग्राह्यम् ॥ ज्योतिर्लिंगादौ पूजकदत्तमन्नमपि भक्ष्यमिति केचित् ॥

अब शिवनिर्माल्यके ग्रहण करनेका विचार करते हैं । शिवका नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल, जल; ये ग्रहण करनेके अयोग्य हैं । परन्तु शालग्रामकी शिलाके संगसे सब पवित्र हो जाते हैं । शिव सूर्यके नैवेद्यके भक्षणमें एक चांद्रायण करै अभ्यासमें दो चान्द्रायण और जानके अभ्यासमें सांतपन करै । अन्यके निर्माल्यका भी आपत्तिके विना यही प्रायश्चित्त है । और यहभी ज्योतिर्लिंग, स्वयंभूलिंग, सिद्धोंके प्रतिष्ठापित लिंगसे भिन्न जो स्थावरलिंग हैं उनके विषयमें है। ज्योतिर्लिंग आदिमें तो पूजकके दिये हुये फल तीर्थ जल आदिको भक्तिसे शुद्धिके लिये ग्रहण करै लोभसे न करै । पंचायतन पूजामें स्थित लिंगोंमें, और चरप्रतिमाओंमें अन्न आदिके भी स्वयं ग्रहण करनेमें दोष नहीं । ज्योतिर्लिंग आदिसे भिन्न स्थिर लिंगोंमें तीर्थोदक और चन्दनमात्रको श्रद्धावाले शिवजीके उपासक ही ग्रहण करैं । ज्योतिर्लिंग आदिमें पूजकका दिया अन्न भी भक्षण योग्य है यह कोई २ कहते हैं ॥

अथ नक्षत्रसंज्ञा ।

त्र्युत्तरारोहिणी ध्रुवम् ॥ मघा भरणी पूर्वात्रयं क्रूरम् ॥ श्रवणत्रयपुनर्वसुस्वात्यश्चरम् ॥ अश्विनीहस्तपुष्यं क्षिप्रम् ॥ अनुराधारेवतीमृगचित्रं मृदु ॥ कृत्तिकाविशाखे मिश्रम् ॥ मूलाश्लेषाज्येष्ठार्द्रास्तीक्ष्णम्॥ इति नक्षत्रसंज्ञाः॥ "यत्र नोक्ता तिथिस्तत्र ग्राह्या रिक्तामर्मा विना ॥ वारोपि यत्र न प्रोक्तस्तत्रार्कार्किकुजान्विना ॥"

अब नक्षत्रोंकी संज्ञाको कहतेहैं । तीनों उत्तरा, रोहिणी ये ध्रुव हैं । मघा, भरणी, तीनों पूर्वा ये क्रूर हैं । श्रवणसे तीन, पुनर्वसु, स्वाती ये चर हैं । अश्विनी, हस्त, पुष्य, ये क्षिप्र हैं । अनुराधा, रेवती, मृगशिर, चित्रा, ये मृदु हैं । कृत्तिका, विशाखा, ये मिश्र हैं । मूल आश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, ये तीक्ष्ण हैं । ये नक्षत्रोंकी संज्ञा हैं । जिस कर्ममें तिथि नहीं कही वहां रिक्ता और अमावस्यासे भिन्न तिथि ग्रहण करनी । जहां वार नहीं कहा वहां रविवार, शनि, मंगलसे भिन्न वार ग्रहण करने ॥

अथ कृषिमुहूर्तादि ।

चरमृदुक्षिप्रध्रुवमूलविशाखामघासु सकुजेष्टशुभवारे भूकर्षणं हितम् ॥ सूर्यत्यक्तनक्षत्रात्त्र्यष्टनवाष्टस्वशुभं शुभमशुभं शुभमिति हलचक्रम् ॥ अत्रैव नक्षत्रे शनिभौमभिन्नवारे बीजवापः सस्यारोपणं च धान्यच्छेदश्च॥ क्षीरवृक्षजन्यः खलमध्ये स्तंभः ॥ धान्यानां मर्दनं ज्येष्ठामूलमघाश्रवणरेवतीरोहिण्यनुराधाफल्गुनीद्वये शुभम्॥ धान्यसंग्रहः क्षिप्रध्रुवचरमृदुमूलेषु ज्ञगुरुशुक्रेषु चरभिन्नलग्ने शुभः ॥

अब कृषिमुहूर्त आदि कहतेहैं । चर, मृदु, क्षिप्र, ध्रुव, मूल, विशाखा, मघा इन नक्षत्रोंमें और मंगलसहित इष्ट शुभ वारोंमें, भूमिका कर्षण (जोतना) हित है । सूर्यके त्यागे हुये नक्षत्रसे तीन, आठ, नौ, आठ, नक्षत्रोंमें अशुभ शुभ अशुभ शुभ फल क्रमसे जानना यह हलका चक्र है । इन्ही नक्षत्रोंमें शनि भौमसे भिन्न वारोंमें बीजका बोना, और सस्यका लगाना और धान्यका छेदन, शुभ है । क्षीरके वृक्षका, खलियानके मध्यमें स्तंभ गाडै । धान्यके मर्दनमें ज्येष्ठा, मूल, मघा, श्रवण, रेवती, अनुराधा, दोनों फाल्गुनी, ये नक्षत्र शुभ

हैं । क्षिप्र, ध्रुव, चर, मृदु, मूल इन नक्षत्रोंमें, बुध, गुरु, शुक्र, वारोंमें; चरसे भिन्न लग्नमें; धान्यका संग्रह शुभ है ॥

अथ धान्यमंत्रः ।

ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहेति मंत्रं लिखित्वा धान्यागारे क्षिपेत् तेन धान्यवृद्धिः ॥ "बुधमंदर्दिने नैव धनधान्यव्ययः शुभः ॥ अद्यान्नवान्नं सद्वारे मृदुक्षिप्रचरे दिवा ॥"

"ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय नमः देहि मे धान्यं स्वाहा" इस मन्त्रको लिखकर धान्यके आगारमें डार दे तिससे धान्यकी वृद्धि होती है । बुध और शनैश्चरके दिन धन, धान्यका, व्यय शुभ नहीं है । और नये अन्नको; शुभ वार, मृदु, क्षिप्र, चर नक्षत्र और दिन, इनमें भक्षण करै ॥

अथ वस्त्रादिविचारः ।

"वस्त्रभूषणविधिर्ध्रुवाश्विनीहस्तपंचकपुनर्वसुद्वये ॥ पौष्णवासवभयोश्च सत्तिथौ मंदभौमशशिवासरान्विना ॥ अनुक्तेपीष्टदं वस्त्रं विप्राज्ञोत्सवलब्धिषु ॥ ध्रुवपुष्यादितौ योषिद्धत्ते या वस्त्रभूषणे ॥ न प्राप्नोति पतिप्रीतिं स्नाति वारणभे च या ॥ पादुकासनशय्यादेर्भोगः सत्तिथिवासरे ॥ ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रभरणीषु पुनर्वसौ ॥ चेन्नव्यवस्त्रं मध्यांशे दग्धं स्फुटितपंकितम् ॥ तत्त्यजेच्छांतिकं कुर्यात्त्यजेदेवांत्यभागयोः ॥ विज्ञेयमेतच्छय्यायामास्तृतौ पादुकास्वपि ॥ सूचीकर्मानुराधाश्विचित्रामृगपुनर्वसौ ॥ वस्त्रं क्षाल्यं धारणोक्ते काले बुधदिनं विना ॥ भोजनं भाजने रौप्यस्वर्णकांस्यादिनिर्मिते ॥ कुर्यादमृतयोगेषु चरक्षिप्रमृदुध्रुवैः ॥ स्याद्भूषणानां घटनं चरक्षिप्रमृदुध्रुवैः ॥ शुभवारे रत्नवतां मिश्रभेपि रवौ कुजे ॥" इति वस्त्रादिविचारः ॥

अब वस्त्र आदिके विचारको कहते हैं । वस्त्र और भूषणकी विधि ध्रुव, अश्विनी, हस्तसे पांच, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, धनिष्ठा, इन नक्षत्रोंमें; शुभ तिथियोंमें; शनि, मंगल, चंद्र, इनसे भिन्न वारोंमें श्रेष्ठ है । ब्राह्मणकी आज्ञासे; उत्सवमें; मिलाहुआ; वस्त्र शास्त्रमें नहीं कहे मुहूर्तमें भी वांछित फलको देता है । ध्रुव, पुष्य, पुनर्वसु, इनमें जो स्त्री वस्त्र, भूषण, धारण करतीहै; और शतभिषामें जो स्नान करती है वह पतिकी प्रीतिको प्राप्त, नहीं होती । खड़ाऊँ, आसन, शय्या, आदिका भोग, शुभ तिथि वारमें करै । ध्रुव, क्षिप्र, मृदु, श्रवण, भरणी, पुनर्वसु, इन नक्षत्रोंमें नवीन वस्त्र मध्यभागमें दग्ध होजाय; फटजाय; वा कीच लगजाय तो उसको न त्यागे; किंतु शांति करै । अंत्यभागमें दग्ध आदि होजाय तो त्याग ही दे । यही बात शय्याके आस्तरणमें और पादुकाओंमें भी जाननी । अनुराधा, अश्विनी, चित्रा, मृगशिर, पुनर्वसु, इनमें सूचीकर्म (सीना) करै, धारणमें कहे नक्षत्रोंमें बुधदिनके विना वस्त्र प्रक्षालन करै भोजन करै तो चांदी, सुवर्ण, कांसी, आदिसे बनाये पात्रोंमें अमृत योगमें चर, क्षिप्र, मृदु, ध्रुव, नक्षत्रोंमें करै । भूषणोंको घडवाना, चर, क्षिप्र, मृदु, ध्रुव, इनमें और

शुभ वारोमें होता है । और रत्नजटितों का तो मिश्र नक्षत्र, रविवार, और मंगलवारको शुभ है । यह वस्त्र आदिका विचार समाप्त हुआ ॥

अथ शस्त्रघटनधारणे ।

"शस्त्राणां घटनं क्रूरमिश्राश्विमृगतीक्ष्णभे ॥ शस्त्रं धार्यं ध्रुवाक्षिप्रमृदुज्येष्ठाविशाखके ॥"

अब शस्त्रोंका घडवाना और धारनाको कहते हैं। कि, क्रूर, मिश्र, अश्विनी, मृगशिर, तीक्ष्ण, इनमें शस्त्रोंका धारण श्रेष्ठ है; और ध्रुव, क्षिप्र, मृदु, ज्येष्ठा, विशाखा, इनमें शस्त्र धारण करै ॥

अथ सेवाकरणम् ।

"सेवा कार्या क्षिप्रमैत्रध्रुवैर्ज्ञेज्यार्कभार्गवे ॥ मंदेपि चेत्सेवकर्क्षं स्वामिभान्न द्वितीयकम् ॥"

क्षिप्र, अनुराधा, अश्विनी, ध्रुव, इन नक्षत्रोंमें; बुध, गुरु, रवि शुक्र इन वारोंमें; सेवा करनी, और सेवकका नक्षत्र, स्वामीके नक्षत्रसे दूसरा न होय तो शनैश्चरको भी करै ॥

अथ वाहनारोहः ।

"हस्तषट्कध्रुवश्रोत्ररेवतीपुष्यभे शुभम् ॥ पुनर्वसौ च शिबिकागजाश्वादिषु रोहणम् ॥"

और हस्तसे छः, ध्रुव, श्रवण, रेवती, पुष्य, इन नक्षत्रोंमें शुभ है । और पुनर्वसुमें शिबिका, हस्ति, अश्वआदिपर चढना शुभ है ॥

अथ राजदर्शनं नृत्यं च ।

"राज्ञां विलोकनं क्षिप्रश्रुतिद्वयमृदुध्रुवे ॥ नृत्यारंभः पुष्यध्रुवे मृगज्येष्ठाधनिष्ठयोः ॥"

राजाओंका दर्शन; क्षिप्र, श्रवणसे दो, मृदु, ध्रुवमें करै । और नृत्यका प्रारंभ, पुष्य, ध्रुव, मृग, ज्येष्ठा, धनिष्ठा इनमें करै ॥

अथ हट्टरचनाक्रयविक्रयश्च ।

"अनुराधाशतभिषग्घस्ते स्याच्छुभवासरे ॥ विपणिः स्यान्मृदुक्षिप्रध्रुवैरिक्ताकुजान्विना ॥ क्रयः कार्योश्विनीस्वातीश्रवश्चित्राशतांत्यभे ॥ विक्रयो भरणीपूर्वात्रयाश्लेषासु मिश्रभे ॥"

अनुराधा, शतभिषा, हस्त, और शुभ वारमें विपणि (हट्ट) करनी और मृदु, क्षिप्र, ध्रुव, नक्षत्र; रिक्ता तिथि और कुजसे भिन्न वार इनको विपणिमें वर्जे देवे और क्रय (खरीद करना) अश्विनी, स्वाती, श्रवण, चित्रा, शतभिषा, रेवती इनमें शुभ है । और विक्रय (बचना) भरणी, तीनों पूर्वा, आश्लेषा, मिश्र इनमें शुभ है ॥

अथ सेतुबंधः पशुक्रिया च ।

"सेतुबंधो ध्रुवे स्वात्यां जीवार्कशनिवासरे ॥ नानापशुक्रियाहस्तपुष्यार्द्रामृगमिश्रभे ॥ पुनर्वसौ धनिष्ठाश्विपूर्वाज्येष्ठाशतांत्यभे ॥ त्यक्त्वार्कभौमेंदुशनीञ्श्रुतिचित्राध्रुवाणि च ॥ अमारिक्ताष्टमीश्चापि पशुक्रयमुखाः शुभाः ॥"

सेतुका बांधना; ध्रुव, स्वातीमें और गुरु, रवि, शनि, वारोंमें शुभ है । और नानाप्रकारकी पशुओंकी क्रिया; हस्त, पुष्य, आर्द्रा, मृगशिर, मिश्र, पुनर्वसु, धनिष्ठा, अश्विनी, पूर्वा, ज्येष्ठा, शतभिषा, रेवती इनमें शुभ है । और रवि, मंगल, सोम, शनि इनको और श्रवण, चित्रा ध्रुव, इनको अमावस्या, रिक्ता, अष्टमी, इनको छोडकर पशुओंके क्रय आदि शुभ हैं ॥

अथ धनस्य ग्रहणादिविचारः ।

"द्रव्यं लघुचरैर्योज्यं वृद्ध्यर्थं चरलग्नके ॥ ऋणं भौमेन गृह्णीयाद्वृद्धियोगेर्कसंक्रमे ॥ धनिष्ठापंचके हस्ते त्रिपुष्करद्विपुष्करे ॥ भौमादिषु ऋणच्छेदं कुर्याच्च धनसंग्रहम् ॥ बुधे धनं न प्रदेयं संग्रहस्तु बुधे शुभः ॥ शन्यर्कारैस्त्रिपादर्क्षे भद्रातिथ्या त्रिपुष्करः ॥ मृगचित्राधनिष्ठासु तात्तिथ्यह्नाद्द्विपुष्करः ॥ शुभाशुभेषु त्रिगुणं द्विगुणं च फलं क्रमात् ॥"

वृद्धिके लिये द्रव्यको; लघु, चर, नक्षत्रोंमें और चरलग्नमें, लगावै । मंगलवारकी ऋण न ले और वृद्धियोग और सूर्यकी संक्रांतिमें न ले । धनिष्ठा आदि पंचकमें; हस्त, त्रिपुष्कर, द्विपुष्करमें; भौमवार आदिमें; ऋणका छेदन, और धनका संग्रह करै । बुधको धन न दे संग्रह तो बुधको शुभ है । शनि, रवि, मंगल वार; और त्रिपाद नक्षत्र; और भद्रा, तिथि; इन तीनोंके योगसे उपजा त्रिपुष्कर और मृगशिर, चित्रा, धनिष्ठामें; और उन्ही तिथि वारोंमें, द्विपुष्कर: होता है । इनसे शुभ अशुभोंमें तिगुना और दूना फल क्रमसे होता है ॥

अथ नष्टलाभे ।

"मिश्रक्रूरेषु तीक्ष्णेषु स्वात्यां द्रव्यं न लभ्यते ॥ दत्तं प्रयुक्तं निक्षिप्तं नष्टं चेत्याह नारदः ॥ अंधं मंदं च चिबिटं सुलोचनमिति क्रमात् ॥ गणनीयं रोहिणीभादंधे नष्टं लभेद्द्रुतम् ॥ मंदे यत्नाल्लभेत्तैव चिबिटस्वर्क्षयोर्न हि ॥ अन्विष्यं पूर्वतोंधेषु मंदसंज्ञेषु दक्षिणे ॥ प्रतीच्यां चिबिटाख्येषु सुलोचन उदग्दिशि ॥"

और मिश्र, क्रूर, तीक्ष्ण, स्वाती इनमें दिया, प्रयुक्त किया, सौंपा, और नष्ट हुआ; जो द्रव्य वह नहीं मिलता; यह नारदने कहा है । रोहिणी नक्षत्रसे गिननेसे; अंध, मंद, चिपिट, सुलोचन, नामके नक्षत्र क्रमसे होत हैं । अंधमें नष्ट हुआ शीघ्र मिलता है, मंदमें गया द्रव्य यत्नसे मिलता है, चिपिट और सुलोचनमें नहीं मिलता । अंधमें गया द्रव्य पूर्वमें ढूंढना, मदमें गया दक्षिणमें, चिपिटमें गया पश्चिममें, सुलोचनमें गया उत्तरदिशामें ढूंढना ॥

---

१ पशुगमनपशुक्रयादिकमित्यर्थः

अथ राजाभिषेकः ।

"राजाभिषेकः श्रवणे ध्रुवर्क्षे ज्येष्ठा मृदुक्षिप्र उदग्रवौ स्यात्॥ त्यक्त्वाररिक्ताधिकचैत्ररात्रीश्चंद्रेज्यशुक्राभ्युदये शुभाय ॥"

और श्रवण, ध्रुव, ज्येष्ठा, मृदु, क्षिप्र, इन नक्षत्रोंमें और उत्तरायण सूर्यमें; मंगल, रिक्ता, अधिकमास, चैत्र इनको त्यागकर और चन्द्रमा, शुक्र, गुरु, इनके उदयमें राजाका अभिषेक शुभकारी होता है ॥

अथ कूपादिखनने ।

"जलाशयानां खननं मघापुष्यध्रुवे मृगे ॥ पूर्वाषाढानुराधांत्यधनिष्ठाशतहस्तभे ॥ जलराशिगते चंद्रे लग्नस्थे च बुधे गुरौ ॥"

जलाशयोंका खोदना; मघा, पुष्य, ध्रुव, मृगशिर, पूर्वाषाढा, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त; इन नक्षत्रोंमें; और जलराशिके चन्द्रमामें, लग्नमें बुध और गुरुके होनेमें श्रेष्ठ है ॥

अथ क्षौरविचारः ।

"क्षौरं चौलोक्तनक्षत्रवारादिषु शुभं जगुः ॥ पञ्चमे पञ्चमे राज्ञां दिनेऽन्येषां यदृच्छया ॥श्मश्रुकर्म भवेन्नैव नवमे दिवसे क्वचित् ॥ क्षौरं भूतेरतं दर्शे वर्जयेच्च जिजीविषुः ॥ क्षौरं न कुर्युरभ्यक्तभुक्तस्नातविभूषिताः ॥ प्रयाणसमरारंभे न रात्रौ न च संध्ययोः ॥ श्राद्धाहे प्रतिपद्रिक्ताव्रताह्नि च न वैधृतौ ॥ प्रशस्तं जन्मनक्षत्रं सर्वकर्मसु कीर्तितम्॥ क्षौरं प्रयाणभैषज्यविवादेषु न शोभनम् ॥ षष्ठ्यमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमी तथा ॥ आसु सन्निहितं पापं तैलेषु स्त्रीभगे क्षुरे ॥ राजकार्यनियुक्तानां नराणां भूपजीविनाम् ॥ श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥ क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ॥ यज्ञे मृतौ बन्धमोक्षे नृपविप्राज्ञयापि च ॥ प्राग्वयस्कैः सपितृकैर्न कार्यं मुंडनं सदा ॥ मुंडनस्य निषेधोपि कर्तनं तु विधीयते ॥ उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः ॥ केशश्मश्रुलोमनखाप्युदक्संस्थानि वापयेत् ॥ आनर्तोहिच्छत्रः पाटलिपुत्रोदितिर्दितिः श्रीशः ॥ क्षौरे स्मरणादेषां दोषा नश्यंति निःशेषाः ॥

चौलकर्ममें कहे वार और नक्षत्र आदिमें क्षौरको शुभ कहते हैं । राजाओंका क्षौर तो पंचम २ दिनमें और अन्योंका क्षौर यदृच्छासे होता है । और नवमदिनमें श्मश्रुकर्म कदाचित् भी नहीं होता । चौदसको क्षौर; अमावस्याको मैथुन; इनको जीवनका अभिलाषी वर्ज दे । और उबटना, भोजन, स्नान करके और भूषण धारण कर क्षौर न करावै । और प्रयाणके समयमें, रात्रिमें, संध्याओंमें, श्राद्धके दिनमें, प्रतिपदामें, रिक्तामें, व्रतके दिन, वैधृतियोगमें; क्षौर श्रेष्ठ नहीं है । जन्मका नक्षत्र सब कर्मोंमें श्रेष्ठ कहाहै; परन्तु क्षौर, प्रयाण, औषध, विवाद; इनमें शोभन नहीं । षष्ठी, अमावस्या, पूर्णिमा, पात, चौदस, अष्टमी; इन दिनोंमें तैल, स्त्रियोंका भग, क्षुर, इनमें पापसंनिहित रहता है । राज-

कार्यमें नियुक्त जो मनुष्य, राजा और राजासे जीनेवाले; इनके श्मश्रु, लोम, नखके छेदनमें कालका शोधन नहीं है। और नैमित्तिक क्षौरको तो निषेध होतसंते भी करै। यज्ञमें, मरणमें, बंधनसे मोक्षमें, राजा और ब्राह्मणकी आज्ञासे, निषेधमें भी क्षौर कराले। प्रथम अवस्थाके जो जीवत्पितृक हैं, वे सदा मुंडन न करावै, मुंडनके निषेधमें भी कतरना तो केशोंका कहाहै। बुद्धिमान् मनुष्य; उत्तराभिमुख और पूर्वाभिमुख होकर क्षौर करावै, केश, श्मश्रु, लोम, नख, इनको प्रथम मुंडावै, जो उत्तरमें स्थित हों। आनर्त देश अहिच्छत्र, पाटलिपुत्र, अदिति, दिति, श्रीश (विष्णु) इनका क्षौरमें स्मरण करनेसे संपूर्ण दोष नष्ट होते हैं ॥

अथ रोगोत्पत्तौ नक्षत्रफलं रोगशांतिर्दिनावधिश्च ।

अश्विन्यां रोगोत्पत्तावेकाहं नवदिनानि वा पंचविंशतिदिनानि वा पीडा ॥ १ ॥ भरण्यामेकादशैकविंशतिर्वा मासं वा मृत्युर्वा ॥ २ ॥ कृत्तिकायां दशनवैकविंशतिर्वा ॥ ३ ॥ रोहिण्यां दश वा नव वा सप्त वा त्रीणि वाहानि ॥ ४॥ मृगे पंच नव वा त्रिंशद्वा ॥ ५ ॥ आर्द्रायां मृत्युर्वा दशाहं वा मासं वा ॥ ६ ॥ पुनर्वसौ सप्त नव वा मृत्युर्वा ॥ ७ ॥ पुष्ये सप्त वा मृत्युर्वा ॥ ८ ॥ आश्लेषायां मृत्युर्विंशतिस्त्रिंशद्वा नव वा दिनानि पीडा ॥ ९ ॥ मघायां मृत्युर्वा सार्धमासं वा मासं वा विंशतिदिनानि वा पीडा ॥ १० ॥ पूर्वाफाल्गुन्यां मृत्युर्वाब्दं मासं वा पीडा पंचदश वा षष्टिर्वा दिनानि ॥ ११ ॥ उत्तरायां सप्तविंशतिः पंचदश सप्त वा दिनानि ॥ १२ ॥ हस्ते मृत्युरष्टौ वा नव वा सप्त वा पंचदश वाहानि ॥ १३ ॥ चित्रायां पक्षमष्टौ वा दश वैकादश वाहानि ॥ १४ ॥ स्वात्यां मृत्युर्वैकद्वित्रिचतुःपंचमासैर्वा दश दिनैर्वा रोगनाशः ॥ १५ ॥ विशाखायां मासं वा पक्षं वाष्टदिनं विंशतिदिनानि वा पीडा ॥ १६ ॥ अनुराधायां दशरात्रमष्टाविंशतिरात्रं वा ॥ १७ ॥ ज्येष्ठायां मृत्युर्वा पक्षं वा मासं वैकविंशतिरात्रं वा पीडा ॥ १८ ॥ मूले मृत्युः पक्षं नवरात्रं विंशतिरात्रं वा पीडा ॥ १९ ॥ पूर्वाषाढायां मृत्युर्वा द्वित्रिषडादिमासैर्विंशतिदिनैः पक्षेण वा रोगनाशः ॥ २० ॥ उत्तराषाढायां सार्धमासं विंशतिरात्रं वा मासं वा ॥ २१ ॥ श्रवणे पंचविंशतिर्दश वैकादश वा षष्टिर्वाहानि ॥ २२ ॥ धनिष्ठायां दशरात्रं पक्षं मासं त्रयोदशरात्रं वा ॥ २३ ॥ शततारकायां द्वादशाष्टवैकादश वा ॥ २४ ॥ पूर्वाभाद्रपदायां मृत्युर्वा द्वित्र्यादिमासं वा दशरात्रं वा ॥ २५ ॥ उत्तराभाद्रपदायां सार्धमासं पक्षं सप्ताहं दशाहं वा ॥ २६ ॥ रेवत्यां ज्वराद्युत्पत्तौ दशाहमष्टाविंशतिरात्रं वा पीडा ॥ २७ ॥ जन्मनक्षत्रे जन्मराशावष्टमचंद्रे च रोगोत्पत्तौ मृत्युः ॥ अर्कादिवारे क्रमेण मघाद्वादश्यौ विशाखैकादश्यौ पंचम्यार्द्रे तृतीयोत्तराषाढे शतताराषष्ठ्यौ अष्टम्यश्विन्यौ पूर्वाषाढानवम्यौ चेति त्रयाणां योगे मृत्युः ॥ एवमर्कादावनुराधाभरण्यौ आर्द्रोत्तराषाढे मघाशततारे विशाखा

श्विन्यौ ज्येष्ठामृगौ श्रवणाश्लेषे पूर्वाभाद्रपदाहस्तौ चेन्मृत्युयोगः ॥ अत्रोक्तास्तिथिवारनक्षत्रशांतयो विस्तृताः कार्याः ॥ येषु नक्षत्रेषु मरणमुक्तं तत्र शांतिरावश्यकी अन्यत्र कृताकृता ॥

अब रोगकी उत्पत्तिमें नक्षत्रके फल आदिको कहते ह। अश्विनीमें रोग होय तो एकदिन, नौदिन वा पच्चीसदिन पीडा जाननी १, भरणीमें, ग्यारह, इकीस, मासभर पीडा वा मृत्यु होती है २, कृत्तिकामें, दश, नौ इकीस दिन ३, रोहिणीमें, दश, नौ, सात वा तीन दिन पीडा होती है ४, मृगशिरमें, पांच नौ वा तीस दिन होती है ५, आर्द्रामें, मृत्यु, दश दिन वा मासभर होती है ६, पुनर्वसुमें, सात, नौ दिन वा मृत्यु होती है ७, पुष्यमें, सात दिन वा मृत्यु होती है ८, आश्लेषामें, मृत्यु, बीस वा तीस वा नौ दिन पीडा होती है ९, मघामें, मृत्यु, डेढमास वा वीस दिन पीडा, होती है १०, पूर्वाफाल्गुनीमें, मृत्यु, वर्षभर, वा मासभर वा पंद्रह और साठ दिन पीडा होती है ११, उत्तराफाल्गुनीमें, सत्ताइस, पंद्रह वा सत्रह दिनतक पीडा होती है १२, हस्तमें, मृत्यु आठ, नौ वा सात वा पंद्रहदिन, पीडा, होती है १३, चित्रामें पक्षभर, आठ, दश, वा ग्यारह दिन, पीडा होती है १४, स्वातीमें, मृत्यु वा एक, दो, तीन, चार, पांच, मासोंमें वा दशदिनमें रोगका नाश होता है १५, विशाखामें, मास वा पक्षभर, आठ दिन वा बीस दिन पीडा, होती है १६, अनुराधामें, दशरात्रि वा अठाईस रात्रि, पीडा होती है १७, ज्येष्ठामें, मृत्यु, वा पक्ष, मासभर इकीसरात्रितक, पीडा होती है १८, मूलमें, मृत्यु, पक्षभर नौरात्रि वा बीसरात्रितक पीडा होती है १९, पूर्वाषाढामें मृत्यु वा दो तीन, छः मासोंमें वा वीसदिनमें वा पक्षभरमें रोगका नाश होता है २०, उत्तराषाढामें, डेढमास, बीसरात्रि वा मासभर पीडा होती है २१, श्रवणमें, पच्चीसदिन वा दश ग्यारह दिन वा साठ दिन पीडा होती है २२, धनिष्ठामें, दशरात्रि, पक्षभर, मासभर, वा त्रयोदशरात्रि, पीडा होती है २३, शतभिषामें, बारह, आठ वा ग्यारह दिन, पीडा होती है २४, पूर्वाभाद्रपदामें, मृत्यु वा दो तीन मास आदि वा दशरात्रि, पीडा होती है २५, उत्तराभाद्रपदामें, डेढमास, पक्षभर वा सात, दशदिन, पीडा होती है २६, रेवतीमें, ज्वर आदिकी उत्पत्ति होय तो दश दिन वा अठाईसरात्रितक, पीडा होती है २७ जन्म नक्षत्र जन्मकी राशि और अष्टम चन्द्रमामें रोगकी उत्पत्ति होय तो मृत्यु होती है । रविवार आदिके क्रमसे, मघा, द्वादशी, विशाखा, एकादशी, पंचमी, आर्द्रा, तृतीया, उत्तराषाढा, शतभिषा, षष्ठी, अष्टमी, अश्विनी, पूर्वाषाढा, नवमी, इन तीन तीनोंके योगमें रोग होय तो मृत्यु होती है इसी प्रकार रविवार आदिमें क्रमसे अनुराधा, भरणी, आर्द्रा, उत्तराषाढा, मघा, शतभिषा, विशाखा, अश्विनी, ज्येष्ठा मृगशिर, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाभाद्रपद,हस्त, इनमें क्रमसे रोग होय तो मृत्युयोग होता है; इनमें पूर्वोक्त तिथि वार नक्षत्रकी शान्ति विस्तारसे करनी और जिन नक्षत्रोंमें मरण कहा है उनमें शान्ति करनी आवश्यक है, अन्यत्र करै वा न करै ॥

अथ सर्वनक्षत्रसाधारणः शांतिप्रयोगः।

देशकालौ संकीर्त्य ममोत्पन्नव्याधेर्जीवच्छरीराविरोधेन समलनाशार्थममुकनक्षत्रशांतिं करिष्ये इति संकल्प्य गणेशपूजादि ॥ आचार्यं वृत्वा कुम्भोपरि पूर्णपात्रे द्वादशदले नक्षत्रदेवताप्रतिमां सौवर्णीं संपूज्य द्वादशदलेषु संकर्षणादि-

द्वादशमूर्तीर्द्वादशादित्यान्वा संपूज्य दूर्वासमित्तिलक्षीराज्यैर्गायत्र्या तत्तद्देवतायै अष्टोत्तरशतं हुत्वा मरणादिपीडाधिक्योक्तौ सहस्रं हुत्वा दध्योदनबलिं दत्त्वाचार्याय गां प्रतिमां च दद्यादिति संक्षेपः ॥ शांतिमयूखादौ नक्षत्रभेदेन हविर्मंत्रबलिधूपादिभेदस्तिथिवारदेवतामन्त्रादिभेद इत्यादिविस्तारो द्रष्टव्यः ॥ कर्मविपाके ॥ जातवेदस इत्यृचोऽयुतं लक्षं वा जपो रुद्रे नमकानुवाकैः सहस्रकलशस्नानं वा विष्णौ सहस्रावृतपुरुषसूक्तेन सहस्रघटस्नानं वा ज्वरनाशकम् ॥ यद्वा श्रीभागवतस्थज्वरस्तोत्रजपः ॥

अब सब नक्षत्रोंके साधारण शान्तिप्रयोगको कहते हैं। कि, देशकालका कीर्तन करके, 'मेरी उत्पन्न हुई व्याधिके जीवते हुये शरीरके अविरोधसे समूल नाशके लिये अमुकनक्षत्रकी शान्तिको करताहूं' यह संकल्प करके गणेश आदिकी पूजा और आचार्यका वरण करके घटके ऊपर रक्खे हुये पूर्णपात्रमें बनाये द्वादशदलके चक्रपर सुवर्णकी नक्षत्रदेवताकी प्रतिमाका और संपूर्ण द्वादशदलोंके संकर्षण आदि द्वादशमूर्तियोंका वा द्वादश आदित्योंका पूजन करके दूर्वा, समिध, तिल, दूध, घी; इनकी; गायत्रीसे तिस २ देवताके लिये अष्टोत्तरशत (१०८) आहुति देकर जहां मरण आदिकी अधिक पीडा कही है, वहां सहस्र आहुति देकर, दध्योदनकी बलि, देकर आचार्यको गौ और प्रतिमा दे; यह संक्षेप है। शान्तिमयूख आदिमें, नक्षत्रके भेदसे; हवि, मंत्र, बलि, धूप आदिका भेद; तिथि, वार, देवताके मंत्र आदिका भेद; इत्यादि विस्तार देखने योग्य है। कर्मविपाकमें 'जातवेदसे' इस ऋचाका दश सहस्र वा लक्ष जप और जिनमें रुद्रको नमस्कार है; ऐसे अनुवाकोंसे, रुद्रको सहस्र कलश स्नान और विष्णुको सहस्रबार पढे पुरुषसूक्तसे सहस्रघट स्नान, ज्वरका नाशक है। अथवा श्रीभागवतमें लिखे ज्वरके स्तोत्रका जप ज्वरनाशक है ॥

अथ सर्वरोगनाशकानि।

रोगानुसारेण लघुरुद्रमहारुद्रातिरुद्राणां जपोभिषेको वा ॥ विष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य शतं सहस्रमयुतं वा जपः ॥ सौरजपः॥ सूर्यनमस्काराघ्यर्दानानि 'मुंचामित्वा' इति सूक्तजपोऽच्युतानंतगोविंदेति नामत्रयजपो मृत्युंजयजपश्चरोगानुसारेणेति सर्वरोगहराणि ॥

अब सब रोगोंके नाशकोंको कहते हैं। रोगके अनुसार लघुरुद्र, महारुद्र, अतिरुद्रोंका जप वा अभिषेक और विष्णुसहस्रनामस्तोत्रका शतसहस्र वा दशसहस्र जप; सूर्यका जप; सूर्यको नमस्कार, अघ्यदान, 'मुंचामि०' इस सूक्तका जप; अच्युत, अनन्त, गोविन्द; इन तीन नामोंका जप और मृत्युंजयका जप; ये सब रोगके अनुसार संपूर्ण रोगोंको हरते हैं ॥

अथौषधभक्षणे नक्षत्राणि।

"ज्येष्ठामूलश्रुतिस्वातीमृदुक्षिप्रपुनर्वसौ॥गुरुशुक्रेंदुवारेषु शस्तं भेषजभक्षणम्॥"

अब औषधभक्षणमें नक्षत्र कहते हैं। ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, स्वाति, मृदु, क्षिप्र, पुनर्वसु, इन नक्षत्रोंमें और गुरु, शुक्र, सोम; इन वारोंमें औषधका भक्षण श्रेष्ठ है ॥

अथ रोगमुक्तस्नानविचारः ।

"रिक्तायां चरलग्ने मिश्रक्षिप्रेंद्रमूलपूर्वासु ॥ चित्राभरणीश्रवणत्रयभे रविकुजबुधार्कजे स्नायात् ॥ वैधृतौ च व्यतीपाते भद्रायां संक्रमे तथा ॥ रोगमुक्तस्नानमन्त्रचन्द्रतारावलं न वा ॥"

रिक्ता तिथि; चर लग्न; मिश्र, क्षिप्र, ज्येष्ठा, मूल, तीनों पूर्वा, चित्रा, भरणी, श्रवणसे तीन; इन नक्षत्रोंमें और रवि, मंगल, बुध, शनैश्चर, वारोंमें रोगी स्नान करै । और वैधृति, व्यतीपात, योग; भद्रा; संक्रांति; इनमें रोगसे मुक्तका स्नान शुभ है । और यहां चन्द्र, ताराका वल जो हो चाहे न हो ॥

अथाभ्यंगः ।

"भद्रासंक्रमपातवैधृतिसितेज्यार्कारषष्ठ्यादिषु श्राद्धाहे प्रतिपद्द्वये परिहरेद्धेतुं विनाभ्यंजनम् ॥ मांगल्यं विजयोत्सवोब्दवदनं दीपावलीहेतवोभ्यंगस्याथ बुधांबुपक्षपित्रभाभ्यंगात्पातिघ्न्यंगना ॥ "अथापवादः" ॥ सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ॥ द्रव्यांतरयुतं तैलं पक्वतैलं न दुष्यति ॥ किंचिद्गोघृतयुक्तं वा विप्रपादरजोन्वितम् ॥ नित्याभ्यंगे च नो दुष्टं तैलं निर्देहि सर्वदा ॥ रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां भौमवारे च मृत्तिकाम् ॥ भार्गवे गोमयं क्षिप्त्वा तैलस्नानं सुखावहम् ॥"

अब अभ्यंगको कहते हैं । भद्रा; संक्रांति; व्यतीपात, वैधृति; और शुक्र, गुरु, रवि, मंगल, वार; षष्ठीआदि तिथि; श्राद्धका दिन; प्रतिपदा, और द्वितीया; इनमें कारणके विना अभ्यंगको त्याग दे । और मंगल कार्य; विजया उत्सव; वर्षका प्रारंभ; दीपमालिका; ये सब अभ्यंगके कारण हैं, इनमें अभ्यंग अवश्य करना । और बुध वार; शतभिषा, मघा नक्षत्र; इनमें स्त्री अभ्यंग करै तो पतिको नष्ट करती है । अब इसके अपवादको कहते हैं । सरसोंका तेल, गंधका तेल, पुष्पोंकी सुगन्धिका तेल, अन्य द्रव्यसे मिला तेल, पका हुवा तेल, दूषित नहीं है । और किंचित् गौके घीसे युक्त वा ब्राह्मणकी चरणके रजसे युक्त, जो तेल है वह नित्यके अभ्यंगमें दूषित नहीं अर्थात् उससे नित्य अभ्यंग करनेका भी दोष नहीं । रविवारको पुष्प, गुरुवारको दूर्वा, भौमवारको मिट्टी, औरशुक्रवारको गोमय, डारकर तेलका स्नान सुखदायी है।

अथ वास्तुप्रकरणम् ।

"वैशाखे फाल्गुने पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके ॥ गृहारंभप्रवेशौ स्तः स्तंभोच्छ्रायश्च शस्यते ॥ ज्येष्ठकार्तिकमाघांश्च शुभदान्प्राह नारदः ॥ तृणगेहं सर्वमासे पौषे मुख्यगृहं न हि ॥ हस्तत्रयध्रुवमृदुधनिष्ठाद्वयपुष्यभे ॥ रिक्ता अर्ककुजौ त्यक्त्वा गृहं कुर्याद्विशेदपि ॥ शिलान्यासं च खातं च श्रुत्यश्विक्रूरमित्रभैः ॥ आश्लेषामूलपुष्यार्कमृगांत्यध्रुवभैरपि ॥ केंद्राष्टमे पापहीने वेश्मकृत्यं स्थिरोदये ॥ धनिष्ठापंचके वर्ज्यः स्तम्भोच्छ्रायः सदा बुधैः ॥ नेष्टानि सप्तसूर्यर्क्षादिष्टान्येकादशा-

ष्टमात् ॥ दश शिष्टानि नेष्टानि चक्रे स्युर्वृषवास्तुनि ॥ यद्वा तुर्यात्पंचदशात्त्रयोविंशतिसंख्यकात् ॥ वेदाब्धिपंचमेष्टानि गृहारंभप्रवेशयोः ॥ स्नानपाकस्वापवस्त्रभुजीनां पशुकोशयोः ॥ देवानां च गृहान्कुर्यात्पूर्वादौ मुख्यवेश्मनः ॥ उदग्दिशं ध्रुवमुखाज्ज्ञात्वा प्राचीं प्रसाधयेत् ॥ कोणाध्वभ्रमकूपद्वाःपंकस्तंभद्रुमामरैः ॥ विद्धा दुष्टा द्वार्न दोषो गृहोच्चद्विगुणांतरे ॥ सूत्रं भित्तिशिलान्यासं स्तंभस्यारोपणं तथा ॥ आग्नेयीं दिशमारभ्य कुर्यादित्याह कश्यपः ॥ अन्यवेश्मस्थितं दारु नान्यवेश्मनि योजयेत् ॥ नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते ॥ द्वात्रिंशाधिकहस्ते च तृणागारे चतुर्मुखे ॥ न तत्र चिंतयेद्धीमान्गुणानायव्ययादिकान् ॥''

अब वास्तुप्रकरणको कहते हैं । वैशाख, फाल्गुन, पौष, श्रावण, और मार्गशिर; इनमें गृहका आरंभ और प्रवेश होते हैं, और स्तंभका गाडना भी श्रेष्ठ है, और ज्येष्ठ, कार्तिक, माघ; ये नारदने शुभदाई कहे हैं । तृणका घर सब मासोंमें होताहै । और पौषमें मुख्य घरको न बनावै । और हस्तसे तीन, ध्रुव, मृदु, धनिष्ठासे दो, और पुष्य; इन नक्षत्रोंमें, रिक्ता तिथियोंको और रविवार तथा मंगलवारको, त्यागकर घरको बनावै और प्रवेश भी करै । और शिलास्थापन और नीमका खोदना, श्रवण, अश्विनी, क्रूर, मित्र, आश्लेषा, मूल, पुष्य, हस्त, मृगशिर; इन नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ है । और केंद्र, अष्टम, पापग्रहसे रहित हों और स्थिरलग्नका उदय होय, तो घरका कृत्य शुभ है । धनिष्ठा आदि पंचकमें बुद्धिमान् मनुष्य; स्तंभके गाडनेको सदैव वर्जे दे । सूर्यके नक्षत्रसे सात नक्षत्र अनिष्ट हैं; और ग्यारह इष्ट हैं; और शेष दश अनिष्ट हैं; वह वृष वास्तुचक्रमें होते हैं । यद्वा सूर्यके चौथे नक्षत्रसे चार; पंद्रहमेंसे चार; तेईसमेंसे पांच नक्षत्र, गृहके प्रारंभमें और प्रवेशमें; श्रेष्ठ हैं । और स्नान, पाक, शयन, वस्त्र, भोजन, पशु और कोश, देवता, इनके घर; मुख्यघरसे पूर्व आदि दिशाओंमें बनावै और ध्रुवके मुखसे उत्तर दिशाको जानकर पूर्वदिशाको सिद्ध करै । और कोण, मार्ग, भ्रम, कूप और अन्यद्वार, कीच, स्तंभ, वृक्ष; इनका वेध जिसमें हो, ऐसा द्वार दूषित है । और घरकी ऊँचाईसे दूने अन्तरपर कुछ दोष नहीं । और सूत्र, भित्ति, शिलाका न्यास और स्तम्भका गाडना, इनको अग्निदिशाके प्रारम्भसे करै यह कश्यपने कहा है । और अन्य घरके काष्ठको अन्य घरमें न लगावै, नवीन घरमें नवीन काष्ठ जीर्णघरमें जीर्णकाष्ठ, श्रेष्ठ होता है । बत्तीस हाथसे अधिक घरमें और चतुर्मुखी तृणके घरमें बुद्धिमान् मनुष्य; आय, व्ययआदिकी चिन्ता न करै ॥

अथ गृहप्रवेशविचारः ।

''वास्तुपूजाविधिः कार्यः पूर्वमेव प्रवेशतः॥ मैत्रध्रुवक्षिप्रचरमूलभैर्धनपुत्रकृत्॥'' वास्तुशांतिप्रयोगोन्यतो ज्ञेयः ॥ ''वास्तुशांतिर्दिवैवोक्ता प्रवेशस्तु निशि क्वचित् ॥ गृहप्रवेशः प्रारंभोदितमासादिकैः शुभः॥ क्वचिन्माघोर्जशुक्रेषु कैश्चिदुक्तो मृदुध्रुवे ॥ श्रेष्ठः क्षिप्रैश्चरैर्मध्यो निंद्यस्तीक्ष्णोग्रमिश्रभैः ॥ त्रिषडाये खलैः सद्भिः षडष्टव्ययवर्जितैः ॥ शुद्धेंबुरंध्रे च तनौ विजनुर्लग्नभाष्टमे ॥ ऋक्षाणि पंच सूर्यर्क्षान्निष्टान्यष्टचतुर्दशात् ॥ शेषभानि शुभान्येवं प्रवेशे घटचक्रकम् '' ॥ इति वास्तुप्रकरणम् ॥

अब गृहप्रवेशको कहते हैं। वास्तुपूजाकी विधि प्रवेशसे पहिलेही करनी श्रेष्ठ होती है। मैत्र, ध्रुव, क्षिप्र, चर, मूल; इन नक्षत्रोंमें गृहप्रवेश; धन और पुत्रका दाता होता है। वास्तुशान्तिके प्रयोग अन्य ग्रन्थसे जानना, वास्तुशांति; दिनमें ही कही है। और प्रवेश तो कहीं २ रात्रिमें भी कहा है। वह प्रवेश प्रारंभमें कहे मास आदिमें शुभ होता है। कहीं २ माघ, कार्तिक, ज्येष्ठमें; भी कहा है। और मृदु, ध्रुव, नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ हैं; क्षिप्र, चरोंमें मध्यमहै, तीक्ष्ण, उग्र, मिश्र, नक्षत्रोंमें; निंदित है। पापग्रह; तीसरे, छठे, ग्यारहमें हों और सौम्य ग्रह छठे आठमें व्यय (१२) में न हों, चतुर्थ सप्तम जिसमें शुद्ध (खाली) हों ऐसे लग्न हों, और जन्मलग्न और जन्मराशिसे अष्टमलग्न न हो। सूर्यके नक्षत्रसे पांच नक्षत्र; और चौदहवेंसे आठ नक्षत्र अनिष्ट हैं; शेष नक्षत्र शुभ हैं; इसप्रकार प्रवेशमें घटचक्र कहा है॥ यह वास्तुकप्रकरण समाप्त भया॥

अथ धनाद्यर्थगमनम्।

"श्रुतिद्वयाश्विपुष्यांत्यानुराधामृगहस्तभे॥ पुनर्वसौ गोचरेष्टप्रदवारे व्रजेन्नरः॥ अभिजिद्भं गमे श्रेष्ठं दक्षिणाशां विना क्षणः॥ मघा चित्रा त्रयाश्लेषा भरण्यार्द्राः सकृत्तिकाः॥ पूर्वाभाद्रा च नेष्टाः स्युः प्रयाणे जन्मभं तथा॥ त्यजेद्रिक्तां पर्वषष्ठ्यष्टमीद्वादशिकास्तिथीः॥ कृत्तिकाभरणीपूर्वामघानां घटिकाः क्रमात॥ एकविंशतिसप्ताथ षोडशैकादश त्यजेत्॥ ज्येष्ठाश्लेषाविशाखासु स्वात्यां चापि चतुर्दश॥ भृगोर्मते संकटेपि सर्वां स्वातीं मघां त्यजेत्॥ भरण्याः पूर्वमर्धं च चित्राश्लेषांतकोत्तरम्॥ वारशूलः सोमशनी प्राच्यामीज्यस्तु दक्षिणे॥ रविशुक्रौ प्रतीच्यां स्यादुदीच्यां बुधमंगलौ॥ पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः क्रमात्त्रिश्चंद्रराशयः॥ संमुखो दक्षिणोब्जः सन्पृष्ठे वामेति निंदितः॥ दिशि यत्रोदेति शुक्रस्तां दिशं न व्रजेन्नरः॥ न व्रजेत्संमुखे ज्ञेपि शुभं पृष्ठेपि वामतः॥ रेवतीमेषगे चंद्रे शुक्रांध्यात्संमुखं व्रजेत्॥ प्रयाणे शुभाः केंद्र १। ४। ७। १०। कोणेषु ९। ५। शस्ताः खलारूया ३। य ११। पट्ट ६ खे १० प्वनिष्टः शनिः १० खे॥ कविः सप्तमे ७ ग्लौः षडष्टांत्यलग्ने ६। ८।१२। १ विलग्नेश्वरोप्यस्तषष्ठाष्टमांत्ये ६। ८। १२। १॥ केंद्रे वक्री वक्रिवर्गो लग्ने वारश्च वक्रिणः॥ कुंभः कुंभनवांशश्च लग्ने त्याज्यः प्रयत्नतः॥ मीनलग्ने तदंशे वा यातुर्मार्गोतिदुःखदः॥ शत्रुलग्नभतः षष्ठं तत्पतिर्वा मृतिप्रदः॥ शत्रुक्षेत्रे तदंशे वा तद्दृष्टे गमनं न सत्॥ लग्नेस्तंगतराशिश्च जन्मराशिश्च नो शुभः॥ शशीवर्गोत्तमे लग्ने वर्गोत्तमयुते जयः॥ शुक्लादितिथिवारर्क्षयोगोश्वैरष्टभिस्त्रिभिः॥ त्रिस्थस्तष्टोवशिष्टश्चेत्सर्वाकः सार्वकामिकः॥ त्रिषु क्रमाद्भवेच्छून्यं दुःखदारिद्यमृत्युदम्॥ यद्येकस्मिन्नेव दिने पुराद्गच्छेत्पुरांतरम्॥ प्रावेशिकी कालशुद्धिस्तदा ज्ञेया न यात्रिकी॥ प्रवेशान्निर्गमो नेष्टः प्रवेशो निर्गमादपि॥ जिष्णोः कदापि नवमे धिष्ण्ये वारे तिथौ तथा॥ याम्यादिग्गमनं शय्यावितानं छादनं

गृहे ॥ न कुंभमीनगे चंद्रे तृणकाष्ठस्य संग्रहः ॥ तर्पिताग्निसुहृद्विप्रभार्यादिस्तृप्तिमान् व्रजेत् ॥ स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव वा ॥ ताडयित्वा तु यो गच्छेद्ब्राह्मणानवमान्य च ॥ व्याधितः क्षुधितो वापि तदंतं तस्य जीवितम् ॥ क्रोधं क्षौरं तथा वांतिं तैलाभ्यंगाश्रुमोचनम् ॥ मद्यं मांसं गुडं तैलं सितान्यातिलकं तथा ॥ श्वेतभिन्नं च वसनं प्रयाणे परिवर्जयेत् ॥ क्षौरं पंचदिनं दुग्धं त्रिदिनं सप्तरात्रकम् ॥ मैथुनं चापरं तैलं मध्वाज्यं तद्दिने त्यजेत् ॥ रुग्यार्तवं बीजदानांतं तथा कुशकुनांस्त्यजेत् ॥'' सुमुहूर्ते स्वयं गमनासंभवे प्रस्थानं कार्यम् ॥

अब धन आदिके लिये यात्राको कहते हैं । कि, श्रवणसे दो, अश्विनी, पुष्य, रेवती, अनुराधा, मृगशिर, हस्त, पुनर्वसु; गोचरमें इष्टके दाता वारमें मनुष्य गमन करै । अभिजित् नक्षत्र और अभिजित् मुहूर्त; गमनमें दक्षिणदिशाके विना श्रेष्ठ हैं । मघा, चित्रा, से तीन, आश्लेषा, भरणी, आर्द्रा, कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपदा और जन्मनक्षत्र; ये यात्रामें इष्ट नहीं हैं । और रिक्ता, पर्व, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी; ये तिथि गमनमें इष्ट नहीं । कृत्तिका, भरणी, तीनों पूर्वा, मघा; इनकी क्रमसे इक्कीस, सात, सोलह, ग्यारह; घडी त्याग दे । और ज्येष्ठा, आश्लेषा, विशाखा, स्वाती; इनकी चौदह घडी त्याग दे । भृगुजीके मतसे तो संकटमेंभी संपूर्ण स्वाती, और मघाको त्याग दे; अर्थात् गमन न करै । और भरणीका पूर्वार्द्ध तथा चित्रा आश्लेषाके उत्तरार्द्धको भी वर्जदे । अर्थात् इनमें गमन नहीं करै । अब वारशूलको कहते हैं । कि, सोमवार, शनैश्चरको पूर्वदिशामें; बृहस्पतिको दक्षिणमें; रविवार, शुक्रवारको पश्चिममें; बुध, मंगलवारको उत्तरमें; दिक्शूल होता है । पूर्वदिशाके क्रमसे मेष आदि चन्द्रमाकी राशि; तीनवार आवृत्ति करके समझनी । अर्थात् मेषराशिका चन्द्रमा पूर्वमें; वृषका दक्षिणमें; मिथुनका पश्चिममें; कर्कका उत्तरमें; इसप्रकार समझना । चन्द्रमा; सन्मुख और दक्षिण होय तो श्रेष्ठ, पीछे, वामभागमें होय तो अत्यन्त निंदित है । जिस दिशामें शुक्र उदय हो उस दिशामें गमन न करै । यदि बुध सन्मुख होय तो गमन न करै, जो पीछे वामें होय तो शुभ है । रेवती और मेषराशिपर चन्द्रमा होय तो शुक्र अन्ध होता है; उसमें सन्मुख भी गमन करै तो दोष नहीं । गमनकालमें जो शुभग्रहके १–४–७–१० कोण ९–५ स्थानमें होय तो शुभ; और जो पापग्रह तीसरे, ग्यारहमें, छठे, दशमें स्थानमें अशुभ होते हैं । दशमें स्थानमें शनि; सातमें स्थानमें शुक्र; और चन्द्रमा; छठे, आठमे, बारहवें, और लग्नमें और लग्नका स्वामी, सातमें, छठे, आठमें, और बारहवें स्थानमें अशुभ होता है । और केन्द्रमें वक्री ग्रहहो; तथा लग्नमें; वक्री ग्रहका वार; कुम्भ लग्न और कुंभका नवांशक ये लग्नमें यात्राके विषे त्यागने योग्य हैं । मीनलग्नमें वा उसके नवांशमें यात्राके कर्ताको मार्गमें अत्यन्त दुःख होता है । अपना जन्मलग्न अथवा जन्मराशिके स्वामीका शत्रु; अथवा जन्मलग्न किंवा जन्मराशिसे छठालग्न, और उसका स्वामी मृत्युके दाता होते हैं । शत्रुके क्षेत्र वा उसके नवांशेमें वा शत्रु; लग्नको देखता होय तो गमन श्रेष्ठ नहीं । लग्नमें; सप्तराशि और जन्मकी राशि शुभ नहीं । और चन्द्रमा; वर्गोत्तममें वा वर्गोत्तमसे युक्त होय तो जय होता है । शुक्लपक्षसे लेकर; तिथि, वार, नक्षत्र इनके योगको तीन जगह रखकर; क्रमसे सात, आठ, तीनका भाग देनेपर जो शेष अंक रहैं तो संपूर्ण कामनाओंको देता है । और तीनोंमें शून्य रहै तो

क्रमसे दुःख, दारिद्र्य, और मृत्युको देता है। यदि एकदिनमें ही एकपुरसे दूसरे पुरमें चला जाय तो उसमें प्रवेशकी कालशुद्धिका विचार करै और यात्राकी कालशुद्धिका विचार न करै। जपके अभिलाषी मनुष्यको प्रवेशसे नवमें दिन गमन और गमनसे नवमें दिन प्रवेश इष्ट नहीं। तिसीप्रकार; नवम नक्षत्र, वार, तिथिमें इष्ट नहीं। और कुम्भ मीनके चन्द्रमामें; दक्षिणदिशामें गमन, शय्यावितान, घरका आच्छादन, तृणकाष्ठका संग्रह; इनको त्यागदे। अग्निको तृप्तकरके; मित्र,ब्राह्मण, भार्य्या आदिकी तृप्तिको करिके गमन करै। अपनी वा पराई स्त्री वा पुरुषको ताडना देकर; और ब्राह्मणोंका अपमान करके जो गमन करता है; और रोगी, भूखा, जो गमन करता है, तो जानना कि तबतकही उसका जीवित है। और क्रोध, क्षौर, वमन; तैलाभ्यंग, रोदन, मद्य, मांस, गुड, तेल, और सफेदसे अन्य तिलक, और शुक्लसे भिन्न वस्त्र; इनको यात्रामें वर्जदे। पांचदिन पहिले क्षौरको; तीनदिन पहिले दुग्धको, और सातरात्रि पहिले मैथुनको; और तैल मधु घीको गमनके दिन; त्यागदे। और स्त्रीका ऋतुके बीजदानतक; और खोटे शकुनोंको त्यागदे। श्रेष्ठमुहूर्तमें स्वयं गमन न करसकै तो प्रस्थान करै॥

अथ प्रस्थानविचारः।

प्रस्थानं नामाभीष्टवस्तुचालनम्॥ "यज्ञोपवीतकं शस्त्रं मधु च स्थापयेत्फलम्॥ विप्रादिक्रमतः सर्वे स्वर्णधान्यांबरादिकम्॥ राजा दशाहं पंचाहमन्यो न प्रस्थितो वसेत्॥" स्वयं गमनाद्वस्तुस्थापनाख्यप्रस्थानेर्धफलम्॥ प्रस्थानदेशावधिः॥ "गेहाद्गेहांतरं गर्गः सीम्नः सीमांतरं भृगुः॥ बाणक्षेपं भरद्वाजो वसिष्ठो नगराद्बहिः॥ प्रस्थानेपि कृते नेयान्महादोषान्विते दिने॥" प्रस्थानदिनेपि क्रोधादिकं वर्जयेत्॥ शकुनापशकुनप्रपंचोन्यत्र॥ इति यात्राप्रकरणम्॥

अभीष्ट वस्तुके चालनको प्रस्थान कहते हैं। यज्ञोपवीत, शस्त्र, मधु, फल; इनको ब्राह्मण आदिवर्णः क्रमसे स्थापन करैं। और सुवर्ण, धान्य, वस्त्र, आदिको भी स्थापन करैं। और राजा दशदिनतक, और अन्य पांचदिनतक प्रस्थान करनेतक न वसैं। अपने गमनसे वस्तुके प्रस्थानसे आधाफल होता है। प्रस्थानके देशकी अवधि; गर्गने एकघरसे दूसरे घरमें; भृगुने सीमासे दूसरी सीमामें; भरद्वाजने बाणके फैंकने पर्यंत; वशिष्ठने नगरसे बाहिर कही है। प्रस्थान करनेपर भी महान् दोषसे युक्त दिनमें गमन न करै। प्रस्थानके दिन भी क्रोध आदिको वर्जदे शकुन, अपशकुनोंका प्रपंच अन्य ग्रंथोंमें जानना॥ यह यात्राप्रकरण समाप्त हुआ॥

अथ गोचरप्रकरणम्।

"जन्मराशेः क्रूरचंद्रास्त्रिषड्दशमगाः शुभाः॥ सप्ताद्यगश्चापि चंद्रः शुक्ले द्विनवपंचसु॥ बुधोव्यंत्यसमे २। ४। ६। ८। १० जीवो द्विपंचनवसप्तसु॥ जन्मादिपंचसु तथा नवाष्टद्वादशे भृगुः॥ एकादशे सर्वखेटाः शुभाः स्युरिति संग्रहः॥ जन्मसंपद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधिकावधः॥ मैत्रातिमैत्राः स्युस्तारास्त्रि

रावृत्त्या स्वजन्मभात् ॥ क्रमतः सूर्यादिबलं नृपदर्शनसर्वकार्ययुद्धेषु ॥ शास्त्रकरग्रह-यात्रादीक्षासूद्यं विशेषेण ॥'' अनिष्टसूर्यादीनां दानानि द्वितीयपरिच्छेदांते ॥

अब गोचरप्रकरणको कहते हैं। अपनी जन्मराशिसे क्रूर ग्रह और चंद्रमा; तीसरे, छठे, दशमें हों, सातमें और लग्नमें चंद्रमा हो; शुक्लपक्षमें दूसरे नवमें पांचमें होः बुध; मीनको छोडकर समराशिमें हो; बृहस्पति, दूसरे, पांचमें, नवमें, सातमें हों और जन्मसे पांचतक वा नौ, आठ, बारहमें, शुक्र हो; ग्यारहमें संपूर्ण ग्रह हों; तो शुभ होते हैं । यह गोचरका संग्रह है । और जन्म, संपत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यारि, साधक, वध, मैत्र, अतिमैत्र; अपने नक्षत्रसे तीन बार आवृत्ति करनेपर; ये नाम होते हैं । और ये ताराएँ अपने नामके तुल्य फलको देती हैं क्रमसे सूर्यआदिका बल; राजदर्शन, संपूर्ण कार्य और युद्धोंमें शस्त्रग्रह, करग्रह, यात्रा, दीक्षा; इनमें विशेषकर देखना । अनिष्ट सूर्यआदिकोंके दान; दूसरे परिच्छेदके अन्तमें कह आये ॥

अथ पल्लीसरटयोः फलम् ।

''दक्षांगोदरनाभिहृत्सु पतिता पल्ली वरांगे हनुं मुक्त्वा नुः शुभदास्त्रियाः फलमिदं वामेतरव्यत्ययात् ॥ इत्याहुः सरटप्ररोहणफलं पातेन्यथैके वृथा पल्ल्यारोहणकेपि वस्त्रसहितं स्नात्वा चरेच्छांतिकम् ॥''

और दहिना अंग, उदर और हृदय और हनुको छोडकर मुखपर पडीहुई छपकिली मनुष्यको शुभ होती है । और स्त्रीको यह फल; विपरीतसे बांयें अंगमें समझना और सरट (करकैंटा) के प्ररोहणका फल भी यही है । और गिरनेमें पूर्वोक्तसे विपरीत है । और कोई तो वृथा कहते हैं; अर्थात् कुछ दोष नहीं । पल्लीके चढनेपर भी वस्त्रसे स्नान करकै शांति करनी ॥

अथ पल्लीसरटशांतिः ।

तयोः स्पर्शमात्रे स्नानं कृत्वा पंचगव्यं प्राश्याज्यमवलोक्याशुभनाशार्थं शुभ-वृद्ध्यर्थं वा शांतिः कार्या ॥ पल्ल्याः सरटस्य वा हेम्ना प्रतिमां कृत्वा रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य संपूज्य कलशे रुद्रं संपूज्य मृत्युंजयमंत्रेण खादिरसमिद्भिरष्टोत्तरशतं तिलैर्व्याहृतिभिरष्टोत्तरं सहस्रं शतं वा हुत्वा स्विष्टकृदाद्यभिषेकांते स्वर्णवस्त्र-तिलदानम् ॥

अव पल्ली, सरटकी शान्तिको कहते हैं । कि, इन दोनोंके स्पर्शमात्रमें स्नानको करिके और पंचगव्यको पीकर, घीको देखकर; अशुभका नाश और शुभकी वृद्धिके लिये शान्ति करनी और पल्ली, सरटकी; सुवर्णकी प्रतिमा बनाकर और उसको लालवस्त्र पहिना कर पूजै फिर कलशमें स्थापनकिये रुद्रका पूजन करिकै मृत्युंजयके मंत्रसे खैरकी समिधा और तिलोंसे; व्याहृति पुष्कर अष्टोत्तरशत, सहस्र, वा शत, आहुति देकर स्विष्टकृत् आदि अभिषेकके अन्तमें; सुवर्ण; वस्त्र और तिलोंका दान करे ॥

अथ कपोतप्रवेशमधुवल्मीकोत्पत्तिपिंगलास्वरकाकवैकृत-ग्राम्यारण्यादिमृगपक्षिविकारे शांतिः।

देवाः कपोत इति पंचर्चस्य सूक्तस्य सहस्रं शतं वा जपं कृत्वा समिदाज्यचरुभिः प्रत्येकमष्टोत्तरशतं 'यत इंद्र भयामहे स्वस्तिदा विशस्त्र्यंबकम्' इति मंत्रैर्हुत्वा व्याहृतिभिरष्टोत्तरशतं तिलहोमं कुर्यात् ॥ अथ वा पंचविप्रैः क्रमेण देवाः कपोत इति सूक्तं सुदेवो असीत्यृचं कनिक्रददिति शाकुंतसूक्तं 'नमो ब्रह्मणे नमो' इति मत्र च सहस्रादिसंख्यया जप्त्वोपनिषदश्च पठित्वा व्याहृतिभिस्तिलहोमं कुर्यात् ॥

अब कपोतका प्रवेश, मधु और वल्मीककी उत्पत्ति, पिंगला (कोतरी) का शब्द; काक-मैथुन, ग्राम और वनके मृग पक्षियोंका विकार; इनमें शांति कहते हैं। कि, "देवाः कपोत०" इस पांच ऋचाओंके सूक्तका; सहस्र वा शतबार; "यत इन्द्रभयामहे० । स्वस्तिदा विश०। त्र्यम्बकं० ।" इन मंत्रोंसे होम करके; व्याहृतियोंसे अष्टोत्तरशतबार होम करै । अथवा पांच ब्राह्मण; क्रमसे 'देवाः कपोत०' इस सूक्तको 'सुदेवो असि०' इस ऋचाको 'कनिक्रदत्०' इस शाकुन्त सूक्तको 'नमो ब्रह्मणे नमो०' इन मंत्रोंको सहस्रआदि संख्यासे जपकर और उपनिषदोंको पढकर व्याहृतियोंसे तिलका होम करै ॥

अथ काकस्पर्शमैथुनदर्शनादिशांतिः।

संकल्पाद्यग्निप्रतिष्ठापनांते कुंभे सौवर्णमिंद्रं लोकपालांश्च संपूज्याग्नौ चरुं श्रपयित्वा पलाशसमिच्चर्वाज्यव्रीहिभिः प्रत्येकमष्टोत्तरं सहस्रं शतं वा यत इंद्रेति मंत्रेण हुत्वा लोकपालेभ्यस्तैरेव द्रव्यैः दशकृत्वः सकृद्वा हुत्वा लोकपालबलिं कुंभाग्रे वायसेभ्यो बलिमैंद्रवारुणेति मंत्रेण दत्त्वा यजमानोभिषेकांते शतं दश वा विप्रान्भोजयेत् ॥

अब काकस्पर्श तथा उनके मैथुनके दर्शनकी शान्तिको कहते हैं । संकलपसे लेकर; अग्निके स्थापन पर्यन्त कर्मको करके; कुंभके ऊपर; सुवर्णका बनाया इन्द्र, और लोकपालोंका स्थापन, पूजन, करके; अग्निपर चरुको पकाकर; पलाशसमिध, चरु, आज्य और व्रीहि; इन एकएकसे एकहजार और आठ आहुति; वा अष्टोत्तरशत आहुति; 'यत इन्द्रेण०' इस मन्त्रसे देकर फिर लोकपालोंकोभी इन्हीं पलाश आदिसे दशवार वा एकवार आहुति देकर; लोकपालोंको बलि और कुम्भके आगे वायसोंको बलि 'ऐन्द्रवारुण०' इस मन्त्रसे देकर; फिर यजमान अभिषेकके अन्तमें सौ वा दश ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥

अथ घरट्टादिभेदनादिके।

घरट्टोलूखलमुसलदृषदासनमंचकादेरकस्मात्स्फोटने घृताक्तमधुयुताश्वत्थसमिधः प्रजापतये हुत्वा गायत्र्याष्टोत्तरसहस्रेणाभिमंत्रयेत ॥

घरट्ट (घरैट), उलूखल, मुसल, दृषद् आसन; तथा मंचक; आदिसे खाटआदि य

अकस्मात् फूटजायँ तो; घी और मधुसे युक्त अश्वत्थकी समिधाओंसे प्रजापतिका होम करके; गायत्रीमन्त्रसे एकहजार आठबार अभिमंत्रण करै ॥

अथ नानाविधदिव्यभौमातरिक्षोत्पातेषु शांतिः ।

संकल्पादि कृत्वा कुंभे इंद्ररुद्रौ संपूज्य यत इंद्र स्वस्तिदा विशस्पतिः ॥ अघोरेभ्योथेति मंत्रैः समिदाज्यचरुव्रीहितिलान्प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं हुत्वा व्याहृतिभिः कोटिहोमं लक्षहोममयुतहोमं तत्पादहोमं वा तिलैर्वित्तानुसारेण निमित्तानुसारेण च सप्तरात्रं त्रिरात्रमेकरात्रं वा कृत्वा सूर्यगणेशक्षेत्रपालदुर्गामंत्राणां जपं कृत्वा पायसादिना ब्राह्मणभोजनं कार्यम् ॥ यद्वा चंडीसप्तशतीजपः ॥ अथ वा रुद्रैर्जपोभिषेको वा ॥ अश्वत्थप्रदक्षिणा शिवपूजा गोविप्रपूजादि वेति नानोत्पातसामान्यशांतयः ॥

अब नानाप्रकारके; दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष उत्पातोंकी शांतिको कहते हैं । संकल्प आदिको करके कलशके विषै; इन्द्र रुद्रका पूजन करके, "यत इंद्र स्वस्तिदाविशस्पतिः० अघोरेभ्योथ० " इन मंत्रोंसे; समिधा, आज्य, चरु, व्रीहि, इन प्रत्येककी अष्टोत्तरशत आहुतियोंको देकर; कोटि (किरोड)आहुति;लक्ष आहुति; दशहजार वा ढाई हजार तिलोंकी आहुतियोंको; वित्त (धन) के अनुसार वा निमित्तके अनुसार; सात रात, तीन रात, वा एक रात; देकर; तथा सूर्य, गणेश, क्षेत्रपाल, और दुर्गा; इनके मंत्रोंको जप करके; पायस आदिसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै । अथवा सप्तशतीका जप करै । अथवा रुद्रीका पाठ और अभिषेक करै । अथवा अश्वत्थकी परिक्रमा; शिवपूजा; और गौ, ब्राह्मणोंकी पूजाको करै । यह नाना उत्पातोंकी शांतिका प्रकार समाप्त हुआ ॥

अथ गायत्रीपुरश्चरणप्रयोगः ।

देशकालौ संकीर्त्य करिष्यमाणगायत्रीपुरश्चरणेधिकारासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये इति संकल्प्य होमादिप्रत्याम्नायविधिना कृच्छ्राण्यनुष्ठायामुकशर्मणो मम गायत्रीपुरश्चरणेऽनेन कृच्छ्रत्रयानुष्ठानेनाधिकारसिद्धिरस्त्विति विप्रान्वदेत् ॥ विप्रा अधिकारसिद्धिरस्त्विति ब्रूयुः ॥ ततः करिष्यमाणपुरश्चरणांगत्वेन विहितं गायत्रीजपादि करिष्य इति संकल्प्य स्वयं विप्रद्वारा वा तत् कुर्यात् ॥ तद्यथा ॥ सप्रणवव्याहृतिकगायत्र्या अयुतं जपित्वा आपोहिष्ठेति सूक्तं एतोन्विंद्रमिति चतस्रः ऋतं चेति सूक्तं स्वस्ति न इत्याद्याः स्वस्तिमतीः स्वादिष्ठयेत्याद्याः पावमानीश्च सर्वाः प्रत्येकं दशवारं स्वयमन्यद्वारा वा जपं कृत्वा तत्सवितुरित्यस्याचार्यमृषिं विश्वामित्रं तर्पयामि ॥ गायत्रीछंदस्त० सवितारं देवतां० इति तर्पणं कृत्वा रुद्रं नमस्कृत्य कद्रुद्रायेत्यादीनि रुद्रसूक्तानि जपेत् ॥ ततो दिनांतरे देशकालौ संकीर्त्य मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं चतुर्विंशतिलक्षात्मकगायत्रीपुरश्चरणं स्वयं विप्रद्वारा वा करिष्ये तदंगत्वेन स्वस्तिवाचनं मातृ-

कापूजनं नांदीश्राद्धं विप्रद्वारा जपे जपकर्तृवरणं च करिष्ये इति संकल्पः ॥ संकल्पस्यापि ऋत्विक्कर्तृकत्वेमुकशर्मणो यजमानस्य सकलपापक्षयेत्यादियजमानानुज्ञया करिष्ये ॥ एवं पूर्वत्रापि संकल्प ऊह्यः ॥ नांदीश्राद्धांते सविता प्रीयतामिति ॥ गायत्रीपुरश्चरणे जपकर्तारं त्वां वृणे इति विप्रमेकैकं वृणुयात् ॥ वस्त्रादिभिः पूजयेत् ॥ अथ नित्यकर्म एकैको विप्रः स्वयं वा कुशाद्यासनोपविष्टः पवित्रपाणिराचम्य प्राणानायम्य देवताः प्रार्थयेत् ॥ "सूर्यः सोमो यमः कालः संध्ये भूतान्यहः क्षपा ॥ पवमानो दिक्पतिर्भूराकाशं खेचरामराः ॥ ब्रह्मशासनमास्थाय कल्पध्वमिह संनिधिम्" इति ॥ ततो देशकालौ संकीर्त्य प्रत्याहिकजपं संकल्प्य ॥ गुरवे नमः ॥ गणपतये० ॥ दुर्गायै० ॥ मातृभ्यो न० ॥ इति नत्वा त्रिः प्राणानायम्य ॥ तत्सवितुरितिगायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ जपे वि० ॥ विश्वामित्रऋषये नमः शिरसि ॥ गायत्रीछन्दसे नमो मुखे ॥ सवितृदेवतायै नमो हृदि इति न्यस्य ॥ तत्सवितुरंगुष्ठाभ्यां ० ॥ वरेण्यं तर्जनीभ्यां० ॥ भर्गोदेवस्य मध्यमा० ॥ धीमह्यनामिका० ॥ धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां ० ॥ प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ इति करन्यासं कृत्वैवं हृदयादिषडंगन्यासं कुर्यात् ॥ पूर्वोक्तरीत्या संस्कृतां जपमालां पात्रे निधाय संप्रोक्ष्य ॥ "ॐ महामाये महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥ चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मां सिद्धिदा भव" इति प्रार्थ्य ॥ "ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वम्" इति तामादाय मन्त्रदेवतां सवितारं ध्यायन् हृदये मालां धारयन्मंत्रार्थं स्मरन्मध्यंदिनावधि जपेत् ॥ अतित्वरायां सार्धत्रयप्रहरावधि ॥ जपांते पुनः प्रणवमुक्त्वा ॥ " त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव ॥ शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा ॥ " इति मालां शिरसि निधाय ॥ त्रिः प्राणानायम्य ॥ न्यासत्रयं कृत्वा ॥ जपमीश्वरार्पणं कुर्यात् ॥ प्रत्यहं समानसंख्य एव जपो न तु न्यूनाधिकः ॥ एवं पुरश्चरणजपसमाप्तौ होमः ॥ पुरश्चरणसांगतासिद्ध्यर्थं होमविधिं करिष्ये इति संकल्प्याग्निं प्रतिष्ठाप्य पीठे सूर्यादिनवग्रहपूजनादिकलशस्थापनांतिन्वादध्यात् ॥ चक्षुषी आज्येनेत्यंते गृहपीठदेवतान्वाधानम् ॥ अर्कादिसमिच्चर्वाज्याहुतिभिः कृत्वा प्रधानदेवतां सवितारं चतुर्विंशतिसहस्रतिलाहुतिभिस्त्रिसहस्रसंख्याकाभिः पायसाहुतिभिर्घृतमिश्रतिलाहुतिभिर्दूर्वाहुतिभिः क्षीरद्रुमसमिदाहुतिभिश्च शेषेण स्विष्टकृतमित्यादिचरुपायसतिलैः सहाज्यस्य पर्यग्निकरणादि ॥ आज्यभागांते इदं हवनीयद्रव्यमन्वाधानोक्तदेवताभ्योस्तु न ममेति यजमानस्त्यागं कुर्यात् ॥ होमे सप्रणवा व्याहृतिरहिता स्वाहांता गायत्री ॥ दूर्वात्रयस्यैकाहुतिः दूर्वासमिधां दधिमध्वाज्यांजनम् ॥ स्विष्टकृदादिबलिदानांते समुद्रज्येष्ठा इत्यादिभिर्यजमानाभिषेकः प्रतिलक्षं तु सुवर्णनिष्कत्रयं तदर्धं वा शक्त्या वा दक्षिणा ॥ होमांते जले देवं

सवितारं संपूज्य होमसंख्या दशांशेन २४०० गायत्र्यंते सवितारं तर्पयामी-त्युक्त्वा तर्पणं कार्यम् ॥ तर्पणदशांशेन २४० गायत्र्यंते आत्मानमभिषिंचामि नम इति स्वमूर्ध्न्यभिषेकः ॥ होमतर्पणाभिषेकाणां मध्ये यदेव न संभवति तत्स्थाने तत्तद्द्विगुणो जपः कार्यः ॥ अभिषेकसंख्या दशांशेनाधिकं वा विप्रभो-जनम् ॥ पुरश्चरणं पूर्णमस्त्विति विप्रान्वाचयित्वेश्वरार्पणं कार्यम् ॥ प्रत्यहं यज्जा-ग्रत इति शिवसंकल्पमंत्रस्य त्रिः पाठः ॥ कर्ता ब्राह्मणैः सह हविष्याशी सत्यवा-गधःशायी परगृहीतभूप्रदेशानतिचारी च भवेत् ॥ इत्यनन्तदेवीयानुसारेण चतु-र्विंशतिलक्षपुरश्चरणप्रयोगः ॥ऋग्विधाने तु ॥ "मध्याह्ने मितभुङ् मौनी त्रिः स्नाना-र्चनतत्परः ॥ लक्षत्रयं जपेद्धीमान" इति त्रिलक्षं पुरश्चरणमुक्तम् ॥ जपशतांशस्त्रि-सहस्रं होमः 'कलौ चतुर्गुणं प्रोक्तम्' इति पक्षे द्वादशलक्षजपो द्वादशसहस्रहोम इत्याद्यूह्यम् ॥ विष्णुशयनमासेषुपुरश्चरणं न कार्यम् ॥ तीर्थादौ शीघ्रं सिद्धिः ॥ बिल्ववृक्षाश्रयेण जपे एकाहात्सिद्धिरिति सर्वमन्त्रप्रक्रिया ॥ इति गायत्रीपुरश्चरणं ज्ञेयम् ॥

अब गायत्रीके पुरश्चरणकी विधिको कहते हैं। देश कालका कीर्तन करके; संकल्प करै कि, "करिष्यमाण गायत्रीपुरश्चरणमें अधिकारकी सिद्धिके लिये तीन कृच्छ्रव्रतोंको अमुक प्रत्याम्नायसे करताहूं" होम आदि प्रत्याम्नाय विधिसे कृच्छ्रोंको करके, ब्राह्मणोंसे यह कहै कि, 'करिष्यमाण गायत्रीपुरश्चरणमें अमुकशर्मा मेरी इस तीन कृच्छ्रके अनुष्ठा-नसे अधिकारकी सिद्धि हो'। फिर ब्राह्मण 'अधिकारकी सिद्धि हो' यह कहैं फिर 'करिष्यमाण पुरश्चरणके अंगरूप गायत्रीके जप आदिको करताहूं' यह संकल्प करके स्वयं वा ब्राह्मणके द्वारा इसप्रकार करै कि, ॐकार और व्याहृतियोंसहित दश हजार गायत्री जप कर फिर 'आपोहिष्ठा०' यह सूक्त; 'एतोन्विंद्रम्०' यह चार ऋचा; 'ऋतं च०'यह सूक्त; 'स्वस्तिनः०' इत्यादि 'स्वस्तिमती:०' ऋचा 'स्वादिष्ठया०' इत्यादि 'पावमानी०' ऋचाओंका दश २ बार, स्वयं वा अन्यके द्वारा जपको करिके, 'तत्सवितुः' इसके आचार्य तथा ऋषि विश्वामित्रका तर्पण करताहूं। गायत्रीछन्दका तर्पण करता हूं। सवितादेवताका तर्पण करताहूं। इसप्रकार तर्पण करके और रुद्रको नमस्कार करके 'कद्रुद्राय०' इत्यादि रुद्रसूक्तको जपै। फिर दूसरे दिन देशकालका कीर्तन करके "मेरे सकल पापोंके क्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिके लिये चौबीस लक्ष (२४०००००) गायत्रीका पुरश्चरण स्वयं वा ब्राह्मणके द्वारा करता हूं और उसके अंगरूप, स्वस्तिवाचन, मातृकापूजन, नांदीश्राद्धको 'और ब्राह्मणके द्वारा जप कराना होय तो जपके कर्ताके वरणको' करताहूं" यह संकल्प करै। और जो संकल्पको भी ऋत्विक् ही करै तो, "अमुकशर्मा यजमानके सकल पापोंके क्षयद्वारा इत्यादि कहकर उक्तकर्मको यजमानकी आज्ञासे करता हूं" इसी प्रकार पूर्वभी संकल्पका ऊह करना। नांदी-श्राद्धके अन्तमें "सविता प्रीयताम्" यह कहै। गायत्रीके पुरश्चरणमें जपकर्ताको 'त्वां वृणे०' इसप्रकार एक एक ब्राह्मणका वरण करै फिर वस्त्र आदिसे पूजन करै। अब नित्यकर्मके विषै, एक ब्राह्मण वा आप ही कुशाआदिके आसनपर बैठकर; हाथमें पवित्रीको लेकर, आच

मन, प्राणायाम करके देवताकी प्रार्थना करै इसप्रकार करै कि, सूर्य, सोम, यमराज, काल, दोनोंसंध्या, भूत, दिन, रात्रि, पवमान, दिक्पति, भूमि, आकाश, खेचर, देवता; ये संपूर्ण आप ब्रह्माकी आज्ञासे यहांपर पधारो। फिर देश, कालका कीर्तन करके; प्रात्याहिक, जप का संकल्प करके; गुरु, गणपति, दुर्गा और मातृका; इनको नमस्कार करके; तीनवार प्राणायामको करके; 'तत्सवितु०' गायत्रीका विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्रीछंद है; जपमें विनियोग है। 'विश्वामित्रऋषये नमः' इससे शिरमें। 'गायत्रीछंदसे नमः' इससे मुखमें। 'सवितृदेवतायै नमः' इससे हृदयमें, इसप्रकार न्यास करके "तत्सवितुः अंगुष्ठाभ्यां नमः वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः। भर्गोदेवस्य मध्यमाभ्यां नमः। धीमहि अनामिकभ्यां नमः। धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां नमः। प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।" इस करन्यासको करके इसीप्रकार हृदय आदि षडंगन्यासोंको करै। पूर्वोक्त रीतिसे संस्कार कीहुई जपमालाको पात्रमें रखकर और प्रोक्षण करके "ॐ महामाये महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणी। चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मा सिद्धिदा भव" अर्थात् हे महामाये! सर्वशक्तिरूपमाले धर्म अर्थ, काम, मोक्ष; तेरेही अधीन हैं इससे तू मुझे सिद्धिकी दाता हो इस मंत्रसे प्रार्थना करके "ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं०" इस मंत्रसे ग्रहण करके मंत्रकी देवता सविताका ध्यान करता हुआ हृदयमें मालाको धारण करता हुआ और मंत्रके अर्थको स्मरण करताहुआ मध्याह्नतक जप करै अत्यंत शीघ्रतामें साढे तीन प्रहरतक जप करै। जपके अन्तमें पुनः ॐकारका उच्चारण करके हे माले! तू सब देवताओंकी प्रीति करता है, तू मेरे शुभकी दाता हो। और हे भद्रे कल्याण, वीर्य्य; यशको कर; इस मंत्रसे मालाको शिरपर रखकर तीनबार प्राणायाम करै, तीनों न्यासोंको करके जपको ईश्वरके अर्पण करै। प्रतिदिन समानसंख्याके ही जपोंको करै। न्यून अधिक न करै। पुरश्चरण जपकी समाप्तिमें इसप्रकार होम करै कि, "पुरश्चरणकी सांगतासिद्धिके लिये होमको करता हूं" यह संकल्प करके अग्निका स्थापन करके सूर्य आदि नवग्रहोंकी पूजासे लेकर कलशस्थापनके अन्तमें अन्वाधान करै। 'चक्षुषी आज्येन' इस आहुतिके अन्तमें ग्रहरूपी देवताओंको अन्वाधानको आख आदिकी समिध चरु और घीकी आहुतियोंसे करके प्रधानदेवता सविताको चौवीस सहस्र तिलकी आहुतियोंसे, और तीस सहस्र पायसकी आहुतियोंसे, और घृतमिली तिलकी आहुतियोंसे, दूर्वाकी आहुतियोंसे, क्षीरवृक्षकी समिधकी आहुतियोंसे, अन्वाधान करके शेष होम स्विष्टकृत् आदि चरु, पायस, तिल इनके संग घीका पर्यग्निकरण आदि करै। फिर आज्यभाग आहुतिके अन्तमें यह हवनके योग्यद्रव्य अन्वाधानमें कहेहुये देवताओंके निमित्त हो यह मेरा नहीं है; इसप्रकार यजमान त्यागको करे। होम करनेमें ॐकारसहित व्याहृतियोंसे रहित अन्तमें स्वाहासे युक्त गायत्री होतीहै; तीन दूर्वाओंकी एक आहुति होती है; दूर्वा और समिधोंका दधि, मधु, घीसे अंजन करै अर्थात् इनको लगाले। स्विष्टकृत् आदि बलिदानके अन्तमें "समुद्रज्येष्ठा०" मन्त्रसे यजमानका अभिषेक करै। और प्रतिलक्ष निष्कभर सुवर्ण वा उससे आधा वा यथाशक्ति दक्षिणा दे। होमके अन्तमें जलमें सवितादेवताकी पूजाको करके होमसंख्याके दशांशसे २४०० गायत्रीके अन्तमें 'सवितारं तर्पयामि, यह कहकर तर्पण करै, तर्पणके दशांशसे २४० गायत्रीके अन्तमें "आत्मानमभिषिंचामि नमः" इस मन्त्रसे अपने मस्तकपर अभिषेक करै। होम, तर्पण, अभिषेक; इनमें जो न होसके उसके स्थानमें दूना जप करै। अभिषेककी

संख्यासे दशांश वा अधिक ब्राह्मणोंको भोजन कराके 'पुरश्चरण पूर्ण हो' यह ब्राह्मणोंसे कहा- कर ईश्वरके अर्पण करे । प्रतिदिन "यज्जाग्रतो०" इस संकल्प मन्त्रको तीनबार पढे । और कर्ता; ब्राह्मणोंके संग हविष्य भोजन करै; सत्य बोले; भूमिपर सोव; और जहां परगृहीत भूमिहो उन देशोंमें न जाय । अनन्तदेवीयके अनुसार चौबिस लक्ष पुरश्चरणका प्रयोग समाप्त हुआ । ऋग्विधानमें तो मध्याह्नमें; मितभोजन, मौन, तीनबार स्नान करताहुआ बुद्धिमान् मनुष्य; तीनलक्ष जपै यह तीनलक्षका पुरश्चरण कहा है । जपके शतांशसे तीन सहस्रका होम करै । कलियुगमें चतुर्गुणा कहा है; इसपक्षमें द्वादशलक्ष जप और द्वादशसहस्र होम; इत्यादि समझना। विष्णुशयनके मासोंमें पुरश्चरणको न करै। तीर्थ आदिपर शीघ्र सिद्धि होती है । विल्ववृक्षके नीचे जप करनेसे एकदिनमें सिद्धि होती है; यह सब मन्त्रोंकी प्रक्रिया है । यह गायत्रीका पुरश्चरण जानना ॥

अथ पूर्तकमलाकरेऽश्वत्थोपनयनम् ।

तत्र वर्णैः क्रमेण वृक्षस्थापनादष्टमैकादशे द्वादशवर्षे उपनयनोक्तमुहूर्ते पूर्वाह्णे कार्यम् ॥ शूद्रस्थापिताश्वत्थे पौराणिकमंत्रैरारामप्रतिष्ठामात्रं कार्यं नोपनयनम् ॥

अब पूर्तकमलाकरमें कहेहुये अश्वत्थके उपनयनको कहते हैं । उसको; तीनों वर्ण; क्रमसे वृक्ष लगानेसे अष्टम, एकादश,द्वादश वर्षमें; यज्ञोपवीतमें कहे हुये मुहूर्तमें पूर्वाह्णमें करै । शूद्रके लगाये पीपलमें पुराणके मंत्रोंसे आरामकी प्रतिष्ठामात्रको करै उपनयन न करै ॥

अथ प्रयोगः ।

कर्त्ता देशकालौ संकीर्त्य सर्वपापक्षयकुलकोटिसमुद्धरणपूर्वकविष्णुसायुज्यप्राप्ति- कामोऽश्वत्थोपनयनं करिष्ये इति संकल्प्य नांदीश्राद्धांते आचार्यं वृणुयात् ॥ आ- चार्यः पंचामृतैः शुद्धोदकैः सर्वौषधिजलैश्चाश्वत्थमभिषिच्य पिष्टातकेनालंकृत्य तत्पूर्वे स्थंडिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधानेऽग्निं वायुं सूर्यं त्रिरग्निं पवमानं प्रजापतिं द्विरोषधीर्वनस्पतिं पिप्पलं प्रजापतिं च पालाशसमिच्चर्वाज्यैः प्रत्येकमेकैकयाहुत्या शेषेणेत्यादि॥ अष्टचत्वारिंशन्मुष्टीनां तूष्णीं निर्वापप्रोक्षणे ॥ श्रपणाद्याज्यभागांते॥ युवं वस्त्राणीत्यश्वत्थं वस्त्रयुग्मेनावेष्ट्य यज्ञोपवीतमिति यज्ञोपवीतं दत्त्वा प्रावेपा- मेतिमेखलां त्रिरावेष्ट्याजिनं दंडं च तूष्णीं दत्त्वा ॥ अश्वत्थेव इत्यृचा गंधपुष्पैः संपूज्य देवस्य त्वेति मंत्रांते हस्तं गृह्णाम्यश्वत्थेति स्पृष्ट्वा सप्रणवव्याहृतिकां गा- यत्रीं त्रिर्जपित्वा ॥ अश्वत्थेवो निषदनमिति सूक्तेन व्याहृतिभिश्चाश्वत्थं स्थापया- मीति स्वर्णशलाकया स्पृष्ट्वाज्यपलाशसमिच्चरुभिः प्रत्येकं द्वादशमंत्रैर्द्वादशाहुती- र्जुहुयात्॥ मंत्रास्तु भूः स्वा० अग्नय इदं० भुवः स्वा० वायव० स्वः स्वा० सूर्याय० भूर्भुवः स्वः स्वा० प्रजापतय० अग्न आयूंषि० अग्निर्ऋषिः० अग्ने पवस्वेति त्रि- भिरग्नये पवमानायेदं० प्रजापते नत्व० प्रजापतय० ओषधयः संवदंते० अश्व- त्थे वो० ओषधीभ्य इदं० वनस्पते शत० वनस्पतय इ० द्वासुपर्णा० पिप्पला-

येदं० समस्तव्याहृतिभिः प्रजापतय इदं स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्याश्वत्थेव इति गंधपुष्पधूपदीपनैवेद्यफलतांबूलाद्यैः संपूज्याश्वत्थं स्पृष्ट्वाचार्याय गामन्येभ्यो दक्षिणां दत्त्वाश्वत्थवस्त्रादिकमाचार्याय दत्त्वाष्टौ विप्रान्भोजयेदिति॥अपुत्रेण पुंसा स्त्रिया वा वटप्लक्षाम्रादेः पुत्रत्वेन प्रतिग्रहः कार्यः ॥ देशकालौ संकीर्त्य मम महापापक्षयकुलत्रयसमुद्धरणप्रजापतिपुरगमननिरयस्थपितृुद्धरणमधुधारातृप्तिसिंद्ध्यर्थं तत्पुत्रत्वसिद्ध्यर्थममुकवृक्षं प्रतिग्रहीष्ये इति संकल्प्योपवासं कृत्वा रात्रावष्टौ विप्रानाहूय चन्द्रं संपूज्य जागरं भूशयनं वा कृत्वा प्रातर्वृक्षं संपूज्य तच्छायायां विप्रान्संभोज्य ॥ पुण्याहं वाचयित्वा प्रार्थयेत् ॥ " अपुत्रो भगवन्तोत्र पुत्रप्रतिकृतिं तरुम् ॥ ग्रहीष्यामि ममानुज्ञां कर्तुमर्हथ सत्तमाः ॥ " ताम्रपात्रे पंचसौवर्णफलानि बीजपंचरत्नयुतान्यधिवास्य लोकपालबलीन्दद्यात् ॥ परेद्युस्तिलाज्यचरुभिरष्टशतं वनस्पतिमन्त्रेण हुत्वा ॥ जातकर्मादिविवाहांतसंस्कारान्कृत्वाभिषिक्तः कर्त्ता पुष्पांजलिमादाय प्रार्थयेत् ॥ "ये शाखिनः शिखरिणां शिरसा विभूषा ये नंदनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः ॥ ये कामदाः सुरनरोरगकिन्नराणां ते मे नतस्य दुरितार्तिहरा भवन्तु ॥ एते द्विजा विधिवदत्र हुतो हुताशः पश्यत्यसौ च हिमदीधितिरंतरस्थः ॥ त्वं वृक्ष पुत्रपरिकल्पनया वृतोसि कार्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्यम्॥" अंगादंगादिति स्पृष्ट्वा विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा विसृजेत्॥ इति वटादितरुपुत्रविधिः ॥

अब प्रयोगको कहते हैं। कर्ता (यजमान) देशकालका कीर्तन करके, "सब पापोंका नाश और कोटिकुलका उद्धार पूर्वक विष्णु सायुज्यका अभिलाषी मैं अश्वत्थका उपनयन करताहूं" यह संकल्प करके नान्दीश्राद्धके अन्तमें आचार्यका वरण करै। आचार्य; पंचामृतसे और शुद्धजलोंसे और सर्व औषधीके जलोंसे, अश्वत्थका अभिषेक कर पिष्टातक (चूर्णविशेष) से लपेटकर; उसके पूर्वमें; स्थंडिलविषे अग्निको स्थापन करके; अन्वाधानमें; अग्नि, वायु, सूर्य, तीन अग्नि; पवमान, प्रजापति, दो औषधी, वनस्पति, पीपल, प्रजापति; इनको पालाशकी समिध, चरु, घीकी; एक २ प्रति एक २ आहुति दे। और शेषसे स्विष्टकृत् आदि करै। अडतालीस मुट्ठियोंका तूष्णीं निर्वाप और प्रोक्षण करै। पाक और आज्यभाग आहुतियोंके अन्तमें "युवं वस्त्राणि०" इस मंत्रसे अश्वत्थके ऊपर दो वस्त्र लपेटकर "यज्ञोपवीतं०" इस मंत्रसे यज्ञोपवीतको देकर; "प्रावेपाम०" इस मंत्रसे मेखलाको तीनवार लपेटकर; मृगचर्म और दंडको तूष्णीं देकर "अश्वत्थेवो०" इस ऋचासे गंध, पुष्पोंसे पूजकर "देवस्यत्वा०" इस मंत्रके अन्तमें; हे अश्वत्थ ! मैं तेरे हाथको ग्रहण करता हूं यह कहकर अश्वत्थको स्पर्श करके ॐकार व्याहृति सहित गायत्रीका तीन वार जप करै। फिर "अश्वत्थेवो निषदनं०" इस सूक्तसे और व्याहृतियोंसे; "अश्वत्थका स्थापन करता हूं" यह कहकर सुवर्णकी शलाकासे स्पर्श करके घी, पालाशकी समिध, चरु; इनकी प्रत्येक द्वादशमन्त्रोंसे द्वादश आहुति दे। मन्त्र तो यह है कि, "भूः स्वाहा० अग्नये इदं० भुवः स्वा० वायवे० स्वः स्वाहा सूर्याय इदं न मम। भूर्भुवः स्वः स्वा० प्रजापतये०। अग्नआयूꣳषि० अग्निऋषिः० अग्ने-

पवस्व०" इन तीन मंत्रोंसे "अग्नये पवमानायेदं०" अर्थात् यह स्वाहा पवमान अग्निके लिये है मेरा नहीं 'प्रजापते न त्व०' यह प्रजापतिको । "ओषधयः संवदन्ते० अश्वत्थेवो०" यह औषधियोंके लिये है । 'वनस्पते० इति०' यह वनस्पतिके लिये । 'द्वासुपर्णा०' यह पिप्पलके लिये है। समस्त व्याहृतियोंसे होम करके कहै कि,यह स्वाहा प्रजापतिके लिये है । स्विष्टकृत्आदि होमशेषको समाप्त करके 'अश्वत्थेवो०' इस मन्त्रसे गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, आदिसे अश्वत्थका पूजन करनेके अनन्तर स्पर्श करके आचार्यको गौ; अन्य ब्राह्मणोंको दक्षिणा; देकर अश्वत्थके वस्त्र आचार्यको देकर आठ ब्राह्मणोंको भोजन करावे इति । पुत्ररहित मनुष्य वा स्त्री बड, पिलखन, आम्र, आदिका पुत्ररूपसे प्रतिग्रह करै । कि, देशकालको कीर्तन करके 'मेरे महापापका क्षय, तीनकुलोंका उद्धार, प्रजापतिके पुरमें गमन, और नरकमें स्थित पितरोंका उद्धार, मधुधारणसे तृप्तिकी सिद्धिके लिये और पितरोंको पुत्रत्वकी सिद्धिके लिये अमुक वृक्षका प्रतिग्रह करता हूं, यह संकल्प करके; उपवास करनेके अनन्तर रात्रिमें आठ ब्राह्मणोंको बुलाकर चन्द्रमाको पूजकर जागरण वा भूमिशयनको करके, प्रातःकाल वृक्षको पूजकर उस छायामें ब्राह्मणोंको जिमाकर; पुण्याहवाचन करके प्रार्थना करै, कि, हे भगवन्त ! ब्राह्मणो; अपुत्र मैं पुत्रके प्रतिकृति वृक्षको ग्रहण करता हूं, हे अत्यन्त श्रेष्ठो ! मुझे आज्ञा करने योग्य हो । तांबेके पात्रमें; पंचरत्नरूप बीजोंवाले पांच सुवर्णके फलोंको रखकर लोकपालोंको बलि देवे । अगले दिन; तिल, घी, चरुकी अष्टोत्तरशत आहुति, वनस्पतिके मन्त्रसे होम कर, जातकर्म आदि विवाह पर्यन्त संस्कारोंको करके अभिषेक किया जिसका ऐसा कर्ता पुष्पांजलि लेकर प्रार्थना करै । कि,जो वृक्ष शिखरवालोंके शिखिरोंके भूषण हैं और जो नन्दन आदि वनोंके विषै विद्यमान हैं, जो सुर नर, उरगोंकी कामनाओंके दाता हैं। वे मेरे पापोंको नष्ट करो इन ब्राह्मणोंने जिसमें विधिपूर्वक होम किया है । ऐसी अग्नि और यह हिमदीधिति (चन्द्रमा) ये दोनों साक्षी हैं; कि, मैंने पुत्रकी कल्पनासे वरा है तू मेरे पुत्रकार्यको सदैव करिये । "अंगादंगात्०" इस मंत्रसे स्पर्श करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर विसर्जन करै ॥ यह वट आदि वृक्षकी पुत्रविधि समाप्त हुई ॥

अथ सकलकर्मसाधारणपरिभाषा ।

"सर्वेषु पाकयज्ञेषु भवेद्ब्रह्मा कृताकृतः ॥ पात्रासादनमिच्छात आज्यादिश्रपणादि च ॥ स्रुवादिमार्जनं चेध्मरज्जुप्रहरणं तथा ॥ पूर्णपात्रं भवेन्नित्यमाज्यस्योत्पवने तथा ॥ व्रीहीणामवघातश्च तण्डुलेषु कृताकृतः ॥ द्रवीभूतघृतस्यापि विलापनविधिस्तथा ॥" प्रतिपदोक्ताज्यहोमे परिस्तरणं विकल्पितम् ॥ अनादिष्टाज्यहोमे तु नित्यम् ॥ आज्यभागसहिततद्रहितकर्मणोस्तंत्रप्रयोगे आज्यभागाननुष्ठानमेव युक्तम् ॥ सर्वत्राज्यभागयोर्विकल्पितत्वात ॥ अनेकपाकयज्ञानामेककालानुष्ठाने समानतंत्रता ॥ तेन स्विष्टकृताद्येकमेव ॥ यत्र द्रव्यं नोक्तं तत्राज्यं ग्राह्यम् ॥ "मंत्रांते कर्म कर्तव्यं मंत्रस्य करणत्वतः ॥ कर्मावृत्तौ तु मंत्रस्याप्यावृत्तिर्गृह्यकर्माणि ॥" समंत्रकहोमे तूष्णीं निर्वापः ॥ नाम्ना होमे

नाम्नैव निर्वापादि ॥ यत्र मंत्रेण नाम्ना वा होमो नोक्तस्तत्र नाम्नैव होमः ॥ समन्त्रकहोमे सहैवानेकदैवत्यचरुपाकेपि न विभागो नाभिमर्शश्च ॥ अनुक्तौ दक्षिणः करः दिशामनुक्तौ प्राच्युदीशान्यः ॥ तिष्ठन्नासीन इत्याद्यनुक्तावासीनतैव ॥ अनादेशे स्वयं कर्ता ॥ अविज्ञातस्वरो मन्त्रः सौत्र एकश्रुतिर्भवेत् ॥ "होमेषु मंत्रं स्वाहांतं प्रणवाद्यं च कारयेत् ॥ विप्रादीनां द्विदर्भं स्यात्पवित्रं ग्रथितं न वा ॥" आहुतिप्रमाणम् ॥ "कर्षप्रमाणमाज्यादिलाजामुष्टिमिता मताः ॥ अन्नग्राससमं ग्राह्यं कन्दानामष्टमांशकः ॥ तिलसक्तुकणादीनां मृगीमुद्राप्रमाणतः ॥ ताम्रपात्रेण पिहिते ताम्रपात्रादिके शुभे ॥ अग्निप्रणयनं कार्यं मृन्मये राजतादिके ॥ उत्तमः श्रोत्रियागारान्मध्यमः स्वगृहादितः ॥" नाप्रोक्षितमिंधनमग्नावादध्यात् ॥ 'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ॥' सदेति कर्मांगता पुरुषार्थता च ॥ तेन कर्मकाले शिखाबंधनाद्यभावे प्रायश्चित्तद्वयमन्यदैकमेव ॥ दशविधा दर्भा उक्ताः ॥ वटप्लक्षबिल्ववैकंकतचन्दनदेवदारुसरलवृक्षजा अपि क्वचित्समिधः ॥ "प्रभुः प्रथमकल्पस्य योनुकल्पेन वर्तते ॥ स नाप्नोति फलं तस्य परत्रापि श्रुतिः स्मृतिः ॥ बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य यत्कर्म चोदितम् ॥ तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत् ॥" अथ कर्मविशेषेग्निनामानि ॥ "अग्निस्तु मरुतो नाम गर्भाधाने विधीयते ॥ पवमानः पुंसवने सीमन्ते मंगलाभिधः ॥ प्रबलो जातसंस्कारे पार्थिवो नामकर्मणि ॥ अन्नाशने शुचिः प्रोक्तः सभ्यः स्याच्चौलकर्मणि ॥" व्रतादेशे समुद्भवः गोदानादौ सूर्यः विवाहे योजकः ॥ आवसथ्ये द्विजनामा ॥ प्रायश्चित्ते विटः ॥ पाकयज्ञेषु पावकः ॥ पित्र्ये कव्यवाहनः दैवे हव्यवाहनः ॥ शांतिके वरदः प्रोक्तः पौष्टिके बलवर्धनः ॥ मृतदाहे क्रव्यादः ॥ "ज्ञात्वैवमग्निनामानि गृह्यकर्म समारभेत् ॥ पलाशेन जुहूः कार्या खदिरेण स्रुवः स्रुचः ॥" तदभावे यथालाभं यज्ञियवृक्षजाः ॥ तदभावे पलाशमध्यपर्णैर्वा पिप्पलपर्णैर्वा होमः॥ एवं चमसादयोपि खदिरादियज्ञियवृक्षजाः ॥ "काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके हि सः ॥ काम्येप्युपक्रमादूर्ध्वमन्ये प्रतिनिधिं विदुः ॥ न स्यात्प्रतिनिधिर्मंत्रकर्मदेवाग्निकर्तृषु ॥ न देशारणिकालेषु त्रिषु प्रतिनिधिर्मतः ॥ नातिप्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित ॥ स्वकालादुत्तरो गौणः कालः सर्वस्य कर्मणः ॥ तर्पणेष्वासने श्राद्धे भुक्तौ मूत्रपुरीषयोः ॥ षट्सु निर्माल्यका दर्भा दर्व्याद्या अभिचारके ॥ मंत्रोपि यश्च शूद्रार्थे ब्राह्मणः प्रेतभोजने ॥" अथ कर्मांगदेवताः ॥ विवाहस्याग्निर्देवता ॥ तेन विवाहांगभूतस्वस्तिवाचनाद्यंते कर्मांगदेवताग्निः प्रीयतामिति वदेत् ॥ औपासनेग्निसूर्यप्रजापतयः स्थालीपाकेग्निः ॥ गर्भाधाने ब्रह्मा ॥ पुंसवने प्रजापतिः ॥ सीमन्ते धाता ॥ जातकर्मणि मृत्युः ॥ नामकर्मनिष्क्रमणान्नप्राशनेषु

सविता ॥ चौले केशिनः ॥ उपनयने इन्द्रः श्रद्धा मेधाः॥ अंते सुश्रवाः ॥ पुनरुपनयनेऽग्निः ॥ समावर्तनस्येंद्रः ॥ उपाकर्मणि व्रतेषु च सविता वास्तुहोमे वास्तोष्पतिरंते प्रजापतिः ॥ आग्रयणे आग्रयणदेवताः ॥ सर्पबलेः सर्पाः ॥ तडागादीनां वरुणः ॥ ग्रहयज्ञे आदित्यादिनवग्रहाः ॥ कूष्मांडहोमे चांद्रायणे अग्न्याधाने चाग्न्यादयः ॥ अग्निष्टोमस्याग्निः ॥ अन्येष्विष्टकर्मसु प्रजापतिरिति ॥ अथ कलियुगे कार्याकार्यविवेकः "गीता गंगा तथा विष्णुः कपिलाश्वत्थसेवनम्॥ एकादशीव्रतं चैव सप्तमं न कलौ युगे ॥ विष्णुं शिवं वा भजतां गुरोः पित्रोश्च सेविनाम्॥ गोवैष्णवमहाशैवतुलसीसेविनामपि ॥ न स्यात्कलिकृतो दोषः काश्यां निवसतामपि॥ कलौ गुरूणां भजनमीशभक्त्यधिकं स्मृतम् ॥ जपादौ यत्र या संख्या कलौ सा स्याच्चतुर्गुणा ॥ कलौ दानं महाश्रेष्ठं शिवविष्ण्वोश्च कीर्तनम्॥ कृते यद्दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तु ॥ द्वापरे तत्तु मासेन अहोरात्रेण तत्कलौ" ॥ प्रथमस्कंधे ॥ 'कुशलान्याशु सिद्ध्यंति नेतराणि कृतानि यत्' इति कलौ पुण्यकर्मणां संकल्पेपि सिद्धिः ॥ पापानां त्वाचरणादेवेत्युक्तम् ॥ 'स्मृत्यंतरविरोधे तु कलौ पाराशरी स्मृतिः ॥' "ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ॥ यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥" इति हेमाद्रौ व्यासवचनम् ॥ अत्र कृतयुगाद्यधिकरणकध्यानादिफलार्थे कल्यधिकरणकं कीर्तनं विधीयत इति वाक्यार्थः ॥ कौस्तुभकर्तृपितामहैर्भक्तिनिर्णये विस्तरेण निरूपितः ॥ हेमाद्रौ ॥ "कलिं सभा जयंत्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ॥ यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥" इति श्रीभागवतवचनमुदाहृत्य संकीर्तनेन हरिसंकीर्तनेत्यर्थ इति हेमाद्रावेव व्याख्यातम् ॥ "कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ॥ यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजंतीह सुमेधसः ॥" यज्ञादिस्वस्वाचारमाचरद्भिरपि कलिषु संकीर्तननिष्ठैर्भाव्यमित्याशय इति कौस्तुभे॥ अनेन चतुर्वर्गफलं नारायणाश्रयणमात्रेण भवतीति सिद्धम्॥"या वै साधनसंपत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये ॥ तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ॥" इति भारतोक्तेः ॥ श्रीभागवतेपि ॥"धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ एकं ह्येव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥" इति ॥ अत्रैकपदावधारणादिपदैरन्यसाधनानपेक्षत्वं भक्तियोगस्योच्यते ॥ ज्ञानयोगादेश्च हरिपदसेवनसापेक्षत्वं ध्वन्यते ॥ तथा च स्पष्टमेकादशादौ ॥ "तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः॥ न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ॥ योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥ सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेंजसा ॥ स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथं चिद्यदि वांछति ॥ इति ॥ श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्यते विभो क्लिश्यंति ये केवलबोधलब्धये ॥ तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ " इत्यादिपरसहस्रवचनानि ॥ ज्ञानयोगस्य भगवदाराधनं तत्प्रसादं च

विनेव सिद्धिरिति कापि केनाप्यनुक्तेश्च ॥ सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववदित्यधिकरणे ज्ञानोत्पत्तौ यज्ञादिसर्वसाधनापेक्षोक्तेश्च ॥ किं च भक्तियोगे दुराचारिणोपि दृढवैराग्यरहितस्याप्यधिकारो गम्यते ॥ "अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥ साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ॥ कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोस्य सिद्धिदः॥" इत्यादिवचनेभ्यः ॥ नैवं दुराचारिणापि दृढवैराग्यादिसाधनचतुष्टयसंपत्त्यभावेपि वेदांतश्रवणाद्यनुष्ठितौ ज्ञानोत्पत्तिर्भवतीति क्वाप्युपलभ्यते ॥ न च यथोक्ताधिकारसंपत्तिं विनानुष्ठितं साधनं किमपि फलाय कल्पते ॥ तस्मात्सर्वथा सर्वैः कलौ श्रीहरिपादसेवनादिभक्तियोगाश्रयणमेव कर्तव्यमिति सिद्धम् ॥

अब सकल कर्मकी साधारण रीतिको कहते हैं। कि, संपूर्ण पाकयज्ञोंमें ब्रह्माको करै, चाहै न करै। पात्रोंका आसादन (रखना) भी इच्छासे है। आज्य आदिका श्रपण (पाक) आदिभी इच्छासे है। स्रुव आदिका मार्जन, इध्म रज्जुका ग्रहण ये भी इच्छाके अनुसार हैं। पूर्णपात्र और उत्पवन अवश्य होता है और तंडुलोंमें व्रीहियोंका अवघात करो चाहै न करो। और द्रवहुये घीका विलापन (तपाना) करै चाहै न करै। प्रतिपादमें जो घीका होम उसमें परिस्तरणमें विकल्प है। कुशा रक्खै वा न रक्खै। अनादिष्टा घीके होममें तो परिस्तरण अवश्य है। आज्यभागसहित और आज्यभागरहित कर्मोंके तन्त्रसे प्रयोगमें आज्यभाग आहुतिका न करना ही युक्त है; क्योंकि, सर्वत्र आज्यभागकी दोनों आहुतियोंमें विकल्प है। अनेक पाकयज्ञोंको एक कालमें करै तो समानतंत्रता होती है; तिससे स्विष्टकृत् आदि एकही होते हैं। जहां द्रव्य नहीं कहा वहां आज्य ग्रहण करना। मंत्रके अन्तमें कर्म करना। क्योंकि, मंत्रकाही करना है। और गृह्यके कर्ममें कर्मकी आवृत्ति होनेपर मंत्रकीभी आवृत्ति होती है। मंत्रोंसहित होममें तूष्णीं निर्वाप होता है। नाममंत्रोंके होममें नामसे ही निर्वाप आदि होते हैं। जहां मंत्रसे वा नामसे होम नहीं कहा वहां नामसेही होम होता है। समंत्रक होममें और संगही अनेक देवताओंके चरु पकानेमें विभाग और अभिमर्श नहीं होते। जहां हस्त न कहा होय वहां दक्षिण कर लेना। दिशा न कही होय तो पूर्व, उत्तर, ईशान; लेनी। जहां खडा-होकर वा बैठकर न कहा हो वहां बैठकरही करै। कर्ताके न कहनेमें स्वयं कर्ता है। जिस मंत्र और सूत्रके स्वरका ज्ञान न हो, वह एकश्रुति (विनास्वर) पढा जाता है। होमोंमें मंत्रकी आदिमें ॐकार और अन्तमें स्वाहा लगालेना। ब्राह्मण आदिकी पवित्री दो कुशाकी होती है; वह ग्रंथिसहित हो चाहै न हो। आहुतिका प्रमाण यह है; कि, आज्य आदि कर्षभर और लाजा मुष्टिभर कही है। अन्न; ग्रासके समान लेना कंदोंमें ग्रासका आठमा भग लेना। तिल, सक्तु, कण, आदि मृगीमुद्राके प्रमाणसे लेने। ताम्रके पात्रसे ढके हुये ताम्रपात्र आदि शुद्धमें अग्निका प्रणयन करना मिट्टी वा चांदी आदिका हो उसमें अग्निको लावै। वेदपाठीके घर आदिकी अग्नि उत्तम और अपने घर आदिकी मध्यम होती है। विना प्रोक्षण किये इंधनको अग्निमें न रक्खै। सदा उपवीती रहै और सदा शिखामें ग्रंथि लगाये रहै। सदा कहनेसे कर्मकी अंगता और पुरुषार्थता दिखाई है तिससे कर्मकालमें शिखाबंधन आदिके

अभावमें दो प्रायश्चित्त हैं और अन्यसमयमें एकही है । दशप्रकारके दर्भ कह आये । बड, पिलखन, बेल, बैकंकत, चंदन, देवदारु, सरल; इन वृक्षोंकी भी समिध कहीं२ कही हैं, जो अनुकल्पसे वर्तता है वह पहिले कल्पका प्रभु है; वह उसके फलको परलोकमें प्राप्त नहीं होता यह श्रुति और स्मृति हैं; अर्थात् मुख्य कर्म करनेसे फल होता है गौणसे नहीं । बहुत वा अल्प जो कर्म अपने गृह्यसूत्रमें जिसको कहा है उसको उतना करनेसे सब किया जाता है । अब कर्मविशेषमें अग्नियोंके नामोंको कहते हैं कि, गर्भाधानमें मरुतनामकी अग्नि होती है, पुंसवनमें पवमान, सीमंतमें मंगल, जातसंस्कारमें प्रबल, नामकर्ममें पार्थिव, अन्नप्राशनमें शुचि, चौलकर्ममें सभ्य, व्रतादेशमें समुद्भव, गोदान आदिमें सूर्य, विवाहमें योजक, आवसथ्यमें द्विज, प्रायश्चित्तमें विट, पाकयज्ञोंमें पावक, पितृकर्ममें कव्यवाहन, शांतिके कर्ममें वरद, पौष्टिकमें बलवर्द्धन, मृतकके दाहमें क्रव्याद नामकी अग्नि होती है । इसप्रकार अग्नियोंके नामोंको जानकर गृह्यकर्मका प्रारंभ करै । पलाशके काष्ठकी जुहू बनावै । खैरके स्रुव और स्रुच् ये न मिलें तो जो यज्ञके योग्य वृक्ष मिलैं उनके बनावै; वेभी न मिलैं तो पलाशके मध्यपर्णोंसे बना ले । वा पीपलके पत्तोंसे होम करै । इसीप्रकार समिध आदिभी खदिर आदि यज्ञके वृक्षकी ही होती हैं । काम्यकर्ममें प्रतिनिधि नहीं होता किंतु नित्य और नैमित्तिक कर्ममें होता है । कोई तो काम्यकर्ममें भी प्रारंभके पीछे प्रतिनिधिको मानते हैं । मंत्र, कर्म, देव, अग्निके कर्तामें प्रतिनिधि नहीं होता और देश, अरणि, काल इनमें नहीं होता । और निषिद्ध वस्तुको कहीं भी प्रतिनिधि न करै । संपूर्णकर्मोंका अपने कालसे उत्तरका काल गौण है । तर्पण, आसन, श्राद्ध, भोजन, मूत्र, मल, इन छओंमें दर्भ निर्माल्य होजाते हैं । दर्वा आदि अभिचार (मारण) के कर्ममें निर्माल्य होजाते हैं । और शूद्रके लिये जपा, मंत्र; प्रेतभोजनमें ब्राह्मण; निर्माल्य होता है । अब कर्मके अंग देवताओंको कहते हैं कि विवाहका अग्निदेवता है, तिससे विवाहके अंग स्वस्तिवाचनके अंतमें कर्मांगदेवता अग्नि प्रसन्न हो ऐसे कहै । उपासनाके होम आदि कर्ममें अग्नि, सूर्य, प्रजापति, देवता हैं । स्थालीपाकमें अग्नि देवता है । गर्भाधानमें ब्रह्मा । पुंसवनमें प्रजापति । सीमंतमें धाता । जातकर्ममें मृत्यु । नाम, निष्क्रमण, अन्नप्राशनोंमें सविता । मुंडनमें केशी । उपनयनमें इंद्र, श्रद्धा मेधा उपनयनके अन्तमें सुश्रवा । पुनः उपनयनमें अग्नि उपाकर्म और व्रतोंमें सविता । वास्तु होममें वास्तोष्पति । अंतमें प्रजापति । आग्रयणमें आग्रयणदेवता । सर्पोंकी बलिका सर्प । तडाग आदिका वरुण । ग्रहोंके यज्ञमें आदित्य आदि नवग्रह । कूष्मांडहोममें, चांद्रायणमें, अग्न्याधानमें;चंद्र,अग्नि आदि हैं । अग्निष्टोमका अग्नि । अग्निके स्विष्टकर्मोंमें प्रजापति देवता है। अब कलियुगमें कार्य अकार्यके विवेकको कहते हैं । कि, गीता, गंगा और विष्णु, कपिल और पीपलकी सेवा और एकादशीका व्रत, इनसे अन्य सातमां कलियुगमें नहीं है । विष्णु और शिवको जो भजते हैं, गुरु, पिताकी जो सेवा करते हैं; गौ, वैष्णव, महाशैव, तुलसी, इनकी जो सेवा करते हैं और काशीमें जो निवास करते हैं; उनको कलियुगके किये दोष नहीं लगते । कलियुगमें गुरुओंका भजन; परमेश्वरकी भक्तिसे अधिक कहा है । जप आदिमें जो संख्या जहां है वह कलियुगमें चौगुनी होती है । कलियुगमें दान और शिव, विष्णुका कीर्तन, महाश्रेष्ठ है । कृतयुगमें जो दशवर्षमें होता है वह त्रेतायुगमें एकवर्षमें और द्वापर में एक मासमें और कलियुगमें वह अहोरात्रमें होता है । और प्रथमस्कन्धमें लिखा है; कि,

शुभकर्मोंकी सिद्धि शीघ्र होती है और अन्यकर्मोंकी सिद्धि करनेसे होती ह। इससे पुण्यकर्मोंकी सिद्धि संकल्पसे भी होती है, और पापकर्मोंकी सिद्धि आचरणसे ही होती है। जो अन्यस्मृतिके साथ विरोध आता होय तो कलियुगमें पाराशरस्मृतिका मुख्य प्रमाण है। जो कृतयुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे, द्वापरमें पूजा करनेसे फलकी सिद्धि होती है, वह कलियुगमें केशवके कीर्तनसे होती है; यह हेमाद्रिग्रंथमें व्यासका वचन है। वहां यह तात्पर्य है कि, जो फलकी प्रीतिके लिये सत्ययुग आदिमें ध्यान आदि कहा है उसी फलके लिये कलियुगमें केशवका कीर्तन है। कौस्तुभके कर्ता श्रीपितृपितामहने इसीका अर्थ विस्तारपूर्वक कहा है। हेमाद्रिके विषै, सारवस्तुके ग्रहण करनेवाले गुणज्ञ, आर्यजन, कलियुगकी प्रशंसा करते हैं; कि, जिसमें कीर्तनमात्रसे ही सब कामनाओंकी सिद्धि होती है। इस श्लोकको लिखकर संकीर्तन शब्दका अर्थ; हरिका कीर्तन उसी हेमाद्रिने ग्रंथमें किया है। जो कृष्णवर्ण और कान्तिसे कृष्ण, सांगोपांग, अस्त्र, पार्षदोंसमेत श्रीकृष्णका संकीर्तनरूप यज्ञोंसे सत्पुरुष पूजन करते हैं अर्थात् यज्ञ आदि अपने २ आचारवाले पुरुष कलियुगके विषै, कीर्तनको अवश्य करैं यह कौस्तुभग्रन्थमें लिखा है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि, चतुर्वर्ग (धर्म अर्थ, काम, मोक्ष) की सिद्धि श्रीनारायणके आश्रयसे होती है। और भारतमें लिखा है कि, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; इन पुरुषार्थ चतुष्टयकी साधनरूप सामग्री है उसके विना ही नारायणके आश्रय पुरुष पुरुषार्थको प्राप्त होता है। श्रीभागवतमें भी लिखा है कि, जो पुरुष; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; इनमेंसे जिस श्रेयकी इच्छा करै उस वस्तुकी प्राप्ति श्रीहरिके चरणसेवनसे होती है। इस श्लोकमें एक पद और अवधारण (एकं ह्येव) वाचीपदसे भक्तियोगमें अन्य किसी साधनकी अपेक्षा नहीं। और ज्ञान, योग आदिमें हरिचरणके सेवनकी अपेक्षाको दिखाई है। सोई स्पष्टकर एकादश आदि स्कन्धमें लिखाहै; कि, तिस कारणसे जो मेरी भक्तिमें तत्पर है ऐसे मेरे शरण आये योगीको; ज्ञान, वैराग्य, ये प्राय: श्रेयकर्ममें किंचित्कर नहीं होते। कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान धर्म और इतर श्रेष्ठ कर्मोंसे जो प्राप्त होता है उस सबको मेरा भक्त सुखसे प्राप्त होता है। जो स्वर्ग, अपवर्गरूप मेरे धामको इच्छा करता है वह सब मेरी भक्तिसे प्राप्त होता है। जो श्रेयको देनेवाली मेरी भक्तिको त्याग कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिये क्लेश उठाते हैं उनको केवल वह क्लेशही शेष "थोथे तुषके करनेवालोंकी समान" रहता है। इत्यादि बातके बोधन करनेवालेसे अधिक हजारों वचन हैं। और यह कहींभी किसीने नहीं कहा कि, ज्ञान, योगकी प्राप्ति भगवान्की सेवा और उसकी प्रसन्नताके विना होजाती है। यज्ञ आदिकी श्रुतिसे सब साधनोंकी अपेक्षा अश्वके समान है। इस अधिकरणमें ज्ञानकी उत्पत्तिमें यज्ञ आदि सब साधनोंकी अपेक्षा कही है। और भक्तियोगके विषै दुराचारी हो और दृढ वैराग्यसे रहित होय तो उसको भी इत्यादि वचनोंके वलसे अधिकार प्रतीत होता है कि, जो दुराचारी हो वहभी अनन्यमनसे मेरी भक्ति करता है उसकोही साधु समझना क्योंकि वह सम्यक्ज्ञानी है शीघ्रही धर्मात्मा और शान्तिको प्राप्त होता है। और हे कौन्तेय! मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि, मेरा भक्त नाशको नहीं प्राप्त होता है। न तो अत्यन्त विरक्त हो और न अत्यन्त आसक्त हो उसको भक्तियोग सिद्धिका देनेवाला है। और यह भी कहीं नहीं मिलताहै कि, जो दुराचारी हो और दृढवैराग्य आदिकी सम्पत्तिसे रहित होय तो उसको भी वेदान्तश्रवण आदिसे

ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । अधिकारके विना कोई कर्म किसी फलको नहीं करसक्ताहै; तिससे यह बात सिद्ध हुई है कि, कलियुगके विषे सर्वथा श्रीहरिके चरणसेवन आदि भक्तियोगकोही अंगीकार करना ॥

अथ कलौ निषिद्धानि ।

"समुद्रयात्रास्वीकारः कमंडलुविधारणम् ॥ द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥ देवराद्यैः सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः ॥ मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥ दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च ॥ दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥ महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः ॥ इमान्धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥ मद्यं वर्ज्यं महापापे मरणांतविशोधनम् ॥ सौत्रामण्यादियज्ञेपि सुरापात्रग्रहस्तथा ॥ मद्यभक्षादिवामाद्यागमस्य तु न मानता ॥ मीमांसाद्वितये सर्वशिष्टैश्च तदनादरात् ॥ औरसो दत्तकश्चैतौ पुत्रौ कलियुगे स्मृतौ ॥ अन्यान्दशविधान्पुत्रान्क्रीताद्यान्वर्जयेत्कलौ ॥" कौस्तुभे तु स्वयं दत्तस्तृतीयोपि कलौ विहित इति नवैव कलौ निषिद्धा इत्युक्तम् ॥ कलियुगे ब्रह्महंत्रादेरेवाव्यवहार्यत्वादिरूपं पातित्यम् ॥ तत्संसर्गिणस्तु नरकहेतुदोषसत्त्वेपि पातित्यं नास्ति ॥ 'संसर्गदोषः पापेषु इति' कलिवर्ज्येषु वचनात् ॥ "कृते संभाष्य पतति त्रेतायां स्पर्शनेन तु ॥ द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा॥ " इति वचनाच्च ॥ ब्रह्महननादिकर्मणैव पातित्यं न संसर्गमात्रेणेति तदर्थात् ॥ इदं च लोकेष्ववहिष्कृतपातकिषु लोकविद्विष्टत्वेनापरिहार्यसंसर्गे पातित्याभावपरम् ॥ न हि लोकेष्ववहिष्कृतानां प्रच्छन्नाभक्ष्यभक्षणापेयपानागम्यागमनादिपातकवतां तज्ज्ञानवतातिशिष्टेनापि संभाषणादिसंसर्गो नरकहेतुरपि परिहर्तुं शक्यते ॥ लोकविद्वेषापातात् ॥ लोकवहिष्कृतपापिनां संसर्गस्तु पातित्यहेतुरेव ॥ तथैव शिष्टाचारादिति मे भाति ॥ अत एव " त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥ द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥" इति वाक्ये कर्तृत्यागो विधीयते ॥ त्यागो हि संसर्गपरिहार एव ॥ किं चानेन वाक्येन यत्र कुलादौ ब्रह्महत्यादिपातकी निष्पद्यते तत्कुलादिकं द्वापरादावेव वहिष्कार्यं न तु कलौ कुलादेर्वहिष्कारः ॥ किं तु कर्तुरेव कलौ बहिष्कार इति प्रतिपाद्यते ॥ न चैतद्वाक्यविरोधिवाक्यांतरं पतितसगोत्रसपिंडादीनां कर्मानर्हत्वासंव्यवहार्यत्वप्रतिपादकं क्वापि ग्रंथे उपलभ्यते ॥ यत्तु निर्णयसिंधौ घटस्फोटप्रकरणे गृहेषु स्वैरमापद्येरन्निति वसिष्ठवचनसामर्थ्यात् पात्रनिनयनात्प्राक् पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपरार्कव्याख्यानमुपन्यस्तम् ॥ तन्न सर्वपतितविषयम् ॥ किं तु घटस्फोटार्हप्रायश्चित्तानिच्छुपातितविषयम् ॥ अन्यथा पात्रनिनयनात्प्रागिति न वदेत् ॥ प्रायश्चित्तात्प्रागित्येव वदेत्॥ 'कर्तारं तु कलौ युगे' इत्यादि प्रत्यक्षवचनेन विरोधेर्थापत्तिमूलकस्य

सर्वपतितविषयककुलबहिष्कारवर्णनस्य पुरुषव्याख्यानरूपस्याप्रामाण्यापाताच्चेति भातीति संक्षेपः ॥ न चैवं घटस्फोटविधिर्व्यर्थ इति वाच्यम् ॥ तस्य पारलौकिकदोषपरिहारार्थत्वात् ॥ लोकबहिष्कृतपातकविषये संभाषणादिसंसर्गस्य पातित्यहेतुत्वाभावेपि परत्र नरकजनकदोषहेतुत्ववत्पतितेन सहैककुलत्वसंसर्गस्यापीह पातित्यादिदोषहेतुत्वाभावेपि पारत्रिकदोषहेतुत्वात्॥ अत्र च घटस्फोटविधेरेवार्थापत्तिविधयामानत्वात ॥ तथा च पारत्रिकदोषपरिहारार्थं घटस्फोटविधिरिति न तद्विधिबलेन पतितमात्रस्य कुले बहिष्कार इति भातीति संक्षेपः ॥ सत्राख्ययज्ञः कलौ वर्ज्यः ॥ ब्रह्महत्यादिमहापातकेषु प्रायश्चित्तेन नरकनिवृत्तिर्न भवति किं त्विहलोके व्यवहार्यतामात्रं कलौ भवति ॥ स्वर्णस्तेयादिषु तु प्रायश्चित्तेन नरकनिवृत्तिर्व्यवहार्यता च ॥ केचित्तु रहस्यकृतेषु महापापेषु रहस्यप्रायश्चित्तं कलौ नोपदेष्टव्यमित्याहुः ॥ विप्रादिस्त्रीसंभोगेन भ्रष्टानां शूद्रादीनां प्रायश्चित्तेपि संसर्गो निषिद्धः॥ यज्ञे पशुमारणं शूद्रहस्तेन कार्यं न तु विप्रेण स्वयं कार्यमित्यर्थः ॥ सोमविक्रयश्च विप्राणां कलौ वर्ज्यः ॥ "ज्येष्ठादिसर्वभ्रातॄणां समभागः कलौ स्मृतः ॥ आततायिद्विजानां नो धर्मयुद्धेपि हिंसनम्॥" अब्धौ नौयातुर्द्विजस्य प्रायश्चित्तेपि संसर्गो न ॥ "गवार्थे ब्राह्मणार्थे च प्राणत्यागः कलौ न हि॥द्विजानां गोपशूद्रादौ भोज्यान्नत्वं कलौ न हि ॥ शिष्यस्य गुरुपत्नीषु न चिरं वासशीलता ॥ आपदि क्षत्रवैश्यादिवृत्तिं विप्रः कलौ त्यजेत् ॥ कलौ द्विजो न हि भवेदश्वस्तनिकजीविकः॥ द्वादशाब्दं गुरौ वासं मुखाग्निधमनक्रियाम् ॥ यतेर्भिक्षां सर्ववर्णे कलौ त्रीणि विवर्जयेत ॥ नवोदकनिषेधं च दक्षिणां गुरुवांछिताम् ॥ वृद्धरुग्णादिमरणं जलाग्निपतनादिभिः ॥ गोतृप्तिमात्रे भूमिष्ठे पयस्याचमनक्रियाम् ॥ पितृवादे साक्षिदंडं कलौ पंच विवर्जयेत् ॥ घृतदुग्धादिभिः पक्कमन्नं शूद्रात्कलौ त्यजेत् ॥ भिक्षामटन्यती रात्रौ न वसेद्गृहिणां गृहे ॥ विधूमे सन्नमुसले काले भिक्षां कलौ त्यजेत् ॥ चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च ॥ कलेर्यदा गमिष्यंति तदा त्रेतापरिग्रहः॥ संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानता ॥" त्रेतापरिग्रहः सर्वाधानम् ॥ "अर्धाधानं स्मृतं श्रौतस्मार्ताग्न्योस्तु पृथक्कृतिः ॥ सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगाश्रया ॥" अस्यापवादः ॥ "यावद्वर्णविभागोस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते ॥ संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे ॥" इति ॥ "शपथाः शकुनाः स्वप्नाः सामुद्रिकमुपश्रुतिः ॥ देवपूजोपहारादेः संकल्पः कार्यसिद्धये ॥ प्रश्नोत्तरं कालविदां संभवंति कलौ क्वचित् ॥" इति कलौ कार्याकार्यनिर्णयः ॥

अब कलियुगमें निषिद्ध कर्मोंको कहतेहैं। समुद्रकी यात्रा; कमण्डलुका धारण; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनको जो अपने वर्णकी न हो उसके साथ विवाह; देवर आदिसे पुत्रकी उत्पत्ति; मधुपर्कमें पशुका वध; श्राद्धमें मांसपिण्डका दान; वानप्रस्थआश्रम; जो कन्या देद-

ईहो और अक्षतयोनि हो इसकन्याका फिर दूसरेको दान; बहुत कालतक ब्रह्मचर्य्य; नरमेध; अश्वमेध; संन्यास; गोमेध; यज्ञ; इन धर्मोंको कलियुगमें वर्जदे। यह मनीषीजन कहतेहैं। मद्यपानसे भिन्न महापापके विषै; मरणान्तिक प्रायश्चित्त; और सौत्रामणि आदि यज्ञमेंभी सुरापात्रकी ग्रहण; मद्य, मांस, भक्षण आदिके जो वाममार्गियोंके शास्त्र हैं उनको प्रमाणता नहीं; क्योंकि, मीमांसाके उत्तरखण्डमें सब शिष्टोंने उसका तिरस्कार कियाहै। औरस और दत्तक ये दो ही पुत्र कलियुगमें हैं और क्रीत आदि दशपुत्रोंको कलियुगमें वर्ज दे। और कौस्तुभमें तो जोस्वयंही देदियाहो उस तीसरे पुत्रका विधान है। इस वचनसे नौ ही पुत्र कलियुगमें निषिद्ध हैं यह कहाहै। कलियुगके विषै; जो ब्रह्महत्यावाले आदि हैं उनके ही साथमें भोजन आदि व्यवहार न करनारूप प्रायश्चित्त है और उसके जो संसर्गी हैं उनको यद्यपि नरकका होना रूप दोष है तो भी पतितता नहीं। कलियुगसे भिन्न पापोंमें ही संसर्गका दोष है यह वचन है। कृतयुगकेविषै संभाषणसे; त्रेतामें स्पर्शसे; द्वापरमें अन्नके ग्रहणसे और कलियुगमें कर्म करनेसे पतित होताहै अर्थात् ब्राह्मणके मारनेरूप कर्मसेही पतित होताहै संसर्गसे नहीं यह वचन; जो पातकी जातिबाह्य आदि नहीं किये उनका लोकमें संसर्गका परिहार नहीं होसक्ता उसके संसर्ग होनेपर पातित्य नहीं होता; इस अर्थके विषयमें है। क्योंकि, लोकोंमें जिनोंने छिपकर अभक्ष्यका भक्षण; अपेयका पान; अगम्यागमन आदि पातक कियेहैं और जो बहिर्भूत नहीं कियेगयेहैं;उनके उस पापका जिसको ज्ञानहै वह अतिशिष्टभी; जो नरकका कारण है उस संसर्गआदि संभाषणआदि संसर्गको नहीं त्यागसक्ता। लोकमें निन्दाके होनेसे जो लोकसे बाह्य कियेगयेहैं उन पापियोंका संसर्ग तो पातित्यको अवश्य करता है; क्योंकि शिष्टाचारसे यह ही है। यह प्रतीत होताहै। और इसवाक्यमें इसीसे ही कि, कृतयुगमें देशको त्यागदे, त्रेतामें ग्रामको त्यागदे;और द्वापरमें एककुलको;और कलियुगके विषै केवल एककर्ताको त्याग दे कर्ताका ही त्याग कहाहै। यहां त्यागसे भी संसर्गका परिहार ही समझना।और जो इससे अन्यवाक्यमें; जिसकुलमें ब्रह्महत्या आदिका पातकी हो उस कुल आदिका जो बहिष्करण है वह द्वापर आदिमें ही समझना परन्तु कलियुगके विषै कुल आदिका बाह्य करना न्याय्य नहीं अर्थात् कर्ताका ही कलियुगमें बहिष्करण होताहै। और इसवाक्यका विरोधी कोई अन्य वाक्य; पतितके सगोत्र, सपिण्ड, आदिकोंको कर्मोंकी अयोग्यता और लोकव्यवहारकी अयोग्यताका प्रतिपादक अन्य ग्रन्थमें नहीं मिलता और जो कि, निर्णयसिन्धुमें; घटस्फोटके प्रकरणमें; गृहके विषै जो पतितके साथ यथेच्छ आचरण करतेहैं इस वासिष्ठके वचनसामर्थ्यसे; पात्रनिनयन अर्थात् ग्रहणकरनेसे पूर्व पतितकी ज्ञातियोंको भी धर्मकार्यमें अधिकार नहीं यह अपरार्कका व्याख्यान कहाहै; वह सब पतितोंके ही विषयमें नहीं किन्तु घटस्फोटके योग्य जो प्रायश्चित्त है उसको न चाहनेवाला जो पतित उसके विषयमें है; अन्यथा पात्रके निनयन (त्याग) से पहिले ऐसा न कहते किन्तु प्रायश्चित्तसे पहिले ऐसा कहते कर्ताको कलियुग इत्यादि पूर्वोक्त प्रत्यक्ष वचनसे विरोध होनेपर अर्थापत्ति है प्रमाण जिसमें ऐसा जो संपूर्ण पतितोंका कुलसे बाहिर करनेका वर्जन जो पुरुषव्याख्यानरूप है वहभी अप्रमाणको प्राप्त होजायगा यह हमें भान होता है। कदाचित् कहो ऐसा माननेपर घटस्फोटकी विधि व्यर्थ हो जायगी ? तो ठीक नहीं; क्योंकि वह परलोकमें दोषनिवृत्तिके लिये है क्योंकि लोकसे बाहर किये पातकीके विषयमें संभाषण आदिका संसर्ग यद्यपि पतित करनेका हेतु

नहीं; तथापि परलोकमें नरकके दाता दोषोंका हेतु है; तिसीप्रकार पतितके संग एक कुलके व्यवहारका संसर्ग भी यहां पतित करनेके दोषोंका हेतु न होय तो भी परलोकमें दोषोंका हेतु है; इसमें घटस्फोटकी विधि ही अर्थापत्तिकी रीतिसे प्रमाण है; तिससे परलोकमें दोषनिवृत्तिके लिये घटस्फोटकी विधि है; इससे उस विधिके बलसे सब पतितोंका कुलसे बाहिर करना नहीं होता यह हमें भान होता है; यह संक्षेप है। सत्र नामका यज्ञ कलियुगमें वर्जित है; ब्रह्महत्या आदि महापातकोंमें प्रायश्चित्तसे नरककी निवृत्ति नहीं होती; किन्तु इसलोकमें परस्पर व्यवहारयोग्यता मात्र ही कलियुगमें होती है; सुवर्णकी चोरी आदिमें तो प्रायश्चित्तसे नरककी निवृत्ति और व्यवहारकी योग्यता दोनों होती हैं। कोई यह कहते हैं कि एकान्तमें कियेहुये महापापोंमें रहस्य प्रायश्चित्तका उपदेश, कलियुगमें उपदेश न करना; ब्राह्मण आदिकी स्त्रियोंके संसर्गसे भ्रष्ट शूद्र आदिकोंका संसर्ग प्रायश्चित्त करनेपर भी कलियुगमें निषिद्ध है; यज्ञमें पशुको शूद्रके हाथसे मरवावै ब्राह्मण स्वयं न मारै। ब्राह्मणोंको सोमका बेचना कलियुगमें वर्जित है । ज्येष्ठ आदि भ्राताओंका कलियुगमें; भाग सम होता है। ज्येष्ठको अधिक नहीं मिलता आततायी (शस्त्रधारी) ब्राह्मणोंकी युद्धमें भी हिंसा न करनी। समुद्रमें नौकासे जानेवाले ब्राह्मणका प्रायश्चित्त करनेपर भी संसर्ग न करै। गौ और ब्राह्मणके लिये कलियुगमें प्राणोंका त्याग नहीं है। कलियुगमें गोपाल, शूद्र आदिकोंके अन्नको भक्षण न करै। शिष्य गुरुपत्नियोंके पास चिरकालतक वासका शील, न रक्खै । ब्राह्मण; आपत्तिकालमें क्षत्रिय, वैश्य, आदिकी वृत्तिको कलियुगमें त्याग दे। ब्राह्मण कलियुगमें ऐसा न हो कि कलके लिये अन्नआदि न रहै; किन्तु संचय रक्खै। बारह वर्षतक गुरुके यहां वास; मुखसे अग्निका फूंकना; सब वर्णोंमें संन्यासीकी भिक्षा; इन तीनोंको कलियुगमें त्याग दे । नवीन जलका निषेध और गुरुकी वाञ्छित दक्षिणा; जल, अग्नि, प्रपतन, आदिसे वृद्ध रोगी आदिका मरण, गौकी तृप्तियोग्य बहुत जलमें आचमन करना, पिताके संग विवाद, विवादमें साक्षियोंको दण्ड; इन पांचोंको कलियुगमें वर्ज दे। घृत, दूध, आदिसे पकेहुये शूद्रके अन्नको कलियुगमें त्याग दे संन्यासी भिक्षाटन करता हुआ रात्रिमें गृहस्थियोंके घरमें न बसै। जब धुआँ और मुसलका शब्द न रहे तब कलियुगमें भिक्षाटन न करै। किन्तु रसोईके समय जाय। चार हजार चारसौ वर्ष जब कलियुगके बीत जायँगे तब त्रेतापरिग्रह होगा; और बुद्धिमान् ब्राह्मण ही उस समय संन्यासका धारण करैं; यहां त्रेतापरिग्रहसे सर्वाधान लेना; श्रौतस्मार्तअग्नियोंको पृथक् करना अर्धाधान होता है; पहिले युगोंकी समान उनकी एकता करनेको सर्वाधान कहते हैं। इसका अपवाद यह है; कि, चारों वर्णोंका विभाग है और इतने वेदकी प्रवृत्ति है तबतक कलियुगमें संन्यास और अग्निहोत्र करै। और शपथ (सौगन्ध), शकुन, स्वप्न, सामुद्रिकका सुनना, देवपूजा सामग्री आदिका संकल्प और कालके ज्ञाता (ज्योतिषी) ये कलियुगमें कहीं कहीं होते हैं । यह कलियुगमें कार्य अकार्यका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ स्वप्नविचारः।

स्वप्नो द्विविधः ॥ इष्टफलोऽनिष्टफलश्चेति ॥ तत्र सामान्यत इष्टफलो यथा ॥ "नदीसमुद्रतरणमाकाशगमनं तथा ॥ गृहनक्षत्रमार्तंडचंद्रमंडलदर्शनम् ॥ हर्म्य-

स्यारोहणं चैव प्रासादशिरसोपि वा ॥ स्वप्ने च मदिरापानं वसामांसस्य भक्षणम् ॥ कृमिविष्ठानुलेपश्च रुधिरेणाभिषेचनम् ॥ भोजनं दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम् ॥ रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने दृष्ट्वा प्रसिध्यति ॥ देवताविप्रपृथ्वीशान्प्रशस्ताभरणांगनाः ॥ वृषेभपर्वतक्षीरिफलिवृक्षाधिरोहणम् ॥ दर्पणामिषमाल्याप्तिं शुक्लपुष्पांबराश्रितान् ॥ द्रष्टुः स्वप्नेर्थलाभः स्याद्व्याधिमोक्षश्च जायते ॥ ''

अब स्वप्नविचार कहते हैं। स्वप्न दो प्रकारका है इष्ट फलका दाता और अनिष्टफलका दाता। उनमें सामान्यसे इष्टफलका दाता यह है। नदी, समुद्र, आकाशमें गमन, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चंद्रमाका दर्शन, महल, और देवमंदिरकी शिखरपर चढना, स्वप्नमें मदिरा पीना, मांस सहित अन्नका भक्षण, क्रिमि और विष्ठाका लेप, रुधिरसे सेचन, दधि भातका भोजन; श्वेत-वस्त्रका लेपन, रत्न और भूषण आदिका देखना; ऐसे स्वप्नोंसे शीघ्र कार्यसिद्धि होती है। देवता, ब्राह्मण, राजा, उत्तम भूषण, उत्तम स्त्री इनको देखना; बैल, हस्ती, पर्वत, दूध, और फलवाले वृक्ष इनपर चढना; दर्पण, मांस, पुष्प; इनकी प्राप्ति; शुक्ल पुष्प और शुक्लवस्त्रधारी पुरुषोंका स्वप्नमें देखना; धनका लाभ और रोगका नाश करता है ॥

अथानिष्टफलः ।

''दुष्टं किंशुकवल्मीकपारिभद्राधिरोहणम् ॥ तैलकार्पासपिण्याकलोहप्राप्ति-र्विपत्तये ॥ विवाहकरणं स्वप्ने रक्तस्रग्वस्त्रधारणम् ॥ स्रोतसाहरणं नेष्टं पक्वमांसस्य भोजनम् ॥ आदित्यस्याथ चंद्रस्य निष्प्रभस्यावलोकनम् ॥ नक्षत्रादेश्च पातश्च स्वप्ने मरणशोककृत् ॥'' अशोककरवीरपलाशानां पुष्पितानां स्वप्ने दर्शने शोकः॥ नौकारोहणे प्रवासः रक्तवस्त्रगंधधारिण्या स्त्रियालिंगने मृत्युः॥ घृततैलादिनाभ्यंगे व्याधिः ॥ केशदन्तपाते धननाशः पुत्रशोको वा ॥ खरोष्ट्रमहिषैर्याने तद्युक्तरथारोहणे वा मृत्युः॥ कर्णनासाकरादिच्छेदे पंकमज्जने तैलाभ्यंगे विषभक्षणे प्रेतालिंगने नलदमालिनो दिगंबरस्य याने कृष्णपुरुषदर्शने च मृत्युः ॥

अब अनिष्टफलके स्वप्नको कहते हैं। किंशुक, वल्मीक, (वमी) पारिभद्र (निंब) आदिपर चढना दूषित है। तेल, कपास, खल, लोहा, इनकी प्राप्तिसे विपत्ति होती है। स्वप्नमें विवाह करना, रक्तवस्त्र और रक्तमालाको धारना, स्रोतमें वहना, पक्वमांसका भोजन, प्रकाश रहित सूर्य और चन्द्रमाको देखना, नक्षत्र आदिका गिरना, ये स्वप्नमें मरण शोकको करते हैं अशोक, करवीर, पलाश, इन फूलेहुओंको स्वप्नमें देखे तो शोक होता है। नौकापर चढे तो प्रवास होता है, रक्तवस्त्र और गंधको धारण करनेवाली स्त्रीका आलिंगन करै तो मृत्यु होती है। घृत और तेलकी मालिशसे व्याधि होती है। केश और दांतोंके गिरनेसे धनका नाश वा पुत्रशोक होता है। खर, ऊँट, भैंसा इनसे गमनमें वा इनसे युक्त रथपर चढनेमें मृत्यु होती है। कर्ण नासिका, कर आदिके छेदन; पंकमें डूबना, तेलका अभ्यंग, विषका भक्षण, प्रेतका आलिंगन, पुष्पमाला धारे नग्नका गमन, कृष्ण पुरुषका दर्शन, ये सब स्वप्नमें होंयँ तो मृत्यु होती है ॥

अथ जागृतावनिष्टानि ।

"अरुंधतीं ध्रुवं चैव नभोमंदाकिनीं तथा ॥ स्वनासाग्रं च चंद्रांकमायुर्हीनो न पश्यति ॥ पांसुपंकादिषु न्यस्तं चरणं खंडितं यदि ॥ स्नानांबुलिप्तगात्रस्य यस्यास्यं प्राक् प्रशुष्यति ॥ गात्रेष्वार्द्रेषु सर्वेषु सूर्यादिद्वयदर्शनम् ॥ स्वर्णप्रतीति-वृंक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ पिहिते कर्णयुगले यस्य घोषानुपश्रुतिः ॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिबिंबे जलादिषु ॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां स चिरं नैव जीवति ॥"

अब जागृतिके अनिष्टोंको कहते हैं । अरुंधती, ध्रुव, आकाश गंगा, अपनी नासिकाका अग्रभाग, चन्द्रमाका कलंक, इनको आयुसे हीन मनुष्य नहीं देखता। धूल और पंक (कीच) आदिमें रक्खाहुआ जिसका चरण खंडित हो; स्नानके जलसे लिपे हुये देहमें जिसका मुख पहिले सूख जाय और सब गात गीला रहैं; और दो सूर्य आदिका देखना, दोनों कानों-को ढककर जिसके प्राणोंका घोष न सुने, जल, आदिके प्रतिबिंबमें अपना शिर न दीखे, और अपनी छायामें छिद्र दीखे, वह मनुष्य चिरकालतक नहीं जीवैगा ॥

अथ विशेषत इष्टफलाः स्वप्नाः ।

"यस्तु पश्यति वै स्वप्ने राजानं कुंजरं हयम् ॥ सुवर्णं वृषभं गां वा कुटुम्बं तस्य वर्धते ॥" वृषं वृक्षं वारुह्य तत्रस्थस्य जागरे धनाप्तिः ॥ श्वेतसर्पेण दक्षि-णभुजदंशे दशदिने सहस्रधनलाभः॥जलस्थस्य वृश्चिकोरगग्रासे जयपुत्रधनानि ॥ प्रासादशैलारोहणे समुद्रतरणे राज्यम् ॥ तडागमध्ये पद्मपत्रेषु घृतपायसभोजने राज्यम् ॥ बलाकाकुक्कुटीक्रौंचीदर्शने भार्याप्राप्तिः ॥ निगडैर्बंधे बहुपाशबन्धे वा पुत्रधनादि ॥ "आसने शयने याने शरीरे वाहने गृहे ॥ ज्वलमाने विबुध्येत तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥" सूर्यचन्द्रमंडलदर्शने रोगिणो रोगनाशोऽन्यस्य धनम् ॥ सुरारुधिरयोः पाने विप्रस्य विद्या शूद्रादेर्धनम्॥शुक्लांबरगन्धधारिण्या सुभगस्त्रिया-लिंगने संपत्तिः ॥ छत्रपादुकोपानत्खड्गलाभे धनम् ॥ वृषभयुक्तरथारोहणे धनम् ॥ दधिलाभे वेदाप्तिः ॥ दधिपयःपाने घृतलाभे च यशः॥ घृतभक्षणे क्लेशः ॥ आंत्रै-र्वेष्टने राज्यम्॥ मनुष्यस्य चरणमांसभक्षणे शतं लाभः ॥ बाहुभक्षणे सहस्रम् ॥ शीर्षमांसभक्षणे राज्यं वा सहस्रधनं वा ॥ सफेनक्षीरपाने सोमपानम् ॥ गोधूमदर्शने धनलाभः ॥ यवदर्शने यज्ञः ॥ गौरसर्षपदर्शने लाभः ॥ "नागपत्रं लभेत्स्वप्ने कर्पूरागमनं तथा॥चन्दनं पांडुरं पुष्पं तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥ सर्वाणि शुक्लान्यतिशोभनानि कार्पासभस्मौदनतक्रवर्ज्यम् ॥ सर्वाणि कृष्णान्यतिनिंदितानि गोहस्तिदेवद्विजवाजिवर्ज्यम् ॥ स्वप्नस्तु प्रथमे यामे वत्सरांते फलप्रदः ॥" द्वितीयेष्टमासैः ॥ तृतीये त्रिमासांते ॥ चतुर्थे यामे मासांते ॥ अरुणोदये दशाहांते ॥ सूर्योदये सद्यः फलम् ॥

अब विशेषकर इष्ट फलके दाता स्वप्नोंको कहते हैं। जो मनुष्य स्वप्नमें; राजा हाथी, अश्व, सुवर्ण, बैल, गौ; इनको देखता है उसका कुटुंब, बढता है। बैल और वृक्षपर चढकर जो स्थित रहताहै, उसको जागरणमें धन मिलता है। सफ़ेदसर्प दक्षिणभुजामें काटे तो दश-दिनमें सहस्र धनका लाभ होता है। जलमें स्थितको बीछू, सर्प, मसलें तो जय, पुत्र, धन; इनका लाभ होता है। प्रासाद और पर्वतके चढने और समुद्रके तरनेमें राज्य मिलता है। तडागके मध्यमें कमलके पत्तोंपर घी और पायसके भोजनमें राज्य मिलता है। बलाका, कुक्-कुटी, क्रौंची; इनके दर्शनमें स्त्रीकी प्राप्ति होती है। निगडके बन्धन और अनेक प्रकारके पाशोंके बन्धनमें पुत्र धन आदि होते हैं। आसन, शय्या, यान, शरीर, वाहन, वर, इनके जलते हुये जो जागजाय उसको चारों तरफसे लक्ष्मी मिलती है। सूर्य और चन्द्रमंडलके दर्शनमें रोगीके रोगका नाश और अन्यको धनकी प्राप्ति होती है। मदिरा और रुधिरके पानमें ब्राह्मणको विद्या और शूद्र आदिको धन, होता है। शुक्ल वस्त्र और गंध धारण करनेवाली स्त्रीके आलिंगनमें संपदा होती है। छत्र, खडाऊं, उपानह, खड्ग; इनके लाभमें और बैलों-के रथपर चढनेमें धन होता है। दधिके लाभमें वेदकी प्राप्ति होती है। दधि दूधके पीनेमें और घृतके लाभमें यश होता है। घृतके भक्षणमें क्लेश होता है। आंतोंसे लपेटेमें राज्य होता है। मनुष्यके चरणका मांसभक्षण करै तो सौ मुद्राका लाभ। बाहुके भक्षणमें सहस्रका, शिरके मांसभक्षणमें राज्य वा सहस्रधन मिलता है। फेनसहित दूधका पीना; सोमकापान, गोधूमका दर्शन; इनमें धनका लाभ होता है। जौके दर्शनमें यज्ञ होताहै। सपेदसरसोंके दर्शनमें लाभ होता है। स्वप्नमें नागपत्रको देखै वा कपूर मिलै तो और चंद्रमाके समान सपेद पुष्प मिलै तो उसको चारों तरफसे लक्ष्मी मिलती है। कपास, भस्म, ओदन, तक्र; इनको छोडकर संपूर्ण सपेदवस्तु अत्यंत शोभन हैं। और गौ, हस्ती, देव, द्विज, वाजी; इनको छोडकर संपूर्ण कृष्ण अत्यंत निंदित हैं। रात्रिके प्रथमप्रहरका स्वप्न एकवर्षमें फल देता है। दूसरे प्रह-रका आठमासमें। तीसरे प्रहरका तीन मासके अंतमें। चौथे प्रहरका मासके अंतमें। अरुणो-दयका स्वप्न दशाहके पीछे; और सूर्योदयका सद्यःकालमें फल देता है॥

अथ दुःस्वप्नदर्शने कृत्यम्।

यो मे राजन्नित्यृचा सूर्योपस्थाने दुःस्वप्ननाशः॥ अधःस्वप्नस्येति जपाद्वा॥ क्वचिद्दर्शवच्छ्राद्धेन दुःस्वप्ननाशः॥ चण्डीसप्तशतीपाठेन वा॥ यद्वा श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रजपः कार्यः॥ अथवा श्रीभारतस्थस्य श्रीमद्भागवतस्थस्य वा गजेंद्रमोक्षस्य श्रवणं पाठो वा॥ इति दुःस्वप्ननाशकाविधिः॥

अब खोटे स्वप्नके दर्शन होनेमें कृत्यको कहते हैं। कि, 'यो मे राजन्०' इस ऋचासे सूर्यकी स्तुति करै तो दुष्टस्वप्नका नाश होता है वा 'अधःस्वप्नस्व०' इसके जपसे दुष्टस्वप्नका नाश होता है। कहीं तो; दर्शके श्राद्ध करनेसे दुष्टस्वप्नका नाश होता है वा चंडीकी सप्तशती (दुर्गा) के पाठसे होता है। यद्वा श्रीविष्णुसहस्रनाम स्तोत्रका जप करना। अथवा श्रीमहाभारतके वा भागवतके गजेंद्रमोक्षको सुनने वा पाठकरनेसे दुष्टस्वप्नका नाश होता है॥ यह दुष्टस्वप्नके नाशकी विधि समाप्त हुई॥

इत्थं गर्भाधानादुद्वाहांताः समस्तसंस्काराः ॥
सपरिकरा निर्णीता अस्मिंस्तार्तीयपूर्वार्धे ॥ १ ॥
तत आह्निक आचारस्तत आधानादिकाः प्रकीर्णार्थाः ॥
शांतिकपौष्टिकमुख्या नित्या नैमित्तिकाश्चोक्ताः ॥ २ ॥
पूर्वपरिच्छेदकयोः कालः सामान्यतो विशेषाच्च ॥
निर्णीतः सहकृत्यैस्तिथिमासाद्येषु विध्युक्तैः ॥ ३ ॥
नानापापे प्रायश्चित्तं व्यवहारविस्तरश्चापि ॥
उपदानमहादानादिविधिश्चोक्तो मयूखादौ ॥ ४ ॥
श्राद्धविधिः सांगोप्याशौचे निर्णीतिरंत्यसंस्कारः ॥
तार्तीयीकस्योत्तरखंडेग्रे संप्रवक्ष्यंते ॥ ५ ॥
मूलभूतानि पद्यानि विकृतानि क्वचित्क्वचित् ॥
निर्विकाराण्यपि नवान्यप्युक्तान्यत्र कानि चित् ॥ ६ ॥
मीमांसा धर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोनलसा बुधाः ॥
कृतकार्याः प्राङ्निबंधैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ ७ ॥
ये पुनर्मंदमतयोलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ॥
धर्मं वेदितुमिच्छंति रचितस्तदपेक्षया ॥ ८ ॥
निबंधोयं धर्मसिंधुसारनामा सुबोधनः ॥
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विठ्ठलो भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥
प्रेम्णा सद्भिर्ग्रंथः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोपि ॥
संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव ॥ १० ॥
श्रीकाश्युपाध्यायवरो महात्मा बभूव विद्वद्द्विजसार्वभौमः ॥
तस्मादुपाध्यायकुलावतंसो यज्ञेश्वरोनन्त इमावभूताम् ॥ ११ ॥
यज्ञेश्वरो यज्ञविधानदक्षो दैवज्ञवेदांगसुशास्त्रशिक्षः ॥
भक्तोत्तमोनन्तगुणैकधामानंताह्वयोनंतकलावतारः ॥ १२ ॥
एषोत्यजज्जन्मभुवं स्वकीयां तां कौंकणाख्यां सुविरक्तिशाली ॥
श्रीपांडुरंगे वसतिं विधाय भीमातटे मुक्तिमगात्सुभक्त्या ॥ १३ ॥
तस्यानन्ताभिधानस्योपाध्यायस्य सुतः कृती ॥
काशीनाथाभिधोधर्मसिंधुसारं समातनोत् ॥ १४ ॥

इति श्रीमत्काश्युपाध्यायसूरिसूनुयज्ञेश्वरोपाध्यायानुजानंतोपाध्यायसूरिसुतकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे तृतीयपरिच्छेदे पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥

इस प्रकार गर्भाधानसे विवाहपर्यंत के सब संस्कारोंका सपरिकर (सांगोपांग) निर्णय इस तीसरे परिच्छेदके पूर्वार्द्धमें किया ॥ १ ॥ फिर आह्निक आचार फिर आधान आदि प्रकीर्ण पदार्थ; शांतिक पौष्टिक हैं मुख्य जिनमें ऐसे नित्य नैमित्तिक कर्म भी कहे ॥ २ ॥ पहिले दोपरिच्छेदोंके विषै सामान्य और विशेषरूपसे कालका वर्णन किया और उनके संगही तिथिमास आदिमें शास्त्रोक्त कर्म कहे ॥ ३ ॥ और नानापापोंके प्रायश्चित्त; व्यवहारका विस्तार भी कहा । उपदान; महादान आदिकी विधि; मयूख आदिमें कही है ॥ ४ ॥ और अंगोंसहित श्राद्धविधि; और आशौचमें अंत्यसंस्कार, ये तीसरे परिच्छेदके उत्तरखंडमें आगे कहेंगे ॥ ५ ॥ मूलके श्लोक भी कहीं २ हमने विकृत कर (बदल) दिये हैं; और कहीं २ ज्योंके त्यों और कहीं २ नवीन भी कहे हैं ॥ ६ ॥ जो बुद्धिमान् पंडितजन मीमांसा धर्मशास्त्रके ज्ञाता आलस्यसे रहित हैं वे तो पहिले ग्रंथोंसे ही कृतार्थ हैं; उनके लिये इस ग्रन्थ बनानेका उद्यम हमने नहीं किया ॥ ७ ॥ और जो मन्दबुद्धि, आलसी और अज्ञानी हैं और धर्मको जानना चाहते हैं उनकी अपेक्षासे यह ग्रंथ रचा है ॥ ८ ॥ सुंदरबोधका दाता है यह धर्मसिंधुसारनामका निबंध (ग्रन्थ) जो है इससे भक्तोंपर वत्सल श्रीमान् विठ्ठल प्रसन्न हों ॥ ९ ॥ शब्द अर्थसे दोषसहित भी इस ग्रन्थका सज्जन मनुष्य प्रेमसे सेवन करैं या शोधन करके; सुदामाकी तुषसहित मोटे चावलोंकी मुष्टिके समान ग्रहण करैं ॥१०॥ श्री काशीउपाध्यायोंमें श्रेष्ठ महात्मा विद्वान् जो द्विज; उनमें चक्रवर्ती राजा उससे उपाध्यायके कुलमें भूषणरूप यज्ञेश्वर और अनंत दो पुत्र हुये ॥ ११ ॥ यज्ञेश्वर तो यज्ञकी विधिमें चतुर और दैवज्ञ (ज्योतिषी) वेद और अंगोंका और शास्त्रोंका ज्ञाता हुआ । और भक्तोंमें उत्तम अनंतगुणोंका एकस्थान अनंतनामा; अनंत, कलाओंका अवतार हुआ ॥ १२ ॥ इसने अपनी जन्मभूमि जो कौंकण नामसे प्रसिद्ध है उसको त्यागदिया और विरक्तिके मार्गमें होकर श्रीपांडुरंगक्षेत्रमें बास करके भीमानदीके तटपर भक्तिसे मुक्तिको प्राप्त होते भये ॥ १३ ॥ उस अनंतनामक उपाध्यायके पुत्र पुण्यशील काशीनाथ नामकने यह धर्मसिंधुसारको रचा ॥ १४ ॥

इति श्रीकाश्युपाध्यायानुजअनंतोपाध्यायसूरिसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे पं० रामरक्षांगजलांखग्रामनिवासि पं० मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृति-सहिते तृतीयपरिच्छेदे पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥ मंगलमस्तु ॥

अथ

भाषाटीकोपेतं तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥
श्रीरुक्मिणीपांडुरंगं प्रणम्य पितरौ गुरून् ॥
तृतीयच्छेदोत्तरार्द्धं तनोमि श्रीशतुष्टये ॥ १ ॥
श्रीनाथः करुणासिंधुरिंदिरा शंकरः सती ॥
विघ्नेशो भास्करेंद्राद्या विघ्नान् घ्नंतु सदैव मे ॥ २ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीरुक्मिणीसहित पांडुरंग (कृष्णचन्द्र) को और माता पिता और गुरुको प्रणाम करके श्रीके ईश विष्णुकी तुष्टिकेलिये तृतीय परिच्छेदके उत्तरार्द्धका विस्तारसे वर्णन करताहूँ ॥ १ ॥ दयाके समुद्र, लक्ष्मीके नाथ; और लक्ष्मी, शंकर, पार्वती, गणेश, सूर्य और इन्द्रआदि; ये सब मेरे विघ्नोंको सदैव नष्ट करो ॥ २ ॥

अथ जीवत्पितृकेण वर्ज्यम् ।

तत्र तावच्छ्राद्धादिनिर्णयं वक्तुमधिकारनिर्णयाय जीवत्पितृकाधिकारो विविच्यते "पादुके चोत्तरीयं च तर्जन्यां रूप्यधारणम् ॥ न जीवत्पितृकः कुर्याज्ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति ॥" अत्र पादुके काष्ठमय्यौ ॥ उत्तरीयं सग्रंथिपरिमंडलं वस्त्रमेकद्व्यंगुलादिविस्तृतं सूत्रकृतं परिमंडलरूपं वा उत्तरीयस्थानापन्नं स्मृत्युक्तं तृतीययज्ञोपवीतं वा जीवत्पितृकेण जीवज्ज्येष्ठभ्रातृकेण च न धार्यमिति तात्पर्यम् ॥ प्रावरणरूपं द्वितीयवस्त्रं तु जीवत्पितृकादिभिः सर्वैर्धार्यम् ॥ 'एकवस्त्रो न भुंजीत न कुर्याद्देवतार्चनम्' इत्यादिना सर्वकर्मस्वेकवस्त्रत्वनिषेधात् ॥

अब जीवत्पितृकके वर्ज्योंको कहतेहैं । यहां उत्तरार्द्धमें प्रथम श्राद्धआदिका निर्णय कहनेके लिये अधिकारके निर्णयार्थ, जीवत्पितृकका अधिकार विवेचन करतेहैं । खडाऊं, उत्तरीय (दुपट्टा), और तर्जनीअंगुलीमें चांदीका धारण; इन सबको जेठेभाईके जीवतेहुये जीवत्पितृक न करै । यहां पादुका, काष्ठकी लेनी और उत्तरीय वह लेना कि, जिसके दोनों तरफ ग्रंथियोंका मण्डल हो और कोई यह कहतेहैं कि, दो अंगुलआदि जिसका विस्तार हो ऐसे बनायेहुये सूत्रको परिमण्डलरूपका जो उत्तरीयके स्थानमें हो और जिसको स्मृतिमें कहाहै वह लेना; वा तीसरा यज्ञोपवीत; इनको वह न धारणकरै जिसके पिता वा जेठाभाई जीवते हों यह तात्पर्यहै । और सब प्रकारका आच्छादनरूप दूसरा वस्त्र तो जीवत्पितृकआदिको धारणकरनेयोग्यहै । क्यों कि, यह एकवस्त्रका निषेधहै कि, एकवस्त्र धारणकिये भोजन और देवताका पूजन न करै । इत्यादि वचनसे संपूर्णकर्मोंमें एकवस्त्र निषेधहै ॥

आधानं विवाहः सोमश्च ।

पितरि पितामहे ज्येष्ठभ्रातरि चाकृताधाने जीवति पुत्रपौत्रकनिष्ठभ्रातृभिराधानं न कार्यम् ॥ ज्येष्ठभ्रातर्यकृतविवाहे कनिष्ठेन विवाहो न कार्यः अत्र विशे-

षः पूर्वार्द्धे उक्तः ॥ एवं पित्रादिषु अकृतसोमयागेषु जीवत्सु पुत्रादेः सोमेनाधिकारः ॥ एवं पूर्णमासेष्टौ दर्शेष्टावग्निहोत्रहोमे च पित्राद्यैरनारब्धे पुत्रादेर्नाधिकारः ॥

जिन्होंने आधान न करलिया हो ऐसे पिता, पितामह, जेठाभाई; इनके जीवतेहुये छोटेभाई अग्निका आधान न करैं। और जेठेभाईने विवाह न किया होय तो कनिष्ठभाई विवाहको न करै इसमें विशेष पूर्वार्द्धमें कहआये। इसीप्रकार नहीं कियाहै सोमयज्ञ जिन्होंने ऐसे पिताआदिके जीवतेहुये पुत्रआदिका सोमयज्ञमें अधिकार नहीं। इसीप्रकार पूर्णमासयज्ञ, दर्शयज्ञ, अग्निहोत्र होम; इनका पिता आदिने प्रारंभ न किया होय तो पुत्र आदिका अधिकार नहीं है ॥

अथ संन्यासविचारः ।

एवं संन्यासेपि कनिष्ठस्य सोदरस्यैव दोषो न भिन्नोदरस्य भ्रातुः ॥ पित्रादेराज्ञायां पुत्रादेर्न दोष इति केचित् ॥ अधिकारिणि पितरि सत्याज्ञायामपि दोषः॥ पातित्यजात्यंधत्वादिदोषैरनधिकारिण्याज्ञया न दोषः ॥ पातित्यादावाज्ञां विनापि न दोष इत्यपरे ॥ तथा जीवत्पितृकस्य पितृकृत्येषु दर्शादि श्राद्धतर्पणपैतृकदानेषु नाधिकारः ॥ अत्र विशेषः ॥ स्वापत्यसंस्कारस्वद्वितीयविवाहादिनिमित्तकनांदीश्राद्धे चातुर्मास्यांतर्गतपितृयज्ञे सोमांगतृतीयसवनस्थपितृयज्ञे जीवत्पितुरधिकारः ॥ पिंडपितृयज्ञे होमांतः पिंडपितृयज्ञोनारंभो वा पिंडपितृयज्ञस्येति पक्षद्वयम् ॥ पितुः पुत्राद्युद्देशेन पिंडदानमिति तृतीयः पक्षः क्वचित् ॥ एवमष्टकादिविकृतिष्वपि पक्षत्रयम् ॥

इसीप्रकार संन्यासमें भी सहोदर छोटेभाईको ही दोष है भिन्नोदरभाईको नहीं। कोई यह कहते हैं कि, पिता आदिकी आज्ञा होनेपर पुत्र आदिको दोष नहीं है। अधिकारी पिता होय तो आज्ञा देनेपर भी दोषहै। और यदि पतित हो, जन्मांधहो, इत्यादि दोषोंसे अधिकारके न होनेपर आज्ञासे दोष नहीं। पतितआदिदोषोंमें आज्ञाके विना भी दोष नहीं यह कोई कहतेहैं। तैसे ही जीवत्पितृकका पिताके करनेयोग्य जो अमावस्याआदिके श्राद्ध, तर्पण, पितरोंके निमित्त दान; इनमें अधिकार नहींहै। इसमें विशेष यह है कि, अपने अपत्यके संस्कार, अपने दूसरे विवाहआदिके निमित्त नांदीश्राद्ध; चातुर्मास्यके अंतर्गत पितृयज्ञ; सोमका अंग तृतीय सवनमें स्थित पितृयज्ञ; इनमें जीवत्पितृकका भी अधिकार है। पिंडपितृयज्ञमें; होमके मध्यमें पिंडपितृयज्ञ होताहै। अथवा पिंडपितृयज्ञका आरंभ नहीं करना ये दो पक्ष हैं। पिताका जो पिता उसके उद्देश (निमित्त) से पिण्डदान करै यह तीसरा पक्ष है। कहीं इसीप्रकार अष्टकाआदि विकृतियोंमें भी तीन पक्ष हैं ॥

अथ प्रसंगतो गयादिश्राद्धम् ।

"गयां प्रसंगतो गत्वा मातुः श्राद्धं सुतश्चरेत् ॥" जीवत्पिता मातुः श्राद्धमुद्दिश्य गयां न गच्छेत् ॥ महानदीषु सर्वासु तीर्थे च प्राप्ते जीवत्पितृकः पितुः पितृमात्राद्युद्देशेन श्राद्धं कुर्यात् ॥ नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धं क्षयाहे मातुः प्रत्यब्दश्राद्धं च सपिंडकमेव जीवत्पितृकः कुर्यात् ॥ तथा संन्यस्ते ताते पतिते च ताते जीवत्यपि

सति दर्शश्राद्धमहालयसंक्रांतिग्रहणादिश्राद्धानि सर्वाणि पितुः पित्राद्युद्देशेन जीवत्पितृकेण कार्याणि ॥ एतानि च सांकल्पिकविधिना पिंडरहितानि कार्याणि ॥ अन्वष्टक्यादाविव पिंडदाने विशेषवचनाभावात् ॥

गयामें प्रसंगवश जाकर पुत्र माताके निमित्त श्राद्धको करै। और जिसका पिता जीवता हो वह माताके श्राद्धके निमित्त गयामें न जाय और संपूर्ण महानदियोंमें और तीर्थके प्राप्त होनेपर जीवत्पितृक; पिताके पिता माताके उद्देशसे श्राद्ध करै । और नवमीको अन्वष्टकाश्राद्धको और क्षयाहमें माताके प्रतिवर्ष श्राद्धको जीवत्पितृकभी पिंडसहित ही करै । और तैसे ही पिताके संन्यासी वा पतित होनेपर जीवतेहुये भी पिताके अमावस्याके श्राद्धको और महालय, संक्रांति, ग्रहण आदिके संपूर्ण श्राद्धोंको पितामहके उद्देशसे जीवत्पितृक करै । और ये भी संकल्पकी विधिसे पिंडरहित करने । क्योंकि, अन्वष्टकाश्राद्धके समान पिण्डदानमें कोई विशेषवचन नहीं है ॥

अथ दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धम् ।

आश्विनशुक्लप्रदिपदि दौहित्रो जीवत्पितृकः सपिंडकं मातामहश्राद्धं कुर्यात् ॥

और आश्विनसुदि प्रतिपदाको जीवत्पितृक दौहित्र मातामहके निमित्त पिण्डसहित श्राद्धको करै ॥

अथपितृव्यमातामहादिवार्षिकं कार्यम् ।

तथा भ्रातृपुत्रोऽपुत्रस्य पितृव्यस्य प्रत्यब्दश्राद्धं सपिंडं कुर्यात ॥ एवं कनिष्ठभ्राताप्यपुत्रज्येष्ठभ्रातुः प्रत्यब्दम् तथा सपत्नीपुत्रः सापत्नमातुः श्राद्धम् ॥ एवं दौहित्रोऽपुत्रस्य मातामहस्य प्रत्यब्दम् ॥ इत्थंच पितृव्यादिश्राद्धचतुष्टये जीवत्पितृकस्याप्यधिकारः ॥ पितृव्यभ्रात्रादीनामपुत्राणां पत्नीसत्त्वे सैवाधिकारिणी न तु भ्रातृपुत्रादेः श्राद्धाधिकारः ॥ एवं पतिरेव पुत्राभावे भार्याश्राद्धं कुर्यात् ॥ सपत्नीपुत्रसत्त्वे तु स एव कुर्यान्न भर्ता ॥ दौहित्रभातृपुत्रयोः सत्त्वे मृतस्य विभक्तत्वे दौहित्र एव ॥ अविभक्तत्वे भ्रातृपुत्रः ॥ केचित् भ्रातृतत्पुत्रयोः सत्त्वे भ्रात्रैव श्राद्धं कार्यमित्याहुः ॥ तथा जीवत्पितृकस्य पितृपितामहादिमनुष्यपितृतर्पणनिषेधेप्यग्निष्वात्तादिदेवपितृतर्पणनिषेधाभावात्स्नानांगपितृतर्पणे ब्रह्मयज्ञांगभूतदेवरूपिपितृतर्पणे चाधिकारोऽस्त्येव ॥ एवं यदीयश्राद्धेऽधिकारस्तदीयश्राद्धांगतर्पणेप्यधिकारः ॥

तिसीप्रकार भाईका पुत्र; अपुत्रपितृव्यका प्रतिवर्ष सपिंड क्षयीश्राद्ध करै । इसीप्रकार छोटाभाई; अपुत्र जेठेभाईका प्रतिवर्ष श्राद्ध करै । तिसीप्रकार सपत्नीका पुत्र सपत्नी माताके श्राद्धको करै । इसीप्रकार दौहित्रभी अपुत्रनानाके प्रतिवर्ष श्राद्धको करै । इससे पितृव्यआदिके चारों श्राद्धोंमें; जीवत्पितृकका भी अधिकार है । और पितृव्य भ्राता आदि अपुत्र हों और पत्नीके होनेपर पत्नीकाही अधिकार है । भ्राताके पुत्र आदिको श्राद्धका अधिकार नहीं । इसीप्रकार पुत्रके अभावमें पति ही भार्याके श्राद्धको करै । और सपत्नीका पुत्र होय तो वही

करै भर्ता न करै । और दौहित्र, भाईका पुत्र ये दोनों हों और जो मृतकहै वह जुदा रहता होय तो दौहित्र ही श्राद्ध करै और जुदा न होय तो भाईका पुत्र करै । और कोई तो यह-कहते हैं । कि, भ्राता और भ्राताके पुत्र दोनों होंय तो भ्राता ही श्राद्धको करै। तिसीप्रकार जीव-त्पितृकको पिता पितामहआदि मनुष्यतर्पण, पितृतर्पणका, निषेध भी है तोभी अग्निष्वात्तआदि देवतर्पण पितृतर्पणके निषेधका अभाव होनेसे स्नानांगतर्पणमें; और ब्रह्मयज्ञके अंगरूप देवऋषि पितृतर्पणमें; जीवपितृकका अधिकार अवश्य है । इसी प्रकार जिसके श्राद्धका अधिकार है उसके श्राद्धके अंगरूप तर्पणमें भी अधिकार है । क्योंकि यह वचन है कि–

अथ भीष्मतर्पणं कार्यम् ।

"जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः ॥" श्राद्धांगतर्पणभिन्नतर्पणं जीवत्पितृकेण तिलैर्न कार्यम् ॥ श्राद्धप्रयोगमध्ये वामजानुन्यग्भावो नीवीबन्धश्च न कार्यः॥ नद्यादौ स्नात्वा तर्पणांते समन्त्रकं वस्त्रनिष्पीडनं विहितं तन्न कार्यम् ॥ तथा ॥ "खड्गमौक्तिकहस्तेन कर्तव्यं पितृतर्पणम् ॥ " इति विहितं खड्गधारणं न कार्यम् ॥ " अपसव्यं द्विजाग्र्याणां पित्र्ये कर्मणि कीर्त्तितम् ॥ आप्रकोष्ठात्तु कर्तव्यमेतत्पितरि जीवति ॥"

जीवत्पितृक भी यम और भीष्मके तर्पणको करै । श्राद्धके अंगसे भिन्न जो तर्पणकरै उसको जीवत्पितृक; तिलोंसे न करै । और श्राद्ध करनेके समयमें वामजानुको नीचा और नीवीके बंधनको न करै । और नदीआदिकोंमें स्नान करके अन्तमें मन्त्रोंसहित जो वस्त्रका निचोडना कहाहै उसको न करै । इसीप्रकार; खड्ग (गैंडा), मोती इनको हाथमें लेकर पितृतर्पण करै इस वचनसे विधान किये खड्गका भी धारण करै । पितरोंके कर्ममें; द्विजोंमें मुख्योंका अपसव्य कहाहै । वह पिताके जीवतेहुये आप्रकोष्ठसे अर्थात् सव्यसे करना ॥

अथ पितरि जीवति महालयादावुच्चारे विशेषः ।

जिवति संन्यस्तादिरूपे पितरि मृतमातृमातामहकोपि पुत्रः पितुः पितृपितामहप्रपितामहानां पितुर्मातृपितामहीप्रपितामहीनां पितुर्मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानामिति पार्वणत्रयमेकोद्दिष्टगणं च स्वमातरं पितुः पत्न्या इति स्वपितृव्यं पितुर्भ्रातुरिति स्वमातामहं च पितुः श्वशुरस्येत्येवमादिना पितृसंबन्धपुरस्कारेणैवोद्दिश्य महालयश्राद्धं कुर्यात् ॥ एवं दर्शादिषूह्यम् ॥ पितुः संन्यासाभावेपि तीर्थश्राद्धं जीवत्पितुरेवमेव एवं वृद्धिश्राद्धेप्यूह्यम् ॥ ब्रह्मयज्ञांते नित्यं पितृतर्पणमपि संन्यस्तादिरूपजीवत्पितृकेणैवमेव कार्यमित्याहुः ॥

और संन्यासी पिताके जीवतेहुये भी जिसके माता, मातामह, ये दोनों मरगये हों ऐसा भी पुत्र पिताके पिता, पितामह प्रपितामहोंका और पिताकी माता पितामही प्रपितामहियोंका और पिताके मातामह और माताके पितामह और प्रपितामहोंका पार्वण; इन तीनोंपार्वणोंको और इन एकोद्दिष्टके समूहोंको कि, अपनी माताके, पिताकी पत्नीके, अपने पितृव्यके, पिताके भ्राताके, अपने मातामहके, पिताके श्वशुरके एकोद्दिष्टोंको पिताके सम्बन्धद्वारा ही

नाम ले २ कर महालयश्राद्धको करै। इसीप्रकार अमावस्याआदिके श्राद्धोंमें भी समझना। पिताके संन्यासके अभावमें भी इसीप्रकार तीर्थ श्राद्धको जीवत्पितृक करै इसीप्रकार वृद्धिश्राद्धमें समझना। ब्रह्मयज्ञके अन्तमें नित्यतर्पण भी संन्यासीआदि पिताके जीवतेहुये भी इसी प्रकार जीवत्पितृक करै। यह कोई कहते हैं ॥

अथ मातुर्वार्षिकादावुच्चारः।

यदा तु मातुर्वार्षिकमपुत्रमातामहवार्षिकमपुत्रापितृव्यवार्षिकं वा क्रियते तदा क्रमेण मातृपितामहीप्रपितामहीनां मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां पितृव्यपितामहप्रपितामहानामित्येवोद्देशः ॥ यदा च पित्रादिभिः स्वाशक्त्यादिना नियोजितः पित्रादिकरणीयं श्राद्धं स्वयं पित्रादेः प्रतिनिधीभूय करोति तदा पितुरमुकशर्मणो यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहानामित्येवं यथाश्राद्धमुद्देशः ॥

और जब माताका वार्षिक; और अपुत्रनानाका वार्षिक; और अपुत्रचाचाका वार्षिक करना होय तो क्रमसे माता, पितामही, प्रपितामहियोंके और मातामह, माता, पितामह, और प्रपितामहोंके और पितृव्य, पितामह, प्रपितामहोंके ही उद्देशसे करै। और जब पिताआदिकोंने अपनी असामर्थ्यसे नियुक्तकिया पुत्र; पिताआदिके करनेयोग्य श्राद्धको स्वयं पिताआदि प्रतिनिधि होकर करताहै तब "पिता जो अमुकशर्मा यजमान है उसके पिता पितामह प्रपितामहोंका श्राद्ध करताहूं।" इसप्रकार श्राद्धके अनुसार प्रयोगको करै ॥

अथ ज्येष्ठाधिकारविचारः।

सर्वत्र पितृकृत्ये भ्रातृष्वविभक्तेषु ज्येष्ठस्यैवाधिकारः विभक्तेषु पृथक्पृथक्सापत्नभ्रातरि ज्येष्ठे सत्यपि कनिष्ठ एव स्वमातृवार्षिकान्वष्टक्यादि कुर्यात् ॥

सब जगह पितरोंके कृत्यमें भाई जुदे २ न होंयँ तो जेठेको ही अधिकारहै और जुदे २ होंयँ तो पृथक् २ करैं। और सापत्न जेठाभाई उसके जीवतेहुयेभी छोटाभाई ही अपनी माताका वार्षिक, और अन्वष्टकाको करै।

अथ पितृपितामहयोर्जीवने।

जीवत्पितृपितामहकस्य संन्यस्तपितृपितामहकस्य च पितामहस्य पित्राद्युद्देशेन वृद्धिश्राद्धं तीर्थश्राद्धं दर्शादिश्राद्धं वा भवति ॥ पित्रादिषु त्रिषु जीवत्सु सत्सु संन्यस्तेषु च न किमपि श्राद्धं कार्यम् ॥ केचित्तु पित्रादित्रयात्परेभ्यः श्राद्धं देयमाहुः ॥

और जिसके पिता पितामह जीवतेहों और जिसके पिता पितामह संन्यासी हों वह पितामहका जो पिता उसके उद्देशसे वृद्धिश्राद्ध और तीर्थश्राद्ध करसकताहै। पिताआदितीनों जीवतेहों वा संन्यासी होयँ तो कोई भी श्राद्ध जीवत्पितृकको न करना। कोई तो यह कहतेहैं कि, पिता आदितीनोंसे जो परे हैं उनको श्राद्ध देना ॥

अथ व्युत्क्रममृतौ ।

मृते पितरि पितामहजीवने पित्रे पितामहात्पराभ्यां च श्राद्धं देयम् ॥ एवं पितृपितामहमरणे प्रपितामहजीवनेप्यूह्यम् ॥

पिता मरगया होय और पितामह जीवता होय तो पिताको और पितामहसे परले दोनोंको श्राद्ध देना।इसीप्रकार पिता और पितामह दोनोंके मरने और प्रपितामहके जीनेमेंभी समझना॥

अथ गृह्याग्निमतो विशेषः ।

यस्तु गृह्याग्निश्रौताग्निमान् जीवन्मातृपितृकः पितुः पित्रादिभ्यः पिंडदानमिति तृतीयपक्षाश्रयेणारब्धपिंडपितृयज्ञाष्टकान्वष्टकाश्राद्धेऽन्वष्टकायां च पितुः पित्रादिमात्रादिमातामहादिभ्यः पिंडादिकं ददान आसीदनंतरं च माता मृता सोन्वष्टकायां च स्वमात्रादिभ्यः पितुः पित्रादिभ्यश्च दद्यात् ॥ यदा च पिंडपितृयज्ञान्वष्टकाद्यनारंभपक्षो जीवत्पितृकस्य तदापि संन्यस्तादिपितृकस्य दर्शादिश्राद्धं पितुः पित्राद्युद्देशेन व्यतिषङ्गभिन्नप्रयोगेण सांकल्पिकेन भवत्येव ॥

और जो जीवन्मातृपितृक; गृह्याग्निवाला वा श्रौताग्निवाला है वह पिताके पिताआदिको पिंडदान करै । इस तीसरे पक्षको मानकर प्रारंभकिये पिंडपितृयज्ञमें अष्टका और अन्वष्टका श्राद्धमें और अन्वष्टकामें; पिताके पिता; माता मातामह आदिकोंको पिंडआदि देताहुआहो वह पीछेसे मातामहको और अन्वष्टकामें अपने माता आदिको और पिताके पिता आदिकोभी पिंड दे । और जब पिंडपितृयज्ञ अन्वष्टका आदिका प्रारंभ न किया यह पक्षहै तब जीवत्पितृकको और तभी संन्यस्तपितृकको अमावस्याका श्राद्ध पिताके पिताआदिके उद्देशसे और पृथक् २ भिन्न प्रयोगसे संकल्पपूर्वक होता ही है ॥

अथ जीवत्पितृकवैश्वदेवे विशेषः ।

पितुरविभक्तैः पुत्रैः पृथग्वैश्वदेवो न कार्यः 'पितृपाकोपजीवी स्याद्भ्रातृपाकोपजीवकः ॥' इत्युक्तेः ॥ अत एव गृह्याग्नौ पाकवैश्वदेवकरणपक्षेपि साग्निके पितरि साग्निकैरप्यविभक्तैः पुत्रैः पृथग्वैश्वदेवो न कार्यः ॥ येषां पाकाभावेग्नेर्लौकिकत्वं मतं तैः पाकमात्रमग्निसंस्कारार्थं कार्यमिति भाति ॥ विभक्तैस्तु पृथग्वैश्वदेवः कार्यः॥तत्र वैश्वदेवस्य देवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञात्मकत्वाज्जीवत्पितृकैरपि पंचमहायज्ञांतर्गतः पितृयज्ञः कार्यः वैश्वदेवाद्भिन्नाः पंचमहायज्ञास्तैत्तिरीयाणां तैरपि विभक्तैर्जीवत्पितृकैः पितृयज्ञः कार्यः ॥ तस्य देवरूपिपितृदेवताकत्वेन पितृपितामहादिमनुष्यरूपिपितृदेवकत्वाभावात् ॥

और इकट्ठे रहतेहुये पुत्र, पिता, पृथक् वैश्वदेव न करैं । क्योंकि, यह कहा है । कि, पिताके पाकसे जीवै वा भ्राताके पाकसे जीवै; इसीसे गृह्याग्निमें पाक वैश्वदेव करै । इसपक्षमें भी अग्निहोत्री पिताके होनेपर भी अग्निहोत्री भी इकट्ठे रहते हुये पुत्र पृथक् २ वैश्वदेवको न करैं । और जो पाकके अभावमें अग्निको लौकिक मानते हैं वे अग्निके संस्कारार्थ पाकमात्रको करलें यह प्रतीत होताहै । और पृथक् रहते होयँ तो पृथक् २ वैश्वदेवको करैं :

वहां वैश्वदेवको देवयज्ञ भूतयज्ञ पितृयज्ञ रूप होनेसे जीवत्पितृकभी पंचमहायज्ञोंके अंतर्गत पितृयज्ञको करै । वैश्वदेवके भिन्न पांच महायज्ञ तैत्तिरीयशाखावालोंको हैं । वे भी इकट्ठे रहतेहुये जीवत्पितृक; पितृयज्ञको करैं । वह यज्ञ देवरूप पितृदेवताओंका है । इससे पिता पितामह आदि मनुष्यरूप देवताओंका नहीं होसकता ॥

अथ मुंडननिषेधविचारः ।

"मुंडनं पिंडदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः ॥ नजीवत्पितृकः कुर्याद्गुर्विणीपतिरेव च ॥" अत्र मुंडनं क्षुरेण शिरसोवपनं तेन कर्तनं सिध्यति ॥ सर्वं प्रेतकर्म प्रेतदहनवहनसपिंडीकरणांतौर्ध्वदेहिकादिकर्मित्यर्थः ॥ मुंडनं रागप्राप्तमेव निषिध्यते ॥ तेन चौलोपनयनादिषु आधानदर्शपौर्णमासज्योतिष्टोमादिषु नित्यं प्राप्तं तीर्थप्रायश्चित्तमातृमरणादौ नैमित्तिकप्राप्तं च भवत्येव ॥ केचित्काम्यनागबल्यादिषु काम्यमपि भवतीत्याहुः ॥ "गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ ॥ आधाने सोमपाने च वपनं सप्तसु स्मृतम् ॥" गुरोरिति दत्तकस्य पूर्वापरपित्रोरित्यर्थः ॥ वाक्यांतरे तीर्थमात्रे क्षौरोक्तेर्गंगाभास्करक्षेत्रग्रहणं जीवत्पितृकस्य तत्र विशेषतः क्षौरविधानार्थम् ॥ जीवत्पितृकस्य पिंडदाननिषेधः नांदीश्राद्धतीर्थश्राद्धयोः संन्यस्तादिपितृकस्य दर्शमहालयादिश्राद्धेषु च पिंडरहितसांकल्पिकश्राद्धबोधनार्थः ॥ महापितृयज्ञे सोमयागे मातृमातामहादेर्वार्षिकश्राद्धेषु गयायामन्वष्टक्यादौ च पिंडदानं भवत्येवेत्युक्तम् ॥

मुंडन, पिंडदान और संपूर्ण प्रेतकर्म; इनको जीवत्पितृक और गर्भवतीका पति न करैं । यहां मुंडनसे शिरका वपन लेना तिससे केशोंका काटना सिद्ध होताहै । और संपूर्ण प्रेतकर्मसे प्रेतका जलाना, लेजाना, सपिंडीतक और्ध्वदैहिक कर्म लेना और मुंडनका तो रागप्राप्तका ही निषेध है । तिससे चौल, उपनयन, आदिमें और आधान, दर्श, पौर्णमास, ज्योतिष्टोमआदिमें नित्यप्राप्त, तीर्थ, प्रायश्चित्त और मातृमरण, आदिमें निमित्तसे प्राप्त, प्रायश्चित्त तो होता ही है । कोई यह कहते हैं । कि, काम्य जो नागबलिआदिमें काम्य भी प्रायश्चित्त होता है । गंगामें, भास्करक्षेत्रमें, माता पिता और गुरुके मरनेमें, आधान और सोमपानमें; इन सातोंमें मुंडन कहाहै । इस वचनमें दत्तकके पहिले और पिछले दोनों पिता लेने । अन्य वाक्योंमें तीर्थमात्रमें क्षौर कहाहै । गंगा और भास्कर क्षेत्रका जो ग्रहण है वह जीवत्पितृकको उनमें विशेष कर अधिकारके लियेहै । और जीवत्पितृकको जो पिण्डदानका निषेध है वह नान्दीश्राद्ध और तीर्थ श्राद्धोंमें है । और जिसका पिता संन्यासी हो उसको अमावस्या और महालयआदि श्राद्धोंमें पिण्डरहितसंकल्पसे श्राद्ध जतानेकेलिये है । बडे पितृयज्ञमें और सोमयागमें और माता मातामह आदिके वार्षिक श्राद्धोंमें गया और अन्वष्टका आदिमें पिण्डदान होता ही है यह कहआये ॥

अथ गर्भिणीपतिनापि वार्षिके पिंडदानम् ।

'पिंडदानं प्रकुर्वीत मातापित्रोः क्षयाहनि' इति श्राद्धविधिना पिंडदाने सिद्धे पुनः पिंडविधिः पित्रोर्वार्षिके गर्भिणीपतित्वनिषिद्धकालादिप्रयुक्तनिषेधबाधनार्थ-

म् ॥ तेन "विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ॥ पिंडदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्" इति निषेधस्यापि बाधः ॥ क्षयाहग्रहणं सपिंडीकरणमासिकेष्वपि पिंडदानोपलक्षणपरम् ॥

माता पिताके क्षयदिनमें श्राद्ध करै । इस श्राद्धकी विधिसे पिण्डदानके सिद्ध होनेपर जो पिण्डदानका विधान है वह माता पिताके वार्षिकमें पुत्र; गर्भणीका पतिहो वा कोई निषिद्धकालहो उससे जो निषेध पाया उसके बाधनकेलियेहै । तिससे विवाह, जनेऊ, मुण्डन; इनमें १ वर्ष आधा वर्ष वा तीन मासतक पिण्डदान, मिट्टीसे स्नान, तिलोंसे तर्पण; न करै । इस निषेधका भी बाध होताहै । और क्षयाहका ग्रहण, सपिंडीकरण, मासिक श्राद्धोंमें भी पिण्डदानके उपलक्षण (बोधन) के लिये है ।

अथ प्रेतकर्मप्रतिप्रसवः ।

जीवत्पितृकः स्वमातुरपुत्रसापत्नमातुः स्वपुत्रसपत्नीपुत्ररहितभार्याया अपुत्रपितृव्यस्यापुत्रमातामहमातामह्योश्च दाहादिप्रेतकर्माणि कुर्यात ॥ अत्रापुत्रपदेन मुख्यगौणपुत्रपौत्रप्रपौत्राभावो विवक्षितः ॥

अब प्रेतकर्मके निषेधका जो निषेध उसको कहतेहैं। जीवत्पितृक पुत्र, अपनी माताका और पुत्ररहित सपत्नीमाताका अपने पुत्रकी सपत्नी और पुत्ररहित भार्याका और पुत्ररहित पितृव्यका और पुत्ररहित मातामह और पितामहीका, दाहआदि प्रेतकर्म करै । यहां अपुत्रपदसे मुख्य और गौण जो पुत्र पौत्र और प्रपौत्र इन सबका अभाव लेना ॥

अथ अनुपनीतस्य पित्रोरंत्यकर्माणि ।

मातुरौर्ध्वदेहिकमनुपनीतोपि जीवत्पितृकः कुर्यात ॥ तत्र विशेषः ॥ ऊनत्रिवर्षश्चूडारहितश्चेद्दाहमात्रं समंत्रकं कृत्वान्यदन्येन कारयेत् ॥ यदा तु कृतचूडः पूर्णत्रिवर्षो वा तदा सर्वं समंत्रकं प्रेतकर्म कुर्यात् ॥ ब्रह्मचारी तु पित्रोर्मातामहस्य चांत्यकर्म कुर्यान्नान्यस्य ॥

माताके और्ध्वदेहिक कर्मको वह जीवत्पितृक भी करै । जिसका जनेऊ भी न हुआहो और तीन वर्षसे कम मुण्डनसे रहित होंयँ तो मंत्रोंसे दाहमात्रको करके अन्यकार्य किसी अन्यसे करवावै । और यदि मुंडन होचुकाहो और पूरे तीन वर्षका होय तो मंत्रोंसहित सम्पूर्ण प्रेतकर्मको करै । ब्रह्मचारी तो माता पिताके और नानाके कर्मको करै । अन्यकेको न करै ॥

अथ भर्त्रादिकर्तृसंपाते ।

भर्तृदौहित्रयोः सत्त्वे भर्तैव पत्न्या दाहादि कुर्यात ॥ मुंडनं तु भर्तुर्न ॥ एवमपुत्रस्य पत्नी दौहित्रयोः सत्त्वे पत्न्येव पत्युः कुर्यात ॥ तत्र दाहमात्रं समंत्रकं कृत्वान्यत्संकल्पमात्रं स्वयं विधाय ब्राह्मणद्वारा कारयेत् भर्तृसपत्नीपुत्रयोः सत्त्वे सापत्नपुत्र एव कुर्यान्न भर्ता ॥ सपत्नीपुत्रदौहित्रयोः सत्त्वे सपत्नीपुत्र एव ॥

अपुत्रयोर्विधवाविधुरयोर्भ्रातृपुत्रदौहित्रयोः सत्त्वे दौहित्र एवाधिकारीति बहवः ॥ विधवाया भर्तुर्भ्रातृपुत्र एव विधुरस्य स्वभ्रातृपुत्र एवेति जीवत्पितृकनिर्णये भट्टाः॥ अपुत्रस्य पत्नीभ्रातृपुत्रयोः सत्त्वे पत्न्येव ॥

पति और दौहित्रके रहते हुयेभी भर्ताही पत्नीके दाह आदिकर्मको करै। परंतु मुण्डन न करावै। इसीप्रकार पुत्रहीनमनुष्यके पत्नी और दौहित्र इनदोनोंके होनेपरभी पत्नीही पतिके प्रेतकर्मको करै। उसमें भी मंत्रोंसहित दाहको करके और अन्यकर्मके संकल्पमात्रको स्वयं करके अन्यकर्मको ब्राह्मणके द्वारा करवावै और भर्ता और सपत्नीका पुत्र विद्यमान होयँ तो सपत्नीका पुत्रही अंत्यकर्म करै भर्ता न करै। और सपत्नीका पुत्र और दौहित्र दोनों होयँ तो सपत्नीका पुत्रही करै। पुत्ररहित विधवा और विधुर(स्त्रीरहित) जो हैं उनका तो भ्राताका पुत्र और दौहित्र इनदोनोंके होनेपर दौहित्रही अधिकारी है यह बहुत आचार्य कहतेहैं। विधवाके भर्ताका भाईका पुत्र करै और भार्यासे रहितको अपने भाईका पुत्रही करै। यह जीवत्पितृकके निर्णयमें भट्ट कहतेहैं। पुत्रहीन मनुष्यकी पत्नी और भाईका पुत्र दोनों विद्यमान होयँ तो पत्नी ही करै॥

अथ पुत्रासन्निधौ पौत्रस्याधिकारः।

एवं पुत्रासन्निधौ पौत्रादेः पितामहपितामह्याद्यौर्ध्वदेहिकाद्यधिकारः ॥ इत्थं पित्र्यकर्ममुंडनप्रेतकर्माद्यधिकारानधिकारौ जीवत्पितृकस्य प्रपंचितौ ॥ अत्र विषयभेदाद्बालबोधार्थत्वाच्च पुनरुक्तिर्नातिदोषाय ॥

इसीप्रकार पुत्रके समीप न होनेपर पौत्र आदिकोंका, पितामह पितामही आदिके और्ध्व-देहिक कर्ममें अधिकार है। इसप्रकार पितरोंके कर्म, मुण्डन, प्रेतकर्म आदिके अधिकार और अनधिकारका जीवत्पितृकको विस्तारसे वर्णन किया। इसमें विषयभेदसे और बालबोधके लिये पुनरुक्ति अत्यंतदोषके लिये नहीं॥

अथ तिलांजलिदानम्।

सपिंडानां सगोत्रसपिंडमरणे सकृत्सकृत्तिलांजलिदानं विहितं तज्जीवत्पितृकेणापि कार्यम् ॥ एवं मातामहाचार्यादिभ्योपि ॥ इति जीवत्पितृकनिर्णयः॥

सगोत्री सपिण्डके मरनेमें एक तिलांजली देना कहाहै। उसको जीवत्पितृक भी दे इसीप्रकार मातामह और आचार्यआदिको भी दे। जीवत्पितृकका निर्णय समाप्त हुआ॥

अथ श्राद्धाद्यधिकारिनिर्णयः।

तत्र सांवत्सरिकादिश्राद्धेषु दाहाद्यौर्ध्वदेहिकक्रियायां चौरसः पुत्रो मुख्योधिकारी ॥ औरसपुत्राणां बहुत्वे ज्येष्ठ एवाधिकारी ज्येष्ठस्याभावेऽसंनिधाने वा पातित्यादिनाधिकाराभावे वा ज्येष्ठानुजः ॥ यत्तु ज्येष्ठासन्निधौ सर्वतः कनिष्ठोधिकारी न तु मध्यमा इति तन्निर्मूलम् ॥ तत्र पुत्राणां विभक्तत्वे कनिष्ठेभ्यो धनं गृहीत्वा ज्येष्ठेनैव सपिंडीकरणांता क्रिया कार्या ॥ सांवत्सरिकादिकं तु पृथक् पृथक् ॥ अविभक्तत्वे तु सांवत्सरिकादिकमप्येकेनैव कार्यम् ॥ एकेन कृतेपि

सर्वेषां फलभागित्वात्सर्वैः पुत्रैर्ब्रह्मचर्यपरान्नवर्जनादयो नियमाः कार्याः पुत्राणामेकदेशस्थित्यभावे देशांतरे गृहांतरे वा स्थितैस्तैरविभक्तैरपि पृथगेव वार्षिकादिकं कार्यम् ॥ तत्र यदा ज्येष्ठासंनिधौ कनिष्ठो दाहादिकं करोति तदा षोडशश्राद्धांतमेव कुर्यान्न सपिंडीकरणम् ॥ वर्षपर्यंतं ज्येष्ठप्रतीक्षां कुर्यात् ॥ तन्मध्ये ज्ञाते ज्येष्ठेनैव कार्यम् ॥ नो चेद्वर्षान्ते कनिष्ठेनापि कार्यम् ॥ वर्षात्प्राक् पुत्रभिन्नेन कृतमपि मासिकानुमासिकसपिंडीकरणं पुत्रेण पुनः कार्यम् ॥ एवं कनिष्ठेन कृतमपि ज्येष्ठपुत्रेण पुनः कार्यम् ॥ विशेषस्त्वग्रे वक्ष्यते ॥ कनिष्ठस्य साग्निकत्वे सपिंडीकरणमपि द्वादशेह्नि कनिष्ठेन कार्यम् ॥

अब श्राद्धके अधिकारियोंका निर्णय कहतेहैं। उनमें वार्षिक आदिश्राद्धोंमें और दाहआदि और्ध्वदेहिक क्रियामें औरस पुत्रही अधिकारीहै अर्थात् जो अपनेसे सवर्णमें उत्पन्न हुआहै वेही अधिकारी है। औरस पुत्र बहुत होयँ तो जेठाही अधिकारी होताहै, जेठा मरगया हो वा समीपमें न होय अथवा पतित होय तो जेठेसे छोटा मध्यमपुत्र अधिकारीहै। जो किसीने यह कहाहै कि, जेठेके समीप न होनेपर सबसे छोटापुत्र अधिकारी है, मध्य नहीं सो निर्मूल है अर्थात् प्रमाण रहितहै। उसमेंभी पुत्रोंके पृथक्२होनेपरभी छोटोंसे धनको लेकर सपिण्डीकरणपर्यंत क्रियाको जेठा करै। वार्षिक आदिश्राद्धकों तो पृथक् २ करैं और पृथक् २ न रहते होयँ तो वार्षिक आदिश्राद्धकोभी एक ही करै एकके करनेसेभी सब फलके भागी होते हैं। इससे सम्पूर्ण पुत्र ब्रह्मचर्य पराये अन्नआदिके त्यागको करैं। यदि पुत्रोंकी एकदेशमें स्थिति न होय अथवा अन्यदेश वा अन्यघरमें स्थिति होयतो इकट्ठेरहतेभी वे पृथक् २ ही आदिनियमोंसे वार्षिक आदिश्राद्धोंको करैं। और जब ज्येष्ठके समीप न होनेपर कनिष्ठभाई दाह आदिको करै तब षोडश श्राद्धपर्यंतही क्रियाको करै सपिण्डी करणको न करै। किंतु वर्षपर्यंत जेठेभाईकी प्रतीक्षा करै। (बाटदेखे) वर्षदिनके मध्यमें मालूम होजाय तो जेठाही सपिंडीको करै। न मालूम होय तो वर्षके अंतमें छोटाही करै। वर्षदिनसे पहले पुत्रसे अन्यने मासिक, अनुमासिक; सपिंडीकरण कर भी लिये होयँ तो भी पुत्रको दुबारा करने इसीप्रकार कनिष्ठपुत्रके कियेहुये भी श्राद्ध ज्येष्ठपुत्रको फिर करने। इसमें विशेष तो आगे कहेंगे। कनिष्ठ अग्निहोत्री होय तो सपिंडीको भी बारहमें दिन कनिष्ठ ही करै ॥

अथौरसाभावे विचारः।

औरसपुत्राभावे पुत्रिकासुतक्षेत्रजादयो द्वादशविधाः पुत्रा उक्तास्तथापि कलौ तेषां पुत्राणां निषेधादौरसपुत्राभावे दत्तक एवाधिकारी ॥ मातापितृभ्यामन्यतरेण वा विधिपूर्वं दत्तः प्रतिगृहीतृसवर्णो दत्तकः भार्यानुमत्या पत्युः पुत्रदातृत्वं तदप्यापदि ॥ अत्यंतापदि तु भार्यानुमत्यभावेपि पत्न्याः पत्यनुमत्यैव ॥ अत्र विशेषविचारः प्रागुक्तः ॥ दत्तकाभावे पौत्रः ॥ पौत्राभावे प्रपौत्रः ॥ अन्येत्वौरसाभावे पौत्रः ॥ तदभावे प्रपौत्रः ॥ प्रपौत्राभावे दत्तक इत्याहुः ॥ उपनीतपौत्रसत्त्वेप्यनुपनीतौरसपुत्रस्यैवाधिकारः ॥ स च कृतचूडस्यैववर्षाकिध-

वयसः ॥ पूर्णत्रिवर्षस्य त्वकृतचूडस्यापि ॥ अनुपनीतेनापि मन्त्रपाठपूर्वकमेव पित्रोरौर्ध्वदेहिकं सांवत्सरिकादिकं श्राद्धं च कार्यम् ॥ अशक्तौ त्वग्निदानमात्रं समन्त्रकमनुपनीतेन कार्यम् ॥ अन्यत्त्वन्यद्वारा॥ एवं श्राद्धेपि दर्शमहालयादौ संकल्पमात्रं कार्यम् ॥ अन्यदितरेण ॥ केचित्तूनत्रिवर्षेण चूडारहितेनापि दाहमात्रं समंत्रकं कार्यम् ॥ शेषमन्येनेत्याहुः ॥ दत्तकस्तूपनीत एवाधिकारी ॥ दत्तकाभावे प्रपौत्राभावे च भर्तुः पत्नी पत्न्या भर्ता च दाहाद्यौर्ध्वदेहिकं सांवत्सरिकश्राद्धादिकं च कुर्यात् ॥ भर्तुरपि सपत्नीपुत्रसत्त्वेऽधिकारो न ॥ "विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदेहिकम्" ॥ तदभावे सपत्नीज इत्युक्तेः भार्ययापि समंत्रकमेवौर्ध्वदेहिकादिकं कार्यम् ॥ अशक्तौ त्वग्निदानमात्रं समंत्रकं कृत्वा शेषमन्येन कार्यम् ॥ श्राद्धे संकल्पमात्रं कृत्वा शेषमन्येन ॥ यद्यप्यविभक्तस्य संसृष्टस्य वा भ्रातुरेव धनग्रहाधिकारस्तथापि क्रियाधिकारः पत्न्या एव ॥ विभक्तासंसृष्टे तु भ्रातरि धनाधिकारोपि पत्न्या एव ॥ पत्न्यभावे विभक्तासंसृष्टस्य कन्या पिंडदा धनहारिणी च ॥ तत्रापि विवाहितैव पिंडदा धनहरा त्वनूढापि ॥ दुहितुरभावे दौहित्रो धनहारी पिंडदश्च ॥ दौहित्राभावे भ्राता ॥ भ्रातुरभावे भ्रातृपुत्रः ॥ अविभक्तस्य संसृष्टस्य च पत्न्यभावे भ्राता ॥ संसृष्टो नाम पूर्वं विभक्तो भूत्वा पुनः स्वधनं भ्रातृधनैरेकीकृत्यैकपाकाद्युपजीवनः ॥ तत्र सोदरासोदरसमवाये सोदर एव॥ तत्रापि ज्येष्ठकनिष्ठयोः सत्त्वे कनिष्ठ एव॥ कनिष्ठभ्रातुरभावे ज्येष्ठभ्रातैव॥ कनिष्ठबहुत्वे मृतानंतरस्तदभावे तदनंतरादयः ॥ एवं ज्येष्ठबहुत्वे मृतानंतरक्रमेणैव सोदरभ्रातुरभावे सापत्नभ्राता ॥ अत्रापि ज्येष्ठत्वादिविचारः पूर्ववदेव ॥ केचित्तु दुहितृदौहित्रयोर्धनहारित्वेपि विभक्ता संसृष्टस्य दाहादिकं भ्रात्रैव कार्यम् ॥ सगोत्रसद्भावे भिन्नगोत्रस्य तदनधिकारादित्याहुः ॥ भ्रातुरभावे भ्रातृपुत्रः ॥ तत्रापि सोदरभ्रातृपुत्रो मुख्यः ॥ तदभावे सापत्नभ्रातृपुत्रः ॥ तदभावे पिता पितुरभावे माता मातुरभावे स्नुषा ॥ तदभावे भगिनी ॥ तत्रानुजाग्रजसोदरासोदराणां समवाये भ्रातृवत् ॥ भगिन्यभावे भगिनीपुत्रः समवाये तद्वदेव ॥ तदभावे पितृव्यतत्पुत्रादयः सपिंडाः ॥ तदभावे सोदकाः ॥ तदभावे गोत्रजाः ॥ तदभावे मातामहमातुलतत्पुत्रादयो मातृसपिंडा अनुक्रमेण ॥ मातृसपिंडाभावे स्वपितृष्वसृमातृष्वसृपुत्राः ॥ तदभावे पितुः पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्ररूपाः पितृबंधवः ॥ एवं मातुः पितृष्वस्रादिपुत्ररूपमातृबंधवः पितृबंधूनामभावेधिकारिणः ॥ तदभावे शिष्यः ॥ शिष्याभावे जामाता श्वशुरस्य ॥ श्वशुरो जामातुः ॥ तदभावे सखा तदभावे विप्रस्य कश्चिद्धनहारी ॥ विप्रभिन्नस्य राज्ञा धनं गृहीत्वा तेन धनेनान्यद्वारा कारणीयम् ॥ अथवा विप्राद्यैर्मरणोन्मुखैर्धर्मपुत्रः कार्यः ॥

औरसपुत्रके अभावमें पुत्रिकासुत और क्षेत्रजआदि बारहप्रकारके पुत्र यद्यपि कहेहैं तथापि कलियुगमें उन पुत्रोंका निषेध कहाहै । इससे औरस पुत्रके अभावमें दत्तक पुत्रही अधिकारीहै । माता पिता दोनोंने वा दोनोंमेंसे एकने जो विधिपूर्वक दिया हो और लेनेवालेका जो सवर्णीहो उसे दत्तक कहतेहैं । भार्याकी सम्मतिसे पतिको जो पुत्रका दान है, वह भी विपत्तिके विषय है और अत्यंतविपत्तिमें तो भार्याकी संमतिके अभावमें भी पुत्रका दान होसकताहै पत्नी तो पतिकी संमतिसे ही देसकती है । इसमें विशेष विचार पहिले कहआये हैं । दत्तकके अभावमें पौत्र और पौत्रके अभावमें प्रपौत्र अधिकारी होताहै अन्यतो यह कहतेहैं कि, औरसके अभावमें पौत्र और पौत्रके अभावमें प्रपौत्र और प्रपौत्रके अभावमें दत्तक अधिकारी होताहै । जिसका जनेऊ होलिया हो ऐसे पौत्रके होते भी जनेऊसे रहित औरसपुत्रका ही अधिकार है ॥ और वह भी उसको है जिसका मुंडन होचुका हो और जिसकी अवस्था एकवर्षसे अधिक हो और जो पूरे तीनवर्षका है उसका तो मुंडनके न होनेपर भी अधिकारहै । और जिसका जनेऊ न:हुआ हो वह भी मंत्रपाठपूर्वक ही मातापिताके और्ध्वदेहिकको और वार्षिक आदिश्राद्धको करै । और सामर्थ्य न होय तो जिसका जनेऊ न हुआ हो वह मंत्रोंसे अग्निदानमात्रको करै अन्यकर्मको अन्यके द्वारा करवावै । इसीप्रकार अमावस्या और महालयआदि श्राद्धोंमें भी संकल्पमात्र ही करना अन्यकर्म तो इतरसे करवाना । कोई तो यह कहतेहैं कि, तीन वर्षसे कम जो मुंडनसे रहितहै वह भी मन्त्रोंसे दाहमात्र करै शेषकर्म अन्यसे करावै । और दत्तक तो वही अधिकारी है जिसका जनेऊ होचुकाहो । और दत्तक और प्रपौत्रके अभावमें भर्ताका पत्नी, और पत्नीका भर्ता,दाहआदि और्द्धदेहिकको और सांवत्सरिकश्राद्ध (क्षयी) को करै । और सपत्नीका पुत्र विद्यमान होय तो भर्ताका भी अधिकार नहीं; क्योंकि; यह स्मृतियोंमें कहाहै । कि, माताका औरसपुत्र और्ध्वदेहिक करै । और उसके अभावमें सपत्नीका पुत्र करै और भार्या भी मंत्रोंसहित ही और्द्धदेहिकआदि कर्मको करै । और असामर्थ्यमें तो मन्त्रोंसहित अग्निदानमात्रको करके शेषकर्म अन्यको करना । और श्राद्धमें संकल्पमात्रको करके शेषकर्मको अन्य करै । यद्यपि जो इकट्ठा रहता हो वा संसृष्ट हो अर्थात् जुदा होकर फिर मिलगया हो उस भ्राताकोही धनके ग्रहण करनेका अधिकार है तथापि क्रियाका अधिकार तो पत्नीकोही है । और जुदे और असंसृष्ट भ्राताके रहते भी पत्नीको ही धनका अधिकार है । और पत्नी न होय तो जुदे और असंसृष्टकी कन्याको ही पिंडदानका और धनके ग्रहण करनेका अधिकारहै कन्याओंमें भी विवाहीहुयी कन्या ही पिंड दे धनका ग्रहण तो विना विवाही भी करै । और कन्याके अभावमें दौहित्र ही धनका ग्रहण और पिंडदान करै । दौहित्रके अभावमें भ्राता और भ्राताके अभावमें भ्राताका पुत्र अधिकारी है । और अविभक्तके और संसृष्टके कर्मका अधिकारी, पत्नीके अभावमें भ्राता होताहै । संसृष्ट उसको कहतेहैं जो पहिले विभक्त (जुदा) होकर फिर अपने धनको भाइयोंके धनोंमें इकट्ठा करके एकभोजन जीविकाको करै । उन संसृष्टोंमें भी सहोदर असहोदरोंके मध्यमें सहोदर ही अधिकारी है । और उन सहोदरोंमें भी ज्येष्ठ और कनिष्ठोंके मध्यमें कनिष्ठ ही अधिकारी है । और कनिष्ठभ्राता न होय तो ज्येष्ठभ्राता अधिकारी है । कनिष्ठभ्राता बहुत होयँ तो मरेहुयेसे छोटा और वह भी न होय तो उससे छोटे क्रमसे अधिकारी होतेहैं । इसीप्रकार ज्येष्ठोंके बहुत होनेपर भी मृतकसे छोटे २ क्रमसे अधि-

कारी होतेहैं । सोदरभाईके अभावमें सपत्नभ्राता अधिकारी है । यहां भी ज्येष्ठआदिका विचार; पूर्वके समान ही है । कोई तो यह कहते हैं कि, दुहिता और दौहित्र ये दोनों धनके ग्राहक भी हैं तो भी विभक्त और असंसृष्ट भ्राताके दाह आदिको भ्राता ही करै । क्योंकि, सगोत्रके होते भिन्नगोत्रको दाहका अधिकार नहीं है । भ्राताके अभावमें भ्राताका पुत्र अधिकारीहै । तो भी सोदरभ्राताका पुत्र मुख्य है । वह न होय तो सापत्नभ्राताका पुत्र; वह भी न होय तो पिता; पिता भी न होय तो माता; माता भी न होय तो पुत्रकी वधू; वह भी न होय तो बहिन अधिकारिणी होती है । उनमें भी छोटी जेठी सोदरअसोदरोंके मध्यमें भ्राताके समान व्यवस्था समझनी । बहिनके अभावमें भानजा और समूहमें तो उसी पूर्वोक्तके समान समझना । भगिनीका पुत्र भी न होय तो पितृव्य उसके पुत्रआदि सपिंड अधिकारी होतेहैं । सपिंडोंके अभावमें सोदक और सोदकोंके अभावमें गोत्रज अधिकारी हैं । गोत्रजोंके अभावमें मातामह मातुल मातुलके पुत्रआदि जो माताके सपिंड हैं वे क्रमसे अधिकारी हैं । मातृसपिण्डोंके अभावमें अपनी फूफी और मांवसीके पुत्र अधिकारी हैं । उनके अभावमें पिताकी फूफी और मांवसीके और मामाके पुत्ररूप जो पिताके बन्धुहैं वे अधिकारी हैं । इसीप्रकार माताकी फूफीके पुत्र आदि जो माताके बन्धुहैं वे सब पितृबंधुओंके अभावमें अधिकारी हैं । वे भी न होयँ तो शिष्य और शिष्यके अभावमें श्वशुरका जामाता और जामाताका श्वशुर अधिकारी होता है । वह न होय तो मित्र; और मित्र न होय तो ब्राह्मणके धनका अधिकारी कोई ब्राह्मण होताहै । और ब्राह्मणसे भिन्नके धनको तो राजा ग्रहण करके उस धनसे किसी अन्यके द्वारा क्रिया करवावै । अथवा मरनेके समयमें ब्राह्मणआदि धर्मपुत्रको करले ॥

अथ स्त्रीणां दाहाद्यधिकारिणः ।

अनूढाया स्त्रियाः पिता तदभावे भ्रातादिः ॥ऊढायास्तु पुत्राभावे सपत्नीपुत्रः॥ तदभावे पौत्रप्रपौत्राः ॥ तदभावे पतिः ॥ तदभावे दुहिता ॥ तदभावे दौहित्रः॥ तदभावे पत्युर्भ्राता ॥ तदभावे पत्युर्भ्रातृपुत्रः॥तदभावे स्नुषा ॥ तदभावे पिता ॥ पितुरभावे भ्राता ॥ तदभावे भ्रातृपुत्रादयः पूर्वोक्ताः ॥ अत्र सर्वत्र पुत्रभिन्नानां पुत्रासंनिधानात्पुत्राभावाद्वा कर्तृत्वमिति स्थितम् ॥

अब स्त्रियोंके दाहआदिके अधिकारियोंको कहते हैं । विनाविवाही स्त्रीका अधिकारी पिता है । पिताके अभावमें भ्राताआदि अधिकारी हैं । और विवाहीहुई स्त्रीका तो पुत्रके अभावमें सपत्नीका पुत्र और उसके अभावमें पौत्र प्रपौत्र और उनके अभावमें पति और पतिके अभावमें दुहिता; उसके अभावमें दौहित्र; दौहित्रके अभावमें पतिका भ्राता; उसके अभावमें पतिके भाईका पुत्र; उसके अभावमें पुत्रकी वधू; उसके अभावमें पिता; पिताके अभावमें भ्राता; भ्राताके अभावमें भ्राताके पुत्र आदि जो पूर्वोक्त हैं वे अधिकारी होतेहैं । यहां सर्वत्र पुत्रसे भिन्नोंका अधिकार जब है यदि पुत्र समीपमें हो, वा पुत्र न हो यह मर्यादा है ॥

अथ पुत्रभिन्नानां कृत्यविचारः ।

तत्र यदि पुत्रासंनिधानात्कर्तृत्वं तदा पुत्रभिन्नैर्दाहमारभ्य सपिंडीकरणात्प्राचीनकर्मैव कार्यम् ॥ न तु पुत्रभिन्नैः सपिंडीकरणं कार्यम् ॥ पुत्राभावे त्वन्यैः

सपिंडीकरणमपि कार्यम् ॥ तत्रापि सपिंडादिभिर्नृपांतैर्दाहमारभ्य दशाहक्रियाः कार्या एव ॥ ता एव पूर्वा इत्युच्यंते ॥ तत एकादशाहमारभ्य सपिंडीकरणांता मध्यमसंज्ञास्तासु सपिंडादीनां कृताकृतत्वम् ॥ तदूर्ध्वा अनुमासिकसांवत्सरिकाद्यास्ता उत्तराख्याः सपिंडादिभिर्न कार्या एव ॥ इदं च तदीयवृत्त्यादिस्थावरधनस्य चरधनस्य वा ग्रहणाभावे ॥ दतन्यतरधनग्रहणे तु सपिंडादिभिरपि मध्यमोत्तराख्या अपि क्रियाः कार्या एव ॥ राज्ञा तु मृतधनसत्त्वे तद्धनद्वारा तत्सजातीयवर्णहस्तेन सर्वा अपि क्रियाः कारणीया एव ॥ धनाभावे तु पूर्वाता एवावश्यं कारणीया नान्याः ॥ सपिंडादिनृपांतभिन्नानां तु मृतस्य धनाभावेपि स्वधनेनैव सपिंडीकरणांतक्रियाकरणमावश्यकम् ॥

उनमें भी यदि पुत्रके समीप न होनेपर करै। तो पुत्रसे भिन्न दाहसे लेकर सपिंडीसे पहिले २ कर्मको ही करै। पुत्रसे भिन्न सपिंडीकरणको न करै। पुत्रके अभावमें तो अन्य; सपिंडीकरणको भी करै। उनमें भी सपिंडसे लेकर राजापर्यंतको दाहसे लेकर दशाहकी क्रिया अवश्य करनी; वे ही पूर्वक्रिया कहातीहैं। उसके अनंतर एकादशाहसे लेकर सपिंडीकरणपर्यंत क्रियाओंकी मध्यम संज्ञा है। उनको सपिंड करैं वा न करैं अर्थात् उनके करनेका अधिकार है भी और किसीको नहीं भी और सपिंडीकरणसे आगे अनुमासिक, वार्षिक, आदिहैं वे उत्तरनामकी सपिंडआदिको न करनी। यह भी तब है जब उसकी जीविकाका स्थावर धन वा जंगम धन ग्रहण न किया हो; यदि उन धनोंमेंसे कोई धन ग्रहण किया होय तो सपिण्डआदि भी मध्यम उत्तर नामकी क्रियाओंको अवश्य करैं। और राजा तो मृतकका धन होनेपर उस धनसे उसके सजातीय पुरुषके हाथसे सम्पूर्ण क्रियाओंको करवावै। और धन न होय तो पूर्वांतक्रियाओंको तो अवश्य करवावै मध्यम उत्तम क्रियाओंको न करवावै। और सपिंडसे लेकर राजापर्यंतसे जो भिन्न हैं उनको तो मृतकका धन न होनेपर भी अपने धनसे ही सपिंडिकरणपर्यंत सम्पूर्ण क्रियाओंको करना आवश्यक है॥

अथ धनहारेण प्रेतकार्याकरणे।

मृतस्य धनं गृहीत्वा प्रेतकार्याकरणे नृपांतानां तद्वर्णवधप्रायश्चित्तम् ॥ पुत्राद्यैर्भ्रातृसंतत्यंतैर्दौहित्रैश्च तत्पुत्रैश्च त्रिविधा अपि क्रिया धनग्रहणसत्त्वे तदसत्त्वे वापि कार्या एव ॥ तत्र स्त्रीणामुत्तराः क्रिया मृताहन्येव ॥ न तु दर्शादौ ॥ भर्तृश्राद्धेनैव निर्वाहस्मृतेः ॥ पूर्वमध्यमाख्यास्तु पृथगेव स्त्रीणाम् ॥ केचित्पुत्रपत्योरभावे स्त्रीणां दौहित्रादिभिः सपिंडीकरणरहिता एवोत्तराः क्रियाः कार्याः ॥ सपिंडीकरणं तु तासां न कार्यम् ॥ सपिंडीकरणाभावेपि एकोद्दिष्टविधिना वार्षिकादिकं कार्यमित्याहुः ॥ "ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न कुर्यात्कर्मपैतृकम् ॥ कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत् ॥" शूद्रेणापि ब्राह्मणस्य न कार्यं पैतृकं क्वचित् ॥

यदि राजापर्यंत मृतकके धनको लेकर प्रेतकार्यको न करै तो उसके वधका प्रायश्चित्त होताहै। पुत्रसे लेकर भ्राताकी संतानपर्यंत दौहित्र और उनके पुत्रोंको तो धनग्रहण किया

हो वा न कियाहो अनेकप्रकारकी क्रिया अवश्य करनी। उनमें भी स्त्रियोंकी उत्तर क्रिया मरणदिनमें होतीहै दर्शआदिमें नहीं। क्योंकि, ऐसी स्मृतिहै कि, भर्ताके श्राद्धसे ही निर्वाह होताहै। पूर्वमध्यम नामकी क्रिया तो स्त्रियोंकी पृथक् ही होवीहै और यह कहते हैं कि, पुत्र पतिके अभावमें दौहित्रआदि स्त्रियोंकी सपिण्डीकरणको छोडके ही उत्तरक्रियाओंको करै; उनके सपिंडीकरणको न करै। सपिण्डीकरणके अभावमें भी एकोद्दिष्टकी विधिसे ही वार्षिकआदिको करै; ब्राह्मण तो अन्यवर्णोंके पैतृककर्म न करै। यदि काम और लोभसे करै तो उसीकी जातिको प्राप्त होताहै। और शूद्र भी ब्राह्मणके पैतृक कर्मको कदाचित् न करै॥

अथ दत्तके जनकपितुः सन्तत्यभावे विचारः।

दत्तकस्तु जनकपितुः पुत्राद्यभावे जनकपितुः श्राद्धं कुर्याद्धनं च गृह्णीयात्॥ जनकपालकयोरुभयोः पित्रोः सन्तत्यभावे दत्तको जनकपालकयोरुभयोरपि धनं हरेत्॥ श्राद्धं च प्रतिवार्षिकमुभयोः कुर्यात्॥ दर्शमहालयादौ तु द्वयोः पित्राद्योः श्राद्धं देयम्॥ तत्र द्वयोः पित्राद्योः पृथक् पिंडदानं पित्रादिद्वयद्वयोद्देशेनैकैको वा पिंडः॥

दत्तकपुत्र तो अपने जनक पिताके पुत्रआदिका अभाव होनेपर श्राद्धको करै और धनको हरै, यदि जनक और पालक दोनों पिताओंके संततिका अभाव होय तो दत्तकपुत्र जनक और पालक दोनोंके धनको ग्रहण करै; और प्रतिवर्ष दोनोंके श्राद्धको करै। दर्श और महालय आदिमें दोनोंके पिताआदिको श्राद्ध देने और उनमें भी दोनोंके पिताआदिको पृथक् २ पिण्ड देने, वा पिताआदि दो २ के उद्देश (नाम) से एक २ पिंड देना॥

अथ दत्तकसन्ततेः पितृजनकश्राद्धविचारः।

एवं दत्तकस्य पुत्रोपि दत्तकजनकस्य पुत्राद्यभावे स्वपितरं पितामहद्वयं प्रपितामहद्वयं चोच्चार्य दर्शादिकं कुर्यात्॥तथैव धनं हरेत्॥ एवं दत्तकपौत्रोपि तज्जनककुले प्रपितामहस्य पुत्राद्यभावे पितरं पितामहं चैकमुच्चार्य प्रपितामहद्वयमुच्चार्य दर्शादिश्राद्धं कुर्यात्॥ प्रपितामहस्य धनं च हरेत्॥ यद्येषां स्वासु भार्यास्वपत्यं न स्यादिक्थं हरेयुः पिंडं चैभ्यस्त्रिपुरुषं दद्युरित्यादेरेकपिंडे द्वावनुकीर्तयेद्गृहीतारं चोत्पादयितारं चातृतीयात्पुरुषादित्यादेश्च लौगाक्ष्यादिस्मृतिवचनात्॥

इसीप्रकार दत्तकका पुत्र अपने जनकके पुत्रके न होनेपर अपने पिता और दोनों पितामह और दोनों प्रपितामह इनका उच्चारण करके दर्शआदिश्राद्धको करै। और तिसीप्रकार धनको हरै। इसीप्रकार दत्तकका पौत्र भी अपने जनकके कुलमें प्रपितामहके पुत्रआदि न होंय तो अपने पिता और पितामह एक२का और दोनों प्रपितामहोंका उच्चारण करके दर्शआदि श्राद्ध करै और प्रपितामहके धनको हरै; यदि इनकी अपनी भार्याओंमें संतान न होय तो धनको ग्रहण करै और तीन पीढीपर्यंत इनको पिण्ड दे। और एकपिंडमें ग्रहण करनेवाले और पैदा करनेवाले दोनोंका उच्चारण तीनपीढीपर्यंत करै। यह लौगाक्षिआदि स्मृतियोंका वचन है॥

अथोभयोः सन्ततिसत्त्वे विचारः ।

यदि जनकपालकयोरुभयोरपि पुत्रादिसन्ततिसत्त्वं तर्हि दत्तक उभयोरप्यौर्ध्व-दैहिकं वार्षिकादिकं च न कुर्यात् ॥ पालकपितुरौरसपुत्रादिभक्तेन दत्तकेन दर्श-महालयादिश्राद्धमात्रं पालकपित्रादिपार्वणोद्देशेन कार्यम् ॥ अविभक्तस्य तु तदौरस-कृतदर्शादिनैव दत्तकस्य दर्शादिसिद्धिरिति भाति ॥

और जो जनक और पालक दोनों पिताओंके पुत्रआदिसंतान होये तो दत्तक दोनोंके और्द्ध्व-दैहिक और वार्षिक श्राद्धको न करै । और पालक पिताका जो औरस पुत्र है उससे विभक्त दत्तक दर्शमहालयादि श्राद्ध मात्रको पालक पिता आदिके पार्वणके उद्देश (नाम) से करै । और अविभक्त दत्तकके तो उसके औरसपुत्रके किये हुये दर्शआदिसे ही दर्शआदि श्राद्धकी सिद्धि होजातीहै । यह हमें भासताहै ॥

अथ ब्रह्मचारिणः श्राद्धादिविचारः ।

ब्रह्मचारिणो मासिकाब्दिकादिश्राद्धं मातापितृभिः कार्यम् ॥ ब्रह्मचारिणा तु मातृपितृमातामहोपाध्यायाचार्यभिन्नानां शवनिर्हरणं दाहाद्यंत्यकर्म च न कार्यम् ॥ अन्याधिकार्यभावे मातृपितृमातामहाचार्याणां दाहादिकं ब्रह्मचारिणा कार्यम् ॥ तत्र दशाहःकर्मकरणे दशाहमाशौचम् ॥ दाहमात्रकरणे एकाहम् ॥ तदाप्यस्य नित्यकर्मलोपो नास्ति ॥ अशुचित्वेप्याशौचिनामन्नं तेन न भोक्तव्यं तैः सह न वस्तव्यं तदुभयकरणे प्रायश्चित्तपुनरुपनयने वक्ष्येते ॥ अन्येषां दाहादौ कृच्छ्र-त्रयं पुनरुपनयनं च ॥ धर्मार्थं केनचित्कस्यचित्सवर्णस्य दाहादिश्राद्धादिकरणे संपत्त्यादिफलम्

और ब्रह्मचारीके मासिक आब्दिक श्राद्धको माता पिता करैं । ब्रह्मचारी तो माता, पिता, मातामह, उपाध्याय, आचार्य; इनसे भिन्नोंका शवनिहरण (मुर्दैक लेजाना) और दाहआदि अंतकर्मको न करै । अन्य अधिकारी न होय तो माता पिता मातामह और आचा-र्यके दाहआदिको ब्रह्मचारी भी करैं । उसमें दशाह कर्मके करनेमें दश (१०) दिनका और दाहमात्रके करनेमें एक (१) दिनका आशौच होताहै तो भी ब्रह्मचारीके नित्यकर्मका लोप नहीं होता । अशुद्धभी ब्रह्मचारीको अशुचियोंके अन्नको न खाना और न उनके संग बसना इन दोनोंको करै तो उन दोनोंका प्रायश्चित्त और पुनः उपनयन कहेहैं । औरोंके दाहआदिमें तो तीन कृच्छ्र और पुनः उपनयनको ब्रह्मचारी करै । यदि धर्मके लिये कोई किसी सवर्णीके दाह और श्राद्ध आदिको करै तो सम्पदा आदि फल मिलताहै ॥

अथ शूद्रस्य श्राद्धमंत्रादिविचारः ।

अयं सर्वोपि श्राद्धविधिः शूद्राणाममंत्रकः कार्यः ॥ अत्र केचिद्वैदिकमंत्रपाठ एव शूद्राणां वर्ज्यः पौराणमंत्रास्तु पठनीया इत्याहुः ॥ पौराणमंत्रा अपि शूद्रेण

स्वयं न पठनीयाः किंतु विप्रद्वारा पठनीयाः ॥ वेदमंत्रास्तु न विप्रद्वारापीति सिंधुः ॥ एवं द्विजस्त्रियोपि व्रतोद्यापनादाविव संकल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमंत्रादिप्रयुक्तं सर्वं श्राद्धं विप्रद्वारा कारयेयुरिति पारिजातकारमतम् ॥ शूद्रस्य सदामश्राद्धमेव ॥ पित्रे नमः पितामहाय नम इत्येवमादिना नमोन्तनाममंत्रेण निमंत्रणपाद्यासनगंधपुष्पादिना विप्रान्संपूज्यामं निवेद्य सक्तुना पिंडदानादि कृत्वा दक्षिणादानादिना श्राद्धं समाप्य सजातीयान्गृहसिद्धपक्वान्नेन भोजयेत् ॥

यह सम्पूर्ण भी श्राद्धकी विधि शूद्रोंको विना मंत्र करनी। यहां कोई यह कहतेहैं कि, वैदिक मंत्रोंका पाठही शूद्रोंके यहां वर्जित है।पुराणके मंत्र तो शूद्रोंके यहां भी पढनेयोग्यहैं। और पुराणके मन्त्रभी शूद्रको स्वयं न पढने किंतु ब्राह्मणकेद्वारा पढने और वेदके मन्त्र तो ब्राह्मणद्वारा भी न पढने यह निर्णयसिंधुमें कहाहै। इसीप्रकार द्विजोंकी स्त्री भी व्रत,उद्यापनके समान संकल्पमात्रको स्वयं करके वेदके मन्त्रोंसहित संपूर्ण श्राद्धको ब्राह्मणकेद्वारा करवावै यह पारिजातकारका मत है। शूद्रके यहां तो सदैव आमश्राद्ध होता है। पिताको नमस्कार है। पितामहको नमस्कारहै। इत्यादि नमः है अन्तमें जिसके ऐसे नाममंत्रसे; पाद्य, आसन, गंध, पुष्पआदिसे ब्राह्मणोंको पूजकर आम (कच्चे) अन्नको निवेदन करके और सक्तुसे पिंडदानआदिको करके और दक्षिणा दानआदिसे श्राद्धको समाप्त करके अपने सजातियोंको; घरमें पकाये अन्नसे भोजन करवै ॥

अथ सच्छूद्रविषये विचारः।

यत्तु सिंधौ नाममंत्रेणावाहनाग्नौकरणकाश्यपगोत्रोच्चारपूर्वकपिंडदानादिकं तर्पणादिकं पाकेन पिंडदानादिकं चोक्तं तत्सच्छूद्रविषयम् ॥ सप्तपुरुषं त्रिपुरुषं वा परंपरया स्नानवैश्वदेवतर्पणादिकं शूद्रकमलाकरादिग्रंथसंगृहीतं धर्मं नियमेनाचरन्सच्छूद्र उच्यते ॥

जो निर्णयसिंधुमें यह कहाहै कि, नाममंत्रसे आवाहन, अग्नौकरण, कश्यपगोत्रका उच्चारणपूर्वक पिण्डदानआदि तर्पण आदि और पाकसे पिंडदानआदिको करै। वह उत्तमशूद्रके विषयमें है। सातपुरुष वा तीनपुरुषतक परंपरासे स्नान,वैश्वदेव, तर्पणआदि जो धर्म शूद्रकमलाकर आदिग्रंथोंमें संग्रहकरके कहेहैं उनको नियमसे जो करै वह सत् (उत्तम) शूद्र कहाताहै ॥

अथ हीनजातीयानाम्।

एवं किरातयवनादिहीनजातीयानां विप्रेभ्य आमदानदक्षिणादानपूर्वकं स्वस्वजातीयभोजनात्मकमेव श्राद्धम् ॥

इसीप्रकार किरात, यवनआदि हीनजातियोंमें भी ब्राह्मणोंको आमअन्नका दान, दक्षिणादान, देकर अपनी २ जातिके मनुष्योंको भोजन कराना ही श्राद्ध होताहै ॥

अथ संकटे विप्रद्वारा श्राद्धम्।

"राजकार्ये नियुक्तस्य बंधनग्रहवर्त्तिनः ॥ व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण

कारयेत् ॥ " अत्र प्रथमं जीवत्पितृकनिर्णय उक्तस्तत्र प्रसंगात्किंचिदधिकाराविचारोप्युक्तः ॥ इदानीं तु सर्वोप्यधिकारक्रमविचारः सविस्तर उक्त इति तेनात्र पुनरुक्तिर्बालबोधनार्थत्वान्न दोषाय ॥ ॥ इतिश्रीमदनंतोपाध्यायसूनुविरचिते धर्मसिंधुसारे श्राद्धाधिकारदाहाद्यधिकारनिर्णयः ॥

राजाके कार्यमें जो नियुक्तहै और जो बंधनग्रह (कैद) में है उनमें और सम्पूर्ण दुःखोंमें ब्राह्मणसे श्राद्ध करवावै । यहां पहिले तो जीवत्पितृकका निर्णय कहा और उसमें कुछ अधिकारका विचार भी कहा और अब सम्पूर्णभी अधिकारके क्रमका विचार विस्तारसे कहा । तिससे बालबोधके अर्थ होनेसे पुनः उक्ति अत्यंत दोषके लिये नहीं । इति श्रीमदनन्तोपाध्यायसुतकाशीनाथोपाध्यायकृतौ धर्मसिन्धुसारे पं०मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते श्राद्धाधिकारदाहाद्यधिकारनिर्णयः ॥

अथ श्राद्धशब्दार्थः ।

पित्रादीन्मृतानुद्दिश्य विहिते काले देशे पक्वान्नामान्नहिरण्यान्यतमद्रव्यस्य विधिना दानं श्राद्धम् ॥ तत्राग्नौकरणं पिंडदानं ब्राह्मणभोजनं च प्रधानम् ॥ तदुक्तम्॥ "होमश्च पिंडदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम् ॥ श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिकम्॥" इति ॥ क्वचिद्वचनादशक्त्या वा पिंडदानाद्यकरणे ब्राह्मणभोजनादिमात्रमपि श्राद्धपदार्थः संपद्यत इति चतुर्थपदार्थः ॥ तथा च वचनांतरम् ॥ "यजुषां पिंडदानं तु बह्वृचानां द्विजार्चनम् ॥ श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥ " अश्रद्धया पितरो न सन्तीति मत्वा श्राद्धमकुर्वाणस्य रक्तं पितरः पिबन्ति ॥

अब श्राद्धशब्दके अर्थका वर्णन करते हैं कि, मृतक पिता आदिके उद्देशसे, शास्त्रोक्तकाल और देशमें पकान्न, आमान्न, सुवर्ण; इनमेंसे कोईसे द्रव्यको जो विधिपूर्वक देना उसे श्राद्ध कहते हैं । उस श्राद्धमें अग्नौकरण, पिंडदान, ब्राह्मणभोजन ये तीन प्रधान हैं।सोई कहा है । कि, होम, पिंडदान, और ब्राह्मणभोजन; ये तीनों उपचारसे एक श्राद्धशब्दके अर्थ हैं । और कहीं असामर्थ्यसे वा वचनसे पिंडदान आदिको न करै तो ब्राह्मणभोजन भी श्राद्धशब्दका अर्थहै यह चौथा श्राद्धपदका अर्थ है । तैसेही यह अन्य वचन है; कि, यजुर्वेदियोंके पिण्डदान, बह्वृचोंके ब्राह्मणोंका पूजन, सामवेदियोंके यहां दोनों; श्राद्धशब्दके अर्थ होते हैं।अश्रद्धासे; 'पितर नहीं हैं' यह मानकर जो श्राद्ध नहीं करता उसके रुधिरको पितर पीतेहैं ॥

अथ श्राद्धभेदाः ।

तत्र श्राद्धं चतुर्विधम् ॥ पार्वणश्राद्धमेकोद्दिष्टश्राद्धं नांदीश्राद्धं सपिंडीकरणश्राद्धं चेतिभेदात् ॥

अब श्राद्धके भेदोंको कहतेहैं । उसमें श्राद्ध चारप्रकारका है; कि, पार्वण, एकोद्दिष्ट, नांदीमुख, और सपिंडीकरणके भेदसे ॥

अथ पार्वणलक्षणं तद्भेदाश्च।

पित्रादित्रयोद्देशेन विहितं पिंडत्रययुतं पार्वणम् ॥ तच्चैकपार्वणकद्विपार्वणकत्रिपार्वणकमिति त्रिविधम् ॥ तत्र पित्रादेर्मृततिथौ क्रियमाणं प्रतिसांवत्सरिकमेकपार्वणकम् ॥ आमावास्यादिषण्णवतिश्राद्धनित्यश्राद्धानि महालयान्वष्टक्याभिन्नानि द्विपार्वणकानि ॥ एतेषु सपत्नीकपित्रादित्रयसपत्नीकमातामहादित्रययोरेवोद्देशात् ॥ अन्वष्टकाश्राद्धं त्रिपार्वणकम् ॥ पित्रादित्रयमात्रादित्रयसपत्नीकमातामहादित्रयाणामुद्देशात् ॥ महालयादिश्राद्धं तीर्थश्राद्धं च पार्वणैकोद्दिष्टरूपम् ॥ पित्रादिपार्वणत्रयस्य पत्न्याद्येकोद्दिष्टगणस्य चोद्देशात् ॥ केचिदेतद्द्वयं मातामहमातामह्योः पार्वणभेदेन पार्वणचतुष्टययुतं कुर्वंति ॥ केषांचित्सूत्रे दर्शोपि त्रिपार्वणकश्चतुष्पार्वणको वेति हेमाद्रौ ॥

पिता आदि तीनके नामसे जो तीनपिंडसे युक्तहो उसे पार्वण कहतेहैं। वह भी एकपार्वण, द्विपार्वण, तीनपार्वण, इसप्रकार तीनप्रकारका है। उन तीनोंमें पिता आदिकी मरणतिथिमें प्रतिवर्ष जो कियाजाय वह एकपार्वण होताहै; महालय अन्वष्टकासे भिन्न जो अमावस्याआदि छानवे (९६) श्राद्ध नित्यश्राद्ध हैं वे द्विपार्वण हैं। इनमें सपत्नीक पिताआदि तीन; और सपत्नीक मातामह आदि तीन; इन दोनोंका उद्देश है। अन्वष्टका श्राद्ध त्रिपार्वण है। उसमें पिताआदि तीन माताआदि तीन और सपत्नीक मातामहआदि तीनका उद्देश है। महालय आदिश्राद्ध और तीर्थश्राद्ध ये दोनों पार्वण एकोद्दिष्टरूप हैं। इनमें पिता आदि तीन पार्वणोंका और पत्नी आदि एकोद्दिष्टगणका उद्देश है। कोई तो इन दोनोंको मातामह और मातामहीके पार्वण भेदसे चार पार्वणोंसे युक्त कहतेहैं। किसीके सूत्रमें तो; दर्श भी तीन पार्वण चार पार्वणोंसे युक्त है यह हेमाद्रिमें कहाहै॥

अथैकोद्दिष्टलक्षणं भेदाश्च।

एकोद्देशेन क्रियमाणमेकपिंडयुतमेकोद्दिष्टम्॥ तदपि त्रिविधं नवसंज्ञं नवमिश्रसंज्ञं पुराणसंज्ञं चेति ॥ मृतस्य प्रथमदिनमारभ्य दशाहांतं विहितानि नवसंज्ञानि ॥ एकादशाहादिन्यूनाब्दांतानि नवमिश्राणि ॥ एतानि विश्वेदेवहीनानि ॥ ततः पराणि कनिष्ठभ्रातृवार्षिकशस्त्रहतचतुर्दशीश्राद्धादीनि पुराणसंज्ञानि ॥ केचित्सपिंडयुत्तरं क्रियमाणानां पार्वणानामपि पुराणसंज्ञामाहुः ॥

एकके नामसे जो कियाजाय और एक ही जिसमें पिण्ड हो उसे एकोद्दिष्ट कहतेहैं। वह भी तीन प्रकारका है कि, नवसंज्ञक, नवमिश्र संज्ञक, और पुराणसंज्ञक; मृतकके प्रथमदिनसे लेकर दशाहपर्यंत कहे जो श्राद्ध हैं उनकी नव संज्ञा है। और एकादशाहसे लेकर न्यूनाब्द (११ ॥ मास) पर्यंतके जो श्राद्ध हैं, उनको नवमिश्र कहते हैं। और ये सब विश्वेदेवोंसे हीन होतेहैं, इनसे भिन्न जो कनिष्ठभ्राताका वार्षिक श्राद्ध और शस्त्रसे मरेका चतुर्दशीश्राद्ध आदि हैं उनकी पुराण संज्ञा है। कोई तो सपिंडीके पीछे करने योग्य पार्वणोंकी भी पुराण संज्ञा कहते हैं॥

अथ नांदीश्राद्धम् ।

पुत्रजन्मविवाहादौ क्रियमाणं वृद्धिश्राद्धं नांदीश्राद्धम् ॥ इदं पूर्वार्द्धे विस्तरेण प्रपंचितम् ॥ एतदेव गर्भाधानपुंसवनसीमंतेष्वाधाने सोमे च क्रियमाणं कर्मांगमिष्टिश्राद्धमिति चोच्यते ॥ अत्र ऋतुदक्षौ विश्वेदेवाः ॥ अन्यकर्मसु वृद्धिसंज्ञम् ॥ तत्र सत्यवसू विश्वेदेवा इति नामभेदो देवभेदश्चान्यत्समानम् ॥ एतच्च पार्वणत्रययुतत्वात्पार्वणभेदांतर्गतमपि दर्शादितो बहुधर्मभेदात्पृथगुद्दिष्टम् ॥ मृतस्य द्वादशाहादिकाले पिंडार्धसंयोजनादिरूपं सपिंडीकरणम् ॥ एतदपि पार्वणैकोद्दिष्टविकाररूपम् अत्र विशेषो वक्ष्यते ॥ एवं च पार्वणमेकोद्दिष्टमिति द्विविधमेव श्राद्धम् ॥ एतत्पुनस्त्रिविधम् ॥

पुत्रजन्म और विवाह आदिमें करने योग्य वृद्धिश्राद्धको नान्दीश्राद्ध कहते हैं । इसका वर्णन पूर्वार्द्धमें विस्तारसे कहआये । और गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोंमें और आधान और सोमयज्ञमें; करनेयोग्य इसको ही कर्मका अंग इष्टिश्राद्ध कहतेहैं । इसमें ऋतु दक्ष नामके दो विश्वेदेवा होतेहैं । अन्य कर्मोंमें इस श्राद्धकी वृद्धि संज्ञा है। और उनमें सत्य वसु नामके दो विश्वेदेवा होतेह । इसप्रकार नाम और देवताओंका तो भेद है अन्य सम्पूर्ण कर्म समान है और यह तीन पार्वणोंसे युक्त होनेसे पार्वण भेदोंके मध्यमें भी है । तो भी दर्श आदि अनेक श्राद्धोंके भेदसे पृथक् कहाहै । मृतकके बारहवें आदि दिनके समयमें आधे पिंडका मेल-आदिरूप जो श्राद्ध; उसे सपिण्डीकरण कहतेहैं । यह भी पार्वण और एकोद्दिष्टका विकारूप है । इसमें विशेष आगे कहेंगे । इससे पार्वण और एकोद्दिष्टके भेदसे दो प्रकारका ही श्राद्ध होताहै । और यह भी तीन प्रकारका है । कि–

अथ नैमित्तिकादिभेदाः ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं चेति ॥ नियतनिमित्ते विहितं नित्यं यथा दर्शादि ॥ प्रत्यहं विहितमपि श्राद्धं नित्यसंज्ञम् ॥ पार्वणद्वययुतं विश्वेदेवहीनमुक्तम् ॥ अनियतनिमित्ते विहितं नैमित्तिकम् ॥ यथा सूर्यचंद्रग्रहणादौ ॥ एतदपि षड्दैवतम् ॥ फलकामनोपाधिकं काम्यम् ॥ यथा पंचम्यादितिथौ कृत्तिकादिनक्षत्रे च ॥

नित्य, नैमित्तिक, और काम्य, नियत कियेहुये निमित्तमें जो कियाजाय उसे नित्य कहते हैं; जैसे दर्श आदि । और प्रतिदिन विधानकिये श्राद्धको भी नित्य कहते हैं । वह दो पार्वणोंसे युक्त और विश्वेदेवाओंसे हीन कहाहै । और विना नियत किये निमित्तमें जो कियाजाय उसे नैमित्तिक कहते हैं; जैसे सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणमें इसमें भी छह (६) देवता होतेहैं । फलकी इच्छारूप उपाधिसे जो कियाजाय उसे काम्य कहते हैं; जैसे पंचमी आदि तिथि, और कृत्तिका आदि नक्षत्रमें होता है ॥

अथ श्राद्धदेशाः ।

दक्षिणाप्रवणे गोमयोपलिप्ते कृमिकेशास्थिश्लेष्मादिवर्जिते कृत्रिमभूमिवर्जिते रजस्वलादर्शनादिवर्जिते श्राद्धं कार्यम् ॥ कुरुक्षेत्रप्रभासपुष्करप्रयागकाशीगंगायमुना-

नर्मदादितीरनैमिषगंगाद्वारगयाशीर्षाक्षय्यवटादिषु श्राद्धं महाफलम् ॥ "शमीपत्रप्रमाणेन पिंडं दद्याद्गयाशिरे ॥ उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥"

अब श्राद्धके देशोंको कहतेहैं। दक्षिणकी तरफ नीचे, और गोमयसे लिपे; और कीट, केश, श्लेष्म आदिसे रहित और कृत्रिम भूमिसे रहित, और रजस्वला दर्शन आदिसे शून्य; देशमें श्राद्ध करना। कुरुक्षेत्र, प्रभास, पुष्कर, प्रयाग, काशी, गंगा और यमुना, नर्मदा आदिका तीर, नैमिष, गंगाद्वार, गयाशीर्ष, अक्षय्यवट आदिमें श्राद्ध महान् फलको देताहै। शमीके पत्तेके प्रमाणसे जो गयाशिरमें पिण्ड देता है वह सात गोत्र और एक सौ एक (१०१) कुलका उद्धार करताहै ॥

अथ सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतं च।

"पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा॥ पितृमातृष्वसा चैव सप्त गोत्राणि वै विदुः॥" एषां गोत्राणां पुरुषाः क्रमेण चतुर्विंशति विंशतिषोडशद्वादशैकादशदशाष्टाविंत्येकोत्तरशतसंख्यास्तेषामुद्धार इत्यर्थः ॥ तत्र पितृकुले द्वादश पूर्वा द्वादश परा इति चतुर्विंशतिरेवमग्रेपि ॥ "तुलसीकाननच्छाया शालग्रामस्य संनिधिः ॥ चक्रांकितस्य सांनिध्यमेषु यत्क्रियते नरैः ॥ स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षयतां व्रजेत् ॥" गोगजाश्वादिदुष्टप्रदेशे म्लेच्छदेशे च श्राद्धं न कार्यम् ॥ परकीयगृहादौ श्राद्धकरणे तद्भूमिस्वामिपितरो भागं हरंति ॥ तेन गृहस्वामिने मूल्यं दत्त्वा कार्यम् ॥ स्वाम्यनुज्ञया वा कार्यम् ॥ "वनानि गिरयो नद्यस्तीराण्यायतनानि च ॥ देवखाताश्च गर्ताश्च न स्वाम्यं तेषु कस्यचित् ॥ नैकवासा न च द्वीपे नांतरिक्षे कदाचन ॥ श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित् ॥"

पिता, माता, भार्या, भगिनी, दुहिता, पिता और माताकी भगिनी, ये सात (७) गोत्र कहातेहैं; इन गोत्रोंके क्रमसे चौबीस (२४) बीस (२०) सोलह (१६) बारह (१२) ग्यारह (११) दश (१०) आठ (८) इस प्रकार एकसौ एक (१०१) पुरुष होतेहैं। उनका उद्धार करताहै। उनमें पिताके कुलमें बारह (१२) पहले और बारह (१२) पिछले ये लेने इसीप्रकार आगे भी समझना। और तुलसीके वनकी छायामें और शालग्रामके और चक्रांकितके समीपमें जो मनुष्य स्नान, दान, तप, करतेहैं वह सब अक्षय है। गौ, गज, अश्व, आदिसे दुष्टदेशमें; और म्लेच्छदेशमें; श्राद्ध न करै। पराये घरमें श्राद्ध करै तो उस भूमिके स्वामीके पितर भागको ग्रहण करतेहैं; तिससे गृहके स्वामीको मोल देकर श्राद्ध करना अथवा स्वामीकी आज्ञासे करना। वन, पर्वत, नदीके तीर, देवमन्दिर, देवताओंके खोदेहुये कुण्ड, और गर्त; इनमें किसीका भी स्वाम्य (हक) नहीं होता अर्थात् इनका मालिक कोई नहीं होता। एक वस्त्र धारण कियेहुये, द्वीप (टापू) में अन्तरिक्षमें; और अशुद्धहुये मनुष्यको; श्रुति और स्मृतिमें कहेहुये कर्मको न करना ॥

अथ श्राद्धकालाः ।

ते च प्रायेणामासंक्रांतियुगादिमन्वादिमहालयादयः ॥ पूर्वपरिच्छेद उक्ता एव केचित्तूच्यंते ॥ महातीर्थप्राप्तिर्व्यतीपातो मृताहो ग्रहणद्वयं श्राद्धं प्रति रुचिः श्रोत्रियादिब्राह्मणसंपत्तिरर्धोदयकपिलाषष्ठयाद्यलभ्ययोगा ग्रहपीडा दुःस्वप्नदर्शनं नवान्नप्राप्तिर्नवोदकप्राप्तिर्गृहप्रच्छादनादिनिमित्तं च श्राद्धकालाः ॥

अब श्राद्धके कालोंको कहतेहैं । वे बहुधा; अमावस्या, संक्राति, युगादि, मन्वादि, महालय आदि, जो पूर्वपरिच्छेदमें कहेहैं वे ही हैं। और किन्हीको तो अब भी कहते हैं । कि, महातीर्थकी प्राप्ति, व्यतीपात, मृतकका दिन, चन्द्र सूर्यका ग्रहण, श्राद्ध करनेकी रुचि, वेदपाठी आदि ब्राह्मणका मिलना, अर्धोदय, कपिलाषष्ठी, आदि अलभ्य योग; ग्रहपीडा, दुष्ट स्वप्नका दर्शन, नवांन्नकी प्राप्ति, नवीन जलकी प्राप्ति, और गृहका छापना; ये सब निमित्त श्राद्धके समय हैं ॥

अथ पद्मकयोगलक्षणम् ।

"यदा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च ॥ पद्मको नाम योगोयमयनादेश्चतुर्गुणः ॥" सर्वमासानां कृष्णपक्षेषु श्राद्धमुक्तम् ॥ अत्र प्रत्यहं पंचम्या दिवा यदहः संपत्तिर्वेति त्रयः पक्षाः ॥ एकदिनपक्षे दर्श एव ॥ नारायणवृत्तौ तु दर्शश्राद्धेनैव पक्षश्राद्धसिद्धिरुक्ता ॥

जब भद्रा, व्यतीपात, आदित्यवार; ये तीनों होंयँ तो वह पद्मक नामका योग, अयन आदिसे चौगुने फलको देताहै । सब मासोंके कृष्णपक्षमें श्राद्ध कहा है । इसमें ये तीन पक्ष हैं । कि, प्रतिदिन करै वा पंचमी आदि तिथियोंमें करै वा जिस दिन श्राद्धकी सामग्री मिले उस दिन करै एक दिन करै । इस पक्षमें तो दर्शको ही करै । नारायणवृत्तिमें तो, दर्शके श्राद्धसे पक्षके श्राद्धकी सिद्धि कहीहै ॥

अथ दर्शश्राद्धानुकल्पाः ।

सर्वमासेषु दर्शश्राद्धाशक्तौ कन्याकुंभवृषस्थेर्के सति दर्शत्रये एकत्र दर्शे वा श्राद्धम् ॥ साग्निकस्य त्वशक्तस्य पिंडपितृयज्ञमात्रेण दर्शसिद्धिः ॥ निरग्निकस्य ब्राह्मणभोजनमात्रेण धान्यादिद्रव्यदानेन वा दर्शसिद्धिः ॥ कृष्णपक्षेषु महालयापरपक्षस्य श्रेष्ठत्वम् ॥ तत्रापि पंचदशाहादिपक्षा अन्योपि बहुविस्तरो द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः ॥ अत्र विशेषांतरं कालतत्त्वविवेचने ॥ पंचदशाहव्यापिमहालयप्रयोगारंभोत्तरमाशौचपाते कृतमहालयानां वैफल्यम् ॥ तेन शुद्ध्यंते कस्यांचित्तिथौ सकृन्महालयमात्रमनुष्ठेयम् ॥ एवं पंचम्यादिपक्षेपि प्रतिबंधांतरे प्रतिनिधिद्वारा शेषमहालयानुष्ठानम् ॥

सब मासोंमें दर्शश्राद्धका सामर्थ्य न होय तो कन्या, कुंभ, वृषका सूर्य होनेपर तीनों दर्शोंमें वा एक दर्शमें श्राद्ध करै । साग्निक हो तो अशक्त होनेपर भी पिंडपितृयज्ञमात्रसे

दर्शमात्रकी सिद्धि होतीहै । और जो अग्निहोत्री न होय तो ब्राह्मणोके भोजनमात्रसे वा धान्य आदि द्रव्यके देनेसे दर्शकी सिद्धि होतीहै । कृष्णपक्षोंमें महालय अपर पक्ष (कन्यागत) को श्रेष्ठ कहाहै । उसमें पंदरह (१५) आदिके पक्ष और अन्य भी बहुतसा विस्तार दूसरे परिच्छेदमें कह आये इसमें अन्य विशेष कालतत्त्वविवेचनमें कहाहै । पंदरह (१९) दिनतक निरंतर महालय प्रयोगके आरम्भके पीछे आशौच हो जाय तो कियेहुये महालय निष्फल होजाते हैं । तिससे शुद्धिके अंतमें तिसी तिथिको एक (१) महालय करना इसी प्रकार पंचमी आदि पक्षमें भी समझना । और कोई प्रतिबन्धक होय तो प्रतिनिधिके द्वारा शेष महालयोंको करना ॥

अथ पितृव्यज्येष्ठभ्रात्रादिमहालयप्रकारः ।

पितृव्यज्येष्ठभ्रात्रादीनामपुत्राणां महालयापरपक्षे तत्तन्मृततिथौ तदेकपार्वणकमहालयश्राद्धं जीवत्पितृकेणापि कार्यमिति ॥ द्वादशपौर्णमास्यसंभवे माघीश्रावणीप्रोष्ठपद्यो नित्याः ॥

चाचा, जेठाभाई, आदि जो अपुत्र हैं इनका एक पार्वण महालय श्राद्ध तिस २ की मरण तिथिको महालय पक्षमें जीवत्पितृक भी करै । और बारह (१२) पौर्णमासियोंको श्राद्ध न होसकै तो माघ, श्रावण, भाद्रपदकी पूर्णिमा नित्य हैं अर्थात् इनमें श्राद्ध अवश्य करै ॥

अथ काम्यश्राद्धकालाः ।

कस्मिंश्चित्कृष्णपक्षे प्रतिपदादिपंचदशतिथिषु कृत्तिकादिभरण्यंतनक्षत्रेषु विष्कंभादियोगेषु सूर्यादिवारेषु बवादिकरणेषु च श्राद्धे फलविशेषोक्तेरेते तिथ्यादयः काम्यश्राद्धकाला ज्ञेयाः ॥ इति सामान्यकालः ॥

किसी कृष्णपक्षकी प्रतिपदा आदि पंदरह(१५) तिथियोंमें; और कृत्तिका आदि भरणीपर्यंत नक्षत्रोंमें; विष्कंभ आदि योग; सूर्य आदि वार; और बव आदि करणोंमें; श्राद्धकरनेका फलविशेष कहाहै इससे ये तिथिआदि काम्यश्राद्धके काल समझने । इसप्रकार श्राद्धका सामान्यकाल समाप्त हुआ ॥

अथापराह्णादिविशेषनिर्णयः ।

दिनस्य पंचविभागास्त्रित्रिमुहूर्तकास्तत्राद्यो भागः प्रातःसंज्ञः ॥ द्वितीयः संगवः ॥ तृतीयो मध्याह्नः ॥ चतुर्थोपराह्णः ॥ पंचमो भागः सायाह्नः ॥ दिनस्य पंचदशो भागो मुहूर्तः ॥ तत्र सप्तमो गांधर्वोष्टमो मुहूर्तः कुतुपः नवमो रौहिणः ॥ तत्र दर्शादिश्राद्धानां निर्णयः पूर्वपरिच्छेदयोः प्रायेणोक्तः ॥ विशेषस्तूच्यते ॥ साग्निकानां कात्यायनादीनामन्वाधानपिंडपितृयज्ञदर्शश्राद्धानामेकदिनकर्तव्यत्वनियमात्रेधाविभक्तदिनतृतीयभागरूपापराह्णव्यापिन्याममायां दर्शश्राद्धं कर्तव्यम् ॥

अब अपराह्ण आदि विशेषकालका निर्णय कहतेहैं । कि, दिनके पांच (५) विभाग तीन (३) मुहूर्तके होतेहैं; उनमें प्रथमभागको प्रातः कहतेहैं । दूसरेको संगव; तीसरेको

मध्याह्न कहते हैं । दिनके पंदरहवें (१५) भागको मुहूर्त कहतेहैं । उनमें सात (७) वां गांधर्व और आठवां मुहूर्त कुतुप; और नवमां रौहिण; कहाताहै । उनमें दर्श आदि श्राद्धोंका निर्णय प्रायः पहिले परिच्छेदोंमें कहआये । विशेष तो अब कहते हैं । कि, साग्निक जो कात्यायन आदि हैं उनको अन्वाधान, पिंडपितृयज्ञ, दर्शश्राद्ध; इन तीनों श्राद्धोंका एक दिन करनेका नियम है । इससे तीनप्रकार विभागकिये दिनका तीसराभागरूप जो अपराह्ण उसमें व्यापक (पूरी) अमावस्यामें दर्शश्राद्ध करना ॥

अथ प्रतिसांवत्सरिकमासिकादितिथिनिर्णय उच्यते ।

तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने सप्तमाष्टमनवममुहूर्तरूपे कार्यम् ॥ तत्रापि कुतुपरौहिणसंज्ञकावष्टमनवममुहूर्तौ मुख्यः कालः ॥ तत्र पूर्वत्रैव परत्रैव वा दिने मध्याह्नव्याप्तौ सैव तिथिर्ग्राह्या ॥ दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ मध्याह्नस्पर्शे वा पूर्वत्रैव दिनद्वये साम्येनैकदेशव्याप्तौ पूर्वा ॥ खर्वदर्पाद्यैर्व्यवस्थेत्यन्ये ॥ वैषम्येणैकदेशव्याप्तावाधिक्येन निर्णयः ॥

अब प्रतिवर्ष मासिकआदिके निर्णयको कहते हैं । उनमें सात, आठ, नवम; मुहूर्तरूप जो मध्याह्न उसमें एकोद्दिष्टको करै । उनमें भी कुतुप, रौहिण, नामके आठवें नवमें मुहूर्त हैं । वे मुख्यकालहैं । उनमें पहिले दिन मध्याह्नव्यापिनी तिथि होय तो वही ग्रहण करनी । दोनों दिन मध्याह्नमें व्याप्ति हो वा मध्याह्नमें स्पर्श होय तो पहिली और दोनों दिन समान एकदेशव्याप्ति होय तो भी पहिली ही लेनी । कोई यह कहते हैं । कि, खर्व दर्पआदिसे अर्थात् न्यूनअधिकभावसे व्यवस्था होती है । विषम रीतिसे एकदेशमें व्याप्ति होय तो अधिकव्याप्तिसे निर्णय समझना ॥

अथ पार्वणे तिथिः ।

पार्वणे त्वपराह्णव्यापिनी ग्राह्या ॥ पूर्वत्रैव परत्रैव वापराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या ॥ दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदस्पर्शे वांशतः समव्याप्तौ वा पूर्वा ॥ विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या ॥ माधवाचार्यास्तु दिनद्वये पूर्णापराह्णव्याप्तावंशतः समव्याप्तौ चोत्तरातिथेः क्षये पूर्वा वृद्धौ परा ॥ उत्तरातिथेः क्षयवृद्ध्यभावेपि परेत्याहुः ॥ अयं क्षयाहनिर्णयः प्रत्याब्दिके मासिके सकृन्महालये च ज्ञेयः ॥ श्राद्धे भरण्यादिनक्षत्रं व्यतीपातादियोगश्चापराह्णव्यापीत्युक्तं द्वितीये ॥ केचिच्छुक्लपक्षे उदयव्यापि नक्षत्रं कृष्णपक्षेस्तमयव्यापि ॥ योगस्तु कुतुपादिव्यापीत्याहुः ॥ एतच्च पार्वणश्राद्धं कुतुपादिमुहूर्तपंचके कार्यं न सायाह्ने न रात्रौ न प्रातःसंगवयोः पिण्डपितृयज्ञादिने सायाह्नेपि पार्वणमनुज्ञायते ॥ यदा विघ्नवशाद्दिने दर्शमासिकसांवत्सरिकश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि प्रथमप्रहरपर्यंतं कार्यम् ॥ मृताहातिक्रमे चांडालत्वादिदोषोक्तेः ॥

पार्वणमें तो अपराह्णव्यापिनी तिथि ग्रहण करनी। पूर्वमें वा परमें अपराह्णव्याप्ति होय ते वही ग्रहण करनी। दोनों दिन अपराह्णमें व्याप्ति हो वा अपराह्णका स्पर्श न हो वा किसी अंशमें समानव्याप्ति होय तो पहिली लेनी। विषमव्याप्ति होय तो अधिकवाली लेनी। माधवाचार्य तो यह कहते हैं कि, दोनों दिन पूर्ण अपराह्णमें व्याप्ति और किसी अंशमें समान व्याप्ति होनेपर उत्तर तिथिके क्षय होनेमें पहिली और वृद्धिमें परली लेनी। और उत्तर तिथिके क्षय वृद्धिके न होनेपर भी परली लेनी। यह क्षयाहका निर्णय; प्रति वर्षके मासिकके और एक दिनके महालयमें जानना। श्राद्धमें भरणी आदि नक्षत्र; व्यतीपात आदि योग; ये अपराह्णव्यापी लेने यह दूसरे परिच्छेदमें कह आये। कोई यह कहते हैं कि, शुक्लपक्षमें उदयव्यापी और कृष्णपक्षमें अस्तव्यापी नक्षत्र लेना; और योग तो कुतुपकालव्यापी लेना। यह पार्वणश्राद्ध कुतुपआदि पांच मुहूर्तोंमें करना। और सायाह्न, रात्रि, प्रातःकाल, संगव; इनमें न करना। पिंडपितृयज्ञमें तो सायाहमें भी पार्वणकी आज्ञा है। जब विघ्नवशसे दिनमें वार्षिकश्राद्ध न किया हो तब तो रात्रिमें भी प्रहरपर्यंत करले। क्यों कि, मृताहके अवलंघनमें चांडालताआदि दोष कहे हैं॥

अथ ग्रहणदिने वार्षिकादिप्राप्तौ।

ग्रहणदिने दर्शमासिकप्रतिवार्षिकादिश्राद्धप्राप्तौ तद्दिन एवान्नेनामेन वा हेम्ना वा कुर्यान्नोत्तरदिने॥

और ग्रहणके दिन; दर्श, मासिक, प्रतिवार्षिक, श्राद्ध आनपडे तो उसीदिन अन्नसे, आमान्नसे, सुवर्णसे करै। उत्तर दिनमें न करै॥

अथ मलमासे प्रथमवार्षिकम्।

प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे कार्यमित्युक्तम्॥ तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमास भवति तत्र त्रयोदशेधिक एव प्रथमाब्दिकं कार्यम्॥ यदा त्वधिकमध्ये द्वादशमासिकं तदा द्वादशमासिकस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धे मासे प्रथमाब्दिकम्॥ एवं द्वितीयादिमासिकस्यापि मलमासे प्राप्तस्य द्विरावृत्तिर्ज्ञेया॥ द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमास एव॥ एवं महालयोपि शुद्ध एव॥ नाधिके मासे किंचिदपि॥ मलमासमृतानां तु यदा स एव मलमासो भवति॥ तदाधिक एव सांवत्सरिकं न शुद्धे॥दर्शदिने वार्षिकप्राप्तौ पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिंडपितृयज्ञं पाकांतरेण दर्शश्राद्धं च कुर्यात॥ परे त्वादौ पिंडपितृयज्ञस्ततो वार्षिकं ततो दर्श इति क्रममाहुः॥ एवं मासिकादिष्वपि ज्ञेयम्॥

प्रथम वार्षिकको तेरहवे मलमासमें करै यह कह आये तिससे जहां द्वादशमासिक (वर्षी) शुद्धमासमें हो तब तो अधिक त्रयोदश (१३) ही प्रथमाब्दिकको करै। और जब अधिकके मध्यमें द्वादश मासिक हो तब द्वादश मासिककी दो आवृत्ति करके चौदह (१४) वें

शुद्धमासमें प्रथमाब्दिकको करै । इसीप्रकार द्वितीयआदि मासिककी भी मलमासमें प्राप्ति होय तो मलमासमें प्राप्तकी दो आवृत्ति जाननी । और द्वितीय आदि वार्षिक तो शुद्ध मासमें ही करने । इसीप्रकार महालय भी शुद्धमें ही होताहै । अधिक मासमें किंचित् भी श्राद्ध नहीं होता । मलमासमें मरोंका तो जब वही मलमास होय तो अधिकमें ही सांवत्सरिक होताहै; शुद्धमें नहीं । दर्शके दिन वार्षिक आनपडै तो पहिले वार्षिकको करके फिर पिंडपितृयज्ञको और दूसरे पाकसे दर्शश्राद्धको करै । अपर तो यह कहते हैं कि, पहिले पिंडपितृयज्ञ, फिर वार्षिक, फिर दर्श, यह क्रमहै । इसीप्रकार मासिकआदि श्राद्धोंमें भी जानना ॥

अथ आत्रिवर्षं श्राद्धभोजनं न ।

"सपिंडीकरणादूर्ध्वं यावदब्दत्रयं भवेत् ॥ तावदेव न भोक्तव्यं तदीये श्राद्धमात्रके ॥ प्रथमाब्देस्थ्यादिभोजी द्वितीये मांसभक्षकः ॥ तृतीये रक्तभोजी स्याच्छुद्धं श्राद्धं चतुर्थकम् ॥" इत्यास्तां प्रासंगिकं प्रकृतमनुसरामः ॥

सपिंडीकरणके पीछे तीन (३) वर्ष हों तबतक उसके सब श्राद्धोंमें भोजन न करै । पहिले वर्षमें श्राद्धका भोजी अस्थियोंका, दूसरेमें मांसका, तीसरेमें रक्तका; भोजन करताहै । चौथा श्राद्ध शुद्ध होताहै । यह प्रासंगिकका वर्णन रहो अब प्रकरणकी बातका वर्णन करते हैं ॥

अथ आमहेमश्राद्धकालः ।

पार्वणमपि हेमश्राद्धमामश्राद्धं च द्वेधा विभक्तदिनपूर्वभाग एव कार्यम् ॥ सर्वं च श्राद्धं तत्तन्निर्णीतकाले ॥ तत्तत्तिथ्यभावेपि कर्तव्यं साकल्यवचनादिना शास्त्रतस्तत्र तत्तत्तिथिसत्त्वादिति कालतत्त्वविवेचने ॥

पार्वण भी सुवर्णश्राद्ध और आमश्राद्धके भेदसे दो प्रकारका है । वह विभक्तदिनके पूर्वभागमें ही करना । सम्पूर्णश्राद्ध तिस २ के निर्णयकिये कालमें तिस २ तिथिके अकालमें भी करने । साकल्यवचन आदि शास्त्रसे वहां उस २ तिथिके होनेसे यह काल तत्त्वविवेचनमें कहाहै ॥

अथ वृद्धिश्राद्धकालः ।

वृद्धिश्राद्धं प्रातःसङ्गवयोः कार्यम् ॥ मध्याह्नो गौणः ॥ अपराह्णसायाह्नरात्रयो निषिद्धाः॥रात्रौ विवाहे प्रातर्वृद्धिश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यमिति कश्चित् ॥ ग्रहणनिमित्तकं पार्वणश्राद्धं पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मांगं वृद्धिश्राद्धं च रात्रावपि कार्यम् ॥ इति कालनिर्णयः ॥

वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल; और संगवमें करना । उसमें मध्याह्न गौण है । अपराह्ण सायाह्न और रात्रि; निषिद्ध काल है । रात्रिके विवाहमें प्रातःकालमें वृद्धिश्राद्ध न किया होय तो रात्रिमें भी करना । कहीं ऐसा कहाहै ग्रहण निमित्तक पार्वण श्राद्ध; और पुत्रजन्मनिमित्तक जातकर्मका अंग वृद्धिश्राद्ध; रात्रिमें भी करने ॥ इसप्रकार कालका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ पितॄणामन्नप्राप्तिप्रकारः ।

पुत्रादिभिः पितृमात्राद्युद्देशेन श्राद्धे क्रियमाणे नामगोत्रं मंत्राश्च तत्तदन्नं तान्पितॄन्प्रापयति॥ तत्र पित्रादीनां देवरूपत्वे तदन्नममृतरूपं भूत्वा तत्रोपतिष्ठते गंधर्वत्वे भोग्यरूपेण पशुत्वे तृणरूपेण सर्पत्वे वायुरूपेण यक्षत्वे पानरूपेण दानवादित्वे मांसत्वेन प्रेतत्वे रुधिरत्वेन मनुष्यत्वेन्नादिरूपेणेति॥ ग्रंथांतरे॥ "तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम् ॥ अन्योन्यं मनसा ध्यात्वा संपतंति मनोजवाः ॥ तैर्ब्राह्मणैः सहाश्नंति पितरो वायुरूपिणः ॥" अतएव श्रीरामेण श्राद्धे क्रियमाणे सीता विप्रेषु दशरथादीन्ददर्शेति कथा श्रूयते ॥ "प्रावृष्यंते यमः प्रेतान्पितॄंश्चाथ यमालयात् ॥ विसर्जयति भूलोकं कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम् ॥ ते पुत्रादेः प्रकांक्षंति पायसं मधुसंयुतम् ॥ कन्यागते सवितरि पितरो यांति वै सुतान् ॥ अमावास्यादिने प्राप्ते गृहद्वारं समाश्रिताः ॥ श्राद्धाभावे स्वभवनं शापं दत्त्वा व्रजंति ते ॥ अतो मूलैः फलैर्वापि तथाप्युदकतर्पणैः ॥ पितृतृप्तिं प्रकुर्वीत नैव श्राद्धं विवर्जयेत् ॥" किंच श्राद्धेन ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं सकलभूततृप्तिः श्रूयते ॥ तत्र पिशाचादिरूपाणां विकिरादिभिस्तृप्तिर्वृक्षादिरूपाणां स्नानवस्त्रोदकादिना केषांचिदुच्छिष्टपिंडादिनेति ॥ अतो ब्रह्मीभूतपितृकेणापि श्राद्धं कार्यम् ॥ तत्र पितृपितामहप्रपितामहादिरूपमेकैकं पार्वणं वसुरुद्रादित्यादिभेदेन ध्येयम् ॥ एकोद्दिष्टं वसुरूपेणेति सर्वत्र ॥ केचित्तु पितृपितामहादयः प्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवात्मना ध्येयाः कर्त्रानिरुद्धात्मनेत्याहुः ॥ एवं वरुणप्रजापत्यग्निरूपेण क्वचित् ॥ क्वचिन्मासऋतुवत्सररूपेणेति ॥ तत्र यथाचारं समुच्चयेन विकल्पेन वा ध्यानमिति व्यवस्था ॥ "पित्रादिपार्वणं यत्र तत्र मातामहादयः ॥ सर्वत्रैव हि कर्तव्या नाब्दिके मासिकेषु न ॥ मासिकेषु त्वाब्दिके च त्रिदैवत्यं प्रकीर्तितम् ॥ वृद्धौ तीर्थेन्वष्टकासु गयायां च महालये ॥ त्रिपार्वणकमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः ॥" सपत्नीकं पित्रादित्रयं सपत्नीकं मातामहादित्रयमिति षाट्पौरुषत्वम्॥ "क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया॥ अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेहनि ॥" अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥

पुत्रआदि; पिता माताके उद्देशसे श्राद्धको करैं तो नाम, गोत्र, और मंत्र; तिस २ अन्नको उन पितरोंके समीप पहुंचातेहैं । उसमें भी पितर देवरूप होंयँ तो वह अन्न उनको अमृतरूप होकर मिलता है । गंधर्व होंयँ तो भोग्यरूपसे; पशु होंयँ तो तृणरूपसे, सर्प होंयँ तो वायुरूपसे यक्ष होंयँ तो पानरूपसे, दानव होंयँ तो मांसरूपसे, प्रेत होंयँ तो रुधिररूपसे, मनुष्य होंयँ तो अन्न आदिरूपसे; वह अन्न प्राप्त होताहै । यह अन्य ग्रंथोंमें लिखाहै । क्योंकि यह वचन है कि, उस मनुष्यके वे पितर आयेहुये श्राद्धकालको सुनेकर और परस्पर मनसे ध्यान करके

मनके समान वेगसे आतेहैं । और उन ब्राह्मणोंके संग वायुरूप होकर भोजन करतेहैं । इसीसे श्रीरामचंद्रजीने जब श्राद्ध कियाथा सीताजीने ब्राह्मणोंमें दशरथादिकोंको देखा यह कथा सुनी जाती है । यमराज प्रेत और पितरोंको अपने पुरमें प्रविष्ट करतेहैं और अपने पुरको शून्य करके यमालयसे भूलोकको विसर्जन करतेहैं । और वे पुत्र आदिके मधुसहित पायसकी आकांक्षा करतेहैं । कन्याके सूर्यमें पितर पुत्रोंके यहां जातेहैं अमावस्या आदि दिनकी प्राप्तिके समय घरके द्वारपर टिकतेहैं और श्राद्ध न होय तो अपने भुवनको; वे शापदेकर चले जातेहैं । इससे मूल, फल, वा जलके तर्पणसे उनकी तृप्तिको करै । श्राद्धका त्याग न करै । और श्राद्धसे; ब्रह्मासे स्तम्बपर्यंत सबकी तृप्ति सुनी जातीहै । उनमें पिशाचादि पितरोंकी तृप्ति विकिर आदिसे; वृक्ष आदि रूपोंकी स्नानके वस्त्रके जल आदिसे; और किन्हीकी उच्छिष्ट पिंड आदिसे तृप्ति होतीहै । इससे जिसके पितर ब्रह्मरूप हैं उसको भी श्राद्ध करना उसमें पिता, पितामह, प्रपितामह; आदि रूप एक २ पार्वणोंमें क्रमसे वसु, रुद्र, आदित्य, रूप पितरोंका ध्यान करना । और एकोद्दिष्टमें वो वसुरूपसे सबका ध्यान करना । कोई तो यह कहते हैं । कि, अनिरुद्धरूप कर्ता; प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव रूप पिता पितामह, प्रपितामहका ध्यान करै । इसीप्रकार कहीं वरुण प्रजापति रूपसे ध्यान कहाहै । और कहीं मास, ऋतु, वत्सर, रूपसे उनमें कुलाचारके अनसार, सबका वा एक २ रूपका ध्यान करनेकी व्यवस्था है । जहां पिता आदिका पार्वण श्राद्ध हो वहां सर्वत्र मातामह आदि करने । वार्षिक और मासिकमें नहीं । मासिक और वार्षिकमें तीन देवताओंका पार्वण होताहै । वृद्धि, तीर्थ, अन्वष्टका, गया और महालयमें तीनका पार्वण और शेष श्राद्धोंमें छः पुरुषोंका पार्वण जानना । सपत्नीक पिता आदि तीन और सपत्नीक मातामह आदि तीन ये छः (६) पुरुष होतेहैं । एक क्षयिके दिनको छोडकर स्त्रियोंका पृथक् श्राद्ध नहीं होता । और अन्वष्टका, वृद्धि, गया, क्षयिका दिन; इनमें माताका पृथक् श्राद्ध होताहै । और अन्यत्र पतिके संग होताहै ॥

अथ विश्वेदवाः ।

यत्र विशेषो नोच्यते तत्र सर्वत्र पार्वणश्राद्धे पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवाः ॥ काम्यश्राद्धे महालये च धूरिलोचनसंज्ञकाः ॥ नैमित्तिकेऽष्टकाख्याष्टमीश्राद्धे च कामकालसंज्ञकाः ॥ एकोद्दिष्टं सपिंडीकरणं वा नैमित्तिकसंज्ञम् ॥ नांदीश्राद्धे सत्यवसुसंज्ञकाः ॥ तत्रापि गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनेति संस्कारत्रयांगमभ्याधानसोमयागांगं च नांदीश्राद्धमिष्टिश्राद्धसंज्ञकं कर्मांगश्राद्धसंज्ञकं च ॥ तत्र क्रतुदक्षसंज्ञका विश्वेदेवाः ॥ पार्वणद्वयाद्ययोर्जीवनान्मातृपार्वणकमेव क्रियमाणं नांदीश्राद्धं देवरहितं कार्यम् ॥ एवं पार्वणत्रयस्य भिन्नत्वेनानुष्ठीयमाने नांदीश्राद्धेऽपि मातृपार्वणं देवहीनम् ॥ नांदीश्राद्धे हि दिनत्रये क्रमेण पार्वणत्रयं कार्यमेकस्मिन्दिने पृथक्पृथक् पार्वणत्रयं सह तंत्रेण वा पार्वणत्रयमिति त्रयः पक्षाः ॥ नित्यश्राद्धं देवरहितं कार्यम् ॥ एवं सपिंडीकरणात्प्राक्तनान्येकोद्दिष्टश्राद्धान्यपि देवहीनानि ॥ इति श्राद्धे देवतानिर्णयः ॥

विश्वेदेवाओंको कहतेहैं। जहां विशेष न कहा हो वहां सर्वत्र पार्वणश्राद्धमें पुरूरव,आर्द्रव,संज्ञक; विश्वदेवा होतेहैं। काम्य श्राद्ध और महालयमें;धूरि लोचन नामके, और नैमित्तिक इष्टका अष्टमीके श्राद्धमें; काम काल नामके होतेहैं, एकोद्दिष्ट सपिण्डीकरण ये दो नैमित्तिक कहाते हैं। नांदीश्राद्धमें सत्य वसु नामके होतेहैं। उनमेंभी गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन; इन तीनों संस्कारोंका अंग और अग्न्याधान सोमयागका अंग जो नांदीश्राद्ध है उसको इष्टिश्राद्ध और कर्मांगश्राद्ध कहतेहैं उसमें क्रतु दक्षसंज्ञक विश्वेदेवा होतेहैं। दो पार्वणोंका जीवन (कारण) होनेसे मातृपार्वण है जिसमें, ऐसा करनेयोग्य जो नांदीश्राद्ध वह देवताओंसे रहित करना। इसीप्रकार भिन्न २ रीतिसे तीनपार्वणोंसे कियेहुये नांदीश्राद्धमें भी माताका पार्वण विश्वेदेवाओंसे हीन करना। और नांदीश्राद्धमें तीनदिनमें तीन पार्वण करने, वा एक ही दिनमें पृथक् २ तीन पार्वण करने; वा एकसंग तन्त्रसे तीन पार्वण करने; ये तीनपक्ष हैं। नित्यश्राद्ध देवताओंसे रहित करना। इसीप्रकार सपिंडीकरणसे पहिले एकोद्दिष्टश्राद्ध भी देवहीन, होतेहैं यह श्राद्धके देवताओंका निर्णय समाप्त हुआ॥

अथ श्राद्धे ब्राह्मणाः।

तत्र॥ "जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृतः सत्यवाक् शुचिः॥ वेदाध्ययनसंपन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः॥ पुरुषत्रयविख्यातः स वै ब्राह्मण उच्यते"॥ इति ब्राह्मणसामान्यलक्षणम्॥ तत्रोत्तममध्यमाधमभेदन त्रिविधा ब्राह्मणाः॥

अब श्राद्धमें ब्राह्मणोंको कहतेहैं। उनमें जो जातकर्म आदि संस्कारोंसे संस्कृत हो, सत्यवादी, शुद्ध, वेदाध्ययनसे युक्त, षट् (६) कर्मोंमें स्थित, तीनपुरुषोंसे विख्यात हो; उसको ब्राह्मण कहतेहैं। यहां ब्राह्मण सामान्यका लक्षण है। उनमें भी उत्तम, मध्यम, अधम; भेदसे तीन प्रकारके ब्राह्मण हैं॥

अथ तत्रोत्तमाः।

"वेदाध्ययनसंपन्ना वेदांगाध्यायिनोपि च॥ ये वैयाकरणा ये च मीमांसाध्ययने रताः॥ पौराणिकश्च वेदांती धर्मशास्त्ररतोपि च॥ एतेषामपि ये पुत्रा ब्रह्मवेत्ता तथैव च॥ वेदार्थज्ञः कर्मनिष्ठस्तपोनिष्ठश्च योगिनः॥ पितृमातृपरश्चैव स्वधर्मनिरतस्तथा॥ शिशुरप्यग्निहोत्री च सोमादिश्रौतकर्मवित्॥ शिवभक्तो विष्णुभक्तो भार्यायामृतुकालगः॥ गुरुभक्तो ज्ञाननिष्ठः सोमयाजी च सत्यवाक्॥ सुशीलस्नातकयतिब्रह्मचारिण उत्तमाः॥ एते सर्वे सपत्नीका युवत्वादिगुणान्विताः॥ सापिंड्ययोनिशिष्यत्वादिसंबंधैश्च वर्जिताः॥ कुष्ठापस्मारादिदोषैर्हीनाश्चेदुत्तमाः स्मृताः॥" तत्र दशाहादिसूतकादिप्रयोजकसापिंड्यसगोत्रसोदकत्वरूपः संबन्धः सापिंड्यपदाभिधेयः॥ योनिसंबन्धो मातुलत्वश्वशुरत्वश्यालकत्वादिः आदिना गुरुसहाध्यायित्वमित्रत्वादयः॥ तथा च सपत्नीकत्वादिगुणयुक्ता उक्तसंबंधहीना अपस्मारांधत्वादिदोषहीना वेदाध्यायित्वादिसप्तविंशतिप्रकारा विप्रा उत्तमा इति

सिद्धम् ॥ तत्र विशेषः ॥ "यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छंदोगं तत्र भोजयेत् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते ॥ ऋग्वेदिनं च पित्रर्थे याजुषं च पितामहे ॥ प्रपितामहे सामगं च भोजयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥" 'भोजयेच्छ्राद्धयज्ञेषु सामगं प्रपितामहे' इति पाठांतरम् ॥ " अथर्ववेदिनं वैश्वदेवे पित्र्ये च भोजयेत् ॥" एतेन "स्वशाखीयद्विजाभावे द्विजानन्यान्निमंत्रयेत् इति" निरस्तम् ॥ केचिद्यथा कन्या तथा हविरिति नियमाद्यैः सह योनिसंबन्धस्त एव परशाखीयाः श्राद्धार्हा इत्याहुस्तन्निर्मूलम् ॥ केचिच्छ्राद्धकर्तृसगोत्रप्रवरा वर्ज्याः ॥ " पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् ॥ सगोत्रप्रवरं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥" इति वचनादित्याहुः ॥ " विना मांसेन मधुना विना दक्षिणयाशिषा ॥ परिपूर्णं भवेच्छ्राद्धं यतिषु श्राद्धभोजिषु" इति यतिप्रशंसा ॥

उनमें उत्तम ये हैं कि,वेदके पढनेसे युक्त,और वेदांगके पाठक,व्याकरणके पाठी,मीमांसाके पाठक, पौराणिक, वेदांती, धर्मशास्त्रमें तत्पर; ये और इनके पुत्र और ब्रह्मज्ञानी, वेदके अर्थको ज्ञाता, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, योगी, पितामाताका भक्त, अपने धर्ममें तत्पर और बालक भी अग्निहोत्री, होम आदि वेदके कर्मका ज्ञाता, शिवभक्त, विष्णुभक्त, अपनी भार्यामें ऋतुकालगामी, गुरुभक्त, ज्ञाननिष्ठ, सोमयागका कर्ता, सत्यवादी, सुशील, स्नातक, संन्यासी, ब्रह्मचारी; ये सब उत्तम कहाते हैं । और ये सब सपत्नीक युवा आदिगुणोंसे युक्त हों और सापिंड्ययोनि, शिष्य, आदिसंबंधोंसे वर्जित हों और कुष्ठ, अपस्मार आदि दोषोंसे हीन होंयँ तो उत्तम कहेहैं । उनमें दशदिनआदि सूतक आदिका प्रयोजक (हेतु) जो सापिण्ड्य, सगोत्र, सोदकरूप, सम्बन्ध; उसका नाम सापिण्ड्य है । और योनिसम्बन्ध मातुल, श्वशुर शालक आदिके संग है । आदिपदसे गुरु, सहपाठी, मित्र, आदि लेने । तिससे सपत्नीक आदिगुणोंसे युक्त हों । और पूर्वोक्तसम्बन्धसे और अपस्मार, अंध आदि दोषोंसे हीन हों और वेदपाठी आदि सत्ताईसप्रकारके ब्राह्मण उत्तम हैं यह सिद्ध भया । उसमें विशेष यह है कि, यदि श्राद्धमें एकका भोजन करावै, तो छंदोग (वेदपाठी) को जिमावै क्योंकि; उसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद वे तीनों विद्यमान हैं । ऋग्वेदीको पिताके निमित्त, यजुर्वेदीको पितामहके निमित्त, सामवेदीको प्रपितामहके निमित्त, श्राद्धकर्ममें जिमावै । और अथर्ववेदीको वैश्वदेव पित्र्यकर्ममें जिमावै । इससे यह बात खंडित भई कि, अपनी शाखाके द्विज न होंयँ तो अन्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे । कोई तो यह कहते हैं कि, जैसी कन्या वैसी ही हवि है । इसनियमसे जिनके संग योनिसम्बन्ध है, वेही परशाखीय श्राद्धके योग्य कहातेहैं वह निर्मूल है । कोई तो यह कहते हैं कि, श्राद्धकर्ताके गोत्र और प्रवरके ब्राह्मण वर्जितहैं क्योंकि, यह वचन है कि, पिता, पुत्र, दो भाई, अग्निहोत्रसे हीन, निर्गुण स्त्रीका पति, अपने गोत्र, और प्रवरका; इनको श्राद्धकर्ममें त्यागदे । और मांस, मधु, इनके और दक्षिणा आशीर्वादके विना भी श्राद्ध परिपूर्ण होताहै यदि श्राद्धमें संन्यासी भोजन करै तो; यह संन्यासीकी प्रशंसा है ॥

अथ मध्यमा विप्राः ।

मातामहो मातुलो भागिनेयो दौहित्रो जामाता गुरुः शिष्या याज्यः श्वशुर ऋत्विक् शालकः पितृष्वसृपुत्रो मातृष्वसृपुत्रो मातुलपुत्रोतिथिः सगोत्रो मित्रमित्येते मध्यमाः॥ दौहित्रजामातृस्वस्रीयादीनां विद्यादिगुणवतां श्राद्धे निमन्त्रणाभावे दोषः॥ गुणहीनत्वे तु न दोषः ॥ " षड्भ्यस्तु पुरुषेभ्योर्वाक् श्राद्धार्हा नैव गोत्रिणः॥ षड्भ्यस्तु परतो भोज्या अलाभे गोत्रजा अपि ॥ " अत्र विशेषः ॥ ऋत्विजः सपिंडाः संबन्धिनः शिष्याश्च वैश्वदेवस्थाने नियोज्या न तु पित्र्ये ॥ एवमन्येपि विगुणा विप्रा देवस्थाने योज्याः ॥ " पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाथ सपिंडकाः ॥ न परस्परमर्घ्यास्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥ वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः॥"

अब मध्यमब्राह्मणोंका वर्णन करतेहैं । नाना, मातुल, भानजा, दौहित्र, जामाता, गुरु, शिष्य, यज्ञकरानेयोग्य, श्वशुर, ऋत्विज, शालक, पिताकी भगिनीका और माताकी भगिनीका और मामाका पुत्र; अतिथि, सगोत्री; ये मध्यम हैं । यदि दौहित्र, जामाता, भानजा आदि विद्या आदिगुणोंसे युक्त होंयँ तो इनको श्राद्धमें निमंत्रण न देनेका दोष है । और गुणहीन होंयँ तो कुछ दोष नहीं । छः (६) पुरुषोंसे पहिले सगोत्री श्राद्धके योग्य नहीं । और छः (६) से परले भोजनके योग्य हैं । और न मिलें तो सगोत्री भी भोजनके योग्य हैं । इसमें विशेष यह है कि, ऋत्विज, सपिंड, सम्बन्धी, शिष्य; ये विश्वेदेवाओंके स्थानमें जिमाने और पितृकर्ममें नहीं । इसीप्रकार अन्य भी निर्गुण ब्राह्मण विश्वेदेवाओंके स्थानमें युक्त करने । माता, पितामह, भ्राता, पुत्र और अन्य जो सपिंड हैं; ये परस्पर और श्राद्धमें ऋत्विज पूजनेयोग्य नहीं । यदि ये अधिकगुणी होंयँ तो वैश्वदेवमें नियुक्त करने ॥

अथ वर्ज्या विप्राः ।

क्षयश्वासमूत्रकृच्छ्रभगंदरादिमहारोगी हीनांगोधिकांगः ॥ काणो बधिरो मूक शत्रुः कितवो भृतकाध्यापको मित्रद्रोही पिशुनः ॥ कुनखी कृष्णदंतः क्लीबो मातापितृगुरुत्यागी चोरो नास्तिकः ॥ पापकर्मा विहितकर्मत्यागी नक्षत्रोपजीवी वैद्यो राजभृत्यो गायको लेखकः कुसीदजीवी वेदविक्रयी कवित्वजीवी देवार्चनजीवी नटो गृहदाही समुद्रगामी शस्त्रकर्ता सोमविक्रयी पक्षिपोषकःपरिवेत्ता दिधिषूपतिः कुमाराध्यापकः पुत्रात्प्राप्तविद्यो द्रव्यप्राप्त्यर्थं वेदघोषकारी ग्रामयाजी केशपशुविक्रयी शिल्पी पित्रा विवादकारी शूद्रयाजको जटी श्मश्रुहीनो निर्दयी रजस्वलापतिर्गर्भिणीपतिः कुब्जो वामनो रक्तनेत्रो वाणिज्योपजीवी छिन्नोष्ठश्छिन्नलिंगो गड्डुमान् ज्वरितो देवलको विधुरो निरग्निः शूद्रगुरुः शूद्रशिष्यो दांभिको गोविक्रयी रसविक्रयी वेदनिंदको वृक्षरोपकः कदर्यः सदायाचकः कृषिजीवी साधुनिंदितो मेषमहिषयोः पोषकः कपिलकेशो विस्मृतवेदो निष्ठुरवागित्यादयो विप्रा हव्यकव्ययोर्वर्ज्याः ॥

"धर्मार्थमुदरार्थं वौषधकारी विगर्हितः ॥ देवार्चनपरो नित्यं वित्तार्थी वत्सरत्रयम् ॥ असौ देवलको नाम देवस्वग्राहकोपि च ॥ वर्जनीयः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु सर्वदा ॥" इदं मनुष्यस्थापितदेवताविषयमिति भाति ॥ "दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु अग्रजः ॥" अग्रजानुज्ञादौ न दोष इत्युक्तम् ॥ "ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामूह्यतेनुजा ॥ सा चाग्रेदधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूर्मता ॥ प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तु सः ॥ जीवनार्थं परास्थीनि नीयते पतितः स च ॥" गाननृत्यादिकमुदरार्थं निषिद्धं न तु भगवदर्थम् ॥ अत्र विप्राणां ग्राह्यत्वोक्त्यैव तद्भिन्नानां वर्ज्यत्वे सिद्धे पुनर्वर्ज्यपरिगणनं वर्ज्यभिन्नानां निर्गुणानामपि ग्राह्यत्वार्थम् ॥ विद्याशीलादिगुणवत्त्वे कुष्ठित्वकाणत्वादिशारीरदोषाणां न दूषकत्वम् ॥ गयायां तु निर्गुणा अपि त एव भोज्याः ॥ "न विचार्यं कुलं शीलं विद्यां च तप एव च ॥ पूजितैस्तैस्तु संतुष्टा देवाः सपितृगुह्यकाः" इत्युक्तेः॥ "ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः॥" यत्तु ॥ "न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥ पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥" इति तदसंभवपरम् ॥ "गायत्रीसारमात्रोपि वरं विप्रः सुयंत्रितः ॥ नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी॥" इति हेमाद्रौ व्यासः ॥ "श्राद्धे काणादयो भोज्या मिश्रिता वेदपारगैः ॥" विप्रा निमंत्रणात्पूर्वमेव परीक्षणीया न तु निमंत्रणोत्तरम् ॥ इति ब्राह्मणविचारः ॥

अब वर्जित ब्राह्मणोंको कहते हैं । क्षय, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, भगंदर आदि महारोगी; हीनांग, अधिकांग, काण, बधिर, गूंगा, शत्रु, कपटी, भृतकाध्यापक, (पढानेका नोकर) मित्रद्रोही, चुगल, कुनखी, कृष्णदंत, क्लीब, माता, पिता, गुरु, इनका त्यागी, चोर, नास्तिक, पापकर्मा, विहितकर्मका त्यागी, नक्षत्रोपजीवी, वैद्य, राजाका भृत्य, गायक, लेखक, कुसीदजीवी, (व्याज लेनेवाला) वेदविक्रयी; कवितासे जो जीव, देवपूजनजीवी, नट, गृहदाही, समुद्रगामी, शस्त्रकर्ता, सोमविक्रयी, पक्षीपालक, परिवेत्ता आदि दिधिषूका पति, बालकोंका अध्यापक (पाधा) पुत्रसे जिसने विद्या पढीहो, द्रव्यप्राप्तिके लिये वेदघोषणका कर्ता, ग्रामयाजी, केश पशुओंके बेचनेवाला, शिल्पी, पिता आदिके संग विवादी, शूद्रयाजक, जटाधारी, श्मश्रुसे हीन, निर्दयी, रजस्वला और गर्भिणीके पति, कुब्ज, वामन, रक्तनेत्र, व्यापारी, छिन्नोष्ठ, छिन्नलिङ्ग, गण्डमाली, ज्वरित, देवक (पूजारी) विधुर, (रांडा) अग्निसे हीन, शूद्रोंका गुरु, और शिष्य, रसोंका विक्रेता, वेदनिन्दक, वृक्षरोपक (माली) सदैव वाचक, कदर्य, (कृपण) किसाण, साधुनिन्दक, मेष और भैसोंका पोषक, पीले केशवाला, विस्मृतवेद, कठोरवाणी; इत्यादि ब्राह्मण हव्यकव्यमें वर्जित हैं । धर्म वा उदरके लिये औषधके करनेवाला वैद्य निंदितहै । जो नित्य देवताके पूजनमें तत्पर हुआ २ तीनवर्षतक धनकेलिये रहै वा देवताके धनको ग्रहण करै उसको देवक कहते हैं । वह सब कामोंमें सदैव वर्जनेयोग्य जानना । यह भी मनुष्यके स्थापन किये देवताओंके विषयमें है यह हमें भासता है । जेठेभाईके विद्यमान रहते जो दारा और अग्निहोत्रको ग्रहण करता

है वह परिवेत्ता और जेठा परिविप्ति जानने । और जेठेकी आज्ञा आदिमें दोष नहीं यह कहआये । जेठी कन्याका विवाह न होनेपर जो छोटी कन्या विवाही जातीहै वह अग्रेदिधिपू जाननी और पहिली दिधिपू कही है । और जो प्रतिमाओंका विक्रय करता है वह और जो जीविकाके लिये पराये अस्थिओंको लेजाता है वह पतित होताहै ।• और गान नृत्य आदि उदरके लिये निषिद्ध है भगवानके लिये नहीं । यहां ग्रहण करने योग्य ब्राह्मणोंके वर्णन करनेसे ही उनसे भिन्न ब्राह्मणोंका त्याग सिद्ध था पुनः वर्णन करना इसलिये है कि, वर्जितोंसे भिन्न निर्गुण ब्राह्मण ग्रहण करने योग्य हैं । और विद्याशील आदि गुणवान् होयँ तो कुष्ठी और काण आदि शरीरके दोषोंका कुछ दोष नहीं । गयामें तो निर्गुण होनेपर भी गयाके ब्राह्मण ही भोजन कराने योग्य हैं । क्योंकि, यह कहाहै कि कुल, शील, विद्या, तप; इनको न विचारना उनकी पूजा करनेसे पितर, गुह्यकों सहित देवता; संतुष्ट होतेहैं । तीर्थ क्षेत्रनिवासी ब्राह्मणोंकी परीक्षा न करै । जो किसीने यह कहा है कि; देवताओंके कर्ममें धर्मका ज्ञाता ब्राह्मणोंकी परीक्षा न करै और पितरोंके कर्ममें तो परीक्षा प्रयत्नसे करै । वह उनका कहना असंभवके विषयमें है गायत्री मात्रका ज्ञाता भी जितेंद्रिय ब्राह्मण श्रेष्ठ है । और जो जितेन्द्रिय न होय वह सबका विक्रयी और सबका भोजी श्रेष्ठ नहीं यह हेमाद्रिमें व्यासने कहाहै । वेदके पारगामियोंके संग श्राद्धमें काण आदिभी श्रेष्ठ हैं । और निमन्त्रणसे पूर्वही ब्राह्मणोंकी परीक्षा करै । निमंत्रणसे पीछे न करै । ब्राह्मणोंका विचार समाप्त हुआ ॥

अथ श्राद्धार्हद्रव्याणि।

तत्र दर्भाः ॥ दर्भग्रहणे कालो मंत्रो दर्भभेदाश्च द्वितीयपरिच्छेदे उक्ताः विशेषस्तूच्यते ॥ कुशा मुख्याः कुशाभावे काशदूर्वोशीरतृणादयः ॥ तत्र काशैर्दूर्वाभिर्वा कृतपवित्रहस्तो नाचामेत् ॥ "द्वाभ्यामनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके ॥ एकानामिकया वापि द्वयोर्मध्ये तु पर्वणोः ॥ साग्रौ विगर्भौ तु कुशौ कार्यं ताभ्यां पवित्रकम् ॥ द्वाभ्यां तत्स्याच्चतुर्भिर्वा ग्रंथियुक्तं न वा भवेत् ॥ स्नाने दाने जपे होमे स्वाध्याये पितृकर्मणि ॥ सपवित्रौ सदर्भौ वा करौ कुर्वीत नान्यथा ॥ ब्रह्मग्रंथिपवित्राढ्यो नाचामेच्च बुधः सदाः ॥" केचिद्ग्रंथितपवित्राभावे साग्रदर्भौ द्वौ दक्षिणे करे वामे तु त्रीन्द्वौ वा बिभृयादित्याहुः ॥ आसने द्वौ दर्भौ ॥ पितृकर्मणि समूला द्विगुणा दर्भाः ॥ दैवे साग्रा ऋजवः ॥ पित्र्येपि सपिंडीकरणपर्यंतमृजुदर्भास्तदूर्ध्वं द्विगुणा भुग्ना इति ॥ "ये च पिंडाश्रिता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ॥ मलमूत्रोत्सर्गधृता मलमूत्राद्यमेध्यगाः ॥ मार्गे चितौ यज्ञभूमौ स्थिता ये स्तरणासने ॥ ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भास्त्याग्याह्यः सर्व एव ते ॥ अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च ॥ हेमात्मकपवित्रस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ॥" पंचगुंजमाषमानेन षोडशमाषं हेममयं पवित्रकमित्याहुः ॥

अब श्राद्धके योग्य द्रव्योंको कहते हैं। उनमें दर्भके ग्रहणका काल; मंत्र और, दर्भके भेद ये पहिले परिच्छेदमें कह आये विशेष तो अब कहतेहैं। कुशा मुख्य है कुशाके अभावमें काश, दूर्वा, उसीर, तृण; आदि लेने। दोनों अनामिकाओंमें वा एक (१) अनामिकामें दर्भकी पवित्री दोनों पर्वोंके मध्यमें धारण करै। जो कुशा अग्रभाग सहित और गर्भरहित होयँ तो उन दोनोंकी पवित्री बनावै वा चार (४) कुशाओंकी ग्रंथिसे युक्त पवित्री बनावै वा ग्रंथिरहित बनावै। स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृकर्म; इनमें ही पवित्री सहित कर्मोंको करै अन्यमें न करै। बुद्धिमान् मनुष्य सदैव ब्रह्मग्रंथिसे युक्त पवित्रीको धारण करके आचमन करै। कोई तो यह कहते हैं। कि ग्रंथिकी पवित्रीके अभावमें अग्रभाग सहित दर्भ दो दक्षिण करमें, तीन वा दो वाम करमें धारण करै, आसनमें दो दर्भ, और पितृकर्ममें जड सहित द्विगुण दर्भ, देवकर्ममें अग्र भाग सहित ऋजु दर्भ और पितृकर्ममें भी सपिण्डीकरण पर्यंत ऋजु दर्भ उसके अनन्तर द्विगुणभुग्न दर्भ अर्थात् मुडीहुयी धारण करै। जो दर्भ पिंडोंके आश्रयमें होयँ जिनसे पितरोंका तर्पण किया है, मल, मूत्र त्यागनेके समयमें जिनका धारण किया हो, और अपवित्र मल मूत्रके स्थानमें जो पैदाहुई हों, मार्ग, चिता, यज्ञभूमि, आस्तरण (आसन) इनमें जो स्थित होयँ और जो ब्रह्मयज्ञका होयँ वे सब कुशा त्यागने योग्य हैं। कुशा और दूर्वाकी जो अन्यपवित्री हैं वे सब सुवर्णकी पवित्रीकी सोलहवीं (१६) कलाके योग्य नहीं। पांच (५) गुंजाके मासेके प्रमाणसे सोलह (१६) मासे सोनेकी सुवर्णपवित्री होतीहै। यह शास्त्रकार कहतेहैं ॥

अथ हविः ।

व्रीहियवतिलमाषगोधूमश्यामाकप्रियंगुमुद्गसर्षपाः श्राद्धे प्रशस्ताः ॥ चणको विकल्पितः ॥ यावनालोपि विकल्पितः ॥ "इष्टापूर्ते मृताहे च दर्शवृद्ध्यष्टकासु च ॥ पात्रेभ्यस्त्वेषु कालेषु देयं नैव कुभोजनम् ॥ अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्गविवर्जितम् ॥ तैलपक्वेन रहितं कृतमप्यकृतं भवेत् ॥ राजमाषाश्च निष्पावा अपि शस्ताः सतीनकाः ॥" राजमाषा महाराष्ट्रभाषया चवळीति प्रसिद्धाः ॥ निष्पावाः पावटे इति सतीनकाः वाटाणे इति ॥ कदलीफलमाम्रफलं मूरणः पनसः त्रिविधं कर्कटीफलं कोशातकी दोडका इति प्रसिद्धा कुस्तुम्बुरु वैकल्पिकं पटोलं बदरमामलकं खर्जूरीफलं चिचार्द्रकं शुंठीमूलकं द्राक्षालवंगैलापत्रकाणि जीरकं हिंगुदाडिमफलमिक्षुः शर्करा गुडः कर्पूरः सैंधवसामुद्रे लवणे पूगीफलं तांबूलपत्रमिति श्राद्धे प्रोक्तानि हवींषि गव्ये दधिदुग्धे ॥ घृतं गव्यं माहिषं च केचिन्माहिषं तक्रं सद्यःकृतमनुद्धृतनवनीतं ग्राह्यमाहुः ॥ केचिन्माहिषीक्षीरं शर्करादियुतं ग्राह्यमाहुः॥ मथितं निर्जलं दधि सर्वं निषिद्धम् ॥ जंबीरफलं विहितप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पितम्॥ अक्षोटः अक्रोड इति प्रसिद्धः ॥ शृंगाटकः शिंगाडे इति प्रसिद्धः॥ चिर्भटं खर्बुजमितिप्रसिद्धम् ॥ शीतकंदली राताळीति प्रसिद्धम् ॥ एते श्राद्धे विहिताः ॥ आम्रातकः आंबाडा इति प्रसिद्धस्तंदुलीयो माठ

इति प्रसिद्धः ॥ एतौ द्वौ विहितप्रतिषिद्धौ ॥ केचिद्राजमाषं कृष्णेतरमुद्गं कृष्णनिष्पावं च निषिद्धमाहुः ॥ "कथंचिद्यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु॥ पिंडास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना विना ॥ अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु ॥ देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ॥" इति वचनद्वयान्मधुनि ऐच्छिकविकल्पः ॥ केचित् " यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा ॥ " इति वचनाद्देशाचारानुसारेण व्यवस्थितविकल्पमाहुः ॥ मांसं श्राद्धेषु नैव देयं कलिवर्ज्यत्वात् ॥ " न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित्" इत्यादि श्रीभागवतवचनाच्च ॥ अन्यानि मुंजातचव्यकसेरुकालेयादिद्रव्याणि बहूनि महानिबंधेषूक्तानि तान्यप्रसिद्धत्वाच्छ्राद्धेवश्यापेक्षोपयोगयोरभावाच्च नेहोच्यंते ॥

इसके अनंतर हविको कहते हैं। व्रीहि, जौ, उडद, तिल, गेहूं, श्यामाक, प्रियंगु, मूंग, सर्षप; ये श्राद्धमें श्रेष्ठ हैं। और चणे, और यावनाल; ये विकल्पसे श्रेष्ठ हैं। इष्टापूर्तमें; मृतकके दिनमें; दर्श, वृद्धि, अष्टकाओंमें; इतने कालोंमें पात्रोंको निन्दित भोजन न दे । विना गोधूम और माष मूंगसे वर्जित और तेलपकसे रहित जो श्राद्ध है वह किया भी न किया होताहै । और राजमाष निष्पाव सतीनक भी श्रेष्ठ हैं । महाराष्ट्रभाषामें राजमाषको चवली (लोंबिया) कहते हैं। और निष्पावको (पावटे, वरणे) और सतीनको (वाटाणे) कहतेहैं। केला मात्रका फल, सूरण (जमींकंद), पनस, तीन प्रकारकी कर्कटीका फल (ककडी), कोशातकी (दोडका) इस नामसे प्रसिद्ध, कुस्तुंबुरु, (कंदूरी), परवल, बेर, आंवले, खजूर, अमली, आद्रक, सूंठ, मूली, दाख, लवंग, इलायची, जीरा, हींग, अनार, ईख, खांड, गुड, कपूर, सींधालवण, समुद्रका लवण, सुपारी, पान; ये श्राद्धमें हविः कहे हैं। गौका दूध, और घृत, और कोई तो भैंसका भी घृत कहते हैं। और भैंसका वह तक्र जिसमेंसे नवनीत न निकासा हो उसको भी कोई ग्रहण करने योग्य कहतेहैं। और कोई तो खांडसे युक्त भैंसके दूधको भी ग्राह्य कहते हैं। और मथीहुई निर्जल दधि सब प्रकारकी निषिद्ध है। और जंभीरीका फल कहा है परन्तु निषिद्ध होनेसे उसके ग्रहण करनेमें विकल्प है । अक्षोट (अखरोट) इस नामसे प्रसिद्ध शृंगाटक (सिंघाडे) चिर्भट (खर्बूजा), शीत कदली (ताराली) इस नामसे प्रसिद्ध ये श्राद्धमें कहे हैं। आम्रातक (आंबाडा), तंडुलीय (मांड), ये दो कहेहैं, और निषिद्ध भी किये हैं। और कोई राजमाष कृष्णसे भिन्न मूंग और कृष्ण निष्पावको निषिद्ध कहते हैं। यदि किसी प्रकार ब्राह्मणोंको भोजनमें मधु न दिया होय तो पिंड तो मधुके विना कदाचित् न देने। और अक्षत, गौ, पशु, मांस, मधु; इनको श्राद्धमें और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति; इन पांचोंको कलियुगमें वर्जे दे। इन दो वचनोंसे मधुके विषयमें अपनी इच्छासे विकल्प है । और कोई तो आचारके अनुसार मधु, मांस, आदि देने योग्य हैं इस वचनसे देशाचारके अनुसार व्यवस्थासे विकल्पको कहतेहैं कि, कलियुगमें वर्जित होनेसे मांस तो श्राद्धमें नहीं देना और यह भागवतका भी वचन है। कि, धर्मतत्त्वका ज्ञाता मनुष्य श्राद्धमें मांसको न दे और न भक्षण करै । और अन्य जो मुंजात, चव्य, कसेरु, कालेय, आदि द्रव्य हैं; वे बहुतसे बडे २ ग्रंथोंमें कहेहैं। वे अमिषिद्ध होनेसे और उनकी श्राद्धमें उपेक्षा और उपयोगका आवश्यक अभाव होनेसे नहीं कहे हैं ॥

अथ वर्ज्यानि।

यद्यपि विहितोक्त्यैव तद्भिन्नानामग्राह्यत्वं प्राप्तं तथापि विशेषदोषप्रदर्शनायाप्राप्तनिषेधज्ञापनाय च तानि संगृह्यंते ॥ उत्कोचादिना प्राप्तं पतितांत्यजादेः प्राप्तमन्यायार्जितं कन्याविक्रयादिलब्धं धनं निंद्यम् ॥ पित्रर्थं मे देहीतियाचनार्जितमपि निषिद्धम् ॥ आढकीकुलित्थमसूरकोद्रवराजसर्षपा निषिद्धाः ॥ लांकेतिप्रसिद्धमर्कटाश्च वर्ज्याः शिग्रुकूष्मांडोभयविधालाबुकरमर्दार्द्रमरीचापिंडमूलककुसुंभशणवंशांकुराः दशविधा लशुनादिपलांडुभेदाः कृत्रिमलवणानि रक्तबिल्वं श्वेतं कृष्णं वृंताकं गाजरापरपर्यायं गृंजनं भोकरसंज्ञः श्लेष्मातको रक्तनिर्यासाश्च वर्ज्याः ॥ "सामुद्रसैंधवे भक्ष्ये प्रत्यक्षं लवणे बुधैः॥ बिडालोच्छिष्टमाघ्रातं श्राद्धे द्रव्यं विवर्जयेत् ॥ करीरफलपुष्पाणि विडंगमरिचानि च ॥ बीजपूरं पटोलं च श्राद्धे दत्वा पतत्यधः ॥ कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥ न वर्जयेत्तिलांश्चैव मुद्गमाषांस्तथैव च ॥ दातुर्यद्यप्रियं तत्तद्देयं निंद्यं न चेद्धि तत् ॥ अजाविमहिषीक्षीरं तद्विकारांश्च वर्जयेत्॥ वालुकाकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपद्रुतम् ॥ वस्त्रेण वीजितं चान्नं वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥ अमेध्यैर्जंगमैः स्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥ द्विःपक्वं परिदग्धं च सिद्धभक्षांश्च वर्जयेत् ॥" यत्सकृत्पाकेन भक्षणार्हमपि हिंगुजीरकादिसंस्कारार्थं पुनः पच्यते तद्द्विःपक्वं वर्ज्यम् ॥ यत्तु द्विःपाकेनैव भक्षणार्हं तन्न निषिद्धमिति सिंधुः ॥ यदन्नैकदेशः केनचित्पूर्वमास्वादितस्तदन्नं श्राद्धे वर्ज्यम् ॥ मारिषं राजगिरेति प्रसिद्धं शाकं धान्यं च वर्ज्यम् ॥ वटप्लक्षोदुम्बरकपित्थनीपमातुलिंगफलानि न भक्षयेत् ॥ 'क्षीरं च लवणैर्मिश्रं ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥' आस्यापवादः ॥ " पयोनुद्धृतसारं च पयसा संयुतं दधि ॥ घृतं चैतानि गव्यानि नैव दुष्टानि ताम्रके ॥" पिप्पलीवर्तुलमरीचादेः प्रत्यक्षस्य निषेधो न त्वन्यमिश्रितस्य ॥ नारीकेलं विहितप्रतिषिद्धम् ॥ यच्च पौतिकशाकादिकं जीर्णतक्रं संधिन्यादिक्षीरमनिर्दशायाः क्षीरं मृग्यादिक्षीरं फेनिलतक्रादिकं हस्तदत्तस्नेहलवणादिकं च नित्यभोजने निषिद्धं तत्सर्वं श्राद्धेपि वर्जयेत् ॥

इसके अनंतर वर्जित द्रव्योंको कहते हैं। यद्यपि विहित द्रव्योंके कहनेसे ही उनसे भिन्न ग्रहण करनेके अयोग्य प्राप्त थे, तथापि विशेष दोष दिखानेके लिये और अप्राप्तोंका निषेध जतानेके लिये उनका संग्रह करतेहैं। उत्कोच (रिश्वत) आदिसे पतित और अंत्यजसे मिला और अन्यायसे संचित धन; श्राद्धमें निंदित है। और जो पितरोंके लिये 'मुझे दो' इस प्रकारकी याचनासे संचित हो वह भी निषिद्ध है । आढकी, कुलथी, मसूर, कोंदू, राजसषप (राई), आदि भी निषिद्ध हैं । और लाँक नामसे प्रसिद्ध भी वर्जित हैं । सोहंजना, कूष्मांड (भेलिया कद्दू काशीफल) दोनों प्रकारकी तूंबी, करंजवा, अदरख, मिरच, पिण्डमूलक (सलगम), सूरण, बांशके अंकुर और लशुन, और पलांडुके दशभेद, और बनायेहुये लवण, रक्तबिल्व, आर श्वेत और कृष्ण बैंगन, गृंजन

(गाजर); श्लेष्मांतक (बहेडा), लालगोंद; ये सब वर्जित हैं। और समुद्रका, और सींधा लवण; ये दोनों और प्रत्यक्षलवण; बुद्धिमानोंके भक्षणयोग्य हैं। और बिलावका सूंघा और उच्छिष्ट द्रव्य श्राद्धमें वर्ज दे। कैरके फल, फूल, वायविडंग, मिरच; बिजौरा, पटोल; इनको श्राद्धमें देकर नरकमें जाताहै। और श्राद्धमें कृष्ण संपूर्ण अन्नोंको वर्ज दे और तिल, मूंग, उडद, इनको न त्यागै। दाताको जो २ प्रिय मालूमपडै उस २ को दे। और जो प्रिय न हो वह निंद्य है बकरी, भेड, भैंस, इनके दूध और इनके दूधके विकारोंको वर्ज दे। और वालू, कीट, पत्थर, केश; इनसे युक्त और वस्त्रसे बीजित (ठंडा किया) जो अन्न उसको श्राद्धके कर्ममें वर्ज दे। अपवित्र, जंगमजीवोंका छुआ, सूका और बासी और दुबारा पक्क, चलाहुआ और सिद्धभक्ष (बजार के) इनअन्नोंको वर्जदे। जो एकबार पकानेसे भक्षणयोग्य हींग, जीरा, आदि हैं वे संस्कारके लिये फिर पकाये जायँ तो द्विपक होनेसे वर्जित हैं। और जो दुबारा पकानेसे ही भक्षणयोग्य हो वह निषिद्ध नहीं यह निर्णयसिंधुमें कहा है। जिस अन्नके एकदेशका पहिले किसीने स्वाद लेलियाहो वह अन्न श्राद्धमें वर्जित है। राजगिरानामसे प्रसिद्ध मारीषनामका शाक और अन्न भी वर्जित है। बड, पिलखन, गूलर, कैंथ, कदंब, मातुलिंग; इनके फलोंका भक्षण भी न करै। और लवण मिला दूध; और तांबेमें गव्य, ये दोनों मदिराके समान हैं। इसका अपवाद यह है कि, जिसमेंसे घी न निकासा हो वह दूध और दूधमिला दही और घी ये तांबेके पात्रमें दूषित नहीं हैं। पीपल और गोलमिरच आदि प्रत्यक्षोंका निषेध है अन्यद्रव्यमें मिश्रितका नहीं। और नारियलसे बनाया भी निषिद्ध है और पौतिक (पोई) का शाक आदि, जीर्ण मठा; संधिनी (ग्याभन) का और दुशदिनसे भीतरका दूध, मृगी आदिका दूध, और झागवाले तक्र आदि और हाथसे दिये स्नेह लवण आदि जो नित्यके भोजनमें निषिद्ध हैं वे सब श्राद्धमें भी वर्जित हैं ॥

अथ मक्षिकादिदूषिते व्यवस्था ।

माधवीये ॥ मृतैर्मक्षिकाकृमिजन्तुभिः केशरोमनखादिभिश्च दूषितं सति संभवे वर्जयेत् ॥ असंभवे तु केशादिकमुद्धृत्य संप्रोक्ष्य हिरण्यस्पर्शं कृत्वा भुंजीत ॥ श्वमार्जारमूषकादिभिरालीढादिकं त्वापद्यपि वर्ज्यमित्युक्तम् ॥ यत्तु मण्डकवटकसक्तुपायसापूपकृसरादीनां स्नेहसिद्धानां पर्युषितत्वदोषो नास्तीति वचनं तन्नित्यभोजनपरं न तु श्राद्धपरमिति शिष्टाः यदग्निपकं सदेकरात्रिद्विरात्राद्यंतरितं तत्पर्युषितमुच्यते ॥

माधवीयमें लिखा है कि, मरेहुये मक्षिका, कृमि, जंतु, केश, रोम, नख, आदिसे दूषितको भी संभव होय तो वर्ज दे। और असंभव होय तो केश आदिको निकासकर और अन्नको छिडककर, सोनेका स्पर्शकरके भोजनकरले। कुत्ता, मार्जार, मूसा, आदिकोंने जिसका चाटना, सूंघना, आदि करलिया हो उसको आपत्तिकालमें भी वर्जदे यह कह आये। और जिस किसीका यह वचन है। कि, मांडे, बडे, सत्तू, पायस, अपूप, कृसर, आदि जो स्नेहसे सिद्ध हैं उनको बासीपनका दोष नहीं; यह वचन नित्यभोजनके विषयमें है श्राद्धके विषयमें नहीं यह शिष्ट कहते हैं। जो अग्निमें पकायाहुआ एक वा दो रात्रिके बीतनेके अन्तका हो वह पर्युषित कहाता है ॥

अथ कदर्यादिद्रव्यनिषेधः।

कदर्यादीनामन्नं नित्यभोजने श्राद्धकर्मणि च न ग्राह्यम् ॥ ते च कदर्यश्चोरो नटो वीणोपजीवी वार्धुषिकोभिशस्तो गणिका चिकित्सकः क्रुद्धः पुंश्चली मत्तः क्रूरः शत्रुः पतितो दांभिकः पतिपुत्ररहिता स्त्री स्वर्णकारः स्त्रीजितो ग्रामयाजको घातुकः कर्मारस्तंतुवायः कृतघ्नो वस्त्रक्षालनोपजीवी दारोपजीवी सोमविक्रयी चित्रकर्मा गायक इत्यादयस्त्रैवर्णिका अप्यग्राह्यान्नाः ॥"आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत् ॥ लोभाद्यः पितरौ भृत्यान्स कदर्य इति स्मृतः ॥ द्वावेवाश्रमिणौ भोज्यौ ब्रह्मचारी गृही तथा ॥ वानप्रस्थो यती लिंगी न भोज्यान्नाः प्रकीर्तिताः ॥ षण्मासं यो द्विजो भुंक्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्॥ स तु जीवन्भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते" अन्यानि च द्रव्याणि निबन्धेषु बहूनि निषिद्धानि तानि विहितोक्त्यर्थसिद्धत्वादप्रसिद्धत्वाच्च नोक्तानि ॥

कदर्य आदिकोंका अन्न; नित्यभोजन और श्राद्धकर्ममें ग्रहणकरने योग्य नहीं है । वे कदर्यआदि ये हैं कि, कदर्य, चोर, नट, वीणोपजीवी, वार्धुषिक (सूदलेनेवाला), अभिशस्त (शापित), वेश्या, चिकित्सक (वैद्य), क्रोधी, व्यभिचारिणी, मत्त, क्रूर, शत्रु, पतित, दंभी, पतिपुत्रसे रहित स्त्री, सुनार, स्त्रीजित, ग्रामका याजक, हिंसक, लुहार, तंतुवाय, कृतघ्न, धोबी, दारासे जो जीविका करै, सोमका विक्रेता, चित्रामका कर्ता, और गायक; इत्यादि त्रिवर्णियोंका अन्न भी अग्राह्य है । जो अपनी आत्माको, धर्मके कार्यको, पुत्र स्त्रीको, माता, पिता, भृत्योंको; लोभसे पीडा दे वह कदर्य कहा है । ब्रह्मचारी, गृहस्थ ये दो ही आश्रमी भोजन कराने योग्य हैं; वानप्रस्थ, संन्यासी, लिंगी; ये तीनों भोजनकराने योग्य नहीं कहे । जो ब्राह्मण छःमासपर्यंत शूद्रके निंदित अन्नको खाता है वह जीवता ही शूद्र होजाता है और मरकर श्वान होता है । अन्य भी बहुतसे द्रव्य ग्रंथोंमें निषिद्ध किये हैं वे विहितों (शास्त्रोक्तों) की उक्तिसे सिद्ध हैं और अप्रसिद्धभी हैं इससे हमने नहीं कहे ॥

अथ जलेषु वर्ज्यावर्ज्यम्।

"दुर्गंधि फेनिलं क्षारं पंकिलं पल्वलोदकम् ॥ न भवेद्यत्र गोतृप्तिर्नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् ॥ न ग्राह्यं तज्जलं श्राद्धे यच्चाभोज्यनिपानजम् ॥ स्नानमाचमनं दानं देवतापितृतर्पणम् ॥ शूद्रोदकैर्न कुर्वीत तथा मेघाद्रिनिःसृतैः ॥ नाहरेदुदकं रात्रौ तुलसीं गोमयं मृदम्॥" तुलसीबिल्वजाह्नवीजलभिन्नं पर्युषितं जलं पुष्पं च त्यजेत् ॥ "दौहित्रः कुतपः कालश्छागः कृष्णाजिनंतथा ॥ रौप्यदर्भास्तिला गावः खड्गपात्रं पितृप्रियम् ॥" आरण्याः कृष्णातिला मुख्याः ॥ तदभावे ग्राम्या गौराः कृष्णाश्च ॥ छागसांनिध्यं श्राद्धेतिप्रशस्तम् ॥ कुक्कुटविड्वराहकाकमार्जारशूद्रषंढरजस्वलासान्निध्यमतिनिंद्यम् ॥ चांडालरजस्वलाखंजश्वित्रिन्यूनांगातिरिक्तांगादि-

भिर्वीक्षितमन्नं न भोज्यम् ॥ आपदि मृद्भस्महिरण्योदकस्पर्शाद्भोज्यम् ॥ पावमानीतरत्समंदीमंत्रैर्गायत्र्यादिभिश्च दर्भजलप्रोक्षणे दुष्टान्नशुद्धिः ॥ "पादुकोपानहौ छत्रं रक्तचित्रांबरं तथा ॥ रक्तपुष्पं च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत् ॥" घंटानादोश्वधत्तूरशंखशुक्तिसांनिध्यं च वर्ज्यम् ॥

जिसमें दुर्गंध हो, झाग हों, खारा हो, कीचमिला हो, छोटे तलावका हो, जिसमें गौ तृप्त न हो, और रात्रिको आनाहो, और अभोज्य निपान (चौबच्चा) हो, वह जल ग्रहण नहीं करना। स्नान, आचमन, दान, देवपितरोंका तर्पण; इनको शूद्रके और मेघके जलसे न करै । जल, तुलसी, गोमय, मिट्टी; इनको रात्रिमें न लावै । तुलसी, बिल्व, गंगाजल इनसे भिन्न; बासी जल, पुष्पको त्यागदे । और दौहित्र, कुतुपकाल; बकरा, काली मृगछाला, चांदी, दर्भ, तिल, गौ, गैंडेका पात्र; ये, वस्तु पितरोंको प्रिय हैं। बनके काले तिल, मुख्य हैं; वे न मिलें तो ग्रामके सफेद, वा काले लेने। छागका समीप होना श्राद्धमें अत्यन्त श्रेष्ठ है। कुक्कुट, विष्ठाभक्षक वराह, काक, मार्जार, शूद्र, नपुंसक और रजस्वला, इनका समीप रहना अत्यन्त निंदित है। और चांडाल, रजस्वला, लंगडा, दादवाला, न्यून वा अधिक अंगी, आदिने देखाहुआ अन्न भोजनके अयोग्य है। और आपत्तिमें मिट्टी, भस्म, सुवर्ण, और जल; इनके स्पर्शसे भोजनके योग्य है। और "पावमानी, तरत्समंदी" नामके मंत्र और गायत्री आदिसे दर्भ जलका प्रोक्षण करनेसे दुष्टान्नकी भी शुद्धि होती है। खडाऊं, उपानह, छत्र; रक्त और चित्रवस्त्र, और रक्तपुष्प, मार्जार; इनको श्राद्धभूमिमें वर्ज दे। घंटोंका शब्द, कुत्ता, धतूरा, शंख, सींप; इनका सामीप्य भी त्याज्य है॥

अथ श्राद्धदिनकृत्यम् ।

गोमयादिभिर्भूमिभांडशुद्धिः ॥ देवताब्रह्मचारियतिशिशूनां पिंडदानपर्यंतमन्नं न देयम् ॥ अतिशिशवस्तु गृहांतरे भोजनीयाः ॥ 'तिलानवकिरेत्तत्र सर्वतो बंधयेदजान् ॥' पाकः श्राद्धकर्त्रा स्वयमेव कार्यः ॥ "तदभावे शुद्धपत्न्या तदभावे तु बांधवैः ॥ सगोत्रैर्वा सपिंडैर्वा मित्रैर्वा सुगुणान्वितैः ॥ पुंश्चलीं च तथा वंध्यां विधवां चान्यगोत्रजाम् ॥ वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्थममातृपितृवंशजाम् ॥ न पाकं कारयेत्पुत्रीं गर्भिणीं चापि दुर्मुखीम् ॥ पाकभांडानि सौवर्णरौप्यताम्रोद्भवानि च ॥ कांस्यानि मृन्मयं तूक्तं नव्यमेव मनीषिभिः ॥ पैत्तलं रंगजातं च विहितं न च निंदितम् ॥ न कदाचित्पचेदन्नमयःस्थालीषु पैतृकम् ॥" फलशाकादिच्छेदनार्थभिन्नानामायसानां शास्त्राणां भांडानां च दर्शनमपि पाकादिस्थाने निषिद्धम् ॥ 'पक्वान्नस्थापनार्थं तु शस्यंते दारुजान्यपि ॥'

अब श्राद्धदिनके कर्मको कहते हैं। गोमय आदिसे भूमि और पात्रोंकी शुद्धि होती है। देवता, ब्रह्मचारी, संन्यासी, और बालक; इनको पिण्डदानपर्यंत अन्न न दे । अत्यन्त बालकोंको तो घरके भीतर जिमादे । और वहां तिलोंको बखेरै और चारों

तरफ बकरियोंको बांधदे । और श्राद्धका कर्ता पाकको स्वयं करे, स्वयं न होसके तो शुद्धपत्नीसे, वह भी न होय तो बान्धवोंसे, सगोत्रियोंसे, सपिण्डोंसे वा गुणवान् मित्रोंसे,करवावै । और व्यभिचारिणी, वंध्या, विधवा, भिन्नगोत्रकी स्त्री, और जो मातापिताके वंशकी न होय इनको श्राद्धपाकके लिये वर्जदे । और पुत्री, गर्भिणी, और दुर्मुखी; इनसे भी पाकको न बनवावै । और सुवर्ण, चांदी, तांबा; इनके पात्रही पाकके लिये होयँ, कांसीके और मिट्टीके तो बुद्धिमानोंने नवीन ही ग्रहण करने कहेहैं । और पीतल, और रांगके न ग्रहण करने कहेहैं । और न निंदित कहेहैं और पितरोंके लिये लोहेकी टोकनीमें कदाचित् पाकको न पकावै; और फल शाखा आदिके छेदनके लिये जो हैं उनसे भिन्न लोहेके शस्त्र और भाण्डोंका दर्शन भी पाकके स्थानमें निषिद्ध है पकान्न रखनेके लिये तो काष्ठके पात्र भी श्रेष्ठ कहेहैं ॥

अथ गृह्याग्नौ पाकप्रकारः ।

"गृह्याग्नौ तु पचेदन्नं श्राद्धीयं लौकिकेपि वा ॥ यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ॥" तत्र गृह्याग्नौ पाके विशेषः ॥ प्रातर्होमं कृत्वा तदेकदेशं महानसे कृत्वा पाकं कुर्यात् ॥ पाकांते पाकाग्न्येकदेशं गृह्याग्नौ संयोज्य गृह्येग्नौकरणवैश्वदेवादि कार्यम् ॥ अत्रैवं व्यवस्था ॥ कात्यायनादीनां गृह्याग्नौ पाकः ॥ आश्वलायनानां तु नैत्यके पचनाग्नौ ॥ अग्नौकरणं त्वाश्वलायनानां व्यतिषंगेण श्राद्धे गृह्याग्निपक्वचरुणा गृह्ये एव ॥ व्यतिषंगाभावे पाणिहोमः ॥ अन्यशाखीयस्य गृह्याग्नावग्नौकरणं विधुरस्योच्छिन्नाग्निकस्य च पृष्टोदिविधानादिनाग्निसंपादनम् ॥ तच्च पूर्वार्द्धे उक्तम् ॥

श्राद्धके अन्नको गृह्यअग्निमें वा लौकिकअग्निमें पकावै और जिस अग्निमें अन्न पकावै उसी अग्निमें होम करै । उस गृह्यअग्निके पाकमें यह विशेष है कि, प्रातःकाल होमको करके और उस अग्निके एक (१) भागको महानसमें लेजाकर पाक करै; और पाकके अन्तमें पाकअग्निके एक (१) भागको गृह्याग्निमें मिलाकर अग्नौकरण और वैश्वदेव आदिको करै । इसमें यह व्यवस्था है कि, कात्यायनआदिकोंका पाक; गृह्याग्निमें और आश्वलायनोंका नित्यपाककी अग्निमें, होता है । और आश्वलायनोंका अग्नौकरण तो व्यतिषंगसे श्राद्धमें गृह्याग्निमें पकायेहुये चरुसे गृह्याग्निमेंही होता है । और व्यतिषंग न होसके तो ब्राह्मणोंके हाथमेंही होमको करै । अन्यशाखावालोंका तो गृह्याग्निमें अग्नौकरण होता है और जो स्त्रीसे हीन है वह अरणी आदिकाष्ठोंके घिसनेमें अनेक प्रकारकी अग्निओंको पैदा करके अग्नौकरण करै यह पूर्वार्द्धमें कह आये ॥

अथ भोजनपात्राणि ।

भोजनपात्राणि तु हेमरौप्यकांस्यजानि वा पलाशकमलकदलीमधूकपत्रनिर्मितानि वा ॥

और भोजनके पात्र तो सुवर्ण, चांदी, कांशीके होयँ अथवा ढाक, कमल, केला, महुआ; इनके पत्तोंसे बनेहुये होयँ ॥

अथ निमन्त्रणादि श्राद्धाहे भुक्तान्नपरिणामपर्यंतं कर्तुर्विप्राणा च नियमाः।

स्त्रीसङ्गपुनर्भोजनानृतभाषणाध्यापनद्यूतायासभारोद्वहनहिंसादानप्रतिग्रहचौर्याध्वगमनदिवास्वापकलहादिवर्जनं कर्तृभोक्तुभयधर्माः॥ स्त्रीसङ्गश्च श्राद्धदिने तत्पूर्वदिने च ऋतुकालेऽपि वर्ज्यः॥ तांबूलक्षुरकर्माभ्यंगदन्तधावनवर्जनं कर्तृधर्माः॥ भोक्तृविप्राणां तैलाभ्यंगे उद्वर्तने क्षौरे च विकल्पः॥ कर्तुर्भोक्तुश्च मुख्यवारुणस्नानेनैवाधिकारो न तु गौणस्नानेन॥"श्राद्धकृच्छुक्लवासा स्यान्मौनी च विजितेंद्रियः॥ उपवासं परान्नं च औषधं च विवर्जयेत्॥" अवस्त्रत्वं मलवद्वस्त्रत्वं कौपीनवत्त्वं कच्छहीनत्वमनुत्तरीयत्वं काषायवस्त्रत्वमार्द्रवस्त्रत्वं द्विगुणवस्त्रत्वं रक्तवस्त्रत्वं दग्धवस्त्रत्वं स्यूतवस्त्रत्वमित्येकादशविधनग्नत्वं कर्तृभोक्तृभ्यां वर्ज्यम्॥ कर्तुर्ललाटे ऊर्ध्वपुण्ड्रादेर्विकल्पः॥ भोक्तुस्तु भवत्येव॥ चन्दनतिलकस्तु पिंडदानात्प्राक्कर्तुर्वर्ज्यः॥ भोक्तुस्तु भोजनकालात्प्राग्वर्ज्यः॥ सदर्भहस्तेन तिलको न कार्यः॥ करणे आचमनदर्भत्यागश्च॥ कर्त्रा निमंत्रितविप्रत्यागो न कार्यः॥ प्रमादेन त्यागे यत्नेन विप्रः प्रसादनीयः॥ बुद्धिपूर्वकत्यागे सति चांद्रायणं प्रायश्चित्तम्॥ "आमंत्रितस्तु यो विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति॥ नरकाणां शतं गत्वा चांडालेष्वभिजायते॥ आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे विलम्बं कुरुते द्विजः॥ देवद्रोही पितृद्रोही पच्यते नरकेषु सः॥" स्त्रीसङ्गः पुनर्भोजनं च श्राद्धपूर्वे रात्रावपि कर्तृभोक्तृभ्यां वर्ज्यम्॥ "दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग्द्विजः॥ सायं संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि॥ सूतके च प्रवासे च अशक्तौ श्राद्धभोजने॥ औपासनादिकं होमं न कुर्यात्किंतु कारयेत्॥ निमन्त्रितस्तु न श्राद्धे कुर्याद्भार्यादिताडनम्"॥ अपराह्णाख्यमुहूर्तत्रये वनस्पतिच्छेदं दधिमंथनं सर्वैर्न कार्यम्॥ यदा कर्तुरशक्त्या तत्पुत्रशिष्यादिः प्रतिनिधिः श्राद्धं करोति तदा यजमानप्रतिनिधिभ्यामुभाभ्यां पूर्वोक्ताः सर्वे कर्तृनियमाः कार्याः॥ "मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च॥ हसते वदतेऽत्यंतं निराशाः पितरो गताः॥ सवर्णंप्रेषयेदान्नं द्विजानां तु निमंत्रणे॥ अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमंत्रितम्॥ तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमंत्रितम्॥" वृषलः शूद्रः॥

इसके अनंतर निमंत्रणसे लेकर श्राद्धके दिन भोजन किये अन्नके पचनेपर्यंत श्राद्धके कर्ता और ब्राह्मणोंके नियमोंको कहते हैं। स्त्रीका संग; श्राद्धके दिन, और उससे पहिले दिन ऋतुकालमेंभी वर्जित है; ताम्बूल, क्षौर, दंतधावन, इनका त्याग; ये श्राद्धकर्ताके धर्म हैं। भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको तो तैलाभ्यंग और उबटना और क्षौरमें विकल्प है और कर्ता और भोक्ताको तो मुख्य वारुण जल स्नानसेही अधिकार है गौणस्नानसे नहीं। श्राद्धका कर्ता शुक्ल वस्त्रोंको धारै और मौन और जितेन्द्रिय रहै उपवास, पराया अन्न इनको त्याग दे और

वस्त्रको न धारना । मलीन वस्त्रको धारना, कौपीनको धारना, कच्छहीन रहना, उत्तरीय न रखना, गेरूके वस्त्र धारना; गीलेवस्त्र धारना, रक्तवस्त्र धारना, दग्धवस्त्र धारना, सिलेहुये वस्त्र, धारना, यह ग्यारह (११) प्रकारका नग्नित्व (नंगा रहना) कर्ता और भोक्ता दोनोंको वर्जित है । कर्ताको ललाटमें ऊर्द्धपुण्ड्र आदि लगानेका विकल्प है । और भोक्ताको तो ऊर्द्धपुण्ड्र आदि लगाना कहा है । और कर्ताको तो पिंडदानसे पहिले चंदनका तिलक वर्जित है । भोक्ताको तो भोजन कालसे पहिले वर्जित है । दर्भको हाथमें लिये तिलक न करै और करै तो आचमन करके करै । और उस कुशाको त्यागदे । और कर्ताने निमंत्रण दिये ब्राह्मणोंका त्याग न करना। प्रमादसे त्यागै तो यत्नसे ब्राह्मणको प्रसन्न करै । और जानके त्यागे तो चांद्रायणप्रायश्चित्तको करै । निमंत्रणको मानकर जो ब्राह्मण दूसरेके घर भोजन करनेको जाताहै वह सौ (१००) नरकोंमें जाकर चाण्डालोंमें पैदा होता है । जो निमंत्रित ब्राह्मण श्राद्धमें विलम्बको करता है देवताओंका द्रोही वह नरकोंमें पचता है । और स्त्रीका संग और दुबारा भोजन इन दोनोंको श्राद्धसे पहिली रात्रिमें भी कर्ता और भोक्ता दोनों वर्ज दें । श्राद्धका भोक्ता ब्राह्मण गायत्रीको पढकर दश (१०) बार जल पीवै सायंकालको संध्या, जप और होमको करै । सूतक, प्रवास, असामर्थ्य, श्राद्धभोजन; इनमें औपासन आदि होमको स्वयं न करै किंतु अन्यसे करवावै । और श्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मण अपनी भार्या आदिकी ताडनाको न करै । और अपराह्णआदिनामके तीन (३) मुहूर्तोंमें वनस्पतिका छेदन न करै और दहीका मथना, इनको सब न करैं । और जब कर्ताकी अशक्तिसे उसके पुत्र शिष्य आदि प्रतिनिधि होकर श्राद्धको करैं तब यजमान और प्रतिनिधि ये दोनों पूर्वोक्त सम्पूर्ण नियमोंको करैं । जो नारी मुक्तकच्छ (नग्न) और मुक्तकेशा होय और अत्यंत हँसै और बोले तो पितर निराश चले जाते हैं । द्विजोंके निमंत्रणार्थ सत्पात्र सवर्णाको भेजै । जो ब्राह्मणको अन्नके लिये वृषल (शूद्र) निमंत्रणकरै और वृषलके अन्नके लिये ब्राह्मण निमंत्रण करे तो ये दोनों अन्न भोजनके अयोग्य हैं ॥

अथ श्राद्धे ब्राह्मणसंख्या ।

वैश्वदेवे समाः पित्र्ये विषमाः ॥ तेन द्वौ वैश्वदेवे त्रयः पितृपार्वणे इति पंच विप्राः ॥ अथवा चत्वारो दैवे पितृपार्वणे तु पित्रादीनामेकैकस्य त्रयस्त्रय इति त्रयोदश विप्राः ॥ यद्वा पित्रादेरेकैकस्य पंचेत्येकोनविंशतिः ॥ किं वा एकैकस्य सप्तेति पंचविंशतिः ॥ एवं दर्शादौ पार्वणाधिक्ये विप्राधिक्यमूह्यम् ॥ तथा च वैश्वदेवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्रादिष्वेकैकस्य स्थाने एकं त्रीन्पंच सप्त नव वोपवेशयेदिति निष्कर्षः ॥ "सत्क्रियां देशकालौ च द्रव्यब्राह्मणसंपदम् ॥ शौचं च विस्तरो हंति" इति पक्षे अशक्तौ वा दैवे एकः ॥ पितृपार्वणे चैक इति द्वौ विप्रौ ॥ तदुक्तं श्रीभागवते ॥ "द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥ देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च ॥ सम्यग्भवंति नैतानि विस्तरात्स्वजनार्पणात् ॥" इति ॥ एतेन द्वौ दैवे एकः पित्र्ये इति विप्रत्रयपक्षो निर्मूलो वेदितव्यः ॥ "द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेश-

येत् ॥ पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रींश्च ऋग्यजुःसामवेदिनः ॥'' अत्यशक्तौ पार्वणद्वये एको विप्रः ॥ यदैक एकविप्रस्तदा विश्वेदेवस्थाने शिवलिंगं शालग्रामं वा संस्थाप्य सर्वं श्राद्धं समाचरेत् ॥ ''दैवान्नं तत्क्षिपेदग्नौ दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे ॥'' स्थानत्रये एको विप्र इति पक्षः ॥ सपिंडीकरणादन्यत्रेदं वृत्तिकारमतम् ॥ अत्राप्येकैक इति पक्षः स्मृत्यर्थसारादिमतो वक्ष्यते ॥ सपिंडीकरणे तु पार्वणत्रय एव विप्राः ॥ वृद्धिश्राद्धे तु दैवे द्वौ द्वावेवमष्टौ निकृष्टपक्षे ॥ संपदि दैवे चत्वारः ॥ प्रतिपार्वणं चत्वार इति षोडशेत्येवं दैवे पित्र्ये च समा विप्रा इति विशेषः ॥ ''सर्वथा ब्राह्मणालाभे कृत्वा दर्भमयान् बटून् ॥ प्रैषानुप्रैष्यसंयुक्तं सर्वश्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥'' अत्र विप्रानुकूल्यरूपदृष्टप्रयोजनाभावेप्यदृष्टार्थं दक्षिणा देया ॥ एवं यतेः श्राद्धोपवेशनेऽपि सा च दक्षिणा कालांतरेऽन्यस्मै प्रतिपादनीया ॥ ''अथवाऽभ्यर्चितं लिंगं शालग्राममथापि वा ॥ संस्थाप्य देवपित्रर्थं पीठे श्राद्धं चरेन्नरः ॥ पितरस्तस्य तिष्ठंति कल्पकोटिशतं दिवि ॥ निमंत्रणं तु विप्राणां पूर्वेद्युः सद्य एव वा ॥ कुर्याद्विप्रांश्च नियमाच्छ्रावयेत्पैतृकान्बुधः ॥ अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ॥ भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥'' इति ॥

अब श्राद्धमें ब्राह्मणोंकी संख्याको कहते हैं । वैश्वदेवमें सम ब्राह्मण और पितृकर्ममें विषम होते हैं । तिससे विश्वेदेवाओंके दो (२) और पार्वणमें तीन (३) ये पांच (५) ब्राह्मण होते हैं । अथवा विश्वेदेवाओंके चार और पिता आदिके एकके तीन २ पितृपार्वणमें इसप्रकार(१३) तेरह ब्राह्मण होते हैं । यद्वा पिता आदि एक एकके पांच इसप्रकार उन्नीस होते हैं । किम्वा एक २ के सात २ इसप्रकार पचीस होते हैं । इसीप्रकार दर्श आदिमें पार्वणकी अधिकता होनेसे ब्राह्मणोंकी अधिकता समझनी।तिससे विश्वेदेवाओंके निमित्त ब्राह्मणोंको बैठाकर पिता आदि एक एकके स्थानमें १ (एक) ३ (तीन) ५ (पांच) ७ (सात) ब्राह्मणोंको बैठावै यह निष्कर्ष (सिद्धांत) है । और श्रेष्ठ, कर्म, देश, काल, द्रव्य, और ब्राह्मणोंकी सम्पदा, मिलना; शौच, ये सर्व विस्तारसे नष्ट होते हैं । इस पक्षमें वा असामर्थ्यमें एक विश्वेदेवाओंका और एक पितृपार्वणका इसप्रकार दो ब्राह्मण होते हैं । सोई श्रीमद्भागवतमें कहा है कि, विश्वेदेवाओंके २ (दो) पितृकार्यमें ३ (तीन) अथवा दोनों जगह एक २ ब्राह्मणोंको बडा धनी भी भोजन करावै श्राद्धमें विस्तार न करै । देश, काल, उचित श्राद्ध, द्रव्यपात्रोंकी पूजा; ये सब और अन्य अपनेजनोंके अधीन करनेसे विस्तारसे भलीप्रकार नहीं होते इससे देवपक्षमें दो ब्राह्मण; पितृपक्षमें १ (एक) यह तीन ब्राह्मणोंका पक्ष निर्मूल जानना । देवश्राद्धमें अथर्वणवेदी ब्राह्मणको पूर्वाभिमुख बैठावै; पितृकर्ममें तो ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी; इन तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख बैठावे ; और अत्यन्त असामर्थ्य होय तो दोनों पार्वणोंमें एक ही ब्राह्मणको जिमावै जब एकही ब्राह्मण होय तब विश्वेदेवाओंके स्थानमें शिवलिंग वा शालग्रामको स्थापन करके सम्पूर्ण श्राद्धको करै । उस देवताओंके अन्नको अग्निमें होम दे वा ब्रह्मचारीको देदे । और तीनों स्थानोंमें एक ब्राह्मण होता है यह पक्ष सपिंडीकरणसे अन्यत्र है यह वृत्तिकारका मत है । यहां भी एक २ ब्राह्मण होता है यह स्मृत्यर्थसारादिकोंका पक्ष आगे

कहेंगे, सपिंडीकरणमें तो तीनों पार्वणोंमें तीन ब्राह्मण होते हैं । वृद्धिश्राद्धमें तो देवताओंके दो २ ब्राह्मण इसप्रकार आठ ब्राह्मण निकृष्टपक्षमें होते हैं । सम्पदा होय तो विश्वेदेवाओंके चार और तीनों पार्वणोंमें चार२ इसप्रकार सोलह ब्राह्मण होतेहैं । इसप्रकार देव और पितृकर्ममें सबही ब्राह्मण होतेहैं यह विशेषहै । और सर्वथा ब्राह्मण न मिले तो कुशाके बटुक बनाकर प्रेषण और अनुप्रेषण सहित सम्पूर्णश्राद्धको करै । यहां ब्राह्मणोंका आनुकूल्य (प्रसन्नताआदि) दृष्टप्रयोजनका अभाव भी है तो भी अदृष्टके लिये दक्षिणा देनी, इसीप्रकार संन्यासीके श्राद्धमें बठानेपर भी दक्षिणा दे। और वह दक्षिणा कालान्तरमें किसी अन्यको देदेनी । अथवा पूजन किये शिवलिंग वा शालग्रामको सिंहासनपर देव और पितरोंके लिये बैठाकर जो मनुष्य श्राद्धको करताहै उसके पितर सौकोटीकल्पतक स्वर्गमें टिकतेहैं । ब्राह्मणोंको निमंत्रण तो पहिले दिन दे, वा उसीदिन तत्काल देदे । और ब्राह्मणोंको पितरोंके इन नियमोंको बुद्धिमान् मनुष्य सुनावै कि, क्रोधसे रहित, शुद्ध और निरन्तर ब्रह्मचारी तुम रहियो । और श्राद्धकरनेवाला मैं भी रहूंगा ॥

अथ सामान्यतः श्राद्धपरिभाषा ।

"निपात्य दक्षिणं जानुं देवान्परिचरेत्सदा ॥ पितॄणां परिचर्या तु वामजानुनिपातनात् ॥ प्रदक्षिणं तु देवानां पितॄणामप्रदक्षिणम् ॥ पितॄणां द्विगुणा भुग्ना दर्भा दैवे ऋजुत्वगाः ॥ दवे तूदङ्मुखः कर्ता पित्र्ये स्याद्दक्षिणामुखः ॥" संकल्पे क्षणदाने पाद्ये आसने आवाहनेऽर्घ्यदाने गंधाद्याच्छादनांतपंचोपचारेऽन्नदाने पिंडदानेऽजनदानाभ्यंजनयोरक्षय्ये स्वधावाचने च संबंधगोत्रनामोच्चारणमावश्यकमन्यत्र कृताकृतम् ॥ संबंधगोत्रनामरूपाणीति ॥ संबंधनामगोत्ररूपाणीति वोच्चारणे क्रमः ॥ तत्र "सकारेण तु वक्तव्यं गोत्र सर्वत्र धीमता ॥" इति वाक्यात्काश्यपसगोत्रस्य काश्यपगोत्रस्येति वोच्चारः ॥ केचिच्छाखाभेदाद्व्यवस्थामाहुः ॥ "गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते ॥ शर्मांतं विप्रनामोक्तं वर्मांतं क्षत्रियस्य तु ॥ गुप्तांतं चैव वैश्यस्य दासांतं शूद्रजन्मनः ॥" पित्रादिनामाज्ञाने तु तातपितामहप्रपितामहेत्येवं ब्रूयान्न नामोच्चारयेदित्याश्वलायनः ॥ शाखांतरे तु पितुर्नाम्नः स्थाने पृथिवीषदिति पितामहस्यांतरिक्षसदिति प्रपितामहस्य दिविषदिति नामोच्चार्यम् ॥ स्त्रीणां दांत नाम सावित्रीदेत्येवमुच्चार्यम् ॥ केचिद्देवीशब्दांतमाहुः ॥ अन्ये देवीदापदयोः समुच्चयमूचुः "विभक्तिभिस्तु यत्किंचिद्दीयते पितृकर्मणि ॥ तत्सर्वं सफलं ज्ञेयं विपरीतं निरर्थकम् ॥ षष्ठीविभक्त्या संकल्पः क्षणश्चाक्षय्यकर्म च ॥ षष्ठ्या वा स्याच्चतुर्थ्या वासनदानं द्विजायते ॥ द्वितीययावाहनं स्याद्विभक्तिस्तु चतुर्थिका॥ अन्नदाने पिंडपूजा स्वधा स्वस्तीतिवाचने॥ पिंडदाने तु संबुद्धिर्येचत्वेत्यादितः पुरा ॥ ततः परं चतुर्थी चेत्युभयं सर्वसंमतम् ॥ शेषाणि सर्वकर्माणि संबुद्ध्यंते यथायथम् ॥ इदं ते वा इदं वो वा प्रयुज्यैव समाचरेत् ॥ सव्येन दैवं कर्म स्यादपसव्येन पैतृकम् ॥ विप्रप्रदक्षिणा विप्रस्वागतं चार्घ्यदानकम् ॥ सूक्त-

स्तोत्रजपोन्नस्य पात्रेषु परिवेषणम् ॥आह्वानमंत्रस्याघ्राणं तथा च स्वस्तिवाचनम्॥ तांबूलदानमारभ्य समाप्तेरिति पैतृकम् ॥ प्रदक्षिणाद्येतदुक्तं सव्येनैव समाचरेत् ॥ देवार्चा दक्षिणादिः स्यात्पादजान्वंसमूर्द्धसु ॥ शिरोंसजानुपादेषु वामांगादिषु पैतृके ॥'' अक्षय्यासनार्घ्यवर्ज्यं स्वधाकारेण पितृभ्यः सर्वदानम् ॥ देवेभ्यः स्वाहापदेन ॥ दैवतीर्थेन देवं तत्पितृतीर्थेन पैतृकम् ॥ अथाचमनानि श्राद्धारम्भे द्विराचमनं विप्रपादक्षालनांते स्वपादक्षालनपूर्वकं द्विराचमनम् ॥ देवार्चनांते पित्रर्चनान्ते चैकैकमाचमनमाघ्राणांते एकं विकिरदानांते द्विरेकं वा श्राद्धांते स्वपादप्रक्षालनपूर्वकं द्विराचमनमिति ॥ अन्ये भस्ममर्यादांते करशुद्ध्यंते उच्छिष्टचालनांते चाप्येकैकमाहुः ॥ अथ भोक्तुः पादशौचांते द्विराचमनं पाणिहोमांते एकं भोजनांते द्विरिति ॥

अब सामान्यसे श्राद्धकी परिभाषाको कहतेहैं । कि, दक्षिणजानुको नीचा करके सदैव देवताओंकी पूजा करै और वामजानुको नीचा करके पितरोंकी पूजा करै । और देवकर्मको प्रदक्षिणक्रमसे और पितृकर्मको वामक्रमसे करै अर्थात् सव्य अपसव्य होकर करै । और पितरोंकी दर्भ द्विगुणभुग्न और देवताओंकी ऋजु होतीहैं । देवकर्ममें कर्ता उत्तराभिमुख और पितृकर्ममें दक्षिणाभिमुख बैठै; संकल्प, क्षणदान, पाद्य, आसन, आवाहन, अर्घ्यदान और गंधसे आच्छादनपर्यंत पंचोपचारमें अन्नदान, पिण्डदान, अंजनदान, अभ्यंजन, अक्षय्यजलदान, और स्वधावाचन; इनमें सम्बन्ध गोत्र नामका उच्चारण आवश्यक है; अन्यकर्मोंमें कृताकृतहै अर्थात् करो वा न करो । संबंध गोत्र नाम रूप वा सम्बन्ध नाम गोत्र रूप क्रमसे कहने यह उच्चारणमें क्रम है । उसमें बुद्धिमान् मनुष्य सर्वत्र सकारसे गोत्रको कहै इस वाक्यसे 'काश्यपस' गोत्रका इसप्रकार उच्चारण करै । कोई तो शाखाके भेदसे व्यवस्थाको कहते हैं । गोत्रका ज्ञान न होय तो काश्यप गोत्र कहा है । शर्मा जिसके अन्तमें हो ऐसा ब्राह्मणका नाम और वर्मा जिसके अंतमें हो ऐसा क्षत्रियका नाम और गुप्त जिसके अंतमें हो ऐसा वैश्यका नाम और दास जिसके अंतमें हो ऐसा शूद्रका नाम कहा है । पिता आदिके नामका अज्ञान होय तो तातके पितामह प्रपितामह ऐसे कहै नामका उच्चारण न करै यह आश्वलायन कहते हैं । शाखांतरमें तो पिताके नामस्थानमें 'पृथिवीषत्' यह और पितमहके नामस्थानमें 'अंतरिक्षसत्' यह और प्रपितामहके नामस्थानमें 'दिविषत्' यह; नाम उच्चारण करना । स्त्रियोंका नाम 'सावित्रीदा' इसप्रकार दा अन्तमें जिसके हो ऐसा लेना । कोई तो देवी शब्दांत कहतेहैं और अन्य आचार्य तो 'देवीदा'इन दोनों पदोंके समुच्चयको अर्थात् दोनोंको कहते हैं । जो कुछ पितरोंके कर्ममें विभक्तियोंसे दियाजाता है वह सब सफल जानना और विपरीत (विनाविभक्ति) निरर्थक होता है । संकल्प; षष्ठीविभक्तिसे होता है । और क्षण, अक्षय्यकर्म, आसनका दान, ये षष्ठी वा चतुर्थी विभक्तिसे होते हैं और द्वितीयासे आवाहन होता है । और चतुर्थी विभक्ति तो अन्नदान, पिंडपूजा, स्वधा, स्वस्तिवाचन, इनमें होती है । और पिण्डदानमें तो संबुद्धि विभक्ति 'ये चत्वा०' इत्यादिसे पूर्वमें होती है उससे परे चतुर्थी होती है ये दोनों सबको सम्मत हैं । और शेष सम्पूर्ण कर्म संबुद्धिविभक्तिका अन्तमें 'हे पितः' इत्यादि कहकर यथायोग्य करने और 'इदं

ते' (यह तेरेको) वा 'इदं वः' (यह आपको) ऐसे प्रयोग करके कर्मको करै । सव्यसे देवकर्म और अपसव्यसे पितृकर्म होतेहैं । ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा, और स्वागत, अर्घ्यदान, सूक्त, और स्तोत्रोंका जप, पात्रोंपर अन्नका परिवेषण, (परोसना) बुलाना, अन्नका सूंघना, स्वस्तिवाचन, तांबूलदेना; ये कर्म प्रारंभसे समाप्तिपर्यन्त पितृकर्ममें होतेहैं । प्रदक्षिणा आदि जो यह कहाहै वह सव्यसे ही करै । देवताओंकी पूजा दक्षिणके पाद, जानु, स्कन्ध मूर्द्धाओंमें होतीहै । और पितृकर्मकी पूजा शिर, स्कंधा,जानु, पादोंमें वामअंगोंमें होतीहै । और अक्षयका उदक, आसन, अर्घ्य; इनको छोडकर सब वस्तुओंका दान पितरोंका स्वधा कहकर होताहै और देवताओंको स्वाहा पदसे होताहै । और देवकर्म देवतीर्थसे और पितृकर्म पितृतीर्थसे होताहै । इसके अनन्तर आचमनोंको कहतेहैं । श्राद्धका आचमन, ब्राह्मणोंके पादप्रक्षालन (धोना) के अन्तमें, अपने पादप्रक्षालनपूर्वक दो आचमन करै । देवपूजाके अन्तमें एक २ आचमन और आघ्राण (सूंघना) के अन्तमें एक, विकिरदानके अंतमें एक वा दो, श्राद्धके अन्तमें अपने पादोंका प्रक्षालन करके दो आचमन करै । अन्य तो आचार्य भस्मकी मर्यादाका अंत, करशुद्धिका अंत, उच्छिष्ट चालनके अन्तमें भी एक २ आचमनको कहतेहैं । अब भोक्ताको भी पादशौचके अन्तमें दो आचमन, पाणिहोमके अन्तमें एक, भोजनके अन्तमें दो आचमन कहेहैं ॥

अथ दर्भाः ।

'आचांतः प्राक्कुशांस्त्यक्त्वा पाणावन्यांश्च धारयेत ॥' तथा च ॥ ''श्राद्धारंभे धृतान्दर्भान्पाद्यांते च विसर्जयेत् ॥'' ततो देवार्चनांते पित्रर्चनांते पिंडशेषाघ्राणांते विकिरदानांते श्राद्धांते च पूर्वधृतदर्भांस्त्यजेत् ॥ श्राद्धसागरादिप्रयोगे तु पित्रर्चनांते दर्भत्यागो न दृश्यते ॥ तेन क्वचिदाचमनेऽपि दर्भत्यागो नेति भाति ॥

अब दर्भोंको कहतेहैं । कि, आचमन कियेपीछे पहिले कुशाओंको त्यागकर हाथोंमें अन्यकुशाओंको धारण करै । सोई कहा है कि, श्राद्धके आरंभ में धारणकिये दर्भोंको पाद्यके अंतमें त्यागै और देवपूजा, पितृकर्मके अंतमें पिंडशेषके सूंघनेके अन्तमें, विकिर दानके अन्तमें, श्राद्धके अन्तमें, पूर्वधारण की हुई कुशाओंको त्यागदे । श्राद्धसागरग्रन्थ आदिके प्रयोगमें तो पितृपूजाके अन्तमें दर्भोंका त्याग नहीं देखते । तिससे कहीं आचमनमें भी दर्भका त्याग नहीं, यह प्रतीत होताहै ॥

अथोहविचारः ।

यत्र बहुवचनांतः पितृशब्दस्तत्र पितृशब्दस्य सर्वपितृवाचित्वादूहो न ॥ यथार्घ्यपात्रे पितॄनिमान्प्रीणयेत्यत्र मात्रादिश्राद्धे मातॄरिति न वदेत् ॥ तत्रापि शुंधनमंत्रेषु शुंधंतां पितरः शुंधंतां पितामहा इत्यादि शुंधंतां मातर इत्यादि चोह एव ॥ बहुवचनं तु नोह्यते प्रथममंत्रे एव पूज्यत्वार्थकत्वात् ॥ ऋचं नोहेदिति निषेधादृङ्मंत्रेषु नोहः ॥ पिंडदाने येचत्वामत्रानु तेभ्यश्चेत्यत्र मातृश्राद्धे याश्चत्वामत्रानु ताभ्यश्चेति न वदेत् ॥ स्त्रीणां स्त्रियः पुरुषाश्चानुगा इति 'पुमान् स्त्रिया' इति पुल्लिंगशेषादिति वृत्तिकृत ॥ अन्ये तु याश्चेत्याद्यूहमाहुः ॥ मात्रादिद्वित्वे पिंडदाने

एतद्वामस्मन्मातरौ यज्ञदाश्रीदे ये च युवामत्रान्वित्येकं पिंडं दत्त्वास्मन्मातृभ्यां० अयं पिं० इत्यादि ॥ अभ्यंजनेस्मन्मातरौ० ॥ अभ्यंजाथा अञ्जने अञ्जाथाम एवं पितामहीप्रपितामहीद्वित्वेप्यूहः ॥ अथ बहुत्वे एतद्वोस्मन्मातरो यज्ञदे श्रीदे रुद्रदे यथानामगोत्रा ये च युष्मानत्रान्वित्येकपिंडदानादि ॥ अभ्यञ्जनेभ्यङ्ध्वं अंजने अङ्ध्वमित्यादि ॥ एकनामत्वे एकमेव नाम द्विवचनांतं बहुवचनांतं वा वदेत् ॥ एवमर्घ्यदानकालेप्यस्मन्मातरावित्याद्यूहेन संबोध्येदं वामर्घ्यमिदं वोर्घ्यमित्यूहो बोद्धव्यः ॥ तथा चायंतु नः पितरः सो० ॥ तिलोसिसोमदेवत्यो० ॥ उशंतस्त्वा० ॥ पिंडानुमंत्रणदशादानोपस्थानप्रवाहणप्राशनादिमंत्रेषु बहुवचनांतपितृपदयुक्तत्वादिहेतोर्नोह इति प्रसिद्धम् ॥ "नाप्रोक्षितं स्पृशेद्वस्तु न वदेन्मानुषीं गिरम् ॥ न चोद्वीक्षेत भुंजानं न चैवाश्रूणि पातयेत् ॥ दैवे पित्र्ये च सर्वत्र जपहोमादिकर्मसु ॥ मौनं कुर्यात्प्रयत्नेन सकलं फलमाप्नुयात् ॥ यदि मौनस्य लोपः स्याज्जपहोमार्चनादिषु ॥ व्याहरेद्वैष्णवं मंत्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वंदे तमच्युतम् ॥ आदिमध्यावसानेषु श्राद्धस्येदमुदाहरेत् ॥

इसके अनन्तर ऊह (शब्दका बदलना) के विचारको कहतेहैं । कि, जहां पितृशब्द बहुवचनांतहै वहां पितृशब्दको सम्पूर्णपितरोंका वाचक होनेसे ऊह नहीं होता । जैसे अर्घ्यपात्रमें 'पितॄन् इमान् प्रीणय' (इन पितरोंको प्रसन्न कर) यहां माताआदिके श्राद्धमें 'पितॄन्' इस शब्दको न कहै । वहां शुंधनके मंत्रोंमें "शुंधंतां पितरः शुंधंतां पितामहाः । " यहां 'शुंधंतां मातरः' इत्यादि ऊह ही होता है बहुवचनांतका तो ऊह नहीं किया जाता क्योंकि वह पहिले ही मंत्रमें पूजाके लिये है।ऋग्वेदका हवन करै इस निषेधसे ऋग्वेदके मंत्रोंमें ऊह नहीं होता । पिंडदानमें 'ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च'यहां माताके श्राद्धमें'याश्च त्वामत्रानु ताभ्यश्च'यह कहना स्त्रियोंके स्त्री और पुरुष अनुग होतेहैं इससे 'पुमान् स्त्रिया' इस सूत्रसे पुल्लिंग शेष रहगया यह वृत्तिकार कहते हैं । इससे ऊहका कुछ काम नहीं । अन्य तो 'याश्च' इत्यादि ऊहको कहते हैं । माता आदि दो होंयँ तो पिंडदानमें' हे यज्ञदे ! हे श्रीदे ! हमारी माताओ यह पिंड तुम दोनोंको है । 'ये च युवामत्रानु०' इस मन्त्रसे एक पिंडको देकर; 'अस्मन्मातृभ्यामयं पिंडः' इत्यादि ऊह करना । और अभ्यंजनमें 'अस्मन्मातरौ अभ्यंजाथाम्' ऐसा कहना । इसीप्रकार पितामही प्रपितामहीके दो होनेमेंभी ऊह समझना । अब बहुतोंमें ऊहको कहतेहैं कि, "हे यज्ञदे ! श्रीदे ! रुद्रदे ! अस्मन्मातरः एतद्वः " इसप्रकार नामगोत्रके अनुसार कहै । 'ये च युष्मान् अत्र अनु' इसप्रकार एक पिंडदान आदि करै । अभ्यंजनमें 'अभ्यङ्ध्वम्' अंजनमें 'अङ्ध्वम्' इत्यादि ऊह समझना । सबका एक ही नाम होय तो एक ही नामको द्विवचनांत वा बहुवचनांत कहै । इसीप्रकार अर्घ्य देनेके समयमें भी 'अस्मन्मातरः' इत्यादि ऊहसे संबोधन करके 'इदं वामर्घ्यं' 'इदं वोऽर्घ्यम्' इत्यादि ऊह जानना । तिससे "आयंतु नः पितरः सो० ॥ तिलोसि सोमदेवत्यो० ॥ उशंतस्त्वा० ॥" इनमें और पिंडोंका अनुमंत्रण, दशादान, प्रस्थान, प्रवाहण, प्राशन, आदिके मंत्रोंमें बहुवचनांत पितृशब्द (पितॄन्) युक्त

हैं इस हेतुसे ऊह नहीं । यह प्रसिद्ध है । प्रोक्षित वस्तुका स्पर्श न करै, मनुष्योंकी वाणी (भाषा) को न बोलै, भोजन करतेको न देखै, आंसुओंको न गिरावै, देव और पितृकर्ममें और सम्पूर्ण जप, होम, आदि कर्मोंमें प्रयत्नसे मौन करै तो सम्पूर्ण फलको प्राप्त होताहै । यदि जप, होम, पूजा, आदिकोंमें मौनका लोप होजाय तो विष्णुके मन्त्रको कहै वा अविनाशी विष्णुका स्मरण करै कि, जिसके स्मरण और नामोच्चारणसे तप, यज्ञ, क्रिया, आदिमें न्यून भी सम्पूर्ण होजाता है उस अच्युतको मैं शीघ्र ही नमस्कार करताहूं । इस मन्त्रको श्राद्धके आदि, मध्य और अन्तमें कहै ॥

अथ संक्षेपत आश्वलायनादीनां प्रयोगक्रमः ।

सव्येनापसव्येन वा देशकालौ संकीर्त्यापसव्येन तत्तच्छ्राद्धार्हपितॄणां षष्ठ्या विभक्त्यैतेषाममुकश्राद्धं सदैवं सपिंडं पार्वणविधिनैकोद्दिष्टेन वान्नेनामेन वा हिरण्येन वा श्वः सद्यो वा करिष्य इति संकल्पो यथासंभवं कार्यः ॥ सर्वत्र कुरुष्वेत्यादि यत्रोचितं ब्राह्मणैः प्रतिवचनं देयमेव ॥ ततो देवधर्मेण विप्रस्य दक्षिणजानुं स्पृष्ट्वाऽमुकपितॄणाममुकश्राद्धेऽमुकविश्वेदेवार्थं त्वया क्षणः करणीय इति क्षणं दद्यात् ॥ ओंतथेति विप्रो वदेत् ॥ कर्ता प्राप्नोतु भवानीति ॥ विप्रः प्राप्नवानीति ॥ एवं पैतृधर्मेण वामजानुस्पर्शेनामुकश्राद्धेऽमुकस्य स्थाने त्वया क्षण इति पूर्ववत् ॥ त्र्यस्थाने एकविप्रत्वे पितृपितामहप्रपितामहानां स्थाने इत्यादि ॥ अक्रोधनैरित्यादि प्रार्थना ॥ अत्र सर्वत्र देवपूर्वत्वम् ॥ क्वचित्पितृपूर्वकत्वं वक्ष्यते ॥ इदं संकल्पक्षणदानादि पूर्वेद्युः सद्यो वा कार्यम् ॥ ततः कुतुपे स्नातः स्नातान्धौतपादान्विप्रान् संनिधापयेत्॥ततः सव्येन तिलोदकयवोदके आचारात्कार्ये ॥ततः सव्येन शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तार्थं सूक्तजपः ॥ प्रदक्षिणा च ॥ समस्तसंपदिति नमस्कारः ॥ अपसव्येनाचारादधिकारवाचनम् ॥ तत आचमनप्राणायामौ सव्येन कृत्वाऽपसव्येन द्वितीयः संकल्पः ॥ केचित्सद्यः करणपक्षे द्वितीयसंकल्पं नेच्छंति ॥ ततस्तिष्ठन्सव्येनैव दैवे पित्र्ये च भवतां स्वागतमिति प्रतिविप्रं प्रश्नः पूर्ववद्द्वितीयं क्षणदानम् ॥ अत्र बह्वृचानां गृह्याभिमतां दर्शश्राद्धान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेषु पिंडपितृयज्ञव्यतिषंगेण श्राद्धप्रयोगो नान्येषां नापि श्राद्धांतरेषु ॥ स च द्वितीयक्षणदानांतं श्राद्धतंत्रं कृत्वा परिसमूहनादीध्माधानांते पिंडपितृयज्ञतंत्रांते पादक्षालनादि भस्ममर्यादांतममावभौकरणं कृत्वा परिवेषणादिसंपन्नवचनांते पिंडदानादि पात्रोत्सर्गपर्यंतं कृत्वा विकिरादि श्राद्धशेषं समापनीयमित्येवंरूपः ॥ एवं हिरण्यकेशीयादीनामपि प्रथमसंकल्पोत्तरमग्न्युपसमाधानान्वाधानाद्याज्यसंस्कारांते पाद्यादिपूजांते तत्तन्मंत्रोहयुतः ॥ सविस्तरोऽग्नौकरणहोमो ज्ञेयः ॥

अब संक्षपसे आश्वलायन आदिकोंके श्राद्धप्रयोगका क्रम कहतेहैं । कि, सव्य वा अपसव्यसे दश कालोंका कीर्तन करके अपसव्यसे तिस २ शाखार्हके पितरोंका षष्ठी विभक्तिसे "इन

दैव, पिंडसहित, अमुक श्राद्धको पार्वण विधिसे वा एकोद्दिष्टसे वा आमअन्नसे वा सुवर्णसे कलको वा आज करूंगा" इस संकल्पको यथा संभवसे करै। सर्वत्र कर्मोंमें 'कुरुष्व' (करो) इत्यादि जैसा जहां उचित हो वैसा प्रतिवचन ब्राह्मणोंको देना योग्य है। फिर देवधर्मसे ब्राह्मणकी दक्षिण जानुका स्पर्श करके; इन पितरोंके अमुक श्राद्धमें विश्वेदेवाओंके लिये तुम्हें क्षण करना अर्थात् अवकाश रखना यह कहकर क्षण दे। ब्राह्मण 'ॐ तथा' ऐसे कहै। कर्ता 'तूं प्राप्त हो' यह कहै। ब्राह्मण 'प्राप्त होताहूं' ऐसे कहै। इसी प्रकार पितृधर्मसे वाम-जानुके स्पर्शको करके इस श्राद्धमें अमुकके स्थानमें तुम्हें क्षण करना यह पूर्वके समान है। तीनोंके स्थानमें एक ब्राह्मण होय तो पिता, पितामह, प्रपितामह इनके स्थानमें इत्यादि कहै और 'क्रोधरहित' इत्यादि प्रार्थना करै। इन सब श्राद्धोंमें देवश्राद्ध पूर्वमें होताहै। कहीं पितृश्राद्धको भी पूर्वमें कहेंगे। यह संकल्प, क्षणदान आदि; पूर्व दिनमें करै। वा सद्यः ही करै। फिर कुतुप कालमें स्नान करके स्नानकिये और पादधुले ब्राह्मणोंका संनिधापन (बैठाना) करै। फिर सव्यसे शुद्धि और प्रायश्चित्तके लिये सूक्तका जप करै प्रद-क्षिणा भी करै। अपसव्य होकर आचारसे अधिकारवाचन (आज्ञा) ले फिर सव्य होकर आचमन प्राणायामोंको करके अपसव्यसे दूसरा संकल्प करै। कोई तो सद्यः करनेके पक्षमें दूसरे संकल्पकी इच्छा नहीं करते। फिर खडा होकर; सव्यसे दैव और पितृश्राद्धमें तुम्हारा स्वागत हुआ, यह प्रश्न प्रत्येक ब्राह्मणोंके प्रति करै। पूर्वके समान दूसरा क्षणदान करै। यहां गृह्याग्निहोत्री बह्वृचोंके ही दर्शश्राद्ध और अन्वष्टकाके पहिले दिनके श्राद्धोंमें पिण्डपितृयज्ञके व्यतिषंगसे श्राद्धका प्रयोग होताहै। अन्य वेदियोंके यहां नहीं और न अन्य श्राद्धोंमें पूर्वोक्त प्रयोग है। वह द्वितीय क्षणदानके अन्ततक श्राद्धतंत्रको करके परिसमूहनसे इध्म (ईंधन) आधानके अन्ततक पिण्डपितृयज्ञतंत्रके अन्तमें पादप्रक्षालन आदि भस्ममर्यादा पर्यंत अग्नौ-करणको करके परिवेषण आदि सम्पन्न वचन पर्यंत पिण्डदान आदि पात्रोत्सर्ग (त्याग) पर्यंत कर्मको करके विकिर आदि श्राद्धके शेषको समाप्त करै। यह व्यतिषंगसे श्राद्धका प्रयोग है। इसीप्रकार हिरण्यकेशीय आदिकोंके मतमें भी प्रथम संकल्पके पीछे अग्न्युपसमा-धान अन्वाधान आदि आज्य संस्कारके अन्तमें पाद्य आदि पूजा पर्यंत तिस २ मन्त्रके ऊहसे युक्त विस्तार सहित अग्नौकरण होम जानना ॥

अथ पाद्यम्।

अंगणे श्राद्धदेशे द्वारे वा चतुरस्रं द्विहस्तं प्रादेशमात्रं वोदक्प्लवं देवमंडलं कृत्वा ततो दक्षिणे षडंगुलं त्यक्त्वा दक्षिणाप्लवं चतुर्हस्तं वितस्तिमात्रं वा पितृमं-डलं वर्तुलं सव्यापसव्यप्रादक्षिण्याप्रादक्षिण्यादिदैवपैतृधर्मेण गोमूत्रगोमयाभ्यां कार्यम् ॥ यथायथं दर्भयवतिलगंधपुष्पैस्तदर्चनम् ॥ मंडलसमीपे पीठे उपविष्ट-स्यैव प्राङ्मुखस्य विप्रस्य पादयोरुदङ्मुखः प्रत्यङ्मुखो वा कर्ताऽमुकसंज्ञका विश्वेदेवा इदं वः पाद्यं स्वाहा नम इति यवगंधपुष्पयुतजलमंजलिना प्रक्षिप्य शंनोदेवीरिति शुद्धोदकेन पादावुपर्येव प्रक्षालयेत ॥ नाधोभागे नापि सग्रंथिकप-वित्रकरेण ॥ पितृमंडले उदङ्मुखस्योपविष्टस्य पादयोर्दक्षिणामुखस्तिलगंधादिज-

लमंजलिना पितृतीर्थेन पितरमुकनामरूपगोत्रेदं ते पाद्यं स्वधा नम इति त्रयस्थाने एकविप्रत्वे पितृपितामहप्रपितामहा इदं वः पाद्यमिति बहुवचनांतेन प्रक्षिप्य शन्नोदेवीरित्यादि पूर्ववत् ॥ एवमग्रेपि पित्रादित्रये ब्राह्मणत्रयपक्षे इदं ते इत्येकविप्रपक्षे इदं व इतिवचनोहो ज्ञेयः ॥ एवं मातामहादिपार्वणेपि बोध्यम् ॥ अत्र पाद्यात्पूर्वं पादार्घ्यः पाद्योत्तरं च गंधपुष्पाक्षतैः पादादिमूर्धांतमर्चनपूर्वकं दैवे एष वः पादार्घ्य इति दत्त्वा पित्र्येऽपि तिलैः मूर्धाद्यर्चनपूर्वकं पादार्घ्यदानमुक्तं तत्कात्यायनादीनामेवाचारात्तेषामेव ॥ बह्वृचानां तु नैष आचारः ॥ ततः पाद्यशेषं गंधयवतिलादिसव्यापसव्याभ्यां मंडलयोस्त्यक्त्वा स्वपादक्षालनं पवित्रत्यागं च कृत्वान्यपवित्रे धृत्वा देवमंडलोत्तरे स्वयं विप्राश्च द्विराचम्य श्राद्धदेशे गच्छेयुः ॥ पादक्षालनोदकाचमनोदकयोः संसर्गो न कार्यः ॥ अपसव्येनामुकश्राद्धसिद्धिरस्त्विति वदेत्तैः प्रत्युक्तः ॥ निरंगुष्ठं विप्रदक्षिणहस्तं धृत्वा सव्यापसव्याभ्यां भूर्भुवः स्वः समाध्वमिति सदर्भेषु पीठेष्वविलंबेनोपवेशयेत ॥ तत्र दैवे प्राङ्मुखो विप्रः पित्र्ये तूदङ्मुखाः संभवे दक्षिणान्यदिङ्मुखः ॥

इसके अनन्तर पाद्यको कहतेहैं । आंगण वा श्राद्धदेश द्वारमें; चकोर दो हाथभर वा प्रादेशमात्र उत्तरको नीचा देवमण्डल करके फिर दक्षिणमें देवमंडलसे छः अंगुलके अंतरपर दक्षिणको नीचा चार हाथ वा वितस्तिमात्र वर्तुल पितृमंडल करना । और वे दोनों पूर्वोक्त मंडल; सव्य, अपसव्य, प्रदक्षिण, अप्रदक्षिण आदि देव और पितृ धर्मसे गोमूत्र और गोमयसे करने । और यथायोग्य दर्भ, यव, तिल, गंध, पुष्पोंसे उसकी पूजा करै। मण्डलके समीप पूर्वाभिमुख आसनपर बैठे हुये ब्राह्मणोंके चरणमें उत्तर वा पश्चिमको मुखकिये बैठा कर्ता "भो अमुकसंज्ञक विश्वेदेवाओ यह आपको पाद्य और नमस्कार प्राप्त हो" यह कहकर यव, गंध, पुष्प सहित जलको चरणोंपर डालकर 'शन्नोदेवी' इस मंत्रको पढकर शुद्ध जलसे चरणोंका प्रक्षालन करै; न अधोभागको धोवै और न ग्रंथि सहित पवित्रीके हाथसे धोवै । पितृमण्डलमें उत्तराभिमुख बैठेहुये ब्राह्मणके चरणोंमें दक्षिणाभिमुख बैठाहुआ यजमान तिल, गन्ध सहित जलको अंजलिसे और पितृतीर्थसे "हे अमुकनामगोत्र रूप पितः यह आपको पाद्य और नमस्कार देताहूं" यह कहकर दे । और तीनोंके स्थानमें एक ही ब्राह्मण होय तो "भो पितृपितामह प्रपितामहाः, यह आपको पाद्य है" इसप्रकार बहुवचनांतको पढकर दे । और 'शन्नोदेवी' इस मंत्रको पूर्वके समान कहै । इसीप्रकार आगे भी पिता आदि तीन ब्राह्मणके पक्षमें 'यह तेरको' ऐसे कहै । और एक ब्राह्मणके पक्षमें 'यह आपको पाद्य है' इस प्रकार बहुवचनांतका ऊह जानना । इसीप्रकार मातामह आदिके पार्वणमें भी समझना । यहां पाद्यसे पहिले पाद्यार्घ्य और पाद्यसे पीछे गन्ध, पुष्प, अक्षतोंसे चरण आदि मस्तक पर्यंत पूजनको करै । फिर "विश्वेदेवाओंको यह पाद्यार्घ्य है" यह कहकर पाद्य अर्घ्य देकर पितृमंडलमें भी तिलोंसे मस्तक आदि पूजनपूर्वक पाद्यअर्घ्यका दान कहा है । वह आचार कात्यायन आदिकोंका ही है । इससे उनके ही होताहै बह्वृचोंका तो यह आचार नहीं है । फिर गन्ध, जौ, तिल आदि पाद्यके शेषको दोनों मण्डलोंमें सव्य अपसव्यसे त्यागकर अपने पादोंका

प्रक्षालन और पवित्रियोंको त्यागकर अन्य पवित्रियोंको धारण करके आप और ब्राह्मण दो आचमन करके श्राद्धदेशमें चले जायँ और पादप्रक्षालनके और आचमनके जलोंको न मिलावें अपसव्यसे 'अमुक श्राद्धकी सिद्धि होय' ऐसे ब्राह्मणोंसे कहै 'होय' इसप्रकार ब्राह्मणोंने वचन दियाहै जिसको ऐसा कर्ता अँगूठेके विना ब्राह्मणके दक्षिण हाथको पकडके "भूर्भुव स्वः समाध्वम्" (बैठो) यह कहकर कुशासहित आसनोंपर शीघ्र बैठावै तहां विश्वेदेवाओंका ब्राह्मण पूर्वाभिमुख और पितृश्राद्धमें उत्तराभिमुख बैठे और इन दिशाओंके सन्मुख बैठना न होसके तो दक्षिणसे अन्य दिशाको मुखकरके बैठे ॥

अथासनादि ।

हैमं राजतं ताम्रं वा दुकूलं कंबलं वा दारुजं तृणमयं पर्णमयं वासनं प्रशस्तम्॥ दारुजेषु श्रीपर्णीजंबूकदंबाम्रबकुलशमीश्लेष्मातकशालवृक्षजन्यान्यासनानि प्रशस्तानि "अयःशंकुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेशने ॥ अग्निदग्धान्यासनानि भग्नानि च विवर्जयेत् ॥" प्राक्संस्था दक्षिणसंस्था भोक्तृपंक्तिस्तु पैतृके ॥ तत्र देवासने प्रागग्रौ द्वौ दर्भौ ॥ पित्र्ये दक्षिणाग्रैकैकं दर्भं स्थापयेत् ॥ " घृतैस्तिलादितैलैर्वा स्थापयेच्च प्रतिद्विजम् ॥ दीपं सव्यापसव्याभ्यां दीपमेकं तु सव्यतः ॥"ब्राह्मणाश्चेतःप्रभृत्या श्राद्धसमाप्तिर्मौनिनः पवित्रहस्ता उच्छिष्टोच्छिष्टस्पर्शं वर्जयंतो वर्तेरन् ॥ अत्र यथालक्षणोऽतिथिरागतश्चेत्सव्येन विप्रपंक्तौ विष्णूद्देशेन पूजयेत् ॥ सव्येनापवित्रः पवित्रोवेति मंत्रं पठित्वा ॥ वैष्णव्यै नमः काश्यप्यै नमः क्षमायै० इति भूमिं नत्वा 'मेदिनी लोकमाता त्वम्' इत्यादिश्लोकैःस्तुत्वा च ॥ "श्राद्धभूमिं गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम् ॥" प्राचीनावीति ॥ तद्विष्णोः परमं पदं० ॥ तद्विप्रासो० ॥ गायत्रीं च जपित्वा सव्येन प्राणायामंतिथ्यादिकीर्तनांतेऽपसव्येनामुकपितॄणामुपक्रांतममुकश्राद्धं करिष्ये इति संकल्प्यादौ मध्येन्ते च देवताभ्यः पितृभ्यश्च० ॥अमूर्तानां च०॥ चतुर्भिश्च० ॥ यस्य स्मृत्येति च त्रिः पठेत् ॥ अथ दक्षणे वामे वा कुक्षौ तिलैः सह कुशत्रयं परिहितवस्त्रांचलबद्धं कृत्वा कटिसंलग्नवस्त्रबहिर्भागेन संवेष्ट्य रक्षणाख्यो नीवीबंधो 'निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेत्'इति श्लोकमंत्रेण कार्यः॥ "सर्वतश्चापसव्येनापहतेत्यप्रदक्षिणम्॥ तिलान्क्षिप्तोदीरतेति सव्येन प्रोक्षणं स्मृतम् ॥ तिला रक्षंतु मंत्रेण द्वारे कुशतिलान् क्षिपेत् ॥ तरत्समंदीसूक्तेन पावमानीभिरेव च ॥ अभिमंत्र्य जलं तेन पाकादिप्रोक्षयेत्सुधीः ॥" यद्वा ॥ ताद्विष्णोरिति मंत्रेण गायत्र्या वाऽभिमंत्रितम् ॥ "यद्देवा इति मंत्राणां त्रयेणैवान्यशाखिनः ॥ वाचयेत्पाकपूतत्वं पुष्पाद्यं सर्वमुक्षयेत् ॥ नाप्रोक्षितं स्पृशेच्छ्राद्धकालेत्येतज्जपेत्ततः ॥ पदार्थयोग्यतां वाचयित्वा देवार्चनं चरेत् ॥" तत्र प्रत्युपचारं दैवे पित्र्ये चाद्यंतयोरपो दद्यात् ॥ देवद्विजसन्निधावुदङ्मुख उपविश्य तद्दक्षिणकरमुत्तानं वामकरेण धृत्वा दक्षिणेन सयवं दर्भद्वयम-

मुकेषां विश्वेषां देवानां भूर्भुवः स्वरिदमासनं स्वाहेति हस्ते जलमासिच्य दक्षिणभागे आसने क्षिपेन्न हस्ते दर्भदानम् ॥ "आसनेष्वासनं दद्यान्न तु पाणौ कदाचन ॥ पितृकर्मणि वामे च दैवे दद्यात्तु दक्षिणे ॥" विप्रो धर्मोसि विशिराजाप्रतिष्ठित इति मंत्रेण गृहीत्वा स्वासनमिति वदेत् ॥ कर्तासनं स्पृशन्नपो दत्त्वास्यतामिति ॥ विप्रः धर्मोसीति वदेत् ॥ आपो दत्त्वा दैवे क्षणः क्रियतामिति निरंगुष्ठंकरं गृह्णीयात् ॥ ॐ तथेत्यादि प्राग्वत ॥ इदं तृतीयनिमंत्रणम् ॥

अब आसन आदिको कहतेहैं । सुवर्ण, चांदी, तांबा इनका और दुकूल वा कम्बल, काष्ठ, तृण, इनका आसन श्रेष्ठ कहाहै । काष्ठके आसनोंमें श्रीपर्णी, जामुन, कदम्ब, आंम, बकुल (मोलसरी), शमी, बहेडा, शाल, इन वृक्षोंके आसन श्रेष्ठ कहेहैं । लोहेके शंकु (कील) जिसमें होयँ ऐसा आसन ब्राह्मणोंके बैठनेको न दे । और अग्निसे जले और टूटे आसनोंको वर्ज दे । देवश्राद्धमें पूर्वाभिमुख और पितृश्राद्धमें दक्षिणाभिमुख भोजन कर्ताओंकी पंक्ति होय । और वहां देवताओंके आसनमें पूर्वको है भाग जिनका ऐसी दो (२) कुशा और पितृश्राद्धमें दक्षिणको है अग्रभाग जिनका ऐसी एक २ कुशा स्थापन करै । सम्पूर्ण ब्राह्मणोंके आगे घी वा तेलका सव्य अपसव्यसे एक २ दीपक स्थापन करै । और एक रक्षा दीपकको सव्य होकर रखदे । इसके आगे श्राद्धकी समाप्ति पर्यंत ब्राह्मण मौन और पवित्री धारै उच्छिष्ट और उच्छिष्टके स्पर्शको त्यागते हुये वर्ते । और श्राद्धके समयमें यथार्थ लक्षणका अतिथि आजाय तो सव्यसे ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें विष्णुके उद्देशसे उसका पूजन करै । सव्य होकर "अपवित्रः पवित्रो वा" इस मंत्रको पढकर "वैष्णवी, काश्यपी, क्षमा" इन नामोंसे पृथ्वीको नमस्कार कर और पूजन कर कहै कि, हे मेदिनि ! तू जगत्की माता है इत्यादि श्लोकोंसे भूमिकी स्तुति करके और श्राद्धकी भूमिमें गया और भगवान्का ध्यान करके अपसव्य होकर "तद्विष्णोः परमं पदम्० ॥ तद्विप्रासो० ॥ और गायत्री" इनको जपकर सव्य होकर प्राणायाम और तिथि आदिके कथन पीछे अपसव्य होकर "अमुक पितरोंके प्रारम्भ किये इस श्राद्धको करताहूं" यह कहकर आदि मध्य और अन्तमें "देवताभ्यः पितृभ्यश्च,० ॥ अमूर्तानां च० ॥ चतुर्भिश्च० ॥ यस्य स्मृत्या० ॥" इनको तीन २ बार पढै, इसके अनन्तर दक्षिण वा वामकुक्षिमें तिलों सहित तीन कुशा धारण किये वस्त्रसे बांधकर और कटिसे मिलेहुये वस्त्र (धोती) बाहिर उक्त कुशाको लपेटकर 'जो अपवित्र होय उसको दूर करताहूं' इस श्लोकमंत्रसे रक्षा नामके नीवीबंधनको करै । और चारों तरफ अपसव्य और अप्रदक्षिण कर्मसे तिलोंको 'अपहता०' इस मंत्रसे फेंकै और सव्यसे 'उदीरिता०' इस मंत्रसे प्रोक्षण करै । 'तिला रक्षंतु०' इस मंत्रसे द्वारपर कुश और तिल डारै । 'तरत्समंदी०' सूक्तसे और 'पावमानी०' ऋचाओंसे जलको पढकर बुद्धिमान् मनुष्य पाक आदिका प्रोक्षण करै अथवा 'तद्विष्णोः०' इस मंत्रसे वा 'यद्देवा०' इन तीन मंत्रोंसे पाक आदिको छिडकै । और अन्य शाखाके ब्राह्मणोंसे पाककी पवित्रताको कहावे । और विना प्रोक्षण की हुई वस्तुओंका स्पर्श न करै । और पूर्वोक्त मंत्रोंको जपै । सब पदार्थोंकी योग्यता (सिद्धि) को ब्राह्मणोंसे कहाकर देवताओंका पूजन करै । और गंध आदि प्रत्येक द्रव्यकी पूजाके आदि, अंतमें देव और पितरोंके ब्राह्मणोंको जल दे । देवब्राह्मणके समीप उत्तराभिमुखबैठकर उसके

सीधे दक्षिण हाथको वामहाथसे पकडकर और जौ सहित दो कुशाएँ दहनेहाथसे पकडकर अमुक नामके विश्वेदेवाओंको "भूर्भुवः स्व इदमासनं स्वाहा" इस मंत्रसे हाथमें जलको सींचकर आसनके दक्षिणभागमें रखदे। हाथमें कुशाको न दे क्यों कि, यह वचन है कि, आसनपर आसन दे और हाथमें कदाचित् न दे; और पितृकर्ममें वामभागमें और देवकर्ममें दक्षिण भागमें दे। और ब्राह्मण "धर्मोसि विशिराजा प्रतिष्ठितः" इस मन्त्रसे ग्रहण करके श्रेष्ठ आसन है ऐसे कहै। फिर कर्ता; आसनका स्पर्श करता हुआ जलको देकर 'बैठो' ऐसे कहै। ब्राह्मण "धर्मोसि०" इस पूर्वोक्त मन्त्रको पढै। फिर जल देकर 'देवश्राद्धके लिये क्षण करो, यह कहकर अंगूठेके विना हाथको पकडे। ब्राह्मण "ॐ तथा" (करूंगा) ऐसे कहै। यह तीसरा निमंत्रण समाप्त हुआ॥

अथार्घ्यकल्पना।

तत्र पात्राणि हैमं रौप्यं ताम्रमयं वा दारुजं वा पलाशादिपर्णमयं वा कांस्यं वा शंखशुक्तिजं वा खड्गपात्रं वाऽर्घ्यपात्रं प्रशस्तम्॥ अत्र विप्रैकत्वं द्वित्वचतुष्टयत्वादावपि दैवेऽर्घ्यपात्रद्वयमेव॥यत्तु दैवे द्वे अर्घ्यपात्रे पित्रे त्रीण्युभयत्रैकैकं वेत्येकपात्रपक्षांतरं तदशक्तपरम्॥ एवं पात्रद्वयं प्रोक्षितायां भुवि प्रागग्रकुशेषु न्युब्जमुत्तानं वासाद्य प्रोक्ष्य न्युब्जपक्षे उत्तानीकृत्य तयोर्द्विकुशे द्वे द्वे पवित्रे निधाय शन्नोदेवीरिति मंत्रावृत्त्याऽप आसिच्य यवोसीति मंत्रेणावृत्त्या यवानोप्य तूष्णीं गंधपुष्पाणि क्षिपेत्॥ केचिद्गंधद्वारां०॥ ओषधीः प्रतिमोदध्वमित्यृग्भ्यां गंधपुष्पाणि क्षिपंति॥ देवार्घ्यपात्रे संपन्ने इत्युक्त्वा सुसंपन्ने इति प्रत्युक्तो वामकरं विप्रदक्षिणजानुनि न्यस्यामुकविश्वान्देवान् भवत्स्वावाहयिष्ये इति पृष्ट्वावाहयेत्यनुज्ञातो विश्वदेवा स आगतेत्यृचा प्रतिविप्रं दक्षिणपादादियुग्मं क्रमेण जान्वंसमूर्धांतं यवान्विकिरेत्॥ विश्वदेवाः शृणुतेत्यृचोपस्थाय भूमावशिष्टान् यवान्विकिरेत्॥ हिरण्यकेशीयादयस्त्वर्घ्यदानगंधादिपूजोत्तरमग्नौकरणकाले ये देवास इत्यायंतु नः पितर इति मंत्राभ्यामग्निदक्षिणतो देवपित्रावाहनं कुर्वंति॥ कातीयैस्त्वर्घ्यपात्रासादनात्प्रागेव देवपित्रावाहनं कार्यम्॥ तथैव कात्यायनसूत्रात्॥ "ततोऽर्घ्यपात्रसंपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान्॥ तदग्रे चार्घ्यपात्रे तु स्वाहार्घ्यमिति विन्यसेत्॥ अपो दत्त्वा विप्रहस्ते दद्यादर्घ्यपवित्रके॥ या दिव्या इति मंत्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्॥ विश्वेदेवास इदं वोऽर्घ्यं स्वाहा इतीरयन्॥" प्रतिविप्रं या दिव्येत्यावृत्तिः॥ केचित्तु या दिव्या इत्यनेन दत्तार्घ्यानुमंत्रणमाहुः॥ मयूखे कातीयप्रयोगे विप्रहस्तेऽर्घ्यपवित्रदानांते आवाहनवदंगेष्वर्चनं कृत्वाऽर्घ्यदानमित्युक्तम्॥ एकविप्रत्वे एकस्यैव हस्ते द्विरर्घ्यदानम्॥ विप्रचतुष्टयपक्षे एकैकं पात्रं विभज्य द्वयोर्द्वयोर्देयम्॥ कूर्चस्तु तत्तत्पात्रस्थ एव॥ क्वचित्क्षीरदधिघृततिलतंदुलसर्षपकुशाग्रपुष्पेति द्रव्याष्टकमर्घ्यपात्रे प्रक्षिप्यमित्युक्तम्॥ "आर्घ्य-

तयोरपो यच्छन् गंधाद्यैरर्चनं चरेत् ॥" अमुकविश्वेदेवा अयं वो गंधः स्वाहा नम इति करेणैव विप्रहस्तेप्येवं द्विर्द्विर्दानम् ॥ एवं सर्वत्र दैवे स्वाहा नम इत्यंतमुच्चार्योपचारदानम् ॥ "चंदनागरुकर्पूरकुंकुमादि प्रदापयेत् ॥ गंधद्वारेति वै गंधमायने ते च पुष्पकम् ॥ धूरसीत्यमुना धूपमुद्दीप्यस्वेति दीपकम् ॥ युवं वस्त्राणि मंत्रेण वस्त्रं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ आसने स्वासनं ब्रूयादर्घ्येस्वर्घ्यं द्विजोत्तमः ॥ सुगंधश्च सुपुष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपक ॥ सुज्योतिश्चैव दीपश्च स्वाच्छादनमिति क्रमः ॥" कर्ता स्कंधधृतोत्तरीयविगतपवित्रकरो विप्रहस्तदत्तगंधैर्विप्रभालाद्यंगेषु लिंपेत् ॥ विप्रभाले वर्तुलपुंड्रं त्रिपुण्ड्रं वा न कुर्यात् ॥ अत्र विप्राणां कस्तूरी विकल्पिता ॥ आयने ते इति वौषधीः ॥ प्रतिमोदध्वमिति वा गंधदानवद्रहस्तेष्वेवेदं वः पुष्पमिति पुष्पदानं कार्यम् ॥ तत्र विहितपुष्पाणि ॥ "आगस्त्यं भृंगराजं च तुलसी कमलं तथा ॥ चंपकं तिलपुष्पं च दूर्वाश्च पितृवल्लभाः ॥ विहिता प्रतिषिद्धा च तुलसी पिंडपूजने ॥ सुकुमारैः किसलयैर्यवदूर्वांकुरैरपि ॥ जलोद्भवैश्च कुसुमैर्मल्लिकाम्रूतपुष्पकैः ॥ अतिमुक्तश्च तगरैः संपूज्याः पितरः सदा ॥ जातीपुष्पैर्विप्रपूजां कुर्यात्पिंडार्चनं तु न" ॥

अब अर्घ्यकी कल्पनाको कहतेहैं । उसमें सुवर्ण, चांदी, तांबा, काष्ठ, ढाक आदिके पत्ते, कांसी, शंख, शुक्ति, और खड्ग (गेंडा) इनका अर्घ्यपात्र श्रेष्ठ होताहै । यहां ब्राह्मण एक दो चार आदि भी होयँ तो भी देवताओंके अर्घ्यपात्र दो ही होतेहैं । जो किसीने यह कहा है कि, देवताओंके दो, पितरोंके तीन, वा दोनोंके एक २ अर्घ्यपात्र ही होते हैं परंतु वह असामर्थ्यके ही लिये है । इसप्रकार दोनों पात्रोंको छिडकीहुई भूमिमें पूर्वाग्र कुशाओंके ऊपर औंधे वा सीधे रखकर (और औंधे रक्खै तो सीधे करके) उनमें दो कुशा और दो पवित्री रखकर "शन्नोदेवी०" इस मंत्रसे जल सींचकर "यवोसि०" इस मंत्रसे जौ डारकर तूष्णीं (चुप) हुआ अर्घ्यपात्रोंमें गन्ध, पुष्प, डारे । कोई तो "गंधद्वारां० ॥ औषधीः प्रतिमोदध्वं० ॥" इन दो ऋचाओंसे गंधपुष्पोंको डारते हैं । 'देवताओंके अर्घ्यपात्र संपन्न हुये' यह कहकर जब ब्राह्मण 'भलीप्रकार सम्पन्न हुये, यह कहदें तब अपने बायें हाथको ब्राह्मणकी दक्षिणजानुपर रखकर 'अमुक विश्वेदेवाओंका आपमें आवाहन करताहूं' यह पूछकर आवाहन करो' यह आज्ञा दी है जिसको ऐसा यजमान "विश्वेदेवासआगत०" इस ऋचासे प्रत्येक ब्राह्मणके चरणसे लेकर जानु, स्कंध, मस्तक पर्यंत जौ बखेरै । फिर "विश्वेदेवाश्शृणुत०" इस ऋचासे समीप बैठकर शेष जौंको भूमिमें बखेरै । हिरण्यकेशीय शाखावाले तो अर्घ्यदान, गंध,आदि पूजाके पीछे अग्नौकरणके समयमें "ये देवासः०॥ आयंतुनःपितर ०॥" इन मंत्रोंसे अग्निके दक्षिणभागमें देव और पितरोंका आवाहन करतेहैं । कात्यायनोंको तो अर्घ्यपात्रोंके रखनेसे पहिले ही देव और पितरोंका आवाहन करना; क्योंकि, कात्यायनसूत्रमें ऐसा ही लिखाहै।फिर ब्राह्मणोंसे अर्घ्यपात्रसंपत्तिको कहाकर उनके आगे अर्घ्यपात्रोंमें 'स्वाहार्घ्य' यह कहकर अर्घ्यको दे । ब्राह्मणके हाथमें जल देकर अर्घ्य पवित्री दे 'यादिव्या०' इस मंत्रसे

ब्राह्मणोंके हाथमें अर्घ्यको डारै । "विश्वेदेवासइदंवोर्घ्यंस्वाहा" (हे विश्वेदेवाओ ! यह अर्घ्य आपको देताहूं) यह कहाताहुआ प्रत्येक ब्राह्मणके आगे 'यादिव्या०' इस मन्त्रको पढै कोई तो 'यादिव्या०' इसमन्त्रसे दियेहुये अर्घ्यका अनुमंत्रण कहतेहैं । मयूखमें तो कात्यायनोंके प्रयोगमें ब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यकी पवित्री दिये पीछे आवाहनके समान अंगोंमें पूजा करके अर्घ्यदान कहाहै । एक ब्राह्मण होय तो एकके ही हाथमें दो अर्घ्य दे । चार ब्राह्मणोंके पक्षमें एक २ पात्रको विभागसे दो २ को दे । और कूर्चको तो तिस तिस पात्रमेंही रक्खै । कहीं तो दूध, दही, घी, तिल,चावल, सरसों, कुशाग्र,पुष्प, ये आठ द्रव्य अर्घ्यपात्रमें गेरने कहेहैं आदि अन्तमें जल देताहुआ गंध आदिसे पूजन करै । 'भो अमुकविश्वेदेवाओ यह आपको गंध देताहूं' यह कहकर अपने हाथसे ही ब्राह्मणोंके हाथमें दो २ अर्घ्य दे । इसी प्रकार सब देवश्राद्धोंमें "स्वाहा नमः" तक मंत्रको पढकर पूजनको दे । चन्दन, अगर, कपूर, आदि दे 'गंधद्वारा०' इससे गंध, 'आयने०' इससे पुष्प, 'धूरसि०' इससे धूप, 'उद्दीप्यस्व०' इससे दीपक, 'युवं वस्त्राणि०' इस मंत्रसे वस्त्रको प्रयत्नसे दे । आसनमें सुन्दर आसन, अर्घ्यमें सुंदर अर्घ्य, सुंदर गंध, सुंदर पुष्प, सुंदर माला, और सुंदर धूप, सुंदर ज्योतिः, सुंदर वस्त्र; इसप्रकार ब्राह्मण कहै । फिर कर्ता; कंधेपर डुपट्टेको धारकर पवित्रियोंको उतारकर ब्राह्मणके हाथमें दियेहुये गंधोंको ब्राह्मणके मस्तकआदि अंगोंमें लीपदे । ब्राह्मणके मस्तकपर, वर्तुल पुंड्र वा त्रिपुण्ड्रको न करै यहां ब्राह्मणोंको कस्तूरीके पूजनमें विकल्प है अर्थात् दे चाहै न दे । अथवा 'आयने०' इस मन्त्रसे औषधी दे । वा 'प्रतिमोदध्वं०' इससे दिया जो गंधदान उससे युक्त हस्तोंमें 'इदं वः पुष्पम्' यह कहकर पुष्पदान करना । श्राद्धमें विहित (शास्त्रोक्त) पुष्प ये हैं कि, अगस्त्य, भृंगराज, तुलसी, कमल, चंपा, तिलपुष्प, दूर्वा; ये पितरोंको प्यारे हैं । और तुलसी कहीं २ है और पिंडोंके पूजनमें निषिद्ध है । कोमल २ कमल, जौं, दूर्वाके अंकुर, और जलमें पैदाहुये पुष्प, चमेली, आमके पुष्प, अतिमुक्त (मोतिया) तगर; इनसे पितरोंका सदैव पूजन करै । और जातीके पुष्पोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करै पिंडपूजा न करै ॥

अथ वर्ज्यपुष्पाणि।

"करवीरं च धत्तूरं बिल्वपत्रं च केतकी ॥ बकुलं कुंदपुष्पं च किंशुकं च कुरंटिका ॥ सर्वाणि रक्तपुष्पाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥ जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥"

अब वर्जितपुष्पोंको कहतेहैं । कनेर, धतूरा, बेलपत्र, केतकी, बकुल, कुंदपुष्प, केसू, कुरंडिका, और सब प्रकारके रक्तपुष्प, इनको श्राद्धकर्ममें वर्जदे । और जलसे पैदाहुये तो रक्त भी विशेषकर देने ॥

अथ धूपः।

"धूपस्तु गुग्गुलुर्देयस्तथा चंदनसारजः॥ अगरुश्च सकर्पूरो घृतमध्वादिसंयुतः ॥ ये तु प्राण्यंगजा धूपा हस्तवाताहताश्च ये ॥ न ते श्राद्धे नियोक्तव्या ये च के चो-

ग्रगंधयः ॥ घृतं न केवलं दद्याद्दुष्टं वा तृणगुग्गुलम् ॥'' पाददेशेऽयं वो धूप इति दानम् ॥

अब धूप कहतेहैं । गुग्गुल, चंदनसार, इनका धूप देना । और कपूर, घृत, मधु, आदिसे युक्त अगर देना । और जो धूप प्राणियोंके अंगसे उत्पन्न हैं, और जो हाथकी पवनसे दिये-जाते हैं, और जिनमें अधिक गंध है; उनका योग श्राद्धमें न करै । और केवल घीकी धूप और दुष्ट तृणोंके गुग्गुलकी धूप न दे । 'चरणोंके स्थानमें यह धूप आपको है' इससे धूप दे ॥

अथ दीपः ।

''घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥'' वसामेदादिदीपो वर्ज्यः ॥ इदं वो ज्योतिरिति वायं वो दीपप्रकाश इति वा मुखसमीपे दीपः ॥ कौशेयं कार्पासं वा वस्त्रं विहितम् ॥ कृष्णं मलिनमुपभुक्तं छिद्रितं निर्दशं रजकधौतं च निषिद्धम् ॥ ''यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानता ॥ निष्क्रयो वा यथाशक्ति वस्त्रालाभे प्रदीयते ॥ पितॄन् सत्कृत्य वासोभिर्दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ॥ यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धं तु निष्फलम् ॥'' यज्ञोपवीतं यतिस्त्रीशूद्रश्राद्धेष्वपि देयम् ॥ अथान्यान्यपि देयानि ॥ धातुमयानि धूपदीपपात्राणि ''कमंडलुं ताम्रमयं काष्ठजं वाऽपि मृन्मयम् ॥ नारीकेलमयं वापि श्राद्धे दद्यात्प्रयत्नतः ॥'' छत्रोपानदासनशयनदर्पणचामरव्यजनपादुकाकेशप्रसाधनीपटवासादिसुगंधचूर्णागारधानिकायष्टिकंबलांजनशलाकाश्च देयाः ॥ ''अलंकाराश्च दातव्या यथाशक्ति हिरण्मयाः॥केयूरहारकटकमुद्रिकाकुंडलादयः ॥ स्त्रीभ्यो योषिदलंकारा देयाः श्राद्धेषु योषिताम् ॥ मंजीरमेखलादामकर्णिकाकंकणादयः॥ सौवर्णं राजतं कांस्यं दद्याद्भोजनभाजनम् ॥ कर्पूरादेश्च भांडानि तांबूलायतनं तथा ॥'' स्वयमन्येन वा बंदीकृतानां केनाप्युपायेन मोचने पितॄणां ब्रह्मपदम् ॥ इत्थं चोक्तवचनादाच्छादनदानांते पृथग्यज्ञोपवीतं दत्त्वा शक्तिसत्त्वे छत्रालंकारादिकं दत्त्वा तत्काले स्पर्शायोग्यानां संकल्पं कृत्वा पूजनं पूर्णमस्तु संकल्पसिद्धिरस्त्वित्युक्ता प्रत्युक्तो ''मंत्रहीनं क्रियाहीनं संपद्धीनं द्विजोत्तमाः ॥ श्राद्धं संपूर्णतां यातु प्रसादाद्भवतां मम ॥'' यस्य स्मृत्या० देवताभ्य० इति जपेत् ॥ एवमासनादिसर्वपूजाकांडं दैवं समाप्य पैतृकमासनप्रभृतिपूजाकांडमारभेदिति कांडानुसमयक्रम एव माधवसंमतः ॥ कातीयास्त्वासनादिक्षणावाहनार्घ्यपर्यंतं पाद्यांतप्रयोगवत्पदार्थानुसमयक्रमेणैव दैवे पित्र्ये च कृत्वा गंधादिपूजामेव कांडानुसमयेन कुर्वंति ॥ एकं पदार्थं दैवपित्र्यादिषु सर्वत्रानुष्ठाय तेनैव क्रमेण द्वितीयादिपदार्था अनुष्ठेया इत्ययं पदार्थानुसमयः ॥ एकत्रैव सर्वपदार्थान् समाप्यान्यत्र सर्वपदार्थानुष्ठानमिति कांडानुसमयः ॥ अथान्यपवित्रे धृत्वा पित्रर्चनं संकल्प्यासनाद्याच्छादनांतपूजा वैश्वदेवोक्तरीत्यैव पितृधर्मेण कार्या ॥ विशेषस्तूच्यते ॥ द्विगुणभुग्नं कुशत्रयं विप्रवामे क्षिपेत् ॥ पार्वणस्थाने विप्रत्रयपक्षे

पितुर्यथा नामगोत्रस्येदमासनमित्यादिपृथगुच्चारः ॥ एकविप्रत्वे पितृपितामहप्रपितामहानामिदमासनमित्युच्चारः एवमग्रिमोपचारेष्वप्यूह्यम् ॥ शेषं प्राग्वत ॥ ततस्तृतीयनिमंत्रणमपि प्राग्वद्धस्तधारणपूर्वकं कार्यम् ॥

अब दीपकको कहतेहैं । घृतसे वा तिलोंके तेलसे दीपक दे । वसा मेदा आदिका दीपक वर्जित है । 'इदं वो ज्योतिः' इससे वा 'अयं वो दीपप्रकाशः' इससे मुखके समीप दीपक दे । रेशम वा कपासका वस्त्र कहाहै । और काला, मलीन, पुराना, छिद्रसहित, दशाहीन, धोबीका धुला वस्त्र निषिद्ध है । वस्त्रके अभावमें ज्ञाता मनुष्य यज्ञोपवीत दे अथवा यथाशक्ति निष्क्रय (मोल) दे । वस्त्रोंसे पितरोंका सत्कार करके यज्ञोपवीत दे । यज्ञोपवीतके दान विना श्राद्ध निष्फल है । संन्यासी, स्त्री, शूद्र, इनके श्राद्धोंमें भी यज्ञोपवीत दे । अब अन्य भी देनेयोग्योंको कहते हैं । धूप, दीपकके पात्र धातुओंके हों । और कमंडलु; तांबा, काष्ठ वा मिट्टीका वा नारियलका श्राद्धमें प्रयत्नसे दे । छत्र, जूता, आसन, शय्या, दर्पण, चँवर, बीजना, खडाऊँ, कंघा, पटवास (पटियारी), सुगंधका चूर्ण, अंगीठी, लाठी, कंबल, अंजन, शलाई; ये सब देने । और यथाशक्ति सुवर्णके भूषण देने; वे केयूर (बाजू), हार, कडे, अंगूठी, कुंडल, आदि हैं । स्त्रियोंको स्त्रियोंके श्राद्धमें अलंकार देने; वे मंजीर (पायजेब) मेखला, दामकर्णिका, (नाडा) कंकण, आदि हैं और सोना, चाँदी, कांसी इनके भोजनपात्र दे और कर्पूरके और तांबूलके पात्र (पानदान)दे । आप वा अन्यने वंदीकृत (कैद किये) पितरोंके छुटानेमें ब्रह्मपद होताहै । इसप्रकार पूर्वोक्त वचनसे आच्छादनदानके अंतमें पृथक् यज्ञोपवीतको देकर शक्ति होय तो छत्र अलंकार आदिको देकर उससमय स्पर्शके अयोग्योंका संकल्प करके पूजन पूर्ण हो, संकल्पकी सिद्धि हो यह कहकर 'संपन्न हुआ' कहाहै जिसको ऐसा यजमान यह पढै कि, ' हे ब्राह्मणों मन्त्र क्रिया संपदासे हीन जो मेरा किया श्राद्ध हो वह आपके प्रसादसे पूर्ण हो' फिर, "यस्य स्मृत्या० देवताभ्यः०" इनको जपै इसप्रकार आसन आदि सब पूजाके देवकांडको समाप्त करके पितरोंके आसन आदि पूजा कांडका प्रारंभ करै । यह कांडानुसमय क्रम ही अर्थात् एक कांडको पूरा करके दूसरे कांडका आरंभ ही माधवको संमत है। कात्यायनीय तो आसनसे क्षण, आवाहन, अर्घ्यपर्यंतको पाद्यतक प्रयोगके समान पदार्थानुसमयक्रमसे ही दैव पित्र्य श्राद्धमें करके गंध आदि पूजाको ही कांडानुसमयसे करतेहैं । एक पदार्थको दैव पित्र्य आदिकोंके विषै सर्वत्र करके उसीक्रमसे दूसरे पदार्थ आदिको करै, यह पदार्थानुसमय कहाताहै, एक जगहही सब पदार्थोंको समाप्त करके अन्यत्र सब पदार्थोंको करै, यह कांडानुसमय है । इसके अनंतर अन्य पवित्रियोंको धारकर संकल्प आसनसे लेकर वैश्वदेवकी रीतिसेही पितृधर्मसे (अपसव्य आदि) से पितरोंकी पूजा करै । विशेष तो कहते हैं । कि, द्विगुणभुग्न (दूनी और मुडीहुई) तीन कुशा ब्राह्मणके वामभागमें क्षेपण करै । पार्वणके स्थानमें जब तीन ब्राह्मण हों तब यथानामगोत्र पिताको यह आसन है; इत्यादिका पृथक् २ उच्चारण करै । और एक ब्राह्मण होय तो पिता, पितामह, प्रपितामहोंको यह आसन है; यह उच्चारण करै । इसीप्रकार आगेके भी पूजोपचारोंमें समझना । शेष कर्म पूर्वके समान है । तिसके अनंतर तीसरा निमंत्रण भी पूर्वके समान हाथ पकडकरके करै ॥

अथार्घ्यासादनम् ।

द्विजाग्रे दक्षिणाग्रांस्त्रींस्त्रीन्दर्भानास्तीर्य तेष्वाग्नेयीसंस्थानि प्रतिपार्वणं पात्राणि त्रीणि त्रीण्येवासाद्य पितृपात्रपश्चिमे मातामहादिपार्वणस्य प्रतिपार्वणमेकविप्रत्वे नवविप्रत्वादिपक्षेपि त्रीण्येव पात्राणि ॥ एकविप्रत्वे तद्धस्ते एवार्घ्यत्रयम् ॥ नवविप्रत्वादिपक्षे एकैकं पात्रं विभज्य त्रिषु त्रिषु देयम् ॥ प्रतिपात्रोपरि दक्षिणाग्रा द्विगुणाः साग्रा निरग्रा वा त्रयस्त्रयः कुशाः ॥ पितृतीर्थेन पात्रेषु जलमापूर्य शन्नो देवीरिति सर्वपात्रेषु सकृदनुमंत्रणमाश्वलायनानाम् ॥ तद्भिन्नैः कातीयादिभिः शन्नो देवीरिति मंत्रेण प्रतिपात्रं मंत्रावृत्त्या जलमापूर्य ॥ हिरण्यकेशीयास्तु शं नो देवीरिति मंत्रं नेच्छंति ॥ सर्वमते ॥ तिलोसीति मंत्रावृत्त्या प्रतिपात्रं तिलावापः ॥ अत्र पितृशब्दस्यानूह इत्युक्तं गंधादिप्रक्षेपः प्राग्वत् ॥ ततः पित्रर्घ्यपात्रं संपन्नं पितामहार्घ्यपात्रं संपन्नमित्यादि ॥ यथालिंगं संपत्तिं वाचयित्वापो दत्त्वा दक्षिणामुखस्तिष्ठन् सव्यं करं कुशतिलयुत विप्रवामजानुनि न्यस्य पितृपितामहादीन्द्वितीयान्तानुच्चार्य भवत्स्वावाहयिष्ये इति पंक्तिमूर्धन्यमेकं विप्रं पृच्छेत ॥ सर्वत्र पंक्तिमूर्धन्यं प्रत्येव प्रश्नः ॥ आवाहयेत्यनुज्ञात उशंतस्त्वेति मंत्रावृत्त्याऽमुकममुकनामगोत्ररूपमावाहयामीति प्रतिविप्रं मूर्धादिपादांतमंसादियुग्मांगेषु तिलविकिरणेनावाह्य ॥ सर्वविप्रावाहनांते आयंतु नः पितर इति सकृदुपतिष्ठेत ॥ अत्र कातीयैर्नमो वः पितर इत्यादि इह संतः स्याम इत्यंतेनार्चनमुक्तम् ॥ आवाहने सव्यापसव्ययोर्विकल्पः ॥ हस्तशिष्टतिलान्विप्राग्रे भूमौ विकीर्य पित्रर्घ्यपात्रसंपत्तिरस्त्वित्युक्त्वा प्रत्युक्तः सव्यं कृत्वाऽपो दत्त्वाधस्थदर्भैः सहार्घ्यपात्रमेकैकं पाणिभ्यामुद्धृत्य विप्राग्रे स्वधार्घ्या इति मंत्रावृत्त्या स्थापयेत् ॥ एकविप्रत्वे एकाग्रे एव पात्रत्रयं मंत्रावृत्त्या नवविप्रत्वे पितृविप्रत्रयमुख्याग्रे पात्रन्यासो मंत्रेण ॥ एवं पितामहादिषु मुख्याग्रे एव ॥ एवं च त्रिरेव स्वधार्घ्या इति मंत्रोच्चारः प्रतिपार्वणे ॥ अथर्ववेदिनां प्रपितामहादिपित्र्यंतं प्रातिलोम्येन सर्वप्रयोगः ॥ ततः संत्वर्घ्या इति प्रत्युक्तोऽपो दत्त्वा पात्रस्थं पवित्रं विप्रहस्तेषु दत्त्वा प्रथमपात्रोदकं सशेषं खड्गपात्रे पात्रांतरे वा गृहीत्वा पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेदं ते अर्घ्यमित्यादि यथालिंगं प्रत्येकमर्घ्यं देयम् ॥ पित्रादित्रयाणामेकविप्रत्वे त्रिभिः पात्रैः एकस्यैव हस्तेऽर्घ्यं देयम् ॥ षण्णामेकविप्रत्वे षट्पात्राण्येकहस्ते ॥ पितुः स्थाने विप्रत्रयादिपक्षे एकार्घ्यं विभज्य तेषु देयम् ॥ अर्घ्यांते जलदानं पितरिदं ते अर्घ्यमित्यर्घ्यमन्त्रश्च प्रतिविप्रमावर्तते एवं पितामहादिविप्रेष्वपि एवमर्घ्यं दत्त्वा विप्रहस्तात्स्रवंतीरपो या दिव्या इति मन्त्रेण प्रतिविप्रमनुमंत्रयेदिति बह्वृचः ॥ अन्यशाखिनां तु या दिव्या इति मंत्रेणार्घ्यदानम् ॥ अर्घ्यदानांते प्रतिविप्रमपोदानं तथा चैक-

विप्रत्वेतुमन्त्रणमपोदानं चांते सकृदेव विप्रभेदे त्वावर्तते ॥ अर्घ्यदाने नामगोत्राद्युच्चारो न क्रियते ॥ श्राद्धसागरकारैस्तु कार्य इति युक्तं भातीत्युक्तम् ॥ अथ शेषजलयुतप्रथमार्घ्यपात्रे पात्रद्वयस्थशेषोदकमेकीकृत्य तेन जलेन मुखांजनं कार्यम्॥ आयुःकामेन नेत्रसेचनं कार्यम् ॥ संस्रवान्समवनीयेत्याद्याश्वलायनसूत्रात्॥ केचिद्विप्रहस्तगलितांबुसंस्रावस्तस्यैकीकरणमाहुः ॥ दर्शादौ मातामहपात्रोदके तत्पात्रद्वयोदकं समवनीयमातामहपात्रोदकं पितृपात्रस्थसंस्रावे संनयेत् ॥ मातृपार्वणभेदे मातामहपात्रसमवनीतोदकं मातृपात्रस्थसमवनीतोदके तदुदकं पितृपात्रस्थैकीकृतोदक इति ॥ तत्संस्रावपात्रं दैविकविप्रादुत्तरतोरत्निमात्रे प्रोक्षिते दर्भेषु न्युब्जं सकूर्चं पितृभ्यः स्थानमसीत्यासादयेत् ॥ यद्वा प्रथमपात्रमुत्तानं संस्रावोदकसहितं मंत्रेणासाद्य तृतीयपात्रेण सकूर्चपवित्रं तदाच्छादयेत् ॥ पक्षद्वयेऽपि गंधादिनाभ्यर्च्यासमाप्तेर्न चालयेन्न च स्पृशेत् ॥ कातीयास्तु शुंधंतामिति भूमिं प्रोक्ष्य पितृषदनमसीति कुशानास्तीर्य पितृभ्यः स्थानमसीति प्रथमं न्युब्जं कृत्वा गंधादिदीपांतैरर्चंति ॥

इसके अनन्तर अर्घ्यके आसादन (रखना) को कहतेहैं। ब्राह्मणके आगे दक्षिणाग्र तीन२ दर्भ बिछाकर; उनपर अग्निकोणमें स्थित तीन २ पात्र ही प्रतिपार्वणमें रखकर, पिताके पार्वणसे पश्चिममें मातामह आदिके पार्वणमें प्रतिपार्वणमें एक २ ब्राह्मण और नव ब्राह्मण आदि पक्षमें भी तीन ही पात्र होतेहैं। एक ब्राह्मण होय तो उसकेही हाथमें तीन अर्घ्य दे। नौ (९) ब्राह्मणोंके पक्षमें भी एक २ पात्रको विभाग करके तीन २ को दे। प्रत्येक पात्रके ऊपर; दक्षिणाग्र द्विगुण अग्र सहित वा रहित तीन २ कुशा रक्खै। पितृतीर्थसे पात्रोंमें जलको पूरकर "शन्नो देवी०" इस मन्त्रको एक बार पढै, यह आश्वलायनोंका मत है। उनसे भिन्न कात्यायन आदि तो "शन्नो देवी०" इस मन्त्रको प्रतिपात्र पढकर जलसे पूर्ण करैं। हिरण्यकेशीय तो "शन्नो देवी" इस मन्त्रकी इच्छा नहीं करते। सबके मतमें "तिलोसि०" इस मन्त्रको पढकर प्रतिपात्र तिल गेरना है। यहां पितृशब्दका ऊह नहीं यह कह आये। गंध आदिका प्रक्षेप (देना) पूर्वके समान है। पिताका अर्घ्यपात्र सम्पन्न हुआ; पितामहका अर्घ्यपात्र सम्पन्न हुआ; इत्यादि संपत्तिको लिंगके अनुसार ब्राह्मणोंसे कहाकर और जलको देकर दक्षिणाभिमुख बैठा हुआ कर्ता कुश तिल सहित सव्य हस्तको ब्राह्मणके वामजानुपर रखकर द्वितीयाविभक्ति जिनके अन्तमें हो (पितरम् इत्यादि) ऐसे पितामहोंका नाम लेकर इनका आपमें आवाहन करताहूं, यह बात पंक्तिमें बडे एक ब्राह्मणको पूछे। सर्वत्र पंक्तिमें बडेके प्रति ही प्रश्न करै।'आवाहन कर' ऐसी ब्राह्मणकी आज्ञाको लेकर; "उशंतस्त्वा०" इस मन्त्रको पढकर 'अमुक; नाम गोत्र रूपके अमुकका आवाहन करताहूं' यह कहकर प्रत्येक ब्राह्मणके मस्तकसे पादपर्यंत स्कंध आदि दो २ अंगोंमें तिलोंके क्षेपणसे आवाहन करके; सब ब्राह्मणोंके आवाहनके पीछे"आयंतु नः पितरः०"इस मन्त्रसे एकबार स्तुति करै। यहां कात्यायनोंने "नमो वः पितरः" इत्यादिमंत्रसे "इह संतः स्याम" (यहां विद्यमान रहें-

गे; इस पर्यंत) पूजन कहाहै । आवाहनमें सव्य अपसव्यमें विकल्प है । हाथमें शेष तिलोंको ब्राह्मणोंके आगे भूमिमें बखेरकर 'पिताके अर्घ्यपात्रकी संपत्ति हो' यह कहकर 'हो' यह कहा है जिसको ऐसा कर्ता; सव्य होकर जल देकर; नीचे स्थित दर्भों सहित एक २ अर्घ्यपात्रको हाथोंसे उठाकर ब्राह्मणोंके आगे "स्वधा अर्घ्या" इस मंत्रको पढकर स्थापन करै । एक ब्राह्मण होय तो एकके आगेही तीनों पात्रोंको; मंत्रको पढकर रक्खै । नौ (९) ब्राह्मण होयँ तो पिताके तीन ब्राह्मणोंमें मुख्यके आगे मंत्रसे पात्र रक्खै । इसीप्रकार पितामह आदिकोंमें भी मुख्यके आगे ही रक्खै । इससे तीनबारही "स्वधार्घ्या" इस मंत्रका उच्चारण प्रतिपार्वणमें करै । अथर्वण वेदियोंके यहां तो प्रपितामहसे लेकर पितापर्यंत प्रतिलोमसे (उलटा) सब प्रयोग होता है । फिर अर्घ्य (पूजित) हों यह कहाहै जिसको ऐसा कर्ता जल देकर पात्रमें स्थित पवित्रीको ब्राह्मणके हाथोंमें देकर पहिले पात्रका जल संपूर्ण खङ्ग पात्र वा अन्य पात्रमें लेकर पिता यह आपको अर्घ्य है । पितामह यह आपको अर्घ्य है । इत्यादि यथालिंग रूप प्रत्येकको अर्घ्य दे । पिता आदि तीनोंका एक ब्राह्मण होय तो तीनोंसे पात्रोंमें एकके ही हाथमें अर्घ्य देना । छओंका एक ब्राह्मण होय तो छः (६) पात्र एकके ही हाथमें दे । पिताके स्थानमें तीन ब्राह्मण आदिके पक्षमें एक अर्घ्यका विभाग करके सबको देना । अर्घ्यके अन्तमें जलका दान और पिता यह आपको अर्घ्य है । यह अर्घ्यका मन्त्र ब्राह्मण २ के प्रति पढा जाता है । इसीप्रकार पितामह आदिके ब्राह्मणोंमें भी ऐसेही अर्घ्यको देकर ब्राह्मणके हाथसे गिरते हुये जलोंका "या दिव्या०" इस मन्त्रसे सब ब्राह्मणोंके प्रति अनुमंत्रण करै (पढै) यह बहृवृच कहतेहैं । अन्य शाखावालोंके यहां तो "या दिव्या०" इस मन्त्रसे अर्घ्य देना । अर्घ्यदानके पीछे प्रति ब्राह्मण जल देना । और अन्तमें एकबार ही मन्त्र पढा जाताहै । ब्राह्मण भिन्न २ होयँ तो मन्त्रकी आवृत्ति (बारंबार पढना) होतीहै और अर्घ्यदानमें नाम गोत्रका उच्चारण नहीं करते । श्राद्धसागरकार तो करतेही हैं यह युक्त भासताहै यह कहाहै । इसके अनंतर शेष जलसे युक्त प्रथम अर्घ्य पात्रमें दोनों पात्रोंके शेष जलको मिलाकर; उस जलसे मुखतक छिडकै अवस्थाका अभिलाषी नेत्रोंका सेचन करै । क्योंकि संस्रवसे लेकर सींचै यह आश्वलायनोंका सूत्र है । कोई तो ब्राह्मणोंके हाथसे गिरतेहुये जलका जो बहाव उसका एक करना कहतेहैं । दर्श आदि श्राद्धमें मातामहके पात्रके जलमें उन दोनों पात्रोंके जलको मिलाकर; मातामहके पात्रोदकको पिताके पात्रमें स्थित संस्रावमें मिलावै । माताके पार्वणका भेद (जुदा) होय तो मातामहके पात्रमें समवनीत (मिले) जलको माताके पात्रमें स्थित समवनीत जलमें और उस जलको पिताके पात्रमें स्थित एककिये जलमें डारै । उस संस्रावक पात्रको देवपात्रसे उत्तरमें अरत्नि (हाथसे कम) के अंतरपर 'छिडकीहुई कुशाओंके ऊपर पितरोंको स्थान है' । यह कहकर कूर्च सहित ओंधा रखदे । यद्वा संस्रावके जल सहित सीधे प्रथम पात्रको मंत्रसे रखकर; कूर्च, पवित्री सहित उसको तीसरे पात्रसे ढक दे । दोनों पक्षोंमें भी गंध आदिसे पूजा कर न चलावै और न स्पर्श करै । कात्यायन तो "शुंधंतां०" इस मंत्रसे भूमिका प्रोक्षण करके "पितृपदनमासि" इससे कुशा बिछाकर ' पितृभ्यः स्थानमसि०' इस मंत्रसे पहिलेको ओंधा करके गंधसे दीपक पर्यंतोंसे पूजा करते हैं ॥

अथ प्राचीनावीती।

आद्यंतयोरपो यच्छन् गंधाद्यैः पूजनं चरेत् ॥ अमुकशर्मन्यथानामगोत्राय ते गंधः स्वधा नम इति ॥ एकविप्रत्वे शर्माणोऽयं वो गंध इत्यादिना त्रिस्त्रिर्गंधदानं शेषं प्राग्वत् ॥ केचिदमी ते गंधा इति बहुत्वं गंधे प्राहुः ॥ अर्घ्यदानभिन्ने सर्वत्र स्वधा नम इत्यंते दानम् ॥ अत्र पित्र्यविप्रपूजने गंधादेः पदार्थानुसमयः ॥ कांडानुसमयो वा ॥ संपूर्णवाचनादि प्राग्वत् कृत्वा चतुष्कोणं वर्तुलं च यथाक्रमं वारिणा गोमयभस्मादिना वा मंडलानि सव्यापसव्याभ्यां कुर्यात् ॥ तत्र नैर्ऋतीमारभ्यैशानीपर्यंतं दैवे ईशानीतो नैर्ऋतिपर्यंतं पित्र्ये च प्रादक्षिण्याप्रादक्षिण्याभ्यां कार्याणि तत्र पूर्वोक्तपात्राण्यासादयेत् ॥ "नायसान्यपि पात्राणि पैत्तलानि न तु क्वचित् ॥ न च सीसमयानीह शस्यंते त्रपुजान्यपि ॥" कांस्यपात्रं विकल्पितम् ॥ पर्णपात्रेषु पलाशमधूकोदुंबरकुटकप्लक्षजानि शस्तानि ॥ कदलीचूतपनसजंबूचंपकमध्यमानि ॥ एवं पात्राण्यासाद्य पितृपूर्वकं परितो भस्ममर्यादां पितृपूर्वकं विप्राणां करशुद्धिं च सव्यापसव्याभ्यां कुर्यात् ॥ तत्र पिशंग इति रक्षाण इति मंत्रद्वयं केचिदाहुः ॥ आचम्य करशुद्धिजलं पादक्षालनमंडले क्षिपेत् ॥

इसके अनंतर प्राचीनावीतिको कहतेहैं। आदि अंतमें जलको देताहुआ गंध आदिसे पूजन करै। कि, 'हे यथानामगोत्र अमुकशर्मन्' यह गंध आपको देताहूं। तीनोंके स्थानमें एक ही ब्राह्मण होय तो "भो अमुक शर्माण: अयं व: गंध:०" इससे तीन २ वार गंध आदि दे। शेष कर्म पूर्वके समान है। कोई तो "अमी ते गंधा:" (ये तेरे गंध हैं) ऐसे गंधमें बहुवचनको कहते हैं। अर्घ्यदानसे भिन्न कर्ममें "स्वधा नम:" यह पढकर दे। यहां पितृब्राह्मणोंके पूजनमें गंध आदिका पदार्थानुसमय वा कांडानुसमय है और वाचन आदि सब कर्म पूर्वके समान करके चकोर और वर्तुल दोनों मंडल, जल, गोमय, भस्म, आदिसे सव्य अपसव्य होकर करै। यहां नैर्ऋतसे ऐशानी पर्यंत दैवमें और ऐशानीसे नैर्ऋत पर्यंत पितृकर्ममें प्रदक्षिण क्रमसे कार्य होतेहैं। वहां पूर्वोक्त पात्रोंको रक्खै। लोहा, पीतल, सीसा, और रांग; इनके पात्र श्राद्धमें श्रेष्ठ नहीं हैं। और कांसीके पात्रमें विकल्प है (ले वा न ले) पत्तोंके पात्रोंमें ढाक, महुआ, गूलर, कुटक, पिलखन, इनके श्रेष्ठ हैं। केला, आम, पनस, जामुन; चंपा; इनके मध्यम हैं। इस प्रकार पात्रोंको रखकर; पिता आदिके चारों तरफ भस्मसे मर्यादाको और पिता आदिके ब्राह्मणोंकी कर शुद्धिको सव्य अपसव्यसे करै। उसमें कोई "पिशंग:० ॥ रक्षाण:० "॥ इन दो मंत्रोंको कहते हैं। आचमन करके करशुद्धिके जलको पादप्रक्षालनके मंडलमें डार दे ॥

अथाग्नौकरणम्।

तत्राश्वलायनानां गृह्याग्निमतां व्यतिषंगेण श्राद्धप्रयोगे गृह्याग्निपक्वचरुणा गृह्याग्नावेव कार्यम् ॥ व्यतिषंगाभावे पाणि होमः ॥ श्रौताग्निमतां दर्शे व्यतिषंगाभा-

वात्पाणिहोम एव ॥ पूर्वेद्युरन्वष्टक्ययोर्दक्षिणाग्नौ श्रपणं होमश्च ॥ निरग्निकानां तु सर्वत्र पाणिहोम एव ॥ आपस्तंबादीनां श्रौताग्निमतां सर्वाधानिनां दक्षिणाग्नौ अर्धाधानिनां गृह्याग्निमात्रवतां च गृह्याग्नावेव प्रवासस्थानां निरग्निकानां च ॥ अयाश्चाग्ने मनोज्योतिरुद्बुध्य व्याहृति होमैनोत्पादिते लौकिकाग्नौ हुत्वाऽग्नेरुत्सर्गः न त्वेषां क्वापि पाणिहोमः ॥ पाकस्तु सर्वत्रापचनाग्नावेव ॥ कातीयानां गृह्याग्निमतां गृह्याग्निविहृतपचनाग्नौ पाकाऽग्नौ करणं तु गृह्याग्नावेव ॥ श्रौताग्निमतां सर्वाधानपक्षे दक्षिणाग्नावर्धाधानपक्षे औपासनाग्नाविति काशिकायामुक्तम् ॥ कातीयानामर्धाधानपक्ष एव युक्त इति भाति ॥ निरग्नीनां कातीयानामपसव्यादिना पित्र्यादिद्विजहस्त एवाग्नौकरणम् ॥ तत्र पक्षद्वयम् ॥ देवद्विजकर एव सव्येन होमः ॥ यद्वाऽपसव्येन पित्र्यद्विजपंक्तौ प्रथमद्विजकरे इति ॥ बह्वृचानां तु पित्र्यद्विजकरेष्वेव प्रतिविप्रं होमः ॥ वाजसनेयिनां त्वेकहोम एवेति श्राद्धकाशिकायां कातीयसूत्रवृत्तौ ॥ केचित्तु पृष्ठ्यादिविधानानाग्निमुत्पाद्याग्नावेव जुह्वति ॥ सामगादीनां साग्नीनामग्नावग्नेरसन्निधाने दैवकरे पित्र्यकरे वा ॥ निरग्नीनां तु देवद्विजकर एव ॥ मृतभार्यस्यापत्नीकस्य प्रथमदेवद्विजकर एव होमो न पित्र्ये इति सर्वसाधारणम् ॥

अब अग्नौकरणको कहतेहैं । वह आश्वलायन गृह्य अग्निवालोंके यहां व्यतिषंगसे श्राद्ध प्रयोगमें गृह्य अग्निमें पकाये चरुसे गृह्याग्निमें ही करना । व्यतिषंग न होय तो पाणि (हाथ) में होम होताहै । श्रौताग्निवालोंके यहां दर्शमें व्यतिषंग नहीं है । इससे पाणिहोम ही होताहै । पहिले दिन अन्वष्टकाओंमें दक्षिणाग्निमें पाक और होम होते हैं । और जो अग्निहोत्री नहीं हैं उनके तो सर्वत्र पाणिहोम ही होताहै । श्रौताग्निवाले आपस्तंब आदिकोंके यहां तो सर्वाधानी होयँ तो दक्षिणाग्निमें और अर्धाधानी और केवल गृह्याग्निवालोंके यहां और परदेशमें स्थित अग्निहोत्रसे रहितोंके यहां गृह्याग्निमें ही होता है । "अयाश्चाग्ने० ॥ मनोज्योतिः० ॥ उद्बुध्यध्वं०॥ व्याहृति०॥" इनके होमसे पैदा किये लौकिक अग्निमें होम करके अग्निका उत्सर्ग होता है । इनके यहां कहीं भी पाणिहोम नहीं है । पाक तो सर्वत्र पचनाग्निमेंही होताहै । गृह्याग्निवाले जो कात्यायन हैं उनके यहां गृह्याग्निसे लाई पचनाग्निमें पाक होताहै । अग्नौकरण तो गृह्याग्निमें ही होताहै । श्रौताग्निवालोंके यहां सर्वाधानपक्षमें दक्षिणाग्निमें, अर्धाधानपक्षमें औपासन अग्निमें होताहै यह काशिकामें कहाहै । और कात्यायनोंको अर्धाधानपक्ष ही युक्त है । यह प्रतीत होताहै । और जो कात्यायन अग्निहोत्री नहीं हैं उनके यहां अपसव्य आदिसे पितृब्राह्मणके हाथमें ही अग्नौकरण होता है । उसमें दो पक्ष हैं । कि, देवब्राह्मणके हाथमें ही सव्यसे होम करै । वा पितृब्राह्मणोंकी पंक्तिमें प्रथम ब्राह्मणके हाथमें अपसव्यसे होम करै । बह्वृचोंके यहां तो पितृ ब्राह्मणोंके हाथोंमें प्रति विप्र होम होताहै । वाजसनेयियोंके यहां तो एक होम ही होताहै । यह श्राद्ध काशिकामें कातीयसूत्रवृत्तिमें लिखाहै । कोई तो पृष्ठ्यादि विधिसे अग्निको पैदा करके अग्निमें ही होम करते हैं । साग्निक सामगोंके यहां अग्निमें; और अग्नि समीप न होय तो देव वा पितृब्राह्मणोंके हाथमें होताहै और जो अग्निहोत्री

न हों उनके यहां तो देवब्राह्मणके हाथमें ही होताहै । जिसकी भार्या मरगयी हो उसके यहा देवब्राह्मणके हाथमें ही होम होताहै । पितृब्राह्मणके हाथमें नहीं यह सबके यहां साधारण है ॥

अथ होमप्रकारः ।

बह्वृचानां व्यतिषंगपक्षेऽग्नावग्नौकरणं करिष्ये इति पृष्ट्वा क्रियतामित्यनुज्ञातो गृह्यपक्वं चरुमुद्धृत्य द्विधा विभज्यापसव्येनोत्तरभागादवदानसंपदामेक्षणेऽवदाय सोमाय पितृमते स्वधा नमः सोमाय पितृमत इदं न ममेति होमत्यागौ कृत्वा दक्षिणभागात्पुनस्तथैवावदायाग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति होमत्यागौ कुर्यात् ॥ सव्येनापसव्येन वा मेक्षणमग्नावनुप्रहरेत् ॥ यद्वा सव्येन स्वाहांतोक्तमंत्रेणाहुतिद्वयं सोमाग्न्योर्व्यत्यासेनादाय जुहुयादिति ॥ कातीयानां तु गृह्ये श्रपणमकृत्वैव पचनाग्निपक्वमन्नमादाय घृताक्तं कृत्वा पूर्ववत्प्रश्नानुज्ञानंतरं स्मार्ताग्निं परिस्तीर्य तिस्रः समिध आधाय सव्येनाग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति मेक्षणेनाहुतिद्वयं जुहुयादपसव्येन वा पाणिहोमेपीत्थमेव प्रकार ऊह्यो विशेषस्तूक्तः ॥ आपस्तंबानामाज्यभागांते उद्ध्रियतामग्नौ च क्रियतामिति प्रश्ने काममुद्ध्रियतामित्यनुज्ञानम् ॥ हिरण्यकेशीयानामुद्धरिष्याम्यग्नौ करिष्यामीति प्रश्नः ॥ यन्मे मातेत्यादिमन्त्रैः सप्तान्नाहुतयः षडाज्याहुतय इति त्रयोदशाहुतयः ॥ मंत्रास्तु विस्तरभयान्नोक्ताः ॥ हिरण्यकेशीयानामाज्यभागांते सोमाय पितृमते इत्यादिषोडशमंत्रैः षोडशाज्याहुतयः षोडशान्नाहुतयश्च प्रतिपार्वणं बोध्याः ॥ मन्त्रेषु पित्रादिपदोह आज्यान्नपदयोरूहश्च तद्ग्रंथेष्वेव ज्ञेयोति विस्तृतत्वान्नोच्यते ॥

अब होमके प्रकारको कहते हैं । कि, बह्वृचोंके यहां व्यतिषंग पक्षमें अग्निमें अग्नौकरण करताहूं । यह पूछकर 'करो' यह आज्ञा दी है जिसको ऐसा कर्ता; गृह्याग्निमें पकाये चरुके निकास कर और दो भाग करके अपसव्यसे उत्तर (पिछले) भागमेंसे अवदानसंपदा मेक्षण, इन दोनोंको लेकर-"सोमाय पितृमते स्वधा नमः । सोमाय पितृमते इदं न मम" इनसे होम और त्यागको करके दक्षिण भागमेंसे फिर तिसीप्रकार लेकर "अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः" इस मन्त्रसे होम, त्यागको करै । सव्य वा अपसव्यसे मेक्षणको अग्निमें प्रहार करै (डारै) अथवा सव्य होकर स्वाहांत उक्त मंत्रसे दो आहुति सोम अग्निके व्यत्यास (उलटी) से लेकर होम करै । कात्यायनोंके यहां तो गृह्य अग्निमें पकाये विना ही पाककी अग्निमें पके अन्नको लेकर और घी मिलाकर पूर्वके समान प्रश्न आज्ञाके अनंतर स्मार्त अग्निका परिस्तरण (कुशंडी) करके और तीन समिध रखकर सव्य होकर "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । सोमाय पितृमते स्वाहा" इन दो आहुतियोंको मेक्षणसे दे वा अपसव्यसे दे । पाणिहोममें भी यही प्रकार समझना । विशेष तो कह आये । आपस्तंबोंके यहां आज्यभागके अंतमें 'उद्धरण करो' 'अग्नौकरण करो' इस प्रश्नमें 'यथेच्छ उद्धरण करो' यह

आज्ञा है । हिरण्य केशीयोंके यहां 'उद्धार करताहूं' 'अग्नौकरण करताहूं' यह प्रश्न है। "यन्मेमाता०" इत्यादि मंत्रोंसे सात, अन्नकी आहुति, छः घी की आहुति, इसप्रकार तेरह आहुति होती हैं। मन्त्र तो विस्तारके भयसे नहीं कहे । हिरण्यकेशीयोंके यहां आज्यभाग के अन्तमें 'सोमाय पितृमते' इत्यादि सोलह मंत्रोंसे सोलह घी की आहुति और सोलह अन्नकी आहुति प्रत्येक पार्वणमें जाननी । मन्त्रोंमें पिता आदिपदोंका ऊह; आज्य अन्न पदोंका ऊह; तिसर्के ग्रंथोंमें ही जानना । अत्यन्त विस्तारके भयसे नहीं कहते ॥

अथ पाणिहोमप्रकारः ।

तत्र विप्रपाणावग्नौकरणं करिष्ये इति प्रश्नः॥क्रियतामित्यनुज्ञा ॥करिष्ये इति प्रश्ने कुरुष्वेत्यनुज्ञा न भवतीति सर्वत्राश्वलायनमतम् ॥ कातीयादीनां तु भवत्येव ॥ आश्वलायनसूत्रवृत्तौ तु पाणिहोमे कथमपि प्रश्नः प्रतिवचनं च न कार्यमित्युक्तम् ॥ सदर्भ पित्र्यविप्रपाणिं सव्येन परिसमुह्य पर्युक्ष्य मेक्षणेन करेण वा पूर्ववदाहुतिद्वयं सोमायेत्यादि मन्त्राभ्यां प्राचीनावीत्येव जुहुयात् ॥ तत्र करेण होमपक्षे वामहस्तेन दर्भेण दक्षिणकरे उपस्तीर्य दक्षिणेन द्विरवदाय वामेनाभिघार्य चतुरवत्तित्वादि संपाद्यम्॥बह्वृचानां सर्वपित्र्यकरेषु होमः ॥ एकोद्दिष्टविप्रकरे होमः कृताकृतः॥ होमांते सव्येन परिसमूहनोक्षणे पाणिहोमे मेक्षणानुप्रहरणं न ॥ केचित्पाणिहोमे परिसमूहनादिकं मेक्षणं च नेच्छंति ॥ विप्राश्च पाणिहुतान्नं कर्त्रा देवपूर्वं सव्येनैवामासुपक्वमितिमन्त्राभिघारिते स्वस्वपात्रे संस्थाप्य भोजनस्थानादन्यत्राचम्य यथास्थानमुपविशेयुः ॥

अब पाणिहोमके प्रकारको कहते हैं । उसमें 'ब्राह्मणके हाथमें अग्नौकरण करताहूं' यह प्रश्न है । 'करो' यह आज्ञा है । 'करिष्ये' इस प्रश्नमें 'कुरुष्व' यह आज्ञा नहीं होती यह सर्वत्र आश्वलायनोंका मत है । कात्यायनोंके यहां तो यह आज्ञा होती ही है । आश्वलायन सूत्र वृत्तिमें तो पाणिहोममें किसी प्रकार भी प्रश्न और प्रतिवचन न करना यह कहा है । दर्भ सहित पितृब्राह्मणके पाणिको सव्यसे परिसमूहन पर्युक्षण करके मेक्षणसे वा करसे पूर्वके समान सोमाय इत्यादि मन्त्रोंसे दो आहुतियोंसे प्राचीनावीती होकर ही होम करै ।उनमें करसे होमके पक्षमें बांयें हाथमें लिये दर्भसे दक्षिण करमें उपस्तरण करके दक्षिणसे दो बार अवदान करके वामहाथसे अभिघारण करके चतुरवत्तित्वादिका सम्पादन करै । बह्वृचोंके यहांतो सब ब्राह्मणोंके हाथोंमें होमहोताहै । एकोद्दिष्टमें ब्राह्मणके हाथमें होम कृताकृतहै अर्थात् करो वा न करो । होमके अन्तमें सव्यसे परिसमूहन उक्षण करै। पाणिहोममें मेक्षणका अनुप्रहरण नहीं है । कोई तो पाणिहोममें परिसमूहन आदि और मेक्षणको नहीं चाहते । और ब्राह्मणके पाणिमें होम किये अन्नको अपने उस २ पात्रमें रखकर जो कर्ताने देवपूर्वक सव्यसे ही "आमासुपक्वं०" इस मंत्रसे अभिघारित (सींचा) है, और भोजनके स्थानसे अन्यत्र आचमन करके अपने २ स्थानपर बैठ जायँ ॥

अथ हुतशेषविचारः।

अग्नौकरणशेषं पिंडार्थमवस्थाप्य पित्र्यपात्रेष्वेव सर्वान्नपरिवेषणान्ते परिवेषणीयम् ॥ केचिदग्नौकरणशेषपरिवेषणोत्तरं सर्वान्नपरिवेषणमाहुः ॥ अग्नौकरणशेषं देवपात्रेषु न देयम् ॥ कातीयानां तु साग्नीनामग्नौ होमे देवपूर्वं सर्वपात्रेषु शेषदानम् ॥ निरग्नेर्दैवविप्रकरे होमे पितृपात्रेष्वेव पित्र्यकरे होमे देवादिसर्वपात्रेषु हुतशेषदानमिति काशिका ॥ " अन्नं पाणौ हुतं यच्च यच्चान्यत्परिवेषितम् ॥ एकीकृत्यैव भोक्तव्यं पृथग भक्षो न विद्यते ॥" बौधायनानां तु पाणिहुतेन्ने भक्षितेऽन्यान्नपरिवेषणमुक्तम् ॥

अग्नौकरणके शेषको पिंडोंके लिये रखकर पितृब्राह्मणके पात्रमें ही सब अन्न परिवेषणके अंतमें परिवेषण करै (परसै) कोई तो अग्नौकरण शेषके परिवेषण किये पीछे सब अन्नका परिवेषण कहतेहैं। अग्नौकरणके शेषको देवब्राह्मणोंके पात्रोंमें न दे। अग्निहोत्री कात्यायनोंके यहां तो अग्निके होममें देवब्राह्मण पूर्वक सब पात्रोंमें शेषका दान कहाहै। और जो अग्निहोत्री नहीं उनके यहां देव ब्राह्मणोंके करमें होम होय तो पितृ पात्रोंके विषै ही पितृब्राह्मणके हाथमें होमके विषे देव आदि सम्पूर्ण पात्रोंमें होमके शेषका दान है यह काशिकामें लिखाहै। यह वचन है। कि, जो अन्न पाणिमें हुत है और जो अन्य परसाहै उसको मिलाकर भक्षण करै। पृथक् २ भक्षण नहीं कहाहै। बौधायनोंके यहां तो पाणिमें हुत अन्नके भक्षण किये पीछे अन्य अन्नोंका परिवेषण कहाहै ॥

अथ परिवेषणप्रकारः।

अथ पूर्वोक्तवद्देवपूर्वं घृताभिघारितपात्रेषु पूर्वोक्तहविष्यान्नपरिवेषणं स्वयं पत्नी वान्यो वा कुर्यात् ॥" नापवित्रेण नैकेन हस्तेन च विना कुशम् ॥ नायसेनापि पात्रेण श्राद्धेषु परिवेषयेत् ॥" व्यंजनादिकं पर्णाद्यन्तर्हितहस्तैर्देयम् ॥" दर्व्या देयं घृतं चान्नं समस्तव्यंजनानि च ॥ उदकं चैव पक्वान्नं नो दर्व्या तु कदाचन ॥ हस्तदत्तं तु नाश्नीयाल्लवणं व्यंजनादिकम् ॥ अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव प्रदीयते ॥" घृतादिपात्राणि भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे ॥ ओदने परमान्ने च पात्रमासाद्य तत्र घृतपूरणे रुधिरतुल्यता ॥" पंक्तौ विषमदातुश्च निष्कृतिर्नैव विद्यते ॥ सर्वदा च तिला ग्राह्या पितृकृत्ये विशेषतः ॥ भोज्यपात्रे तिलान्दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ॥" हिंगुशुंठीपिप्पलीमरीचकानि शाकादिसंस्कारार्थान्येव न तु साक्षाद्भक्षयेत् ॥ परिवेषणकाल एव तत्सर्वप्रकारमन्नं पिंडार्थं पिंडपात्रे परिवेषणीयमिति सागरे ॥

इसके अनंतर पूर्वोक्तके समान देव पूर्वक घृतसे सींचे पात्रोंमें पूर्वोक्त हविष्य अन्नका स्वयं, वा पत्नी, वा अन्य, परिवेषण करै। और अपवित्र होकर एक हाथसे कुशाके विना लोहेके पात्रसे श्राद्धोंमें न परसै। व्यंजन आदि तो पत्ते आदिसे हाथको ढककर दे। घृत अन्न संपू-

र्ण व्यंजन इनको दर्वी (कडछी) से दे । जल और पकान्नको दर्वीसे कदाचित् न दे और हाथसे दिये लवण व्यंजन आदिका भक्षण न करै । और विना पका और तेलसे पका तो हाथसे ही दिया जाताहै ।। घृत आदिके पात्रोंको भूमिमें स्थापन करै भोजनपात्रमें न करै । ओदन और परमान्न (खीर आदि) को पात्रमें परसकर उसमें घृत पूरण करै तो रुधिरकी तुल्य है । ओर जो पंक्तिमें विषम (कम ज्यादह) देता है उसका प्रायश्चित्त नहीं है । सब कालमें तिल ग्रहण करने और पितृकार्यमें तो विशेषकर लेने । भोजनके पात्रमें तिलोंको देखकर पितर निराश जाते हैं । हींग, सूंठ, पीपल, मिरच, हलदी, ये संस्कारके लिये हीं भक्षण करने साक्षात् नहीं । परोसनेके समयमें ही उस सब प्रकारके अन्नको पिंडोंके लिये पिंडोंके पात्रोंमें परिवेषण करै । यह निर्णयसागरमें कहा है ॥

अथान्ननिवेदनम् ।

अथोपवीती दैवे पात्रे परितः कुशयवान्विकीर्य पित्र्ये तु तिलान्विकीर्यान्नं गायत्र्या प्रोक्ष्य तूष्णीं परिषिच्य दक्षिणहस्त उपरि वामोधो दैवे पित्र्ये तु विपरीत इत्येवं स्वस्तिकाकारकराभ्यां पात्रमालभेत् ॥ तत्र मन्त्रः ॥ पृथ्वी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्त्वामुखेऽमृतं जुहोमि ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मामैषां क्षेष्ठाअमुत्रामुष्मिँल्लोके इति अयं मन्त्र आपस्तम्बकात्यायनादिभिर्नानाविधः पठितो यथासंप्रदायं वाच्यः ॥ इत्यभिमंत्र्य अतोदेवेति वा इदं विष्णुरिति वा ऋचमुक्त्वा विष्णो हव्यं रक्षस्वेति पित्र्ये तु कव्यं रक्षस्वेति न्युब्जेन करेण न्युब्जं द्विजांगुष्ठमनखमन्ने निवेश्य प्रदक्षिणं भ्रामयेत ॥ पित्र्ये त्वप्रदक्षिणम् ॥ अत्र कातीयानामपहता इति यवानां दैवे तिलानां पित्र्ये पात्रपरितो विकिरणमुक्तम् ॥ ततो वामकरेण पात्रं स्पृशन्नमुके विश्वेदेवा देवता इदमन्नं हव्यमयं ब्राह्मण आहवनीयार्थे इयं भूर्गया अयं भोक्ता गदाधर इदमन्नं ब्रह्म ॥ इदं सौवर्णं पात्रमक्षय्यवटच्छायेयम् ॥ अमुकदेवेभ्य इदमन्नं सोपस्करममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा हव्यं नमो न मम ॥ ॐ तत्सदिति सयवदर्भजलं दक्षिणकरेण पात्रवामभागे भूमौ क्षिपेत् ॥ एवं दैविकविप्रांतरेपि ॥ ततो ये देवास इत्युपस्थानम् ॥ ततः पित्र्यधर्मेण पितृपात्रालंभांगुष्ठनिवेशनाद्यंते वामेन पात्रमालभ्य पिता देवता एकविप्रत्वे पित्रादयो यथानामगोत्रा देवता इदमन्नं कव्यमित्यादि०इदं राजतं पात्रमक्षय्यवटच्छायेयम् अस्मत्पित्रेऽमुकनामगोत्ररूपाय त्रयस्थाने विप्रैक्येऽस्मत्पितृपितामहप्रपितामहेभ्योमुकगोत्रनामरूपेभ्यः इदमन्नं सोपस्करममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वधा कव्यं नमो न मम ॐ तत्सदिति तिलकुशजलं पितृतीर्थेन वामकराधोनीतेन दक्षिणकरेण पात्रदक्षिणे भूमौ क्षिपेत् ॥ एवमन्यत्रापि यथादैवतमूहः॥ पितृस्थानेनेकविप्रत्वे त्रिषु विप्रेषु पित्रे इत्यादिनैकवचनांतेन त्यागः ॥ एवमग्रेपि त्रिषुत्रिषूह्यम् ॥ ततो येचेहेति सकृदुपस्थानम् ॥ अतिथिश्चेद्देवधर्मेण स्वेष्टदेवतायै इदमन्नमि-

इत्यादि येदेवास इत्यादि अपसव्यं देवताभ्यः पितृभ्य० सप्तव्या० अमूर्त्तानां० ब्रह्मार्पणं० हरिर्दाता० चतुर्भिश्च० ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ येषामुद्दिष्टं तेषामक्षय्या प्रीतिरस्तु ॥ इति तिलोदकमुत्सृजेत् ॥ सव्यम् एकोविष्णु० "अन्नहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं च यद्भवेत् ॥ तत्सर्वमच्छिद्रं जायताम्" इत्युक्त्वा विप्रैर्जायतां सर्वमच्छिद्रमित्युक्तेनेन पितृयज्ञेन पितृरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयतामिति तिलकुशजलमुत्सृजेदित्याचारः ॥ केचिद्ब्रह्मार्पणमित्यादिसंकल्पोत्सर्गे सव्यमेको विष्णुरित्यादावपसव्यं कुर्वंति तत्र ब्रह्मार्पणमित्येको विष्णुरित्यनयोः संकल्पयोर्विभागे सव्यापसव्यविभागे च प्रत्यक्षवचनानुपलंभाद्यथाचारं कार्यम् ॥ अकृते संकल्पेऽन्नं विप्रा न स्पृशेयुः ॥ ईशानविष्णुः ० गयायै० गदाधराय नमः ॥ पुण्डरीकाक्षा० इति नत्वा पितृपूर्वं विप्रकरेषु जले दत्ते विप्रास्तेनान्नं प्रोक्ष्य त्रिर्गायत्र्याभिमंत्रयेयुः ॥ कर्ता सव्येन पितृपूर्वमापोशनार्थमुदकं दत्त्वा सव्याहृतिकां गायत्रीं त्रिः सकृद्वोक्त्वा मधुवाता इति त्र्यृचं सकृदुक्त्वा मधु मधु मध्विति त्रिरुक्त्वोंतत्सद्यथासुखं जुषध्वमिति वदेत् ॥ विप्राश्च बलिदानवर्ज्यं नित्यवदापोशनं कृत्वा कर्त्रा श्रद्धायां प्राणे निविष्टोमृतं जुहोमि शिवोमाविशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहेत्यादिपंचमंत्रषूच्यमानेषु पंच प्राणाहुतीः कृत्वा ब्रह्मणि म आत्मामृतत्वायेत्युच्यमाने षर्ष्ठी कुर्युः ॥

इसके अनंतर उपवीती होकर देवपात्रमें चारों तरफ कुशा, जौं, बखेरकर और पितृपात्रमें तिलोंको बखेरकर अन्नको गायत्रीसे छिडककर फिर तूष्णीं छिडककर दैवमें दक्षिण हाथ ऊपर वाम नीचे हो । और पितृश्राद्धमें इससे विपरीतपर इस प्रकार स्वस्तिक आकारके हाथोंसे पात्रका आलम्भन (स्पर्श) करै उसका मंत्र यह है । कि, "पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि" "ब्राह्मणानांत्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मामैषां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोके" इति । यह मन्त्र आपस्तंब कात्यायनादिकोंने अनेक प्रकार पढा है । इससे सम्प्रदायके अनुसार कहना इस मंत्रसे अभिमंत्रण करके 'अतोदेवा० वा इदंविष्णु०' इन ऋचाओंको कहकर हे विष्णो हव्यकी रक्षा करो । और पितृश्राद्धमें तो; हे विष्णो ! कव्यकी रक्षा करो इस प्रकार न्युब्ज (ओंधा) नखरहित ब्राह्मणके अँगूठेको अन्नपर निवेशन करके प्रदक्षिण क्रमसे और पितृश्राद्धमें वाम क्रमसे भ्रमावै, यहां कात्यायन तो "अपहता०" इस मन्त्रसे दैवश्राद्धमें जौंका और पितृश्राद्धमें तिलोंका क्षेपण कहते हैं । फिर बायें हाथसे पात्रको स्पर्श करता हुआ कहै कि, 'भो अमुक नामके विश्वेदेवाओ यह अन्न अग्निमें हवि रूप है' ब्राह्मण आहवनीय अग्निरूप; यह भूमि गयारूप; मैं भोक्ता गदाधररूप; यह अन्न ब्रह्मरूप यह सुवर्णका पात्र अक्षय वटकी छायारूप है; अमुक देवताओंको यह सोपस्कर अमृतरूप अन्न परसा है और जो आगे परसेंगे वह तृप्तिपर्यंत स्वाहा है । यह हव्य मेरा नहीं, "ॐतत्सत्" यह कहकर जौं सहित कुशाके जलको दक्षिण हाथसे पात्रके वामभागकी भूमिमें फैंकदे । इसी प्रकार देवताओंके दूसरे ब्राह्मणमें भी करै । फिर "यद्देवास०" इस मंत्रसे स्तुति करै । फिर पितृधर्मसे पितृपात्रके

स्पर्श अंगुष्ठनिवेदन आदिके अन्तमें; बायें हाथसे पात्रको छूकर कहै; कि, पित देवता [और एक ही ब्राह्मण होय तो पिताआदि यथानामके देवता] यह कव्य रूप अन्न है इत्यादि कहै । और यह चांदीका पात्र अक्षयवटकी छाया है । अमुक नाम गोत्र रूप हमारे पिताको [और तीनोंके स्थानमें एक ब्राह्मण होय तो अमुक गोत्र नाम रूप हमारे पिता, पितामह, प्रपितामहोंको] यह अमृत रूप सोपस्कर यह परसा हुआ अन्न और जो आगे परसेंगे तृप्तिपर्यंत स्वधा हो । और यह कव्य मेरा नहीं, आपको नमस्कार है । "ॐ तत्सत्" इसको पढकर तिल, कुशा, जलको पितृतीर्थसे वाम कर है नीचे जिसके ऐसे दक्षिण हाथसे पात्रकी दक्षिण भूमिमें फैंक दे । इसी प्रकार अन्यत्र भी देवताओंके अनुसार ऊह समझना । पिताके स्थानमें अनेक ब्राह्मण होयँ तो तीन तीन ब्राह्मणोंके आगे 'पित्रे' (पिताको) इत्यादि एक वचनसे ही दे । इसीप्रकार आगे भी तीन ब्राह्मणोंमें समझना । फिर "ये चेह०" इस मंत्रसे स्तुति एक बार करै । और अतिथि कोई होय तो देवधर्मसे अपने इष्ट देवताओं को यह अन्न है इत्यादि कहै । और "ये देवास०" इत्यादि पढै । फिर अपसव्य होकर "देवताभ्यः०॥पितृभ्यः०॥ सप्त व्याधा०॥ अमूर्ता०॥ब्रह्मार्पणं०॥हरिर्दाता०॥चतुर्भिश्च०॥ ॐतत्सत्० ब्रह्मार्पणमस्तु०॥" जिनको दिया है उनकी अक्षय प्रीति होय यह कहकर तिल जलको छोड दे फिर सव्य होकर एक विष्णु है । इस मंत्रको पढै और अन्न, क्रिया, मंत्रसे जो हीन होय वह सब पूर्ण होय । यह कहकर जब ब्राह्मण अच्छिद्र होय यह कहदें तब इस पितृयज्ञसे पितृरूप जनार्दन वासुदेव प्रसन्न होयँ यह कहकर तिल कुश जलको त्यागदे । यह आचार है कोई तो यह कहतेहैं कि, 'ब्रह्मार्पणं०" इत्यादि संकल्पके त्यागमें सव्य होकर "एको विष्णु" इत्यादिमें अपसव्य करना उसमें "ब्रह्मार्पणं और 'एकोविष्णु०" इन संकल्पोंके विभागमें और सव्य अपसव्यके विभागमें कोई प्रत्यक्ष वचन नहीं है । इससे कुलाचारके अनुसार करना और संकल्पकरनेसे पहिले ब्राह्मण अन्नका स्पर्श न करैं । ईशानविष्णु, गया, गदाधर पुण्डरीकाक्ष; इनको नमस्कार करके पिताके क्रमसे ब्राह्मणोंके हाथमें जल देनेके अनन्तर और ब्राह्मण उस जलसे अन्नका प्रोक्षण और तीनबार गायत्रीको जपैं । फिर कर्ता पितरोंको आपोशनके लिये जल देकर व्याहृतिसहित गायत्रीको तीन वा एकबार कहकर, "मधुवाता०" इन तीन ऋचाओंको एकबार और मधु ३ ऐसे तीन बार कहकर "ॐतत्सत्" सुखसे भक्षण करो; यह कहै । और ब्राह्मण बलि दानको छोडकर नित्यके समान आपोशनको करके कर्ता श्रद्धासे जब, "प्राणे निविष्टोऽमृतं जुहोमि शिवो माविशा प्रदाहाय प्राणाय स्वाहा०" इत्यादि मंत्रोंको कहै । ब्राह्मण पांच प्राणाहुति करके, "ब्रह्मणि मे आत्मा अमृतत्वाय" कर्ताके कहे इस मंत्रमें ब्राह्मण; षष्ठी (ब्रह्मणः) का उच्चारण करै ॥

अथ भोजनकालधर्माः ।

ततो मौनिनो मुखशब्दं चापल्यं वर्जयंतः सशेषं भुंजीरन् ॥ दधिक्षीरघृतपायसानि तु निःशेषम् ॥ "आपोशनकरे विप्रे संकल्पाच्छिद्रभाषणात् ॥ निराशाः पितरो यांति० ॥" आपोशनं दक्षिणभागे कार्यं न तु वामभागे ॥ पुनरापूर्यापोशनं सुरापानसमम् ॥ "आपोशनमकृत्वान्नं मर्दयेन्नैव कर्हिचित्॥" विप्रैर्बलिदानं न कार्यम् ॥ केचिदाज्येन कुर्वंति तन्न पायसाज्यमाषान्नैर्बलिदाननिषेधात ॥ विप्राश्च

वामकरेणान्नं न स्पृशेयुर्न पदा भाजनं स्पृशेयुः ॥ संपादितमेव वस्तु करादिना याचेयुर्नासंपादितम् ॥ अन्नगुणदोषान्न कीर्तयेयुः ॥ कर्ता चानिषिद्धान्नं भोक्तुः पितुश्चात्मनश्च प्रियं प्रयच्छन् तत्तदन्नमाधुर्यादिगुणकीर्तनेन प्ररोचयन् ददामीत्यवदन्याचितं यच्छन्भुंजानानपश्यन्हविर्गुणानपृच्छन्दैन्याश्रुपातक्रोधादिकमकुर्वञ्जलं पाययञ्छनैर्भोजयेत ॥ "उच्छिष्टाः पितरो यांति पृच्छतो लवणादिकम् ॥"

फिर मौनधारैं मुखशब्द और चापल्यको छोडकर भोजन करै, और भोजनका शेष रहने दे। और दधि, दूध, घृत, पायस, इनका शेष न छोडै। जब ब्राह्मणके हाथमें आपोशन होय तब संकल्प और छिद्र कहनेसे पितर निराश जाते हैं। आपोशनको दक्षिण भागमें करै। वाममें नहीं। दुबारा जलको भरके आपोशन करना मदिराके समान है। आपोशन किये विना अन्नको कदाचित् भक्षण न करै। ब्राह्मण बलिदानको न करै। कोई तो घीसे करते हैं सो ठीक नहीं। क्योंकि, पायस, घी, उडद; इससे बलिदानका निषेध है। ब्राह्मण वाम करसे अन्नका और चरणोंसे भोजनपात्रका स्पर्श न करैं। और यजमानने सम्पादन कीहुई वस्तुओंको ही करादिसे मांगे विना बनाई न मांगे। अन्नके गुण दोषोंको न कहैं और कर्ता; अनिषिद्ध भोक्ता और पिता और आत्मा इनको प्रिय अन्नको देताहुआ उस अन्नके माधुर्य आदिगुणोंको कहकर ब्राह्मणोंकी रुचिके अनुसार याचित (मांगेहुये) अन्नको दे। और देताहूं यह न कहै। भोजन करतेहुयेको न देखै। हविके गुणोंको न पूछै दीनतासे अश्रुपात और क्रोध आदिको न करै। और जल पिलाताहुआ ब्राह्मणोंको भोजन करावै। यह कहा है, कि, लवण आदिके पूँछनेसे उच्छिष्टहुये पितर निराश जाते हैं॥

अथाभिश्रवणसूक्तानि।

अथ सव्येनैव सव्याहृतीं गायत्रीं त्रिरुक्त्वा पौरुषं सूक्तं कृणुष्वपाजो रक्षोहणमित्याद्या रक्षोघ्नीः पितृलिंगकानिंद्रेशसोमसूक्तपावमानीसूक्तान्यप्रतिरथसंज्ञमाशुःशिशानसूक्तम् ॥ विष्णुब्रह्मरुद्रार्कस्तोत्रादिकं भोक्तृविप्राञ्श्रावयेत् ॥ असंभवे गायत्रीजपं कुर्यात् ॥ "वीणावंशध्वनिं चापि विप्रेभ्यः सन्निवेदयेत् ॥ मंडलब्राह्मणं पाठ्यं नाचिकेतत्रयं तथा ॥ त्रिमधु त्रिसुपर्णं च पावमानयजूंषि च ॥ आशुःशिशानसूक्तं च अग्नये कव्यवाहनम् ॥ प्रौढपादो बहिःकक्षो बहिर्जानुकरोपि वा ॥ अंगुष्ठेन विनाश्नाति मुखशब्देन वा पुनः ॥ पीतावशिष्टतोयानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् ॥ खादितार्धं पुनः खादेन्मोदकादिफलादिकम् ॥ मुखेन वाधमेदन्नं निष्ठीवेद्भाजनेपि च ॥ इत्थमश्नन्द्विजः श्राद्धं हत्वा गच्छत्यधोगतिम् ॥ श्राद्धपंक्तौ तु भुंजानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ॥ तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥" पात्रे विप्रांतरोच्छिष्टसंसर्गे तन्निरस्य हस्तं प्रक्षाल्य भुक्त्वा स्नात्वा द्विशतं जपेत् ॥ उच्छिष्टभोजने सहस्रं जपेत् ॥ "भुंजानेषु तु विप्रेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् ॥ पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं विप्रं नियोजयेत् ॥"

अपसव्य होकर व्याहृतियोंसहित गायत्रीको तीन बार पढकर पुरुषसूक्तका और "कृष्णुष्व पाज० ॥ रक्षोहणं०" इत्यादि रक्षोघ्नी ऋचा और पितरोंका है नाम जिनमें ऐसे इन्द्र, ईश, सोम; इनके सूक्त और अप्रतिरथ 'आशुः शिशान' सूक्त, और विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, सूर्य, इनके स्तोत्र आदिको ब्राह्मणोंके भोजन करनेके समय सुनावै । और सब न सुना सके तो गायत्रीका जप करै, और वीणावंशका शब्द भी ब्राह्मणोंको निवेदन करै । आर मण्डलम बैठा कोई ब्राह्मण०। पाठ्य०। तीनों नाचिकेत, तीन वार मधु, तीन सुपर्ण, पावमान, यजुर्वेद, आशुः शिशान सूक्त, अग्नये कव्यवाहन, इन सबको पढै । और जानु उठाये वा कुक्षिसे बाहिरकिये, जानुसे हाथ बाहिरकिये, अंगूठा विना मिलाये, और मुखसे शब्द करके; जो भोजन करता है, और पीनेसे बँचे जलको जो फिर पीवै, और मुखसे खाये ग्रासके अर्द्धभाग मोदक फलोंको फिर भक्षण करै, मुखसे अन्नको जो धमैं (फूँके), पात्रमें जो थूकै; इस प्रकार श्राद्धमें ब्राह्मण भोजन करैं तो अधोगतिको प्राप्त होता है । श्राद्धपंक्तिमें भोजन करताहुआ ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणका स्पर्श करै तो पात्रमें परसेहुये ही अन्नको खाकर आठसौ गायत्री जपै । पात्रमें दूसरे ब्राह्मणके उच्छिष्टका सम्बन्ध हो जाय तो उसको दूर करके हाथ धोनेके अनन्तर भोजनके पीछे स्नान करके सौ (१००) गायत्री जपै । उच्छिष्टका भक्षण करै तो सहस्र जपै । भोजन करते समय ब्राह्मणोंका अज्ञानसे मलका त्याग हो जाय तो पादकृच्छ्र करै, दूसरे ब्राह्मणको बैठावै ॥

अथ विप्रवमने ।

तत्र पित्रादिविप्रवमने लौकिकाग्निस्थापनचरुनिर्वापाज्यभागांते नामगोत्रपूर्वकमग्नौ पितॄनावाह्य वैश्वदेविकवमने देवानावाह्य संपूज्यान्नत्यागं कृत्वा प्राणाय स्वाहेत्यादि मंत्रैर्द्वात्रिंशदाहुतीर्जुहुयात् पुनः श्राद्धं वा कुर्यादिति पक्षद्वयम् ॥ पक्षद्वयेपींद्राय सोमेति सूक्तजपो नित्यः॥ अनयोः पक्षयोर्व्यवस्थोच्यते॥ वैश्वदेविकविप्रवमने होम एव न पुनः श्राद्धम् ॥ पित्र्यविप्रेष्वपि पिंडदानोत्तरं वांतौ होम एव न पुनः श्राद्धम् ॥ पिंडदानात्प्राक् पित्र्यविप्रवांतौ तद्दिने उपवासं कृत्वा परेद्युः पुनः श्राद्धं कार्यम् ॥ इदं सपिंडीकरणमहैकोद्दिष्टमासिकाब्दिकप्रत्याब्दिकश्राद्धेष्वेव ॥ दर्शादौ तु वमने तद्दिन्न एवामेन श्राद्धं कार्यम् ॥ एवमष्टकान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेष्वपि ॥ तत्रामश्राद्धे साम्रेर्वह्नवृत्तस्य व्यतिषंगादियथोक्तप्रयोगासंभवात्सांकल्पिकविधिना दर्शान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धान्यामेन कार्याणि तत्तल्लोपप्रायश्चित्तं वा निबंधोक्तं कर्तव्यमिति भाति ॥ वृद्धिश्राद्धे पिंडरहितसंक्रात्यादिश्राद्धे नित्यश्राद्धे च वमने आवृत्तिरेव ॥ तीर्थश्राद्धं दर्शवदामेनैव ॥ महालयश्राद्धे पार्वणस्थानीयविप्रवमने पुनरावृत्तिः ॥ एकोद्दिष्टस्थानीयविप्रवमने होम एवेति भाति ॥ वैश्वदेविकविप्रवमने सर्वश्राद्धेषु होम एवेत्युक्तमेव ॥ होमपक्षे आवृत्तिपक्षे च सर्वत्र सूक्तजपो नित्य इत्यप्युक्तम् ॥

अब ब्राह्मणके वमनमें कहतेहैं। कि वहां पिता आदि ब्राह्मणके वमनमें लौकिक अग्निका स्थापन, चरुनिर्वाप, आज्यभाग; इनके अन्तमें नाम गोत्रको कहकर अग्निमें पितरोंका आवाहन करके, और देवब्राह्मणके वमन होनेपर देवताओंका आवाहन करके, पूजा और अन्नके त्याग (संकल्प) को करके, "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मंत्रोंसे बत्तीस (३२) आहुति दे। अथवा फिर श्राद्धको करै; ये दो पक्ष हैं। इन दोनों पक्षोंमें भी "इंद्राय०॥" और "सोमाय०॥" इन सूक्तोंका जप नित्य है। इन पक्षोंकी व्यवस्थाको कहते हैं। विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणके वमनमें तो होम ही होताहै; पुनः श्राद्ध नहीं। पिंडदानसे पहिले पितृब्राह्मणको वमन हो जाय तो उस दिन उपवास करके परदिनमें फिर श्राद्ध करै। यह भी सपिंडी, एकोद्दिष्ट, मासिक, वार्षिक; श्राद्धोंमें ही है। और दर्श आदिमें वमन होजाय तो, उसी दिन आम अन्नसे श्राद्ध करै। इसी प्रकार अष्टका, अन्वष्टकाको; पहिले दिनके श्राद्धोंमें समझना। उनमें भी आमश्राद्धके विषै जो अग्निहोत्री बह्वृच है उसको व्यतिषंग आदि उक्त प्रयोगका असंभव है। इससे संकल्पविधिसे दर्श अन्वष्टकाके, पहिले दिनके श्राद्ध आम अन्नसे करने। अथवा शास्त्रोंमें कहे तिस २ श्राद्धके लोपमें जो प्रायश्चित्त है वह करै। यह हमको भासता है। वृद्धिश्राद्धमें और पिंडरहित संक्रांत्यादि श्राद्धमें और नित्यश्राद्धमें वमन हो जाय तो श्राद्ध दुबारा ही करै। और तीर्थश्राद्धमें दर्शके समान आम अन्नसे ही करै। महालयश्राद्धमें पार्वणके ब्राह्मणको वमन हो जाय तो पुनः आवृत्ति होती है। एकोद्दिष्टके ब्राह्मणको वमन होजाय तो होम ही होताहै यह हमको प्रतीत होताहै। विश्वेदेवाओंके ब्राह्मणको वमन हो जाय तो सब श्राद्धोंमें होम ही होताहै यह कह ही आये। होमपक्ष और आवृत्तिपक्षके सब श्राद्धोंमें सूक्तका जप नित्य है, यह भी कह ही आये॥

अथ भोजनांते कृत्यम्।

भोजनांते प्राचीनावीती तृप्तास्थेति विप्रान्पृष्ट्वा तृप्ताः स्म इति प्रत्युक्तो गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचमक्षन्नमीति च श्रावयित्वाथ वाऽक्षन्नमित्येतदंते तृप्तिप्रश्नं कृत्वा श्राद्धं संपन्नमिति पृष्ट्वा सुसंपन्नमित्युक्तः परिवेषणकाले अनुद्धरणेधुना पिंडार्थं सर्वान्नादुद्धृत्य विकिरार्थं चोद्धृत्यान्नशेषैश्च किं कार्यमिति पृच्छेत स द्विजान्॥ ते इष्टैः सह भोक्तव्यमिति प्रत्युक्तिपूर्वकम्॥ "प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वीकुर्युर्वा यथारुचि॥" कातीयैस्तु तृप्तान्ज्ञात्वा वक्ष्यमाणप्रकारेण विकिरं दैवे पित्र्ये च दत्त्वा विप्रेभ्यः पितृपूर्वकं सकृदपो दत्त्वा गायत्रीं मधुमतीश्च श्रावयित्वा तृप्तिप्रश्नः संपत्तिप्रश्नश्च कार्यः॥ एवं शाखांतरेप्युत्तरापोशनात्पूर्वमेव विकिरदानम्॥

भोजनके अन्तमें प्राचीनावीती होकर 'तृप्त भी हुये' यह ब्राह्मणोंसे पूछकर 'तृप्त हुये' यह कहा है ब्राह्मणोंने जिसको ऐसा कर्ता; 'सगायत्री मधुवाता' ये तीन ऋचा, अक्षन्नमी; इन मंत्रोंको सुनाकर अथवा 'अक्षन्नमी०' इस मंत्रके पीछे तृप्तिके प्रश्नको करके 'श्राद्ध सम्पन्न हुआ' यह पूछकर; 'भलीप्रकार सम्पन्न हुआ' ऐसा ब्राह्मणोंके कहनेपर परोसेनके समय न निकासा होय तो अब पिण्डोंके लिये सम्पूर्ण अन्नको निकासकर और विकिरकेलिये पृथक् रखकर 'शेष अन्नोंसे क्या करैं' यह ब्राह्मणोंसे पूछे, वे; 'इष्टोंके संग भोजन

करो' यह कहकर सब अन्न यजमानको देदें वा अपनी रुचिके अनुसार आप स्वीकार करलें । कात्यायन तो तृप्तोंको जानकर आगे कहेहुये प्रकारसे देव और पितृश्राद्धमें विकिर देकर और ब्राह्मणोंको प्रीतिसे एकबार जलको देकर, गायत्री मधुमती ऋचाओंको सुनाकर तृप्ति और संपत्तिका प्रश्न करै । इसीप्रकार अन्यशाखाओंमें भी उत्तरापोशनसे पहिले ही विकिरका दान है ॥

अथ बह्वृचाना पिंडदानांते विकिरः ।

बह्वृचानां तु पिंडांत एव विकिरः ॥ हिरण्यकेशीयैराचांते उक्तः ॥ तत उच्छिष्टभाग्भ्योन्नं दीयतामित्युक्ता विप्राः पात्रस्थं भुक्तशेषं दैविकं दक्षिणे पैतृकं वामे बहिः कृत्य पितृपूर्वं दत्तमुत्तरापोशनममृतापिधानमसीति कुर्युः ॥ पिंडदानं त्वाचांतेष्वनाचांतेषु वा विप्रेषु कार्यम् ॥ विप्राश्च मुखप्रक्षालनपूर्वकहस्तप्रक्षालनादिशरावादौ कुर्युर्न कांस्यताम्रपात्रयोः शुद्धोदकेनाचम्य कया न इति त्र्यृचं जपेयुः ॥

बह्वृचोंके यहां तो पिंडोंके अन्तमें ही विकिर है । हिरण्यकेशीयोंने आचमनके अन्तमें कहा है । फिर 'उच्छिष्टभागियोंको अन्न दो' यह कहाहै यजमानने जिनको; ऐसे ब्राह्मण पात्रमें स्थित भोजनके शेष देवताओंके अन्नको दक्षिणमें और पितरोंके अन्नको वामभागमें बाहिरकरके पिताके क्रमसे दियेहुये उत्तर आपोशनको 'अमृतापिधानमसि' यह पढकर करै । पिंडदान तो ब्राह्मणोंके आचमनसे पहिले या पीछे करना ब्राह्मण; मुख प्रक्षालनके अनन्तर हस्तोंका प्रक्षालन शराव आदिमें करैं; कांसी,तांबेके पात्रोंमें करैं । फिर शुद्धजलसे आचमन करके "कयान०" इन तीन ऋचाओंको जपैं ॥

अथ पिंडदानम् ।

तच्चार्चनोत्तरमग्नौकरणोत्तरं भोजनोत्तरं विकिरोत्तरं स्वधावाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरमिति षट् पक्षाः स्मृत्युक्ताः ॥ तेषां शाखाभेदेन व्यवस्थेति सिंधुः ॥ तत्राश्वलायनानां भुक्तवत्स्वनाचांतेष्वाचांतेषु वा विप्रेषु पिंडदानं ततो विकिरः ॥ आपस्तंबहिरण्यकेशीयादीनां विप्रविसर्जनांते पिंडदानम् ॥ कातीयानां विकिरोत्तरमाचांतेष्वनाचांतेषु वा ॥ तत्राग्निहोमेग्निसमीपे पाणिहोमे विप्रसमीपे बह्वृचानां पिंडदानम् ॥ अन्येषां प्रायो विप्रसमीप एव ॥ तत्र द्विजोच्छिष्टादुत्तरतो व्याममात्रेऽरत्निमात्रे वा पिंडदानं संकल्प्य बह्वृचानामेककरेणान्येषां कराभ्यां धृतेन स्फ्येन खादिरकाष्ठेन दर्भमूलेन वापहतासुरा इति मंत्रं प्रतिलेखं पठन्नाग्नेय्यग्रं प्रत्यगपवर्गं पार्वणसंख्यया रेखामेकां द्वित्र्यादिकां वोल्लिख्य प्रत्येकमभ्युक्षेत् ॥ पिंडसंकल्परेखाकरणे च सव्यापसव्ययोर्विकल्पः ॥ अत्र कातीयैर्ये रूपाणीति मंत्रेणाग्नौकरणाग्नेरुल्मुकं रेखादक्षिणतो निधेयम् ॥ रेखासु सकृदाच्छिन्नं बर्हिर्दक्षिणाग्रमास्तीर्य शुंधंतां पितरः शुंधंतां पितामहा इत्यादिमंत्रैस्तिलोदकं बर्हिष्या-

सिंचेत् ॥ अत्र कातीयानां पितरमुकनामगोत्रावनेनिक्ष्वेत्यादिमंत्राः ॥ अन्येषां मार्जयंतां पितरः सोम्यास इत्यादयो मंत्राः ॥ अग्नौकरणशेषयुतसर्वान्नेन मधुसर्पिस्तिलमिश्रेण पिंडान्पल्या कारयित्वा रेखायां पराचीनपाणिना पितृतीर्थेन पित्रादिभ्यः पिंडान्दद्यात् ॥ एतत्तेऽस्मत्पितर्यथानामगोत्ररूप ये च त्वामत्रानुपित्रेऽमुकनामगोत्ररूपायायं पिंडः स्वधा नमस्तेभ्यश्च गयायां श्रीरुद्रपदे दत्तमस्त्वित्यादिमंत्रैरूहेन ॥ अत्र केषांचित्पिंडपात्रावनेजनं पात्रन्युब्जीकरणं च ॥ केचित्पिंडेषु माषान्नं वर्जयंति ॥ ततो लेपभाक्तृप्तये हस्तलेपं पिंडदर्भमूलेषु निमृज्यात्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति पिंडान्त्सकृदनुमंत्र्य सव्यपार्श्वेनोदङ्ङावृत्य यथाशक्ति प्राणान्नियम्य पर्यावृत्यामीमदंतपितर इति तथैवानुमंत्र्य सव्येन पिंडशेषमाघ्रायाचम्यान्यपवित्रे धृत्वापसव्येन शुंधंतामित्यादि यथासूत्रं जलनिनयनं पूर्ववत्कुर्यात् ॥ अत्र भुक्तशेषान्नाभावे द्रव्यांतरेण पिंडदानं कार्यम् ॥ कपित्थबिल्वकुक्कुटांडामलकबदराणां मध्ये शक्तितोऽन्यतमप्रमाणाः पिंडाः ॥ केचित्पार्वणपिंडत्रये यथोत्तरं प्रमाणाधिक्यमाहुः ॥ तथा हस्तलेपाभावेपि दर्भेषु हस्तं निमृज्यादेवेति मेधातिथिः ॥ एकोद्दिष्टश्राद्धेषु दर्भलेपो नेति सुमंतुः ॥ अत्र नीवीं विस्रस्याभ्यंजनादीति केचित् ॥ पिंडपूजनांते उपस्थानात्प्राक् नीवीविस्रंस इति श्राद्धसागरे ॥

अब पिंडदानको कहतेहैं। उसमें ये छः पक्ष स्मृतियोंमें कहेहैं। कि, पूजनके पीछे, अग्नौकरणके पीछे, भोजनके पीछे, विकिरके पीछे, स्वधावाचनके पीछे, ब्राह्मणोंके विसर्जनकिये पीछे; इनकी शाखाओंके भेदसे व्यवस्था है [यह निर्णयसिंधुमें लिखाहै। उसमें आश्वलायनोंके यहां भोजनके कर्ता ब्राह्मणोंके आचमनकिये पीछे वा आचमनसे पहिले पिण्डदान करै; फिर विकिर दे । और आपस्तंब हिरण्यकेशीयादिकोंके यहां ब्राह्मणोंके विसर्जनकियेपीछे पिण्डदान होताहै। कात्यायनोंके यहां विकिरके पीछे आचमनके अनन्तर वा पहिले होता है। वहां अग्निहोम भी होय तो अग्निके समीप, और पाणिहोम होय तो ब्राह्मणोंकेसमीप बहृवृचोंके यहां पिंडदान होताहै।और अन्य ब्राह्मणोंके यहां तो बहुधा ब्राह्मणोंके समीप ही होताहै। वहां द्विजोंके उच्छिष्टसे उत्तरकी तरफ व्याम (पुरासे) मात्र वा अरत्नीमात्र स्थलमें पिण्डदानका संकल्प करै। बहृवृचोंके यहां एकहाथसे और अन्योंके यहां दोनों हाथसे पकडेहुये स्फ्यसे वा खैरके काष्ठसे वा कुशाके मूलसे "अपहता असुरा०" इस मंत्रको रेखा २ में पढताहुआ आग्नेयी दिशाको है अग्र जिसका और पश्चिमको अपवर्ग (समाप्ति) जिसकी ऐसी एक (१) दो (२) तीन (३) आदि रेखाओंको पार्वणकी संख्याके अनुसार करके प्रत्येक रेखाको छिडके, पिण्डसंकल्प और रेखाओंके करनेमें सव्य अपसव्यमें विकल्प है । यहां कात्यायन तो "येरूपाणि०" इसमन्त्रसे अग्नौकरणका अग्निका जो उल्मुक है उसको रेखासे दक्षिणकी तरफ रक्खै । रेखाओंमें एकबार छः दिन कीहुई बर्हिको दक्षिणाग्रभागसे रखकर 'पिता पितामह, शुद्ध होयँ' इत्यादि मंत्रोंसे बर्हियोंपर तिल जल, छिडकै यहां कात्यायनोंके, 'अमुकनामगोत्रके पिता शुद्धिको प्राप्त होयँ' इत्यादि मंत्र हैं।

अग्नौकरणके शेषसे युक्त सम्पूर्ण अन्नसे मधु, घी, तिल मिलाकर पिण्डोंको पत्नीसे बनवाकर रेखाके ऊपर दक्षिण हाथसे पितृतीर्थसे पिता आदिको पिण्ड दे । हे यथा नाम गोत्ररूप हमारे पिता अमुकनाम गोत्ररूप जो तेरे अनुयायी हैं उनको और आपको यह पिण्ड नमस्कारपूर्वक स्वधा है । और यह गयामें श्रीरुद्रपदपर दियेकी तुल्य हो । यहां किन्हींके मतमें पिण्डपात्र अवनेजनपात्रका न्युब्जकरना भी है कोई तो पिण्डोंमें उडदके अन्नको वर्जते हैं । फिर लेपभुजोंकी तृप्तिके लिये हाथोंसे लगे अन्नको कुशाओंकी जडमें साफ करके, "अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वं०" इन मन्त्रोंसे पिंडोंका एकबार अनुमंत्रण करके वामपार्श्वसे उत्तरको मुख करके यथाशक्ति प्राणोंको रोककर, और मुखको फेरकर, "अमीमदंत०" इस मंत्रसे पिताका अनुमंत्रण करके सव्य होकर पिंडशेषको सूंघकर आचमनके अनन्तर अन्य पवित्रियोंको धारणकर अपसव्य होकर; "शुंधंतां०" इत्यादि मंत्रोंसे अपने सूत्रके अनुसार पूर्वके समान जलदान करे, और भोजनका शेष अन्न न होय तो दूसरे द्रव्यसे पिंडदान करे । और कैथ, बेल, कुक्कुटका अंडा, आंवला, बेर; इनके मध्यमें किसीकी तुल्य प्रमाणके शक्तिके अनुसार पिंड दे । कोई तो पार्वणके तीनों पिण्डोंमें उत्तरोत्तरके अधिक प्रमाणको कहतेहैं । तैसे ही हस्तलेप न भी होय तो भी कुशाओंमें हाथको मार्जन अवश्य करे, यह मेधातिथि कहते हैं; एकोद्दिष्ट श्राद्धोंमें दर्भलेप नहीं, यह सुमंतु कहतेहैं । यहां नीवीको ढीली करके, अभ्यंजन आदि करे । यह कोई कहतेहैं । पिण्ड पूजनके पीछे उपस्थान (स्तुति) के पहिले नीवीका ढीली करना है । यह श्राद्ध सागरमें कहाहै ॥

अथाभ्यंजनादि ।

अथास्मत्पितरमुकनामगोत्ररूपाभ्यंक्ष्वेति यथालिंगं मंत्रावृत्त्या पिंडेषु तैलं घृतं वाभ्यंजनं दर्भैर्दत्त्वा तथैवाङ्क्ष्वेति कज्जलं दद्यात् ॥ आपस्तंबानामादावंजनं ततोभ्यंजनम् ॥ एतद्वः पितरो वास इति मंत्रं प्रतिपिंडं पठन् वासो वा दशां वा त्रिगुणसूत्रं वा प्रतिपिंडे दद्यादिति हेमाद्रिः ॥ सकृन्मन्त्रं पठन्सकृदेव दद्यादित्यन्ये ॥ कातीयैस्तु मन्त्रेण प्रतिपिंडं नामगोत्राद्युच्चार्य त्रिगुणं सूत्रं देयम् ॥ ततः कशिपूपबर्हणे निवेद्यास्मत्पितृभ्य इति चतुर्थ्याक्षतगंधपुष्पधूपदीपसर्वप्रकारकनैवेद्यतांबूलदक्षिणादिभिः पिंडं पूजां सव्येनापसव्येन वा कुर्यात् ॥ " यत्किंचित्पच्यते भक्ष्यं भोज्यमन्नमगर्हितम् ॥ अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिंडमूले कथंचन ॥ " ततो नमो वः पितर इष इत्यादिमन्त्रैः पिंडानुपस्थायोत्तानहस्तेन परेतन इति मंत्रेण सकृदुक्तेन युगपत्प्रवाहयेत ॥ ततो दक्षिणाग्निहोमपक्षेऽग्नेतमद्याश्वमित्यग्निसमीपमागत्य यदन्तरिक्षमिति मंत्रेण गार्हपत्योपस्थानम् ॥ औपासने होमपक्षे गार्हपत्यपदरहिततन्मंत्रेणोपस्थानमिदं बह्वृचानामेव ॥ पाणिहोमे तु तेषामपि नास्त्येव ॥

इसके अनन्तर 'भो अमुक नाम गोत्र रूप हमारे पिता अभ्यंजनको ग्रहण करो' इस मन्त्रको यथालिंग पुनः पुनः पढकर पिंडोंपर घी वा तेलका अभ्यंजन कुशाओंसे देकर, 'आङ्क्ष्व' यह कहकर कज्जलको दे, आपस्तम्बोंके यहां तो पहिले अंजन फिर अभ्यंजन कहाहै । "एतद्व

पितरो वासः०" इस मन्त्रको प्रतिपिंड पढता हुआ वस्त्र, दशा, वा तिगुने सूत्रको पिंड २ पर दे । यह हेमाद्रिमें कहाहै । एकवार मन्त्रको पढता हुआ एकबार ही वस्त्रको दे । यह अन्य कहतेहैं । कात्यायन तो यह कहतेहैं । कि, मन्त्रसे प्रतिपिंड नाम गोत्र आदिका उच्चारण करके तिगुने सूत्रको दे । फिर कशिपु उपबर्हण (शय्या तकिया)का निवेदन करै "अस्मत् पितृभ्यः" इस चतुर्थीवाले मन्त्रसे अक्षत, गंध, पुष्प, धूप, दीप; सब प्रकारका नैवेद्य तांबूल, दक्षिणा आदिसे सव्य वा अपसव्य होकर पिण्डोंका पूजन करै । जो कुछ अन्न भक्ष्य वा भोज्य अनिन्दित पकाया होय उसको पिण्डके मूलमें निवेदन किये विना किसी प्रकार भी भोजन न करै । फिर "नमो वः पितरः० ॥ इषे०" इत्यादि मन्त्रोंसे पिंडोंकी स्तुति करके एकवार कहेहुये "परेतन:०" इस मन्त्रसे सीधे हाथमें लेकर एकवार प्रवाह करदे । फिर, दक्षिणअग्निमें जब होम है तब "अग्ने तमद्याश्वं०" इस मन्त्रसे अग्निके समीप आकर "यदंतरिक्षं०" इस मंत्रसे गार्हपत्यअग्निकी स्तुति करै । औपासनका अग्निमें जब होम है, तब गार्हपत्य पदके बिना उसके मन्त्रसे स्तुति करै; यह भी बह्वृचोंके यहां ही है । और पाणिहोमपक्षसे तो उनके यहां ही नहीं है ॥

अथ पत्न्यै पिंडदानम्।

वीरं मे दत्तपितर इति मंत्रेण मध्यममेकपिंडं पार्वणद्वये मध्यमपिंडद्वयमन्वष्टक्यादौ मध्यमपिंडत्रयमादाय पत्न्यै दद्यात् ॥ पत्नी आधत्त पितर इति मन्त्रेण सकृत्पठितेनैव पिंडमेकमनेकं वा प्राशयेत् ॥ आपस्तंबस्त्वपांत्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्वेति मध्यमपिंडं पत्न्यै प्रयच्छति ॥ प्राशनमन्त्रः स एव ॥ यथेह पुरुषो असदिति पाठमात्रं भिद्यते ॥ इत्थमेव कातीयानाम् ॥ इदं भार्यायाः पिंडप्राशनं प्रजाकामत्व एव ॥ केचिन्नित्यमाहुः ॥ भार्यानेकत्वे पिंडं विभज्य प्रतिपत्निमंत्रेण प्राशयेत् ॥ पार्वणद्वये पिंडद्वयं द्वाभ्यां देयम् ॥ पत्नीबहुत्वे गुणतो वयसा च योग्यायै पिंडो देयः॥ बह्वीनां योग्यत्वे एकस्मिन्दर्शे एकस्या अन्यस्मिन्नपरस्या इति ॥

'वीरं मे दत्तपितरः' अर्थात् हे पितरो मुझे वीर पुत्रको दो इस मन्त्रसे मध्यके एक पिंडको, दो पार्वणोंमें मध्यके दो पिंडोंको और तीन पार्वण होयँ तो मध्यके तीन पिंडोंको लेकर पत्नीको दे । और "पत्नी आधत्त मे पितरः" अर्थात् हे पितरो मुझे गर्भाधान करो । एक बार पढे हुये इस मंत्रसे एक वा अनेक पिण्डोंका भक्षण करै, आपस्तंब तो "अपां त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व" इस मंत्रसे पत्नीको मध्यम पिण्ड देतेहैं । और भक्षणका मंत्र भी वही है । 'यथेह पुरुषो असत्' यह पाठमात्रका ही भेदहै । ऐसे ही कात्यायनोंके यहां है । यह स्त्रीको पिंडका भक्षण प्रजाकी कामना होनेपर ही है । कोई तो इसको नित्य कहतेहैं । भार्या अनेक होयँ तो पत्नी २ के प्रति मंत्रसे भोजन करावै । दो पार्वण होयँ तो दो पिंड दोको दे । पत्नी बहुत होयँ तो गुण, वा अवस्थासे योग्यको पिंड दे । बहुतभार्या योग्य होयँ तो एक दर्शमें एकको, दूसरेमें दूसरीको दे । यह कहा है कि ॥

अथ गर्भिण्यादेः प्राशननिषेधः ।

"पत्नी रुग्णान्यदेशस्था गुर्विणी सूतिकापि वा ॥ तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति ॥" इतरौ जले क्षिपेत् ॥ "पुत्रादिकामनाभावे क्षिपेदग्नौ जलेपि वा ॥ पिंडांस्तु गोजविप्रेभ्यो वायसेभ्यः प्रदापयेत् ॥ तीर्थश्राद्धे सदा पिंडान्क्षिपेत्तीर्थे समाहितः ॥"

पत्नी; रोगिन, अन्य देशमें, गर्भवती, सूतिका; होय तो उस पिंडको बूढा बैल वा बकरा भक्षण करने योग्य है । दूसरे दो पिंडोंको जलमें फेंक दे । पुत्रादिककी कामना न होय तो अग्नि वा जलमें फेंक दे । पिंडोंको तो गौ, बकरी, ब्राह्मणों, वायसोंको दे दे । और तीर्थश्राद्धमें सदैव पिंडोंको तीर्थमें फेंकै ॥

अथ पिंडोपघाते ।

"श्वसृगालखरैः स्पृष्टः पिंडो भिन्नः प्रमादतः ॥ मार्जारमूषकैः स्पृष्टश्चांडालपतितादिभिः ॥ प्राजापत्यं चरेत्स्नात्वा पुनः पिंडान् यथाविधि ॥" पाकांतरेण तेन पाकेन वा पिंडदानमात्रं पुनः कार्यम् ॥ न सर्वश्राद्धावृत्तिरिति सर्वसंमतम् ॥ काकस्पर्शे तु न दोषः ॥

अब पिंडके उपघात (नाश) में कहते हैं । कुत्ता गीदड, खर; इनके स्पर्शसे यदि प्रमादसे पिंडका भेद होजाय तो और मार्जार, मूसा, चांडाल, पतित, आदि स्पर्श करलें तो प्राजापत्य करै और विधिपूर्वक अन्य पाकसे वा उसी पाकसे पिंडका दानमात्र पुनः करै संपूर्ण श्राद्धको न करै यह सबको संमत है । काकके स्पर्शमें तो दोष नहीं ॥

अथ पिंडनिषेधनिमित्तानि ।

"विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ॥ संस्कारेषु तथान्येषु वृद्धिमात्रे च मासकम् ॥ पिंडदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" श्राद्धांगतर्पणं नित्यतर्पणं च तिलैर्न कार्यमित्यर्थः ॥ महालये गयायां पित्रोः प्रत्यब्दे यस्य कस्यापि मृतस्य सपिंडीषोडशमासिकांतेषु प्रेतकृत्येषु कृतमंगलोपि पिंडान्दद्यात् ॥ केचिद् भ्रात्रादि वार्षिकेप्याहुः ॥ जीवत्पितृकत्वगर्भिणीपतित्वप्रयुक्तः पिंडदाननिषेधः प्रतिप्रसवश्च प्रागेवोक्तः ॥ " पिंडयज्ञे च यज्ञे च सपिंडयां दद्युरेव च " तथा विकृतान्वष्टकादौ यत्र पुनः पिंडदानविधिर्यत्र वा पूर्वेद्युः श्राद्धादौ पिंडं पितृयज्ञविकृतित्वं तत्रापि न पिंडदाननिषेध इति सिन्धुः ॥ तेनाष्टकाश्राद्धेपि न निषेध इति भाति ॥ अयं च मंगलोत्तरं पिंडदानतिलतर्पणनिषेधस्त्रिपुरुषसपिंडानामिति भाति ॥

अब पिंडका निषेध कहते हैं । विवाह, व्रत, मुंडन; इनमें वर्षतक उसके आधेतक वा तीनमासतक और तैसेही अन्य संस्कारोंमें और वृद्धिश्राद्धमें तो एकमासतक, पिंडदान, मिट्टीसे स्नान, तिलोंसे तर्पण, न करै । श्राद्धके अंगका तर्पण और नित्यका तर्पण तिलोंसे न करै यह अर्थ है । महालय, गया, मातापिताके प्रतिवार्षिक श्राद्ध इनमें और जिस किसीमृतकके

सपिंडी, षोडश मासिकपर्यंत, श्राद्धोंमें जिसने मंगलकार्य कियाहो वह भी पिंड दे । कोई भ्राता आदिके वार्षिकमें देना कहते हैं । पिंडयज्ञमें, यज्ञमें, सपिंडीमें; अवश्य दे । तैसे ही विकृति, अन्वष्टका आदिमें जहां पुनः पिंडदानकी विधि है वा जहां पहिले दिन श्राद्ध आदिमें पिंडपितृयज्ञ ही विकृति है वहां भी पिंडदानका निषेध नहीं यह निर्णयसिंधुमें कहा है । तिससे अष्टकाश्राद्धमें भी निषेध नहीं यह प्रतीत होताहै । और यह मंगलके पीछे पिंडदान, तिलतर्पणका निषेध तीनपुरुषतक सपिंडोंको है यह हमें भासताहै ॥

अथ विकिरदानप्रकारः ।

अथ पिंडोद्वासनांते विकिरो देयः ॥ उपवीती दैविकद्विजसन्निधौ सदर्भभुवि ॥ असोमपाश्च ये देवा इति मन्त्रेण सजलयवमन्नं विकिरेत् ॥ प्राचीनावीती पित्र्यद्विजसन्निधौ सदर्भभुवि ॥ ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धेत्यृचा सतिलमन्नं विकीर्य "अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्यदग्धाः कुले मम ॥ भूमौ दत्तेन तृप्यंतु तृप्ता यांतु परां गतिम्" इति कातीयसौत्रमंत्रेण सतिलजलेनाप्लावयेत् ॥ पिंडवद्विकिरोपि सार्ववर्णिकान्नस्यैव ॥ केचिदसोमपा इति दैवे विकिरं दत्त्वा संस्कृतप्रमीतायेति पौराणमंत्रेण दत्त्वा पित्रे दत्त्वा ये अग्निदग्धा इत्यृचा पृथगुच्छिष्टपिंडं कुशोपरि दद्यादित्याहुः ॥ हस्तौ प्रक्षाल्य द्विराचम्यान्यपवित्रे धृत्वा हरिं स्मरेत् ॥ विकिरं पृथगेव निष्कास्य काकेभ्य उत्सृजेदिति काशिका ॥ देवद्विजहस्ते शिवा आपः संत्वित्यादिभिरपो गन्धपुष्पयवान्दत्त्वा भूमौ तेषु त्यक्तेष्वन्येक्षता आशीरर्थं देयाः ॥ एवं पित्र्यहस्तेष्वपसव्येनापो गन्धपुष्पतिलदानादि कृत्वा सव्येनामुकगोत्रशर्माहमभिवादयामि ॥ अस्मद्गोत्रं वर्धतामित्यादि ॥ केचिदत्र पित्र्यहस्ते गन्धतिलादिदानं सव्येनाहुः ॥ कातीयास्तु हस्तेक्षतदानांते क्षय्योदकं दत्त्वा ॥ अघोराः पितरः संत्वित्युक्त्वाभिवादनं दातारो नोभिवर्धतामित्यादिकमाहुः ॥

इसके अनंतर पिंडोद्वासन (विसर्जन) के अन्तमें विकिर देना कि, उपवीती (सव्य) होकर देवब्राह्मणके समीप कुशासहित भूमिमें 'असोमपाश्च ये देवाः, इस मंत्रसे जलसहित यवअन्नको विकिर दे । और प्राचीनावीती होकर पितृब्राह्मणोंके समीप कुशासहित भूमिमें 'ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धाः' इस ऋचासे तिलसहित अन्नका विकिर देकर अग्निसे दग्ध वा अदग्ध जो जीव मेरे कुलमें हैं वे भूमिपर दिये अन्नसे तृप्त हों और तृप्त होकर परमगतिको प्राप्त हों । इस कात्यायनके सूत्रमंत्रसे तिलसहित जलसे उस अन्नको स्नान करावै । पिंडके समान विकिर भी सब प्रकारके अन्नका ही होता है । कोई तो 'असोमपा' इस मंत्रसे देवताके विकिरको देकर 'असंस्कृत जो मेरे हैं' इस पुराणके मंत्रसे पिताको देकर "ये अग्निदग्धा" इस ऋचासे उच्छिष्टपिंडको कुशाके ऊपर पृथक् दे यह कहते हैं । हाथ धोकर दो बार आचमन पवित्रीधारण करके हरिका स्मरण करै । विकिरको पृथक् निकासकर काकोंको दे यह काशिकामें लिखा है । देवब्राह्मणके हाथमें 'शिवा आपः संतु०' इत्यादिमंत्रोंसे जल, गंध, पुष्प, जौं, देकर जब ब्राह्मण उनको भूमिमें त्यागदें आशीर्वादके लिये अन्य अक्षत

ब्राह्मणोंको दे, इसी प्रकार पितृब्राह्मणके हाथमें अपसव्यसे जल, गंध, पुष्प, तिल, दान, आदि करके नमस्कार करै कि, अमुकगोत्रनामका मैं नमस्कार करताहूं। कोई तो यहां पितृ ब्राह्मणके हाथमें सव्य होकर गंध, तिल, आदिका दान कहते हैं। कात्यायन तो हाथमें अक्षत दानके अनंतर अक्षय्य उदक देकर 'अघोराः पितरः संतु' यह कहकर नमस्कार और हमारे यहां दाताओंकी वृद्धि हो इत्यादि कहते हैं॥

अथ पात्रचालनम्।

एवमाशिषो गृहीत्वाक्षतान्मूर्धनि धृत्वा स्वयं शिष्यादिभिर्वा भोजनपात्राणि चालयित्वाचामेत्॥ अनुपनीतो नारी चासजातिश्च न चालयेत्॥ सव्येन दैवे पित्र्ये च स्वस्तिवाचनम्॥ देवेभ्यः स्वस्तीति ब्रूत पितृभ्योमुकनामगोत्रादिभ्यः स्वस्तीति ब्रूतेति॥ ततः सव्यापसव्याभ्यां तत्तदुच्चारपूर्वकमक्षय्योदकदानम्॥ ततो न्युब्जपात्रमुत्तानं कृत्वा ततः परं सर्वमुपवीत्येव कुर्यात्॥ द्विजेभ्यः सकर्पूरतांबूलादि दत्त्वा पितृपूर्वकं नामगोत्राद्युच्चार्य दक्षिणां दद्यात्॥ अमुकशर्माहममुकनामगोत्रपित्रादिस्थानोपविष्टाय विप्राय रजतदक्षिणां प्रतिपादयामीत्यादि॥ दैवे सुवर्णम्॥ अशक्तावुभयत्र यज्ञोपवीतं दक्षिणा॥

इस प्रकार आशीर्वादोंको ग्रहण करके अक्षतोंको मस्तकपर धरकर आप वा शिष्य आदिके द्वारा भोजन पात्रोंको चलायकर आचमन करै। और अनुनीत बालक, नारी और असजाति, ये पात्रोंको न चलावैं। सव्य होकर देव पितृ ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करावैं। कि, देवताओंके और पितरोंके स्वस्ति कहौ। फिर सव्य अपसव्यसे स्वस्ति कहनेके अनंतर अक्षय्य उदक दे। फिर ओंधेपात्रको उत्तान (सीधा) करके उससे आगे सब कर्म उपवीती होकर ही करै। ब्राह्मणोंको कर्पूरसहित तांबूल आदि देकर पिताके क्रमसे नाम गोत्र आदि कहकर दक्षिणा दे। 'अमुकशर्मा मैं पिताके स्थानमें बैठे अमुकनामगोत्रब्राह्मणको रजतकी दक्षिणा देताहूं' इत्यादि कहकर देवब्राह्मणको सुवर्ण और पितृब्राह्मणको रजत दे अशक्तिमें तो दोनों जगह यज्ञोपवीत दक्षिणा होती है॥

अथ स्वस्तिवाचनविसर्जनादि।

दक्षिणाः पांत्वित्युक्त्वा स्वधां वाचयिष्ये इति पृष्ट्वा॥ वाच्यतामित्युक्ते पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य स्वधोच्यतामित्युक्त्वास्तु स्वधेतितैरुक्ते पिंडसमीपे जलं निषिच्य स्वधासंपद्यतामिति संपत्तिं वाचयेत्॥ कातीये सूत्रे दातारो नोभिवर्धतामित्याशिषोर्थनं स्वधावाचनं न्युब्जपात्रोत्तानीकरणं दक्षिणादानं चेति क्रमः॥ ततो देवादिप्रीतिं वाचयित्वा पिंडस्थानेक्षतादि क्षिप्त्वा सव्येनैव वाजे वाजे इति मन्त्रेणोत्तिष्ठन्तु पितरो विश्वेदेवैः सहेति युगपद्धर्मेण पितृपूर्वं विप्रान् स्पृशन् विसृजेत्॥ आमावाजस्येति प्रदक्षिणीकृत्य ततो दातारोनोभिवर्धतामित्यादि वरयाचनम्॥ येषां विसर्जनांते पिंडदानं तेषामाचांतेषु सौमनस्यदक्षिणादिकाक्षय्यस्वधावाचनांते

दातारो नोऽभिवर्धतामित्यादि ततः पिंडदानादीति क्रमः ॥ हिरण्यकेशीयानां पिंडदानादिप्रयोगो विस्तृतत्वान्नोक्तः ॥ विप्रैर्वरे दत्ते स्वादुषंसदः० ब्राह्मणासः पितरः इति मंत्रौ पठेत् ॥ विप्रा इहैवस्तमायुः प्रजामिति वदेयुः ॥ आशीर्भिर्नंदितो विप्रान्पादाभ्यंगादिना संतोष्य नत्वाद्य मे सफलं जन्म० मन्त्रहीनं० यस्य स्मृत्येत्यादि विष्णुस्मरणपूर्वकं कर्मार्पयित्वा विप्रान्क्षमापयेत् ॥

दक्षिणा 'रक्षा करो' यह कहकर दे । 'स्वधां वाचयिष्ये' ऐसे पूछकर 'वाच्यताम्' यह ब्राह्मण जब कहदें; पिता, पितामह, इत्यादिका उच्चारण करके 'स्वधा कहो' यह कहै; ब्राह्मण 'स्वधा हो' ऐसे जब कहदें; पिंडके समीप जलको सींचकर 'स्वधासंपन्न हो' इससे संपत्तिका वाचन (कहाना) करावै । कातीयसूत्रमें तो यह क्रमहै कि, 'हमारे दाताओंकी वृद्धि हो' इससे आशीर्वाद मांगै । स्वधावाचन, औंधेपात्रोंको सीधा करना, दक्षिणा देना, फिर देव आदिकी प्रीतिका वाचन कराकर, पिंडके स्थानमें अक्षत आदि फेंककर सव्यसे ही 'वाजे वाजे'इसमंत्रसे विश्वेदेवाओंसहित पितर उठो इससे एकवार कुशासे पिताके क्रमसे ब्राह्मणोंका स्पर्श करताहुआ विसर्जन करै । 'आमावाजस्य०' इस मंत्रसे प्रदक्षिणा करके फिर दाताओंकी हमारे यहां वृद्धि हो इत्यादि वरकी याचना करै । जिनके यहां विसर्जनके अन्तमें पिंडदान है तिनके यहां आचमनके अन्तमें सौमनस्य दक्षिणाआदि अक्षय्य स्वधावाचनके अन्तमें हमारे दाताओंकी वृद्धि हो इत्यादि फिर पिंडदान आदि; यह क्रम है । हिरण्यकेशीयोंका पिंडदान-आदिका प्रयोग विस्तारहोनेसे नहीं कहा । ब्राह्मणोंके वर दिये पीछे "स्वादुषंसदः० ॥ ब्राह्मणासःपित०॥" इन दो मन्त्रोंको पढै । और ब्राह्मण "इहैवस्तं० ॥ आयुः प्रजाम्० ॥" इन मन्त्रोंको पढै । आशीर्वादोंसे प्रसन्नहुआ यजमान ब्राह्मणोंको पादाभ्यंग आदिसे सन्तुष्ट करके नमस्कार करै, और कहै कि' आज मेरा जन्म सफल हुआ । "मन्त्रहीनं० यस्य स्मृत्या०" इत्यादि विष्णुके स्मरणपूर्वक कर्मका समर्पण करके ब्राह्मणोंको क्षमा करवावै ॥

अथ श्राद्धभोजनशेषादिविचारः ।

"अष्टौपदान्यनुव्रज्य दक्षिणीकृत्य चाग्रतः॥ दीपहस्तेन निर्वाप्य पवित्रत्यागपूर्वकम् ॥" पादशुद्धिर्द्विराचामेदुच्छिष्टोद्वासनं ततः ॥ बह्वृचो वैश्वदेवं तु यथाविधि चरेत्ततः ॥ततस्तु वैश्वदेवांते सभृत्यसुतबांधवः॥भुंजीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥" श्राद्धशेषान्नं शिष्याय ज्ञातिभ्यश्च देयम् ॥ न शूद्राय ॥ "द्विजभुक्तावशिष्टं तु शुचिभूमौ निखानयेत्॥"अत्र पर्वादौ निषिद्धं माषाद्यपि भोक्तव्यं वैधत्वेन निषेधाप्रवृत्तेरिति केचित् ॥ अनिषिद्धभोजनेनापि श्राद्धशेषभोजनविधिसिद्धिरित्यन्ये ॥ श्राद्धशेषभोजनाकरणे दोषः ॥ श्राद्धदिने उपवासनिषेधाच्छ्राद्धशेषाभावे पाकांतरेण भोजनम् ॥ एकादश्यादाववघ्राणम् ॥ यत्र तूपवासो नावश्यकस्तत्रैकभुक्तम् ॥ श्राद्धशेषं दिवैव भोक्तव्यं न रात्रौ तेन नक्तव्रतेवघ्राणमेव ॥

आठ पदतक अनुगमनकर प्रदक्षिणा करके, दीपकको हाथसे बुझाकर पवित्रियोंको त्याग कर चरण धोकर दो बार आचमन करै । उद्वासनपर्यंत उच्छिष्ट होता है । फिर बह्वृच,

यथाविधि वैश्वदेवको करै। फिर वैश्वदेवके अन्तमें सेवक, अतिथि, पुत्र बन्धुओंसहित पितरोंके सेवितका भोजन करै। और श्राद्धके शेष अन्नको शिष्य और ज्ञातियोंको दे; शूद्रको न दे। और ब्राह्मणोंके भोजनसे शेष अन्नको भूमिमें गाड दे। और पर्व आदिमें; निषिद्ध भी उडद आदिका भोजन करै क्योंकि शास्त्रोक्त होनेसे निषेध नहीं लगता; यह कोई कहतेहैं। और अनिषिद्ध भोजनसे भी श्राद्धके शेष भोजनकी विधि सिद्ध है। यह अन्य कहतेहैं। श्राद्धशेषको भोजन न करै तो दोष है। श्राद्धके दिन उपवासका निषेध है। इससे श्राद्धशेष न होय तो दूसरा पाक बनाकर भोजन करै। एकादशी आदिको तो सूंघ ले। और जहां उपवास आवश्यक नहीं तहां एकबार ही भोजन करै। और श्राद्धके शेषका दिनमें ही भोजन करै। रातमें नहीं तिससे नक्तव्रतमें भी सूंघनाही है॥

अथ श्राद्धशेषभोजने कृच्छ्रम्।

"श्राद्धावशिष्टभोक्तारस्ते वै निरयगामिनः॥ सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत्॥" ब्रह्मचारियतिविधवानां नित्यं निषिद्धम्॥ ज्ञातिगोत्रसंबंधिभिन्नगृहे श्राद्धशेषभोजने प्राजापत्यं प्रायश्चित्तम्॥ यतीनां वपनं लक्षप्रणवजपश्च॥ गुरोर्योगिनो वा श्राद्धशेषं गृहिणो न दोषाय॥ "न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन् गृहे यत्नेन तद्दिने॥ श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि॥" इति श्रीमदनंतोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे पार्वणश्राद्धप्रक्रिया॥

जो श्राद्धके शेषके भोक्ताहैं वे नरकगामी हैं। और सगोत्र कुल जातिके जो हैं उनको तो दोष नहीं। और ब्रह्मचारी, संन्यासी, विधवा; इनको तो सदैव निषिद्ध है। और ज्ञाति, सगोत्र, सम्बन्धी, इनसे भिन्नोंके घरमें श्राद्धशेषका भोजन करै तो प्राजापत्य प्रायश्चित्त है। संन्यासियोंको मुण्डन और लक्ष ॐकारका जप प्रायश्चित्त है। और गुरु वा योगी इनके श्राद्धशेषके खानेमें गृहस्थको दोष नहीं; उस दिन उस घरमें यत्नसे शूद्रको न जिमावे। और सब श्राद्धोंमें श्राद्धका शेष शूद्रको न दे॥ ॥ इति श्रीमदनन्तोपाध्यायसुतकाशिनाथोपाध्यायविरचिते पं०मिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिसहिते धर्मसिंधुसारे पार्वणश्राद्धप्रक्रिया॥

अथ श्राद्धदिने वैश्वदेवनिर्णयः।

तत्र तावच्छ्रौताग्निमतां बह्वृचानां श्राद्धात्पूर्वं पृथक्पाकेन वैश्वदेवः॥ स्मार्ताग्निमतां निरग्निकानां च बह्वृचानां श्राद्धांत एव श्राद्धशेषेण पृथक्पाकेन वा॥ कातीयानां तु स्मार्तश्रौताग्निमतां श्राद्धीयपाकेन पूर्वमेव॥ निरग्निकानामंते श्राद्धशेषेण पृथक्पाकेन वा॥ तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः॥ पंचमहायज्ञास्त्वंते॥ अन्येषामादावंते वेति विकल्पः॥ तैत्तिरीयाणामेव वैश्वदेवात्पंचयज्ञा भिन्नाः॥ सर्वशाखिनां वृद्धिश्राद्धे पाकेन क्रियमाणे पूर्वमेव वैश्वदेवः॥ बह्वृचानामंते वा पूर्वं वा॥ आमादिना वृद्धिश्राद्धे सर्वेषां पूर्वमंते वेति भाति॥ नित्यश्राद्धे पूर्वमेव॥ एकादशाहाद्येकोद्दिष्टेषु साग्निरनग्निश्च सर्वोपि श्राद्धशेषं द्विजाधीनं कृत्वा पाकांतरेणैव वैश्वदेवादि कुर्यात्॥

इसके अनंतर श्राद्धके दिन वैश्वदेवका निर्णय कहतेहैं । उसमें श्रौताग्निवाले और बह्वृचोंके यहां श्राद्धसे पहिले दिन पृथक् पाकसे वैश्वदेव होता है और स्मार्ताग्निवाले और अग्निहोत्रसे रहितोंके यहां श्राद्धके अंतमें श्राद्धशेषसे वा पृथक् पाकसे होता है। और स्मार्त श्रौत अग्निवाले कात्यायनोंके यहां तो श्राद्धके पाकसे ब्राह्मणभोजनसे पहिले वैश्वदेव होता है । और जो कात्यायन अग्निहोत्री नहीं हैं । उनके यहां तो अंतमें श्राद्धशेषसे वा पृथक् पाकसे होता है । अग्निहोत्री जो तैत्तिरीय हैं, उनके यहां सब श्राद्धोंमें आदिमेंही वैश्वदेव होता है । पांच महायज्ञ तो अंतमें हाते हैं । अन्योंके यहां आदिमें वा अंतमें यह विकल्प है । तैत्तिरीयोंके यहां ही वैश्वदेवसे पांच महायज्ञ भिन्न हैं । सब शाखावालोंके यहां वृद्धिश्राद्धमें पाक करनेसे पहिले ही वैश्वदेव होताहै। बह्वृचोंके यहां तो अंतमें वा पूर्वमें होता है । आम-अन्न आदिसे जहां वृद्धिश्राद्ध है । उसमें तो सबके यहां पहिले वा अंतमें होता है । यह हमें प्रतीत होता है । नित्यश्राद्धमें तो पहिले ही होता है । एकादशाह आदि एकोद्दिष्टोंमें अग्नि-होत्री वा अग्निसे रहित सब मनुष्य श्राद्धशेषको ब्राह्मणोंके अधीन करके दूसरे पाकसे वैश्व-देव आदिको करै ॥

अथ नित्यश्राद्धम् ।

वार्षिकादिश्राद्धदिने श्राद्धात्पश्चात्तेनैव पाकेन पाकांतरेण वा नित्यश्राद्धं का-र्यम् ॥ नित्यश्राद्धीयसर्वदेवतानां प्रथमश्राद्धे प्रवेशे प्रसंगसिद्धिरेव ॥ तथा च दर्शादिषु महालयान्वष्टकादिषु नित्यश्राद्धलोप एव ॥ एतच्च देवहीनं दर्शवत्षड्दै-वतं द्वावेकं वा विप्रं निमंत्र्य देशकालान्ननियमहीनम् ॥ पुनर्भोजनब्रह्मचर्यादि-कर्तृभोक्तृनियमरहितं यादृशतादृशेनैवानिषिद्धान्नेन दिवैव रात्रौ प्रहरपर्यंतं वा कार्यम् ॥ स्वस्याशक्तौ पुत्रादिना ॥ सूतके दर्शादिवल्लोपः ॥ वृद्धास्तूत्तरं मंडपोत्था-नावधिसपिंडैर्न कार्यम् ॥ नित्यवैश्वदेवांतर्गतपितृयज्ञोत्तरं मनुष्ययज्ञात्प्रागेव भाति ॥ तत्र दर्शवत् षट्पितॄन् देवहीनानुच्चार्य नित्यश्राद्धं करिष्ये इति शिष्या-दिश्चेद्यजमानस्य पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य संकल्पयेत ॥ पितॄणामिदमासनमित्या-सनं नित्यश्राद्धे क्षणः क्रियतामिति क्षणः ॥ पूर्वोच्चारिताः पितरः अयं वो गंध इत्येवं गंधादिभिर्विप्रमभ्यर्च्य वर्तुले चतुरस्रे वा मंडले पात्रेन्नं परिविष्य पृथ्वीते पात्रमित्यादि ब्रह्मार्पणांतं दर्शवत् ॥ भोजनांते दक्षिणां दत्त्वा न वा दत्त्वा नम-स्कारेण विसर्जयेत् ॥ विप्रस्यान्नादेर्वाऽभावे यथाशक्त्यन्नमुद्धृत्य षोढा विभज्या-स्मत्पितृपितामहेत्यादि चतुर्थ्यंतं षड्देवता उच्चार्येदमन्नं स्वधा न ममेति त्यजेत्॥ तदन्नं विप्राय गोभ्यो वा देयं जलादौ वा त्याज्यं अन्नत्यागस्यापि लोपे आर्वन्नत्र मरुत इति ऋचो दशवारं जपेत् ॥ इति नित्यश्राद्धविधिः ॥

अब नित्यश्राद्धको कहते हैं । वार्षिक आदि श्राद्धके दिन श्राद्धके पीछे उसी पाकसे वा दूसरे पाकसे नित्यश्राद्ध करै । नित्यश्राद्धके सम्पूर्ण देवताओंका पहिले श्राद्धमें प्रवेश होनेपर प्रसंग सिद्धि ही है । तिससे दर्श आदि महालय और अन्वष्टका आदि

इनमें नित्यश्राद्ध लोप ही होताहै । यह नित्यश्राद्ध देवताओंसे रहित और पिता आदि छः देवताओं सहित एक वा दो ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर देश, काल, अन्न, इनके नियमसे रहित, पुनः भोजन, कर्ता भोक्ताके ब्रह्मचर्य आदि नियम; इनसे रहित; जैसे तैसे अनिषिद्ध अन्नसे ही दिनमें वा प्रहर पर्यंत रात्रिमें करना । अपना सामर्थ्य न होय तो पुत्र आदिसे करावै । सूतकमें तो दर्श आदिके समान वैश्वदेवका लोप होताहै । वृद्धिश्राद्धके पीछे; मंडपके उठने पर्यंत सपिंड न करैं । नित्य वैश्वदेवके अंतर्गत पितृयज्ञके पीछे, मनुष्य-यज्ञसे पहिले ही करना प्रतीत होताहै । वहां दर्शके समान देवताओंके विना छः पितरोंका उच्चारण करके नित्यश्राद्ध करताहूं । यह संकल्प, शिष्यआदि होय तो यजमानके पिता पिता-मह आदिका उच्चारण करके संकल्प करै । 'पितरोंको यह आसन है । ' इससे आसन दे । 'नित्यश्राद्धमें क्षण करो' इससे क्षण दे । पहिले कहे हुये आपको यह गंध है । इससे गंध आदिसे ब्राह्मणोंको पूज कर; वर्तुल वा चकोर मंडलमें पात्रके विषै, अन्नको परसकर 'पृथ्वीते पात्रं०' इत्यादिसे ब्रह्मार्पण पर्यंत कर्मको दर्शके समान करै । भोजनके अन्तमें दक्षिणा देकर वा न देकर नमस्कारके अनन्तर विसर्जन करै । ब्राह्मण वा अन्न आदि न होय तो यथाशक्ति अन्नको निकासकर उसके छः भाग करके हमारे पिता पितामह आदि चतुर्थ्यंत छः देवता-ओंका उच्चारण करके "पित्रे इदं अन्नं स्वधा न मम" यह कहकर दे । वह अन्न ब्राह्मण वा गौओंको दे । वा जलआदिमें त्यागदे अन्न त्याग भी न होसकै तो 'आर्चन्नत्र मरुत०' इस ऋचाको दश बार जपै ॥ इति नित्यश्राद्ध विधि ॥

अथ श्राद्धानुकल्पाः ।

अनेकविप्रालाभे देवस्थाने शालग्रामादिकं स्थापयित्वैकविप्रे पित्रादित्रयं माता-महादिसहितदेवताषट्कं चावाह्य सर्वं श्राद्धं कार्यमित्युक्तम् ॥ सर्वथा विप्रालाभे दर्भबटुश्राद्धमित्याद्यप्युक्तम् ॥

अब श्राद्धका अनुकल्प कहते हैं । कि, अनेक ब्राह्मण न मिलैं तो देवताओंके स्थानमें शालग्राम आदिका स्थापन करके एक ही ब्राह्मणमें पिता आदि तीन; और माता-मह आदि तीन; छः ओं देवताओंका आवाहन करके सम्पूर्ण श्राद्धको करै । यह कहआये । सर्वथा ब्राह्मण न मिलै तो दर्भ बटुकमें श्राद्ध करै । इत्यादि भी कहआये ॥

अथामश्राद्धम् ।

तत्र केनचित्संकटेन पाकासंभवे जातकर्माणि च ग्रहणनिमित्तकश्राद्धं चामश्राद्धं कार्यम् ॥ सपिंडकश्राद्धं मासिकं प्रतिवार्षिकं महालयाष्टकान्वष्टकादिश्राद्धं चामेन न कार्यम् ॥ शूद्रस्य तु दशाहपिंडादिश्राद्धमात्रमामेन न कदापि पाकेन ॥ तत्र पितॄनुद्दिश्यामुकश्राद्धं सदैवं सपिंडमामेन हविषा करिष्ये इति संकल्पः ॥ अन्यः प्रयोगः पूर्वोक्त एव ॥ पाकप्रोक्षणस्थाने आमप्रोक्षणम् ॥ आवाहने उशंतस्त्वे-ति मन्त्रे हविषे अत्तवे इत्यत्र हविषे स्वीकर्तवे इत्यूहः ॥ भस्ममर्यादांतं प्राग्वत् ॥ विप्रहस्तेषु तण्डुलैरग्नौकरणम् ॥ अन्नाच्चतुर्गुणं द्विगुणं समं वा तत्तदामं पात्रेषु

संस्थाप्य पाणिहोमशेषं पिंडार्थं संस्थाप्य पात्रेषु दत्त्वा पृथ्वी ते पात्रमित्यादि० ॥ इदमामं हव्यं कव्यमित्यादीदमाममममृतरूपं स्वाहेत्यादि यथाधर्मं मध्वित्यंतं प्राकृतम् ॥ यथासुखं जुषध्वमित्यस्यापोशनप्राणाहुतितृप्तिप्रश्नानां लोपः ॥ संपन्नवाचनांतेन्नशेषप्रश्नलोपः ॥ सर्वमते तण्डुलैः सक्तुभिर्वा पिंडदानम् ॥ केचिद्गृहसिद्धान्नेन पायसेन वा पिंडानाहुः ॥ एवं विप्रसमीपे पिंडदानांते नमो वः पितर इषे इत्यत्रोपस्थानमन्त्र इषेस्थाने आमद्रव्यायेत्यूहः ॥ पिंडोद्वासनांते पिंडजातीयद्रव्येण विकिरदानम् ॥ आमश्राद्धे स्वस्तीति ब्रूतेति वर्ज्यम्॥वाजेवाजे इति मन्त्रे तृप्तायातेति स्थाने तप्स्यथ यातेत्यूहः ॥ ततः प्राग्वच्छेषं समापयेत् ॥ आमश्राद्धं द्विजैः पूर्वाह्णे कार्यम् ॥ शूद्रैरपराह्ण एव ॥

इसके अनंतर आम श्राद्धको कहतेहैं । उसमें किसी संकटसे पाक न होसकै तो जातकर्ममें और ग्रहण निमित्तक श्राद्धमें आम श्राद्ध करै । और सपिंडी श्राद्ध, मासिक, प्रतिवार्षिक, महालय, अष्टका, अन्वष्टका, आदि श्राद्धको आमसे न करै । शूद्रके यहां तो दशाहपिंड आदि श्राद्धमात्र (सब) आम अन्नसे करै; कदापि पाकसे न करै । उसमें यह संकल्प है । कि, 'अमुक पितरोंका देव, पिंड, सहित अमुक श्राद्ध; आम अन्नसे करताहूं ।' अन्य सब प्रयोग पूर्वोक्त ही है । पाक प्रोक्षणके स्थानमें आम अन्नका प्रोक्षण करै । आवाहनके "उशंतस्त्वा०" इस मंत्रमें "हविष अत्तवे०" इसमें "हविषे स्वीकर्तवे" यह ऊह करना (बदलना) भस्मसे मर्यादा; पूर्वके समान है । ब्राह्मणके हाथसे तंडुलोंसे अग्नौकरण करै । अन्नसे चौगुना दूना वा बराबर वह २ आम अन्न पात्रोंमें रखकर, पाणिहोमका शेष पिंडोंके लिये रखकर पात्रोंमें देकर "पृथ्वीते पात्रम्०" इत्यादि पढै । और हव्य कव्य रूप और अमृतरूप यह आमअन्न स्वाहा इत्यादिको; धर्मके अनुसार मधु २ पर्यंत पूर्व किया समझना । और 'सुखसे भोजन करो' इसका और आपोशन, प्राणाहुति, तृप्तिका प्रश्न; ये आमश्राद्धमें नहीं होते । संपन्न वाचनके विना शेषप्रश्नोंका भी इसमें लोप है । सबके मतमें तंडुल वा सत्तुओंसे पिंडदान होताहै । कोई तो घरमें सिद्ध अन्नसे वा पायससे पिंडोंको कहते हैं । इसप्रकार ब्राह्मणके समीप पिंडदानके अंतमें; " नमोवः पितरः ॥ इषे० " यह स्तुतिका मंत्र है । वहां ईषेके स्थानमें 'आमद्रव्याय' यह ऊह है । पिंडोद्वासनके अंतमें पिंडकी जातिके द्रव्यसे विकिर दे । आमश्राद्धमें 'स्वति कहो' इसको छोडकर करै । "वाजेवाजे" इस मंत्रमें "तृप्ता यात" इसके स्थानमें "तप्स्यथ यात" यह ऊह है । तिसके अनंतर शेषको पूर्वके समान समाप्त करै । आमश्राद्धको द्विज पूर्वाह्णमें करैं । शूद्र भी अपराह्णमें ही करैं ॥

अथ हिरण्यश्राद्धप्रकारः ।

आमान्नाभावे हिरण्यश्राद्धमप्येवमेव संकल्पादौ सर्वत्र हिरण्यपदमामपदस्थाने योज्यम् ॥ आमवद्धेमप्रोक्षणम् ॥ अत्तव इत्यादि मन्त्रत्रयोहः प्राग्वदेव ॥ तंडुलादिभिर्हस्तेग्नौकरणं हिरण्यमन्नादष्टगुणं चतुर्गुणं द्विगुणं समं वा देयम् ॥ हिरण्य श्राद्धेपि दक्षिणास्त्येव ॥ श्राद्धीयमामं हेम वा द्विजदत्तं यथेष्टं विनियोज्यम् ॥ शूद्रदत्तं तु भोजनादन्यत्र विनियोज्यम् ॥ श्राद्धीयामेन पञ्चयज्ञाः श्राद्धं च न कार्य

म् ॥ हेमश्राद्धे आमश्राद्धं च पिंडदानविकल्पात्सांकल्पिकविधिनाप्येतद्द्वयम् ॥ सांकल्पिके च समंत्रकावाहनार्घ्याग्नौकरणपिंडदानविकिराक्षय्यस्वधावाचनप्रश्ना इत्येतत्सप्तकं वर्ज्यम् ॥ तत्रामुकश्राद्धमामेन हविषा हिरण्येन वा सांकल्पिकविधिना करिष्य इति संकल्पः ॥ शूद्रगृहेन्यदीयमपि क्षीराद्यपि न भक्ष्यम् ॥ किमुत तदीयमामादि तद्गृहे पक्वान्नं न भोक्ष्यमिति ॥ तस्माच्छूद्राल्लब्धं द्विजगृहे पक्वा भक्ष्यम् ॥ ॥ इत्यामश्राद्धहेमश्राद्धविधिः ॥

आमान्नके अभावमें हिरण्य (सोना) श्राद्ध भी ऐसे ही होताहै । संकल्प आदिमें सर्वत्र आमपदके स्थानमें हिरण्यपदका प्रयोग करना । आमअन्नके समान सुवर्णका प्रोक्षण करै । "अत्तवे०" इत्यादि तीन मन्त्रोंका ऊह; पूर्वके समान ही है । तंडुलआदिसे हाथमें अग्नौकरण करैं । सुवर्ण; अन्नसे आठ गुना, चौगुना, वा दुगुना, देना । हिरण्यश्राद्धमें भी दक्षिणा है ही । श्राद्धका आमअन्न, वा सुवर्ण, जो द्विजोंने दिया हो वह अपनी इच्छाके अनुसार खर्च करना । शूद्रका दिया तो भोजनके विना विनियोग (दान) के योग्य है । श्राद्धके आमअन्नसे पंचयज्ञ, और श्राद्ध न करने । सुवर्ण और आमश्राद्धमें पिंडदानका विकल्प है इससे ये दोनों संकल्पकी विधिसे भी होतेहैं । और संकल्पके श्राद्धमें; मंत्रोंसे आवाहन, अर्घ्य, अग्नौकरण, पिंडदान, विकिर, अक्षय्य, स्वधावाचन, प्रश्न; ये सातों वर्जित हैं । उसमें 'अमुक श्राद्धको आमहविसे वा सुवर्णसे संकल्पविधिके अनुसार करताहूं' यह संकल्प है । शूद्रके घर; अन्यके भी दूध आदिका भक्षण न करै । उसके घरके तो आम अन्न आदि पकान्नआदि भोजनके योग्य कहांसे होंगे । तिससे शूद्रसे मिले हुयेको द्विजोंके घरमें पकाकर भक्षण करै यह आमश्राद्ध हेमश्राद्धकी विधि पूर्ण हुई ॥

अथ पक्वान्नद्रव्यकसांकल्पिकश्राद्धविधिः ।

तत्र येषु संक्रांतियुगमन्वादिषु वृद्ध्युत्तरकालिकदर्शादिषु वा पिंडदानं निषिद्धं तत्र सर्वत्र सांकल्पिकविधिः ॥ यश्च पिंडदानादिबहुविस्तृतं श्राद्धमनुष्ठातुमशक्तः सोपि सांकल्पिकं कुर्यात् ॥ तद्यथा ॥ अमुकं श्राद्धं सांकल्पिकविधिनान्नेन हविषा करिष्ये इति संकल्प्य तृतीयक्षणदानांतं पूर्ववत्कृत्वार्घ्यदानं समंत्रकावाहनं च वर्जयेत् ॥ देवानावाहयामीति पितॄनावाहयामीत्येवावाह्य गंधादिपूजनादिभस्ममर्यादांतमग्नौकरणं वर्जयित्वा परिवेषणादिसंपन्नवचनांते उत्तरापोशनं विकिरपिंडदानवर्ज्यमक्षय्यवचनांतं कृत्वा स्वधां वाचयिष्ये स्वधोच्यतामिति वाक्यरहितं सर्वं पूर्ववत्समापयेत् ॥ ॥ इति सांकल्पिकप्रयोगः ॥

अब पकान्न द्रव्यके संकलपसे श्राद्धकी विधि कहतेहैं । उसमें जिन संक्रान्ति, युगादि, मन्वादि, तिथियोंमें और वृद्धिसे उत्तर कालके दर्शआदिकमें; पिंडदानका निषेध है । वहां सर्वत्र संकल्पकी विधि है । और जो पिंडदान आदि बहुत विस्तारके श्राद्ध करनेको असमर्थ है, वह भी संकल्पकी विधिसे करै । वह ऐसे है कि, 'अमुक श्राद्धको संकल्पविधिसे अन्नकी हविसे करताहूं, यह संकल्प करके; तीसरे क्षणदान पर्यंत कर्मको पूर्वके समान करके; अर्घ्य-

दान, मंत्रोंसहित आवाहनको वर्जे दे। देवताओंका, पितरोंका, आवाहन करताहूं। ऐसे ही आवाहन करके; गंधआदि, पूजन आदि, भस्म मर्यादाके, अंतमें अग्नौकरणको वर्जकर; परिवेषण आदि संपन्न वचनके अंतमें विकिर दानके विना उत्तरापोशनसे अक्षय वचन पर्यंतको करके; स्वधावाचन करताहूं; स्वधा कहो। इससे भिन्न सबको पूर्वके समान करें॥ सांकल्पिक प्रयोग पूर्ण हुआ॥

अथान्येप्यनुकल्पाः।

तत्र द्विजाद्यभावे दर्भबटुविधानेन पिंडदानमात्रमुक्तमथवा द्रव्यविप्रयोरभावे पक्वान्नस्य पैतृकसूक्तेन होमः कार्यः॥ "यद्वा श्राद्धदिने प्राप्ते भवेन्निरशनः पुमान्॥ किंचिद्दद्यादशक्तो वा उदकुंभादिकं द्विजे॥ तृणानि वा गवे दद्यात् पिंडान्वाप्यथ निर्वपेत्॥ तिलदर्भैः पितॄन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम्॥" अथवा तृणभारं दहेद्धान्यं वा तिलान्स्वल्पां दक्षिणां वा द्विजाय दद्यात्॥ अथवा संकल्पादिसर्वश्राद्धप्रयोगं पठेत्॥ सर्वाभावे वनं गत्वोर्ध्वबाहुः स्वकक्षं दर्शयन्निदं पठेत्॥ "नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यच्छ्राद्धोपयोगि स्वपितॄन्नतोस्मि॥ तृप्यंतु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य"॥ इति प्रभासखंडेन्येपि मंत्रा उक्ताः॥ इत्यनुकल्पाः॥

अब अन्य भी अनुकल्पोंको कहतेहैं। उनमें द्विज आदिके अभावमें दर्भबटुको विधिसे पिंडदानमात्र कहाहै। अथवा द्रव्य और ब्राह्मणके अभावमें पक्वान्नसे पितृसूक्तसे होम करै। वा श्राद्धदिनके आनेपर मनुष्य भोजन न करै और अशक्त भी ब्राह्मणको जलका घट, आदि किंचित् दे। वा गौको तृण दे वा पिंडदान करै। वा स्नान करके तिल कुश लेकर पितरोंको तृप्त करै। अथवा धान्य सहित तृणके भारको दग्ध करै। तिल, वा स्वल्प दक्षिणाको दे। अथवा संकल्पआदि संपूर्ण श्राद्धके प्रयोगको पढै। सबके अभावमें वनमें जाकर ऊपरको भुजाकिये अपनी कुक्षिको दिखाताहुआ यह पढै कि; मेरे यहां वित्त नहीं, धन नहीं, और श्राद्धका उपयोगी अन्य भी कुछ नहीं; मैं अपने पितरोंको नमस्कार करताहूं। मेरी भक्तिसे माता पिता तृप्त हों। मैं ये दोनों भुजा पवनके मार्गमें करदीहैं। प्रभासखंडमें अन्य भी मंत्र कहेहैं॥ अनुकल्प समाप्त हुये॥

अथ श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तानि।

दर्शश्राद्धे षट्प्राणायामाः॥ महालयादिश्राद्धेषु त्रिवर्षोर्ध्वप्रतिवार्षिकेषु च षट्प्राणायामाः॥ गायत्र्या दशकृत्वोभिमंत्रितस्य जलस्य पानं वा॥ एवमन्येष्वप्यनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धेषूक्तजलपानमेव॥ वृद्धिश्राद्धे प्राणायामत्रयम्॥ जातकर्मादिचूडांतसंस्कारांगवृद्धिश्राद्धे सांतपनकृच्छ्रं जातकर्मांगश्राद्धे चांद्रायणं वा॥ अन्यसंस्कारांगश्राद्धे उपवासः॥ सीमंतसंस्कारे तत्संस्कारांगश्राद्धे च चांद्रायणम्॥ आपदि दशाहांतर्नवसंज्ञकश्राद्धेषु एकादशाहे च श्राद्धभोजने प्राजापत्यकृच्छ्रम्॥ द्वादशाहिकसपिंडीश्राद्धे ऊनमासे च पादोनकृच्छ्रः॥ द्वितीयमासिकत्रैपाक्षिकोनषाण्मासिकोनाब्दिकेष्वर्धकृच्छ्रः॥ अन्यमासिकेषु प्रथमाब्दिके वर्षांतस-

पिंडनश्राद्धे च पादकृच्छ्रः ॥ उपवासो वा ॥ गुरवे द्रव्यं दातुं श्राद्धभोजने सर्वत्रोक्तार्धम् ॥ जपशीले तदर्धमनापद्यूनमासांतेषु चांद्रायणं प्राजापत्यं च ॥ द्विमासाद्युक्तचतुर्षु पादोनकृच्छ्रः ॥ त्रिमासादिषु पूर्वोक्तेष्वर्धकृच्छ्रः ॥ प्रथमाब्दिके पादोनकृच्छ्रः ॥ द्वितीयतृतीयाब्दिके एकोपवासः ॥ क्षत्रियश्राद्धे एतद्विगुणम् ॥ वैश्यश्राद्धे त्रिगुणम् ॥ शूद्रश्राद्धे सर्वत्र चतुर्गुणम् ॥ चांडालविषजलसर्पपश्वादिहतपतितक्लीबादिनवश्राद्धे चांद्रायणम् ॥ एकादशाहांतं पराकश्चांद्रं च ॥ द्वादशाहादौ पराकः ॥ द्विमासादिचतुर्ष्वतिकृच्छ्रः ॥ अन्यमासिकेषु कृच्छ्रः ॥ आब्दिके पादः ॥ अभ्यासे सर्वत्र सर्वं द्विगुणम् ॥ आमहेमश्राद्धे सांकल्पिके च तत्तदुक्तप्रायश्चित्तार्धम् ॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च पूर्वोक्तप्रायश्चित्तं कृत्वोपवासत्रयं प्राणायामशतं घृतप्राशनं चाधिकं चरेत् ॥ अनापदि द्विगुणं चरेत् ॥ दर्शादौ गृहिवदेव ॥ ब्रह्मचारिणश्चौलसंस्कारे भोजने कृच्छ्रः ॥ सीमंते चांद्रम् ॥ अन्येषूपवासः ॥ एकादशाहश्राद्धभोजने चांद्रं पुनः संस्कारश्चेति हेमाद्रिः ॥

अब श्राद्धके भोजनमें प्रायश्चित्त कहतेहैं। दर्शश्राद्धमें छः प्राणायाम, महालय आदि श्राद्धोंमें, तीन वर्षसे आगे प्रतिवर्षके श्राद्धमें छः प्राणायाम वा गायत्रीसे दश वार अभिमंत्रित किये जलका पीना, प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार जिनमें प्रायश्चित्त नहीं कहा ऐसे अन्य श्राद्धोंमें भी पूर्वोक्त जलका पीना; प्रायश्चित्त है । वृद्धिश्राद्धमें तीन प्राणायाम, जातकर्मसे मुंडन पर्यंत संस्कारोंके अंग, वृद्धिश्राद्धमें सांतपन कृच्छ्र; वा जातकर्मके अंगश्राद्धमें चांद्रायण, अन्य संस्कारोंके अंगश्राद्धोंमें उपवास, सीमंत, और उसके अंगश्राद्धोंमें चांद्रायण, आपत्तिमें दशाहके अंतर्गत नवसंज्ञक श्राद्धोंमें और एकादशाहमें श्राद्धभोजन करै तो प्राजापत्य कृच्छ्र प्रायश्चित्त है । बारह दिनके सपिण्डीश्राद्धमें और ऊनमासमें पादोनकृच्छ्र; द्वितीय मासिक, त्रैपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक, ऊनाब्दिकोंमें अर्द्धकृच्छ्र, अन्यमासिक, प्रथमवार्षिक और वर्षांत सपिंडन श्राद्धमें, पादकृच्छ्र; वा उपवास है । गुरुको द्रव्य देनेके लिये श्राद्धभोजनमें सर्वत्र आधा प्रायश्चित्त है । और जपशीलको तो उससे आधा है । विना आपत्तिके समय ऊनमास पर्यंतोंमें चांद्रायण, और प्राजापत्य है । दो मास आदि पूर्वोक्त चारोंमें, पादोनकृच्छ्र; तीन मास आदि पूर्वोक्त चारोंमें, अर्द्धकृच्छ्र; प्रथमवार्षिकमें, पादोनकृच्छ्र; दूसरे तीसरे वार्षिकमें, उपवास करना । क्षत्रियके श्राद्धमें इससे दुगुना; वैश्यके श्राद्धमें तिगुना; शूद्रके श्राद्धमें सर्वत्र चौगुना प्रायश्चित्त है । चांडाल, विष, जल, सर्प, पशु, आदिसे मरेहुये और पतित, क्लीब, आदि; इनके नवश्राद्धमें, चान्द्रायण है । एकादशाह पर्यंतमें पराक, वा चान्द्रायण; द्वादशाह आदिमें पराक है । द्विमास आदि चारोंमें, अतिकृच्छ्र; अन्य मासिकोंमें, कृच्छ्र; वार्षिकमें, पादकृच्छ्र; अभ्यासमें सर्वत्र सब प्रायश्चित्त दूना होताहै । और आम, सुवर्ण, श्राद्ध; संकल्पसे श्राद्ध;इनमें तिस २ उक्त प्रायश्चित्तका आधा प्रायश्चित्त है । संन्यासी और ब्रह्मचारी पूर्वोक्त प्रायश्चित्तको करके तीन उपवास; सौ प्राणायाम; घीका भक्षण अधिक करैं । विना आपत्तिके समय भी दूना करैं । दर्श आदिमें तो ये दोनों भी गृहस्थके समान ही करैं । ब्रह्मचारीको मुंडन

संस्कारके भोजनमें कृच्छ्र; सीमंतमें, चांद्रायण है। अन्योंमें उपवास है। एकादशाह श्राद्धके भोजनमें चांद्रायण और पुनः संस्कार है। यह हेमाद्रि कहतेहैं॥

अथ क्षयाहश्राद्धे विशेषः।

तत्र यस्य पित्रादेर्मरणं यन्मासे यत्पक्षे यत्तिथौ तद्दिनं तस्य मृताहस्तत्र पित्रादित्रिदैवत्यं वार्षिकश्राद्धं पुरूरवार्द्रवदेवसहितं कार्यम्॥ न चात्र सपत्नीकत्वं पित्रादीनाम्॥ नाप्यत्र मातामहादित्रयम्॥ अत्र तिथिद्वैधे निर्णयो रात्रावपि कार्यत्वं ग्रहणदिने तत्प्राप्तौ निर्णयो मलमासादिनिर्णयो दर्शदिने तत्प्राप्तौ निर्णयः शुद्धिश्राद्धनिर्णयश्च श्राद्धकालनिर्णयप्रसंगेन पूर्वोक्तोनुसंधेयः "पारणे मरणे चैव तिथिस्तात्कालिकी मता" इति वचनात्॥ मरणकालिकतिथेरपराह्णादिव्याप्त्याब्दिकश्राद्धनिर्णयो ज्ञेयः॥ पित्रोः प्रथमाद्याब्दिकश्राद्धं विभक्तैर्भ्रातृभिः पृथक्कार्यम्॥ अविभक्तत्वे ज्येष्ठेनैव॥ मातृमृताहे मात्रादित्रिदैवत्यं श्राद्धम्॥

अब क्षयाह श्राद्धमें विशेष कहतेहैं। उसमें जिस पिता आदिका मरण जिस मास, जिस पक्ष, जिस तिथिमें हो वह दिन उसका मृताह है; उसमें पिता आदि तीन देवताओंका श्राद्ध पुरूरव आर्द्रव देव रहित करै। इसमें पिता आदि सपत्नीक नहीं होते और न मातामह आदि तीन होतेहैं। इसमें दो तिथि होनेपर निर्णय रात्रिमें भी करना। ग्रहणके दिन वह दिन हो, मलमासमें हो, दर्शके दिन हो इनका निर्णय, और शुद्धि श्राद्धका निर्णय; ये सब काल निर्णयके प्रसंगसे पूर्वोक्तही समझना। पारणा और मरनेमें तत्कालकी तिथि मानी है। इस वचनसे मरण कालकी तिथि अपराह्णआदिमें व्याप्त आदिसे श्राद्धका निर्णय जानना। माता पिताका प्रथम वार्षिक श्राद्ध विभक्त भ्राता पृथक् २ करैं; अविभक्त होयँ तो जेठा ही करै। माताके मृताहमें माता आदि तीन देवताओंका श्राद्ध होताहै॥

अथ मातापित्रोर्मृताहैक्ये सहगमने च।

मातापित्रोर्मृताहैक्ये पूर्वं पितुः श्राद्धं कृत्वा स्नात्वा मातुः श्राद्धं कार्यम्॥ एवमेकदिने पित्रोर्मरणेन मातुर्भर्त्रा सह दाहकरणेपि ज्ञेयम्॥ सहगमने त्वेकमेव पाकं कृत्वा पितृमातृपार्वणद्वययुतं श्राद्धम्॥ षट्पिंडा अर्घ्याश्च विश्वेदेवास्तु न भिन्नाः॥ सहगमने सुवासिनीमरणे च विप्रपंक्तौ सुवासिनीमधिकां भोजयेत्॥ सुवासिन्यै कुंकुमादिस्त्र्यलंकारान्दद्यात्॥ सर्वत्र स्त्रीणां श्राद्धे वस्त्रयज्ञोपवीतगंधादिकमेव विप्रेभ्यो देयं न कुंकुमादि॥

माता और पिताका मृताह एक होय तो पहिले पिताके श्राद्धको करके स्नान करके माताका श्राद्ध करै। इसीप्रकार एकदिन; माता पिताके मरनेसे माताका भर्ताके संग दाह करनेमें भी जानना। सहगमन (सती होना) में तो एकपाकको करके पिता माताके दो पार्वणोंसे युक्त श्राद्ध होताहै। छः पिंड, छः अर्घ्य, होतेहैं। विश्वेदेवा तो भिन्न नहीं होत। सहगमन और सुहागिनके मरनेमें ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें अधिक सुवासिनियोंको जिमावै। सुवासिनीको

कुंकुम आदि स्त्रीके भूषणोंको दे । सर्वत्र स्त्रियोंके श्राद्धोंमें वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, आदिको ब्राह्मणोंको दे कुंकुम आदि न दे ॥

अथ सापत्नमात्रादिश्राद्धे ।

एवं सापत्नमातुर्मातामहतत्पत्न्योर्मातुलस्य पितृव्यतत्पत्न्योर्भ्रातुः श्वश्रूश्वशुरयोर्गुरोः पितृष्वसुर्मातृष्वसुर्भार्याया भर्तुर्भगिन्यादेश्चैतेषामपुत्रत्वे पार्वणविधिनैव प्रतिवार्षिकं श्राद्धं कार्यम् ॥ केचित्पितृमातृमातामहमातामहीव्यतिरिक्तानां सर्वेषामेकोद्दिष्टविधानेनैवेत्याहुः ॥ अत्र देशाचारानुसारेण व्यवस्था ॥ पित्रादिवार्षिकदिने पितृव्यादिवार्षिकप्राप्तौ स्वयं पित्रादिश्राद्धं कार्यम् ॥ पितृव्यादिश्राद्धं तु पुत्रशिष्यादिद्वारा कार्यं दिनांतरे वा स्वयं कार्यम् ॥ "संन्यासिनोप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्यात्सपार्वणम् ॥ " प्रथमे वर्षे वर्षांतसपिंडनपक्षे मृताहात्पूर्वदिने सपिंडनमब्दपूर्तिश्राद्धं च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कार्यम् ॥

इसीप्रकार सापत्न माताके मातामह और उसकी पत्नीके, मातुलके, पितृव्य और उसकी पत्नीके, भ्राताके, श्वश्रूके, श्वशुरके, गुरुके, पिता और माताकी बहिनके, भार्याके, भर्ताके, भगिनी आदिकेमें; समझना । इनके पुत्र न होय तो पार्वणकी विधिसे ही प्रतिवर्ष श्राद्ध करना । कोई तो यह कहतेहैं । कि, पिता, माता, मातामह, मातामही, इनसे भिन्न सबका श्राद्ध एकोदिष्ट विधिसे करै । इसमें देशाचारके अनुसार व्यवस्था है । पिता आदिके वार्षिक श्राद्धके दिन; पितृव्य आदिका वार्षिक आन पडै तो पिता आदिके श्राद्धको स्वयं करै । और पितृव्य आदिके श्राद्धको तो पुत्र शिष्य आदि द्वारा करावै । वा अन्य दिनमें स्वयं करै । संन्यासीके भी वार्षिक आदि पार्वण सहित श्राद्धको, पुत्र, स्वयं करै । जब पहिले वर्षके अन्तमेंही सपिंडी हो तब मृताहसे पहिले दिन सपिंडी और वर्ष पूर्तिके श्राद्धको करके परले दिन वार्षिकको करै ॥

अथ क्षयाहाज्ञाने निर्णयः ।

यस्य मृतस्य देशांतरमरणादिना मासो न ज्ञायते तिथिर्न ज्ञायते तस्य तन्मासे दर्शे शुक्लैकादश्यां कृष्णैकादश्यां वा प्रतिवार्षिकश्राद्धम् ॥ मृततिथिर्ज्ञाता मासो न ज्ञातस्तदा मार्गशीर्षे माघे वा भाद्रे वाऽषाढे वा तत्तिथौ वार्षिकम् ॥ तिथिमासयोरज्ञाने यद्दिने देशांतरं प्रस्थितस्तन्मासदिवसौ ग्राह्यौ ॥ प्रस्थानदिनादेरज्ञाने मृतवार्ताश्रवणतिथिमासौ ॥ प्रस्थानवार्ताश्रवणयोर्मासज्ञाने तिथेरज्ञाने तन्मासे दर्शादौ ॥ प्रस्थानादिमासविस्मरणे तिथिस्मरणे मार्गशीर्षादिषूक्तचतुर्षु तत्तिथौ वार्षिकम् ॥ मरणतच्छ्रवणप्रस्थानानां दिनमासयोरज्ञाने माघस्य मार्गशीर्षस्य वा दर्शे श्राद्धं द्वादशादिवर्षप्रतीक्षोत्तरं प्रतिकृतिदाहे दाहदिने वार्षिकादि ॥

अब क्षयाहके अज्ञानमें निर्णय कहतेहैं । जिस देशांतरमें मृतकका मरण आदिसे मासका ज्ञान हो उसका उस मासकी अमावस्याको वा शुक्ल एकादशीको प्रतिवार्षिक श्राद्ध करै । मृततिथि ज्ञात हो और मास ज्ञात न होय तो मार्गशिर वा माघमें भाद्रपद वा आषाढमें उस

तिथिको वार्षिक करै । तिथि मास दोनोंका ज्ञान न होय तो जिस दिन देशांतरमें गया हो वही मास और दिन लेने । प्रस्थान (जानेका दिन) आदि मालूम न होय तो मरेकी वार्ता जब सुनै वे ही तिथि मास ग्रहण करने । प्रस्थानकी वार्ता और श्रवणका ज्ञान हो और तिथिका अज्ञान होय तो उस मासके दर्श आदिमें करै । प्रस्थान आदिके मास तिथिका विस्मरण हो जाय तो मार्गशिर आदि पूर्वोक्त चारों मासोंमें उस तिथिको वार्षिक करै। मरना, मरनेका सुनना, प्रस्थान; इनके दिन मासोंका ज्ञान न होय तो माघ वा मार्गशिरके दर्शमें श्राद्ध करै । बारह वर्षतक प्रतीक्षाके पीछे पत्तलके दाहमें दाहके दिन ही वार्षिक आदि करै ॥

अथ श्राद्धविघ्ने निर्णयः ।

निमंत्रणोत्तरं विप्रस्य सूतके मृतके वा प्राप्ते आशौचं न ॥ निमन्त्रणं च द्वितीयक्षणरूपं समंत्रकं ग्राह्यं न लौकिकमिति भाति ॥ कर्तुस्तु पाकपरिक्रियोत्तरमाशौचाभावः ॥ पाकपरिक्रिया च समंत्रकं पाकप्रोक्षणमित्याहुः ॥ कर्तुर्गृहे भोजनारंभोत्तरं जनने मरणे वा भोजनशेषं त्यक्त्वा परकीयजलेनाचामेत् ॥ मम तु प्रतिभाति सर्वस्याप्याशौचापवादस्यानन्यगतिविषयत्वात्संकटाभावे पाकपरिक्रियोत्तरमपि कर्तुराशौचे तदंते श्राद्धम् ॥ भोक्तुस्तु भोजनारंभात्प्रागाशौचज्ञानेऽन्यो निमन्त्रणीयः ॥ भोजनारंभोत्तरमाशौचे तु कर्त्रा तथैव श्राद्धं समापनीयम् ॥ भोक्त्रा तु भोजनांते आशौचप्रकरणे वक्ष्यमाणं प्रायश्चित्तं कार्यम् ॥ संकटे तु पूर्वोक्तमिति युक्तं चेद्ग्राह्यम् ॥ अथ सिंधौ पाकोत्तरमाशौचाभाववचनस्य कर्तृमात्रपरत्वाद्भोक्तुः प्रायश्चित्तमाशौचं चोक्तं तद्यथा ॥ ब्राह्मणस्याशौचे श्राद्धे सकृत्कामतोन्नभोजने सांतपनकृच्छ्रम् ॥ अभ्यासे मासं कृच्छ्रं चरेत् ॥ अज्ञानाद्विप्रादीनां जाताशौचानामन्नभक्षणे एकाहं त्र्यहं पंचाहं सप्ताहं क्रमेणाभोजनमंते पञ्चगव्यप्राशनं च अभ्यासे द्विगुणम् ॥ आशौचं तु ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषामाशौचं तदन्ते प्रायश्चित्तं कुर्यादिति विष्णूक्तं ज्ञेयम् ॥ श्राद्धकालेन्यकाले चैतत्सममेवेति ज्ञेयम् ॥ दातृभोक्तृभ्यामभाभ्यामाशौचं न ज्ञातं चेन्न दोषः ॥

अब श्राद्धके विघ्नमें निर्णय कहतेहैं । निमंत्रणके पीछे ब्राह्मणके यहां जन्मसूतक वा मरण सूतक हो जायँ तो आशौच नहीं होता । यहां निमंत्रण भी मंत्रोंसहित द्वितीयक्षणरूप लेना । लौकिक नहीं यह हमें प्रतीत होताहै । कर्ताके तो पाक करनेके अनंतर आशौचका अभाव होताहै । वह पाक करना भी मंत्रोंसे पाकका प्रोक्षण लेना यह कोई कहतेहैं । कर्ताके घरमें भोजनके प्रारंभके पीछे जन्म वा मरण हो जायँ तो भोजनके शेषको त्यागकर अन्यके जलसे आचमन करै । मुझे तो यह प्रतीत होताहै । कि, जितने आशौचके अपवाद हैं अनन्य गति (लाचारी) के विषयमें हैं । इससे संकट न होय तो पाक परिक्रिया (प्रोक्षण) के पीछे भी कर्ताको आशौच होनेपर आशौचके अन्तमें श्राद्ध होताहै । भोक्ताको तो भोजनके आरं-

भसे पहिले आशौचका ज्ञान होय तो अन्य ब्राह्मणको निमंत्रण दे । भोजनारंभके पीछे आशौच होय तो कर्ता उसीप्रकार श्राद्धको समाप्त करै । भोक्ता तो भोजनके अन्तमें उस प्रायश्चित्तको करै; जो आशौच प्रकरणमें कहेंगे । संकटमें तो पूर्वोक्तको ही युक्त होय तो ग्रहण करै । और निर्णयसिंधुमें तो पाकके पीछे जो आशौचके अभावका वचन है, वह कर्ताके ही लिये है । भोक्ताको तो प्रायश्चित्त वा आशौच कहाही है । वह ऐसे है कि, ब्राह्मणके आशौच श्राद्धमें एकबार जानकर भोजन करनेमें सांतपन कृच्छ्र है; अभ्यासमें तो मासकृच्छ्र करै । अज्ञानसे जन्म आशौचवाले चारों ब्राह्मण आदिके अन्नको भक्षण करै तो एक, तीन, पांच, सात, दिनतक, क्रमसे अभोजन (व्रत) और अन्तमें पंचगव्यका भक्षण करै । और अभ्यासमें तो दूना प्रायश्चित्त करै । आशौच तो यह विष्णुका कहा जानना कि, जो ब्राह्मण आदिके आशौचमें एकबार अन्नको खाताहै उसको उतना ही आशौच होताहै; उसके अन्तमें प्रायश्चित्त करै । श्राद्धके समय वा अन्य कालमें जाना होय तो उसके समानही आशौच जानना । दाता, भोक्ता, दोनोंको आशौचका ज्ञान न होय तो कुछ दोष नहीं है ॥

अथाशौचे मासिकाब्दिकपाते ।

आशौचमध्ये श्राद्धदिनपाते आशौचांते एकादशाहे कार्यम् ॥ एकादशाहो मलमासे चेन्मलेपि कार्यम् ॥ तत्रातिक्रमे शुद्धमासे ॥ एतन्मासिके प्रतिवार्षिके च ज्ञेयम् ॥ दर्शादीनां तु पञ्चमहायज्ञादिवल्लोप एव नाशौचांते कर्तव्यत्वं नापि प्रायश्चित्तम् ॥ आशौचं विना दर्शादीनां लोपेप्युपवासादिरूपं प्रायश्चित्तमेव न कालांतरेनुष्ठानम् ॥ एकादशाहेऽसंभवेमावास्यायां कृष्णशुक्लैकादश्योर्वार्षिकम् ॥ "मासिकं चोदकुंभं च यद्यदन्तरितं भवेत् ॥ तत्तदुत्तरसातंत्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥" केचिदाब्दिकमप्यंतरितं दर्शादिकालासंभवेग्रिममासे तत्तिथौ कार्यमित्याहुः ॥

आशौचके मध्यमें श्राद्धका दिन होजाय तो आशौचके अन्तमें एकादशाहको श्राद्ध करै । यदि एकादशाह मलमासमें होय तो मलमासमेंभी करै उसमें न होसकै तो शुद्ध मासमें करै । यह मासिक और प्रतिवार्षिक श्राद्धमें जानना । दर्श श्राद्ध आदिका तो पंच महायज्ञोंके समान लोप ही है । मलमासमें करना उनका नहीं है । और न प्रायश्चित्त है और आशौचके विना दर्श आदिके लोपमें भी उपवास आदि रूप प्रायश्चित्तही है कालांतरमें करना नहीं है । एकादशाहमें न होसकै तो अमावस्यामें वा शुदी, वदी, एकादशीमें वार्षिक करै । यह कहाहै कि, जिस २ मासिक और उदकुंभका अंतरित (विघ्न) हो जाय वह २ उत्तर कर्मके तंत्र (संग) करने योग्य कहतेहैं । कोई तो यह कहतेहैं कि, अंतरित वार्षिक भी दर्श आदिकालमें न होसकै तो अग्रिममासमें उसी तिथिमें करै ॥

अथ व्याध्यादिविघ्ने ।

आशौचोत्तरं व्याध्यादिविघ्ने विस्मृतौ चैवमेव ॥ केचिद्व्याध्यादिविघ्ने पुत्रादिना तद्दिन एवान्नेनाब्दिकमाहुः ॥

आशौचके पीछे व्याधिआदिका विघ्न होय और विस्मरण होजाय तो ऐसे ही व्यवस्था समझनी। कोई तो यह कहतेहैं कि, व्याधि आदिके विघ्नमें पुत्र आदिसे उसी दिन अन्नसे वार्षिक करावे ॥

अथ भार्यारजोदोषे।

तत्र दर्शयुगादिमन्वाद्यष्टकान्वष्टकादिश्राद्धानि पाककर्त्रेतरसत्त्वेऽन्नेन तद्दिने कार्याण्यन्यथामादिद्रव्येण कालादर्शो दर्शश्राद्धं पंचमेहनीति पक्षांतरमाहुः ॥ सकृन्महालयस्तु दर्शे भार्यारजसि मुख्यकालातिक्रमभिया तत्रैव कार्यः ॥ एवमाश्विनशुक्लपंचम्यंतकालेप्यूह्यम् ॥ अष्टम्यादौ सकृन्महालयो भार्यारजोदोषे न कार्यः ॥ कालांतरसत्त्वादित्यादि महालयप्रकरणोक्तमनुसंधेयम् ॥ प्रत्याब्दिकं मासिकं च रजोदोषेपि तद्दिन एव कार्यमित्येकः पक्षः ॥ पंचमेहनि कार्यमित्यपरः ॥ पक्षद्वयेपि ग्रंथसंमतिः शिष्टाचारसंमतिश्च ॥ भार्यांतरसत्त्वे तद्दिन एवेति सर्वसंमतम् ॥ तद्दिने करणपक्षे श्राद्धकाले रजस्वलादर्शनादिकं वर्ज्यम् ॥ तेन तादृशगृहासंभवे स्वसपिंडस्य पाककर्त्तुरसंभवे च पंचमेहनीति पक्षः श्रेयान् ॥ अपुत्रा स्त्री रजोदोषे भर्तुराब्दिकादिकं पंचमेहनि कुर्यान्न त्वन्यद्वारा तद्दिने ॥

अब स्त्रीके रजोदोषमें कहतेहैं। कि, उसमें युगादि, मन्वादि, अष्टका, अन्वष्टका आदि श्राद्धोंको; अन्य पाक करनेवाली होय तो उसीदिन अन्नसे करने और न होय तो आम आदि द्रव्यसे करने। कालादर्श दर्शश्राद्धको तो पांचमें दिन करै यह पक्षांतर कहतेहैं। एक (१) वारका महालय तो दर्शमें भार्याको रजोदर्शन हो जाय, मुख्य कालके अत्रलंघनकी भीतिसे रजोदर्शनमें ही करना। इसीप्रकार अश्विनशुक्ला पंचमी पर्यन्त कालमें भी समझना। अष्टमी आदिका सकृन्महालय भार्याके रजोदोषमें न करना। क्योंकि उसके करनेका दूसरा काल है। यह महालय प्रकरणमें कहाहुआ समझना। प्रतिवर्षका जो मासिक है, वह रजका दोष होनेपर भी उसी दिन करना यह एक पक्ष है। पांचमें दिन करना यह दूसरा पक्ष है। दोनों पक्षोंमें भी ग्रंथोंकी और शिष्टाचारोंकी संमति है। दूसरी भार्या होय तो उसीदिन करै। यह सबको संमत है। उस दिन करनेका जब पक्ष है तब श्राद्ध करनेके समय रजस्वलाका दर्शन आदि वर्जित है। तिससे ऐसा घर न मिल सकै और अपना सपिंड पाककर्ता न होय तो पांचमें दिन करै यह पक्ष श्रेष्ठ है। अपुत्रा स्त्रीको रजोधर्म होय तो भर्ताका वार्षिक आदि पांचमें दिन करै। अन्यके द्वारा उस दिन न करै॥

अथ पतिमुद्दिश्याग्निप्रवेशे।

तत्र सहगमनमेव विप्राणाम् ॥ क्षत्रियादेस्तु सहगमनमनुगमनं च ॥ एकचित्यारोहणं दंपत्योः सहैव मंत्रवद्दाहः सहगमनम् ॥ भर्तुः समंत्रकदाहोत्तरं पृथक् चितावग्निप्रवेशोनुगमनम् ॥ तत्रोभयत्रापि तिथ्यैक्ये एकदिन एव तंत्रेण पाकादि कृत्वा दर्शवत्षट्पिंडषडर्घ्यविप्रभेदयुतं पितृपार्वणमातृपार्वणविशिष्टं श्राद्धं कार्यम् ॥ विश्वेदेवास्तु न भिन्नाभिन्ना वा ॥ तिथिभेदेपि श्राद्धदिनैक्ये एवमेव ॥

तिथिभेदाच्छ्राद्धदिनभेदे तु वार्षिकादि पृथगेव कार्यम् ॥ केचित्तु सहगमने तिथिभेदेपि भर्त्तुः क्षयाहश्राद्धदिन एव पत्न्याः श्राद्धं न तु दिनांतर इत्याहुस्तदल्पकालव्यवधाने योज्यम् ॥ न तु द्वित्र्यादितिथिव्यवधाने ॥

अब पतिके निमित्त अग्निप्रवेश (सती होना) में कहतेहैं । कि, उसमें ब्राह्मणोंके यहां सहगमनही है । क्षत्रिय, आदिकोंके यहां तो सहगमन और अनुगमन हैं । स्त्रीपुरुषका एक चितामें स्थापन और संग ही मंत्रोंसे जो दाह उसको सहगमन कहतेहैं । भर्ताके मंत्रों सहित दाहके अनंतर पृथक् चितामें जो अग्निप्रवेश उसको अनुगमन कहतेहैं । उन दोनोंमें भी एक तिथि होय तो एक दिन ही तंत्रसे पाक आदि करके दर्शके समान छः पिंड, छः अर्घ्य, ब्राह्मणका भेद इनसे युक्त पिता माताके दो पार्वणोंसे विशिष्ट श्राद्धको करै । विश्वेदेवा तो पृथक् नहीं होते वा पृथक् ही होतेहैं । तिथिभेदमें भी श्राद्धका दिन एक होय तो ऐसेही होताहै । तिथिभेदसे श्राद्धके दिनका भेद होय तो वार्षिक आदि पृथक् ही करने । कोई यह कहतेहैं कि, सहगमनमें तिथिका भेद होनेपर भी भर्ताके क्षयाह श्राद्धके दिन ही पत्नीका श्राद्ध होताहै अन्य दिनमें नहीं । वह अल्प कालके व्यवधानमें समझना । दो तीन आदि तिथियोंके व्यवधानमें नहीं ॥

अथ श्राद्धसंपाते निर्णयः ।

तत्र पित्रोर्मृताहैक्ये पूर्वं पितुः श्राद्धं ततः पाकभेदेन मातुरित्युक्तम् ॥ गृहदाहादिना सपिंडानां युगपन्मरणे संबन्धसामीप्यक्रमेण श्राद्धानि पाकभेदेन पृथक् कुर्यात्॥ पृथक्पाकेन भिन्नश्राद्धाशक्तौ तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥ क्रमेणैकदिने मरणे मरणक्रमेण ॥ तत्रैकदिने एकस्त्रयाणां श्राद्धानि न कुर्यात् ॥ वार्षिकश्राद्धत्रयप्राप्तौ श्राद्धद्वयं स्वयं कुर्यात् ॥ तृतीयादिभ्रात्रादिना कारयेद्दिनांतरे वा कुर्यात् ॥ पित्रोः सपिण्डस्य च संपाते तूक्तम् ॥ " श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने ॥ नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात् ॥" तथा षण्णवतिश्राद्धेषु समानदेवताकत्वे तन्त्रेण श्राद्धानि ॥ अधिकदेवताकत्वे पृथक् श्राद्धानि ॥ वार्षिकमासिकोदकुंभश्राद्धेषु नित्यश्राद्धं दर्शादिश्राद्धं च देवतानां भेदात्पृथक्कार्यम् ॥ महालये तीर्थश्राद्धे दर्शादिषण्णवतिषु च नित्यश्राद्धस्य प्रसंगसिद्धिः ॥ मासिकेनोदकुंभश्राद्धस्य प्रसंगसिद्धिः ॥ तत्र प्रसङ्गसिद्धिस्थले दर्शादिकं प्रासंगिकश्राद्धमेव संकल्पपूर्वकं सांगमनुष्ठेयम् ॥ प्रसंगसिद्धं तु नित्यादिकं न संकल्पादावुच्चार्यमिति लोपापरपर्याय एव प्रसंगसिद्धिपदेनोच्यते ॥ तत्र सिद्धौ तु प्रकारद्वयं भाति ॥ दर्शव्यतीपातश्राद्धयोस्तन्त्रानुष्ठाने षट्पुरुषानुद्दिश्य दर्शश्राद्धं व्यतीपातश्राद्धं च तन्त्रेण करिष्ये इति संकल्प्य दर्शपातश्राद्धयोर्देवार्थं क्षणः करणीय इति दैवे निमंत्र्य दर्शपातश्राद्धयोः पित्राद्यर्थे क्षणः करणीय इति वर्गद्वयार्थं विप्रद्वयादिकं निमंत्र्यैकमेव श्राद्धं कार्यमित्येकः

प्रकारः ॥ अथवा पूर्ववत्संकल्प्य दैवे तन्त्रेणैकमेव विप्रं निमंत्र्य षोडशमासिकतंत्रवत् दर्शश्राद्धे क्षणः करणीय इति दर्शविप्रनिमन्त्रणानंतरं व्यतीपातश्राद्धे क्षण इति विप्रांतरं निमंत्र्य विप्रचतुष्टयादियुतं पातश्राद्धे पिंडाभावात् षडर्घ्यं पिंडयुतं श्राद्धमेकेनैव पाकेन कार्यमित्यपरः प्रकारः॥एवं त्रिचतुरादिश्राद्धानां तंत्रेषूह्यम्॥अत्र पक्षद्वये विचार्य युक्ततरपक्षः सद्भिरनुष्ठेयः मयूखे तु सपिंडकेन दर्शश्राद्धेनापिंडकस्य व्यतीपातादिश्राद्धस्यैकदेवताकस्य प्रसंगसिद्धिरेव ॥ न तन्त्रसिद्धिस्तन्त्रोदाहरणं तु पातसंक्रांत्यादिरित्युक्तम्॥ यत्त्वन्वष्टक्येन पितृमातृवार्षिकमासिकयोः प्रसंगसिद्धिरित्युक्तम् ॥ तन्महालयेन वार्षिकादिसिद्ध्यापत्त्या बहुग्रन्थविरुद्धम् ॥ यत्र च दर्शवार्षिकश्राद्धादौ देवताभेदाच्छ्राद्धभेदस्तत्र निमित्तानि यतश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणमिति वाक्यात् ॥ पूर्वं वार्षिकं ततो दर्शः ॥ यत्सर्वान्प्रत्येकरूप्येणैकदा न प्राप्नोति तदनियतनिमित्तकं वार्षिकं मासिकं वा पूर्वं कार्यमिति वाक्यार्थः ॥ वार्षिकमासिकादीनां संपाते पितृपूर्वकत्वं सम्बन्धसामीप्यादिकं चानुपदमेवोक्तम् ॥ दर्शमहालयोः संपाते पूर्वं महालयस्ततो दर्शः ॥ दर्शे वार्षिकमहालययोः प्राप्तौ पूर्वं वार्षिकं ततो महालयस्ततो दर्श इति त्रयं पाकभेदेन विस्तरो महालयप्रकरणे॥ तथा काम्यतंत्रेण नित्यस्य तंत्रं श्राद्धस्य सिध्यति ॥

अब श्राद्धके संपातमें निर्णय कहते हैं। उसमें माता पिताका मृताह एक होय तो पहिले पिताका श्राद्ध फिर पाक भेदसे माताका श्राद्ध करै। यह कह आये । घरके दाह आदिसे सपिण्डोंका एकबार मरण होजाय तो सम्बन्धकी समीपताके क्रमसे पाकभेदसे श्राद्धोंको पृथक् २ करै। पृथक्२ पाकसे भिन्न २ श्राद्ध करनेकी शक्ति न होय तो तंत्रसे पात्रमें एकवार पाकको करके पृथक् २ श्राद्धोंको करै। क्रमसे एक दिनमें मरै तो मरनेके क्रमसे श्राद्ध करै। उसमें एक दिनमें एक मनुष्य तीनके श्राद्धोंको न करै। तीन वार्षिक श्राद्ध आन पड़ें तो दो श्राद्ध स्वयं करै। और तीसरे आदि श्राद्धको भाई आदिसे करादे वा अन्य दिनमें स्वयं करै वही मनुष्य उसी दिन श्राद्ध करके दूसरे श्राद्धको न करै। नैमित्तिक श्राद्ध तो निमित्तकी उत्पत्तिके क्रमसे करना तैसेही छाणवें (९६) श्राद्धोंके मध्यमें समान देवता होयँ तो तंत्रसे श्राद्ध करै। अधिक देवता होयँ तो पृथक् २ करने वार्षिक, मासिक, उदकुंभ; इन श्राद्धोंमें नित्यश्राद्ध, और दर्श आदि श्राद्ध देवताओंके भेदसे पृथक् करना। महालय, तीर्थश्राद्ध, दर्श आदि छाणवें श्राद्धोंमें नित्यश्राद्ध प्रसंगसे सिद्धि है। मासिक श्राद्धसे उदकुंभ श्राद्ध प्रसंगसे सिद्ध है वहां प्रसंग सिद्धिके स्थलमें प्रसंगसे सिद्ध दर्श आदि श्राद्ध भी अंगों सहित संकल्प पूर्वक करना। प्रसंगसे सिद्ध नित्य आदि श्राद्धका तो संकल्प आदिमें इससे लोप है कि, दूसरा नाम जिसका वही प्रसंग सिद्धिपदसे कहा जाता है, वहां सिद्धिमें दो प्रकार भासते हैं। कि, दर्श व्यतीपात श्राद्धोंको तंत्रसे (एकबार) करै तो छः पुरुषोंका नाम लेकर "तंत्रसे दर्शश्राद्ध व्यतीपात श्राद्धको करताहूं" यह संकल्प करके दर्श व्यतीपात श्राद्धमें 'देवब्राह्मणके लिये क्षण करो' यह कहकर देवब्राह्मणको निमंत्रण देकर दर्श व्यतीपात श्राद्धमें पितरोंके लिये

क्षण करो इस मंत्रसे दोनो वर्गोंके लिये दो आदि ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर एकही श्राद्धको करै । यह एक प्रकार है अथवा पहिले संकल्प करके षोडश मासिक तंत्रके समान करके देवश्राद्धमें तन्त्रसे एकही ब्राह्मणको निमंत्रण देकर दर्श श्राद्धमें क्षण करो इससे दर्शब्राह्मणको निमंत्रण दिये पीछे व्यतीपात श्राद्धमें क्षण करो इससे दूसरे ब्राह्मणको निमंत्रण देकर व्यतीपातके श्राद्धमें पिण्ड नहीं होते, इससे चार ब्राह्मणादिसे युक्त फिर छः अर्घ पिण्डोंसे युक्त दर्श श्राद्धको एकही पाकसे करै, यह दूसरा प्रकार है, इसी प्रकार तीन चार आदि श्राद्धोंके तंत्रसे भी समझना । इन दोनों पक्षोंमें विचार कर सज्जन मनुष्य उसको ही करै जो अत्यंत श्रेष्ठ होय । मयूखमें तौ पिंडसहित दर्शश्राद्धसे एक देवतावाले पिंडहीन व्यतीपात आदिकी सिद्धि प्रसंग सेही है । क्योंकि उन दोनोंके देवता एक हैं । और यह तंत्रसिद्धि नहीं है । तंत्रका उदाहरण तो संक्रांति व्यतीपात आदि कह आये जो किसीने यह कहाहै । कि, अन्वष्टका श्राद्धसे पिता माताके वार्षिक मासिकोंकी प्रसंगसिद्धि है, सो बहुत ग्रंथोंसे विरुद्ध है । क्योंकि, महालयसे वार्षिक श्राद्धकी भी प्रसंगसिद्धि होजायगी । और जहां दर्शवार्षिक श्राद्ध आदिमें देवताके भेदसे श्राद्धका भेद है, वहां निमित्तोंका जो अनियम वही पहिले करनेमें कारण है । इस वचनसे पहिले वार्षिक फिर दर्श श्राद्ध होताहै । जो सबको एकरूपसे एक कालमें न प्राप्त हो उसको अनियत निमित्त कहतेहैं । वह वार्षिक वा मासिक पहिले करना । यह पूर्वोक्त वचनका अर्थ है । वार्षिक और मासिक आदिके संपात (मेल) में पिता आदिका पहिले होना, और संबंधकी समीपता आदि थोडी दूर ही कह आये । दर्श और महालय आदिके संपातमें पहिले महालय फिर दर्श होताहै । दर्श, वार्षिक, महालयः इनका संपात होय तो पहिले वार्षिक, महालय, फिर दर्शको करै । इस प्रकार तीनोंको करै । विस्तार तो महालय प्रकरणमें है तैसेही काम्यश्राद्धके तंत्रसे नित्य श्राद्धका तंत्र सिद्ध होता है ॥

अथापिण्डकश्राद्धपरिगणनम् ।

अथ संक्रांत्ययनद्वयविषुवद्वययुगादिमन्वादिभाद्रकृष्णत्रयोदशीश्रोत्रियागमनप्रयुक्तमघाभरणीमघायुतत्रयोदशीवैधृतिव्यतीपातोपरागपुत्रोत्पत्तिनिमित्तकालभ्ययोग निमित्तकश्राद्धानि प्रोष्ठपदीभिन्नसर्वपौर्णमासीश्राद्धानि चैतानि श्राद्धानि पिंडरहितानि सांकल्पविधिना कार्याणि॥ एतेषु दर्शवत्षट्पुरुषोद्देशः ॥ तेनैषामेककालसंपाते तन्त्रेण सिद्धिः ॥ नित्यश्राद्धस्य प्रसंगसिद्धिः॥उपरागश्राद्धस्य भिन्नकालत्वे पृथगनुष्ठानम् ॥ उपरागश्राद्धेन संक्रांतिदर्शादिश्राद्धानां प्रसंगसिद्धिरिति प्रथमपरिच्छेदे मतांतरमुक्तम् ॥ पुत्रोत्पत्तिनिमित्तकश्राद्धस्य नवदेवताकत्वात्पृथगनुष्ठानम् ॥ तच्च हेम्नैव कार्यम् ॥ नत्वामेन नाप्यन्नेनेति ॥ इति श्राद्धसंपाते निर्णयः॥

इसके अनंतर संक्रांति, दोनों अयन, दोनों विषुव, युगादि, मन्वादि, भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी, वेदपाठीके आगमनका श्राद्ध, मघा, भरणी, मघासे युक्त त्रयोदशी, वैधृति, व्यतीपात,

ग्रहण, पुत्रोत्पत्ति निमित्तक अलभ्य योग; इन सबके श्राद्ध और भाद्रपदकी पूर्णिमासे भिन्न संपूर्ण पूर्णिमाओंके श्राद्ध ये सब श्राद्ध संकल्पकी विधिसे पिण्डरहित करने। इन सबमें दर्शके समान छः पुरुषोंका उद्देश (निमित्त) है। तिससे इनका एक कालमें सम्पात होनेपर तंत्रसे सिद्धि होती है। और इनके संग नित्यश्राद्धकी संसिद्धि होती है। ग्रहणके श्राद्धका भिन्नकाल न होय तो पृथक् करै। ग्रहणके श्राद्धसे संक्रांति दर्श आदि श्राद्धोंकी प्रसंगसिद्धि है यह मतांतर भी प्रथमपरिच्छेदमें कह आये पुत्रोत्पत्ति निमित्तक श्राद्धके नौ (९) देवता हैं इससे पृथक् ही करना, वह भी सुवर्णसे ही करना आम और पक्कान्नसे नहीं करना। यह श्राद्ध संपातका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ तिलतर्पणम्।

तच्च यच्छ्राद्धे यावंतः पितरस्तर्पितास्तावत्पितृगणोद्देशेन तच्छ्राद्धांगत्वेन तिलैस्तर्पणं कार्यम् ॥ तत्र कालनियमः ॥ पूर्वं तिलोदकं दर्शे प्रत्यब्दे तु परेहनीत्यादि तदयं निष्कर्षः ॥ दर्शश्राद्धे श्राद्धात्पूर्वं श्राद्धांगं तिलतर्पणम् ॥ तत्र विप्रनिमंत्रणोत्तरं पाकारंभोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे ब्रह्मयज्ञांगनित्यतर्पणेनैव दर्शांगतिलतर्पणस्य सिद्धिः ॥ ततः पूर्वं वैश्वदेवोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धीयषट्पुरुषोद्देशेन श्राद्धांगतर्पणं कृत्वा श्राद्धारंभः कार्यः ॥ प्रत्याहिकं सर्वपितृतर्पणं तु ब्रह्मयज्ञकाले कार्यम् ॥ एवं युगादिमन्वादिसंक्रांतिपौर्णमासीवैधृतिव्यतीपातश्राद्धेषु दर्शवत्पूर्वमेव ॥ तीर्थश्राद्धे सर्वपित्र्युद्देशेन पूर्वम् ॥ वार्षिकश्राद्धे परेद्युरेव श्राद्धीयदेवतात्रयोद्देशेन ॥ वार्षिकश्राद्धदिने नित्यतर्पणं तिलैर्न कार्यम् ॥ सकृन्महालये सर्वपित्र्युद्देशेन परेद्युरेव ॥ अन्येषु महालयपक्षेष्वष्टकान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेषु माघ्या वर्षार्धोदयगजच्छायाषष्ठीभरणीमघाश्राद्धेषु हिरण्यश्राद्धे चानुव्रज्यतर्पणं श्राद्धीयदेवतोद्देशेन ॥ श्राद्धसपाते तु यदि तत्प्रसंगसिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम् ॥ तंत्रत्वे तु पूर्वतर्पणवतां पश्चात्तर्पणवतां च श्राद्धानां समसंख्यत्वे आदावंते वा तर्पणम् ॥ विषमसंख्यत्वे बह्वनुरोधेन ॥ संक्रांतिषु ग्रहणे पित्रोः श्राद्धे दर्शे व्यतीपाते पितृव्यादिश्राद्धे महालये च निषिद्धेपि दिने श्राद्धांगतिलतर्पणं कार्यमिति केचित् ॥ अन्ये तु सर्वश्राद्धांगतर्पणे कोपि तिथ्यादिनिषेधो नेत्याहुः ॥

अब तिलतर्पणको कहते हैं। वह जिस श्राद्धमें जितने पितरोंको तृप्त करे उतने पितृगणों के उद्देशसे तिस २ श्राद्धका अंग जो तर्पण वह तिलोंसे करना। उसमें कालका नियम यह है कि, दर्शमें पहिले दिन तिलोदक और वार्षिकमें परले दिन तिल जल दे। तिससे यह निष्कर्ष है कि, दर्शश्राद्धमें श्राद्धसे पूर्व श्राद्धका अंग तिलतर्पण करै। उसमें ब्राह्मणके निमंत्रण दिये पीछे वा पाकारंभके पीछे ब्रह्मयज्ञ करे तो ब्रह्मयज्ञके अंग नित्य तर्पणसेही दर्शके अंग तिलतर्पणकी सिद्धि होजाती है। फिर पहिले वा बलि वैश्वदेवके पीछे ब्रह्मयज्ञ करै तो श्राद्धके छः पुरुषोंके नामसे श्राद्धांग तर्पणको करके श्राद्धका आरंभ करै। प्रतिदिनका सब पितरोंका तर्पण

तो ब्रह्मयज्ञके समयमें करै इसी प्रकार युगादि,मन्वादि, संक्रांति, पौर्णमासी, वैधृति,व्यतीपात इनके श्राद्धोंमें भी दर्शके समान पहिले ही होताहै। तीर्थ श्राद्धमें सब पितरोंके उद्देशसे पहिले होताहै। वार्षिक श्राद्धमें तो श्राद्धके तीन देवताओंके उद्देशसे परले दिन होताहै । वार्षिक श्राद्ध, के दिन नित्यका तर्पण तिलोंसे न करै । एकबारके महालयमें सब पितरोंके उद्देशसे परले दिन करै और अन्य महालय पक्षके श्राद्धोंमें और अष्टका, अन्वष्टका, पहिले दिनके श्राद्धोंमें और माघी, वर्षा, अर्द्धोदय, गजच्छाया, षष्ठी, भरणी, मघ ; इनके श्राद्धोंमें और सुवर्णके श्राद्धमें ब्राह्मणोंके पीछे चलकर तर्पण करै । श्राद्धके देवताओंके उद्देशसे श्राद्धका संपात होनेसे यदि उसकी प्रसंगसिद्धि होय तब तो उसका ही तर्पण करै । तंत्र होय तो पहिले तर्पण जिन श्राद्धोंमें है, उनकी संख्या सम होय तो आदि वा अन्तमें तर्पण करै । विषमसंख्या होय तो अधिकके अनुरोधसे करै । संक्रान्ति, ग्रहण, मातापिताका श्राद्ध, दर्श, व्यतीपात, पितृव्य आदिका श्राद्ध और महालय इनमें तो निषिद्ध दिनमें भी श्राद्धका अंग तिलतर्पण करै । यह कोई कहतेहैं । अन्य तो यह कहतेहैं कि, सम्पूर्ण श्राद्धोंके अंग तर्पणमें कोई भी तिथि आदिका निषेध नहीं ॥

अथ श्राद्धांगतर्पणनिषेधः ।

"वृद्धिश्राद्धे सपिंड्यां च प्रेतश्राद्धेनुमासिके ॥ संवत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" तत्र तर्पणप्रकारः ॥ परेहनि तर्पणे स्नात्वा तर्पणं कृत्वा नित्यस्नानं प्रातःसंध्यां च कुर्यात् ॥ यद्वा नित्यस्नानप्रातःसंध्योत्तरं श्राद्धांगतर्पणं सम्बन्धनामगोत्ररूपाणि द्वितीयांतान्युच्चार्य स्वधानमस्तर्पयामीति बह्वृचैर्दक्षिणहस्तेनान्यैरञ्जलिना त्रिस्त्रिस्तर्पयेत् ॥ प्रत्यंजालिमंत्रावृत्तिः ॥ एवं नित्यतर्पणेपि ज्ञेयम् ॥

अब श्राद्धांग तर्पणका निषेध कहतेहैं । वृद्धिश्राद्धमें और सपिंडीमें, मासिक प्रेतश्राद्धमें; संवत्सरकी समाप्तिमें, तिल तर्पण न करै । उसमें तर्पणका विषय यह है कि, परले दिनके तर्पणमें स्नानके अनंतर तर्पण करके नित्यस्नान और प्रातःकालकी संध्याको करै । यद्वा नित्यस्नान प्रातःसंध्याके पीछे द्वितीयांत संबंध नाम गोत्र रूपोंका उच्चारण करके "स्वधा नमस्तर्पयामि०" इससे बह्वृच दक्षिण हाथसे और अंजलिसे तीन २ बार तर्पण करै। और अंजलि २ में मंत्र पढै । ऐसे ही नित्यतर्पणमें जानना ॥

अथ ब्रह्मयज्ञांगे नित्यतर्पणे तिलयुक्ततर्पणनिषेधकालः ।

रविभौमभृगुवारेषु प्रतिपत्षष्ठ्येकादशीसप्तमीत्रयोदशीषु भरणीकृत्तिकामघासु निशि संध्यासु गृहे जन्मनक्षत्रे शुभकार्यदिनेऽन्यदीये शोभनगुप्तगृहे मन्वादिषु युगादिषु गजच्छायायामयनद्वये च तिलतर्पणं मृदा स्नानं पिंडदानं च न कार्यम्॥ केचिदयनद्वये युगादिमन्वादिषु तिलतर्पणं न दोषायेत्याहुः ॥ विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकमन्यत्र संस्कारे मासं मासार्धं वा तिलतर्पणादिकं महालयगया-

क्षयाहश्राद्धं विना न कार्यमित्युक्तम् ॥ अत्र निषिद्धदिने तिलालाभे वा हेमरौप्य-युतहस्तेन दर्भयुतहस्तेन वा नित्यतर्पणं कार्यम् ॥

अब ब्रह्मयज्ञांग नित्यतर्पणमें तिल तर्पणके निषेध कालको कहतेहैं । रवि, भौम, भृगु; इन वारोंमें और प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, सप्तमी, त्रयोदशी; इन तिथियोंमें भरणी, कृतिका, मघा; इन नक्षत्रोंमें रात्रि, संध्या, घर, जन्मनक्षत्र, शुभकार्यके दिन, और अन्यकालकी शोभासे युक्त गृहोंमें, मन्वादि, युगादिमें; गजच्छाया, दोनों अयन, इन सबमें तिलतर्पण, मिट्टीसे स्नान, और पिंडदानको न करै । कोई तो यह कहतेहैं कि, दोनों अयन, युगादि, और मन्वादिमें; तिलतर्पणका दोष नहीं और विवाह, यज्ञोपवीत, मुण्डन; इन तीनोंमें क्रमसे एक वर्ष छः मास, तीन मासतक; अन्य संस्कारोंमें मास वा पंद्रह दिनतक तिलतर्पण वा नित्यतर्पण न करै ॥

अथ तिथ्यादिनिषेधापवादः ।

"तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके ॥ निषिद्धेपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिल-मिश्रितम् ॥" इति ॥ तिथिविशेषोष्टकादिरिति मयूखे ॥ अत्र कातीयानां केषां-चिद्वार्षिकादौ परेहनि भरण्यादौ विसर्जनांते च श्राद्धांगतर्पणाचारो न दृश्यते तत्र मूलं मृग्यम् ॥ क्षयाहश्राद्धदिने नित्यतर्पणे तिलग्रहणं तु बहुग्रंथविरुद्धम् ॥

अब तिथि आदिके निषेधका अपवाद कहतेहैं । कि, तीर्थ, तिथिविशेष, गया, प्रेतपक्ष; इनमें निषिद्ध दिनमें भी तिलतर्पणको करै । तिथिविशेष अष्टका आदिको कहतेहैं । यह मयूखमें लिखाहै । यहां किन्ही २ कात्यायनोंके यहां वार्षिक आदिमें परले दिन और भरणी आदिमें विसर्जन किये पीछे श्राद्धांग तर्पणका आचार नहीं देखते उसमें मूल ढूंढने योग्य है । अर्थात् कुछ प्रमाण नहीं, क्षयाह श्राद्धके दिन तिलतर्पणमें तिलका ग्रहण तो बहुत ग्रन्थोंसे विरुद्ध है ॥

अथ नांदीश्राद्धसंकल्पादि ।

अथ नांदीश्राद्धे यद्वक्तव्यं तत्पूर्वार्धे प्रपंचितम् ॥ एतच्चोपनयनादिमहत्कर्मसु पूर्वेद्युः कार्यं जातकर्माद्यल्पकर्मसु तदहरेव ॥ तत्र देशकालौ संकीर्त्य सत्यवसु-संज्ञका विश्वेदेवा नांदीमुखा मातृपितामहीप्रपितामह्यो नांदीमुख्यः पितृपितामह-प्रपितामहा नांदी० ॥ मातामहमातुः० पत्नीसहिता नांदी० एतानुद्दिश्य पार्वण-विधानेन सपिंडं नांदीश्राद्धं करिष्ये इति संकल्पः ॥ अर्घ्यकाले नवैव पात्राण्या-साद्य तेषु द्वौ द्वौ कुशौ निधाय यवोसि सोमदैवत्य इति पूर्वोक्तोहेन यवानोप्यो-शंतस्त्वेति द्वयोर्द्वयोरावाह्यामुकविश्वेदेवाः प्रीयंतां नांदीमुखा मातरः प्रीयंतां नांदी-मुखाः पितामह्यः प्रीयंतामित्यादिना यथालिंगं पात्राणि पुरतो न्यसेत् ॥ नांदी-मुखा मातर इदं वोर्घ्यमित्यादिना यथालिंगं द्वाभ्यामर्घ्यपात्रं विभज्य देयम् ॥ द्वि-र्द्विर्गंधदानम् ॥ चतुर्थ्यंतानुद्दिश्य स्वाहा हव्यं न ममेत्यादि देववदन्नदानम् ॥ पिंड-दानकाले नांदीमुखाभ्यो मातृभ्यः स्वाहा नांदीमुखाभ्यः पितामहीभ्यः स्वाहेत्येवं

प्रत्येकं द्वौद्वावित्यष्टादशपिंडान् दद्यात् ॥ अत्रानुमंत्रणं कृताकृतम् ॥ एवं सर्वं पित्र्यमपि सव्यादिना दैवधर्मेणैव कार्यमित्यादि सर्वं पूर्वार्धतो ज्ञेयं तत्रानुक्तो विशेष एवात्रोक्तः ॥

इसके अनन्तर नांदीश्राद्धमें जो कहनाथा वह पूर्वार्द्धमें विस्तारसे कह आये। यह नांदीश्राद्ध जनेऊ आदि बडे २ कर्मोंमें पहिले दिन करना जातकर्म आदि छोटे कर्मोंमें उसी-दिन करै। उसमें देश कालका उच्चारण करके "सत्य, वसु, नामके नांदीमुख विश्वेदेवा, और माता, पितामही, प्रपितामही; नांदीमुखी; और नान्दीमुख; पिता, पितामह, प्रपितामह; और नान्दीमुख; पत्नीसहित मातामह, प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामह; इन सबके उद्देशसे और पार्वणकी विधिसे पिण्डसहित नान्दीमुख श्राद्धको करताहूं" यह संकल्प है अर्घके समयमें नौ पात्रोंको रखकर और उनमें दो २ कुशा रखकर "यवोसि सोमदेवत्यो०" इस पूर्वोक्तऊह किये मंत्रसे जौं गेरकर "उशंतस्त्वा०" इस मंत्रसे दो २ अर्घोंमें आवाहन करके अमुक नाम के नान्दीमुख विश्वेदेवा; प्रसंगसे नान्दीमुखी माता, नान्दीमुखी पितामही, प्रसन्न हो इत्यादि कहकर नामलिंगके अनुसार अर्घ्यपात्रोंको आगे रख दे "भो नान्दीमुखाः मातरः इदं वो अर्घ्यम्" यह कहकर नाम लिंगके अनुसार दो २ को विभाग करके अर्घ्य पात्र दे । दो २ बार गंध दे और चतुर्थी है अन्तमें जिनके ऐसे उनके उद्देशसे "मात्रे स्वाहा हव्यं न मम" इत्यादि कहकर देवताओंके समान अन्नदान करै। पिण्डदानके समयमें नान्दीमुख माताओंको नान्दीमुख पितामहियोंको स्वाहा, इसप्रकार दो २ पिण्डोंको प्रत्येकको देकर अठारह (१८) पिंड दे। इसमें अनुमंत्रण करो चाहै न करो। इसप्रकार सम्पूर्ण पितृकर्मको भी सव्य आदि देव धर्मसे ही करै। यह सब पूर्वार्द्धमें कहा जानना। यहां जो विशेष नहीं कहाथा वह सब यहां कहा है ॥

अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः ।

तत्र श्राद्धाधिकारिनिर्णयः जीवत्पितृकनिर्णये च प्रायेणोक्तम् ॥ विशेषस्तूच्यते ॥ विभक्तधनानां भ्रात्रादीनां सर्वे धर्माः पृथगेव ॥ सपिंड्यंतप्रेतकर्मषोडशमासिकानि चैकस्यैवेत्यादि तु प्रागुक्तम् ॥ अविभक्तानां तु धननिरपेक्षाणि स्नानसंध्याब्रह्मयज्ञमंत्रजपोपवासपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि पृथगेव ॥ अग्निसाध्यश्रौतस्मार्तनित्यकर्माणि पृथगेव ॥ "पितृपाकोपजीवी स्याद् भ्रातृपाकोपजीविकः ॥" इति पक्षांतरं कात्यायनादिपरम् ॥ पंचमहायज्ञमध्ये देवभूतपितृमनुष्ययज्ञा ज्येष्ठस्यैव ॥ पाकभेदे आश्वलायनानां वैश्वदेवभेदो विकल्पेन ॥ ज्येष्ठेनाकृते वैश्वदेवे कनिष्ठस्य पाकसिद्धौ तेन तूष्णीं किंचिदन्नमग्नौ क्षिप्त्वा विप्राय दत्त्वा भोक्तव्यमिति केचित् ॥ देवपूजा तु पृथगेकत्र वा ॥ प्रतिवार्षिकदर्शसंक्रांतिग्रहणादिश्राद्धानि ज्येष्ठस्यैव ॥ तीर्थश्राद्धाद्यपि युगपत्सर्वेषामविभक्तानां प्राप्तावेकस्यैव भेदेन प्राप्तौ भिन्नम् ॥ एवं गयाश्राद्धेपि योज्यम् ॥ काम्यदानहोमादौ द्रव्यसाध्ये भ्रात्राद्यनुमत्याधिकारः ॥ मघात्रयोदशीश्राद्धं पृथगेवेत्युक्तम् ॥

अब विभक्त अविभक्तका निर्णय कहते हैं । वह श्राद्धाधिकार निर्णय और जीवत्पितृक निर्णयमें बहुधा कह आये । विशेष तो अब कहतेहैं । विभक्त (बांट) कर लिया है धन जिन्होंने ऐसे भ्राता आदिकोंके सम्पूर्ण धर्म पृथक् २ ही होतेहैं । और सपिंडी, प्रेतकर्म, षोडश मासिक; इनको एक ही करै । इत्यादि तो पहिले कह आये । अविभक्तोंके तो जिनमें धनकी अपेक्षा नहीं । वे स्नान, संध्या, ब्रह्मयज्ञ, मंत्रजप, उपवास, पारायण आदि; नित्य, नैमित्तिक, काम्य कर्म; ये सब पृथक् २ होतेहैं और अग्निसे साध्य वेद और स्मृतिमें कहेहुये नित्यकर्म भी पृथक् २ ही होतेहैं । और पिताके पाकसे जीवै, वा भ्राताके पाकसे जीवै, यह पक्षांतर कात्यायनोंके लिये है, और पांच महायज्ञोंके मध्यमें; देव, भूत, पितृ, मनुष्य, यज्ञ; इनके अधिकार जेठेहीको हैं । और पाकभेदसे वैश्वदेवका भेद विकल्पसे आश्वलायनोंके यहां ही होताहै । जेठा भाई वैश्वदेव न करै तो छोटा भाई पाक सिद्ध होनेपर उस अन्नमेंसे किंचित् अन्नको तूष्णीं (मौनधारणकिये) अग्निमें फेंककर और ब्राह्मणको देकर भोजन करै । यह कोई कहतेहैं । और देवपूजा तो पृथक् २ करै, वा इकट्ठे करै और प्रतिवार्षिक, दर्श, संक्रांति, ग्रहण इनके श्राद्ध तो जेठा ही करै । तीर्थ श्राद्ध आदि भी एकवार सम्पूर्ण अविभक्तोंको प्राप्त होँय तो एक करै । और भेदसे प्राप्त होँयँ तो भिन्न २ करैं । इसप्रिकार गयाश्राद्धमें भी समझना । द्रव्यसे साध्य दान, होम, आदि काम्य कर्ममें भ्राता आदिकी आज्ञासे अधिकार है, मघात्रयोदशीका श्राद्ध तो पृथक् २ ही होताहै । यह कह आये ॥

अथ तीर्थश्राद्धम् ।

तत्र गंगादितीर्थप्राप्तावर्घ्यावाहनद्विजांगुष्ठनिवेशनतृप्तिप्रश्नविकिरविसर्जनदिग्बंधवर्ज्यं सकृन्महालयवत्सर्वपितृगणोद्देशेन धूरिलोचनसंज्ञकविश्वेदेवसहितं तीर्थश्राद्धं कुर्यात् ॥ अग्नौकरणं कृताकृतम् ॥ करणपक्षे तीर्थजलसमीपे श्राद्धं चेत्तदा प्राकृतमन्त्रयुतं तीर्थजले कार्यम् ॥ अन्यथा हस्तादौ ॥ पिंडानां तीर्थे प्रक्षेप एव प्रतिपत्तिः ॥ अत्र तीर्थवासिन एव विप्रा विगुणा अपि मुख्याः ॥ तदभावेन्ये ॥ अत्र श्राद्धीये देशेन्नादिद्रव्ये च काकश्वादिभिर्दृष्टेपि न दोषः ॥ तीर्थश्राद्धांगतर्पणं दर्शवत्पूर्वं कार्यम् ॥ देशकालौ संकीर्त्य सर्वपितृगणमुच्चार्य एतेषाममुकतीर्थप्राप्तिनिमित्तकं तीर्थश्राद्धं सपिंडं सदैवं सद्यः करिष्ये इति संकल्पः ॥ धूरिलोचनविश्वेदेवादि सर्वं सकृन्महालयवत् ॥ तीर्थयात्रायां साग्नेः सपत्नीकस्यैवाधिकारः ॥ निरग्निकस्य त्वपत्नीकस्यापि ॥ स्त्रियाः स्नानदानतीर्थयात्रानामस्मरणादिकं पुत्राद्यनुमत्यैव ॥ सधवाया यात्रादिकं पत्या सहैव ॥

अब तीर्थश्राद्धको कहतेहैं । कि, उसमें गंगाआदि तीर्थकी प्राप्तिके समय अर्घ्य, आवाहन, ब्राह्मणोंके अंगुष्ठका निवेशन, तृप्तिका प्रश्न, विकिर, विसर्जन, दिग्बंध; इन सबको छोडकर एकवार महालयके समान सम्पूर्ण पितृगणोंके उद्देशसे धूरिलोचन नामके विश्वेदेवाओंसहित तीर्थश्राद्धको करै । अग्नौकरण करै चाहै न करै । करनेके पक्षमें तीर्थ जलके समीप श्राद्ध होय तो तीर्थके जलमें प्राकृत मंत्रसे करै । तीर्थ दूर होय तो हस्त आदिमें करै । यहां पिंडोंको तीर्थमें फेंकनेसे ही श्राद्धकी सिद्धि जाननी इसमें निर्गुण भी तीर्थके वासी ब्राह्मणही मुख्य हैं,

अन्य नहीं; वे न मिलैं तो अन्योंको ले । यहां श्राद्धके देशको और अन्न आदि द्रव्यको काक, श्वा आदि देखलें भी तो दोष नहीं; तीर्थ श्राद्धका अंग तर्पण दर्शके समान पहिले करै । देश काल कहनेके अनन्तर सब पितृगणोंका उच्चारण करके 'इन पितरोंका अमुकतीर्थप्राप्तिके निमित्तसे पिण्ड और देवसहित तीर्थश्राद्धको सद्यः करताहूं' यह संकल्प है । धूरिलोचन विश्वेदेव आदि सम्पूर्ण कर्म सकृन्महालयके समान होताहै । तीर्थयात्रामें अग्निहोत्रीका सपत्नीकका ही अधिकार है, अकेलेका नहीं; निरग्निका तो पत्नीके विना भी अधिकार है । और स्नान, दान, तीर्थयात्रा, नामस्मरण आदि; इनको स्त्री करै तो पुत्र आदिकी ही अनुमतिसे करै सुहागिन तो पतिके संग ही यात्रा आदिको करै ॥

अथ तीर्थयात्राविधिः ।

"तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे ॥ पारणाहे घृतश्राद्धं वृद्धिधर्मयुतं चरेत् ॥ " तथा षड्दैवतं नवदैवतं द्वादशदैवतं वा बहुसर्पिर्युतेनान्नेन श्राद्धं कुर्यात् ॥ निवेदनकाले इदं घृतं सान्नं दत्तं दास्यमानं चेत्यादि वदेत् ॥ गणेशं विप्रान्साधूंश्च शक्त्या संपूज्य यात्रासंकल्पं कृत्वा श्राद्धशेषेण पारणां कृत्वा व्रजेदिति केचित् ॥ अन्ये तु श्राद्धांते यात्रासंकल्पं कृत्वा श्राद्धशेषं घृतमात्रमादाय ग्रामांतरं क्रोशन्यूनं गत्वा तत्र श्राद्धशेषघृतसहितान्नांतरेण पारणामित्याहुः ॥ श्रीपरमेश्वरप्रीतिकामः पितृमुक्तिकामोवाऽमुकप्रायश्चित्तार्थं वाऽमुकतीर्थयात्रां करिष्ये इति यात्रासंकल्प ऊह्यः ॥ उपवासात्पूर्वं मुंडनं कार्यमिति केचित् ॥ अन्ये तु प्रायश्चित्तार्थयात्रायामेव मुंडनमित्याहुः ॥ एवं गयोद्देश्यकयात्रायामपि मुंडनाविकल्पः ॥ "उद्यतस्तु गयां गंतुं श्राद्धं कृत्वा घृतादिकम् ॥ विधाय कार्पटीवेषं ग्रामं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ॥ यश्चान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः ॥ स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम् ॥ " यात्रामध्ये आशौचे रजोदोषे वा शुद्धिपर्यंतं स्थित्वा तदन्ते गच्छेत् ॥ विषममार्गे तु न दोषः ॥ संकल्पितयात्रामध्ये तीर्थांतरप्राप्तौ श्राद्धादिकं कार्यमेव ॥ वाणिज्याद्यर्थं गतेनापि मुंडनोपवासादिकं कार्यम् ॥ कार्यांतरप्रसंगेन तीर्थगमनेऽर्धं फलम् ॥ वाणिज्यार्थं गमने पादफलम् ॥ मार्गे द्विर्भोजनादिकरणे छत्रोपानहसेवने च पादोनम् ॥ यानमारुह्य गमनेऽर्धम् ॥ अनुषंगेण तीर्थप्राप्तौ तीर्थस्नानात्स्नानजं फलं न तीर्थयात्राफलम् ॥ " मार्गेतरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः ॥ अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः ॥ "

अब तीर्थयात्राकी विधिको कहतेहैं । तीर्थयात्राका अभिलाषी मनुष्य पहिले अपने घरमें उपवासको करके पारणाके दिन वृद्धिश्राद्धकी धर्मविधिसे घृतश्राद्धको करै । तिसीप्रकार छः देवताओंके और द्वादश देवताओंके श्राद्धको अधिक घीसहित अन्नसे करै । और निवेदनके समय 'अन्नसहित दिया यह घृत और आगे देनेयो-

न्य घृत आपको प्राप्त हो' इत्यादि कहै। और गणेश, ब्राह्मण, साधु, इनको शक्तिसे पूजकर यात्राका संकल्प करके और श्राद्धके शेष अन्नसे पारणा करके गमन करै, यह कोई कहते हैं। अन्य तो यह कहते हैं कि, श्राद्धके अंतमें यात्राके संकल्पको करके श्राद्धके शेष केवल घीको लेकर ग्रामके समीप कोशसे कम जाकर वहां श्राद्धके शेषमें घृतसहित अन्य अन्नसे पारणा कर 'श्रीपरमेश्वरकी प्रीतिका वा पितरोंकी मुक्तिका अभिलाषी मैं अमुक प्रायश्चित्तके लिये तीर्थयात्राको करताहूं' यह यात्राके संकल्पमें ऊह है। उपवाससे पहिले मुंडन करै यह कोई कहते हैं। अन्य तो प्रायश्चित्तके लिये यात्रामें ही मुंडनको कहतेहैं। इसी प्रकार गयाके उद्देशसे एकयात्रामें भी मुंडनका विकल्प है ये वचन हैं कि, गया जानेको उद्यत मनुष्य; घृत आदिके श्राद्धको करके; और कार्पटीके वेषको धारण करके; ग्रामकी प्रदक्षिणा करके प्रतिग्रहको त्यागताहुआ प्रतिदिन गमन करै। जो राजा अन्यमनुष्यको अपने द्रव्य यानोंसे तीर्थयात्रा करवाता है उसको चौगुना पुण्य होता है। यात्राके मध्यमें आशौच वा रजोदोष हो जाय तो शुद्धिपर्यंत टिककर उसके पीछे गमन करै। विषम (कठिन) मार्गमें तो दोष नहीं। संकल्प की हुई यात्राके मध्यमें अन्यतीर्थ आजाय तो श्राद्ध आदि अवश्य करै। व्यापारके लिये जो गया हो वह भी तीर्थमें मुंडन उपवास आदिको करै। अन्यकार्यके प्रसंगसे तीर्थ गमनमें आधा फल होताहै। व्यापारके लिये गमनमें चौथाई फल मिलता है। मार्गमें दो वार भोजन, छत्र, उपानहका सेवन; करै तो पादसे ऊन फल होताहै। सवारीपर गमन करै तो आधाफल होताहै। प्रसंगसे तीर्थप्राप्तिमें तीर्थस्नानसे स्नानका फल होताहै तीर्थयात्राका नहीं। मार्गके मध्यमें नदी आजाय तो परले पारपर स्नान आदि करै। और सरस्वतीके तो वरले पारमें करै। यह मार्गमें आगतकी विधि है॥

अथ तीर्थसामीप्यप्राप्तौ विधिः।

"यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः॥ भक्त्या च विलुठेत्तत्र कुर्याद्वेषं च कार्पटम्॥" तीर्थप्राप्तिपूर्वदिने तीर्थप्राप्तिदिने वोपवासः कार्यः॥ तीर्थे मुसलस्नानं कृत्वोदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा केशश्मश्रुनखलोमान्युदक्संस्थानि वापयेत्॥ ततः समंत्रकं स्नानम्॥ तत्र प्रणवेन जलमालोड्य तीर्थमवगाह्य॥ ॐ "नमोस्तु देवदेवाय शितिकंठाय दण्डिने॥ रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः॥ सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी॥ सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थपापप्रणाशिनी॥" इति मंत्रेण स्नायात्॥ शेषः स्नानविधिर्नित्यवत्॥ ततस्तर्पणादितीर्थश्राद्धम्॥ श्राद्धोत्तरदिने ततो गमनं न श्राद्धदिने॥ "मुंडनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः॥ वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजं गयाम्॥" सर्वतीर्थेष्वपि प्रसिद्धमहातीर्थेष्वित्यर्थः॥ दशमासोत्तरं पुनस्तीर्थप्राप्तौ मुंडनादितीर्थविधिः॥

तीर्थके समीप जाकर यह विधि है। कि, यानोंको छोडकर मनुष्य पादोंसे गमन करै। और वहां भक्तिसे लोटैं और कार्पटी वेषको करैं। और तीर्थप्राप्तिसे पहिले दिन वा उसीदिन उपवास करैं। तीर्थमें मुसलस्नानको करके उत्तर वा पूर्वको मुख करके; उत्तरकी तरफके केश श्मश्रु, नख, लोमोंको मुंडवावै। फिर मंत्रोंसहित स्नान करैं। उसमें ॐकारसे जलका आलो'

इन करके तीर्थका आवाहन करके कहै कि, देवताओंका देवता शितिकंठ, दंडी, रुद्र, चापहस्त, चक्री, वेधा, इनको नमस्कार है। सरस्वती सावित्री जो पूज्य देवमाता हैं वह भी तीर्थके पापोंका नाश करनेवाली यहां समीप आओ। इस मंत्रसे स्नान करै। शेष स्नानकी विधि नित्य स्नानके समान है। फिर तर्पण आदि तीर्थश्राद्ध करे फिर वहांसे गमन करै। उत्तर दिन श्राद्धके उसीदिन न करै। क्योंकि मुंडन, उपवास; यह विधि; कुरुक्षेत्र, विशाल, विरज, गया; इनको छोडकर सब प्रसिद्ध बडे २ तीर्थोंमें है। दश मासके अनंतर पुनः तीर्थकी प्राप्ति हो जाय तो मुंडन आदि तीर्थकी विधि होतीहै ॥

अथ प्रयागे वेणीदानम्।

प्रयागे तु योजनत्रयादागतस्य दशमासादर्वागपि ॥ प्रयागे जीवत्पितृकगुर्विणीपतिकृतचूडबालानामपि सभर्तृकस्त्रीणामपि प्रथमयात्रायां वपनम् ॥ केचित्सभर्तृकस्त्रीणां 'सर्वान्केशान्समुद्धृत्यच्छेदयेदंगुलद्वयम्' इत्याहुः ॥ तत्र वेणीदानविधिर्द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः ॥ यतिभिस्तु तीर्थेप्यृतुसंधिष्वेव कक्षोपस्थवर्जं वपनं कार्यम् ॥ तीर्थप्राप्तावविलंबेन स्नानपितृतर्पणश्राद्धादि कुर्यात् ॥ न पर्वादिकालं विचारयेत् ॥ आकस्मिकमहातीर्थप्राप्तौ द्वित्रिदिनादिवासासंभवे भुक्तेनापि रात्रावपि सूतकिनापि ग्रहणपर्वणीव स्नानं हिरण्यादिना तीर्थश्राद्धं च कार्यम् ॥ एवं मलमासेपि योज्यम् ॥

प्रयागमें तो तीन योजनसे जो आया हो उसको तो दश माससे पहिले भी उक्त विधि होती है। प्रयागमें जीवत्पितृक, गर्भिणीका पति, मुंडन किये बालक और सुहागिनस्त्री इनका भी प्रथम यात्रामें मुंडन होताहै। कोई तो यह कहते हैं। कि, सुहागिन स्त्रियोंके सब केशोंको उभारकर दो २ अंगुल छेदन करै। उसमें वेणीदानकी विधि दूसरे परिच्छेदमें कह आये। संन्यासी तो तीर्थमें भी ऋतुओंकी संधियोंमें ही कुक्षि, लिंग, इनको छोडकर मुंडन करावें तीर्थकी प्राप्तिके समय अविलंबसे स्नान, पितृतर्पण, श्राद्ध आदिकोंको करै। पर्व आदिके समयका विचार न करै। अकस्मात् बडे तीर्थकी प्राप्तिमें दो तीन दिन आदिका वास न होसकै तो भोजनके पीछे भी रात्रिमें भी सूतकमें भी ग्रहण पर्वके समान स्नान करै। और सुवर्ण आदिसे तीर्थश्राद्ध करै। इसीप्रकार मलमासमें भी समझना ॥

अथ परार्थस्नानम्।

"मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ॥ तीर्थे स्नायाद्यमुद्दिश्य सोष्टमांशं लभेन्नरः ॥ यद्वा प्रतिकृतिं दर्भमयीं सत्तीर्थवारिषु ॥ मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोष्टमांशं फलं लभेत् ॥" पक्वान्नेन तीर्थश्राद्धे तेनैव पिंडाः ॥ हिरण्यादिना कृते पिंडद्रव्याणि ॥ सक्तुसंयावपायसपिण्याकगुडान्यतमानि ॥ पिंडानां तीर्थे प्रक्षेप एव ॥ नान्या प्रतिपत्तिः ॥ एतच्चापुत्रया विधवया कार्यम् ॥ "सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन" इति स्मृतेः ॥ अनुपनीतेनापि कार्यम् ॥ यतिना तु न कर्तव्यम् ॥

"दंडं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिंडदः ॥ दंडस्पर्शाद्विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते ॥" एवं कूपवटादिष्वपि दंडप्रदर्शनमेव ॥ तीर्थे वृत्तिदौर्बल्येन प्रतिग्रहे दशमांशदानेन शुद्धिः ॥

अब पराये अर्थ स्नानको कहते हैं। माता, पिता, जाया, भ्राता, मित्र, गुरु; इनके मध्यमें जिसके नामसे तीर्थमें स्नान करै वह स्नानके आठवें भागको प्राप्त होताहै। अथवा जिसकी मूर्ति कुशाकी बनाकर श्रेष्ठ तीर्थके जलोंमें जिसके नामसे गोता लगावै, वह आठवें भागको प्राप्त होताहै। पक्वान्नसे श्राद्ध करै तो उससेही पिंड दे। सुवर्ण आदिसे करै तो पिंडके द्रव्य ये हैं कि, सत्तू, संयाव, (मोहनभोग) पायस, खल, गुड, इनमेंसे कोई हो। पिंडोंका तीर्थमें प्रक्षेप ही है अन्य कोई प्रतिपत्ति नहीं। इसको अपुत्र विधवा भी करै। क्योंकि, पुत्र सहित स्त्री कदाचित् भी भर्ताके श्राद्धको न करै। जिसका जनेऊ न हुआ हो वह भी करै। संन्यासी तो न करै। क्योंकि, यह कहाहै कि गयामें जाकर भिक्षु दंडको दिखादे पिंडको न दे। विष्णुपदमें दंडके स्पर्शसे पितरोंसहित मुक्त होता है। इसीप्रकार कूप, वट, आदिकोंमें भी दंडको ही दिखावै। तीर्थमें जीविकाकी न्यूनतासे प्रतिग्रह लेय तो दशमांश दानसे सिद्धि होती है॥

अथाशौचप्रकरणम्।

"श्रीविट्ठलं रुक्मिणीं च पितरौ दीनवत्सलौ ॥ ध्यात्वेष्टसिद्धये नत्वा वक्ष्येथाशौचनिर्णयम् ॥ १ ॥"

दीनोंपर दयालु और माता पिता ऐसे श्रीमान् विट्ठल और रुक्मिणीका ध्यान तथा इष्ट सिद्धिके लिये नमस्कार करके अब आशौचनिर्णयको कहते हैं॥ १ ॥

तत्रादौ गर्भनाशजननाद्याशौचम्।

"आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पंचमषष्ठयोः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात्तत्राशौचं विविच्यते ॥" तत्र गर्भस्रावे आद्यमासत्रये मातुस्त्रिरात्रं चतुर्थमासे चतूरात्रमस्पृश्यत्वरूपमाशौचम् ॥ पित्रादिसपिंडानां स्रावमात्रे स्नानाच्छुद्धिः ॥ पंचमषष्ठमासयोर्गर्भपाते गर्भिण्या माससमसंख्यं क्रमेण पंचषड्दिनान्यस्पृश्यत्वलक्षणमाशौचम् ॥ पित्रादिसपिंडानां तु त्रिदिनं जननाशौचं मृताशौचं तु नास्ति ॥ इदं स्रावपाताशौचं सर्ववर्णसाधारणम् ॥ गर्भिण्याः सप्तममासप्रभृतिप्रसवे मातुः पित्रादिसपिंडानां च संपूर्णं जननाशौचम् ॥ तच्च विप्रे दशाहम् ॥ क्षत्रिये द्वादशाहम् ॥ वैश्ये पंचदशाहं शूद्रे मासः संकरजातीनां शूद्रवत् ॥ विज्ञानेश्वरस्तु नैषामाशौचं किंतु स्नानमात्रमित्याह॥सर्ववर्णेषु दशाहं वा ॥ जननाशौचे गर्भिण्या दशाहमस्पृश्यत्वम् ॥ कर्मानधिकारस्तु कन्योत्पत्तौ मासं पुत्रोत्पत्तौ विंशतिरात्रम् ॥ इदं स्वस्वाशौचोत्तरमिति विप्रस्त्रियाः क्रमेण चत्वारिंशत्त्रिंशद्दिनान्यनधिकारः ॥ पितुः सापत्नमातुश्च कन्यायाः पुत्रस्य वोत्पत्तौ सचैलस्नानात्प्रागस्पृश्यत्वं पित्रादिसपिंडानां जननाशौचे कर्मान-

धिकारमात्रम् ॥ कर्माद्यतिरिक्तकाले स्पर्शे दोषो न जातकर्मणि दाने च नालच्छेदनात्पूर्वं पितुरधिकारः ॥ एवं पंचमषष्ठदशमदिनेषु दाने जन्मदादिपूजने चाधिकारः ॥ तत्र विप्राणां प्रतिग्रहेपि दोषो न ॥ कूटस्थमारभ्य सप्तमपुरुषपर्यंताः सपिंडाः ॥ ततः सप्तसमानोदकाः ॥ ततः सप्तैकविंशतिपर्यंताः सगोत्राः ॥ तत्र सपिंडानां दशाहमित्युक्तम् ॥ सोदकानां त्रिरात्रं सगोत्राणामेकरात्रमिति नागोजीभट्टीये ॥ अन्ये तु सगोत्राणां नाशौचमित्याहुः ॥ अयं सपिंडसोदकाद्याशौचविभागो जनने मरणे च समानः ॥ मरणे त्वाशौचविच्छेदेपि स्नानमात्रं यावदेककुलत्वज्ञानं तावद्भवत्येवेति विशेषः ॥ अत्रेदं बोध्यम् ॥ कूटस्थादारभ्य संततिभेदे एकसन्ततौ कश्चिदष्टमोपरसंततौ च कश्चित्सप्तमस्तयोश्चैकतः सापिंड्यानुवृत्तिः परतो निवृत्तिरित्युक्तम् ॥ तत्राष्टमेन निवृत्तसापिंड्यकेन सप्तमादीनां परसंततिस्थानां जनने मरणे त्रिदिनमाशौचं कार्यम् ॥ सप्तमेन त्वनुवृत्तसापिंड्यकेनाष्टमादीनां जनने मरणे वा दशाहमेव कार्यम् ॥ एवं सोदकत्रिरात्रादौ कन्याविषयकत्रिपुरुषसापिंड्ये चोह्यम् ॥ तत्राष्टमस्य मृतपितृकत्वेपि जीवत्पितृकत्वे च त्रिदिनमेव ॥ त्र्यंबकीये भट्टोजीये नागोजीये चाशौचप्रकरणेन्यत्र च पित्रादिजीवनाजीवनकृतविशेषादर्शनादिति केचित् ॥ अपरे तु निर्णयसिंधौ सापिंड्यप्रकरणे आदशमाद्धर्मविच्छित्तिरित्यादिसुमंतुवाक्यस्य शूलपाणिकृतव्याख्याने एकपिंडदानक्रियान्वयित्वरूपसापिंड्यलक्षणमनुसृत्य जीवत्पित्रादित्रिकस्य प्रपितामहात्परे त्रयः पिंडभाजस्तदूर्ध्वं त्रयो नवपुरुषपर्यंता लेपभाजः श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिंड्यनिवृत्तिः ॥ पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यंतं पितृजीवनेष्टपुरुषपर्यंतं सापिंड्यमिति प्रतिपादनादष्टमादेः पित्रादिजीवनदशायां दशाहमाशौचं पित्रादिमरणोत्तरमेव त्रिदिनमिति वदंति ॥ अत्र मम द्वितीयपक्ष एव युक्तो भाति ॥ पितृगेहे कन्याप्रसूतौ पित्रोस्तद्गृहवर्त्तिभ्रातॄणां चैकाहः ॥ पितृगृहवर्तिपितृव्यादीनां सर्वेषां पितृसपिंडानामेकाह इति स्मृत्यर्थसारे ॥ एवं भ्रात्रादिगृहे भगिन्यादिप्रसवेपि तेषामेकाहः ॥ माधवस्तु पितृगृहे कन्यायाः प्रसूतौ पित्रोस्त्रिरात्रम् ॥ तद्गृहवर्त्तिभ्रातॄणामेकाह इत्याह ॥ कन्यायाः पतिगृहे प्रसवे पित्रादीनां नाशौचम् ॥ मृतजाते शिशौ सपिंडानां संपूर्णमेव जननाशौचं मृताशौचं नास्ति ॥ जननोत्तरं नालच्छेदनात्पूर्वं शिशुमरणे पित्रादिसपिंडानां त्रिदिनं जननाशौचम् ॥ मातुस्तु दशाहमेव ॥ मृताशौचं तु नास्ति ॥ नालच्छेदनोत्तरं दशाहाभ्यंतरे शिशुमरणे सपिंडादीनां संपूर्णमेव जननाशौचम् ॥ मरणाशौचं तु नास्ति ॥

उसमें प्रथम गर्भनाश जनन आदिके आशौचको कहते हैं । चौथे मासतक गर्भका नाश, स्राव; और पांचमें छठे मासमें पात कहाताहै । इसके आगे प्रसूति होतीहै । उनमें आशौ-

चको पृथक् २ दिखातेहैं। उसमें गर्भके स्रावमें पहिले तीन मासोंमें माताको तीन रातका, चौथे मासमें चार रातका, स्पर्श न करने योग्य रूप आशौच होताहै। पिता आदि सपिंडोंको स्रावमात्रमें स्नानसे शुद्धि होतीहै। पांचमें छठे मासमें गर्भपात होय तो गर्भिणीको उतने (पांच छः) दिन स्पर्श न करनेका आशौच होताहै जितने मासका गर्भ हो। पिता आदि सपिण्डोंको तो तीन दिनका जननाशौच होताहै। मरणका आशौच तो नहीं है। यह स्राव पातका आशौच सब वर्णोंमें साधारण है। गर्भिणीके सप्तम मास आदिके प्रसवमें माता और पिता आदि सपिंडोंको जननका सम्पूर्ण आशौच होताहै; वह भी ब्राह्मणको दश दिनका, क्षत्रियको बारह दिनका, वैश्यको पंद्रह दिनका, शूद्रको मासभरका, और संकर जातियोंको शूद्रकी समान आशौच होताहै। विज्ञानेश्वरने तो इनको आशौच नहीं किंतु स्नानमात्र है, यह कहा है। अथवा सब वर्णोंको दश दिनका होताहै। जन्मके आशौचमें दश दिनतक गर्भिणी स्पर्शके योग्य नहीं। कर्मके अधिकारका अभाव तो कन्याके जन्ममें मासभर पुत्रकी उत्पत्तिमें बीस रात्रितक है। यह अपनी २ जातिके आशौचके अनन्तर है। इससे ब्राह्मणी स्त्रीको क्रमसे चालीस, तीस, दिनोंमें अधिकार होता है। पिता और सपत्नी माताको कन्या और पुत्रकी उत्पत्तिमें सचैल स्नानसे पहिले स्पर्शकी अयोग्यता है। पिता आदि सपिंडोंको तो आशौचमें कर्मका अनधिकारमात्र है। कर्म आदिसे अन्य कालमें उनके स्पर्श करनेमें कुछ दोष नहीं। कूटस्थसे लेकर सात पुरुष पर्यंत सपिण्ड होतेहैं। उससे अगले सात समानोदक कहातेहैं। उससे अगले सात इक्कीस पर्यन्त सगोत्र कहातेहैं। उनमें सपिण्डोंको दश दिनका आशौच कह आये। सोदकोंको तीन रातका, सगोत्रोंको एक रात्रिका आशौच है। यह नागोजीभट्टीय ग्रंथमें कहाहै। अन्य तो यह कहतेहैं। कि, सगोत्रोंको आशौच नहीं होता। यह सपिण्ड सोदक आदिकोंके आशौचका विभाग जन्म और मरणमें समान है। मरणमें तो आशौचका विच्छेद होनेपर भी स्नानमात्र तो इतने एक कुलका ज्ञान हो तबतक होताही है। यह विशेष है। यहां यह समझना; कि, कूटस्थसे लेकर भिन्न २ संतानोंमें एक सन्ततिमें तो कोई अष्टम है, दूसरी संततिमें कोई सप्तम है उन दोनोंकी एक तरफसे सापिंड्यकी अनुवृत्ति (होना) है। और दूसरी तरफसे निवृत्ति है। यह कह आये। उनमें निवृत्त हुई है सपिंडता जिसकी ऐसे आठवेंने अन्य संततिके सप्तम आदिकोंके जनन और मरणमें तीन दिनका आशौच करना। और चली आई है सपिंडता जिसकी ऐसे सप्तमने तो अष्टम आदिके जनन और मरणमें दश दिनका ही आशौच करना। इसीप्रकार सोदकोंके त्रिरात्र आदि आशौचमें और कन्या विषयक तीन पुरुषके सापिंड्यमें भी समझना; उनमें अष्टमका पिता मरगया हो वा जीवता होय तो तीन दिन ही आशौच होता है। और त्र्यंबकीयमें, भट्टोजीयमें, नागोजीयमें और अन्य ग्रंथोंके आशौच प्रकरणमें पिता आदिके जीवन मरणका किया कोई विशेष नहीं देखते। यह कोई कहते हैं। अपर तो यह कहतेहैं कि, निर्णयसिंधुके सापिंड्य प्रकरणमें दशमेंसे धर्मका विच्छेद होताहै। इत्यादि सुमंतुके वाक्यका शूलपाणिने जो व्याख्यान किया है, उसमें एक पिंडदानरूपक्रियाका संबंधरूप सापिंड्य मानकर जीवतेहैं। पिता आदि तीन जिसके उसके प्रपितामहसे परले तीन पिंडभाज हैं। उससे आगे तीन नौ पुरुष पर्यंत लेपभाजहैं। और दशमां श्राद्धकर्ता इससे दशमेंसे ऊपर सपिंडताकी निवृत्ति होतीहै। पिता पितामहके जीवतेहुये नौ पुरुष पर्यंत और पिताके जीवते हुये आठ पुरुष पर्यंत

सपिंडताकी निवृत्ति होतीहै । यह कहनेसे पिताके जीवते हुये आठवें आदिको दश (१०) दिनका आशौच होताहै । पिता आदिके मरे पीछे ही तीन दिनका होताहै । इन दोनोंमें मुझे तो दूसरा पक्ष ही युक्त प्रतीत होताहै । पिताके घर कन्याके प्रसव होनेमें माता पिताको और उसके घरमें वर्तमान भ्राता आदिको एक दिनका आशौच है । पिताके घरमें वर्तमान पितृव्य आदि संपूर्ण सपिंडोंको तो एक दिन आशौच होता है । यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है । इसी प्रकार भ्राता आदिके घर भगिनी आदिके प्रसवमें भ्राताआदिको एक दिन आशौच होताहै । माधव तो पिताके घर कन्याके प्रसवमें माता पिताको तीन रातका और उस घरमें वर्तमान भ्राता आदिको एक दिनका आशौच होताहै; यह कहताहै । कन्याके पतिके घरप्रसव होनेमें पिता आदिको आशौच नहीं होताहै । मराहुआ बालक जन्मै तो सपिंडोंको संपूर्ण ही जन्मपर आशौच है । मरणका आशौच तो नहीं है । जन्मसे पीछे और नाल छेदनसे पहिले शिशुके मरनेमें पिता आदि सपिंडोंको तीन दिन जन्मका आशौच होता है । माताको तो दश दिनकाही होता है । और मरनेका आशौच तो किसीको भी नहीं होता है । नाल छेदनके पीछे दश दिनके भीतर बालकके मरनेमें सपिण्ड आदिकोंको सम्पूर्णही जन्मका आशौच होता है । और मरण आशौच तो किसीको नहीं ॥

अथ मृताशौचम् ।

तत्र मृताशौचवतामस्पृश्यत्वं कर्मानधिकारश्च ॥ दशाहानंतरं नामकरणात्प्राक् शिशुमरणे सपिंडानां स्नानमात्रम् ॥ मातापित्रोस्तु पुत्रमृतौ त्रिरात्रं कन्यामृतौ चैकाहः ॥ सापत्नमातुः सर्वत्र पितृवत् ॥ नाम्नः पूर्वं खननमेव नित्यं नामकरणानंतरं चूडाकरणपर्यंतं तदभावे वर्षत्रयपूर्तिपर्यंतं दाहखननयोर्विकल्पः ॥ नामकरणोत्तरं दंतोत्पत्तेः प्राक् पुत्रमरणे दाहे सपिंडानामेकाहः ॥ खनने तु स्नानाच्छुद्धिः ॥ मातापित्रोरुभयत्रापि त्रिरात्रम् ॥ कन्यामृतौ तु त्रिपुरुषसपिंडानामुभयत्र स्नानाच्छुद्धिः ॥ मातापित्रोः कन्यामृतौ दंतोत्पत्तिपर्यंतमुभयत्रैकाहः ॥ अत्र नामकरणं द्वादशदिनोपलक्षणम् ॥ दंतजननं सप्तममासोपलक्षणम् ॥ तेन द्वादशदिनमारभ्य षण्मासपर्यंतमेकाहादि फलितम् ॥ सप्तममासप्रभृतिचूडाकरणपर्यंतं तदभावे तृतीयवर्षपूर्तिपर्यंतं दाहे खनने वा सपिंडानामेकाहः ॥ केचित्खनने एकाहो दाहे त्रिरात्रमित्याहुः ॥ मातापित्रोरुभयत्र त्रिरात्रम् ॥ एतत्पुत्रमृतौ ॥ कन्यामृतौ तु वर्षत्रयपर्यंतं सपिंडानां स्नानाच्छुद्धिः ॥ मातापित्रोः सप्तममासप्रभृति कन्यामृतौ त्रिरात्रम् ॥ विज्ञानेश्वरस्त्वेकादशदिनमारभ्य यावदुपनयनं पुत्रमृतौ कन्यामृतौ तु यावद्विवाहं मातापित्रोस्त्रिरात्रमेवेत्याह ॥ प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य पुत्रस्य मरणे पित्रादीनां सर्वेषां त्रिदिनं नियतं दाहश्च नियतः ॥ त्रिवर्षोर्ध्वं कृतचूडस्याकृतचूडस्य वा मरणे प्रागुपनयनात्पित्रादिसर्वसपिंडानां त्रिदिनं दाहो नियतः ॥ सोदकानां त्वनुपनीतमरणेनूढकन्यामरणे च नाशौचं किंतु स्नानमात्रम् ॥ अनुपनीतभ्रातृमरणे भगिन्या नाशौचम् ॥ ऊनद्वि-

वर्षस्य खननं मुख्यम् ॥ अनुगमनं वैकल्पिकम् ॥ पूर्णद्विवर्षस्य दाहो मुख्यः ॥ अनुगमनं नित्यम् ॥ अत्र दाहोदकदानादि तूष्णीमेव ॥ कृतचूडाय पूर्णत्रिवर्षाय च भूमौ पिंडदानम् ॥ दंतजननपर्यंतं तत्तुल्यवयस्केभ्यो द्वितीयदिने तदुद्देशेन दुग्धदानम् ॥ त्रिवर्षांतं चौलांतं वा पायसदानम् ॥ तदूर्ध्वमुपनयनपर्यंतमाशौचांते सवयोभ्यस्तदुद्देशेन भोजनादिदानम् ॥ स्त्रीशूद्रयोस्तु कृतचूडयोरप्युदकदानादि वैकल्पिकम् ॥ शूद्रस्य त्रिवर्षपर्यंतमेतदेवाशौचम् ॥ अस्योपनयनस्थाने विवाहः ॥ तथा च त्रिवर्षोर्ध्वं विवाहपर्यंतं तदभावे षोडशवर्षपर्यंतं वा शूद्रस्य मरणे त्रिदिनम् ॥ तदूर्ध्वं जात्याशौचम् ॥ कन्याया वर्षत्रयानंतरं वाग्दानात्प्राङ्मरणे त्रिपुरुषसपिंडानामेकाहः ॥ मातापित्रोस्त्रिरात्रम् ॥ दाहादि तूष्णीम् ॥ वाग्दानोत्तरं विवाहात्प्राक्कन्यामरणे पितृसपिंडानां भर्तृसपिंडानां च त्रिदिनम् ॥ अत्रोभयकुलेपि साप्तपुरुषं सापिंड्यम् ॥ दाहादि तूष्णीमेव ॥ जननेनुपनीतस्य मरणे चातिक्रांताशौचं नास्ति ॥ पितुरपत्यजननश्रवणे देशांतरे कालांतरे स्नानं भवत्येव ॥ अनुपनीतमरणेऽतिक्रांतेपि स्नानं भवत्येवेति स्मृत्यर्थसारः ॥ अनुपनीतस्यानूढकन्यायाश्च मातापितृमरणे एव दशाहाशौचम् ॥ अन्यमरणे तु न किमपि ॥ उपनयनोत्तरं मरणे सपिंडानां दशाहम् ॥ सोदकानां त्रिरात्रम् ॥ सगोत्राणामेकाहं स्नानाच्छुद्धिर्वेत्यादिविशेषः प्रागुक्तोत्रानुसन्धेयः ॥

अब मरनेके आशौचको कहते हैं। उसमें मरणाशौचवाले सबको स्पर्शकी योग्यता और कर्मका अधिकार नहीं होता; दश दिनके पीछे नामकरणसे पीछे बालकके मरनेमें सपिण्डोंको स्नानमात्रहै। माता पिताको तो पुत्रके मरणेमें तीन रात कन्याके मरणेमें एक दिनका, आशौच है। सपत्नी माताको तो सब जगै पिताके समान आशौच है। नामसे पहिले बालकको भूमि में सदैव खनन करना (गाडना) है। नामकरणके पीछे मुण्डनपर्यंत और मुंडन न हुआ होय तो पूरे तीन वर्षपर्यंत दाह और खननमें विकल्प है। नाम करणके पीछे और दांत निकसनेके पहले पुत्रके मरनेमें दाह होनेपर सपिण्डोंको एक दिनका आशौच है। और खननमें तो स्नानसे शुद्धि होती है। माता पिताको तो दोनोंमें तीन रातका होताहै। और कन्याके मरनेमें तो तीन पुरुषतक सपिण्डोंका दोनोंमें स्नानसे शुद्धि होतीहै। माता पिताको कन्याके मरनेमें दांत जमने पर्यंत दोनोंमें एक दिनका आशौच होताहै। यहां नामकरणसे बारह दिन और दंत जननसे सात मास लेने तिससे बारह दिनसे लेकर छः मास पर्यंत एक दिन आदि समझना, सात माससे लेकर मुंडन पर्यंत और मुण्डन न होय तो पूरे तीन वर्षपर्यंत दाह वा खननमें सपिंडोंको एक दिनका होताहै। कोई तो खननमें एक दिनका दाहमें तीन दिनका, कहते हैं। माता पिताको तो दोनोंमें तीन रातका होता है। यह भी पुत्रके मरनेमें समझना; कन्याके मरनेमें तो तीन वर्ष पर्यंत सपिंडोंकी स्नानसे शुद्धि होती है। माता पिताको सात माससे लेकर कन्याके मरनेमें तीन रातका होता है। विज्ञानेश्वर तो यह कहताहै कि, ग्यारह दिनसे लेकर जनेऊ पर्यंत पुत्रके मरनेमें और विवाह पर्यंत कन्याके मरनेमें माता पिताको तीन दिनका ही आशौच होताहै। पहिले वर्ष आदिमें

मुण्डन किये पुत्रके मरनेमें पिता आदि सबको तीन दिनका आशौच, और दाह इन दोनोंका नियम है । तीन वर्षके पीछे मुण्डन किया हुवा वा न किया हुवा मरै तो यज्ञोपवीतसे पहिले पिता आदि सम्पूर्ण सपिण्डोंको तीन दिनका आशौच और दाह नियत है । समानोदकोंको तो अनुपनीतके मरनेमें और विना विवाही कन्याके मरनेमें आशौच नहीं होताहै किंतु स्नान मात्र है, अनुपनीत भाईके मरनेमें भगिनीको आशौच नहीं, दो वर्षसे कमके बालकका खनन ही मुख्य है । अनुगमनमें विकल्प है, अर्थात् उसके संग जाना नित्य नहीं पूरे दो वर्षवालेका दाह मुख्य है । और अनुगमन भी नित्य है, इसके दाह जलदान आदि तूष्णीं ही होते हैं । और मुण्डन किये और पूरे तीन वर्षकेको तो भूमिमें पिण्ड दे । दांत जमनेतक उसकी तुल्य अवस्थाके बालकोंको दूसरे दिन उसके नामसे दूध दे तीन वर्ष वा मुण्डन पर्यंत पायस दे । उसके आगे जनेऊ पर्यंत आशौचके अन्तमें उसकी अवस्थाके बालकोंको उसके नामसे भोजन आदि दे । और मुण्डन कियेहुये स्त्री और शूद्रको तो उदकदान आदिके देनेमें विकल्प है । शूद्रको तीन वर्ष पर्यंत पूर्वोक्त ही आशौच होता है । इसको जनेऊके स्थानमें विवाह समझना । तिससे तीन वर्षसे आगे विवाह पर्यंत वह न होसकै तो सोलह वर्ष पर्यंत शूद्रके मरनेमें तीन दिनका आशौच होताहै । उसके आगे जातिका आशौच होताहै, तीन वर्षसे आगे सगाईसे पहिले कन्याके मरनेमें तीन वर्षतकके मरनेमें सपिंडोंको एक दिनका और माता पिताको तीन रात्रिका आशौच होताहै । दाह आदि तो तूष्णीं होतेहैं । सगाईसे पीछे विवाहसे पहिले कन्याके मरनेमें पिता और भर्ताके सपिंडोंको तीन दिनका आशौच होताहै । यहां दोनों कुलोंमें सात पुरुषतक सपिण्डता लेणी दाह आदि तो तूष्णीं होतेहैं । जन्ममें और अनुपनीतके मरनेमें अतिक्रान्त (समय बीता हुआ) आशौच नहीं होता । पिताको अपत्यका जन्म सुननेमें अन्य देश वा अन्य कालमें स्नान होताही है । अनुपनीतके मरनेमें अतिक्रांत आशौचमें भी स्नान होताही है । यह स्मृत्यर्थसागरमें लिखा है । अनुपनीत पुत्र और विना विवाही कन्याको माता पिताके मरनेमें ही दश दिनका आशौच होता है । अन्यके मरनेमें तो किंचित भी नहीं होता । जनेऊके पीछे मरनेमें सपिंडोंको दश दिनका, और सोदकोंको तीन रातका, सगोत्रियोंको एक दिनका वा स्नानसे शुद्धि होती है । इत्यादि विशेष पूर्वोक्त समझना ॥

अथ विवाहितकन्यामरणे ।

स्त्रीशूद्रयोर्विवाहोत्तरं मरणे दशाहः॥ शूद्रस्य विवाहाभावे षोडशवर्षोत्तरमित्युक्तम् ॥ विवाहोत्तरं कन्यायाः पितृगृहे मरणे मातापित्रोः सापत्नमातुः सापत्नभ्रातुसोदरभ्रातुश्च त्रिरात्रम् ॥ पितृव्यादीनां तद्गृहवर्तिनामेकाहः ॥ तद्गृहवर्तिनामपि सपिंडानामेकाह इति केचित् ॥ ग्रामांतरमृतौ पित्रोः पक्षिणीति केचित् ॥ ऊढायाः कन्यायाः पतिगृहे मरणे पित्रोः सापत्नमातुश्च त्रिरात्रं भ्रातुः पक्षिणी॥ पितृव्यादीनामेकाह इति केचित ॥

विवाहके पीछे स्त्री और शूद्रके मरनेमें दश दिनका शूद्रका विवाह न होय तो सोलह वर्षके आगे मरनेमें आशौच समझना यह कहआये । विवाहके पीछे कन्या; पिताके घर मरजाय तो माता

पिताको सपत्नी माताको, सपत्न भ्राताको, सहोदर भ्राताको; तीन रातका आशौच होता है। उस घरमें वर्तमान पितृव्य आदिको एक दिनका होता है। और उस घरमें वर्तमान सपिण्डोंको भी एक दिनका होताहै। यह कोई कहते हैं और अन्य ग्राममें मरै तो माता पिताको पक्षिणी (एक दिन एक रात) का आशौच होताहै, यह कोई कहते हैं। विवाही हुई कन्या पतिके घर मरै तो माता, पिता, सपत्नी माता; इनको तीन रातका; भ्राताको पक्षिणीका; पितृव्य आदिको एक दिनका, आशौच होताहै। यह कोई कहते हैं॥

अथ पित्रोर्मृतौ कन्यायाः।

मातापित्रोर्मरणे सापत्नमातुर्मृतौ चोढकन्यायास्त्रिरात्रं दशाहांतः॥ दशाहोर्ध्वं कालांतरे वत्सरांतरेपि पक्षिणी॥ भ्रातुरुपनीतस्य विवाहितभगिन्याश्च परस्परगृहमरणे परस्परस्य त्रिरात्रम्॥ गृहांतरमृतौ परस्परस्य पक्षिणी॥ ग्रामांतरे त्वेकाहः॥ अत्यन्तनिर्गुणत्वे एकग्रामेपि स्नानम्॥ एवं सापत्नभ्रातृभगिन्योरपि॥ भगिनीमृतौ भगिन्या अप्येवमेवेति भाति॥ ऊढकन्यायाः पितामहपितृव्यादिमरणे स्नानमेव॥

माता पिताके और सपत्नी माताके मरनेमें विवाही कन्याको दश दिनके भीतर सुननेसे तीन दिनका और दश दिनके आगे अन्य कालमें वा अन्य वर्षमें भी पक्षिणीका आशौच होताहै। उपनीत भ्राता, और विवाहीहुयी भगिनी, इनके परस्पर गृहके मरनेमें परस्परको अर्थात् दोनोंको तीन रातका और अन्य घरमें मरै तो परस्परको पक्षिणीका; अन्य ग्राममें मरै तो एक दिनका आशौच; परस्पर होता है, और इनमेंसे कोई अत्यन्त निर्गुण होय तो एक ग्राममें भी स्नानमात्र आशौच होता है। इसीप्रकार सपत्न भ्राता भगिनियोंमें भी समझना। भगिनीके मरनेमें भगिनीको भी इसीप्रकार होताहै, यह हमें भासताहै। विवाही कन्याको पितामह, पितृव्य, आदिके मरनेमें स्नानमात्र होता है॥

अथ मातुलादेः।

मातुलमरणे भगिनीपुत्रस्य भगिनीकन्यायाश्च पक्षिणी॥ उपकारकमातुलमरणे स्वगृहे मातुलमरणे च त्रिरात्रम्॥ अनुपनीतमातुलमरणे ग्रामांतरे मातुलमरणे चैकरात्रम्॥ एवं सापत्नमातुलमरणेपि॥ मातुलानीमरणे भर्तृभगिन्यपत्यस्य स्त्रीपुंसरूपस्य पक्षिणी॥ सापत्नमातुलानीमरणे तु नाशौचम्॥ उपनीतभागिनेयमरणे मातुलस्य मातुलभगिन्याश्च त्रिरात्रम्॥ एवं सापत्नभागिनेये मृतेपि॥ अनुपनीतभागिनेयमरणे मातुलस्य मातुलभगिन्याश्च पक्षिणी॥ एवं सापत्नभागिनेये मृतेपि॥ अनुपनीतपदेनावशिष्टोपनयनमात्रः कृतचूडश्चूडाया अभावे त्रिवर्षोर्ध्ववयस्को वा ग्राह्य इति भाति॥ एवमग्रेप्यनुपनीतपदस्यार्थो बोध्यः॥ भागिनेयीमरणे तु स्नानमात्रमिति भाति॥ मातामहमरणे दुहित्रपत्यस्य पुत्ररूपस्य कन्यारूपस्य वा त्रिरात्रम्॥ ग्रामतांरे पक्षिणी॥ मातामह्यां मृतायां दौहित्रस्य दौहित्र्याश्च पक्षिणी॥ अत्र सर्वत्र पुरुषस्योपनीतस्यैव स्त्रियाश्च विवाहिताया एव मातापित्रा-

तिरिक्ताशौचेऽधिकार इत्युक्तम् ॥ अत्र मातुलमातुलानीमातामहादिमृतौ स्त्र्यपत्यस्याशौचोक्तिस्त्र्यम्बकीयानुसारेणान्यत्र तु नैवं स्पष्टमुपलभ्यते ॥ उपनीतदौहित्रमरणे मातामहस्य मातामह्याश्च त्रिरात्रम् ॥ अनुपनीतदौहित्रे मृते मातामहस्य मातामह्याश्च पक्षिणी ॥ दौहित्रीमरणे तु नाशौचमिति भाति ॥ श्वश्रूश्वशुरयोर्मरणे जामातुः सन्निधौ त्रिरात्रम् ॥ असन्निधौ तु पक्षिणी ॥ उपकारकयोर्मरणे त्वसान्निधावपि त्रिरात्रमेव ॥ ग्रामांतरे त्वेकरात्रम् ॥ भार्यामरणेन निवृत्तसम्बन्धयोः श्वश्रूश्वशुरयोरनुपकारकयोर्मृते तु पक्षिण्येकाहो वेति भाति ॥ जामातरि मृते श्वश्रूश्वशुरयोरेकरात्रं स्नानाच्छुद्धिर्वा ॥ स्वगृहे जामातृमरणे त्रिरात्रम् ॥ उपनीते शालके मृते भगिनीभर्तुरेकाहः ॥ अनुपनीतशालके मृते तु स्नानम् ॥ ग्रामांतरे मृतेपि स्नानम् ॥ भार्यामरणेन निवृत्तसंबंधे शालके स्नानमिति नागोजीभट्टीये ॥ शालकसुतमरणे स्नानम् ॥ कश्चिच्छालिकायां मृतायां शालकवदेकाहादिकमाह ॥ मातुः स्वसरि मृतायां स्वस्रपत्ययोः कन्यापुत्रयोः पक्षिणी ॥ एवं सापत्नमातुः स्वसृमरणेपि ॥ पितुः स्वसरि मृतायां भ्रात्रपत्ययोः कन्यापुत्रयोः पक्षिणी ॥ पितुः सापत्नस्वसृमरणे तु स्नानमात्रम् ॥ भ्रात्रपत्यमरणे तु पितृष्वसुः स्नानम् ॥ स्वगृहे पितृष्वसृमातृष्वसृमरणे त्र्यहम् ॥

मातुलके मरनेमें भगिनीके पुत्र और कन्याको पक्षिणीका आशौच होताहै । उपकारी मातुलके मरनेमें और अपने घर मातुलके मरनेमें तीन रातका होताहै । अनुपनीत मातुलके मरनेमें और अन्य ग्रामके विषय मातुलके मरनेमें एक रातका होताहै । इसी प्रकार सपत्नी माताके मरनेमें भी समझना । मातुलानी (मामी) के मरनेमें स्त्रीपुरुषरूप जो भर्ताकी भगिनीकी संतान उनको पक्षिणीका आशौच होताहै । सपत्नी मातुलानीके मरनेमें तो आशौच नहीं होताहै । उपनीत भानजेके मरनेमें मातुल और मातुलानीको तीन रात्रिका आशौच होताहै । इसीप्रकार सपत्न भानजेके मरनेमें भी समझना । अनुपनीत भानजेके मरनेमें मातुल और मातुलानीको पक्षिणीका आशौच होताहै । इसीप्रकार सपत्न भानजेमें भी समझना । अनुपनीत पदसे जिसका जनेऊ न हुआ होय वह न लेना, किंतु मुण्डन किया लेना वा मुण्डनके अभावमें तीन वर्षकी अवस्थासे ऊपरका लेना । यह हमें भासता है । इसी प्रकार आगे भी अनुपनीत पदका अर्थ जानना । भानजीके मरनेमें तो स्नानमात्र है । यह हमें प्रतीत होताहै । मातामहके मरनेमें पुत्र कन्या रूप दुहिताकी संतानको तीन रातका होताहै । अन्य ग्राममें मरै तो पक्षिणी होताहै । मातामहीके मरनेमें दौहित्र, और दौहित्रीको पक्षिणीका होताहै । यहां सर्वत्र उपनीत पुरुषको और विवाही हुयी कन्याकोही माता पितासेभिन्नके आशौच माननका अधिकार है । यह कह आये । यहां मातुल, मातुलानी, मातामह आदिके मरनेमें कन्याको जो आशौच कहा है वह त्र्यंबकीयके अनुसारसे है । अन्यत्र तो इस प्रकार स्पष्ट नहीं मिलता है । उपनीत दौहित्रके मरनेमें मातामह और मातामहीको तीन रातको; और अनुपनीत दौहित्रके मरनेमें मातामह और मातामहीको पक्षिणीका आशौच

होताहै। और दौहित्रीके मरनेमें तो उनको आशौच नहीं है; यह हमें भासता है। श्वश्रू श्वशुरके मरनेमें जामाताको समीप होनेमें तीन रातका; समीप न होय तो पक्षिणीका होता है। और उपकारी श्वश्रू श्वशुरके मरनेमें तो असंनिधिमें भी तीन रातका ही आशौच है। अन्य ग्राममें तो एक रात्रिका होता है। भार्याके मरनेसे जिनका संबंध निवृत्त होगया हो और जो उपकारी भी नहो उन श्वश्रू श्वशुरके मरनेमें पक्षिणी वा एक दिनका आशौच होता है। यह हमें भासता है। जामाताके मरणमें श्वश्रू और श्वशुरको एक रातका आशौच है वा स्नानसे शुद्धि होतीहै। अपने घर जामाता मर जाय तो तीन रातका आशौच होता है। उपनीत सालेके मरनेमें भगिनीके भर्ताको एक दिनका आशौच और अनुपनीत सालेके मरनेमें तो स्नानमात्र है। ग्रामांतरमें मरै तो भी स्नानहीं है। भार्याके मरनेसे जिसका संबंध छुट गया हो ऐसे शालेके मरनेमें भी स्नान मात्र है यह नागोजी भट्टीयमें लिखा है। सालेके पुत्रकी मृत्युमें तो स्नान करै। कोई तो सालीके मरनेमें भी सालेके समान एक दिन आदि का आशौच कहता है। माताकी बहिन मरजाय तो, बहिनकी संतानमें जो कन्या पुत्र हैं उनको पक्षिणीका आशौचहै। इसीप्रकार सपत्नीमाताकी बहिनके मरनेमें भी समझना। पिता की बहिनके मरनेमें भ्राताकी संतानके कन्या वा पुत्रको पक्षिणीका। माताकी सपत्नी बहिनके मरनेमें तो स्नानमात्र है। भ्राताकी संतानेक मरनेमें तो पिताकी भगिनीको स्नानमात्र है। अपने घरमें फूफी और मांवँसीके मरनेमें तीन दिनका आशौच है॥

अथ बंधुत्रयाशौचविचारः।

उपनीतबंधुत्रयमरणे पक्षिणी॥ अनुपनीतस्य गुणहीनस्य वा बंधुत्रयस्य मरणे एकाहः॥ स्वगृहे मरणे तु त्रिरात्रम्॥ अत्र बंधुत्रयपदेनात्मबंधुत्रयं पितृबंधुत्रयं मातृबंधुत्रयमिति नव बंधवो ग्राह्याः॥ते यथा॥ "आत्मपितृष्वसुः पुत्रा आत्ममातृष्वसुः सुताः॥ आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबांधवाः॥ पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः॥ पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबांधवाः॥ मातुः पितृष्वसुः पुत्रा मातुर्मातृष्वसुः सुताः॥ मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबांधवाः॥" इति॥ पितृष्वस्रादिकन्यानां तु विवाहितानां मरणे तद्बंधुवर्गस्त्वेकेनेति वचनबलादेकाहोऽनूढानां तु मरणे स्नानमात्रमिति निर्णयसिंध्वाशयः॥ नागोजीभट्टास्तु बंधुत्रयवाक्ये पुत्रपदं कन्योपलक्षकमित्याहुः॥ तन्मते पितृष्वस्रादिकन्यानामूढानां मरणे पक्षिणी॥ अनूढानामेकाह इत्यादि॥ पितृष्वस्रादिकन्याभिस्तु बंधुत्रयमरणे स्नानमात्रं कार्यमिति सिंध्वाशयेन सिध्यति॥ भट्टमते तु पुत्रपदवत्तद्वाक्यस्थात्मपदस्यापि कन्यापरत्वापत्त्या कन्याभिरपि बंधुत्रयाशौचं कार्यमित्यापतति॥ तत्र च बहुशिष्टाचारविगानमिति सिंध्वाशयो युक्तो भाति॥ अत्रेदं तत्त्वम्॥ देवदत्तीयबंधुनवकमध्ये आत्मबंधुत्रये संबंधसाम्यात्परस्परमाशौचम्॥ अवशिष्टबंधुषट्के तु बंधुषट्कमरणे देवदत्तस्याशौचं देवदत्तस्य मरणे तु बंधुषट्कस्य नाशौचं संबंधाभावादिति सुधीभिरूह्यम्॥

उपनीत तीनों बंधुओंके मरनेमें पक्षिणी; अनुपनीत वा निर्गुण तीनों बंधुओंके मरनेमें एक दिनका होता है । अपने घरमें मरै तो तीन रातका होताहै । यहां बंधुत्रय पदसे अपने बंधु, पिताके बंधु, माताके बंधु, ये तीन २ लेकर नौ बन्धु ग्रहण करने । वे ऐसे होतेहैं कि, अपनी फूफीके पुत्र, अपनी मौसीके पुत्र, अपने मामाके पुत्र; ये अपने बंधु कहे हैं । पिताकी फूफीके पुत्र, पिताकी मौसीके पुत्र, पिताके मामाके पुत्र; ये पितृबंधु जानने । माताकी फूफीके पुत्र, माताकी मौसीके पुत्र, माताके मामाके पुत्र; ये तीन मातृबंधु होतेहैं । और फूफी आदिकी विवाहीहुई कन्याओंके मरनेमें एक दिनका होताहै । क्योंकि, यह वचन है । कि, उसका बंधुवर्ग एक दिनसे शुद्ध होताहै । विना विवाहीहुइयोंके मरनेमें तो स्नानमात्र है । यह निर्णयसिंधुका आशय है । नागोजीभट्ट तो यह कहतेहैं कि, तीनों बंधुओंके वाक्यमें पुत्रपद कन्याका भी बोधकहै । उसके मतमें फूफी आदिकी विवाहीहुई कन्याओंके मरनेमें पक्षिणी, विना विवाहीहुईयोंके मरनेमें एक दिन; इत्यादि तो इस निर्णय-सिंधुके आशयसे सिद्ध होताहै । कि, फूफी आदिकी कन्या तो तीनों बंधुओंके मरनेमें स्नान-मात्र करै । भट्टके मतमें तो पुत्रपदके समान उस वाक्यमें स्थित आत्मपद भी कन्याका बोधक होजायगा तो कन्या भी तीनों बंधुओंके आशौचको करै । यह भी आजायगा । और वह बहुत शिष्टाचारसे निंदित है । यह निर्णयसिंधुका आशय अच्छा प्रतीत होताहै । यहां तत्त्व तो यह है कि, देवदत्तके नौ बंधुओंके मध्यमें अपने बंधुओंमें तो समान संबंध होनेसे परस्पर आशौच है । शेष रहे छः बंधुओंमें तो छः बंधुओंके मरनेमें देवदत्तको आशौच है । देवदत्तके मरनेमें तो छः बन्धुओंको सम्बंधके अभावसे आशौच नहीं । यह बुद्धिमानोंको विचारने योग्य है ॥

अथ दत्तकादेः ।

दत्तकस्य मरणे पूर्वापरपित्रोस्त्रिरात्रं सपिंडानामेकाहमाशौचम् ॥ नीलकंठीये दत्तकनिर्णये तूपनीतदत्तकमरणादौ पालकपित्रादिसपिंडानां दशाहादिकमेवाशौच-मित्युक्तम् ॥ दत्तकेनापिपूर्वापरपित्रोर्मृतौ त्रिरात्रम् ॥ पूर्वापरसपिंडानां मरणे एकाहः ॥ पित्रोरौर्ध्वदेहिककरणे तु कर्मांगं दशाहमेव ॥ दत्तकस्य पुत्रपौत्रादेर्जनने मरणे वा पूर्वापरसपिंडानामेकाहः ॥ एवं पूर्वापरसपिंडमरणादावपि दत्तकपुत्र पौत्रादेरेकाहः ॥ इदं सपिंडसमानोदकभिन्ने दत्तीकृते ज्ञेयम् ॥ सगोत्रसपिंडे सादके च दत्तीकृते यथाक्रमं दशाहं त्रिरात्रं च यथाप्राप्तं भवत्येव ॥

दत्तकके मरणेमें पहिले और पिछले माता पिताओंको तीन रातका और सपिंडोंको एक दिनका आशौच होताहै । नीलकंठके लिये दत्तक निर्णयमें तो यह कहाहै । कि, उपनीत दत्तकके मरण आदिमें पालक पिता आदि सपिंडोंको दश दिन आदिकाही आशौच होताहै । दत्तक भी पहिले पिछले माता पिताओंके मरनेमें तीन रातका, पहिले पिछले सपिंडोंके मरनेमें एक दिनका आशौच करै । माता पिताके और्ध्वदेहिक कर्मके करनेमें तो कर्मका अंग दश दिनका आशौच होता ही है । दत्तकके पुत्र पौत्र आदिके जन्म वा मरनेमें पहिले पिछले सपिंडोंको एक दिनका और इसी प्रकार पहिले पिछले सपिंडोंके मरण आदिमें दत्तकके पुत्र

पौत्र आदिको एक दिनका आशौच होताहै । यह भी सपिंड और समानोदकसे भिन्न दत्तक होय तो जानना । और सगोत्र, सपिण्ड समानोदक; दत्तक लिया होय तो क्रमके अनुसार त्रिरात्र आदि जैसा आशौच पावै वैसा ही आशौच होताहै ॥

अथाचार्यादिमरणे ।

आचार्य मृते त्रिरात्रम्॥ ग्रामांतरे मृते पक्षिणी ॥ उपनीय वेदाध्यापक आचार्यः ॥ स्मार्तकर्मनिर्वाहकोप्याचार्यः ॥ आचार्यभार्यासुतयोर्मरणे एकाहः ॥ मंत्रोपदेशकगुरुमरणे त्रिरात्रम् ॥ ग्रामांतरे पक्षिणी ॥ शास्त्राध्यापको व्याकरणज्योतिःशास्त्राद्यंगाध्यापकश्चानूचानसंज्ञकस्तन्मरणे एकाहः ॥ सकलवेदाध्यापकगुरुमरणे पक्षिणी ॥ वेदैकदेशाध्यापक उपाध्यायस्तन्मरणे एकाहः ॥ शिष्यस्योपनीयाध्यापितस्य मृतौ त्रिरात्रम् ॥ निवृत्ताध्ययनस्य मृतौ पक्षिणी ॥ परोपनीतस्य बहुकालमध्यापितस्य मरणे एकाहः ॥ सहाध्यायिमृतौ पक्षिणी ॥ ऋत्विजि अनिवृत्तर्त्विक्कर्मणि मृते त्रिरात्रम् ॥ ग्रामांतरे पक्षिणी ॥ कर्मनिवृत्तौ ग्रामांतरे एकाहः ॥ एकग्रामे पक्षिणी ॥ एवं याज्यमरणेपि ॥ सार्थवेदाध्यायी श्रौतस्मार्तकर्मनिष्ठश्च श्रोत्रियस्तयोर्मरणे मैत्रीगृहानंतर्यादिसंबंधे त्रिरात्रम् ॥ एकतरसंबंधे पक्षिणी ॥ संबंधाभावे एकाहः ॥ सवर्णमित्रमरणे एकाहः ॥ यतिमरणे सर्वसपिंडानां स्नानमात्रम् ॥ स्वगृहे उदासीनासपिंडमरणे एकाहः ॥ स्वाधिष्ठितस्वगृहेऽसपिंडमरणे त्र्यहम् ॥ आशौचप्रयोजकसंबंधिनि स्वगृहमृते त्रिरात्रम् ॥ ग्रामाधिपदेशाधिपादेर्मृतौ सज्योतिः ॥ दिवामरणे रात्रौ स्नानाच्छुद्धिः रात्रिमरणे दिवाशुद्धिरिति सज्योतिःपदार्थः ॥ पक्षिणीपदार्थस्तु दिवामरणे स दिवसः सा रात्रिर्द्वितीयदिवस नक्षत्रदर्शनपर्यंतमिति ॥ आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणीत्यनेन आगामिवर्तमानाहर्द्वययुता मध्यगता रात्रिः ॥ रात्रिमरणे सा रात्रिस्तदुत्तरमहोरात्रिश्चेति पक्षिणी ॥ केचित्तु रात्रिमरणेपि मरणदिनाद्द्वितीयदिनस्थनक्षत्रदर्शनपर्यंतमेव पक्षिणीपदार्थं इत्याहुः ॥ एवमतिक्रांतविषये दिवारात्रौ वा मरणज्ञानानुसारेण पक्षिणीव्यवस्था योज्या ॥ आचार्यमातुलादीनां त्रिरात्राद्याशौचमन्यस्मिन्नंत्यकर्मकर्तरि ज्ञेयम् ॥ शिष्यादीनामंत्यकर्मकर्तृत्वे तु दशाहाद्येव ॥

आचार्यके मरणमें तीन रातका, अन्य ग्राममें मरै तो पक्षिणीका आशौच होताहै । यज्ञोपवीत देकर जो वेदको पढावै है, वह आचार्य कहाता है । और जो स्मार्त कर्मको करावै वह भी आचार्य होताहै । आचार्यकी भार्या और पुत्रके मरणेमें एक दिनका होता है, मन्त्रके उपदेशक गुरुके मरणमें तीन रातका अन्य ग्राममें मरै तो पक्षिणीका आशौच होताहै । शास्त्रका अध्यापक; व्याकरण, ज्योतिष, शास्त्र आदि अंगोंका अध्यापक; जो अनूचान (अधिकज्ञानी) उसके मरणमें एक दिनका; जनेऊ देकर पढाये हुए शिष्यके मरणमें तीन रातका; और जो पढनेसे बैठ रहा होय उसके मरणमें पक्षिणीका, और अन्यसे

उपनीत और बहुत कालतक पढाये हुये शिष्यके मरणमें एक दिनका, आशौच होताहै । सहाध्यायीके मरणमें पक्षिणीका, ऋत्विज कर्मकी समाप्तिसे पहिले ऋत्विजके मरणमें तीन रातका, अन्य ग्राममें मरै तो पाक्षिणीका, कर्म निवृत्तिके अनन्तर और दूसरे ग्राममें मरै तो एक दिनका, एक ग्राममें मरै तो पक्षिणीका, आशौच होताहै । इसीप्रकार याज्य (यजमान) के मरणेमें भी समझना । सार्थक वेदका पाठी श्रौत और स्मार्त कार्यमें तत्पर जो वेदपाठी इनके मरणमें मित्रता, घरकी समीपता, आदिका संबंध होयँ तो तीन रातका, और दोनोंमेंसे एक संबंध होय तो पक्षिणीका, कोई संबंध न होय तो एक दिनका, आशौच होताहै । अपने वर्णका जो मित्र उसके मरणमें एक दिनका आशौच होताहै । संन्यासीके मरणमें सम्पूर्ण सपिंडोंको स्नानमात्र होताहै । अपने घरमें उदासीन असपिंड मरै तो एक दिनका और अपने वासके घरमें असपिण्ड मरै तो तीन दिनका आशौच होताहै । आशौचका हेतु जो संबंध वह जिसके संग होय वह यदि अपने घरमें मरजाय तो तीन रात्रिका, आशौच होताहै । ग्रामका अधिपति, देशका अधिपति मरजाय तो सज्योति आशौच होताहै । अर्थात् दिनमें मरै तो रात्रिमें स्नानसे, रात्रिमें मरै तो दिनमें स्नानसे, शुद्धि होतीहै । यही सज्योतिपदका अर्थहै । पक्षिणीपदका अर्थ तो यह है कि, दिनमें मरै तो वह रात्रि और अगले दिन नक्षत्र दर्शन पर्यंतको पक्षिणी कहते हैं । अगले और वर्तमान दिनसे युक्त जो मध्यकी रात्रि वह पक्षिणी हुयी । और रात्रिमें मरै तो वह रात्रि और उससे अगला दिन और रात्रि यह पक्षिणी हुयी । कोई तो रात्रिके मरणमें भी मरनेके दिनसे दूसरे दिनके नक्षत्र दर्शन पर्यंतको पक्षिणी कहतेहैं । इसीप्रकार अतिक्रांत आशौचके विषयमें भी दिनमें वा रात्रिमें जो मरणका ज्ञान उसके अनुसारसे पक्षिणीकी व्यवस्था जाननी । आचार्य, मातुल, आदिकोंका जो शिष्य आदिको आशौच है वह तब जानना जब अन्तेष्टि कर्म करनेवाला अन्य हो शिष्य आदि ही अन्य कर्म करै तो दश दिन आदिका ही आशौच होताहै ॥

अथ ग्रामे शवस्थितौ विचारः ।

ग्राममध्ये यावच्छवस्तिष्ठति तावद्ग्रामस्याशौचम् ॥ नगरे तु नैव ॥ ग्रामनगरलक्षणान्यन्यत्र ॥ गृहे गवादिपशुमृतौ यावच्छवः तिष्ठेत्तावदाशौचम् ॥ द्विजगृहे शुनो मृतौ गृहस्य दशरात्रमाशौचम् ॥ शूद्रमरणे मासम् ॥ पतितमृतौ मासद्वयम् ॥ म्लेच्छादिमृतौ मासचतुष्टयम् ॥ दासानां गृहजातक्रीतऋणमोक्षितलब्धत्वादिप्रकाराणां स्वामिमरणे स्वजातीयाशौचम् ॥ युद्धे शस्त्रपातेन सद्योमृते स्नानमात्रं नाशौचमंत्यकर्मापि दशाहादिकं सद्य एव कर्तव्यम् ॥ युद्धेक्षतेन कालांतरे मरणे एकाहः ॥ त्र्यहादूर्ध्वं युद्धक्षतेन मरणे पराङ्मुखहते युद्धे कपटेन हते च त्रिरात्रम् ॥ युद्धक्षतेन सप्तरात्रादूर्ध्वं मृतौ दशाह इत्याहुः ॥ शिष्टास्तु युद्धेहतस्य सद्यः शौचादिकं लोकविद्विष्टत्वान्न वदंति ॥ प्रयागादौ काम्यमरणे स्नानमात्रम् ॥ प्रायश्चित्तार्थमग्न्यादिमरणे एकाहः ॥ महारोगपीडाक्षमाणां जलादिप्रवेशे त्रिरात्रम् अत्रापि न शिष्टाचारसंमतिः॥एवं कारागृहे मृतस्यैकरात्रमपि ॥

ग्रामके मध्यमें जबतक शव टिके तबतक ग्रामको आशौच होताहै। नगरमें तो इस प्रकार आशौच नहीं होता। ग्राम और नगरके लक्षण अन्य ग्रन्थोंमें कहेहैं। घरमें गऊ आदि पशुओंके मरनेपर इतने शव टिके तबतक आशौच होताहै। द्विजके घरमें कुत्ती मरजाय तो घरको दश रात्रिका आशौच होताहै। शूद्र मरजाय तो मासतक, पतित मरजाय तो दो मासतक, म्लेच्छ आदि मरजायँ तो चार मासतक, घरमें आशौच रहताहै। गृहजात, क्रीत, ऋणमोक्षित, लब्ध, आदि भेदके जो दास हैं, उनको स्वामीके मरनेमें अपनी २ जातिका आशौच होताहै। युद्धमें शस्त्रके लगनेसे शीघ्र मरनेमें स्नानमात्र है आशौच नहीं दशाह आदि अन्त्य कर्मभी सद्यः ही करने योग्य है। युद्धके घावसे कालांतरमें मरै तो एक दिनका आशौच होताहै। तीन दिनके अनंतर युद्धके घावसे मरै तो पराङ्मुख होकर और युद्धमें कपटसे मरै तो तीन रात्रिका आशौच होताहै। युद्धके घावसे सात रात्रिके पीछे मरै तो दश दिनका आशौच होताहै। यह कोई कहते हैं। शिष्ट तो युद्धमें मरेकी सद्यःशुद्धिको लोकविरुद्ध होनेसे नहीं कहतेहैं। प्रयाग आदिमें कामनासे मरै तो स्नानमात्र है। प्रायश्चित्तके लिये अग्निआदिमें मरै तो एक दिनका आशौच होताहै। महारोगोंकी पीडाको न सहकर जलादिमें प्रवेश करै तो तीन रात्रिका आशौच होता है। इसमें भी शिष्टाचारकी संमति नहीं है। इसी प्रकार कारागृह (कैद) में जो मरै उसके एक रात्रि आशौचमें भी शिष्टाचार नहीं है॥

अथातिक्रांताशौचम्।

तत्र जननाशौचेतिक्रांताशौचं नास्ति॥ पितुः स्नानमात्रं तत्रापि भवति॥ मृताशौचेप्यनुपनीतमरणादिनिमित्तेषु त्रिरात्रैकरात्रेषु मातुलादिपरगोत्रीयमरणनिमित्तकेषु पक्षिणी त्रिरात्रादिषु चातिक्रांताशौचं नास्ति॥ तत्रोढकन्यायाः पित्रोर्मरणे त्रिरात्रेऽतिक्रांतेपि दशाहांतस्त्र्यहं तदूर्ध्वं वत्सरांतरेपि पक्षिणीत्युक्तम्॥ एवं सोदकादिविषयत्रिरात्रादिष्वतिक्रांताशौचं न स्नानमात्रं त्वत्रापि कालांतरेपि भवत्येव॥किंतु दशाहादिमृताशौचविषयमेवातिक्रांताशौचं कर्तव्यम्॥ तत्र दशाहाद्याशौचानां त्रिरात्रादीनां च तत्तदाशौचमध्ये ज्ञानेऽवशिष्टदिनैः शुद्धिः पुत्रादेरपि शेषदिनैरेव शुद्धिः॥ अंत्यकर्मापि शेषदिनैरेव समापनीयम्॥ एवमस्थिपर्णशरसंस्कारेपि शेषेणैव॥ एवं सोदकत्रिरात्रेपि शेषेण शुद्धिः॥ त्रिरात्राद्युत्तरं तु दशाहान्न्यूनाशौचानां दशाहमध्ये ज्ञातेपि नातिक्रांताशौचं किंतु स्नानमात्रम्॥ मातापित्रोर्मरणे दूरदेशेपि वत्सरांतरेपि श्रवणे पुत्रस्य श्रवणप्रभृति दशाहादिपूर्णमेवाशौचम्॥ दंपत्योः परस्परं देशांतरे कालांतरेपि पूर्णं दशाहमेव॥सपत्नीनां परस्परं देशकालविशेषानपेक्षं दशाहमेव॥ सापत्नमातुर्मरणे पुत्रस्य दशाहोर्ध्वं देशकालानपेक्षं त्रिरात्रम्॥ औरसपुत्रमृतौ मातापित्रोर्वत्सरांतरेपि त्रिरात्रम्॥ दशाहोर्ध्वमेकदेशे सपिण्डमरणे ज्ञाते मासत्रयपर्यंतं त्रिरात्रम्॥षण्मासपर्यंतं पक्षिणी॥ नवमासपर्यंतमेकरात्रम्॥ ततो वर्षपर्यंतं सद्योतिः स्नानमात्रं वा माधवमते पक्षत्रयपर्यंतं त्रिरात्रम्॥ षण्मासपर्यंतं पक्षिणी॥ वर्षपर्यंतमेकरात्रम्॥ वर्षोर्ध्वं स्नानमात्रमिति॥ अत्रापदना-

पद्विषयत्वेन व्यवस्था ॥ अथ देशांतरे सपिंडमरणे दशाहोर्ध्वं ज्ञाते पक्षत्रयपर्यंतं त्रिरात्रम् ॥ षण्मासपर्यंतं पक्षिणी ॥ नवमासपर्यंतमेकाहः ॥ वर्षपर्यंतं सज्योतिरिति माधवमतम् ॥ विज्ञानेश्वरस्तु देशांतरे सपिंडमरणे दशाहोर्ध्वं ज्ञाते स्नानमात्रमित्याह ॥ अत्र माधवमतमेव युक्तम् ॥ अतिक्रांताशौचं वयोवस्थानिमित्तकाशौचं च सर्ववर्णसाधारणम् ॥

अब अतिक्रांत आशौचको कहतेहैं। उसमें जननाशौचमें तो अतिक्रांताशौच नहीं होता। और उसमें पिताको स्नानमात्र होताहै। मरणके आशौचमें भी जिनका अनुपनीत मरण आदि निमित्त है ऐसे त्रिरात्र एकरात्रोंमें और जिनका भिन्न गोत्रके मातुल आदिका मरण निमित्तहै उन पक्षिणी त्रिरात्र आदिकोंमें अतिक्रांताशौच नहीं है। अर्थात् दश दिनके अनंतर सुने तो अशुद्ध नहीं होते। उसमें विवाही हुयी कन्याको माता पिताके मरनेमें तीन रात्रि बीतनेपर दशदिनके भीतर सुने तो तीन दिनका उसके आगे और दूसरे वर्षमें भी सुने तो पक्षिणीका आशौच होताहै। यह पहिले कह आये। इसीप्रकार समानोदक आदिके त्रिरात्र आदिमें भी अतिक्रांत आशौच नहीं है। और इनमें और कालांतरमें भी स्नानमात्र तो होताही है। किंतु दशाह आदिके विषय ही अतिक्रांताशौच करना उसमें दशाह आदिका आशौच और त्रिरात्रि आदिका आशौच इनका जिस २ आशौचके मध्यमें ज्ञान होजाय तो शेषके दिनोंसे शुद्धि है। और पुत्र आदिकी भी शेषदिनोंसे ही शुद्धि है। और अन्त्य कर्मकी भी शेष दिनोंसे ही समाप्ति कर दे। इसीप्रकार अस्थिओंसे पूतलेका संस्कार भी शेष दिनोंसे ही करै। और समानोदकोंके त्रिरात्रमें भी शेषसेही शुद्धि होतीहै। त्रिरात्रके पीछे दशाहसे न्यूनका आशौच नहीं उनका दशाहके मध्यमें ज्ञान होनेपर भी अतिक्रांताशौच नहीं; किंतु स्नानमात्र है। माता पिताके मरनेमें; दूर देशमें और अन्य वर्षमें भी सुननेपर पुत्रको सुननेके दिनसे दशाह आदि सम्पूर्ण आशौच होताहै। स्त्रीपुरुषको भी परस्पर देशांतर और कालांतरमें भी पूरा दशाह होताहै। सपत्नीओंको परस्पर देश कालकी अपेक्षाको छोडकर दश दिनका आशौच होताहै। सपत्नीमाताके मरनेमें पुत्रको दश दिनके पीछे देश कालके नियमको छोडकर तीन रात्रिका आशौच होताहै। और सपुत्रके मरनेमें माता पिताको अन्य वर्षमें भी त्रिरात्रिका आशौच होताहै। दश दिनके पीछे एक देशमें सपिंडके मरनेका ज्ञान होय तो तीन मास पर्यंत त्रिरात्रि, छः पर्यंत पक्षिणी, और नव मास पर्यंत एक रात्रि, और वर्ष पर्यंत, सज्योति वा स्नानमात्रका, आशौच होताहै। माधवके मतमें तीन पक्ष पर्यंत त्रिरात्रिका, छः मास पर्यंत पक्षिणी, वर्ष पर्यंत एक रात्रिका, वर्षके पीछे स्नानमात्रका आशौच होताहै, इन दोनों पक्षोंकी आपत्ति अनापत्तिके विषयसे व्यवस्था है। और इसके विषय देशांतरमें सपिंड मरै और दश दिनके पीछे उसका ज्ञान होय तो तीन पक्ष पर्यंत त्रिरात्रि होताहै। छः मास पर्यंत पक्षिणी, नव मास पर्यंत एक दिन, वर्ष पर्यंत सज्योति, यह माधवका मतहै। विज्ञानेश्वरने तो देशांतरमें सपिण्डके मरनेमें दश दिनके पीछे मालूम होय तो स्नानमात्र कहा है। इनमें माधवका मत ही युक्त है। अतिक्रांत आशौच और अवस्थाके निमित्तका आशौच सब वर्णोंमें साधारण (एकसा) है ॥

अथ देशांतरलक्षणानि।

देशांतरं तु विप्रस्य विंशतियोजनात्परम् ॥ क्षत्रियादेः क्रमेण चतुर्विंशत्रिंशत्षष्टियोजनैः ॥ केचिद्विप्रस्य त्रिंशद्योजनोत्तरं देशांतरमाहुः ॥ भाषाभेदसहितमहागिरिणा भाषाभेदसहितमहानद्या वा व्यवधानमपि देशांतरम् ॥ यत्तु केचिद्भाषाभेदरहितमपि गिरिनदीव्यवधानं देशांतरमाहुः ॥ तद्योजनगतविंशत्यादिसंख्यायास्त्रिचतुरादिन्यूनत्वेपि देशांतरत्वसंपादकतया योज्यमिति भाति ॥ अन्यथा महानदीपरपूर्वतीरवासिनामेकयोजनमध्येपि देशांतरत्वापत्तेः ॥ अत्र सगोत्रविषयाशौचान्येव भार्यापतिपुत्रादिभिः सर्वैरनुष्ठेयानि ॥ यानि तु मातुलत्वभगिनीत्वादिप्रयुक्तानि भिन्नगोत्राशौचानि तेषु जायापतिपुत्रादिमध्ये यत्संबंधियत्तत्तेनैवानुष्ठेयं न सर्वैः ॥ रात्रौ जननमरणे रात्रौ मरणज्ञाने वा रात्रिं त्रिभागां कृत्वा प्रथमभागद्वये पूर्वदिनं तृतीयभागे उत्तरदिनमारभ्याशौचम् ॥ यद्वार्धरात्रात्प्राक् पूर्वदिनम् ॥ परतः परदिनम् ॥ अत्र देशाचारादिना व्यवस्था ॥

देशांतरमें तो ब्राह्मणको बीस योजनसे परै। क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंको क्रमसे चौवीस, तीस, साठ योजनसे परै होताहै। कोई तो ब्राह्मणको तीस योजनसे परै देशांतर कहतेहैं। भाषाके भेद सहित बडे पर्वतके और भाषा भेद सहित बडी नदीके व्यवधानसे भी देशांतर होताहै। जो किसीने भाषाभेदके विना भी गिरि नदीके व्यवधानसे भी देशांतर कहाहै। वह बीस आदि योजनोंकी संख्याकी तीन चार आदिकी न्यूनतामें भी देशांतरको गोधक मानकर लगाना यह हमें भासताहै। यह न मानोगे तो महानदीके परले और इधरके तीर वासियोंको देशांतर होजायगा यहां सगोत्रियोंके आशौच ही भार्या पति पुत्र आदि सबको करने। और जो मातुल भगिनी आदि भिन्न गोत्रियोंके आशौच हैं उनमें: जाया, पति, पुत्र, आदिके मध्यमें जो जिसका सम्बंधी है उसको ही उसका आशौच मानना सबको न करना। रात्रिमें जन्म मरणमें वा रात्रिमें मरणके ज्ञान होनेपर रात्रिके तीन भाग करके पहिले दो भागोंमें पहिले दिनसे और तीसरे भागमें पिछले दिनसे लेकर आशौच होताहै। अथवा अर्द्धरात्रिसे पहिले पूर्व दिन, परै परदिन होताहै यहां देशाचार आदिसे व्यवस्था समझनी ॥

अथाहिताग्नेर्विचारः।

आहिताग्नेर्मंत्रवद्दाहदिनमारभ्य पुत्रादिभिराशौचं कार्यम् ॥ अत्राहिताग्निपदेन श्रौताग्नित्रयवान्ग्राह्यः ॥ तद्भिन्नो गृह्याग्निमानप्यनाहिताग्निपदेन ग्राह्यः ॥ आहिताग्नेर्विदेशमरणे मंत्रवद्दाहात्पूर्वं पुत्रादीनामाशौचं संध्यादिनित्यकर्मलोपश्च नास्ति ॥ मंत्रवद्दाहमारभ्य तु पुत्रादिसपिंडानां दुहितृदौहित्रादिभिन्नगोत्राणां चाशौचं भवत्येव न त्वतिक्रांतनिमित्तक आशौचाभावस्तद्ध्रासो वा ॥ अत एवाहिताग्नेः पर्णशरदाहेपि दशाहमेव देशांतरे कालांतरेपि सिध्यति ॥ अनाहिताग्नेर्मरणदिनादारभ्य पुत्रादिभिराशौचं कार्यम् ॥ अनाहिताग्नेर्देशांतरे मरणेऽतिक्रांताशौचं मरणश्रवणा

नन्तरमेव पूर्वोक्तव्यवस्थया कार्यम् ॥ अनाहिताग्नेरस्थिदाहपर्णशरदाहयोस्तु पूर्वमगृहीताशौचयोर्भार्यापुत्रयोर्दशाहमेव ॥ गृहीताशौचयोस्तु संस्कारकर्तृभिन्नयोर्दाहकाले त्रिरात्रम् ॥ सपत्न्योर्मिथश्चैवम् ॥ पत्नीसंस्कारे पत्युश्चैवम् ॥ एतद्भिन्नसपिंडानां तु पूर्वमगृहीताशौचानामनाहिताग्निसंस्कारकाले त्रिरात्रम् ॥ गृहीताशौचानां तु सपिण्डानां दाहकाले स्नानमात्रम् ॥ इदं सपिंडानां त्रिरात्रादिकं पुत्रादेर्दशाहादिकं च दशाहोर्ध्वं संस्कारकरणे ज्ञेयम् ॥ दशाहमध्ये संस्कारकरणे तु शेषदिनैरेव शुद्धिः कर्मसमाप्तिश्च ॥ आहिताग्नेरेव दशाहमध्येऽपि शरीरदाहेऽस्थिदाहे पर्णशरदाहे वा शेषेण न शुद्धिः समंत्रकदाहदिनस्यैव प्रथमदिनत्वादित्युक्तम् ॥ दशाहोर्ध्वं देशांतरमृतानाहिताग्निवार्ताश्रवणादिनात्कृतत्रिरात्राशौचानां सपिण्डानां चतुर्थादिदिनेषु संस्कारारंभे दाहकाले स्नानम् ॥ अगृहीताशौचानां त्रिदिनमेव ॥ भार्यापुत्रादेः श्रवणदिनादारभ्य दशाहम् ॥ द्वितीयादावहन्यारंभे चतुर्थे दिने सपिंडशुद्धिः ॥ भार्यादेर्दशाहमेव श्रवणदिनादित्यूह्यम् ॥

आहिताग्निके मंत्रों सहित दाह दिनसे लेकर पुत्र आदि आशौच करै । यहां आहिताग्नि पदसे तीन श्रौत (वेदकी) अग्निवाला लेना । और उससे भिन्न गृह्य अग्निवाला भी अनाहिताग्नि पदसे लेना । आहिताग्निके परदेशमें मरनेमें मन्त्र सहित दाहसे पहिले पुत्र आदिको आशौच, और संध्या आदि नित्य कर्मका लोप नहीं है । मंत्रों सहित दाहसे लेकर तो पुत्र-आदि सपिण्डोंको दुहिता, दौहित्र, आदि भिन्न सगोत्रोंको आशौच होता ही है । और अतिक्रांतके निमित्तके आशौचका अभाव और उसकी न्यूनता नहीं होते । इसीसे आहिताग्निके-पुत्तल दहनमें भी दश दिनका ही आशौच अन्य देश और अन्य कालमें भी सिद्ध होताहै । अनाहिताग्निका आशौच तो पुत्र आदि मरण दिनसे लेकरही करै । अनाहिताग्निके अस्थियोंके दाह और पुत्तलके दाहमें उन भार्यापुत्रोंको दश दिनका ही आशौच होताहै । जिन्होंने पहिले आशौच न माना होय और जिन्होंने आशौच पहिले मान लिया होय वे संस्कारके कर्ता न होयँ तो त्रिरात्र होताहै । और सपत्नियोंको भी परस्पर ऐसेही होताहै । और पत्नीके संस्कारमें पतिको भी ऐसे ही होताहै । इनसे भिन्न जो पहिले आशौचके न माननेवाले सपिंडहैं उनको अनाहिताग्निके संस्कारकालमें त्रिरात्रिका आशौच होताहै । और जिन सपिण्डोंने पहिले आशौच मान लिया होय उनको दाहकालमें स्नानमात्र होताहै । यह सपिंडोंको त्रिरात्र आदिका, और पुत्र आदिको दशाह आदिका आशौच, दश दिनके पीछे संस्कार करनेमें जानना । दश दिनके मध्यमें संस्कार करनेमें तो शेष दिनोंसे ही शुद्धि और कर्मकी समाप्ति होती है । आहिताग्निके ही दश दिनके मध्यमें शरीरदाह, अस्थिदाह, वा पुत्तलदाहमें शेषदिनोंसे शुद्धि है । क्योंकि, उसका मंत्रों सहित दाहका दिनही प्रथम दिन है । दश दिनके पीछे परदेशमें मरेहुये अनाहिताग्निकी बात सुननेके दिनसे चौथे आदि दिनोंमें संस्कारका आरंभ होनेपर उन सपिण्डोंको दाह कालमें स्नानमात्र होताहै, जिन्होंने त्रिरात्र आशाच मान लिया होय, और जिन्होंने आशौच न माना होय उनको तो त्रिरात्र ही होता है । भार्या पुत्र आदिको सुननेके दिनसे लेकर दश दिनका आशौच होताहै, दूसरे दिन

दाहके आरंभमें चौथे दिन सपिंडोंकी शुद्धि होतीहै, भार्या आदिको सुननेके दिनसे दशाहका आशौच होताहै । यह समझना ।

अथ देशांतरगतवार्ताप्रतीक्षाकालव्यवस्था ।

देशांतरगतस्य द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं पर्णशरदाहेप्येवमेव ॥ पुत्रादेः सपिंडानां च दशरात्रं त्रिरात्रादिकमूह्यम् ॥ प्रतीक्षा च यदारभ्य वार्ता न श्रूयते तदारभ्य पंचदशवर्षाणि मातापित्रोः ॥ अन्येषां पूर्वे वयसि विंशतिः ॥ मध्यमे पंचदश ॥ उत्तरे वयसि द्वादश ॥ प्रतीक्षायुक्त्यादिभिर्मरणानिश्चयासंभवे कार्या ॥

देशांतरमें गये हुयेकी बारह वर्ष आदिकी प्रतीक्षाके पीछे पुत्तलके दाहमें भी इसीप्रकार समझना । पुत्र आदि और सपिण्डोंको तो दश रात त्रिरात्र आदि आशौच मानना; प्रतीक्षा तो जबसे कोई बात न सुनी जाय तबसे लेकर माता पिताकी पंद्रह वर्षतक और अन्योंकी परली अवस्थामें बीस वर्षतक, मध्यमें पंद्रह, और पिछली अवस्थामें बारह वर्षतक करै । और प्रतीक्षा भी तब करनी जब युक्ति आदिसे मरणका निश्चय न होसकै ॥

अथाशौचसंपाते निर्णयः ।

दशाहमृताशौचे दशाहस्य ततो न्यूनस्य वा ॥ मृताशौचस्य संपाते पूर्वप्रवृत्ताशौचसमाप्त्या शुद्धिः ॥ १ ॥ दशाहजननाशौचे दशाहं न्यूनं वा जननाशौचं पतति चेत्पूर्वप्रवृत्तसमाप्त्या शुद्धिः ॥ २ ॥ दशाहमृताशौचे जननाशौचं दशाहं त्र्यहं वा संपतेत्तदा मृताशौचसमाप्त्या शुद्धिः ॥ ३ ॥ त्र्यहमृताशौचे त्र्यहं ततो-न्यूनं वा मृताशौचं त्र्यहं जननाशौचं वा संपतेत्तदा पूर्वप्रवृत्तांते शुद्धिः ॥ ४ ॥ त्रिदिनजननाशौचे त्रिदिनजननाशौचसंपाते पूर्वांते शुद्धिः ॥ ५ ॥ पक्षिणीमृताशौचे पक्षिण्येकाहान्यतरमृतकपाते पूर्वांते शुद्धिः ॥ जननाशौचे न समेनाधिकेन वा मृताशौचं नापैति ॥ पक्षिण्यादिरूपमृतकेन त्रिदिनं दशाहं च जननाशौचं त्रिदिनमृताशौचेन दशाहं जाताशौचं च नापैतीति बहवः ॥ कश्चित्तु न्यूनेनापि मृतके नाधिकस्यापि जाताशौचस्य निवृत्तिरित्याह ॥ त्रिदिनमृताशौचेन दशाहं जाताशौचं मृतकं च न निवर्तते ॥ एवं पक्षिण्या त्रिदिनमेकाहेन पक्षिणी च नापैति ॥ त्रिदिनजाताशौचेन दशाहं जातशौचं न निवर्तते ॥ अत्रेदं बोध्यम् ॥ संपातो नामाशौचिनामेकाशौचित्वज्ञाने पराशौचित्वज्ञानम् ॥ तेन पूर्वाशौचमध्ये उत्पन्नमपि पराशौचं पूर्वाशौचांते ज्ञातं चेत्पूर्वेण न निवर्तते संपाताभावात् ॥ पूर्वत्वपरत्वे तूत्पत्तिकृते न ज्ञानकृते ॥ तेन पूर्वोत्पन्नस्य परोत्पन्नज्ञानोत्तरं ज्ञानेपि पूर्वोत्पन्नेन परोत्पन्नं तन्मध्ये ज्ञातं निवर्तत एव ॥ संपात एव ज्ञानकृतो न तु पूर्वत्वादिकमिति सिद्धांतादिति ॥ दशाहांत्यरात्रौ यदि निवृत्तियोग्यदशाहसंपातस्तदा दिनद्वयमधिकं कार्यम् ॥ दशमरात्रेश्चतुर्थयामे निवृत्तियोग्यदशाहांतरसंपाते दिनत्रयमधिकम् ॥ दशा-

हांत्यरात्रौ चतुर्थयामे वा निवृत्तियोग्यत्रिरात्राशौचपाते तु पूर्वेण शुद्धिर्नद्व्यहादिवृद्धिः॥ एवं त्र्यहाद्याशौचानां निवृत्तियोग्यानां परस्परं तृतीयरात्रौ तृतीयरात्रिशेषे वा संपाते पूर्वेण शुद्धिर्न द्व्यहादिवृद्धिः॥वर्द्धितद्वित्रिदिने दशाहांतरपाते पूर्वेण द्विरात्रेण त्रिरात्रेण वा न निवृत्तिः॥ वर्धिताद्द्विरात्रेण पक्षिण्या निवृत्तिः वर्धितत्रिरात्रेणान्यत्रिरात्रस्य निवृत्तिः॥यदा तु भागिनेयादिर्मातुलादेरंत्यकर्म करोति तदा तन्निमित्ते दशाहाद्याशौचे सति यदि सपिंडमरणनिमित्तं दशाहादिकं पतति तदा तस्य पूर्वेण शुद्धिर्न भवति॥ कर्मांगाशौचस्यास्पृश्यतामात्रप्रयोजकत्वे न संध्यादिकर्मलोपाभावे न लघुत्वाल्लघुना गुरोर्निवृत्त्यभावात्॥ एवं त्रिरात्रपातेपि जननत्रिरात्रस्य निवृत्तिः॥ मृतकत्रिरात्रस्य नेत्यादिकमूह्यम्॥ पुत्रस्य सपिंडाशौचेन मातापित्रोराशौचं नापैति॥ एवं भार्याया भर्त्राशौचं नापैति॥ केचित्पत्युर्भार्याशौचमपि नापैतीत्याहुः॥ मात्राशौचमध्ये पित्राशौचपाते पूर्वांते शुद्धिः॥ स्मृत्यर्थसारादयस्तु पितुः संपूर्णमेवाशौचं कार्यमित्याहुः॥ पित्राशौचे मातुर्मरणे पित्राशौचं समाप्य पक्षिणीमधिकां कुर्यात्॥ इयं पक्षिणीवृद्धिर्दशमरात्रेरर्वाङ्मरणे तज्ज्ञाने वा भवति॥ दशमरात्रौ तद्रात्रिचतुर्थयामे वा मातृमरणादौ तु द्विरात्रत्रिरात्रावेव न पक्षिणी॥ मातुरनाहिताग्निभर्तुर्मरणाद्द्वितीयादिदिनेषु सहगमनेऽपि नाधिका पक्षिणी॥ भर्त्राशौचांते शुद्धिः॥ नवश्राद्धपिण्डादिकं युगपत्समापयेत्॥ भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम्॥ एतत्रिरात्रं सपिंडानामेव॥ पुत्रस्य तु मात्राशौचं संपूर्णमेवेति भाति॥ सहगमने सपिंडानामपि पूर्णमेवाशौचम्॥ त्रिरात्रं त्वनुगमनपरमिति गौडाः॥ इदमेव युक्तम्॥ इयं संपाते पूर्वेण शुद्धिः सूतिकाया अग्निदस्य च नास्ति॥ यदा देशांतरमृतपितुर्वार्तां श्रुत्वा पुत्रैर्दशाहमाशौचं कृतं संस्कारस्त्वस्थ्यलाभादिहेत्वंतरवशान्न कृतो दशाहोत्तरं च संस्कार आरब्धस्तत्र संस्कारकर्तुः पुत्रस्य कर्मांगं दशाहमाशौचं तदाशौचमध्ये सपिंडमरणे पूर्वांते शुद्धिर्न मातुर्मरणेपि नाधिका पक्षिणी॥ किंतु सपिंडाशौचं मात्राशौचं च संपूर्णमेव कार्यम्॥ अतिक्रांतकालाद्वर्तमानस्य बलवत्त्वात्॥ एवं द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं पुत्रादिभिः क्रियमाणपित्रादिसंस्कारांगदशाहाशौचेऽन्यसपिंडादिमरणेपीति पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादः सिंधावुक्तः॥ जननाशौचे मृताशौचे वा मृतकसंपाते पिंडदानाद्यंत्यकर्मप्रतिबंधो नास्ति॥ मृताशौचे जाताशौचे वा पुत्रजनने जातकर्मादिप्रतिबंधो नास्तीत्येके॥ पूर्वाशौचांते जातकर्मेत्यन्ये॥ मातुर्याधिका पक्षिणी तन्मध्ये पितुर्महैकोद्दिष्टश्राद्धं वृषोत्सर्गं शय्यादानादिकं च कुर्यात्॥ अन्यसपिंडाशौचे त्वेकादशाहकृत्यं न कार्यमिति बहवः॥ कार्यमिति कश्चित्॥

अब आशौचके संपातमें निर्णयको कहतेहैं । दशाह मृताशौचके मध्यमें दशाहको वा उससे न्यूनके मृत आशौचका सम्पात (होना) हो जाय तो पहिले प्रवृत्त जो आशौच

उसकी समाप्तिसे शुद्धि होतीहै। दशाहजन्म सूतकके मध्यमें दशाहका वा न्यून जन्मसूतक आन पडै तो पहिले प्रवृत्ति हुयेकी समाप्तिसे शुद्धि होतीहै, दशाहके मृताशौचमें दश दिन वा तीन दिनका, जन्म सूतक आन पडै तो मृताशौचकी समाप्तिसे शुद्धि होतीहै। और तीन दिनके मृताशौचमें तीन दिन वा उससे न्यून मृताशौच वा तीन दिनका जन्मसूतक आन पडै तो पूर्वप्रवृत्तके अन्तमें शुद्धि होतीहै। तीन दिनके सूतकमें तीन दिनका जन्मसूतक आन पडै तो पहिलेके अन्तमें शुद्धि होतीहै। पक्षिणीके मृताशौचमें पक्षिणी वा एक दिनका मृताशौच आन पडै तो पूर्वके अन्तमें शुद्धि होतीहै। तुल्यके वा अधिक जन्मसूतकसे मृत आशौच दूर नहीं होताहै। और पक्षिणी आदिके मृताशौचसे तीन वा दश दिनके जन्मसूतककी और तीन दिनके मृताशौचसे दश दिनके जन्मसूतककी निवृत्ति नहीं होतीहै, यह बहुत कहतेहैं। कोई तो यह कहताहै। कि, न्यून भी मृताशौचसे अधिक भी जन्मसूतककी निवृत्ति होतीहै, और तीन दिनके मृताशौचसे दश दिनका मृताशौच निवृत्त नहीं होता इसीप्रकार पक्षिणीसे तीन दिनका और एक दिनकेसे पक्षिणीका आशौच दूर नहीं होता। तीन दिनके जन्म सूतकसे दश दिनका जन्मसूतक निवृत्त नहीं होता। यहां यह समझना कि, सम्पात वह है कि, आशौचवालोंको एक आशौचका ज्ञान होने पर दूसरे आशौचका ज्ञान होना ही संपात कहाता है। तिससे पहिले आशौचके मध्यमें पैदाहुआ भी दूसरा आशौच पहिले आशौचके अन्तमें जाना होय तो पहिलेसे निवृत्त नहीं होता। क्योंकि, सम्पातका अभाव है। और पहिला और पिछला तो उत्पत्तिसे होताहै ज्ञानसे नहीं। तिससे पहिले उत्पन्नका पीछे उत्पन्नके ज्ञानके उत्तर ज्ञान होनेपर भी पूर्व उत्पन्नसे उसके मध्यमें ज्ञात पीछे उत्पन्न अवश्य निवृत्त होजाता है, क्योंकि सम्पात ही ज्ञानसे होताहै पूर्वत्व आदि नहीं, यह सिद्धांत है। दशाहको पिछली रात्रिमें यदि निवृत्तिके योग्य दशाहका सम्पात होय तो तब दो दिन अधिक आशौच करना। दशमी रात्रिके पिछले प्रहरमें निवृत्तिके योग्य दशाहका सम्पात होय तो तीन दिन अधिक आशौच करना। दशाहकी अंत्य रात्रिमें वा चौथे प्रहरमें निवृत्तिके योग्य त्रिरात्र आशौचका संपात होय तो पूर्वसे ही शुद्धि होतीहै। दो दिन आदिको वृद्धि नहीं होती। इसीप्रकार तीन दिन आदिके आशौचोंको निवृत्तिके योग्य होनेपर परस्पर तीसरी रात्रिमें वा तीसरीके शेषमें सम्पात होय तो पूर्वसे शुद्धि होती है। दो दिन आदिकी वृद्धि नहीं होती। वढाये हुये दो तीन दिनके मध्यमें अन्य दशाहका सम्पात होय तो पहिले दो रात वा तीन रातसे निवृत्ति नहीं होती। बढाये हुये द्विरात्रसे पक्षिणीकी निवृत्ति होतीहै। वढाये हुये त्रिरात्रसे दूसरे त्रिरात्रकी निवृत्ति होतीहै। और जब भानजा मातुल आदिके अंत्य कर्मको करताहै तब उससे हुये दशाह आदिके आशौच होनेपर यदि सपिंड मरनेका दशाह आदि आशौच आन पडै तो तब उसकी पूर्वसे शुद्धि नहीं होती, क्योंकि, कर्मका आशौच स्पर्शकी अयोग्यतामात्रका संपादक (कर्ता) है, इससे संध्या आदि कर्मका लोप न होनेसे लघु है। लघुसे गुरु आशौचकी निवृत्ति नहीं हो सकती इसी प्रकार त्रिरात्रके सम्पातमें भी त्रिरात्रके जन्मसूतककी निवृत्ति होतीहै, मरणके त्रिरात्रकी नहीं, इत्यादि समझना। पुत्रके सपिंडाशौचसे माता पिताका आशौच नहीं हटता। इसी प्रकार भार्याको भर्ताका आशौच भी नहीं हटता। कोई तो यह कहते हैं। कि, पतिको भार्याका आशौच भी नहीं हटता। माताके आशौचमें पिताके आशौचका सम्पात होय तो पहिलेके

अन्तमें शुद्धि होतीहै । स्मृत्यर्थसार आदि तो यह कहते हैं । कि, पिताका तो संपूर्ण ही आशौच करे । पिताके आशौचमें माता मरजाय तो पिताके आशौचको समाप्त करके पक्षिणी अधिक करे । यह पक्षिणीकी वृद्धि तभी है जब दशमी रात्रिसे पहिले मरी हो वा मरणका ज्ञान हो दशमी रात्रिमें वा उसके चौथे प्रहरमें माताका मरण हो जाय तो द्विरात्र त्रिरात्र आदि ही होतहैं पक्षिणी नहीं । अनाहिताग्निभर्ताके मरनेसे दूसरे आदि दिनोंमें माताके सहगमन (सती होना) में भी पक्षिणीकी वृद्धि नहीं होती भर्ताके आशौचके अन्तमें शुद्धि होजातीहै । नव श्राद्धके पिंड आदिकी सङ्ग ही समाप्ति कर दे । भर्ताके आशौचके अन्तमें अन्वारोहण (सती होना) में तो त्रिरात्र आशौच है । यह त्रिरात्र भी सपिंडोंको है । पुत्रको तो माताका संपूर्ण ही आशौच होताहै । यह भासता है । सहगमनमें सपिंडोंको भी पूर्ण ही आशौच है । त्रिरात्रतो अनुगमनके विषयमें हैं यह गौड कहतेहैं और यही युक्त है । यह सम्पातमें पूर्वसे जो शुद्धि है वह सूतिकाको और अग्निके दाताको नहीं है । जब देशांतरमें मरे पिताकी वार्ताको सुनकर पुत्रोंने दशाह आशौच किया हो संस्कार तो अस्थियोंके न मिलने आदि कारणोंसे न किया हो वा दश दिनके पीछे संस्कार हो वहां संस्कारके कर्ता पुत्रको कर्मका अंग दशाह आशौच है । तब आशौचके मध्यमें सपिंडका मरण हो जाय तो पूर्वके अन्तसे शुद्धि नहीं और न भ्राताके मरनेमें अधिक पक्षिणी है । किन्तु सपिण्डाशौच और माताका आशौच सम्पूर्ण ही करना । क्यों कि, बीताहै काल जिसका उससे वर्तमानकालका बलवान् है । इसी प्रकार बारह वर्षकी प्रतीक्षाके अनंतर पुत्र आदिको करने योग्य पिताके संस्कारका अंग जो दशाहका आशौच उसमें अन्य सपिंडके मरनेमें भी समझना । ये पूर्व शेषसे शुद्धिके अपवाद निर्णयसिंधुमें कहे हैं । जन्मसूतक वा मरणाशौचमें मृतक आशौचका संपात होजाय तो पिंडदान आदि अंत्य कर्मका प्रतिबंध नहीं होता । मृताशौच वा जाताशौचमें पुत्रजन्म होय तो जातकर्म आदिका प्रतिबंध नहीं है । यह कोई कहतेहैं । पूर्वाशौचके अंतमें जातकर्म होताहै । यह अन्य कहतेहैं । माताकी जो अधिक पक्षिणी है, उसके मध्यमें पिताका एकोद्दिष्ट श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, शय्यादान, आदिको करै । अन्य सपिण्डके आशौचमें तो एकादशाहका कृत्य न करना यह बहुत कहतेहैं । करना यह कोई कहता है ॥

अथ शवस्पर्शानुगमनादिसंसर्गाशौचे ।

संसर्गाशौचे नित्यकर्मानधिकारो नास्ति ॥ किंत्वस्पृश्यत्वमात्रम् ॥ तदपि तदीयभार्यापुत्रादीनां नास्ति ॥ किंतु संसर्गकर्तुरेव ॥ एवं तद्गृहवर्तितत्स्वामिकान्नादिद्रव्याणां नाग्राह्यत्वम् ॥ तत्र स्वजातीयशवस्पर्शे सज्योतिराशौचम् ॥ हीनवर्णस्पर्शेऽधिकं कल्प्यम् ॥

अब शवका स्पर्श अनुगमन आदिका संसर्गआशौच कहतेहैं । संसर्गाशौचमें नित्यकर्मका अनधिकार नहीं । किंतु स्पर्शकी अयोग्यता मात्र है । वह भी उसके भार्या पुत्र आदिकोंको नहीं है । किंतु संसर्गकर्ताकोही है । इसीप्रकार उस घरमें वर्तमान उसके ही अन्न आदि द्रव्य भी ग्रहण अयोग्य नहीं । उसमें भी अपने सजातीय शवके स्पर्शमें सज्योति आशौचहै हीन वर्णके स्पर्शमें तो अधिक समझना ॥

अथानुगमने।

सजातीयस्य विजातीयस्य शवस्यानुगमने स्नात्वाग्निस्पर्शं घृतप्राशनं च कृत्वा पुनः स्नात्वा प्राणायामं कुर्यात् ॥ विप्रस्य शूद्रानुगमने त्रिरात्रं नद्यां स्नानं घृतप्राशनं प्राणायामशतं च नात्र नित्यकर्मलोपः ॥

अब अनुगमनमें कहते हैं। कि, सजातीय वा विजातीय शवके अनुगमनमें स्नान करके अग्निस्पर्श घृतका भक्षण करके फिर स्नान करके प्राणायाम करै। ब्राह्मण शूद्रका अनुगमन करै तो त्रिरात्र आशौच, नदीमें स्नान, घीका भक्षण, सौ प्राणायाम करै। इसमें नित्यकर्मका लोप नहीं है॥

अथ निर्हरणे।

स्नेहेन सजातीयशवनिर्हरणे तदन्नाशने तद्गृहवासे च दशाहः॥ तद्गृहवासमात्रेन्नाशनमात्रे वा त्रिरात्रम्॥ अन्नाशनगृहवासयोरभावे एकाहः॥ ग्रामांतरस्थं शवं निर्हृत्य ग्रामांतरवासे सज्योतिः॥ मौल्यग्रहणेन सजातीयनिर्हरणे दशाहः॥ विजातीयनिर्हरणे शवजातीयम्॥ भृतिग्रहणेन हीनजातीयनिर्हरणे शवजातीयद्विगुणम्॥ सोदकशवनिर्हरणेपि दशाहः॥ शवालंकारकरणे पादकृच्छ्रम्॥ अज्ञानादुपवासः॥ अशक्तौ स्नानम्॥ धर्मार्थमनाथद्विजशवनिर्हरणे दाहकरणे चाश्वमेधादिपुण्यं स्नानमात्राच्छुद्धिः॥ अग्निस्पर्शो घृताशनं चात्रापि॥ धर्मार्थमपि शूद्रशवनिर्हरणे द्विजस्यैकाहः॥ धर्मार्थमनाथशवानुगमनादौ न दोषः॥ ब्रह्मचारिणस्तु पितृमातृमातामहाचार्योपाध्यायभिन्नशवनिर्हरणादौ व्रतलोपः॥ पूर्वोक्तिरीत्याऽऽशौचं च॥ ततस्तेन कृच्छ्रप्रायश्चित्तं पुनरुपनयनं च कार्यम्॥ पित्रादेर्निर्हरणेपि ब्रह्मचारिणाशौचिनामन्नं न भक्ष्यम्॥ तेषां स्पर्शोपि न कार्यः॥ अत्रापि नित्यकर्मलोपो न॥ अथ दाहादौ समोत्कृष्टवर्णप्रेतस्य स्नेहादिना दाहोदकदानादिसकलौर्ध्वदेहिककरणे तत्तज्जात्याशौचम्॥ तदंते स्नेहलोभाद्यनुसारेण गुरुलघुप्राजापत्यादीनां त्रयम्॥ स्नेहादिना सवर्णानां दाहमात्रकरणे तद्गृहवासे त्रिरात्रम्॥ तदन्नभक्षणे दशरात्रम्॥ तदुभयाभावे एकाहः॥ हीनवर्णेनोत्तमवर्णस्य दाहमात्रकरणे शवजात्याऽऽशौचम्॥ भृतिग्रहणेन सवर्णस्य दाहमात्रकरणेपि दशाहाद्येव॥ मौल्येनोत्तमवर्णदाहे द्विगुणम्॥ उत्तमेनाधमवर्णदाहनिर्हरणकरणे तज्जात्याशौचं तदंते क्रमेण द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं च प्रायश्चित्तम्॥ मौल्येन हीनवर्णदाहादौ तु प्रायश्चित्तमाशौचं चोक्तापेक्षया द्विगुणम्॥ धर्मार्थसमोत्कृष्टवर्णप्रेतस्य दाहादि सकलौर्ध्वदेहिककरणेपि नाशौचं नित्यं पिंडदानाद्यनंतरं स्नानमात्राच्छुद्धिः द्विजेन शूद्रस्य धर्मेणापि दाहादि न कार्यम्॥

सजातीय शवके कंधेपर निर्हरणमें उसके अन्नका भक्षण उसके घरमें वास करै तो दशाह आशौच है, घरमें वासमात्रमें वा अन्नके ही भक्षणमें त्रिरात्र होता है । अन्न भक्षण, घरमें वास, दोनों न होयँ तो एक दिनका होता है । अन्य ग्रामके शवका निर्हरण करके अन्य ग्राममें वसै तो सज्योति आशौच होता है । मोल लेकर सजातीय शवका निर्हरण करै तो दशाहका आशौच होता है । विजातीय शवके निर्हरणमें शवकी जातिका आशौच होता है । भृति (नौकरी) से हीनजातिके निर्हरणमें शवकी जातिसे दूना आशौच होता है । समानोदक शवके निर्हरणमें भी दशाह आशौच होता है । शवके अलंकार करनेमें पादकृच्छ्र होताहै और अज्ञानसे करै तो उपवास है और अशक्तिमें स्नानमात्र है । धर्मके लिये अनाथ द्विज रूप शवके निर्हरणमें अश्वमेध आदिका पुण्य और स्नानमात्रसे शुद्धि है । इसमें भी अग्निका स्पर्श घृतका भक्षण है । धर्मके लिये तो शूद्रके अनुगमन आदिमें भी दोष नहीं । ब्रह्मचारी के तो पिता माता मातामह उपाध्याय इनसे भिन्न शवके निर्हरण आदिमें व्रतका लोप हो जाताहै । और पूर्वोक्त रीतिसे आशौच है । तिससे वह कृच्छ्र प्रायश्चित्त और पुनः उपनयन करै । पिता आदिके निर्हरणमें भी ब्रह्मचारी आशौचियोंके अन्नका भक्षण न करै । और न उनके स्पर्शको करै । इसमें भी नित्यकर्मका लोप नहीं । इसके अनंतर दाह आदिमें कहतेहैं, समान उत्कृष्ट वर्णके प्रेतका स्नेह आदिसे दाह उदकदान आदि संपूर्ण और्ध्वदेहिक कर्म करने में तिस २ जातिका आशौच होताहै । उसके अंतमें स्नेह, लोभ, आदिके अनुसार गुरु, लघु' प्राजापत्य, आदि तीन करै । स्नेह आदिसे सवर्णियोंका दाहमात्र करै और उसके घरमें वसै तो तीन रात, उसके अन्नके भक्षणमें दश रात्रि, उन दोनोंके अभावमें एक दिन आशौच है । हीन वर्ण उत्तम वर्णका दाहमात्र करै तो शवकी जातिकी आशौच होताहै । भृति लेकर सवर्णके दाहमात्र करनेमें भी दशाह आदि ही होताहै । मौल्यसे उत्तम वर्णके दाह करनेमें दूना प्रायश्चित्त है । उत्तम वर्ण, अधम वर्णका दाह, निर्हरण करै तो उसकी जातिका आशौच है । और उसके अन्तमें दूना तिगुना चौगुना प्रायश्चित्त है । विना मोल हीनवर्णके दाह आदिमें तो प्रायश्चित्त और आशौच उनकी अपेक्षासे दूना होताहै । धर्मके लिये सम, उत्कृष्ट वर्णके प्रेतका दाहआदि संपूर्ण और्ध्वदेहिक कर्म करनेमें भी आशौच नहीं है । नित्य पिंड दानके अनंतर स्नानमात्रसे शुद्धि होती है । और द्विज तो धर्मार्थ भी दाह आदिको न करै ॥

अथ ब्रह्मचारिणः भिन्नस्य ।

अथ ब्रह्मचारिणा पितृमातृमातामहादीनामन्याधिकार्यभावे दाहाद्यंत्यकर्म कार्यम् ॥ तदा कर्मांगं दशाहमस्पृश्यत्वलक्षणमाशौचं च कार्यम् ॥ तथापि तेषामाशौचिनामन्नं ब्रह्मचारिणा न भोक्तव्यम् ॥ आशौचिस्पृष्टतया वासश्च न कार्यः ॥ तदुभयकरणे प्रायश्चित्तं पुनरुपनयनं च ॥ ब्रह्मचारिणा पूर्वोक्तपित्रादिभिन्नानां दाहाद्यंत्यकर्मकरणे कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्तं पुनरुपनयनं चाशौचांते कार्यम् ॥ पित्रादेर्दाहमात्रकरणे एकाहमाशौचं कार्यम् ॥ अत्र सर्वत्र ब्रह्मचारिणः संध्याग्निकार्यादिकर्मलोपो न ॥ ब्रह्मचारिभिन्नस्यापि दाहादिनिमित्तकसंसर्गाशौचे ब्रह्मयज्ञादिनित्यकर्मलोपो नेत्युक्तम् ॥ तत्र देवपूजावैश्वदेवादिकमन्येन कारणीयम् ॥ स्वयं कर्तु

योग्यं तु स्वेनैव कार्यम् ॥ ब्रह्मचारिणः पित्राद्यंत्यकर्माकरणे तु पित्रादिमरणेप्याशौचं न ॥ समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां पित्रादिसपिंडानां त्रिरात्रमाशौचं कार्यम् ॥

और ब्रह्मचारी; पिता, माता, मातामह, इनके कर्म करनेका अन्य अधिकारी न होय तो दाह आदि अन्त्य कर्मको करै । तब कर्मका अंगस्पर्शकी अयोग्यतारूप दशाह आशौच करै, तो भी उन आशौचियोंके अन्नको ब्रह्मचारी भक्षण न करै । और आशौचियोंका जहां स्पर्श हो वहां वास भी न करै । उन दोनोंको करै तो प्रायश्चित्त और पुनः उपनयन करै । पूर्वोक्त पिता आदिसे भिन्नोंका दाहपर्यंत कर्म ब्रह्मचारी करै तो तीन कृच्छ्र और पुनः उपनयन को आशौचके अन्तमें करै । पिता आदिका दाहमात्र करै तो एक दिन आशौच करै । इन सबमें ब्रह्मचारीके संध्या और अग्निकर्मका लोप नहीं होता । और ब्रह्मचारीसे भिन्नके भी दाह आदिसे हुये संसर्गाशौचमें ब्रह्मयज्ञ आदि नित्यकर्मका लोप नहीं होता यह कह आये । और उसमें देवपूजा, बलिवैश्वदेव, आदिको अन्यसे करवावै । अपने करने योग्यको तो आप ही करै । ब्रह्मचारीको पिता आदिके अन्त्य कर्मके न करनेपर भी पिता आदिके मरनेमें भी आशौच नहीं है । समावर्तनके पीछे पहिले मरेहुये जो पिता आदि सपिंड हैं उनका तीन रात आशौच करै ॥

अथ रोदने आशौचादि ।

विप्रादिभिः सवर्णमरणविषयेऽस्थिसंचयनात्पूर्वं रोदने स्नानम् ॥ तदुत्तरमाचमनम् ॥ विप्रस्य शूद्रविषयेऽस्थिसंचयनात्प्राक् त्रिरात्रं तदुत्तरमेकरात्रम् ॥ शूद्रस्य विषये तद्गृहवासादिसंबंधेऽस्थिसंचयात्प्रागेकरात्रं तदूर्ध्वं स्नानम् ॥ सपिंडानां त्वनुगमनरोदनादौ न दोषः ॥ नात्रापि कर्मलोपः ॥ अत्र सर्वत्र यस्य यावानाशौचकालस्तं निर्वाह्य स्नात्वैव विशुध्यति ॥ न तु स्नानं विना तावत्कालमात्रातिक्रमेण शुद्धिः ॥

अब रोदनमें आशौच आदिको कहतेहैं । ब्राह्मण आदि वर्ण अपने सवर्णके मरनेमें अस्थिसंचयनसे पहिले रोदन करैं तो स्नान करैं । और उसके पीछे आचमन करैं, ब्राह्मण; शूद्रके मरनेमें रोदन करै तो अस्थिसंचयनसे पहिले तो तीन रात और उससे पीछे एक रात आशौच होताहै । और शूद्रके विषयमें उसके घरमें वास आदिका संबन्ध होय तो अस्थिसंचयनसे पहिले एक रात्रि और उसके पीछे स्नान होताहै । और सपिंडोंके अनुगमनमें तो रोदन आदिमें दोष नहीं । और इसमें भी कर्मका लोप नहीं है । यहां सब जगह जिसको जितना आशौचका काल है उसको करके स्नान करके ही शुद्ध होताहै । और स्नानके विना उतने कालके बीतनेपर शुद्धि नहीं होती ॥

अथांत्यकर्मकर्तुः स्त्रीसंगे ।

अंत्यकर्मकर्तुरस्थिसंचयनात्प्राक् स्त्रीसंगे चांद्रायणं प्रायश्चित्तम् ॥ ऊर्ध्वं प्राजापत्यत्रयम् ॥ अन्येषां मृताशौचिनां संचयनात्प्राक् संगमे त्रिरात्रमुपवासः ॥ ऊर्ध्वमेकरात्रम् ॥

अंत्यकर्मका कर्ता अस्थिसंचयनसे पहिले स्त्रीका संग करै तो चांद्रायण प्रायश्चित्त है, और पीछे तीन प्राजापत्य, होतेहैं । अन्य जो मृत आशौची हैं उनको अस्थिसंचयनसे पहिले स्त्री-संगमें, तीन रात उपवास होताहै । और पीछे एक रात्रि होताहै ॥

अथाशौचान्नभक्षणे ।

असगोत्रोऽनापदि बुद्धिपूर्वं सकृदप्याशौचिस्वामिकं पक्कमन्नं यस्मिन्दिने भुंक्ते तदारभ्य तेन यावत्तेषामाशौचमवशिष्टं तावदाशौचं कार्यम् ॥ आशौचांते च विप्राशौचे सांतपनं प्रायश्चित्तम् ॥ शूद्राशौचे चांद्रायणम् ॥ क्षत्रियादेः कला-वभावान्न लिख्यते ॥ क्वचिल्लेखस्तु व्युत्पादनमात्रार्थो नेदानीमुपयुज्यते इति प्राय उपेक्ष्यते ॥ मत्याभ्यासे विप्रशूद्राशौचयोः क्रमेण मासं षण्मासं कृच्छ्रादिव्रताच-रणम् ॥ अमत्या भोजने यावदन्नपाकमाशौचं क्रमेणैकरात्रं सप्तरात्रं चोपोषणं दशशतं च प्राणायामाः ॥ अमत्याभ्यासे द्विगुणं आपद्यमत्या भोजने तदहराशौ-चमेकः प्राणायामः ॥ शूद्राशौचेऽष्टाधिकसहस्रगायत्रीजपः ॥ ज्ञानत आपदि त्रिर-घमर्षणमष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः ॥ शूद्राशौचे प्राजापत्यम् ॥ शूद्रस्य द्विजाशौचे स्नानं पंचगव्याशनं च ॥ सर्वमिदं जननाशौचे न्यूनं योज्यम् ॥ एवमाहिताग्न्या-शौचेपि न्यूनमिति स्मृत्यर्थसारे ॥ सर्वमिदमाशौचिस्वामिकान्नभोजने ॥ यदा तु तदस्वामिकमाशौचिस्पृष्टमात्रमन्नं भुंक्ते तदा मत्या भोजने कृच्छ्रम् ॥ अमत्यार्द्ध-मिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ॥ आशौचिस्पृष्टाशौचिस्वामिकान्नभोजी तु तत्स्वामि-कान्नाशननिमित्तं तत्स्पृष्टान्नाशननिमित्तं चेति प्रायश्चित्तद्वयं समुच्चयेन कुर्यात् ॥ आशौचिस्वामिकामान्नप्रतिग्रहे तूक्तप्रायश्चित्तार्धम् ॥ आशौचं तु नास्ति ॥ दातृ-भोक्तृभ्यामुभाभ्यामज्ञाते जनने मरणे वा न दोषः ॥ अन्यतरेण ज्ञाते दोषः ॥ तत्र दातुर्ज्ञाने भोक्तुरज्ञाने भोक्तुरल्पं प्रायश्चित्तम् ॥ दातुरज्ञानेपि भोक्तुर्ज्ञाने पूर्ण-मेव ॥ भोजननिमित्तकाशौचेपि कर्मलोपो न ॥

अब आशौचके अन्नभक्षणमें कहतेहैं । असगोत्री विना आपत्ति जानकर एकबार भी आशौचियोंके पकान्नको जिस दिन भक्षण करै, उस दिनसे लेकर वह जितना उनको आशौच है, उसके शेष आशौचको करै । आशौचके अन्तमें ब्राह्मणके आशौचमें सांतपन प्रायश्चित्त, है । शूद्रके आशौचमें चांद्रायण है। क्षत्रिय आदि कलियुगमें हैं नहीं, इससे इनको नहीं लिखते । कहीं लेखतो कहनेमात्र है। अब उपयुक्त नहीं है । इससे प्रायः उपेक्षा किया जाताहै । जानकर अभ्यासके विषै ब्राह्मण शूद्रके आशौचमें क्रमसे मास-भर कृच्छ्र आदि व्रतको करै । विना जाने भोजन करै तो जितना अन्न पाकका आशौच है वह क्रमसे एक रात्रि, सात रात्रि, उपवास, एक सहस्र प्राणायाम, करै । शूद्रके आशौचमें आठ अधिक एक सहस्र गायत्रीका जप करै । जानकर आपत्तिमें भक्षण करै तो तीन बार अघमर्षण, आठ अधिक सहस्र गायत्रीका जप, करै । शूद्रके आशौचमें प्राजापत्य,और शूद्र तो ब्राह्मणके आशौचमें स्नान, पंचगव्यका भक्षण, करै । यह सब जन्मसूतकमें न्यून समझना।

इसी प्रकार अग्निहोत्रीके आशौचमें भी न्यून है। यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है। यह सब उस अन्नके भक्षणमें है जो आशौचियोंका हो । और जब अन्न आशौचियोंका न हो परन्तु आशौचियोंका स्पर्श किया हो उसके भक्षणमें जानकर तो एक कृच्छ्र और विनाजाने अर्द्ध कृच्छ्र है। यह स्मृत्यर्थसारमें कहाहै। और आशौचीके स्पर्श किये अन्नका और आशौचीके अन्नका भोक्ता तो आशौचीके स्पर्श किये अन्न भक्षणका, और आशौचीके अन्न भक्षणका, प्रायश्चित्त; दोनोंको एकबार करै। और आशोचीके अन्नका प्रतिग्रह करै तो पूर्वोक्तसे आधा प्रायश्चित्त करै आशौच तो नहीं होताहै। जहां जन्म मरणका; दाता भोक्ता दोनोंको ज्ञान न होय तो कुछ दोष नहीं। किसी एकको ज्ञान होय तो दोष है। उनमें भी दाताको ज्ञान हो भोक्ताको अज्ञान होय तो अल्प प्रायश्चित्त है। और दाताके अज्ञानमें और भोक्ताको ज्ञान होनेपर पूरा प्रायश्चित्त है। भोजनके किये आशौचमें भी कर्मका लोप नहीं है ॥

अथ स्वल्पसंबंधेपि।

अथ तु कथमपि स्वल्पसंबंधयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिति त्रिंशच्छ्लोकी ॥ स्मृत्यर्थसारेप्येवम् ॥ अयमस्यार्थः ॥ स्वल्पेनापि एकाहाद्याशौचप्रयोजकेन संबंधेन युक्ते शालकजामात्रादौ मृते सचैलं स्नानं कार्यम्॥ सर्वत्र गुरुणो लघुनो वा मृताशौचस्य प्राप्तिकाले समाप्तिकाले च स्नातव्यमिति यावत् ॥ अथवा स्वल्पैर्दशाहभिन्नपक्षिणीत्रिदिनाद्याशौचप्रयोजकैः संबंधैर्युक्ते बंधुत्रयमातुलानुपनीतसपिंडादौ मृते देशांतरे कालांतरे स्नानं भवत्येव ॥ तथा च यस्य सन्निहितकाले आशौचप्राप्तिस्तस्यातिक्रांतकाले स्नानम् ॥ यस्य तु सन्निहितकालेपि स्नानमात्रं तस्य कालांतरे स्नानमपि नेत्यर्थः ॥ यद्वा स्वल्प आशौचप्रयोजकसंबंधभिन्नः संबंधः ॥ यथा शालकसुतत्वमूढकन्यायाः पितृव्यतत्पुत्रत्वादिभगिन्या भ्रातृपुत्रत्वादितद्युक्ते आशौचाभावेपि स्नानमात्रं भवत्येव ॥ यत्किंचित्संबंधे आशौचाभावेपि स्नानमात्रं सन्निधौ सर्वत्र कार्यमित्यर्थः ॥ पक्षत्रयमपीदं शिष्टाचारे दृश्यते इति युक्तं भाति ॥

और किसी प्रकारके अपने सम्बन्धसे जो युक्त है उस आशौचीके भोजनमें (स्नानं वासोयुतं स्यात्) अर्थात् सचैल स्नान करै यह त्रिंशत्श्लोकीमें; कहा है । स्मृत्यर्थसारमें भी ऐसे ही है। इसका अर्थ यह है। कि, अल्प भी एक दिन आदि आशौच जिससे हो ऐसे सम्बन्धसे युक्त शाला, जामाता, आदिके मरनेमें सचैल स्नान करै। सर्वत्र बडे वा छोटे मृताशौचकी प्राप्तिके समयमें स्नान करै। यह सिद्धांत है। अथवा दशाहसे भिन्न जो पक्षिणी तीन दिनके आशौच हैं वे जिससे हों ऐसे सम्बन्धसे युक्त जो तीनों बंधु, मातुल, अनुपनीत सपिंड आदिके मरनेपर देशांतर वा कालांतरमें स्नान तो होता ही है। तिससे जिसको समीप कालमें आशौचकी प्राप्ति है उसको काल बीतनेपर स्नान होताहै। और जिसको तो समीप कालमें भी स्नान ही है उसको कालांतरमें स्नान भी नहीं है। यद्वा आशौचके हेतु सम्बन्धसे भिन्न जो सम्बन्ध वह अल्प है । जैसे शालेके पुत्र और विवाही हुई कन्याके चाचा और उसके पुत्र आदि और भगिनीके भ्राता, भ्राताके पुत्र आदि हैं उस अल्प सम्बन्धसे युक्तको आशौचके अभावमें भी स्नानमात्र होता ही है । किंचित् भी सम्बन्ध होनेपर

आशौचके अभावमें भी समीपतामें स्नानमात्र सर्वत्र करना यह अर्थ है । ये तीनों भी पूर्वोक्त पक्ष शिष्टाचारमें दीखतेहैं । इससे यही युक्त प्रतीत होताहै ॥

अथाशौचापवादः ।

स पंचधा ॥ कर्तृतः १ कर्मतः २ द्रव्यतः ३ मृतदोषतः ४ विधानत इति ५ तत्र कर्तृतो यथा ॥ यतीनां ब्रह्मचारिणां च सपिंडजननमरणयोर्नाशौचम् ॥ मातापितृमरणे तु यतिब्रह्मचारिणोः सचैलं स्नानमात्रं भवत्येव ॥ ब्रह्मचारिणः समावर्तनोत्तरं ब्रह्मचर्यदशायां मृतानां पित्रादिसपिण्डानां त्रिरात्रमाशौचमुदकदानं च कार्यम् ॥ अनुगमननिर्हरणनिमित्तकं त्वाशौचं ब्रह्मचारिणोप्यस्त्येव ॥ पित्राद्यंत्यकर्मकरणे ब्र ह्चारिण आशौचमप्यस्त्येव ॥ आरब्धप्रायश्चित्तानां प्रायश्चित्तानुष्ठानसमये आशौचं न समाप्ते तु प्रायश्चित्ते त्रिरात्रमतिक्रांताशौचम् ॥ कृतकर्मांगनांदीश्राद्धानां तत्कर्मसमाप्तिपर्यंतं तत्कर्मोपयोगिकार्ये आर्त्यादिसंकटे आशौचं न ॥ जाताशौचमृताशौचवतोर्मरणसमयप्राप्तौ नाशौचम् ॥ तेन दानादिकं सति वैराग्ये आतुरस्य संन्यासोपि भवतीति सिन्ध्वादयः ॥ देशविप्लवदुर्भिक्षादिमहापदि सद्यः शौचम् ॥ आपदपगमे आशौचावशेषे अवशिष्टाशौचमस्त्येव ॥

अब आशौचके अपवादको कहते हैं । वह पांच प्रकारका है । कि, कर्तासे १, कर्मसे २, द्रव्यसे ३, मृतके दोषसे ४, विधानसे ५; उनमें कर्तासे ऐसेहै । कि, संन्यासी और ब्रह्मचारियोंको सपिण्डोंके जन्म मरणका आशौच नहीं है माता पिताके मरणमें तो संन्यासीके और ब्रह्मचारीको भी स्नानमात्र होता ही है । ब्रह्मचारीको समावर्तनके पीछे उसकी ब्रह्मचर्य अवस्थामें जो मरे पिता आदि सपिण्ड हैं, उनका त्रिरात्र आशौच और जलदान ब्रह्मचारी करै । और अनुगमन निर्हरणका आशौच तो ब्रह्मचारीको भी है ही । और पिता आदिके अन्त्य कर्म करनेमें ब्रह्मचारीको आशौच है ही और प्रारंभ कियेहुये प्रायश्चित्तोंके विषे प्रायश्चित्तके करनेके समय आशौच नहीं है । प्रायश्चित्तके समाप्त होनेपर तो तीन रात आशौच अतिक्रमणका होताहै । कियेहुये कर्मोंके अंग जो नांदीश्राद्ध हैं उन कर्मोंकी समाप्ति पर्यंत उस कर्मके उपयोगी कार्यमें आर्तिआदि संकटमें आशौच नहीं है । जन्म सूतक, मरणके आशौचवालेको मरण समयकी प्राप्तिमें आशौच नहीं है । तिससे वैराग्य होनेपर आतुरको दान आदि और संन्यास भी होता ही है । यह निर्णयसिंधु आदि कहते हैं । देशका उपद्रव, दुर्भिक्ष आदि बडी आपत्तियोंमें सद्यः शौच होताहै । आपत्तिके दूर होनेपर आशौचका शेष होय तो अवशिष्ट आशौच होताही है ॥

अथ कर्मतः ।

अन्नसत्रिणामन्नादिदानेषु नाशौचम् ॥ प्रतिगृहीतुस्तु आमान्नग्रहणे दोषो न ॥ पक्वान्नभोजने तु त्रिरात्रं क्षीरपानम् ॥ गृहीतेनंतव्रतादावेकादश्यादौ चारब्धकृच्छ्रादिव्रते च नाशौचम् ॥ तत्र स्नानादिशारीरनियमाः स्वयं कार्याः ॥ अनंतपूजा-

दिकमन्येन कारणीयम् ॥ ब्राह्मणभोजनादिकमाशौचांते ॥ राजादीनां प्रजापालनादौ नाशौचम् ॥ ऋत्विजां मधुपर्कोत्तरं तत्कर्माणि नाशौचम् ॥ तेन येष्वाधानेष्टिपशुबंधादिषु मधुपर्को नोक्तस्तेषु कृतेपि वरणे तांस्त्यक्त्वान्ये ऋत्विजः कार्याः ॥ दीक्षितानां दीक्षणीयोत्तरमवभृथस्नानपर्यंतं यज्ञकर्माणि नाशौचम् ॥ दीक्षितर्त्विग्भ्यां स्नानमात्रं कर्म मध्ये कार्यम् ॥ अवभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः ॥ अवभृथं तु न भवत्येवेति सिंधुः ॥ कर्मांते तु त्रिरात्रं पूर्वन्यायात् ॥ रोगभयराजभयादिनाशार्थे शांतिकर्माणि नाशौचम् ॥ क्षुत्पीडितकुटुंबस्य प्रतिग्रहे नाशौचम् ॥ विस्मरणशीलस्याधीतवेदशास्त्राध्ययनेपि नाशौचम् ॥ वैद्यस्य नाडीस्पर्शने नाशौचम् ॥ श्राद्धेतूक्तम् ॥ मूर्तिप्रतिष्ठाचौलोपनयनविवाहाद्युत्सवतडागाद्युत्सर्गकोटिहोमतुलापुरुषदानादिककर्मसु नांदीश्राद्धोत्तरं नाशौचम् ॥ संकल्पिते पुरश्चरणजपेऽविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशश्रवणादौ च प्रारंभोत्तरं नाशौचम् ॥ कालादिनियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादिकमाशौचे हेयमेव ॥ सर्वोप्ययमाशौचापवादोऽनन्यगतिकत्वे आर्तौ च ज्ञेय इति सिंधौ नागोजीये चोक्तम् ॥ तेनानन्यगतिकत्वादिकमालोच्यैवाशौचाभावो योज्यः ॥ अत्र यद्वक्तव्यं तत्पूर्वार्धे तत्रतत्रोक्तमेव ॥ केचित्तु व्रतेष्विव दीक्षितानामृत्विजामारब्धोत्सवादीनां च स्वरूपत आरंभतश्चावश्यकत्वादार्त्याद्यभावेप्याशौचाभाव इत्याहुः ॥ कन्याया ऋतुशांत्यादिसंकटे मुहूर्तांतराभावे कूष्मांडहोमादिना जाताशौचे विवाहारंभोपि कार्य इत्युक्तम् ॥ विवाहादिषु नांदीश्राद्धोत्तरमाशौचपाते पूर्वसंकल्पितान्नमसगोत्रैर्दातव्यं भोक्तव्यं च ॥ दातारं भोक्तारं सिद्धान्नं च सूतकी न स्पृशेत् ॥ विवाहादौ तदन्यत्र वा भुंजानेषु विप्रेषु दातुराशौचपाते पात्रस्थमप्यन्नं त्यक्त्वान्यगेहोदकाचांताः शुध्यंतीत्यादिपूर्वार्धे उक्तम् ॥ एवं सहस्रभोजनादावपि पूर्वसंकल्पितान्नेषु ज्ञेयम् ॥ पार्थिवशिवपूजायां नाशौचम् ॥ आशौचे संध्याश्रौतस्मार्तहोमादिविषये पूर्वार्धे उक्तम् ॥ अग्निसमारोपप्रत्यवरोहावाशौचयोर्न कार्यौ ॥ तेन समारोपोत्तरमाशौचपाते पुनराधानमेव ॥ समारोपप्रत्यवरोहयोरन्यकर्तृकत्वस्याशौचापवादस्य चाभावात् ॥ इदं बह्वृचानां द्वादशाहं होमलोपेन्येषां त्र्यहं होमलोपे एव पुनराधानं ज्ञेयम् ॥ ग्रहणनिमित्तके स्नानश्राद्धदानादौ नाशौचम् ॥ कश्चित्स्नानमात्रं कार्यं न श्राद्धादीत्याह ॥ संक्रांतिस्नानादावपि नाशौचम् ॥ नित्यकृत्येषु स्नानाचमनभोजननियमास्पृश्यस्पर्शनादिनियमेषु नाशौचम् ॥ अन्यैर्वैश्वदेवब्रह्मयज्ञदेवपूजादिनित्यं नैमित्तिकं काम्यं चाशौचेषु न कार्यम् ॥ भोजनकाले आशौचापादकजननमरणश्रवणे मुखस्थं ग्रासं त्यक्त्वा स्नायात् ॥ मुखस्थग्रासभक्षणे एकोपवासः ॥ सर्वान्नभोजने त्रिरात्रोपवासः ॥ इति कर्मांत आशौचसदसद्भावविचारः ॥

अब कर्मसे अपवादको कहतेहैं। अन्नके सत्रियों (यज्ञकर्ताओं) में अन्न आदिके दानमें आशौच नहीं है। और प्रतिग्रह कर्ताको आमान्नके ग्रहण करनेमें दोष नहीं। पक्वान्नके भोजनमें तो तीन रात्रितक दूधका पान प्रायश्चित्त है। ग्रहण किये अनंत व्रत आदिमें एकादशी आदिमें, और आरंभ किये हुये कृच्छ्र आदि व्रतमें, आशौच नहीं है। उसमें स्नान आदि शरीरके नियम स्वयं करने। अनंतकी पूजा आदि अन्यसे करवावै। ब्राह्मण भोजन आदितो आशौचके अन्तमें होताहै। राजा आदिकोंको प्रजापालन आदिमें आशौच नहीं है। ऋत्विजोंको मधुपर्कके पीछे उस कर्ममें आशौच नहीं। तिससे यज्ञाधान पशुबंध आदिकोंमें मधुपर्क नहीं कहा। उनके मध्यमें वरण किये पीछे भी उन ऋत्विजोंको छोडकर अन्य ऋत्विज करने। दीक्षितोंको दीक्षणीय इष्टिके पीछे अवभृथ स्नानपर्यंत यज्ञके कर्ममें आशौच नहीं। दीक्षित और ऋत्विज ये कार्यके मध्यमें स्नानमात्रको करैं। अवभृथसे पूर्वही आशौचका अभाव है। अवभृथ तो नहीं होता यह निर्णयसिंधुमें कहा है। कर्मके अंतमें तो पूर्वोक्त न्यायसे त्रिरात्र, आशौच होताहै। रोगभय, राजभय, आदिके नाशार्थ जो शांतिकर्म उसमें आशौच नहीं। क्षुधासे पीडित कुटुंबके लिये प्रतिग्रह लेनेमें आशौच नहीं। विस्मरणशील मनुष्यको पढेहुये वेद शास्त्रके अध्ययनमें आशौच नहीं। वैद्यको नाडीके स्पर्शमें आशौच नहीं। संकल्प किये पुरश्चरणके जपमें और संकल्प किये निरंतर हरिवंश श्रवण आदिमें प्रारंभके अनंतर आशौच नहीं। काल आदिका नियम न होय तो स्तोत्र हरिवंश आदि; आशौचमें त्यागने योग्यही हैं। संपूर्ण भी यह आशौचका अपवाद अन्यगतिके अभावमें और आपत्तिमें जानना। यह निर्णयसिंधु और नागोजीयमें कहा है। तिससे अन्यगतिके अभावको देखकर ही आशौचका अभाव समझना। इसमें जो कहना था वह पूर्वार्द्धमें जहां तहां कहही आये। कोई तो यह कहतेहैं कि, व्रतोंके समान दीक्षित (यजमान) ऋत्विजोंको प्रारंभ किये उत्सव आदिकोंको स्वरूपसे और प्रारंभसे आवश्यक होनेसे आपत्ति आदिके अभावमें भी आशौचका अभाव है। कन्याको ऋतुकी शंका आदिके संकटमें अन्य मुहूर्त न होय तो कूष्मांडहोम आदिको करके आशौचमें भी विवाहका प्रारंभ करना। यह कह आये। विवाह आदिमें नांदीश्राद्धके उत्तर आशौच होजाय तो पूर्व संकल्प किया अन्न असगोत्री परसैं और भक्षण करैं। और दाता, भोक्ता, अन्न; इन तीनोंका स्पर्श सूतकी न करै। विवाह आदिमें वा अन्यत्र भोजन करते हुये ब्राह्मणोंके समयमें दाताको आशौच होजाय तो पात्रके भी अन्नको त्यागकर अन्यके घर जलसे आचमन करनेसे शुद्ध होतेहैं। इत्यादि पूर्वार्द्धमें कह आये। इसीप्रकार सहस्रभोजन आदिमें भी पूर्व संकल्प किये अन्नोंमें जानना। पार्थिव शिवपूजामें आशौच नहीं है। आशौचमें संध्या श्रौत स्मार्तहोम आदिके विषयमें पूर्वार्द्धमें कह आये। अग्निका समारोप, और प्रत्यवरोह, ये दोनों आशौचोंमें न करने। तिससे समारोपके पीछे आशौच होनेपर पुनः आधान ही होताहै क्योंकि, समारोप प्रत्यवरोहका अन्य कर्ता नहीं है। और आशौचका अपवाद भी नहीं है। यह पुनः आधान बह्वृचोंके दशाह होमलोपमें और अन्योंके तीन दिनतक होमलोपमें ही जानना। ग्रहणके निमित्त स्नान, श्राद्ध, दान, आदिमें आशौच नहीं। कोई तो यह कहताहै कि, स्नानमात्र करना। श्राद्ध आदि न करने। संक्रांतिके स्नान आदिमें भी आशौच नहीं है। नित्यके कार्य जो स्नान, आचमन भोजनके नियम, अस्पृश्यके स्पर्श, आदि नियमोंमें आशौच नहीं है।

अन्य जो वैश्वदेव, ब्रह्मयज्ञ, देवपूजा, आदि नित्य, नैमित्तिक, काम्य, हैं वह आशौचमें करने योग्य नहीं हैं । भोजनके समयमें आशौचके अपवादरूप जन्म मरणके सुननेमें मुखके ग्रासको त्यागकर स्नान करै। मुखका ग्रास भक्षण करै तो एक उपवास करै । सब अन्नके भोजनमें तो तीन उपवास हैं । यह कर्मसे आशौचके सत् असत् भावका विचार पूर्ण हुआ ॥

अथ द्रव्यतः ।

पुष्पफलमूललवणमधुमांसशाकतृणकाष्ठोदकक्षीरदधिघृतौषधतिलतद्विकारेक्षुतद्विकाराणां लाजादिभर्जितान्नस्य लड्डुकादीनां चाशौचिस्वामिकानामाशौचिगृहस्थितानां च ग्रहणे दोषो न ॥ आशौचिहस्तात्तु किमप्येतन्न ग्राह्यम् ॥ पण्ये तु वणिजादेराशौचेपि तद्धस्ताल्लवणादेरामान्नस्य च क्रये न दोषः ॥ जलदधिलाजादिकं तु क्रयेणापि तद्धस्तान्न ग्राह्यम् ॥

अव द्रव्यसे अपवादको कहतेहैं। पुष्प, फल, मूल, लवण, मधु, मांस, शाक, तृण, काष्ठ, जल, दूध, दधि, घृत, औषध, तिल, तिलके विकार, इक्षु, इक्षुके विकार, लाजा आदि, भूने हुये अन्न; और मोदक आदि हैं वे शुद्ध मनुष्यके हों और आशौचियोंके घरमें स्थित हैं उनके ग्रहण करनेमें दोष नहीं है । और आशौचीके हाथसे तो इनमेंसे किसीको भी ग्रहण न करै। पण्य (वेचना) में तो वैश्य आदिके आशौचमें भी उसके हाथसे लवण आदिके और आमान्नके खरीदनेमें दोष नहीं। जल दधि लाजा आदिको तो खरीद कर भी उसके हाथसे ग्रहण न करै॥

अथ मृतदोषतः।

शास्त्रानुज्ञां विना शस्त्राग्निविषजलपाषाणभृगुपातानशनादिभिर्बुद्धिपूर्वकं स्वेच्छयात्मघातकानां नाशौचम् ॥ तच्चात्मघातनं क्रोधात्परोद्देशेन वास्तु स्वत एवेष्टसाधनताभ्रमेण वा ॥ तथा चौर्यादिदोषे राजहतानां पारदार्ये तत्पत्यादिहतानां विद्युद्धतानां च नाशौचम् ॥ अन्यैर्निषिद्धोपि गर्वान्नदीतरणवृक्षारोहकूपावरोहादौ प्रवृत्तो मृतस्तस्यापि नाशौचम् ॥ यो गवादिहरणार्थं तद्धननार्थं वा प्रवृत्तो गोसर्पनखिशृंगिदंष्ट्रिगजचोरविप्रांत्यजादिभिर्हतस्तस्य नाशौचम् ॥ महापातकिनां तत्संसर्गिणां च महापापितुल्यानां च पतितानां नपुंसकानां च मरणे नाशौचम् ॥ स्त्रीणां च पत्यादिहंत्रीणां हीनजातिगामिनीनां गर्भघ्नीनां कुलटानां च पूर्वोक्तात्मघातादिपापयुक्तानां च मृतौ नाशौचम् ॥ तत्रैषां शवानां स्पर्शाश्रुपातवहनदहनांत्यकर्माणि न कुर्यात् ॥ स्पर्शादिकरणे ज्ञानाज्ञानाभ्यासादितारतम्येन कृच्छ्रातिकृच्छ्रसांतपनचांद्रायणादिप्रायश्चित्तानि सिंध्वादिग्रंथांतरतो ज्ञेयानि ॥ तेषां मृतदेहस्य जले प्रक्षेपः ॥ ततः संवत्सरोत्तरं पुत्रादिस्तदीयात्मघातादिपापानुसारेण प्रायश्चित्तं तस्य कृत्वा नारायणबलिं च कृत्वा पर्णशरदाहादि-

पूर्वकमाशौचमौर्ध्वदेहिकं च कुर्यात् ॥ केचित्प्रेतशरीरं दग्ध्वा दाहनिमित्तं चांद्रायणत्रयं कृत्वाऽस्थीनि संस्थाप्याब्दांते पूर्वोक्तरीत्यौर्ध्वदेहिकमित्याहुः ॥ अथवा लौकिकाग्निना तूष्णीं दग्ध्वा स्वजीवनसंदेहाद्वा भक्त्या वा पुत्रादयः संवत्सरादर्वागपि तत्तदात्मघातादिपापोक्तद्विगुणप्रायश्चित्तपूर्वकं नारायणबलिं कृत्वा पर्णशरदाहमस्थिदाहं वा कृत्वाऽशौचमौर्ध्वदेहिकं च कुर्युः ॥ इदं च प्रायश्चित्तार्हाणामेव॥ प्रायश्चित्तानर्हाणां घटस्फोटेन बहिष्कृतानां च दासीद्वारा पतितोदकविध्यनंतरं सपिंडीकरणवर्जमौर्ध्वदेहिकम् ॥ तेन सांवत्सरिकमप्येकोद्दिष्टविधिनैव ॥ यद्वात्मघातिनां पुत्रादिर्मृतजातीयवधोक्तब्रह्महत्यादिप्रायश्चित्तसहितं चांद्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं च कृत्वा नारायणबलिपूर्वकं तं दहेत् ॥ तथाचात्मघातिनां गोगजव्याघ्रादिहेतुकदुर्मरणवतां च पतितादीनां च पूर्वोक्तानां सर्वेषां न मरणादिनादारभ्याशौचं किं तु तत्प्रायश्चित्तनारायणबलिपूर्वकसमंत्रकदाहदिनमारभ्यैवाशौचम् ॥ जलाग्न्यादिभिः प्रमादमृतानां तु मरणदिनादारभ्याशौचादिकमस्त्येव ॥ तच्च त्रिरात्रमिति केचित् ॥ दशाहमिति बहवः ॥ किं तु प्रमादमरणस्यापि दुर्मरणत्वात्तन्निमित्तप्रायश्चित्तपूर्वकमेव दाहादि कार्यम् ॥ तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे ॥ चांडालगोब्राह्मणचोरपशुदंष्ट्रिसर्पाग्न्युदकादिभिः प्रमादान्मरणे चांद्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं च तत्प्रायश्चित्तं कृत्वा पंचदशकृच्छ्राणि वा प्रायश्चित्तं कृत्वा विधिवद्दहनाशौचोदकदानादि सर्वं कार्यमेवेति ॥ प्राणांतिकप्रायश्चित्तेन मृतस्य दशाहमाशौचं सर्वाणि प्रेतकर्माणि कर्तव्यानि ॥ प्रायश्चित्तेन तस्य शुध्यत्वात् ॥ एवमारब्धप्रायश्चित्तस्य प्रायश्चित्तमध्ये मरणेपि शुध्यत्वादिकं ज्ञेयम् ॥ आहिताग्नेस्तु पतितादेर्मरणे दर्भादिना चांडालशृंगिचोरादिहेतुके मरणे विशेषः ॥ "प्रेताग्नीन्प्राक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे ॥ पात्राणि तु दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि॥" ततः प्रायश्चित्तार्हत्वानर्हत्वादिपूर्वोक्तव्यवस्थया निर्मथ्याग्निना दाहाद्यंतकर्मेति ॥ "महापातकसंयुक्तः साग्निको यदि जीवति ॥ पुत्रादिः पालयेदग्नीन्प्रायश्चित्तक्रियावधिः ॥ प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि ॥ जलेग्नीन्प्रक्षिपेदग्नौ पात्राणि तु जलेषु वा ॥" माधवीये ॥ आहिताग्नेर्दुर्मरणेष्वात्मघाते च तं लौकिकाग्निना तूष्णीं दग्ध्वा तदस्थीनि क्षीरेण प्रक्षाल्य तत्प्रायश्चित्तं कृत्वा श्रौताग्निभिः समंत्रकं दाहादि कार्यमित्युक्तम् ॥ इदं निरग्नेरपि दुर्मरणे योज्यम् ॥

अब मृतके दोषसे अपवादको कहतेहैं । शास्त्रकी आज्ञाके विना शस्त्र, अग्नि, विष, जल पाषाण बिजुली अनशन आदिसे जानकर अपनी इच्छासे जो अपघात करतेहैं । उनका आशौच नहीं होता और वह आत्मघातके क्रोधसे परके उद्देशसे हो वा आपसेही इष्ट साधनताके भ्रमसे हो । और चोरी आदिके दोषसे जो राजासे मारेगये हैं अथवा परस्त्रीके गमनमें उनके पतियोंसे जो मारेगये हैं वा बिजलीसे मरेहैं उनका भी आशौच नहीं होता । अन्योंके

मने करनेपर भी अभिमानसे नदीका तरना, वृक्षपर चढना, कूपमें बूडना आदिमें प्रवृत्त हो कर जो मरगया है उसका भी आशौच नहीं होता । महापातकी और उनके संसर्गी, और महापापियोंके जो तुल्य हैं पतित, और नपुंसक, इनके मरनेमें आशौच नहीं होता । पतिकी हतीहुई स्त्री, हीन जातिके संग गमन करनेवाली, गर्भकी नाशक, व्यभिचारिणी, और पूर्वोक्त आत्मघात आदि पापोंसे युक्त; इन स्त्रियोंके मरनेमें आशौच नहीं होता । उसमें इन शवोंका स्पर्श, अश्रुपात (रोना), वहन (लेजाना),दाह, अंत्य कर्म; इनको न करै । और स्पर्श आदि के करनेमें जानकर विनाजाने अभ्यास आदिकी न्यून अधिकतासे कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, सांतपन, चांद्रायण, आदि; प्रायश्चित्त निर्णयसिंधु आदि ग्रंथोंसे जानने । और इनके मृत देहको जलमें फेंक दे । फिर वर्ष दिनके अनंतर पुत्र आदि उसके आत्मघात आदि पापके अनुसार उसका प्रायश्चित्त करके और नारायण बलि करनेके अनंतर पुत्तल दहन पूर्वक आशौच और और्ध्वदैहिक कर्मको करै । कोई तो यह कहतेहैं कि, प्रेतके शरीरको दग्ध करके और दाहके निमित्त चांद्रायणको करके और अस्थियोंका स्थापन करके वर्ष दिनके अन्तमें पूर्वोक्त रीतिसे और्द्ध्वदैहिक करै । अथवा लौकिक अग्निसे तूष्णीं दाह करके अपने जीवनके संदेहसे वा भक्तिसे, पुत्र आदि, वर्ष दिनसे पहिले भी तिस २ आत्मघात आदि पापका पूर्वोक्तसे दूना प्रायश्चित्त और नारायणबलिको करके पुत्तलदाह वा अस्थियोंका दाह करके आशौच और और्द्ध्वदैहिक कर्मको करैं । यह भी उनको ही है जो प्रायश्चित्तके योग्य हैं । और जो प्रायश्चित्तके अयोग्य हैं, वा घटस्फोट करके जातिसे बाहिर हैं उनको दासीके द्वारा पतितोदकविधि (जलदान) के अनन्तर सपिंडीकरणको छोडकर और्ध्वदैहिक कर्मको करै । तिससे वार्षिक श्राद्ध भी एकोद्दिष्ट विधिसे ही करै । यद्वा आत्मघातियोंका पुत्र आदि मृत जातीय वधमें कहाहुआ ब्रह्महत्याआदिके प्रायश्चित्त सहित चांद्रायण और दो तप्तकृच्छ्र करके नारायणबलि पूर्वक उसका दाह करै । तिससे आत्मघातियोंका और गौ हस्ति व्याघ्र आदिसे जो हतेहैं और जो पतित आदि हैं उन पूर्वोक्त सबका मरणदिनसे लेकर आशौच नहीं है । किंतु उसकें प्रायश्चित्तपूर्वक नारायणबलि, मन्त्रोंसे दाहके दिनसे, लेकर ही आशौच होताहै । जल, अग्नि, आदिसे जो प्रमाद करके मरे हैं उनका तो मरण दिनसे लेकर आशौच है ही । वह आशौच त्रिरात्र होता है यह कोई २ कहते हैं दशाह होताहै । यह बहुत कहते हैं । किंतु प्रमादका मरना भी दुर्मरण है । तिसके निमित्त प्रायश्चित्तको करके ही दाह आदि करना । सोई स्मृत्यर्थसारमें कहा है । चांडाल, गौ, ब्राह्मण, चोर, पशु, दंष्ट्रि, श्वान आदि, सर्प, अग्नि, जल, आदिसे प्रमादसे मरै तो चांद्रायण, और दो तप्त कृच्छ्र उसके प्रायश्चित्तको करके वा पंद्रह कृच्छ्र प्रायश्चित्त करके विधिसे दहन आशौच उदकदान आदि संपूर्ण कर्म करना । प्राणांतिक प्रायश्चित्तसे जो माराहै उसके दशाह आशौच और संपूर्ण प्रेतकर्म करने । क्योंकि, वह प्रायश्चित्तसे शुद्ध होगया । इसी प्रकार जिसने प्रायश्चित्तका प्रारंभ किया है । उसको प्रायश्चित्तके मध्यमें मरनेमें भी शुद्धि आदि, जानने । और अग्निहोत्री जो पतित आदि है उसके मरनेमें और गर्व आदिसे; चांडाल, शृंगी, चोर आदिसे; मरनेमें तो विशेष है कि, श्रौताग्निको तो जलोंमें फेंकदें, आवसथ्य (गृह्य) अग्निको चौराहेमें फेंक दे । और पात्रोंको अग्निमें दग्ध कर दे । यदि अग्निहोत्रीसे कोई पाप कर्म होजाय, फिर प्रायश्चित्तकी योग्यता अयोग्यता आदि पूर्वोक्त व्यवस्थासे मथीहुई अग्निसे दाह आदिपर्यन्त अंत्यकर्मको करै । यदि अग्निहोत्री महा-

पातकसे संयुक्त होकर जीवै तो पुत्र आदि प्रायश्चित्त कर्म करने तक अग्निकी रक्षा करै। और जो प्रायश्चित्तको न करै वा करताहुआ मरजाय तो जलमें अग्निको और अग्निमें वा जलमें पात्रोंको फेंक दे। माधवीयमें लिखा है। कि, अग्निहोत्रीके दुर्मरणमें और आत्मघातमें लौकिक अग्निसे तूष्णीं दग्ध करके और उसके अस्थियोंको दूधसे धोकर उसके प्रायश्चित्तको करके श्रौत अग्निसे मंत्रोंसहित दाह आदिको करै। यह निरग्निकेभी दुर्मरणमें समझना ॥

अथ सर्पहते विशेषः।

प्रमादेन वा दर्पादिना वा सर्पतो मृतावाशौचादि न कार्यम् ॥ वक्ष्यमाणनागपूजाव्रतं कृत्वा नारायणबलिसौवर्णनागदानप्रत्यक्षगोदानानि कृत्वा दाहाशौचादिकार्यम् ॥ सर्वत्र दुर्मरणे पतितादिमरणे च तत्तत्प्रायश्चित्तादि कृत्वा दाहाशौचादि कार्यमित्युक्तम् ॥ तत्र प्रायश्चित्तानि प्रसंगादुच्यंते ॥ बुद्धिपूर्वकमात्मघातेन मृतानां त्रिंशत्कृच्छ्राणि प्रायश्चित्तम् ॥ एतच्च जातिवधप्रायश्चित्तेन समुच्चितं कार्यम् ॥ तद्यथा ॥ ब्राह्मणेनात्मघाते कृते द्वादशाब्दब्रह्महत्याप्रायश्चित्तं त्रिंशत्कृच्छ्रमात्मघातप्रायश्चित्तं च तत्पुत्रादिः कुर्यात् ॥ ब्राह्मणस्त्रियात्मघाते कृते ब्राह्मणस्त्रीवधप्रायश्चित्तं त्रिंशत्कृच्छ्राणि च ॥ एवं शूद्राद्यात्मघातेप्यूह्यम् ॥ अशक्तावात्मघाते चांद्रायणद्वयं तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च ॥ प्रमादेन जलादिमरणे पंचदश कृच्छ्राणि चांद्रायणपूर्वकं तप्तकृच्छ्रद्वयं वा ॥ पतिते मृते षोडश कृच्छ्राणि ॥ ब्रह्महत्यादिपापिनां प्रायश्चित्तात्पूर्वमरणे तत्तत्पापप्रायश्चित्तं पुत्रेण कार्यम् ॥ प्रायश्चित्तानर्हाणां तु पतितोदकदानविधिरेव न प्रायश्चित्तादीत्युक्तम् ॥ सिंधौ तु प्रायश्चित्तानर्हाणामपि पुत्रादिर्नारायणबलिपूर्वं सर्वमौर्ध्वदेहिकं सपिंडीकरणं दर्शादिश्राद्धं गयादिश्राद्धं च कुर्यादेव ॥ एवं म्लेच्छीकृतस्यापि पतितोदकविधिरपुत्रविषय इत्युक्तम् ॥ इदमेव युक्तम् ॥ यस्तु किंचित्कालं म्लेच्छीकृतः प्रायश्चित्तार्हस्तस्य षोडशकृच्छ्रादिप्रायश्चित्तं पुत्रेण कृत्वा पर्णशरदाहादि कार्यम् ॥ प्रमादमरणभिन्नेषु चौर्यपारदार्यादिहेतुकेषु दुर्मरणेषु चांद्रायणद्वयं तप्तकृच्छ्रं वेत्याकरतो विचार्य योज्यम् ॥

अब सर्पसे जो हत हैं उसमें विशेष कहते हैं। कि, प्रमादसे वा दर्प आदिसे जो सर्पसे मरा हो उसके मरनेके आशौच आदि न करने। आगे जो कहेंगे उस नागपूजा विधिके व्रतको करके नारायणबलि, सुवर्णके नागका दान प्रत्यक्ष गोदान; इनको करके दाह आशौच आदि करने। सब दुर्मरणोंमें और पतित आदिके मरनेमें तिस २ के प्रायश्चित्त आदिको करके दाह आशौच आदि करने यह कह आये। उसमें प्रसंगसे प्रायश्चित्तोंको कहतेहैं कि, जानकर जो आत्मघातसे मरे हैं उनका तीस कृच्छ्र प्रायश्चित्त हैं। यह भी जातिवधके प्रायश्चित्तसे समुचित (सहित) करना, वह ऐसे है कि, ब्राह्मण आत्मघात करै तो बारह वर्ष ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त और तीस कृच्छ्र आत्मघातका प्रायश्चित्त उसका पुत्र आदि करै। ब्राह्मणकी स्त्री आत्मघात करै तो ब्राह्मणकी स्त्रीके वधका प्रायश्चित्त और तीस कृच्छ्र करै। इसी प्रकार शूद्र आदिके आत्मघातमें भी समझना। असामर्थ्यमें तो आत्मघातमें दो चांद्रायण, और चार

तप्त कृच्छ्र, करै । प्रमादसे जल आदिसे चांद्रायण करके पंद्रह कृच्छ्र; करै वा दो तप्त कृच्छ्र करै । पतित मरै तो सोलह कृच्छ्र करै । ब्रह्महत्यारे आदि जो पापी हैं वे प्रायश्चित्तसे पहिले मरजायँ तो तिस २ पापका प्रायश्चित्त, पुत्र करै । प्रायश्चित्तके जो अयोग्य हैं उनका तो पतितोदक दानकी ही विधि है । प्रायश्चित्त आदि नहीं; यह कह आये । निर्णयसिंधुमें तो यह कहाहै । कि, प्रायश्चित्तके अयोग्योंका भी पुत्र आदि नारायणबलिपूर्वक और्ध्वदैहिक कर्म सपिंडीकरण दर्श आदि श्राद्ध और गया आदि श्राद्धको अवश्य करै । इसीप्रकार म्लेच्छ जो होगया है उसकी भी पतितोदक विधि अपुत्रके विषयमें है । यह कह आये, और यही युक्त है । और जो थोडे ही कालसे म्लेच्छ किया है । और प्रायश्चित्तके योग्य है उसका सोलह कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्तको पुत्र करके पुत्तल दाह आदि करै । और प्रमादके मरनेसे भिन्न जो चोरी, पराई स्त्री आदिसे दुर्मरण हैं, उनमें दो चांद्रायण, वा तप्त कृच्छ्र बडे २ ग्रंथोंसे विचार कर युक्त रीतिसे करना ॥

अथ दुर्मरणेषु दानविधिः ।

किंच व्याघ्रादिहेतुकदुर्मरणेषु शातातपोक्तदानादिविधिरपि कार्यः ॥ तथाहि ॥ व्याघ्रहते विप्रकन्याविवाहनम् ॥ गजहते चतुर्निष्कपरिमितहेमनिर्मितगजदानम् ॥ राजहते सौवर्णपुरुषदानम् ॥ चोरहते प्रत्यक्षधेनुदानम् ॥ वैरिहते वृषभदानम् ॥ वृषभहते यथाशक्ति हेमदानम् ॥ शय्यायां च मृतौ देया शय्या तूलीसमन्विता ॥ निष्कहेमनिर्मितविष्णुप्रतिमाधिष्ठिता च ॥ शौचहीनमरणे द्विनिष्कहैमविष्णुदानम् ॥ संस्कारहीनमरणे विप्रपुत्रोपनयनम् ॥ अश्वहते निष्कत्रयहेमकृताश्वदानम् ॥ शुना हते क्षेत्रपालस्थापनम् ॥ सूकरहते महिषदानम् ॥ कृमिभिर्हते पंचखारीमितगोधूमदानम् ॥ वृक्षहते वस्त्रयुतसौवर्णवृक्षदानम् ॥ शृंगिणा हते वस्त्रयुतवृषभदानम् ॥ शकटहते सोपस्करं किंचिद्द्रव्यदानम् ॥ भृगुपातमृते धान्यपर्वतदानम् ॥ अग्निना मृते उदपानोत्सर्गविधिः ॥ काष्ठहते धर्मार्थसभाकरणम् ॥ शस्त्रहते महिषीदानम् ॥ अश्मनाहते सवत्सपयस्विन्या गोर्दानम् ॥ विषेण हते हेमनिर्मितपृथ्वीदानम् ॥ उद्बंधनेन मृते हेमकपिदानम् ॥ जलमृते द्विनिष्कहेमनिर्मितवरुणदानम् ॥ विषूचिकामृते स्वाद्वन्नेन शतविप्रभोजनम् ॥ कंठास्थितकवलस्य मरणे घृतधेनुदानम् ॥ कासरोगमृतेऽष्ट कृच्छ्राणि ॥ अतिसारमृते लक्षगायत्रीजपः ॥ शाकिन्यादिग्रहैर्मृते रुद्रैकादशनीजपः ॥ विद्युत्पातमृते विद्यादानम् ॥ अंतरिक्षमृते वेदपारायणम् ॥ पतिते मृते षोडश कृच्छ्राणि ॥ अस्पृश्यस्पर्शयुक्तमरणे सच्छास्त्रपुस्तकदानमित्यादि ॥ अत्र शय्यामरणे शौचहीनसंस्कारहीनमरणे कृमिविषूचिकाकंठकवलकासातिसाररोगग्रहणैर्मरणेंतरिक्षमृतेस्पृश्यस्पर्शमरणेपि दानादिविधिरेव न प्रायश्चित्तं नैव नारायणबलिर्नापि वर्षादिकालप्रतीक्षा ॥ व्याघ्रादिहेतुकं विषजलशस्त्रादिहेतुकं च मरणं प्रमादेन दर्पादिना बुद्ध्या चेत्यनेकधा संभव-

ति तत्रोक्तव्यवस्थया प्रायश्चित्तं नारायणबलिर्दानादिविधिश्चेति त्रयाणां समुच्चयः॥ यदि पुत्रादिः पितुर्जलादिदुर्मरणप्रायश्चित्तं ब्रह्महत्यादि तत्तत्प्रायश्चित्तं वात्मघातप्रायश्चित्तं वा कर्तुं न शक्नोति तदोक्तदानादिविधिं नारायणबलिं च कृत्वाऽत्यशक्तौ नारायणबलिमात्रं कृत्वौर्ध्वदेहिकं कुर्यात् ॥ तावता पुत्रादिसपिंडानां शुद्धिसिद्धिः पित्रादेस्तु पुत्रादिभिस्तत्तत्प्रायश्चित्ताकरणे नरकादिभोगः स्यादेवेति बोध्यम् ॥

और व्याघ्र आदिके दुर्मरणमें शातातपकी कही दान आदिकी विधि भी करनी । सोई कहते हैं । कि, व्याघ्रसे मरणमें ब्राह्मणकी कन्याका विवाह करै । गजसे मरणमें चार निष्क भर सुवर्णसे बने हुये गजका दान है । राजासे मरणमें सुवर्ण पुरुषका दान है, चोरसे मरणमें प्रत्यक्ष गोदान है । शत्रुसे मरणमें बैलका दान है । बैलसे मरणमें यथाशक्ति सुवर्ण का दान है । शय्यापर मरनेमें रूईसे युक्त शय्या देनी और वह शय्या निष्कभर सुवर्णसे बनी हुई विष्णु प्रतिमासे संयुक्त हो । शुद्धिसे हीन मरै तो दो निष्कभर सुवर्णके विष्णुका दान करै । संस्कारसे हीन मरै तो ब्राह्मणके पुत्रका यज्ञोपवीत करावै । अश्वसे मरनेमें तीन निष्क सुवर्णके अश्वका दान करै । कुत्तेसे मरनेमें क्षेत्रपालका स्थापन करै । सूकरसे मरनेमें भैंसेका दान करै । कृमियोंसे मरनेमें पांच रविवारोंको अतुल गेहूंका दान करै । वृक्षसे मरनेमें वस्त्र सहित सुवर्णके वृक्षका दान करै । सींगवालोंसे मरनेमें वस्त्र सहित सुवर्णका दान करै शकट (गाडा) से मरनेमें सामग्री सहित किंचिद्द्रव्य दे । पर्वतसे गिरकर मरनेमें धान्यके पर्वतका दान करै । अग्निसे मरनेमें उदक पानके दानकी विधि (प्याऊ) करै । काष्ठसे मरनेमें धर्मके अर्थ सभा करै । शस्त्रसे मरनेमें भैंसका दान करै । पत्थरसे मरनेमें वत्स सहित दूध देती गौका दान करै । विषसे मरनेमें सुवर्णसे बनाई भूमिका दान करै । उद्बंधन (कैद) से मरनेमें सुवर्णके वानरका दान करै । जलसे मरनेमें दो निष्कभर सुवर्णसे बनाये वरुणका दान, करै । विसूचिकासे मरनेमें स्वादु अन्नसे सौ ब्राह्मणोंका भोजन करावै । कंठमें रुके ग्राससे मरनेमें घृतकी गौका दान करै।कास रोगसे मरनेमें आठ कृच्छ्र करै। अतीसारसे मरनेमें लक्ष गायत्री जपै शाकिनी आदि ग्रहोंसे मरै तो एकादश रुद्रीको जपै । बिजलीके गिरनेसे मरै तो विद्याका दान करै।अंतरिक्षमें मरै तो वेदका पारायण करै । पतित होकर मरै तो सोलह कृच्छ्र करै।स्पर्शके अयोग्यका स्पर्श करके मरै तो उत्तम शास्त्रकी पुस्तकका दान करै इत्यादि प्रायश्चित्त हैं।इनमें शय्याके मरनेमें; शौच हीन, संस्कार हीनके मरनेमें;कृमि, विसूचिका, कंटक,कवल, कास, अतिसाररोग, ग्रह; इनसे मरनेमें अन्तरिक्षमें मरनेमें,स्पर्शके अयोग्यका स्पर्श करके मरनेमें भी दान आदिकी विधि ही प्रायश्चित्त है । न नारायण बलि है और न वर्षा आदि कालकी प्रतीक्षा है । व्याघ्र आदिसे विष, जल, शस्त्र, आदिसे जो मरण है वह प्रमादसे दर्प (अभिमान) आदिसे जानकर ऐसे अनेक प्रकारका होताहै; उसमें उक्त व्यवस्थासे प्रायश्चित्त, नारायणबलि और दान आदिकी विधि इन तीनोंका समुच्चय है । अर्थात् तीनों होतेहैं । यदि पुत्र आदि पिताके जल आदिसे दुर्मरण प्रायश्चित्तको, और ब्रह्महत्या आदि तिस २ प्रायश्चित्तको, वा आत्मघातके प्रायश्चित्तको, न कर सकै तो तब उक्त दान आदिकी विधिको और नारायणबलिको, करके और अत्यंत असामर्थ्यमें केवल नारायण बलिको ही करके और्ध्वदैहिक कर्मको

करै। उतनेसे ही पुत्र आदि सपिंडोंकी शुद्धि सिद्ध है। पिता आदिकोंको तो पुत्र आदिके तिस २ प्रायश्चित्त आदिके करनेपर भी नरक आदिका भोग होता ही है यह जानना॥

अथ विधिविहितजलादिमरणे।

तत्र प्रयागे सर्ववर्णानां रोगिणामरोगिणां च भागीरथीप्रवेशादिना मरणे कामितमहाफलम्॥ शूद्रस्यारोगिणोपि प्रयागभिन्नेपि जलादिमरणमनुज्ञातम्॥ "व्याधितो भिषजा त्यक्तो विप्रो वृद्धोथ वा युवा॥ तनुं त्यजेज्जलाग्न्याद्यैः स यथेष्टं फलं लभेत्॥ दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितो जीवनाक्षमः॥ प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं करोत्यनशनं तथा॥ अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमेव च॥ गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात्॥ प्रयागवटशाखाग्राद्देहत्यागं करोति च॥ उत्तमान्प्राप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत्क्वचित्॥ नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा॥ आशौचं स्यात्त्र्यहं तेषां वज्रानलहते तथा॥ वाराणस्यां म्रियेद्यस्तु प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः॥ काष्ठपाषाणमध्यस्थो जाह्नवीजलमध्यगः॥ अविमुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलगतो हरः॥ प्रणवं तारकं ब्रूते इत्यादिवचनोच्चयः॥ पुराणस्थो माधवादिनिबंधेषु ह्युदाहृतः॥" अत्रानुज्ञाते बुद्धिपूर्वकात्मघाते गृहस्थादीनामेवाधिकारः यतेस्तु नाधिकारः॥ त्र्यहाद्याशौचविधानात॥ यतेः काम्यकर्मण्यनधिकाराच्चेति निर्णयसिंधुः॥ इदानींतनशिष्टास्तु रोगादिपीडां सोढुमशक्तौ संन्यासाश्रमं गृहीत्वा तीर्थादिनात्मघातं कुर्वंति॥ गृहस्थविधुरादयश्च न कुर्वंति॥ केचित्त्वपरिहार्यरोगादिग्रस्तवृद्धादेर्जलादिना बुद्ध्यात्मघातः कलौ प्रयागभिन्नदेशे न भवति॥ "भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथा॥" इति कलिवर्ज्येषु परिगणनादित्याहुः॥ एतन्मते मरणांतप्रायश्चित्तविधयः काशीखंडादौ विप्रादेर्देहत्यागविधयश्च युगांतरपराः॥ प्रयागमरणं स्त्रीणां सहगमनं च कलियुगेपि सर्वसंमतम्॥ अत्र सर्वत्र सहगमनभिन्ने विधिवाक्यानुज्ञाते देहत्यागे त्रिरात्रमाशौचमिति बहवः॥ दशाहमिति केचित्॥ एवं फलकामनया विहिते काम्यप्रयागे मरणेपि पक्षद्वयं ज्ञेयम्॥

अब विधिसे किये (शास्त्रोक्त) जल आदिसे मरनेमें कहतेहैं। उसमें प्रयागमें सम्पूर्ण वर्णके रोगी वा अरोगियोंके भागीरथीके प्रवेश आदिसे मरनेमें यथेच्छ महान् फल होताहै। शूद्र अरोगी भी हो उसके प्रयागसे भिन्नमें भी जल आदिका मरण कहाहै। रोगसे वैद्यका त्यागा हुआ ब्राह्मण वृद्ध वा युवा हो वह यदि जल अग्नि, आदिसे देहको त्याग देताहै वह यथेष्ट फलको प्राप्त होताहै। चिकित्साके अयोग्य महारोगोंसे पीडित जो जीनेको असमर्थहै वह जलती हुई अग्निमें प्रवेश करै वा अनशन व्रतको करै अगाध जलमें प्रवेश करै। वा पर्वतसे गिरै। महापथ (बडामार्ग) को गमन करै वा तुषारके पर्वतमें आदरसे चलाजाय वा प्रयागके वटकी शाखाके अग्र भागसे अपने देहका त्याग करै। तो उत्तम लोकोंको प्राप्त होताहै। कदा-

चित् भी आत्मघाती नहीं होता । मनुष्य हो वा नारी हो उनका संपूर्ण वर्णोंमें सदैव तीन दिनका आशौच होता है । और वज्रकी अग्निसे जो मरै उसका भी यही फल है । और जो वैद्यकी चिकित्साको छोडकर काशीमें मरता है वह यदि काष्ठ पाषाणके मध्यमें स्थित होकर वा गंगाजलके मध्यमें अविमुक्त क्षेत्रके सन्मुख होकर मरता है। तो उसके कर्ण मूलमें प्राप्त हुआ महादेव तारक ॐकारको कहते हैं । पुराणोंके इत्यादि वचनोंका समूह माधव आदि निबंधोंमें कहा है । इसमें शास्त्रोक्त जानकर आत्मघातमें गृहस्थ आदिकोंका ही अधिकार है । संन्यासीका तो अधिकार नहीं । क्योंकि, इनमें तीन दिनका आशौच कहा है । और संन्यासीका काम्य कर्ममें अधिकार भी नहीं यह निर्णयसिंधुमें कहा है । वर्तमान समयके शिष्ट तो रोग आदि पीडाके सहनेकी अशक्तिमें संन्यासाश्रमको ग्रहण करके तीर्थ आदिसे आत्मघात करते हैं और गृहस्थसे जो हीन हैं वे नहीं करते हैं । कोई तो यह कहते हैं कि; निवृत्तिके अयोग्य रोग आदिसे ग्रस्त वृद्ध आदिका जल आदिसे जानकर आत्मघात प्रयागसे भिन्न देशमें नहीं होता । क्योंकि, भृगु अग्निसे पतन आदिसे वृद्ध आदिके मरण, कलिमें निषिद्ध है । इस वचनमें कलियुगमें वर्जितोंमें यह भी गिना है । इसके मतमें मरणांत प्रायश्चित्तकी विधि और काशीखंड आदिमें ब्राह्मण आदिके देहके त्यागकी विधि अन्य युगोंके विषयमें है । स्त्रियोंका प्रयागमें मरण और सहगमन ये तो कलियुगमें भी सबको संमत है यहां सर्वत्र सहगमनसे भिन्न विधि वाक्यसे अनुज्ञात (कहे) देहके त्यागमें तीन रात्रिका आशौच होताहै, यह बहुत कहतेहैं । दश दिन होताहै यह कोई २ कहते हैं । इसी प्रकार फलकी कामनासे उक्त काम्य जो प्रयागका मरण उसमें भी दो पक्ष जानना । और जो पतित घट-स्फोटसे बाहिर किया है, और जो म्लेच्छ करलिया है, और जो प्रायश्चित्तके अयोग्य पापी हैं, पिता मातासे भिन्न उन तीन प्रकारकेका पतितोदक विधिके अनन्तर सपिंडीकरणको छोडकर अंत्य कर्म और तीन प्रकारकेभी माता पिताका तो नारायण बलिपूर्वक सपिंडीकरण सहित सम्पूर्ण कर्म होताहै, यह कह आये ॥

अथ पतितोदकदानविधिः ।

अथ यः पतितो घटस्फोटेन बहिष्कृतो यश्च म्लेच्छीकृतो यश्च प्रायश्चित्तानर्ह-पापी तस्य त्रिविधस्य पितृमातृभिन्नस्य पतितोदकविध्यनंतरं सपिंडीकरणवर्ज्यमं-त्यकर्म पितुर्मातुश्च त्रिविधस्यापि नारायणबलिपूर्वकं सपिंडीकरणसहितं सर्वं भव-तीत्युक्तम् ॥ तत्र पतितोदकदानविधिर्यथा ॥ सर्वगां दासीमाहूय तस्यै वेतनं दत्त्वा शुद्धपूर्णघटहस्तां तां ब्रूयात ॥ हे दासि गच्छ मूल्येन तिलान् तोयपूर्ण-मिमं घटं च शीघ्रमानय ॥ ततो दक्षिणामुखी उपविश्य वामपादेन तं घटं सति-लं क्षिप ॥ घटक्षेपणकाले चामुकसंज्ञकपतितप्रेत पिबपिबेति मुहुरुच्चारयेति ॥ सा दासी तद्वाक्यं श्रुत्वा मूल्यं गृहीत्वा तथा कुर्यात् ॥ एवं कृते पतिततृप्तिर्नान्यथा ॥ एतच्च पतितस्य मृतदिने कार्यम् ॥ इति पतितोदकविधिः॥ इति मृतदोषत आशौ-चापवादः सप्रसंगः सविस्तरो निरूपितः ॥

उसमें पतितोदक दानविधि यह है कि, सबके संग गमन करनेवाली दासीको बुलाके उसको वेतन देकर शुद्ध पूर्ण घट हाथमें जिसके ऐसी उस दासीको कहै कि, हे दासी तू मोल

लेकर जाय तिल और जलसे भरे इस घटको शीघ्र ले आय फिर दक्षिणको मुख करके बैठ कर वाम पादसे तिलों सहित उस घटको फेंक दे। और घट फेंकनेके समय वारंवार यह उच्चारण करै कि, 'हे अमुक नामके प्रेत पतित इस जलका पान कर' वह दासी उस वाक्यको सुनकर और मोल लेकर वैसे ही करै। ऐसे करनेसे ही पतितकी तृप्ति होती है अन्यथा नहीं। और इसको पतितके मरण दिनमें करै, यह पतितोदक विधि है। यह मृतकके दोषसे आशौचापवादका प्रसंग विस्तार सहित निरूपण किया ॥

अथ विधानत आशौचाभावः।

यतेर्मृतावांशौचं नास्ति ॥ तस्य प्रेतक्रियोदकदानाशौचसपिंडीकरणादेर्निषिद्धत्वात् ॥ सपिंडीस्थान एकादशेहनि पार्वणश्राद्धमात्रं कार्यम् ॥ प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धदर्शश्राद्धादिकं तु पार्वणविधिना सपिंडकं भवत्येव ॥ अत्र विस्तरो ग्रंथांतरे वक्ष्यते ॥ एतच्च त्रिदंडिनामेकदंडिनां हंसपरमहंसादीनां सर्वेषामेव ज्ञेयम्॥ एवं वानप्रस्थमरणेपि नाशौचं कृतजीवच्छ्राद्धे मृते सपिंडैराशौचादि कर्तव्यं न वेति विकल्पः ॥ ब्रह्मचारिमृतौ त्वाशौचमस्त्येव ॥ युद्धमृतेप्याशौचं नेति सर्वग्रंथेषूपलभ्यते नत्वे वं ब्राह्मणेषु शिष्टाचारः॥ इति पंचधाशौचापवादो निरूपितः ॥

अब विधानसे (शास्त्रोक्त) आशौचका अपवाद कहतेहैं। संन्यासीके मरनेमें आशौच नहीं है। क्योंकि, उसकी प्रेतक्रिया, उदकदान, आशौच, सपिंडीकरण, आदि ये सब निषिद्ध हैं। सपिंडीके स्थानमें एकादशाहके दिन एकादश पार्वण मात्रको, करै। प्रतिसंवत्सरका वार्षिक श्राद्ध, दर्श श्राद्ध, आदि तो पार्वणकी विधिसे पिंड सहित होते ही हैं। इससे विस्तार अन्य ग्रंथोंमें कहेंगे और यह कर्म त्रिदंडी, एकदंडी, हंस, परमहंस, आदि सबका जानना। इसी प्रकार वानप्रस्थके मरनेमें भी आशौच नहीं होता। जिस वानप्रस्थने जीवच्छ्राद्ध करलिया हो उसके मरनेपर उसका आशौच, सपिण्ड आदि करैं वा न करैं। यह विकल्प है। ब्रह्मचारीके मरनेपर तो आशौच होता ही है। युद्धमें मरेका भी आशौच नहीं यह सब ग्रन्थोंमें मिलता है। परन्तु ऐसा ब्राह्मणोंमें शिष्टाचार नहीं यह पांच प्रकारका आशौचापवाद निरूपण किया ॥

अथ जीवतोप्याशौचम्।

यथा पतितस्य घटस्फोटकाले सर्वसपिंडानामेकाहमाशौचम् ॥ "इत्याशौचं सापवादं यथामति निरूपितम् ॥ समर्पितं रुक्मिणीशश्रीमद्विट्ठलपादयोः ॥" इति सापवादाशौचप्रकरणम् ॥

अब जीवते हुयेके भी आशौचको कहतेहैं। जैसे पतितका घटस्फोटके समय सम्पूर्ण सपिण्डोंको एक दिनका आशौच है। यह अपवाद सहित आशौच अपनी मतिके अनुसार निरूपण किया और रुक्मिणीके पति श्रीविट्ठल (कृष्णचन्द्र) के चरणोंमें समर्पण किया। यह अपवाद सहित आशौचका प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अथौर्ध्वदेहिकारंभोपयोगिनारायणबल्यादिप्रकार उच्यते ।

तत्र दुर्मरणेष्वात्मघाते जलादिभिः प्रमादमरणे पतितादिमरणे च पूर्वोक्तव्यवस्थयामुकगोत्रस्यामुकशर्मणोमुकदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिके संप्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थममुकप्रायश्चित्तममुकदानं वा करिष्ये इत्यादि संकल्पपूर्वकं तत्तत्प्रायश्चित्तं दानं च कार्यम् ॥ अशक्तौ दानमेव कार्यम् ॥ ततोमुकगोत्राअमुकशर्मणेमुकदुर्मरणदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिकसंप्रदानत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये इति संकल्प्य पूर्वार्धोक्तसंततिफलककाम्यनारायणबलिवत्सर्वं कुर्यात् ॥ एतत्तु वर्षांते करणपक्षे ॥ सद्यःकरणपक्षे तु पूर्वोक्ताद्द्विगुणप्रायश्चित्तं संकल्प्य शुक्लैकादश्यादिकालमनपेक्ष्यैव समनंतरोक्तसंकल्पं कृत्वा विधिना स्थापिते कलशद्वये हेमप्रतिमयोर्विष्णुं वैवस्वतं यमं चावाह्य पुरुषसूक्तेन यमाय सोममिति च क्रमेण षोडशोपचारैः संपूज्य तत्पूर्वभागे रेखायां दक्षिणाग्रकुशानास्तीर्य शुंधंतां विष्णुरूप्यमुकप्रेतेति दशस्थानेष्वपो निनीय मधुघृततिलमिश्रानोदनपिंडान्दशामुकगोत्रामुकशर्मन्प्रेतविष्णुदेवतायं ते पिंड इति दक्षिणसंस्थान् प्राचीनावीतित्वादि पैतृधर्मेण दद्यात् ॥ गंधादिभिरभ्यर्च्य प्रवाहणांतं कृत्वा नद्यां क्षिपेत् ॥ श्वः सद्यो वा पूर्वस्थापितं विष्णुमभ्यर्च्यैकविप्रे विप्रालाभे दर्भबटौ वा पादक्षालनादितृप्तिप्रश्नांतं विष्णुरूपप्रेतावाहनपूर्वकं कृत्वा विप्रसमीपे तूष्णीं रेखाः कृत्वा दर्भास्तरणे आपो निनयनं च कृत्वा दर्भेषु सव्येन विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय च सपरिवाराय यमाय चेति चतुर्भ्यः पिंडचतुष्टयं दत्त्वाऽपसव्येन विष्णुरूपिप्रेतामुकगोत्रनामायं ते पिंड इत्येकं पंचमं पिंडं दत्त्वा तथैवाभ्यर्च्य प्रवाहणांते विप्राचांततादिश्राद्धशेषसमापनांते प्रेतबुद्ध्या विप्राय वस्त्राभरणादि दत्त्वा विप्रेण प्रेताय तिलांजलिं दापयेत् ॥ अमुकगोत्रायामुकशर्मणे विष्णुरूपिणे प्रेतायायं तिलतोयांजलिरिति मंत्रेण ॥ विप्रालाभे स्वयं दद्यात् ॥ ततो विप्रान्वाचयेत् ॥ अनेन नारायणबलिकर्मणा भगवान्विष्णुरिमममुकं प्रेतं शुद्धमपापमर्हं करोत्विति ॥ काम्यप्रयोगेस्मिन्प्रयोगे च संकल्पे नामगोत्रोच्चारे च विशेषः ॥ स्पष्ट एव ॥ पूर्वत्र काश्यपगोत्रदेवदत्तप्रेतेत्याद्युच्चारः ॥ अत्र तु गोत्रनामज्ञानसत्वाद्दुर्मरणेन मृतस्य यन्नामगोत्रं तदेवोच्चारयेदिति संकल्पे विशेषेपि हेतुः स्पष्ट एवेति ॥ इति दुर्मरणे औध्र्वदेहिकाधिकारार्थं नारायणबलिप्रयोगः ॥

अब और्ध्वदैहिक क्रियाके प्रारंभोपयोगी नारायण बलि आदि प्रयोगको कहते हैं । उसमें दुर्मरणमें, आत्मघातमें, जल आदिसे प्रमादके मरणमें, पतित आदिके मरणमें, पूर्वोक्त व्यवस्थासे अमुक गोत्रके और अमुक नामकेका जो अमुक दोष उसके नाशार्थ और और्ध्व दैहिकमें संप्रदान(दानपात्र)की योग्यतासिद्धिके लिये अमुक प्रायश्चित्तको वा अमुक दानको करताहूं इत्यादि संकल्पपूर्वक तिस २ प्रायश्चित्त और दानको करै अशक्तिमें तो दानको ही

करै । फिर 'अमुक गोत्र अमुक नामकेका जो अमुक दुर्मरणका दोष उसके नाशार्थ और्ध्वदैहिक संप्रदानकी योग्यतासिद्धिके लिये नारायणबलिको करताहूं ' यह संकल्प करके, पूर्वार्द्धमें कही जो संतानके अर्थ काम्य नारायणबलि उसके समान सम्पूर्ण कर्मको करै । यह तो तब है, जब अन्य वर्षमें करनेका पक्ष है । सद्यः करनेके पक्षमें तो पूर्वोक्तसे दूने प्रायश्चित्तका संकल्प करके और शुक्ल एकादशी आदिकालकी अपेक्षाको छोडकर अभी पूर्वोक्त जो संकल्प उसको करके, विधिसे स्थापन किये दो कलशोंपर सुवर्णकी प्रतिमाओंमें विष्णुका आर सूर्यके पुत्र यमराजको आवाहन करके पुरुषसूक्तसे, 'यमाय सोमं०' इस मन्त्रसे क्रम पूर्वक षोडश उपचारोंसे पूजकर उसके पूर्वभागमें रेखापर दक्षिणाग्र कुशाओंको रखकर 'विष्णुरूपी अमुक प्रेत शुद्ध हो ' यह कहकर दश स्थानोंमें जल देकर, मधु, घृत, तिल सहित (मिले) ओदनके दश पिंडोंको इस प्रकार दे कि, अमुकगोत्र अमुकशर्म प्रेत विष्णुदेवतारूप यह पिंड तेरेको देताहूं । यह कहकर दक्षिणमें स्थित पिंडोंको प्राचीनावीती (अपसव्य) आदि पितृधर्मसे दे । गंध आदिसे पूजकर प्रवाहणतक कर्मको करके नदीमें फेंकदे । श्वः (अगले दिन) वा सद्यः पूर्व स्थापन किये विष्णुको पूजकर; एक ब्राह्मण होय तो ब्राह्मणके अलाभमें कुशाके वटुकमें पादप्रक्षालन आदि तृप्तिप्रश्न पर्यंत विष्णुरूप प्रेतके आवाहन पूर्वक कर्मको करके ब्राह्मणके समीप तूर्ष्णीं लेखाओंको करके दर्भके आस्तरणपर जल डारकर कुशाओंपर सव्य होकर विष्णु, ब्रह्मा, शिव, और परिवार सहित यम; इन चारोंको चार पिंड देकर अपसव्यसे विष्णुरूपी प्रेत अमुक गोत्र नाम यह तेरेको पिंड है । यह कहकर एक पांचवें पिंडको देकर और उसीप्रकार पूजकर प्रवाहणके अंतमें ब्राह्मणोंके आचमन आदि श्राद्धशेषकी समाप्ति पर्यंतमें प्रेतकी बुद्धिसे ब्राह्मणको वस्त्र भूषण देकर ब्राह्मणसे प्रेतको तिलांजलि दिलावै । उसका मंत्र यह है कि, अमुक गोत्र अमुक शर्म विष्णुरूप प्रेतके अर्थ यह तिलतोयांजलि है । ब्राह्मण न मिलै तो स्वयं दे । फिर ब्राह्मणोंसे यह कहावे कि,इस नारायणबलि कर्मसे भगवान् विष्णु अमुक प्रेतको शुद्ध,पापरहित, योग्य; करो । काम्य प्रयोगमें और इस प्रयोगमें संकल्पके विषै और नाम गोत्रके उच्चारणमें विशेष स्पष्ट ही है । पहिलेमें काश्यप गोत्र देवदत्त प्रेत इत्यादि उच्चारण है । और इसमें गोत्र नामका ज्ञान होनेसे दुर्मरणसे मरेहुयेका जो नाम और गोत्र है उसकाही उच्चारण करै यह संकल्पके विशेषमें भी हेतु स्पष्टही है । यह दुर्मरणमें और्ध्वदैहिक अधिकारके लिये नारायणबलिका प्रयोग समाप्त हुआ ॥

अथ सर्पहते व्रतम् ।

प्रतिमासं शुक्लपंचम्यामुपवासं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमयं नागं पंचफणमनंतवासुकिशंखपद्मकंबलककर्कोटकाश्वतरधृतराष्ट्रशंखपालकालियतक्षककपिलेति द्वादशनामभिर्द्वादशमासेषु संपूज्य पायसेन विप्रान्संभोज्य वत्सरांते हेमनागं प्रत्यक्षां गां च दत्त्वा नारायणबलिपूर्वकं दाहाशौचादिकं कार्यम् ॥ अथवा नमोस्तु सर्पेभ्य इति तिस्र आज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ "पंचम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत् ॥ क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत् ॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना ॥" इति ॥ ततो नारायणबल्यादि ॥

अब सर्पसे हतमें विशेष कहते हैं । प्रतिमास शुक्लपंचमीको उपवास वा नक्तव्रतको करके पांचफणका पीठीका नाग; अनंत, वासुकि, शंख, पद्म, कंबल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक, कपिल, इन बारहनामोंसे बारहमासोंमें पूजकर और पायससे ब्राह्मणोंको जिमाकर, वर्षके अंतमें सुवर्णके नाग और प्रत्यक्ष गौको देकर, नारायणबलि पूर्वक दाह आशौच आदि करने । अथवा "नमोस्तु सर्पेभ्यः" इस मंत्रसे तीन घीकी आहुति दे । पंचमीको सुवर्णभर सोनेका सर्प बनवावै, दूध और घीके पात्रमें स्थित उसका पूजन करके ब्राह्मणको दे । यह नागसे डसेका प्रायश्चित्त शंभुने कहा है । फिर नारायणबलि आदि करै ॥

अथ पालाशप्रतिकृतिदाहादिविधिः ।

तत्र देशांतरमरणे पराकद्वयमष्टौ कृच्छ्रान्वा कृत्वास्थीनि दहेत्॥ अस्न्थां चांडालश्वादिस्पर्शे पंचगव्योदकादिभिः प्रक्षाल्य दहेत् ॥ यस्यास्थीनि सर्वथा न लभ्यंते तस्य पर्णशरदाहः ॥ "कुर्याद्दर्भमयं प्रेतं कुशैस्त्रिशतषष्टिभिः ॥ पालाशीभिः समिद्भिर्वा संख्या चैवं प्रकीर्तिता ॥" तत्र भूमौ कृष्णाजिनमास्तीर्य तत्र शरं दक्षिणायतं निवेश्य तत्र पलाशवृंतानि न्यसेत् ॥ शिरसि चत्वारिंशत् ४० ग्रीवायां दश १० बाह्वोः प्रत्येकं पंचाशदेवं शतं १०० करांगुलीषु दश १० उरसि विंशतिः २० जठरे त्रिंशत् ३० शिश्ने चत्वारि ४ अंडयोस्त्रयं त्रयं ६ ऊर्वोः प्रत्येकं पंचाशदेवं शतं १०० जंघातः पादतलांतं प्रत्येकं पंचदशैव ३० पादांगुलीषु दश १० एवं षष्ट्यधिकशतत्रयमितैर्दर्भैः पालाशसमिद्भिर्वा शरीरं कृत्वा ऊर्णासूत्रेण बद्धा जलमिश्रपिष्टेन लिंपेत् ॥ शक्तौ सत्यां नारिकेरादीन्यपि ॥ तथाहि ॥ शिरसि नारीकेरफलं वर्तुलालाबु वा ललाटे कदलीपत्रम् ॥ दंते दाडिमबीजानि ॥ कर्णयोः कंकणं ब्रह्मपत्रं वा ॥ चक्षुषोः कपर्दौ २ ॥ नासिकायां तिलपुष्पम् ॥ नाभावब्जम् ॥ स्तनयोर्जंबीरफलद्वयम् ॥ वाते मनःशिलाम् ॥ पित्ते हरितालम् ॥ कफे समुद्रफेनम् ॥ रुधिरे मधु ॥ पुरीषे गोमयम् ॥ मूत्रे गोमूत्रम् ॥ रेतसि पारदम् ॥ वृषणयोर्वृंताकद्वयम् ॥ शिश्ने गृंजनम् ॥ केशेषु वनसूकरसटा वटप्ररोहा वा ॥ लोमसूर्णाम् ॥ मांसे माषपिष्टलेपः ॥ पंचगव्यैः पंचामृतैश्च सर्वतः सिंचनम् ॥ पुनर्नोऽअसुं पृथिवी ददातु० ॥ असुनीते इत्यृग्भ्यां प्राणप्रवेशं भावयेत् ॥ यद्वा ॥ यत्तेयममिति सूक्तेन शुक्रमसीति पारदं क्षिप्त्वा ॥ अक्षिभ्यामिति शरीरं स्पृशेत् ॥ शरीरं स्नापयित्वा चंदनमनुलिप्य ॥ वस्त्रोपवीते परिधाप्य ॥ अयं स देवदत्त इत्यभिमृश्य इदं चास्योपासनमिति ध्यात्वा विधिवद्दाहादि कार्यम् ॥ अत्राहिताग्नेरस्थिदाहे पर्णशरदाहे वा दशाहमाशौचमनाहिताग्नेस्त्र्यहमित्यादि प्रागुक्तमनुसंधेयम् ॥ द्वादशाब्दादिप्रतीक्षोत्तरं पर्णशरदाहादि क्रियते चेत्तदा त्रिंशत्कृच्छ्राणि चांद्रायणत्रयं वा कृत्वा कार्यम् ॥"

अब पलाशकी प्रतिकृति (पुत्तला) के दाहकी विधिको कहते हैं । उसमें देशांतरके मरनेमें दोपराक वा आठ कृच्छ्रोंको करके अस्थियोंका दाहकरै । अस्थियोंको चांडाल कुत्ता आदिका स्पर्श होनेपर पंचगव्य जल आदिसे प्रक्षालन करके दाहकरै जिसके सर्वथा अस्थि न मिलैं तो उसका पर्णशरदाह करै । तीनसौ साठ (३६०) कुशाओंसे प्रेतका शरीर बनावे और पलाश समिधोंकी भी यही संख्या कहीहै । तिसमें भूमिपर काली मृगछालाको बिछाकर उसमें दक्षिणको लंबे शरको रखकर उसमें पलाशके वृंतों (डांठलों) को लगावै कि, शिरपर चालीस (४०), ग्रीवामें दश (१०), प्रत्येक (दोनों) भुजाओंमें पंचाशत् (५०), अर्थात् सौ (१००), हाथकी अंगुलियोंमें दश (१०), छातीमें बीस (२०), उदरमें तीस(३०), लिंगमें चार (४), अंडकोशोंमें तीन २ अर्थात् (६), जंघाओंमें प्रत्येक पंचाशत (५०) अर्थात् सौ (१००) जंघासे पादके तलतक प्रत्येक पंद्रह (१५) एवं तीस (३०), पादकी अंगुलियोंमें दश (१०) इसप्रकार तीनसौसाठ (३६०) कुशाओंसे, वा पलाशकी समिधोंसे शरीरको बनाकर ऊनके वस्त्रसे बांधकर जलमिली पीठीसे लीपै शक्ति होयतो नारियल आदि भी लगावै । सोई दिखातेहैं कि, शिरपर नारियलका फल वा गोलतूंबा लगावै, मस्तकपर केलाका फल, दांतोंपर अनारके बीज, कानोंमें कंकण वा ब्रह्मपत्र, नेत्रोंमें दो कपर्दिका, नासिकामें तिलपुष्प, नाभिमें कमल, स्तनोंमें जंभीरीके दोफल; वातमें मनसिल, पित्तमें हरिताल, कफमें समुद्रका झाग, रुधिरमें मधु, पुरीषमें गोमय, मूत्रमें गोमूत्र, रेत (वीर्य) में पारा, वृषणोंमें दो वैंगन, लिंगमें गाजर, केशोंमें बनके सूकरकी सटा वा वडकी जटा, लोमोंमें ऊर्णामासमें उडदकी पीठीका लेप, पंचगव्य और पंचामृतसे सर्वत्र सींचना, "पुनर्नोअसुं पृथिवी ददातु० ।। असुनीते" इन दो ऋचाओंसे प्राणके प्रवेशकी भावना करै । अथवा "यत्ते यमं०" इस सूक्तसे और "शुक्रमसि०" इस मन्त्रसे पारेको फेंककर "अक्षीभ्याम्०" इस मंत्रसे शरीरका स्पर्श करै । शरीरको स्नानकराकर; चंदनको लीपकर, वस्त्र और जनेऊ पहनायकर, यह वही देवदत्तहै यह कहकर स्पर्श करके और यह इसकी उपासना है यह ध्यान करके विधिसे दाह आदिको करै । इसमें अग्निहोत्रिके अस्थियोंके दाहमें वा पर्णशरके दाहमें दशदिनका आशौचहै । और जो अनाहिताग्नि है उसका तीनदिनका आशौच है इत्यादि पूर्वोक्त समझना । बारहवर्षकी प्रतीक्षाके अनंतर पर्णशरका दाह आदि कियाजाय तो तीस कृच्छ्र, वा तीनचांद्रायण करके करै ॥

अथातीतप्रेतसंस्कारकालः ।

"प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत् ॥ आशौचमध्ये संस्कारे दिनं शोध्यं तु संभव ॥" दशाहोत्तरं तु दिनं संशोध्यैव ग्राह्यम् ॥ तत्र वत्सरादूर्ध्वं क्रियमाणप्रेतकर्मण्युत्तरायणमेव श्रेष्ठम्॥तत्रापि कृष्णपक्ष एव तत्र नंदात्रयोदशीचतुर्दशीक्षयदिनान्वर्जयेत् ॥ शुक्रशनिवारौ वर्ज्यौ ॥ भौमवारापि वर्ज्य इत्येके॥ नक्षत्रेषु भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषामघाज्येष्ठामूलं धनिष्ठोत्तरार्धं शततारकादिचतुष्टयं चेति नक्षत्राणि त्रिपुष्करयोगश्चेत्यतिदुष्टानि सर्वथा त्यजेत् ॥ कृत्तिका पुनर्वसूत्तराफाल्गुनी विशाखोत्तराषाढा पूर्वाभाद्रपदा चेति त्रिपादनक्षत्राणि ॥ द्वितीया सप्तमी

द्वादशी च तिथिः ॥ कुजशनिरविवाराश्चेति त्रयाणां योगे त्रिपुष्करः ॥ केश्चिद्रवि-स्थाने गुरुवार उक्तः ॥ एतेष्वेव तिथिवारेषु मृगचित्राधनिष्ठायोगे द्विपुष्करः ॥ त्रिपुष्करयोगो वृद्धौ लाभे नष्टे हृते मृतौ च त्रिगुणफलदः द्विपुष्करो द्विगुणफलदः ॥ तेन प्रेतकार्ये द्वावपि त्याज्यौ ॥ द्वयोर्योगे द्विपुष्कर इति केचित् ॥ गुरु-शुक्रास्तपौषमासमलमासवैधृतिव्यतीपातपरिघयोगा विष्टिः करणं चतुर्थाष्टमद्वाद-शचंद्रश्चेत्यपि सर्वथा त्यजेत् ॥ रोहिणी मृगपुनर्वसू पूर्वोत्तराफाल्गुनी चित्रा वि-शाखाऽनुराधा पूर्वोत्तराषाढा धनिष्ठेति किंचिद्दुष्टानि संभवे त्यजेत् ॥ भौमवारो-पि त्याज्य इत्येके कर्तुस्तिसृषु जन्मतारासु प्रत्यरितारायां च पर्णशरादिदाहो ने-ष्टः ॥ तथा चार्कचंद्रगुरुवारा अश्विनीपुष्यहस्तस्वातीश्रवणभानि च प्रशस्तानि ॥ मध्यमानि सर्वथा त्याज्यानि चोक्तानि ॥ नंदायां शुक्रवारे चतुर्दश्यां त्रिजन्मता-राप्रत्यरितारासु चैकोद्दिष्टश्राद्धमतिनिंद्यम् ॥ साक्षादेकादशाहे न कोपि निषेधः ॥ अस्य निषिद्धनक्षत्रादेरपवादः ॥ "युगमन्वादिसंक्रांतिदर्शे च प्रेतकर्मणि ॥ पुनः संस्कारादिकेपि नक्षत्रादि न शोधयेत् ॥ गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये पौषमासे मलिम्लुचे ॥ नातीतः पितृमेधः स्याद्गयां गोदावरीं विना ॥" इति पुनः संस्कार-कालः ॥ साग्निकस्य पर्णशरदाहे कृते पश्चाद्देहलाभे पर्णशरदाहीयार्धदग्धकाष्ठैस्तं दहेत् ॥ तादृशकाष्ठालाभे लौकिकाग्निना दग्ध्वा तदस्थीनि महाजले क्षिपेत् ॥ एवमन्येषां निरग्नीनामपि पर्णशरदाहोत्तरं शरीरलाभेस्थिलाभे वा योज्यम् ॥ "अ-मृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदेहिकम् ॥ प्रायश्चित्तमसौ स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च ॥" अथ पुनः संस्कारादिप्रकारः पूर्वार्धे उक्तः ॥ आधानांते आयुष्मतीष्टिः ॥ अनाहिताग्नेस्तु चरुः भर्तरि जीवत्येव मरणवार्तां श्रुत्वा यदि स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तत्स्त्रीमरणमवैधव्यमेव ॥ ज्ञातमरणमेव हि सहगमने निमित्तम् ॥ न तु मरणज्ञानमात्रम् ॥ अतस्तस्या भार्याया आत्मघातादिदोषप्रायश्चित्तं तत्पुत्रादिभिः कृत्वा नारायणबलिपूर्वकमौर्ध्वदेहिकं कार्यम् ॥ भर्तुस्तु दाहाद्यौर्ध्वदेहिककरणनि-मित्तमुक्तपुनःसंस्कारादि कार्यम् ॥ क्वचित्तु जीवतोप्यंत्यकर्म विहितम् ॥ यथा प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य घटस्फोटे ॥

अब अतीतप्रेतके संस्कारकालको कहतेहैं । प्रत्यक्षशवके संस्कारमें मुहूर्तकी शुद्धिको न देखै और आशौचके मध्यमें संस्कार होय तो मुहूर्तकी शुद्धि संभव होय तो करै । दशदि-नके पीछे तो शुद्धदिनको ही ग्रहण करै । उसमें वर्षदिनके पीछे प्रेतकर्म कियाजाय तो उत्तरा-यण ही श्रेष्ठहै । उसमें भी कृष्णपक्ष उत्तम है । उसमें नंदा, त्रयोदशी, चतुर्दशी, क्षयदिन इनको वर्ज दे । शुक्रवार, शनिवारको वर्जदे । भौमवार भी वर्जितहै, यह कोई कहतेहैं । नक्षत्रोंमें भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठाका उत्तरार्द्ध, शत-भिषा आदि चार; ये नक्षत्र और त्रिपुष्करयोग इन अत्यंत दुष्टोंको सर्वथा त्यागदे । कृत्तिका,

पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ, पूर्वाभाद्रपद, ये त्रिपाद नक्षत्र; द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी ये तीथि; मंगल, शनैश्चर, रविवार ये बार इन तीनोंके योगमें त्रिपुष्कर योग होता है। किसीने रविवारके स्थानमें गुरुवार कहाहै । और इन्ही तिथिवारोंमें; मृगशिर चित्रा, धनिष्ठाका योग होय तो द्विपुष्करयोग होताहै । त्रिपुष्करयोग; वृद्धिमें और लाभ, नष्ट, चोरी, मरण, इनमें; तिगुने फलको देताहै । और द्विपुष्करयोग दूने फलको देताहै। तिससे प्रेतकर्ममें ये दोनों भी त्याज्य हैं । दोके योगमें द्विपुष्कर होताहै । यह कोई कहतेहैं । गुरु शुक्रका अस्त, पौषमास, मलमास, वैधृति, व्यतीपात, परिघ, योग; विष्टिकरण; चतुर्थ, अष्टम, द्वादश, चंद्रमा; इनको सर्वथा त्यागदे । रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, धनिष्ठा; ये नक्षत्र किंचित् दुष्टहैं, संभव होय तो इनको भी त्यागदे । मंगलवार भी त्याज्यहै यह कोई कहतेहैं कर्ताकी तीनों जन्मताराओंमें और प्रत्यरि तारामें पर्णशर आदिका दाह अनिष्टहै । और रवि, चन्द्र, गुरु; ये वार और अश्विनी, पुष्य, हस्त, स्वाति, श्रवण; ये नक्षत्र श्रेष्ठहैं । मध्यम नक्षत्रोंको और सर्वथा त्यागनेयोग्य नक्षत्रोंको कहआये । नंदातिथि, शुक्रवार, चतुर्दशी, तीनों जन्मकी तारा, प्रत्यरितारा; इनमें एकोद्दिष्टश्राद्ध अत्यंत निंदितहै । और साक्षात् (तत्काल) एकादशाहमें कोई भी निषेध इस निषिद्ध नक्षत्र आदिका अपवाद नहीं है । और युगादि, मन्वादि, संक्रांति; दर्शमें प्रेतकर्मके विषै पुनः संस्कारआदिमें भी नक्षत्रआदिको न शोधै। गुरु और शुक्रकी मूढतामें और पौषमास, मलमासमें, गया, गोदावरीको छोडकर अतीतप्रेतकी क्रिय नहीं होती । यह नः संस्कारका समय समाप्त हुआ । अग्निहोत्रीका पर्णशरदाह किये पीछे उसका देह मिल जायतो पर्णशरदाहके अर्धदग्धकाष्ठोंसे उसका भी दाह करै। वैसा काष्ठ न मिलै तो लौकिक अग्निसे दाह करके अस्थियोंको महान् (गहरे) जलमें फेंकदे इसीप्रकार अन्य निरग्नियोंके भी पर्णशरदाहके पीछे शरीरके लाभमें वा अस्थियोंके लाभमें समझना । जीवतेको, मृत, सुनकर जिसका और्द्ध्वदैहिक करदिया हो वह धर्मशास्त्रमें कहे प्रायश्चित्तको करके अग्निका आधान करै । अब पुनः संस्कार जो पूर्वार्द्धमें कहाहै उसको कहतेहैं । वह अग्निहोत्री आधानके अन्तमें आयुष्मती इष्टि करै । और अनाहिताग्निका तो चरु होताहै । भर्ताके जीवते ही मरनेकी वार्ताको सुनकर यदि स्त्रीने सहगमन करलिया होय तो तब वह, स्त्रीका मरण, अविधवाका ही है, क्योंकि जानाहुआ मरण ही सहगमनमें निमित्त है मरणका ज्ञानमात्र नहीं । इससे उसभार्याका आत्मघातआदि जो दोष उसके प्रायश्चित्तको उसके पुत्र आदि करके नारायणबलिपूर्वक और्ध्वदैहिक कर्मको करैं भर्ताके तो दाहआदि और्ध्वदेहिक करनेके निमित्तको छोडकर पुनः संस्कार आदि करने । कहीं तो जीवतेका भी अंत्यकर्म कहा है ॥

अथ घटस्फोटविधिः ।

तथाहि महापातकेनोपपातकेन वा पतितो यदि प्रायश्चित्तं न करोति तदा तं गुरुबांधवानां राज्ञश्च समक्षमाहूय तत्पापं प्रकटीकृत्य तं पुनःपुनरुपदिशेत्॥ प्रायश्चित्तं कुरु स्वाचारं लभस्वेति स यद्येवमपि नांगीकरोति तदा रिक्तादिनिंद्यतिथौ सायाह्ने सपिंडा बांधवाश्च संभूय दासीहस्तेनानीतममेध्यकुत्सितजलादिपूर्णं घटं

सर्वतो दास्याद्यन्वारंभं कुर्वतो दास्या दासस्य वा वामपादेन न्युब्जं छिन्नाग्रदर्भेषु कारयित्वा दासीसहिता वदेयुरमुमनुदकं करोमीति नामग्रहणपूर्वकं प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखाश्च संतः ॥ ततोधिकारी कर्ता दाहवर्ज्यं जीवंतमेवोद्दिश्य पिंडोदकदानादिप्रेतकार्याण्येकादशाहांतानि नाम्नैव कुर्यात् ॥ मिताक्षरायां प्रेतकार्योत्तरं घटनिनयनमुक्तम् ॥ एकाहमाशौचं सर्वेषाम् ॥ यस्य घटस्फोटः कृतस्तेन सह संभाषणस्पर्शादिसंसर्गो न केनापि कार्यः ॥ करणे पतिततुल्यता ॥ घटस्फोटप्रयोजनं तु पूर्वार्धान्ते उक्तम् ॥ घटस्फोटनिश्चयोत्तरं घटस्फोटदिनात्प्राक्पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वनधिकार इति कश्चित् ॥ कृतघटस्फोटस्य पुंसोनुतापे तत्पापप्रायश्चित्तांते संग्रहविधिरुच्यते ॥ तत्रादौ शुद्धिपरीक्षा ॥ कृतप्रायश्चित्तो ज्ञातिसमक्षं गोभ्यस्तृणभारं दद्यात् ॥ गोभिस्तृणे भक्षिते शुद्धिः ॥ भक्षणाभावे पुनः प्रायश्चित्तं चरेत् ॥ "एवं निश्चितसंशुद्धौ समानीय नवं घटम् ॥ हैमं वा मृन्मयं वापि पवित्रजलपूरितम् ॥" ततः सपिंडास्तं घटं संस्पृश्याभिमंत्र्य तज्जलैः पावमानीभिरापोहिष्ठेत्यादिभिस्तरत्समंदीभिश्च पापिनमभिषिच्य तेन सह सर्वे स्नात्वा तं जलघटमस्मै दद्युः ॥ स च शांता द्यौः शांता पृथिवी शांतं विश्वमंतरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृभ्णामीति यजुर्भिस्तं घटं गृह्णीयात् ॥ ततस्तदुदकं तेनैव साकं सर्वे पिबेयुः ॥ ततः सकूष्मांडमंत्रैराज्यहोमं कृत्वा सुवर्णं गां च दद्यात् ॥ ततस्तस्य जातकर्मादिव्रतबंधांता विवाहांता वा संस्काराः कार्याः ॥ एवं कृते शुद्धेन तेन संस्पर्शसंभोजनादिव्यवहारं कुर्यात् ॥ एवमुपपातके महापातके च कृतघटस्फोटस्य शुद्धिर्ज्ञेया ॥ इति संक्षेपतः कृतघटस्फोटशुद्धिः ॥

जैसे प्रायश्चित्तको न चाहते हुयेके घटस्फोटमें सोई दिखातेहैं। कि महापातकसे वा उपपातकसे युक्त जो मनुष्य प्रायश्चित्तको यदि न करै तब उसको गुरु (बडे) बांधव और राजाके समीप बुलाकर और उसके पापको प्रकट करके उसको वारंवार उपदेश करै कि प्रायश्चित्त कर और आचारको प्राप्त हो । वह यदि ऐसे कहनेपर भी अंगीकार न करै तो उसको रिक्ताआदि निंदिततिथिमें सायाह्नके समय सपिंड और बांधव इकट्ठे होकर दासीके हाथसे मँगवाये शुद्धजलसे पूर्णघटको चारोंतरफसे दासीआदिके स्पर्शको करतेहुये दासी, वा दासके वामपदसे छिन्नहै अग्रभाग जिनका ऐसी कुशाओंपर औंधाकरवायके दासीसहित ऐसे कहै कि, इसको अनुदक (जलसंबंधहीन) करताहूं। यह कहकर नाम ले २ कर अपसव्य और मुक्तशिख होकर पूर्वोक्तको कहै। फिर अधिकारी कर्ता दाहको छोडकर जीवते हुयेके उद्देश (नाम) से पिंड उदकदान आदि एकादशाह पर्यंत प्रेतकर्मोंको नामसे ही करै । मिताक्षरामें तो प्रेतकर्मके अनन्तर घटका निनयन कहाहै। और सबको एकदिनका आशौच होताहै। जिसका घटस्फोट करदियाहो उसके संग, संभाषण, स्पर्शआदि संसर्गको कोई भी न करै। करैं तो पतितके तुल्य होतेहैं। घटस्फोटके निश्चयके अनन्तर घटस्फोटके दिनसे पहिले पतितकी ज्ञातिके मनुष्योंको धर्मके कार्य्योंमें अधिकार नहीं यह कोई कहताहै।

किया है घटस्फोट जिसका ऐसे पुरुषका पश्चात्ताप करनेपर उसके प्रायश्चित्तके पीछे संग्रहविधिको कहते हैं। उसमें; आदिमें शुद्धिकी परीक्षा यह है कि, प्रायश्चित्तका कर्ता ज्ञातिके समक्ष, गौओंको तृणका भार दे, गौ तृणका भक्षणकरलें तो शुद्धि जानना। भक्षण न करें तो पुनः प्रायश्चित्त करै। याप्रकार निश्चयकी सिद्धि होनेपर; सुवर्णके वा मिट्टीके पवित्र जलसे पूर्ण नवीन घटको लाकर; फिर सम्पूर्ण सपिण्ड उस घटका स्पर्श करके और अभिमन्त्रण करके उसके जलोंसे "पावमानी० ॥ आपोहिष्ठेत्यादि० ॥ और तरत्समन्दी० ॥" ऋचाओंसे पापीको सींचकर और, उसके संग, सम्पूर्ण स्नान करके उस घटके जलको पापीको देदें। और वह "शान्ताद्यौः शान्तापृथ्वी शान्तं विश्वम् अन्तरिक्षम् यो रोचनस्तमिह गृह्णामि" इन यजुर्वेदके मन्त्रोंसे उस घटको ग्रहण करै। फिर उस घटके जलको उसके संग सम्पूर्ण ज्ञातिके मनुष्य पीवैं। फिर कूष्माण्डसहित मैत्री ऋचाओंसे घीका होम करके सुवर्ण और घीका दान करै। फिर उसके जातकर्मसे; यज्ञोपवीत वा विवाहपर्य्यन्त सम्पूर्ण संस्कार करने। ऐसे करनेपर शुद्धहुए उसके संग स्पर्श और भोजन आदि व्यवहारको करै। इसीप्रकार उपपातकमें कृतघटस्फोटकी शुद्धि जाननी। यह संक्षेपसे कृतघटस्फोटकी शुद्धि समाप्त हुई ॥

अथांत्यक्रियारंभः।

"वंदे श्रीमदनंताभिधगुरुचरणौ सतां मताचरणौ ॥ जननीमथान्नपूर्णां संपूर्णां सद्गुणैर्वंद्याम् ॥ १ ॥ श्रीविट्ठलं नमस्कृत्य विघ्नकक्षहुताशनम् ॥ अंत्येष्टिनिर्णयं वक्ष्ये सर्वशाखोपयोगिनम् ॥ २ ॥" तत्रांत्यक्रियाधिकारिणः श्राद्धारंभ एवोक्ताः ॥ सर्वाभावे धर्मपुत्रः कार्यः ॥ तत्र पुत्राद्यधिकारिणा पित्रादिकमासन्नमरणं दृष्ट्वा सार्धाब्दादिप्रायश्चित्तं मोक्षधेन्वादिदानानि च तेन कारणीयानि ॥ स्वयं वा तमुद्दिश्य कर्तव्यानि ॥ तत्र प्रायश्चित्तप्रयोगः प्रायश्चित्तप्रकरणे द्रष्टव्यः ॥ शक्तौ सत्यां प्रायश्चित्तांते दशदानानि कार्याणि ॥

श्रीमान् अनन्तपिताके सत्पुरुषोंके मतका आचरणकरनेवाले जो चरणहैं उनको और जननी उस अन्नपूर्णाको जो श्रेष्ठगुणोंसे पूर्ण और नमस्कार करनेयोग्यहै, इन सबको नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥ और विघ्नरूपी तृणके अग्निरूप जो श्रीविट्ठल उनको नमस्कार करके सब शाखाके उपयोगी अन्तेष्टिनिर्णयको कहताहूं ॥ २ ॥ उसमें अन्तक्रियाके अधिकारी श्राद्धक्रियाके प्रारंभमेंही कहेहैं उन सबके अभावमें धर्मपुत्र करना। उसमें पुत्र आदि अधिकारी, आसन्नमरण, पिता आदिको देखकर उससे चांद्रायण आदिप्रायश्चित्त, और मोक्षधेनु आदि दानोंको करवाकर वा उसके नामसे आप ही करै। उसमें प्रायश्चित्तका प्रयोग, प्रायश्चित्त प्रकरणमें देखना, शक्ति होय तो प्रायश्चित्तके अन्तमें दशदान आदिकरै ॥

अथ दशदानमंत्राः।

तत्र गवामंगेषु तिष्ठंतीति गोदानमंत्राः ॥ "सर्वभूताश्रया भूमिर्वराहेण समुद्धृता ॥ अनंतसस्यफलदा अतः शांतिं प्रयच्छ मे" इति भूमेः ॥ "महर्षेर्गोत्रसंभूताः

काश्यपस्य तिलाः स्मृताः ॥ तस्मादेषां प्रदानेन मम पापं व्यपोहतु ॥'' इति तिलानाम् ॥ हिरण्यगर्भगर्भस्थमिति हिरण्यस्य ॥ ''कामधेनुषु संभूतं सर्वक्रतुषु संस्थितम् ॥ देवानामाज्यमाहारमतः शांतिं प्रयच्छ मे'' इत्याज्यस्य ॥ ''शरणं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम् ॥ सुवेषधारिवस्त्रत्वमतः०'' इति वस्त्रस्य ॥ ''सर्वदेवमयं धान्यं सर्वोत्पत्तिकरं महत् ॥ प्राणिनां जीवनोपायमतः० ॥'' इति धान्यस्य ॥ ''तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः ॥ मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददस्व गुड सर्वदा ॥'' इति गुडस्य ॥ ''प्रीतिर्यतः पितॄणां च विष्णुशंकरयोः सदा ॥ शिवनेत्रोद्भवं रौप्यमतः०'' इति रजतस्य ॥ ''यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना ॥ शंभोः प्रीतिकरं नित्यमतः '' इति लवणस्य ॥ भूम्यादिप्रमाणानि तु जननशांतिप्रकरणे उक्तानि ॥

उसमें गौओंके अंगोंमें देवता टिकते हैं; यह गोदानका मंत्र है । सब भूतोंकी आश्रय भूमिका बराहने उद्धार किया है । वह अनन्त फलको देती है इससे मुझेभी शान्तिको दे । यह भूमिके दानका मंत्र है । महर्षि काश्यपके गोत्रसे तिल पैदा हुए हैं तिससे इनके दानोंसे मेरे पापोंको नष्ट करो यह तिलोंका मंत्र है । ''हिरण्यगर्भगर्भस्थं०'' यह सुवर्णका मन्त्र है । कामधेनुसे उत्पन्न सब यज्ञोंमें स्थित देवताओंका भोजन घृत है इससे मुझे शान्तिको दे । यह घीका मंत्र है । सब लोकोंका शरण, और लज्जाका रक्षक, सुवेशधारी वस्त्र है इससे मुझे वस्त्रदो; इसमंत्रसे वस्त्रदे । अन्य सब देवरूप है; सबकी उत्पत्तिका कर्ता है; और सब प्राणियोंके जीनेका उपाय है; इससे मुझे शांति दो । यह अन्नका मंत्र है । सब रसोंमें श्रेष्ठ इक्षुरस कहा है । इससे हे गुण तू मुझे सदैव परमलक्ष्मीको दे । इस मंत्रसे गुडदे । जिससे पितरोंकी प्रीति और विष्णु शंकरकी सदैव प्रसन्नता होती है शिवजीके नेत्रसे उत्पन्न वह रूप्य (चांदी) मुझे शांति दो । इससे रजतदे । जिससे संपूर्ण अन्नोंके रस लवणके विना उत्कृष्ट नहीं होते और जो सदैव शम्भुकी प्रीतिको करता है, वह लवण मुझे शान्ति दो । इस मन्त्रसे लवणदे । भूमिआदिके प्रमाण तो जननशांतिप्रकरणमें कहेहैं ॥

अथांतकाले नामोच्चारमहिमा ।

प्रायश्चित्तादिकर्मसु विष्ण्वादिनामकीर्तनात्सांगता ॥ प्रायश्चित्ताद्यसंभवेपि मरणकाले विष्णुशिवनामकीर्तनमात्रात्सर्वपापक्षयो मुक्तिश्चेति सर्वपुराणादिसिद्धांतः ॥ तथा च श्रीभागवते ॥ ''यस्यावतारगुणकर्मविडंबनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणंति ॥ ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयांत्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥'' इत्यादि ॥ ''मुमूर्षुं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत् ॥ तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि ॥'' तानि च तिलपात्रदानऋणधेनुमोक्षधेनुपापधेनुवैतरणीधेनूत्क्रांतिधेनुदानादीनि ॥ ''व्यतीपातोथ संक्रांतिस्तथैव ग्रहणं रवेः ॥ पुण्यकालास्तदा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ॥ आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु

पूर्ववत् ॥ तदभावे तु गौरेव नरकोत्तारणाय वै ॥ शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गंगायां चोत्तरायणे ॥ धन्यास्तात मरिष्यंति हृदयस्थे जनार्दने ॥" इत्यादिवचनात् ॥ मुमूर्षोर्दानादौ शक्त्यभावे पुत्रादिर्दद्यात् ॥ तत्र तिलपात्रदानविधिः ॥ यथाशक्ति कांस्यपात्रे ताम्रपात्रे वा तिलान्क्षिप्त्वा सुवर्णं च प्रक्षिप्य मम जन्मप्रभृतिमरणांतं कृतनानाविधपापप्रणाशार्थं तिलपात्रदानं करिष्ये ॥ विप्रं संपूज्य मम जन्मप्रभृति मरणांतं कृतनानाविधपापनाशार्थमिदं तिलपात्रं ससुवर्णं सदक्षिणममुकशर्मणे तुभ्यं संप्रददे ॥ "तिलाः पुण्याः पवित्राश्च तिलाः सर्वकराः स्मृताः॥शुक्ला वा यदि वा कृष्णा ऋषिगोत्रसमुद्भवाः ॥ यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ तिलपात्रप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥" न ममेति विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् ॥ पुत्रादिस्त्वस्य जन्मप्रभृतीत्यादिसंकल्प्य अस्य पापं व्यपोहत्विति मन्त्रं च वदेत् ॥ "ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं ऋणम् ॥ तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेकां ददतो मम ॥" इति ऋणधेनुदानमंत्रः ॥ अन्यत्सर्वं सामान्यगोदानवत् ॥ तद्विधिस्तु द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः ॥ "मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन ॥ मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुंदः प्रीयतां मम ॥" इति मोक्षधेनुमंत्रः ॥ "आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव ॥" इति पापधेनुदानमंत्रः ॥

प्रायश्चित्त आदि कर्मोंमें विष्णुआदिका नाम कीर्तन करनेसे संगति होती है। प्रायश्चित्त होनेपर भी मरण समयमें विष्णु शिवके नामकीर्तन मात्रसे सब पापोंका नाश और मुक्ति होती है। यह सब पुराणोंका सिद्धान्त है। सोई श्रीभागवतमें लिखा है कि, जिसके अवतार, गुण, कर्मके कर्तव्योंको और नामोंको प्राणोंके निकसनेके समय विवश होकर जो लेते हैं वे अनेक जन्मोंके पापोंको शीघ्र ही नाशकरके खुलेहुए वैकुण्ठ लोकको जाते हैं उस सत्य, अजन्मा, भगवान्की मैं शरणहूं। इत्यादि मरते हुए पिताको देखकर यदि पुत्र दानदे तो, वह गयाश्राद्ध और सौ अश्वमेधोंसे भी अधिक है। और अन्य भी तिलपात्रका दान,ऋणधेनु, मोक्षधेनु, पापधेनु, वैतरणीधेनु, उत्क्रांतिधेनु, दान आदि हैं। और व्यतीपात, संक्रांति, और सूर्यग्रहण और उस समय सब पुण्यके काल हैं कि, जब मृत्यु समीप आजाय। जिस मनुष्यका समीप मरण हो वह वत्ससहित गौका पूर्वके समान दान करै। वह न मिलै तो केवल गौ ही नरकके पार होनेके लिये है। शुक्लपक्षमें, दिनमें, भूमि, गया, और उत्तरायण और हृदयमें स्थित जनार्दनके समयमें; जो मरते हैं उनको धन्य है इत्यादि वचन हैं। यदि मरनेवालेकी दानआदिमें शक्ति न होय तो पुत्रआदि दें। उन दानोंमें तिलपात्रके दानकी विधिको कहते हैं कि, कांसीके वा तांबेके पात्रमें यथाशक्ति तिलोंको डारकर और सुवर्णको डारकर मेरे जन्मसे लेकर मरणपर्यंत कियेहुये अनेक प्रकारके पापके नाशार्थ तिलपात्रका दान करताहूं। फिर ब्राह्मणको पूजकर मेरे जन्मसे मरणपर्यंत अनेक प्रकारके पापनाशार्थ सुवर्ण और दक्षिणासहित यह तिलपात्र, अमुकशर्मा आपको देताहूं। तिल पुण्य, और पवित्र ह

तिल सबकार्यकर्ता कहे है । सफेद हों वा कृष्णहों ऋषिकाश्यपके गोत्रसे पैदा हुये तिल पवित्र हैं । 'जो कोई पाप ब्रह्महत्याके समान है वह पाप तिलपात्रके दानसे मेरा नष्टहो यह मेरा पात्र नहीं' यह कहकर ब्राह्मणके हाथमें जल डारदे । पुत्र आदि तो इस मेरे पिताके जन्मसे लेकर इत्यादि संकल्प करके इसके पापको नष्ट करो इस मंत्रको कहे । इस जन्मका और अन्यजन्मका जो सात जन्मोंका संचित ऋण है वह सब इस एक गौके दानसे मेरी ऋणशुद्धिको प्राप्तहो अर्थात् दूरहो । यह ऋण धेनुके दानका मंत्र है । अन्य सब कर्म सामान्य गौके दानके समान हैं उसकी विधितो दूसरे परिच्छेदमें कहआये । हे ऋषीकेश ! (ईश्वर) मुझे मोक्ष दो, हे जनार्दन ! मुझे मोक्ष दो, और मोक्षधेनुके दानसे मुकुंद भगवान् मेरेपर प्रसन्नहो यह मोक्षधेनुका मंत्रहै । 'जन्मसे लेकर मन, वाणी, कायासे जो पाप संचित किये हैं वह सब हे केशव गौके दानसे नाशको प्राप्त हों' यह पापधेनुका मंत्र है ॥

अथ वैतरणीविधिः ।

अद्येत्याद्यमुकस्य मम यमद्वारस्थितवैतरण्याख्यनद्युत्तारणार्थं गोदानं करिष्ये ॥ विप्रं पादप्रक्षालनवस्त्रगंधमाल्यादिभिरभ्यर्च्य तद्धस्ते शिवा आपः संतु ॥ सौमनस्यमस्तु ॥ अक्षतं चारिष्टं चास्तु ॥ यच्छ्रेयस्तदस्तु ॥ यत्पापं तत्प्रतिहतमस्त्विति कृत्वा ॥ "धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महापथे ॥ उत्तितीर्षुरहं देवि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते ॥" इति धेनुं प्रार्थ्य "विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव द्विजपावन ॥ तर्तुं वैतरणीमेतां कृष्णां गां प्रददाम्यहम् ॥" इति विप्रं प्रार्थ्य ॥ वैतरणीसंतारणार्थमिमां गां कृष्णवस्त्ररक्तमाल्याद्यलंकृतां यथाशक्ति दक्षिणायुतां तुभ्यमहं संप्रददे ॥ "यमद्वारे पथे घोरे घोरा वैतरणी नदी ॥ तां तर्तुकामो यच्छामि कृष्णां वैतरणी तु गाम्॥" न ममेति विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् कृष्णाया अभावेऽन्यवर्णा देया ॥ गोरभावे द्रव्यं देयम् ॥ पुत्रादिर्दाता चेत्प्रथमे मंत्रे उत्तितीर्षुरयमिति पठेत् ॥ द्वितीये तर्तुं वैतरणीमस्येति ॥ तृतीये तां तर्तुमस्येति ॥

अब वैतरणीकी विधिको कहते हैं । अद्येत्यादि कहकर 'अमुक मेरे यमके द्वारमें स्थित वैतरणीनामकी नदीके उतरनेके लिये गौका दान करताहूं' ब्राह्मणके पादप्रक्षालनके पीछे गंध, माला, आदिसे पूजकर उसके हाथमें "शिवा आपः संतु" इससे जल; सौमनस्य हो, यह कहकर पुष्प; अरिष्ट नष्ट हो यह कहकर अक्षत दे । जो कल्याण है वह हो; जो पाप है उसका नाशहो । यह करके; हे गौ ! तू देखिये यमराजके द्वारके महामार्गमें जो वैतरणी है उसको मैं उतरा चाहताहूं हे वैतरणी आपको नमस्कार है । इस मंत्रसे धेनुकी प्रार्थना करके हे विष्णुरूप, हे द्विजश्रेष्ठ, हे भूदेव, हे द्विजपावन, वैतरणीके तरनेके लिये इस गौको मैं देताहूं इसमंत्रसे ब्राह्मणकी प्रार्थना करके, 'वैतरणीके तरनेके लिये कृष्णवस्त्र, रक्तपुष्प, आदिसे भूषित और यथाशक्ति दक्षिणासेयुक्त इस गौको आपको देताहूं । यमके द्वारके महामार्गमें घोरवैतरणी नदी है उसके तरनेकी कामनासे काली वैतरणी गौको देताहूं "न मम" (मेरी नहीं)' यह कहकर ब्राह्मणके हाथमें जलदे । काली गौके अभावमें अन्यवर्णकी दे; और

गौ न मिलै तो द्रव्य दे । पुत्र आदि दाता होय तो पहिले मंत्रमें यह उतरनेवाला ऐसे पढै । दूसरे मंत्रमें इसकी वैतरणी तरनेके लिये यह पढै । तीसरे मंत्रमें इसको उस नदीके तरनेकेलिये ऐसे कहै ॥

अथोत्क्रांतिधेनुः ।

अद्येत्याद्यमुकस्य सुखेन प्राणोत्क्रमणप्रतिबंधकसकलपापक्षयद्वारा सुखेन प्राणोत्क्रमणार्थं यथाशक्त्यलंकृतामिमामुत्क्रांतिधेनुं रुद्रदैवत्याममुकशर्मणे तुभ्यं संप्रददे ॥ गवामंगेष्विति मंत्रांते न ममेति वदेत् ॥ धेन्वभावे द्रव्यं देयम् ॥ उक्तप्रायश्चित्तादिदानांतविधिमकृत्वा पित्रादिमरणे पुत्रादिना प्रायश्चित्तं कृत्वा दाहादि कर्तव्यम् ॥ दानान्येकादशाहे कार्याणि ॥ पितुः पापाभावनिश्चये प्रायश्चित्तं नावश्यकम् ॥ केचिदुत्क्रांतिवैतरण्यौ दश दानानि चैव हि मृतेपि कृत्वा तं प्रेतं दहेदित्याहुः ॥ "तुलसीसन्निधौ कुर्याच्छालग्रामशिलां तथा ॥" केचित्तिललोहहेमकार्पासलवणभूमिधेनुसप्तधान्येत्यष्टदानान्याहुः ॥ क्वचिन्मुमूर्षोर्मधुपर्कदानमुक्तम् ॥

अब उत्क्रांतिधेनुको कहतेहैं । अद्य इत्यादि कहकर अमुकके सुखसे प्राणोंके निकसनेके विषै जो प्रतिबंधक सकल पाप उनके क्षयद्वारा सुखसे प्राण निकसनेके लिये यथाशक्ति अलंकृत और रुद्रदेवता जिसका ऐसी उत्क्रांति धेनुको अमुकशर्मा आपको देताहूं । 'गौओंके अंगमें०' इत्यादि मंत्रोंके अन्तमें; "न मम" यह कहै । धेनुके अभावमें द्रव्य दे । पूर्वोक्त प्रायश्चित्त आदि दानांत विधिको न करके पिता आदि मरजायँ तो पुत्र आदि प्रायश्चित्तको करके दाह आदिको करै । दान तो एकादशाहको करै । पिताके पापका अभावका निश्चय होय तो दानआदि आवश्यक नहीं । कोई तो यह कहतेहैं, कि, उत्क्रांति वैतरणी, दश दान; इनको पिताके मरनेपर भी करके उसका दाह करै । तुलसीके समीपमें वा शालग्रामकी शिलाके समीपमें करै । कोई तो तिल, लोहा, हेम, कपास, लवण, भूमि, धेनु, सप्त धान्य; ये अष्टदान कहते हैं । कहीं तो आसन्न मरणको मधुपर्कका दान कहाहै ॥

अथ क्षौरविचारः ।

पुत्रादिः कर्तांत्यकर्माधिकारार्थं कृच्छ्रत्रयादिकं वपनं च कुर्यात् ॥ तत्र मातापित्रोः सापत्नमातुः पितृव्यस्य ज्येष्ठभ्रात्रादेश्चांत्यकर्मकरणे क्षौरमावश्यकम् ॥ पुत्राणां कर्तृभिन्नानामपि क्षौरं नित्यम् ॥ एवं पत्न्या अपि प्रथमे दशमेह्नि वा क्षौरं नित्यम् ॥ तथा दत्तकस्य पूर्वापरयोर्मात्रोः पित्रोर्मृतौ क्षौरम् ॥ "रात्रौ तु दग्ध्वा पिंडांतं कृत्वा वपनवर्जितम् ॥ वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनी वपनक्रिया ॥" पत्नीपुत्रकनिष्ठभ्रात्रादेरंत्यकर्मणि क्षौरं न कार्यम् ॥ अन्यत्र कृताकृतम् ॥ श्मशाने नीयमानशवस्य शूद्रस्पर्शे शूद्रेण वहने वा ॥ "कुंभे सलिलमादाय पंचगव्यं तथैव च ॥ सुमंत्रैरभिमंत्र्यापस्तेन संस्नाप्य दाहयेत् ॥" कृच्छ्रत्रयं च कुर्यात् ॥

सूतिकारजस्वलयोः स्पर्शेऽप्येवमेव प्रायश्चित्तं तु पंचदश कृच्छ्राः ॥ शूद्रेण द्विजदाहे तु चांद्रायणं पराकप्राजापत्यानि समुच्चयेन पुत्रादिः कृत्वाऽस्थीनि पुनर्दहेत् ॥ अस्थ्यभावे पालाशविधिः ॥ ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टेषु कृच्छ्रत्रयम् ॥ अस्पृश्यस्पर्शने षट् कृच्छ्राः॥अंतरालमृतौ नव ॥ खट्वामरणे द्वादश ॥ निगडमृतौ पंचदश ॥ रजकादिसप्तविधांत्यजादिस्पृष्टमरणे त्वेकत्रिंशत्कृच्छ्राणि ॥ देशांतरमरणे पराकद्वयमष्टौ कृच्छ्रा वा ॥ "कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणेपि च ॥" अर्धदग्धे शवे चितेरस्पृश्यस्पर्शे कृच्छ्रत्रयम्॥एवं पुत्रादयः पित्रादेः पापिन पापानुसारेण प्रायश्चित्तकांडोक्तं प्रायश्चित्तं दुर्मरणात्मघातादिनिमित्ते पूर्वोक्तप्रायश्चित्तं नारायणबल्यादिकं च कृत्वैवांत्यकर्म कुर्युः ॥ एवमुक्तप्रायश्चित्तं विना दाहादि कृतं व्यर्थं भवेत् ॥ उभयोश्च नरकः ॥ पतिपत्न्योरेककाले दहने प्राप्ते भार्यायाः पत्या सह तद्विवचनांतमंत्रोहेन दाहं कृत्वा पिंडादिकं पतिपूर्वकं पृथक्कार्यम् ॥ एवं सपत्नीनामेककाले मृतौ सहैव दाहः पिंडादिकं तु ज्येष्ठक्रमेण पृथगेव ॥ एवं पितापुत्रयोर्भ्रात्रोश्च लौकिकाग्निदाह्ययोर्दाहः सहैव पिंडादि पितृपूर्वं ज्येष्ठपूर्वं च पृथक् ॥ पुंबालानां स्त्रीबालानां च दहने खनने चैवमेवेति नागोजीभट्टीये ॥ रजस्वलागर्भिण्यादिमरणे सहगमने च वक्ष्यते ॥

पुत्र आदि कर्ता अंत्य कर्मके अधिकारार्थ तीन कृच्छ्र आदि और वपनको करै । उसमें माता पिताके, सपत्नी माताके, पितृव्यके, ज्येष्ठ भ्राता आदिके, अंत्य कर्म करनेमें क्षौर कहाहै । कर्तासे भिन्न जो पुत्र हैं उनका क्षौर भी नित्य है । इसीप्रकार पत्नीका भी पहिले वा दशमें दिन क्षौर नित्य है । तैसे ही दत्तकका पहिले पिछले माता पिताओंके मरनेमें क्षौर नित्य है । रात्रिमें तो दाह करके पिंडपर्यंत कर्म करके मुंडन वर्जित है । क्योंकि वपन- (मुंडन) रात्रिमें इष्ट नहीं अगले दिन वपन क्रिया होतीहै । पत्नी पुत्र छोटाभ्राता आदि-इनके अंत्य कर्ममें क्षौर न करै । अन्योंके मरनेमें करो चाहै न करो । श्मशानमें शवके ले जानेके समय शूद्रका स्पर्श हो जाय वा शूद्र ले जाय तो वटमें जल और पंचगव्यको लाकर सुन्दर मंत्रोंसे जलका अभिमंत्रण करके उस जलसे स्नान कराकर दाह करै और तीन कृच्छ्र करै । सूतिका, रजस्वलाका स्पर्श होय तो इसी प्रकार करै प्रायश्चित्त करै तो दश कृच्छ्र करै । शूद्र द्विजका दाह करै तो चाद्रायण, पराक, प्राजापत्य इन सबको समुच्चयसे पुत्र आदि करके अस्थियोंका पुनः दाह करै । अस्थि न होंयँ तो पालाश विधि करै । कटिसे ऊपर उच्छिष्ट, अधउच्छिष्ट, उभयोच्छिष्ट मरै तो तीन कृच्छ्र करै । स्पर्शके अयोग्यका स्पर्श हो जाय तो छः कृच्छ्र करै । अन्तराल (छतपर) मरै तो नौ कृच्छ्र करै । खटापर मरै तो बारह कृच्छ्र करै । निगड (बेडी) में मरै तो पंद्रह कृच्छ्र करै । रजक आदि सात प्रकारके अंत्यज आदिकोंका स्पर्श होकर मरै तो इकतीस कृच्छ्र करै । देशांतरमें मरै तो दो पराक वा आठ कृच्छ्र करै आशौचके मरनेमें भी तीन कृच्छ्र करै । आधे शवका दाह होनेपर चिताका स्पर्श, स्पर्शके अयोग्य करले तो, तीन कृच्छ्र करै, इसप्रकार पुत्र आदि, पापी

पिताके, पापके अनुसार प्रायश्चित्त कांडमें कहे प्रायश्चित्तको और दुर्मरण, आत्मघात, आदिके निमित्त पूर्वोक्त प्रायश्चित्तको और नारायणबलि आदिको करके ही अपने कर्मको करै। इसप्रकार पूर्वोक्त प्रायश्चित्तके विना किया दाह आदि व्यर्थ होताहै, और दोनोंको नरक होताहै। पति और पत्नीका एककालमें दाह प्राप्त होय तो भार्याका पतिके संग द्विवचनांतमंत्रके ऊहसे दाहको करके पिंड आदिको पतिपूर्वक पृथक् २ करै। इसी प्रकार सपत्नियोंके एक काल मरनेमें भी सह (संगही) दाह होताहै। पिंड आदि तो जेठीके क्रमसे पृथक् २ होतेहैं। इसीप्रकार पिता पुत्रोंका, दो भाइयोंका भी लौकिक अग्निसे दाहके योग्योंका दाह होताहै। और संग ही पिताके क्रमसे पिंड आदि पृथक् २ होतेहैं। बालक और कन्याओंके दाह और खननमें भी इसी प्रकार करै। यह नागोजीभट्टीयमें रजस्वला, गर्भिणी आदिके मरणमें और सहगमनमें कहेंगे॥

अथांतकाले सूक्तश्रवणसंकल्पः।

अथ गोमयोपलिप्तभूमौ कुशेषूपविष्टो दक्षिणशिराः शयितो वा गोपीचंदनादिमृदा कृततिलकः श्रीविष्णुं स्मरन् पुण्यसूक्तं गीतां सहस्रनामादिस्तोत्राणि पठेच्छृणुयाद्वा॥ अमृतत्वप्राप्त्यर्थं पुण्यसूक्तस्तोत्रादीनां पाठं श्रवणं वा करिष्ये इति संकल्पः॥ श्रोतुः संकल्पाशक्तौ श्रावयितास्यामुकशर्मणोमृतत्वप्राप्तयेऽमुकं श्रावयिष्य इति संकल्पयेत्॥ नानानमितिसूक्तं पुरुषसूक्तं विष्णुसूक्तमुपनिषद्भागा इत्यादिपुण्यसूक्तानि॥ रामकृष्णादिनामस्मरणे जातमात्रस्याधिकारः॥

इसके अनन्तर गोमयसे लिपी भूमिमें कुशाओंपर बैठा वा दक्षिणको शिर करके सुलाया, गोपीचन्दन आदि मिट्टीसे कियाहै तिलक जिसके, श्रीविष्णुका स्मरण करता हुआ, पवित्र सूक्तको वा गीता सहस्रनाम आदिस्तोत्रोंको पढै वा स्वयं सुनै। 'मोक्षकी प्राप्तिके लिये पुण्यसूक्त स्तोत्र आदिके पाठको वा श्रवणको करताहूं' यह संकल्प करै। श्रोताका संकल्प करनेका सामर्थ्य न होय तो श्रवण करानेवाला 'अमुकशर्माके मोक्षप्राप्तिके लिये अमुकका श्रवण करवाताहूं' यह संकल्प करै। "नानानम्" यह सूक्त, और पुरुषसूक्त, विष्णुसूक्त, उपनिषद्भाग; ये पुण्य सूक्त हैं। राम, कृष्ण आदिके नाम स्मरणमें तो जातिमात्रका अधिकार है।

अथ साग्नेर्विशेषः।

गृह्याग्निमतो गृह्याग्निना श्रौताग्निमतस्त्रेताग्निभिर्दाहः कार्यः॥ तत्र गृह्याग्निमतः श्रौताग्निमतश्च कृष्णपक्षे मरणे तदैव सायंकालाहुतीर्दर्शसायंकालपर्यंताः पक्षहोमवत्सकृद्ग्रहणेनैव हुत्वा पुनः संकल्पपूर्वकं प्रातराहुतीश्च प्रतिपत्प्रातर्होमांतास्तद्वदेव हुत्वा दर्शयागं कुर्यात्॥ यागासंभवे आज्यं संस्कृत्य स्रुचि चतुर्वारं गृहीत्वा पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यामेकैकां प्रधानाहुतिं जुहुयात्॥ स्मार्ते तु चतुर्गृहीताज्येनाग्नये स्वाहेंद्राग्निभ्यां स्वाहेति नाम्नैव प्रधानाहुतिद्वयम्॥ शुक्लपक्षे रात्रौ मरणे सायं होमस्य कृतत्वात्प्रातर्होममात्रमाकृष्य तदैव कुर्यात्॥ नात्र पौर्णिमांतानां दर्शांतानां वा होमानामिष्टिप्रधानपूर्णाहुतीनां वा करणम्॥ शुक्ल-

पक्षे दिवामरणे तु न कस्यापि होमस्याकर्षणम् ॥ एवं कृष्णपक्षमरणेपि दैवात्पूर्णमासेष्ट्यतिक्रमे होमापकर्षप्रधानपूर्णाहुत्यादिकं च कृताकृतमनारब्धत्वादिति भाति ॥ करणपक्षेऽतिक्रांतपूर्णमासपूर्णाहुतीर्हुत्वा पक्षहोमान्कृत्वादर्शपूर्णाहुतयः कार्याः ॥ "अग्नावरण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि ॥ प्रेत स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वाचोपावरोहणम् ॥ घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रिया ॥" विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं कार्यम् ॥ तद्यथा ॥ प्रेतं स्वाग्न्यालये क्षिप्त्वाऽरणी संनिधाप्य ॥ यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयंते यजमानमांसम् ॥ जायंतु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयंत्विति यजुर्मंत्रेण मथित्वाग्निमायतने प्रणीय द्वादशगृहीताज्येन तूष्णीं हुत्वा तेन दाहादि कार्यम् ॥ "नष्टेष्वग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी म्रियेत चेत् ॥ आहरेदरणीद्वंद्वं मनोज्योतिर्ऋचा ततः ॥" शेषं प्राग्वत् ॥ स्मार्ताग्निमतः स्मार्ताग्निर्यदि विच्छिन्नस्ततो यतो विच्छेदस्तावत्कालगणनया पूर्वार्धोक्तरीत्या प्रायश्चित्तं तदैव कुर्यात्संकल्पयेद्वा ॥ प्रायश्चित्तांते होमद्रव्यं स्थालीपाकद्रव्यं च तावत्कालगणनया देयम् ॥ ततोरणिपक्षे पूर्ववदरणिमंथनम् ॥ पक्षांतरेमुकशर्मणोग्निविच्छेदनिमित्तकं दाहायाग्निसिद्ध्यर्थं प्रेताधानं करिष्ये इति संकल्प्यायतने संभारान्निक्षिप्य लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यं संस्कृत्यायाश्चेति मंत्रेण यस्याग्नय इति पूर्वोक्तमंत्रेण च हुत्वा व्याहृतिचतुष्टयं जुहुयात् ॥ एवमौपासनः सिद्धो भवति ॥ पत्नीमरणेप्येवमेवाग्निमिति भट्टाः ॥ एवं विधुरस्यापि श्रौताग्निगृह्याग्निपरिग्रहसत्त्वे यथायथं तत्तदग्निभ्यां दाहः ॥ विधुरस्याग्निपरिग्रहोत्तरं तद्विच्छेदे पूर्वोक्तरीतिभ्यां तत्तदग्न्योराधानम् ॥ अगृहीतगृह्याग्निकयोः सभार्यविधुरयोर्ब्रह्मचारिसमावृत्तयोश्चानुपनीताविवाहितपुत्रकन्ययोश्च निरग्निकभार्याविधवयोश्च कपालाग्निना लौकिकाग्निना वा दाहः ॥ अग्निवर्णकपाले करीषादिनोत्पादितो भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्याज्याहुत्या संस्कृतोग्निः कपालाग्निः ॥ लौकिकाग्निश्चांत्यजाग्निपतिताग्निसूतिकाग्निचिताग्न्यमेध्याग्निभिन्नो ग्राह्यः ॥ "यस्यानयति शूद्रोग्निं तृणकाष्ठहवींषि वा ॥ प्रेतत्वं च सदा तस्य शूद्रः पापेन लिप्यते ॥" आहिताग्निदंपत्योः पूर्वं पतिमरणे पत्युः सर्वाग्निभिर्दाहः ॥ पश्चान्मृतभार्यायास्तु निर्मंथ्याग्निना कपालाग्निना वा ॥ पूर्वं भार्यामरणे तु तस्यापि सर्वाग्निभिर्दाहः कार्यः ॥ सर्वपात्राण्यपि तस्यै देयानि ॥ पश्चान्मृतस्य तु पत्युः पुनराधानेन त्रेताग्निसत्त्वे तेन दाहः ॥ आधानाकरणे निर्मंथ्येन लौकिकाग्निना वेति केचित् ॥ याज्ञिकाचारोपि प्रायेणैवमेव ॥ अत्र निर्णयसिंधुः ॥ "साग्नेः पत्नीमृतौ द्वौ पक्षौ ॥ पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्भार्यां दग्ध्वा पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव चेत्येकः पक्षः ॥ दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः "इत्यादिवचनजातानि पुनर्विवाहेच्छुपराण्येव ॥ पुनर्विवाहाशक्तो निर्मंथ्याग्निना तां दग्ध्वा पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रहोमेष्ट्यादि-

चातुर्मास्यादिकार्यम् ॥ सोमयागो न कार्यः ॥ पूर्वाग्न्येकदेशेन दहेदिति यज्ञपार्श्वदेवयाज्ञिकादयः ॥ यानि तु तस्मादपत्नीकोप्यग्निहोत्रमाहरेदिति श्रुतिस्मृत्यादिवचनानि तानि पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रपराणि नत्वपत्नीकस्याधानार्थानि ॥ अपत्नीकस्याधानं विधायकमूलवचनाभावात् ॥ दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयमित्यापस्तंबसूत्रं तु पुनर्विवाहाशक्तौ पूर्वकृतमग्न्याधेयमात्मार्थमेव स्थाप्यं न पत्न्यै दद्यादित्येवं परम् ॥ ब्राह्मणभाष्यापरार्कशार्करामांडारादिमतमप्येवमेव ॥ येत्वपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्म इति ॥ इदं निर्णयसिंधुमतमेव युक्तं भाति ॥ याज्ञिकानामाचारस्त्वंतर्गूढविवाहेच्छामूलको न प्रामाण्यापादकः ॥ पुनर्विवाहाशयासर्वाग्निदाने पश्चाद्विवाहासंभवे सिंधुमते आधानाभावान्निर्मथ्याग्निरेव शरणम् ॥ केषांचिन्मते पुनराधानम् ॥ अत्र निर्मथ्यादिना पूर्वमृतभार्यादाहपक्षे पूर्वाग्नीनामुत्सर्गेष्ट्या त्यागं कृत्वा पुनराधानं कृत्वाग्निहोत्रं कार्यमिति केचिदाहुः ॥ एवं स्मार्ताग्निमतः पूर्वं भार्यामरणेपि गृह्याग्न्येकदेशेन तां दहेदवशिष्टाग्नौ नित्यहोमस्थालीपाकाग्रयणानि कार्याणि ॥ अत्र सर्वत्र श्रौते स्मार्ते च कुशपत्नीविधानेनैवाधानादिकर्माधिकारः ॥ अनेकभार्यस्य ज्येष्ठायां जीवत्यां कनिष्ठभार्यामरणे निर्मथ्यादिना तां दहेत् न श्रौतस्मार्ताग्निभिः ॥ केचित्पूर्वं सर्वाग्निभिः कनिष्ठां दग्ध्वा ज्येष्ठया सह पुनराधानं कार्यमित्याहुस्तदग्निद्वयसंसर्गपरं मतांतरपरं वा बोध्यम् ॥ दाहकालेऽग्निनाशे तु "यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति ॥ वर्षाद्यभिहते वह्नौ चिताग्निस्थे कथंचन ॥ तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तं दहेत् ॥"

अब अग्निहोत्रीके मरनेमें विशेष कहतेहैं । कि, गृह्याग्निवालेका गृह्याग्निसे और श्रौताग्निवालेका त्रेताग्निसे दाह करै । उन गृह्याग्निवालेका और श्रौताग्निवालेका कृष्णपक्षमें मरण होय तो ऐसे ही सायंकालकी आहुति दर्शके सायंकाल पर्यन्त पक्ष होमके समान एकवार उच्चारण करके ही होम करके फिर संकल्पपूर्वक प्रातःकालकी आहुतियोंको प्रतिपदाके प्रातःकाल होम पर्यंत उसी प्रकार आहुति देकर दर्श होमको करै । याग न होसकै तो घीके संस्कारको करिके और स्रुक्में उसको चार वार लेकर परोनुवाक्य, और आज्य भागसे एकएक प्रधान आहुतिको दे । स्मार्तमें तो चार वार ग्रहण किये घीसे "अग्नये स्वाहा । इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा" इन नामोंसे ही प्रधान दो आहुति दे । शुक्ल पक्षकी रात्रिमें मरै तो सायंकालका होम तो किया ही है । इससे प्रातःकालके होमका ही आकर्षण करिके उसी समय करै । इसमें पूर्णिमा पर्यंत वा दर्श पर्यंत होमोंका वा इष्टिमें प्रधान पूर्ण आहुतियोंका करना नहीं है । शुक्लपक्षके विषै दिनमें मरै तो किसी होमका भी आकर्षण नहीं होता । इसीप्रकार कृष्णपक्षके मरनेपर भी दैवगतिसे पूर्णिमासीके यज्ञका अतिक्रम हो जाय तो होमका अतिकर्ष और प्रधान आहुति आदिको करै चाहै न करै । क्योंकि, उनका प्रारंभ नहीं हुआ । यह प्रतीत होताहै । करनेका जब पक्ष है तब अतिक्रान्त पूर्णिमाकी पूर्ण आहुतिको होमकर पक्षहोमोंको करके दर्शकी पूर्णा-

हुतियोंको करै । अग्निके आवरणमें आरूढ हुआ यदि पति मरजाय तो प्रेतका स्पर्श करके अग्निको मथकर और जपकर उपावरोहण करै । उस अग्निमें द्वादश बार लिये घृतको तूष्णीं होम कर शवकी क्रियाको करै । जिसकी श्रौताग्निका विच्छेद होगयाहो उसके मरनेमें तो प्रेताधान करै । वह ऐसे है कि, प्रेतको उसकी अग्निके स्थानकी पृथ्वीरूप अरणिपर रखकर और "यस्याग्नये जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसं जायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गलोकमिमं प्रेतं नियन्तु" इस मंत्रसे मथकर और उस अग्निको आयतन (होमस्थान) में लाकर उसमें घीकी द्वादश (१२) आहुतियोंको तूष्णीं देकर फिर उस अग्निमें दाह आदि कर्म करै । जो अग्नि वा अरणिका नाश होजाय अथवा स्वामी मरजाय तो "मनोज्योतिः०" इस ऋचासे दो अरणियोंको लावै । और शेष कर्म पूर्वकी समान करै । जो स्मार्त्त अग्निवालेकी स्मार्त अग्निका नाश होजाय तो जितने कालसे अग्निका विच्छेद हुआ हो तितने ही कालकी संख्या प्रायश्चित्तको पूर्वार्द्धमें कही रीतिसे करै । अथवा संकल्पकर दे । और प्रायश्चित्तके अन्तमें होमद्रव्य और स्थालीपाकके द्रव्यको तितनेही कालकी गिनतीके अनुसार दे । और जो अरणिपक्ष मानो तो पूर्वकी समान अरणियोंको मथै और दूसरा पक्ष मानो तो इसप्रकार पूर्व संकल्प करै कि, अमुक शर्माके अग्निविच्छेदरूप निमित्तसे जो दाह उसके लिये अग्निको सिद्धिके अर्थ प्रेताधानको करताहूं । फिर आयतनमें सामग्रियोंको लाकर लौकिक अग्निका स्थापन करके घृतका संस्कार करै फिर "अयाश्च०" और "यस्याग्नये०" इस मंत्रसे होम करके चार व्याहृतियोंसे होम करै । इसप्रकार औपासन अग्नि सिद्ध होतीहै । स्त्रीके मरणमें भी इसीप्रकार करना; यह भट्ट कहतेहैं । इसीप्रकार अग्निसे जो रहित है वह श्रौत अग्निको परिग्रह करले तो यथायोग्य तिस २ अग्निसे दाह करै । और अग्निसे रहितको अग्निके परिग्रहके पीछे अग्निका विच्छेद हो जाय तो पूर्वोक्त रीतिसे तिस तिस अग्निका आधान करना । सपत्नीकको भी दायाद आदिकी अपेक्षासे गृहीताग्नि जानना । और जिन्होंने अग्नि ग्रहण नहीं की और जो भार्यासे रहित, ब्रह्मचारी, और समावृत (गृहस्थ) हैं, उनका और अनुपनीत पुत्र और विना विवाही कन्या इन दोनोंका, और अग्निसे रहित भार्या, और विधवाओंका कपालाग्निसे वा लौकिक अग्निसे दाह करै । अग्निके समान है वर्ण जिसका ऐसे कपालमें करीष (सूका गोमय) आदिसे पैदा की और 'भुर्भुवः स्वाहा' इस आज्याहुतिसे संस्कार कीहुई अग्नि कपालाग्नि होतीहै । और लौकिक अग्नि भी अन्त्यजाग्नि, पतिताग्नि, सूतिकाग्नि, चिताग्नि, अपवित्र अग्नि; इनसे भिन्न लेना । जिसकी अग्निको और तृण काष्ठ हविको शूद्र लेजाता है उसको सदा प्रेतत्व रहताहै । और वह शूद्रके पापसे लिप्त होताहै । अग्निहोत्री स्त्रीपुरुषके मध्यमें पहिले पति मरजाय तो पतिका दाह सब अग्नियोंसे करै । और पीछेसे मरी भार्याका तो मथीहुई अग्नि वा कपाल अग्निसे करै । पहिले भार्य्या मरजाय तो उसका भी सब अग्नियोंसे दाह करै । और सब अग्निके पात्रोंको भी उसको ही देदे । पीछेसे मरेहुए पतिका दाह तो पुनः आधानकी अग्निसे प्रेताग्नि होय तो उससे करै । आधानको न करै तो मथी हुई वा लौकिक अग्निसे करै यह कोई कहतेहैं । यज्ञकर्ताओंका आचार भी प्रायः ऐसा ही है । इसमें निर्णयसिन्धु यह, कहताहै कि, अग्निहोत्रीकी पत्नीके मरनेमें दो पक्ष हैं । पुनः विवाहकी इच्छा होय तो पहिली अग्नियोंसे भार्याको दग्ध करके पुनः विवाहको

और पुनः आधानको करै; यह एक पक्ष है। और सदाचारवाली स्त्रीको पति अग्निहोत्रसे दग्ध करके इत्यादि वचनोंका समूह भी पुनर्विवाहकी जिसे इच्छा होय उसकेही लिये है। पुनर्विवाहमें असमर्थ होय तो मथीहुई अग्निसे उसे दग्ध करके पहिली अग्नियोंमेंही अग्निहोत्र होम इष्टि आदि और चातुर्मास्य आदिको करै। सोमयाग न करै। पहिली अग्निके एकदेशसे उस स्त्रीका दाह करे। यह यज्ञपार्श्वदेव आदि याज्ञिक कहतेहैं। और जो ये वचन हैं। कि, पत्नीरहित मनुष्य अग्निहोत्रको करै। ये श्रुति स्मृति आदिके वचन; पूर्व अग्निहोत्रके विषयमें हैं कुछ पत्नीरहितको पुनः आधानके लिये नहीं। क्योंकि पत्नीरहितको आधानका विधायक कोई मूलवचन नहीं है। यदि दारकर्म (विवाह) में अशक्त हुआ मनुष्य हो तो अपने लिये ही अग्निका आधान करै। यह आपस्तंबका सूत्र तो इस विषयमें है कि, पुनर्विवाहकी अशक्तिमें पहिले कियेहुए अग्न्याधानको अपने ही लिये रक्खै। पत्नीको न दे। और ब्राह्मणभाष्य, अपरार्क, आशार्क, रामाण्डार आदिका; मतभी ऐसे ही है। और जो पत्नीरहितके भी आधानको कहतेहैं उनके आशयको हम नहीं जानते। यह निर्णयसिन्धुका मतही हमको युक्त प्रतीत होता है।याज्ञिकोंका आचार तो भीतर छिपीहुई विवाहकी इच्छा मूलक है प्रामाणिक नहीं। पुनर्विवाहकी आशासे सब अग्नियोंको भार्याको देदे तो पीछेसे विवाह न होय और निर्णयसिन्धुके मतमें आधान नहीं है तो मथीहुई अग्निही शरण है अर्थात् उससेही दाह करना पडैगा। किसीके मतमें तो पुनः आधान है; इसमें कोई यह कहते हैं कि, पहिले मरीहुई भार्याके मथीहुई अग्निसे दाह पक्षमें पहिली अग्नियोंका उत्सर्ग यज्ञसे त्याग करके फिर आधानको करके अग्निहोत्रको करै। इसी प्रकार स्मार्ताग्निवालेकी पहिले भार्याके मरनेमें गृह्यअग्निके एकदेशसे उसका दाह करै शेषअग्निमें नित्यहोम, स्थालीपाक, आग्रायणको करै। यहां सब जगह श्रौत, स्मार्त, कर्ममें; कुशाकी पत्नीके विधानसे ही आधानआदि कर्मका अधिकारहै। जिस मनुष्यके अनेक भार्याहैं वहां जेठीके जीवते हुए कनिष्ठभार्या मरजायतो अग्निको मथकर ही उसका दाह करै। श्रौत, स्मार्त, आदि अग्नियोंसे न करै। कोई यह कहतेहैं कि, पहिले कोईसी अग्निसे छोटीका दाह करके जेठीभार्याके संग पुनः आधान करै। वह मत दो अग्नियोंके संसर्गमें वा मतान्तर (दूसरा मत) जानना। दाहके समय अग्नि नष्ट होजाय तो; यजमान चितामें आरूढहो और उसके समीप पात्र रखदियेहों और किसीप्रकार चितामें स्थित यजमानके होनेपर वर्षा आदिसे अग्नि नष्ट होजाय तो आधे जलेहुए जो काष्ठ उनको मथकर; उसका दाह करै॥

अथ गृहाच्छ्मशान शवनयनप्रकारः।

तत्र विप्रं प्रेतं नगरपश्चिमद्वारेण शूद्रं दक्षिणद्वारेण निःसार्य सजातीयाः शवं प्रच्छादितमुखं प्राक्शिरसं दाहदेशं नयेयुः॥ पूर्वोक्तोग्निः शवाग्रेऽन्येन नेतव्यः॥ प्रेताग्न्योर्मध्येऽन्येन न गंतव्यम्॥ सर्वे सपिंडादयोधःकृतोपवीता मुक्तकेशा ज्येष्ठपुरःसराः प्रेतमनुगच्छेयुः॥ प्रेतश्च नग्नो न दग्धव्यः॥ निःशेषतश्च न दाह्यः शववस्त्रं च श्मशानवासिभ्यो देयम्॥ प्रेतश्च केशनखादि वापयित्वा संस्नाप्य गंधपुष्पाद्यैरलंकृत्य दग्धव्यः॥ दिने मृतौ दिवैव दाहो रात्रिमृतस्य रात्रावेव॥

दिवा वा रात्रौ वा स्थितः शवः पर्युषितः ॥ पर्युषितशवं पंचगव्येन स्नापयित्वा प्राजापत्यत्रयं कृत्वा दहेत् ॥ मुखस्थसप्तच्छिद्राणि हिरण्यशकलैश्छादयेत् ॥ अत्र पात्रन्यासो मंत्रवद्दाहादिविधिश्च स्वस्वसूत्रानुसारिश्रौतस्मार्तात्येष्टिप्रयोगेषु ज्ञेयः॥ ततो दाहांते घटस्फोटादिकं कार्यम् ॥ शिलाविपर्ययेपि घटस्फोटस्य नावृत्तिः ॥ ततश्चितामप्रदक्षिणं सर्वे पर्य्या आवृत्य सचैलं स्नात्वाचम्य सगोत्रसपिंडसमानोदकानां मातामहीमातामहयोराचार्यादेश्च दुहितृभगिन्योश्चावश्यं तिलांजलिं दद्युः ॥ तद्यथा वृद्धपूर्वा दक्षिणामुखा अमुकगोत्रनामा प्रेतस्तृप्यत्विति मंत्रेणांजलिना तद्भत्पाषाणे सिंचेयुः ॥ अत्र स्नानोदकदानेऽपनः शोशुचदघमिति मंत्रेण ॥ स्नानमेव तेन मन्त्रेणेत्यन्ये ॥ स्त्रीणां तु मंत्रो नास्ति ॥ मातुलपितृष्वसृमातृष्वसृस्वस्रीयश्वशुरमित्रयाजकादीनामुदकदानं कृताकृतम् ॥ करणपक्षेपि नाश्मन्येवेति नियमः ॥ व्रात्यब्रह्मचारिपतितव्रतिक्लीबचोराश्च नोदकं दद्युः ॥ तत्र व्रात्या यथा कालमुपनयनहीनाः ॥ व्रतिनः प्रक्रांतप्रायश्चित्ताः ॥ चोराः सुवर्णतत्समद्रव्यापहारिणः ॥ ब्रह्मचारिभिर्मातापितृपितामहमातामहगुर्वाचार्यादीनामुदकदानं कार्यम् ॥ प्रक्रांतप्रायश्चित्तैस्तु तदंते उदकदानं त्रिरात्राशौचं च कार्यम् ॥ व्रात्यादिभिः प्रेतस्पर्शवहनदाहपिंडादिकमपि न कार्यम् ॥ अन्याभावे ब्रह्मचार्यपि पित्रादेर्दाहमाशौचं कुर्यात्कर्मलोपस्तु नास्तीत्युक्तम् इदं चोदकदानमेकवाससाऽपसव्येनैव ॥ उदकदानोत्तरं पुनः स्नात्वा वस्त्राणि निष्पीड्य कुलवृद्धाः पुत्रादीन्पूर्वेतिहासैः समाश्वास्य विप्रानुमत्या कनिष्ठानुक्रमेण गृहं गत्वा निंबपत्राणि शनैर्भक्षयित्वाचम्याग्न्युदकगोमयादीन्स्पृष्ट्वा द्वाराश्मनि पदं निधाय गृहं प्रविशेयुः ॥ निंबपत्र भक्षणं कृताकृतम् ॥ ततस्तद्दिने उपवसेयुः ॥ उपवासाशक्तावयाचितलब्धेनान्यगृहपक्वेन वा केनैव हविष्यान्नेन वर्तेरन् ॥ तत्राशौचमध्ये माषमांसापूपमधुरलवणदुग्धाभ्यंगतांबूलक्षाराणि वर्ज्यानि ॥ क्षाराणि तु ॥ "तिलमुद्गादृते शैब्यसस्ये गोधूमकोद्रवौ ॥ धान्याकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैव च ॥ स्विन्नधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः ॥" केचित्सैंधवं भक्ष्यमित्याहुः ॥ आदर्शस्त्रीसंगद्यूतादिहसनरोदनोच्चासनानि नित्यं त्यजेयुः ॥ बालवृद्धातुरं वर्ज्यं तृणकटास्तीर्णभूमौ पृथक् शयीरन्न कंबलाद्यास्तीर्णभूमौ ॥ मार्जनादिरहितमेव स्नानम् ॥ अस्थिसंचयनादूर्ध्वं भार्यापुत्रव्यतिरिक्तानां शय्यासनादिभोगोस्त्येव ॥ स्त्रीसंगस्तु नास्ति ॥ अस्थिसंचयनं तु समंत्राग्निदाहदिनादारभ्य प्रथमदिने द्वितीये तृतीये चतुर्थे सप्तमे नवमे वा गोत्रजैः सह स्वस्वसूत्रोक्तप्रकारेण कार्यम् ॥ तत्र द्विपादत्रिपादनक्षत्राणि कर्तुर्जन्मनक्षत्रं च वर्ज्यम् ॥ संभवेर्कभौममंदवारा वर्ज्याः ॥ पालाशदाहास्थिदाहयोः सद्यः संचयनम् ॥ अस्थ्नां गंगांभसि ती-

र्थान्तरप्रक्षेपः ॥ तद्विधिर्वक्ष्यते ॥ अरण्ये वृक्षमूले निखननं वा ॥ "अस्थीनि
न्यकुलस्थस्य नीत्वा चांद्रायणं चरत् ॥" दययान्यस्यापि नयने महापुण्यम् ॥ ३
स्वा श्वसूकरशूद्रादिस्पर्शे पंचगव्यशालग्रामतुलस्युदकैः प्रोक्षणम् आशौचमध्ये स
गोत्रजैः सह भोक्तव्यं तच्च दिवैव ॥ भोजनं च मृन्मयेषु पर्णपुटेषु वा कार्यं न
धातुपात्रेषु ॥ दाहदिनादारभ्य दशपिंडा दशदिनमध्ये दर्भास्तीर्णभूमावमंत्र
देयाः ॥ क्षत्रियादीनां नव पिंडाः नवदिनांतं दशमपिंडस्त्वाशौचांत्यदिने ॥ प्रथ
हनि यो देशो यश्च कर्ता यच्च तंडुलादिद्रव्यं यच्चोत्तरीयशिलापाकपात्रादि तदे
दशाहांतम् ॥ एतदन्यतमव्यत्यये यतो व्यत्ययस्ततः पुनरावृत्तिः ॥ शिलाविप
येपि घटस्फोटादेर्नावृत्तिरित्युक्तेर्लौकिकशिलाग्रहणम् ॥ तेन पिंडदानतिलांजल्या
दिकस्यैवावृत्तिर्न दाहस्य ॥ केचिदाचार्यविपर्ययेप्यावृत्तिमाहुः ॥

अब घरसे श्मशानमें शवका लेजानेका प्रकार कहतेहैं । तिसमें ब्राह्मण प्रेतको नगर
पश्चिमद्वारसे शूद्रको दक्षिणद्वारसे निकालकर सब सजातीय; ढकाहै मुख जिसका ऐसे शव
पूर्वको शिर करिके दाहके देशमें लेजायँ पूर्वोक्त अग्निको शवके आगे २ कोई अन्य लेजाय
प्रेत और अग्निके मध्यमें अन्य कोई भी गमन न करै । सम्पूर्ण सपिण्डआदि कण्ठसे नि
यज्ञोपवीतको करके; केशोंको खोलकर; बडे २ मनुष्योंको आगेकरके प्रेतके पछि चलैं । अ
नगे प्रेतका दाह न करै । और निश्शेष दाह करैं और शवके वस्त्रको श्मशानके वासियों
देदें । और प्रेतके केश, नख, आदिका मुण्डन कराकर स्नानके अनन्तर गन्ध, पुष्प, आदि
पूजकर दाह करना । दिनमें मरै तो दिनमें और रात्रिमें मरै तो रात्रिमें दाह करैं । दिन
रात्रिमें स्थित प्रेत पर्य्युषित होताहै । पर्युषितशवको पंचगव्यसे स्नान कराकर और तीनप्राज
पत्यको करके दाह करै । मुखके सातों छिद्रोंको सुवर्णकी सलाइयोंसे ढकै । इसमें पात्रों
न्यास, मंत्रोंसे दाह, आदिकी विधि, अपने २ सूत्रोंके अनुसार जो श्रौत, स्मार्त, अंत्येष्टि
योगकी विधिहै उनमें जाननी । फिर दाहके अन्तमें घटस्फोट आदिको करै । शिलाके विप
यमें भी घटस्फोटकी आवृत्ति नहीं है । अर्थात् दुबारा न करै । फिर चिताकी अप्रदक्षिणक्रम
संपूर्ण परिक्रमा देकर सचैलस्नान, और आचमन, करके सगोत्र, सपिंड, समानोदक; मात
मही, मातामह, आचार्यआदि; दुहिता, भगिनी, इन सबको तिलांजलि अवश्य दे । वह ऐसे
कि, 'वृद्धहैं पहिले जिनमें ऐसे दक्षिणाभिमुख बैठकर अमुकगोत्र नामका प्रेत तृप्तहो' इसमंत्र
दो अंजलीको पाषाणपर सींचैं । यहां स्नान और उदकदान " अपः न शोशुचदघम् " इ
मंत्रसे करै । इस मंत्रसे स्नान ही करै यह अन्य कहतेहैं स्त्रियोंको तो मंत्र नहीं है । मातु
फूफी, मौसी, भानजा, श्वशुर, मित्र, याजक, आदिकोंको जलदान करै चाहै न करै । क
पक्षमें भी पत्थरपर ही करै यह नियम नहीं है । व्रात्य, ब्रह्मचारी, पतित, व्रती, न
चोर, ये जलदान न करैं । उनमें व्रात्य वे हैं जिनका समयपर जनेऊ न हुआ हो । व्रती
जिन्होंने प्रायश्चित्तका प्रारंभ कराहो । और सुवर्ण वा सुवर्णके समान द्रव्यको जो चु
चोरहैं । ब्रह्मचारी, माता, पिता, पितामह, गुरु, आचार्य आदिको जलदान करै जि
प्रायश्चित्तका प्रारंभ कररक्खाहै वे उसके अन्तमें जलदान और तीनदिनका आशौच

व्रात्यआदि तो प्रेतका स्पर्श वहन, दाह, पिंडआदिको भी न करें । अन्यके अभावमें ब्रह्मचारी भी पिताआदिके दाह और आशौचको करें उसके कर्मका लोपतो नहीं होता यह कहआये यह जलदान एकवस्त्रसे और अपसव्यसे ही होताहै । जलदानके पीछे पुनः स्नान करके वस्त्रोंको धोकर कुलके वृद्ध मनुष्य पुत्रआदिकोंको पहिले इतिहासोंसे समझाकर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे कनिष्ठोंके क्रमसे घरपर जाकर नींवके पत्तोंको शनैः २ भक्षण करके आचमनके अनन्तर अग्नि, जल, गोमय, आदिका स्पर्श करके द्वारके पत्थरपर पैरोंको रखकर घरमें प्रवेश करें । नींवके पत्तोंका भक्षण करो चाहै न करो । फिर उसदिन उपवास करें । उपवासका सामर्थ्य न होय तो विनायाचनाके मिलेसे वा अन्यघरके पक्वान्नसे एक ही हविष्य अन्न खाकर रहैं । उस आशौचके मध्यमें उडद, मांस, अपूप, मीठा, लवण, दूध, उबटना, तांबूल, क्षार, ये सब वर्जनेयोग्यहैं । क्षार तो येहैं कि, तिल मूंगको छोडकर शैव्य, और सस्योंमें गेहूं और कोदों; धनियां, देवधान्य, शमीधान्य, स्विन्नधान्य, और पण्यमूली; यह क्षारोंका समूह कहाहै । कोई तो सिंधालवणको भक्ष्य कहतेहैं । शीशेमें मुख देखना, स्त्रीका संग, द्यूत आदि, हँसना, रोदन, आसन, इनको नित्य त्यागदे । बाल, वृद्ध, आतुर; इनको छोडकर, तृण, चराईकी भूमिपर पृथक् २ शयन करें कंबल आदि जहां बिछेहों उस भूमिपर न सोवें । और मार्जनके विना ही स्नान करें । अस्थिसंचयनके पीछे भार्या पुत्रसे जो भिन्नहैं उनको शय्या आसन आदिका भोगहै ही । स्त्रीका संगतो उनको भी नहीं । अस्थिसंचयन तो मत्रोंसहित अग्निदाहके दिनसे लेकर पहिले दिन; दूसरे, तीसरे, चौथे, सातवें, वा नवमें दिन; गोत्रजोंके संग अपने २ सूत्रके प्रकारसे करना । उसमें द्विपाद, त्रिपाद, नक्षत्र, और कर्ताका जन्मनक्षत्र, वर्जित हैं । संभव होय तो रवि, भौम, शनि, ये वार भी वर्ज दे । पालाशका दाह और अस्थियोंका दाह इनमें सद्यः संचयन करै । अस्थियोंका गंगाजलमें वा अन्य तीर्थमें प्रक्षेप करै । उसकी विधि आगे कहेंगे । अथवा वनके किसी वृक्षकी जडमें खनन करै । अन्य कुलकेके अस्थियोंको लेजाकर चांद्रायण करै । अथवा अन्यके भी अस्थि ले जानेमें महापुण्य है । अस्थियोंको श्वा, सूकर, शूद्र, आदिका स्पर्श होजाय तो पंचगव्य, शालग्राम, तुलसीके जलसे प्रोक्षण करै । आशौचके मध्यमें अपने गोत्रजोंके संग भोजन करै, वह भी दिनमें ही करै । और भोजन भी मिट्टीके पात्रोंमें वा पत्तलोंपर करैं । धातुके पात्रोंमें न करैं । दाहके दिनसे लेकर, दशपिंड, दश दिनके मध्यमें, दर्भसे ढकीहुई भूमिमें विनामंत्र देने क्षत्रिय आदिकोंके नौ (९) पिंड नवम दिन पर्यंत दे । और दशम पिंड आशौचके अन्तमें दे । पहिले दिन जो देश हो, जो कर्ता हो, जो तंडुल आदि द्रव्य हो, जो उत्तरीय, हो जो शिला, पाकपात्र, आदि हो वही, दशाह पर्यंत हो । इनमेंसे किसी एकका व्यत्यय होनेपर जबसे व्यत्यय हो तबसे पुनः आवृत्ति होती है । शिलाके विपर्ययमें भी घटस्फोट आदिकी आवृत्ति नहीं होती यह कहनेसे लौकिक शिलाका ग्रहण है । तिससे पिंडदान तिलांजलि आदिकी ही आवृत्ति है । दाहकी नहीं कोई तो आचार्यके विपर्ययमें भी आवृत्तिको ही कहतेहैं ॥

अथारब्धे पिंडादिके विचारः ।

यत्र पुत्रादिमुख्यकर्तुरसन्निधानादमुख्याधिकारिणा पिंडदानक्रियारब्धा तत्र मध्ये पुत्रादिसन्निधानेप्यमुख्यकर्त्रैव दशाहांता क्रिया समापनीया ॥ एकादशाहा-

दिकं तु पुत्रादिमुख्येनैव ॥ समंत्रकदाहमात्रेन्येन कृते तु पिंडदानादिदशाहकृत्यं सन्निकृष्टमुख्यैनैव कार्यमिति मिताक्षरादयः ॥ अन्ये तु सगोत्रोसगोत्रो वा यः समंत्रकदाहकर्ता स एव दशाहकृत्यं कुर्यादित्याहुः ॥ पत्न्याः कर्त्तृत्वे रजोदर्शने जाते सा तदंते कुर्यात् ॥ कर्तुरस्वास्थ्येन्येन सर्वाः क्रियाः पुनः कार्याः ॥ पिंडद्रव्येषु तण्डुला मुख्याः ॥ तदभावे फलमूलशाकतिलमिश्रसक्तवोपि ॥ प्रेतश्राद्धेषु पितृशब्दस्वधाशब्दानुशब्दाः पुष्पधूपदीपदानादौ मंत्राश्च न वाच्याः ॥ त्र्यहाशौचे पर्णशरदाहादौ प्रथमे दिने एकः पिंडः ॥ द्वितीये चत्वारः ॥ तृतीये पंचेति क्रमो बोध्यः ॥ पुत्रेण पर्णशरदाहे कृते तु तस्य दशाहाशौचात्तेन त्र्यहमध्ये पिंडसमाप्तिर्न कार्या ॥ "शिरस्त्वाद्येन पिंडेन प्रेतस्य क्रियते सदा॥"द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाः ॥ तृतीयेन कंठस्कंधभुजवक्षांसि ॥ चतुर्थेन नाभिलिंगगुदानि ॥ पंचमेन जानुजंघपादम् ॥ षष्ठेन मर्माणि ॥ सप्तमेन नाड्यः ॥ अष्टमेन दंतलोमानि ॥ नवमेन वीर्यम्॥ "दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः ॥ जलं दशाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये ॥" प्रेतात्र स्नाहीत्युदकम् ॥ इदं पिबेति च क्षीरम् ॥ इदं च कृताकृतम् ॥ "ततः प्रेतोपकृतये दशरात्रमखंडितम् ॥ कुर्यात्प्रदीपं तैलेन वारिपात्रं च मार्तिकम् ॥ भोज्याद्भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत् ॥ नामगोत्रेण संबुध्य धरित्र्यां पितृयज्ञवत् ॥ भूर्लोकात्प्रेतलोकं तु गंतुं श्राद्धं समाचरेत् ॥ तत्पाथेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य च ॥"

जहां सुपात्र कर्ताके समीप न होनेपर अमुख्य अधिकारीने पिंडदान क्रियाका प्रारंभ करदिया हो वहां मध्यमें पुत्र आदिका सामीप्य होनेपर भी अमुख्य कर्ता ही दशाह पर्यंतकी क्रियाको समाप्त करै। एक दशाह आदिको तो मुख्य पुत्र आदि ही करै। मन्त्रों सहित दाहमात्र अन्यने किया होय तो पिण्डदान आदि दशाहका कृत्य समीपमें स्थित मुख्य ही करै। यह मिताक्षरा आदि कहतेहैं। अन्यतो यह कहतेहैं। कि, सगोत्री वा असगोत्री जो मन्त्रोंसे दाह करै वही दशाहके कृत्यको करै। पत्नीके कर्ता होनेपर रजोदर्शन होजाय तो वह उसके अन्तमें दशाह कृत्यको करै। कर्त्ता अस्वस्थ (रोगी) होय तो अन्यसे सब क्रियाओंको पुनः करावै। पिंडके द्रव्योंमें तंडुल मुख्य हैं। उनके अभावमें फल, मूल, शाक, तिल मिले सक्तू भी हैं। प्रेत श्राद्धोंमें पितृशब्द, स्वधाशब्द, अनुशब्द, और पुष्प, धूप, दीपके दान आदिमें मंत्र न कहने। तीन दिनका है आशौच जिसमें ऐसे पर्णशर दाह आदिमें पहिले दिन एक पिंड, दूसरे दिन चार पिंड, तीसरे दिन पांच पिंड; यह क्रम जानना। पुत्र; पर्णशरका दाह करै तो उसको दश दिनका आशौच है। इससे वह तीन दिनके मध्यमें पिंडोंकी समाप्ति न करै। पहिले पिंडसे प्रेतका शिर बनता है। दूसरेसे कर्ण, अक्षि, नासिका, बनते हैं, तीसरेसे कंठ, स्कंध, भुजा, वक्षःस्थल, बनते हैं। चौथेसे नाभि, लिंग, गुदा; पांचमेंसे जानु, जंघा, पाद; छठेसे मर्म; सातवेंसे नाडी; आठवेंसे दंत, लोम; नवमेंसे वीर्य; दशमेंसे पूर्णता, तृप्ति, और क्षुधाका नाश; होताहै। दश दिन पर्यन्त आकाशमें

मिट्टीके पात्रमें दूधका स्थापन करै। हे प्रेत यहां स्नान कर यह कहकर जल दे । यह पान कर यह कहकर दूध दे। इसको करै वा न करै। फिर प्रेतके उपकारार्थ दश रात्रि पर्यंत अखंड दीपक तेलसे भरे पात्रमें बत्ती रखकर दे। भोजनके समयमें भोजन करै और भातकी मुष्टि दे। नाम गोत्रके संबोधनसे भूमिपर पितृयज्ञके समान भूलोकसे प्रेतलोकमें जानेके लिये श्राद्ध करै वह मृत मनुष्यका पाथेय होता है ॥

अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः ।

पिंडदानादौ प्रारब्धे यदि मध्ये दर्शप्राप्तिस्तदा मातापितृव्यतिरिक्तानां सर्वं दशाहकृत्यमाकृष्य दर्श एव समापनीयम् ॥ मातापितृविषये तु त्र्यहमध्ये दर्शपाते नापकर्षः ॥ त्रिरात्रात्परं दर्शपाते तु पित्रोरपि सर्वं दर्शे एव समापनीयमिति केचित् ॥ अन्ये तु त्रिरात्रोर्ध्वमपि दर्शपाते औरसपुत्रेण पित्रोस्तंत्रसमाप्तिर्न कार्येत्याहुः ॥ अत्र देशाचाराद्व्यवस्थेति सिंध्वादयः ॥ यदि दैवाद्दर्शात्पूर्वं पिंडदानादि तंत्रं नारब्धं तदा दाहमात्रे समंत्रके जातेपि न दर्शे तंत्रसमाप्तिनियम इति भाति ॥ दर्शोत्तरमेव तंत्रारंभसमाप्तिसंभवेन द्विरैन्दवे तु कुर्वाणः पुनः शावं समश्नुत इत्युक्तदोषाप्रसक्तेः ॥ एवं दर्शेपकृष्य तंत्रसमाप्तावप्यग्निपिंडदातुर्दशाहमाशौचमस्त्येव ॥ पुत्रादेः सपिंडस्य तु सुतरां दशाहम् ॥ प्रेतपिंडान्प्रदायास्नात्वा भुक्त्वावसपिंडस्य त्रिरात्रोपवासः ॥ सपिंडस्योपवास एकः ॥ मत्या द्विगुणम् ॥ प्रेतकृत्यं कुर्वतां संचयनादर्वाक् स्त्रीसंगे कृते चांद्रायणम् ॥ ऊर्ध्वं कृच्छ्रत्रयम् ॥ अन्येषामाशौचिनां संचयनादर्वाक्त्रिरात्रं तदुत्तरमेकोपवासः ॥

अब दश दिनके मध्यमें दर्श आन पडै तो निर्णयको कहतेहैं। कि, पिंडदान आदिके प्रारंभ होनेपर यदि मध्यमें दर्श आन पडै तो माता पितासे भिन्न सबका दशाह कृत्य आकर्ष (घटा) करके दर्श (३०) को ही समाप्त करदे। माता पिताके विषयमें तो तीन दिनके मध्यमें दर्श होय तो अपकर्ष नहीं होता। त्रिरात्रसे परै दर्श होय तो माता पिताका भी सब कर्म दर्शमें ही समाप्त करै यह कोई कहतेहैं। अन्य तो यह कहतेहैं। कि, त्रिरात्रके पीछे भी दर्शके पातमें औरस पुत्र माता, पिताके तंत्रकी समाप्ति न करै। इसमें देशाचारसे व्यवस्था है, यह निर्णयसिंधु आदि कहतेहैं। यदि दैवगतिसे दर्शसे पहिले पिंडदान आदि तंत्रका प्रारंभ न किया होय तो तब मंत्रोंसहित दाहमात्रके होनेपर भी दर्शमें तंत्रकी समाप्तिका नियम नहीं है यह हमको भान होता है। दर्शके अनंतर ही तंत्रका प्रारंभ, और समाप्ति होसकते हैं। क्योंकि अदैव श्राद्धको दो बार करताहुआ मनुष्य पुनः शवके कर्मको प्राप्त होताहै, यह उक्त दोष भी न आवेगा। इसीप्रकार दर्शमें अपकर्ष करिके तंत्रकी समाप्तिमें भी अग्नि और पिण्डके दाताको दश दिनका आशौच है ही। पुत्र आदि सपिण्डको तो अवश्य है। और दश दिनतक प्रेतपिंडोंको देकर स्नान करिकै और भोजन करिकै असपिण्डको तीन रातका उपवास है और सपिंडको एक उपवास है और जानकर द्विगुण है। प्रेतकृत्यको करनेवाला अस्थिसंचयसे पहिले स्त्रीका संग करै तो चांद्रायण, और तीन अर्द्धकृच्छ्र, करै ।

और अन्य आशौचियोंको अस्थिसंचयसे पहिले स्त्रीसंगमें त्रिरात्र उपवास, और उससे पीछे एक उपवास है ॥

अथ नवश्राद्धम्।

"प्रथमेह्नि तृतीये च पंचमे सप्तमे तथा ॥ नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥ नवश्राद्धानि पंचाहुराश्वलायनशाखिनः ॥ आपस्तंबाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥" पंचपक्षे एकादशाहे नवश्राद्धं न कार्यम् ॥ एतान्येव विषमश्राद्धानीत्युच्यंते ॥ नवश्राद्धानि दशाहांतर्नवमिश्रं तु वत्सर इत्यन्यत्र ॥ "अकृत्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्नैव मुच्यते ॥ नवश्राद्धं त्रिपक्षं षाण्मासिकं मासिकानि च ॥ न करोति सुतो यस्तु तस्याधः पितरो गताः"॥

अब नौ श्राद्धोंको कहतेहैं पहिले दिन, तीसरे, पांचमें, सातमें दिन, नवमें और ग्यारहमें दिन, जो श्राद्ध है उसको नवश्राद्ध कहतेहैं। आश्वलायन शाखावाले पांच नव श्राद्धोको कहते हैं। और आपस्तंब छः नव श्राद्धोंको कहते हैं। और अन्य ऋषियोंके मतमें भी भिन्न कथन है। पांचके पक्षमें एकादशाहको नव श्राद्ध न करै। इनको ही विषम श्राद्ध कहते हैं। नवश्राद्धोंको दश दिनके भीतर करै। और नव मिश्र: (मिले) श्राद्धको वर्ष दिनमें करै, यह अन्यत्र कहा है। नव श्राद्धके किये विना प्रेतयोनिसे नहीं छुटता। नवश्राद्ध, त्रिपक्ष, षाण्मासिक, मासिक; इनको जो पुत्र नहीं करता उसके पितर नरकमें जातेहैं ॥

अथ प्रेतश्राद्धधर्माः।

"अर्घ्यहीनमधूपंचगंधमाल्यविवर्जितम् ॥ नवश्राद्धममंत्रं स्यादवनेजनवर्जितम् ॥ आशिषो द्विगुणा दर्भा जयाशीः स्वस्तिवाचनम् ॥ पितृशब्दः स्वसंबंधः शर्मशब्दस्तथैव च ॥ पात्रालंभोवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम् ॥ तृप्तिप्रश्नश्च विकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च ॥ प्रदक्षिणाविसर्गश्च सीमांतगमनं तथा ॥ अष्टादशपदार्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् ॥" तिलोसीतिमंत्रे स्वधानमःपितृशब्दा न वाच्याः ॥ किंतु प्रेतशब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम् ॥ तूष्णीमर्घ्यदानम् ॥ अमुष्मै स्वाहेति प्रेतनाम्ना पाणिहोमः॥ बह्वृचानां सर्वैकोद्दिष्टेष्वग्नौकरणमस्त्येव ॥ अन्यशाखिनां तु तन्निषेधः नाग्नेकः पिंडः ॥ निनयनमंत्रे ऊहः ॥ अनुमंत्रणादिकं त्वमंत्रकम् ॥ अभिरम्यतामिति विसर्जनम् ॥ एवं नवश्राद्धवर्ज्यैकोद्दिष्टेषु ॥ नवश्राद्धं त्वमंत्रकं सर्वमिति नारायणवृत्तिः ॥ "उत्तानं स्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुधः ॥ न्युब्जं तु पार्वणं कुर्यात्तस्योपरि कुशान्न्यसेत् ॥" सपिंडीकरणांतानि प्रेतश्राद्धानि लौकिकाग्नावित्याश्वलायनमतम् ॥ नवश्राद्धानि संभवेऽन्नेन कुर्यादन्यथामान्नेन ॥ विघ्ने तु नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदंतरितं भवेत्तत्तदुत्तरश्राद्धेन सह तंत्रेण कार्यम् ॥ शावे आशौचांतरप्राप्तौ नवश्राद्धानि कुर्यादेव ॥ सहगमने तु नवश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं पृथक् ॥ "एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र

दीयते ॥" शूद्रस्यामंत्रकं सर्वं द्विजवन्नाम्नैव कार्यमिति स्मृत्यर्थसारः ॥ अत्र वयोधिकमरणे तत्कनिष्ठानां सपिंडानां दशमेहनि मुंडनं केचिदाहुः ॥ मातापित्राचार्येषु मृतेषु नियमेन दशमेहनि मुंडनम् ॥ एवं भर्तरि मृते स्त्रिया अपि मुंडन नियमः ॥ पुत्राणां सर्वेषां दाहकर्तुश्च दाहांगभूतं प्रथमदिने दशमदिने च मुंडनम् ॥ अत्र देशाचाराद्व्यवस्था ॥ अत्र रात्रिमृतस्य रात्रौ दाहेपि प्रातरेव मुंडनमित्युक्तम् ॥ ततो दशमेहनि पूर्ववस्त्रशुद्धिं गृहशुद्धिं च कृत्वा गौरसर्षपतिलकल्केन सशिरः स्नानं कृत्वा नववस्त्रे परिधाय परिहितवस्त्राणि प्रेतवस्त्राणि चान्त्यजेभ्य आश्रितेभ्यश्च दत्त्वा सुवर्णादीनि मंगलवस्तूनि स्पृष्ट्वा गृहं प्रविशेत् ॥

अर्घ्यसे हीन; गंध, धूप, माल्यसे वर्जित; मंत्र और अवनेजनसे हीन; नव श्राद्ध होताहै और आशीर्वाद, द्विगुणदर्भ जप और आशीर्वाद, स्वस्तिवाचन, पितृशब्द, अपना संबंध, और शर्म शब्द, पात्रोंका आलम्भ, और अवलम्भ, उल्मुक और उल्लेखन आदि, तृप्तिका प्रश्न, विकिर और शेषका प्रश्न, प्रदक्षिण और विसर्जन और सीमापर्यन्त गमन, ये अठारह पदार्थ प्रेतश्राद्धमें वर्जित हैं । और "तिलोसि०" इस मंत्रमें 'स्वधा' नमः' और 'पितृशब्द' को न कहै । किन्तु प्रेत शब्दके ऊहसे वा तूष्णीं तिलोंका आवपन करै । और तूष्णीं अर्घ्य दे । "अमुष्मै स्वाहा" इस मंत्रसे यह कर प्रेतके नामसे पाणिहोमको करै । बहवृचोंके मतमें सब एकोद्दिष्टोंमें अग्नौकरण अवश्य है । अन्य शाखावालोंके मतमें तो उसका निषेध है । नामसे एक पिण्ड, और निनयन मंत्रमें ऊह होताहै । अनुमंत्रण आदि तो विना मंत्र होते हैं । "अभिरम्यताम्०" यह कहकर विसर्जन करै । इसीप्रकार नवश्राद्धसे भिन्न, एकोद्दिष्टोंमें समझना । नव श्राद्ध तो संपूर्ण विना मंत्र होते हैं यह नारायणवृत्तिमें लिखा है । बुद्धिमान् मनुष्य, एकोद्दिष्टमें सदैव पात्रको सीधा रक्खै । और पार्वणमें औंधा कर दे । और उसके ऊपर कुशाओंको रक्खै । सपिंडीकरण पर्यंत, सब प्रेतश्राद्ध; लौकिक अग्निमें होते हैं । यह आश्वलायनका वचनहै । संभव हो तो नव श्राद्धोंको पक्व अन्नसे करै । नहीं तो आमान्नसे करै विघ्न आन पडे तो नवश्राद्ध वा मासिक, इनमेंसे जो २ छुट जाय उसको अगले श्राद्धके साथ तन्त्रसे करै । शवके आशौचमें दूसरा आशौच आन पडै तो नव श्राद्धोंको अवश्य करै सहगमनमें तो संपूर्ण नवश्राद्ध और सपिण्डीकरण पृथक् २ होतेहैं और एक ही वृषोत्सर्ग और एक ही गौ दीजाती है । शूद्रका शवकर्म दोनोंके नाम मंत्रसेही करना । यह स्मृत्यर्थसारमें लिखा है। यहां अवस्थासे अधिकके मरनेमें उससे कनिष्ठोंका दशमें दिन मुण्डन करै । यह कोई कहते हैं । माता, पिता, आचार्य इनके मरनेपर तो नियमसे दशमें दिन मुण्डन करावै । इसीप्रकार भर्ताके मरनेपर स्त्रीको भी मुण्डनका नियम है । सब पुत्रोंको और दाहके कर्ताको, दाहका अंग मुण्डन पहिले दिन होताहै । इसमें देशाचारसे व्यवस्था जाननी । यहां रात्रिके मृतका, रात्रिमें दाह होनेपर भी प्रातःकाल ही मुण्डन होताहै । यह पहिले कह आये हैं । फिर दशमें दिन पहिले वस्त्रोंकी शुद्धि और गृहकी शुद्धिको करिके सफेद सिरसों और तिलकी खलसे शिर सहित स्नान करके नवीन वस्त्रोंको धारकर पुराने वस्त्र और प्रेतके वस्त्रोंको अन्त्यज और आश्रितोंको देकर और सुवर्ण आदि मंगल वस्त्रोंका स्पर्श करिके घरमें प्रवेश करै ॥

अथास्थिक्षेपविधिः।

तत्रादौ संचयनदिनेस्थिस्थापनप्रकारः ॥ "प्रेतस्थाने बलिं दत्त्वा क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः ॥ प्रेतस्यास्थीनि गृह्णीयात्प्रधानांगोद्भवानि च ॥ पंचगव्येन संस्नाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्ट्य च ॥ प्रक्षिप्य मृन्मये भांडे नवे साच्छादने शुभे ॥ अरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थापयेदथ ॥ सूक्ष्माण्यस्थीनि तद्भस्म नीत्वा तोये विनिक्षिपेत् ॥ ततः संमार्जनं भूमेः कर्तव्यं गोमयांबुभिः ॥ पूजां च पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूर्ववच्चरेत् ॥ तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा तीर्थे वा जाह्नवीजले ॥ कश्चिच्च प्रक्षिपेत्पुत्रो दौहित्रो वा सहोदरः ॥ मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः ॥ अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ गंगातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शुभकर्मणः ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात् ॥ अस्तं गते गुरौ शुक्रे तथा मासे मलिम्लुचे ॥ गंगायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥" दशाहांतरास्थिप्रक्षेपे तु नास्तादिदोषः ॥ "दशाहाभ्यंतरे यस्य गंगातोयेस्थि मज्जति ॥ गंगायां मरणं यादृक्तादृक्फलमवाप्नुयात् ॥

अब अस्थियोंके क्षेपकी विधिको कहतेहैं। प्रथम संचयनमें अस्थियोंका स्थापन प्रकार यह है कि, प्रेतके स्थानमें बलिको देकर, दूधसे छिडककर, मौन होकर, प्रधान अंगके जो प्रेतके अस्थि; उनको ग्रहण करै। पंचगव्यसे स्नान कराकर; और रेशमके वस्त्रसे लपेटकर; और नवे ढके हुए शुद्ध मिट्टीके पात्रमें रखकर वनमें वा शुद्ध वृक्षकी जडमें भलीप्रकार स्थापन करै। छोटेछोटे अस्थि और उसकी भस्मको लेकर जलमें क्षेपण करै। फिर गोमय और जलोंसे भूमिका संमार्जन करै। पुष्प, धूप, आदिकी बलिसे भलीप्रकार पूजन करै। उस स्थानमेंसे शनैःशनैः लेकर कोई पुत्र, दौहित्र, वा सहोदर, तीर्थमें डाल दे। माता और पिताके कुलको छोडकर जो नराधम अन्यके अस्थियोंको ले जाय तो चांद्रायण करै। जिस शुभकर्मी मनुष्यके अस्थि गंगाजलमें फेंके जाते हैं उसकी सनातन ब्रह्मलोकसे पुनः आवृत्ति नहीं होती। गुरु, शुक्रके अस्तमें; मल मासमें; गंगामें अस्थियोंका निक्षेप न करै। यह गौतम कहतेहैं। दशाहके मध्यमें अस्थियोंका प्रक्षेप करै तो अस्त आदिका दोष नहीं। दश दिनके भीतर जिसके अस्थि गंगाजलमें डुबाये जाते हैं; उसको गंगामें मरणे समान फल मिलता है ॥

अथ तीर्थेस्थिक्षेपं कर्तुं तत्पूर्वांगविधिः।

यत्रास्थीनि निखातानि तां भूमिं सचैलस्नानपूर्वकं पृथग्गोमूत्रादिभिः प्रोक्षयेत् ॥ तत्र गायत्र्या गोमूत्रेण ॥ गंधद्वारामिति गोमयेन ॥ आप्यायस्वेति [illegible] ॥ दधिक्राव्ण इति दध्ना ॥ घृतंमिमिक्ष इति घृतेन ॥ उपसर्पेति चतसृणामृचां शंखः पितरस्त्रिष्टुप् ॥ भूप्रार्थनखननमृदुद्धरणास्थिग्रहणेषु क्रमेण विनियोगः ॥ ताभिर्ऋग्भिः क्रमेणास्थिग्रहणांतानि कर्माणि कृत्वा स्वयं जलाशये गृह्योक्तविधिना स्ना-

यात् ॥ ततोस्थिशुद्धिं कुर्यात् ॥ सा यथा ॥ अस्थीनि स्पृष्ट्वैतोन्विद्रामित्यु-चावृत्त्या पंचगव्यैः स्नात्वा स्पृष्ट्वैव दशस्नानानि कुर्यात् ॥ तत्र गायत्र्या-दिपंचमंत्रैर्गोमूत्रगोमयक्षीरदधिसर्पिःस्नानानि कृत्वा देवस्यत्वेति कुशोदकेन ॥ मानस्तोकेति भस्मना ॥ अश्वक्रांते रथक्रांते इति मृदा ॥ मधुवाता इति मधुना ॥ आपोहिष्ठेति शुद्धोदकेन च स्नायात् ॥ एवं दशस्नानानि कृत्वाऽस्थ्नां कुशैर्मार्जनं कुर्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ अतादेवा इत्यृक् ॥ अथ सप्तसूक्तानि ॥ एतोन्विंद्रं० ३ शुचीवो० २ नतमंहोन० ८ इति वा इति० १३ स्वादिष्ठयेति० १० ममाग्नेवर्चो० ९ कद्रुद्रायप्र० ९ ततो यदीयान्यस्थीनि तस्य कृतसपिंडीकर-णस्य पार्वणविधिना श्राद्धमस्थिक्षेपांगभूतं हिरण्येन कुर्यात् ॥ सक्तुना च पिंड-दानम् ॥ दशाहांतरास्थिक्षेपकरणे एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धम् ॥ ततस्तिलतर्पणं कृत्वा पुनः पंचगव्यपंचामृतशुद्धोदकैरस्थीनि प्रक्षाल्य यक्षकर्दमेनालिप्य पुष्पैः प्रपूज्याऽजिनकंबलदर्भभूर्जपत्रशाणपत्रताडपत्राणां क्रमेण सप्तधा संवेष्ट्य ताम्रसं-पुटे स्थापयेत् ॥ तत्र यक्षकर्दमलक्षणम् ॥ द्वादशकर्ष चंदनं कुंकुमं च षट् कर्षाः॥ कर्पूरश्चतुःकर्षा कस्तूरी चैतेषां मेलनायक्षकर्दमः ॥ ततोस्थिषु हेमरौप्यखंडानि मौक्तिकप्रवालनीलमणींश्च प्रक्षिप्य स्वसूत्रोक्तविधिना स्थंडिलाग्निप्रतिष्ठादि कृत्वा-ष्टोत्तरशतं तिलाज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ उदीरतांशंखः पितरस्त्रिष्टुप् ॥ अस्थिप्रक्षेपां-गतिलाज्यहोमे विनियोगः ॥ उदीरतामिति सूक्तस्य चतुर्दशऋग्भिः प्रत्यृचमाहुति-रित्येवं सूक्तस्य सप्तावृत्तिभिरवशिष्टदशाहुतीः प्रथमऋगावृत्त्येत्येवमष्टोत्तरशतं ति-लाऽऽज्याहुतीश्च जुहुयात् ॥ सवेष्टनास्थिसमुच्चययुत ताम्रसपुटमादाय तीर्थं गच्छे-त् ॥ तत्र नियमाः ॥ मूत्रपुरीषोत्सर्गकाले आचमनकाले च नास्थीनि धारयेत् ॥ शूद्रयवनांत्यजादिकां स्वहीनजातिमस्थिधारणकाले न स्पृशेदिति काशीखंडे ॥ ततस्तीर्थं प्राप्य तीर्थप्राप्तिनिमित्तकं स्नानादि विधायास्थीनि स्नापयित्वामुकगोत्र-स्यामुकशर्मणो ब्रह्मलोकादिप्राप्तयेऽमुकतीर्थेस्थिप्रक्षेपमहं करिष्ये इति संकल्प्य पलाशपर्णपुटे पंचगव्येनास्थीन्यासिच्य हिरण्यशकलमाल्यघृततिलमिश्रितास्थीनि मृत्पिंडे निधाय दक्षिणां दिशमेवेक्षमाणो नमोस्तु धर्मायेति वदंस्तीर्थे प्रविश्य ना-भिमात्रे जले स्थित्वा स मे प्रीतोस्त्वित्युक्त्वा तीर्थे क्षिपेत् ॥ ततः स्नात्वा जलाद्ब-हिरागत्य सूर्यं दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा विप्राय यथाशक्ति रजतं दक्षिणां दद्यात् ॥ अमु-कस्यास्थिक्षेपः कृतस्तत्सांगतार्थं रजतमिदं तुभ्यं संप्रददे॥ इत्यस्थिप्रक्षेपप्रकारः ॥

अब तीर्थमें अस्थिक्षेप करनेवालेको उसके पूर्वांगकी विधिको कहतेहैं । जहां अस्थि गाड रक्खे हों उस भूमिको सचैल स्नान करके गोमूत्र आदिसे पृथक् २ सींचे उसमें गायत्री पढ कर गोमूत्रसे, "गन्धद्वारां०" इस मन्त्रको पढकर गोमयसे, "आप्यायस्व०" इस मन्त्रको पढकर दूधसे, "दधिक्राव्णो०" इस मन्त्रको पढ दधिसे, "घृतंमिमिक्षे०" इस मन्त्रको पढ

कर धीसे, "उपसर्प०" इत्यादि चार ऋचाओंके शंख पितर हैं। त्रिष्टुप् छंद है। भूमिकी प्रार्थना, खोदना और मिट्टीका उद्धार और अस्थियोंके ग्रहणमें क्रमसे विनियोग है। इन ऋचाओंसे क्रमसे अस्थिग्रहणपर्यंत चार कर्मोंको करके, जलाशयमें स्वयं गृह्योक्त विधिसे स्नान करै। वह विधि ऐसे है कि, अस्थियोंका स्पर्श करके "एतोन्विन्द्रम्०" इन तीन ऋचाओंको पढकर पंचगव्योंसे स्नान करके स्पर्श करके ही दश स्नानोंको करै। उनमें गायत्री आदि पांच मंत्रोंसे गोमूत्र, गोमय, दूध, दही घीके स्नानोंको करिके "देवस्य त्वा०" इस मन्त्रसे कुशाके जलसे, "मानस्तोके०" इस मन्त्रको पढकर भस्मसे, "अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते०" इस मन्त्रको पढकर मिट्टीसे और " मधु वाता० " इस मन्त्रको पढकर मधुसे, "आपोहिष्ठा" इस मन्त्रको पढकर शुद्धोदकसे स्नान करै। इस प्रकार दश स्नानोंको करके अस्थियोंका कुशाओंसे मार्जन करै। उनके मन्त्र ये हैं कि "अतो देवा०" यह ऋचा और सात सूक्त, "एतोन्विद्रं"१, सूची वो० १, नतं महो न० ८, इति वा इति० १३, स्वादिष्ठया०, १० ममाग्ने वर्चो० ९ कद्रुद्राय० ९।" फिर जिसके अस्थि हैं उसका सपिण्डीकरण करलिया होय तो अस्थिक्षेपणके अंगरूप श्राद्धको पार्वणकी विधिसे सुवर्णसे करै। और सत्तुवोंसे पिण्डदान करै। दशाहके मध्यमें अस्थियोंका क्षेपकरै तो एकोदिष्टकी विधिसे श्राद्धकरै फिर तिलतर्पणको करके और पंचगव्य, पंचामृत, शुद्धोदकोंसे पुनः अस्थियोंका प्रक्षालन करके यक्षकर्दमसे लीपकर पुष्पोंसे पूजकर मृगचर्म, कंबल, दर्भ, भोजपत्र, शाणपत्र, ताडपत्र; इनसे सात प्रकारके क्रमसे लपेटकर ताम्रके संपुटमें स्थापनकरै। उसमें यक्षकर्दमका लक्षण यहहै। चन्दन बारह तोले; और कुंकुम बारह तोले, कपूर छह तोले, कस्तूरी चार तोले, इनके मेलसे यक्षकर्दम होताहै। फिर अस्थियोंमें सुवर्ण, चान्दीके टुकडे, मोती, मूंगा और नीलमणियोंको गेरकर अपने सूत्रमें कहीहुई विधिसे स्थण्डिलाग्निकी प्रतिष्ठा आदिको करके एकसौ आठ (१०८) तिल घीकी आहुतियोंसे होम करै। "उदीरतां शंखः पितरस्त्रिष्टुप्।" इसका अस्थिप्रक्षेपके अंग तिलाज्यहोममें विनियोग है। "उदीरताम्०" इस सूक्तकी चौदह (१४) ऋचाओंसे ऋचा ऋचाके प्रति आहुति होती है। इसप्रकार सूक्तकी सप्त आवृत्तियोंसे अर्थात् पुनः पुनः पढनेसे अवशिष्ट दश आहुति, प्रथम ऋचाकी आवृत्तिसे करै। इसप्रकार एकसौ आठ (१०८) तिल और घीकी आहुतियोंका होम करै। वेष्टन, अस्थियोंसे युक्तताम्रके संपुटको लेकर तीर्थपर चलाजाय। उसमें नियम ये हैं कि मूत्र और पुरीषके त्यागके और आचमनके समयमें अस्थियोंको न धारै; शूद्र, यवन, अन्त्यज, आदि जो अपनेसे हीनजाति है उनका स्पर्श अस्थियोंके धारण समयमें न करै; यह काशीखण्डमें लिखा है। फिर तीर्थपर पहुंचकर तीर्थकी प्राप्तिके निमित्त स्नान आदिको करके और अस्थियोंको स्नान कराकर 'मैं; अमुकगोत्र अमुकशर्माकी ब्रह्मलोक आदिकी प्राप्तिकेलिये अमुकतीर्थमें अस्थिक्षेपको करताहूं' यह संकल्प करके पलाशके पत्तोंके दोनोंमें पंचगव्यसे अस्थियोंको सींचकर सुवर्णका खण्ड, घी, तिल; इनसे मिश्रित अस्थियोंको मिट्टीके पिण्डमें रखकर दक्षिणदिशाको देखताहुआ और 'धर्मको नमस्कार है' यह कहताहुआ तीर्थमें प्रवेश करके नाभिमात्रजलमें स्थितहोकर 'वह मेरेपर प्रसन्नहो' यह कहकर तीर्थमें फैंकदे। फिर स्नान करके जलसे बाहिर आकर सूर्यको देखकर और हरिका स्मरण करके ब्राह्मणको यथाशक्ति चांदीकी दक्षिणा दे अमुकका जो अस्थिक्षेप किया है उसकी सांगताकेलिये यह रजत तुझे देताहूं। यह कहकर दक्षिणा दे॥ यह अस्थिक्षेपका प्रकार समाप्त हुआ॥

अथैकादशाहकृत्यम् ।

एकादशाहे प्रातरुत्थाय गृहानुलेपनं कृत्वा स्पृष्टसर्ववस्त्रक्षालनपूर्वकं सर्वसपिंडानां सचैलस्नानांते संध्यापंचमहायज्ञादिनित्यकर्माणि शुद्धिः ॥ एकादशाहे संगवकाले स्नानाच्छुद्धिरिति केचित् ॥ एकादशाहे कर्त्तुः पुत्रादेरपि पंचमहायज्ञाद्यधिकारः ॥ सपिंडानां दर्शवार्षिकादिश्राद्धेष्वप्यधिकारः ॥ नांदीश्राद्धमात्रं चतुःपुरुषसपिंडैः सपिंडीकरणात्प्राक् न कार्यम् ॥ ततो दशाहकर्मकारी मुख्यः कर्त्ता मुख्यो वा पुत्रादिः कर्ता वृषोत्सर्गाद्येकादशाहिकं सर्वं कर्म कुर्यात् ॥ "एकादशेह्नि प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः ॥ प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥" अत्र स्वयमेव सर्वं कुर्यान्न तु काम्यवृषोत्सर्गवदाचार्यं वरणम्॥ अयं गृहे न कार्यः॥ अयं द्वादशाहेप्युक्तः ॥ क्वचिन्मृताहेप्युक्तः ॥ "विषुवद्वितये चैव मृताहे बांधवस्य च" इति ॥ "वत्सराभ्यंतरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ॥ वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेत् ॥ वृषलक्षणं तु ॥ "लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पांडुरः ॥ श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥" अथवा श्वेतवर्णस्य मुखपुच्छादिश्यामत्वे नीलवृषत्वम् ॥ यद्वा सर्वश्यामस्य मुखादिश्वेतत्वे नीलवृषत्वम्॥ केचिद्वृषाभावे मृद्भिः पिष्टैर्वा वृषं कृत्वा होमादिविधिना वृषोत्सर्ग इत्याहुः ॥ यथोक्तालाभे यथालाभो द्विवर्ष एकवर्षो वा वृषो वर्षाधिकाश्चतस्र एका वा वत्सतरी स्यात् ॥ प्रयोगस्तु स्वस्वसूत्रानुसारी ग्राह्यः ॥ "सव्येन पाणिना पुच्छं समादाय वृषस्य तु ॥ दक्षिणेनाप आदाय सतिलाः सकुशास्ततः ॥" प्रेतगोत्रं समुच्चार्यामुकस्मै वृष एष मया दत्तस्तं तारयित्विति वदन्सहेमजलं भूमावुत्सृजेत् ॥ "विधारयेन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् ॥ न दोहयेच्च तां धेनुं न च कश्चन बंधयेत् ॥" पतिपुत्रवत्याः सुवासिन्या न वृषोत्सर्गः ॥ तत्स्थाने एका पयस्विनी गौर्देया ॥ पतिपुत्रयोरन्यतराभावे तु स्त्रीणामपि वृषोत्सर्गः ॥ सहगमने तु स्त्रीणां वृषोत्सर्गस्थाने गौरेव ॥ वृषोत्सर्गसांगतार्थं तिलोदकुंभधेनुवस्त्रहिरण्येति पंचदानानि ॥ आशौचांतरं चेदेकादशाहे प्राप्नोति तदा वृषोत्सर्गादिकमाद्यमासिकं शय्यादिदानानि च कुर्यादेव ॥ "एवं कृते वृषोत्सर्गे फलं वाजिमखोदितम् ॥ यमुद्दिश्योत्सृजेन्नीलं स लभेत परां गतिम् ॥ वृषोत्सर्गः पुनात्येव दशातीतान्दशापरान्" ॥ इति वृषोत्सर्गः ॥

अब एकादशाहके कृत्यको कहते हैं कि, एकादशाहको प्रातःकाल उठकर, घरके लेपनकी करके स्पर्शकिये सम्पूर्ण वस्त्रोंको प्रक्षालन पूर्वक सब पिंडांके सचैलस्नानके अंतमें संध्या, पंचमहायज्ञ, आदि नित्यकर्ममें शुद्धि होतीहै। एकादशाहमें संगवके समय स्नानसे शुद्धि होती है, यह कोई कहतेहैं। एकादशाहके कर्ता पुत्रआदिको भी पांच महायज्ञ आदिका अधिकार है

सपिंडोंको दर्श, वार्षिक, आदि श्राद्धोंमें भी अधिकार है । नांदीश्राद्धमात्रको तो चारपीढीके मनुष्य सपिंडीकरणसे पहिले न करैं । फिर दशाहकर्मका कर्ता अमुख्य अधिकारी वा मुख्य पुत्र आदि कर्ता एकादशाहके वृषोत्सर्ग आदि सब कर्मको करै । एकादशाहके दिन जिस प्रेतका वृषोत्सर्ग नहीं होता उसको सौ श्राद्ध देनेपर भी प्रेतत्व सुस्थिर रहताहै । इसको स्वयं ही करै । काम्यवृषोत्सर्गके समान आचार्यवरणको न करै । इसको घरमें न करै । यह द्वादशाहमें भी कहाहै । दोनों विषुवसंक्रांतियोंमें और बांधवके मरणदिनमें करै । वर्ष-दिनके भीतर करनेयोग्य मातापिताके वृषोत्सर्गकर्ममें वृद्धिश्राद्धको न करै । और अन्यसमयमें होय तो करले । वृषका लक्षण तो यह है कि, जो वर्णमें रक्त हो मुख और पुच्छपर पीला हो खुर और सींगोंमें सफेद हो उसको नीलवृष कहतेहैं । अथवा सफेदवर्णके जिसवृषके मुख पुच्छ आदि श्याम हों वह नीलवृष कहाता है । यद्वा संपूर्ण श्यामका मुख आदि सफेद होय तो नीलवृष कहाता है । कोई तो वृषके अभावमें मिट्टी वा चूर्णसे वृषको बनाकर होम आदिकी विधिसे वृषोत्सर्गको कहतेहैं । यथोक्त वृष न मिलै तो जैसा मिलै एक वर्षका वा दो वर्षका वृष हो और वर्षसे अधिककी चार वा एक वत्सतरी होतीहैं । प्रयोगकी विधि तो अपने २ सूत्रके अनुसारकी ग्रहण करनी । सव्यहाथसे वृषको पुच्छको ग्रहण करके और दक्षिण हाथसे तिलकुशासहित जलोंको ग्रहण करके प्रेतके गोत्रका उच्चारण करके अमुकको यह वृष मैं दिया उसको संसारसे तारो यह कहताहुआ सुवर्ण और जलको भूमिमें छोडदे । उस वृषको न कोई पकडै और न हल आदिमें जोतै और न उस धेनुको कोई दुहै और न बांधै । पति और पुत्रवती जो सुहागिन है उसका वृषोत्सर्ग नहीं होता उसके स्थानमें दूधदेतीहुई एक गौको दे । पति और पुत्र दोनोंमें एकके अभावमें स्त्रियों-का भी वृषोत्सर्ग होताहै । सहगमनमें तो स्त्रियोंको वृषोत्सर्गके स्थानमें गौ ही दे । वृषो-त्सर्गकी सांगताके लिये तिल, उदकका कुंभ, धेनु, वस्त्र, सुवर्ण, ये पांच दान हैं । जब एकादशाहमें दूसरा आशौच होजाय तब वृषोत्सर्ग आदिको और आद्यमासिक और शय्या-दान आदिको अवश्य करै । इसप्रकार वृषोत्सर्ग करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल होताहै । और जिसके नामसे वृषोत्सर्ग कियाजाताहै वह परमगतिको प्राप्त होताहै । और वृषोत्सर्ग; दश पिछले, और दश अगले पुरुषोंको पवित्र करताहै । यह वृषोत्सर्ग समाप्त हुआ ॥

अथैकादशाहे महैकोद्दिष्टम् ।

इदं च महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धेभ्यो भिन्नमेव ॥ अतएवेदं करिष्यमाणसर्वै-कोद्दिष्टप्रकृतिभूतमित्युच्यते ॥ इदं च पाकेनैव ॥ अत्र सति संभवे विप्रो भोज-यितव्यः ॥ असंभवेऽग्नौ होमः ॥ "ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथवा" इत्यु-क्तेः ॥ "श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखच्छेदस्तथैव च ॥ स्नपनाभ्यंजने दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम् ॥" ततः क्षणपाद्यासनार्घ्यगंधपुष्पाच्छादनान्येव दद्यात् ॥ नात्र धूपदीपौ ॥ एकोद्दिष्टं देवहीनमित्युक्तेरेक एव विप्रः ॥ द्विवैव च निमंत्रणम् ॥ एकमर्घ्यपात्रम् ॥ स्वधाशब्दनमःशब्दपितृशब्दा न संति ॥ तेन प्रत्तः प्रेत इमाँल्लोकान्प्रीणयाहि न इति मंत्रोऽर्घ्यपात्रे ॥ नाभिश्रवणम् ॥ सर्वं प्राचीना

वीतिनैव कार्यम् ॥ देवकार्याभावात् अग्नौकरणविकल्पः ॥ तत्र च पाणिहोमेपि न तस्य भक्षणं किंत्वग्नौ प्रक्षेपः ॥ एक एव पिंडः ॥ अनुमंत्रणादि सर्वममंत्रकम् ॥ स्वदितमिति तृप्तिप्रश्नः कात्यायनानाम् ॥ अक्षय्यस्थाने उपतिष्ठतामिति वदेत ॥ अभिरम्यतामिति विसर्जनम् ॥ अभिरताः स्मेति विप्रप्रतिवचनम् ॥ श्राद्धशेषभोजनं नास्ति ॥ अंते स्नानम् ॥ नवश्राद्धैकोद्दिष्टे तु सर्वममंत्रकमित्युक्तम् ॥ विप्राभावे त्वग्नावेकोद्दिष्टं यथा ॥ अग्नौ पायसं श्रपयित्वाज्यभागान्तेऽग्नेरग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाग्नौ प्रेतमावाह्य गंधाद्यैः संपूज्य पृथ्वी ते पात्रमित्यादिनान्नं संकल्प्योदीरतामवर इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्ताभिर्ऋग्भिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिंडदानादिश्राद्धं समापयेदिति ॥ एवमेतदेकोद्दिष्टं स्त्रीणामपि ॥ अथाद्यमासिकम् ॥ तस्य मासादौ मासिकं कार्यमिति वचनान्मृताहो मुख्यः कालः ॥ स चाशौचप्रतिबंधादतिक्रांत इति तदंते एकादशेह्नि तत्कार्यम् ॥ अतएव "ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेथवा ॥ पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिह" इति प्रथममासिकार्थं द्वितीयावृत्तिरुक्ता ॥ अत्र च द्विरावृत्तिर्भवेदिहेत्युक्तिः षोडशमासिकानां सपिंड्यधिकारार्थमपकृष्य कर्तव्यानां द्वादशाहादौ करणपक्षे योज्या ॥ तेषामेकादशाह एव करणपक्षे तु षोडशमासिकानां षोडशावृत्तय एकं महैकोद्दिष्टमिति सप्तदशावृत्त्यापत्त्या द्विरावृत्तिर्भवेदिहेत्युक्तेरसंगतेः ॥ तथा च सपिंड्यधिकारार्थापकृष्याणां मासिकानां द्वादशाहे करणे एकादशे महैकोद्दिष्टोत्तरमतिक्रांतमाद्यमासिकं करिष्ये इति संकल्प्याद्यमासिकमात्रमन्नेनामेन वा विप्रे दर्भवटौ वा प्रेतमावाह्य कार्यं न त्वाद्यमासिकस्याग्नौ होमः॥ पुनश्च भोजयेद्विप्रमिति विशेषवचनात् ॥ इत्थं च महैकोद्दिष्टमेकमाद्यमासिकमेकमित्येकोद्दिष्टस्य द्विरावृत्तिः स्पष्टैव ॥ ये त्वाद्यमासिकातिरेकेण महैकोद्दिष्टस्य द्विरावृत्तिं वदंति ते भ्रांताः ॥ अत्र केचिदाद्याब्दिकस्यापि मृताह एव काल इति तस्याप्यतिक्रांतत्वादेकादशाहे आद्यमासिकमाद्याब्दिकं च तंत्रेण करिष्ये इति ॥ संकल्प्य द्वयमपि तंत्रेण कार्यमित्याहुः ॥ अन्ये तु ॥ "मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते" इति वचनाद्द्वितीयवर्षारंभे प्रथमाब्दिकमिति नाब्दिकस्यैकादशाहेनुष्ठानमित्याहुः ॥ एवं त्रिपक्षे सपिंडीकरणपक्षे एकादशाहे आद्यमासिकमूनमासे ऊनमासिकं द्वितीयमासारंभे द्वितीयमासिकं पक्षत्रये त्रैपक्षिकं चैकोद्दिष्टविधिना कृत्वावशिष्टद्वादशमासिकान्यपकृष्य तथैव कृत्वा सपिंडीकरणम् ॥ एवं पक्षांतरेषूह्यम् ॥ एकादशाहे तंत्रेण षोडशमासिकापकर्षपक्षे महैकोद्दिष्टोत्तरं देशकालौ संकीर्त्यातिक्रांतमाद्यमासिकं सपिंड्यधिकारार्थमपकृष्योनमासिकादीन्यूनाब्दिकांतानि पंचदशमासिकानि च तंत्रैणैकोद्दिष्टविधिना करिष्ये इति संकल्प्य तंत्रेण षोडशापि कुर्यात् ॥ केचिन्मते त्वतिक्रांते आदिमासिकाद्याब्दिके ऊनादिमासिकानि चेत्यादि संकल्पः ॥ मासिकानि तु ॥ आद्यमासिकं १ ऊनमासिकं २ द्वि-

द्वितीयमासिकं ३ त्रैपक्षिकं ४ तृतीयमासिकं ५ चतुर्थमासिकं ६ पंचममासिकं ७ षष्ठं ८ ऊनषाण्मासिकं ९ सप्तममासिकं १० अष्टमं ११ नवमं १२ दशमं १३ एकादशं १४ द्वादशं १५ ऊनाब्दिकं १६ चेति क्रमेण ज्ञेयानि ॥

अब एकादशाहमें महैकोद्दिष्टको कहते हैं।यह महैकोद्दिष्ट षोडशश्राद्धोंसे भिन्नही है। इसीसे यह आगे करनेयोग्य सब एकोद्दिष्टोंका प्रकृतिरूप कहाजाता है। और यह पाकसे ही करना। इसमें संभव होय तो ब्राह्मणको भोजन करावै न होसकै तो अग्निमें होमको करै। क्योंकि यह वचन है कि, आद्यश्राद्धमें ब्राह्मणको जिमावै वा अग्निमें होम करै। श्मश्रुकर्म (मुंडन) और नखोंका छेदन इनको तो करै और ब्राह्मणको विधिपूर्वक स्नान उबटना दे। फिर क्षण, पाद्य, आसन, अर्घ्य, गंध, पुष्प, आच्छादन; इनको ही दे। इसमें धूप दीपक न दे। 'एकोद्दिष्ट देवहीन होताहै' इस वचनसे एक ही ब्राह्मण होताहै और दिनमें ही निमंत्रण होताहै, एक अर्घ्यपात्र, स्वधाशब्द, नमःशब्द, पितृशब्द इसमें नहीं हैं ॥ तिससे "प्रत्तः प्रेत इमाँल्लोकान्प्रीणयाहिनः" इस मंत्रका ऊह अर्घ्यपात्रमें होताहै । न अभिश्रवणहै सब कर्मको अपसव्यसे ही करै क्योंकि इसमें देवकार्यका अभाव है। अग्नौकरणमें विकल्प है । उसमें पाणिहोममें भी उसके अन्नका भक्षण नहीं किंतु अग्निमें प्रक्षेप है । एक ही पिंड है। अनुमंत्रण आदि संपूर्ण विनामंत्र होतेहैं।'अच्छा भोजन किया' यह तृप्तिका प्रश्न है कात्यायनोंके मतमें अक्षय्यके स्थानमें "उपतिष्ठताम्" इस पदको कहै। "अभिरम्यताम्" यह कहकर विसर्जन करै। "अभिरताः स्मः" यह ब्राह्मणोंका वचन है।श्राद्धशेषका भोजन इसमें नहीं है अंतमें स्नान करै। नवश्राद्धरूप एकोद्दिष्टमें तो सब कर्म अमंत्रक होताहै यह कह आये। ब्राह्मणके अभावमें अग्निमें एकोद्दिष्ट तो ऐसे है कि अग्निमें पायसको पकाकर आज्यभागके अन्तमें पहिले अग्निमें श्राद्धके प्रयोगको करके अग्निमें प्रेतका आवाहन करके गंध आदिसे पूजकर, "पृथिवीते पात्रं०" इत्यादि मंत्रसे अन्नका संकल्प करके चारबार पढीहुई "उदीरतामवर०" इन आठ ऋचाओंसे बत्तीस आहुतियोंको देकर पिंडदान आदि श्राद्धको समाप्त करै। यह महैकोद्दिष्ट स्त्रियोंकाभी इसीप्रकार होताहै। अब आद्यमासिकको कहते हैं। उसका, मासकी आदिमें मासिकको करै इस वचनसे मरणका दिन ही मुख्य कालहै और वह आशौचके प्रतिबंधसे अतिक्रांत होगया (बीतगया) इससे आशौचके अन्तमें एकादशाहमें करना। इसीसे आद्यश्राद्धमें ब्राह्मणको भोजन करावे वा अग्निमें होमको करै । और फिर भी भोजन ब्राह्मणको करावै इसमें द्विरावृत्ति होती है इस वचनमें प्रथममासिकके लिये द्विरावृत्ति कहीहै । और इसमें यहां द्विरावृत्ति होती है यह कहनेसे षोडशमासिकश्राद्धोंको सपिंडीके अधिकारार्थ अपकर्षसे करनेयोग्योंकी द्वादशाहआदिमें करनेके पक्षमें वह द्विरावृत्ति समझनी। उनका भी जब एकादशाहमें ही करनेका पक्षहै तब तो षोडशमासिकोंकी षोडश (१६) आवृत्ति होती हैं; एकमहैकोद्दिष्ट अधिक होताहै। अतिक्रांत आद्यमासिकको करताहूं 'यह संकल्प करके' आद्यमासिक मात्रको पकान्नसे वा आमान्नसे करै कि, ब्राह्मणमें वा दर्भके बटुकमें प्रेतका आवाहन करके करै। आद्यमासिकका होम अग्निमें नहीं होता क्यों कि, यह वचन है कि पुनः भी ब्राह्मणको भोजन करावै। इसप्रकार करनेसे एकमहैकोद्दिष्ट और एक आद्यमासिक इसप्रकार एकोद्दिष्टकी दोआवृत्ति स्पष्ट ही होती हैं। जो आद्यमासिकके विना भी महैकोद्दिष्टकी दो आवृत्ति-

योंको कहते हैं वे भ्रांतहैं । इसमें कोई यह कहतेहैं कि वार्षिकका भी मृताह ही काल है; क्यों कि, वह भी अतिक्रांत होगया इससे एकादशाहमें 'आद्यमासिक, और आद्यवार्षिकको तन्त्रसे करताहूं' यह संकल्प करके दोनों श्राद्धोंको भी तंत्रसे करै । अन्य तो यह कहते हैं कि, मासकी आदिमें मासिकको करै और वर्षके बीतनेपर वार्षिकको करै इस वचनसे दूसरे वर्षके प्रारंभमें प्रथम वार्षिक करै । इससे वार्षिकको एकादशाहमें न करै । इसीप्रकार त्रिपक्षमें सपिंडीकरणके पक्षमें एकादशाहमें आद्यमासिकको; ऊनमासमें ऊनमासिकको; द्वितीयमासके आरंभमें द्वितीयमासिकको, तीसरेपक्षमें त्रैपाक्षिकको; एकोदिष्टकी विधिसे करके और अवशिष्ट द्वादशमासिकोंको भी तिसीप्रकार अपकर्षसे करके सपिंडीकरण करै । इसीप्रकार अन्यपक्षोंमें भी समझना । एकादशाहमें तन्त्रसे जब षोडशमासिकोंका अपकर्षका पक्ष है । तब महैकोद्दिष्टके पीछे देशकालका कीर्तन करके 'सपिंडीके अधिकारार्थ अतिक्रांत आद्यमासिकको और अपकर्षसे न्यूनमासिक आदि न्यून आब्दिक पर्यंत पंचदश (१५) मासिक श्राद्धोंको, तन्त्रसे एकोदिष्टकी विधिसे करताहूं' यह संकल्प करके षोडश श्राद्धोंको भी तन्त्रसे करै । किसीके मतमें तो 'अतिक्रांत आद्यमासिक और आद्य आब्दिकको ऊनमासिक आदिको करताहूं' यह संकल्प है । मासिक तो ये हैं, कि आद्यमासिक १, ऊनमासिक २, द्वितीयमासिक ३, त्रैपक्षिक ४, तृतीयमासिक ५, चतुर्थमासिक ६, पंचममासिक ७, षष्ठमासिक ८, ऊनषाण्मासिक ९, सप्तममासिक १०, अष्टम ११, नवम १२, दशम १३, एकादश १४, द्वादश १५, ऊनाब्दिक १६; ये क्रमसे जानने ॥

अथैकादशाहे रुद्रगणश्राद्धम् ।

तच्चैकादशरुद्रोद्देशेन रुद्ररूपप्रेतोद्देशेन वा रुद्रोद्देशपक्षे सव्येन ॥ तद्रूपप्रेतोद्देशपक्षेऽपसव्येन ॥ वीरभद्रः १ शंभुः २ गिरिशः अजैकपात ४ अहिर्बुध्न्यः ५ पिनाकी ६ अपराजितः ७ भुवनाधीश्वरः ८ कपाली ९ स्थाणुः १० भगः ११ इत्येकादश रुद्राः॥ अत्र शक्तेनैकैकरुद्रनाम्नैको विप्र इत्येकादश विप्रा भोज्या अशक्तेन तु सर्वोद्देशेनैक एव विप्रो भोज्यः ॥ आमान्नान्येकादशैकं वामान्नं देयम् ॥ अत्र श्राद्धे पिंडदानार्घ्याग्नौकरणविकिराणामभावः ॥ एवमेवाष्टवसुश्राद्धम् ॥ एतच्च कृताकृतम् ॥ वसुनामान्यप्यन्यत्र ॥ एतदेकादशाहकृत्यं त्र्यहाशौचे चतुर्थदिने कर्त्तव्यम् ॥ द्वितीयदिने प्रथमदिने वास्थिसंचयनम् ॥ पंचमदिने सपिंडीकरणम् ॥ अत्रैकादशाहे द्वादशाहे वा पददानानि कार्याणि तेन प्रेतस्य मार्गे सुखगतिः ॥ "आसनोपानहच्छत्रं मुद्रिका च कमंडलुः ॥ यज्ञोपवीताज्यवस्त्रं भोजनं चान्नभाजनम् ॥ दशकं पदमेतत्स्यात्पदान्येवं त्रयोदश ॥ देयानि वा यथाशक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत ॥ अन्नं चैवोदकुंभं चोपानहौ च कमंडलुः ॥ छत्रं वस्त्रं तथा यष्टिं लोहदंडं च दापयेत् ॥ अग्नीष्टिकां प्रदीपं च तिलांस्तांबूलमेव च ॥ चंदनं पुष्पमालां चोपदानानि चतुर्दश ॥" वैतरणीधेनूत्क्रांतिधेनुमोक्षधेन्वादिदानानि गोभूम्यादिदशदानानि तिलपात्रदानादीनि मरणकाले न कृतानि चेदेकादशाह-

दौ पुत्रादिभिः प्रेतोद्देशेन कार्याणि ॥ "अश्वं रथं गजं धेनुं महिषीं शिबिकादिकम् ॥ शालग्रामं पुस्तकं च कस्तूरीकुंकुमादिकम् ॥ दासीं रत्नं भूषणादिशय्यां छत्रं च चामरम् ॥ दद्याद्वित्तानुसारेण प्रेतस्तत्तत्सुखं लभेत् ॥"

अब एकादशाहमें रुद्रगणश्राद्धको कहते हैं । वह एकादशरुद्रोंके नामसे वा रुद्ररूपप्रेतके नामसे होता है । रुद्रके उद्देशका जब पक्ष है तब सव्यसे और तिस २ रुद्ररूपप्रेतोद्देशपक्षमें अपसव्यसे वीरभद्र १, शंभु २, गिरिश ३, अजैकपात् ४, अहिर्बुध्न्य ५, पिनाकी ६, अपराजित ७, भुवनाधीश्वर ८, कपाली ९, स्थाणु १०, भग ११; ये एकादश रुद्र हैं । यहां समर्थ होय तो एक २ रुद्रके नामसे एक २ ब्राह्मण इसप्रकार एकादश ब्राह्मण जिमावै । असमर्थ तो सबके उद्देशसे एकही ब्राह्मणको जिमावै आमान्नसे एकादशश्राद्धको करै वा आमान्नको दे । इस श्राद्धमें पिण्डदान अर्घ्य, अग्नौकरण, अर्घ्य, अग्नौकरण, विकिर, इनका अभाव है ऐसे ही अष्ट वसुश्राद्ध होता है इसको करै चाहे न करै वसुओंके नाम भी अन्यग्रंथोंमें हैं । यह एकादशाहका कृत्य तीन दिनके आशौचमें चौथेदिन करना । दूसरे दिन वा पहिले दिन अस्थिसंचयन करै पांचमें दिन सपिण्डीकरण करै । यहां एकादशाहमें वा द्वादशाहमें पददान करै । तिससे प्रेतकी मार्गमें सुखसे गति (गमन) होती है । आसन, उपानह, छत्री, मुद्रिका, कमंडलु, यज्ञोपवीत, घी, वस्त्र, भोजन, अन्नभोजन, इन दशोंका एक पद होताहै ऐसे त्रयोदशपद होते हैं । वा यथाशक्ति पद देने तिससे यह प्रेत प्रसन्न होता है । अन्न और उदकुंभ, उपानह, कमंडलु, छत्र, वस्त्र, और यष्टि, लोहदंडको; दे । अंगीठी, प्रदीप, तिल, तांबूल, चंदन, पुष्पमाला; ये चौदह उपदान हैं । वैतरणी धेनु, उत्क्रांतिधेनु, मोक्षधेनु, आदि, गौ, भूमि आदिक दान और तिल पात्रदान आदि दशदान; मरणसमयमें न किये होयँ तो एकादशाह आदिमें प्रेतके नामसे पुत्रआदि करैं । अश्व, रथ, हस्ति, धेनु, महिषी, शिबिका, आदि शालग्राम, पुस्तक, कस्तूरी, कुंकुम आदि, दासी, रत्न, भूषण आदि, शय्या, रत्न, चामर; इनको वित्तके अनुसार दे तो प्रेत उससे सुखको प्राप्त होताहै ॥

अथ शय्यादानम् ।

"एकादशाहे शय्याया दाने एष विधिः स्मृतः ॥ तेनोपभुक्तं यत्किंचिद्वस्त्रवाहनभाजनम् ॥ यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् ॥ प्रेतं च पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा ॥ पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥ तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् ॥ दंतपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ॥ हंसतूलिप्रतिच्छन्नां शुभगंडोपधानिकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तां गंधधूपादिवासिताम् ॥ उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् ॥ तांबूलकुंकुमक्षोदकर्पूरागरुचंदनम्॥दीपकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ॥ पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि ॥ शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् ॥ भृंगारकरकाद्यं तत्पंचवर्णं वितानकम् ॥ संपूज्य द्विजदांपत्यं नानाभरणभूषितम् ॥ उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो वदे-

त ॥'' दानमंत्रस्तु ॥ '' यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया ॥ शय्या तस्याप्यशून्यास्तु तथा जन्मनिजन्मनि ॥ तस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च ॥ शय्या तस्याप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥ दत्त्वैवं तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥'' पाद्मे तु ॥ ''अस्थिललाटकं गृह्य सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ॥ भोजयेद्द्विजदांपत्यं विधिरेष सनातनः'' इत्युक्तम् ॥ नैतन्महाराष्ट्रदेशादिशिष्टैराद्रियते ॥ यद्देशे तदाचारस्तत्रास्तु ॥ ''स्वर्गे पुरंदरपुरे लोकपालालये तथा ॥ सुखं वसत्यसौ जंतुः शय्यादानप्रभावतः ॥ आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातंकवर्जितः ॥ प्रेतशय्याप्रतिग्राही न भूयः पुरुषो भवेत ॥ गृहीतायां तु तस्यां वै पुनः संस्कारमर्हति ॥ ''

अब शय्यादानको कहते हैं । एकादशाहमें शय्याके दानकी यह विधि कही है । उसने जो कुछ वस्त्र, वाहन, भोजन; भोगा हो और जो २ उसका इष्ट हो उस २ सबको दे । और सुवर्णके पुरुषरूप प्रेतको उस शय्यापर स्थापन करै । ब्राह्मणको पूजकर जैसी शास्त्रमें कही है वैसी ही शय्या देनी तिससे उत्तमकाष्ठकी उसी दृढशय्याको बनावे कि, जो शय्या हाथीदाँतके पत्रोंसे चीती हो, रमणीक और सुवर्णकी पट्टियोंसे शोभित हो, और हंसके समान रूईसे ढकी हो, और शुभ जिसका उपधान (तकिया) हो और आच्छादनकी पट्टी (सोड) से युक्त हो; गंध, धूप आदिसे सुशोभित हो । शय्याके शिरकी तरफ घीसे भरे कलशको रक्खै । ताम्बूल, कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन, दीपक, उपानह, छत्र, चमर, आसन, भाजन, और सप्तधान्य; इनको भक्तिसे शय्याके पार्श्वमें स्थापन करै । और शय्यापर स्थित मनुष्यका जो जो उपकारक हो शृंगार, आदर्श, पांचवर्णका चंदोआ उनको भी रक्खै । ब्राह्मण और पत्नीकी पूजा करके अनेक प्रकारके भूषणोंसे भूषित करै । शय्यापर बैठाकर मधुपर्क दे । दानका मंत्र यह है कि, "जैसे कृष्णकी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं है इसीप्रकार उस प्रेतकी भी शय्या जन्म २ में अशून्य रहै । जैसे केशव, शिवकी शय्या अशून्य है इसीप्रकार उस प्रेतकी भी शय्या जन्मजन्ममें अशून्य रहै ।" इसप्रकार उस ब्राह्मणको सम्पूर्ण शय्या आदि देकर विसर्जन करै । पद्मपुराणमें तो यह कहाहै । कि, मस्तकके अस्थिको लेकर और पीसकर पायसमें मिलाकर द्विजदम्पतीको खवावै । यह सनातनविधि है इसका महाराष्ट्र आदि शिष्ट आदर नहीं करते । जिस देशमें वह आचार है वह रहो । स्वर्गके विषै, इन्द्रके पुरमें और लोकपालोंके पुरोंमें शय्यादानके प्रभावसे वह जन्तु वसता है । और प्रलयपर्य्यंत पातकसे वर्जित टिकता है । और शय्याको जो लेता है वह फिर पुरुष नहीं होता । और प्रेतशय्याका प्रतिग्रह ले तो पुनः संस्कारयोग्य होता है ॥

अथोदकुंभः ।

''एकादशाहात्प्रभृति घटस्तोयान्नसंयुतः ॥ दिनेदिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ॥ यस्य संवत्सरादर्वाक्सपिंडीकरणं भवेत् ॥ मासिकं चोदकुंभं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुंभं विना नराः ॥ दारिद्रा दुःखिनस्तात

भ्रमंति च भवार्णवे ॥ यावदब्दं च यो दद्यादुदकुंभं विमत्सरः ॥ प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥" इदं चोदकुंभश्राद्धं सपिंडीकरणात्प्रागेकोद्दिष्टविधिना ॥ सपिंड्युत्तरं तु पार्वणविधिना ॥ इदं त्रयोदशदिनादारभ्य कर्तव्यमिति भट्टाः ॥ अत्र पिंडदानं कृताकृतम् ॥ देवहीनं चैतत् ॥ " अदैवं पार्वणश्राद्धं सोदकुंभमधर्मकम् ॥ कुर्यात्प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात्संकल्पविधिनान्वहम् ॥" इति वचनात् ॥ प्रायश्चित्तांगविष्णुश्राद्धवदत्र श्राद्धे सर्वे श्राद्धधर्मा न संति किंतु वाचनिकमात्राः ॥ तेन सांकल्पविधिना संकल्पक्षणपाद्यासनगंधाच्छादनांतपूजनान्नपरिवेषणांते पृथ्वीतेपात्रमित्याद्युक्त्वा ॥ एष उदकुंभ इदमन्नं दत्तं चेत्यादि त्यागविधिः ॥ अंते तांबूलदक्षिणादि ॥ नात्र ब्रह्मचर्यापुनर्भोजनादिनियमाः ॥ वृद्धिनिमित्तेन मासिकापकर्षे उदकुंभश्राद्धानामप्यपकर्षः ॥ प्रेतश्राद्धत्वात् ॥ प्रत्यहं सोदकुंभान्नप्रदानाशक्तेनाप्येकस्मिन्दिने तावद्भिरामान्नैरुदकुंभैश्च तावदामान्नोदकुंभनिष्क्रयेण वाप कृष्योदकुंभश्राद्धानि कार्याणि ॥ अब्दमध्ये प्रत्यहमुदकुंभश्राद्धं कुर्वतो मध्ये आशौचप्राप्तौ तावच्छ्राद्धानां लोप एव दर्शादिवत् ॥ आशौचोत्तरं प्रतिबंधादकरणे तदुत्तरोदकुंभेन सह तंत्रतयातिक्रांतोदकुंभानां प्रयोगः ॥ अतिक्रांतोदकुंभश्राद्धान्यद्यतनोदकुंभश्राद्धं च तंत्रेण करिष्ये इति संकल्पः ॥ तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम् ॥ "प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः ॥ यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये ॥ कुर्याद्याम्यमुखं पित्र्ये अद्भिः संकल्प्य सुस्थिरम्" इति ॥

अब उदकुम्भके दानको कहते हैं । एकादशाहसे लेकर वर्षदिनपर्यंत अन्नसहित जलका घट प्रतिदिन प्रेतके निमित्त पुत्र दे । और जिसका सपिंडीकरण वर्षदिनसे पाहिले होता है उसको भी मासिक और वर्षदिनमें उदकुम्भ देना योग्य है।सैंकडों श्राद्धोंके देनेसे भी उदकुम्भके विना मनुष्य दरिद्री और दुःखित हे तात ! संसाररूपी समुद्रमें भ्रमते हैं । मत्सरताको त्यागकर जो मनुष्य उदकुम्भका दान अन्नसहित प्रेतके लिये करताहै वह अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त होताहै । इस उदकुंभश्राद्धको सपिण्डी करणसे पहिले एकोद्दिष्टविधिसे करै । और सपिंडीसे पीछे पार्वणविधिसे करै । यह त्रयोदशदिनसे लेकर करना यह भट्ट कहतेहैं । इसमें पिंडदान करै चाहे न करै । और यह देवहीन होता है । क्योंकि, यह वचनहै कि, विश्वेदेवाओंसे रहित उदकुम्भसे श्राद्धधर्मोंके विनाही प्रतिवार्षिकश्राद्धसे लेकर संकल्पविधिसे पार्वणश्राद्धको प्रतिदिन, करै । प्रायश्चित्तके अङ्गरूप विष्णुश्राद्धके समान इस श्राद्धमें, समस्तश्राद्धधर्म नहीं किन्तु वचनमात्र हैं । इससे यहां संकल्पविधिसे संकल्पक्षणमें पाद्य, आसन, गन्ध, वस्त्र; दानपर्यंत पूजन और अन्नके परिवेषणके अन्तमें "पृथिवीतेपात्रं०" इत्यादि मन्त्रको पढकर यह जलका कुंभ, यह अन्न; इसप्रकार तत् तत् द्रव्यको दे । यह त्यागकी विधि है । फिर अन्तमें ताम्बूल आदिको दे । यहां ब्रह्मचर्य, पुनर्भोजन; आदि नियम नहीं । वृद्धिके निमित्तसे मासिकश्राद्धका अपकर्ष होनेपर उदककुंभ श्राद्धोंका भी अपकर्ष होताहै । क्योंकि येभी प्रेतके श्राद्ध हैं । जो

प्रतिदिन; जलघटसहित अन्नदान करनेमें असमर्थ होय तो एक ही दिन वर्षदिन कितना आमान्न और जलघटोंसे अथवा इनकी प्रत्याम्नाय मोलरूप दक्षिणासे अपकर्षसे उदककुंभ-श्राद्धोंको करै। जो वर्षदिनके मध्यमें प्रतिदिन जलके कुंभका दान करता हो यदि उसके मध्यमें आशौच होजाय तो जितने दिन आशौच रहै उतने श्राद्धोंका दर्शश्राद्धके समान लोप ही हो जाता है। और जो आशौचके पीछे किसी प्रतिबन्धके वश न किये जायँ तो उससे पीछे जो जलघटका दान किया जाय उनके साथही तन्त्ररीतिसे पीछे अवलंघन किये जल-घटोंका दान करै। उसका संकल्प इस प्रकार है कि, 'मैं पीछेके दान जो नहीं किये उन अतिक्रान्त घटोंके श्राद्ध और आजके घटदानके श्राद्धको तन्त्रसे करताहूं।' तिसी प्रकार प्रथमवर्षमें प्रतिदिन दीपदान कहाहै। उसमें ये प्रमाणरूप वचन हैं कि, मनुष्योंको प्रथम व-र्षमें प्रेतको सुखकी प्राप्तिके लिये मार्गके विषै प्रातिदिन दीपदान देना। पूर्व वा उत्तरकी तरफ जिसका मुख हो, ऐसे दीपकको देवालय वा किसी ब्राह्मणके घर देनेका संकल्प जलसे करके पिताको यममार्गमें जानेका सुख करै॥

अथ षोडशमासिकानि।

"द्वादशप्रतिमास्यानि ऊनमासं त्रिपक्षकम्॥ ऊनषाण्मासिकं चोनाब्दिकं चा-पीति षोडश॥" अत्र मतांतराणि सिंधौ॥

अब षोडशमासिक श्राद्धोंको कहते हैं। प्रतिमासके द्वादश, ऊनमासिक, त्रैपाक्षिक, ऊन-षाण्मासिक, और ऊनाब्दिक; ये सोलह श्राद्ध कहाते हैं। इसमें अन्य मत भी निर्णयसि-न्धुमें कहे हैं॥

अथैषां कालाः।

"मासादौ मासिकं कार्यमाद्यं त्वेकादशेहनि॥ एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा॥ ऊनमासिकमूनाब्दमूनषाण्मासिकं चरेत्॥ त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे चोनमास्यं द्वाद-शेह्नि वा॥" तत्रोनमासिकोनषाण्मासिकोनाब्दिकानामेकदिनेनोनपक्षे पंचम्यां मृतस्य तृतीयायां द्वाभ्यामूनत्वपक्षे द्वितीयायां त्रिभिर्न्यूने प्रतिपदायामनुष्ठानमिति केचित्॥ माधवस्तूनषाण्मासिकमूनाब्दिकं च मृताहात्पूर्वेद्युः कार्यमित्याह॥ त्रैपक्षिकं त्रिपक्षेतीते मृताहे कार्यम्॥ अत्राहिताग्नेर्विशेषः त्रैपक्षिकपर्यंतानि संस्का-रतिथौ ततः पराणि प्रत्याब्दिकं च मृततिथौ॥ तेनाद्यं दाहादेकादशेह्नि त्रिमा-सादूर्ध्वं संस्कारे त्वेवं भाति॥ त्रिपक्षपर्यंतानि दाहतिथौ कृत्वा पराण्यतिक्रांतानि मृततिथौ प्राप्तमासिकेन सह कार्याणीति॥ ऊनश्राद्धेषु वर्ज्यानि त्रिपुष्करेषु नंदा-सु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने॥ चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु द्विपुष्करे॥" त्रिपु-ष्करद्विपुष्करयोगयोर्लक्षणं प्रागुक्तम्॥ आद्यमासिकमाद्याब्दिकं चैकादशेह्नीत्येकं मतम्॥ आद्यमासिकमेवैकादशेह्नि प्रथमाब्दिकं तु द्वितीयवर्षारंभ एवेत्यपरमतमि-त्युक्तम्॥ एतानि षोडशश्राद्धानि वर्षांतसपिंडनपक्षे उक्तेषु स्वस्वकालेष्वेकोद्दिष्टविधि-ना कार्याणि॥ द्वादशाहादिकालेषु सपिंडनापकर्षपक्षे एकदिने एवापकृष्य युगपदेको-

दिष्टविधिना कार्याणि ॥ "श्राद्धानि षोडशादत्त्वा न तु कुर्यात्सपिंडनम् ॥" इति षोडशश्राद्धैर्विना सपिंडनेधिकाराभावबोधनात् ॥ एतानि पक्वान्नेनामान्नेन वा कार्याणि ॥ पाकपक्षे युगपत्करणे सर्वेषामेक एव पाको विप्रा अर्घ्याः पिंडाश्च षोडश ॥ एतानि द्वादशाहादौ सपिंडनात्पूर्वं कृतान्यपि पुनः सपिंड्युत्तरं स्वस्वकाले पार्वणविधिना कार्याणि ॥ "यस्य संवत्सरादर्वाक् विहिता तु सपिंडता ॥ विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश ॥ अर्वाक्संवत्सराद्यस्य सपिंडीकरणं कृतम् ॥ षोडशानां द्विरावृत्तिं कर्यादित्याह गौतमः ॥" इत्यादिवचनात् ॥ षोडशानां द्विरावृत्तित्वं चैकादशाहसपिंडनपक्षे ज्ञेयम् ॥ तत्राद्यमासिकस्य कालसत्त्वात् ॥ द्वादशाहे सपिंडनपक्षे तु पंचदशानां द्विरावृत्तिः ॥ त्रिपक्षे सपिंडनपक्षे आद्यमासिकोनमासिकद्वितीयमासिकानां स्वस्वकाले कृतत्वादपकृष्य कृतानामेव पुनरावृत्तिविधानात्तेषां कालाभावाच्च त्रयोदशानामेव पुनरावृत्तिः ॥ एवमन्यपक्षेष्वपि यथासंभवमूह्यम् ॥ ये तु द्वादशाहे सपिंडनं कृत्वा त्रयोदशाहादावाद्यमासिकसहितानां षोडशानां पुनरावृत्तिं कुर्वंति ते भ्रांताः ॥

अब इनके कालको कहते हैं । मासकी आदिमें मासिकको करै । एकादश दिनमें आद्यको, और एक दो तीन दिन वा त्रिभागसे ऊनमें ऊनमासिक, और ऊनाब्दिक और ऊनषाण्मासिकको करै । और त्रैपाक्षिकको तीसरे पक्षमें करै । अथवा ऊनमासिकको बारमें दिन करै, उसमें ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक इनको एक दिनकी ऊन पंचमी में जो मराहै उसके तृतीयाके दिन और दोसे ऊनपक्षमें द्वितीयाके दिन और तीनसे ऊनपक्षमें प्रतिपदाके दिन करै, यह कोई कहते हैं । माधवने तो यह कहा है कि, ऊनषाण्मासिकको मरणके दिनसे पहिले दिनमें करै और त्रैपाक्षिकको तीनपक्ष बीतनेपर मरणके दिनमें करै । इसमें अग्निहोत्रीका यह विशेष है कि, त्रैपक्षिक पर्यंतके श्राद्ध संस्कार (दाह) की तिथिमें और उससे परले श्राद्धोंको और प्रतिवर्षके श्राद्धोंको मरणकी तिथिमें करै और आद्यको दशाहसे ग्यारहवें दिन करै तीनमासके पीछे संस्कार होय तो ऐसा प्रतीत होता है कि,त्रिपक्ष पर्यंतके श्राद्धोंको दाहकी तिथिमें करके प्राप्तमासिकके संग सबको करै । ऊन श्राद्धोंमें ये वर्जित हैं कि, त्रिपुष्कर योग, नंदातिथि, सिनीवाली, शुक्रवार और चतुर्दशी, कृत्तिका, और द्विपुष्कर; इनमें ऊनश्राद्धोंको न करै । त्रिपुष्कर और द्विपुष्करके लक्षणको पहिले कह आये । आद्यमासिक और आद्य आब्दिकको एकादशाहमें करै । यह एकमत है । और केवल आद्यमासिकको एकादशाहमें करै । और प्रथमाब्दिकको तो दूसरे वर्षके आरंभमें ही करै । यह दूसरा मत है यह कह आये । वर्षके अन्तमें जब सपिण्डी करनेका पक्ष है तब ये षोडशश्राद्ध पूर्वोक्त अपने २ कालमें एकोद्दिष्टविधिसे करने । और द्वादशाह आदि कालमें जब सपिण्डीके अपकर्षका पक्ष है तब एक दिनमें ही अपकर्ष करिके एकबारही एकोद्दिष्टविधिसे करने । षोडशश्राद्धोंके विना दिये सपिण्डी न करै । इस वचनसे षोडशश्राद्धोंके विना सपिण्डी करनेका अधिकार नहीं है इनको पकान्न वा आमान्नसे करै । पाकका जब पक्ष है और एकवार करनेमें सबका पाक एकही होता है और ब्राह्मण, अर्घ्य और पिण्ड सोलह होते हैं । ये द्वादशाह

आदिमें सपिण्डीसे पहिले कर भी लिये होयँ तो भी सपिण्डीसे पीछे अपने २ कालमें पुनः करने क्योंकि, इत्यादि वचन हैं कि वर्षदिन से पहिले जिसकी सपिण्डी हो गई हो विधिसे ऊन षोडशश्राद्धोंको पुनः करै वर्षदिनसे पहिले जिसकी सपिण्डी कर दईहो उसके सोलह श्राद्धोंकी द्विसवृत्ति करै यह गौतमने कहा है। षोडशश्राद्धोंकी द्विरावृत्ति तो एकादशाहको सपिण्डीके पक्षमें जाननी; क्योंकि, उसमें आद्यमासिकका काल है। द्वादशाहको सपिण्डीके पक्षमें तो पंद्रहकी द्विरावृत्ति होती है त्रिपक्षमें सपिण्डीके पक्षमें तो आद्यमासिक ऊनमासिक द्वितीयमासिक ये तो अपने अपने कालमें कर ही लिये हैं और द्विरावृत्ति उनकी ही होती है जो अपकर्ष करिके किये जाते हैं। और उनका काल भी नहीं है। इससे तेरह श्राद्धों की ही पुनः आवृत्ति समझनी। इसी प्रकार अन्यपक्षोंमें यथासंभव समझना। और जो द्वादशाहमें सपिण्डीको करिके त्रयोदशाह आदिमें आद्यमासिक सहित षोडशश्राद्धोंकी पुनः आवृत्तिको करते हैं वे भ्रान्त हैं ॥

अथाधिकमासे आवृत्तिविचारः ।

यदा मरणादारभ्य द्वादशमासमध्ये कश्चिदधिकमासः पतेत्तदा तन्मासस्थं मासिकश्राद्धमधिके शुद्धे मासे चेति द्विवारं कार्यमिति सप्तदश श्राद्धानि भवंति ॥ मलमासे मृतस्य तु एकादशाहे आद्यमासिकं कृत्वा द्वितीयमासमृततिथौ तत्पुनः कृत्वा किंचिदूने द्वितीयमासे ऊनमासिकं तृतीयमासारम्भे द्वितीयमासिकं सार्धद्विमासान्ते त्रैपक्षिकम् ॥ सपिंड्युत्तराण्यवशिष्टमासिकानि स्वस्वकाले एव कार्याणि चतुःपुरुषमध्ये सपिंडेषु नांदीश्राद्धप्राप्तौ तु तत्प्राप्तिमासे एवैकस्मिन्नेव दिने सर्वाण्यपकृष्य कार्याणि ॥ "प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिंडीकरण तथा ॥ अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुं नांदीमुखं द्विजम् ॥" इत्युक्तेः ॥ तत्रैकः पाकः षोडशश्राद्धपक्षे षोडश ब्राह्मणा अष्टचत्वारिंशत्पिंडाः पुरूरवार्द्रवविश्वेदेवार्थमेको विप्र इति सर्वेषामनुष्ठानम् ॥ एवं पक्षांतरेषु श्राद्धसंख्यानुसारेण विप्राद्यूह्यम् ॥ केचित्पाकभेदमाहुः ॥ उदकुंभश्राद्धानामप्यनुमासिकवत्प्रेतोद्देश्यकश्राद्धत्वात्तेषामप्यपकर्ष इत्युक्तम् ॥ वृद्धिं विनानुमासिकापकर्षे तु दोषमाहोशनाः ॥ "वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् ॥ स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति" इति ॥ चतुःपुरुषसपिंडेष्वाधानादि प्राप्तिनिमित्तोप्यपकर्षः कार्यः ॥ अत्र विशेषः पूर्वार्धे उक्तः ॥ यद्यन्मासिकं सूतकादिनातिक्रांतं भवेत्तत्तदुत्तरमासिकेन सह तंत्रेण कार्यमित्युक्तम् ॥

जब मरणसे लेकर द्वादशमासके मध्यमें कोई अधिकमास आनपडै तब उस मासके मासिकश्राद्धको अधिकमास शुद्धमासमें दुबारा करै। इसप्रकार सत्रह (१७) श्राद्ध होते हैं। मलमासमें मरनेवालेका तो एकादशाहमें आद्यमासिक श्राद्धको करके द्वितीयमासकी मृततिथिमें उसको फिर करना और कुछकम द्वितीयमासमें ऊनमासिक, तृतीयमासके आरंभमें द्वितीयमासिक, और अढाई महीनोंके अन्तमें त्रैपाक्षिक श्राद्धोंको करै। सपिण्डोके पीछे अवशिष्ट

मासिकोंको तो अपने २ कालमें ही करै । चार पीढियोंके मध्यमें नान्दीश्राद्ध आनपडै तो उसकी प्राप्तिके मासमें एक ही दिनमें सब श्राद्धोंको अपकर्ष करिके करै। क्योंकि, ऐसा वचनहै कि,नांदीमुख करनेवाला द्विज; संपूर्ण प्रेतश्राद्धोंको और सपिण्डीकरणको अपकर्ष करिके भी करै वहां एकपाक होताहै । और षोडशश्राद्धके पक्षमें सोलह ब्राह्मण; अठतालीसं (४८)पिंड; पुरूरवा और आर्द्रव नामके विश्वेदेवाओंके लिये एक ब्राह्मण इन सबको करै इसीप्रकार अन्य पक्षोंमें भी श्राद्धोंकी संख्याके अनुसार ब्राह्मण आदि समझने । कोई तो पाकभेदको कहतेहैं उदकुंभश्राद्ध भी अनुमासिक श्राद्धके समान प्रेतके निमित्तही श्राद्ध हैं इससे उनका अपकर्ष होता है । यह पहिले कह आये । वृद्धिश्राद्धके विना अनुमासिकके अपकर्षमें तो उशना ऋषिने दोष कहा है कि वृद्धिश्राद्धके विना जो प्रेतश्राद्धोंको अपकर्षसे करता है वह श्राद्धका कर्ता पितरों समेत घोर नरकमें डूबता है । इससे चार पीढीतक सपिण्डोंमें गर्भाधान आदिकी प्राप्तिके निमित्तसे भी अपकर्ष करना । इसमें विशेष पूर्वार्द्धमें कह आये । जो जो मासिक सूतक आदि से अतिक्रांत हो जाय उस उस को अगले मासिकके संग एकतन्त्रसे करै। यह कह आये ॥

अथ सपिंडीकरणविचारः ।

तत्र सपिंडनकालः ॥ "नासपिंड्याग्निमान्पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत् ॥" इति वचनात्पित्रादीनां मात्रादीनां त्रितयमध्येन्यतममरणे साग्निको द्वादशाहे सपिंडनं कृत्वागामिदर्शे पिंडपितृयज्ञादिकं कुर्यात् ॥ अत्र स्मार्ताग्निमानपि साग्निको ग्राह्य इति भाति ॥ तस्यापि पिंडपितृयज्ञावश्यकत्वात् ॥ साग्नेः प्रेतस्य तु त्रिपक्ष एव ॥ "प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात्कर्तानग्निर्यदा भवेत् ॥ सपिंडीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके" इत्युक्तेः ॥ अत्र साग्निः श्रौताग्निमानेव ॥ द्वयोः साग्नित्वे द्वादशाह एव ॥ "साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतो वाप्यग्निमान्भवेत् ॥ द्वादशाहे तदा कार्यं सपिंडीकरणं पितुः" इत्युक्तेः ॥ द्वयोरप्यनग्नित्वे त्वनेके कालाः ॥ "सपिंडीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् ॥ अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णे संवत्सरेथवा ॥ एकादशे मासि षष्ठे त्रिमासे वा त्रिपक्षके ॥ मासांते द्वादशे वाह्नि कुर्याद्वैकादशेऽहनि ॥ यदहर्वृद्धिरापन्ना तदहर्वेति निश्चितम् ॥" अत्र वृद्धिनिमित्तापकर्षो निरग्नेरेवोक्तस्तथापि साग्नैरपि संभवे योज्यः ॥ अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम् ॥ सीमंतादिसंस्कारेषु वृद्धिश्राद्धस्य लोप एव कार्यो न तु तदर्थं सपिंडनापकर्ष इति केचित् ॥ अन्ये तु गर्भाधानपुंसवनादिष्वन्नप्राशनांतेषु संस्कारेष्वकरणे दोषोक्तेरावश्यकेषु वृद्धिश्राद्धस्याप्यावश्यकत्वात्सपिंडनापकर्षः कार्य एव ॥ तथा च चतुःपुरुषसपिंडेषु सपिंडीकरणाभावे गर्भाधानादिकमपि न कार्यमित्याहुः ॥ तेन पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ प्राप्तायामप्यपकर्षः सपिंडीकरणानुमासिकादीनां सिद्धः ॥ एवमावश्यकवृद्धियुतकर्मप्राप्तौ कनिष्ठः पुत्रो वा भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वान्यः सपिंडो वा शिष्यो वा गौणकर्तापि कुलप्राप्तवृद्धिसिद्ध्यर्थं सपिंडनाद्यपकर्षं कुर्यात् ॥ तत्र च कृते मुख्यस्य पुत्रादेर्न पुनःकरणम् ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे पुनः

करणाभावात् ॥ ये वा भद्रं दूषयंति स्वधाभिरितिदोषश्रुतेः ॥ वृद्धिं विना गौणाधिकारिणा सपिंड्यादिकरणे तु मुख्याधिकारिणा पुत्रादिना पुनरावर्तनीयम् ॥ एकादशाहांतकर्मणस्तु न पुनरावृत्तिरित्युक्तम् ॥ तत्रावश्यकपदे नानन्यगतिकं वृद्धिकर्म ग्राह्यम् ॥ तेन सगतिकेष्टापूर्तादौ सगतिकोपनयनविवाहादौ च नापकर्षः ॥ अगतिके च विवाहादावप्यपकर्ष इति व्यवस्था योज्या ॥ "आनंत्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ॥" अत्र कुलधर्मपदेन वृद्धिश्राद्धयुतं कर्म ग्राह्यम् ॥ न तु पंचमहायज्ञदेवपूजाश्राद्धादि ॥ अस्य वर्णधर्मत्वेन नित्यत्वात्सपिंडीकरणनिमित्तकप्रतिबंधायोगात् ॥ सपिंडीकरणात्पूर्वं पंचमहायज्ञादिधर्मो न कार्य इति क्वापि स्मृतिवचनेनुपलंभाच्च ॥ एतेन सपिंडीकरणाभावे सपिंडेषु देवपूजाश्राद्धादिधर्मलोपं वदंतो निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः ॥ अत्र द्वादशाहपदेनाशौचसमाप्त्युत्तरदिनं ग्राह्यं तेन त्रिदिनाशौचे पंचमदिने सपिंडीकरणम् ॥ द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम् ॥ "सपिंडीकरणं कुर्यात्कालेषूत्तरभाविषु ॥" इदमुत्तरकालविधानं साग्निनिरग्निसाधारणम् ॥ "सपिंडीकरणं श्राद्धमुक्तकाले कृतं न चेत् ॥ हस्तार्द्रारोहिणीभे वानुराधायां च तच्चरेत् ॥" इदमपि साधारणम् ॥ स्मृत्यर्थसारे वर्षांतसपिंडनपक्षे वर्षांत्यदिने पूर्वं संवत्सरविमोक्षश्राद्धं कृत्वा सपिंडनं च कृत्वा परेद्युर्मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम्॥ इति कालविचारः ॥ तच्च सपिंडनं पुत्रे विदेशस्थेपि सति नान्यः कुर्यात् एवं ज्येष्ठपुत्रे विदेशस्थेपि न कनिष्ठः कुर्यात् ॥ षोडशश्राद्धानि तु ज्येष्ठासंनिधाने कनिष्ठेन कार्याणि ॥ पुनर्ज्येष्ठेन न कार्याणि ॥ आहिताग्निः कनिष्ठोपि सपिंडनं कुर्यादेव ॥ वृद्धिनिमित्ते तु कनिष्ठादिभिरपि सपिंडनं कार्यमित्युक्तम् ॥ वृद्धिं विना कनिष्ठपुत्रेण कृतेपि सपिंडने ज्येष्ठपुत्रेण पुनः कार्यम् ॥ आहिताग्निना पितृयज्ञार्थं कृते सपिंडनेपि ज्येष्ठेन पुनः कार्यमिति भाति ॥ तत्र पुनः करणे प्रेतशब्दो न वाच्यः ॥ "देशांतरस्थपुत्राणां श्रुत्वा तु वपनं भवेत् ॥ दशाहं सूतकं चैव तदंते च सपिंडनम् ॥"

अब सपिण्डी करनेके विचारको कहते हैं । उसमें सपिण्डीका काल यह है कि असपिंड अग्निहोत्री पुत्र, पितृयज्ञको न करै । इस वचनसे पिता आदि तीन, माता आदि तीनके मध्यमें कोई मरजाय तो अग्निहोत्री द्वादशाहको सपिण्डी करके अगले दर्शमें पिण्डपितृयज्ञ आदिको करै । इसमें स्मार्त अग्निहोत्री भी साग्निक लेना; यह हमें भासता है । क्योंकि उसको भी पिण्डपितृयज्ञ आवश्यक है । अग्निहोत्री सपिंडकी सपिण्डी त्रिपक्षमें ही होती ह । क्यों कि ऐसा कहा है कि, प्रेत अग्निहोत्री हो और कर्ता अग्निहोत्री न होय तो उसकी सपिंडी तीसरे पक्षमें करै । इसमें अग्निहोत्री श्रौताग्निवाला ही लेना । दोनों अग्निहोत्री होयँ तो द्वादशाहमें ही सपिण्डी होती है । क्यों कि, ऐसा वचन है कि जब कर्ता भी साग्निक हो

और प्रेत भी अग्निमान् होय तो पिताकी सपिण्डी द्वादशाहको करै। दोनों अग्निहोत्री न होंय तो सपिण्डी करनेके अनेक काल हैं। कि अग्निहोत्रीसे भिन्न यजमान अग्निहोत्रसे भिन्नकी सपिण्डीको वर्षदिनके पूर्ण होनेपर करै। अथवा एकादशमासमें छठे वा तीसरे मासमें वा त्रिपक्षमें मासके अन्तमें द्वादशाहमें वा एकादशाहमें करै। और जिस दिन वृद्धिश्राद्ध आन पडे उस दिन करै। यह निश्चित है। यहां वृद्धिके लिये अपकर्ष अग्निहोत्रीसे भिन्नकोही कहा है। तथापि सम्भव होय तो अग्निहोत्रीके लिये ही जानना यहां वृद्धिपदसे मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह मात्र, लेने। सीमंत आदि संस्कारोंमें वृद्धिश्राद्धका लोप ही करना। उसके लिये सपिण्डनका अपकर्ष नहीं करना। यह कोई कहते हैं। अन्य तो यह कहते हैं कि गर्भाधान पुंसवन आदि अन्नप्राशनपर्यंत संस्कारोंमें वृद्धिश्राद्धके न करनेमें दोष कहा है। इससे आवश्यक इन श्राद्धोंमें भी वृद्धिश्राद्ध आवश्यक है। इससे सपिण्डीका अपकर्ष करना। तिससे चार पीढीतकके सपिंडोंमें सपिण्डीकरण किये विना गर्भाधान आदि भी न करने। तिससे पितामहके मरनेमें पौत्रको वृद्धि प्राप्त होजाय तो सपिण्डीकरण और अनुमासिक आदिका अपकर्ष सिद्ध हुआ। इसीप्रकार आवश्यक वृद्धिसे युक्त कर्मकी प्राप्तिमें कनिष्ठपुत्र, भ्राता, भ्राताका पुत्र वा अन्यसपिंड, शिष्य; इनमेंसे कोई गौणकर्ता भी कुलमें प्राप्तवृद्धिकी सिद्धिके लिये सपिण्डन आदिके अपकर्षको करै। उसके करनेपर मुख्य पुत्र आदि पुनः उसको न करै क्यों कि, वृद्धिके निमित्त अपकर्षमें पुनः करना नहीं है। जो स्वधासे भद्र (मङ्गल) कर्मको दूषित करते हैं वे अधम हैं यह दोष सुना है। वृद्धिके विना गौण अधिकारी सपिण्डी आदिको करले तो मुख्य अधिकारी पुत्र आदिको पुनः करना। एकादशाहपर्यंत कर्म आदिकी पुनः आवृत्ति करनी। यह पूर्व कह आये। उसमें आवश्यक पदसे वह वृद्धिकर्म लेना कि जिसकी अन्यगति न हो। तिससे जिनकी अन्यगति है ऐसे इष्टापूर्त और उपनयन विवाह आदिमें अपकर्ष नहीं होता और जिनकी और गति नहीं ऐसे विवाह आदिमें भी अपकर्ष होता है यह व्यवस्था समझनी। कुलके धर्म अनंत हैं और पुरुषोंकी अवस्थाका क्षय होता है और शरीर सदा स्थित नहीं इससे सपिंडीकरणके लिये द्वादशाह ही श्रेष्ठ है। यह कुलधर्मपदसे वृद्धिश्राद्ध जिसमें हो वह कर्म लेना। पंचमहायज्ञ, देवपूजा, श्राद्ध आदि नहीं लेने। क्योंकि, यह वर्णोंके धर्म हैं इससे नित्यकर्म है तो भी सपिंडीकरणके निमित्तोंके प्रतिबंधक नहीं है। और सपिंडीकरणसे पहिले पंचमहायज्ञ आदि धर्मको न करै। यह कहीं भी स्मृतियोंके वचनमें नहीं मिलता। इससे सपिंडी करनेके विना सपिंडोंमें देवपूजा, श्राद्ध, आदि धर्मके लोपको जो कहते हैं वे निर्मूल होनेसे उपेक्षा करने योग्य हैं। यहां द्वादशाह पदसे आशौचसे उत्तरदिन लेना। तिससे तीन दिनके आशौचमें पांचमें दिन सपिंडीकरण करना। द्वादशाह आदि कालोंमें प्रमादसे नहीं किये सपिंडीकरणको उत्तर (आगे) आनेवाले कालोंमें करै यह उत्तरकालका विधान साग्निक और निरग्निकोंके लिये साधारण है अर्थात् दोनोंका है। सपिंडीकरणश्राद्ध उक्तकालमें न किया होय तो हस्त, आर्द्रा, रोहिणी, अनुराधा; इन नक्षत्रोंमें उसको करै। यह भी साधारण ही है। स्मृत्यर्थसारमें वर्षके अंतमें सपिंडीके पक्षमें वर्षके अंतके दिनमें पहिले संवत्सरविमोक्षश्राद्धको करके और सपिंडीको करके परले दिन मृताहमें वार्षिकको करै, यह कह आये। यह कालका विचार समाप्त हुआ। उस सपिंडनको पुत्रके विदेशमें स्थित होने-

पर भी अन्य न करै इसीपकार ज्येष्ठपुत्रके परदेशमें स्थित होनेपर कनिष्ठपुत्र न करै । षोडश श्राद्ध तो ज्येष्ठके समीप न होनेपर कनिष्ठकोभी करने योग्य है । अग्निहोत्री तो कनिष्ठ भी सपिंडीको अवश्य करै । वृद्धिरूपनिमित्तमें तो कनिष्ठ आदि भी सपिंडीको करै; यह कह आये । वृद्धिके विना तो कनिष्ठपुत्र पुनः करै अग्निहोत्रीने पितृयज्ञके लिये सपिंडीके किये पर भी ज्येष्ठपुत्र पुनः करै यह हमें प्रतीत होता है । वहां पुनः करनेमें प्रेतशब्दको न कहना । देशांतरमें स्थितपुत्रोंका पिताके मरनेको सुनकर मुंडन होता है । और दशदिनका सूतक और सूतकके अंतमें सपिंडन होताहै ॥

अथ व्युत्क्रममृतौ ।

"मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः ॥ तेन देयास्त्रयः पिंडाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥ तेभ्यश्च पैतृकः पिंडो नियोक्तव्यस्तु पूर्ववत् ॥ मातर्यथा मृतायां तु विद्यते च पितामही ॥ प्रपितामहिपूर्वस्तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः ॥" एवं प्रपितामहजीवने तत्पित्रादिभिः कार्यः ॥ यत्तु "व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिंडता इति तन्मातृपितृभर्तृभिन्नविषयम् ॥ प्रपितामहादिभिः पितुः सपिंडने कृते पश्चात्पितामहमरणेपि पुनः पितामहेन सह पितुः सपिंडनं न कार्यम् ॥ यदा तु पितुः सपिंडनात्प्राक् पितामहो मृतस्तदा पितामहसपिंडनं कृत्वा पितामहादिभिः सह पितृसपिंडनं कार्यम् ॥ यदा च पितुर्मरणोत्तरं पितामहः प्रपितामहो वा मृतस्तयोश्च पुत्रांतरं सपिंडनाधिकारिदेशांतरे तिष्ठति तदा दाहाद्येकादशाहांतमात्रं कर्म कृत्वा सपिंडनहीनाभ्यामपि पितामहप्रपितामहाभ्यां सह पितुः सपिंडनं कुर्यात् ॥ पितामहप्रपितामहयोः पुत्रांतराभावे तु पौत्रः प्रपौत्रो वा तयोः सपिंडनं कृत्वैव पितुः सपिंडनं कुर्यात् ॥ पितामहस्य पुत्रांतराभावे पौत्रेण सपिंडनषोडशानुमासिकांतमेव कर्म कार्यम् ॥ पितामहवार्षिकादिकं तु नावश्यकम् ॥ इच्छया पितामहवार्षिकादिकरणे तु फलातिशयः ॥ पितृदशाहं कुर्वन्यद्दिने पुत्रो मृतस्तदा तत्पुत्रः स्वपितुरौर्ध्वदेहिकं कृत्वा पितामहौर्ध्वदेहिकं पुनः सर्वमावर्तयेत् ॥ अतीते दशाहे तु न पुनरावृत्तिः ॥ पुत्रांतराभावे पितामहसपिंडनोत्तरं पितृसपिंडनमित्युक्तम् ॥ अशक्तिवशात्पित्रानुज्ञातेन पौत्रेण पितामहदशाहकर्मण्यारब्धे पश्चात्पितृमृतौ पित्राशौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहौर्ध्वदेहिकं कुर्यात् ॥ प्रक्रांतत्वात्पितृदशाहादिकर्मापि कुर्यात्प्राप्तत्वात् ॥

अब व्युत्क्रमसे मरणमें कहते हैं । कि, जिसका पिता मरजाय और पितामह विद्यमान हो वह प्रपितामहसे लेकर तीन पिंडोंको दे । और उनमें ही पूर्वके समान पिताके पिंडको मिला दे । माता मरगई हो और पितामही विद्यमान होय तो वहां भी प्रपितामहीपूर्वक यही विधि करनी इसीप्रकार प्रपितामहके जीवनमें उसके पिता आदिके संग सपिंडी करै । जो किसीने यह कहा है कि व्युत्क्रमसे मरणेमें सपिंडीको न करै वह माता, पिता, भर्ता; इनसे भिन्नके विषयमें है प्रपितामह आदिके संग पिताकी सपिंडी करनेपर पीछे पितामहके मरनेपर भी

फिर पितामहके संग पिताकी सपिंडीको न करै । और जब पिताकी सपिंडीसे पहिले पितामह मरगया हो तब पितामहकी सपिंडीको करके पितामह आदिके संग पिताकी सपिंडीको करै । और जब पिताके मरणेके पीछे पितामह वा प्रपितामह मरगया हो और उनका अन्यपुत्र जो सापडीका अधिकारी है वह परदेशमें हो तब दाह आदि एकादशाहपर्यंत कर्मके करके सपिंडीसे हीन भी पितामह प्रपितामहोंके संग पिताकी सपिंडीको करै । पितामह प्रपितामहोंका अन्यपुत्र न होय तो पौत्र वा प्रपौत्र उनके सपिंडनको करके ही पिताकी सपिंडीको करै । पितामहका अन्यपुत्र न होय तो पौत्र; सपिंडी, षोडशश्राद्ध, अनुमासिक पर्यंत कर्मको ही करै । पितामहका वार्षिक आदि तो आवश्यक नहीं है । इच्छासे पितामहके वार्षिक आदिको करै तो अधिकफल है । पिताके दशाहको करताहुआ यदि पुत्र मरजाय तो उसका पुत्र अपने पिताके और्द्ध्वदैहिक कर्मको करके फिर पितामहके संपूर्ण और्द्ध्वदैहिक कर्मकी आवृत्ति करै । दशाह वीतगये होयँ तो पुनः आवृत्ति नहीं होती । अन्यपुत्र न होय तो पितामहकी सपिंडीके पीछे पिताकी सपिंडी करै यह कह आये । असामर्थ्यके वशसे पिताने दीहै आज्ञा जिसको ऐसा पौत्र; पितामहके दशाह कर्मके प्रारंभ करनेपर पीछे पिता मरजाय तो पिताके आशौचमें ही पौत्र प्रारंभ किये हुये पितामहके और्द्ध्वदैहिकको करै । और प्राप्त हुये पिताके दशाह कर्मको भी करै ।

अथ स्त्रीषूच्यते ।

"पितामह्यादिभिः सार्धं मातरं तु सपिंडयेत् ॥" केचित्पितृमरणोत्तरं मातृमरणे पित्रैव सह मातृसपिंडनमाहुः ॥ दौहित्रः सपिंडनकर्ता चेन्मातामहेन सह सपिंडनमित्यपरे ॥ सहगमने तु भर्त्रैव सह सपिंडनम् ॥ येन केनापि सपिंडनेप्यन्वष्टक्यप्रातिवार्षिकादि श्राद्धेषु पितामह्यादिभिः सहैव मातुः पार्वणं कार्यम् ॥ अत्र केचित् स्वपुत्रसपत्नीपुत्रयोः पत्युश्चाभावे स्त्रीणां सपिंडनं नास्तीत्याहुः ॥ अत्रान्वारोहणे भर्त्रा सह पत्नीसंयोजनमिति पक्षे मतद्वयम् ॥ पितृपिंडस्य पितामहादिषु त्रिषु संयोजनं प्रथमं कृत्वा पश्चान्मातृपिंडं पितामहादिषु संयोजयेदित्येकः ॥ प्रथमं मातृपिंडं पित्रैव संयोज्य मातृपिंडेनैकीकृतं पितृपिंडं पितामहादिषु संयोजयेदित्यपरः पक्षः ॥ अत्र द्वितीयपक्ष एव युक्तः ॥ केचित्सहगमने एकदिनमरणे वा स्त्रियाः सपिंडनं नास्ति भर्तुः कृते सपिंडने भार्याया अपि कृतं भवतीति मतांतरमाहुः ॥ "सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तॄणाममंत्रकम् ॥ सपिंडीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च ॥" ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च व्युत्क्रममृतानां च सपिंडनं न कार्यमिति मतांतरम् ॥ अत्र सर्वत्र सपिंडनाभावपक्षो न शिष्टाचारे दृश्यते ॥ यतीनां सपिंडीकरणं नास्ति किंतु तत्स्थाने एकादशेह्नि पार्वणं कार्यम् ॥ इदं सपिंडीकरणश्राद्धं पार्वणैकोद्दिष्टरूपम् ॥ तेन पितामहादित्रयार्थं त्रयो विप्रा अर्घ्याः पिंडाश्च त्रयः ॥ प्रेतार्थमेको विप्रः पिंडोर्घ्यश्च ॥ देवार्थं द्वौ ॥ यद्वा पार्वणे एकः प्रेते एकः ॥ देवार्थमेको विप्रः ॥ अत्र कामकालौ विश्वेदेवौ ॥

प्रेतस्य पित्रादेरर्घ्यपात्रं पितामहाद्यर्घ्यपात्रत्रये संयोज्यम् ॥ एवं प्रेतपिंडोपि पितामहादिपिंडत्रये संयोज्यः ॥ पितृविप्रकरे होमः साग्नेरपि भवेदिह ॥ सपिंडीकरणश्राद्धमन्नेनैव कार्यम् ॥ न त्वामादिना ॥ अनुमासिकान्यप्यन्नेनैव कार्याणि ॥ "प्रेतः सपिंडनादूर्ध्वं पितृलोकं स गच्छति ॥ कुर्यात्तस्य च पाथेयं द्वितीयेह्नि सपिंडनात्" इति वचनात्त्रयोदशेह्नि पाथेयश्राद्धं कृत्वा पुण्याहवाचनादिकं कृत्वा वर्षपर्यंतं प्रत्यहमुदकुंभश्राद्धं कुर्यात् ॥ अशक्तौ मासिकश्राद्धेष्वेकोदकुंभो देयः ॥ सपिंडोत्तरानुमासिकानां पार्वणविधिनानुष्ठानम् ॥ वृद्धिप्राप्तौ तेषामप्यपकर्षः ॥ स च चतुःपुरुषसपिंडेष्वेवेत्युक्तम् ॥ एवं वर्षपर्यंतं कृत्वा वर्षांत्यदिने संवत्सरविमोक्षश्राद्धं पार्वणविधिना कार्यम् ॥ इदमेवाब्दपूर्तिश्राद्धमित्यप्युच्यते ॥ "वृद्धिश्राद्धे सपिंड्यां च प्रेतश्राद्धानुमासिके ॥ संवत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥" इदमूनाब्दिकांतषोडशश्राद्धेभ्यो भिन्नमेव ॥ अतएवास्य प्रेतश्राद्धत्वाभावाद्वृद्धिप्राप्तावपि नापकर्षः ॥ ततो वर्षांत्यदिने शक्त्या भूरिब्राह्मणभोजनं च कार्यमित्यंत्येष्टिपद्धतौ भट्टाः ॥ युक्तं चैतत् ॥ "जीवतो वाक्यकरणात्प्रत्यब्दं भूरिभोजनात् ॥ गयायां पिंडदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥" इति वाक्येन भूरिभोजनपदेन प्रत्याब्दिकश्राद्धातिरिक्तस्यैव बहुविप्रभोजनस्य विहितत्वाच्छ्राद्धे कुर्यान्नविस्तरमिति निषेधाच्छ्राद्धस्य भूरिभोजनपदाभिधेयत्वासंभवात ॥

अब स्त्रियोंके विषयमें कहते हैं। पितामही आदिके संग माताकी सपिंडीको करै। कोई तो यह कहते हैं कि पिताके मरे पीछे माता मरै तो पिताके संग ही माताकी सपिंडी कर। असपिंड दौहित्र कर्ता होय तो मातामहके संग सपिंडी करै; यह अपर कहते हैं। सहगमनमें तो भर्ताके ही संग सपिंडी होती है। जिस किसीके संग सपिंडनमें भी अन्वष्टका श्राद्ध प्रतिवार्षिक आदि श्राद्धोंमें पितामही आदिके संग ही माताके पार्वणको करै। इसमें कोई यह कहते हैं कि, अपना पुत्र, सपत्नीका पुत्र और पति ये न होयँ तो स्त्रियोंकी सपिंडी नहीं होती। अब अन्वारोहणमें भर्ताके संग पत्नीका सपिंडन होता है; इस पक्षमें दो मत हैं कि, पिताके पिंडको प्रथम पितामह आदि तीनोंके पिंडोंमें मिलावै पीछे माताके पिण्डको पितामह आदिमें मिलादे यह एक पक्ष है। पहिले माताके पिण्डको पिताके संग ही मिलाकर माताके पिंडके संग एक कियेहुये पिताके पिंडको पितामह आदिकोंमें मिलावै यह दूसरा पक्ष है। इसमें दूसरा पक्ष ही युक्त है। कोई तो यह कहते हैं कि, सहगमनमें एक दिन मरणमें स्त्रीका सपिण्डन नहीं होता है भर्ताके सपिंडन करनेसे ही स्त्रीका भी किया जाता है यह भी मतांतर है। सबके अभावमें पत्नी स्वयं अपने २ भर्ताओंका सपिण्डीकरण विना मन्त्र करैं और फिर पार्वणको करैं। ब्रह्मचारियोंका और संतानहीनोंका और व्युत्क्रमसे मरोंका सपिण्डन नहीं होता यह भी मतांतरमें लिखा है। इन सबमें सपिण्डीके अभावका पक्ष शिष्टोंके आचारमें नहीं देखते हैं। संन्यासियोंका सपिण्डन नहीं होता उसके स्थानमें एकादशाहको पार्वण करै। यह सपिंडीकरणश्राद्ध पार्वणएकोद्दिष्टरूप है

तिससे पितामह आदि तीनके तीनब्राह्मण, तीनअर्घ्य, तीनपिण्ड; होते हैं। और प्रेतके लिये एकपिंड, एकब्राह्मण, एकअर्घ्य; होता है। देवताओंके लिये दो २ सब पिंड आदि होते हैं। यद्वा पार्वणमें एक, प्रेतमें एक, देवताओंके लिये एक ब्राह्मण होता है। इसमें कालनामके विश्वेदेवा होते हैं। पिता आदि प्रेतके अर्घ्यपात्रको पितामह आदि तीनोंके अर्घ्यपात्रोंमें मिलावै। इसीप्रकार प्रेतके पिंडको भी पितामह आदिके तीनों पिंडोंमें मिलावै। पितृब्राह्मणके हाथमें होम करै; वह होम अग्निहोत्रीका भी होता है। सपिंडीकरणश्राद्धको अन्नसे ही करै। आमान्न आदिसे न करै अनुमासिकोंको भी आमान्नसे ही करै। सपिंडनसे पीछे वह प्रेत पितृलोकमें जाता है। सपिंडनसे दूसरे दिन उसके पाथेयको करै। इस वचनसे त्रयोदशाहको पाथेय श्राद्ध करके पुण्याहवाचन आदिको करके वर्षपर्यंत प्रतिदिन उदकुंभ श्राद्धको करै असामर्थ्यमें तो मासिकश्राद्धोंमें ही उदकुंभको देदे। सापिंडीके पीछे जो अनुमासिक हैं उनको पार्वणकी विधिसे करना। वृद्धिकी प्राप्तिमें तो उनका भी अपकर्ष होता है; वह भी चार पीढीके सपिंडोंमें ही होताहै यह कह आये। ऐसेही वर्षपर्यंत करके वर्षके अंतके दिनमें संवत्सरविमोक्ष श्राद्धको पार्वणविधिसे करै। इसकोही अब्दपूर्तिश्राद्ध कहते हैं। वृद्धिश्राद्ध, सपिंडी, प्रेतश्राद्ध, अनुमासिक, और संवत्सरविमोक्ष; इन श्राद्धोंमें तिलतर्पण न करै। यह ऊनाब्दिकपर्यंत जो षोडशश्राद्ध हैं उनसे भिन्न ही हैं। इसीलिये इसको प्रेतश्राद्धत्वका अभाव होनेसे वृद्धिश्राद्धकी प्राप्तिमें भी इसका अपकर्ष नहीं होता। फिर वर्षके अंत्यदिनमें शक्तिके अनुसार बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै; यह अंत्येष्टिपद्धतिमें भट्ट कहते हैं। और यह युक्त भी है। 'जीवतेहुये पिताके वचन माननेसे और प्रतिवर्ष अधिक भोजन करानेसे और गयामें पिंडदान करनेसे इन तीनोंसे पुत्रकी पुत्रता है' इस वचनसे भूरिभोजनपदसे प्रतिवार्षिक श्राद्धसे भिन्न ही बहुत ब्राह्मणोंका भोजन कहा है और 'श्राद्धमें विस्तारको न करे' इस निषेधसे श्राद्ध; भूरिभोजनपदसे नहीं लिया जाता॥

अथ प्रथमाब्दे निषिद्धानि।

मातापित्रोर्मरणे वर्षपर्यंतं परान्नं गंधमाल्यादिभोगं मैथुनमभ्यंगस्नानं च वर्जयेत्॥ ऋतौ भार्यामुपेयादेव॥ आर्त्विज्यं लक्षहोममहादानादि काम्यकर्माणि तीर्थयात्राविवाहादि वृद्धिश्राद्धयुतं कर्ममात्रं शिवपूजां च वर्जयेत॥ संध्योपासनदेवपूजापंचमहायज्ञातिरिक्तकर्ममात्रं वर्ज्यम्॥ "प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत्॥ न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः॥" इति वचनादिति केचित्॥ "महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च॥ सपिंडीश्राद्धमन्येषां वर्जयेद्वत्सरं बुधः॥अस्यापवादः॥पत्नी पुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्तनयः स्नुषा॥मातापितृव्यश्चैतेषां महागुरुनिपातने॥ कुर्यात्सपिंडनं श्राद्धं नान्येषां तु कदाचन॥एकादशाहपर्यंतं प्रेतश्राद्धं चरेत्सदा॥ पित्रोर्मृतौ च नान्येषां कुर्याच्छ्राद्धं तु पार्वणम्॥ गयाश्राद्धं मृतानां तु पूर्णे त्वब्दे प्रशस्यते॥" गारुडे॥ "तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम्॥ अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु॥" केचिद्वर्षांतसपिंडनपक्षे एवै-

ते सर्वे निषेधा न तु द्वादशाहसपिंडनपक्ष इत्याहुः ॥ अपरे तु द्वादशाहसपिंडनपक्षेपि सर्वं एते निषेधा इत्याहुः ॥ अत्रैवं व्यवस्था ॥ वृद्धिप्राप्तिं विनाऽर्वाक्सपिंडनापकर्षेपि प्रेतस्य पितृत्वप्राप्तिर्वर्षांत एव ॥ "कृते सपिंडीकरणे नरः संवत्सरात्परम् ॥ प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते" इत्यादिवचनात् ॥ तेन सपिंडीकरणसत्त्वेपि वृद्धिदैवपित्र्येष्वनधिकारः ॥ वृद्धिनिमित्तापकर्षे तु वृद्ध्यादावधिकार इति ॥ अतएव कालतत्त्वनिर्णये संकटादौ मृतपितृकापत्यानां संस्काराभ्युदयिकं मृतमातापितृकेण पुत्रेण स्वापत्यसंस्कारादिकं च प्रथमाब्देपि कार्यमित्युक्तम् ॥ दर्शमहालयादिश्राद्धस्य नित्यतर्पणस्य चाप्येवमेव व्यवस्था ज्ञेया ॥

अब प्रथमवर्षमें निषिद्धोंको कहते हैं । माता पिताके मरनेपर वर्षपर्यंत पराया अन्न, गंध, माल्य, आदिसे भोग और स्नानको वर्ज दे। ऋतुके समयमें भार्याके संग गमन तो अवश्य करै । ऋत्विजका कर्म, लक्षहोम, महादान आदि काम्यकर्म; तीर्थयात्रा, विवाह आदि; वृद्धिश्राद्धसे युक्त संपूर्ण कर्म और शिवपूजा, इनको वर्ज दे । संध्योपासन, देवपूजा, पंचमहायज्ञ; इनसे भिन्न सब कर्म वर्जित हैं । जिसके माता पिता मर जाते हैं उसका देह अशुद्ध हो जाता है वह इतने वर्ष पूर्ण न हो तबतक देव और पितृकर्मको न करै । इस वचनसे श्राद्ध आदि न करै; यह कोई कहते हैं । महान् तीर्थका गमन, उपवास और व्रत, अन्योंका सपिंडीकरणश्राद्ध इनको बुद्धिमान् मनुष्य वर्षदिनतक वर्ज दे । इसका अपवाद यह है कि, पत्नी, पुत्र, और पौत्र, भ्राता, भ्राताका पुत्र, पुत्रवधू , माता, पितृव्य; इनके और महागुरुके मरनेमें सपिंडीश्राद्धको करै । अन्यके मरनेमें कदाचित् न करै और एकादशपर्यंत नित्य प्रेतश्राद्धको माता पिताके मरनेपर करै । अन्यके मरनेपर तो पार्वण करै । और मरेहुओंका गयाश्राद्ध तो वर्षकी पूर्तिमें श्रेष्ठ कहा है । गरुडपुराणमें तो यह कहाहै कि तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध, और अन्य पितृश्राद्ध; इन सबको महान् गुरुओंके मरनेपर वर्षदिनके मध्यमें न करै । कोई तो यह कहते हैं कि, वर्षके अन्तमें सपिंडीके पक्षमें ही ये सब निषेध हैं द्वादशाह सपिंडीके पक्षमें नहीं अपर तो द्वादशाहमें सपिंडीके पक्षमें भी सब निषेध हैं यह कहते हैं । इसमें ऐसी व्यवस्था है कि वृद्धिश्राद्धकी प्राप्तिके पहिले सपिंडीके अपकर्षमें भी प्रेतको पितृत्वकी प्राप्ति वर्षके अन्तमें ही होती है । क्योंकि इत्यादि वचन हैं कि, सपिंडी किये पीछे मनुष्य वर्षदिनसे परै प्रेतके देहको त्याग कर भोगके देहको प्राप्त होता है । तिससे सपिंडीकरण किये पीछे भी वृद्धि, दैव, और पितृश्राद्धमें अधिकार नहीं है । वृद्धिके निमित्त अपकर्षमें तो वृद्धि आदिमें अधिकार है । इसीसे कालतत्त्वनिर्णयमें यह कहाहै कि संकट आदिमें पिताके अपत्योंके आभ्युदयिक संस्कारको और जिसके माता पिता मरगये हैं वह पुत्र अपने अपत्योंके संस्कार आदिको प्रथमवर्षमें भी करै । दर्श महालय आदि श्राद्धकी और नित्यतर्पणकी भी ऐसे ही व्यवस्था जाननी ॥

अथ विधानानि ।

तत्र पंचकमृतौ ॥ पंचकं नाम धनिष्ठोत्तरार्धमारभ्य रेवत्यंतं सार्धनक्षत्रचतुष्टयम् ॥ तत्र दाहनिषेधाद्दर्भमयपुत्तलैर्यवपिष्टानुलिप्तैः पंचोर्णासूत्रवेष्टितैः सह शवं

दहेत् ॥ तत्र तिथ्यादिसंकीर्त्यामुकस्य धनिष्ठापंचकादिमरणसूचितवंशारिष्टविनाशार्थं पंचकविधिं करिष्य इति संकल्प्योक्तविधाः प्रतिमा नक्षत्रमंत्रैरभिमंत्र्य गंधपुष्पैः संपूज्य दाहसमये प्रेतोपरि न्यसेत् ॥ प्रथमां शिरसि ॥ द्वितीयां नेत्रयोः ॥ तृतीयां वामकुक्षौ ॥ चतुर्थीं नाभौ ॥ पंचमीं पादयोः ॥ तदुपरि नाममंत्रैर्घृताहुतीर्जुहुयात् ॥ तत्र नामानि क्रमेण ॥ प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः प्रेतहर्ता चेति ॥ ततः उदकं दत्त्वा यमाय सोमं त्र्यंबकमिति मंत्राभ्यां प्रत्येकं प्रतिमास्वाज्याहुतीर्जुहुयात ॥ ततः प्रेतमुखे पंचरत्नं दत्त्वा पुत्तलैः सह प्रेतं दहेत् ॥ सूतकांते तिलहेमघृतानि दत्त्वा कांस्यपात्रे तैलं प्रक्षिप्य तत्रात्मप्रतिबिंबं वीक्ष्य विप्राय दद्यात शांतिं च कुर्यात् ॥ अत्रायं विशेषः ॥ नक्षत्रांतरेमृतस्य पंचके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिरेव न शांतिकम् ॥ पंचकमृतस्याश्विन्यां दाहप्राप्तौ शांतिकमेव न पुत्तलविधिः ॥ शांतिश्च लक्षहोमरुद्रजपान्यतररूपा यथाविभवं कार्या ॥ अथवा कुंभे यमप्रतिमां संपूज्य स्वगृह्योक्तविधिनाग्निप्रतिष्ठापनान्वाधानादि चरुश्रपणांतं कृत्वाज्यभागांते नामभिश्चतुर्दशचर्वाहुतीर्जुहुयात् ॥ यमाय स्वाहा १ धर्मराजाय २ मृत्यवे ३ अंतकाय ४ वैवस्वताय ५ कालाय ६ सर्वभूतक्षयाय ७ औदुंवराय ८ दध्नाय ९ नीलाय १० परमेष्ठिने ११ वृकोदराय १२ चित्राय १३ चित्रगुप्ताय १४ एवं हुत्वा होमशेषं समाप्य ॥ "कृष्णां गां कृष्णवस्त्रां च हेमनिष्कसमन्विताम् ॥ दद्याद्विप्राय शांताय यमो मे प्रीयतामिति ॥" त्रिपादृक्षेप्येतदेव शांतिकम् ॥ "यदा भद्रातिथीनां स्याद्भानुभौमशनैश्चरैः ॥ त्रिपादृक्षैश्च संयोगस्तदा योगस्त्रिपुष्करः ॥ द्विपुष्करो द्वयोर्योगेथवायं स्याद्द्विपादभैः ॥" त्रिपादनक्षत्राणि तु ॥ "पुनर्वसूत्तराषाढाकृत्तिकोत्तरफाल्गुनी ॥ पूर्वाभाद्रा विशाखा च ज्ञेयमेतत्त्रिपादभम् ॥ मृगचित्राधनिष्ठा च ज्ञेयमेतद्द्विपादभम् ॥" त्रिपुष्करयोगे द्विपुष्करयोगे च मृतौ कृच्छ्रत्रयं प्रायश्चित्तं कृत्वा यवपिष्टमयपुरुषत्रयेण सह प्रेतदाहः ॥ पुरुषत्रयस्य प्रेते न्यास आज्याहुतयश्च पूर्ववत् ॥ कनकहीरकनीलपद्मरागमौक्तिकेतिपंचरत्नस्य मुखे प्रक्षेपोपि ॥ रत्नाभावे कर्षार्धं स्वर्णम् ॥ स्वर्णाभावे घृतम् ॥ एवं पूर्वत्रापि ॥ दहने मरणे त्रिद्विपुष्करे त्रिगुणं फलम् ॥ "द्विगुणं खननेप्येवमेतद्दोषोपशांतये ॥ सुवर्णं दक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥ शांतिं कुर्यात्सूतकांते पूर्वोक्तांते न मंगलम् ॥" मृतस्य स्मशाने नयनोत्तरं पुनर्जीवने सति यस्य गृहे स प्रविशति तस्य मरणं तत्र सक्षीरघृताक्तौदुंबरसमिधां सावित्र्यष्टसहस्रेण होमः ॥ अन्ते कपिलादानं तिलपूर्णकांस्यपात्रदानं च ॥ "एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥"

अब विधानोंको कहते हैं कि, उनमें पंचकोंमें मरनेमें कहते हैं । पंचक ये हैं कि धनिष्ठाके उत्तरार्द्धसे लेकर रेवतीपर्यंत साढेचार नक्षत्र हैं उनमें दाहका निषेध है । इससे जौके चूर्णसे

लिपटे और पांच ऊनके सूत्रोंसे वेष्टित कुशाके पुतलोंके संग शवका दाह करै। उसमें तिथि आदिका कीर्तन करके 'अमुकका जो धनिष्ठा पंचकमरणसे सूचित वंशारिष्ट (वंशमें उपद्रव) उसके नाशार्थ पंचक विधिको करताहूं' यह संकल्प करके पूर्वोक्त प्रकारकी प्रतिमाओंको नक्षत्रके मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके गंधपुष्पोंसे पूजकर दाहके समय प्रेतके ऊपर रखदे। पहिलीको शिरपर, दूसरी नेत्रोंपर, तीसरी वामकुक्षिपर, चौथी नाभिमें, पांचमी चरणोंमें रखकर; उनके ऊपर नाममंत्रोंसे घीकी आहुति दे। उनके क्रमसे ये नाम हैं कि, प्रेतवाह, प्रेतसखा, प्रेतप, प्रेतभूमिप, प्रेतहर्ता; फिर जल देकर "यमायसो० ॥ त्र्यंबकं०" इन मंत्रोंसे प्रत्येक प्रतिमासकी घृताहुति दे। फिर प्रेतके मुखमें पंचरत्न गेरकर पुत्तलों सहित उस प्रेतका दाह करै सूतकके अन्तमें तिल होम घृत; इनको देकर कांसीके पात्रमें तेलको डारकर उसमें अपने प्रतिबिंबको देखकर ब्राह्मणको दे और शांतिको करै। इसमें यह विशेष है कि, अन्य नक्षत्रमें मरेका पंचकोंमें दाह प्राप्त होय तो पुत्तलविधिको ही करै शांति न करै। पंचकोंमें मरेका अश्विनीमें दाह प्राप्त होय तो शांति ही होती है पुत्तलविधि नहीं। शांति तो यह है कि, लक्षहोम, वा रुद्रजप, इनमें किसीको धनके अनुसार करै। अथवा कुंभपर यमकी प्रतिमाको पूजकर गृह्यसूत्रमें कही विधिसे अग्निका स्थापन अन्वाधान आदि चरु पकानेपर्यंत कर्मको करके आज्यभागके अन्तमें नाममंत्रोंसे चौदह चरुकी आहुतियोंसे होम करै। वे नाम ये हैं कि, यमाय स्वाहा १, धर्मराजाय० २, मृत्यवे० ३, अन्तकाय० ४, वैवस्वताय० ५, कालाय० ६, सर्वभूतक्षयाय० ७, औदुंबराय० ८, दध्नाय० ९, नीलाय० १०, परमेष्ठिने० ११, वृकोदराय० १२, चित्राय० १३, चित्रगुप्ताय० १४; ऐसे होम करके, होमके शेषको समाप्त करके, कृष्णवस्त्रवाली हेमके निष्कसे युक्त कालीगौको यह कहकर शांत ब्राह्मणको दे कि,'यमराज मेरे ऊपर प्रसन्न हो' त्रिपाद नक्षत्रमें भी यही शांति है। जब भद्रातिथियोंका संयोग;भानु, भौम, शनैश्चर; और त्रिपादनक्षत्रोंसे हो तब त्रिपुष्कर योग होता है। दोके योगमें द्विपुष्कर होताहै। अथवा द्विपादनक्षत्रोंसे द्विपुष्कर होताहै। त्रिपाद नक्षत्र तो ये हैं कि, पुनर्वसु, उत्तराषाढ, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा; ये त्रिपाद नक्षत्र जानने। और मृगशिर, चित्रा, धनिष्ठा ये द्विपाद नक्षत्र जानने। और द्विपुष्कर योगमें और त्रिपुष्कर योगमें मरै तो तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त करके जौंके चूनके तीन पुरुषोंके संग प्रेतका दाह करै। तीनों पुरुषोंका प्रेतके ऊपर रखना और घीकी आहुति; पूर्वके समान दे। सुवर्ण, हीरा, नीलम, पद्मराग, मोती; इन पांचों रत्नोंका मुखमें प्रक्षेप करै। रत्नके अभावमें आधा तोला सुवर्ण डारै सुवर्णके अभावमें घृत डारै। इसीप्रकार पहिले भी समझना! द्विपुष्कर और त्रिपुष्करम; दाह और मरण होनेपर दुगुना और तिगुना फल होताहै। और खननमें भी इसीप्रकार समझना। इस दोषकी शान्तिके लिये सुवर्णकी दक्षिणा वा कृष्णवस्त्रको दे। और पूर्वोक्त शान्तिको सूतकके अन्तमें करै। तिससे मंगल होताहै। मृतमनुष्य श्मशानमें ले जानेके पीछे जी जाय तो जिसके घरमें वह प्रवेश करै वह मरणको प्राप्त होताहै वहां दूध और घी मिली गूलरकी समिधाओंका गायत्रीसे आठसहस्र (८०००) होम करै। और अन्तमें कपिलाका दान तिलोंसे पूर्ण कांस्यपात्रका दान करै। इक्यासी पल वा उससे आधा, नौ, छः, वा तीनपल, कांस्यको शक्तिसे ब्राह्मणको दे॥

अथ ब्रह्मचारिमृतौ ।

ब्रह्मचारिमृतौ द्वादश षट् त्रीणि वाब्दानि शक्त्या प्रायश्चित्तं कृत्वा देशकालौ स्मृत्वामुकगोत्रनाम्नो ब्रह्मचारिणो मृतस्य व्रतविसर्गं करिष्ये तदंगतया नांदीश्राद्धं करिष्य इत्युक्त्वा हिरण्येन नांदीश्राद्धं कृत्वाग्निप्रतिष्ठापनाद्याधारांते चतसृभिर्व्याहृतिभिराज्यं हुत्वाग्नये व्रतपतये स्वाहा ॥ अग्नये व्रतानुष्ठानफलसंपादनाय स्वाहा ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति तिस्र आज्याहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य पुनर्देशकालौ स्मृत्वामुकस्यौर्ध्वदेहिकाधिकारार्थमर्कविवाहं करिष्ये इत्यादिहिरण्येन नांदीश्राद्धांतेर्कसमीपे नीत्वार्कशाखां वा गृहीत्वार्कब्रह्मचारिणौ हरिद्रयानुलिप्य पीतसूत्रेण संवेष्ट्य वस्त्रयुग्मेनाच्छाद्याग्निप्रतिष्ठाद्याधारांते आज्यहोमः ॥ अग्नये स्वाहा १ बृहस्पतये० २ विवाहविधियोजकाय० ३ ॥ यस्मै त्वा कामकामाय वयं सम्राडयजामहे ॥ तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा ॥ कामायेदं ॥ ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिहोमः ॥ एवमष्टाहुत्यंते स्विष्टकृदादि कृत्वार्कशाखां ब्रह्मचारिशवं च तुषाग्निना विधिवद्दहेत् ॥ स्नातकमरणेप्येवमिति केचित् ॥ एतन्निर्मूलमित्यन्ये ॥ सूतकांते त्रिंशद्ब्रह्मचारिभ्यः कौपीनकृष्णाजिनकर्णभूषणादि पादुकाछत्रगोपीचंदनमाल्यमणिविद्रुममालायज्ञोपवीतादि यथासंभवं दद्यात् ॥

अब ब्रह्मचारीके मरनेमें कहतेहैं ब्रह्मचारी मरै तो बारह छः तीन वर्षतक शक्तिसे प्रायश्चित्तको करके देशकालका स्मरण करके अमुकगोत्र अमुकनामका मरा जो ब्रह्मचारी उसके व्रतविसर्गको करताहूं। और उसके अंग नांदीश्राद्धको करताहूं यह कहकर सुवर्णसे नांदीश्राद्धको करके अग्निस्थापन आदि आघारपर्यंत कर्ममें चार व्याहृतियोंसे घीकी आहुति देकर "अग्नये व्रतपतये स्वाहा० । अग्नये व्रतानुष्ठानफलसम्पादनाय स्वाहा० । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा० ।" ये तीन घीकी आहुति देकर स्विष्टकृत् आदि होमके शेषको समाप्त करके फिर देशकालका स्मरण करके 'अमुकके और्ध्वदेहिककर्मके अधिकारके लिये अर्कविवाहको करताहूं' इत्यादि कहकर सुवर्णसे नांदीश्राद्धके अन्तमें अर्कके समीप ले जाकर वा अर्ककी शाखाको लाकर और अर्क ब्रह्मचारीके ऊपर हलदी लीपकर; पीला सूत लपेटकर; दो वस्त्रोंसे ढककर; अग्निस्थापन आदि आघारके अन्तमें घीसे होम इन मंत्रोंसे करै कि, "अग्नये स्वाहा०। बृहस्पतये स्वाहा० । विवाहविधियोजकाय स्वाहा० । यस्मै त्वाकामकामाय वयं सम्राड्यजामहे तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदन्त्वं घृतं पिब स्वाहा० । कामायेदं० ।" फिर व्यस्त समस्त व्याहृतियोंसे होम करै। इसप्रकार आठ आहुतियोंके देनेसे पीछे स्विष्टकृत् आदि होमको करके ब्रह्मचारी और अर्कको विधिपूर्वक तुष (भुस) की अग्निसे दग्ध करै । स्नातकके मरणेमें भी ऐसे ही करै यह कोई कहते हैं यह निर्मूल है यह अन्य कहते हैं। सूतकके अंतमें तीस ब्रह्मचारियोंको कौपीन, काला मृगचर्म, कर्णभूषण, खडाऊँ; छत्र, गोपीचंदन, माला, मणि, मूंगेकी माला, यज्ञोपवीत, आदि; इनमें जो संभव हो उसको दे।

अथ कुष्ठिमृतौ ।

"मृतस्य कुष्ठिनो देहं तीर्थे वा भुवि वा क्षिपेत् ॥ न दाहं नोदकं पिंडं न च दानक्रियां चरेत् ॥ यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यदि चांद्रायणं चरेत् ॥" तथा च शक्त्यनुसारेण षडब्दादि प्रायश्चित्तं कृत्वा कुष्ठादिमहारोगमृतस्य दाहादिक्रियां कुर्यान्नान्यथेति ॥

अब कुष्ठीके मरणेमें कहते हैं। मरेहुए कुष्ठीके देहको तीर्थमें वा भूमिमें क्षपण करै। दाह, जल, पिण्ड न दे और न कोई अन्नदान करै । यदि स्नेहसे करै तो यति चांद्रायणको करै । वितसे शक्तिके अनुसार छः वर्ष आदि प्रायश्चित्तको करिके कुष्ट आदि महारोगसे मरेहुएकी दाहक्रियाको करै अन्यथा न करै ॥

अथ रजस्वलादिमरणे ।

"रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् ॥ ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां शवधर्मेण दाहयेत् ॥" अथवा रजस्वलां सूतिकां च मलं प्रक्षाल्य स्नापयित्वा काष्ठवदमंत्रकं दग्ध्वास्थीनि मंत्राग्निना दहेत् ॥ उभयत्र चांद्रायणत्रयं प्रायश्चित्तमस्त्येव ॥ तदैव मंत्रवद्दाहकरणेच्छायां तु ॥ अद्येत्याद्यमुकगोत्राया रजस्वलावस्थामरणनिमित्तप्रत्यवायपरिहारार्थमौर्ध्वदैहिकयोग्यत्वार्थं च चांद्रायणत्रयप्रायश्चित्तपूर्वकं शूर्पेणाष्टोत्तरशतस्नानानि कारयिष्ये इति संकल्प्य चांद्रायणत्रयं प्रत्याम्नायेन कृत्वा यवपिष्टेन प्रेतमनुलिप्य स्वयं स्नात्वा शूर्पोदकैरष्टोत्तरशतवारं स्नापयेत् ॥ ततो भस्मगोमयमृत्तिकाकुशोदकैः पंचगव्यैः शुद्धोदकैश्च संस्नाप्य ॥ यदंति यच्च दूरक इत्यादि पावमानीभिरापोहिष्ठेति त्र्यृचेन कयान इत्यादिभिश्च संस्नाप्य पूर्ववस्त्रं परित्यज्यान्यवस्त्रेण संवेष्ट्य दहेत् ॥ सूतिकायामप्येवम् ॥ सूतिकया आद्यत्र्यहमरणे त्र्यब्दं प्रायश्चित्तम् ॥ द्वितीयत्र्यहे द्व्यब्दम् ॥ तृतीयत्र्यहे एकाब्दं दशमदिने तु कृच्छ्रत्रयमिति विशेषः क्वचिदुक्तः ॥ मासपर्यंतमपि कृच्छ्रत्रयमित्यन्ये ॥ मिताक्षरायां तु कुंभे जलमादाय पंचगव्यं क्षिप्त्वा पुण्यमंत्रैरापोहिष्ठा वामदेव्यावारुणादिभिरभिमंत्र्य पूर्वोक्तमंत्रैः संस्नाप्य विधिना सूतिकां दहेदिति विशेष उक्तः ॥ इति रजस्वलासूतिकयोर्विधिः ॥

अब रजस्वला आदिके मरनेमें कहते हैं। रजस्वला मर जाय तो उसके संस्कार आदिको न करै। त्रिरात्रके पीछे स्नान करके रजस्वलाशवका, धर्मसे दाह करै। अथवा रजस्वला और सूतिकाके मलको धोकर काष्ठोंसे विना मंत्र दग्ध करके फिर अस्थियोंको मंत्राग्निसे दग्ध करै। यहां दोनों जगह तीन चांद्रायण प्रायश्चित्त हैं। यदि उसीसमय मंत्रोंसे दाह करनेकी इच्छा होय तो अद्येत्यादि कहकर 'अमुकगोत्रकीका जो रजस्वला अवस्थाका मरण उसके पापके परिहारार्थ और और्ध्वदेहिककी योग्यताके लिये तीन चांद्रायण प्रायश्चित्तपूर्वक शूर्पसे अष्टोत्तरशतस्नानोंको कराता हूं' यह संकल्प करके और प्रत्याम्नाय द्रव्यसे तीन चांद्रायण करके;

जौके चूनसे प्रेतको लीपकर; स्वयं स्नान करिके; शूर्पके जलोंसे अष्टोत्तरशत (१०८) बार स्नान करावै। फिर भस्म, गोमय, मिट्टी, कुशोदक, पंचगव्य, शुद्धजल; इनसे स्नान कराकर फिर "यदन्तियच्चदूरके०" इत्यादि पावमानी ऋचाओंसे, "आपोहिष्ठा०" आदि तीन ऋचाओंसे और "कयान:०" इत्यादि ऋचाओंसे स्नान कराकर; पूर्ववस्त्रको लपेटकर; दाह करै। सूतिकाके मरनेमें भी इसी प्रकार समझना। सूतिकाके पहिले तीन दिनमें मरै तो तीन वर्षका प्रायश्चित्त दूसरे तीनदिनमें मरै तो दो वर्षका, तीसरे तीनदिनमें मरै तो एकवर्षका, दशमें दिन मरै तो तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त है। यह सूतिकाके लिये विशेष कहीं कहाहै। अन्यतो यह कहते हैं। कि, मासपर्यंत मरनेमें तीन कृच्छ्र करै। मिताक्षरामें तो यह विशेष कहा है कि, घटमें जल लाकर उसमें पंचगव्य गेरकर पवित्रमंत्र और "आपोहिष्ठा०" वामदेव्यसूक्त और वरुणके मंत्रोंसे जलको अभिमंत्रित करके और पूर्वोक्त मंत्रोंसे स्नान कराके विधिसे सूतिकाका दाह करै। यह रजस्वला और सूतिकाके मरणकी विधि समाप्त हुई॥

अथ गर्भिणीमरणे।

गर्भिण्या मृतायाः शुद्धयर्थं त्रयस्त्रिंशत्कृच्छ्राणि कृत्वा गां भूमिं सुवर्णं च दत्त्वा गर्भं पृथक्कृत्य तां दहेत्॥ सगर्भदहने तत्तद्वधप्रायश्चित्तम्॥ सगर्भाया दाहकर्तुरब्दत्रयं प्रायश्चित्तम्॥

अब गर्भिणीके मरणकी विधिको कहते हैं। मरी हुई गर्भिणीकी शुद्धिके लिये तेतीस(३३) कृच्छ्रोंको करके जौ, भूमि, और सुवर्णको देकर और गर्भको पृथक् करके उसका दाह करै। गर्भसहितको दग्ध करै तो गर्भके वधका प्रायश्चित्त करै। सगर्भाके दाह कर्ताका तीनवर्षका प्रायश्चित्त है॥

अथ सहगमनम्।

"अथान्वारोहणं स्त्रीणामात्मनो भर्तुरेव च॥ सर्वपापक्षयकरं निरयोत्तारणाय च॥ अनेकस्वर्गफलदं मुक्तिदं च तथैव च॥ जन्मांतरे च सौभाग्यं धनपुत्रादि-वृद्धिदम्॥ तिस्रः कोटयोऽर्धकोटी च यावंत्यंगरुहाणि वै॥ तावंत्यब्दसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ मातृकं पैतृकं चैव यत्र कन्या प्रदीयते॥ कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं यानुगच्छति॥" इत्यादि महिमविस्तरो मिताक्षरादौ ज्ञेयः अत्र निष्कामत्वे मुक्तिः सकामत्वे स्वर्गादिफलानीति व्यवस्था॥

इसके अनन्तर स्त्रियोंका जो अन्वारोहण है वह स्त्रियोंकी आत्माके और भर्ताके सर्व पापोंको क्षय करताहै और नरकका तारक है। अनेक स्वर्गके फलोंका दाता, और मुक्तिका दाता है। और अगले जन्ममें सौभाग्य, धन, पुत्र, आदिकी वृद्धिको देता है। साढेतीन किरोड जितने शरीरके रोम हैं उतने सहस्र वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजाको प्राप्त होती है। मातापिताके कुलोंको और जहां विवाही जाती है उस कुलको इन तीन कुलोंको वह पवित्र करती है जो भर्ताका अनुगमन करती है इत्यादि महिमा मिताक्षरा आदिमें जानी। यह निष्काम होय तो मुक्ति होती है सकाममें स्वर्ग आदि फल होते हैं यह व्यवस्था है॥

अथ प्रयोगः ।

देशकालौ स्मृत्वा मातृपितृश्वशुरादिकुलपूतत्वब्रह्महत्यादिदोषदूषितपतिपूतत्वपत्यवियोगारुंधतीसमाचारत्वसार्धकोटित्रयसहस्रसंवत्सरस्वर्महीयमानत्वादिपूराणोक्तानेकफलप्राप्तये श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतिद्वारा विमुक्तिप्राप्तये वा पतिचितान्वारोहणं करिष्य इति संकल्प्य हरिद्राकुंकुमवस्त्रफलादियुतानि शूर्पाणि सुवासिनीभ्यो दद्यात् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "लक्ष्मीनारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः ॥ गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वायनैः परितोषितः ॥ सोपस्कराणि शूर्पाणि वायनैः संयुतानि च ॥ लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम् ॥" अनेन सोपस्करशूर्पदानेन लक्ष्मीनारायणौ प्रीयेताम् ॥ ततोंचले पंचरत्नं नीलांजनं च बद्धा मुखे मौक्तिकं न्यस्याग्निसमीपं गत्वाग्निप्रार्थनं कुर्यात् ॥ "स्वाहासंश्लेषनिर्विण्णसर्वगात्र हुताशन ॥ सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां पत्युरंतिकम्" इति ॥ अथाग्नावाज्येन जुहुयात् ॥ अग्नये तेजोधिपतये स्वाहा १ विष्णवे सत्त्वाधिपतये स्वा० २ कालाय धर्माधिपतये० ३ पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै० ४ अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः ५ वायवे बलाधिपतये ६ आकाशाय सर्वाधिपतये ७ कालाय धर्माधिष्ठात्रे ८ ॥ अद्भ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः ९ ब्रह्मणे वेदाधिपतये १० रुद्राय श्मशानाधिपतये स्वाहेत्येकादशाहुतीर्हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दृषदमुपलां संपूज्य पुष्पांजलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत् ॥ "त्वमग्ने सर्वभूतानामंतश्चरसि साक्षिवत् ॥ त्वमेव सर्वं जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः ॥ अनुगच्छामि भर्त्तारं वैधव्यभयपीडिता ॥ सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरंतिकम् ॥ मंत्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताशनम् ॥" विप्रश्रेमानारीरविधवा इत्यृचम् ॥ "इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो यायाः सुशोभनाः ॥ सह भर्तृशरीरेण संविशंतु विभावसुम् ॥" इति च पठेत् ॥ कातरां तु प्रेतोत्तरतः सुप्तां देवरः शिष्यो वोदीर्ष्वेति मंत्राभ्यामुत्थापयेत् ॥ "अनुव्रजति भर्तारं श्मशानं या गृहान्मुदा ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति सा ध्रुवम् ॥" यत्तु ॥ "या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् ॥ सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ॥" इति ब्राह्मण्या निषेधवचनजातं तत्पृथक्चितिपरम् ॥ भर्तुर्मंत्राग्निदाहोत्तरमनुगमनं पृथक्चितिः ॥ मंत्राग्निदाहात् पूर्वमस्थिभिः पर्णशरेण वा सहगमनमेकचितिरेव ॥ अस्थ्यादेः पतिस्थानापत्त्या पतिशरीरतुल्यत्वात् ॥ इयमेकचितिः सर्ववर्णानाम् ॥ पृथक्चितिस्तु क्षत्रियवैश्यशूद्रादेरेव ॥ न तु ब्राह्मणीनाम् ॥ पृथक्चितिविधिस्तु "देशांतरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम् ॥ निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम्" इति ॥ पतितेन प्रायश्चित्तार्थं मृतेन वा भर्त्रा सहान्वारोहणं न भवति ॥ यत्तु "ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः ॥ पुनात्यविधवा नारी" इत्यादि

वाक्यं तज्जन्मांतरीयब्रह्महत्यादिपापशोधनपरम्॥"दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी चेत्कृतनिश्चया ॥ न दहेत्स्वामिनं तस्या यावदागमनं भवेत॥ तृतीयेह्नि उदक्याया मृते भर्तारि वै द्विजाः ॥ तस्याः सहगमार्थं तं स्थापयेदेकरात्रकम् ॥" रजस्वलायाः प्रथमद्वितीयतृतीयदिने पतिमृतौ लौकिकाग्निभिरमंत्रकं तं दग्ध्वा पंचमेह्नयस्थिभिः सहान्वारोहणम्॥ यदि रजस्वला देशकालवशादिना तदैवानुगंतुमिच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते तदा सैकद्रोणमितव्रीहीन्मुसलैरवहत्य तदाघातैः सर्वरजोनिवृत्तौ पंचमृत्तिकाभिः शौचं कृत्वा दिनक्रमेण त्रिंशद्विंशतिर्दश वा धेनूर्दत्त्वा विप्रवचनाच्छुद्धिं लब्ध्वा सहगमनं कुर्यात् ॥ अत्रावहननेन रजोनिवृत्तिरर्तीद्रियेतीदं युगांतरपरं योज्यमिति भाति ॥ जननमृताशौचयोस्तु सहगमनं नेति केचित् कालतत्त्वविवेचने तु पूर्वप्रवृत्ताशौचमध्ये भर्तृमरणे आशौचवतीनामपि भार्याणां सहगमनं भवति सूतिकोदक्ययोस्तु नेत्युक्तम्॥ इदमेव युक्तं भाति ॥ इदं च सहगमनं गर्भिणी बालापत्यासूतिकाभिरदृष्टरजोभिः पतिताभिर्व्यभिचारिणीभिर्भर्तृदुष्टभावाभिश्च न कार्यम् ॥ केचिदत्र पतिव्रतानामेवाधिकारः॥"वर्तते याश्च सतत भर्तॄणां प्रतिकूलतः॥ कामात्क्रोधाद्भयान्मोहात्सर्वाः पूता भवंति ताः" इत्यादि तु वाक्यमर्थवाद इत्याहुः ॥ अत्र पृथक्चित्यारोहणे भर्त्राशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा कृते त्रिरात्रमाशौचं पिंडाश्च॥ सहगमने तु "तस्याः पिंडादिकं शौचं पतिपिंडादितः क्रमात् ॥ अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रिया ॥ पिंडदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा॥ अन्वारोहे कृते पत्न्याः पृथक्पिंडांस्तिलांजलीन् ॥ पृथक्शिलेन कुर्वीत दद्यादेकशिले तथा ॥ तत्रावयवपिंडार्थं पाकैक्यं भिन्नपिंडता ॥ नवश्राद्धानि भिन्नानि सपिंडीकरणं पृथक् ॥ एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥" सपिंडीकरणं तु न कार्यमथवा भर्त्रैव सह कार्यं यद्वा भर्त्रादिभिस्त्रीभिः सह कार्यमित्यादिपक्षा उक्ताः मासिकसांवत्सरिकादौ पाकैक्यकालैक्यादिव्यवस्थापि श्राद्धप्रकरणे उक्ता ॥ इति सहगमने निर्णयः ॥ "काशीनाथ उपाध्याय इत्थमंत्याक्रियाविधिम् ॥ निर्णीय भगवत्पादे चार्पयत्तद्विशुद्धये ॥" इत्यंत्येष्टिनिर्णयः ॥

अव प्रयोग (करता) को कहते हैं । कि, देशकालका स्मरण करके माता पिता श्वशुर आदिके कुलकी पवित्रता, ब्रह्महत्या आदि दोषोंसे दूषित पतिकी पवित्रता, पतिका अवियोग, अरुंधतीके समान आचरण, साढेतीन किरोड सहस्रवर्ष पर्यंत पूर्ण स्वर्ग; आदि अनेक फलोंका प्राप्तिके लिये और श्रीलक्ष्मीनारायणकी प्रीतिसे मुक्तिके लिये पतिकी चितामें अन्वारोहण करती हूं' यह संकल्प करके हरिद्रा, कुंकुम, वस्त्र, फल, आदिसे युक्त शूर्पोंको सुहागिन स्त्रियोंको दे । उसका मंत्र यह है कि, बल, सत्ता, गुणका, आश्रय, लक्ष्मीनारायण देव; वायनोंसे प्रसन्न होकर मुझे गाढ (भारी) सत्त्वको दो । उपस्कर (सामग्री) सहित और वायनोंसे युक्त शूर्पोंको सत्त्वकी कामनासे मैं लक्ष्मीनारायणकी प्रसन्नताके

लिये दान करती हूं इस सोपस्कर शूर्पके दानसे दोनों लक्ष्मीनारायण प्रसन्न हों फिर अंचलमें लेप, पंचरत्न, नीला अंजन, इनको बांधकर मुखमें मोतीको रखकर अग्निके समीप जाकर अग्निकी प्रार्थना करै । हे स्वाहाके संयोगसे प्रसन्न ! हे शर्वगोत्र ! हे हुताशन ! सत्ताके मार्गको देकर मुझे पतिके समीप ले जाओ । इसके अनन्तर अग्निमें घीसे आहुति दे । कि, अग्नये तेजोधिपतये स्वाहा १, विष्णवे सत्त्वाधिपतये स्वाहा २, कालाय धर्माधिपतये स्वाहा ३, पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै० ४, अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः० ५, वायवे बलाधिपतये० ६, आकाशाय सर्वाधिपतये० ७, कालाय धर्माधिष्ठात्रे० ८, अद्भ्यः सर्वसाक्षिणीभ्यः० ९, ब्रह्मणे वेदाधिपतये० १०, रुद्राय श्मशानाधिपतये स्वाहा० ११; ये ग्यारह आहुति देकर अग्निकी प्रदक्षिणा करके पाषाणके टुकडेको पूजकर पुष्पांजलिको हाथमें लेकर अग्निकी प्रार्थना करै । कि, हे अग्ने साक्षियोंके समान तू सब भूतोंके भीतर विचरता है । जिसको मनुष्य नहीं जानते उन सबको तू जानता है । विधवापनके भयसे पीडित मैं भर्ताका अनुगमन करती हूं । सत्त्वमार्गको देकर मुझे पतिके समीप प्राप्तकर इस मंत्रको पढकर शनैः २ अग्निमें प्रवेश करै । और ब्राह्मण; "इमा नारीरविधवा" इस ऋचाको ये पतिव्रता पुण्य हैं और ये स्त्री पापरहित हैं शोभन हैं भर्ताके शरीरसहित अग्निमें प्रविष्ट हो इस श्लोकको पढैं । कातर (डरपोक) को तो प्रेतके उत्तरभागमें सोती हुयीको देवर वा शिष्य "उदीर्ष्व०" इन मंत्रोंको पढ कर उठाले । जो स्त्री प्रसन्न होकर घरसे श्मशानमें भर्ताका अनुगमन करती है वह पद पदपर अश्वमेध यज्ञके फलको निश्चयसे प्राप्त होती है । जो ब्राह्मण जातिकी स्त्री, मरेहुये पतिका अनुगमन करती है वह आत्माके घातसे अपनी आत्माको और पतिको स्वर्गमें नहीं ले जाती इत्यादि जो ब्राह्मणीको अनुगमनके निषेध वचनोंका समूह है वह पृथक् चिताके विषयमें है । भर्ताके मंत्रोंसहित दाहके अनंतर जो अनुगमन वह पृथक् चिति होती है । मंत्रोंसहित अग्निदाहसे पहिले और अस्थियोंके संग वा पुत्तलेके संग जो सहगमन वह एक ही चिति है । क्योंकि अस्थि आदि पतिके स्थानको प्राप्त हैं इससे पतिकी तुल्य हैं । यह एकचिति सब वर्णोंके लिये है । पृथक् चिता तो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आदिके ही लिये है । ब्राह्मणियोंके लिये नहीं पृथक् चिता तो देशांतरमें पति मरजाय तो साध्वी स्त्री उसकी दोनों खडाऊंको छातीपर रखकर शुद्ध होकर अग्निमें प्रवेश करै । पतित वा प्रायश्चित्तके लिये मरे हुये भर्ताके संग अन्वारोहण नहीं होता । और जो ब्रह्महत्यारा, कृतघ्न, मित्रघ्न, भी पति हो उसको अविधवा स्त्री अन्वारोहणसे पवित्र करती है । इत्यादि वचन हैं वह जन्मांतरके ब्रह्महत्या आदि पापकी शुद्धिके विषयमें हैं । यदि साध्वी और निश्चय करनेवाली; ऐसे देशमें हो जहांके पतिके समीप एकदिनमें जा सकै उस स्त्रीके आनेतक उसके स्वामीका दाह न करै । रजस्वलाका पति तीसरे दिन भर्ता मरजाय तो हे द्विजो उसके सहगमनके लिये उसके पतिको एकरात्रभर स्थापन रक्खै । रजस्वलाके प्रथम दूसरे पति मरजाय तो लौकिक अग्नियोंसे विना मंत्र पतिका दाह करके पांचमें दिन अस्थियोंके संग अन्वारोहण करै । यदि रजस्वला देशकालके वश आदिसे उसीसमय अनुगमनकी इच्छा करै और शुद्धिकी प्रतीक्षा न करै तो तब वह स्त्री एक द्रोणभर व्रीहियोंको मुसलोंसे कूटकर उनके आघातोंसे सम्पूर्ण रजकी निवृत्ति होनेपर पांच मिट्टियोंसे शौचको करके रजके दिनोंके क्रमसे तीस, बीस, दश, धेनुओंको देकर और ब्राह्मणोंके वचनसे शुद्ध

होकर सहगमनको करै । यहां अवहननसे रजकी निवृत्ति अतींद्रिय (नहीं दीखती) है, इससे यह युगांतरके लिये है यह हमें भासता है। जन्म और मरणके सूतकमें तो सहगमन नहीं ह यह कोई कहते हैं। कालतत्त्वविवेचनमें तो यह कहाहै कि पहिले प्रवृत्त हुये आशौचके मध्यमें पति मरजाय तो आशौचवाली भी भार्याओंका सहगमन होताहै । सूतिका और रजस्वलाका नहीं होता। यह युक्त भी प्रतीत होता है । और इस सहगमनको; गर्भिणी, जिसकी संतान बालक हो, सूतिका, जिनके रजोधर्म न हुआ हो, जो पतित हो, व्यभिचारिणी हो, भर्तामें जिनका दुष्टभाव हो; इतनी स्त्री न करैं। कोई तो यह कहते हैं कि इसमें पतिव्रताओंका ही अधिकार है। और जो स्त्री निरंतर भर्ताओंके प्रतिकूल वर्ताव करती हैं कामसे वा क्रोधसे, भयसे, वा मोहसे भी वर्तती हुई वे सब पवित्र होती हैं। इत्यादि वाक्य तो अर्थवाद है । यहां भर्ताके आशौचके मध्यमें वा आशौचके पीछे किये पृथक् चितारोहणमें त्रिरात्र आशौच होता है। पिंड तो सहगमनमें ऐसे होते हैं कि, उसके पिण्ड आदि और शौच पतिके पिंडआदिके क्रमसे होते हैं। स्त्रियोंके अन्वारोहमें तो जलदान और उदकक्रिया, पिंडदानक्रिया, श्राद्ध, और वार्षिकश्राद्ध, पृथक् नहीं हैं । अन्वारोह किये पीछे पत्नीके पृथक् पिंड तिलांजलि तिलोंसे पृथक् २ करै और एकशिलापर दे और अवयवके पिंडार्थ एकपाक होताहै । और पिंड पृथक् २ होते हैं। नव श्राद्ध भिन्न २ होते हैं । और सपिंडीकरण भी पृथक् २ होता है। एक ही वृषोत्सर्ग होताहै और एकही गौ दी जाती है। सपिंडीकरण तो न करना । अथवा भर्ताके संग ही करना । इत्यादि पक्षको कह आये। मासिक, वार्षिक, आदिमें भी एककाल आदिकी व्यवस्था श्राद्धप्रकरणमें कही है । यह सहगमनमें निर्णय समाप्त हुआ। काशीनाथ उपाध्यायने इसप्रकार अंत्यक्रियाकी विधिका निर्णय कहा और शुद्धिके लिये भगवत्पादोंमें अर्पण किया। यह अंत्येष्टिका निर्णय समाप्त हुआ ॥

अथ विधवाधर्माः।

"पत्यौ मृते तु भार्याणां विधाद्वयमुदीरितम् ॥ वैधव्यं पालयेत्सम्यक् सहाग्निगमनं तु वा ॥ पत्यौ मृते च या योषिद्वैधव्यं पालयेत्सदा ॥ सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गलोकं समश्नुते ॥ विधवा पालयेच्छीलं शीलभंगात्पतत्यधः ॥ तद्वैगुण्यादपि स्वर्गात्पतिः पतति सर्वथा ॥ तस्याः पिता च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च ॥ विधवाकबरीबंधो भर्तुर्बंधाय जायते ॥ शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा ॥ एकवारं सदा भुक्तिरुपवासव्रतानि च ॥ पर्यंकशयना नारी विधवा पातयेत्पतिम् ॥ नैवांगोद्वर्त्तनं कार्यं गंधद्रव्यस्य सेवनम् ॥ नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कंठगतैरपि ॥ कंचुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतं वसेत् ॥ वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत् ॥ तांबूलाभ्यंजने चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥ यतिश्च विधवा चैव वर्जयेच्चंदनादिकम् ॥" अपुत्रा विधवा भर्त्रादित्रयमुद्दिश्य प्रत्यहं तिलकुशोदकैस्तर्पणं कुर्यात् ॥ श्राद्धादौ तु प्रागुक्तम् ॥

अब विधवाके धर्मोंको कहते हैं । कि, पतिके मरनेपर भार्याओंकी दोविधि कहीहैं । कि, भलीप्रकार विधवाके धर्मकी पालना करै वा सह अग्निगमन करै । पतिके मरनेपर जो स्त्री सदैव वैधव्यकी पालना करती है वह फिर भी भर्ताको प्राप्त होकर स्वर्गलोकको भोगती है । और विधवा अपने शीलकी पालना करै शीलके भंगसे नरकमें पडती है । उसके वैगुण्य (बुराई) से पति भी स्वर्गसे गिरता है । उस स्त्रीका पिता माता और भ्राताओंका समूह भी गिरता है । विधवाके कबरी बांधनेसे भर्ताका बंधन होता है । तिससे विधवा सदैव शिरका मुण्डन करावै । और नित्य एकबार भोजन करै । उपवास और व्रत करै । पलंगपर सोनेसे विधवा नारी अपने पतिको नरकमें डारती है । न अंगपर उबटना करै न सुगंधके द्रव्यका सेवन करै । चाहै प्राण कंठमें भी आजायँ तो भी बैलपर न चढै । न कंचुक (चोली) का धारण करै और न विकारके वस्त्रको धारण करै । और वैशाख, कार्तिक, माघमें विशेष नियमोंको करै । तांबूल, अभ्यंजन कांसीके पात्रमें भोजन और चन्दन आदि; इनको संन्यासी और विधवा वर्जदें । पुत्रसे हीन विधवा भर्ता आदि तीनके नामसे प्रतिदिन तिल, कुशा, उदक; इनसे तर्पण करै । श्राद्ध आदिके विषयमें तो पहिले कह आये ॥

अथ संन्यासः।

तत्र ब्रह्मचर्यं कृत्वा समावर्तनांते कृतदारः पुत्रानुत्पाद्य यज्ञैरिष्ट्वा वानप्रस्थाश्रमं च कृत्वा संन्यसेदित्याश्रमसमुच्चयपक्षः ॥ ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा ॥ अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातकोऽस्नातको वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेदित्याश्रमविकल्पपक्षः ॥ "प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेच्च गृहादपि ॥ वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखित" इति वाक्ये आतुरो मुमूर्षुः ॥ दुःखितश्चोरव्याघ्रादिभीत इत्यर्थः ॥ आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया ॥ प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत् ॥ संन्यासे दंडग्रहणादिरूपे विविदिषाख्ये विप्रस्यैवाधिकारः ॥ विद्वत्संन्यासे तु क्षत्रियवैश्ययोरपि ॥ कलियुगे संन्यासनिषेधस्त्रिदंडिसंन्यासपर इति प्राञ्चः ॥ स च संन्यासश्चतुर्धा ॥ कुटीचको बहूदको हंसः परमहंसश्चेति ॥ अत्रोत्तरोत्तरः श्रेष्ठः ॥ बहिः कुट्यां गृहे वा वसन्काषायवासास्त्रिदंडी शिखायज्ञोपवीतवान्बंधुषु गृहेषु वा भुंजान आत्मनिष्ठो भवेत्स कुटीचकः ॥ पुत्रादीन्हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन्पूर्वोक्तकाषायवस्त्रादिवेषवान्बहूदकः ॥ हंसस्तु पूर्वोक्तवेषोऽप्येकदंडः ॥ परमहंसस्तु शिखायज्ञोपवीतहीन एकदंडी स्यात् ॥ काषायवस्त्रत्वं चतुर्णामपि ॥ हंसपरमहंसयोः शिखायज्ञोपवीतसत्त्वासत्त्वाभ्यां भेदः ॥ एकदंडस्तु द्वयोरपि ॥ परमहंसस्य दंडधारणं विविदिषा दशायां नित्यम् ॥ विद्वत्तादशायां तु कृताकृतम् ॥ न दंडं न शिखां नाच्छादनं चरति परमहंसः इति श्रवणात् ॥ वैराग्यं विनाजीवनार्थं संन्यासे तु नरकाः ॥ "एकदंडं समाश्रित्य जीवंति बहवो नराः ॥ नरके रौ-

रवे घोरे कर्मत्यागात्पतंति ते ॥ काष्ठदंडो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ॥ स याति नरकान्घोरान्" इत्यादि स्मरणात् ॥

अब संन्यासको कहते हैं । उसमें ब्रह्मचर्यको करके समावर्तनके अन्तमें विवाहके अनन्तर पुत्रोंको पैदा करके यज्ञोंको करके और वानप्रस्थ आश्रमको करके संन्यासको ग्रहण करै । यह आश्रमोंके समुच्चयका पक्ष है । ब्रह्मचर्यसे ही संन्यास ले घरसे वा वनसे ले । और व्रतहीन हो वा व्रती हो स्नातक हो वा विनास्नातक हो अग्निहोत्रका त्यागी हो वा अग्निहोत्रसे हीन हो जिस दिन विराग हो जाय उसी दिन संन्यासको ग्रहणकर ले यह आश्रमका विकल्प पक्ष है । ब्रह्मचर्यसे संन्यास ले गृहस्थ (घर) से भी संन्यास ले वनसे भी संन्यास ले, वा आतुर दुःखित मनुष्य भी संन्यासको ले इस वाक्यमें आतुर पदसे मुमूर्षु (मरनेवाला) और दुःखितपदसे चोर व्याघ्र आदिसे भयभीत लेना । आतुरोंके संन्यासमें न विधि है न कोई कर्म है प्रेषमात्रका उच्चारण कराके वहां संन्यास करा दे । ज्ञानी होनेकी इच्छारूप और दंडग्रहण आदिरूप संन्यासमें ब्राह्मणका ही अधिकार है । विद्वत्संन्यासमें तो क्षत्रिय और वैश्यका भी अधिकार है । कलियुगमें जो संन्यासका निषेध है वह त्रिदण्ड संन्यासके लिये है यह प्राचीन कहते हैं । वह संन्यास चार प्रकारका है । कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस; इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है । ग्रामसे बाहिर कुटीमें वा घरमें बसता हुआ काषायवस्त्र (गेरूसे रँगा) तीनदण्ड, धारकर शिखा यज्ञोपवीतको धारण किये अपने बांधवोंमें या घरमें भोजन करता हुआ जो आत्मा निष्ठ हो वह कुटीचक होता है । और पुत्र आदिकोंको छोडकर सातघरोंमें भिक्षा करता हुआ और पूर्वोक्त काषायवस्त्र वेषधारी जो है वह बहूदक होता है । और पूर्वोक्तवेषको धारण किये जो एकदण्डको रक्खै यह हंस होता है । और जो शिखा यज्ञोपवीतसे हीन एकदण्डी हो वह परमहंस होता है । काषायवस्त्र तो चारोंको होता है । हंस और परमहंसोंको तो शिखा, यज्ञोपवीत; रखने और न रखनेसे भेद है । एकदंड तो दोनोंपर होता है । परमहंसको दंडका धारण ज्ञानकी इच्छा दशामें नित्य है । और विद्वान् अवस्थामें धारण करै चाहै न करै । क्योंकि यह शास्त्रमें सुनाहै कि, दण्ड, शिखा और आच्छादन इसको परमहंस न धारै । वैराग्यके विना जीवनके लिये संन्यास लेनेमें तो नरक होता है । क्यों कि, इत्यादि स्मृतियोंके वचन हैं कि, एकदण्डके आश्रयसे बहुतसे मनुष्य जीवते हैं. वे कर्मके त्यागसे घोर रौरव नरकमें पडते हैं । जिस सर्वज्ञानसे विवर्जितने काष्ठके दण्डका धारण करलिया है वह घोर नरकोंमें जाताहै ॥

अथ संन्यासग्रहणविधिः ।

तत्रोत्तरायणं प्रशस्तम् ॥ आतुरस्य दक्षिणायनमपि ॥ तत्रादौ गृह्याग्निमंतं तादृशविधुरं प्रति च प्रयोगः ॥ तत्र शांत्यादिलक्षणं गुरुं संशोध्य तन्निकटे त्रिमासं यतिधर्मान्संवीक्ष्य गायत्रीजपरुद्रजपकूष्मांडहोमादिभिः शुद्धिं लब्ध्वा रिक्तातिथौ देशकालौ स्मृत्वामुकस्य मम करिष्यमाणसंन्यासेधिकारार्थं चतुःकृच्छ्रात्मकं प्रायश्चित्तं प्रतिकृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायैकैकगोनिष्क्रयद्वाराहमाचरिष्ये ॥ कृच्छ्रप्रत्याम्नाय-

गोनिष्क्रयं द्रव्यं विप्रेभ्यो दातुमुत्सृजे इति संकल्पपूर्वकं रजतनिष्कतदर्धतदर्धा-न्यतमं प्रतिधेनुं दद्यात् ॥ एकादश्यां द्वादश्यां वा यथा ब्रह्मरात्रिः स्यात्तथा श्राद्धान्यारभेत् ॥ अत्रानाश्रमिणश्चतुःकृच्छ्रमन्यस्य तप्तकृच्छ्रमिति सिंधुः ॥ स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिंडीकरणानि साग्निः पार्वणविधिना निरग्निरेकोद्दिष्टविधिना कुर्यादिति केचित् ॥ नेत्यन्ये ॥ अथाष्टौ श्राद्धानि ॥ तत्रापस्तंबहिरण्यकेशीयादीनामग्नौकरणपिंडादिरहितः सांकल्पिकः प्रयोगः ॥ आश्वलायनादीनां सपिंडकः पार्वणप्रयोगः ॥ तत्रादौ सव्येन सयवजलेन श्राद्धांगतर्पणम् ॥ ब्रह्माणं तर्पयामि ॥ विष्णुं० महेश्वरं० देवर्षीन्० ब्रह्मर्षीन्० क्षत्रर्षीन्० वसून्० रुद्रान्० आदित्यान्० सनकं० सनंदनं० सनातनं० पंचमहाभूतानि० चक्षुरादिकरणानि० भूतग्राम० पितरं० पितामहं० प्रपितामहं० मातरं० पितामहीं० प्रपितामहीं० आत्मानं० पितरं० पितामहं० इति नद्यादौ कृत्वा गृहमागत्य देशकालौ स्मृत्वा करिष्यमाणसंन्यासांगत्वेनाष्टौ श्राद्धानि पार्वणविधिनान्नेनामेन वा करिष्ये इति संकल्प्य क्षणं दद्यात् ॥ अत्र सर्वं नांदीश्राद्धवत् ॥ तेन नापसव्यं तिलस्थाने यवा युग्माविप्राः ॥ तथा च देवस्थाने विप्रौ द्वौ श्राद्धाष्टके षोडशेत्यष्टादश विप्राः ॥ तत्र सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नांदीमुखाःस्थाने क्षणः कर्तव्य इत्येकं वृत्वा द्वितीयं वृणुयात् ॥ एवमग्रेपि ॥ प्रथमे देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नांदीमुखाःस्थाने क्षणः १ द्वितीये ऋषिश्राद्धे देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयो नांदी० २ तृतीये दिव्यश्राद्धे वसुरुद्रादित्या नांदी० ३ चतुर्थे मनुष्यश्राद्धे सनकसनंदनसनातना नांदी० ४ पंचमे भूतश्राद्धे पृथिव्यादिपंचभूतान्येकादश चक्षुरादिकरणादिचतुर्विधभूतग्रामा नां० ५ षष्ठे पितृश्राद्धे पितृपितामहप्रपितामहा नांदी० ६ सप्तमे मातृश्राद्धे मातृपितामहीप्रपितामह्यो नांदी० ७ अष्टमे आत्मश्राद्धे आत्मपितृपितामहा नांदीमु० ८ आत्मांतरात्मा परमात्मेति केचित् ॥ इति द्वौद्वौ विप्रौ वृणुयात् ॥ सर्वत्र नांदीमुखत्वं विशेषणम् ॥ युग्मा विप्राः ॥ सत्यवसू दक्षक्रतू वा देवौ ॥ ततः सर्वेषां पाद्यं दत्त्वा प्राङ्मुखानुदक्संस्थानुपवेश्य प्रार्थयेत् ॥ "संन्यासार्थमहं श्राद्धं कुर्वे ब्रूत द्विजोत्तमाः ॥ अनुज्ञां प्राप्य युष्माकं सिद्धिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम् ॥" कुरु इति प्रत्युक्तः ॥ सयवऋजुदूर्वादियुग्मेनाब्दानपूर्वकं संबुध्यंते इदमासनमित्यष्टादशस्वासनं दद्यात् तत ॥ आश्वलायनानामर्घ्यपात्रासादनम् ॥ आपस्तंबादीनां सांकल्पिकत्वान्नार्घ्यम् ॥ देवार्थमेकं पार्वणाष्टकार्थमष्टावित्येवं नव पात्राणि ॥ सर्वत्र पवित्रद्वयांतर्हितेषु शन्नोदेवीरित्यप आसिच्य विश्वेदेवपात्रे यवोसीति यवा अष्टपात्रेषु तिलोसीति मंत्रस्योहेन यवानोप्य गंधादिपूजनम् ॥ ऊहस्तु ॥ यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः ॥ प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नांदीमुखान्देवान्प्रीणयाहि नः स्वाहा नमः ॥ इति प्रथमपात्रे ॥ द्वितीये नांदीमखानृषीन्० तृतीये नांदीमुखान्

दिव्यान्प्री० चतुर्थे नांदीमुखान्मनुष्यान्प्रीण० पंचमे नांदीमुखानि भूतानि प्री० षष्ठसप्तमाष्टमेषु नांदी० पितॄन्प्रीणयेत्यादि ॥ एकैकं पात्रं द्विधा विभज्य सर्वत्र या दिव्या इति मंत्रेण विश्वेदेवा नांदीमुखा इदं वोर्घ्यमिति वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नांदीमुखा इदं वोर्घ्यं स्वाहा नम इत्यादिना यथायथं षोडशविप्रहस्तेषु दद्यात् ॥ या दिव्या इति स्रवदनुमंत्रणम् ॥ पात्रं न्युब्जीकृत्य गंधाद्याच्छादनांतपूजा ॥ तत्र सर्वत्र संबुद्ध्यंतो नांदीमुखविशेषणयुक्त उच्चारः ॥ भोजनपात्राण्यासाद्य ब्रह्मादिषोडशविप्रकरेष्वग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति मंत्राभ्यामाहुतिद्वयं दद्यात् ॥ नेदमापस्तंबादीनाम् ॥ उपस्तीर्यान्नं परिविष्यान्नाभावे आमं तन्निष्क्रयं वा प्रोक्ष्य पृथ्वी ते पात्रमित्यादिना यथा दैवतमन्नस्यामादेर्वा त्यागः ॥ ये देवा स० ॥ प्रजापते न० ब्रह्मार्पणं ब्रह्म० अनेनाष्टश्राद्धेन नांदीमुखा देवादयः प्रीयंताम् ॥ आपोशनदानांते बलिदानवर्ज्यं भुंजीयुः ॥ तृप्तेषु उपास्मै० अक्षन्नमी० संपन्नमिति पृष्टे रुचिरमिति सर्वे ब्रूयुः ॥ नेदमामान्ने ॥ आचांतेषु यवलाजदधिबदरीयुतान्नेनाष्टचत्वारिंशत्पिंडान्कृत्वा प्रागायता उदक्संस्था अष्टौ रेखाः कृत्वाभ्युक्ष्य कुशान्दूर्वा वास्तीर्य पिंडस्थानेषु चतुर्विंशतौ जलं सिंचेत् ॥ तद्यथा ॥ शुंधंतां ब्राह्मणो नांदीमुखाः शुंधंतां विष्णवो नांदीमुखाः ॥ शुंधंतां महेश्वरा नां० ॥ इति प्रथमरेखायाम् ॥ तदुत्तररेखासु शुंधंतां देवर्षयो नां०॥ शुंधंतां ब्रह्मर्षयो नांदी० ॥ इत्याद्यूहो ज्ञेयः ॥ ततो ब्रह्मणे नांदीमुखाय स्वाहेत्येकं पिंडं दत्त्वा द्वितीय एवमेव देयस्तूर्ष्णीं वेति प्रति दैवतं पिंडद्वयम् ॥ एवमग्रेपि विष्णवे नांदीमुखाय स्वाहेत्यादयः स्वाहांताः पिंडदानमंत्रा ऊह्याः ॥ अत्र पितरो मादयध्वमित्यादि पुनः शुंधंतां तं तंत्रमंजनमभ्यंजनं च कृताकृतम् ॥ पिंडानांधादिना संपूज्य नत्वोपसंपन्नमिति विसृज्य विप्रेभ्यो दक्षिणादि तंत्रम् ॥ नेदं पिंडदानाद्यापस्तंबादीनाम् ॥ कात्यायननामाश्वलायनवत् ॥ अष्टश्राद्धोत्तरं तद्दिने द्वितीये वा षट् शिखाकेशान्स्थापयित्वा कक्षोपस्थवर्जं केशश्मश्रुनखादि वापयित्वा स्नात्वा कौपीनाच्छादनादि होमद्रव्यं च विनान्यत् धनादि विप्रादिभ्यः पुत्रादिभ्यश्च त्यजेत् ॥ कौपीनादिकं गैरिकं रंजितं कृत्वा वैणवं दंडं सत्वचं शिरोभ्रूललाटान्यतमप्रमाणं समूलमंगुलिस्थूलं विप्रानीतमेकादशनवचतुःसप्तान्यतमपर्वकं पर्वग्रंथियुतं मुद्रायुतं संपाद्य शंखोदकेन प्रणवपुरुषसूक्तकेशवादिनामभिरभिषिच्य स्थापयेत् ॥ ततः कमंडलुकौपीनाच्छादनकंथापादुकाः स्थापयेत ॥ शिक्यपात्रादिकमपि केचित् ॥ देशकालौ संकीर्त्याशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानंदप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये परमहंसाख्यसंन्यासग्रहणं करिष्ये ॥ तदंगतया गणपतिपूजनपुण्याहवाचनमातृकापूजननांदीश्राद्धानि करिष्ये ॥ तानि कृत्वा जपेत् ॥ ब्रह्मणे नमः ॥ विष्णवे० रुद्राय० सूर्याय० सोमाय० आत्मने० अंतरात्मने० परमात्मने० अग्निमी-

ळे ऋक् ॥ इषे त्वोर्जे त्वा ॥ अग्न आयाहि ऋक् ॥ शं नो देवी ऋक् ॥ जपित्वा सक्तुपिष्टं मुष्टित्रयं प्रणवेन त्रिः प्राश्य नाभिमालभेत् ॥ आत्मने स्वाहा ॥ अंतरात्मने० परमात्मने० प्रजापतये स्वाहेति मंत्रैः ॥ ततः पयोदधिमिश्रमाज्यं जलमेव वा त्रिवृदसीति द्वितीयं विवृदसीति तृतीयं प्राश्यापः पुनंत्विति जलं प्राश्याचम्योपवासं करिष्ये इति संकल्पयेत् ॥

अब संन्यासके धारणकी विधिको कहते हैं। उसमें उत्तरायण श्रेष्ठ है। आतुरके लिये दक्षिणायन भी श्रेष्ठ है। उसमें प्रथम गृह्य अग्निहोत्री और अग्निसे जो विधुर (रहित) उनके लिये यह प्रयोग है कि, उसमें शान्ति आदि हैं, लक्षण जिसमें ऐसा गुरुका संशोधन (निर्णय) करके उसके निकट तीनमासतक संन्यासीके धर्मोंको देखकर और गायत्री जप, रुद्रजप कूष्माण्डहोम आदिसे शुद्धिको प्राप्त होकर रिक्तासे भिन्नतिथिमें देशकालका स्मरण करके 'अमुक मेरे करिष्यमाण संन्यासमें अधिकारके लिये चार कृच्छ्ररूप प्रायश्चित्तको प्रतिकृच्छ्र उसके प्रत्याम्नाय गोनिष्क्रय द्वारा मैं करताहूं।और कृच्छ्रके प्रत्याम्नायरूप गोनि (मूल्य) द्रव्यको ब्राह्मणोंको देताहूं।' इस संकल्पको करके निष्कभर रजत उससे आधा वा उससे भी आधा द्रव्य प्रत्येक धेनुके लिये दे। एकादशी वा द्वादशीको ब्रह्मरात्रिबनानेके लिये श्राद्धोंको करै। इसमें जो आश्रमरहित है। वह चारकृच्छ्र और उससे अन्य तीनकृच्छ्र करै। यह निर्णयसिन्धुमें लिखा है। अपने षोडशश्राद्ध, नवश्राद्ध, सपिण्डीकरणको अग्निहोत्री पार्वणविधिसे और निरग्नि एकोद्दिष्टविधिसे करै यह कोई कहते हैं। इनको न करै यह अन्य कहते हैं। अब आठश्राद्धोंको कहते हैं। उसमें आपस्तम्ब, हिरण्यकेशीय आदिकोंके मतमें अग्नौकरण पिंड आदिसे रहित, संकल्पमात्रसे ही प्रयोग है। आश्वलायनोंके मत में तो पिण्डसहित पार्वणका प्रयोग है। तहां प्रथम सव्य होकर, जौं सहित जलसे श्राद्धका अंग यह तर्पण है कि "ब्रह्माणं तर्पयामि। विष्णुं०। महेश्वरं०। देवर्षीन्०। क्षत्रर्षीन्०। वसून्०। रुद्रान्०। आदित्यान्०। सनकं०। सनंदनं०। सनातनं०। पंचमहाभूतानि०। चक्षुरादिकरणानि०। भूतग्रामं०। पितरं०। पितामहं०। प्रपितामहं०। मातरं०। पितामहीं०। प्रपितामहीं०। आत्मानं०। पितरं०। पितामहं तर्पयामि" इसप्रकार नदी आदिके विषै तर्पणको करके, घर आकर, देशकालका कीर्तन करके इसप्रकार संकल्प करै। कि, 'करिष्यमाण संन्यासके अंगरूप आठश्राद्धोंको मैं पार्वणविधिसे पकान्न अथवा आमान्नसे करताहूं' यह संकल्प करके ब्राह्मणको क्षणका दान दे। यहां सब विधिः नांदीश्राद्धके समान समझनी। तिससे इन श्राद्धोंमें अपसव्य नहीं होता। तिलोंकी जगह जौंसे कर्मको करै। दो २ ब्राह्मणोंको नियुक्त इसप्रकार करै कि, देवताओंकी जगह दो ब्राह्मण करने। आठ श्राद्धोंके सोलह ब्राह्मण इसप्रकार अठारह (१८) ब्राह्मण हुए। तहां; हे सत्य, वसु, नामा विश्वेदेवा नांदी मुखरूपो स्थितिके लिये क्षण करो' ऐसे एकका वरण करके दूसरेका वरण करै। इसीप्रकार आगे भी प्रथम देवश्राद्धोंमें 'हे ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नांदीमुखो स्थितिके लिये क्षणकरो' दूसरे ऋषिश्राद्धमें; हे देवर्षि ब्रह्मर्षि क्षत्रर्षि नांदीमुखो स्थितिके लिये क्षण करो २, तीसरे दिव्यश्राद्धमें; 'हे वसु रुद्र आदित्य नांदीमुखो स्थिति० ३, चौथे मनुष्यश्राद्धमें; हे सनक सनंदन सनातन नांदीमुखो स्थिति० ४, पांचमें भूतश्राद्धमें; हे पृथिवी आदि

पांचभूतो नांदीमुखो हे एकादशचक्षु आदि इंद्रिय आदि चारप्रकारके भूतो हे नान्दीमुखो ! स्थिति० ५, छठे पितृश्राद्धमें; हे पितृ पितामह प्रपितामह नान्दीमुखो ! स्थिति० ६, सातवें मातृश्राद्धमें; हे मातृ पितामही प्रपितामही नान्दीमुखियो ! स्थिति० ७, आठमें आत्मश्राद्धमें; हे आत्म (अपने) पितृ पितामह नांदीमुखो ! स्थितिके लिये क्षणकरो ८, यहां आत्मा पदसे अंतरात्मा लेना, कोई तो यह कहते हैं । कि, आत्मापदसे परमात्मा लेना । इसप्रकार दो २ ब्राह्मणोंका वरण करै । और सब जगह नान्दीमुखविशेषणको दे । युग्म ब्राह्मण जिमावे । सत्य, वसु, वा दक्ष क्रतु नामके विश्वेदेवा होते हैं । तिससे सबको पाद्य देकर उत्तर दिशामें पूर्वाभिमुख बैठाकर प्रार्थना करै कि, 'हे द्विजोंमें उत्तमो । संन्यासके लिये मैं श्राद्धको करताहूं; आपकी आज्ञाको प्राप्त होकर सनातनसिद्धिको प्राप्त हूंगा, फिर ब्राह्मणोंने 'श्राद्धकरो' ऐसे कहाहै जिसको ऐसा यजमान जौंसहित ऋजु दूर्वा आदिके युग्मसे जलदानके अनंतर संबोधनके अंतमें 'यह आसन है' यह कहकर अठारहोंको आसन दे । फिर आश्वलायनोंके मतमें अर्घ्यपात्रोंको रक्खै । आपस्तंबोंके मतमें संकल्पसे श्राद्ध है अर्घ्य नहीं । देवताओंके लिये एकपात्र और आठपार्वणोंमें आठपात्र इसप्रकार नौ (९) पात्र० होते हैं । दो पवित्रियोंसे ढके हुये सब पात्रोंमें "शन्नोदेवी०" इस मंत्रसे जलको सींचकर; विश्वेदेवाओंके पात्रमें "यवोसि०" इस मंत्रसे जौंको आठपात्रोंमें "तिलोसि०" इस मंत्रके ऊहसे तिलोंको डारकर; गंधपुष्प आदिसे पूजन करै । ऊहतो इसप्रकार है कि, "यवोसिसोमदेवत्योगोसवेदेवनिर्मितः ॥ प्रत्नवद्भिःप्रत्तःपुष्टयानान्दीमुखान्देवान्प्रीणयाहिनः-स्वाहानमः ॥" इस मन्त्रसे प्रथमपात्रमें; दूसरेमें "नांदीमुखान् ऋषीन्०;" तीसरेमें "नांदीमुखान् दिव्यान् प्रीण०;" चौथेमें "नांदीमुखान् मनुष्यान् प्रीण०;" पांचमेंमें "नांदीमुखानि भूतानि प्रीण०" ऐसे ही छठे सातवें आठमेंमें "पितॄन्प्रीणय" इत्यादि ऊह करै । एकएक पात्रको दो २ प्रकारसे विभाग करके सब जगह "यादिव्या०" इस मन्त्रसे हे नांदीमुख विश्वेदेवाओ ! यह अर्घ्य आपको देताहूं । हे ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नांदीमुखो ! यह अर्घ्य आपको देताहूं; इत्यादि प्रकारसे यथायोग्य सोलह ब्राह्मणोंके हाथोंमें अर्घ्य दे । पडते हुये जलके समय "या दिव्या० ।" इस मन्त्रको पढै और पात्रको ओंधाकरके गंध आच्छादन (ढकना) पर्यंत पूजाको करै । वहां सब जगह संबोधनसे नांदीमुखविशेषणके सहित उच्चारण करै । भोजनके पात्रोंको रखकर ब्रह्मा आदि सोलह ब्राह्मणोंके हाथोंमें "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । सोमाय पितृमते स्वाहा ।" इन दो मन्त्रोंसे दो २ आहुति दे । ये आहुति आपस्तम्बोंके यहां नहीं हैं । समीपमें बैठकर अन्नको परसकर अन्नके अभावमें आमको वा उसके निष्क्रयद्रव्यको प्रोक्षण करके "पृथ्वीते पात्रं०" इत्यादि मन्त्रसे देवताओंके नामसे पके अन्नको वा आमान्नको दे । फिर "ये देवास० । प्रजापतेन० । ब्रह्मार्पणं ब्रह्म०" इन मंत्रोंको पढै । इन आठ श्राद्धोंसे नान्दीमुख देव आदि प्रसन्न हों । आपोशन देनेके अन्तमें बलिदानको किये विना ही ब्राह्मण भोजन करैं । ब्राह्मणोंके तृप्त होनेपर "उपास्मै० । अक्षन्नमी० ।" इन मंत्रोंको पढै । फिर 'श्राद्धसंपन्न भी हुआ' ऐसे पूछनेपर; सब ब्राह्मण 'रुचिर हुआ' ऐसे कहैं । यह आमान्न श्राद्धमें नहीं होता । ब्राह्मणोंके आचमन किये पीछे जौं, लाजा, दही, बेर; इनसे युक्त अन्नसे अडतालीस पिंडोंको करके पूर्वदिशाको लंबी उत्तरदिशामें स्थित आठरेखाओंको करके छिडककर उनपर कुशा

वा दूर्वाको रखकर चौबीस पिंडस्थानोंमें जलको सींचै । वह ऐसे है कि ब्रह्मा नांदीमुख शुद्ध हों, विष्णु नांदीमुख शुद्ध हों, महेश्वर नांदीमुख शुद्ध हों; यह कहकर प्रथमरेखामें दे फिर उत्तररेखाओंमें ब्रह्मर्षि नांदीमुख शुद्ध हों, इत्यादि ऊह जानना । फिर "ब्रह्मणे नांदीमुखाय स्वाहा" इस मंत्रसे एकपिंडको देकर दूसरा भी इसीप्रकार दे । वा तूष्णीं दे । इससे देवता २ के प्रति दो २ पिंड होते हैं। इसीप्रकार आगे भी "विष्णवे नांदीमुखाय स्वाहा" इत्यादि स्वाहा पर्यन्त पिंडदानके मंत्र ऊहसे समझने। यहां "पितरो मादयध्वं" (पितर प्रसन्न हों) इत्यादि पुनः "शुंधंतां" पर्यंतका कर्म और अंजन अभ्यंजन इनको करै चाहै न करै। पिंडोंको गंध आदिसे पूजकर नमस्कार करके "उपसपन्नं" यह कहकर विसर्जन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देने आदि कर्मको करै। आपस्तंबोंके यहां यह पिंडदान आदि नहीं है। कात्यायनोंके यहां तो आश्वलायनोंके समान है । आठ श्राद्धोंके पीछे उसीदिन वा दूसरे दिन शिखाके छः (६) केशोंको छोडकर कुक्षि उपस्थके विना केश श्मश्रु नख आदिका मुंडन कराकर और स्नान करके कौपीन, आच्छादन, होमका द्रव्य; इनके विना जो धन आदि है वह ब्राह्मण आदिके वा पुत्र आदिके लिये त्याग दे । कौपीन आदिको गेरूसे रंगकर त्वचासहित शिर भ्रकुटि मस्तक पर्यंत प्रमाणका मूलसहित अंगुलिके समानस्थूल और ब्राह्मण जिसे लाया हो; ग्यारह, नव, चार, सात; इनमेंसे कोई जिसमें पर्व (ग्रंथि) हों, जो मुद्रासे युक्त हो, ऐसे बाँसके दंडको संपादन करके शंखके जलसे ॐकार, पुरुषसूक्त, केशव आदिके नामोंसे उस दंडको सींचकर स्थापन करै । फिर कमंडलु, कौपीन, आच्छादन, कथा, खडाऊं; इनका स्थापन करै । कोई तो शिक्यपात्र आदिको भी कहते हैं। देशकालका कीर्तन करके 'संपूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति और सबसे अधिक आनंदकी प्राप्तिरूप जो परमपुरुषार्थ (मोक्ष) उसकी प्राप्तिके लिये परमहंसनाम संन्यासको ग्रहण करताहूं, और उसके आगे गणपति पूजन, नांदीश्राद्धोंको करताहूं। और उनको करके यह जप करै कि ब्रह्माको नमस्कार है विष्णु, रुद्र, सूर्य, सोम, आत्मा, अन्तरात्मा, और परमात्मा; इन सबको नमस्कार है। फिर "अग्निमीले" ऋचाको और "इषेत्वोर्जेत्वा०" । 'अग्नआयाहि' ऋचा। 'शन्नो देवी' ऋचाको जपकर तीनमुष्टि सत्तूके चूर्णको; ॐकारको पढकर तीनबार खाकर नाभिका स्पर्श करै। उसके मन्त्र ये हैं कि "आत्मने स्वाहा । अन्तरात्मने स्वाहा। परमात्मने स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा" फिर दूध, दही, मिले घृतको वा जलहीको "त्रिवृदसि०" इससे प्रथम, "प्रवृदसि" द्वितीय, "विवृदसि०" तृतीय, का पान करके "आपः पुनंतु" इससे जलपान करके आचमन करके उपवास करताहूं' यह संकल्प करै॥

अथ सावित्रीप्रवेशः।

ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि० ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ भुवः सावित्रीं प्र० भर्गोदेवस्य० ॐ स्वः सावित्रीं० धियो यो० ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्र० तत्सवितु० ऋक् ॥ ततोस्तात्प्राक् गृह्याग्निं समिध्यविच्छिन्नश्चेत्पुनः संधानविधिना निरग्निर्वा विधुरादिर्वा पृषो दिवि विधानेनाग्निं संपादयेत ॥ पृषो दिवि विधानं च कात्यायनवैश्वदेवप्रसंगे पूर्वार्द्धे उक्तम् ॥

अब सावित्रीके प्रवेशको कहते हैं । कि " ॐभू: सावित्रीं प्रविशामि । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि, भर्गो देवस्य० ॐ स्वः सावित्रीं प्रविशामि, धियो योनः ॐ भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि, तत्सवितु०" यह सम्पूर्ण ऋचा पढै । फिर सूर्यास्तसे पहिले गृह्याग्निको प्रज्वलित करके विच्छिन्न (नष्ट) अग्नि होय तो फिर संधानकी विधिसे अग्निको जलावै । और निरग्नि वा भार्यारहित भी अग्निको प्रज्वलित करै । इसका जो पृष्ठोदिविविधान है वह कात्यायनोंके वैश्वदेवप्रसंगमें पूर्वार्द्धमें कह आये ॥

अथास्तात्पूर्वं ब्रह्मान्वाधानम् ।

संन्यासं कर्तुं ब्रह्मान्वाधानं करिष्ये इति संकल्प्याग्निध्यानाद्याज्यं संस्कृत्य स्रुक्स्रुवौ संमृज्य स्रुचि चतुराज्यं गृहीत्वों स्वाहेति हुत्वा परमात्मानं इदं० ॥ परिषेचनादि० इति ब्रह्मान्वाधानम् ॥ ततः सायं संध्याहोमवैश्वदेवान्कृत्वाग्निसमीपे जागरं कुर्यात प्रातर्नित्यहोमांते वैश्वदेवादिकं कृत्वाग्नेयं वैश्वानरं वा स्थालीपाकं कुर्यात ॥ तत्र करिष्यमाणसंन्यासपूर्वांगभूतमाग्नेयस्थालीपाकं करिष्य इति संकल्प्य ॥ ध्यात्वा चक्षुषी आज्येनेत्यंतेत्र प्रधानमग्निं चरुणा शेषेणेत्यादि ॥ अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामीत्यादिनाम्ना निर्वापादि ॥ नाम्नैव प्रधानहोमः ॥ एवं वैश्वानरपक्षेप्यूह्यम् ॥ ततस्तरत्समंदीति जपित्वा कुशहेमरूप्यजलैः स्नात्वा देशादि स्मृत्वा संन्यासांगभूतं प्राणादिहोमं पुरुषसूक्तहोमं विरजाहोमं च तंत्रेण करिष्ये इति संकल्प्यान्वाधाने आज्येनेत्यंते प्राणादिपंचदेवताः समिच्चर्वाज्यैः पुरुषं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं दशवारं समिच्चर्वाज्यैः प्राणाद्येकोनविंशतिदेवता विरजामंत्रैः प्रतिद्रव्यमेकैकसंख्यं समिच्चर्वाज्याहुतिभिः प्रजापतिं सकृदाज्येन शेषेणेत्यादिषष्ट्युत्तरशतवारं तूष्णीं निरूप्य तथैव प्रोक्ष्य श्रपयित्वाज्यभागांते प्राणाय स्वाहेत्यादिपंचमंत्रैर्द्रव्यत्रयं सकृत्सकृद्धुत्वा यथादैवं त्यक्त्वा सहस्रशीर्षेति षोडशर्चेन प्रत्यृचं पृथक्पृथक् द्रव्यत्रयं हुत्वा पुरुषायेदं न ममेति सर्वत्र त्यजेत् ॥

इसके अनंतर होमसे भी पूर्व ब्रह्मान्वाधानको कहते हैं । 'संन्यास करनेके लिये ब्रह्मान्वाधान करता हूं' यह संकल्प करके अग्निध्यान आदि आज्यका संस्कार करके, स्रुक् स्रुवका संमार्जन करके; स्रुक्में चारवार घृतको ग्रहण करके और "ॐ स्वाहा" इससे होमकर "परमात्मने इदं०" फिर परिषेचन आदि करै । यह ब्रह्मान्वाधान है । फिर सायंकालको संध्या, होम, वैश्वदेव; इनको करके अग्निके समीप जागरण करै । प्रातःकाल नित्यहोमके अंतमें वैश्वदेव आदिको करके अग्निके वा वैश्वानरके लिये स्थालीपाकको करै । उसमें "करिष्यमाण संन्यासका पूर्वांग जो आग्नेय स्थालीपाक उसको करता हूं' यह संकल्प करके "ध्यात्वा चक्षुषी आज्येन०" यहां पर्यंत मंत्रोंसे प्रधान अग्निमें होम करै । शेषचरुसे "अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि" इत्यादि नामोंसे निर्वाप आदिको करै । नामसेही प्रधानहोम करै । इसीप्रकार वैश्वानरपक्षमें भी समझना । फिर "तरत्समंदी" ऋचाओंको जपकर कुशा, सुवर्ण, चाँदीके, जलसे स्नान करके देशकालका स्मरण करके 'संन्यासके अंगभूत प्राण आदिके होमको पुरुषसूक्त होमको, विरजाहोमको, तंत्रसे करताहूं' यह संकल्प करके अन्वा-

धान कियेपर 'आज्येन' इसके अंतमें प्राण आदि पांचदेवताओंका होम, समिध, चरु, आज्यसे और पुरुषका होम, पुरुषसूक्तसे, प्रत्येक ऋचासे, दशबार और समिध चरु आज्यसे प्राण आदि उन्नीस देवताओंको विरजाहोमके मंत्रोंसे द्रव्य २ के प्रति एक २ समिध, चरु, आज्य, की आहुतियोंसे "प्रजापतिं सकृदाज्येन शेषेण" इत्यादिसे एक सौ साठि (१६०) बार तूष्णीं आहुति देकर और तैसे ही प्रोक्षण करके और पकाकर आज्यभागके अंतमें; "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि पांच मंत्रोंसे तीनों द्रव्योंको एक २ बार कहकर और यथायोग्य देवताओंके निमित्त त्यागकर "सहस्रशीर्षा" आदि सोलह ऋचाओंसे पृथक् २ तीनों द्रव्योंका होम करके 'यह सब परमेश्वरके लिये है मेरा नहीं' यह कह सबका त्याग करै ॥

अथ विरजाहोमः ।

प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यंताम् ॥ ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥ प्राणादिभ्य इदं० ॥ वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिसंकल्पा मे शुध्यंताम् ॥ ज्योति० ॥ वागादिभ्य इदं० ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुध्यंताम् ॥ त्वगादिभ्य इदं० ॥ शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरूदरजंघाशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यं० ॥ शिर आदिभ्य० ॥ उत्तिष्ठपुरुष हरित पिंगल लोहिताक्ष देहि देहि ददापयिता मे शुध्यं० ॥ पुरुषादिभ्य० ॥ पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशो मे शुध्यं० ॥ पृथिव्यादिभ्य० ॥ शब्दस्पर्शरूपरसगंधा मे शुध्यं० ॥ शब्दादिभ्य० ॥ मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यंतां० ॥ मनआदिकर्मभ्य० ॥ अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिरहं० ॥ अव्यक्तादिभ्य० ॥ आत्मा मे शुध्यंतां० ॥ ज्यो० आत्मने० ॥ अंतरात्मा मे० ॥ अंतरात्मन० ॥ परमात्मा मे० ॥ पर० ॥ क्षुधे स्वाहा ॥ क्षुध इदं० ॥ क्षुत्पिपासायै स्वाहा ॥ क्षुत्पिपासाया इदं० ॥ विविट्यै स्वा० ॥ विविट्याया० ॥ ऋग्विधानाय० ॥ कर्षोत्काय स्वा० ॥ क्षुत्पिपासामलं ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ॥ अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुदमे पाप्मान ँ् स्वाहा ॥ अन्नय इदं० ॥ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानंदमयआत्मा मे शुध्यंतां० ॥ अन्नमयादिभ्य० ॥ एवं समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यं चत्वारिंशदाहुतीर्हुत्वा ॥ यदिष्टं यच्च पूर्तं यच्चावद्यनापदि ॥ प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि विमुक्तोहं देवकिल्बिषात्स्वाहेत्याज्यं हुत्वा प्रजापतय इदमिति त्यजेत् ॥ ततः पुरुषसूक्तम् ॥ अग्निमीळे इत्यादिचतुर्वेदादींश्च जपित्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य ब्रह्मचार्यादिभ्यो गोहिरण्यवस्त्रादि दत्त्वा समासिंचंतु मरुत इति मंत्रेण गृह्याग्निमुपस्थाय तत्र दारुपात्राणि दहेत्तैजसानि गुरवे दद्यात् ॥ तत आत्मन्यग्निसमारोपम् ॥ अयं ते योनिरित्यृचा या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तये ह्यारोहात्मात्मानमित्यादियजुषा च त्रिरुक्तेनाग्नेर्ज्वालां प्रश्नान्कुर्यात् ॥ कृष्णाजिनमादाय गृहान्निष्क्रम्य ॥ सर्वे भवंतु वेदाढ्याः सर्वे भवंतु सोमपाः ॥ सर्वे पुत्रमुखं दृष्ट्वा सर्वे

भवंतु भिक्षुका इति पुत्रादिभ्य आशिषं दत्त्वा न मे कश्चिन्नाहं कस्यचित्पुत्रादीनुक्त्वा विसृजेत् ॥ जलाशयं गत्वांजलिना जलमादायाशुः शिशान इति सूक्तेनाभिमंत्र्य सर्वाभ्यो देवताभ्यः स्वाहेति त्यजेत् ॥ तिथ्यादि स्मृत्वाऽपरोक्षब्रह्मावाप्तये संन्यासं करोमीति संकल्प्य जलांजलिं गृहीत्वा ॥ ॐ एष ह वा अग्निः सूर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा ॥ ॐ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥ ॐ आपो वै गच्छ स्वाहेति मंत्रत्रयेण जलेष्वंजलित्रयं दद्यात् ॥ पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकेषणा सर्वेषणा मया परित्यक्ता अभयं सर्वभूतेभ्यः स्वाहा ॥ इत्यंजलिं जले क्षिपेत् ॥ पुनरेवमभयं दत्त्वा वदेत् ॥ यत्किंचिद्बंधनं कर्म कृतमज्ञानतो मया ॥ प्रमादालस्यदोषोत्थं तत्सर्वं संत्यजाम्यहम् ॥ त्यक्तसर्वो विशुद्धात्मा गतस्नेहशुभाशुभः ॥ एष त्यजाम्यहं सर्वं कामभोगसुखादिकम् ॥ रोषं तोषं विवादं च गंधमाल्यानुलेपनम्॥ भूषणं नर्तनं गेयं दानमादानमेव च ॥ नमस्कारं जपं होमं याश्च नित्यक्रिया मम॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वर्णधर्माश्रमाश्च ये ॥ सर्वमेव परित्यज्य ददाम्यभयदक्षिणाम् ॥ पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्नाहं वाक्कायमानसैः ॥ करिष्ये प्राणिनां पीडां प्राणिनः संतु निर्भयाः ॥ सूर्यादिदेवान्विप्रांश्च साक्षित्वेन ध्यात्वा नाभिमात्रे जले प्राङ्मुखः ॥ सावित्रीप्रवेशं पूर्ववत्कृत्वा तरत्समंदीति सूक्तं पठित्वा पुत्रेषणाया वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थितोहं भिक्षाचर्यं चरामीति जले जलं जुहुयात्॥ अथ प्रैषोच्चारः ॥ ॐ भूः संन्यस्तं मया ॥ ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॥ ॐ स्वः संन्यस्तं मया ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मयेति त्रिर्मंदमध्योच्चस्वरेणोक्त्वाभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति जले जलं क्षिपेत् ॥ शिखामुत्पाट्य यज्ञोपवीतमुद्धृत्य करे गृहीत्वा ॥ आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा ॐ भूः स्वाहेति जले जलैः सह हुत्वा प्रार्थयेत् ॥ त्राहि मां सर्वलोकेश वासुदेव सनातन ॥ संन्यस्तं मे जगद्योने पुंडरीकाक्ष मोक्षद ॥ युष्मच्चरणमापन्नं त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥ ततो दिगंबरः पंचपदान्युदङ्मुखो गच्छेत् ॥ विविदिषुश्चेत्तस्मै आचार्यो नत्वा काषायकौपीनाच्छादने दत्त्वा दंडं दद्यात् ॥ स च कौपीनं वासश्च परिधाय ॥ ॐ इंद्रस्य वज्रोसि सखे मां गोपायेति दंडं गृह्णीयात् ॥ प्रणवेन गायत्र्या वा कमंडलुम् ॥ इदं विष्णुरित्यासनम् ॥

अब विरजाहोमको कहते हैं। कि, 'मेरे प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान; शुद्धहों । मैं ज्योतिरूप, रजोरहित, पापहीन; हो जाऊं; यह स्वाहा प्राण आदिके लिये है । मेरे वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, प्राण, वीर्य, बुद्धि, आकार; संकल्प; शुद्धहों । मैं ज्योतिरूप० यह स्वाहा वाक् आदिके लिये है । मेरे त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा, स्नायु, अस्थि, शुद्धहों । मैं ज्यो० यह स्वाहा त्वचा आदिके लिये है । मेरे शिर, पाणि, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, ऊरु, उदर, जंघा, शिश्न, उपस्थ, पायु (गुदा); शुद्ध हों । मैं ज्योतिरूप० यह

स्वाहा शिर आदिके लिये है । मेरे उत्तिष्ठपुरुष हरित पिंगल लोहिताक्ष देहि देहि ददापयिता शुद्धहों मैं ज्योतिरूप० यह स्वाहा पुरुष आदिके लिये है । मेरे पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, शुद्धहों मैं ज्योतीरूप० यह स्वाहा पृथिवी आदिके लिये है। मेरे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध; शुद्ध हों मैं ज्योतिरूप० यह स्वाहा शब्द आदिके लिये है । मेरे मन, वाणी, काय, कर्म, शुद्धहों मैं ज्योतीरूप० यह स्वाहा मन आदिके लिये है । मैं अव्यक्तभाव अहं-कारोंसे ज्योतीरूप हूं० यह स्वाहा अव्यक्त आदिके लिये है मेरी आत्मा शुद्ध हो मैं ज्योती-रूप० यह स्वाहा आत्माके लिये हैं । मेरी अन्तरात्मा शुद्ध हो मैं ज्योतीरूप० यह स्वाहा अन्तरात्माके लिये हैं । मेरा परमातमा शुद्ध हो मैं ज्योतीरूप० यह स्वाहा परमात्माके लिये है । 'क्षुधे स्वाहा' यह स्वाहा क्षुधाके लिये है । 'क्षुत्पिपासायै स्वाहा' यह क्षुत्पिपासाके लिये है, 'विविद्यायै स्वाहा' यह विविद्याके लिये है । 'ऋग्विधानाय स्वाहा' यह ऋग्विधानके लिये है । 'कर्षोत्काय स्वाहा' यह कर्षोत्कके लिये है । "क्षुत्पिपासामलाज्येष्ठामलक्ष्मींनाशयाम्यहं अभूतिमसमृद्धिंचसर्वांनिर्णुदमेपाप्मानꣳस्वाहा" यह स्वाहा अग्निके लिये है । मेरे अन्नमय प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, आत्मा शुद्ध हो मैं ज्योतीरूप० यह स्वाहा अन्नमय आदिके लिये है । इसप्रकार समिध, चरु, आज्यकी प्रतिद्रव्य चालीस आहुति देकर जो मेरा इष्टापूर्त्त कर्म है, जो आपत्ति विना आपत्तिमें किया है वह प्रजापतिरूप मनमें हो-मताहूं । और मैं देवताओंके पापसे विमुक्त हूं । इस मन्त्रसे घीकी आहुति देकर यह स्वाहा प्रजापतिके लिये है यह कहकर त्याग दे । फिर पुरुषसूक्त और 'अग्निमीले' इत्यादि चारों वेदोंकी प्रथम ऋचाओंको जपकर स्विष्टकृत् आदि होमके शेषको समाप्त करके ब्रह्मचारी आदिकोंको गौ, सुवर्ण, वस्त्र, आदि देकर 'समासिंचंतुमरुतः' इसमन्त्रसे गृह्याग्निकी स्तुति करके उसमें काष्ठके पात्रोंको दग्धकर दे । और धातुके पात्र गुरुको दे दे । फिर इसप्रकार आत्मामें अग्निका समारोप करै । 'अयं-तेयोनि०' इस ऋचासे 'यातेअग्नेयज्ञियातनुस्तयेत्यारोहात्मानम्' चारबार उच्चारण कियेहुये इस यजुर्वेदके मन्त्रसे अग्निकी ज्वालाका भक्षण करता हूं वा पूर्वोक्त समारोपको करै फिर काली मृगछालाको लेकर घरसे निकलकर सब वेदपाठी हों सब सोमयज्ञके कर्त्ता हों सब पुत्रके मुखको देखकर संन्यासी हों, यह आशीर्वाद पुत्रादिकोंको देकर; न मैं किसीका हूं न मेरा कोई है । यह कहकर पुत्रादिकोंको त्याग दे । फिर जलाशयपर जाकर अंजलिसे जलको लेकर"आशुःशिशान०" इस सक्तसे अभिमंत्रित करके "सर्वाभ्यो देवताभ्यः स्वाहा" यह पढ-कर जल दे।फिर तिथि आदिका स्मरण करके परोक्ष ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये संन्यासको करताहूं यह कहकर जलकी अंजलि लेकर, "ॐ एष ह वा अग्निः सूर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा ॐ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॐ आपो वै गच्छ स्वाहा" इन तीन मंत्रोंसे जलोंमें तीन अंजलि दे । "पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा, सर्वेषणा, मया परित्यक्ता अभयं सर्वभूतेभ्यः स्वाहा" इस मंत्रसे जलमें अंजलि दे अर्थात् मैं पुत्र धन जगत् सबकी इच्छा त्याग दी, सब भूतोंको अभय देता हूं इस प्रकार पुनः भी अभय देकर कहै कि,जो कुछ बंधनकर्म अज्ञानसे मैंने किया है प्रमाद,आलस्यसे पैदाहुये उस सबको मैं त्यागता हूं त्यागा है सब जिसने विशुद्धहै आत्मा जिसका नष्ट हुवा है स्नेह शुभाशुभ जिसका ऐसा यह मैं सम्पूर्ण कामभोग आदिको त्यागताहूं । क्रोध, आनंद, विवाह, गंध, माल्य, अनुलेपन, भूषण, नृत्य, गाना, दान, प्रतिग्रह, नमस्कार, जप, होम और

मेरी सम्पूर्ण नित्यकी क्रिया और मेरा नित्य, नैमित्तिक, काम्य, कर्म और सम्पूर्ण वर्णोंके धर्म; इन सबको त्यागकर अभयदक्षिणा देताहूं। चरण और हाथोंसे विहार करताहुआ मैं वाणी, काया, मनसे प्राणियोंको दुःख न दूंगा। मेरी तरफसे सम्पूर्ण प्राणी निर्भय रहैं। सूर्य आदि देवता और ब्राह्मणोंको साक्षिरूपसे ध्यान करके नाभिमात्र जलमें पूर्वाभिमुख होकर पूर्वके समान सावित्री प्रवेशको करके "तरत्समंदी०" सूक्तको पढकर पुत्रकी इच्छा, धनकी इच्छा, लोककी इच्छासे निवृत्त हुआ मैं भिक्षाका आचरण करूंगा। यह कहकर जलमें जलका होम करै। अब प्रेषके उच्चारणको कहते हैं "ॐभूः संन्यस्तं मया, ॐभुवः संन्यस्तं मया ॐ स्वः संन्यस्तं मया, ॐभूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया" इनको तीनबार मंद २ मध्यम ऊंचे स्वरसे कहकर "अभयं सवभूतभ्यो मत्तः स्वाहा" यह पढकर जलमें जलका क्षेपण करै। फिर शिखाको उत्पाटन करके यज्ञोपवीतको निकासकर हाथमें लेकर "आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा ॐ भूः स्वाहा" इन मंत्रोंसे जलोंसहित यज्ञोपवीत और शिखाको जलमें होमकर प्रार्थना करै कि हे सब लोकोंके ईश, हे वासुदेव हे सनातन, हे जगत्की योनि, हे पुंडरीकाक्ष, हे मोक्षके दाता, मैं संन्यास धारण किया है तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी शरण प्राप्त हुआ, हे पुरुषोत्तम मेरी रक्षा करो फिर उत्तराभिमुख पांचपदतक नम्र होकर गमन करै। ज्ञानकी इच्छाका अभिलाषी होय तो उसको आचार्य नमस्कार करके काषाय वस्त्र, कौपीन, आच्छादन, देकर दंडको दे। और वह कौपीन और वस्त्रोंका धारण करके "ॐ इंद्रस्य वज्रोसि सखे मां गोपाय" यह पढकर दंडको ग्रहण करै। प्रणव वा गायत्रीसे कमंडलुका धारण करै॥

अथ वाक्योपदेशः।

ततः समित्पाणिर्गुरुं नत्वा गरुडासनोपविष्टो गुरुं वदेत्॥ "त्रायस्व भो जगन्नाथ गुरो संसारवह्निना॥दग्धं मां कालदष्टं च त्वामहं शरणागतः॥" यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै॥ तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये इति गुरुमुपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्य पादावुपसंगृह्याधीहि भगवो ब्रह्मेति वदेत्॥ गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्यात्वा जलपूर्णं शंखं द्वादशप्रणवैरभिमंत्र्य तेन शिष्यमभिषिच्य शन्नो मित्र इति शांतिं पठित्वा तच्छिरसि हस्तं दत्त्वा पुरुषसूक्तं जपित्वा शिष्यहृदये हस्तं कृत्वा मम व्रते हृदयं ते दधामीत्यादि मंत्रं जप्त्वा दक्षिणकर्णे प्रणवमुपदिश्य तदर्थं च पंचीकरणाद्येवं बोध्य॥ प्रज्ञानं ब्रह्म॥ अयमात्मा ब्रह्म॥ तत्त्वमसि॥ अहं ब्रह्मास्मीति ऋग्वेदादिमहावाक्येष्वन्यतमं शिष्यशाखानुसारेणोपदिश्य तदर्थं बोधयेत्॥ ततस्तीर्थाश्रमादिसंप्रदायानुसारेण नाम दद्यात्॥ ततः पर्यंकशौचं कारयित्वा योगपट्टं दद्यात॥

फिर समिधोंको हाथमें लेकर गुरुको नमस्कार करके गरुडासनपर बैठा हुआ गुरुको यह कहै कि, भो जगत्के नाथ! हे गुरो! संसारकी अग्निसे दग्ध, और कालसे दष्ट हुयेकी मेरी रक्षा करो। जो ब्रह्माको रचताहै और जो पहिले ब्रह्माको वेदोंको देता है अपनी बुद्धिके प्रकाशरूप उस देव (गुरु) की मैं मुमुक्षु शरण हूं। इन मंत्रोंसे गुरुकी स्तुति करके दक्षि-

णजानुको नीची करके गुरुके चरणोंको ग्रहण करके "अधीहि भगवो ब्रह्म" (हे भगवन् ब्रह्म-का अध्ययन कराओ) यह गुरुको कहै फिर गुरुकी आत्माको ब्रह्मरूपसे ध्यान करके जलसे पूर्ण शंखको द्वादश ॐ कारोंसे अभिमंत्रित करके उससे शिष्यको सींचकर "शन्नो मित्र" इस शांतिको पढकर शिष्यके शिरपर हाथको रखकर पुरुषसूक्तको जपकर शिष्यके हृदयपर हाथ करके "ममव्रतेते हृदयंदधामि" इत्यादि मंत्रको जपकर दक्षिणकर्णमें ॐकारका उपदेश करके, उसके अर्थको कहै। फिर पंचीकरण आदिको बतावै। "प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि" इन ऋग्वेद आदिके महावाक्योंमेंसे कोईसे को शिष्यकी शाखाके अनुसार उपदेश करके उसके अर्थका बोधन करावै फिर तीर्थ, आश्रम, आदि संप्रदायके अनुसार नाम दे (रक्खै) फिर पर्यंक शौचको कराकर योगपट्ट दे ॥

अथ पर्यंकशौचप्रयोगः ।

कस्मिंश्चित्पुण्यदिने कश्चिद्गृहस्थः स्वाग्रे पीठादौ यतिमुपवेश्य गुर्वनुज्ञातो यतये पर्यंकशौचं करिष्ये इति संकल्प्य वामभागे प्राक्संस्थान्पंचमृद्भागान्दक्षिणभागेऽपि तथैव पंच संस्थाप्योभयत्र शुद्धोदकं च संस्थाप्य वामप्रथममृद्भागेन पंचवारं मृज्जलाभ्यां यतिजानुद्वयं कराभ्यां युगपत्क्षालयेत् ॥ चरमक्षालने मृद्भागसमाप्तिः ॥ एवमग्रेपि ॥ ततो दक्षिणभागस्थप्रथमभागार्धेन स्ववामकरं मृज्जलाभ्यां दशवारं प्रक्षाल्यापरार्धेन तेनैव जलेनोभौ करौ सप्तवारं क्षालयेत् ॥ एवमग्रेपि योज्यम् ॥ संख्यायां विशेषस्तूच्यते ॥ वामद्वितीयभागेन चतुर्वारं जंघाद्वयं युगपत्प्रक्षाल्य दक्षिणद्वितीयभागार्धेन सप्तवारं वामकरमर्धांतरेण चतुर्वारमुभौ च करौ क्षालयेत्॥ वामतृतीयेन यतिगुल्फौ त्रिवारं दक्षिणभागार्धेन वामकरं षड्वारमुभौ चतुर्वारम्॥ वामचतुर्थेन यतिपादपृष्ठौ द्विवारं दक्षिणार्धेन स्ववामकरं चतुर्वारमुभौ द्विवारमवशिष्टार्धेन ॥ वामपंचमेन यतिपादतले सकृद्दक्षिणपंचमार्धेन वामस्य द्विवारमुभयोश्चापरार्धेन सकृत्क्षालनमिति ॥

अब पर्यंक शौचके प्रयोगको कहते हैं। कि किसी पुण्यदिनमें कोई गृहस्थ अपने आगे, आसन, आदिपर संन्यासीको बैठाकर गुरुकी आज्ञा लेकर यतिके लिये पर्यंकशौचको करता हूं यह संकल्प करके वामभागमें पूर्वदिशामें मिट्टीके पांचभाग और तैसेही दक्षिणभागमें पांचको स्थापन करके दोनों जगह शुद्धजलको स्थापन करके वामकी तरफके प्रथम मिट्टीके भागसे पांचवार मिट्टीजलसे संन्यासीके दोनों जानुओंका दोनों हाथोंसे एकबार मार्जन करै। पिछले मार्जनमें मिट्टीके भागकी समाप्ति हो जाय; इसीप्रकार आगे भी समझना। फिर दक्षिणभागमें स्थित प्रथमभागके अर्द्धभागके अपने वामहाथको मिट्टी जलसे दशवार प्रक्षालन करके दूसरे अर्द्धभागसे और उसी जलसे दोनों हाथोंको सातबार प्रक्षालन करै। ऐसे ही आगे भी समझना। संख्यामें विशेषको तो कहते हैं कि, वामके द्वितीयभागसे चारबार दोनों जंघाओंको एकसमय ही प्रक्षालन करके दक्षिणके द्वितीयभागके अर्द्धभागसे सातवार वामहाथको और दूसरे अर्द्धभागसे चारबार दोनों हाथोंका मार्जन करै (धोवै) वामके तीसरे भागसे तीनबार संन्यासीके गुल्फोंको तीनबार दक्षिणभागके अर्द्धभागसे वामहाथको छः

बार फिर दोनोंको चारबार वामके चौथे भागसे संन्यासीके चरणोंके पृष्ठभागको दोबार दक्षिणके अर्द्धभागसे संन्यासीके वामहाथको चारबार और शेष अर्द्धभागसे दोनों हाथोंको दोबार मार्जन करै । वामके पांचमें भागसे संन्यासीके पादतलमें एकबार और दक्षिणके पांचमेंके अर्द्धभागसे एकबार क्षालन करै ॥

अथ योगपट्टः ।

कारितपर्यंकशौचो यतिः कटिशौचं कृत्वा कटिसूत्रकौपीने धृत्वा वस्त्रेणावगुंठ्य गुर्वनुज्ञयोच्चासने उपविश्य सभ्यैः सह वेदांते किंचिदुपन्यसेत् ॥ गुरुर्यतिः शिष्यं यतिं शिरसि शंखेन पुरुषसूक्तेनाभिषिच्य वस्त्रगंधपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः संपूज्य वस्त्रमुपरि धृत्वा यतिभिः सह विश्वरूपाध्यायं पश्यामि देवानित्यारभ्य भुंक्ष्व राज्यं समृद्धमित्यंतं पठित्वा पूर्वकल्पितं नाम दद्यात् ॥ ततः शिष्यं वदेत् ॥ इतः परं त्वया संन्यासाधिकारिणे संन्यासो देयो दीक्षायोगपट्टादिकं च कार्यम् ॥ ज्येष्ठयतयो नमस्कार्याः ॥ ततो गुरुः कटिसूत्रं पंचमुद्रालंकृतं पूर्वदंडं च शिष्याय दत्त्वा शिष्यं यथासंप्रदायं नमस्कुर्यात् ॥ अन्ययतयो गृहिणश्च नमस्कुर्युः ॥ शिष्यो नारायणेत्युक्त्वोच्चासनादुत्थाय तत्र गुरुमुपवेश्य यथाविधि नत्वान्ययतीन्नमेत ॥ इति गृह्याग्निमतो विधुरादेश्च विविदिषा संन्यासप्रयोगः ॥

अब योगपट्टको कहते हैं । किया है पर्यंकशौच जिसने ऐसा संन्यासी कटितक शौचको करके कटिसूत्र कौपीनका धारण करके वस्त्रको उनके ऊपर धारकर, गुरुकी आज्ञासे ऊंचे आसनपर बैठकर सभासदोंके संग वेदांतमें कुछ उपन्यास (वार्तालाप) करै । संन्यासी गुरु, संन्यासी शिष्यके शिरपर पुरुषसूक्तको पढकर शंखसे अभिषेकको करके वस्त्र, गंधपुष्प, धूप, दीपक, नैवेद्योंसे पूजकर वस्त्रको ऊपर धारण करके संन्यासियोंके संग "पश्यामिदेवान्"इससे लेकर "भुंक्ष्वराज्यंसमृद्धं" यहांतक विश्वरूपाध्यायको पढकर पहिले कल्पना कियेहुये नामको रखदे । फिर शिष्यको कहै कि अबसे आगे संन्यासका अधिकारी तू अन्यको संन्यास दीजियो । और दीक्षा योगपट्ट आदिको करियो ज्येष्ठसंन्यासियोंको नमस्कार करावै। फिर गुरु: कटिसूत्र और पांचमुद्राओंसे शोभित पूर्वोक्तदंडको शिष्यको देकर संप्रदायके अनुसार शिष्यको नमस्कार करै । अन्य संन्यासी और गृहस्थ भी नमस्कार करैं । शिष्य 'नारायण' यह कहकर ऊंचे आसनसे उठकर उस आसनपर गुरुको बैठाकर और यथाविधि नमस्कार करके अन्यसंन्यासियोंको नमस्कार करै । यह गृह्याग्निमान्का और भार्याविधुरआदिका विविदिषा संन्यासका प्रयोग समाप्त हुआ ॥

अथाग्निहोत्रिणो विशेषः ।

तत्र श्रौताग्नयो विच्छिन्नाश्चेत्पुनराधानम् ॥ पावमानेष्ट्यंतं पूर्णाहुत्यंतं वा कृत्वा प्रायश्चित्तादिसावित्रीप्रवेशांतं पूर्ववत्कुर्यात् ॥

अब अग्निहोत्रीके लिये विशेष कहते हैं कि, उसमें जो श्रौताग्नि होकर और विच्छिन्नाग्नि हो वह पावमान इष्टिपर्यंत वा पूर्णाहुतिपर्यंत पुन: आधानको करके प्रायश्चित्तसे लेकर सावित्रीप्रवेशपर्यंत कर्मको पूर्वके समान करै ॥

अथ ब्रह्मान्वाधानम् ।

अग्नित्रयं समिध्यसंस्कृतमाज्यं स्रुचि चतुर्वारं गृहीत्वाऽऽहवनीये पूर्णाहुतिं ॐ स्वाहा परमात्मने इदमिति कुर्यात् ॥ सायंसन्ध्याग्निहोत्रहोमांते उत्तरेण गार्हपत्यं द्वंद्वशः पात्राण्यासाद्याहवनीयदक्षिणतः कौपीनदंडाद्यासादयेत ॥ रात्रिजागरांते प्रातर्होमादि कृत्वा पौर्णमास्यां ब्रह्मान्वाधानं चेत्पौर्णमासेष्टिं कृत्वा दर्शेष्टिमपि पक्षहोमापकर्षपूर्वकमपकृष्य तदैव कुर्यात् ॥ दर्शे चेद्दर्शेष्टिरेव ॥ अथ पूर्णमास्यां दर्शे वा देशकालौ स्मृत्वा संन्यासपूर्वांगभूतया प्राजापत्येष्ट्या वैश्वानर्येष्ट्या च समानतंत्रया यक्ष्ये इति संकल्प्य समुच्चयेनेष्टिद्वयम् ॥ अत्र वैश्वानरो द्वादशकपालः पुरोडाशः ॥ प्राजापत्यश्चरुर्वैष्णवो नवकपालः पुरोडाशः ॥ अथवा केवलप्राजापत्येष्टिः ॥ अत्र प्रयोगः स्वस्वसूत्रानुसारेणोह्यः ॥ बौधायनसूत्रानुसारेण किंचिदुच्यते ॥ पवनपावनपुण्याहवाचनादिपूर्वांगांते केवलवैश्वानरेष्ट्याः केवलप्राजापत्याया वा संकल्पः ॥ व्रीहिमयः पुरोडाशो द्रव्यं पंच प्रयाजाः ॥ अग्निर्वैश्वानरः प्रजापतिर्वा देवता पंचदश सामिधेन्यः ॥ व्रतग्रहणांतेध्वर्युराज्यं संस्कृत्य स्रुचि च गृहीतं गृहीत्वा पृथिवी होतेत्यादिचतुर्होतृहोमं कूष्मांडहोमसारस्वतहोमौ च कृत्वा निर्वापादि ॥ वैश्वानरो द्वादशकपालः पुरोडाशः प्राजापत्यश्चरुः॥ वैश्वानराय प्रतिवेदयाम इति पुरोनुवाक्या ॥ वैश्वानरः पवमानः पवित्रैरिति याज्या ॥ प्राजापत्यायां प्रधानमुपांशुधर्मकं सुभूः स्वयंभूरित्याद्यनुवाक्याः ॥ प्रजापते नत्वदेतामिति याज्या ॥ अथ स्रुवेणाष्टावुपहोमा उभयत्र ॥ वैश्वानरो न ऊत्या प्रयातु परावतः ॥ अग्निरुक्थेन वाहसा स्वाहा ॥ वैश्वानरायेदमिति त्यागः सर्वत्र ॥ ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ॥ अजस्रं धर्ममीमहे स्वाहा २ वैश्वानरस्यदस ३ पृष्ठो दिवि पृष्ठो अग्निः० ४ जातो यदग्ने० ५ त्वमग्ने शोचिषा० ६ अस्माकमग्ने० ७ वैश्वानरस्य सुमतौ० ८ अथैनमुपतिष्ठेत सहस्रशीर्षेति सूक्तेन ॥ ततः स्विष्टकृदादिशेषं समापयेत् ॥ सर्वो वै रुद्रो विश्वंभूतमिति द्वाभ्यामग्न्युत्सर्गः ॥ आयुर्दा अग्ने इति मंत्रेण दर्भस्तंबस्थयजमानभागात्किंचिदादाय सहस्रशीर्षेत्यनुवाकेन प्राश्य मिमिति ब्रह्म ओमितीदं सर्वमित्यनुवाकेन हुतशेषमाहवनीये प्रक्षिपेत् ॥ एवं वैश्वानर्याद्यन्यतरामिष्टिं कृत्वौपासनाग्नौ सर्वाधाने दक्षिणाग्नौ प्राणादिहोमादिविरजाहोमांतं कार्यम् ॥ अन्यत्प्राग्वत् ॥ ५ ॥ आहवनीयेऽरणीमुसलोलूखलातिरिक्तदारुपात्राणां दाहः ॥ तत आत्मन्याहवनीयाग्निसमारोपः पूर्ववत् ॥ अरणीद्वयं गार्हपत्ये प्रक्षिप्य तत्समारोपं कृत्वा ॥ दक्षिणाग्नौ मुसलोलूखले हुत्वा दक्षिणाग्नेरपि समारोपः ॥ तत औपासनाग्नेः समारोप इति क्रमः ॥ अत्र विशेषोन्यत्र ज्ञातव्यः ॥ इति साग्निकप्रयोगः ॥ स्नातकं प्रति ब्रह्मान्वाधानविरजाहोमादिरहितो वा प्रयोगोग्न्यभावात् ॥

अब ब्रह्मान्वाधानको कहते हैं कि, तीनों अग्नियोंको प्रज्वलित करके संस्कार किये घृतको वारबार स्रुच्में ग्रहण करके आहवनीय अग्निमें "ॐस्वाहा परमात्मने इदम्" इस मन्त्रसे पूर्णाहुति करै । सायंकालकी संध्या और अग्निहोत्रके अन्तमें गार्हपत्य अग्निके उत्तरकी तरफ दो २ पात्रोंको रखकर आहवनीयके दक्षिणभागमें कौपीनदंड आदिको रक्खै । रात्रिजागरणके अन्तमें प्रातःकालके होम आदिको करके पूर्णिमाको ब्रह्मान्वाधान करके पौर्णमासेष्टिको करके दर्शेष्टिको भी पक्षहोमके अपकर्ष करनेके अनन्तर उसीसमय अपकर्ष करके करै । दर्शमें करै तो दर्शेष्टिहीको करै । इसके अनन्तर प्रथम पूर्णिमाको वा दर्शमें देशकालका स्मरण करके 'संन्यासका पूर्वांगरूप प्राजापत्य यज्ञसे वा वैश्वानरयज्ञसे एकतन्त्रसे यजन करता हूं' यह संकल्प करके समुच्चयसे दोनों इष्टि करै । इसमें वैश्वानर इष्टिमें द्वादशकपालका पुरोडाश है । और प्राजापत्यमें विष्णुका चरु और नवकपालपुरोडाश है । अथवा केवल प्राजापत्य इष्टिको करै । यहां प्रयोग तो अपने २ सूत्रके अनुसार समझना । अब बौधायन-सूत्रके अनुसार किंचित् कहते हैं कि, पवन, पावन, पुण्याहवाचनरूप, पूर्वअंगके अन्तमें केवल वैश्वानरेष्टिका वा केवल प्राजापत्येष्टिका संकल्प करै । व्रीहियोंका पुरोडाशद्रव्य, पाँच-प्रयाज, वैश्वानरअग्नि, प्रजापतिदेवता, पंद्रह सामिधेनी ऋचा हैं । व्रतग्रहणके अन्तमें अध्वर्यु आज्यका संस्कार करके स्रुक्में वारवार घीको ग्रहण करके पृथिवी होता इत्यादि चार होताओंके होमको और कूष्मांडहोम और सारस्वत होमोंको करके निर्वाप आदि करै । द्वादश कपालका वैश्वानरपुरोडाश है और प्राजापत्य चरु है । "वैश्वानराय प्रतिवेदयाम०" इस पुरोनुवाककी और "वैश्वानरः पवमानः पवित्रैः०" इस याज्यामें प्रधान जो उपांशु धर्मक (मन्दबोलनेयोग्य) "सुभूः स्वयंभूः" इत्यादि अनुवाककी ऋचासे और "प्रजापतेन-त्वदेताम्०" इस ऋचासे यजन करै । इसके अनन्तर दोनों जगह आठ होम करै कि,"वैश्वा-नरोनऊत्याप्रयातुपरावतः अग्निरुक्थेन वाहसास्वाहा वैश्वानराय इदम्" (यह स्वाहा वैश्वा-नरके अर्थ है) यह सब स्वाहोंमें त्याग है । "ऋतावानो वैश्वानरमृतस्य ज्योतिष्पतिं अजस्र-धर्ममीमहेस्वाहा २, वैश्वानरस्यदस० पृष्टोदिविपृष्टोअग्निः ४,जातोयदग्ने० ५ त्वमग्नेशोचिषा ६, अस्माकमग्ने ७, वैश्वानरस्यसुमतौ ८, फिर "सहस्रशीर्षा०" इस सूक्तसे इस अग्निकी स्तुति करै । फिर स्विष्टकृत् आदि होमके शेषको समाप्त करै । "सर्वोवैरुद्रो०, विश्वंभूतं०" इन दो ऋचाओंसे अग्निका उत्सर्ग (त्याग) करै । "आयुर्दाअग्ने०" इस मंत्रसे दर्भस्तंभमें स्थित यजमानके भागमेंसे किंचित् लेकर और "सहस्रशीर्षा०" इस अनुवाकसे भक्षण करके "ॐइ-दींदंसर्वं०" इस अनुवाकसे हवन कियेके शेषको अग्निमें प्रक्षेप करदे इस प्रकार वैश्वानर आदि कोई भी इष्टिको करके औपासनाग्निमें, सर्वाधानमें, दक्षिणाग्निमें, प्राणादिहोम आदि विरजा-होमपर्यंत कर्मको करै । अन्य सब पूर्वके समान है । आहवनीयमें अरणी, मु-सल, उलूखलसे भिन्नपात्रोंका दाह करै । फिर आत्मामें; पूर्वके समान आहव-नीय अग्निका समारोप करै । दोनों अरणियोंका गार्हपत्य अग्निमें प्रक्षेप करके और उसके, समारोपको करके दक्षिणाग्निमें मुसल और उलूखलको होमकर दक्षिणाग्निका भी समारोप करै फिर औपासनाग्निका समारोप करै । यह क्रम है इसका विशेष अन्यग्रंथोंमें जानना । यह अग्निहोत्रीका प्रयोग समाप्त हुआ । स्नातकके प्रति आत्मामें ब्रह्मान्वाधान, विरजाहोम आदिसे रहित प्रयोग उसको अग्निके अभावसे है ॥

अथातुरसंन्यासः ।

आतुरसंन्यासे संकल्पप्रैषोच्चाराभयदानेति त्रयं प्रधानमावश्यकं कार्यम् ॥ अष्टश्राद्धादिदंडग्रहणांतमंगभूतं यथासंभवं कार्यम् ॥ तत्प्रयोगः ॥ मंत्रस्नानं कृत्वा शुद्धवस्त्रं धृत्वा ज्ञानप्राप्तिद्वारा मोक्षसिद्ध्यर्थमातुरविधिना संन्यासमहं करिष्ये ॥ पंचकेशानवशेष्य वपनं कृत्वा स्नात्वा संध्याद्यौपासनहोमांतं यथासंभवं संपाद्यात्मनि समारोपं कुर्यात् ॥ अग्निहोत्री तु प्राजापत्यादिस्थाने पूर्णाहुतिं कृत्वा श्रौताग्निमात्मनि समारोपयेत् ॥ उच्छिन्नाग्नीनां पुनराधानसंभवे समारोपोऽन्यथा तु न समारोपः ॥ विधुरादीनामग्न्यभावादेव समारोपो नावश्यकः ॥ ततस्तोयमादायाप्सु जुहोति ॥ एष ह वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वाहा १ ॥ आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा २ ॥ भूः स्वाहेति जले जलैर्हुत्वा हुतशेषं जलमाशुः शिशान इत्यनुवाकेनाभिमंत्र्य पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकेषणा मया त्यक्ताः स्वाहेति किंचित्पिबेत् ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति द्वितीयं पिबेत् ॥ संन्यस्तं मयेति निःशेषं तृतीयं पिबेत् ॥ ततः पूर्ववत्सावित्रीप्रवेशः ॥ ततः प्राङ्मुख ऊर्ध्वबाहुः प्रैषोच्चारं पूर्ववत्कुर्यात ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति प्राच्यां जलं क्षिपेत् ॥ शिखामुत्पाट्य यज्ञोपवीतं छित्वा भूः स्वाहेत्यप्सु हुत्वा पुत्रगृहे न तिष्ठेत् ॥ अत्यंतमातुरश्चेत्प्रैषमात्रं वा वदेत् जीवति चेत्स्वस्थः सन्महावाक्योपदेशदंडग्रहणादि सर्वं कुर्यात् ॥ एवमातुरविधिना संन्यासे मृतस्य यतिवत्संस्कारः ॥

अब आतुरसंन्यासको कहते हैं। आतुरके संन्यासमें संकल्प, प्रैषोच्चार, अभयदान; ये तीन प्रधानकर्म अवश्य करने। अष्टश्राद्धसे लेकर दंडग्रहणपर्यंत अंग रूप कर्म यथासंभव करना। उसका प्रयोग यह है कि, मंत्रस्नानको करके; शुद्धवस्त्र धारकर, 'ज्ञानप्राप्तिके द्वारा मोक्षसिद्धिके लिये आतुरविधिसे मैं संन्यास करता हूं' पांच केशोंको रखकर मुंडन कराकर स्नान करके सन्ध्याआदि औपासन अग्निमें होमपर्यंत कर्मको करके आत्मामें समारोप करै। अग्निहोत्री तो प्राजापत्य आदिके स्थानमें पूर्णाहुतिको करके श्रौताग्निका आत्मामें समारोप करै। जिनकी अग्नि उच्छिन्न है उनका पुनःआधानके संभवमें समारोप है। अन्यथा तो समारोप नहीं है। विधुर आदि (अग्निहीनको) अग्निके अभावसे ही समारोप आवश्यक नहीं है। फिर जल लेकर जलोंमें आहुति दे कि, "एषहवा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वाहा आपोवैसर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा ॐभूः स्वाहा" इन मंत्रोंसे जलमें जलोंका होम करके हवनके शेषजलको "आशुः शिशानः०" इस अनुवाक करके अभिमंत्रित करके "पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा मया त्यक्ताः स्वाहा" इस मंत्रसे किंचित् पीवै "अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा" इस मंत्रसे दूबारा पीवै। "संन्यस्तं मया" यह कहकर संपूर्ण तीसरेको पीवै। फिर पूर्वके समान सावित्री प्रवेश को करै। फिर पूर्वाभिमुख होकर और ऊपरको भुजा करके पूर्वके समान प्रैषोच्चारको करै। "अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा" इस मंत्रसे पूर्वदिशामें

जल फेंकै। शिखा उखाडकर यज्ञोपवीतको छेदन करके "भूःस्वाहा" इस मंत्रसे जलोंमें होम कर पुत्रके घरमें न टिकै, अत्यन्त आतुर होय तो प्रेषमात्रको ही उच्चारण करै। जीजाय तो स्वस्थावस्थामें महावाक्योंका उपदेश दंड ग्रहणादि संपूर्ण कर्मको करै। इसप्रकार आतुरविधि से संन्यास लेकर जो मरजाय उसका संस्कार संन्यासीके समान होता है ॥

अथ मृतयतिसंस्कारः।

पुत्रः शिष्यो वा स्नात्वा वपनं कृच्छ्रत्रयं चाधिकारार्थं कुर्यात् ॥ पुत्रातिरिक्तस्य वपनं कृताकृतम् ॥देशकालौ स्मृत्वा ब्रह्मीभूतस्य यतेः शौनकोक्तविधिना संस्कारं करिष्ये ॥नवं कलशं तीर्थेनापूर्य गंगे च यमुने० नारायणः परं ब्रह्म० यच्च किंचिज्जगत्सर्वं० इति मंत्रैरभिमंत्र्य रुद्रसूक्तविष्णुसूक्तापोहिष्ठादिभिर्यतेः स्नानं विधाय चंदनादिभिः कलेवरं संपूज्य माल्यादिभिरलंकृत्य वाद्यघोषादिभिः शुद्धदेशं नयेत्॥ जले स्थले वा समाहितं कुर्यात् ॥ स्थलपक्षे गर्तं व्याहृतिप्रोक्षितभुवि दण्डप्रमाणं कृत्वा मध्ये सूक्ष्मगर्तं सार्धहस्तं कृत्वा सप्तव्याहृतिभिः पंचगव्येन त्रिः प्रोक्ष्य जलपक्षे नद्यां पंचगव्यं प्रक्षिप्य कुशानास्तीर्य सावित्र्या देहं प्रोक्ष्य शंखोदकेन पुरुषसूक्तेनाष्टोत्तरशतावृतप्रणवैश्च संस्नाप्याष्टाक्षरेण षोडशोपचारैः संपूज्य तुलसीमालाद्यैरलंकृत्य विष्णो हव्यं रक्षस्वेति देहं गर्ते नद्यां वा क्षिपेत ॥ इदं विष्णुरिति दंडं त्रेधा भग्नं दक्षिणहस्ते स्थापयेत् ॥ हंसः शुचिषदिति परेण नाकं निहितमिति हृदये जपेत् ॥ पुरुषसूक्तं भ्रुवोर्मध्ये जपेत् ॥ ब्रह्मजज्ञानामिति मूर्धनि ॥ मूर्धानं भूर्भुवः स्वश्चेत्युक्त्वा शंखेन भेदयेत् ॥ अथवा भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात् ॥ भूयास्म पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यतामिति मंत्रेण परश्वादिना भेदयेत ॥ शिरो भेत्तुमशक्तः शिरःस्थापितं गुडपिंडादिकं भिंद्यात् ॥ गर्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत् ॥ सृगालश्वादिरक्षार्थं सिकतादिभिः प्रपूरयेत् ॥ नद्यादौ चेच्छिरोभेदनोत्तरं दर्भैराच्छाद्य व्याहृतिभिरभिमंत्र्य पाषाणं बद्ध्वा ॐ स्वाहेति ह्रदे न्यसेत् ॥ ततोग्निनाग्निः स० त्वं ह्यग्ने अग्निना० त्वं मर्जयंतसुक्रतुं० यज्ञेन यज्ञं० इत्यृक्चतुष्टयेन चितिः सृगित्यादिभिर्दशहोत्रादिसंज्ञकयजुर्मंत्रैश्चाभिमंत्रयेत् ॥ अतो देवा इति जपित्वा पापैर्मुक्ता अश्वमेधादिफलभागिनो वयमिति भावयंतोवभृथबुद्ध्या सर्वेनुगामिनः स्नात्वा गंधादि धृत्वा सोत्सवा गृहं गच्छेयुः ॥ अत्र परमहंसस्य स्थले समाधिर्मुख्यः ॥ जले मध्यमः कुटीचकं च प्रदहेत्पूरयेच्च बहूदकम् ॥ हंसो जले तु निक्षेप्यः परमहंसं प्रपूरयेदिति वचनात् ॥ अत्र परमहंसं प्रकीरयेदिति क्वचित्पाठः ॥ एकोद्दिष्टं जलं पिंडमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् ॥ न कुर्याद्वार्षिकादन्यद्ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ॥ कुटीचकातिरेकेण न दहेद्यतिनं क्वचित् ॥ ततः कर्ता स्नात्वाचम्य सिद्धिं गतस्य ब्रह्मीभूतभिक्षोस्तृप्त्यर्थं

तर्पणं करिष्ये इति संकल्प्य सव्येन देवतीर्थेनैवात्मानमंतरात्मानं परमात्मानामिति चतुश्चतुस्तर्पयित्वा शुक्लपक्षे मृतस्य केशवादिद्वादशनामभिः कृष्णपक्षे मृतस्य संकर्षणादिद्वादशनामभिः केशवं तर्पयामीत्येवं द्वितीयांतैः कुर्यात् ॥ इदं क्षीरेणेति केचित् ॥ ततः सिद्धिं गतस्य भिक्षोस्तृप्त्यर्थं नारायणपूजनं बलिदानं घृतदीपदानं च करिष्ये इति संकल्प्य देवयजनोपरि तीरे वा मृन्मयलिंगं कृत्वा पुरुषसूक्तेनाष्टाक्षरेण च षोडशोपचारपूजां कृत्वा घृतमिश्रपायसबलिं दत्वा घृतदीपं च समर्प्य पायसबलिं जले क्षिपेत्॥तत ॐ नमो ब्रह्मणे नम इति शंखेनाष्टार्घ्यान् दत्वा गृहं व्रजेदिति प्रथमदिनकृत्यम् ॥ एवं दशदिनांतं प्रत्यहं तर्पणं लिंगपूजनपायसबलिदीपदानानि कुर्यात् ॥ अथैकादशेऽहनि पार्वणश्राद्धम् ॥ तत्र मध्याह्ने नद्यादौ श्राद्धांगतिलतर्पणं कृत्वा देशकालौ स्मृत्वा प्राचीनावीती अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो ब्रह्मीभूतस्यास्मात्पितुः करिष्यमाणदर्शादिसर्वश्राद्धाधिकारार्थमाद्यपार्वणश्राद्धं करिष्ये इति पुत्रादिः संकल्पयेत् ॥ शिष्यस्तु ब्रह्मीभूतस्य गुरोः प्रत्यब्दादिश्राद्धाधिकारार्थं तत्पितृसंबंधिनामगोत्रोद्देश्यतासिद्ध्यर्थं च पार्वणश्राद्धमिति संकल्पयेत् ॥ अन्यत्समानम् ॥ पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवाः ॥ पितृपितामहप्रपितामहानां नामगोत्रादिसहितानामुच्चारः ॥ सर्वत्र पितुर्ब्रह्मीभूत इति विशेषणमात्रमधिकम् ॥ शेषं प्रत्यब्दश्राद्धवत् ॥ केचिच्छिष्यः कर्ता चेदात्मांतरात्मपरमात्मन उद्दिश्य साधुरुरुसंज्ञकदेवयुतं सव्येन दैवधर्मकं नांदीश्राद्धवदेकादशाहे पार्वणश्राद्धं कुर्यादित्याहुः ॥ अत्र सर्वत्र विस्तरस्तोरोक्तसंन्यासपद्धतौ द्रष्टव्यः ॥

अब मृतसंन्यासीके संस्कारको कहते हैं । पुत्र वा शिष्य स्नान करके अधिकारके लिये मुंडन और तीन कृच्छ्रोंको करै । पुत्रसे भिन्न मुंडन करै चाहे न करै । देशकालका स्मरण करके 'ब्रह्मरूप संन्यासीके संस्कारको शौनककी कही हुयी विधिसे करताहूं' नये कलशको तीर्थके जलसे भरकर "गंगे च यमुने चैव० । नारायणं परं ब्रह्म० यच्चकिंचिज्जगत्सर्वं०" इन मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके रुद्रसूक्त, विष्णुसूक्त, आपोहिष्ठा; आदि ऋचा० इनसे यतिके स्नानको कराके चंदनआदिसे कलेवरको पूजकर माला आदिसे भूषित करके वाद्यके शब्दोंसे शुद्धदेशमें ले जाय; जल वा स्थलमें समाहित करै । 'समाधि दे' स्थलके पक्षमें व्याहृतिसे ढकी हुई भूमिमें दंडके प्रमाणका गर्त्तकरके सात व्याहृति पढकर पंचगव्यसे तीनबार प्रोक्षण करके और जलके पक्षमें पंचगव्यको नदीमें डारकर, कुशाओंको बिछाकर, गायत्रीसे देहको छिडककर शंखके जलसे पुरुषसूक्त और १०८ ॐकारोंको पढकर, स्नान कराकर फिर अष्टाक्षरसे "ॐ नमो नारायणाय" षोडषोपचारपूजाको करके और तुलसीकी माला आदिसे भूषित करके "विष्णो हव्यं रक्षस्व०" इस मन्त्रसे देहको गर्त (कुंड) वा नदीमें फैंक दे । और "इदं विष्णुः" इस मंत्रसे जो तीन जगहसे भग्न (टूटा) हो उस दंडको दाहिने हस्तमें स्थापन करै । "हंसः शुचिषीदितिपरेणनाकंनिहितंगुहायां विभ्राजदेतद्यतयोविशन्तिवेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः" इस मंत्रको हृदयपर जपै । भ्रुकु-

टियोंके मध्यमें पुरुषसूक्तको जपै । "ब्रह्मजज्ञानम्०" इसको मूर्द्धापर जपै । फिर "भूर्भुवः स्वः" यह कहकर कपालका भेदन शंखसे करै । अथवा "भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात् भूयास्मपुत्रैःपशुभिर्योनोद्वेष्टिसभिद्यताम्" इस मन्त्रसे भेदन परशु आदिसे करै । जो शिरको भेदन न करसकै तो शिरपर गुड वा पिण्ड आदिको रखकर उसका भेदन करै। गर्तको फिर पुरुषसूक्तको जपकर लवणसे भर दे । तथा सृगाल श्वा आदिकी रक्षाके लिये सिकता आदिसे भर दे । नदी आदिके विषै तो जब शिरका भेदन कर चुकै पीछे उसको दर्भोंमें ढककर और व्याहृतियोंसे अभिमन्त्रण करके फिर उसमें पाषाणको बांधकर उसको "ॐ स्वाहा०" इस मन्त्रसे ह्रद (कुण्ड) में रख दे । फिर "अग्निनाग्निः सः० । त्वं ह्यग्ने अग्निना० । तमर्जयन्तसुक्रतुं० । यज्ञेनयज्ञं० ।" इन चार ऋचाओंसे और जिनको दशहोत्र आदि कहते हैं । ऐसे "चित्तिः स्रुक्" इत्यादि मंत्रोंसे अभिमंत्रण करै । फिर वे समस्त अनुगामी पुरुष "अतोदेवा" इस ऋचाको जपकर पापोंसे छुटेहुए और हम अश्वमेधके फलभागी हैं ऐसे अपनेको मानते हुए यज्ञान्तस्नानकी बुद्धिसे स्नान करके घरको जायँ । यहां परमहंसकी तो स्थलमें समाधि करना मुख्य है । और जलमें फैंकना मध्यम है । क्यों कि यह वचन है कि, कुटीचकको दग्ध करै । बहूदकको गर्तमें रक्खै । हंसको जलमें फैंके और परमहंसकी गर्तमें स्थापना करै । यहाँ कहीं "परमहंसं प्रकीरयेत्०" ऐसा पाठ लिखा है । ब्रह्मरूप हुए भिक्षु (संन्यासी) के लिये एकोद्दिष्ट, जलदान, पिण्डदान, आशौच, प्रेतकर्म, इन कर्मों को न करै केवल वार्षिकको करै । और कुटीचकके सिवाय संन्यासीको भस्म न करै । कर्मकर्ता स्नान आचमन करके संकल्प करै कि, सिद्धिको प्राप्त होकर ब्रह्मरूप हुए भिक्षुकी तृप्तिके लिये तर्पणको करताहूं । सव्य होकर देवतीर्थमें ही आत्मा, अन्तरात्मा, और परमात्मा; इनको चार चार अंजलि देकर जो शुक्लपक्षमें मरा होय तो उसकी केशव आदि द्वादश नामोंसे "केशवं तर्पयामि० ।" इस प्रकार द्वितीयान्तशब्दोंसे तर्पण करै । यह तर्पण दुग्धसे करना यह किन्हींका मत है फिर संकल्प करै कि, सिद्धिको प्राप्त हुए भिक्षुकी तृप्तिके लिये नारायणपूजन, बलिदान, घृतके दीपकका दान मैं करताहूं देवयजन (यज्ञभूमि) के ऊपर वा तीरके ऊपर मिट्टीके लिङ्गको बनाकर उसकी पुरुषसूक्त अथवा अष्टाक्षरमंत्रसे षोडशउपचार पूजाको करके और घृतसे मिली पायसकी बलिको देकर तथा घृतके दीपकको अर्पण करके पायसकी बलिको दे । फिर "ॐ नमो ब्रह्मणे नमः० ॥" इस मंत्रसे शंखसे आठ अर्घ्योंको देकर घरको गमन करै । यह प्रथमदिनका कृत्यहै । इसीप्रकार दशदिनतक प्रतिदिन तर्पण, लिंगपूजन, पायसबलिदान, दीपदान; आदिको करै । अब ग्यारहमें दिन पार्वणश्राद्धको कहते हैं । तिस दिन मध्याह्नके समय नदी आदिके विषै श्राद्धांग तिलतर्पणको करके देश कालका स्मरण करके प्राचीनावीती (अपसव्य) 'अमुकगोत्र, अमुकशर्मन्, ब्रह्मरूप; हमारे पिताके करिष्यमाण दर्श आदि श्राद्धोंमें अधिकारकी सिद्धिके लिये मैं आज पार्वणश्राद्धको करताहूं' इसप्रकार पुत्र आदि; संकल्पको करै । और शिष्य कर्मकर्ता होय तो 'ब्रह्मरूपहुए गुरुकी:प्रतिवार्षिकश्राद्ध आदिके अधिकारके लिये और उस श्राद्धके पितरोंके नाम गोत्र आदिकी उद्देश्यता सिद्धिके लिये मैं पार्वणश्राद्धको करताहूं' ऐसा कहै अन्य समस्तकृत्य समान है । यहां पुरूरव, आर्द्रव; नामके विश्वेदेवा होते हैं । तथा नाम गोत्र आदिसहित पिता, पितामह, प्रपितामहोंका नाम उच्चारण करना । और सब जगह पिताके विषयमें ब्रह्मीभूत यह विशेषणमात्र अधि

क कहना । और समस्त कर्म प्रतिवार्षिक श्राद्धके समान करना । और कोई तो यह कहते हैं कि, आत्मा, अन्तरात्मा, और परमात्मा; इन तीनोंके उद्देशसे साधु, रुरु, जिनका नाम है ऐसे देवताओंसे युक्त एकादशाहके दिन नान्दीश्राद्धके समान देव धर्मसे युक्त पार्वणश्राद्धको सव्य होकर करै । यहां विस्तार तो तोरोकी कीहुई संन्यासपद्धतिमें समझलेना ॥

अथ द्वादशाहे नारायणबलिः ।

देशादि स्मृत्वा सिद्धिं गतस्य भिक्षोः संभावितसर्वपापक्षयपूर्वकं विष्णुलोकावाप्तिद्वारा श्रीनारायणप्रीत्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये इति संकल्प्य त्रयोदशयतीन्विप्रान्वा निमंत्र्य शुक्लपक्षे केशवरूपिगुर्वर्थे त्वया क्षणः कर्तव्य इत्येवं दामोदरांतकेशवादिद्वादशनामभिः क्षणो देयः ॥ कृष्णे तु संकर्षणादिद्वादशनामभिस्त्रयोदशं विप्रं विष्ण्वर्थं त्वया क्षणः कर्तव्य इति निमंत्र्य पादान्प्रक्षाल्य प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥ विप्राग्रे स्थंडिलेऽग्निप्रतिष्ठापनादि ॥ अन्वाधाने चक्षुष्याज्येनेत्यंतेऽग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिरेकैकपायसाहुत्या विष्णुमतो देवा इति षड्भिः प्रत्यृचमेकैकपायसाहुत्या नारायणं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमेकैकपायसाहुत्या शुक्ले केशवादिद्वादश देवताः कृष्णे संकर्षणादिद्वादशदेवताः एकैकपायसाहुत्या शेषेणेत्यादिद्विपंचाशदधिकशतमुष्टीन्निरूप्य बलिपर्याप्ततंडुलानोप्याष्टत्रिंशदाहुतिपर्याप्तं पुरुषाहारमितविष्णुनैवेद्यपर्याप्तं च क्षीरे श्रपयित्वाज्यभागांतेऽग्निपूर्वतः शालग्रामे विष्णुं पुरुषसूक्तेनाष्टाक्षरेण च षोडशोपचारैः संपूज्य स्रुचा हस्तेन वान्वाधानानुसारेण होमत्यागौ विदध्यात् ॥ एवं शुक्लकृष्णभेदेन केशवादिद्वादशांताः संकर्षणाद्यंता वाष्टत्रिंशदाहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य पुनः शालग्रामं संपूज्य विष्णुगायत्र्या विष्णवेऽर्घ्यं दत्त्वा हुतशेषपायसेन विष्णवे बलिं दत्त्वा निमंत्रितत्रयोदशविप्रान्केशवादिक्रमेण केशवरूपिगुरवे नम इदमासनमित्यादिनासनगंधपुष्पधूपदीपाच्छादनानि दत्त्वा त्रयोदशं विप्रं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचांते विष्णवे नम इत्येवमादिना विष्णुं दीपांतोपचारैः पूजयेत् ॥ चतुरस्रमंडलेषु त्रयोदशभोजनपात्राण्यासाद्योपस्तीर्यान्नं परिविष्य पृथ्वी ते पात्रमित्यादिना केशवादिद्वादशोद्देशेन विष्णूद्देशेन चान्नं त्यक्त्वा अतो देवा० ॐ तद्ब्रह्म ॐ तद्वायुर्ब्रह्मार्पणमित्याद्यापोशनादिप्राणाहुत्यंते नारायणाद्युपनिषद्भागान्पठेत्तृप्तिप्रश्नांते आचांतेषु प्रागग्रान्दर्भानास्तीर्याष्टाक्षरेणाक्षतोदकं दत्त्वा केशवरूपिणे गुरवेऽयं पिंडः स्वाहा न मम इत्येवं द्वादशपिंडान्दद्यात् ॥ कृष्णे तु संकर्षणादिनामभिरिति सर्वत्र पिंडे विष्णुं संपूज्य पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा विसर्जयेत् ॥ विप्रेभ्यस्तांबूलदक्षिणादि दत्त्वा त्रयोदशाय विप्राय नाभ्या आसीदित्यादृक्त्रयेण फलतांबूलदक्षिणादि दत्त्वा नमस्कृत्य तां शालग्राममूर्तिमाचार्याय दद्यात् ॥ इति नारायणबलिविधिः ॥

अब द्वादशाहके दिन नारायणबलिके विधानको कहते हैं । कि, पहिले इसप्रकार संकल्पको करिके कि, 'सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए भिक्षुके जो पाप सम्भावित हैं उनके क्षय और विष्णुलोककी प्राप्तिके द्वारा श्रीनारायणकी प्रीतिके लिये नारायणबलिको करताहूं ।' फिर तेरह यति वा ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करिके शुक्लपक्षमें होय तो यह कहै कि, केशवरूपी गुरुके लिये आपको क्षण करना । इसप्रकार केशवसे दामोदरतक जो द्वादश नाम हैं उनसे क्षण देना । और जो कृष्णपक्ष होय तो संकर्षण आदि द्वादशनामोंसे देना । और तेरहमें ब्राह्मणको विष्णुके लिये आप क्षण दो । इसप्रकार निमन्त्रण देकर चरणोंका प्रक्षालन कराकर पूर्वाभिमुख उनको बैठावै । ब्राह्मणके अगारी स्थण्डिलके ऊपर अग्निकी प्रतिष्ठा आदि करै । इसप्रकार अन्वाधानमें करै । कि, "चक्षुषीआज्येन०" इस स्वाहाके अन्तमें अग्नि, वायु, सूर्य, प्रजापति; इनको व्यस्त, समस्त, व्याहृतियोंसे एक एक पायसकी आहुति और "अतोदेवा०" इत्यादि छः ऋचाओंसे प्रत्येक ऋचासे एक एक पायसकी आहुति विष्णुको और पुरुषसूक्तकी प्रत्येकऋचासे एक एक पायसकी आहुति नारायणको और शुक्लपक्ष होय तो केशव आदि द्वादश देवता और कृष्णपक्ष होय तो संकर्षण आदि देवताओंको एक एक पायसकी आहुति देकर "शेषेण०" इत्यादि मन्त्रसे बावन ५२ ऊपर सौ मुष्टि (१५२) बनाकर जितनेसे बलि दीजाय उतने चाँवलोंको लाकर और अठतीस (३८) आहुति जितनेमें दीजायँ और जितनेमें पुरुषका आहार और विष्णुको नैवेद्य दिया जाय इतने चाँवलोंको क्षीर (दुग्ध) में पकाकर आज्यभागके अन्तमें अग्निसे पूर्वकी तरफ शालग्राम विष्णुकी पुरुषसूक्तसे पूजा अष्टाक्षरमंत्रसे षोडशोपचार करिके स्रुवा वा हस्तसे अन्वाधानके अनुसार होमत्यागको करै इसीप्रकार शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षके भेदसे केशवसे लेकर बारह वा संकर्षणसे लेकर बारह देवताओंको अठतीस (३८) आहुति देकर स्विष्टकृत् आदि शेष होमको समाप्त करके शालग्रामकी पूजा फिर विष्णुगायत्रीसे विष्णुको अर्घ्य देकर होमसे अवशिष्ट पायससे विष्णुको बलि देकर । जो पहिले नैतिथे उन तेरह ब्राह्मणोंको केशव आदिके क्रमसे केशवरूपी गुरुको नमस्कार है । इत्यादि नाममन्त्रसे आसन, गंध, पुष्प, धूप, दीप, आच्छादन; इनको देकर तेरहमें ब्राह्मणको पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचाके अन्तमें "विष्णवे नमः" इत्यादि शब्दको कहकर दीपकपर्यंत सामग्रीसे विष्णुकी पूजा करै । चौकोर मण्डलोंके विषै तेरहपात्रोंको भोजनके लिये बिछाकर और उसपर अन्नको परोसकर "पृथिवी ते पात्रम्०" इत्यादि मंत्रसे केशव आदि द्वादश देवताओंके उद्देशसे कुछ अन्नको त्यागकर "अतोदेवा० । ॐतद्ब्रह्म० । ॐतद्वायुर्ब्रह्मार्पणं०" इत्यादि मंत्रोंसे आपोशनसे लेकर प्राणाहुतिपर्यन्त किये कर्मके अन्तमें नारायण आदि उपनिषद्भागोंको पढै । तृप्तिके प्रश्न करनेके अनन्तर जब वे आचमन कर चुकैं तब पूर्वदिशाको जिनका अग्रभाग हो ऐसी दर्भोंको बिछाकर और अष्टाक्षर मन्त्रसे अक्षत जलको छोडकर केशवरूपी गुरुको यह पिण्ड है 'नमम०' ऐसा कहकर द्वादश पिण्डोंको दे । और जो कृष्णपक्ष होय तो संकर्षण आदि नामसे दे । इसीप्रकार सब जगह समझना । पिण्डके ऊपर विष्णुकी पूजाको करिके और पुरुषसूक्तसे विष्णुकी पूजा करके विसर्जन करै । ब्राह्मणोंको तांबूल दक्षिणा आदि देकर तेरहमें ब्राह्मणको "नाभ्याआसीत्०" इत्यादि तीन ऋचाओंसे फल,

तांबूल, दक्षिणा; को देकर और नमस्कार करिके शालग्रामकी मूर्ति आचार्यको दे। नारायण-बलिकी विधि समाप्त हुई ॥

अथ द्वादशाहे त्रयोदशाहे वा यथाचारमाराधनम्।

तत्र प्रयोगः ॥ देशकालौ स्मृत्वा श्रीनारायणप्रीत्यर्थमाराधानं करिष्ये इति संकल्प्य ॥ गुर्वर्थे क्षणः कर्तव्यः ॥ एवं परमगुर्वर्थे परमेष्ठिगुर्वर्थे परात्परगुर्वर्थे एवं विप्रचतुष्टयं निमंत्र्य शुक्ले केशवादिनामभिः कृष्णे संकर्षणादिनामभिः द्वादश-विप्रान्निमंत्रयेत् ॥ एवं षोडशविप्राः यतयो वा ॥ अशक्तो यथाशक्ति विप्रान्निमंत्र्य यथायथं षोडश क्षणा देयाः ॥ षोडशानां पादक्षालनं कृत्वाचम्य पादक्षालनोदकं पात्रांतरे गृहीत्वा गंधपुष्पादिभिः पूजयेत् ॥ विप्रान्प्राङ्मुखानुदङ्मुखान्वोपवेश्य षोडशोपचारैर्गंधादिपंचोपचारैर्वा संपूज्य ॥ सपरिकरमन्नं परिविष्य गायत्र्या प्रोक्ष्य गुरवे इदमन्नं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाण चातृप्तेः स्वाहा हव्यं न मम ॥ एवं परमगुर्वादिभ्यः पंचदशभ्योन्नत्यागं कृत्वा ब्रह्मार्पणमित्यादिभुक्तेष्वाचांतेषु तांबू-लदक्षिणावस्त्रादिभिः पूजयेत् ॥ अत्र केचित्पूर्वस्थापितपादोदकतीर्थपूजां कुर्वंति ॥ तद्यथा तीर्थपात्रं तण्डुलादिकृतमंडले संस्थाप्य पुरुषसूक्तेन तीर्थराजाय नम इति षोडशोपचारैः संपूज्य तत्पात्रं शिरसि धृत्वा बंधुभिः सह विप्रान्प्रदक्षिणीकृत्य गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुरिति नत्वा प्रथमविप्रहस्तात्तत्तीर्थं पिबेत् ॥ तत्र मंत्रः ॥ "अविद्यामूलशमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ पिबामि गुरुपत्तीर्थं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम्॥" इति ॥ कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा सुहृद्युतो भुंजीत ॥ वर्षपर्यंतं प्रतिमासं मृततिथावेव-मेवाराधनं कार्यम् ॥ न तु प्रतिमासिकश्राद्धम् ॥ प्रत्यब्दं तु पार्वणश्राद्धं कृत्वारा-धनमपि कार्यम् ॥ ततो दर्शमहालयादिश्राद्धान्यपि सर्वसाधारण्येन कार्याणि ॥ न तत्र विशेषः ॥ इत्याराधनविधिः ॥ अत्र नारायणबलिपार्वणश्राद्धयोरेकदिना-नुष्ठानपक्षे एकादशे द्वादशे वा दिने पूर्वं नारायणबलिं कृत्वा ततः पार्वणश्राद्धं कार्यम् ॥ दिनद्वये करणपक्षे त्वेकादशे पार्वणं द्वादशे नारायणबलिर्द्वादशे त्रयो-दशे वा दिने आराधनम् ॥ ऊनमासिकादिकालेष्वप्याराधनमिति केचित ॥ प्रतिमासमाराधनमित्यन्ये ॥ पार्वणश्राद्धं त्वेकादशाहप्रत्यब्दयोरेव ॥ तच्च पुत्रादी-नामेव नियतं शिष्यादीनां तु नावश्यकम् ॥ अपुत्रयतेस्तु शिष्येणापि प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं कार्यम् ॥ तदर्थं च नामगोत्रोल्लेखाधिकारार्थमेकादशेपि शिष्येण पार्व-णश्राद्धं कार्यम् ॥ नारायणबल्यादेर्द्वादशाहादावसंभवे शुक्लपक्षस्थद्वादशीश्रवणपं-चम्यः पूर्णिमामावास्या चेति गौणकालाः ॥ अत्र पूर्वपूर्वः श्रेयान् ॥ भार्याकन्या-स्नुषादेः स्त्रिया यतिसंस्कारकर्तृत्वे तु विधवाया वपनपूर्वकं कृच्छ्रत्रयाचरणं सध-वायास्तु कृच्छ्राचरणमेव ॥ देशांतरस्थपुत्रः पितुर्यतेः सिद्धिवार्तां श्रुत्वा वपनपू-

र्वकं स्नात्वा क्षीरतर्पणपूजनादिदशाहांतं कृत्वैकादशाहादौ पार्वणनारायणबल्यादिसर्वमविकृतं कुर्यात् ॥ सन्निहितेन ज्येष्ठेन कृतं चेत्कनिष्ठो न कुर्यात् ॥ शुक्लकृष्णादिभेदेन केशवादिनामानि मृततिथ्यनुरोधेनैव ग्राह्याणि न तु वार्ताश्रवणतिथ्यनुरोधेन ॥ मृततिथ्यज्ञाने तु वार्ताश्रवणानुरोधेनैव ॥ यतिसंस्कारकरणेश्वमेधसहस्रादिफलम् ॥ "असंस्कृतं विशीर्येत यतेर्यत्र कलेवरम् ॥ धर्मलोपो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं मरणं तथा ॥ दिवं गते गुरौ शिष्य उपवासं तदाचरेत् ॥ न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते ॥ पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नानाच्छुद्ध्यति सांबरः ॥"

अब द्वादशाह त्रयोदशाहके दिन जैसा आचार हो आराधनविधिको कहते हैं। देशकालका स्मरण करके 'श्रीनारायणकी प्रीतिके लिये आराधनको करताहूं।' यह संकल्प करके गुरुके लिये आपको क्षण करताहूं। इसप्रकार परमगुरु, परमेष्ठीगुरु, और परात्परगुरु; के लिये क्षण देकर और चार ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे। शुक्लपक्ष होय तो केशव आदि नामोंसे और कृष्णपक्ष होय तो संकर्षण आदि नामोंसे द्वादश ब्राह्मणोंको निमंत्रण दे। इसप्रकार षोडश ब्राह्मण वा यतियोंको निमंत्रण दे जो सामर्थ्य न होय तो यथाशक्ति ब्राह्मणोंको निमंत्रण देकर यथाश्रद्धा (श्रद्धाके अनुसार) षोडश ब्राह्मणोंको क्षण दे। फिर सोलह ब्राह्मणोंका चरणप्रक्षालन जलसे करिके और आचमन करिके और पादक्षालनके जलको अन्यपात्रमें लेकर, गंध, पुष्प, आदिसे पूजन करै। फिर ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख वा उत्तराभिमुख बैठाकर षोडशोपचार वा गन्ध आदि पंचोपचारोंसे पूजकर परिकर (जलआदि) सहित अन्नको परोसकर और गायत्री मंत्रसे छिडककर "गुरवे इदमन्नम्परिविष्टम्। परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा हव्यं न मम०" इस प्रकार कहकर परमगुरु आदि पंचदश ब्राह्मणोंको अन्नका त्याग करिके "ब्रह्मार्पणं०" इत्यादि मंत्रको पढै। जब भोजनके अनंतर आचमन कर चुकैं तब (ताम्बूल, दक्षिणा, वस्त्र, आदिसे पूजन करै यहां कोई तो जो पहिले चरणोदक, रक्खाथा उसमें तीर्थबुद्धिसे पूजाको इसतरह करते हैं। कि, तीर्थपात्रको तण्डुल आदिसे बनाये हुए मण्डलपर स्थापन. करिके फिर पुरुषसूक्तसे "तीर्थराजाय नमः" इस प्रकार षोडशोपचारोंसे पूजाको करिके उस पात्रको शिरपर धारण करिके और बन्धुओंसमेत ब्राह्मणोंकी परिक्रमा करके और "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु०" इसमंत्रको पढकर नमस्कार करिके फिर पहिले ब्राह्मणके हाथसे उस तीर्थोदकको पीवै उसका मंत्र यह है कि, 'अविद्याके मूल और पापोंके नाश करनेवाले गुरुजीके चरणोदकको पुत्रपौत्रकी वृद्धिके लिये पीताहूं' कर्मको ईश्वरके अर्पण करिके मित्र, बांधवोंसमेत भोजन करै। एकवर्षतक प्रतिमास मरणतिथिका इसप्रकार ही आराधन करै। प्रतिमासिके श्राद्धको नहीं। और प्रतिवर्ष तो पार्वणश्राद्धको करिके आराधन भी करना। फिर दर्श, महालय आदि श्राद्ध भी सर्व साधारण करै। उसमें कुछ विशेषविधि नहीं आराधनविधि समाप्त हुई। यहां नारायणबलि पार्वणश्राद्ध एकदिन करना 'यह पक्ष है जब ग्यारहमें वा बारहमें दिन पहिले नारायण बलिको करके फिर पार्वणश्राद्ध करना। और जो दो दिन करना यह पक्ष है तब ग्यारहमें दिन पार्वणश्राद्ध और बारहमें दिन; नारायणबलि करना। बारहमें वा तेरहमें दिन आराधन करना। और कोई तो यह कहते हैं कि, ऊन-

मासिक आदि श्राद्धोंमें भी आराधन करना । और कोई, प्रतिमास श्राद्धोंमें ही करना यह कहते हैं । और पार्वणश्राद्ध तो एकादशाह और प्रतिवार्षिक श्राद्धोंमें ही करना । वह पुत्रादिकोंको करना तो नियमसे है । और शिष्य आदिको तो आवश्यक नहीं । और जिस यतिके पुत्र न होय उसका तो पार्वण भी प्रतिवर्ष शिष्यको भी करना । और प्रत्यब्द-पार्वणमें नाम गोत्र लेनेके अधिकारार्थ शिष्य ग्यारमें दिन भी पार्वण करै । जो नारायण-बलि आदि द्वादशाह आदिको न हो सकें तो शुक्लपक्षकी द्वादशी, श्रवण, पंचमी, पूर्णिमा, अमाव-स्या इन गौणकालोंमें करै । इस गौणकालमें पहिला पहिलाकाल श्रेष्ठ है । भार्या, कन्या, स्नुषा (पुत्रवधू) स्त्री ये जो यतिका संस्कार करैं तो इनमें जो विधवा होय तो तीनकृच्छ्र व्रतोंको करिके और सुहागिन होय तो एककृच्छ्रको करिके करै । जो अन्यदेशमें टिका हुआ पुत्र अपने यति हुए पिताकी सिद्धिवार्ता (मरण) को सुनै तो मु-ण्डन स्नानको करिके पूर्वोक्त क्षीर तर्पण पूजनसे लेकर दशाहपर्यंत कर्मको करिकै एकादशाह आदिको पार्वण नारायणबलि आदि समस्त कर्मोंको सांगोपांग करै । और जो समीपही हो ऐसा जेठाभाई उस कर्मको करले तो कनिष्ठभाई न करै । शुक्ल-पक्ष कृष्णपक्षके भेदसे जो केशव आदि नाम हैं वे मरणातिथिके अपेक्षासे समझने । कुछ ये नहीं कि जिस तिथिको मरण सुना वह ही दिन लेना । और जो मरणातिथि न मालूम हो तो जिस दिन बात सुने उसीके अनुसार शुक्ल, कृष्ण, समझना । यतिके संस्कार करनेमें हजार अश्वमेधका फल होता है । क्योंकि जिसका संस्कार न हो ऐसा यतिका देहपात जहां हो वहां धर्मका लोप, दुर्भिक्ष, मरण, ये होते हैं । जब गुरु; स्वर्गलोकवासी हों तब शिष्य उपवासको करै भिक्षु (यति) पुत्र आदिका मरण सुनकर स्नान आदि न करै । और पिता, माताका मरण सुनकर स्नान करके एकवर्षमें शुद्ध होता है ॥

अथ प्रसंगाद्यतिधर्माः ।

प्रातरुत्थाय ब्रह्मणस्पत इति जपित्वा दंडादीनि मृदं चादाय मूत्रपुरीषयोर्गृह-स्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाचम्य पर्वद्वादशीवर्ज्यं प्रणवेन दंतधावनं कृत्वा मृदा बहिः कटिं प्रक्षाल्य जलतर्पणवर्ज्यं स्नात्वा पुनर्जंघे प्रक्षाल्य वस्त्रादीनि गृहीत्वा प्रणवेन प्राणायाममार्जनादि कृत्वा केशवादिनमोंतनामभिस्तर्पयित्वा भूस्तर्पयामी-त्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीति तर्पयेत् ॥ अत्र विशेषो माधवा-दौ विश्वेश्वर्यादौ च ज्ञेयः ॥ सूर्योपस्थानादिकं त्रिकालविष्णुपूजादिकं च सिंधौ ज्ञेयम् ॥ विधूमे सन्नमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने कालेऽपराह्णे भूयिष्ठे नित्यं भिक्षां यति श्चरेत् ॥ अत्र भिक्षाभेदा ग्रंथांतरे ज्ञेयाः ॥ अत्र विविदिषोर्दंडिनो माधुकरी मुख्या ॥ दंडवस्त्रादिपरिग्रहणरहितस्य तु करपात्रं मुख्यम् ॥ अन्ये पक्षा अश-क्तविषयाः ॥ तत्र माधुकरीपक्षे दंडादि गृहीत्वा पंचभ्यः सप्तभ्यो वा गृहेभ्यो भिक्षां याचयित्वान्नं प्रोक्ष्य भूः स्वधा नम इत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः सूर्या-दिदेवेभ्यो भूतेभ्यश्च भूमौ क्षिप्त्वा शेषमन्नं विष्णुनिवेदितं भुंजीत ॥ चंडीविना-

यकादिनैवेद्यं न भुंजीत ॥ भुक्ताचम्य षोडश प्राणायामान्कुर्यादिति संक्षेपः ॥ "यतिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात्पुनर्जलम् ॥ भैक्ष्यं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम् ॥ एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पंचरात्रकम् ॥ वर्षाभ्योन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् ॥ अष्टौ मासान्विहारः स्याद्यतीनां संयतात्मनाम् ॥ महाक्षेत्र प्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते ॥ भिक्षाटनं जपस्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम् ॥ कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदंडवत् ॥ मंचकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च ॥ दिवास्वापश्च यानं च यतीनां पतनानि षट् ॥ वृथा जल्पं पात्रलोभं संचयं शिष्यसंग्रहम् ॥ हव्यं कव्यं तथान्नं च वर्जयेच्च सदा यतिः ॥ यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च ॥ न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः ॥ न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत् ॥" एतद्वेदार्थभिन्नपरम् ॥ एते संक्षेपतो यतिधर्माः ॥ अन्येपि माधवीयमिताक्षरादौ ज्ञेयाः ॥

अब प्रसंगसे यतिके धर्मोंको कहते हैं। प्रातःकाल उठकर "ब्रह्मणस्पते" इसको जपकर दण्ड आदि तथा कमण्डलु, मिट्टी आदिको लेकर मूत्र तथा शौचको जाकर गृहस्थसे चौगुना शौच (शुद्धि) करै। फिर आचमन करै। और पर्व (मावस, पूर्णा) और द्वादशीको छोडकर ॐकारको पढकर दन्तधावन करै। मिट्टीसे कटिके बहिर्भागको प्रक्षालन करिके स्नान करै। जलतर्पण न करै। फिर जंघाओंका प्रक्षालन करिके वस्त्र आदिको ग्रहण करिके ॐकारसे प्राणायाम मार्जन आदिको करिके केशव आदिका " केशवायनमः " इसप्रकार अन्तमें 'नमः' पदको कहकर तर्पण करके "भूस्तर्पयामि०" इसप्रकार व्यस्त समस्त व्याहृति और "महस्तर्पयामि महर्जनस्तर्पयामि" इसप्रकार महः आदि व्याहृतियोंसे तर्पण करै। यहां विशेष माधव आदि विश्वेश्वरी आदि ग्रन्थोंमें समझना। सूर्योपस्थान आदि त्रिकालविष्णुपूजा आदिकी विधि सिन्धुग्रन्थमें समझनी। जब धूमां न रहै मुसलका शब्द न हो मनुष्य भोजन कर चुकैं अपराह्णकाल हो जाय तब यति भिक्षाके लिये गमन करै। यहा भिक्षाओंके प्रकार ग्रन्थान्तरसे समझने। यहां विविदिषु (ज्ञानाभिलाषी) दण्डीके लिये माधुकरी (कर्पट्रिका) भिक्षा मुख्य है। जो दण्ड, वस्त्र आदि परिग्रहसे रहित हो उसको करपात्र मुख्य है। अन्यपक्ष जो समर्थ न हो उसके वीषयमें ह तहां माधुकरी भिक्षा लेनी जब यह पक्ष है तब दण्ड आदिको लेकर पांच वा सात घरोंसे भिक्षाको मांगकर और उसको जलमें धोकर "भूः स्वधानमः०" इत्यादि व्यस्त, समस्त, व्याहृतिसे सूर्य आदि देव और भूतोंके लिये भूमिमें गेरकर शेष अन्नको विष्णुको निवेदन करके भोजन करै। जो चण्डी, गणेशको निवेदन करदिया हो उसे भोजन न करै। भोजन, आचमन, करिके षोडश प्राणायाम करै। यह संक्षेपसे यतिधर्म कह चुके। यतिके हाथमें जल दे फिर भिक्षा दे फिर जल दे वह भिक्षा तो पर्वतकी तुल्य है। और जल समुद्रकी समान समझना। ग्राममें एकरात्र, नगर (शहर) में पांचरात और वर्षाकालमें चार (४) मास एकस्थानपर निवास करै। और जो जितेन्द्रिय हैं ऐसे यति आठमासतक विहार करैं। जो महाक्षेत्र (काशीआदि) में रहते हैं उनको विहारकी आव-

श्यकता नहीं । भिक्षाटन, जप, स्नान, ध्यान, शौच, देवार्चन, ये सर्वथा नृपदण्डकी समान करने । अर्थात् इनका अवलंघन न करै । पलंग, सफेदवस्त्र, स्त्रियोंकी बात, चंचलता, दिनमें सोना और सवारी ये छः यतिको पतितकर देते हैं । वृथा बोलना, पात्रका लोभ, संचय, शिष्योंका संग्रह, हव्य, कव्यका अन्न इनको यति, वर्ज दे मिट्टी, वेणु, दारु, अलाबु (तूंबा) इनके पात्र यतिको रखने सदा तीर्थपर न रहै । और न नित्य उपवासको करै । न अध्ययनशील हो और न धर्म आदिके व्याख्यानमें तत्पर हो । यह वाक्य, वेदार्थसे भिन्नके विषयमें है अर्थात् वेदके अध्ययन आदिका दोष नहीं । इस प्रकार संक्षेपसे यति धर्मों को कह चुके अन्य भी यतिधर्म; माधवकी बनाई मिताक्षरा आदिमें समझने ॥ इति ॥

अथ परिच्छेदत्रयविषयाः ।

"प्रथमेत्र परिच्छेदे कालसामान्यनिर्णयः ॥
द्वितीयेथ परिच्छेदे विशेषात्कालनिर्णयः ॥ १ ॥

प्रथमपरिच्छेदमें सामान्यरीतिसे कालका निर्णय, और दूसरे परिच्छेदमें विशेषकर कालका निर्णय कहा ॥ १ ॥

तृतीयस्य च पूर्वार्द्धे गर्भाधानादिसत्क्रियाः ॥
आह्निकं च प्रकीर्णार्था आधानाद्याः सविस्तराः ॥ २ ॥

और तृतीयपरिच्छेदके पूर्वार्द्धमें गर्भाधान आदि संस्कारविधि, आह्निककृत्य, प्रकीर्णविषय अग्न्याधान आदिकी विस्तारसे विधि ॥ २ ॥

देवप्रतिष्ठा शांत्यादि नित्यं नैमित्तकं तथा ॥
तार्तीयिकोत्तरार्धेस्मिञ्जीवत्पितृकनिर्णयः ॥ ३ ॥

देवप्रतिष्ठा, शान्ति आदि, नित्य नैमित्तिक कर्म कहे और अब इस तृतीयपरिच्छेदके उत्तरार्द्धमें जीवत्पितृकश्राद्ध ॥ ३ ॥

श्राद्धाधिकारकालादेर्निर्णयः श्राद्धपद्धतिः ॥
सूतकादेर्निर्णयश्च निर्णयो दुर्मृतावपि ॥ ४ ॥

श्राद्धका अधिकार तथा कालका निर्णय, श्राद्धपद्धति, सूतक आदिका निर्णय, दुष्टमरण आदिमें सूतकका निर्णय कह चुके ॥ ४ ॥

अंत्येष्टिसंस्कारविधिः संन्यासः सह विस्तरः ॥
प्रायश्चित्तं व्यवहृतिं सर्वदानविधिं विना ॥ ५ ॥

अन्त्येष्टिसंस्कार, सविस्तर संन्यास, प्रायश्चित्त, सर्वदानविधिको छोडकर व्यावहारिक कर्म ॥ ५ ॥

कृत्स्नोपि धर्मशास्त्रार्थः संक्षेपेणात्र निर्मितः ॥
विबुधानां च बालानां तुष्टये कष्टहानये ॥ ६ ॥

और समस्त धर्मशास्त्रके अर्थ संक्षेपसे यहां पण्डितोंकी प्रसन्नता और बालोंकी कष्टकी हानिके लिये कहे ॥ ६ ॥

मूलभूतानि पद्यानि विकृतानि क्वचित्क्वचित् ॥
निर्विकाराण्यपि नवान्यप्युक्तान्यत्र कानिचित् ॥ ७ ॥

और मूलके श्लोक भी कहीं बदलकर और कहीं जोंके त्यों नये और ग्रन्थांतरके कहीं कहीं कहे ॥ ७ ॥

मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोऽनलसा बुधाः ॥
कृतकार्याः प्राङ्निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ ८ ॥

जो मीमांसा, धर्मशास्त्र, के ज्ञाता हैं। और जो आलस्यसे रहित और जो प्राचीन ग्रन्थोंसे अपने कार्य करनेमें कुशल सुधी हैं उनके लिये यह उद्यम मैंने नहीं किया ॥ ८ ॥

ये पुनर्मंदमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ॥
धर्मं वेदितुमिच्छंति रचितस्तदपेक्षया ॥ ९ ॥

किन्तु, जो मन्दमति, आलसी होकर धर्मके जाननेकी इच्छा करते हैं उनके लिये ॥ ९ ॥

निबंधोयं धर्मसिंधुसारनामा सुबोधनः ॥
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विठ्ठलो भक्तवत्सलः ॥ १० ॥

यह सुगम धर्मसिन्धु नामका ग्रन्थ रचाहै, सो इससे श्रीमान् भक्तवत्सल विठ्ठलभगवान् प्रसन्न हों ॥ १० ॥

प्रेम्णा सद्भिर्ग्रंथः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोपि ॥
संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव ॥ ११ ॥

यह ग्रन्थ जो कहीं शब्द वा अर्थसे दूषित हो तो भी प्रेमसे शोधकर विद्वान् जन इस प्रकार ग्रहण करैं कि जैसे श्रीकृष्णचंद्रजीने सुदामाके एक मुष्टि तण्डुल ग्रहण कियेथे ॥ ११ ॥

श्रीकाश्युपाध्यायवरो महात्मा बभूव विद्वद्द्विजराजराजः ॥
तस्मादुपाध्यायकुलावतंसो यज्ञेश्वरोऽनंत इमावभूताम् ॥ १२ ॥

श्रीकाशीमें द्विजोंमें श्रेष्ठ विद्वद्द्विजराजजी हुए उनसे उपाध्याय कुलके भूषण यज्ञेश्वर और अनन्त दो पुत्र हुए ॥ १२ ॥

यज्ञेश्वरो यज्ञवितानदक्षो दैवज्ञवेदांगसुशास्त्रशिक्षः ॥
भक्तोत्तमोऽनंतगुणैकधामाऽनंताह्वयोऽनंतकलावतारः ॥ १३ ॥

उनमें यज्ञेश्वर तो यज्ञ करनेमें चतुर, ज्योतिःशास्त्र, वेदांग (व्याकरण आदि) शास्त्रके ज्ञाता, अनन्तगुणोंके स्थानरूप, बडे भक्तिमान् हुए। और अनन्तजी महाराज साक्षात् अनन्तदेवके अंशसे अवतार हुए ॥ १३ ॥

एषोत्यजज्जन्मभुवं स्वकीयां तां कौकणाख्यां सुविरक्तिशाली ॥
श्रीपांडरंगे वसतिं विधाय भीमातटे मुक्तिमगात्सुभक्त्या ॥ १४ ॥

सो ये अपनी कौंकणनाम्नी जन्मभूमिको छोडकर और विरक्त होकर श्रीपाण्डुरंगजीके निकट बसकर भीमा (नदी) के तटके ऊपर भक्तिसे मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥

तस्यानंताभिधानस्योपाध्यायस्य सुतः कृती ॥
काशीनाथाभिधो धर्मसिंधुसारं समातनोत् ॥ १५ ॥"

इति श्रीमत्काश्युपाध्यायसूरिसूनुयज्ञेश्वरोपाध्यायानुजानंतोपाध्यायसूरिसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिंधुसारे तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धे समाप्तम् ॥

॥ श्रीपांडुरंगार्पणमस्तु ॥

उन अनन्त उपाध्यायके पुत्र विद्वान् काशीनाथने इस धर्मसिन्धुसारग्रन्थको रचा है ॥१५॥

इति श्रीमत्काश्युपाध्यायसूरिसूनुयज्ञेश्वरोपाध्यायानुजानन्तोपाध्यायसुतकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे पण्डितमिहिरचन्द्रकृतभाषाविवृतिसहिते तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्द्धं समाप्तम् ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.

विक्रयार्थ पुस्तकोंकी–

जाहिरात।

धर्मशास्त्रग्रन्थाः ।

मनुस्मृति–सटीक कुल्लूकभट्टकृत संस्कृतटीकासहित... ... ... १।।।)

मनुस्मृति–सान्वय भाषाटीकासहित इसमें भगवान् मनुजीके कहे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंके यथोचित धर्म और गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमके कर्म और राजाओंके, नीतियुक्त, प्रजापालन और अधर्मियोंके दंड इत्यादिका निर्णय आशौचनिर्णय आदि अनेक विषयसंयुक्त है ग्लेज कागद ... . २।।)

" तथा रफ् ... ... २।

याज्ञवल्क्यस्मृति–पं० मिहिरचंद्रकृत मिताक्षरा नाम पद योजना भावार्थ और तात्पर्यार्थ टिप्पणी तथा भाषाटीकासहित–जिसमें आचाराध्याय, व्यवहाराध्याय, प्रायश्चित्ताध्याय आदि तीन अध्यायोंमें राजाओंके नीतियुक्त प्रजापालन करनेके धर्म और अधर्मियोंके दंडदेने और ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके और गृहस्थादिचारों आश्रमकेधर्म और व्रतादिकोंके धर्म इत्यादि अनेकविषयसे संयुक्तहै ... . ५)

अष्टादशस्मृति–मूलमात्र उपरोक्तविषयमें सर्वधर्मनिरूपण किया गया है .... २।

" तथा भा० टी० छपता है ... ...

बृहत्पाराशरस्मृति–धर्मनिरूपणका अपूर्वग्रंथ है ... . १)

पाराशरस्मृति–उत्तरखंड इसमें रामानुज संप्रदायके तप्तचक्रांकित मुद्रा और वैष्णवोंका धर्म लिखागया है .... ।)

जयसिंहकल्पद्रुम–मूलमात्र (धर्मशास्त्र ग्रन्थ) यह ग्रन्थ जयपुर महाराज 'श्रीजयसिंहजी' की आज्ञासे सम्राट् पौंडरीक याजी 'श्रीरत्नाकर दीक्षितजी'–ने निर्माण कियाहै । परोपकार शिरोमणि इन महाशयोंने यह ऐसा उपकार किया है कि जो वाणीके अगोचर है अर्थात् कथन नहीं किया जा सकता. क्योंकि निर्णयसिन्धु आदि धर्मशास्त्र ग्रंथोंमें तो निर्णय होनेपर भी संदेह ही रह जाताहै और इसमें तो हेमाद्रि, मदनरत्न, माधवीय, विष्णुधर्मोत्तर, दीपिका, गृह्यपरिशिष्ट, ब्रह्मसिद्धान्त, निर्णयामृत, वसिष्ठसिद्धान्त, स्मृतिसंग्रह, मत्स्यपुराण आदि ग्रंथोंके प्रमाणोंसे और वृद्धवसिष्ठ, वसिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर, गौतम, मरीचि, शातातप, गर्ग्य, देवल, शाट्यायनि, कार्ष्णाजिनि, शंख, लिखित,–आदि महर्षियोंके वाक्योंसे निर्णय ऐसे स्पष्ट किये हैं कि जो हृदयमें दृढीभूत होजाते हैं। इसके विशेष गुण क्या लिख सकते हैं वे तो प्रत्यक्ष होनेसे ही विदित हो सकते हैं। ... ... ५।

निर्णयामृत–मूलमात्र बारहोंमासके तिथिव्रत, श्राद्धादिका निर्णयहै .... २।

धर्मसिंधु–मूलमात्र .... २)